GYANODAYA JAN-AUG 1967 G.K.U.

ज्ञानोदय

1967

जनवरी १९६७

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण— लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं माणिक चन्द्र ग्रन्थमालाके अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

●

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालयः ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई–१

नववर्षांक
जनवरी १९६७
वर्ष : १८ :: अंक ७
मूल्य : १.००

077998

STOCK VERIFICATION
Central Library
2024-25 G.K.D.U., Hdr.

ज्ञानोदय

आधुनिक भावबोध
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि

•

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

•

भारतीय ज्ञानपीठ
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

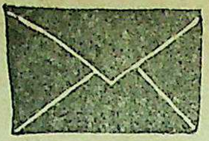

कुछ पंक्तियाँ ....

[**बनारसीदास चतुर्वेदी :** महानगर विशेषांक अभी मिला। बहुत-बहुत धन्यवाद उसे धीरे-धीरे पढ़ूँगा। श्री जितेन्द्रकुमार मित्तलका लेख 'उद्दीपक' है—मेरे-जैसे ७५ वर्षीय युवकके लिए भी ! किसी कविका वचन प्रामाणिक है :—

बूढ़ोंके साथ लोग कहाँतक वफ़ा करें ?
आख़िर न मौत आये तो बूढ़े भी क्या करें ?

अपने लेखके विषयमें मेरी एक शिकायत है—उसके हैडिंगके बारेमें।

दिल्लीमें १२ वर्ष भाड़ झोंक चुका हूँ और कलकत्तेमें १० वर्ष गँवा चुका हूँ तथा बम्बईमें भी कई महीने रहना पड़ा था, इसलिए महानगरोंके बारेमें मेरी भी कुछ अनुभूतियाँ हैं—मुख्यतया साहित्यिक तथा सांस्कृतिक।—**फ़ीरोज़ाबाद**]

●

[**ब्रजकिशोर नारायण :** 'ज्ञानोदयका महानगर विशेषांक' मिला ! और यूँ मिला कि मिल गया ज्ञानका अपरिमित कोष ! जिस मंजूषामें आपने नानाविध निधियाँ सजायी-सँजोयी हैं वह भी परम रुचिकर सौन्दर्यशाली और अद्‌भुत है। आपकी सूझ, मेहनत, प्रभाव, परिपत्र और विद्वत्तापूर्ण कलाकारिताका प्रतीक है, यह विशेषांक !—**पटना**]

●

[**कुबेरनाथ राय :** 'महानगर'-विशेषांक मिला। लगता है कि इतनी सामग्री जुटानेके लिए आप लोगोंको अपार परिश्रम करना पड़ा है। उभरते हुए 'नवबोध'को समझनेमें अपने पाठकोंको इससे अपार सहायता मिलेगी। 'इतिहास-पुरातत्त्व और नवबोध' दोनों चेहरे साथ-साथ इसमें शामिल हैं। यह इसकी ख़ूबी है। ऐसे सुन्दर प्रयोगके लिए साधुवाद। —**नालबारी**]

●

[**शशिप्रभा शास्त्री :** विभिन्न महानगरोंके समूचे परिवेशको सँभाले हुए चारों आयाम बहुत भले लगे—अबतकके ज्ञानोदय-विशेषांकोंमें यह विशेषांक निश्चित ही अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है—गेट-अप, वस्तु-परिकल्पना और शिल्प-अभिवृद्धि सबमें—मेरी बधाई स्वीकारें। —**देहरादून**]

आपको कहनेसे पहले...

पिछले ६ महीनोंसे ज्ञानोदय को इस बात पर बार-बार विचार करना पड़ा है कि अवमूल्यनके कारण काग़ज़के बढ़े हुए मूल्य और अपने सुरुचि-सम्पन्न पाठकों तथा स्नेही ग्राहकोंके प्रति अधिकसे अधिक विविध सामग्री देनेकी प्रतिबद्धताके बीच कैसे सन्तुलन बैठायें ? इतनी महँगी दरोंके कारण, पृष्ठ-संख्या और प्रस्तुतीकरणमें चाहे जितनी कटौतीके बाद भी स्थिति ऐसी नहीं बन पाती कि ज्ञानोदय को हम व्यवस्थित कर पायें। साथ ही इस बातको न आपकी ओरसे ही और न अपनी ओरसे सोचना चाहते हैं कि ज्ञानोदय के लिए कोई अन्यथा निर्णय ले लें। क्षमा करें, पिछले ६ महीनोंसे लगातार यह सब सोचते आपको अब कहना ही पड़ रहा है....

आपको कहनेसे पहले ही हमने यह निर्णय ले लिया है कि ज्ञानोदय के स्वरूप और स्तरमें हम कोई अन्तर न लायें—इस निर्णयके मूलमें है आपका विश्वास कि ज्ञानोदय आपको प्रिय है और जिस अन्यतम विवशताके कारण हमें फ़रवरी १९६७ से ज्ञानोदय का मूल्य एक रुपया प्रति अंकसे डेढ़ रुपया प्रति अंक करना पड़ा है उसके प्रति आपकी सहानुभूति होगी। २० जनवरीके पश्चात् जो ग्राहक बनेंगे उनके लिए वार्षिक मूल्य १५ रु० होगा। पहलेके ग्राहकोंको शुल्क-समाप्ति तक ज्ञानोदय उसी मूल्यमें उपलब्ध होता रहेगा।

—सम्पादक

●

[**राजेन्द्र अवस्थी** : अंक निश्चित ही संग्रहणीय है। इसलिए भी कि उसके पढ़नेमें बड़ी अड़चन होती है।

मैं नहीं जानता हूँ कि पाठकोंको इस संकटसे उबारनेके लिए आपके पास क्या योजना है। हाँ, यदि आप पोथी खोलकर पढ़नेवाला लकड़ीका एक सेट पाठकोंको भेंटके रूपमें दें तो वे हमेशा 'ज्ञानोदय'की याद करते रहेंगे। —नयी दिल्ली]

●

[**राजनाथ पाण्डेय** : 'ज्ञानोदय' का महानगर विशेषांक बहुत-ही-बहुत ख़ूब उतरा है। बधाई, बधाई और हार्दिक बधाई! अंक पढ़ जानेके बाद कुछ बातें विशेष ध्यानमें आयीं जिन्हें कह देना चाहता हूँ। मुझे "परकोटे (परकटे नहीं!) बोलते है", "पेरिस नगर : जो ख़ुद कलाकर है", "बना रहे बना 'रस' " (यद्यपि वह मेरा ही लेखनीपुत्र है), "एक महानगर कन्धेपर", "लन्दन जिससे हमारा रिश्ता था", तथा "बम्बई : फ़ुरसतहीन द्वीपपर" बहुत रुचे, यद्यपि यह अपनी-अपनी रुचि ही की बात है। परन्तु——

(१) आपने मेरे लेखमें (पृष्ठ १४५) आरम्भिक पंक्तियोंमें ही 'बसोबास' की जगह 'बूसोबास' कर दिया है। शायद आपको मालूम होगा कि जिस 'बूदोबाश'-के वज़नपर 'बूसोबास' किया जा सकता है उसका समानार्थी ही यह 'बसोबास' नेपाली (या नेपाली-हिन्दी) का शब्द है। ऐसे यह 'बूदोबाश' शब्द भी एक विशेष सन्दर्भमें अपने लिए बहुत प्यारा है। आप जानते ही होंगे कि दिल्लीके उजड़ जानेके बाद महाकवि 'मीर' लखनऊका बहुत बड़ा नाम सुनकर वहाँ आये और पहले ही दिन एक मुशायरेमें जब शरीक हुए तो बहुतोंने उनके अनमिल व्यक्तित्वको न पा-पहचान कुछ उपहासमय ढंगसे उनसे पूछ-ताछ की थी। उस समय महाकविने अपना कलाम सुनाते समय जवाबमें कहा था :

क्या बूदोबाश पूछे हो पूरब के साकिनो!
मुझको ग़रीब जान के हँस-हँस पुकार के॥
दिल्ली जो एक शहर था आलम में इन्तख़ाब।
मुनतख़िब ही रहते थे जहाँ रोज़गार के॥
उसको फ़लक ने लूट के वीराना कर दिया।
हम रहने वाले हैं उसी उजड़े दयार के॥

[शेष पृष्ठ १३६ पर]

अनुक्रम

जनवरी १९६७
वर्ष : १६
अंक : ७
पूर्णांक : २२३

■ प्रमुख लेख :

- कथन-उपकथन : मोराविया (प्र० : कुन्था जैन) ६
- आधुनिकता : बात तत्वबोधकी : नरेन्द्रदेव वर्मा १५
- सांस्कृतिक परिवेश : मूर्त्तियोंके बीच साहित्यकार : घनश्यामरंजन २१
- प्रतिप्रश्न : पश्चिममें बैठकर पूर्वकी डायरी : प्रभाकर माचवे २५
- कला-संचेतना : लय, गति और आधुनिक नृत्यबोध : कैथेराइन डनहम (अनु० : कुँवरजी अग्रवाल) ३५
- एक भेंट : कहानीकी प्रगतिको…. : जैनेन्द्रकुमार, भीमसेन त्यागी ४१
- झाँकी राजस्थानकी : लड़के इनायत, जागीर इनायत : लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत ५४
- विविध : अहिंसाका अर्थ : मुनि श्रीनथमल १०५
- समस्या : गोहत्या : गोरक्षा (मुरारजी देसाईसे एक भेंट) : आनन्दजी कल्याणजी १०९
- समीक्षा : सत्यनारायण श्रीवास्तव, भगवतशरण उपाध्याय ११७
- राजनीति : समसामयिक : दो अनशन : लक्ष्मीचन्द्र जैन १३३

■ कथा-साहित्य :

- मियामीका टिकट और…. : जिल डेब्लिन (अनु० मनहर चौहान) ५१
- समान्तराल : माया गुप्त ६९
- वही है : कर्त्तार सिंह दुग्गल ७३
- एक्सीडेण्ड : अन्विता अग्रवाल ७७

■ अन्य कथा-विधा :

- एकांकी : प्यासे खेत : कृष्णकिशोर श्रीवास्तव ८४
- धारावाहिक उपन्यास : एक पत्थर : दो पत्थर : तीन पत्थर : कृश्नचन्दर ९३

■ कविताएँ :

- पाँच कविताएँ : रामदरश मिश्र, राजेन्द्रप्रसाद सिंह, नागानन्द मुक्तिकण्ठ, शिवकुमार श्रीवास्तव, राधेश्याम यादव ९
- कोलाज़ कविताएँ : अन्त्या, दंश : श्याम परमार ४७

■ कुछ पंक्तियाँ :

कुबेरनाथ राय, ब्रजकिशोर नारायण, शशिप्रभा शास्त्री, राजेन्द्र अवस्थी, राजनाथ पाण्डेय, जितेन्द्रकुमार मित्तल, लीलाधर जगूड़ी, श्याम गोविन्द राजहंस २

तरुवर की छायानुवाद सो
उपमा सी, भावुकता सी
अविदित भावाकुल भाषा सी
कटी-छँटो नव कविता सी

— पन्त

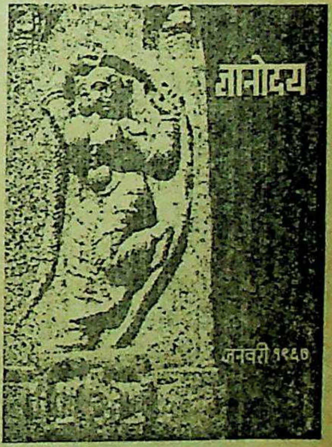

[काँचीपुरम् कामाक्षी मन्दिर में एक शालभंजिका]

मुखपृष्ठ : छाया : देवदत्त, रेखांकन : मदन सरकार
अन्तर्सज्जा : र० ब०

'लिखता वही हूँ जो मेरे परिचयकी

[अलबर्तो मोराविया (१९०७ : रोम) : प्रमुख उपन्यास—ग्ली इण्डफ़रैशियाई, द कन्फ़ॅरमिस्ट, वोमन ऑव रोम ….। मोरावियाके उपन्यास-पात्रोंने जीवित रहनेकी खोजमें अनेकों नैतिक मान्यताओंका खण्डन किया है। यही कारण है कि लेखकपर कुत्सित भावना-रंजित लेखनका आरोप भी लगाया गया है। धर्मके कटघरेमें अपराधी किन्तु साहित्यके मन्दिरमें प्रतिष्ठाप्राप्त मोरावियाकी लेखन-दृष्टि अपनी समकालीनताकी मिसाल है।]

मोराविया (लम्बा क़द, परिमार्जित व्यक्तित्व, सधा अन्दाज़, ….कठोर-कठिन चेहरेका कटाव, उसपर पड़ती छायाएँ, व उभरती प्रतिच्छायाएँ—ठण्डी इस्पात-सी। आवाज़—धीमी और धातकी तरह ठण्डी और ठनठनाती हुई—बन्दूककी धातुका स्मरण कराती हुई) : आप यह स्पष्ट समझ लें कि 'आत्मकथा' के अर्थमें, मेरी कोई भी रचना आत्म-कथात्मक नहीं है। शायद यह कहूँ, कि जितना कुछ आत्मकथात्मक कहीं झलकता है, वह उतना ही है जैसा कि साधारणतया सबके साथ होता है, या किसी परोक्ष ढंगसे लेखनमें छिपा बैठा रहता है। मैं उपन्यासके पात्रोंका निकट सम्बन्धी हूँ, किन्तु उपन्यासोंका पात्र नहीं। मैंने अपने पात्र और घटनाएँ, ज्योंके त्यों, सीधे जीवनसे नहीं लिये हैं, और न लेता हूँ। कुछ घटित घटनाओंसे ऐसे सुझाव सामने आते हैं, जो आगामी रचनामें काम आ सकें। इसी प्रकार जीवनमें आये कुछ व्यक्ति ऐसे पात्रोंका सुझाव देते हैं जो भविष्यकी रचनाके पात्र हो सकें।—किन्तु महत्त्वपूर्ण शब्द 'सुझाव' को नहीं भूलना चाहिए।….लिखा क्या जायेगा? वही न, जिसके विषयमें लिखनेवाला जानता है। यद्यपि मैं अमरीकामें घूम आया हूँ, पर इतने-भरसे मेरा यह दावा करना कि मैं अमरीकाको जानता हूँ, निरी मूर्खता है। मैं अमरीकाके विषयमें कुछ लिख नहीं सकता। अपनी कृतिमें, लेखक, वही सामग्री उपयोगमें लायेगा जिसका उसे ज्ञान और परिचय हो। किन्तु आत्मकथन इससे नितान्त भिन्न है। मैं तो

परिधिमें है' : मोराविया

कुन्था जैन

अपनेमें यह क्षमता ही नहीं पाता कि आत्मकथा लिख सकूँ। मैं झूठी और मन-गढ़न्त बातें बनाकर कृतिकी समाप्ति करता हूँ। वास्तवमें, मैं मिथ्यावादी हूँ (झूठा हूँ)। जिसके अर्थ हुए कि मैं उपन्यासकार हूँ और लिखता वही हूँ जो मेरे परिचयकी परिधिमें है।

प्रश्न : यह समझा जाता है कि आपका उपन्यास 'ग्ली इण्डफ़रैशियाई' रोमन सम्पन्न-वर्ग, और सम्पन्न-समाज-द्वारा स्वीकृत मूल्योंकी, पटु, प्रखर एवं कटु आलोचना है। क्या यह उपन्यास, चारों ओरसे घिरती हुई समाजके प्रति विद्रोही-प्रतिक्रिया स्वरूप लिखा था?

मोराविया : नहीं, कमसे कम जान-बूझकर नहीं। (फिर सोचकर, निश्चयात्मक ढंगसे) किसी विरोधी-प्रतिक्रिया स्वरूप नहीं लिखा। वह एक उपन्यास था।

प्रश्न : तब तो आप कहेंगे कि जिन आलोचकोंने आपको 'स्वैवो' से एकरूप किया है, वे ग़लत हैं…

मोराविया : बिलकुल, एकदम! सच बात बताऊँ तो, यह कि 'स्वैवो' एक लेखक है जिससे मैं भली भाँति परिचित भी नहीं हूँ। मैंने उसे पढ़ा और तब लिखी 'आदमी ज्यों-ज्यों प्रौढ़ होता जाता है' और दूसरी 'ज़ीनोकी आत्म-स्वीकृति'। ये दोनों 'ग्ली इण्डफ़रैशियाई'के बाद लिखीं। किसीसे प्रभावित होकर लिखनेका प्रश्न ही नहीं होता। 'स्वैवो' सम्पन्न-वर्गका सोद्देश्य सचेत आलोचक था। मेरे लेखनमें सम्पन्न वर्गकी आलोचना संयोगिक एवं निरवांछित रूपसे प्रवेश पा गयी है। मेरी दृष्टिमें उपन्यासकारको पक्षपाती आलोचना नहीं करनी चाहिए। उसका काम जीवित चरित्रोंको गढ़ना है। उतना ही प्रर्याप्त है।

प्रश्न : तब आप लिखते हैं केवल…?

मोराविया : मैं केवल अपने मनोरंजनके लिए लिखता हूँ। औरोंके मनोविनोदके लिए

भी। वास्तवमें मेरा लेखन आत्माभिव्यक्तिके लिए है । प्रत्येक व्यक्तिकी आत्माभिव्यक्तिके भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। संयोगवश मेरी आत्माभिव्यक्तिका माध्यम लेखन है ।

प्रश्न : इस प्रकार आप अपनेको नीति-उपदेशक तो नहीं मानते न ? या मानते हैं ?

सोराविया : क़तई नहीं । सम्पूर्ण दृढ़तासे कहता हूँ कि 'नहीं' । सत्य और सौन्दर्य स्वयमेव (ज्ञान-प्रद) हैं । किसी भी पक्षका (दायाँ हो या बायाँ) प्रतिनिधित्व करना पक्षपाती और अ-वस्तुवादी चिन्तनकी स्थिति है । ऐसी स्थितिमें तर्क-संगत स्थापना करनेकी सामर्थ्य-शक्ति प्राणहीन हो जाती है । सामाजिक आलोचना सदैव आवश्यकीय रूपसे चरम सतही होती है । लेकिन इस कथनसे मुझे ग़लत न समझें । अन्य कलाकारोंकी तरह लेखककी भी यही चिन्ता होती है कि वह यथार्थका चित्रण करे और वास्तविक यथार्थसे भी अधिक परिपूर्ण और परिशुद्ध यथार्थका सृजन करे । यदि उसे इस कार्यको पूर्णरूपेण निबाहना है तो, आवश्यक है कि वह किसी ऐसी नैतिकताको अपनाये, जिसकी राजनैतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक दृष्टि उसे स्पष्ट रूपसे ग्राह्य है । फलस्वरूप, उसके वे विश्वास और धारणाएँ, उसकी कृतियोंमें समाविष्ट होंगी ही । किन्तु कलाकारके विश्वास और धारणाएँ कृतिमें गौण स्थान रखती हैं । सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उसकी लेखन-कला, धारणाओंका स्थान कलाकी सहायक या अनुगामिनीके रूपमें भले ही हो । विपरीत सिद्धान्तों और विश्वासोंके प्रतिपादनके उपरान्त भी, लेखक उत्तर-जीवित रहता है । लॉरेंसके यौन-सम्बन्धी विचारोंके विषयमें किसीका कुछ भी मत हो, उसकी कृतियाँ अवश्य पढ़ी जायेंगी । 'दान्ते' की कृतियाँ सोवियत रूसमें भी पढ़ी जाती हैं । बल्कि यों कहना चाहिए कि सृजनकला, प्रस्तुति और अभिव्यक्तिका माध्यम है । प्रस्तुतीकरणकी क्रियामें लेखकके विचार, उसके विवेकपूर्ण निश्चय और स्वयम् लेखक,यथार्थसे अभियोजित रहते हैं । इस प्रकार, आलोचना, सम्पूर्ण रचना-प्रक्रियाकी एक अत्यन्त स्वल्पतर पक्ष—लघुतम अंश—के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं रखती । इस दृष्टिसे तो मैं भी किसी सीमा तक नीति-उपदेशक हूँ । हम सब ही हैं । आपने भी पाया होगा कि कभी-कभी सुबह बिस्तरसे उठते ही, मनमें एक विद्रोही-भावना घर किये होती है । ऐसा लगता है कि कुछ भी ठीक नहीं है । उस दिन, या जबतक वह भावना दूर न हो, आप नीति-उपदेशक बन जाते हैं । इसको यों कहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी शैलीके प्रारूपानुसार नीति-उपदेशक है । किन्तु इस होनेके अतिरिक्त, वह अन्य 'कुछ' है—और वह 'कुछ' बहुत अधिक है ।

प्रश्न : क्या कभी ऐसा हुआ है कि उपन्यास लिखते समय, पात्र आपके हाथसे निकल गये हों ?

[शेष पृष्ठ १३८ पर]

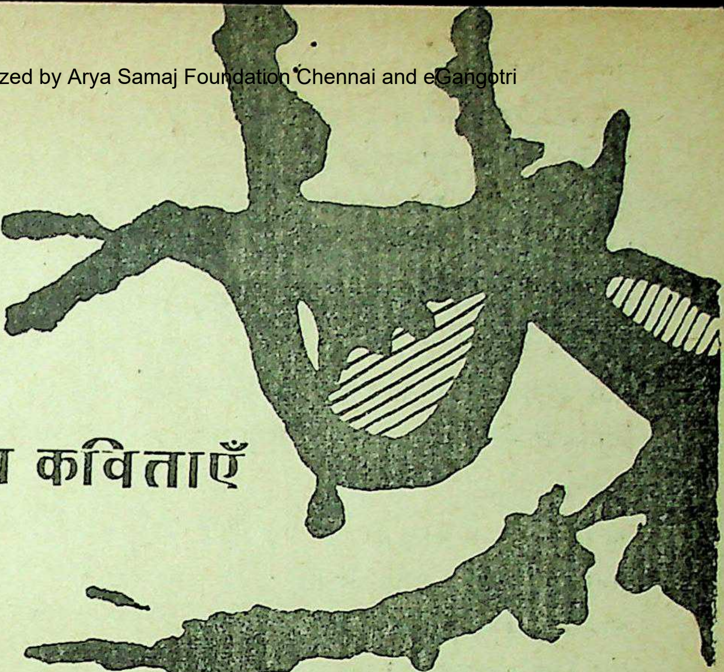

पाँच कविताएँ

१–केन्द्र और परिधि
उर्फ़ बड़ी-छोटी मछलियाँ

रामदरश मिश्र

०

एक गहरी नील झील
मछलियाँ ही मछलियाँ
केन्द्र में सतह के नीचे
बड़ी-बड़ी मछलियाँ आपस में लड़ती रहती हैं
छोटी मछलियों के लिए
कभी-कभी लड़ते-लड़ते ज़ोर से
ऊपर को आ जाती हैं
तो सतह थर्रा कर फट जाती है
और एक आवर्त्त चक्कर काटता हुआ
परिधि तक फैल जाता है
छोटी-छोटी मछलियाँ

थर्राते आवर्त्तों में फँस कर घूमने लगती हैं
बड़ी मछलियाँ पानी में डुबकी लगा कर
धो लेती हैं लोहू-लुहान मुँह
और फिर चीख़ती हैं—
'शान्त रहो…………'

जल के ऊपर बिछी स्वच्छ गहरी नीलिमा, भीतर से
धीरे-धीरे लाल हो रही है
जिसे जगह-जगह से फाड़ कर उभर रही है
थिगलियों-सी मरी मछलियों की सड़ी गन्ध

और अब
आवर्त्त परिधि से केन्द्र की ओर बढ़ रहे हैं
अनन्त छोटी-छोटी मछलियों से
आवर्त्त की रेखाएँ कसमसा रही हैं
और केन्द्र की बड़ी-बड़ी मछलियाँ
भय से चिल्ला रही हैं—
'शान्त रहो बद्तमीज़ो,
आवर्त्त पैदा करना
हम मछलियों का धर्म नहीं होता….'

(ई ४।२१ ए, माडल टाउन
दिल्ली-९)

२–उपक्रम : न चाहें

राजेन्द्रप्रसाद सिंह

०

असलियत यह याद भी करना न हम चाहें,….
मगर यह असलियत तो है :
हमने छन, घड़ी, दिन, मास, वर्षों से
यही चाहा कि दब जायें, कुचल जायें
हमारी धड़कनों से फूटते अंकुर,—
इसी ग्रेनाइट की चट्टान के नीचे;
कि वे कुछ काल में, इस बोझ से संघर्ष कर

चुपचाप बन आयें चटकते [illegible] गन्धी फूल,
अनुशासित पंखुरियाँ ज़र्द हो जायें,—
यही चाहा, भले यह चाह थी बोझी हुई,
क्या इसलिए अंकुर कुचल कर
गोखरू बन उग पड़े ?
अहमियत कुछ मानना भी हम न चाहें,⋯
मगर इतनी अहमियत तो है :
हमने पास, दूर, सुदूर जाकर भी यही खोजा
कि जड़ हो, विरस होकर यों
हमारी उम्र से उठते नशीले मेघ.
कैसे, किस ज्वलन्त विसूवियस से
झुलस जाते.⋯और बनकर राख के अजगर,
चिमनियों का धुआँ पीकर, लिपट जाते—
सिंदूरी, मणिमयी दामिनी-लपटों से,—
यही खोजा, भले यह खोज थी लादी हुई;
क्या इसलिए ही वे नशीले मेघ
ओले बन झरे ?
इल्मियत यह चाहना भी हम न चाहें,⋯
मगर यों भी इल्मियत तो है :
हमने कर दिया ऐसा, कभी वैसा, सभी-जैसा,
कि ख़ुद घुट कर, तड़प कर
यातनाओं पर पली अंगूर-लतिका मरे;
गमले से लपक कर कैक्टस रस चूस ले उसका,
चढ़े वह कल्पतरु पर, अमरबेल बने,
परिधि ढँक ले, हमारा कैक्टस ही
कल्पतरु हो वांछित फल दे,—
यही कर दिया यद्यपि यह क्रिया ओढ़ी हुई थी;
क्या इसीसे चली परिपाटी
कि हर अंगूर-लतिका
कैक्टस के दंश से ही सड़े ?

(मधुरिमा, हरिसभा,
मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार)

३–कैसी है दीठ यह मेरी

नागानन्द मुक्तिकण्ठ

०

कैसी है दीठ यह मेरी
कि सामने जो बिजली का खम्भा है, मुझे नहीं दीखता
और मेरा माथा टकरा जाता है
मैं लहूलुहान हो जाता हूँ ।

कैसी है शिक्षा यह मेरी
कि इतना बड़ा कवि हूँ
पर कहीं नहीं मिलती है भिक्षा !

कैसी विडम्बना है मेरी
कि लोग सपने देखते हैं
और एक मैं हूँ
कि सपने में भी देखता हूँ भूकम्प !

कैसा यह रूप दिया ईश्वर
कि बच्चे भी दहशत से भर जाते हैं ।

(अँगरेजी विभाग डिग्री कॉलेज,
प्रतापगढ़)

४–श्रद्धा-कमल

शिवकुमार श्रीवास्तव

०

धुआँ सर्पीला उठा है
जो धरा से
वह गगन में दिख रहा है ।
समय कागज पर
जमाने का जहर
क्या लिख रहा है ?

—बाँस अल्हड़ दो कहीं टकरा गये हैं,
एक चिंगारी उठी है,
फैलती है आग
जंगल जल रहा है।
हा ! सृजन का स्वप्न,
जीवन, पुण्य-मंगल जल रहा है।
झुलसती है भीत मृग की भीड़,
जल रहे हैं पंछियों के नीड़;
जल रहे हैं तरु, लता, द्रुम,
मुग्ध कलियाँ, तरुण सुरभित फूल,
बाँस के परिवार के
दो सिरफिरों की भूल !
भूल यह नादान।
और इन सब से अधिक नादान
नन्हीं एक चिड़िया।—
चोंच में अपने कहीं से
बूँद भर जल ला रही है
बुझाने को लुब्ध दावानल
नाश के छल पर
सृजन के बल
तुझे श्रद्धाकमल
मेरा समर्पित है।

(सदर,
सागर, म० प्र०)

५-वक्त : मैं

राधेश्याम यादव

०

अभावों के दबाव से
कल्पना जन्मी थी
विपरीत परिस्थितियों में
जन्मा था विवेक
अपमानों के घेरे में

स्वाभिमान जन्मा था
भूख की आग में
जन्मा था अतिरेक ।

आज की यह दरारें पड़ी मूर्ति
उन्हीं सौन्दर्य के लिए भटकते क्षणों में
रची गयी थी ।
झाँक सकते हो क्या
इस मूर्ति के अन्दर निहित
अतीतों में ?

आओ, और आगे बढ़कर आओ
और करो

इन वीरान गलियों में भटकते
सपनों से साक्षात्;
दोनों तरफ़ क़तारों में खड़े
'व्यक्तित्व' के ख़ाली दरवाज़ों
खण्डहरों से दो बात
और गिनो
टूटी हुई छतों में-से झाँकते
टुकड़े-टुकड़े आकाश !

इन सभी अस्त-व्यस्त इकाइयों में-से
सिर्फ़ 'मैं' निकल गया हूँ
और वक्त़ है कि शेख़ी से
कहता है—
'बदल गया हूँ !'

(८८ गुप्ता कालोनी,
दिल्ली–९)

…बात तत्त्व-बोधकी

नरेन्द्रदेव वर्मा

पिछले दशकमें आधुनिकतापर जमकर चर्चा हुई है और अधिकांशतः यह बतानेकी चेष्टा की गयी है कि आधुनिकता मूलतः नयी कविता और नवलेखनका गुण है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि आधुनिकताकी यह पक्षधर आलोचना अनेक भ्रामक विचारोंका पोषण करती है। आधुनिकताको तथाकथित नयी कविता तक केन्द्रित कर देना उसे संकुचित बनाना है। आधुनिकताको देश-कालसे सम्बन्धित करना वस्तुतः उचित नहीं है। आधुनिकता देश-काल गत प्रत्यय नहीं है। यदि वस्तुतः आधुनिकता कालगत धारणा होती तो पुराने सभी कवि सदियों पहले ही हमारे लिए फीके और बेस्वाद हो जाते और हम आज उनके काव्य-ग्रन्थोंको पढ़कर आनन्दकी अनुमति नहीं कर पाते। इसी प्रकार आधुनिकता देशगत प्रत्यय भी नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि विदेशी साहित्यकारोंकी कृतियाँ भी हमें प्रभावित करती हैं और हम उनमें सौन्दर्य-बोधको विद्यमान पाते हैं।

आधुनिक काव्य-चिन्तनमें आधुनिकताको देश-कालसे सम्बन्धित बताया गया है और अन्तर्राष्ट्रीय भावानुवादोंको आधुनिकताकी पोषक कृतियोंके रूपमें विज्ञापित किया गया है। अत्याधुनिक हिन्दी कविताके क्षेत्रमें यह कार्य नये कवियोंकी विजड़ित चिन्तनाका परिणाम है। आजकल नवलेखनकी अभिधा पश्चिमी विचारकोंके उच्छिष्ट अनुवादोंको ही दी जा रही है। यह बड़ी चिन्त्य स्थिति है। असलमें, पाश्चात्त्य उपनिवेशवाद और राजनीतिक पराधीनतासे मुक्त होते हुए भी हम पश्चिमी विचारणाके आतंकसे मुक्त नहीं हो पाये हैं, फलतः हमारी चिन्तना-

का नियमन आज भी संक्रातिकालीन पश्चिमी लेखकोंके विचार कर रहे हैं। यह हमारी दिमाग़ी ग़ुलामी ही है कि हम आधुनिकताको कालसूचक अभिधा समझते हैं और उसके वास्तविक अभिप्रायसे परिचित नहीं होना चाहते।

इस तथ्यको हमारे सभी नये और पुराने कवि-मित्र स्वीकार करेंगे कि किसी एक युगके कोई दो कवि आधुनिक और अनाधुनिक हो सकते हैं। आधुनिकताके निर्णयकी कसौटी क्या है? सम्भवतः समसामयिक जीवन-स्पन्दनोंका नियोजन ही किसी कविको आधुनिक या अनाधुनिक बनाता है। किन्तु समस्याका अन्त इसीसे नहीं हो जाता। हम यह भी जानना चाहते हैं कि समसामयिकता क्या है? क्या केवल २०-२५वर्षोंकी अवधिको ही समसामयिकता कहा जाये? इस स्थानपर यह द्विधा उत्पन्न होती है कि आधुनिकताका निर्णायक तत्त्व देश है या काल। यदि हम आधुनिकताको देशका प्रतीक माने और समसामयिकताको कालके माध्यमसे व्यक्त करें तो हम इस निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि स्वयं देश और काल भी अपनेमें निरपेक्ष तत्त्व नहीं हैं। वस्तुतः आधुनिकताको देशकालसे सम्बद्ध करना एक पश्चिमी बीमारी है जिसका निदान करनेके स्थानपर हम स्वयं उसमें ग्रस्त होकर आनन्द पाना चाहते हैं।

देश-कालपर सापेक्षिक दृष्टिकोणसे विचार किया जा सकता है। किन्तु सापेक्षिता वैज्ञानिक चर्चाका विषय तो बन सकती है पर वह साहित्यिक अन्तर्दृष्टिका नियमन नहीं कर सकती। साहित्य-चर्या वैज्ञानिक क्रिया नहीं है। वह एक नितान्त अवैज्ञानिक और अयान्त्रिक क्रिया है जो किसी नियमविशेषसे अनुशासित नहीं होती, प्रत्युत् वह स्वतः प्रेरित होती है। वैज्ञानिकताके प्रति मोह रखनेवाले साहित्यकार साहित्यको वैज्ञानिक प्रक्रिया मानकर उसके विश्लेषणमें तत्पर हो सकते हैं। कुछ लोग साहित्यको सांस्कृतिक प्रक्रिया भी समझते हैं, पर ये अभिधाएँ सुविधामूलक हैं तथा इनसे साहित्यके मूलतत्त्व तक पहुँचनेका प्रयास व्यर्थ होता है।

मेरा विचार है कि साहित्य वैज्ञानिक या सांस्कृतिक प्रक्रिया नहीं है, वह मूलतः आत्मिक प्रक्रिया है। आत्माके समान ही साहित्यकी प्रक्रिया भी बड़ी जटिल होती है तथा जिस प्रकार आत्मतत्त्वको स्पष्ट करनेके लिए विरोध-आसंगों, विविध रूपकों और अन्योक्तियोंका प्रयोग किया गया है उसी प्रकार साहित्यके मूल तत्त्वको परखनेके लिए इन्हीं शैलियोंका व्यवहार किया जा सकता है। वस्तुस्थिति यह है कि इन दृष्टियोंके आनयनसे मूलवस्तुके स्वरूपके विषयमें कुछ निर्देश ही मिलते हैं, पर इनके द्वारा प्रत्यक्षतः किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा जा सकता।

साहित्य आत्मान्वेषणके द्वारा प्राप्त अनुभूतियोंकी अभिव्यक्ति है। व्यक्तिके मनमें स्वयंको जाननेकी जिज्ञासा बड़ी बलवती होती है। यह जिज्ञासा प्रकृति-भेदसे अनेक

प्रयासोंके रूपमें विकसित होती है। बौद्धिक व्यक्ति आत्मानुशीलनके लिए दर्शनका सहारा लेता है और युक्तिकेद्वारा रहस्यमयी प्रकृतिको जानना चाहता है। किन्तु भावप्रवण व्यक्ति रागमय आवेशके द्वारा स्वयंको समझना चाहता है और उसका यह प्रयास काव्यके रूपमें प्रतिफलित होता है। काव्य और दर्शन आत्मान्वेषणकी ही उपलब्धियाँ हैं। दोनोंका उद्देश्य अनुभूतिकी प्राप्ति है। चरमसत्ता या आत्मतत्त्वका ज्ञान ही अनुभूति है। अनुभूति ही काव्यका अन्तर्तम रहस्य है तथा वही उसे गरिमामय बनाती है। अनुभूति काव्यका प्राण है जिसके अभावमें वह निर्जीव बन जाता है। अनुभूतिके आलोकमें काव्यके सम्बन्धमें प्रचलित समस्त विवादोंको सुलझाया जा सकता है। आधुनिक काव्य-चिन्तनमें कविताकी आधुनिकता-अनाधुनिकताका विवाद बड़ा तीखा है। क्या हम अनुभूतिके माध्यमसे किसी निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं।

नवलेखनमें आधुनिकता-अनाधुनिकताको नये-पुरानेके संघर्षके रूपमें देखा गया है। किन्तु यहाँ नया और पुराना परस्पर सापेक्ष धारणाएँ हैं तथा उनकी आपेक्षिक सीमाओंका निर्माण नहीं किया जा सकता। यह भी कहा जाता है कि निराला आज भी हमारे लिए नये हैं और अज्ञेय अब पुराने पड़ गये हैं। नयी कविताके कवि-आलोचक तो आधुनिकताकी दृष्टिसे समस्त पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराको पुरानी घोषित कर देते हैं और नयेपनको अपने लिए सुरक्षित रख लेते हैं। इसी सन्दर्भमें आधुनिकताको नवीनताका पर्याय बनाकर उसे नयी कविताकी सम्पत्तिके रूपमें विज्ञापित किया गया है। फलतः जो लोग नयी कविताको पसन्द नहीं करते वे आधुनिकतासे भी बिदकते हैं। यहाँ आधुनिकताको एक विशुद्ध कालगत धारणाके रूपमें अवतरित किया गया है।

पर आधुनिकताके कालबोधक गुणके आधारपर आधुनिकता - अनाधुनिकताके विवादको ख़त्म नहीं किया जा सकता। क्या कारण है कि निरालाकी कविताएँ आज भी आधुनिक हैं और प्रयोगवादके शलाका-पुरुष अज्ञेयका कृतित्व अत्याधुनिक कालमें रचा जानेपर भी अनाधुनिक है? इस प्रश्नको सुलझानेमें आधुनिकताकी कालबोधक धारणा विफल हो जाती है। वस्तुतः आधुनिकता प्रत्येक परिवर्तनके साथ बदल जानेवाला देश-कालगत विचार नहीं है। आधुनिकता परिवर्तनशील मूल्य नहीं है। वह एक शाश्वत और चिरन्तन तत्त्व है। वह एक ऐसा परिवर्तनशील काव्य-मूल्य है जिसमें देश-कालके अन्तरालमें होनेवाले व्यतिरेक कोई अन्तर उपस्थित नहीं करते। आधुनिकता अनुभूतिकी विशुद्धताका ही अभिधेय है। जिस कविकी अनुभूति काव्यमें जितनी विशुद्धतासे उपस्थित होती है वह उतना ही अधिक आधुनिक होता है। आधुनिकतापर देश-काल विषयक व्यवधानोंसे कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वह चिरशाश्वत काव्य-मूल्य है और वही अनुभूतिकी आन्तरिकता और शुद्धताका प्रतीक है। जो अनुभूति

३

जितनी अधिक विशुद्ध होती है वह उतनी ही अधिक मात्रामें हमें आनन्द प्रदान करती है तथा यही तत्त्व काव्यकी आधुनिकताका भी निर्णायक है। यही कारण है कि हृदयकी अनुभूतियोंके मुक्त गायक देश और कालकी सीमासे ऊपर उठकर हमें अत्याधुनिक प्रतीत होते हैं क्योंकि वे हमारे हृदयके सौन्दर्य-संवेदनोंको जगाते हैं, इसके विपरीत हमें तथाकथित नवीनताका नारा लगानेवाले कवियोंके कृतित्वसे कोई आनन्द नहीं मिलता क्योंकि हम उन्हें अनुभूतिविरहित पाते हैं और अनुभूतिविरहित कविता अनाधुनिक होती है।

यदि आधुनिकताको सापेक्षिक मानना जरूरी हो तो उसे देश या कालसे सम्बन्धित न करके अनुभूतिसे सम्बद्ध करना होगा। आधुनिकता अनुभूतिसापेक्ष तत्त्व है। काव्यगत आधुनिकताका यही अर्थ है। कविताकी आधुनिकताके विषयमें भ्रम तब उत्पन्न होता है जब उसे संस्कृति और सभ्यताके पश्चिमी कालमूलक प्रत्ययोंसे संयुक्त कर दिया जाता है। पर याद रखना चाहिए कि काव्यविषयक विवेचना वैज्ञानिक इन्द्रिय-भूत विवेचनासे पृथक् होती है। काव्यानुभव लौकिक अनुभवोंसे भिन्न होता है। इस तथ्यको बहुत पहले ही भट्ट शंकुकने घोषित कर दिया था। वैज्ञानिकताकी चमक-दमकमें हम मानवीय गरिमाको भुलाते जा रहे हैं, हमारी आन्तरिक रहस्यात्मकतापर इन्द्रियानुभूतिका लौह-कवच पहनाया जा रहा है और हमारी अन्तर्भूत आध्यात्मिक यात्रा लौकिक, अनगढ़ और भद्दी प्रतिक्रियाओंके द्वारा बाधित हो रही है।

काव्यगत आधुनिकताकी पहली शर्त यह है कि हम अनुभूतिके प्रति समर्पित हों। काव्यानुभूतिके प्रति आत्यन्तिक समर्पणका भाव कविकी वाग्धाराको देश-कालकी संकुचित परिधियोंके ऊपर उठाता है और उसे विश्वजनीन धरातलपर प्रतिष्ठित कर देता है। यही आत्मिक निवेदन अनुभूतिको ऐसी शक्ति और प्रभविष्णुता प्रदान करता है जो समयके साथ नहीं घटती और प्रत्येक युगमें अक्षत बनी रहती है।

कभी-कभी आधुनिकताका तात्पर्य रूप और शैलीकी नवीनतासे लगाया जाता है और इस दृष्टिसे भी कवियोंको आधुनिक या अनाधुनिक कहा जाता है। पर रूप या शैली अनुभूतिका स्थान ग्रहण नहीं कर सकते। कतिपय ऐसी सशक्त रचनाएँ भी होती हैं जो परम्परित शैलीके बावजूद भी तीव्र प्रभाव डालती हैं और आजकल ऐसी कविताएँ भी लिखी जा रही हैं जिनमें या तो कृत्रिम रूपसे अनुभूतियोंका नियोजन किया जाता है या जिनमें अनुभूतियोंके नामपर खोखला भावोच्छ्वास ही दिखाई देता है। रूपगत नवीनताके फेरमें कवि अनुभूति प्राप्त करनेके स्थानपर शैली-वैचित्र्यको ही प्राप्त करनेमें लग जाता है और अपनी अनुभूतिरिक्तताको छिपानेके लिए प्रायः दूसरोंकी अनुभूतियोंको व्यक्त करने लग जाता है। अत्याधुनिक हिन्दी कवितामें शैली-वैचित्र्य और रूपवादिताका प्राधान्य है जिसके कारण वह अधिका

धिक क्लिष्ट और व्य[illegible] है। अनुभूतिवान काव्य जटिल नहीं होता प्रत्युत् उसमें तलस्पर्शी सहजता होती है जो हमारे हृदयको बड़े वेगके साथ अभिभूत कर लेती है। ध्यान देनेकी बात है कि सहजताका अर्थ सरलीकरण नहीं होता। अनुभूतिकी शक्तिकी कल्पना क्ष–रश्मियोंसे की जा सकती है। जिस प्रकार क्ष-रश्मियाँ जटिलताओं और आवर्तोंको पारदर्शक बना देती हैं, उसीप्रकार अनुभूति भी कवि-मनकी अन्धकारमयी उपत्यकाओंको आलोकित करती है और उसकी प्रतिक्रियाओंको वैयक्तिक युयुत्साके स्तरसे ऊपर उठाती है। अनुभूतिवान कविकी प्रत्येक अनुभूति अद्वितीय और नवीन होती है और उसके लिए रूप या शैलीगत नवीनताकी बाध्यता नहीं होती।

आधुनिकता मुख्यतः वस्तुसापेक्ष है, रूपसापेक्ष नहीं। रूप स्वयं वस्तुका अनुचर है। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक अनुभूति अपने एक स्वतन्त्र रूपकी उद्भावना करती है। जो कवि परम्परागत प्रतिमानोंमें बँधा होता है, उसे इसका ज्ञान नहीं हो पाता और यदि कभी उसे इसका आभास हो भी जाये तो उसकी वैयक्तिक अभिरुचि अनुभूतिके इस प्रकृत रूपको विकसित होनेका अवसर प्रदान नहीं करती। जो कवि अनुभूतिके प्रति पूरी तरहसे समर्पित होता है उसकी वाग्धारा अनुभूतियों और उसके विविध रूपोंको स्वाभाविक रूपसे आत्मसात करते हुए प्रवाहित होती है। यही कारण है कि अनुभूतिवान कविकी कविता कभी भी पुरानी नहीं पड़ती और [illegible] है। वस्तुतः होता यह है कि कविकी अनुभूतिप्रवणता आयुके साथ-साथ घटती चली जाती है और वह तरह-तरहके उपकरणोंके द्वारा अपनी क्षयग्रस्तताको छिपानेकी कोशिश करता है। ये प्रयास रूपगत भी हो सकते हैं और धारणागत भी। रूपगत परिवर्तनोंके द्वारा कवि अपनी अनुभूतिकी रिक्तताको भर देना चाहता है और अनेकानेक दार्शनिक धारणाओंका ग्रहण-नकार करते हुए स्वयंको अनुभूतिवानके छद्म वेशमें उपस्थित करता है। प्रारम्भमें कवि अनुभूतिके आग्रहसे ही काव्य-रचनामें प्रयुक्त होता है। जैसे जैसे वह कविता लिखता जाता है वैसे-वैसे उसकी अभिव्यक्ति-क्षमतामें वृद्धि होती जाती है पर उसकी अनुभूत्यात्मकता निरन्तर क्षीण होती चली जाती है। यह बड़ा विलक्षण तथ्य है कि कवि धीरे-धीरे अपनी एक विशिष्ट शैलीका निर्माण कर लेता है और कालान्तरमें वह उसका प्रयोग उतनी ही स्वाभाविकतासे करता है जितनी स्वाभाविकतासे हम बातचीत करते हैं। इसके बाद एक ऐसा समय भी आता है कि कविको कविता लिखनेके लिए अनुभूति प्राप्त करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। वह बिना किसी अनुभूतिके काव्य-रचनामें तत्पर हो सकता है और होता है। तब उसके काव्यसे सौन्दर्य-बोध अथवा प्रभाव-सृष्टिका कार्य सम्पन्न नहीं होता। वे काग़ज़के नक़ली फूलोंके समान होते हैं जिनमें न तो प्राणवत्ता होती है और न सुरभि ही।

जिस प्रकार यह बात एक कविके विषय-

में सत्य है, उसी प्रकार इसे किसी विशिष्ट काव्य-धाराके सन्दर्भमें भी लागू किया जा सकता है। प्रत्येक काव्य-धाराका उत्थान अनुभूतिको प्रकृत रूपमें अभिव्यक्त करनेके प्रयासोंसे होता है। किन्तु जब वह काव्य-धारा प्रतिष्ठित हो जाती है तब अनुभूतिका पक्ष उसके लिए गौण हो जाता है और उसकी सारी चेतना अपने साहित्यिक-असाहित्यिक व्यक्तित्वको बनाये रखनेमें व्यस्त हो जाती है। कविके समान प्रत्येक काव्यधारा भी अपने लिए एक विशिष्ट शैलीका निर्माण कर लेती है जिसमें लिखना वार्तालापके समान सहज हो जाता है।

काव्यके क्षेत्रमें जितने भी आन्दोलन या वाद खड़े हुए हैं उन सबका विकास प्रतिकार या विद्रोहकी भावनासे हुआ है। अनुभूत्यात्मकता ही मानवीय चेतनाका प्रिय है। अनुभूतिका विजड़न उसे अपेक्षित नहीं होता। यही कारण है कि अनुभूतिके विजड़ित होनेकी अवस्थामें मानवी चेतना विद्रोह कर उठती है। वह परम्परित रूप और माध्यमके बोझसे पिसती हुई अनुभूतिकी आत्माको मुक्त करती है और उसके लिए एक-एक नये अभिव्यक्ति-मार्गकी प्ररोचना करती है। हम इसी नये विद्रोहको आधुनिककी संज्ञा देते हैं। जिसका विरोध किया जाता है वह अनाधुनिक होता है। यही कारण है कि कवि अपने काव्यारम्भके समय विद्रोही और आधुनिककी संज्ञासे युक्त होता है किन्तु काव्यमें प्रतिष्ठित होनेके बाद उसे ही आधुनिक, संरक्षणशील और परम्परित कहा जाता है।

आधुनिकताका तात्पर्य अनुभूतिकी प्रकृत सत्तासे है। जो महाकवि होते हैं वे रूपाकारोंमें बद्ध नहीं होते। वे ऐसे पुरुष होते हैं जिनकी संवेदनशीलता कभी नहीं छीजती और वे शाश्वत रूपसे अनुभूतियोंको व्यक्त करनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे महाकवि देश और कालकी सीमामें नहीं बँधते और वे सदैव आधुनिक बने रहते हैं। रूपाकारमें निरन्तर क्षरण और परिवर्तन होता रहता है किन्तु अनुभूति निरन्तर चिरन्तन और अपरिवर्तनीय होती है। जब तक मनुष्य मनुष्य बना रहेगा, तब तक अनुभूतियाँ उसे एक समान प्रभावित करती रहेंगी। अनुभूतियाँ यदि प्रकृत रूपमें किसी कविके मुखसे निःसृत होती हैं तो वह कवि प्राचीन कालमें पैदा हुआ हो या वर्तमान कालमें, वह सदा आधुनिक बना रहेगा। मेरे विचारसे काव्यगत आधुनिकताका यही अभिप्राय है।

(७०१, बैजनाथ लेन,
रायपुर, म० प्र०)

मूर्तियोंके बीच साहित्यकार

घनश्याम रंजन

"यह तो काफ़ी वर्क है !"

"मुल्क, ज़िन्दगी गुज़ार दी है इन्होंने इसीमें ।"

"वाक़ई सिंह साहबने कमाल कर दिया है । लखनऊमें एक तरहका काम महापात्र जी करते हैं और एक तरहका यह करते हैं । दोनोंकी अलग-अलग शैलियाँ हैं ।····सिंह साहब, इधर आपने कोई नया काम किया है ? क्या करें आना ही नहीं होता । बड़ी व्यस्त ज़िन्दगी हो गयी है !"

और रज़िया आपा खिलखिला कर हँसीं और मेरी ओर देखने लगीं, फिर जी०एच० सिद्दीक़ीकी ओर देखने लगीं । जे० एन० सिंह भी हँस दिये, डॉ० मुल्कराज आनन्द भी छड़ी हिलाते हुए हँसे और सज्जाद ज़हीर साहब मुसकराते हुए एक बड़े-से गोल-गोल चेहरेको देखने लगे । बिलकुल गेंदकी मानिन्द गोल, सामनेसे नाक, आँख और होठ फ़्लैट तरीक़ेके । डॉ० आनन्द भी उधर घूम पड़े ।

"यह 'वारियर' है ।" जे० एन० सिंह ने कहा ।

"कितना सेल्फ़ डिटर्मिनेशन टपक रहा है इससे ।····यह इतना बड़ा ढाँचा क्या है ?" रज़िया सज्जाद ज़हीरने स्टुडियोके बीच रखे लकड़ीके स्ट्रक्चरको सम्बोधित करते हुए जिज्ञासा की ।

"माडर्न स्कल्पचर ।" ज़हीर साहबने व्यंग किया । और सब हो-हो करके हँस दिये ।

काठके सपने : जे० एन० सिंह

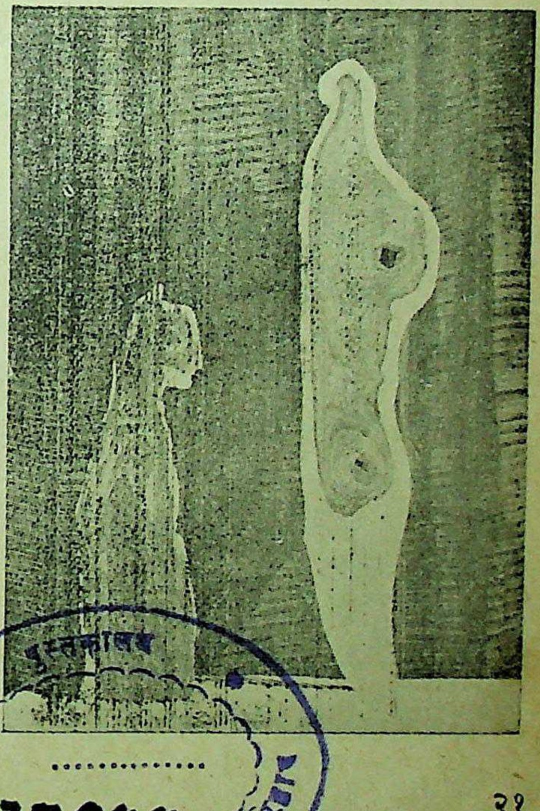

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार 017998

"यह एक आर्डर था। पूरे फ़ुल साइज़में मोहनजोदड़ोंका साँड़ बनाना था। उसका छोटा-सा मॉडल वह उधर सामने रखा है। मगर इसपर काम शुरू नहीं हो सका।"

"लेकिन यह इतना बड़ा साँड़ जब तैयार हो जायेगा तो स्टूडियोके बाहर कैसे ले जायेंगे? इसके किवाड़ तो..."

रज़िया आपाकी बात काटते हुए मुसकराकर मूर्तिकार जे० एन० सिंहने कहा, "तैयार हो जानेपर कोई-न-कोई रास्ता निकल ही आयेगा।" फिर डॉ० मुल्कराज आनन्दकी ओर मुख़ातिब होते हुए बोले, "इधर लकड़ीपर कुछ काम किया है।" और मेन हालके बग़ल वाले कक्षमें जाकर एक कलाकृति उठा ली—"चूल्हेमें जलानेवाली बेकारकी लकड़ी है।"

डॉ० आनन्दने हाथमें लेकर उसे इधर-उधर घुमाकर देखा। समतलसे चैलेके दोनों ओर लकड़ीके प्राकृतिक रेशोंने अजीब-सी मानव आकृतियाँ सँजो रखी थीं। और अपने सन्तुलित परिवेशमें अब बड़ी आकर्षक लग रही थीं। ज़हीर साहबने दो क़दम पीछे हटकर उसे देखा फिर डॉ० आनन्दने उसे यथास्थान रखकर दूसरी कृति उठा ली। अपने ढंगकी अनूठी। एक, दो, तीन, पाँच, सात, कितनी ही कृतियाँ एकसे-एक बढ़कर। सब अनाम। सब आधुनिक।

"सिंह साहब, आपने यह सब लकड़ियाँ कहाँसे इकट्ठी की हैं?" रज़िया आपाका प्रश्न था।

"बड़ी खोज की है।" सिद्दिक़ी साहबका जवाब था।

"हाँ, लकड़ीकी ठेकीपरसे छाँटी हैं। कभी-कभी बड़ी अच्छी चीज़ मिल जाती है वहाँ।" कहकर एक और बड़े-से कुन्देकी तरफ़ सबका ध्यान आकर्षित करते हुए बोले, "एक पीस यह है।"

बात फिर मूर्तियोंपर आ गयी। कारण 'समय और गति' शीर्षक रचनाने डॉ० मुल्कराज आनन्दका ध्यान आकर्षित कर लिया था। लोहेका गोल-गोल पहिया। घड़ीकी तरह बारह चिह्न। और उस पहियेके मध्यमें रैकेटकी आकृतिकी लकड़ी—गतिकी प्रतीकात्मक। और तभी मूर्तिकारने एक और प्लास्टर ऑफ़ पेरिसकी खोखली मुखाकृतिकी ओर इंगित करते हुए कहा, "हर मनुष्यके दिमाग़में कई तरहके विचार पैदा होते हैं। कुछ तो पैदा होते ही मर जाते हैं। कुछ क्षणिक होते हैं और कुछ ऐसे विचार होते हैं जिनमें उस मनुष्यका स्वार्थ होता है। ऐसे विचार मनुष्यके और तमाम विचारोंको 'डामिनेट' कर लेते हैं। इसमें जो छोटी शिराएँ हैं वह क्षणिक विचारोंको 'डिपिक्ट' करती हैं। और जो बड़ी शिरा ऊपर उठी हुई है, वह उसके स्वार्थवाला विचार है। यही आज 'डॉमिनेट' कर रहा है।"

बात गम्भीर थी। सभीने गरदन हिलाकर उसका समर्थन किया।

तभी मैंने कहा, "लकड़ीके अलावा इन्होंने नारपर भी कुछ काम किया है।" और 'विचार' मूर्तिके बग़लमें दीवारपर

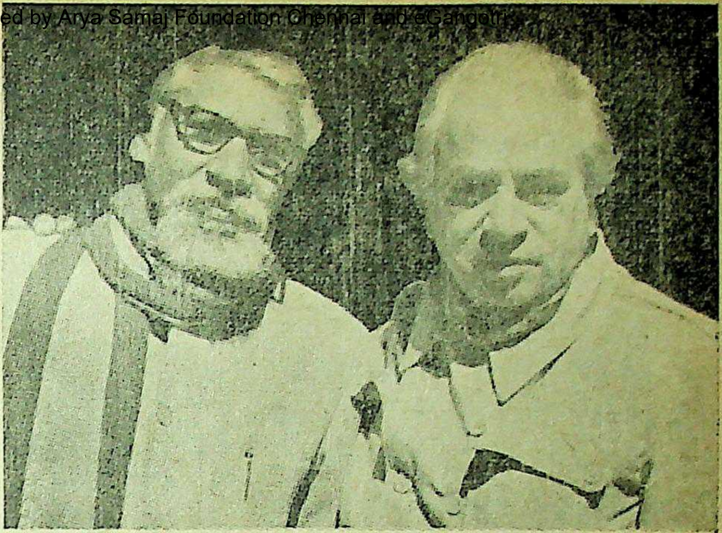

मूर्तिकार जे० एन० सिंह और साहित्यकार मुल्कराज आनन्द

टँगी हुई तारकी आकृतिकी ओर इंगित कर दिया ।

डॉ० आनन्दने गरदन आगे बढ़ाकर उसे देखा और कील-में-से उसे उतारते हुए कह उठे, "क्राइस्ट" ! ..."

"हाँ ।" मूर्तिकारका उत्तर था, "बाड़ेमें लगे हुए काँटेदार तारसे बनाया है ।"

"ख़ूब!" सज्जाद-ज़हीर साहब बोले, "मुल्क, बड़ा प्यारा पीस है ।"

और डॉ० आनन्द उसे बड़ी देर तक देखते रहे, फिर उठाकर अलग रख लिया । संगमरमर और सॉफ़्ट-स्टोनकी कृतियों-में-से अलबस्ट्राका एक पीस उन्हें और पसन्द आ गया । वह भी उन्होंने अलग कर लिया ।

स्टूडियोके मेन हालमें कितनी ही और भी तारसे निर्मित कलाकृतियाँ इधर-उधर टँगी थीं । मिट्टीके स्केचेज़ रखे थे । इधरसे उधर घूमते-देखते रज़िया आपा थक गयीं तो एक कुरसीपर बैठकर दूर-दूर तक नज़र दौड़ाने लगीं । डॉ० मुल्कराज आनन्द चण्डीगढ़की कलात्मक इमारतोंकी तारीफ़ें करने लगे । फिर बात राजनीतिकी ओर मोड़ लेने लगी तो रज़िया आपाने कहा, "सिंह साहब, कुछ ड्राइंग स्कैच भी तो आपने किये हैं ।"

"इधर बहुत दिनोंसे नहीं किये हैं । पहलेके ही हैं.... घनश्याम, वह पैकेट उठा लाना ज़रा ।" कह कर बोले, 'आजकल वक़्त नहीं मिलता ।"

मैं दोनों हाथोंमें हार्डबोर्डका एक बड़ा-सा बक्सा उठाकर लाया और एक ओर रख दिया । फिर पैकिंग पेपरमें लिपटा हुआ एक और गट्ठा उठा लाया और वह स्टैण्डपर रखकर एक-एक ड्राइंग-स्कैच दिखाने लगे "हर ड्राइंगमें लयात्मक गति और फ़ार्म....एक दिखाया, उठाकर रखा; दूसरा दिखाया उठाकर

रखा····स्कैच ख़त्म हुए तो सिद्दीक़ी साहबने कहा, "सिंह साहब, अपनी फ़ोटोग्राफ़ी भी तो ले आइये।"

फिर वे फ़ोटोग्राफ़ी दिखाने लगे। फ़ोटोग्राफ़ीमें ट्रिक-फ़ोटोग्राफ़ी दिखायी, न्यूड दिखाये, प्राकृतिक सीन दिखाये ··········व्याख्या करते गये···और उनके हाथ अपनी रचनाएँ दिखाते-दिखाते दर्द करने लगे···देखते-देखते डॉ० मुल्कराज आनन्दकी निगाहें फिर पूरे स्टूडियोमें घूमीं और पैकिंग केसकी फट्टियोंसे बनाये एक आदमक़द आदमीकी आकृतिपर जम गयीं। तारके एक घेरेमें डोरीसे बँधी कुछ लकड़ीकी मछली-आकृतियाँ एक ओर लटक रही थीं। अजीब-सी। उसपर भी उनकी निगाहें गयीं। फिर-फिर कर सारे स्टूडियोका चक्कर काट रही थीं।

तभी मैंने सुझाया कि एक-दो फ़ोटो-ग्रूप भी हो जायें। रज़िया आपाने हँसते हुए कहा, "नहीं, इसकी क्या ज़रूरत है।"

मैंने कहा, "याददाश्त रहेगी।"

और सिंह साहबने अपना कैमरा सेट कर लिया। एक ग्रूप लिया—क्लिक !··· दूसरा ग्रूप, क्लिक !····फिर मैंने डॉ० आनन्दका और सिंह साहबका एक स्नैप किया। फिर उस पैकिंगकेसकी आकृतिपर तारका घेरा मय-मछलियोंके रखकर डॉ० आनन्दका स्नैप लिया। क्लिक !····और दूसरे पोज़में, एक और क्लिक····और फिर ज़ोरकी एक मिश्रित हँसी स्टूडियोकी ईंट-ईंटसे टकराकर मूर्तियोंको छेड़ती हुई ऊपर उठ गयी।

और आज जब मूर्तिकार जे० एन० सिंह की ५५वीं वर्षगाँठके अवसरपर उत्तर प्रदेश कलाकार संघके तत्त्वावधानमें, उन्हींके स्टूडियो-में उनकी लगभग चार सौ कलाकृतियोंकी व्यक्तिगत कला-प्रदर्शनीका उद्घाटन विद्वान् कला समीक्षक डॉ० भगवतशरण उपाध्यायने किया है, तो मुझे विश्वविख्यात कथाकार और कलासमीक्षक डॉ० मुल्कराज आनन्द और उर्दूके शिखरस्थ शायर और पत्रकार श्री-सज्जाद ज़हीर तथा उर्दू और हिन्दीमें बराबर छपनेवाली कहानीकार श्रीमती रज़िया सज्जाद ज़हीर, प्रख्यात मूर्तिकार श्री जे० एन० सिंह और राज्य ललितकला अकादमी उत्तर प्रदेशके सचिव, जी-एच० सिद्दीक़ीके साथ बीता वह दिन बरबस याद आ रहा है।····१९५५की होलीके एक दिन पूर्वका वह दिन, एक ऐतिहासिक स्मृतिके रूपमें मेरे मस्तिष्कमें कौंध रहा है !

(६५ कैंट रोड, लखनऊ–१)

पश्चिममें बैठकर
पूर्वकी डायरी

प्रभाकर माचवे

२०–५–६०

मिनॉने हिल्लेल फ़ाउण्डेशनके रबाय टिकटिनसे मिलवाया। उनके साथ सबेरे ११-३० बजे 'ट्रिप कामन्स' में भोजनका तै हुआ है। अब सेमेस्टर खत्म होता आया—कक्षाओंमें विद्यार्थी नियमित रूपसे नहीं आते। सबेरे 'भारतीय साहित्य'-वाली कक्षामें सिर्फ़ बर्नार्ड और हीटर आये थे। हीटरने कहा, "शिक्षाका स्तर अमरीकामें तब सुधरे जब सब लड़कियोंको यहाँसे छुट्टी दे दो; या उनके अलग विद्यालय हों। सुनता हूँ, येल अभी भी सह-शिक्षा नहीं देता। डॉक्टरेट इतनी सस्ती हो गयी है कि न्यूयार्कमें चार कम्पनियोंपर दावा चलाया गया है कि वे डॉक्टरेटके थीसिस तैयार करके बेचते हैं।" हीटर एफ० बी० आई० में काम करते हैं; फिर भी शिक्षा-पद्धतिका मज़ाक़ उड़ाते रहे। बोले, "लाइब्रेरीकी दसवीं मंज़िलपर जाइए, (दसवींसे उनका आशय अन्तिम पाँचवीं, सबसे ऊँचीसे था) वहाँ सैकड़ों थीसिसें पी-एच० डी० की पड़ी हैं, जिनके विषय पढ़-पढ़कर हँसी आयेगी। तीन इंजीनियरोंने सिर्फ़ इस विषयपर थीसिस लिखीं कि नलके पानी आनेसे पहले 'भद-भद' आवाज़ क्यों होती है? 'वाटर हैमरिंग' पर ये तीन थीसिस हैं। पूरी कारण-मीमांसा है; पर किसीने उसका इलाज नहीं खोजा!"

बर्नार्डने बताया कि विस्कान्सिनमें छमाही ट्यूशन १५० डॉलर है। हारवर्डमें १५०० है। फिर भी बराबर विद्यार्थी पढ़नेके लिए क़तार लगा रहे हैं। यह शिक्षा किसी उपयोगकी नहीं; निरा दिमाग़ी विलास है, ऐसा भी उन्होंने कहा। हीटर बोले कि लड़कियोंको तो यह सब पढ़ाई करनेके बजाय घरका काम सिखाना चाहिए। पढ़ाई विवाह होनेके बाद उनके लिए केवल एक भूषण-चिह्न मात्र होती है। जीवनमें रत्ती बराबर वह उपयोगी नहीं होती। तभी १७ मईको आशकाशके पास वाटूमा हाईस्कूलमें मैं भारतपर बोलने गया था तो मास्टरनियाँ मेरी इस बातसे बहुत प्रभावित हुईं कि 'भारतमें स्त्री-शिक्षाका प्रधान अंक गृह-विज्ञान और एक ललित कला, पाकशास्त्र और शिशु-संगोपन है।'

आज डाकसे ब्लूमिंगटन इण्डियानाकी फुलब्राइट कान्फ़रेंसका बुलावा आया

है। ७ जूनको ही पहुँच जाना होगा। साथमें अपने-अपने बाजे और नहाने-तैरनेके बेदिंग-सूट भी लाइए—ऐसा आदेश है। हो चुकी कान्फ़रेंस! तीन दिन 'पिकनिक' रहेगी। बस····

रबायसे ब्यूबरके बारेमें बात हुई। मार्टिन ब्यूबर एक आस्तिक अस्तित्ववादी यहूदी हैं। रबाय टिकटिनके गुरु रह चुके हैं। ७३ बरसके हैं और आजकल इस्रायलमें दर्शन पढ़ानेके बाद विश्राम करते हैं। उनकी पुस्तक 'प्वाइंटिंग दि वे'से मैं बहुत प्रभावित हुआ था। 'गान्धी, पोलिटिक्स एण्ड अस' उनका १९३० का निबन्ध, गान्धीकी प्रशंसामें है (यद्यपि चितरंजनदासके कार्यक्रमसे ब्यूबर अधिक प्रभावित हैं)। युद्धके आरम्भमें 'यहूदी हिटलरके विरुद्ध सत्याग्रह क्यों नहीं अपनाते' नामक नवम्बर २६, १९३८ में 'हरिजन'में गान्धीजीने एक लेख लिखा था और 'ज़ायनिज़म' (यहूदियोंको अपने देशके लिए धर्म-युद्ध करनेवाला मतवाद) के खिलाफ़ निन्दा की थी। १९३९ में मार्टिन-ब्यूबर और जूडारु मॅग्रेसने 'टू लेटर्स टू गान्धी' नामसे (जेरूसेलम, रूबेन, मास) पत्र प्रकाशित किये थे। उनमें बहुत ही आर्ततासे गान्धीकी आलोचना है: 'नाज़ी कंसेण्ट्रेशन कैम्प आपने कभी देखा है?'-जैसे प्रश्न हैं। मगर सबसे बड़ी चीज़, मेरे मनमें, नौ साल पहले, गान्धीका उसीके देशवासियों-द्वारा वधका जिक्र है; एक तरहसे भविष्यवाणी है। मूल अंश यों है: 'यू से इट इज ए स्टिगमा अगेंस्ट अस दैट ऑवर एन्सेस्टर्स क्रूसिफ़ाइड जेसस। आई डू नॉट नो व्हेदर दैट एक्चुएली हैपण्ड, बट आइ कन्सीडर इट पॉसिब्ल। आई कन्सीडर इट जस्ट एज पासिब्ल एज दैट द इण्डियन पिपुल अण्डर डिफ़रेण्ट सरकमस्टैन्सेज़ शुड कण्डेम यू टु डेथ····' (पृष्ठ १४६, पालिटिक्स, कम्यूनिटी एण्ड पीस : पोइंटिंग द वे : राउटलेज एण्ड केगन पाल, लन्दन, १९५७)

[ज़ायनिज़मकी अपील सावरकरको भी कितनी थी, यह भी मेरे जाननेमें, हालमें, पटनेमें आया। 'हिन्दुत्व' नामक उनकी पुस्तकके अँगरेज़ी अनुवादसे पृ० १०८–९ का यह उद्धरण है: 'लुक एट द जूज़। नाइदर सेन्चुरीज़ ऑफ़ प्रास्परिटी नॉर सेन्स ऑफ़ ग्रैटिच्यूट फ़ॉर द शेल्टर दे फ़ाउण्ड कैन मेक देम मोर एटैच्ड ऑर इव्न इक्चुअली एटैच्ड टू द वेरियस कन्ट्रीज़ दे इनहैबिट। देअर लव इज़, एण्ड मस्ट नेसेसरिली बी, डिवाइडेड बिटवीन द लैण्ड ऑफ़ देयर बर्थ ऐण्ड द लैण्ड ऑफ़ देयर प्राफ़ेट्स। इफ़ द ज़ियनिस्ट्स ड्रीम्स आर एवर रियलाइज्ड—इफ़ पैलेस्टाइन बिकम्स ए जेविश स्टेट एण्ड इट विल ग्लैडेस अस आलमोस्ट एज आवर जिविश फ्रेण्ड्स—दे, लाइक द मोहेमडन्स, वुड नेचरली सेट द इण्टरेस्ट्स ऑफ़ देअर हॉलीलैण्ड एबव दोज़ ऑफ़ देअर मदरलैण्ड इन अमेरिका एण्ड यूरॅप, एण्ड इन केस ऑफ़ वार बिटवीन देअर एडौप्टेड कण्ट्री एण्ड द जिविश स्टेट, वुड नेचरली सिम्पथाइज़ विद द लैटर, इफ़ इण्डीड दे डू नॉट बॉडिली गो ओवर टू

इट ।" सावरकर आदि कहते हैं कि आदर्श स्थिति तो वही है जहाँ देशके निवासी उसी देशके हों जहाँ उनका पुराणेतिहास संलग्न हो। हिन्दू, अरब और यहूदियोंका फ़िलस्तीन यह तीन ही देश इस तरहसे हैं। उनमें "अरेबिया इज़ इन कम्पेअरेबिली पुअरर्स इन द नेचुरल, कल्चरल, हिस्टॉरिकल, न्यूमरिकल एसेन्शियल्स ऑफ़ ए ग्रेट पिपुल" और जबतक 'पैलेस्टाइन' वालोंके सपने पूरे नहीं होते, उनमें भी इस गुणका अभाव है। बचे रह जाते हैं हिन्दू और उनका 'सिन्धुस्थान' !]

मैंने इसी कारणसे रबायसे पूछा कि यहूदियोंका 'पर्सनल गॉड' (वैयक्तिक ईश्वर) और 'ज़ायनिज़म' (तीव्र देशाभिमानका धर्म) इन दोनोंमें मेल कैसे है ? ब्यूबरका द्वै-राज्यिक सिद्धान्त बताकर रबाय बोले कि दोनोंमें कोई भेद नहीं। जो एक तरफ़से वैयक्तिक है, दूसरी ओर वही देशगत भी है। मात्र अपेक्षा-भेद है। बड़ी देर बहस चलती रही। रबाय पढ़े-लिखे, विद्वान् हैं। अनुदार नहीं। साथमें एक और क्वेकर मिल गये, लालटाईवाले —जो युद्धके समय 'कान्सेन्शियस आब्जेक्टर' थे और सज़ा काट चुके थे। पता चला, तब अमरीकामें ९-१० हज़ार लोग युद्ध विरोधी और जेलमें थे।

मिर्नाको शुक्रवारके कारण उपवास था।

२१-५-६०

शनीचर। छुट्टीका दिन और आलस्य। आज खूब खाया। अनन्त आ गये थे। तो आज 'पीत्ज़ा' खाने गये। छोटा पीत्ज़ा भी १.५० डालरको मिलता है, उसके साथ सलाद मँगाया और खूब मिर्चें और लहसन डलवाकर खाया। पेटमें जब आग होने लगी तो दोपहरको मैंने लाइम और दूधका 'शेक' पिया।

अनन्तको आशकाशमें खरीदा हुआ रेड इण्डियन लोगोंका छोटा-सा चर्खा और दो मेक्सिकन गुड़िया—दत्ता भारत जा रहा है, उसे देनेके लिए दी। वह घरपर बच्चों तक खिलौने पहुँचायेगा।

कल रातको डॉ० दडपे आकर बैठे थे। और चर्चिलने चार दिन पहले, पाँच हफ़्तोंमें युद्ध शुरू हो जायेगा—यह घोषणा की थी, इस बातकी चर्चा हुई। वैज्ञानिक ढंगसे युद्ध क्या-क्या रूप लेगा ? इसमें-से यही नतीजा निकला कि मनुष्य एकदम गुहामानव हो जायेगा। शायद सारी सभ्यता तहस-नहस हो जायेगी—एकदम नाम-शेष हो जायेगी। अमेरिका आणविक अस्त्रोंमें रूससे बढ़-चढ़कर है, यही उनका विश्वास था ! होगा।

आज किंग्स्ले मार्टिनका 'विनोबा भावे' पर (न्यू स्टेट्समैन १४ मई) लेख पढ़ा। विनोबा थक गये हैं; पंजाबने उन्हें साथ नहीं दिया। खाता-पीता किसान उन्हें ग्रामदान क्यों देने लगा ? ४००० गाँव जो उन्हें मिले हैं उनसे उन्हें सन्तोष है। वे अब मध्यप्रदेश-उत्तरप्रदेशकी सीमापर डाकुओंको शान्त करने गये हैं। उसीमें प्रजानिरोधकी बात करनेपर विनोबाने कहा—'आइ एम

नॉट इन लव विद बर्थ-कण्ट्रोल।' क्यों नहीं आस्ट्रेलिया आदि कम बस्तीवाले देशोंमें अधिक लोक-संख्यावाले देशवासी जाकर बसें? किंग्स्ले मार्टिन विनोबासे मार्च '६० में मिलकर आये हैं।

आज एक बहुत शानदार बोलपट देखा—'ब्लैक आरफ़ियर्स'। इसे अकादेमी पुरस्कार मिल चुका है। फ़ोटोग्राफ़ी तो कमालकी है ही—रंगीन चित्र है, सब नीग्रो कास्ट है। पुर्तगाली या स्पेनिश मूल भाषा है, अँगरेज़ी सब टाइटल हैं। पर आर्फ़ीयस-युरिडाइसकी प्राचीन ग्रीक-कथाका कैसा शानदार पुनर्सम्भवीकरण है। इस चित्रने मेरी गहरी-प्रसुप्त पीड़ाकी करुणाकी भावनाओंको सहसा उद्वेलित कर दिया। ऐसा कम हुआ है कि—यहाँ अमेरिकामें १३ सितम्बर १९५९ को मैं आया था—तबसे इन आठ महीनोंमें कभी रुलाई (अकारण) आयी हो—शारीरिक नहीं, भावनिक, मानसिक रुलाई। ऐसा एक अनुभव 'वेटिंग फ़ार गोडो' नामक सैम्युएल बेकेटके ग्रेस चर्चमें नाटकको देखकर हुआ था। दूसरी बार स्वामी निखिलानन्दकी 'गास्पेल ऑफ़ रामकृष्ण'की भूमिकामें परमहंसके चरित्रमें उनके मृत्युके समयका और माथुरकी मृत्युके समयका दृश्य पढ़कर हुआ था; कुछ-कुछ रेवरण्ड एब्रनराशी नामक नीग्रो वक्ताके भाषणको सुनकर हुआ कि इस चित्रपटको देखकर हुआ। यह अनुभव शब्दातीत है—मानवमात्रमें कहीं करुणाका सोता गहरेमें लहरा रहा है, उसे ठेस देनेवाला यह अनुभव है···

२२-५-६०

अखबार (रविवारका विशेषतः) जब-जब उठाता हूँ—पढ़ता हूँ, दुःख होता है। आज नयी बात पढ़ी: ८०,००० 'टीन-एजर' (१३ से १७ बरसकी लड़कियों) के अवैध बच्चे प्रतिवर्ष होते हैं। 'टीन-एजर' में सेक्सके प्रति अनिर्बन्ध कुतूहल और उसके कारण 'अकस्मात्' (गुजराती शब्द दुर्घटनाके अर्थमें) बढ़ रहे हैं। १९५८ में कुल २०८,७०० अवैध बच्चे पैदा हुए थे।

विवाहके बारेमें मनोरंजक तथ्य पढ़े: कमसे-कम ३७० डॉलर विवाहमें ख़र्च होते हैं। वैसे यह अपवाद है। ३००० तक साधारणतया ख़र्च होता ही है। मिनिस्टर (पुरोहित महाशय) की फ़ी १० डॉलरसे २५ तक होती है। बेस्ट फ्रेण्डको दो डॉलरसे २५ तक टरकाया जाता है। पर दोनों तरफ़की सासों वर-वधू-माताओंकी पोशाकका ख़र्च, पार्टीसे भी अधिक होता है। सबसे अधिक ख़र्चा अँगूठियोंका होता है। सस्ते विवाहमें १९४ डॉलर अँगूठीके थे तो मँहगे विवाहमें ७७० डॉलर अँगूठीपर ख़र्च था।*

तभी उस दिन बारकम हॉल जाते हुए पेंसिलसे लिखा एक विज्ञापन, 'बोर्ड' पर लगा था—अमुक लड़की (फ़ोन नम्बर अमुक) की एक विवाह-मुद्रिका (अँगूठी) बिकाऊ है। एकदम कोरी और अनुपयोगित है।

धन्य है यह देश जहाँ सिफ़लिसका

---

* शिकागो सन टाइम्स २२-५-६०, पृ० ८

प्रमाण एकदम ३२% एक वर्षमें बढ़ गया। और सो भी 'टीन एजरों' में।*

अख़बारमें पढ़ा, शिकागोमें हर छठा आदमी नीग्रो है। नीग्रो-लोकसंख्या बहुत तेज़ीसे बढ़ रही है। इसका कारण उसने यह लिखा था कि नीग्रोकी औसत आय यहाँ ३००० डॉलर सालाना है। और परिवारमें हर आदमी कमाता है।

सैटरडे ईवनिंग पोस्ट (जिसपर एक कॉलिज़ने अमेरिका बिरोधी होनेके कारण न ख़रीदनेका हालमें निश्चय किया था) में 'सोवियत रूसमें सेक्स, विवाह, विवाह-विच्छेद' पर एक मनोरंजक लेख पढ़ा। यद्यपि भ्रूण गिराना क़ानून-सम्मत है फिर भी ऐसी लड़की पार्टीसे निकाल दी जाती है। प्रेमका आदर्श 'उन्नीसवीं सदीके रोमाण्टिक, शरीर-सम्पर्कविहीन प्रेम' की तरह होता है। न पुस्तकोंमें, न चित्रपटोंमें, कहीं भी शारीरिक या वासनाप्रधान प्रणयका वर्णन नहीं। दस्ताएवस्की 'रूसी मनकी छलनी' है, फिर भी उसके यहाँ भी एक भी उत्तान प्रणय-प्रसंग नहीं। अन्य लेखकोंमें तो नहीं ही है! रूसी प्रेयसीमें शारीरिक गुण नहीं मानसिक गुण खोजता है; और उसी की प्रशंसा करता है। यौन बातोंका सार्वजनिक ज़िक्र तक अप्रतिष्ठित माना जाता है।

और इस देशका हाल तो आला है। ज़रा धूप नहीं हुई कि बड़ी-बड़ी उम्रदाँ लड़कियाँ भी छोटे बच्चोंसे भी कम कपड़े, लंगोटनुमा और ऊपर एक बनियाइन-सी पहन झीलके किनारे काल-स्थल-संकोचसे परे प्रणय-लीलाओंमें रात-दिन मगन हैं!

शामको अनन्त आये। उनसे पता चला कि उनके बड़े भाई रतलाममें खेती विभागमें कुछ होकर गये हैं। फिर अनन्तने प्रश्न उठाया कि दोष वैज्ञानिकोंका नहीं, एडमिनिस्ट्रेटर्सका है। यह सुविधाजनक विभाजन इस देशके तर्कसे उत्पन्न होता है। यहाँ हर आदमी दूसरेसे एलीयेनेटेड (विभाजित) है; सो नैतिक जिम्मेदारी कोई लेना ही नहीं चाहता। 'हू किल्ड कॉक रॉबिन ?' वाला मामला है।

६-३० बजे एक ब्रिटिश सज्जन और उसकी बूढ़ी-सी भावुक पत्नी अपनी बढ़िया मोटरमें जैनेसविले ले गये। यहाँ यूनिटेरियन फ़ेलोशिपके मातहत हमारा व्याख्यान हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। कई गान्धी और बौद्ध-दर्शनके 'भगत' लोग थे। एक बूढ़ा आया और आँख मिचकाकर बोला—'हमारे अमरीकन लोग धरम-करमकी बात ही बात बहुत करते हैं। असलमें उनका एशियाई या अन्य धर्मोंका अध्ययन नाम मात्रका होता है।' एक दूसरी महिला व्याख्यानके बाद 'योग' के बारेमें पूछने आयीं। किसीने कहा कि ऐसा अच्छा व्याख्यान बरसोंमें नहीं सुना।

पार्कर पेन कम्पनीके एक एजेण्टने एक पॉकेट पेन (मेरा नाम खोदकर) मुझे भेंट

---

* शिकागो सण्डे ट्रिब्यून २२-५-६०, पृ० ४८

किया। वे बोले, 'गयी गरमियोंमें यहाँ नवल टाटा आकर रह गये थे।'

'पेन' से मुझे याद आया कि हमारा नाम मराठी अडनाम 'कलम-दाने' होना चाहिए था। हमारा क़लम बरसोंसे दान-वाला ही चला आ रहा है। १९४६ में उज्जैन छोड़ा तो माधव कॉलेजके विद्यार्थियोंने एक क़लम प्रेमके चिह्नके रूपमें दिया था। वह उपहार दो साल पहले खो गया। उसी 'पेन'से मैंने 'थीसिस' लिखा था। बादमें पारनेरकर और असंगने क्रमशः मुझे पेन उपहारमें दिये। फिर श्रीमती राज सचदेव (असंगकी मास्टरनी) का भला हो, वे अमरीका-युरॅप-यात्रासे लौटीं तो जर्मनीसे एक 'शेफ़र' पेन लेती आयीं, जिससे यह डायरी लिखी गयी। और अब यह 'पार्कर' पेन अयाचित, अनायास, अनपेक्षित मिल गया। वाह !

रूथवाली (जिसने व्याख्यान निश्चित किया था) के पति ज्योतिषशास्त्रज्ञ हैं। डॉ० चन्द्रशेखरन् उसके साथ काम करते हैं : विश्वविख्यात ज्योतिर्विद् ! राहमें बहुत चर्चा होती रही। रूथ गान्धी और भारतके अहिंसक शान्तिमार्गमें बहुत विश्वास करती है। पतिको शंका है कि यह मार्ग कम्यूनिज़मका उत्तर कैसे हो सकता है ?

जेन्सविलका कार्यक्रम बहुत ही यशस्वी रहा। मैं फ़ुल फ़ॉममें था। एक घण्टा बोला। वही बुद्ध-अशोक-अकबर-गान्धी-सह-अस्तित्ववाली चर्चा थी। प्रश्न पूछे गये। एक प्रश्न था—'जनसंख्या-निरोधका क्या कर रहे हैं ?' दूसरा प्रश्न था—'पाकिस्तान-भारतके सम्बन्ध कैसे हैं ?'

२३-५-६०

आज इस सेमेस्टरका अन्तिम दिन है। क्लासमें-से 'ठण्ड लगती है' कहकर केसर उठकर चली गयी। जूडीने बताया कि वह 'हिस्ट्री'में मेजर करने जा रही है और भारत और रूसके बारेमें पढ़ानेवाले उसके प्रोफ़ेसर दोनों अगले साल क्रमशः भारत और युरॅप चले जा रहे हैं। यहाँ प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी,यह अजीब वैयक्तिक-से सम्बन्ध हैं; हमारे पुराने गुरु-शिष्य उस्तादो-मुरीदसे भी गये-गुज़रे। हर प्रोफ़सर जैसा मनचाहे वैसा इम्तिहान लेता है : आब्जेक्टिव यानी ट्रू-फ़ाल्स उत्तरोंवाला या अधिकतर स्मृतिकी परीक्षावाला। कहते हैं कि 'एसे' वाली परीक्षामें पूरी परख नहीं हो पाती। हीटरने प्रश्न पूछ ही लिया—'क्या वर्जीनिया भारतवर्षमें भी मजदूरोंमें काम करती थीं ?' मैंने कहा कि भारतमें मैं उनको नहीं जानता था सो कोई उत्तर नहीं दे सकता।

दोपहर गान्धी-कक्षामें डिकलर्नर किसी फ़ोटोग्राफ़रको ले आया। फ़ोटो खींचे। चलो गान्धी-कक्षाकी एक स्मृति रहेगी। अमरजीत सिंह सेठी देरसे आये। मैक्स प्लैंक 'इनर वायस' (अन्तर्ध्वनि) मानता है, ऐसा कहींसे लिखकर लाये थे। पढ़ा। और विद्यार्थी ऊबते रहे। डिकलर्नरने पूछा—गान्धीके विवाहके सम्बन्धमें क्या मत थे—बहुत परस्पर-विरोधी मत मैंने पढ़े हैं,

सत्याग्रहीको विवाह नहीं करना चाहिए ऐसा उन्होंने कहा। मैंने हिन्दू-संस्कारोंकी बात कही। लर्नर बोले, इस सम्बन्धमें मुस्लिम मत क्या है? मैंने कहा कि मैं नहीं जानता—परन्तु सभी धर्म अन्ततः एक पत्नीव्रतके और एक पतिव्रतके हामी हैं, ऐसा मैं समझता हूँ।

रॉय राबिन्सन ३-१५ बजे मोटर ले आये। आज दिन खुला-खुला और सुन्दर था। उनकी पत्नी जेराल्डीनने पीली ऊनी पोशाक पहनी थी—सादी। वाटर-टाउन हाईस्कूलमें रॉयको पढ़ाना था। सो मुझे सैर कराने ले गये। वाटर-टाउन यहाँसे मिलवाकीकी राहमें ४०-४५ मीलपर एक छोटा-सा, सुघर गाँव है, एक नदीके किनारे। वहाँ ४.१५ बजे पहुँचे तो एक आक्टोगन हाउस नामका १५० साल पुराना, इतिहासकी दृष्टिसे म्यूज़ीयमकी तरह रखा हुआ, मकान देखा। इसमें एक जर्मन परिवार—सबसे पहले इस देशमें बसनेवाले अमरीकन आकर रहे। कई तो उनके नौकर थे। मकान ईंटोंका पक्का क़िलेनुमा बना था। उतने पुराने ज़मानेमें अन्तर्गत उष्णता-निर्माण, नलकेका पानी ऊपर तक ले जानेकी व्यवस्था (एक कुआँ था, जो अब मिलस्टोनसे ढँका है) कई नौकरोंके लिए भीतर से ज़ीना; बाहर एक लोहेकी कील खींचते ही गहरे अन्दर घण्टीका बजना; उस ज़मानेकी इतनी पुरानी स्त्री-पुरुषोंकी पोशाकें, बच्चोंके लिए व्यवस्था; उतने पुराने बाजे अमरीका देशका सबसे पुराना किण्डरगार्टन और मूछोंवाले लोगोंके चाय-कॉफ़ी पीनेके विशेष प्रकारके कप—बहुत मनोरंजक सामग्री थी। एक ऐसी डच भट्टी जिसमें २४ लोफ़ सिक सकें; पुराने ज़मानेके अमरीकन इण्डियन तमाकू पीनेवालेकी मूर्ति, घोड़ोंके ज़ीन, औज़ार, बन्दूकें, चमड़ेके बड़े-बड़े सन्दूकचे, आदमीके बालसे बनाये हुए क़सीदे और फूलकाम—एक सुन्दर डिज़ाइनमें चावल, मूँगफलियाँ, अखरोट, मकईके दाने, बाल और इनसे बनाया इतना सुन्दर डिज़ाइन फूल-पत्तियोंका कामदार बेल-बूटेका था कि क्या कहिए! उस ज़मानेके विज्ञापन भी थे। फ़ोटो कई क़िस्मके—सब ज्यों-के-त्यों सुरक्षित रखे थे। ५० सेण्ट मेरा और जेराल्डीनका टिकिट लगा, पर देखने लायक़ मकान था।

वहाँसे हाईस्कूलके आधुनिकतम स्थापत्यमें पहुँचे। लोहे-कंकरीटके उबा देनेवाले, एकरस जेलनुमा कोठरोंमें प्रकाश-रचना उत्तम थी—लड़कों-लड़कियोंके लिए कई सुन्दर लोहेके कपाट थे। जिसका काठका पूरा बना हाल तो ऐसा कि पूरी दीवाल सरकायी जा सके और सीटोंके पूरे सरकस-जैसे टायर्स सरकाये जा सकें—अस्पताल-जैसी इमारतमें घूमते-घूमते तन-मन ऊब गया।

जेराल्डीन लंच लायी थी। ६-१६ बजे कार्नसूप, दूध, सलाद, अचारके साथ घरकी बनी ब्रेड खायी। आनन्द आया। बादमें उस कक्षाके २०-२५ मास्टर-मास्टरनियोंके आगे हमें पेश किया गया। २० मिनिट

बोला। प्रश्न पूछे गये—'कम्युनिस्ट जो उत्तर-से भारतमें घुसते चले आ रहे हैं; उनका इन्तज़ाम अहिंसक ढंगसे आप कैसे कर रहे हैं?'

—'बच्चोंको यौन-शिक्षा दी जाती है या नहीं?'

—'यह जो अमरीकासे गन्दा, अश्लील, साहित्य वहाँ पहुँचता है, आप कहते हैं, तो क्या वहाँके लोग कभी कोई सेक्सकी किताबें नहीं पढ़ते? मैंने सुना है कि मन्दिरोंपर ऐसा भयानक शिल्प है.....'

—'पाकिस्तान हिन्दुस्तानपर आक्रमण कर रहा है—ऐसा कहीं पढ़ा था। क्या यह सच है?'

—'हिन्दुस्तान काश्मीर पकड़े रखनेका हठ क्यों नहीं छोड़ देता?'

—'हिन्दुस्तानको इतनी एड (आर्थिक सहायता) क्यों देनी चाहिए?'

—'क्या भारतीय शिक्षामें धार्मिक शिक्षा होती है?'

—'हाईस्कूलके विद्यार्थी कितने हैं?'

यथामति मैंने प्रश्नोंके उत्तर दिये। बादमें चार मास्टर-मास्टरनियोंने आकर हाथ मिलाया। एकने कराँचीमें अपनी लड़कीका पता दिया—मिस साण्ड्रा फोली ७४, गार्डेन रोड, कराँची, इत्यादि इत्यादि।

वहाँसे चले तो राहमें लेक मिल नामक सुन्दर स्थानके किनारे एक तीन बच्चोंकी माँ (१२, ९, ७), पर फिर भी नृत्य विशारदा डॉ० नेत्ज़ाऊ नामक एम० डी० (चिकित्सक) की पत्नीका सुन्दर घर देखा। जो गमले थे, उनमेंकी हरी घास प्लास्टिक की होगी—यह सपनेमें भी सोचा नहीं जा सकता था। बहुत अच्छी केक और कॉफ़ी उन्होंने खिलायी। 'फ़ॉल' में भारतसे एजुकेशन एक्सपर्ट आंब्रोज़ सोमसुन्दरम् आये थे; उनकी प्रशंसा कर रही थीं। वे हैदराबादसे थे। साड़ी पहनना सीखना चाहती थीं। मैंने उन्हें साड़ी पहनायी—बहुत ही सुन्दर वे लगती थीं। व्याघ्रचर्म ख़रीदनेके लिए बहुत उत्सुक दीखीं। साड़ी (ज़रीके पसन्द) के लिए वे चाहे जो पैसा ख़र्च करनेको तैयार थीं। मैंने 'हिना' की बात की। बड़ी जिज्ञासा उन्होंने की कि रंग कैसे टिककर रह सकता है?

'हिना' से याद आया—भारतसे मुज़फ़्फ़र शाहकी चिट्ठी आयी है। दूसरी भी उसे लड़की ही हुई। अच्छा नाम रखा है—हिना!

और जगदीशचन्द्र माथुरका पत्र मिला। पन्तजीकी षष्ठयब्दिपूर्ति पर १२ भाषाओंमें उनकी कविताओंके अनुवाद प्रसारित होंगे, २० मईको—लिखा है। टेप घरपर पत्नीको सुनवाया, यह भी लिखा है। इष्य पत्र है?

वाटर टाउनसे राहमें आते हुए अमरीकामें मानवतावादके दर्शन मुझे कब-कब हुए: नैशविल अलाबामाके सत्याग्रहके लिए बर्फ़में लड़के एक दिनमें ८०० डॉलर जमा कर रहे हैं....तीन मिलियन डॉलरका सेण्ट ज़ानमें चर्च बन रहा है.. लैक एच० चर्चमें भारतके बच्चोंके लिए ३० डॉलर जमा करके दिये जा रहे हैं....मिशिगनसे

हवाई जहाज़से लौटते हुए एक कैन्सरका रोगी मिल जाता है, जो काले आदमीका आशीर्वाद चाहता है····

नहीं, मानवतापर अविश्वास करनेका सहसा मन नहीं होता। दुःखकी खन्दक, आँसुओंकी खाई कभी खत्म न होनेवाली नहीं है। बर्फ़के दिन कट चुके हैं—सुनहरे दिन निकल आये हैं, मौसम सुहावना है, हवामें ओससे भींगी घासकी गन्ध है; [illegible] घरमें सीढ़ीपर और घरके दहलीज़के पास क्रिसमस-ट्रीमें रॉबिनने बच्चे जने हैं––नावमें झटसे जाकर बड़ा लड़का बापको बुला ले आता है, 'काले' बूचरने हाथ काट लिया है, बाप मोटर लेकर दौड़ा-दौड़ा उसकी सेवाको पहुँचा; तितलियाँ हवामें मँडरा रही हैं और लायलाकके नीले-बैंजनी फूलोंका मदमाता सुवास धीमे-धीमे फैल रहा है जैसे सन्दल हो····

(१२०, रवीन्द्र टाउन,
नयी दिल्ली)

Phone : 25-2227

Universal Fire & General
Insurance Company Ltd.

Transact :
Fire, Motor, Marine, Personal Accident,
Fidelity, Guarantee, Burglary and all
other forms of Miscellaneous
Insurance Business.

Universal Insurance Building,
Sir P M. Road, Bombay-1.
Chairman & Managing Director :
P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond.)

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ। अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं। माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट। मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

HANUMAN
MADE FROM VEGETABLE OILS ONLY
ROHTAS INDUSTRIES LTD.

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये। जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए। फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये। उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए।

इन गोलियों को बेसन, नमक' लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए। उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए। फिर पानी डाल दें। इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें।

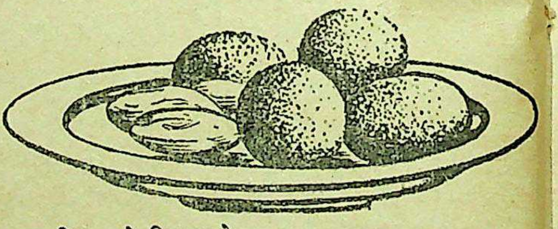

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया।

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

IPC/RI : 407 H

लय, गति और आधुनिक नृत्य-बोध

•

कैथेराइन डनहम

दिक् और गुरुत्वाकर्षणपर विजय प्राप्त करनेकी चुनौती जीवजगत्में विकासक्रमके जटिलतर सोपानपर पहुँचे हुए प्राणियोंकी सहजात विशेषता-सी प्रतीत होती है। अकसर यह चुनौती एक सौष्ठवपूर्ण अभिव्यक्ति बन जाती है जिसमें रूप और ताल समन्वित होते हैं। चौपायोंके बच्चोंका दौड़ना, उछलना, कूदना, कुलाँचे भरना, चिड़ियोंकी नृत्यगतिका जटिल पैटर्न, हाथियोंके झुण्डकी मौसमी केलिक्रीड़ा—ये सभी लयात्मक गति और संयोजित पैटर्नकी गहरी प्रेरणाके उदाहरण हैं। मानो प्रकृतिके साथ आंगिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी सतत चेष्टाके फलस्वरूप ही नृत्यकी शिथिल परिभाषा 'लयात्मक गति' प्रागैतिहासिक कालसे आजतक मानवके भौतिक, मनोवैज्ञानिक, और सामाजिक-संगठनात्मक परिवर्तनके विभिन्न दौरोंसे गुज़रकर भी बनी चली आ रही है।

परिभाषा करनेका अर्थ बहुधा बिना किसी शर्तके सीमा बाँध देना है और गहराईमें स्थित आधारभूत आन्तरिक स्रोतों, अनुभूतियों और आदिम पैटर्नोंकी परिभाषा करनेकी कोशिश सच पूछिए तो बिलकुल बेकार-सी है। 'लयात्मक गति'—नृत्यके लिए यह परिभाषा बहुत अधूरी-सी लगती है, जबतक इसमें ध्वनियोंके अनुभवोंका एक रूप, अनुभूतियाँ, और कामनाएं स्वतः ही सम्मि-

लित न मान ली जायें। परिभाषा खोजते-खोजते एक बार मैं इस नतीजेपर पहुँची : "नृत्य एक या अनेक कारणोंसे लयात्मक गति है : सामाजिक संश्लेषण, मनोवैज्ञानिक या शरीर शास्त्रीय रेचन, प्रदर्शनात्मकता, आत्मसम्मोहन, आनन्द, भावोन्माद, यौन-चयन क्रीड़ा-मनोरंजन, कलात्मक मूल्योंका विकास, आक्रामक या अनाक्रामक क्रियाकी उत्तेजना, सामाजिक पैटर्नकी स्वीकृति या अभिवृद्धि, तथा अन्य।"

मैं अनुभव करती हूँ, यह विवरण परिभाषाकी बजाय वर्णनके अधिक निकट है। ऐसा तब अकसर हो उठता है जब आपसमें गुँथी हुई विशेषताओंके एक ख़ास विस्तारके कारण समस्याका हल अति सरलीकरण या अति जटिलीकरणके अलावा और कुछ नहीं रह जाता। शाब्दीकरणका अन्त बन्ध्यत्वमें होता है, और किसी कलात्मक सृष्टिके अधिकांशसे सम्बन्ध रखनेवाली सौन्दर्यानुभूतिका वर्णन करनेकी जब चेष्टा की जाती है तो 'पीड़ाजनक सरलताके कारण प्रयत्न असफल-सा हो जाता है। (इस समय मैं भी दूसरे अनेक कलाकारोंकी भाँति अपनेको इस संकटमें पाती हूँ, और शब्दबाहुल्य-द्वारा एक ऐसी अनुभूतिकी व्याख्या करनेका प्रयत्न कर रही हूँ जिसकी जड़ें मानवके आधारभूत अस्तित्वमें मज़बूतीसे जमी हुई हैं और जो मानवकी व्यक्तिगत एक सामाजिक अखण्डताकी शक्तियोंकी कुंजी हो सकती है।)

नृत्यकी सार्वजनीनता इतिहासकारों, दार्शनिकों, चित्रकारों, शिल्पियों, आदि द्वारा तो प्राचीन कालसे ही स्वीकृत होती चली आयी है, लेकिन अभी हाल हीमें इसमें नृशास्त्री, मानसशास्त्री, और शरीर-शास्त्री भी गहरी रुचि लेने लगे हैं; हाल ही के कुछ वर्षोंसे अभिव्यक्तिके इस रूपके प्रति न केवल-मनोरंजनात्मक और रंगमंचीय दृष्टिसे बल्कि इसमें निहित सांस्कृतिक तत्त्वोंके परीक्षण तथा समाजशास्त्रीय, जीवशास्त्रीय, एवं मानसशास्त्रीय दृष्टिसे इसके रूपों और महत्त्वके तुलनात्मक विश्लेषणके दृष्टिकोणसे भी लोगोंके मनमें गहरी अभिरुचि विकसित होने लगी है। किन्तु चूँकि नृत्यका सांस्कृतिक महत्त्व आज मुख्यत: लोकगाथात्मक रंगमंच, कैमरे-द्वारा उसके सौन्दर्य-दोहन, और यात्रा-गाथाओंके निरन्तर बढ़ते हुए साहित्य-द्वारा प्रकाशमें आ रहा है, आधुनिक समाजमें एक ऐसे झगड़ेका जन्म हो गया, जिसका अन्त नृत्यको कला और विज्ञानके बीच तथा अभिव्यक्ति और मनोरंजनके बीचकी दुविधा-पूर्ण स्थितिमें रखकर ही हो सका। मुझे तो यह द्वैषता बेकार-सी लगती है, क्योंकि कला और वैज्ञानिक अन्वेषणके मार्ग बहुधा एक दूसरेसे होकर गुज़रते हैं या एकीकृत ही हो जाते हैं, अतः झगड़ेकी कोई ज़रूरत ही नहीं रह जाती। आदिवासी समाजोंमें व्यक्तिगत और सामुदायिक, जीवनके दोनों पहलुओंमें नृत्य क्रियात्मक तत्त्वके रूपमें स्वीकृत है और इसी कारण वहाँ वर्गीकरणका संघर्ष पैदा ही नहीं होता। लोकगाथात्मक या आदिमयुगीन स्थितिमें रहनेवाले लोगोंकी भावदशाएँ, दमित भावनाएँ, चुनौतियाँ, पीड़ाएँ, और

आनन्द अब भी कर्मकाण्डीय नृत्य-द्वारा ही व्यक्त होते हैं और आवश्यकतानुसार नियन्त्रित, मुक्त, या किसी विशेष धारामें प्रवाहित होते हैं। सामुदायिक अभिव्यक्तिके रूपमें नृत्यका सावधानीपूर्वक निरीक्षण करके ही मनोविज्ञान, दर्शन, और सांस्कृतिक पैटर्नके सम्बन्धमें अनेक उपयोगी सिद्धान्त-कल्प प्राप्त किये जा सकते हैं।

मानवकी कामनाएँ दो दिशाओंमें घूमती प्रतीत होती हैं—एक तो सैकड़ों सहस्राब्दियों पीछे, अँधेरे युगकी गहरी आदिम भावनाओंके खिंचावकी ओर, और दूसरे उच्चतर समन्वय तथा अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण अस्तित्वकी ओर। पूर्णताकी यह कामना उसे ईश्वरकी कल्पनाकी ओर ले जाती है और ले जाती है प्रकृतिकी ओर, प्रत्येक व्यक्तिमें निहित अनेक व्यक्तित्वोंके एकीकरणकी ओर, शिव भावनाकी खोजकी ओर, सीधे-सादे शब्दोंमें यह उसे अदृष्ट प्रकाशकी ओर ले जाती है। पर यह सब कुछ निर्भर है व्यक्तिके चरित्र और उस सांस्कृतिक परिवेशके प्रकारपर जिसमें वह अपनेको पाता है, तथा अन्य उन अनेक तत्त्वोंपर जिन्हें मनोवैज्ञानिक या शरीर-शास्त्री अबतक ढूंढ नहीं पाये हैं। जब इस एकीकरणकी कुछ मात्रा व्यक्ति उपलब्ध कर लेता है तब कुछ अंशों तक एक प्रकारकी बेचैनीसे छुटकारा ही उसका पुरस्कार होता है।

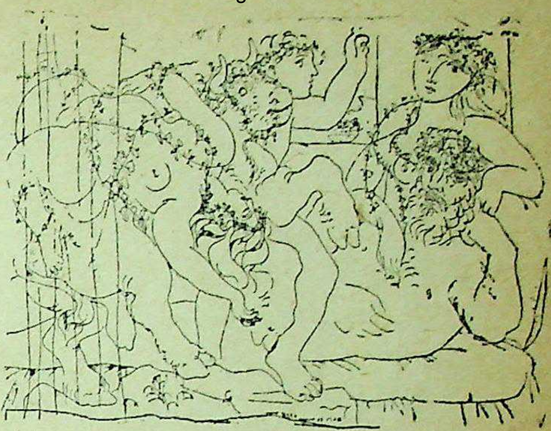

नृत्य : पाब्लो पिकासो

चूंकि हमारे अपने औद्योगीकृत समुदायोंमें बेचैनीकी बढ़तीके पूरे प्रमाण मौजूद हैं, यह बिलकुल समयोचित और अत्यन्त रुचिकर कार्य होगा कि आदिम या लोकदशामें अब भी रहनेवाले समुदायोंका निरीक्षण कर हम यह देखें कि नृत्य कितनी दूर तक समन्वयात्मक तत्त्वके रूपमें क्रियाशील है, कितनी दूर तक लयात्मक गतियाँ व्यक्ति और समुदायके जीवनमें गहरे उतरती हैं और समतुल्यताको प्रभावित, सन्तुलनकी रक्षा, और संवेगोंका मार्गीकरण करती हैं। हमें अपनी रुचि आदिम या लोक कहलानेवाले समुदायों तक ही सीमित कर देनेकी आवश्यकता नहीं है। अंग-संचालनकी लयात्मक गतियोंके कारण आधुनिक समुदाय भी हमारे निरीक्षणके पात्र बन जाते हैं। सभ्यीकरणकी बारीकियों और संस्कारोंको आत्मसात् करनेकी प्रक्रियामें हम न जाने कैसे इस निर्णयपर पहुंच गये कि जिन मानदण्डोंसे अब भी आदिम या लोकदशामें रहनेवाले समुदायोंका मूल्यांकन किया जाता है उनसे हमारा अपना मूल्यांकन होना उचित नहीं। स्पष्ट ही यह बिलकुल ग़लत

धारणा है और यदि हम विकासोद्गम तथा सांस्कृतीकरणके दृष्टिकोणसे देखें तो आधुनिक जीवनकी अनेक जटिल समस्याएँ कम दुर्भाग्यपूर्ण लगेंगी तथा उनके हल किये जा सकनेकी अधिक सम्भावनाएँ नज़र आयेंगी। आधुनिक समाजमें नृत्य बालरूमकी स्थितियों और रंगशाला या मनोरंजनतक ही सीमित होकर रह गया है। विश्लेषणमें नृत्यमें भाग लेनेवाली जनता अर्थात् दर्शकोंकी अभिरुचिका बहुत महत्त्व है। यदि हम अत्यधिक औद्योगीकृत महानगरोंमें सामाजिक नृत्योंके जनताकी अभिरुचिका परीक्षण करें तो पिछली शताब्दीमें तेज़ीसे बदलते हुए नैतिकता-विश्वास, अर्थरचना, और लोकाचारके साथ-साथ एक निश्चित पैटर्नका विकास हम देख सकेंगे।

औसत महानगरोंकी लय ऐसी नहीं है जिससे समन्वयका विकास हो सके, बल्कि ठीक इसका उलटा है। या शायद अभी भी हम धरतीके गर्भाशयकी गतियोंसे भ्रूणकी भाँति इतने बँधे हुए हैं कि अपनी जीवन-शैलीके कारण निरन्तर बढ़ती हुई विरोधात्मक स्थितियोंका जो भार हमपर लदता जा रहा है, उसके साथ हम सामंजस्य नहीं बैठा पा रहे हैं। हमारे क़दम बेतरतीब पड़ते हैं, हमारी अंगस्थितियों और आकृतियोंमें सन्तुलन नहीं रह गया है, और जिस वायुमण्डलमें हम साँस लेते हैं उसके साथ अपनी भावनाको हम एकात्म नहीं कर पाते। मानवनिर्मित असंख्य मशीनों और संस्थाओं, तथा भय, चिन्ता, एवं आस्थाहीनतासे उत्पन्न होनेवाली अन्तर्विरोधिनी गतियाँ और लय हमपर छाती जा रही हैं। स्वयं मानव शरीरकी विविध लय--हृदयकी धड़कन, श्वास-प्रक्रियाकी गतियाँ, मस्तिष्क केन्द्रोंसे उत्सर्जित कोमल लहरियाँ, रक्त-प्रवाह, और मांसपेशियोंका अचेतन संचालन, औद्योगिक युगके परिणाम—विसंगति और स्वरोंकी कर्कशताके साथ लगातार प्रतियोगिता करती रहती हैं। आधुनिक मानवका सामाजिक नृत्य—जो रंगमंचके अलावा सांस्कृतिक रिक्थके रूपमें नृत्यका एकमात्र चिह्न रह गया है, औद्योगिक क्रान्तिके ठीक पहले प्रवर्तित होनेवाले महान् वाल्ज़ायुगके साथ ही बढ़ती हुई न्यूरे स्थेनिया, समन्वयात्मक प्रवृत्तिका क्रमिक ह्रास, और उस आधारभूत विसंगतिको व्यक्त करने लगा जिसमें आज हम अपनेको पाते हैं।

इस बातके प्रभूत प्राणिशास्त्रीय प्रमाण हैं कि प्रत्येक प्राणीभूतमें एक प्रकारका आधारभूत व्यवस्था-क्रम विद्यमान रहता है। उसमें एक ऐसी गति रहती है जो अस्तव्यस्त या रूपहीन नहीं होती। उसमें जीवनका एक ऐसा पैटर्न होता है जिसकी गति-संयोजना कलाचार्यों-द्वारा निर्मित श्रेष्ठ नृत्य-नाट्योंसे भी कहीं अधिक सावधानीपूर्वक की गयी होती है। इस क्रम-व्यवस्थाके दृश्य प्रमाणों-प्रतिरूपोंकी खोजमें दार्शनिक, वैज्ञानिक, और सर्जनशील कलाकार सदासे रत रहे हैं और सौभाग्यवश अब भी लगे हुए हैं। इस खोजमें दिशा-परिवर्तनकी स्पष्ट और आरम्भिक शर्त यह है कि हम उन समुदायों-

का अध्ययन करें जो औद्योगीकरणकी जटिलताओंसे मुक्त स्थितिमें अब भी रह रहे हैं।

सचेतन क्रियाओंसे उत्पन्न गतियों और ध्वनियोंके अतिरिक्त तात्त्विक रूपका एक और अधिक अगम्य रूप भी है। दैनिक जीवनकी अनेक आकस्मिक स्थितियों—मुर्गोंकी लड़ाई देखनेवाली भीड़की गतियों और ध्वनियोंमें, चौरस्तोंपर या बाज़ारोंमें अचेतनरूपसे लोगोंके बन जानेवाले शिल्प-सौन्दर्य मण्डित झुण्डोंमें, फेरीवालोंकी पुकारोंमें, और समुद्र-तटपर बोझा ढोनेवाले मज़दूरोंकी अर्धनृत्यात्मक गतियोंमें इस लयका दर्शन किया जा सकता है। समाजके सुसंस्कृत लोग तो अब शारीरिक रूपसे नृत्यमें केवल पार्टियों, नाइट क्लबों, या कार्निवलमें ही भाग ले पाते हैं। जन-समुदायका अधिकांश, जिनमें किसान, मज़दूर, और कच्ची सड़कके किनारोंके छोटे-छोटे दूकानदार भी शामिल हैं, अपनी जीवनानुभूतियों, अपने संवेगों, अनुभवों, उल्लासों और पीड़ाओंमें ही नृत्यकी गतिका आनन्द ले लेता है। इस प्रकार अपनेमें ही नृत्यकी गति ढूँढ लेनेसे जीवन सहनीय हो जाता है।

किसी भी समुदायके संवेगात्मक जीवनको उसके कलारूपोंमें आसानीसे पढ़ा जा सकता है और चूँकि नृत्य-कला जीवनके क्षणोंको निरन्तर दिक्, काल, और गतिके समन्वित रूपमें पकड़नेकी कोशिश करती रहती है, किसी भी युगके सांस्कृतिक पैटर्नका पता लगानेके लिए इसे हम खरा इतिहासकार मान सकते हैं।

चेतन और अचेतन मनके बीच लगातार चलते रहनेवाली लुकाछिपीकी लीला भौतिक रूपमें अपनी अभिव्यक्तिका सर्वोत्तम आधार मानव-शरीरमें पाती है जो सब कुछको एक साथ ही स्वीकार कर सकता है। चाहे अकेले या सामूहिक रूपसे मानव जब नृत्यरत होता है तो उसके विविध व्यक्तित्व भी एक साथ नृत्य करने लगते हैं और उसका नृत्य तथा उसके संवेग इतनी स्पष्टतासे सम्प्रेषित होने लगते हैं मानो ये किसी सार्वजनीन भाषामें लिखे या बोले गये हों।

किसी आदमीके व्यक्तित्वकी विशिष्टताओंके दण्ड या नियन्त्रक तत्त्वके रूपमें लयों और गतियोंमें अनुसन्धानका क्षेत्र प्रायः असीमित रूपसे फैला हुआ है। सामुदायिक विशिष्टताओं और सांस्कृतिक पैटर्नके रूपमें नृत्यका कुछ अध्ययन हुआ तो है लेकिन वह भी बिखरे हुए सतही दस्तावेज़ोंके रूपमें है, उनका विश्लेषण करनेका प्रयत्न नहीं किया गया है।

अनु० : कुँवरजी अग्रवाल
(सी० के० १५।२६ भारतेन्दु मार्ग,
वाराणसी—१)

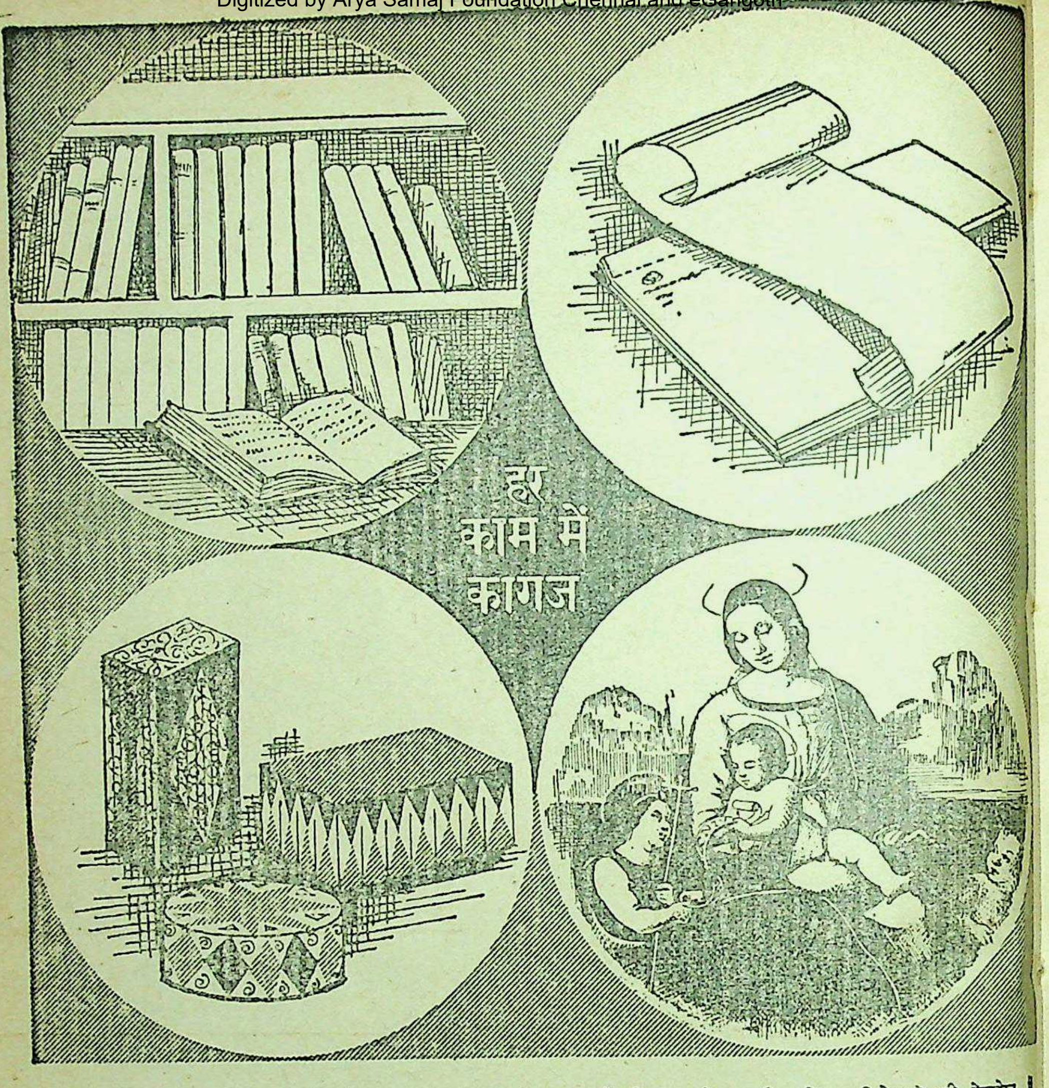

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेवल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज ;...

ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो, कलकत्ता।

[illegible]

कहानी की प्रगति को | सामूहिक रूप से — नहीं आँका जा सकता...

[श्री जैनेन्द्रकुमारसे एक भेंट—*भीमसेन त्यागी*]

भीमसेन त्यागी : आज हमें विशेषकर स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानीके बारेमें बातचीत करनी है। इस सम्बन्धमें पिछले दिनों आपके वक्तव्योंसे लगा है कि इस अवधिमें कहानीने प्रगति नहीं की है। क्या आप सचमुच मानते हैं कि पिछले वर्षोंमें हिन्दी कहानीने प्रगति नहीं की ?

जैनेन्द्रकुमार : कहानीने प्रगति की है अथवा नहीं की है, मैं समझता हूँ, यह शब्दावली ही संगत नहीं है। कहानीकी प्रगतिको कलेक्टिवली यानी सामूहिक रूपसे आँका जा सकता है, ऐसा मैं नहीं मानता। होता यह है कि कुछ लेखक अच्छा लिखते हैं, कुछ वैसा नहीं लिखते। दोनों तरहके लेखक हर कालमें होते हैं। मैं कहानीका सम्बन्ध समयसे नहीं, व्यक्तिसे जोड़ता हूँ।

त्यागी : इससे विशेष अन्तर नहीं आता। अब मेरा प्रश्न है—स्वतन्त्रताके बादके कहानीकारने पूर्ववर्ती कहानीकारकी अपेक्षा कहानीको आगे बढ़ाया है अथवा नहीं ?

जैनेन्द्र : इस अवधिमें भावात्मक ज्ञानको मान है, भावोत्कर्षको नहीं। विश्लेषणका आग्रह बढ़ा है। आदर्श ओझल हो गया है। यथार्थका विश्लेषण करनेमें ही प्रयत्न सीमित हो गया है।

त्यागी : आजके कहानीकारका आग्रह है कि उसने समय और समष्टिके प्रति अपने दायित्वको ज़्यादा शिक्षित और ज़्यादा जिम्मेदारीके साथ अनुभव किया है। इस बारेमें आपका क्या मत है ?

जैनेन्द्र : समाजके प्रति सचेत भावसे दायित्व अनुभव करना उपयोगी नहीं है। रचनाकार अपनेको समाजसे अलग मानकर ही वैसा दायित्व ओढ़ सकता है। नये कथाकारकी संवेदना व्यक्तियोंके दुःखोंके प्रति न होकर, समाज नामक संस्थाके प्रति हो तो उसका विशेष अर्थ नहीं बनता है। इससे अहम्मन्यता बढ़ती है। मैं इसीलिए समाजवादका क़ायल नहीं हूँ। समाजवादी सहज अहंवादी हो सकता है।

त्यागी : स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्यकी प्रमुख प्रवृत्तियोंमें आंचलिकता भी एक है। क्या आप समझते हैं कि यह प्रवृत्ति साहित्यके लिए श्रेयस्कर सिद्ध हो सकी है ?

जैनेन्द्र : आंचलिकता शब्द तो अंचलसे बँधा है। लेकिन हाँ, स्थानीयता, जिसे 'लोकल कलर' कहें उसपर विशेष ध्यान है। परिस्थितिको बारीकीमें चित्रित करनेका आग्रह बढ़ा है। यही आग्रह आंचलिकता तक भी गया है। प्रवृत्ति ग़लत तो नहीं थी, पर शायद अति हो गयी। परिस्थितिके बीच मानव-भावनाकी स्थिति क्षीण बना दी गयी। परिस्थिति अपने-आपमें साहित्यकारके निकट पट ही तो है। उसपर मानव चित्रकी क्या और कितनी गहनता अंकित हुई है, साहित्यकी सफलताका मुख्य मान यही है।

त्यागी : आजके लेखकका यह भी आग्रह है कि उसने कथाको अपने पूर्ववर्तियोंके रोमेण्टिसिज़मसे मुक्ति दिलायी है और उसे यथार्थकी भूमि दी है। आप इस कथनसे कहाँतक सहमत हैं ?

जैनेन्द्र : बिलकुल सहमत नहीं हूँ। मैं रोमांसके बिना साहित्यकी कल्पना ही नहीं कर सकता। आज विश्लेषण इतना बढ़ रहा है कि रोमांसको खाये जा रहा है। बौद्धिकताने हार्दिकताको ग्रस लिया है।

त्यागी : यह तो रही कथ्यकी बात, अब मैं जानना चाहूँगा कि आपकी रायमें पिछले वर्षोंमें शिल्पकी दृष्टिसे विकास हुआ है अथवा नहीं ?

जैनेन्द्र : शिल्पकी दृष्टिसे अवश्य विकास हुआ लगता है। सूचकता और सांकेतिकताका आग्रह बढ़ा है। लेकिन बाहरकी साज-सज्जा क्या सचमुच काम देगी, अगर भीतरका स्वास्थ्य क्षीण हो ? क्या नहीं देखनेमें आता कि स्वास्थ्य स्वयं सौन्दर्य होता है ? ऊपरकी सौन्दर्य-सज्जा स्वास्थ्यके अभावमें भोंडी तक लग सकती है। मुझे कई बार ऐसा लगा है कि शिल्प-चातुर्यने अमुक कहानीको बनाया या सँवारा नहीं, बल्कि दबा दिया है। यदि वस्त्रकी बनावट और सजावट व्यक्तित्वसे भी ऊपर उभर आती है तो अरुचि ही पैदा करती है।

त्यागी : अभी आपने कहा कि शिल्पकी दृष्टिसे अवश्य विकास हुआ है। आजके किन कथाकारोंकी रचनाओंमें वह शिल्प-वैशिष्ट्य है, जो आपके इस कथनकी आधार-भूमि बनता है ?

जैनेन्द्र : यानी नाम चाहते हो ?

त्यागी : आपको असुविधा हो तो मैं आसानीसे प्रश्न वापस लेकर आगे बढ़ सकता हूँ।

जैनेन्द्र : मुझे निर्मल वर्मामें शिल्पकी सूक्ष्मता और सांकेतिकता मिली है। साथ ही वह लेखन शिल्पकी अधिकता, अतिशयतासे बरी है। शिल्पके आधिक्यकी दृष्टिसे मुझे राजेन्द्र यादवका नाम याद आ जाता है। वहाँ कौशलके नीचे सत्त्व दब-सा जाता है। और भी रचनाओंमें अदायगी और तर्ज़पर ज़्यादा ज़ोर है। एक और भी बात है— लेखक आजकल सभी पढ़े-लिखे होते हैं। एम० ए० से कम शायद कोई ही हो। उन्हें अपनी विज्ञताका पता रहता है। कहानीकी कलाके लिए मुझे अज्ञता बहुत आवश्यक मालूम होती है, यानी कि लेखक कुछ जानना चाहता हो। लेखक जब हाथमें निर्णय लेकर

लिखता है तो यह उत्सुकता उसके लेखनमें नहीं रह पाती। आजकी पीढ़ीके लोग अधिकांश बहुत कुछ जानते हैं। यह तक जानते हैं कि पुरानी पीढ़ीके कुछ नहीं जानते थे।

त्यागी : आप उनके इस कथनसे कहाँतक सहमत हो पाते हैं ?

जैनेन्द्र : बात तो सच है। बेशक आज बेटेके मुक़ाबले बाप बहुत ही कम जानता है। लेकिन यह बहुत और अन्तिम और निर्णीत जान रखनेकी क्षमता कहानी-लेखनकी क्षमता नहीं बनती। वह विद्रोह आदिके मामलेमें ज़्यादा कामकी साबित हो सकती है, जहाँ संघर्ष लेना, जीना और जीतना पड़ता है। कहानीके लिए तो सहानुभूतिकी अधिक अपेक्षा है। वह अपनेको ग़लत मान सकनेकी तैयारीमें सृष्ट होती है पर क्या किया जाये, जानकार युवक अपनेको अज्ञ कैसे मानें ?

त्यागी : आपकी बातोंसे लगता है कि पुरानी-नयी पीढ़ीमें कसाव-तनावकी स्थिति है।

जैनेन्द्र : वह तो है।

त्यागी : तो क्या यह स्थिति साहित्यके लिए श्रेयस्कर भी है ?

जैनेन्द्र : श्रेयस्कर न हो, लेकिन फल आनेसे पहले वृक्ष यदि नहीं झुक पाता तो दोष कैसे दिया जाये ? विद्रोहकी अवस्था हर जीवनमें आती है। उस अवस्थामें व्यक्ति अपनेको अपरिपक्व मान ही नहीं सकता। उचित यही है कि उसे अपरिपक्व न कहा जाये। असम्मानमें-से विनय या नम्रताको नहीं उपजाया जा सकता। आगे-पीछे तो स्वभावमें यह लोच आयेगी ही। किन्तु जब 'एडोलोसेंस' (अल्हड़पन) की यह अवस्था हो तब सामने न पड़ना ही इष्ट है। बल्कि ऐसी अवस्थामें कुछ और बढ़ावा देते रहना भी हितकर हो सकता है।

त्यागी : वह किस दृष्टिसे ?

जैनेन्द्र : दृष्टि यह कि अहं उसमें कहीं दबा हुआ है। वह अपनेको आज़ाद और सर्वसमर्थ समझना चाहता है। यह थोथी तृष्णा है। बढ़ावा देनेसे वह दमित भाव दूर हो सकता है और अहं अपने प्रकाशनका मार्ग पाकर स्वास्थ्यका लाभ कर सकता है।

त्यागी : आपने नयी पीढ़ीपर अपरिपक्वताका आरोप लगाया है। इसके विपरीत नयी पीढ़ीका आरोप है कि पुरानी पीढ़ीके अधिकांश लोग अति-पक्व यानी ओवर-राइप हो गये हैं। इस सम्बन्धमें आप क्या कहेंगे ?

जैनेन्द्र : आयुके साथ एक समय जरा आती ही है, और फिर मृत्यु आ जाती है। यह क्रम तो स्वतः सिद्ध है। अपनी ओरसे किसीको धक्का देकर जरा और मृत्युमें धकेलनेकी आवश्यकता अनुभव होती है तो यह कुछ अपनी ही असहिष्णुताके कारण। राज-परम्परामें अकसर देखा गया है कि बेटा बापके मरने तक ठहरा नहीं है, उससे पहले ही उसने आगे बढ़कर बापके सिरको काट डाला है। कारण इसमें राजसिंहासन बना करता है। ऐसा कोई सिंहासन साहित्यकारके पास नहीं है। पर हठात् पहलेसे काम करते आनेवालोंके नीचे कोई-न-कोई आसन तो बन ही जाता है। अस्तित्वके युद्धमें वह

सब भी क्यों सहा जाये ? जीवन-संघर्षका यह भी एक पहलू है। बस इतना ही कि इससे साहित्य अथवा संस्कृतिका कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि मुझे लगता है कि जरा-जीर्णताकी ओर बढ़ते जानेवाले व्यक्तिके लिए अतिरिक्त सम्मान कुछ कठिन नहीं होना चाहिए। सच पूछिए तो यह आदरमान ही उसे विश्राम और चिर विश्रामकी ओर भेजता है। अपमान तो उल्टे जीवनदायी-तत्त्व है। तिरस्कारका भाव देंगे तो पुरानी पीढ़ीमें जीने और अपनी सत्ता रखनेका भाव उपजेगा। नयी पीढ़ीको यह अनुभव नहीं है और इसीलिए पुरानी पीढ़ीको उलटे जमाये और जगाये रखनेका काम उनसे हो रहा है।

त्यागी : फिर तो मैं समझता हूँ, नयी पीढ़ीकी यह अनुभवहीनता और दोनों पीढ़ियोंके बीच तनावकी स्थिति उत्पादक ही है।

जैनेन्द्र : संघर्ष और तनाव क़ायम रखा जाता है तो इसमें आदमीका कितना भी नुक़सान होता हो, साहित्यका भला ही होता है।

त्यागी : आदमीका नुक़सान भी बहरहाल नुक़सान है। और आपके हिसाबसे तो अन्ततः व्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण है, तो क्या इस तनावकी स्थितिका कोई निराकरण नहीं है ?

जैनेन्द्र : तनावकी स्थितिका निराकरण चाहा ही क्यों जाता है ? उससे कष्ट होता है, उससे गम्भीर प्रेरणा रुकती है, मनोंमें विकार आता है, वह सब तो है। लेकिन दूसरी ओर उत्साह भी जागता है, कर्ममें प्रखरता आती है, जीवनमें वेग बढ़ता है।

तनावमें अवश्य ही दो सिरे होते हैं। क्या यह इष्ट है कि एक सिरा दूसरेके मुक़ाबले झुके, या मन्द पड़ जाये ? जिसको झुकना (सबमिशन) कहते हैं, उसमें लगता तो है कि तनाव मिट गया। लेकिन उस पद्धतिसे जीवनमें क्षति आती है। इसलिए निराकरणका मार्ग झुक जाना नहीं। बल्कि तनाव स्वयंमें हठात् समाधानकी ओर बढ़ता है। विकासकी इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रियाका मार्क्सने अच्छा निरूपण किया है। थीसिस एण्टी-थीसिसको जनमाता और वहाँसे फिर सिंथेसिस घटित होता है। आप घबरायें नहीं, यह जो बाढ़-तूफ़ान-सा नजर आता है, बहुत सतही है। यह तो बुख़ार है, जो शरीरके दोषोंको जलानेके लिए आया है। यह स्वस्थताके उदयमें सहायक होकर चला जायेगा।

त्यागी : मेरे ख़यालमें व्यक्ति और लेखककी उम्र अलग-अलग होती है। रचनाकारके जीवनमें एक समय आता है, जब उसके व्यक्तिके रहते भी रचना-क्षमता चुक जानेके कारण रचनाकार नहीं रहता। ऐसी स्थिति आनेपर स्वयं उस रचनाकारके हितमें नहीं है कि वह लिखना बन्द कर दे ?

जैनेन्द्र : तुम्हारा प्रश्न विकट है। स्त्री पचास वर्षसे पहले अपनी सार्थकता समाप्त कर लेती कही जाती है। पुरुषके बारेमें अभी ऐसा नियम शायद कोई पाया नहीं गया। लोगोंकी पचीससे चालीस वर्षकी वयके बीच लिखी कृतियाँ सर्वोत्तम मास्टरपीस मानी गयी हैं, लेकिन गेटेका फ़ाउस्ट लगभग उस वयमें लिखा गया जिसे जरा-जीर्ण माना जायेगा। इसीसे कहा जाने लगा है

कि मानसिक आयु काल आदिसे भिन्न होती है। मरे-मुरदे मनके आपको नवयुवक तक मिल जायेंगे। उधर ७९ की आयुमें गान्धी इतने जीवन्त थे कि गोली मारकर ही उन्हें हटाया जा सका। इस बारेमें हम आयु और पीढ़ी आदि संज्ञाओंको एकदम ही निकाल दें तो अच्छा है। यह संज्ञाएँ अधिकांशत: स्वरक्षात्मक मनोदशामें काम लायी जाती हैं। अन्यथा अभी देखिए कि अपनी और आपकी वयका उल्लेख हमारे बीच अबतक अनावश्यक क्यों बना रह गया है!

त्यागी : इधर कुछ नये लेखकोंके वक्तव्य आये हैं, जिनसे लगता है कि वे लोग आलोचकसे बहुत रुष्ट हैं। पाठकके और अपने बीच वे किसी तीसरे आदमीको नहीं देखना चाहते। इस बारेमें आपकी क्या राय है—आलोचक क्या सचमुच फ़ालतू क़िस्मका प्राणी है या उसकी कोई सार्थकता है?

जैनेन्द्र : लेखक और पाठकके बीच आलोचक आता है तो उसे उस सम्बन्धकी सघनता और स्वच्छता बढ़ानेके लिए आना चाहिए। वह अपना अमुक मन्तव्य हाथमें लेकर यदि सम्बन्धको अनिष्टमें ले जाता है तो प्रशंसनीय नहीं है। लेखकको जिलाता पाठक ही है। सब शक्तिका स्रोत पाठक है। उसने जिसे मान लिया आलोचक अन्तमें उसे माननेके लिए विवश हो गया। प्रेमचन्दका शुरूमें यही हाल हुआ। उनके लिए मंगलाप्रसाद पुरस्कारकी बात उठी नहीं, उठ नहीं सकती थी। हिन्दीके बड़े-बड़े सम्मेलन होते, लेकिन प्रेमचन्दको बुलाया तक न जाता। बादमें पाठकोंके स्नेहसे विवश होकर उन्हें सम्मान मिलना शुरू हुआ तो सम्मान करनेवालोंकी जैसे होड़ लग गयी।

त्यागी : अन्तमें एक प्रश्न और—पिछले दिनों यशपालने एक इण्टरव्यूमें आपकी कहानी 'बेकार' (ज्ञानोदय : नवम्बर १९६४में प्रकाशित) के बारेमें कुछ कहा था····

जैनेन्द्र : क्या?

त्यागी : आपने 'नयी कहानियाँ' में छपा वह इण्टरव्यू नहीं पढ़ा?

जैनेन्द्र : नहीं, मैं उसे पढ़ नहीं सका।

त्यागी : ख़ैर, वह था बहुत मज़ेदार। यशपालने कहा कि अगर मैं जैनेन्द्र होता तो 'ज्ञानोदय' सम्पादकपर अपनी इतनी रद्दी कहानी छापनेके आरोपमें मुक़दमा दायर कर देता। आप इस विषयमें यशपालसे कहाँ तक सहमत हैं?

जैनेन्द्र : क़तई नहीं। प्रकाशनके लिए तो वह कहानी यहाँसे भेजी ही गयी थी।

त्यागी : कई बार ऐसा होता है कि सम्पादकीय आग्रह अथवा अन्य किसी कारणसे कोई रचना जल्दीमें लिखी जाती है और वह स्वयं लेखकके अपने ही स्तरको नहीं पहुँच पाती। कारण कुछ भी हो, क्या आप उस कहानीके स्तरसे असन्तुष्ट हैं?

जैनेन्द्र : बिलकुल नहीं। मेरी अधिकांश रचनाएँ ऐसे ही आग्रह और जल्दीमें लिखी गयी हैं। असलमें सन्तुष्ट तो मैं अपनेसे या अपनी किसी भी चीज़से नहीं हूँ।

(एफ- ९/११ माडल टाउन,
दिल्ली-९)

अप्रतिम चिन्तक-मनोषी
स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
की नवीनतम कृति

वाग्धारा

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

पच्चीस महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक निबन्धोंका संग्रह, भारतीय संस्कृतिके अध्येताओंके लिए नयी और नयी सामग्री प्रस्तुत करनेवाली एक अनिवार्य कृति

●

मूल्य ४.००

विक्रय-केन्द्र : भारतीय ज्ञानपीठ, ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

कोलाज़ कविताएँ

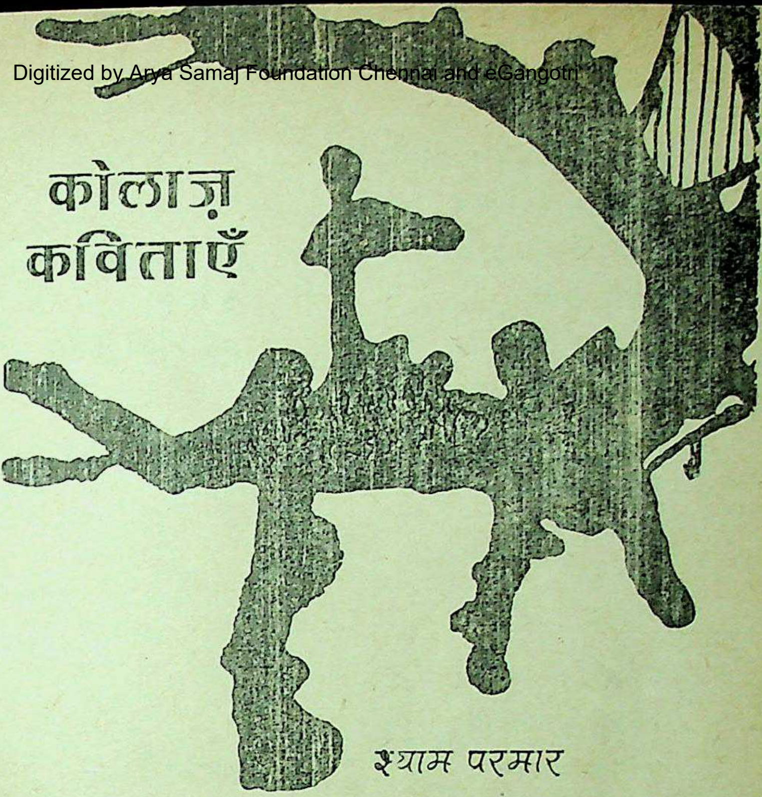

श्याम परमार

[अख़बारकी कतरनें, कटे हुए फ़ोटोग्राफ़, पोस्टरके टुकड़े, सूचीपत्रके चिन्दे या ऐसी सैकड़ों ही असम्बद्ध वस्तुओंका उपयोग चित्रविधामें अवचेतनकी अतर्क्य स्थितियोंको व्यक्त करता है। चित्रकलाकी यह शैली—'कोलाज़'-अब हमारे स्वभावमें आती जा रही है। भीतरका बिखराव कवितामें खण्डित-बिम्ब और अतलातल ध्वनि-आरोपोंको प्रश्रय देता है। मुक्तिबोधकी तरह काव्दमें औपन्यासिक क्षमताकी क्रम-संवर्धना आज सम्भव नहीं, क्योंकि उस स्थितिमें सुसम्बद्ध और तर्क-सम्मत सर्जना होगी। गत्यात्मक सापेक्षमें हम प्रायः कई चीजें, कई विचारांश, कई चर्चाएँ, कई संगतियाँ, कई विद्रूप एक साथ देखते—अनुभव करते हैं : कई टूटी अधटूटी विडम्बनाओंका अक्स उतारते रहते हैं। बिम्ब एक-दूसरेके क़रीब विसंगतियोंमें आते हैं। शब्द कुछ कहते हैं और अपनी सत्तासे परे अर्थेतर या अर्थ-विहित अवचेतनकी प्रतीति कराते हैं।

कविताकी प्रक्रिया आज तालच्युत, निर्वासित मानसके 'कोलाज़'—वृत्तमें आती जा रही है : अधूरे वाक्योंकी कतरनें, औद्धत्य ऊलजलूलियत और खण्डित 'फण्टेसी'-का अपूर्णत्व ही उसका वास्तव्य है। ऐसी रचनाएँ कविताके स्वीकृत मूल्यों और प्रांशु-प्रक्रियासे भिन्न होती हैं। उनमें प्रकटेतर कई 'ओह्वरटोन' सम्भव होते हैं। इस सन्दर्भमें प्रस्तुत 'कोलाज' रचनाएँ मेरी दृष्टिमें अकविताके निस्संग परिवृत्तसे अलग नहीं हैं।]

• अन्त्या

मुक्केबाज़ समय के हाथों
मेरे अहम् की फ़िल्म
जलती है   सूरज की नकेल में
बेहोश धरती   इथर में
ख़ौफ़नाक जिन्न   हरी आँखों में क़ैद
आदम के बेटे किताबें नोचते
मिज़ाइल   बड़े ख़ूनी   बदहवास
काले समुद्र में
गिरते हैं
जत्थे

हज़ार-हज़ार मुट्ठियाँ
शिखरों के थनों से
खींचती रसायन   सोखती हैं
नदियाँ पत्थर को कराड़ें
लपटों के झण्ड पी जाते
जंगल

रातों की काई ओठों पर सड़ती
बाँहों में जड़े हुए दाँतों की क्रमिक निगाह
देखती   गुँथे हुए बादल
पाता हूँ   अपना ही कबन्ध
बातोंसे कटा हुआ   मित्रों की गाँठों से
बँधी हुई सड़कें नारों से झन्नातीं
मिथकों के कपालों को   मातंगी छेनियाँ
बार-बार फोड़तीं

इतनी गरमी है नस-नस में
पिघल-निकल आता हूँ   अपने से बाहर

मगर बाहर का दरवाज़ा   खुलता है

भीतर, भीतर-ही-भीतर

• दंश

डूबता उजेला   मकानों की कनपटियों पर
फट पड़ता   छत पर
खड़ी औरत को देख   सीटी बजाता
निकल जाता :

ख़यालों की कतरन को
कीलों से कुरेदते कई नाम

लम्पट शताब्दी की   मरी हुई मकड़ी
फूँक से किताबों पर   तेज़ी से चलती
अख़बारों के पन्नों में   संचित करते
          तिलचट्टे ज्ञान
सुन्न पड़े हाथों पर   मक्खियाँ बहुत
          चमड़े को चरतीं

हज़ार-हज़ार आँखों में   ख़ूनी बिजली
          बिन बोले भभकती
एक बड़े चेहरे को   ढँकता हुआ
          पोस्टर
मेरी छाती पर   सिकुड़ता

(६।१३, पूर्वी पटेल नगर,
नयी दिल्ली)

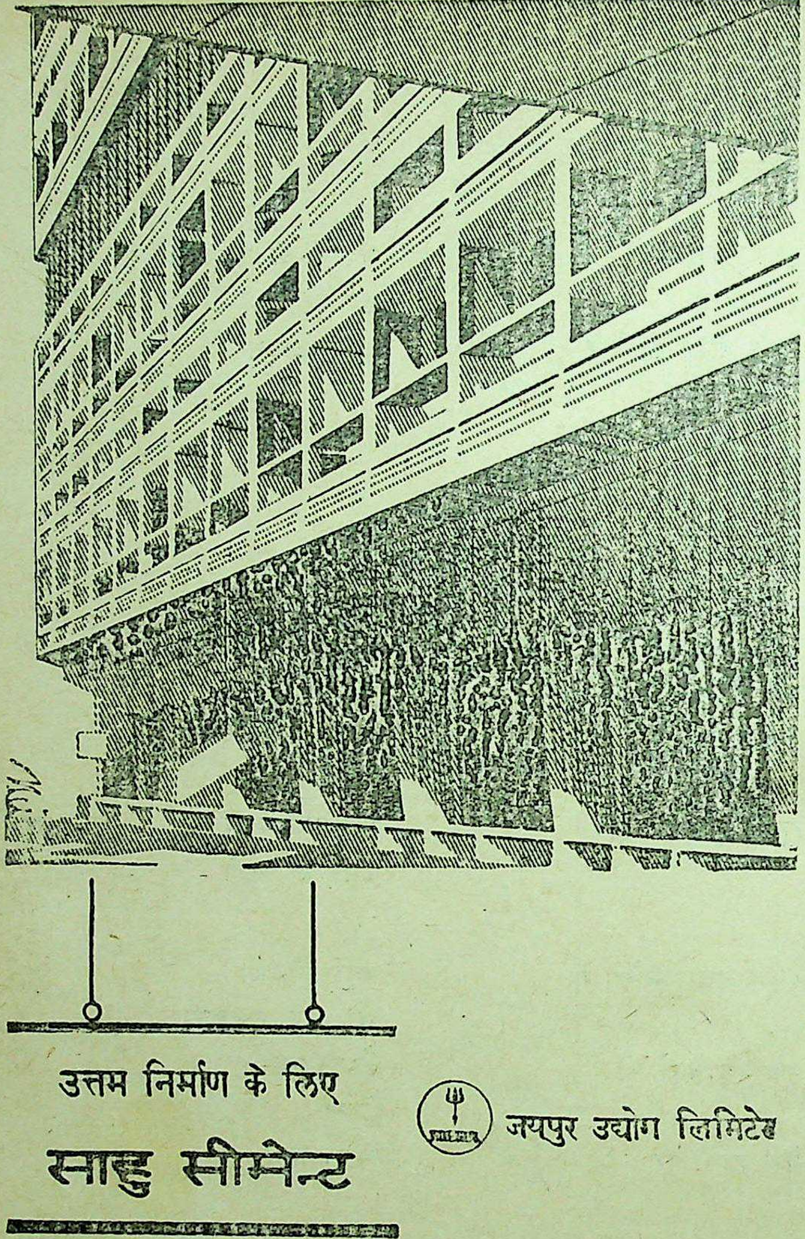

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

अमरीकी नयी कहानी

मियामीका टिकिट और एक असाधारण लड़की

जिल डेब्लिन

'कैम्पबेल बुकस्टोर'में मैंने ठण्डके दिनोंमें काम शुरू किया था। किताबें नीचे बिकती थीं, लेकिन काम मिला था पहली मंज़िलपर। मुझे ग्राहकोंके उधार-खातोंकी जाँच-पड़ताल करनी होती थी और चूँकि यह काम बहुत ऊबानेवाला और शाबाशी-विहीन होता है, ज्यों ही हमारी व्यवस्थापिका मिस टीसडेल कमरेसे बाहर जाती, हम लड़कियाँ कानाफूसीके चुराये हुए क्षणोंका आनन्द लेने लगतीं।

इरिस दूसरी लड़कियोंकी तुलनामें कुछ ज्यादा ही खुली तबीयतकी थी। उसकी छोटी-छोटी आँखें मेरी आँखोंमें बिलकुल सीधे घूरा करतीं। बातचीत करते समय उसका चेहरा इतना नज़दीक आ जाता कि मुझे पीछेकी तरफ़ झुकना पड़ता, ताकि उसे ठीकसे देख तो सकूँ। धूपके अभावमें उसका सारा शरीर कुछ पीला पड़ गया था। यों, थी तो वह छब्बीस ही सालकी, लेकिन बोलते समय—सामान्य वार्त्तालापके समय भी—उसका मुँह कुछ इस तरह बिदकता कि वह छब्बीससे काफ़ी ज़्यादाकी लगने लगती। इसके अलावा, 'कैम्पबेल'में वह पिछले पाँच सालोंसे काम कर रही थी। यहाँ धूप व प्राकृतिक रोशनीका जो तीखा अभाव था, उसे देखते हुए इन पाँच सालोंमें इरिसकी उम्र यदि दसेक साल ज़्यादा हो गयी थी तो अस्वाभाविक कुछ नहीं था।

नीचेके विभागसे पूछताछके लिए स्थानीय

फ़ोन लगा हुआ था । ज्यों ही घण्टी बजती, हम दोनोंमें-से कोई एक उठती और फ़ाइल-लदे रैकोंके बीचसे गुज़रती हुई आगे बढ़ती । किसी ग्राहकके बारेमें जो सूचना माँगी जाती, उसे प्राप्त करके फ़ोनपर बतानेसे पहले मुझे 'इण्डेक्स कार्ड्स'को जल्दी-जल्दी पलटना पड़ता, लेकिन इरिसके साथ ऐसा नहीं था । उसे ग्राहकोंके बारेमें सभी-कुछ मुँहज़बानी याद रहता । फ़ोनपर आते ही वह कर्कश आवाज़में शुरू कर देती, "मिसिस लैंटीके नाम छब्बीस डॉलर उधार हैं । यह उधारी अगस्तसे नहीं पटी है, लेकिन, हैलो ? वह हमारे अच्छे ग्राहकोंमें-से हैं ।" अन्तिम वाक्य कहते समय वह आवाज़की कठोरता काफ़ी कम कर लेती । वास्तवमें इरिसने उन लोगोंके नाम, पते इत्यादि कण्ठस्थ कर लेना अपना शौक़ ही बना लिया था जिनसे उसकी मुलाक़ात होनेकी सम्भावना नहींके बराबर थी । उसका अखबार-पाठन 'सामाजिक कार्यक्रम' विभाग तक सीमित था । मृतकोंकी सूची देखना भी वह न भूलती । यदि दूकानके ग्राहकोंमें-से किसीका नाम इस सूचीमें निकल आता, तो वह उसकी कतरन निकालकर सूचना-पटपर लगा देती ।

सूचना-पट इरिसके साम्राज्यमें था । एक बार किसी ग्राहककी मृत्यु-सूचना जाएस नामक टाइपिस्टने इरिससे पहले ही वहाँ चिपका दी । इरिसने कहा तो कुछ नहीं, लेकिन उसकी आँखोंमें क्रोधका आवेश धधक उठा । वैसी धधक मैंने पहली ही बार देखी थी । उस दिन मिस टीसडेलसे उसका झगड़ा होते-होते बचा । जहाँतक ग्राहकोंके बारेमें जानकारीका प्रश्न था, सचमुच इरिसको मिस टीसडेलसे ज़्यादा ही मालूम होता था । कैसी विडम्बना थी कि इसके बावजूद इरिस इस दूकानकी व्यवस्थापिका नहीं बन सकती थी ।

इरिस चाहे कितनी ही ईमानदारीसे क्यों न मुसकरा रही हो, देखनेवालेको यही लगता कि यह नक़ली मुसकान है । मुसकान न जाने क्यों उसके चेहरेकी मांसपेशियोंको आहत-सी करने लगती । भले ही वह हमारे साथ अच्छी तरह उठती-बैठती थी, लेकिन दो लड़कियोंकी बातचीतमें वह तीसरी बनकर कभी शामिल न होती और न ही किसी मज़ाक़के समय सबके साथ ठहाका लगाती ।

एक दिन मैंने देखा कि वह स्कूलकी विद्यार्थिनियों-जैसा स्कर्ट व ब्लाउज़ पहनकर आयी है और अजीब-सी लग रही है । अगले दिन वह साटिनकी पोशाकमें थी । कपड़ोंका चुनाव करते समय उसे पता नहीं क्या हो जाता था कि कोई भी पोशाक उसपर फबती ही नहीं थी । कभी कहीं दाग़ लगा होता, कभी कोई बटन ग़ायब ! एक बार मैंने जाएससे इसकी चर्चा की । जाएस हँसकर बोली, "यही तो होगा ! जो सस्ती दूकानोंमें ख़रीदारी करेगी, वह यही सब तो पायेगी ! ये वे कपड़े हैं, जो उसने पुरस्कारमें नहीं जीते हैं, ख़रीदे हैं ।"

"पुरस्कार ?"

"अरे ! तुम्हें नहीं मालूम ? इरिस अपने अधिकांश कपड़े 'बूझो तो जानें !' वग़ैरह कार्यक्रमोंमें भाग लेकर जीतती है ।"

◆

मैंने सोचा था कि इरिस इस अजीब शौक़की बड़े ज़ोर-शोरसे वकालत करेगी, लेकिन उसने तो अपने शौक़को अजीब-सा ही न मानते हुए, उसपर गर्व लेते हुए, आँखोंमें अनोखी चमक भरकर कहा, “मैं एक-एक कार्यक्रममें जाती हूँ।” उसका स्वर घोषणाका था।

“एक-एक कार्यक्रम ?” मैंने पूछा, “लेकिन दिनके समय तो तुम यहाँ, दूकानपर, होती हो।”

मानो कोई गुप्त सूचना दे रही हो, इस तरह उसने कहा, “जब मैं छुट्टियोंपर होती हूँ तब दिनके कार्यक्रम भी नहीं रहने देती, लेकिन असलमें शामके कार्यक्रम ही देखनेके लायक़ होते हैं। विशेषकर ‘जैकपाट’, जो टेलिवीज़नपर भी दिखाया जाता है। इससे पहले ये कार्यक्रम टेलिवीज़न तक नहीं पहुँचते थे, चाहे वे कितने ही अच्छे क्यों न हों, लेकिन अब पहुँचने लगे हैं। पहले सिर्फ़ रेडियोवाले इन्हें लेते थे, लेकिन अब दिन बदल गये हैं। पहले कहाँ तो आपकी सिर्फ़ आवाज़ सुनाई पड़ती थी और कहाँ अब टेलिवीज़नके परदेपर आप दिखाई भी पड़ सकती हैं—बशर्ते कार्यक्रमवाले आपको मंचपर बुलायें।”

“तुम कभी बुलायी गयी हो ?”

“‘जैकपाट’वालोंने तो नहीं बुलाया, लेकिन बिल मुलेन्स मुझे अच्छी तरह पहचानता है। वह ‘जैकपाट’का कार्यक्रम-प्रस्तोता है। मैं हर सप्ताह जाती हूँ और कभी-न-कभी वह मुझे अवश्य बुलायेगा। मेरी-जैसी दीवानी प्रशंसिका उसे और कहाँ मिलेगी !”

“केवल ‘जैकपाट’ ही क्यों !” मैंने कुरेदकर पूछा, “दूसरे भी तो कई कार्यक्रम हैं। मसलन···‘पहेली बुझाओ’ या ‘बूझो तो जानें’ कार्यक्रम····”

इरिसकी निगाह फ़ाइलोंके रैकोंपर-से होती हुई खिड़कीसे बाहर चली गयी—“हाँ···इन सभी कार्यक्रमोंमें पुरस्कार दिये जाते हैं। जैसे, एक है—‘द बिग क्वेश्चन’। जो सही जवाब दे देता है, उसे मियामीकी सैर करायी जाती है।”

“तुम मियामी जाना चाहती हो ?”

इरिसने इसका कोई जवाब न दिया। उसी समय टेलिफ़ोनकी घण्टी बजी। रिसीवर उठानेकी बारी मेरी थी, किन्तु रिसीवर इरिसने उठाया और माँगी गयी जानकारी ढूँढ़नेके बहाने चली गयी।

◆

बादके कुछ सप्ताहोंमें मैंने देखा कि इरिस और अधिक बातूनी हो गयी है। वह मुझे बार-बार बताया करती कि कौन-कौन-से कार्यक्रम ज़ोरदार रहे और कहाँ-कहाँ उसने क्या-क्या पुरस्कार जीते। एक फ़ाउण्टेनपेन, एक लाइटर और एक कलाई-घड़ीकी मुझे कुछ ऐसी मजबूरीमें तारीफ़ करनी पड़ी, मानो उन चीज़ोंका निर्माण स्वयं इरिसने ही किया हो। तारीफ़ करनेमें अगर मैं ज़रा भी पीछे रह जाती, तो वह गर्वसे कहती कि ये चीज़ें तो दो-चार ही हैं, मैं और भी अनेक पुरस्कार जीत चुकी हूँ। इरिसकी इस ‘लूट’

का अधिकांश ब्रूकलीनके उसके 'सजे-धजे' कमरेमें सुरक्षित था और इससे पहले कि मैं इनकार करनेकी योजना बना पाती, इरिस उस कमरेको देखनेका हार्दिक आमन्त्रण दे चुकी थी। यह कार्यक्रम सिर्फ़ मंगलवार या शुक्रवारकी शामको बनाया जा सकता था, क्योंकि अन्य शामोंको वह अपने शो देखने जाती थी। आमन्त्रण नम्बर एकको तो मैं किसी तरह टाल गयी, लेकिन इरिस बराबर मेरे पीछे पड़ी रही। उसके अनुसार, 'कैम्पबेल'में मैं ही उसकी सर्वश्रेष्ठ दोस्त थी। इरिसने बाक़ायदा स्वीकार किया था कि मेरे अलावा उसके सिर्फ़ दो विश्वसनीय दोस्त

● लड़के इनायत

अँगरेज़ोंका राज्य भारतमें जम रहा था। राजस्थानकी रियासतोंसे सन्धि हुए भी ज़्यादा समय नहीं हुआ था। अगरेज़ सरकार और रियासतोंके बीचमें कई प्रश्नोंका तय होना अभी बाक़ी ही था। मुग़लोंके अदब-क़ायदोंमें सदियोंसे रहे हुए रईस, बड़ी-बड़ी राजनैतिक बातोंका ध्यान न देकर, अपनी इज़्ज़त और बैठकके प्रश्नोंपर ज़ोर दे रहे थे। रईसोंने तलवारोंको तो अपनी म्यानमें डाल दिया था और अगरेज़ोंके साथ काग़ज़ी लड़ाइयाँ लड़ रहे थे। इन्हीं बातोंमें राजस्थानके रईसोंकी राजनीति बस रही थी।

एक बारका ज़िक्र है, इन्हीं बातोंको लेकर अँगरेज़ सरकार, जोधपुर महाराजा तखतसिंहजीपर भिड़ गयी। अँगरेज़ सरकारने एक ख़रीता भेजा, उसमें लिखा, "आप फ़िज़ूलकी तकरीरें करते हैं, बार-बार परेशान करते हैं कि हमारी यह इज़्ज़त हो, वह इज़्ज़त हो। आज तो आप लोग हरेक बातपर अपनी इज़्ज़तकी बात उठाते हैं, पर जब मुग़ल बादशाहोंका राज्य था, आप उनको अपनी बेटियाँ देते थे, तब आपकी इज़्ज़त कहाँ गयी थी?"

तखतसिंहजीने उत्तर दिया, "साहब बहादुर ठीक फ़रमाते हैं। हमने बेशक बेटियाँ दीं, हमने तख़्तको बेटियाँ दी थीं। आज भी देनेमें हमें कोई एतराज़ नहीं। इस वक़्त हमारे तख़्तपर महारानी विक्टोरिया बैठी हैं, वही राजा हैं। हम शादी करनेको राजी हैं। अगर मुझे हुक्म हो तो, जैसा मैं हूँ, हाज़िर हूँ, नहीं तो, मोतीके दाने-जैसे मेरे लड़के हाज़िर हैं। मलका महाराणी जिसे पसन्द करें। ख़ुशीसे उसकी शादी कर दूँ।"

पत्रके जवाबको देखकर गवर्नर जनरल खिसिया गये।

● जागीर इनायत

मेड़तिया राठौड़ रघुनाथसिंह अपने पितासे नाराज़ होकर दिल्ली चले गये। वहाँ एक नवाबके यहाँ जा नौकरी कर ली। उन दिनों जिसके हाथमें तलवार और रानके नीचे घोड़ा होता वह जहाँ भी जाता उसकी पूछ हो जाती। बादशाह शाहजहाँका उन्हीं दिनों सिक्खोंके साथ युद्ध हुआ। वह नवाब भी शाहजहाँकी फ़ौजमें था। अतः नवाबके

साथ रघुनाथसिंह भी युद्धमें शामिल हुआ। चार लाख सिक्खोंकी फ़ौजने ज़ोरसे हमला किया। शाही फ़ौजके पाँव उखड़ गये। फ़ौज पीछे फिरी। शाहजहाँका हाथी भी पीछे लौट पड़ा। रघुनाथसिंहने देखा, बादशाह पीछे फिर गये और सेनाके पाँव उखड़ गये तो उसे बड़ा क्रोध आया। बादशाहके भागते हुए हाथीके पीछे घोड़ा दौड़ाकर हाथीके सिरपर दो-चार चाबुक दे मारे। गुस्सेमें गालियाँ देते हुए रघुनाथसिंह बोला, "अरे बादशाह, तू कहाँ भागा जा रहा है ?"

शाहजहाँने सुना तो उसे होश आया। जाती हुई सेनाको सँभाला और पलटकर सिक्खोंपर हमला बोल दिया। बादशाहकी जीत हुई और सिक्ख हारे। दूसरे दिन बादशाहने इच्छा ज़ाहिर की, "उस व्यक्तिको देखना चाहता हूँ जिसने ऐसे नाज़ुक समयमें खरी-खरी बातें सुनायीं। उसके शब्दोंने मुझे सँभाला।" अब उस आदमीकी तलाश की जाये। पता नहीं यह कौन था, कहाँका था, कैसे पता लगाया जाये ? बादशाहने कहा, यदि वह मेरी आँखोंके आगे एक बार आ जाये तो मैं लाख आदमियोंमें भी उसे पहचान सकता हूँ।

आज्ञा दी गयी जितने आदमी इस युद्धमें शामिल हुए थे, बच्चा-बच्चा बादशाहके सामने पेश हो। एक भी बाक़ी न रहने पाये। बादशाह क़िलेके झरोखेमें बैठ गया। एक-एक आदमी आता, सलाम करता, झरोखेके नीचेसे निकल जाता। आर्थिक स्थितिसे मारा हुआ रघुनाथसिंह भी सिरपर दौवड़का फेंटा बाँधे निकला। बादशाहने उसे फ़ौरन पहचान लिया। "इसे हाज़िर किया जाये।" रघुनाथसिंह हाज़िर हुआ। बादशाहने पूछा, "तुमने हाथीके मायेपर चाबुक मारा था ? वे गालियाँ ज्योंकी त्यों फिरसे तुम्हारे मुँहसे सुनना चाहता हूँ।"

"ग़रीबपरवर, वह वक़्त ही ऐसा था, ख़ता माफ़ की जाये।"

बादशाहने ज़ोर देकर हुक्म दिया, "नहीं, उन गालियोंको मैं फिर सुनना चाहता हूँ, जिन्होंने मुझे फ़तह दी। डरो मत, वैसे ही बोलो।"

आज्ञाके अनुसार रघुनाथसिंहने शाहजहाँ बादशाहको ललकारते हुए वे ही गालियाँ दे दीं। बादशाहने निःशंकतासे की हुई इस सेवापर प्रसन्न हो रघुनाथसिंहको ११२ गाँवोंसे मारौठकी जागीर इनायत की।

—लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत

हैं—रेडियो व टेलिवीज़न।

"जानती हो?" उसने बताया, "पिछले सप्ताह एर्नी वैलैकने रेडियोपर मेरा पत्र पढ़ा था। मैंने उससे 'काश, प्रिये, यह वसन्त होता !' वाला रिकार्ड बजानेके लिए कहा था—उसने बजाया भी ··· लेकिन मैं जानती हूँ कि एर्नी बार-बार सिर्फ़ मेरी ही फ़रमाइशें पूरी नहीं कर सकता। इसीलिए मैं ग़लत नामोंसे भी फ़रमाइशें भेजती हूँ। 'नीली रातका संगीत' मैंने इसी तरह बजवाया था। वास्तवमें वह किसी अन्य लड़कीका नहीं, मेरा ही जन्म-दिन था और बेचारे एर्नीको इसकी कोई जान-

कारी नहीं थी । मैं पलंगमें लेटी हुई थी और ज्यों ही वह गाना आया, मैंने रोशनी बुझा दी···सच कहती हूँ, यही लगा कि एर्नी और मैं अपने कमरेमें बिलकुल अकेले हैं···"

एर्नीके घर जाना मुझे वक़्तकी बरबादी करना ही लग रहा था, लेकिन वह मानती तब तो ! एक शुक्रवारकी शाम, दूकानसे छूटनेके बाद, हम दोनों साथ साथ ही उपनगरके रेलवे-स्टेशनकी ओर बढ़ीं ।

गाड़ीकी भीड़में इरिस अपना छोटा-सा चेहरा दर्पसे उठाये हुए थी—आक्रामक आत्मसम्मानके साथ । उसका स्वर भी कुछ ऊँचा व तीखा हो चला था, "दो-चार स्टेशन ही और हैं । ओह ! बड़े मौक़ेसे याद आया—घरमें खानेके लिए कुछ नहीं है । क्यों न हम 'हैन्सकाम्स' से एकाध केक ले लें ?"

गाड़ीसे उतरते ही उसने मेरी बाँह थाम ली । वह मुझे लगभग खींचकर ले जा रही थी । जिस इमारतमें उसका कमरा था, उसके गलियारेमें किसी दरवाज़ेके पीछेसे एक महिला-चेहरेने झाँककर देखा ।

"मैं हूँ, मिसिस मरकैंडी ।" इरिस मुझे अपने नज़दीक खींचती हुई बोली, "साथमें मेरी एक दोस्त भी है ।"

मिसिस मरकैंडीने कुछ न कहा और चुपचाप दरवाज़ा बन्द कर लिया । मैंने महसूस किया कि इरिसके हाथमें झीनी कँपकँपी आ गयी है । सीढ़ियाँ चढ़ते समय उसने यों ही एक ठहाका लगा दिया—कुछ इस तरह कि मुझे भी उसमें शामिल होना पड़ा । उसने अपने दरवाज़ेका ताला खोला ।

"आ जाओ ! बाहर क्यों खड़ी हो ?" इरिसने आज्ञा दी । मैंने पालन किया । एक छोटी मेज़ कोनेमें घसीटकर उसने अपना हैट रखा । केक उसने नाश्तेकी अनधुली रकाबियोंके पास रख दिया और लपककर मोरीका नल खोलते हुए कहा, 'कॉफ़ी पीओगी न ? मैं जानती हूँ, कॉफ़ी तुम्हें कितनी पसन्द है ।"

छतसे लटकते पीले बल्बकी रोशनीमें मैं उसके कमरेकी अस्त-व्यस्तता देखती रही । दो कुरसियाँ, एक आराम-कुरसी और एक धूल-सनी अध्ययनमेज़ इस तरह गड्डमड्ड पड़ी थीं, मानो कमरेकी पुताईके लिए उन्हें हटाकर ढेर लगा दिया गया हो । परदोंपर धूलकी परतें चढ़ी हुई थीं, अन्य चीज़ोंका भी यही हाल था । एक 'हॉट-प्लेट' और मोरीमें लगा नल—कुल इतना ही था उसका रसोई-घर । हाँ, इस कबाड़खानेमें एक नया रेफ़्रिजरेटर अपनी चमकके कारण अलग ही दिखाई दे रहा था । वह इरिसके सकरे पलंगके पास रखा हुआ था । मैं उसे देखती रह गयी ।

मैंने ग़ौर किया कि कमरेमें हर तरफ़ डिब्बे-ही-डिब्बे बिखरे हुए हैं । पलंगपर और पलंगके नीचे, फ़र्शपर और खिड़कियोंपर, जिधर भी निगाह जाती, कोई-न-कोई डिब्बा अवश्य दिखाई पड़ता । बैठने लायक़ किसी जगहके लिए मैंने घूमकर देखना चाहा और टेलिवीज़न सेटके साथ टकराते टकराते बची ।

इरिसने मुझे कॉफ़ी दी और इसके बाद उसके हाथ कुछ इस तरह हिलने लगे, मानो

समझमें न आ रहा हो कि इन हाथोंसे अब क्या करे। प्रायः हड़बड़ाती हुई वह टेलिवीज़न सेटके पास पहुँची और बोली, "क्यों? ख़ूबसूरत है न?"

मैं मुसकरायी। अगले ही क्षण उसकी हड़बड़ाहट दूर हो गयी और वह अपने लाक्षणिक ढंगसे जल्दी-जल्दी बोलने लगी, "यह कोई सस्ती क़िस्मका टेलिवीजन नहीं है, हाँ! इसका स्क्रीन पूरे बीस इंचका है और कैबिनेटकी महोगनी लकड़ीका भी जवाब नहीं। मैं अभीतक इसकी क़िस्तें चुका रही हूँ।" वह साँस लेनेके लिए रुकी।

"तुमने क़िस्तोंमें क्यों ख़रीदा? कार्यक्रमोंसे तुम जो धन कमाती हो, उससे नक़द भी ख़रीदा जा सकता था।"

"नक़द?" उसने कुछ इस तरह मेरी ओर देखा, मानो आघात पहुँचा हो, "कार्यक्रमोंमें नक़द नहीं दिया जाता। वहाँ तो चीज़ें मिलती हैं—चीज़ें। और मैं हमेशा कुछ-न-कुछ जीतती रहती हूँ···तुम्हें दिखाऊँ····" सबसे नज़दीकका एक डिब्बा उठाकर उसने झटपट खोला—भीतर एक गुड़िया और उसका नन्हा-सा टी-सेट था। "है न ज़ोरदार?" कहते हुए उसने दूसरा डिब्बा खोला।

प्रत्येक डिब्बेकी चीज़ दिखानेके बाद वह उसे सावधानीपूर्वक फिरसे बन्द कर देती। मैं चीज़ोंकी तारीफ़ करती रही। उसने एक नाइट-गाउनकी पर्तें खोलीं और अपने शरीरपर टिका-झुला, दायें-बायें इठलकर घूमते हुए पूछा, "कैसी लगती हूँ?"

"वाक़ई ख़ूबसूरत।" मैंने कहा, फिर पूछा, "लेकिन तुम इतनी अच्छी पोशाकोंको पहनती क्यों नहीं?"

जवाब देनेसे पहले उसने तीन जोड़े पाजामा-सूट—मरदोंके पाजामा सूट—मेरे सामने बिखेर दिये। उनपर बड़ी हसरतसे हाथ फेरते हुए उसने कहा, "मैं···इन्हें बचाकर रख रही हूँ।"

गद्देपर दोनों पैरोंको सिकोड़कर उसने पलंगके नीचेसे एक सन्दूक़ निकाला, जो चादरों, गिलाफ़ों, रुमालों, तौलियों, मेज़पोशों वग़ैरहसे ठसाठस भरा हुआ था। "देख लो। मैंने पूरी तैयारी कर रखी है या नहीं?" और उसके जिस हाथमें सन्दूक़का ढक्कन था, उसमें कँपकँपी रेंग गयी।

"तैयारी?"

वह हलकेसे मुसकरा उठी। मैंने फिर पूछा, "लेकिन ये सारी चीज़ें तुम्हें इस्तेमाल ज़रूर करनी चाहिए। पड़े-पड़े आख़िर इनकी क़ीमत क्या है? उदाहरणके लिए, इस रेफ़्रिजरेटरको ही लो। अगर तुम नियमित रूपसे इस्तेमाल करो तो सोचो, तुम्हारा कितना धन और परिश्रम बच सकता है।"

मानो चुनौती दी गयी हो, इस तरह वह मुझे घूरने लगी, फिर बोली, "फ़्रिज? तुम्हें किसने बताया कि मैं इसका इस्तेमाल नहीं करती?" उसने रेफ़्रिज़रेटरका हत्था पकड़कर झटक दिया।

फ़्रिज़के भीतर भी डिब्बे-ही-डिब्बे थे। उनके साथ गड्डमड्ड रखी हुई थीं सौन्दर्य-प्रसाधनकी चीज़ें, चीनी-मिट्टीकी मूर्तियाँ, एफ़िल-

टावरके नमूनेका एक पेपरवेट, ताशकी पूरी गड्डी, किताबें और मछली पकड़नेकी काँटियोंका एक पूरा पैकेट ।

“तुम्हें मछली मारनेका शौक़ है ?” मैंने पूछा ।

पल-दो पल वह अजीब-सी दृष्टिसे मेरी ओर देखती रही । फिर आँख मारकर उसने ठहाका लगा दिया और कहा, “मछलियोंके नहीं, मेरी दिलचस्पी तो किसी और ही तरहके शिकारमें है ।” वह हँसती रही, “लेकिन मैं दूसरी लड़कियों-जैसी नहीं हूँ । मैं ख़ाली हाथ किसीसे शादी नहीं करूँगी । मैं लगातार गृहस्थीका सामान इकट्ठा कर रही हूँ, अपनेको हर दृष्टिसे सुधार रही हूँ । ऑफ़िसका ही उदाहरण लो । फ़ाइलों-की-फ़ाइलें मुझे रटी पड़ी हैं । दूकानके किसी भी व्यक्तिसे मुझे कमसे कम दस गुना जानकारी है । जब भी मिस टीसडेल नौकरी छोड़ेंगी, उन्हें मेरी पदोन्नति करनी ही पड़ेगी । मतलब यह नहीं कि मैं ज़िन्दगी-भर इसी संस्थामें पड़ी रहूँगी । ज्यों ही मुझे ‘जैकपाट’ का इनाम मिलेगा, मैं चली जाऊँगी—देख लेना ।” धाराप्रवाह भाषण उसी तरह जारी रखते हुए उसने टेलिवीज़नका स्विच आन कर दिया, “कार्यक्रमोंका समय हो गया है । तुम भी देखनेके लिए उत्सुक होगी ही ।”

■

अगले मंगलवारको इरिस दूकानमें आयी तो न जाने किन विचारोंमें डूबी हुई थी । जब फ़ोन बजा तो वह इधर-उधर देखती रह गयी, रिसीवर उठाने-जैसी मामूली बात भी उसे न सूझी । मिस टीसडेलने स्वयं उसकी मेज़के सामने पहुँचकर डाँटा, ‘क्यों इरिस ? तुम्हें सोनेके लिए तनख़्वाह दी जाती है क्या ?’’

शामको घर जाते समय इरिसने बड़ी ज़ोरदार आवाज़में घोषणा की, “प्यारी लड़कियो, अगर तुम लोग मुझे टीवीपर देखना चाहती हो तो आगामी सोमवारका ‘जैकपाट’ कार्यक्रम मत चूकना ।”

जाएसकी आँखें आश्चर्यसे फैल गयीं, “क्या मतलब ? तुम टीवीपर दिखाई पड़ोगी ?”

इरिसने उसे तुच्छकारसे घूरा, “हाँ ! बिल मुलेन्सने मुझे आमन्त्रित किया है । मैं मंचपर आऊँगी और टीवीपर दिखाई दूँगी ।” उसके लम्बे चेहरेपर उस योद्धाकी मुसकान उभर आयी, जिसे बहुत पहलेसे मालूम हो कि जीत उसीके इन्तज़ारमें है ।

■

बिल मुलेन्स, जिसने बो-टाई लगायी हुई थी, गोल चेहरेका एक स्वस्थ युवक था । ज़ोरोंसे मुसकराता हुआ किसी नर्तक-जैसी स्फूर्तिके साथ वह स्टूडियोके मंचपर आया । “महिलाओ और सज्जनो, अगले ही मिनिट हम अपने दर्शक-श्रोताओंमें-से किसी जोड़ेको सामने बुलायेंगे ।” उसने घोषित किया, “लेकिन उससे पहले—याद रखिए, ‘कैलोफ़िल च्यूइंग गम’ आपकी साँसको सुगन्धित करता है···”

स्टूडियोमें मौजूद दर्शकोंमें-से एक मरद और एक औरतको चुनकर सामने बुलाया गया । उनके बाद एक और जोड़ी चुनी गयी ।

“हाँ, तो, अब आपके सामने खड़े हैं

मिस्टर प्रोवोस्ट····और इनके साथ हैं मिस इरिस हैरिस····क्यों इरिस ? तुम्हारा नाम मैंने सही लिया न ?"

ऊँची एड़ीकी जूतियोंमें इरिस ऐसी तनकर खड़ी थी, जैसे किसी राजकुमारीसे कम न हो। (क्यों नहीं ! इस वक़्त उसे कमसे कम दस लाख परिवारोंमें देखा जा रहा था !) कैमरा उसके होठोंके तनावको छिपानेमें असमर्थ था। "जी हाँ, बिलकुल सही।" उसने जल्दी-जल्दी पलकें झपकाते हुए कहा।

"हाँ, तो, इरिस, तुम्हारा व्यवसाय क्या है ?"

क्षणिक मौन और फिर कुछ ऐसी शुरूआत, मानो कोई विद्यार्थी अपने शिक्षकके सामने रटा हुआ वाक्य बोल रहा हो, "मैं 'कैम्पवेल बुक-स्टोर' में काम करती हूँ, लेकिन नीचेके विभागमें मुझसे मुलाक़ात नहीं हो सकती। मैं हमेशा पहली मंज़िलपर होती हूँ—व्यापार-विभागमें।" और वह इस तरह मुसकरायी, मानो दुनियाकी सबसे ख़ूबसूरत लड़की वही हो।

बिल मुलेन्सकी मुसकान पूर्ववत् थी, "यानी तुम हमेशा किताबोंके व्यापारमें मस्त रहती हो। है न ?"

"इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है, मिस्टर मुलेन्स ? मुद्देकी बात यह है कि मैं टीवीकी बेहद शौक़ीन हूँ और आपके शो मुझे लाजवाब लगते हैं।"

बिल मुलेन्सने अपना गला साफ़ किया, "शुक्रिया, इरिस। इन्हीं शब्दोंको सुननेके लिए हम रात-दिन एक कर देते हैं।" वह फिरसे हँसने लगा, "अब जिन सज्जनको तुम्हारा आजका साथ पानेका अवसर मिला है, उनसे परिचय कराऊँ····आप हैं मिस्टर अर्नेस्ट प्रोवोस्ट। ख़ास आजके कार्यक्रममें शामिल होनेके लिए वह अपनी खेती-बाड़ी छोड़कर यहाँ आये हैं—ट्राय, न्यूयॉर्कसे यहाँतक।"

प्रोवोस्ट बहुत असहज होकर सामने घूर रहा था। उसने ताज़ा-ताज़ा दाढ़ी बनायी थी और उसकी आँखें ज़रूरतसे ज़्यादा फैल गयी थीं। इरिस नक़ली सौहार्द्रके साथ मुसकरायी और प्रोवोस्टकी ओर देखकर बोली, "आपसे मिलकर बड़ी ख़ुशी हुई।"

"मुझे भी····" वह निरीह किसान बस इतना ही कह सका।

बिल मुलेन्स दर्शकोंकी ओर मुड़ता हुआ, किसी बहुत बड़े आयोजनके उद्घाटनकर्ताकी अदासे कह रहा था, "हाँ, तो, मिस हैरिस और मिस्टर प्रोवोस्ट, आप दोनोंसे हम एक नन्हा-सा सवाल पूछने जा रहे हैं। सही उत्तर देनेपर आप 'द बिग क्वेश्चन' में शरीक हो सकेंगे और···'द बिग क्वेश्चन' में भी सफलता मिल जानेपर····जैसा कि आप जानते ही हैं", बिल मुलेन्सने नाटकीयताके साथ अपनी साँस रोक ली, "आपको दो सप्ताहों तक मियामीकी सैर करायी जायेगी—बिलकुल मुफ़्त !" वह रुका ताकि 'कैलोफ़िल च्यूइंग गम' के गुणोंको दोहराया जा सके, फिर कहा, "सवाल भेजा है मिनोला, लांग आइलैंण्डकी मिसिस इडा हैम्पवर्थने। वह जानना चाहती हैं कि अमरीकाके प्रथम तीन राष्ट्रपतियोंके नाम क्या हैं।"

मौन—और फिर मिस्टर प्रोवोस्टने ध्वनि-विस्तारकमें कहा, "जार्ज वाशिंग्टन····"

"हाँ, हाँ, ठीक, आगे चलिए····"

परन्तु वह किसान आगे नहीं जानता था। इरिस अधैर्यसे मानो उबली जा रही थी। सवाल उस तक पहुँचता, इससे पहले ही वह बोल उठी, "जान एडम्स और थामस जेफ़र्सन।"

दर्शक-श्रोताओं-द्वारा गूँजती हुई प्रशंसा-ध्वनि। बिल मुलेन्सने इस तरह गहरी साँस ली, मानो किसी गम्भीर परेशानीसे छुटकारा मिला हो, फिर मुसकराकर इरिसकी पीठ थपथपायी, "खूब! खूब!"

स्टूडियो-मंचका वह दृश्य डूबने लगा। टीवीके व्यापार-विभागका संगीत गूँज उठा और पूरे परदेपर च्यूइंग-गमकी एक बहुत बड़ी कारटून-छड़ी विस्तारित हो गयी। जब स्टूडियो-मंच फिरसे दृष्टिगोचर हुआ, बिल मुलेन्स अपनी बो-टाईको व्यवस्थित करता हुआ दर्शकोंको समझा रहा था, "जिन जोड़ोंको इस पहली परीक्षामें सफलता मिली है, उन्हें सामनेके उस कमरेमें ससम्मान बिठाया गया है। मेरा संकेत मिलते ही उन्हें यहाँ लाया जायेगा—हर बार एक-एक जोड़ा। उन्हें तीस सेकेण्ड' समय दिया जायेगा—आजके 'जैकपाट-प्रश्न'-का उत्तर देनेके लिए।"

उसने एक काली तख्तीपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा—कौन-सी झील संसारमें सबसे ज्यादा ऊँचाईपर स्थित है?

घण्टी बजी और प्रथम दो व्यक्ति स्टूडियो-के शोरके बीच मंचपर आये। उनसे जवाब देते न बना। क्षमा-याचनाके साथ उन्हें मंच-पर-से हटा दिया गया। एकके बाद एक कई जोड़े आये, लेकिन उत्तर किसीको नहीं मालूम था।

इरिस और मिस्टर प्रोवोस्टके अलावा सभी जोड़ोंको मंचपर बुला लिया गया था। जब इरिस सामने आयी, वह कुछ-कुछ काँप रही थी। उसका हैट तिरछा हो गया था और इसका निश्चय ही उसे पता नहीं था। उसकी फैल आयी-आँखें बिल मुलेन्सके मुसकराते चेहरेपर उत्तेजक आशाके साथ टिकी हुई थीं। बिल मुलेन्सने आशंकित लेकिन कुछ ढूँढ़ती हुई निगाह उन दोनोंपर डाली, फिर उस सवालको ऊँचे स्वरमें दोहरा दिया।

प्रोवोस्ट बिलकुल सीधे देख रहा था और उसका मुँह बेवक़ूफ़ाना ढंगसे ज़रा खुल गया था। प्रोवोस्टका अज्ञान मानो छूतकी बीमारीकी तरह स्वयंको भी लग सकता हो, इस भयके साथ इरिस उसके बग़लमें कुछ इस तरह खड़ी थी, मानो उसे लक़वा हो गया गया हो। बटन-जैसी गोल फैल गयी उसकी आँखें चमक रही थीं। क्या वह उस सवालको ठीकसे सुन भी पायी थी? बिल मुलेन्सका स्वर मुलायम हो चला था, "सोचो···सोचो इरिस···सबसे ऊँची झील संयुक्त राष्ट्रमें नहीं है। उसका नाम है—हाँ, हाँ, बताओ? बताओ भला?'

बिलकी आवाज़ने उसकी तन्द्रा भंग कर दी। 'वह झील है—' इरिसने स्वयंकी थरथराती आवाज़ सुनी, 'टिटीकाका!'

बिल मुलेन्स दोनों हाथ उठाकर उछल

पड़ा। ख़ुशीके मारे उसकी मुट्ठियाँ भिंच गयीं। दर्शक-श्रोताओंने कानोंको बहरा कर देनेवाला शोर उछाल दिया।

इरिस अविश्वाससे मुसकरा रही थी और बिल मुलेन्स ज़ोरोंसे बधाइयाँ देता हुआ उसका हाथ हिला रहा था····

◆

इरिस आधा घण्टा देरसे कामपर आयी। हम सब बड़ी बेताबीसे उसका इन्तज़ार कर रही थीं। पहली बार हमें लगा था कि एक बहुत ही असाधारण लड़की हमारे बीच काम करती है। इस अनोखी सफलताके बारेमें हमने अनेकानेक सवाल तैयार कर रखे थे, लेकिन इरिसने प्रवेश किया, तब उसका सिर झुका हुआ था। जैसा कि वह रोज़ किया करती थी, चुपचाप वह अपनी कुरसीकी ओर बढ़ गयी। रोज़की ही तरह उसके बाल व्यवस्थित नहीं थे और कोटके बटन ग़लत लगे हुए थे। यहाँतक कि उसने किसीको गुडमार्निंग भी न कहा। वह न केवल ख़ामोशीके साथ बैठी हुई थी, बल्कि छोटी-छोटी आवाज़ोंसे भी एकाएक चौंक पड़ती थी। उसकी आँखोंमें कुछ ऐसा भाव था कि अन्य लड़कियोंकी तरह मैं भी उससे कुछ पूछनेका साहस न कर सकी।

लंचके बाद जब मैं फ़ाइलिंग-कैबिनेटके पाससे लौट रही थी, उसने मेरी ओर देखकर मुसकरानेका प्रयास किया। 'क्या बात है, इरिस' मैंने सहानुभूतिसे पूछा, ''क्या···'जैकपाट-पुरस्कार' जीतनेकी उत्तेजना इतनी असहनीय होती है कि····''

उसने स्वरको प्रफुल्लित रखनेकी भरसक कोशिशके साथ कहा, ''यह तो इतना प्यारा अनुभव है कि क्या बताऊँ! मालूम है तुम्हें? मियामीमें मैं जो कपड़े पहनूँगी, उसकी सिलाई 'काम्फ़ी शॉप्स' के यहाँ होगी।''

और फिर इरिसकी ज़बान खुल गयी। वह बहुत विस्तारके साथ बताती रही कि किस तरह दर्शक दौड़कर मंचपर आ गये और उससे हाथ मिलाने लगे और किस तरह एक व्यक्ति तो उसके हस्ताक्षर ही लेनेके लिए उतावला हो उठा····

''काश! यहाँकी सारी लड़कियाँ स्टूडियोमें होतीं!'' उसने कहा, ''शोके समय तो मैं कुछ नरवस हो गयी थी, लेकिन उसके बाद—जवाब दे चुकनेके बाद—तुम लोग देखतीं मुझे! पहचान ही न पातीं! और····जानती हो, बिलने क्या कहा था?'' इरिस साँस लेनेके लिए रुकी, ''अगर उसकी पत्नी और तीन बच्चे न होते तो वह स्वयं ही मुझे मियामी ले चलनेके लिए तैयार था!'' इरिस हँसी, ''वाक़ई। उसने यही कहा····ख़ैर····'' उसने इतनी ज़ोरका ठहाका लगाया कि दूर बैठी एक टाइपिस्ट पीछे घूमकर देखने लगी। उसकी उँगलियाँ रुक गयी थीं।

इरिसका बातूनीपन जितना एकाएक सामने आया था, उतना ही एकाएक लुप्त भी हो गया।

''तो? मियामी कब जा रही हो? कोई तारीख़ तय हुई?'' मैंने ज़ोर देकर पूछा, लेकिन इरिसने उत्तर न दिया। जब मैंने फिर दोहराया तो उसने कुछ इस तरह मुझे घूरा, मानो कोई जान-पहचान ही न हो। विचारों-

के धागोंको समेटनेकी असफल चेष्टाके साथ अन्ततः उसने कहा, 'माई डीयर, पता नहीं, ग्राहकोंको आज क्या हो गया है! दोपहरके बाद तो कोई आया ही नहीं।''

■

अगले दिन दूकानमें प्रवेश करते ही इरिस मुझे खींचकर एक कोनेमें ले गयी और बुदबुदायी, ''मैं तुम्हें एक उपहार देना चाहती हूँ। तुम मेरी दोस्त हो—हो या नहीं? तुम्हें उपहार देनेका मुझे पूरा हक़ है। मियामीका टिकिट तुम ले लो!''

''क्या कहा? मैं?'' मैंने अपनी बाँहको छुड़ानेकी चेष्टा की, जिसे वह बुरी तरह भींचे हुए थी। उसने मुझे न छूटने दिया, बल्कि ज़रा और खींचकर कहा, ''हाँ, तुम! और इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? टिकिट जिन दिनोंका है, उन दिनों मैं शहरसे बाहर जा नहीं सकती। हैं कुछ कारण। तुम चली जाओ। तुम्हें जाना होगा।'' इरिसके होंठ काँप रहे थे।

''लेकिन इरिस, यह कैसे हो सकता है? टिकिट तुम्हारा है?—कितने लम्बे इन्तज़ारके बाद मिला है वह! तुमने उसे जीता है, इरिस! उसपर सिर्फ़ तुम्हारा हक़ है।''

'ओह! नहीं!'' वह उसी तरह आग्रह करती हुई पलकें झपकाती रही, ''अगर मैं जा सकती तो क्यों न चली जाती? परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी हैं कि····मार्च लग चुका है और इसके बीतते ही टिकिटकी मियाद भी पूरी हो जायेगी। भला इतने कम समयका नोटिस देकर मुझे छुट्टी कैसे मिल सकती है? तुम जानते हो ही, इस दूकानका काम मेरे बिना चल नहीं सकता।''

''देखो, इरिस, बच्चों-जैसी बातें मत करो और····''

''लेकिन डार्लिंग। वहाँ तुम्हें बड़ा मज़ा आयेगा। बीच-कैबाना और सर्फ़-राइडिंग···· ढेर सारे आकर्षक युवकोंका साथ····ऐसी खुशनुमा छुट्टियाँ तुमने कभी न बितायी होंगी।'' कहनेको तो वह उत्साहित स्वरमें कह रही थी, लेकिन मैंने देखा कि उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये हैं। वह एक तरहसे मेरी बाँहका सहारा लेकर ही खड़ी थी।

'आय एम सारी, इरिस, मैं नहीं जा सकती। छुट्टियोंमें मेरे अपने ही कुछ कार्यक्रम हैं।''

वह अविश्वाससे मेरी ओर ताकती रह गयी, ''लेकिन····मियामी····''

उसी समय फ़ोन बजा और मैं अपना हाथ छुड़ाकर इरिसके सामनेसे भाग गयी।

उस दिनसे इरिसका मेरे प्रति व्यवहार बदल गया। खाली समयमें वह हमेशा मुझसे दूर रहकर, किसी और ही लड़कीसे बातें करती रहती। उसका स्वर और ज़्यादा तीखा हो गया था। पहलेसे भी ज़्यादा तनकर खड़ी होने लगी थी वह। नक़ली हँसी उसके वाक्योंको तोड़ दिया करती। न हँस रही होती, तब भी उसके वाक्य टूटते—मानो बातचीतके समय जगह-जगह विराम-अर्द्धविराम लगानेकी उसे आदत पड़ गयी हो।

''माजरा क्या है?'' मैंने जाएससे पूछा, ''इरिस एकाएक नयी लड़कियोंके साथ क्यों

रहने लगी है ?''

जाएसके होठोंपर असहज मुसकान उभरी, ''विचित्र लड़की है ! कहाँ तो पहले मियामी-के सपने देखा करती थी और कहाँ अब जाना ही नहीं चाहती ! उसने यहाँकी एक-एक लड़कीसे आग्रह किया है कि उसके बदले वह चली जाये, लेकिन सभीके अपने-अपने कार्यक्रम पहलेसे बने हुए हैं। जैसे, मैं स्टीवके साथ जाऊँगी और····

''क्या वह अपने टिकिटको नक़द नहीं भुना सकती ?'' मैंने जानना चाहा।

जाएसने कन्धे हिलाये, ''यह विज्ञापन-युग है। उन्होंने टीवीपर उस होटलका नाम विज्ञापित किया था, जहाँ इरिस रहेगी। उस दरज़ीका भी नाम घोषित किया था, जो इरिसको सजायेगा—इतना कुछ हो जानेके बाद अब वापस नहीं आया जा सकता। अगर इरिस नहीं जायेगी तो मौक़ेसे हाथ धोयेगी—नक़द तो कुछ भी मिलनेसे रहा।''

◆

ऐसा अवसर हाथसे निकल जाने देना बेवक़ूफ़ी ही होती। जल्दी-जल्दी मशविरा करके सारी लड़कियोंने तय किया कि आज छुट्टीके बाद 'वाश-रूम'में एकत्र हुआ जाये। वहाँ पाँच बजे मैं इरिसको ज़बरन खींच ले गयी।

''देखो, इरिस,'' जाएसने शुरू किया, ''या तो मियामी जाओ या न जानेका असली कारण बताओ। यह कहना कि समय नहीं है या छुट्टी नहीं मिल सकती—बहानेबाज़ी ही है।''

इरिसने वाश-बेसिनके कगारको ताक़तके साथ पकड़कर बचाते हुए स्वरमें कहा, ''मुझे छुट्टी नहीं मिल सकती। मेरे बिना दूकान ठप्प हो जायेगी।''

''हम खुद जाकर मिस टीसडेलसे बात करेंगी।''

विरोधमें बाँह उठाकर वह लगभग चीख उठी, ''नहीं ! तुम लोग क्यों मेरे पीछे पड़ी हो ? असलियत यह नहीं है। मैं इसलिए नहीं जाना चाहती कि एक भी कार्यक्रम छोड़ना मुझे नागवार गुज़रेगा। एक-एक कार्यक्रमकी मैंने डायरी बनायी है। उसे मैं बरबाद नहीं कर सकती····''

''खोखली दलीलोंका कोई मतलब नहीं है, इरिस ! हम लोग तुम्हारे भलेके लिए ही कह रही हैं।'' मैंने आग्रहके साथ कहा, ''ऐसे टिकिटोंकी क़ीमत ही क्या है अगर तुम उनके बहाने किसीसे····मेरा मतलब है, किसीसे मिल न सको····''एकाएक मैंने अपनेको रोक दिया, क्योंकि मैं नहीं जानती थी कि दूसरी लड़कियोंको इस बारेमें कितनी जानकारी है।

लेकिन सभी लड़कियाँ तुरन्त समझ गयीं। जाएसने चुनौतीके स्वरमें कहा, ''हाँ, इरिस, तुम्हें एक पतिकी तलाश है। ऐसी जगह तुम्हें अवश्य जाना चाहिए, जहाँ किसीसे मुलाक़ात हो सके···''

इरिस वाश-बेसिनके कगारको उसी तरह पकड़े रही, ''फिर कभी·· मैं अवश्य जाऊँगी, लेकिन फिर कभी···''

''यानी क्या तुम इस टिकिटको बरबाद ही करनेपर तुली हो ?''

"ठीक है, मैं जानती हूँ कि इसका इस्तेमाल होना चाहिए, लेकिन मैं…मैं नहीं जा सकती।"

"क्यों नहीं जा सकतीं ?"

"इसलिए कि नहीं जा सकती !"

"लेकिन आखिर क्यों ?"

इरिसने घूमकर हम सबकी ओर देखा। उसकी छोटी-छोटी मुट्ठियाँ भिंच गयीं। "आलराइट ! आलराइट !" उसने कहा, "मैं जाऊँगी ! बस ? हो गयी तसल्ली ? अब जाओ तुम लोग, चली जाओ यहाँसे ! मुझे अकेली छोड़ दो, प्लीज़…" और वह दौड़कर, भड़ाक्से दरवाज़ा खोलती हुई कमरेसे निकल गयी।

■

उसकी अनुपस्थितिमें सारा काम कैसे सँभाला जायेगा, इरिसने इसके निर्देश मुझे अनेक बार दिये—कुछ इस तरह, मानो मुझपर पूरा विश्वास करना असम्भव ही हो। केवल मुझे ही नहीं, दूकानकी सभी लड़कियोंको वह ढेर-ढेर हिदायतें दे रही थी। मिस टीसडेलके निर्देशोंकी संख्या ही इतनी बड़ी थी कि हम लोग तंग आ चुकी थीं। इस स्थितिको इरिसने ज़्यादा असहनीय बना दिया, लेकिन हम सह गयीं। उसकी रवानगीमें अब ज़्यादा समय नहीं था और हम घड़ियाँ गिन रही थीं।

हमारी सहनशीलताका इरिसपर उलटा प्रभाव पड़ा—वह तानाशाह बन बैठी। एक बार वह एस्टेलिके पीछे जाकर खड़ी हो गयी। और उसकी टाइपिंगकी भूलें निकालने लगी। एस्टेलि इतनी झुँझलायी कि बिलकुल चीख ही पड़ी, "तुम होती कौन हो बक-बक करनेवाली ?" और वह कुछ इस तरह उठी कि बेचारी इरिस चौंककर भागी। एस्टेलिने ज़ोरोंसे पीछा करके, उसे उसकी कुरसीमें बिठाकर ही दम लिया।

"इरिस ? क्यों नहीं तुम अपने ही कामसे मतलब रखतीं ?" मैंने उससे कहा, लेकिन वह धिक्कारकी दृष्टिसे मुझे घूरती रही। उसके लरजते होंठ भिंच गये थे।

"अजीब चनचक्कर है !" मैंने जाएससे कहा, "मिस टीसडेलने भी इतना परेशान न किया होगा कभी।"

तय हुआ कि आखिरी दिन हम इरिसकी पूरी उपेक्षा करेंगी और उसके मियामी विदा होनेपर एक जलसा भी मनायेंगी।

■

सफ़रकी ख़ूबसूरत पोशाक पहनकर वह दूकान आयी—एक हाथमें सूटकेस लिये हुए। हमारे बीच वह इधरसे उधर घूमती रही, लेकिन किसीने उसपर ध्यान न दिया। उसकी आँखें आकस्मिक रूपसे शरमीली हो उठी थीं—शरमीली और कुछ-कुछ शंकालु। जब फ़ोन बजा, वह रिसीवर उठानेके लिए इस तरह बढ़ी, जैसे सपनेमें हो। रिसीवर उसके हाथोंमें काँप रहा था। निश्चय ही उसकी पिछली अनेक रातें अनिद्रासे ग्रसित रही थीं, क्योंकि उसकी आँखोंके चारों ओर काले छल्ले बन गये थे।

"अभी भी मियामी जानेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है, क्योंकि, इरिस ?" मैंने पूछा।

"कौन कहता है ? मैं तो बड़े शौक़से जा

रही हूँ और देख लेना, वहाँ ऐसा 'शिकार' करूँगी कि एक नहीं, अनेक आहें भरते हुए नज़र आयेंगे।" वह हँसने लगी। उसके हैटमें लगे नक़ली चेरीमें सरसराहट हुई।

"ज़रूर! ज़रूर! मेरी शुभ-कामनाएँ।" मैंने उसे उत्साह दिलाया।

चाहकर भी हम उसकी उपेक्षा न कर पायीं। काफ़ी बातचीत होती रही। उसके कोटसे हमने फूलोंके गुच्छे झुला दिये। वह उनकी ओर अत्यन्त तटस्थतासे देखती रही—बिना किसी कौतूहल या धन्यवाद-ज्ञापनके। बारह बजे उसने हम लोगोंसे बिदा ली। तब अन्तिम मुलाक़ातवाली औपचारिकताएँ निबाही गयीं—सलाहों और प्रश्नोंके रूपमें····तुम्हें रास्तेके लिए और सिगरेटें तो नहीं चाहिए? 'चिक्लेट्स' का यह पैकेट तुम्हारी हवाई-यात्राके लिए है····और देखो, पहुँचकर खत तुरन्त लिखना····हम सबको अलग-अलग पोस्टकार्ड भेजना—होटल पहुँचते ही···

इरिस सहसा उत्तेजित हो गयी—उत्सुकतापूर्ण उत्तेजना, "ज़रूर! मैं सबको चिट्ठियाँ लिखूँगी—एक-एकको····सभी बातें विस्तारसे सूचित करूँगी····"

वह लंचका समय था। हम उसे सड़क तक छोड़नेके लिए सीढ़ियाँ उतरने लगीं। हमने उसे टैक्सीमें बिठाया। खिड़कीसे सिर निकालकर वह लगातार बातें करती रही, जबतक कि टैक्सी उसे लेकर महानगरकी भीड़में खो न गयी।

◆

एक सप्ताह बीत गया। अनबनके बावजूद हम सब उसकी वापसीका इन्तज़ार कर रही थीं। "लौटकर वह फिरसे परेशानियाँ ही खड़ी करेगी, देख लेना।" एस्टेलिने कहा।

किसीने पूछा, "क्या सचमुच उसे वहाँ कोई युवक मिल जायेगा?"

"क्यों नहीं! वहाँ हर तरहके लड़के-लड़कियाँ इकट्ठे होते हैं।" कहकर जाएसने मिस्टर प्रोवोस्टके व्यक्तित्वका स्वांग कर दिखाया—बेवक़ूफ़ों-सी आँखें, बढ़ी हुई तोंद, लटका हुआ जबड़ा····

"काफ़ी सम्भावना है, मिस्टर प्रोवोस्ट भी उसी होटलमें ठहराये गये हों, जहाँ इरिसको ठहरना है।" मैंने अनुमान लगाया।

"हाँ, लेकिन दिक़्क़तकी बात यह है कि मिस्टर प्रोवोस्टकी अभी-अभी शादी हुई है और वह अपने टिकिटका उपयोग हनीमूनिंगके लिए करना चाह रहे थे।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"इरिसने ही बताया था।" जाएस हँसी, "मिस्टर प्रोवोस्टको लेकर इरिसने शुरू-शुरूमें जो सोचा होगा, उसकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है।"

मैं समझ न पायी कि इरिस इस दिशामें कितना आगे तक जा सकी होगी। क्या उसने मिस्टर प्रोवोस्टसे खुद पूछ लिया होगा? या पूछनेसे पहले ही प्रोवोस्टने रहस्योद्घाटन कर दिया होगा?

"शायद इरिसने ही पूछ लिया था····" जाएसने कहा।

मिस टीसडेलने अपनी मेज़पर रूलरसे ठक-ठक करते हुए रूखी आवाज़में कहा,

"आप लोगोंकी जानकारीके लिए…इरिस वापस नहीं आ रही है ।"

एकाएक सन्नाटा छा गया ।

"अभी-अभी उसका इस्तीफ़ा आया है ।" मिस टीसडेलने मेजपर रखे एक पत्रकी ओर संकेत करते हुए कहा । हमारी आँखोंकी प्रश्नवाचकता तब भी समाप्त न हो पायी । इससे मिस टीसडेल अधीर हो गयीं । उन्होंने कहा, "आलराइट, गर्ल्स, तुम सबने उसका मज़ाक उड़ाकर अपना अच्छा-ख़ासा मनोरंजन किया था; लेकिन अब उसे भूल जाओ । वह वापस नहीं आयेगी और इससे तुम्हारे काममें कोई ढील नहीं पड़नी चाहिए ।"

परन्तु मैं उसे न भूल सकी । इरिसने जब वादा करनेके बावजूद हम लोगोंको पोस्टकार्ड न भेजे तो मुझे चिन्ता होने लगी । न रहा गया तो मैं उस इमारतमें गयी, जहाँ उसका कमरा था । एक दरवाज़ेको काफ़ी भड़भड़ानेके बाद मैं मिसेज़ मरकैंडीसे मुलाक़ात कर सकी । "कहिए ?" उन्होंने आशंकासे पूछा ।

"मैं मिस इरिसके बारेमें पूछताछ करने आयी हूँ ।"

मिसेज़ मरकैंडीके चेहरेका रंग बदल गया, "अब वह यहाँ नहीं रहती । कौन हो तुम ? उसकी दोस्त ? क्या वह दोस्तोंको भी अपने नये ठिकानेकी जानकारी नहीं देती ? मेरे पास उसके नाम आये बारह-तेरह ख़त पड़े हुए हैं । पता दे गयी होती तो मैं उन्हें भेज न देती ?"

"यानी…आपको कोई जानकारी नहीं है ?"

उस औरतकी आवाज़ तीखी हो उठी, "नहीं । ईश्वर बचाये ऐसे किरायेदारोंसे ! आधी-रात तक तो उसका रेडियो ही रेंकता रहता था और…बाबा रे ! कितने फूहड़ ढंगसे रहती थी वह ! यहाँसे गयी, तब पूरा एक ट्रक भरकर उसका सामान निकला होगा । एक चिन्दी भी नहीं छोड़ गयी अपने पीछे !"

"लेकिन वह गयी कब ?" मैंने पूछा ।

मिसेज़ मरकैंडीने हाथ हिलाये, "कई सप्ताह हो गये…मार्चके आख़िरी दिनोंमें समझिए… मुझे इसके अलावा और कोई जानकारी नहीं है । कभी मुलाक़ात हो तो कहिएगा कि उसके नाम बिजलीका एक छोटा-सा बिल है, चुकता कर जाये । यह भी कहिएगा कि वह अपने सामानके साथ मेरा तौलिया और एक सोपकेस भी ले गयी है । उसके कमरेमें एक तसवीर मैंने लटकायी थी । उसे भी वह ले गयी । कहिएगा कि हर हालतमें वापस कर दे ।"

मैं सड़कपर निकल आयी । मिसेज़ मरकैंडीकी आवाज़ देर तक मेरा पीछा करती रही ।

◆

मैं कुछ महीनों बाद मेडिसन एवेन्यूमें किसी प्रसारण-संस्थाके दफ़्तरके क़रीबसे गुज़र रही थी कि अचानक इरिस दिखाई पड़ी । शामका वक़्त था और वह बड़ी तेज़ीसे एक बसके सामनेसे होती हुई सड़क पार कर रही थी । 'कैम्पबेल' की नौकरीके समय उसकी जो हालत हुआ करती थी, वही अब भी थी । अजीब-सा आड़ा-टेढ़ा कोट, बिखरे-बिखरे

बाल, ग़लत लगे हुए बटन····लटका हुआ उदास-उदास चेहरा····

क्या उसने मुझे नहीं देखा? फिर वह रुकी क्यों नहीं? मैं उसका नाम लेकर चिल्लायी लेकिन इससे तो उसके क़दमोंमें और तेज़ी आ गयी। मैंने दौड़कर उसकी बाँह थाम ली और कहा, "अरे, इरिस! मित्रोंको तुम इतनी जल्दी भूल जाती हो?"

शून्य दृष्टिसे वह पल-दो पलके लिए मेरी ओर देखती रही। फिर हँसी और बोली, "अनोखी मुलाक़ात! है न?" हँसीके रूखेपनने मुझे थर्रा दिया।

"मैंने तुम्हें ढूँढ़नेकी कोशिश की थी, लेकिन····तुम अपना कमरा छोड़कर जा चुकी थी।"

"कोशिश मैंने भी की थी।" वह बोली।

"सभी लड़कियाँ तुम्हारे बारेमें बहुत उत्सुक रहीं। कैसी थी मियामीकी सैर?"

मेरा वाक्य अभी मुश्किलसे पूरा हुआ होगा कि उसने बोलना शुरू कर दिया, "यह मामला उतना मज़ेदार नहीं है, जितना तुम सोचती हो!" उसने लट्ठमार ढंगसे कहा। उसकी निगाह मुझसे पीछे चली गयी, मानो सड़कपर किसीको ढूँढ़ रही हो, "कभी-कभी ऐन मौक़ेपर बाज़ी कैसी पलट जाती है! पता नहीं, तुम यक़ीन करोगी या नहीं, लेकिन यह सच है कि मैं मियामी जा ही न सकी। हवाई-अड्डेपर टैक्सीसे उतरते समय न जाने कैसे मेरे पैर लड़खड़ाये और मैं बहुत ज़ोरसे गिरी। मेरे एक घुटनेपर इतनी चोट आयी कि मैंने सोचा, ज़रूर या तो हड्डी टूट चुकी है या खिसक गयी है।"

"लेकिन···"

"ऐसी हालतमें मियामी जानेका सवाल ही नहीं था। यदि वहाँ लेटे ही रहना पड़ता तो सोचो, मुझे कितना महसूस होता!" उसने अपनी कलाई-घड़ीमें देखा, "मुझे देर हो जायेगी। अगले ही मिनिट कार्यक्रम शुरू होनेवाला है। क्या तुम चाहोगी कि मैं देरसे पहुँचूँ?"

उसकी घूरती आँखें मेरी आँखोंसे टकरायीं। ऊपर उठा हुआ उसका छोटा-सा चेहरा जैसे कह रहा था, "देखो, मेरी ओर देखो···आखिर यह किसके लिए है? किसके लिए?"

"काफ़ी ठण्ड है यहाँ!" उसने हाथ हिलाये ताकि हवाकी ठण्डक महसूस कर सके, "प्लीज़, बुरा न मानना, मैं चलूँगी।"

जल्दीसे हाथ मिलाकर वह प्रसारण-संस्थाकी इमारतकी ओर मुड़ गयी, जहाँ किसी स्टूडियोमें लाल रोशनी हो रही थी, विद्युत-घड़ीके क्लिक-क्लिक करते हाथ तटस्थतासे सरक रहे थे और कोई कार्यक्रम वायुमण्डलमें फूट रहा था···

अनु० मनहर चौहान
(जे-११८, कीर्तिनगर,
नयी दिल्ली-१५)

उत्तम बनावट के
लिये
साहु सीमेन्ट

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

अशोका सीमेन्ट लिमिटेड

सोनवेली पोर्टलैंड
सीमेन्ट कं० लिमिटेड

जयपुर उद्योग लिमिटेड

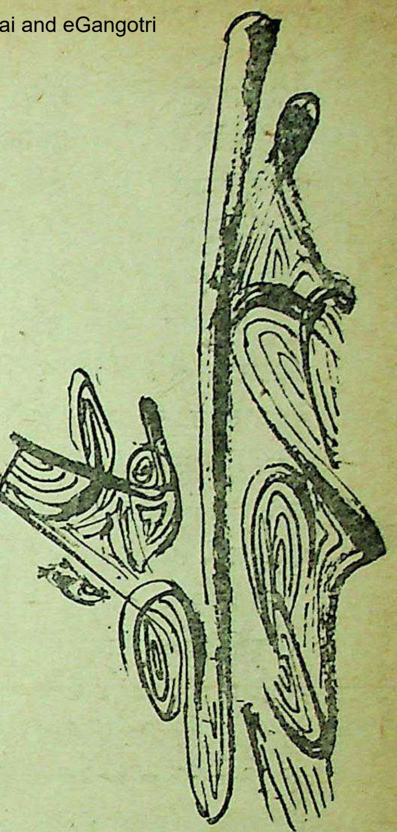

समान्तराल

माया गुप्त

आज ही पहली बार यह बात उसे नये सिरेसे याद आयी यह बात तो नहीं, पर आज बेचैनी कुछ ख़ास क़िस्मकी महसूस होने लगी । ऐसा क्यों होता है, कहना मुश्किल है । बिस्तरसे निकलते ही पार्थको मन कुछ दार्शनिकताकी ओर झुका-झुका लगा । खुली खिड़कीके सामने जाकर खड़ा हुआ । लॉन दिखाई दी, उसके सामने सड़कपर बस, मोटरकारोंका चलना रोज़की तरह शुरू हो गया था । पर वातावरणमें धूल अभीतक छा नहीं पायी थी । मौसम सर्दी और गरमीके बीचका खुशनुमा था यानी कोई वजह नहीं थी कि पार्थको सुबह-सवेरे आनन्दके बजाय मनमें कुछ और भावना ज़ोर पकड़ ले । प्रकृति मनुष्यको खुश रहनेके लिए बहुत हिमायत तो करती है, पर अपने दायरेके अन्दर ही ।

रातको अच्छी तरह नींद नहीं आयी थी और सुबह मन-मिज़ाज कुछ बिगड़ा-बिगड़ा रहा । कल रातको बहस ज़रूरतसे कुछ ज़्यादा ज़ोर पकड़ गयी थी, एकाडमिककी सतहको पार कर बहसने व्यक्तिगत रूप ले लिया था और वाणी एकाएक बोली थी––“हे अर्जुन, अब खतम करो” और बिना किसी औपचारिक विदा लिये ही चली गयी थी ।

वाणीकी अप्रसन्नताके ज़रूर कई कारण होंगे । फिर भी उसकी अप्रसन्नताका प्रकाश काफ़ी संयत था और उसमें-से एक यह था कि पार्थको ‘पार्थ’ न पुकारकर ‘अर्जुन’ पुकारा जाता था । वाणीको मालूम हो गया था कि पार्थके बदले उसका यह प्रतिनाम उसे बिलकुल नापसन्द है ।

पर ठीक उसी समय नाराज़ होनेका खास कारण था ?

शायद हो भी, पर जो बातें पार्थने अतीन्द्रसे कही थीं, ठीक ऐसी ही बात वाणीने पहले खुद किसी औरके विषयमें कही थीं ।

रात सोनेके पहले पार्थ बहुत याद करनेकी कोशिशके बावजूद भी कामयाब न रहा, पर आज सवेरे-सवेरे उसे आसानीसे याद आ गया। रीटाके बारेमें वाणी बोली थी—रीटा उसे पसन्द नहीं है क्योंकि उसकी व्यक्तिगत नैतिक धारणाएँ बहुत शिथिल हैं।—"यह रीटाकी निहायत व्यक्तिगत चीज़ है," यह कहकर पार्थने प्रतिवाद किया था। उत्तरमें वाणीने ज़ोरदार ढंगसे प्रतिपादन किया था कि स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध शत-प्रतिशत उनकी निजी वस्तु नहीं रह जाती····

यह बस केवल नौ महीने पहलेकी बात ही तो थी। कल वाणीने एकदम उलटा गाया। इसकी वजह समझनेके लिए पार्थने बहुत कोशिश की, मगर ठीक अन्दाज़ नहीं मिला। जो बात रीटाके लिए लागू है, वह अतीन्द्रके लिए भी लागू होनी चाहिए। कल शामको बिना किसी झेंपके अतीन्द्र रूपा चावलाके साथ अपने सम्बन्धके बारेमें स्पष्ट रूपसे कुछ कह गया, तो पार्थकी नाराज़गीका मानो विस्फोट-सा हो गया, और वह कह उठा—"इसे लेकर संख्या कितनी हुई अतीन्द्र ? कितनी, एं ?"

अतीन्द्रकी इस अति साहसिकताके पीछे उसका जो अपरिणत व्यक्तित्व, छिपानेपर भी बातचीतके ज़रिये सामने खड़ा हो जाता, उसे इसका अवकाश मिलनेसे पहले ही वाणीकी आवाज़ सुनाई दी—"पार्थ, तुम्हारी बातोंसे कुछ और ही झाँक रहा है····तुम्हारा प्रतिवाद ज़रूरतसे ज़्यादा ज़ोरदार इस कारणसे तो नहीं है कि उसके पीछे कोई समर्थन मौजूद हो।"

हाथको प्रश्नसूचक ढंगसे हिलाते हुए पार्थने कहा था—"तुम ऐसा ही सोचती हो क्या ?"

वाणी एकाएक अप्रसन्न होकर कह उठी थी—"हे अर्जुन, अब यह आलोचना ख़तम करो !" और उठकर चली गयी थी।

अपनी ग़लती कहीं भी दिखाई नहीं दी और पार्थके मनमें एहसासके बदले एक कड़ुवा ज़ायका रह गया।

एक कुर्सी खींचकर अख़बार हाथमें लिये बैठ गया। थोड़ा-बहुत उसे देख भी लिया फिर आध-पौन घण्टेके अन्दर उसने हज़ामत की, स्नान किया, चाय, टोस्ट, अण्डा, पोरिजका रोज़मर्रा प्रातः भोजन समाप्त करके अस्पताल चला गया। उसे मालूम था कि एक बार अस्पतालके कामकी भीड़में जम जायेगा तो यह सब कुछ याद ही नहीं रहेगा। सब चिन्ताएँ ख़तम हो जायेंगी, पर कामके बीचमें भी उसने दो-चार बातें सोच ही लीं। मरणासन्न रोगीके कमरेमें उसका ब्लडप्रेसर-चार्ट देखकर बग़लमें कुरसीपर बैठते हुए पार्थ सोच रहा था, सुख क्या है ? आखिरकार ज़िन्दा रहना ही तो बहुत बड़ी बात है··· चाहनेपर भी इनसान कहाँ ज़िन्दा रह सकता है····सुख इसके अलावा और क्या है कि अपने-अपने साथीके साथ बैठे, सोये, गहरे सान्निध्यमें एकात्मकताका अनुभव करे, एक-दूसरेकी अपरिहार्यताको महसूस करे, रोज़ नये ढंगसे एकान्तचित्तमें याचना करे और प्राप्तिका नये ढंगसे

रूपायन हो....

पर ऐसा हो कहाँ पाता है ? पार्थ सोच रहा था। कालमें जो आलोक कलियाँ हृदयकी सतहपर उद्भासित होती रहनी चाहिए, शान्तिमय वातावरणमें न जाने क्या-क्या आलोड़न आकर उस उद्भासको विक्षिप्त कर देता है। तब यह ज़रूरी हो जाता है कि फिरसे उन्हें ढूँढ-ढूँढकर अंजलिमें समेटकर, नये सिरेसे सन्निवेश करते रहो, तब कहीं जाकर फिरसे उस सुख-द्युतिकी कलियाँ उद्भासित हों। बार-बार ऐसा ही समेटना और विक्षिप्त होना सुखकी परिभाषा है क्या ? एक दूसरेसे अधिक सत्य तो नहीं है....

और दोपहरको खाना खानेके लिए आया, तब भी वाणीको ही सोच रहा था। वाणी इतनी जल्दी अप्रसन्न क्यों हो उठती है आजकल ? इसका कारण शायद पार्थका ज्ञान और अज्ञानके बीचके कुछ अनुभवमें प्रकाशके लिए छटपटाने लगना है।

◆

कल शामको एकाएक उठकर चले आना, बादको वाणीको बुरा लगा था। शामको अस्पतालकी ड्यूटीके बाद हॉस्टल लौटकर वाणी अनमनी-सी अपना नोट सामने फैलाये देखती रही। उन्हें पढ़कर अपने कामसे सन्तुष्ट होती है—यानी चार सालकी डॉक्टरीकी छोटी-सी ज़िन्दगीमें जितना हो सकता है क़रीब-क़रीब उतना ज्ञान उसे अर्जित हो गया है। रोग-निर्णय तथा नुस्खा दोनों ही क़रीब-क़रीब निर्मूल हैं, कम-से-कम ६० से ८० प्रतिशत सही काग़ज़ात समेटकर वाणीको पार्थ याद आ जाती है और फिर वही झेंप। 'सीन' करती हुई इस तरह चला जाना ठीक नहीं था। वाणीके ओठपर अजीब मुसकान दौड़ जाती है जो मुसकान कम है और ज़्यादा अफ़सोस।

और तभी दरवाज़ेसे आवाज़ और आहट दोनों साथ-साथ कमरेमें दाखिल हो जाती हैं। मिस एलियाम्मा अब्राहम, जो हॉस्टलकी देखभाल करती हैं, कहती आ रही थीं—"अन्दर आ सकती हूँ वाणी...." हालाँकि वह पहले ही अन्दर आ चुकी थीं। "तबीयत ठीक है डियर ?....इन दिनों चारों ओर इतना फ़्लू हो रहा है कि मुझे डर लगता है कि कहीं मेरी नन्हीं-नन्हीं डॉक्टर-बेटियाँ बीमार न हो जायें।"

वाणी मुसकराती हुई उनकी ओर देखती है। उम्र पचासके ऊपर है, पर एक भी बाल सफ़ेद नहीं हुआ। बाल और चेहरा क़रीब-क़रीब एक-से रंगका है। बात बहुत बोलती हैं, पर मीठी बात। अपना क़र्तव्य अच्छी तरहसे निभाती हैं और कभी भूलसे भी युवती, लेडी-डॉक्टर, हॉस्टलवासिनियोंके व्यक्ति-स्वातन्त्र्यको छूती तक नहीं। अपनी सीमा-रेखा खूब ढंगसे मज़बूत बनाये रखती हैं।

"सॉरी, मिस अब्राहम, नोट देखती रही तो टाइमका ख़याल ही न रहा। खामख्वाह आपको कष्ट दिया।" वाणी जल्दीसे चलने लगती है और उसके पीछे-पीछे मिस अब्राहम अपना भारी शरीर लिये चलते हुए बोलती जा रही थीं...."फ़लानीको बुखार है, फ़लानी बेचारीके घरसे चिट्ठी आयी है, माँ बीमार

है····रातकी गाड़ीमें····''इत्यादि इत्यादि ।

खाते समय वाणीको महसूस होता है कि उसे भूख काफ़ी लगी थी और खानेकी रफ़्तार कुछ तेज़ हो जाती है । घड़ीकी ओर देखती है । पार्थ ज़रूर उसके लिए इन्तज़ार करता होगा । आज किसी तीसरेका वहाँ मौजूद होना नामुमकिन है । एकाएक वाणी प्रसन्न हो उठती है और उसकी समझमें नही आता कि लोग नाख़ुश क्यों होते हैं । बग़लमें बैठी डॉक्टर सुलता देशपाण्डे वाणीसे कुछ पूछ रही थी । वाणी ख़ूब संक्षेपमें जवाब देकर उठने लगी तो मिस अब्राहमके व्यस्त स्वरने उसे रोका····''मेरी प्रिय वाणी, पुडिंग नहीं लोगी ? बस एक मिनिट····''

और पुडिंगका प्लेट सामने हाज़िर ।

■

''पार्थ इधर देखो ।''

''क्या देखूँ ?''

''मुझे ।''

दोनों हँसने लगते हैं, पर पार्थ हँसी रोककर बोला ''पहले जवाब दो, कल क्यों नाराज़ होकर चलीं गयी थीं ? अतीन्द्र बेचारा बहुत ही सकपका गया था ।''

''अतीन्द्रकी बात छोड़ो ।''

''कल तो उसका समर्थन कर रही थी और आज एकाएक····''

''आज एकाएक नहीं, पार्थ ! कुछ दिनोंसे ही····''

''क्या ?''

''ख़ास कोई बात नहीं ।''

''नहीं तुम्हें बताना पड़ेगा ।''

वाणी कुछ झल्ला उठती है, ''क्या कहूँ ।''

''वाणी, मैं एक बात पूछूँ ?''

''क्या पूछोगे ?'' वाणीके स्वरमें शंका है ।''

''तुमने शादीके बारेमें सोचा है ?''

बस इसी प्रश्नसे डर रही थी वाणी, फिर भी ख़ूब शान्त स्वरमें बोली ''क्यों पूछ रहे हो ?''

''इसका जवाब नहीं दोगी ?''

''तुम्हींको चाहती हूँ पार्थ, पर····''

''पर क्या ?''

''शादी अभी नहीं ।''

''तो तुम्हारा दिल जब चाहेगा, तभी शादी होगी । मैं इस विषयमें नहीं सोचूंगा, पर तुमने देरसे शादीको क्यों सोचा ?''

''मैं अभीतक अपनेको तैयार नहीं पा रही हूँ····यह अतीन्द्रको ही देखो न····शादीके अर्थ तो और भी कई हो सकते हैं ।''

पार्थ अजीब ढंगसे कहता है, ''मुझे क्या अतीन्द्र-सा ही समझती हो ?''

''नहीं ।''

''तो फिर कैसी बातें सोचती हो !''

''मैं डर गयी हूँ पार्थ ।''

''क्यों,मेरे ऊपर विश्वास नहीं होता है ?''

''तुम ग़लत सोच रहे हो····मेरा मनोबल खो रहा है मानो छुरीकी धार कुन्द हो रही है । अतीन्द्र ही अब ज़्यादा स्वाभाविक लगता है ।''

दोनों चुप हो जाते हैं । कुछ पूछना बेकार समझकर पार्थ बात बदल देता है,

[शेष पृष्ठ ७६ पर]

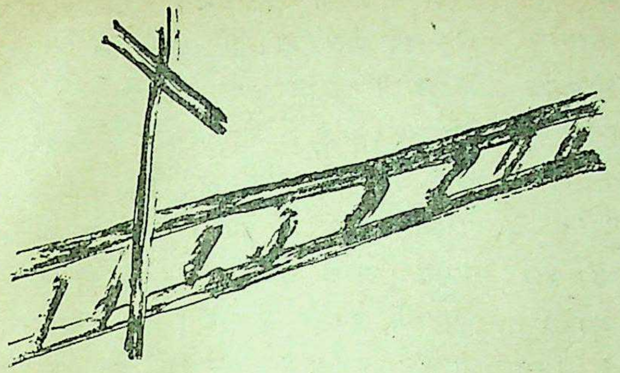

वही है…

कर्तारसिंह दुग्गल

गाड़ी आनेमें अभी आध घण्टा था। मालतीको अपने-आपपर क्रोध आने लगा। फिर वह समयसे इतना पहले स्टेशनपर पहुँच गयी थी। जब उसे कहीं जाना होता, घरमें वह एड़ी न लगने देती। हमेशा आध-पौन घण्टा पहले ही स्टेशनपर पहुँच जाती। और यूँ जब वह बोर होने लगती, हमेशा दिल-ही-दिलमें फ़ैसला करती कि अगली बार वह वक़्तपर आयेगी। ज़्यादासे ज़्यादा पाँच-दस मिनिट पहले। लेकिन फिर जब सफ़र करना होता, स्टेशनपर पहुँचकर उसे पता चलता कि वह तो पौन घण्टा-घण्टा पहले पहुँच गयी है।

आज तो सितमज़रीफ़ी यह था कि गाड़ीपर जाना उसके घरवालेको था; वह दफ़्तरसे अभी पहुँचा नहीं था। यह घरसे उसका सामान लेकर पहले आ मौजूद थी। जिसे गाड़ीपर चढ़ना था, वह तो कहीं दूर दूर तक नहीं था और पहुँचानेवाली पहले ही उपस्थित थी।

खड़ी-खड़ी थक रही, मालतीको लगा जैसे प्लैटफ़ॉर्मकी भीड़में कोई आँखें उसकी पहचानी-पहचानी हों। नहीं, इस शहरमें उसका परिचित कोई नहीं। और मालती क़ुलीके बाज़ूपर बँधे उसके नम्बरको फिर पढ़ने लगी। किन्तु नहीं, यह तो कोई उसका परिचित ही लगता था। बार-बार उसकी ओर झाँक रहा था।

परिचित कहाँ होगा! कोई होगा जिसके दिलके किसी तारको इसने छेड़ा होगा। और मालतीने अपने रेशमी बालोंको हाथ लगाकर देखा, उसके कन्धोंपर जैसे नाच रहे हों। तीन बच्चोंकी माँ हो गयी थी। तो फिर क्या! अभी भी, अब भी जहाँ वह बैठ जाती, जिधरसे वह गुज़र जाती, उसकी कहानियाँ शुरू हो जातीं।

लेकिन एक हसरत थी। एक कसक उसके हृदयके किसी कोनेमें छिपी पड़ी थी। उसने इसके साथ छल किया था। उसने। पहली मोहब्बतका दर्द कैसा होता है। अभीतक यह टीस उसने सँभाल-सँभाल रखी थी···लेकिन यह किन विचारों-

में वह बहे जा रही थी। उसका पति है; सुन्दर, सजीला। लाखोंका उनका व्यापार है। तीन बच्चे हैं उनके। दो बेटे और एक उनकी लाड़ली बहन। चाँद-जैसे। खुश-खुश हँसता-हँसता उनका घर है। और आज यह कौन उसे याद आ रहा है, कौन ?

शायद वही है। बिट-बिट उसकी ओर देख रहा है। खम्भेसे सटकर खड़ा है। प्लेटफ़ॉर्मपर भीड़ कितनी बढ़ गयी है। जिस किसीको बम्बई जाना होता है, फ्रण्टीयर मेलको ही सोचता है। इसलिए कि यह ट्रेन वक़्त कम लेती है। सफ़रमें दो घण्टे बचा लेंगे और बम्बई पहुँचकर टैक्सीके लिए क्यूमें चाहे तीन घण्टे खड़े रहें। मालती सोचते-सोचते मुसकराने लगी। उसका चेहरा खिल-सा गया। चम्पई रंग।

फिर उनकी नज़रें मिली। कोई जाना-पहचाना था। इस शहरमें कौन हो सकता है ? इस शहरमें आये उनको कुछ महीने ही हुए थे। ठेकेदारीके झमेले, उसके पतिको अभी फ़ुरसत ही नहीं मिली थी कि क्लबके वे मेम्बर बन सकें। हर चौथे रोज़ तो उसे बाहर माल लेने जाना होता है। इस शहरमें उनका कोई परिचित नहीं हो सकता।

···कैसे उसने इसे छोड़ा था और फिर मालतीकी सहेलीके लिए। अपनी महबूबाकी सहेलीसे प्रेम करने लग गया था। एक नज़र उसने इसे देखा और उसका दिल भरमा गया। मालतीने अपनी आँखों देखा था। उसकी आँखें तो उसे धोखा नहीं दे सकती थीं। तोबा, तोबा! इतनी बदतमीज़ी! इतनी बेवफ़ाई!

वही है शायद। बड़ी-बड़ी काली आँखोंमें एक अमिट भूख। एक-टक उसकी ओर देखे जा रहा है। जैसे नज़रों ही नज़रोंसे कोई किसीको बींध रहा हो। मालती पसीना-पसीना हो गयी। उसे डर लगा। उसने पलकें उठायीं तो उनकी नज़रें आपसमें टकरा जायेंगी। यह कैसा उसे महसूस हो रहा है। उसे लगा जैसे उसने तो उसकी समूची मोहब्बत कहीं सँजो रखी हो। दीवानी औरत! मालतीका अंग-अंग स्वाद-स्वाद हो रहा था।

नहीं, वह नहीं। अब उसकी मालतीकी ओर पीठ थी। रेलवेके किसी कर्मचारीसे कुछ पूछ रहा था। और मालतीने उसकी ओर ध्यानसे देखा। वह नहीं हो सकता। वह तो हमेशा कोट-पतलून पहनता था। यह आदमी तो शेरवानी-पाजामेमें है। वह नहीं हो सकता। इस आदमीका क़द ज़रा लम्बा है। लेकिन हाथ उस-जैसे हैं। नर्म नाज़ुक; लम्बी-लम्बी कोमल उँगलियाँ। किसी काग़ज़के टुकड़ेपर कुछ लिख रहा है। नहीं वह नहीं हो सकता; इसके हाथमें तो हिन्दीका अखबार है। उसे हिन्दी नहीं आती थी उसने तो उर्दू पढ़ी थी।

और एकदम मालतीकी नज़रें फ़र्शप गड़ गयीं ? कर्मचारीसे निबटकर वह फि उसकी ओर झाँक रहा था। ललचा ललचायी नज़रें, मालतीको लगा जैसे को उसके अंग-अंगको सहला रहा हो। उस रोम-रोम विभोर होता जा रहा था। ए

झनझनाहट जैसे उसके पोर-पोरमें छिड़ गयी हो। यह कैसी ठण्डी, मीठी हलचल पड़ी थी। मालतीके बालोंकी एक लट बार-बार उसके मुँहपर आ पड़ती।

और मालतीको याद आया, कैसे एक शाम यूँ ही उसके बालोंकी एक लट उसके मुँह-पर पड़ रही थी, और उसने पहली बार बालों समेत इसके होठोंको चूम लिया था। बालोंका दीवाना! कैसे इसके मुँहको बालोंसे ढ़ककर उसे प्यार करने लगता। तोबा, तोबा! कैसे दिन थे। दीवानगीके दिन! एक भूख उसके अंग-अंगसे तड़प रही होती। प्यार करता-करता खुद हाँफ जाता, इसे थका-थका देता।

और फिर उसकी मुलाक़ात इसकी सहेली मिन्नीसे हुई। एक नज़रमें उसका दीवाना हो गया। मेमनेकी तरह उसके पीछे-पीछे फिरने लगा। गँवार। आदमीकी कोई ग़ैरत भी होती है। आँखकी कोई शर्म भी होती है। शायद मिन्नीके बाल ही उसे पसन्द आये थे। कितना भारी जूड़ा उसका बनता था। यूँ उसका रंग तो साँवला था।

और अब कैसे इसकी ओर झाँक रहा है। गोरी चिट्टी मालतीकी बाँहें। स्लीवलेस ब्लाउज़ पहनकर मालतीको लगता जैसे वह नंगी-नंगी हो। एक तो यह फ़ैशन साँस नहीं लेने देते। आगा ढकती तो पीछा खाली छोड़ देती। पीछा ढकती तो आगा अनढका होता। ये आजकलकी लड़कियाँ! क्यों, आजकलकी लड़की तो मालती भी है। उसका क्या बिगड़ा है! मालती सोचती, अभी भी, अभी भी, उसके लिए कोई नहर खोद सकता है, कोई कान छिदवा सकता है। औरतका कभी कुछ नहीं बिगड़ता, यदि वह खुद हार न मान ले ज़िन्दगीसे।

लेकिन अगर वह है तो आगे बढ़कर इसका हाथ क्यों नहीं पकड़ लेता, जैसा वह कभी किया करता था। घण्टों इसकी उँगलियों-के साथ खेलता रहता। जितनी देर इनके यहाँ रहता, मालतीका हाथ उसके हाथमें होता। मालतीको खीझ आने लगी; अगर वही है तो आगे बढ़कर क्यों नहीं कहता 'हैलो मालती। मेरी जान!' मालतीके कानोंमें कई बरस पहले सुने उसके बोल गूँज रहे थे। और फिर मालती बेचैन होने लगी। अगर वह है, तो आगे क्यों नहीं बढ़ रहा है? इसके पतिके आनेका समय हो रहा था। किसी क्षण भी वह आ सकता है। और फिर मालती सिरसे पाँव तक काँप गयी। कहीं यह न सोच रहा हो कि गाड़ीसे सफ़र करते हुए मिलेगा। गाड़ीमें तो उसका पति जा रहा था। वह तो उसे बस गाड़ीपर चढ़ाने आयी थी।

कितनी महीन साड़ी आज शाम उसने पहन रखी थी। बेशक गरमी थी लेकिन इतना भी क्या! जितना वह अपने आपको लपेट-लपेटकर रखती उतना ही उसे महसूस होता जैसे वह अनढकी-अनढकी हो। और मालतीने देखा, आज उसने प्याज़ी रंगकी साड़ी पहन रखी है। प्याज़ी रंग उसका प्रिय रंग था। और फिर मालतीका दिल कहता, वह नहीं हो सकता। वह होता तो कभीका उसके पास

आ चुका होता । आँखों रंग [illegible] उसपर जादू कर देता था । वह नहीं हो सकता !

ज्यूँ-ज्यूँ गाड़ीके आनेका समय हो रहा था, प्लेटफ़ॉर्मपर गहमागहमी बढ़ती जा रही थी । लोग एक दूसरेको लिपट-लिपटकर मिल रहे थे और मालतीने नज़रें उठाकर देखा । अब उसकी, इसकी ओर पीठ थी । और मालती देखती रह गयी । दूर बेंचके पास कोई खड़ी थी । मोटा भारी जूड़ा, रंग इतना साफ़ नहीं । और वह एक-टक उसकी ओर देखे जा रहा था । दो मिनिट, चार मिनिट, दस मिनिट । कैसे वह अपलक उसकी ओर देख रहा था । मालतीको जैसे भूल ही गया हो । एक बार भी तो उसने इसे पलटकर नहीं देखा ।...वही है मालतीको विश्वास हो गया—वही है ।

और फिर मालतीका पति आ गया । गाड़ीके आनेमें अभी पाँच मिनिट बाक़ी थे मालतीके पतिके साथ उनका मुंशी था । मालतीका जी चाहा कि मुंशीजीको भेजकर पुछवाये कि उसका नाम मधुसूदन है ? मधुसूदन—रावलपिण्डीवाला ।

लेकिन फिर मालतीके दिलने कहा—काहेको ? उसे यक़ीन था कि वही है । मालतीकी ओर पीठ किये दूर बेंचके पास खड़ी, नयी आयी सवारीकी ओर एक टक देखे जा रहा था । वही है । वही है । मर्दज़ात !

(२० पटौदी हाउस, नयी दिल्ली-१)

[पृष्ठ ७२ का शेष : समान्तराल]

"तुम्हारा जहाज़ कब रवाना हो रहा है ?"

"अगले महीनेकी चार तारीखको ।"

"विश यू गुड लक ।" "थैंक्स ।" वाणीका मन दुखने लगता है । कहती है, "पार्थ, अगर मेरे लौटनेमें बहुत देर हो जाये तो..."

"मैं अतीन्द्रकी तरह साथिन बदलता रहूँगा....एक....दो .. तीन....चार ।" कड़ुए ढंगसे पार्थ हँसने लगता है ।—"हाँ, तो तभी कल अतीन्द्रका समर्थन कर रही थीं ? अच्छा वाणी, तुम क्या करोगी ? दो साल हो सकता है, तीन साल भी । विदेशमें निःसंग रहोगी ?" पार्थकी आँखोंमें आँख डालकर वाणीने कहा, "तुम्हारे लिए मैं केवल तीन साल नहीं और भी बहुत सालों तक शायद निस्संग रह सकती हूँ ।"

कौतुकसे पार्थका चेहरा जगमगा उठता है—"तो तुम्हें रीटा-जैसा साथी ढूँढ़नेकी ज़रूरत नहीं होगी ?" वाणीके बहुत नज़दीक झुककर पार्थ कहने लगता है "देखो-देखो, वाणी, मुझे ग़ौरसे देखो । मैं अतीन्द्र-सा ही लगता हूँ ? शायद...."

वाणीको जवाब देनेका अवकाश अब नहीं मिलता है । एक गहरे विश्वासके बीच दो प्राणी वर्तमानमें डूब जाते हैं, पर दोनों ही मनमें कुछ पाल रक्खे हैं और अजीब बात यह है कि दोनों एक-जैसा महसूस करते हैं । भविष्यके बारेमें सोचनेकी ज़रूरत नहीं है....अभी एक क्षण, यही क्षण अमूल्य है, एक मात्र है । कलके लिए सोचना व्यर्थ है....कल मेरे बसका नहीं.... (डी १४, निज़ामुद्दीन ईस्ट, नयी दिल्ली, १३)

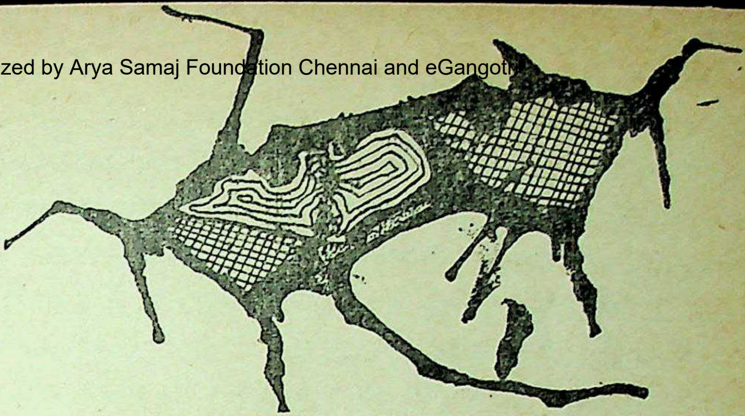

एक्सीडेण्ट

अन्विता अग्रवाल

●

सीमाको चौबीस नम्बर मिल तो गयी पर बैठनेकी जगह न मिल सकी। वह बसके अन्दर आ गयी यही बहुत है। पीछे इतनी भीड़ और चारों तरफ़ पसीनेकी बदबूसे उसे उबकाई आने लगी। वह भीड़को चीरती हुई सबसे आगे जा खड़ी हुई। आज उसकी टाँगोंमें इतना दर्द हो रहा था कि मन हुआ कि टाँगोंको बसके पहियेके नीचे दे दे। पन्द्रह दिनसे घूमते-घूमते परेशान हो गयी है। उसे लगा कि फ़ॉरेन एक्सचेंज़ मिलनेकी भाग-दौड़में भी वह इतना नहीं थकी थी कि जितना अब शॉपिंग करते-करते थक गयी है। उसे 'अमेरिकन स्कॉलरशिप' मिला है। केवल चार दिन ही रह गये हैं, बस! फिर वह बहुत दूर चली जायेगी, बहुत दूर, सात समुद्र पार— सबको छोड़कर! शॉपिंग करते-करते उसका दम निकल गया है। छोटी-छोटी चीज़ोंका भी

कितना ध्यान रखना पड़ता है, यह उसे अब मालूम हुआ। कितना मन करता है कि बंगाल इम्पोरियमसे कुछ सूती साड़ियाँ ख़रीद ले—पर कौन ले जाये सूती साड़ियाँ! पन्द्रह डॉलर तो केवल लॉण्डरीमें ही लग जाते हैं। उसने हिसाब लगाया, पन्द्रह डॉलर कितने रुपयेके बराबर बैठे! क़रीब १७५ रुपयेके, जब कि अवमूल्यनके पहिले केवल ७५ रुपये ही देने पड़ते। और सीमाका सारा गुस्सा और खीझ इण्डियन गवर्नमेण्टपर उतर आयी। उसने केवल रेशमी साड़ियाँ ही ख़रीद ली हैं। ढेर सारे जूते भी ख़रीदे हैं। सीमाको समझ नहीं आया कि इतने सामानकी पैकिंग कैसे होगी। ले जाना केवल ४० पौण्ड ही है, जब कि उसका सामान ज़रूर ७५ पौण्डसे कम नहीं बैठेगा। फ़िलहाल यह काम तो मम्मीका है। और उसे लगा कि उसके सरसे ७५ पौण्ड बोझ कम हो गया है।

सीमाने महसूस किया कि उसके गालपर कुछ बूँदें बह रही हैं। उसने गरदनको छुआ। बुरी तरह पसीनेसे गीली हो रही थी। बाप रे! इतनी गरमी पड़ रही है जैसे किसीने भट्ठीमें झोंक दिया हो। उसने सोचा, न्यूयॉर्क जाकर इस सड़ी गरमीसे तो छुटकारा मिलेगा। पर तभी उसे याद आया कि पेपरमें निकला था, इस बार अमेरिकामें बेहद गरमी पड़ी, जिसके कारण कुछ लोग मर भी गये। बस काफ़ी तेज़ जा रही थी पर उसे हवा एकदम नहीं आ रही थी जैसे किसीने डिब्बेमें बन्द कर दिया हो। सीमा सदैव एक पैरपर ज़ोर देकर खड़ी होती है। उसका दायाँ पैर दुख रहा था। अब उसने दायाँ पैर झुका लिया और दायेंको बायेंपर रख लिया मानो दायाँ पैर बायेंको सहारा दे रहा हो। कोई सीट भी तो ख़ाली नहीं थी। उसका सर भी भन्ना रहा था। सीमाका मन हुआ कि काश उसके पास भी कोई अलादीन-लैम्प-जैसी चीज़ होती तो वह सबसे पहले कहती—"एक ख़ाली सीट हाज़िर करो।" उसने महसूस किया हाथमें पकड़े हुए पैकेट्समें-से सबसे नीचेवाला पसीनेसे एकदम गीला हो गया है। कन्धेपर लटका हुआ एयर इण्डियाका बैग पहलेसे दुगना भारी हो गया है।

उसके टख़नोंमें कोई चीज़ चुभ रही थी, उसने नीचेकी ओर देखा, किसी देहातीकी डलियाका कोना उसके टख़नेसे रगड़ खा रहा था। उसने पैर हटा लिया। सीमाने बसमें नज़र घुमायी। बीचमें बड़े-बड़े दो टोकरे इस तरहसे रखे हुए थे कि आना-जाना बहुत मुश्किल था। टोकरेके सामने बैठा हुआ बूढ़ा आदमी इतनी ज़ोर-ज़ोरसे बोल रहा था कि सीमाको लगा—या तो वह बूढ़ा बहरा है या फिर जिससे वह बात कर रहा है, वह बहरा है। कितने अनकल्चर्ड होते हैं, ये लोग! उसने मन-ही-मन सोचा। बस किसी स्टॉपपर रुकी, और ढेर सारी देहाती स्त्रियाँ पोटलियाँ ले-लेकर चढ़ गयीं—"ओ अनारी—तू आ गयी—, इधर आ जाना, इधर—" एक स्त्री चढ़ते ही बड़े ज़ोरसे चीख़ी। अब सामनेवाले बूढ़ेने ज़ोर-शोरसे नाक सिनकना शुरू कर दिया था। सीमाको घिन हो आयी। उसकी नज़र एकदमसे पीछे घूम गयी। एक फ्रेंच युवती बड़े

ग़ौरसे यह सब देख रहा था । न जाने क्यों सीमाको शर्म आ गयी । वह क्या सोचती होगी – ये इण्डियन कैसे होते हैं ! ज़रा भी तमीज़ या शऊर नहीं है । उसने मुँह फेर लिया ।

ड्राइवर शायद मौजमें था या फिर सड़क ख़ाली थी, पता नहीं – बसको ज़ोरसे चला रहा था । बार-बार स्टॉपके निशानपर इतनी ज़ोरसे ब्रेक लगाता कि सीमा आगेको गिर-गिर पड़ती । सामनेसे एक ट्रक आया, ड्राइवरने झटकेसे बस इतनी ज़ोरसे मोड़ी कि एक्सीडेण्ट होते होते बचा । ट्रकके सरदार ड्राइवरने सिर बाहर निकालकर कुछ कहा जो बसके शोरमें डूब गया । सीमाने सोचा, यदि एक्सीडेण्ट हो जाता तो ? शायद अच्छा ही होता । लोग झटपट उसे उठाकर अस्पताल ले जाते, बिस्तरपर आराम करनेको तो मिलता । वह फिर सोचने लगी, यदि एक्सीडेण्ट हो जाता तो शायद सबसे ज़्यादा चोट बस ड्राइवरको आती । वह सामनेवाली सीटपर जो चश्माधारी सज्जन बैठे हैं, इनको भी बहुत चोट आती । शायद इनका चश्मा टूट जाता और उसके काँच इनकी आँखोंमें घुस जाते । हो सकता है, यह अन्धा भी हो जाता । फिर इसकी बीवी या प्रेयसीकी क्या दशा होती ! और सीमाने उसके साथ बैठी बुढ़ियापर नज़र फेरी । वह शायद बहुत ज़्यादा बूढ़ी हो चुकी थी क्योंकि उसकी भौंहें भी सनकी तरह सफ़ेद थीं । उसने सोचा, यह तो शायद स्वर्ग ही सिधार जाती । सीमाने पीछे मुड़कर देखा, दायीं ओरवाली सीटपर दो लड़कियाँ बैठी थीं । दोनों ही सुन्दर थीं । उसने सोचा, यदि वाक़ई एक्सीडेण्ट हो जाता तो ये कितनी कुरूप लगतीं ! पर हो सकता है, इनको चोट ही न लगती क्योंकि उनकी सीट ड्राइवरके एकदम पीछे है और ड्राइवरके पीछे जालीका सींखचा । सीमा तिरछी खड़ी थी । उसे लगा, यदि एक्सीडेण्ट हो जाता तो उसके दायें गालपर बहुत ज़ोरसे चोट लगती । अनायास उसका हाथ दायें गालपर चला गया । पसीनेसे वह काफ़ी गीला हो चुका था । पर उसे लगा, मानो उसके गालपर पसीना नहीं ख़ून बह रहा है । उसने झट रूमालसे गाल और गरदन पोंछ ली । वह फिर सोचने लगी, यदि मेरा सीरियस एक्सीडेण्ट हो जाता तो पापा और मम्मीकी क्या हालत होती ? उसे लगा मानो वह हॉस्पिटलमें पड़ी हुई है । उसके चारों ओर बेडपर दोनों लड़कियाँ, वह बुढ़िया और चश्माधारी, और ड्राइवर लाल कम्बलमें लिपटे पड़े हैं । न जाने क्यों हॉस्पिटलकी बात सोचते ही उसकी आँखोंके सामने तीस-चालीस पलंग एक क़तारमें घूम जाते हैं, जिनमें लाल कम्बल रखे हुए हैं । सीमा सोचने लगी, यदि वह घायल हो जाती तो उसकी सहेलियोंमें-से शायद ही कोई देखने आती । नीतू केवल फ़ोन ही करती । यह बात और है कि वह फ़ोन दिनमें पाँच बार करती । उसे याद है, एक बार उसे टायफ़ाइड हुआ था तो नीतू फ़ोनपर ही उसका हाल-चाल पूछती रह गयी थी । यह नहीं हुआ कि एक बार आकर देख जाये ! उस लम्बी बीमारीमें इस बातको लेकर सीमाको कितना फ़ील हुआ

था ! नीरा तो शायद पत्र लिखकर सहानुभूति ही दिखाती । कितना कठोर और निर्मम शब्द है, 'सहानुभूति' । ऐसा लगता है, कोई तुमपर व्यंग्य कस रहा हो—"हमें आपसे पूरी सहानुभूति है ।" सीमाने बुदबुदाकर इस तरहसे मुँह बनाया कि खुद उसे अपनेपर हँसी आ गयी । तभी उसे फिर ध्यान आया कि हाँ उसको देखनेवाली लिस्टमें केवल मालीका बेटा ही शामिल होता । वह ज़रूर फूलोंका गुलदस्ता लेकर आता और अपनी खिलती हँसीसे कहता—"आप अभहन ठीक हो जइहैं, बहनजी !" यह क्या सोचने लग गयी ! उसने चारों तरफ़ देखा, बस अभी भी उसी रफ़्तारसे जा रही थी, धक्के अब भी लग रहे थे ! ज़रा-सी बातको वह कहाँतक ले गयी । उसने बायें हाथके पैकेट दायेंमें पकड़ लिये । "आपका टिकिट ?" कण्डक्टर अबतक उसके पास आ चुका था ।

"एक सुन्दरनगर, करोलबाग़से ।" सीमाने उसे एकका नोट पकड़ाया । वापिसके पैसे उसने बिना गिने ही पर्समें डाल लिये । अब इतनी पेशेन्स नहीं रह गयी थी कि चेंज गिन ले ।

पटियाला-हाउसपर आकर बस रुकी । एक लड़की बड़े आरामसे सड़कपर खड़े होकर भुट्टा खा रही थी और उसके कुछ दूरपर ही एक भुट्टेवाला भुट्टे भून रहा था । क्या न्यूयॉर्कमें उसे यह दृश्य देखनेको मिलेगा ? इस तरह सड़कपर दो ईंटोंपर, जालीके ऊपर कोयलोंपर भुट्टे सेंकनेके दृश्यको वहाँ वह देख सकेगी ? भारतीय कितने आरामसे भुट्टेपर नीबू लगाकर सड़कपर ही खा लेते हैं । क्या बाहर यह सम्भव हो सकेगा ? कितनी ही छोटी-मोटी चीज़ें हैं जिन्हें हम रोज़मर्राकी ज़िन्दगीमें नोटिस नहीं करते हैं, पर यदि वही चीज़ें कहीं लुप्त हो जायें तो कितना अजीब-सा लगता है ! इण्डिया गेटपर दो तीन ग्रामीण स्त्रियाँ एक जामुनके पेड़के नीचे बड़ा-सा पाल बिछाकर खड़ी हुई थीं, और उस पेड़पर चढ़ा हुआ एक व्यक्ति ज़ोर-ज़ोरसे डालियाँ हिला रहा था । वह यह सब कितना मिस करेगी । अपना वतन सभीको प्यारा लगता है । इसका मोह सहज नहीं छोड़ा जा सकता ।

'इण्डिया गेट दा स्टाप आॅन वाला ऐ ?" एक प्रौढ़ महिला उससे पूछ रही थी ।

सीमाने जवाबमें सिर हिला दिया । सुन्दरनगर पास आता जा रहा था । आकाशपर एकदम बादल छा गये । अगस्तका आकाश, घड़ी-भरमें चिलचिलाती धूप और घड़ी-भरमें बादल । बस एक झटकेसे रुकी ।

"·····सुन्दरनगरवाले, चलना जी·····!" कण्डक्टरने वहींसे हाँक लगायी । सीमाके लिए रास्ता बनाना कठिन हो रहा था, खैर जैसे-तैसे उतर ही गयी । बसके बाहर उसे बड़ी रिलीफ़ मिल रही थी कि कुछ देर बाद वह नर्म-नर्म गद्देपर आराम कर रही होगी, और उसकी टाँगोंका दर्द मिट जायेगा । उसने आकाशकी ओर देखा । बादल काफ़ी थे पर शायद एक-दो घण्टे तक न बरसें । उसने अपनी चाल तेज़ कर दी । क्या यह आकाश उसे याद आयेगा ? क्या उसे भी टैगोरकी तरह देशका

आकाश पुकारेगा—"मेरे देशका प्रकाश, मेरे देशका आकाश मुझे चुपके-चुपके बुला रहे थे।"

सीमाको लगा कि इधर कुछ दिनसे वह बहुत सोचने लगी है। बेकार अपना दिमाग़ थका रही है। उसे तो इस समय जाकर केवल आराम करना है—बस !

'एक्सक्यूज़ मुआ, कुड यू टैल मी वेयर इज़ सी नाइनटीन ? (माफ़ करिये, क्या आप मुझे बता सकती हैं कि सी-उन्नीस कहाँ है ?) पहले दो शब्द फ़्रेंचके और बाक़ी सारा वाक्य अँगरेज़ीका सुनकर सीमाने मुड़कर देखा। वही फ़्रेंच युवती थी। हाथोंमें कुछ फ़ाइलें थीं और चेहरेपर कुछ परेशानीके भाव।

"मैं 'ई' ब्लाकमें रहती हूँ। आप मेरे साथ आइए, मैं बता दूँगी।" सीमाने फ़्रेंचमें कहा।

"ओ—मेयर्सी (धन्यवाद) !"

"आप यहाँ क्या कर रही हैं ?" सीमाने हिचकते हुए पूछ ही लिया।

"मैं भारतीय संस्कृतिपर रिसर्च कर रही हूँ।" वह विशुद्ध अँगरेज़ी बोल रही थी।

"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" न चाहते हुए भी सीमाके ओठ बुदबुदा दिये। बसवाला दृश्य याद करके उसने सोचा, ज़रूर इसे भारतीय संस्कृतिसे चिढ़ हो गयी होगी।

वह फ़्रेंच महिला बताती रहीं कि उन्होंने कितना कार्य कर लिया है और कितना बाक़ी पड़ा है। सीमा बहुत थक चुकी थी। न चाहते हुए भी वह सब सुने जा रही थी, कि वह महिला बोली—"भारतमें इतना कुछ करनेको और जाननेको पड़ा है, कि कुछ लोगोंके इनेश्येटिवसे कुछ न होगा। मैं नहीं समझ पाती हूँ कि क्यों भारतीय अपने देशका अध्ययन करनेके बजाय विदेश भागते हैं। क्यों, आपका क्या विचार है ?"

सीमा एकदम कट रह गयी। उसके मुँहसे बड़ी मुश्किलसे एक छोटी-सी 'हूँ' निकली। उसके कन्धेपर खड़ा हुआ एयर इण्डियाका बेग उसकी आँखोंमें चुभ रहा था। उसे लगा, वाक़ई उसका सीरियस एक्सीडेण्ट हो गया है और वह बुरी तरहसे लहूलुहान हो गयी है।

(सी-५६, जंगपुरा एक्सटेन्शन,
नयी दिल्ली-१४)

भूल-सुधार

गतांकके पृष्ठ १७४ पर 'बउऊवालिया' एवं 'बकुलवालिका'के स्थानपर कृपया 'बउलावलिआ' एवं 'बकुलावलिका' पढ़ें।

१९६६ की उपलब्धि

श्रेष्ठ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

१९६६

• कविता

ओटक्कुषल : महाकवि जी० शंकर कुरुप	८.००
एक और नचिकेता : महाकवि जी० शंकर कुरुप	३.००
तारसप्तक : सं० अज्ञेय	८.००
शहर अब भी सम्भावना है : अशोक वाजपेयी	३.००
अग्निबीज : डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय	३.५०

• कहानी-उपन्यास

मुरदा सराय : डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
राजा निरबंसिया : कमलेश्वर	५.००
सवेरा संघर्ष गर्जन : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	७.००
अस्तंगता : भिक्खु (उपन्यास)	६.००

• ललित निबन्ध-संस्मरण

वाग्धारा : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	४.००
वह नन्हा-सा आदमी : सुमंगल प्रकाश	६.००
कुछ निबन्ध : अक्षयकुमार जैन	२.५०

• शाइरी

उस्तादाना कमाल : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००

● आलोचना-अनुसन्धान

नये प्रतिमान : पुराने निकष	
लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
अपभ्रंश भाषा और साहित्य	
डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
हिन्दीके आदि मुद्रित ग्रन्थ	
कृष्णाचार्य	७.००
कविवर बनारसीदास	
डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	१०.००
हिन्दी शब्द-रचना	
माईदयाल जैन	६.००

● सांस्कृतिक

सुगन्धदशमी कथा : डॉ० हीरालाल जैन	११.००
जैन न्याय : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री	९.००
जैन शिलालेख संग्रह भाग-४ : सं० डॉ० जोहरापुरकर	७.००
सोलह कारण भावना : महात्मा भगवानदीन	२.००

१९६९

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

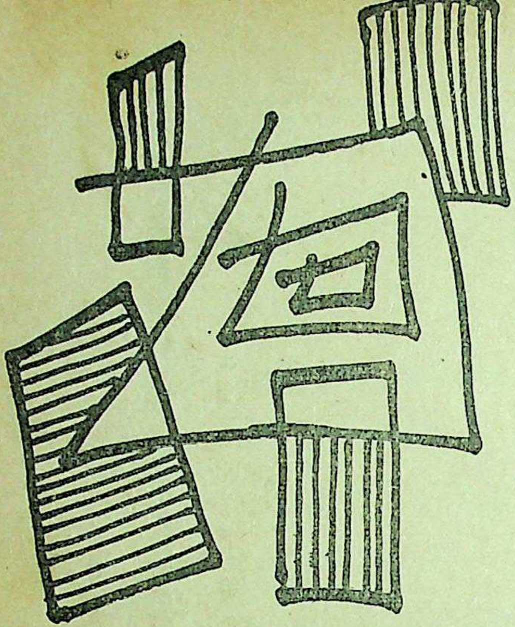

एकांकी

प्यासे खेत

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

पात्र : शिवदत्त : एक सिपाही, गनेस : शिवदत्तका पुत्र-कालेजका विद्यार्थी, मंगतराम : एक व्यापारी, नागर : महाविद्यालयका शिक्षक, तथा शिवदत्तकी पत्नी ।

[पुलिसलाइनमें सिपाही शिवदत्तके क्वार्टरका बाहरी बराण्डा ! दोनों ओर लकड़ीकी जालीसे बने इस बराण्डेका फ़र्श कच्चा और गोबरसे लीपा हुआ है । फ़र्नीचरके नामपर सनकी रस्सीसे बुनी एक पुरानी खाट तथा एक टीनकी पुरानी कुरसी पड़ी है । पिछली दीवारका चूना यहाँ-वहाँ उघड़ा हुआ है—जिसमें भूगोलके विद्यार्थीको कई देशोंके नक्शे दिखलाई दे सकते हैं । इन नक्शोंके बीच पुलिस-विभागके कुछ पोस्टर चिपके हुए हैं । एक कोनेमें खूँटीपर सिपाहीकी टोपी टँगी है । परदा उठते ही शिवदत्त अन्दरकी ओरके दरवाज़ेसे प्रवेश करता है । शिवदत्त अपनी धोतीपर ड्रेसके जूते-मोज़े और कमीज़ पहने है, शिवदत्त खूँटीसे टोपी उतारता है, तभी अस्तव्यस्त वेशभूषामें उसकी पत्नी तेज़ीसे प्रवेश करती है ।]

पत्नी : (झुँझलाये स्वरमें) ड्यूटीकी तैयारी हो रही है ?

शिव : (टोपी सँभालते हुए) अभीतक तो पहुँच जाना था । कप्तान साहब राह देखते होंगें । (घूमते हुए) पैण्टमें दो बटन टाँकना है !

पत्नी : (उसी स्वरमें) मैं नहीं टाँकती बटन-वटन ।

शिव : (अन्दर बढ़ते हुए) तो मैं टोक लूँगा। डयूटीपर तो जाना ही है।

पत्नी : (हाथ पकड़ते हुए) मैं नहीं जाने दूँगी। (शिवदत्त घूमकर पत्नीको शान्त भावसे ताकता है) हाँ—मैं अब नहीं जाने दूँगी। (भरे स्वरमें) बहुत हो गयी डयूटी।

शिव : जब तक नौकरी करूँगा, ड्यूटी पूरी करूँगा। डयूटीपर नहीं जाने देना है तो कहो, नौकरी छोड़ दूँ।

पत्नी : (भरे स्वरमें) छोड़ दो नौकरी ! अब किसके लिए करना है नौकरी, जिसके लिए नौकरी कर रहे थे——! (गला भर आता है।)

शिव : गनेसकी माँ, सारी बातें समझकर भी मुझे ताने मारती हो ! मैंने जान-बूझकर कभी किसीका बुरा नहीं किया—फिर अपना बुरा कैसे करूँगा। (गम्भीर स्वरमें) मैंने नौकरीमें कभी किसीको शिकायतका मौक़ा नहीं दिया। जबतक नौकरी करूँगा, इसी शानसे करूँगा—।

पत्नी : (झल्लाकर) आग लगे तुम्हारी नौकरीमें ! जबसे अच्छा काम करनेका मेडल क्या मिल गया है, (भरे स्वरमें) तुम सिर्फ़ सिपाही रह गये हो; न बाप, न भाई, न आदमी···

शिव : जैसे सिपाही आदमी होता ही नहीं। (रुककर) गनेसकी माँ, ड्रेस लगाकर मुझे अपने ऑफ़िसरके हुकुमके सिवा और कुछ नहीं सुनाई देता—उसके इशारोंके सिवा मुझे कुछ और नहीं सूझता।

पत्नी : तुम्हारी मतिपर तो पत्थर पड़ गये हैं··· (भरे स्वरमें) तभी तो हमारे भागपर भी पत्थर पड़ते जा रहे हैं। (रुककर) ड्यूटीपर जाना ही है तो चले जाना, पहले गनेसको घर ले आओ !

शिव : क्यों ! घरमें लानेसे क्या होगा ?

पत्नी : (भरे स्वरमें) जिस तुलसी-घरके पास उसका मूँडन कराया था, चाहती हूँ, उसीके पास उसके प्राण निकलें।

शिव : तुम पागल हो गयी हो गनेसकी माँ, (अपनेको रोकते हुए) मैं जानता हूँ, कुछ बुरा नहीं होगा।

पत्नी : यह तो तुम पहिले भी कहते थे। बुरा तो मेरा होगा।

शिव : (कुछ तेज़ होकर) और वह मेरा तो कोई है ही नहीं। यह नौकरी मैं अपने लिए कर रहा हूँ। आधा पेट खाकर, ये चिथड़े लगाकर मैं पैसा अपने आरामके लिए जोड़ रहा हूँ। (रुककर) सब यही कहते हैं कि बापको सन्तानका दर्द नहीं होता।

पत्नी : ठीक तो कहते हैं।

शिव : रोज़ हम दो-चार माताएँ ऐसी पकड़ते हैं जो अपनी सन्तानका गला घोंट डालती हैं।

पत्नी : (तेज़ होकर) उन पापी माताओंसे तुम मुझे मिला रहे हो—

शिव : (उसी स्वरमें) फिर तुम नीच पिताओंसे मुझे क्यों मिलाना चाहती हो—मैं···(नेपथ्यसे आवाज़ आती है—शिवदत्त सिपाही घरमें है ?) तुम पैण्टमें बटन टाँको, मैं इनसे मिलकर अन्दर आऊँगा। (खोखली

निगाहोंस शिवदत्तको देखते हुए पत्नीका प्रस्थान । शिवदत्त बाहरकी ओर बढ़ता है) आइए !

मंगतराम : (प्रवेश करते हुए) मैं .... मंगतराम ! मुझे पहचानते हो ! चौक-पर मेरी दूकान है ।

शिव : (टोपी हाथमें खिलाते हुए) जानता हूँ । अच्छी तरह जानता हूँ **(रुकते हुए)** बहुत दिनों आपकी ही दूकानके पास ड्यूटीपर रहा हूँ ।

मंगत : (शिवदत्तको घूरकर) अभी ड्यूटीपर ही जा रहे हो ?

शिव : (टोपी लगाते हुए) जी हाँ ! ड्रेस ही लगा रहा था !

मंगत : (मुँह बनाकर) आज कहाँ लाठी चलाओगे ? किस ग़रीबका सिर फोड़ोगे ?

शिव : (क्रोध पीते हुए) जहाँ हुकुम मिलेगा, वहाँ लाठी चलाऊँगा । **(रुककर, जसे किसीको देख रहा हो)** जो सामने आयेगा उसका सिर फूटेगा ।

मंगत : इस तरह लाठी चलाकर सिर फोड़नेमें तुम अपनी बड़ी बहादुरी समझते हो ?

शिव : सेठजी, मुझे तो हुकुम मानना आता है । यही मैंने सीखा है, चाहे कोई तारीफ़ करे चाहे गालियाँ दें ।**(भारी स्वरमें)** चाहे रोये या गाये !

मंगत : तो तुमने अपने-आपको पूरी तरह बेच दिया है । दिमाग़से काम लेना भी नहीं जानते तुम लोग ।

शिव : दिमाग़से वे लोग काम लेते हैं जो हमें हुकुम देते हैं । हुकुम मानना ही हमारे दिमाग़का काम है ।

मंगत : ये सारी बातें तुम्हें इसलिए सूझ रही हैं क्योंकि हमेशासे तुमने दूसरोंपर लाठी-चलायी है । दूसरोंके बच्चे, दूसरोंके भाई ही तुम्हारे शिकार बने हैं । **(कुछ क्रोधसे)** अगर ख़ुदका कोई रिश्तेदार इस तरह लाठी-चार्जमें घायल होता तो तुम्हें ये बातें न सूझतीं ।

शिव : (भावोंको रोकते हुए) मेरे लिए आप कुछ भी सोच सकते हैं । मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैं आदमी हूँ। दु:ख-दर्द मेरे हिस्सेमें भी पड़ा है ! **(सँभलकर)** आपका कोई रिश्तेदार घायल हुआ है क्या ?

मंगत : हाँ । अभी दो दिन पहले तुम लोगोंने जो लड़कोंके जुलूसपर लाठी-चार्ज किया था, उसमें मेरे भाईका सिर फूट गया है । और भी कई लड़के घायल हुए हैं। सुना है, एक तो बहुत ही ग़रीब बापका लड़का है । जुलूसका लीडर था, इसलिए पहला वार उसीपर पड़ा था—**(क्रोधसे)** सभी कह रहे थे, वह तुम्हारा ही वार था। तुम्हारी लाठीने सबसे ज़्यादा ख़ून बहाया है।

शिव : (भारी स्वरमें) मैंने अपने ऑफ़िसरोंका हुकुम माना है । यदि हुकुम ग़लत है तो ज़िम्मेदार वे हैं । सेठ जी, सिपाही तो मशीन होता है, भले-बुरेकी बात

तो मशीन चलानेवालेसे पूछिए !

मंगत : यही मुझे भी दिखता है कि तुम मशीन हो—तुम्हारे पास दिल है ही नहीं ।

शिव : आप यही समझ लीजिए ! (**रुककर**) आपका भाई किस कॉलेजमें पढ़ता है ?

मंगत : (**अटपटाकर**) मेरा भाई····मेरा भाई कहीं नहीं पढ़ता । उसकी तो साइकिलकी दूकान है । लड़कोंका तमाशा देखने गया था—बेकार सिर फोड़वाकर लौटा ।

शिव : जुलूसमें आगे रहा होगा ! (**सोचते हुए**) आगेके ही पाँच-सात लड़के तो हमारी लाठियोंसे घायल हुए थे । बाक़ी तो भागनेमें गिरे-पड़े हैं ।

मंगत : तो मेरा भाई आगे रहा होगा !

शिव : जुलूस लड़कोंका था, उसमें इनकी क्या ज़रूरत थी ?

मंगत : कुछ साल पहले इन्हींके साथ तो पढ़ता था । उन लोगोंका पुराना लीडर है । (**ऐंठसे**) जो एक बार लीडर, वह हमेशा लीडर !

शिव : मेरे ऑफ़िसर कह रहे थे कि कॉलेजसे दूर रहनेवाले लीडरोंने ही इन लड़कोंको बहकाया है । आपकी बातसे यह सच लगता है ।

मंगत : (**चिढ़कर**) तुम सब बदमाश हो ! यह ख़ून-ख़राबी छिपानेके लिए तुम लोग बहाने ढूँढ़ रहे हो ।

शिव : बहाने हमारे किसी कामके नहीं । अच्छा-बुरा हमारे ऑफ़िसर जानें—हम तो हुकुमके तावेदार हैं । (**रुककर**) मुझे उन घायल लड़कोंके लिए दुःख है जो कालेजके हैं—आपके भाईके लिए नहीं ।

मंगत : वह लीडर था, इसलिए ?

शिव : जी नहीं ! वह विद्यार्थी नहीं है, इसलिए ।

मंगत : मुझे लोगोंने ठीक ही बतलाया था कि तुम जल्लाद हो !

शिव : (**भावुकतासे**) जल्लाद भी तो आदमी होता है । किसी भी आदमीकी तरह उसे भी दुःख-दर्दका अनुभव होता है । (**रुककर**) जल्लाद वह कामसे होता है, मनसे नहीं—आप यह क्यों नहीं सोचते ! ख़ैर···· आप किस कामसे आये हैं, मैं आपसे यह पूछना तो भूल ही गया ।····भाईको घायल करनेको गालियाँ ही देनी हैं या कोई और काम भी है ?

मंगत : (**अचानक स्वर बदलकर**) गालियाँ मेरे भाईकी दवाइयाँ तो नहीं बन सकतीं । मैं भी आदमी हूँ, ग़ुस्सा आ ही जाता है ! (**रुककर**) मैं तो एक दूसरे कामसे आया था ।

शिव : मैं आपका क्या काम कर सकूँगा ।

मंगत : (**दृढ़ स्वरमें**) तुम मेरा काम कर सकते हो । (**टहलते हुए**) मैंने सुना है, सरकार इन लोगोंपर मुक़दमा चलानेवाली है !

शिव : मैं नहीं जानता ! सरकारकी बात सरकार जाने ।

मंगत : पर मैं तो जानता हूँ ! मैं इसी सिलसिलेमें तुम्हारी कुछ मदद चाहता हूँ !

शिव : मेरी मदद !

मंगत : हूँ। हो सकता है, तुम लोगोंके सामने ये लड़के पेश किये जायें और पूछा जाये कि ये लोग जुलूसमें थे या नहीं।

शिव : जिसे पहचानूंगा उसका नाम बतलाऊँगा।

मंगत : मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे भाईको न पहचानो !

शिव : (**आश्चर्यसे**) न पहिचानूं ! क्यों ?

मंगत : इसके बदले तुम्हारी दिवाली जगमगा सकती है।—(**हँसकर**) तुम मुझे जानते हो। मैं मददगारोंको निहाल करता हूँ—यह भी जानते हो !

शिव : (**चिढ़कर**) मुझे खरीदने आये हैं आप ?

मंगत : शिवदत्तजी, आज तो एक देश दूसरे देशको खरीद लेता है, तो आदमीका आदमीको खरीदना कोई बड़ी बात नहीं ! (**शिवदत्तकी मुद्रा देखकर**) पर यहाँ खरीदने-बेचनेकी बात नहीं। बात आदमियतकी है। यहाँ तो तुम्हारी डचूटी भी आड़े नहीं आती !

शिव : (**धीरे-धीरे**) डचूटी आड़े नहीं आती ?

मंगत : बिलकुल नहीं ! सारी चीज छिपाकर रखी जायेगी—

पत्नी : (**प्रवेश करते हुए**) कौन-सी चीज छिपाकर रखी जायगी—(**मंगतको देखकर**) बोलिए ! (**शिवकी ओर मुड़कर**) तुम ही बताओ, कोई गनेसकी बात है !

मंगत : नहीं जी ! बात दूसरी है। शिवदत्त बादमें बतलायेंगे ! मैं अभी चलता हूँ। (प्रस्थान)

पत्नी : बोलो कौन-सी बात है—जो छिपाकर रखी जायेगी।

शिव : इज़्ज़तको बेचनेकी बात है गनेसकी माँ ! (रुकते हुए) इज़्ज़त चाहे न छिपायी जाये पर उसका सौदा तो छिपाना होता है न ?

पत्नी : (व्यंग्य-भरे स्वरमें) तुम्हारा क्या, तुम ड्यूटीकी आड़में सब कुछ छिपा सकते हो। इज़्ज़त हो, इज़्ज़तका सौदा हो चाहे ममता-मोह हो। तुम्हारे लिए कुछ कठिन नहीं।

शिव : (कुछ चिढ़कर) तुम्हारे दिमाग़में तो बस एक ही बात घूम रही है।

पत्नी : तो क्या करूँ। मेरा एक ही बेटा है, मेरी एक ही आशा है, (**भरे स्वरमें, शिवदत्तको देखकर**) मेरा एक ही सहारा है।

शिव : मैंने कहा न कि अशुभ नहीं सोचना, (अटकते हुए) मैं निर्दयी हो सकता हूँ—भगवान् तो निर्दयी नहीं हो सकता।

पत्नी : मैं तो न तुम्हें निर्दयी कह सकती हूँ और न भगवान्‌को ! (रुकते हुए) अपने भागको ही कोसती हूँ।

शिव : भाग कहीं भगवान्‌से अलग हो सकता है गनेसकी माँ···· (**नेपथ्यसे आवाज़ आती है—शिवदत्तजी हैं ?**) तुम मेरा पैण्ट ठीक कर दो ! घरपर लोग चैन नहीं

लेने देंगे। न कामपर जा पाऊँगा न आराम कर पाऊँगा।

पत्नी : (मुँड़ती हुई) तुम्हें तो काममें ही आराम मिलता है। (प्रस्थान)

शिव : (बाहरकी ओर बढ़कर) कौन है?

नागर : (प्रवेश करते हुए) मैं स्थानीय कालेजमें पढ़ाता हूँ। मुझे नागर कहते हैं।

शिव : (हाथ जोड़कर) मेरे लिए आज्ञा!

नागर : एक आवश्यक कामसे आया था। पिछले एक हफ़्तेसे बाहर गया था—इस बीच यहाँ जो हुआ····

शिव : (बीचमें) उसके लिए आप भी मुझे गालियाँ देने आये हैं! ठीक है मैं सुननेके लिए तैयार हूँ, (रुकते हुए) मेरा क्या मैं तो पत्थर हूँ, सिर फोड़ना जानता हूँ, ख़ुद फूटना नहीं जानता।

नागर : अरे····अरे····शिवदत्तजी, आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं। लगता है, कुछ लोग लाठी-चार्जके लिए आपको भला-बुरा कह गये हैं।

शिव : सारा मोहल्ला····सारा शहर मुझे कोस चुका है। (रुकते हुए) और-तो-और, मेरी पत्नीने भी मेरी ड्यूटीपर ताने मारे हैं!

नागर : पर मैं ताने मारने नहीं आया। गालियाँ देना मेरा काम नहीं। मैं तो कुछ बातें जानने आया था। सोचा, जो जगहपर थे उन्हींसे सारी बातें पूछूँ। (रुकते हुए) मुझे भी तो अपने विद्यार्थी प्यारे हैं।

शिव : आपको अगर विद्यार्थी प्यारे हैं—तो फिर ये आपको प्यार क्यों नहीं करते!

नागर : कौन कहता है, वे मुझे प्यार नहीं करते।

शिव : वे अगर आपको प्यार करते तो आपकी बात मानकर शान्त रहते। ये जुलूस····ये हड़तालें····

नागर : शिवदत्तजी, हर उमरमें एक खास ढंगका जोश होता है और उसके लिए यदि सही रास्ता न खोजा गया तो जोश, ज्वालामुखी बनकर फूटता है। हम अपने तरुणोंके जोशको अभीतक सही रास्ते नहीं बतला सके हैं।

शिव : तो ये आपकी कमज़ोरी है!

नागर : आप ऐसा ही समझिए।

शिव : आप अपनी कमज़ोरी लिये इसी तरह बैठे रहेंगे तो तरुणोंका क्या होगा!

नागर : नहीं, हम इस तरह नहीं बैठेंगे। (रुकते हुए) सबसे पहले हमें अपने तरुणोंका विश्वास जीतना है। हमपर-से उनका विश्वास उठ गया है। जब हम विद्यार्थी थे, अपने शिक्षकोंके पास जाते थे तो सन्तुष्ट होकर लौटते थे। आज या तो हम विद्यार्थियोंसे भागते हैं या मिलकर उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाते!

शिव : ये भी तो आपकी ही कमज़ोरी है।

नागर : सभी यही कहते हैं। आजके समाजमें शिक्षक ही तो ऐसा प्राणी है, जिसपर सारे अपराध निर्ममतासे लाद दिये जाते हैं और वह बेचारा मौन होकर लदता जाता है। (रुककर) विरोध करे तो किसके सामने करे। उसके विद्यार्थी थे, वे भी अब फूट रहे हैं।

शिव : विद्यार्थी फूट रहे हैं—यही तो शिक्षकोंकी हार है !

नागर : शिवदत्त जी, बात इतनी सीधी नहीं है ! हमारे शिक्षकोंकी और हम शिक्षकोंकी परिस्थितियोंमें ज़मीन-आसमानका अन्तर है। पर इस अन्तरपर न आप चर्चा कर सकते हैं, न मैं। आप सरकारी नौकर हैं और मैं सरकारी अनुदान पानेवाले महाविद्यालयका नौकर ! (**रुककर भावुकतासे**) इधर पानी बँधा है, उधर खेत प्यासे तरस रहे हैं, कुछ ऐसी ही हालत है हमारी और हमारे विद्यार्थियोंका।

शिव : (**दोहराते हुए**) इधर पानी बँधा है उधर खेत प्यासे तरस रहे हैं—ठीक कहते हैं आप ! इस ड्यूटीने बुरी तरह बाँध दिया है—।

नागर : ड्यूटीमें बँधना तो अच्छी बात है। हाँ, जो ड्यूटीमें बाँधता है उसकी सूझ-बूझपर सारा दारोमदार होता है। (**सोचते हुए**) पर हमारे साथियोंमें तो कुछ ऐसे मक्क़ार भी है जिन्हें ड्यूटीका भी लिहाज़ नहीं।

शिव : यानी पढ़ानेवालोंमें ?

नागर : जी हाँ ! कुछ स्वार्थी लोगोंने हम सभी शिक्षकोंको बदनाम किया है।

शिव : क्या वे ठीक चीज़ नहीं पढ़ाते ?

नागर : कॉलेजोंमें पढ़ाईसे अधिक निर्देशनका महत्त्व होता है। हमारे बहुत-से साथी विद्यार्थियोंको पथभ्रष्ट करते हैं, इन्हें सही रास्ता नहीं बतलाते। अपने स्वार्थके लिए राजनीतिक दलोंके चंगुलमें फँसते हैं और अपने साथ हमारे इन सीधे-सादे विद्यार्थियोंको ले डूबते हैं।

शिव : तो यहाँ भी ऐसे लोग होंगे ?

नागर : हैं। एक तो सरकारी कॉलेजमें ही हैं। सुना है, किसी मठाधीशके भाई हैं। (**दाँत पीसकर**) नीच ! सारी मठाधीश राजनीति कॉलेजमें ठूँस रहा है।

शिव : और आप लोग चुप हैं !

नागर : यह हमारे पेशेका दोष है। (**रुककर**) पर वह समय जल्दी आयेगा जब हमारे विद्यार्थी इन्हें पहचानकर इनका उपचार करेंगे। (**रुककर**) अभी तो मैं अपने विद्यार्थियोंकी चिन्तामें यहाँ आया हूँ।

शिव : मैं इसमें आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ ?

नागर : इनपर सरकार मुक़दमा चला रही है। मैं सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि आप अपने बयानमें इनपर कमसे कम दोष लगायें ! (**अटकते हुए**) चाहे आपको थोड़ा झूठ भी बोलना पड़े पर कोशिश कीजिएगा, इन्हें अधिक दण्ड न मिले। (**साँस लेकर**) बेचारे····!

शिव : आपको किसी ख़ास विद्यार्थीसे तो हमदर्दी नहीं ?

नागर : मुझे सभीसे हमदर्दी है। मुझे यहाँ अभी दो माह भी तो पूरे नहीं हुए हैं—मैं तो सबको ठीकसे पहचानता भी नहीं। पर हमारा सम्बन्ध ही हमारी पहचान है। (**रुककर**) सारी बातें सुनकर मुझे एकसे कुछ अधिक हमदर्दी हो गयी है—जिसे सबसे ज्यदा चोट आयी है !

शिव : (**भयभीत स्वरमें**) उसका नाम जानते हैं ?

नागर : उसे लोग पाण्डे कहते हैं पर पूरा नाम जाननेकी मैंने कोशिश ही नहीं की । कल देखा था–सिरपर पट्टी बँधी थी और कई दिनों बाद उसकी आँख लगी थी । (**शून्यमें देखते हुए**) शान्त और तेजवान चेहरा ! सुना है, किसी ग़रीब बापका इकलौता बेटा है !

शिव : हुँ । इकलौता बेटा है !

नागर : विद्यार्थियोंका अगुआ है–इसलिए आगे था ! लोगोंने मना किया तो बोला–पीछे रहूँगा तो लोग कहेंगे कि ग़रीबका बेटा कायर है । उसका नारा था–ग़रीब कायर नहीं होते !

शिव : हुँ । ग़रीब कायर नहीं होते ।

नागर : पर इसका यह अर्थ नहीं कि सभी ग़रीब साहसी और सभी अमीर कायर होते हैं । (**रुककर**) मैं तो उसकी बात दोहरा रहा हूँ । मैं चाहता था कि आप उसे देखने चलते ! क्योंकि—(**अचानक रुक जाता है ।**)

शिव : क्योंकि वह मेरी लाठीसे ही घायल हुआ है ?

नागर : हाँ इसीलिए । आप मिल लेंगे तो उसे बड़ी शान्ति मिलेगी । उसके माँ-बापके मनसे मैल हट जायेगा । उसके बाद और बातें आपसे पूछूँगा ।

शिव : आप उसके माँ-बापसे मिले हैं ? (**नागर नकारात्मक सिर हिलाते हैं**) कौन जाने उनके मनमें कितना मैल है और वह कैसे हटेगा ।

नागर : जो हो, आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा । (**याचनाके स्वरमें**) नाहीं मत कीजिए ! आपको इसके लिए किसीकी आज्ञा नहीं लेनी होगी ।

शिव : (**भारी स्वरमें**) चलता हूँ । मन साफ़ हो जायेंगे तो सभीको शान्ति मिलेगी । (**घूमते हुए**) ड्यूटीपर भी उसी तरफ़से निकल जाऊँगा । ड्रेस लगाकर आता हूँ–आप बैठिए । (**अन्दरकी ओर प्रस्थान । नागर कुरसीपर बैठकर उत्सुकतासे यहाँ-वहाँ देखते हैं । तभी बाहरके दरवाज़ेसे सिरमें पट्टी बाँधे एक तरुण प्रवेश करता है । नागरको देखकर तरुण और तरुणको देखकर नागर चौंकते हैं ।**)

नागर : (**आश्चर्यसे खड़े होते हुए**) पाण्डे····तुम···यहाँ···कैसे ?

पाण्डे : (**अटकते—थके स्वरमें**) यों···· ही··· सर !

नागर : (**पाण्डेको पकड़कर खाटपर बठाते हुए**) पहले यहाँ बैठो ।····(**पाण्डे बैठता है**) इन्हीं शिवदत्त सिपाहीसे मिलने आये हो ?

पाण्डे : (**अटकते हुए**) जी···इन्हें आप···?

नागर : (**बीचमें**) मैं जानता हूँ । इन्हींकी लाठीसे तुम घायल हुए हो, यह भी जानता हूँ । पर इसमें इनका क्या दोष ! इनपर ड्यूटीका नशा था और तुमपर तरुणाईका । दो नशे जब टकराते हैं तो कुछ-न-कुछ अनर्थ होता ही है । (**रुककर**) सभी

ने इन्हें कोसा है—बेचारे बड़े दुःखी हैं—तुम इन्हें कुछ न कहना।

पाण्डे : मैं तो····आशीर्वाद लेने आया हूँ।

नागर : (**आश्चर्यसे**) आशीर्वाद ! (**नागरकी आँखोंमें देखकर सिर हिलाता है**) पर तुम्हें डॉक्टरने आने कैसे दिया ?

पाण्डे : (**आँख चुराकर अटकते और पीड़ा दबाते हुए**) चोरीसे भाग आया हूँ—रिक्शेवाला दरवाजे तक छोड़ गया है···· (**सिर उठाकर**) नाराज़ न होइए—मोहका मारा हूँ—।

नागर : मोहके मारे···हो····

शिव : (**प्रवेश करते हुए**) चलिए···· (**पाण्डेको देखकर अचानक रुक जाता है। भाव-भरे स्वरमें**)·········ब··· ब··· बे····बेटा···· तुम····तुम····। (**गला भर आता है, उसी समय पाण्डे खाटसे उठकर शिवके पैरोंपर गिरनेकी कोशिश करता है। शिव पकड़कर गले लगा लेता है**) मेरे लाल····मेरे····बेटे····

पाण्डे : (**भरे स्वरमें**) ·········बा····बू····जी···· ! (**नागर भौंचक्का यह दृश्य देखता है। कुछ क्षण मंचपर मौन रहता है।**)

नागर : शिवदत्तजी, ये पाण्डे आपके ही बेटे हैं।

शिव : (**पाण्डेका सिर सहलाते और भावविभोर होकर देखते हुए**) जी····मेरा बेटा गनेशदत्त यही है—बाहर लोग इसे पाण्डे कहते हैं।

नागर : आप जानते थे कि आपकी लाठीसे इन्हें चोट आयी है ?

पाण्डे : (**अटकते हुए**) नहीं···सर··· मुझे बाबूजीने नहीं मारा—वे मुझे कभी नहीं मारते····आज तक इन्होंने मुझे डाटा भी नहीं—।

शिव : (**भरे स्वरमें**) इसे ड्यूटीपर के सिपाहीने मारा था···। ग़रीब बाप क्या हाथ उठायेगा लायक़ बेटेपर····। (**ऊँचे स्वरमें**) गनेसकी माँ, तुम्हारा गनेस आया है! हाँ गनेस···!

पत्नी : (**पागलोंकी तरह दौड़कर प्रवेश करती हुई**) बेटा!···· गनेस····(**नागरको देखकर ठिठकती है, फिर गनेससे लिपट जाती है! स्नेहातिरेकसे उसे दुलारते हुए**) आ गया····! मेरे लाल!····बच गया····तू ····तेरे बाबूजी तो चाहते थे कि तू न बचे! प्यारका ढोंग रचते हैं····(**सिर देखकर**) कैसा मारा है मेरे नन्हेंको····! (**रोकर**) हाय राम, इन्हें दया भी नहीं आयी····!

पाण्डे : माँ····। माँ····! बाबूजीको दोष मत दो! मुझे उनकी ईमानदारीपर घमण्ड है।

पत्नी : (**रोकर**) यही घमण्ड तो हमें खा गया। इन्हें कुछ लगे तब तो····!

शिव : प्रोफ़ेसर साहब, मुझे तो लग रहा है कि हम सब बँधे हैं ·· (**भरे स्वरमें**) हमारे प्यासे खेत कहीं सूख न जायें!

नागर : भगवान् निर्दयी नहीं होता। प्यासे खेत सूखेंगे नहीं—मेरा विश्वास है।

(**पाण्डे माँ से लिपटा है—माँ रो-रोकर उनका सिर सहला रही है। शिव सिरकी टोपी सँभालकर नागरको देखता है और परदा गिरता है।**) ■■

धारावाहिक उपन्यास

[प्रस्तुत है सुप्रसिद्ध
कथाकार कृश्नचन्दरका
नया उपन्यास : एक पत्थर,
दो पत्थर, तीन पत्थर।
पूरा उपन्यास तीन भागोंमें
विभाजित है—यह पहले भागका पहला हिस्सा है।....
एक अँगरेज़ लड़की है जो एक भारतीय डॉक्टरसे प्रेम
करती है... कहानीकी शुरूआत यही है।
पाठकोंकी सुविधाके लिए यह बतलाया जा सकता है कि
दूसरे भागमें भी एक कोई लड़की है
और तीसरे भागमें भी....
लेकिन-इस भारतीय डॉक्टरका भाग्य
एक लगातार घूमता आवर्त है
और इस आवर्तकी
ओर देखना ही
इस उपन्यासको
पढ़ना है—]

कृश्नचन्दर

■

एक पत्थर
दो पत्थर
तीन पत्थर

देअर इज ए टैंजेण्ट इन ए पैराबोला····इन ए पैराबोला····इन ए राबोला····बोला····बोला····वह बोला, "अँधेरा ज़्यादा है, और मेरे दिमाग़में चूँटियाँ भर गयी हैं शायद, हज़ारों-लाखों नन्हीं-मुन्नी चूँटियाँ मेरे दिमाग़के कोने-कोनेमें रेंग रही हैं। मेरा दिमाग़ शहदका एक छत्ता है जो मेरे शरीरसे लटका हुआ है। वे काली-साँवली-मटियाली चूँटियाँ लाखों-करोड़ों, एक-दूसरेपर पिल पड़ती हुई मेरे दिमाग़के प्रत्येक छेदमें पहुँच गयी हैं और अब वे अपने नन्हें-मुन्ने डंक उठाकर मेरे दिमाग़को खा रही हैं। एक साथ एक लाख सुइयाँ चुभ रही हैं—उफ़!"

कँवलने घबराकर अपने सरपर हाथ फेरा! उसकी लम्बी-लम्बी आतुर उँगलियाँ उसके घने बालोंमें घूमने लगीं और कँवलको लगा जैसे उसकी उँगलियोंपर भी वही चूँटियाँ चढ़ी जा रही हैं—सैकड़ों, हज़ारों चूँटियाँ रेंगती-बढ़ती चली आ रही हैं। घबराकर उसने हाथ झटक दिये। एक पलके लिए एक सौ या एक हज़ार चूँटियाँ उसकी उँगलियोंसे उतरकर फ़र्शपर गिर गयीं और अब फ़र्शपर चलती हुई, अपनी नन्हीं-मुन्नी काली टाँगोंसे चलती हुई अब वे उसकी टाँगोंकी तरफ़ आ रही थीं। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे कुछ पलोंमें वे उसके पैरोंपर चढ़ आयेंगी और फिर उसके सारे शरीरपर रेंगना शुरू कर देंगी! उसके शरीरका कोई अंग चूँटियोंकी पहुँचसे नहीं बचेगा।

वह जल्दीसे बिस्तरसे उठ बैठा और दो लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ कमरेकी खिड़की तक पहुँच गया और खिड़कीके पट खोल दिये। बर्फ़ीली हवाका एक तेज़ झोंका अन्दर आया और उसके दिमाग़की सारी चूँटियोंको उड़ाकर ले गया। वे सब चली गयी थीं—उसके दिमाग़से, हाथोंसे, हाथोंकी उँगलियोंसे फ़र्शसे, पाँवसे, कहींपर कोई एक चूँटी भी रेंग नहीं रही थी—सब गयीं। अचानक उसे बड़ा इतमीनान-सा हुआ—उसने बर्फ़ीली हवाका लम्बा घूँट भरा, उसे अपने फेफड़ोंमें उतार दिया—फिर कुछ देर रोककर बाहर निकाल दिया। अब उसके फेंफड़े भी साफ़ थे, शरीर हलका मालूम हो रहा था—जैसे रेतमें दबे हुए काग़ज़पर-से रेत उड़ जाये। कुछ समय वह उस खुली खिड़कीके सामने खड़ा फड़फड़ाता रहा और काँपता रहा और किंग्सटन-गार्डनकी झिलमिलाती हुई पीली बत्तियोंको कँपकँपाते देखता रहा—ये रोशनियाँ, जो रातके अँधेरे गिरजेमें प्रार्थनामें लीन कुँवारियोंके पीले-पीले मुखड़ोंकी तरह चमक रही थीं। लन्दनका यह भाग कुलाबाकी एक गली जान पड़ता है। रातमें बहुत-से शहर एक-जैसे लगते हैं—जैसे बहुत-सी स्त्रियाँ एक-जैसी लगती हैं, जैसे बहुत-सी सड़कें एक-सी लगती हैं। वही साँवले सीमेण्टका फ़र्श, कोलतारका ब्लू-ब्लैक, किनारोंपर लोहेके खम्भे रोशनीकी कन्दीलें लेकर झुके हुए, एक ही स्थानपर खड़े हुए। कोई शराबी घर जाता हुआ, कोई बॉबी टहलता हुआ, कोई चोर माल समेटकर फिसलता हुआ, कोई

अख़बार-गाड़ी दुनिया भरकी गन्दी ख़बरोंका कचरा लादे हुए गुज़र रही है···इसने उसको क़त्ल कर दिया, उस देशने इस देशपर आक्रमण कर दिया, इतने भूकम्प आये, कितने हवाई-जहाज़से मरे, चालीस वर्षीया रूबी कैनेथ एक अठारह वर्षीय लड़केके साथ भाग गयी, और वह औरत जो पच्चीस वर्षोंसे अपने पतिके साथ रह रही है वह कोई समाचार नहीं! कोई अच्छा समाचार, समाचार नहीं है। सवेरेके समाचार-पत्र देखकर नाकपर रूमाल रखनेको जी चाहता है! कुछ लोगोंमें आदत होती है कि स्नान-गृहमें घुसकर अख़बार पढ़ते हैं, कदाचित् समाचार-पत्र पढ़नेका उचित स्थान वही है—कमोड! सहसा उसकी नजरें सामनेकी बिल्डिंगके पोर्चपर गयीं—जैनेथ डिपार्टमेण्ट स्टोरमें काम करनेवाली मिस क्लारा शूज़मेल एक पीले लम्बे कोटमें ठिठुरती हुई अपने प्रेमीको विदा कर रही है—अवश्य इस समय तीन बजे होंगे, इस समय उसका बुड्ढा प्रेमी हैनरी डी कोर्टलैण्ड वापस अपने घर जाता है—रातके तीन बजे—हर रोज़···क्या कहता होगा अपनी पत्नीसे? कितना ही चालाक पुरुष क्यों न हो, प्रति दिन नया बहाना नहीं बना सकता। गणित-शास्त्रके नियमानुसार यह असम्भव है और स्त्रियाँ कोई काम गणितके सहयोगसे नहीं करतीं। सम्भव है, उसके घरमें कोई स्त्री ही न हो—यानी कोई पत्नी न हो, फिर भी उसके फ़्लैटमें कोई तो होगा जिसके सामने उसे उत्तर देना पड़ता होगा। हो सकता है, कोई भी न हो, फिर भी कुछ तो होगा, कोई साथी न सही घरमें फ़रनीचर तो होगा, सोफ़ा, या पानीका जग, या तिपाईपर रखा हुआ एश-ट्रे—ये चीज़ें भी पत्नियोंके समान घरमें रखी-रखी आदमीपर अपना अधिकार और क़ब्ज़ा जताने लगती हैं—। घरमें कोई न हो लेकिन देरसे आनेपर पानीके जगकी सूरत ही बदल जाती है—कैसे गुस्से-भरी नज़रोंसे मेरी तरफ़ देखता है—इतनी देर कहाँ रहे?—सोफ़ेपर बैठो तो लगता है उसके ख़ाली भागने मुँह दूसरी ओर कर लिया है। एशट्रे-में सिगरेट बुझानेके लिए हाथ बढ़ाओ तो उसके खुले ख़ाली मुँहसे ऐसी गालियाँ-सी निकलती जान पड़ती हैं—"उस निगोड़ी एश-ट्रेमें सिगरेट बुझाओ—अब मेरे पास क्यों आये हो रातके तीन बजे?···दिन-भरसे ख़ाली मुँह उठाये-उठाये तुम्हारा इन्तजार करती रही हूँ—पर तुम्हें क्या?" गुस्से और दुःखसे पूरी एश ट्रे सुलगती हुई मालूम होती है। लोग समझते हैं कि चीज़ें ख़रीदकर उन्होंने उनपर क़ब्ज़ा कर लिया है—होता यह है कि चीज़ें धीरे-धीरे आदमीपर अधिकार कर लेती हैं, फिर वह उनका दास हो जाता है—चाहे वह एश-ट्रे हो, या फूलदान हो मोटर कार हो या बेड-रूमकी वह पुरानी कुरसी हो जिसपर पिछले बीस वर्षोंसे दिनके कपड़े उतारकर रख दिये जाते हैं—वे सब अपना अधिकार तुमपर जताने लगते हैं। कँवलने डालीके कुछ चित्र देखे थे जिसमें उसने निर्जीव वस्तुओंको आत्मा और सजीवता प्रदान की थी—। असत्य होनेपर भी उसमें कुछ तो

सत्य है ही—डाली कभी-कभी बड़े पतेकी बात कह जाता है—अपने चल-चित्रोंमें।

कँवलका सारा शरीर अब बर्फ़ीली हवामें सुन्न हो गया था ! धीरेसे उसने खिड़की बन्द कर दी—थोड़े दुःखके साथ और फिर वापस अपने बिस्तरपर आ गया जहाँ एक ओर जूली अचेत सो रही थी ! जूली बहुत अचेत सोती थी, ऐसी गहरी नींद कि अगर आप उसका खून भी कर डालें तो उसे पता न चले ! अनेकों बार कँवलने जूलीकी गहरी नींदका सहारा लेकर उसकी हत्या करनेकी बात सोची भी थी ! कितना आसान होगा जूलीकी हत्या कर देना—उसे पता भी न चलेगा ! जब वह आँख खोलेगी तो किसी दूसरे संसारमें होगी ! कैसी हैरान होगी वह उस समय ? कँवल जूलीके चेहरेपर फैलते हुए आश्चर्यका अन्दाज़ा करके मुसकराने लगा। जूली स्वप्नोंमें बड़बड़ायी—कँवलने हाथ बढ़ाकर जूलीको थोड़ा-सा थपका दिया। थोड़ी देर तक वह बिस्तरपर बैठा-बैठा अँधेरेके उस हालेको देखता रहा जो उसके बिस्तरसे खिड़की तक एक पैराबोला-सा बनाता था—जिसमें खिड़कीसे बाहर गुज़रनेवाली मोटरोंकी बत्तियाँ एक टैंजेण्टके समान गुज़र जाती थीं····ए टैंजेण्ट इन ए पैराबोला····या एक खंजर रोशनीका जूलीके चेहरेपर टँगा हुआ—हमेशा यह रोशनीका खंजर जूलीके चेहरेके ऊपरसे गुज़र जाता था और वह बेसुध-अचेत गहरी नींदमें खोयी हुई सोती रहती थी ! यह खंजर कभी नीचे गहरा नहीं उतरा—क्यों नहीं उतरा उसके दिलके अन्दर—रोशनी भी हत्या कर सकती है ! 'लाज़ार' की किरणके समान, रक्तका एक बिन्दु बहाये बिना उसकी हत्या कर सकती है—पर वह जूलीकी, यत्न करनेके बाद भी, आजतक हत्या नहीं कर सका, न रोशनीकी सहायतासे, न अँधेरेके सहयोगसे। शायद मैं बुज़दिल हूँ—कँवलने सोचा।

बाहरकी रोशनीकी एक लहरिया जूलीके चेहरेसे गुज़र गयी। कुछ क्षणोंके लिए जूलीका चेहरा रोशनीमें दमक उठा—फिर रोशनी चली गयी—मगर कँवलके मस्तिष्कमें वह चेहरा अभीतक उसी तरह दमक रहा था—किसी छोटे-से बच्चेकी जेबमें काँचके बण्टेकी तरह ! उसने जूलीके चेहरेको काँचके बण्टेके समान उलट-पलटकर देखा ! परफ़ेक्ट··· पूर्ण-चेहरा—यूनानी मूर्ति-कलाके क्लासिकी नख-शिख····जब कि जूली यूनानी नहीं थी—एंग्लो-सैक्सन थी और यदि वह जीवित न होती तो उस समय बिस्तरपर उसे इस प्रकार लेटे देखकर उसके चेहरे और उसके शरीरकी वक्रता और गठनपर ध्यान देकर यही आशंका होती कि यह कोई स्त्री नहीं है—किसी प्राचीन यूनानी मूर्तिकारकी अनुपम कृति है ! खाल संगमरमरके समान स्वच्छ और उसी समान मुलायम—और उतनी ही कठोर ! कँवल जूलीके शरीरपर हाथ फेरते हुए अपने-आपसे कहने लगा—मांस तो नरम होता है और कमज़ोर होता है—पर इस त्वचाके अन्दर पत्थरकी कठोरताकी निर्दयी-भावना मौजूद है जैसे जूलीकी त्वचाने उसके हृदयकी कठोरता उधार ले ली हो ! लेकिन शुरू-शुरूमें

इसी मुखड़ेने उसे बहका दिया था, इसी शरीरने, इसी बदनके खतरनाक खम उसके मस्तिष्कको डस गये थे। उसे वह रात याद थी—हैनरी क्यूइकवर्नने उसे अपनी पैंतीसवीं वर्षगाँठपर अपने फ़्लैटमें बुलाया था! वह सेण्ट जार्जेज़ अस्पतालमें एक मनोवैज्ञानिकके पदपर काम करता था और उसी अस्पतालमें कँवल भी प्लास्टिक सरजरीके विभागमें एक डॉक्टर था! हैनरी बहुत सुन्दर और मनोहर था और मनोविज्ञानका विशेषज्ञ होनेके नाते लन्दनके ऊँचे-ऊँचे घरों तक उसकी पहुँच थी और खूबसूरत और कुँवारा होनेके कारण अनेकों स्त्रियाँ उसपर मरती थीं! हर बातका कोई-न-कोई कारण होता है और बिना कारण आजकल कुछ नहीं होता—प्रेम भी नहीं होता, आकाश भी नज़र नहीं पड़ता, गीत भी सुनाई नहीं देते, फूल भी नहीं महकते, रोटी भी नहीं मिलती, मौत भी नहीं आती—इसका कारण क्या है?—कँवलने सोचा—कहींपर तो कोई संसार ऐसा होना चाहिए जहाँ सब कुछ अकारण होता हो—मित्रता अकारण, प्रेम अकारण···, सूरजपर ऊँगली रख दो तो ठण्डी नरम रोशनी वर्षाकी फुहार समान फूटकर बह निकले—मनको भस्म करनेवाली गरम रोशनी नहीं, ठण्डी और नरम, जैसे कभी जूलीकी मुस्कान हुआ करती थी—जाने अब जूलीको क्या हो गया है!

वर्षगाँठकी उसी शराबी पार्टीमें हँसी, ठठोल और हड़बोंगसे भरी-पुरी पार्टीमें हेनरीने जूलीसे उसका परिचय कराया था—बिलकुल नाम भर-सा परिचय, क्योंकि उन दिनों जूली हेनरीकी अभिन्न मित्र थी! वह किसी साबुन बनानेवाली कम्पनीकी मॉडल-गर्ल थी! शैंपन-शैम्पूके विज्ञापनोंमें जूलीके चित्र बहुधा वह देख चुका था—उन दिनों वास्तवमें जूलीकी अलकें सुन्दर थीं—वह अवकाशके क्षणोंमें फोटोग्राफ़रोंकी मॉडल-गर्ल भी थी! अब उसने साबुन बनानेवाली कम्पनीसे इस्तीफ़ा दे दिया था और फ़्री-लेंस मॉडल-गर्ल हो गयी थी। फ़िल्मोंमें भी उसे काम मिलने लगा था! एक जैगर भी उसके पास आ गयी थी! कपड़ोंका वार्ड-रोब समयानुसार रखती थी! इस समय वह एक पन्नेके समान जगमगा रही थी! कँवल उसे पहली नज़रमें ही देखकर उसपर मोहित हो चुका था—पर जूली 'हल्लो' भर कहकर पाससे गुज़र गयी थी! जूलीने उसपर ऐसी नज़र डाली थी जैसे वह कोई मनुष्य न हो, नाग-फणीकी झाड़ी हो! केवल ऊपरी, उचटती हुई घृणा तथा तिरस्कारसे छलकती हुई नज़र! जूलीको रंगोंसे विशेष लगाव था! हर वह पुरुष जिसके शरीरका रंग गोरेके सिवा कुछ और होता जूलीकी नज़रोंमें घृण्य था! थोड़ा-सा 'फ़नी' भी···गोरे रंगके सिवा उसे बाक़ी सब रंग मानव-शरीरपर 'फ़नी' लगते थे! वह उनसे घृणा तो नहीं करती पर ये लोग वास्तवमें दयाके क़ाबिल हैं! ये एशियाई काले और पीले, भूरे और मटियाले, पीले और काई समान और कुछ-कुछ नीले भी—ये सब रंग दीवारोंपर अच्छे लगते हैं मगर मानवीय कायापर 'फ़नी'···शायद भगवान्ने किसी

उपहास-जनक क्षणमें इन लोगोंको ऐसा बना दिया होगा। इन लोगोंको देखकर सहसा हँसी छूट जाती थी। कुछ थोड़े-से मूर्ख भी दिखाई देते हैं ये सब एशियायी और अफ़्रीकी और दक्षिणी-अमरीकावासी,… आई ओ! मुझे ऐसी बातें कहना नहीं चाहिए! सुना है, इन लोगोंको कहीं-कहीं आज़ादी मिल गयी है और अपने अपने देशोंमें उनका कुछ मान भी है—मगर माई डीयर, लुक एट देम जस्ट लुक एट देम हाऊ फ़नी! जूली दूरसे मेरी तरफ़ देखकर हँस रही थी! उसके चाहनेवालोंने उसे अपने घेरेमें ले लिया था और कॉकटेलके चमकीले जाम आपसमें टकराकर प्यानोंके स्वरोंके समान खनकते थे! मेरा चेहरा लाल हुआ जा रहा है, लालिमा फैलती जा रही है गुस्सेकी! आँखोंमें लाल बदलियाँ झलक रही हैं! समझती क्या है यह जूली—यह सफ़ेद लड़की! गोरा नहीं हूँ तो क्या हुआ, इतना काला भी नहीं हूँ—गेहुँआ रंग अवश्य है मेरा और नाक-नक़्शा हेनरीसे अगर अच्छा नहीं है तो बुरा भी नहीं है बल्कि हेनरीके चेहरेमें तो एक विचित्र प्राचीन घरानोंवाली कोमलता है—और मैं चाहूँ तो अब भी दो अँगरेज़ोंके सर तोड़ सकता हूँ—ही, ही, ही! दूरसे मेरी और जूलीकी नज़रें मिलती हैं—दो शत्रुओंके समान—नज़रोंमें खंजर कौंद जाते हैं! तुम्हारी इस कोमल पाइन गिलासकी काँचकी डण्डीकी-सी कोमल गरदनको मैं एक झटकेसे तोड़ सकता हूँ? मिस जूलिया क्राम्बी! कँवलकी नज़रोंको भाँपकर, किसी अनजाने [illegible] विचार करके जूली हँसते-हँसते सहसा रुक जाती है फिर ज़ोर-ज़ोरसे हँसने लगती है! उसके प्रेमियोंका घेरा उसके साथ-साथ हँस रहा है, कुत्ते…! अब अगर इस समय मेरे हाथमें एक मशीनगन होती सबको भून डालता, एक-एकको भून डालता! बर्फ़की डलीपर सुनहरी ह्विस्कीको फिसलते देखकर मैं अपने गिलाससे एक घूँट पीकर मुसकराता हूँ—मि० कँवलप्रसाद सकसेना! इस सभ्य, अमीर और देखनेमें ख़ुशहाल नज़र आनेवाली पार्टीमें खड़े होकर तुम कैसी भयानक बातें सोच रहे हो! तुम्हारे चेहरेके भोले-भाले कोण, होठोंकी मीठी मुसकान और कपड़ोंकी सभ्य सज-धजसे कौन यह सोच सकता है कि तुम्हारे अन्दर कैसी भयानक भावना खौल रही है! एक देव और एक दानवमें बहुत कम अन्तर है—केवल भावनाकी एक पर्तका—या नज़रोंकी एक कटारका…या भावनाकी एक धारका…कितनी जल्दी मनुष्य बदल और पलट सकता है—अगर उसे सदाचार समाज, जीवन-क्रम, विद्या और सभ्यताके लंगरोंसे बाँधकर न रखा जाये—तो वह पशु-समान है—बिलकुल जानवर है अभी तक…!

कँवलके शरीरमें एक हलकी झुरझुरी-सी आयी—उसने एक घूँट और लिया और एक पतले ब्लेडकी तरह कमरेकी भीड़को चीरता हुआ जूली तक पहुँच गया और उससे कहने लगा, "आपके लिए एक टेलीफ़ोन-कॉल है!" और जब जूली उसको सरसरी धन्यवाद देकर दूसरे कमरेमें जाने लगी जहाँ टेलीफ़ोन रखा

था तो वह भी उसके पीछे-पीछे हो लिया ! जूलीके सरसराते हुए कपड़े उसके कानोंमें मीठी सरगोशियाँ कर रहे थे। दूसरे कमरेमें पहुँचकर जब जूलीने टेलीफ़ोनके चोंगेपर हाथ रखा तो उस समय तक कँवल उसे अपनी बाँहोंमें ले चुका था !

उसने धीरेसे कहा, "टेलीफ़ोनपर कोई नहीं है !"

जूली अपने-आपको कँवलकी बाँहोंमें पाकर थोड़ा-सा ठिठकी फिर भड़ककर कहने लगी, "मुझे फ़ौरन छोड़ दो !"

"सुनो, बाहरसे संगीतकी धुनें आ रही हैं, उन लोगोंने नाचना शुरू कर दिया है, मान लो कि यह मेरे शरीरकी कॉल है—क्या तुम इसे सुन नहीं सकतीं—वह टेलीफ़ोन जो एक शरीरसे दूसरे शरीर तक जाता है !"

"मैं अभी भी रिसीवर नीचे पटक सकती हूँ !"

"वह तो ठीक है, पर सत्य विचारोंसे भिन्न भी होता है ! तुम इस समय मेरी बाँहोंमें हो, मैं तुम्हें अपनी बाँहोंमें मसल सकता हूँ—अगर तुम चीख़ोगी, तो इस वक़्त सबके सामने एक विचित्र-सा दृश्य होगा !"

"तुम चाहते क्या हो ?"

"तुम्हारे साथ एक डान्स !!

"तो बाहर चलो !"

"बाहर नहीं, यहीं, हेनरीके स्टडी-रूम-में····यह जगह बड़ी शान्त है, परदे पड़े हुए हैं, रोशनियाँ मद्धिम हैं, तुम मेरी बाँहोंमें हो !"

उसने कुछ पलोंके लिए अपनी आँखें बन्द कीं फिर जैसे उसने कोई फ़ैसला कर लिया ! वह बाहरसे आनेवाली संगीत-लहरीकी धुनपर मेरी बाँहोंके घेरेमें नाचने लगी····ठण्डी और हिम समान, काठकी पुतली, संगीतकी डोरीसे बँधी मेरी बाँहोंमें थिरक रही थी !

"हल्लो आइस-बर्ग !" मैंने उसकी आँखोंमें देखकर कहा, कुछ नीली, कुछ हरियाली-सी आँखें। "मेरे पास ऐसी ही आँखोंवाली एक बिल्ली थी", मैंने जूलीसे कहा !

जूली ख़ामोश रही !

"हेनरी तुमसे शादी नहीं करेगा, तुम उसकी बारहवीं गर्ल-फ्रेण्ड हो, "मैंने उसे बताया !

वह फिर भी ख़ामोश रही।

"दस मिनिटका लम्बा रेकार्ड है। मैंने ख़ुद रेकार्ड-प्लेयरपर लगाया है ! ऐसा लम्बा डान्स ख़ामोशीमें कैसे बीतेगा ?— जूली डार्लिंग, तुम्हारा काठका-सा ठण्डा शरीर मेरी बाँहोंमें एक भारी सलीबके समान लटक रहा है। कुछ तो पिघलो—भीतरसे चाहे घृणा ही करती रहो, बाहर ही मुसकराती रहो—केवल दस मिनिटके लिए किसी दूसरी भावनाका आवरण ओढ़ लो—कोई दूसरा ड्रेस, दस मिनिटके बाद उसे उतार फेंकना—मगर ये दस मिनिट तो मेरे अच्छे बीत जायेंगे। इस सुन्दर झूठको, जिसका नाम सभ्यता है, उसे वास्तवमें इन्हीं क्षणोंके लिए रखा जाता है—तुम मुझसे घृणा करती हो—मैं तुमसे—तुमसे नहीं, तुम्हारी इस अन्धी भावनासे, तुम्हारे शरीरसे नहीं—तुम्हारी सुन्दरतासे

नहीं, तुम्हारे यौवनसे नहीं, तुम्हारी अलकोंको सुगन्धसे नहीं, तुम्हारी इस डोलती हुई जवानीसे नहीं, तुम्हारी खाली खोपड़ीसे जो हर उस मनुष्यको तुच्छ समझती है—अपनेसे नीच और जाहिल और कमीना—जिसका रंग तुमसे भिन्न है। खुली बात है—इस प्रकारकी कोई बहस मेरे और तुम्हारे बीच नहीं हुई मगर मैंने तो वह नज़र भी सुन ली जो तुमने पहली बार मुझपर डाली और मैं उन नज़रोंका अपमान सहन नहीं कर सका—आखिर नज़र भी तो बोलती है, मनुष्यकी केवल ज़बान ही नहीं बोलती—नज़र भी बोलती है, चेहरेका हर आकार बोलता है, माथेकी प्रत्येक रेखा बोलती है, तुम्हारे शरीरका प्रत्येक अधीर अंग-अंग बोलता है! तुम अवश्य चाहती हो कि ये दस मिनिट, दो मिनिटमें बीत जायें—मगर यह मुश्किल है, असम्भव है! दस मिनिट दस मिनिटोंमें ख़त्म होंगे, समयका एक-एक क्षण अपनी बारीपर ट्रेण्ड फ़ौजियोंकी तरह मार्च करेगा। हर हरकत अपनी जगह विशेष और अटल है। वक़्त इस धुनकी लयकी तरह है—यह लय कभी नहीं बदलती, वक़्त कभी नहीं बदलता, सिर्फ़ वह बदलते हैं जिनको वह छूता है! देखो, तुम मेरी बाँहोंमें हो और हम दोनों वक़्तकी बाँहोंमें! दस मिनिटके बाद हम दोनों दस मिनिट और बुड्ढे हो जायेंगे। दस मिनिट और मौतके निकट! इसलिए ये दस मिनिट भी क्यों सोच और ग़ुस्सेमें बितायें! आओ-गरमाओ, पिघलो, मुसकराओ—चलो मुझसे अलग रहकर ही केवल डान्सके रिद्मका आनन्द लो जैसे चित्रकार केवल रंग, कवि केवल शब्द और डॉक्टर केवल रोगीकी दशासे मज़ा लेता है! अमूर्तकलाकी बुनियादें यहींसे शुरू होती हैं! यह स्पेश्लाइज़्ड मेडिसीन भी एक प्रकारकी अमूर्त-कला है यानी जिगरको गुरदेसे अलग करके देखना, तिल्लीको पेटसे, फेफड़ेको दिलसे, और तुम्हें मुझसे! जबकि ये सारी इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक-दूसरेसे जुड़ी हुई हैं और किसी एकका कार्यक्रम दूसरेके कार्यक्रमको समझे बिना पूरा नहीं हो सकता! तुम और मैं भी इस वक़्त एक ही डान्सके रिद्मसे बँधे हुए हैं। अपनी सारी घृणाओं, चाहतों, पसन्द और नापसन्दके बावजूद बँधे हुए हैं और इस नृत्यसे बाहर भी सभ्यता और समाजकी आनोलसे बँधे हुए हैं—क्या तुम्हें इन बातोंमें कुछ शंका है? तुम उत्तर क्यों नहीं देती हो? तुम्हारा बरताव ठीक नहीं है—मैं एक सभ्य व्यक्ति हूँ—तुमने—मेरा मतलब है—तुम्हारी असीम सुन्दरताने मुझे विवश कर दिया कि मैं यह एक छोटी-सी चाल चलकर तुम्हें अपने साथ नाचनेके लिए तैयार कर लूँ! एक तो तुम्हारी सुन्दरता, दूसरी वह घृणा-पूर्ण दृष्टि जो तुमने मुझपर डाली—डाली क्या एक भाला फेंका! तुम्हें कोई अधिकार नहीं था मुझपर ऐसी नज़र डालनेका! हर सुन्दर स्त्रीको अपने कर्त्तव्यकी जानकारी होनी चाहिए—विशेषतः उन सारे लोगोंके लिए जो तुम्हारे देशमें एक मेहमानका दर्जा रखते हैं—वैसे उच्च श्रेणीका आदर-सत्कार सदासे एक पूर्वीय विशेषता रही है—पश्चिम इस क्षेत्रमें एक अनाड़ीका दर्जा

रखता है—मगर इसमें पश्चिमका भी इतना क़ुसूर नहीं है जितना टाइनबीके शब्दोंमें पश्चिमके भूगोल, उसकी जल वायु और उसके कठोर वातावरणका है ! चलो, यह बात टाइनबीने नहीं कही—मैंने कही है ! मैंने भी खुदसे नहीं कही । किसीसे सुनकर कही है मगर इस छोटे-से अन्तरसे इस बातकी पूरी सच्चाईमें क्या अन्तर पड़ता है ? और अगर पड़े भी तो तुम्हें और मुझे उससे क्या ? यह अकेला कमरा, यह नीली रोशनी, यह धीमा-धीमा नृत्य, यह तुम्हारा सुन्दर मुखड़ा मेरी आँखोंके सामने है और यह एक रिद्म जिसे दो मिलकर पूरा करते हैं—क्या तुम जानती हो कि एकसे कुछ नहीं होता—एक साधारण रिद्म भी दोसे पूरा होता है । क्या तुम दोके महत्त्वसे परिचित हो—जूली, तुम मुझे कँवल कह सकती हो--पूरा नाम कँवलप्रसाद सकसेना है—इसे तुम्हें याद रखना चाहिए—कँवल आसान है--क़ौल ज़बानपर चढ़ जाता है--'प्रसाद' तुम्हारे लिए कुछ कठिन होगा—लेकिन अगर कोशिश करोगी तो महीने-दो महीनेमें रटकर याद कर लोगी । सक़सेना फिर आसान है--अगर तुम यह समझ लो कि सक़सेनामें 'सेक्स' आता है--'सेक्स' अेना—आसान है न ? क्या तुमने वास्तवमें न बोलनेका निश्चय कर लिया है—जीवन भर न बोलोगी ?"

जूलीने कुछ न कहा—उसने धीरेसे आँखें बन्द कर लीं और—और फिर एक ज़ोरकी चीख़ मारी···

एक लम्बी, लम्बी, लम्बी चीख़—पतंगके धागेकी तरह दूर तक खिंचती हुई—शरीरकी पूरी शक्ति लगाकर, अपनी आवाज़की समूची शक्तिका प्रयोग करके, गलेसे बाहर धकेली हुई । चीख़ अचानक कँवलपर फट पड़ी—एक सुपर-सोनिक चीख़, आवाज़की सीमाओंको लाँघती हुई—उसके चारों तरफ़ लहरिये और भँवर-सी बनाती हुई, जैसे वह उन भँवरोंमें डूबता जा रहा है ! फिर अचानक उसके गालपर ज़ोरका एक घूँसा पड़ा और जब वह चकराकर पीछे हटा तो उसने देखा कि तीन अँगरेज़ उसके सामने खड़े ग़ुस्सेसे उसे घूर रहे हैं ।

"डर्टी निगर !"

"हिन्दू नेटिव !"

"ब्लास्ट हिम····यह ब्लैकी मेरी वाइफ़के साथ डान्स कर रहा है ?"

"तुम्हारी वाइफ़" पहला अँगरेज़ आश्चर्यसे बोला, "यह तो मेरी वाइफ़ है ।"

"तुम्हारी वाइफ़", दूसरे अँगरेज़ने पहले अँगरेज़को विस्मयसे देखते हुए कहा, "यह तो मेरी वाइफ़ है !"

तीसरा अँगरेज़ पहले दो अँगरेज़ोंसे कहने लगा, "आप दोनों किसी भारी भूलमें डूबे हुए हैं—जूली वास्तवमें मेरी बीवी है !"

अब वे तीनों आश्चर्य और विस्मयकी मूर्तियाँ बने जूलीको अचम्भेसे तक रहे थे जो दीवारसे लगी-लगी हाँफ रही थी । जूलीका सारा चेहरा एकदम सफ़ेद पड़ गया था ।

फिर उन तीनों अँगरेज़ोंकी नज़रें जूलीसे हटकर कँवलपर जम गयीं ! कँवलने घूँसा खानेके बाद भी मुसकरानेकी चेष्टा की और

अपने जामको ऊपर उठाकर कहा, "चीयर्स !"

उन तीनोंने कोई जवाब नहीं दिया—जब कि उनके गिलास भी उनके हाथोंमें थे ! ये अँगरेज़ जब चाहते हैं, अकारण असभ्य भी हो सकते हैं ।

"यह ब्लडी इण्डियन क्या कर रहा है यहाँपर ?" एकने कहा ।

कँवलने कहा, "यह मालूम करनेसे पहले आप लोगोंको यह फ़ैसला करना चाहिए कि जूली आप तीनोंमें-से किसकी बीवी है ? अच्छा होगा कि आप लोग टॉस कर लें ।'

उन लोगोंकी नज़रें कँवलसे हटकर जूली-पर गयीं—वहाँसे हटकर कँवलपर—कँवलसे हटकर वे तीनों अँगरेज़ फिर एक-दूसरेको देखने लगे ! अब वे तीनों एक दूसरेके पास खड़े आँखों-ही-आँखोंमें एक-दूसरेसे विचार-विमर्श कर रहे थे ।

"पहले इसे बाहर फेंक देना चाहिए," एक अँगरेज़ने सुझाव दिया ।

शेष दोनोंने सर हिलाकर इस योजनाको स्वीकार किया ! अब वे तीनों कँवलकी ओर बढ़ रहे थे—कँवलने सोचा—अँगरेज़ोंमें राष्ट्रीय एकता बहुत अधिक होती है—और उनकी यह भावना मुझे प्रिय भी है—सम्भव है, इसी विशेषताने एक सफल साम्राज्यका निर्माण करनेमें उनकी सहायता की होगी । अब अगर ये लोग होते हिन्दुस्तानी तो इस समय इन तीनोंमें जूलीके लिए जूता चल गया होता ! मगर यह तीनों अँगरेज़ थे और जूली-पर झगड़ा करनेसे पहले मुझे बाहर फेंकनेके लिए मेरी ओर बढ़ रहे थे । मुक्के तानकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे क्योंकि मैं भी अच्छा तगड़ा था और उनके मुक़ाबलेके लिए तैयार था ! मगर मैं दोके लिए तैयार था और वे तीन थे–लड़ाई बहुत अच्छी हुई और जमकर हुई—! हेनरीकी स्टडीका बहुत-सा सामान टूट-फूट गया ! एक अँगरेज़के गलेमें एक पिक्चरका फ्रेम एक हारकी तरह लटक रहा था, दूसरेके सरपर मैंने हेनरीका नीला लैम्प-शेड एक छज्जेदार टोपकी तरह पहना दिया था ! स्वयं मेरे गालोंपर एक लाल लकीर थी जो एक अँगरेज़ने डाकके लिफ़ाफ़े खोलनेवाली कुन्द छुरीकी सहायतासे पैदा की थी—! वह तो मेरे गाल फाड़ डालना चाहता था मगर आजकल लिफ़ाफ़े खोलनेवाली छुरियाँ लोहेसे नहीं प्लास्टिकसे बनती हैं और प्लास्टिकमें यह बात कहाँ जो लोहेमें होती है ! शायद इसी बातने मेरी जान बचा ली और इस बातने भी कि हेनरीकी स्टडीमें कोई ज़्यादा भयानक सामान नहीं था—साधारणतः मनोविज्ञानके विशेषज्ञ अपनी स्टडीमें ऐसी चीज़ें नहीं रखते जो उनके पागल या अर्ध-पागल रोगी डॉक्टरके विरुद्ध इस्तेमाल कर सकें ! फिर भी अच्छी, उम्दा, साफ़ और सुथरी लड़ाई हुई क्योंकि हम चारों खाये-पिये अच्छी तन्दुरुस्तीवाले तगड़े नौजवान थे और चार-पाँच पेग अन्दर जा चुके थे और लड़की जिसके लिए हम सब बावले कुत्तेकी तरह लड़ रहे थे सामनेकी दीवारसे लगी सारा तमाशा देख रही थी ! जैसे यह कोई आधुनिक युगका कोई कमरा न हो, आजसे पचास हज़ार वर्षका कोई पहाड़ी खोह हो ! हम

लोग रीछकी खाल पहने हुए हैं और शेक्सपीयरको जन्म लेनेमें अभी बहुत समय है! पहले तो मैंने 'रीयर गार्ड एक्शन' की कोशिश की कि जब शत्रु गिनतीमें अधिक हों और मैनोवरिंग की गुंजाइश कम हो तो यही तरीक़ा लाभदायक रहता है! मगर कम्बख़्तोंने दरवाज़ा भी अन्दरसे बन्द कर लिया था इसलिए जमकर लड़नेके सिवा और चारा न रहा! कुछ समय तक तो पल्ला बराबरका रहा बल्कि पहले-पहल उन्हींके चोटें ज़्यादा आयीं और वे लोग मेरी प्रति-रक्षापर कुछ चकित भी हुए! दूसरोंपर हुकूमत करनेकी आदत आसानीसे नहीं जाती है! शायद उन्होंने सोचा होगा, उधर उन्होंने मुक्का दिखाया, इधर मैंने घुटने टेक दिये! कुछ उनको इस बातका भी अन्दाज़ा नहीं था कि एक हिन्दुस्तानी और डॉक्टर होते हुए अच्छा मुक्केबाज़ भी हो सकता है--फिर भी तीन, तीन ही थे और एक फिर एक अकेला था! कुछ समय बाद उन तीनों व्यक्तियोंकी शक्ति एककी शक्तिपर आने लगी! पहले तो केवल लड़खड़ाने लगा, फिर चकराकर गिरने लगा, फिर बिलकुल अन्तमें अपने घुटनोंके बल हो गया--वे लोग ऊपरसे मुक्के और नीचेसे ठोकरें मार रहे थे—फिर जैसे किसीने कँवलकी आँखोंमें स्याही उँडेल दी और वह अँधेरेमें खो गया। (क्रमशः)

अनु० : सुरेन्द्र हजेला

वातायन

- आजका पाठक : अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक! लेखक और दो विशिष्ट कृतियाँ! पाठक लेखक और युगबोध!
- गीत : मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गीत हस्ताक्षर!
- विश्वभारती : पश्चिमी जगत्की कथाओंका प्रस्तुतीकरण!
- अन्तर्भारती : भारतीय भाषाओंका कथा-संगम!
- भारती : हिन्दी कथा-साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें!
- कविता : जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजकी कविता पीढ़ी।
- साक्षात्कार : रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार!
- आलोचना : नयी! पुरानी! युगीन विचार-मन!

वार्षिक मूल्य १०.००, एक प्रति १.००
सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ
५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राजस्थान)।
शाखा : २२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता-७।

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने मालको
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये ; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
उनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ लगा हुआ
ट्रेडमार्क उनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक टिकाऊ
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को गन्दगी,
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

**रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड**

डालमिया नगर (बिहार)

मैनेजिंग एजेन्ट्स : साहू जैन लिमिटेड १८, क्लाइव रो कलकत्ता-१

अन्तर्मनका सिंहावलोकन

अहिंसाका अर्थ

मुनि श्री नथमलजी

मैं अपने जीवनका सिंहावलोकन करता हूँ तब कल्पनालोकसे उतर धरतीपर आ जाता हूँ और कल्पनाके पंखोंको छोड़ अपने पैरोंसे चलने लग जाता हूँ। मैं देखता हूँ, एक दिन मैंने संकल्प किया था, मैं अहिंसाका पालना करूँगा। उस समय मेरे लिए अहिंसाका अर्थ था—जीवोंको न मारना। जहाँ जीव न मरे, वहाँ भी हिंसा हो सकती है, यह मेरे लिए अतर्कणीय था।

जीव-दयाकी अर्थ-गरिमा भी कम नहीं है। आत्मतुलाके भावकी चरम परिणतिमें अतुल आनन्दानुभूति होती है। समय-समयपर मुझे इसकी अनुभूति हुई है। मैं जैसे-जैसे बड़ा हुआ, सहधर्मियोंकी मनोभूमिकापर विहरने लगा, तब मुझे प्रतीत हुआ मेरी अहिंसाकी समझ अधूरी है। अहिंसाकी परिपूर्ण वेदिकाके निर्माणके लिए मैं तड़प उठा। मैंने समझा, अहिंसाका अर्थ है—परिस्थितिके मर्मभेदी परशुसे मर्माहत न होना। इस संकुल जगत्में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो परिस्थितिके मृदु पुष्पसे प्रमत्त और कठोर वज्रसे आहत न हो। मुझे लगा जो व्यक्ति अपनी जीवन-धाराको परिस्थितिके प्रभाव-क्षेत्रकी ओर प्रवाहित कर देता है, वह अहिंसाकी अनुपालना नहीं कर सकता। परिस्थितिकी मृदुतासे आनेवाली मूर्च्छाके साथ-साथ चेतना मूर्च्छित हो जाती है और उसकी कठोरतासे उपजनेवाली कुण्ठाके साथ-साथ वह कुण्ठित हो जाती है।

अहिंसा चेतनाकी स्वतन्त्र दशा है। जो सर्दीसे अभिभूत हो जाये, वह स्वतन्त्र नहीं हो सकती, जो गरमीसे अभिभूत हो जाये, वह भी स्वतन्त्र नहीं हो सकती। स्वतन्त्र वह हो सकती है, जो किसीसे अभिभूत न हो। अब मेरी अहिंसाका प्रकाश-स्तम्भ यही है। इससे प्राणी-दयाके प्रति मेरा मन पहलेसे

अधिक संवेदनाशील बना है। दूसरेकी पीड़ामें अपनी पीड़ाकी तीव्र अनुभूति होने लगती है। यदि मैं परिस्थितिकी काराका बन्दी बना बैठा रहता तो दूसरोंके प्रति निरन्तर संवेदनाशील नहीं रहता।

परिस्थिति निरन्तर एकरूप नहीं रहती। उसके प्रतिबिम्बको स्वीकार करनेवाली चेतना भी एक रूप नहीं रह सकती। कुछ लोग मुझे व्यवहार-कुशल मानते हैं तो कुछ लोग मानते हैं कि मैं व्यवहार-कुशल नहीं हूँ। कुछ लोग मानते हैं, मैं आध्यात्मिक हूँ तो कुछ लोग मानते हैं, यह मेरी सारी राजनीति है। अनेक तुलाएँ हैं और अनेक माप-दण्ड। मैं तुलनीय हूँ, इसलिए तोला जाता हूँ। मैं माप्य हूँ, इसलिए मापा जाता हूँ। यदि मैं तुलातीत और मापातीत होता तो मेरी अहिंसा प्रस्तर-जगत्की अहिंसा और मेरी शान्ति श्मशानकी शान्ति होती। मेरी अहिंसा चेतना-जगत्की अहिंसा है और मेरी शान्ति तुमुलके मध्यमें स्नात शान्ति है। इसका साक्ष्य यही है कि मैं दूसरोंकी तुलासे तुलित मेरे व्यक्तित्वका निरीक्षण-परीक्षण करता हूँ पर मान्यता उसी व्यक्तित्वको देता हूँ, जो मेरी अपनी तुलासे तुलित है। मेरे लिए मानदण्ड भी मेरा अपना है। इसमें मेरा अहं नहीं बोल रहा है। यह मेरे अस्तित्वका बोध है, जो किसी अपर सत्तासे प्रतिहत नहीं होता। यह अस्तित्वका अप्रतिघात ही मेरी आजकी अहिंसा है।

अहिंसाके दो आयाम हैं—प्रतिरोध और प्रतिकार। हिंसाके भी ये दो आयाम हैं। प्रतिरोध अपना बचाव है और प्रतिकार है परिस्थितिपर आघात। अहिंसामें प्रतिरोध और प्रतिकारकी शक्ति नहीं रही तो अहिंसक निर्वीर्य बन जायेगा। शक्ति-सन्तुलन हिंसाके हाथमें चला जायेगा।

आज जन-साधारणमें अहिंसाके प्रति जो भ्रम है, वह निरस्त होना चाहिए। उसे यह अनुभव होना चाहिए कि अहिंसा निर्वीर्य नहीं है। उसमें प्रतिरोध और प्रतिकारकी क्षमता हिंसाकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और तीव्र है।

हिंसामें विश्वास करनेवाला हिंसाका प्रतिरोध और प्रतिकार उससे प्रभावित होकर करता है, हिंसाको स्वीकार करके करता है। हिंसा और हिंसा—परस्पर सजातीय हैं। इसीलिए हिंसा हिंसाको मारती नहीं, उबारती है, उसे परम्परा-पातमें प्रवाहित करती है।

अहिंसामें विश्वास करनेवाला हिंसाका प्रतिरोध और प्रतिकार उससे अप्रभावित होकर करता है—हिंसाकी परिस्थितिको मान्यता न देते हुए करता है। हिंसा और अहिंसा परस्पर विजातीय हैं। इसीलिए अहिंसासे हिंसा निरस्त हो जाती है, उसकी परम्परा समाप्त हो जाती है। अहिंसाकी प्रतिरोध शक्ति है स्वतन्त्र चेतनाका अनावृतीकरण और उसकी प्रतिकार-शक्ति है प्रेमका विस्तार और उतना विस्तार, जिसमें शून्य न हो, अप्रीतिके लिए कोई अवकाश न हो।

मैं विमल दृष्टिसे देखता हूँ, यदि मैं परिस्थिति-परतन्त्र चेतनाको मान्यता देकर चलता तो मेरा शक्ति-बीज अंकुरित होनेसे पहले ही विलुप्त हो जाता।

मैंने न जाने कितनी बार इस सूत्रकी पुनरावृत्ति की है——'वह पराजयको निमन्त्रण देता है, जो क्रियासे विमुख हो प्रतिक्रियाके सम्मुख चलता है।'

प्रेमका विस्तार, यह मेरी क्रिया है। इसमें मेरी चेतनाका स्वतन्त्र कर्त्तृत्व है। इससे प्रतिहत होकर हिंसा अपनी मौत मर जाती है।

मैं हिंसाका प्रतिकार हिंसासे करने लगूँ तो वह प्रतिक्रिया होगी। मेरे-द्वारा नियन्त्रित नहीं किन्तु सम्मुखीन परिस्थिति-द्वारा नियन्त्रित क्रिया होगी, यानी प्रतिक्रिया होगी।

इस प्रतिक्रियासे मुझे बल नहीं मिलता। किन्तु मेरा बल उसमें जाता है जिसके प्रति मैं क्रिया करता हूँ। इसका अर्थ होता है, परिस्थिति मेरे बलका सम्बल पाकर अपनी प्रहार-शक्तिको तीव्र बना लेती है। क्या मेरी मूर्खताका इससे अनुपम उदाहरण और कोई हो सकता है कि मेरी शक्तिका दान उसके लिए करूँ, जो मुझे शक्ति-शून्य करना चाहती है। 'आत्मविश्वास जितना शून्य होता है, उतना ही उसमें परिस्थितिको अवकाश मिलता है'——इस सूत्रने मुझे जो आलोक दिया है, उससे मैं लाभान्वित हुआ हूँ और अमाकी अँधियारीमें भी अपना पथ देख लेता हूँ।

मैं कई वर्षोंसे इस साधनाके प्रति प्रयत्नशील हूँ कि मेरे मनमें अप्रियताकी अनुभूतिका स्रोत सूख जाये। वह स्रोत, जो मेरे भीतर प्रवाहित होकर मेरी सुखानुभूतिके पौधेको पल्लवित नहीं करता, किन्तु सुखाता है।

'अप्रियताकी अनुभूति जिसके प्रति होती है, वहाँतक पहुँचे बिना ही वह लौटकर अपने उद्गममें आ जाती है और वहीं अपना काम करती है'——इस सत्यकी अनुभूति मुझे जबसे हुई है, तबसे मैं मानता हूँ कि मैंने अहिंसा-देवताको अपनी आस्था अर्पित की है।

मैं आज अन्तःकरणका उद्घाटन नहीं कर रहा हूँ। मैं उस शाश्वत सत्यके आलोकमें अपना अन्तःकरण पढ़ रहा हूँ। सुख-दुःखकी मनोग्रन्थियोंसे मुक्त वही है, जो सर्दी और गरमीसे प्रभावित नहीं है। बन्धनको तोड़ डालनेमें सक्षम वही है, जो परिस्थितिका प्रतिबिम्ब नहीं है।

बिम्ब और प्रतिबिम्बका जगत् प्रतिक्रियाका जगत् है। उस जगत्का शब्दकोश स्वतन्त्रता-जैसे शब्दसे शून्य है। वहाँ न स्वतः स्फूर्ति क्रिया है और न अपना कर्त्तृत्व, न अपनी शक्ति है और न अपना आनन्द। वहाँ जो कुछ है, वह है प्रतिबिम्ब और आभास, खेद और आयास, और तबतक जबतक हिंसाका रंगमंच आकर्षणका केन्द्र-बिन्दु बना हुआ है।

प्र० कमलेश चतुर्वेदो,
आदर्श साहित्य संघ, पो०-चूरू (राजस्थान)

नये वर्ष पर
भारतीय ज्ञानपीठ
की नयी प्रस्तुति

'चाँदका मुँह टेढ़ा है' और
'एक साहित्यिककी डायरी' के बाद
मुक्तिबोध-लिखित
'मनुष्यताकी दस्तावेज़' का
एक और पृष्ठ

काठ का सपना

ग. मा. मुक्तिबोध

स्व० मुक्तिबोधकी कहानियोंका बहुप्रतीक्षित संग्रह, जिसकी कहानियोंमें मुक्तिबोधजीने युगकी वास्तविकताओंको बड़ी सशक्त और मार्मिक शैलीमें अभिव्यक्ति दी है। मूल्य ३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रस्तुत ज्वलन्त समस्यापर विश्लेषण प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे हम श्रीमोरारजी देसाईसे लिया गया यह इण्टरव्यू प्रकाशित कर रहे हैं। सम्भव है यह अंक तैयार होने तक इस समस्याका कोई हल सामने आ जाये या सम्भव है किसी हल तक पहुँचनेकी भूमिका स्पष्ट हो जाये।—सं०

गो-हत्या : गो-रक्षा

आनन्दजी कल्याणजी

[गो-हत्या निरोधक क़ानून बनवानेके लिए धरना, प्रदर्शन, अनशन आदिका सिलसिला अबकी बार पूरे ज़ोर-शोरके साथ शुरू हुआ है। हालाँकि यह सवाल अँगरेज़ी शासन-कालमें भी उठाया गया था और उन दिनों विशेषकर गान्धीजीने इस सवालकी काफ़ी गहराईसे हर पहलूसे छानबीन की थी, परन्तु लगता है स्वराज्यके १९ वर्ष बाद भी इस सवालपर जनता और सरकार दोनोंके विचार पूरी तरह साफ़ नहीं हैं। जनताकी तरफ़से सरकारपर यह आरोप है कि भारत-जैसे धार्मिक और कृषिप्रधान देशमें गो-वध रोकनेका क़ानून न बनाकर सरकार अनैतिक आचरण कर रही है, दूसरी तरफ़से

सरकारकी शिकायत यह है कि, गायकी सेवाका असली काम तो ये लोग करते नहीं केवल गो-हत्याके नामपर धर्मभीरु जनताको भड़काकर अपना राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध करना चाहते हैं। इस तरह यह प्रश्न उत्तरोत्तर उलझता चला गया और अबतक इसका सही समाधान नहीं निकल पाया है। इस प्रश्नपर जनताको भी और सरकारको भी दो शब्द कहनेकी ज़रूरत है ताकि दोनों तरफ़से हठ समाप्त होकर स्वस्थ भूमिकासे उस प्रश्नका सही समाधान ढूँढ़ा जा सके। परन्तु इसके लिए साहस और दृष्टि दोनोंकी ज़रूरत है। विचार करते-करते मेरे ध्यानमें श्रीमोरारजी देसाईका नाम आया और मैंने उस विषयपर उनके विचार जाननेकी दृष्टिसे समय निर्धारित किया।]

मोरारजी भाईके साथ बात करते समय झिझक या संकोच छोड़कर ही बात करनेमें मज़ा भी आता है और आसानी भी रहती है अतः किसी प्रकारकी भूमिका बाँधे बग़ैर मैंने बेधड़क पूछा, "मोरारजी भाई! आप तो अहिंसाको मानते हैं, फिर गो-हत्या निरोधके लिए यह जो आन्दोलन चल रहा है इसका समर्थन क्यों नहीं करते?" आजकी भेंटवार्ताका मेरा यह पहला प्रश्न था।

मेरे उस आवरणरहित प्रश्नकी उनपर क्या प्रतिक्रिया होती है और इस प्रश्नके उत्तर स्वरूप सबसे पहला वाक्य उनके मुखसे क्या निकलता है यह सुननेके लिए मैंने आतुरताके साथ उनकी तरफ़ देखा।

कुछेक पलक स्तब्धता-सी रही—कोई कुछ नहीं बोला। एक गहरी ख़ामोशी वातावरणपर छा गयी। निकट ही रखे, बड़े लैम्पके शेडसे छनकर आ रही मध्यम रोशनी ख़ामोशीके बोझिलपनको कम कर ही रही थी, साथ ही उस कमरेके वातावरणको नयनाभिराम बना रही थी। मैंने देखा, विलक्षण प्रकाशकी रेखाएँ उनके मुखमण्डलपर बनकर आँखोंकी अनोखी चमकमें विलीन होती जा रही थीं। एक क्षण बाद ही एक धीमी, सधी हुई सन्तुलित और कम्पन-रहित आवाज़में उन्होंने कहा "मैं तो इस आन्दोलनको सही नहीं मानता इसलिए इसका समर्थन कैसे कर सकता हूँ?" मेरे प्रश्नके उत्तरमें कहा गया यह पहला वाक्य था। अपनी बातको आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, "सरकार यदि गो-हत्याके ख़िलाफ़ क़ानून बनाती है तो मैं उसका विरोध करनेवाला नहीं हूँ—यह मेरी भूमिका है। लेकिन यदि मुझसे कहा जाये कि इसके लिए क़ानून बनवानेमें पहल करो तो वह मैं नहीं करूँगा। क्योंकि मैं यह मानता हूँ, यह प्रश्न क़ानूनसे हल होनेवाला नहीं है।" फिर मेरी तरफ़ किंचित् मुड़कर कहा, "इस प्रश्नमें अहिंसाकी बात भी तुमने उठायी है। यह ठीक है कि अहिंसाको मैं मानता हूँ परन्तु साधनके रूपमें, साध्यके रूपमें नहीं। साध्य तो है सत्य। अहिंसा एक सीढ़ी है परन्तु सीढ़ीको ही मंजिल समझ लेना तो ग़लती होगी। प्रश्न चाहे गायका हो या कोई और हो—हमें सत्यकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और सत्य यह है कि हम गायको पूरी ख़ुराक नहीं

देते, ठीक तरह देखभाल नहीं करते, लोगोंके खेत और खलिहानमें घुसनेके लिए आवारा छोड़ देते हैं और मतलब निकल जानेपर बेच देते हैं—कटनेके लिए, या छोड़ देते हैं—भूखों मरनेके लिए ! हमारी अहिंसा वृत्तिकी पहचान इस आन्दोलनसे नहीं बल्कि इस बातसे होती है कि हिन्दुस्तानमें हम पशुओंके साथ कैसा सलूक करते हैं ? उनको किस तरह रखते हैं ?" इतना कहकर वे एक क्षण रुके। फिर बोले, "उनपर असह्य बोझ कौन लादता है ? उनकी ताक़तसे भी ज़्यादा काम कौन लेता है ? कौन बेतहाशा मार मारता है ? कौन उनके शरीरमें ज़ोरदार आरा भोंकता है ? जितना जुल्म पशुओंपर हम करते हैं उनकी और कहीं मिसाल नहीं है। हम लोग धर्म और अहिंसाकी बात न करें, वही अच्छा है। दुनियामें ऐसा कोई देश नहीं होगा जहाँ हिन्दुस्तानकी तरह पशुओंकी दुर्दशा हो ! इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है ? कोई बाहरका देश तो नहीं—हम ही हैं।

"लोग कहते हैं, गायकी रक्षाकी बात और चाहते हैं क़ानून, लेकिन समझना चाहिए कि रक्षा क़ानूनसे नहीं हो सकती। उसके लिए सारे देशमें वातावरण बनाना होगा, काम करना होगा। गो-हत्याका क़ानून बन जानेपर भी गायको हम बचा नहीं सकेंगे, रक्षा नहीं कर सकेंगे। क्योंकि जब गाय दूध नहीं देती तब उसको खुला छोड़ दिया जाता है—अब उसको कौन खिलाये ? गायको यदि हम माता मानते हैं तो क्या बुढ़ापेमें कोई अपनी माताको घरसे निकाल देता है ? बेच देता है ? यदि इस आन्दोलनके चलानेवालोंके मनमें गायके प्रति सच्ची दया और करुणा है तो उन्हें चाहिए कि वे सबसे पहले यह बात लोगोंके गले उतारें। परन्तु इसके लिए लोग मेहनत नहीं करना चाहते। नारा गायकी रक्षाका लगावेंगे और दूध भैंसका पसन्द करेंगे। यह सब गायभक्तिका जो ढोंग चलता है—इसे रोकना चाहिए।

"मैं तो गायकी रक्षामें और सेवामें विश्वास करता हूँ—इसलिए यहाँ दिल्लीमें भी अपने घरपर गाय रखता हूँ और गायका ही दूध लेता हूँ। मेरे विचारसे यह प्रश्न इस प्रकारके आन्दोलन और नारेबाज़ीका नहीं है। इसके लिए जनताके मानसको बदलना होगा। इस दिशामें कुछेक संस्थाएँ तो काम कर रही हैं परन्तु वह पर्याप्त नहीं है—यह आन्दोलन चलानेवाले लोग यदि इस दिशामें उत्साहपूर्वक काम करें, तो मेरे विचारसे गायकी और देश तथा धर्मकी सही अर्थोंमें सेवा करेंगे।"

मेरे प्रथम प्रश्नका इतना विशद उत्तर सुननेके बाद इस विषयमें मैंने उनसे जो दूसरा प्रश्न पूछा वह इस प्रकार था—"शराबबन्दीके लिए, मोरारजी भाई, आपने क़ानून बनाया—बम्बई राज्यमें, लेकिन गोवध बन्द करनेके लिए क़ानून बनानेकी दिशामें आप कोई प्रयत्न या पहल नहीं करना चाहते—यह क्या विरोधाभास नहीं ? जबकि गान्धीजीने अस्पृश्यता-निवारणकी तरह

इस कामको भी उठाया था और स्वराज्यके आन्दोलनके साथ जोड़ा था। अस्पृश्यताके लिए क़ानून बना, शराबबन्दीके लिए क़ानून बना, तो फिर गोवधके लिए क़ानून क्यों नहीं ?''

'तुम्हारा प्रश्न अच्छा है।'' वही धीर-गम्भीर आवाज़ और अविचल मुद्रा। मोरारजीने कहा, ''जैसा कि मैंने पहले कहा, मैं क़ानूनका विरोधी नहीं हूँ और सरकार यदि क़ानून बनाती है तो मैं उसका विरोध नहीं करूँगा—यह भी स्पष्ट कहा है। परन्तु मेरा कहना यह है कि गो-रक्षाका प्रश्न क़ानून बन जानेके बाद भी रहेगा और तब गाय भूखसे पीड़ित होकर मरेगी और तब हम क़ानूनको दोष देंगे—जैसी कि हमारी आदत है, कि क़ानून बोगस है, सरकार बेकार है। इसलिए हमें इस प्रश्नकी जड़में जाना होगा—पशुओंके विषयमें हमें अपने दृष्टिकोण, आचरण एवं आदतोंको बदलना होगा। गान्धीजी इस प्रश्नकी गहराईमें काफ़ी उतरे थे और उसके कारण वे काफ़ी अप्रिय भी बने थे। क्योंकि हमारी जो ग़लत मान्यताएँ थीं, आदतें थीं, उनको वे साहसके साथ बताते थे। क्योंकि वे एक सत्यद्रष्टा पुरुष थे। ऐसा व्यक्ति लोगोंकी नाराज़ी और प्रसन्नताकी चिन्ता नहीं करता। गायकी रक्षाका प्रश्न गान्धीजीकी दृष्टिमें उतना ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न था जितना कि चरखा और खादी। गो-रक्षाके बग़ैर स्वराज्यको वे अधूरा मानते थे। यदि हमारे देशके पशु कमज़ोर रहें तो देश भी कमज़ोर रहेगा। पशुधनकी, विशेषकर गोवंशकी, रक्षाको वे देशकी रक्षाके लिए अनिवार्य मानते थे। इसीलिए अपने जीवनकालमें ही उन्होंने गोसेवा संघ-जैसी संस्थाएँ बनायीं और वहाँ पशुओंमें नस्ल सुधारसे लेकर पशुओंकी शक्तिके विकासकी दृष्टिसे अनेक प्रकारके प्रयोग किये, और करवाये। स्वराज्यके बाद इस कामकी तरफ़ जितना ध्यान दिया जाना चाहिए, मुझे मंज़ूर करना चाहिए कि हम नहीं दे सके। उसके अनेक कारण हैं। यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सवाल है जिसे हमें पंचवर्षीय योजनाके स्तरपर उठाना चाहिए, देशकी कृषि-समस्या अथवा अन्य-समस्याके लिए और दूध-दहीकी निरन्तर बढ़ती जा रही तंगीके लिए यह नितान्त आवश्यक है।

''हमें यह समझना चाहिए कि गायकी और गोवंशकी शक्ति और उपयोगिता जिस मात्रामें हम बढ़ा सकेंगे उसीके अनुपातमें हम गोरक्षाके कार्यमें भी सफल होंगे। यह काम नारेबाज़ीका नहीं है और न ही ऐसे आन्दोलनोंसे और क़ानून बनाये जाने मात्रसे पूरा होनेवाला है।

''जहाँतक शराबबन्दीके साथ उसकी जो तुलना तुमने की है, वह ठीक नहीं है। यह प्रश्न उससे कहीं अधिक बड़ा है। शराब मनुष्यका भोजन नहीं, वह जीवनका आधार नहीं है। जब कि घी-दूध-दही यह हमारा भोजन है, जीवनका आधार है। इसलिए क़ानूनसे शराबबन्दी और गो-वधबन्दी करनेमें एक आधारभूत अन्तर है। शराब तो एक व्यसन है और जो लोग इस व्यसनमें फँसे

हुए हैं उनके सामने यदि शराबकी बोतल आकर खड़ी न रहे तो उनका बहुत बड़ा भाग उस व्यसनसे छूट जाता है। शराब न मिलनेसे शराबीको आर्थिक हानि नहीं बल्कि आर्थिक लाभ होता है। इसमें पीनेवालेके भलेके लिए उसके सामनेका प्रलोभन दूर करनेकी बात है। गो-वधका प्रश्न इससे अलग तरहका प्रश्न है। गो-वध-बन्दीकी बात जो तबक़ा कहता है वह गायको माता माननेवाला तबक़ा है। और यह एक धार्मिक भावना और मान्यताके आधारपर है। परन्तु ऐसी ही धार्मिक भावना सबकी तो नहीं है। आज तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि सारे हिन्दुओंने गोमांसका परित्याग कर दिया है, इतना ही नहीं अनेक हिन्दू कसाइयोंको गाय बेचते हैं और इसका धन्धा करते हैं! मरी हुई गायका मांस तो बड़े पैमानेपर खाया जाता है, यही नहीं मुसलमान और ईसाई वग़ैरहके यहाँ नौकरी करनेवाले हिन्दू वध की हुई गायका मांस भी खा लेते हैं। कसाइयोंके साथ धन्धा करनेवाले लोग तो उपयोगी प्राणियोंका वध रोकनेके लिए बने हुए क़ानूनको भी अनेक प्रकारसे तोड़ते हैं, अच्छे पशुओंको जानबूझकर लूले-लँगड़े बना देते हैं अथवा रिश्वत आदि देकर वैसा प्रमाण-पत्र हासिल कर लेते हैं। कभी-कभी चमड़ा पानेके लिए पशुओंको जहर भी दे देते हैं। गोवध-बन्दीकी बात यदि प्रबल और सच्ची धार्मिक भावनाके आधारपर होती तो ऐसी स्थिति नहीं होती। तब कसाईके हाथ गाय बेची नहीं जाती, गो-मांस खाया नहीं जाता।

जो लोग कृषि-समस्याके आधारपर गो-वध-बन्दीकी बात करते हैं उन्हें तो नारेबाज़ी छोड़कर गो-वंशके सुधार और विकासके कार्योंमें लगना चाहिए। यदि आन्दोलनकी प्रवृत्ति ही उनकी पसन्द और आदत है तो उन्हें गाय कसाईको बेची न जाये इस बातके लिए आन्दोलन चलाना चाहिए और दूसरी तरफ़ लोगोंसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि भाई, हमारी भावनाकी ख़ातिर आप गो-मांस खाना बन्द कर दें। यह बात दलीलोंसे नहीं—विनम्रतासे, मित्रभावसे, प्रार्थना करके, मनवायी जा सकती है। ऐसी भावनाकी क़द्र करनेवाले लोग क्या मुसलमानोंमें, क्या ईसाइयोंमें—सभी वर्गोंमें मिलेंगे। ऐसे ही प्रचारसे अनेक लोगोंने—जिनमें मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि सभी तबक़ोंके लोग हैं—मांसाहार छोड़ा है और शाकाहारी बने हैं। इस प्रकार प्रेमसे, उपदेशसे पड़ोसी-धर्मकी मर्यादाके कारण मांसाहार छोड़नेकी काफ़ी मिसालें मिली हैं। इस तरहका आन्दोलन भी एक अंशमें गो-वधको और जीववधको रोकनेका एक साधन बन सकता है।

“चूँकि शराबबन्दी और अस्पृश्यताके विषयमें क़ानून बना, इसलिए गो-वधके विषयमें भी बनना चाहिए, यह दलील ठीक नहीं है। शराबके लिए तो यह भी तर्क दिया जा सकता है कि वह पीनेवालेको हानि पहुंचाती है, उसके पारवार और समाजके लिए उपद्रव रूप है, परन्तु गो-मांस खानेवालेके विषयमें तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह बकरी

या मछलीकी तुलनामें अधिक हानिप्रद है। अलग-अलग प्रकारके मांसोंमें आरोग्यकी दृष्टिसे गो-मांसको कौन-सा स्थान है——यह मैं नहीं जानता। वह जानना ज़रूरी भी मेरे लिए नहीं है। क्योंकि मैं तो मांसाहारी नहीं हूँ परन्तु इस कारण मैं किसीको ऊँचा या नीचा भी नहीं समझता। गोवध-बन्दीकी बात आहारकी दृष्टिसे उसके गुण-दोषके आधारपर नहीं कही जाती। वह तो हमारी भावनाका आदर करनेके लिए कही जाती है। सूअरका वध भी इसी तरहसे एक भावनाका प्रश्न माना जा सकता है। इसलिए इस प्रश्नका विचार भावनाके आधारपर नहीं बल्कि भावनासे परे जो सत्य है, उसके आधारपर होना चाहिए। और सत्य यह है कि हम अपने दैनिक जीवनमें पशुओंके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। यह हिंसा है—बल्कि उस हिंसासे अधिक बर्बर और भयावह है। इसलिए हमें इसको पहले रोकना चाहिए। क़ानूनसे यह प्रश्न हल नहीं हो सकता, अलबत्ते टल जायेगा। और तब समाजकी उदासीनता इस तरफ़ ज़्यादा बढ़ जायेगी——लोग यही समझेंगे कि अब तो गो-बध बन्द हो गया अब गाय मज़ेमें है। यह ख़तरा या हानि इस विषयमें क़ानून बनानेमें है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मैं इसके लिए क़ानून नहीं बनने दे रहा हूँ या सरकारको मना कर रहा हूँ कि गो-वधको रोकनेके लिए क़ानून मत बनाओ। मैं तो यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि गो-वध-बन्दीका प्रश्न शराबबन्दी और अस्पृश्यताके प्रश्नसे बिलकुल अलग प्रकारका प्रश्न है। यही बात मुझे तुम्हारे प्रश्नके उत्तरके रूपमें विशेष रूपसे स्पष्ट करनी थी।"

गोहत्या और गोरक्षाके विषयपर जो विवेचन मुरारजी भाईने मेरे उपरोक्त दोनों प्रश्नोंके उत्तरके रूपमें प्रस्तुत किया उसे सुननेके बाद एकाएक मुझे और कोई प्रश्न सूझ नहीं रहा था। लगता था, सारे प्रश्न निःशेष हो गये। अब इस विषयमें और कौन-सा नया प्रश्न पूछा जा सकता है इसी द्विविधा और उधेड़बुनमें मैं था। मैंने देखा, मोरारजी भाईने जैसे इस बातको भाँप लिया हो और मुझे कुछ मदद करना चाहते हों इस प्रकारसे स्निग्ध और स्नेह-भरे स्वरमें मुझसे कहा, "कुछ ठण्डा पीओगे, कुछ शरबत या नीबू पानी वग़ैरह, जो तुम्हारी रुचि हो।"

"आपने जिस आत्मीयताके साथ पूछा है उसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ, वैसे मुझे अभी इच्छा नहीं है।"

मुझे तो नया प्रश्न सोचनेके लिए थोड़ा अवकाश चाहिए था, वह मिल गया। इसलिए मैंने तुरन्त ही यह एक प्रश्न पूछा, "पिछले दिनों अनेक ख्यातिप्राप्त साधु-सन्तोंने गो-हत्या बन्द करानेके लिए आमरण अनशन करनेका अपना संकल्प सार्वजनिक रूपसे घोषित किया है। उनका कहना है कि उनके पीछे सारे देशकी जनताका बल है——और सरकार दूरदर्शितासे काम लेगी तथा ऐसी कोई अप्रिय स्थिति नहीं आने देगी। इसपर आपका क्या अभिप्राय है?"

"सरकारको दूरदर्शितासे ही काम करना चाहिए क्योंकि यह प्रश्न ही ऐसा

है,'' मोरारजी भाईका उत्तर था। फिर उन्होंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "जहाँतक आमरण अनशनकी घोषणाका सवाल है, यह संकल्प नहीं, धमकी ही है——ऐसा मैं मानता हूँ। आन्दोलनोंमें इस प्रकारकी धमकियोंसे काम लेना आज एक आम बात बन गयी है, सरकारकी दुर्बलतासे कभी-कभी ऐसी धमकियोंसे कुछ काम बन भी जाता है। इसलिए आमतौरपर लोग ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं। परन्तु केवल काम बना लेनेकी इच्छासे ऐसी भाषाका प्रयोग करना और उसके आगे सरकारका झुक जाना, दोनोंको ही मैं ग़लत मानता हूँ।'' यदि क़ानूनसे गोवध-बन्दीवाली बात सही है तो उसके लिए लोग इतना आन्दोलन करें और भूखों मरनेकी बात आये उसकी प्रतीक्षा करनेके बाद ही सरकार उस कामको करे, यह तो कोई बात नहीं हुई। तब तो उसे पहले ही वह काम कर देना चाहिए। किसी भी प्रकारके आन्दोलनके भयसे, उपद्रव या हिंसाके भयसे झुक जानेवाली नीति दुर्बलताका ही परिणाम है। जबतक सरकारमें ऐसी दुर्बलता रहेगी, इस प्रकारकी धमकियाँ भी रहेंगी। इसमें जन-बलका सवाल ही नहीं है। यदि जन-बल है तो धमकीकी भाषाकी ज़रूरत ही नहीं पड़नी चाहिए। और जहाँतक उस आन्दोलनके पीछे जन-बलका सवाल है, वह यदि होता, तब तो इस देशमें किसी क़ीमतपर गाय बेची नहीं जाती, तब न गोवध होता न यह आन्दोलन! न ही गोमांसका व्यापार करनेवाले कसाई होते न कारख़ाने! यदि जन-बल होता तो देशमें घी-दूध-दहीकी इतनी तंगी न होती! न पसलियाँ निकली हुई गौएँ होतीं न मरूँ-मरूँ बैल होते।

"इसलिए जन-बलवाली बातमें कोई बल नहीं है। हिन्दुस्तान-जैसे देशमें जहाँ गायके लिए प्राण देनेवाले ऐसे धर्मात्मा और साधु सन्त आदि हों, जीव-दयाको धर्म माननेवाले भी बसते हों, गायको माता माननेवाले भी करोड़ों गो-भक्त हों वहाँ गायकी इतनी दुर्गति हो, वहीं गाय बरसोंसे कटती रहे? वहीं गायका दूध दवाईके लिए भी मुश्किलसे मिले? इसका एक ही अर्थ है——गो-भक्तिकी हमारी सारी बात बुनियादी रूपसे खोखली है। इस खोखलेपनको हम इस प्रकारके आन्दोलनोंसे और नारेबाज़ीसे दूर नहीं कर सकते। सबसे पहले गान्धीजीने हमारा ध्यान इस खोखलेपनकी ओर खींचा और उसके लिए उनको काफ़ी कुछ सहना पड़ा क्योंकि वे जनताकी आदतें और मान्यताएँ बदलना चाहते थे उसके बग़ैर वह प्रश्न सुलझ नहीं सकता। चाहे हम कितने ही क़ानून बनायें।'' इतना कहकर श्री मोरारजी भाई रुके और उन्होंने अपनी घड़ीकी ओर देखा। मुझे दिया हुआ समय पूरा हो गया था और मेरे पास कोई नया प्रश्न भी नहीं था। अतः उनको नमस्कार कर धन्यवाद देकर बिदा ली।

(टी–६, ए पूर्वी निज़ामुद्दीन, नयी दिल्ली–१३)

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन-आयोजन

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला

• •

जिसके अन्तर्गत अबतक प्रकाशित आठ कृतियाँ

- **प्रतिनिधि संकलन : कविता-मराठी**
  सं०—दिनकर सोनवलकर : ४.००
- **प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी**
  सं०—अनिलकुमार : ४.००
- **प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी-१**
  कर्तारसिंह दुग्गल : ३.५०
- **प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी-२**
  नानक सिंह : ४.००
- **प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी-१**
  व्यंकटेश दि० माडगूलकर : ४.००
- **प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी-२**
  प्रो० ना० सी० फड़के : ४.५०
- **प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु**
  नार्ल वेंकटेश्वर राव : ३.५०
- **प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला**
  परशुराम : ३.००

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

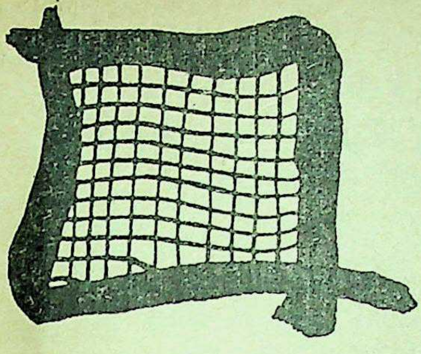

३ काव्यकृतियाँ : हिन्दी, मराठी, गुजराती

० दो चट्टानें : बच्चन

'दो चट्टानें' हिन्दीके सर्वाधिक लोकप्रिय कवि डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन' की तिरपन कविताओंकी एक महान् एवं नवीनतम कृति है, जो अपने पूरे परिवेशके साथ पाठकोंके समक्ष मुखर हो उठती है। इसमें मस्तिष्कको झकझोरकर रख देनेवाली अपार चिन्तन-शक्तिके साथ-साथ हृदय-पक्षको स्पर्श कर देनेवाली भावनाओंका सतरंगी गुम्फन भी विद्यमान है। अपनी अन्य कृतियोंके साथ-साथ प्रस्तुत कृति 'दो चट्टानें' में भी कवि 'बच्चन' की मनीषा-वृत्ति अपने कवि-हृदयके साथ ही प्रकट हुई है। यह कोई अनहोनी बात नहीं है। कविको स्वयं अपनी लेखनीकी विराटता और चेतनशीलतापर अपार विश्वास है :

> "क़लम से ही
> मार सकता हूँ तुझे मैं,
> क़लम का मारा हुआ
> बचता नहीं है।
> आँखें खोल करके देख
> मेरी लेखनी का तो इशारा—
> उगा-डूबा है इसी पर
> कहीं तुझ से बड़ों,
> तुझ से जड़ों का
> क़िस्मत-सितारा !"

व्यक्ति-चेतनाका अर्थ नवीन सौन्दर्य-बोध और नवीन सत्योंके सन्दर्भमें ही समझा जाना अधिक समीचीन है। अतः व्यक्ति-चेतनाको केवल वैयक्तिक सीमाओंमें बाँधना

ठीक नहीं है। 'दो चट्टानें' की भूमिकामें स्वयं कवि 'बच्चन' ने यह स्वीकार किया है कि 'सामयिक स्थिति और मेरी मनःस्थितिका प्रतिबिम्ब इनपर पड़ना स्वाभाविक था।' अतः प्रस्तुत कृतिमें इनकी आत्म-चेतना अथवा इनकी मनःस्थितिके प्रतिबिम्बकी अभिव्यक्ति जहाँ कहीं भी हुई है, वह सामाजिक अथवा सामयिक मूल्योंसे असम्बद्ध नहीं है। सच बात तो यह है कि व्यक्ति-चेतनाका आविर्भाव सामाजिक मूल्योंसे ही हुआ करता है। अतः यह स्वीकार कर लेनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि व्यक्ति-चेतना वास्तविक सत्यसे उद्भूत सामाजिक मूल्योंकी ही एक अन्विति है, व्यष्टि और समष्टि वस्तुतः दोनों ही एक-दूसरेके पूरक हैं। इन दोनोंमें भेद स्थापित करना काव्य-रसमें व्याघात पैदा करना है।

कवि 'बच्चन' की काव्यधारा शुरूसे ही जीवन तथा युगगत सत्योंकी व्यापकताके प्रति सहज ही सजग रही है, जो 'दो चट्टानें'में आकर अपनी कलात्मक मुखरताको प्राप्त हुई है :

> "वायवी सब कल्पनाएँ-भावनाएँ
> आज युग के सत्य से ले टक्करें
> ग़ायब हुई हैं।"

वस्तुतः आजकी समसामयिकताका यह सबसे बड़ा आग्रह है कि हम युगको समस्याओंको समझें, युग-सत्योंका पालन करें। इनके प्रति उदासीनता दिखाना अपनेको आत्म-प्रवंचनाकी स्थितिमें डालना है, जो कवि 'बच्चन' के लिए अब सम्भव नहीं है। यह समसामयिकताकी विडम्बना ही कहलायेगा कि जिस कविने कभी 'मधु'-काव्य लिखा, वह यह कह उठे :

> "किन्तु आत्म-प्रवंचना जो कभी सम्भव थी
> नहीं अब रह गयी है।"

मनुष्यका जीवन दुश्चिन्ताओं, विरोधों और समस्याओंके बीच ही पलता और विकसित होता है। यह स्थिति ही मनुष्यमें चिन्तनशीलता और विकसनशीलता पैदा करती है। जिन कवियोंके व्यक्तिगत जीवनमें अनेकानेक दुश्चिन्ताएँ, विरोध और समस्याएँ रही हैं, उनमें कवि 'बच्चन' भी उल्लेखनीय हैं। 'निराला' और 'मुक्तिबोध'की तरह इन्हें भी जीवनगत अनेक दुश्चिन्ताओं, विरोधों और समस्याओंसे जूझना पड़ा है। किन्तु तब भी, उनमें जीवनके प्रति अनास्था-भावका प्रकट नहीं होना निश्चय ही कर्मण्यताका द्योतक है, नियतिवाद-जैसी निष्क्रियताका घोर विरोधक है :

> "जैसे पहले झेली थी, अब भी झेलेंगे
> क़िस्मत हमसे खेल करती है,
> हम भी क़िस्मत से खेलेंगे।"

इस कर्ममय जीवनके लिए जितनी चिन्तन-मननकी आवश्यकता है, उससे कम भावनाओंकी नहीं। दोनोंके प्रति सम्यक् दृष्टिकोणका होना आवश्यक है, और यही तो कवि 'बच्चन'के जीवनकी अपूर्व एवं नैसर्गिक सफलता है। वे कहते हैं :

> "किन्तु चिन्तन-मनन पर
> जीवन ठहर सकता नहीं है।"

'दो चट्टानें'में संगृहीत सभी कविताओंका अपना विशिष्ट महत्त्व है। साधारणसे साधारण

शब्द, विशेषण, क्रिया-पद, बिम्ब-विधान आदि कवि 'बच्चन' की किसी-न-किसी यथार्थताका जीवित बोध उत्पन्न करते हैं, वे वास्तविकताके सार-खण्ड-से प्रतीत होते हैं। इसका प्रमुख कारण है इनका भावानुभाव या इनकी भीतरी अथवा बाहरी घटनाओंसे संपृक्त बने रहनेकी प्रवृत्ति, जो शब्दोंकी प्रकृति और प्राणको उजागर कर देती है। जीवनकी अलीकता, उसकी रासायनिकताका जटिल अन्वेषण और विश्लेषण, उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ आदि 'दो चट्टानें' की कविताओंमें अत्यन्त काव्यात्मकताके साथ व्यक्त हुई हैं। इस क्रममें कुछ तो पुराने प्रतीकोंको नये रूपोंमें ढाला गया है और कुछ नये प्रतीकोंकी उद्भावना की गयी है। क्योंकि—

"आज का युग,
आज का जीवन
नया कुछ अर्थ कवि से माँगता है,
जो कि अक्सर नये-शोधे पुरातन से
है उभरता।
अर्थ-मूल्य दिये गये थे जो उन्हें
अब वे पुराने पड़ गये हैं,
काल जर्जर हो
विकुण्ठित और विघटित हो रहे हैं।

× × ×

फिर भी, नवीनताके मोहमें कवि 'बच्चन' परम्पराके प्रति अपना विरक्ति-भाव प्रदर्शित नहीं करते :

"प्रवृत्ति-प्रकृति का वरदान है
जो मेरे जन्म से,
मेरे तन, मेरे मनस् के
पूर्वजों के जन्म से
हमारा सहज धर्म रहा है।"

जीवनकी नश्वरता या क्षणभंगुरताका प्रतिपादन कवि 'बच्चन'ने निम्नलिखित पंक्तियोंमें जिस टेकनीकसे किया है, वह अपनी पूरी उदात्तता लिये हुए है :

"आज मैं पतझार की
जिन गिरी, सूखी, मुड़ी, पीली पत्तियों पर
चर्र—चरमर चल रहा हूँ
वे पताकाएँ कभी मधुमास की थीं।...."

मृत्यु जीवनकी चरम सीमा है। जीवनका महत्त्व इसलिए है कि मृत्यु है। यह एक शाश्वत नियम है कि जिसने जन्म लिया है, उसका मरण निश्चित है। इसी तथ्यका प्रतिपादन नेहरूजीके मृत्यूपरान्त कवि 'बच्चन'ने इन शब्दोंमें किया है, जो हमें रस-दशाकी स्थिति तक पहुँचा देता है :

"खून ने खून को पुकारा है
मिट्टी और फूल में अटूट भाईचारा है।"

यह शुष्क दर्शनका कोरा सिद्धान्त नहीं, मृत्यूपरान्त उठनेवाले भावोंका सहज प्रस्फुटन है। 'दो चट्टानें' की अन्तिम कविता (जिसपर प्रस्तुत पुस्तकका नामकरण हुआ है) उसका मेरुदण्ड है। इस कविताकी भूमिकामें स्वयं कवि बच्चनने यह स्पष्ट किया है : 'यह प्रतीकात्मक कविता है। प्रतीक दन्तकथाओंसे लिये गये हैं। दन्तकथाएँ इतिहास नहीं हैं। प्रतीकोंका प्रयोग किसी सूक्ष्म भाव-विचारको स्थूलता प्रदान करनेके लिए किया जाता है। भाव विचारोंमें परिवर्तनके आधारपर प्रतीकोंको परिवर्तित करनेका अधिकार सर्जकको है।

उसका मैंने लाभ उठाया है।……कविता लिखनेके पूर्व मैंने सोचा था कि मैं सिसिफ़स-के बरक्स हनुमानको वस्तुसत्य, तर्क और बौद्धिकताके आधारपर प्रस्तुत कर सकूँगा, पर लिखना आरम्भ करते ही कल्पना, भावना और संस्कारोंने मुझे पकड़ लिया और अन्त तक नहीं छोड़ा।''

मेरा विचार है कि उक्त कविता ('दो चट्टानें' अथवा 'सिसिफ़स बरक्स हनुमान') को वास्तवमें आसानीसे प्रबन्ध-काव्यका रूप दिया जा सकता था। फिर भी, इतना कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि उक्त लघुकाव्य प्रबन्धकाव्य नहीं होते हुए भी प्रबन्धकाव्यकी सम्भावनाओंको आत्मसात् किये हुए है। काव्य और दर्शनका इतना ठोस और सन्तुलित और कलात्मक समन्वय निश्चय ही हिन्दी नयी कविताकी एक महान् उपलब्धि है।

—सत्यनारायण श्रीवास्तव

(मोतीझील, वार्सली रोड,
मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार)

धूपका टुकड़ा : अमृता प्रीतम

यह पंजाबीकी यशस्विनी कवियित्री अमृता प्रीतमके कविता-संग्रहका अनुवाद है। अनुवाद श्री देविन्दरने किया है। संग्रह 'धूपका टुकड़ा' में ४४ कविताएँ संग्रहीत हैं। तीन खण्डोंमें विभाजित, २३ पहलेमें, १२ दूसरेमें, ९ तीसरेमें।

अमृता प्रीतमके दो उपन्यास पढ़े थे, 'डॉ० देव' और 'पिंजर'। अच्छे लगे थे। उनकी कविताएँ जब-जब पत्र-पत्रिकाओंमें छपीं पढ़नेको मिलती रही हैं। पर शायद उनकी कविताओंका बड़ा संग्रह यह पहली बार हिन्दीमें अनूदित-प्रकाशित हुआ है।

संग्रह हाथमें आया, एक कविता पढ़ी, फिर दूसरी, फिर तीसरी, और फिर तो जैसे मनपर अधिकार न रहा। पढ़ता ही चला गया, और संग्रह समाप्त करके ही उठा। एक बार पढ़ा। दो बार पढ़ा और तीन बार पढ़ा, फिर अनेक कविताएँ कई-कई बार पढ़ीं। मन मथ और मोह गया। सोचने लगा, क्या हमारी हिन्दीमें इन कविताओं-सा कुछ है?

हो कैसे? जब कविका मन स्थितियों-परिस्थितियोंसे, क्रियाओं-विक्रियाओंसे, मजबूर कर देनेवाली अनुभूतियोंसे क्षुब्ध, विकल या मुग्ध होता है तब मानसमें कविताकी लहर उठती है, और भाव-धनी कविके हियमें विष या अमृतके सोते फूट पड़ते हैं। बिना लाचार कर देनेवाली अनुभूतिकी कवितामें मनस् और हिया बँटे रहते हैं, बोध और मरम एक-दूसरेसे दूर जा पड़ते हैं। मात्र संयोजन संज्ञा-पर चोट करता है, अन्तरको पिघला नहीं पाता। कवि अपने प्रति, जिनसे कहना चाहता है उनके प्रति ईमानदार नहीं रह पाता। इस

संग्रहकी कविताओंके प्राण इसके मरममें बसते हैं, कवियित्रीके अन्तरको अनुभूति मथती है, विकल कर देती है, और वह पिघल पड़ती है, क्षुब्ध सबल व्यंग्यकी चोट करती है, या मर्माहत पुकार उठती है। उसके भावों और उन्हें प्रकट करनेवाली भाषामें कृत्रिमताकी ओट न होनेसे दोनों अन्योन्याश्रित वह चलते हैं। दोनोंमें कभी व्यवधान नहीं हो पाता, जो औरोंके लिए समस्या बन जाता वही कवियित्रीकी शक्ति बन जाता है, अन्विता चितेरेकी चेरी बन जाती है। अन्तरमें जैसे पौ फट पड़ती है सुबहकी लाली हज़ार किरनों अन्तरालकी 'हर सुन्दर खाई' उजागर कर देती है।

ऐसी कविताएँ, ऐसी सहज अकृत्रिम भाषामें सजी कभी पढ़नेमें नहीं आयीं। प्रसादका प्रकाशन कवियोंका निकष है, प्रमाणकी कसौटी, भावप्रकाशकी विधियोंसे सबसे कठिन, पर ईमानदार कविका सहज हस्तामलक। और यह सहज 'कामनप्लेस' नहीं, कठिनकी पराकाष्ठा है, विषम और गूढ़की परिणति—सिम्पुल, द कल्मिनेशन ऑव द कम्प्लेक्स' कवियित्रीकी भावभाषा इतनी ही सहज है जितनी उसकी अवधारणा-अनुभूति मर्महर है, उतनी ही उसकी अन्विता तूलिका साध्य है, उतना ही उसका प्रभाव व्यापक है।

कविताएँ 'नाविकके तीर हैं, देखनेमें छोटे लगें, घाव करैं गम्भीर'।

यादका एक पहलू कितना चुटीला है, किस अछूती उपमासे वह अभिव्यक्त हुई है, कितनी सहज सारवान है, सुनिए :

मैं दिल के एक कोने में बैठी हूँ
तुम्हारी याद इस तरह आयी
जैसे गीली लकड़ी में-से
गाढ़ा कड़ुआ धुआँ उठे

एकान्त यह इतना बीहड़ है कि 'दिल' की निर्जन सत्ता भी जैसे जनसंकुल हो उठती है जिससे वह उसके दूरके कोनेमें जा बैठती है। और याद ऐसी आती है कि सहसा जला भी नहीं पाती, गीली सुलगती-सुलगाती है, धुआँ-सी झुलस देती है। जहाँ सारा आलम उमड़ पड़ा हो, जिस्मसे जिस्म छिलता हो, वहाँ भी 'मन' नितान्त अकेला हो जाया करता है और तब यह याद अपनी भूमिसे उठ कभी 'कड़ुवा धुआँ बन सकती है, कभी 'धूपका टुकड़ा' :

अँधेरे का कोई पार नहीं
एक ख़ामोशी का आलम है
और तुम्हारी याद इस तरह
जैसे धूपका एक टुकड़ा····

परकीयाका एक 'कन्फ़ेशन' बेनज़ीर बेबसीका इज़हार करता है, न उसमें कोई शिकायत है न मलाल, बग़ैर किसी औरस दावेके जो 'वह' अपने रन्ध्रोंमें अनौरस प्यारकी ख़ुशबू भर लेती है उससे औरस लजा जाता है। कौन जो इस बिथाको, इस अबोली फ़रियादको झेल जाये ?

हथेलियों पर इश्क की
मेंहदी का कोई दावा नहीं
हिज्र का एक रंग है
और तेरे ज़िक्र की एक ख़ुशबू
मैं, जो तेरी कुछ नहीं लगती

पर राधा ही कन्हैयाकी कौन लगती थी, और, पर रुक्मिणी कृष्णकी माला किसने फेरी ? और यादमें जब वह गीत लिखने चली तब

प्यारने भी भीतर-बाहर रंग दिया :

जब मैं तेरा गीत लिखने लगी
कागज़ के ऊपर उभर आयी
केसर की लकीरें—

जैसे सहसा किसीकी याद आ जाये और रंगों-पर चाँदनी-सी छा जाये। 'तू नहीं आया' कविता जैसे ऋतुओंकी पोर-पोर उतरती है, प्रोषितपतिकाका परदेशीमें लगा मन एक ओर कालिदासके नागर अभिजात आकलनसे होड़ करता है, दूसरी ओर लोकगीतोंकी ताज़ी अकुलाई दुनिया, बारहमासेकी विधामें जैसे, आँखें देहरीपर लगाये गायिकाके अन्तरमें उतर आती है :

चैत ने करवट ली
रंगों के मेले के लिए
फूलों ने रेशम बटोरा
तू नहीं आया

जी चाहता है कि समूची कविता लिख दूँ, पर ना, बस एक चावल....

दोपहरें लम्बी हो गयीं
दाखों को लाली छू गयीं
दराँती ने गेहूँ की बालियाँ चूम लीं
तू नहीं आया

पुश्किनकी जैसे नयी धरती अपनी सुबासके साथ कवियित्री प्रवासिनी प्रतीक्षिकाकी याद-में अँगड़ा उठी। पर ना, पुश्किनकी याद तो समीक्षकका भ्रम है, कवियित्रीका यह विन्यास तो उसका अपना है, अनायास सहज अथसे इति तक अपना, कारण कि उसकी हर कवितामें इसी अन्दाज़का दरिया रवाँ है—

बादलों की दुनिया छा गयी
धरती ने दोनों हाथ बढ़ा कर
आसमान की रहमत पी ली
तू नहीं आया
ऋतु ने एक टोना कर दिया
चाँद ने आकर
रात के माथे झूमर लटका दिया
तू नहीं आया....

कितनी ताज़गी है इन लाइनोंमें। 'रातके माथे झूमर लटका' देनेमें किस नाज़ुक, कितनी सुकुमार, अभिसारको इस मंदिर गायिकाने छू दिया है। एक समूचा साल जैसे लमहे-लमहे मौसम-मौसम गुज़र गया—'चैताकी चाँदनि रतिया'के आयीं और गयीं, वसन्त भरा और झरा, निदाघ तपा, दोपहरीके साये लम्बे हो गये, दाखोंकी तुरशी लालीकी परससे पककर मधु हो गयी, गेहूँकी बालियाँ पकीं, चूमी गयीं दाँतों-भरी हँसियेकी धारसे, पर तू कि नहीं लौटा, और कि निदाघ तपा और पावस बरस गया, झरता आसमान और उमंगी धरती एक हो गये, शरद, अमाके अभिसारके बाद, अम्बरमें चटकार उतरा, चाँदने रातके माथे झूमर बाँधा, पर तू नहीं आया। इन आखिरी चार लाइनोंकी मर्महर कोमलताको कोई हज़ार आँखों साहित्यमें खोजे।

प्यारकी राहके काँटोंके क्या कहने! जो बेरोज़गार बैठा है वह भी उसे छेड़ बैठता है, डँसी कायामें लहरें उठाने लगता है। और तब तो बस 'आदि कवि' की कल्पनाकी, क्रूर व्याधेकी, क्रूरतर अभिशापकी याद आ जाती है। पर कवियित्री शाप देती नहीं, 'जा तेरा भला हो', जैसे कहकर अपना अन्तर

उघाड़ देती है। 'वसन परिधूसर वसाना व्रतिनी धरती व्रत खोलनेवाली है पर थाली कैसे परसे जब गीतोंका धान कूटते ओखली काँप रही है, धान कूटते हाथोंके साथ ही ? (कम्पन) ऐसेमें काँपकर जैसे प्यारकी मारी व्रतिनी पूछ रही है :

किस पापी ने तीर चलाया
इश्क का जंगल सहम गया है
डरते-डरते भाग गयी है
यादों की मिरगावली

निश्चय प्यारके सपनोंका एक जंगल होता है, घना और हरा, जिसका ताँता नहीं टूटता, पर सपने सच कब हो पाते हैं ? मृग-मरीचिका अगर कहीं सच हो पाती तो प्यारके जगते सोतोंसे कँवलदह नहीं उमड़ पड़ते।

और ज़रा 'ज़रब' (गुणन) 'हाउसे' की अनगिन वृद्धिका एक नया अन्दाज़ सुनें :

एक हादसा, एक ज़ख्म
एक टीस दिल के पास थी
सितारों की रक़म ने
रात को इसे ज़रब दे दी

तनहाईकी एकाकी तकलीफ़को रात और तारे किस क़दर बढ़ा देते हैं पर उस जूठे बयानको अमृता हाथ नहीं लगाती जिसमें आहोंके तारे आसमानमें सुराख बनाते हैं, वह अपनी सूझसे उसे मुखर करती है। एक हादसा था, एक ज़ख्म था, एक टीस थी, बस एक, दिनका धन, पर सितारोंकी अनन्त रक़मने, अनगिन अदद-ने रातके एकाकीमें उसे ज़रब देकर बेहद बढ़ा दिया। अणोरणीयान् महतोमहीयान् बन गया और जो क्रिया कभी फलित होकर अमृत करती वही प्रतिफलित होकर अंकघातिनी हो उठी।

'रात मेरी' में वह तकलीफ़ एक अजब दीवानापन धारन करती है जब चोटके ज़ख्म-का रुतबा घायल बेपरवाह घटा देता है, दर्दको समूचा झेल जानेकी चुनौतीके सामने टाँकोंकी क्या बिसात ?

मेरे इश्क के ज़ख्म
तेरी याद ने सिये थे
आज मैंने टाँके खोल कर
वह धागा तुझे लौटा दिया

पर रात गुज़र जाती है, जैसे दर्द गुज़र जाता है, जब आशा की पौ फटती है :

यह रात आज क्यों ठिठक गयी
सियाही भी कुछ काँप रही
कहीं किसी विश्वास का
शायद जुगनू चमक उठा

'अन्नदाता' की मजलिस बेज़बान जानोंकी तड़पती असमतको बेक़ाबू कर जमती है, पर असमत नंगी उघड़ी कायाको खरीदारको सौंप प्यारका लाज उस तेवरसे बचा जाती है जिसे दौलत नहीं ख़रीद सकती :

अन्नदाता।
मेरी ज़बान
और इन्कार ?
यह कैसे हो सकता है।
हाँ ...प्यार...
यह तेरे मतलब की शै नहीं

इसी माहौलके एक शहरका रवैया देखिए—व्यंग्यकी इस चोटका कोई मिसाल नहीं है :

किसी मर्द के आग़ोश में

अपनी लोकप्रियता का अकाट

आँगनके पार द्वार [द्वि० सं०]
'अज्ञेय' : ३.००

कनुप्रिया [तृ० सं०]
डॉ० धर्मवीर भारती : ३.००

झाड़ी [द्वि० सं०]
श्रीकान्त वर्मा : ३.००

महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !! [द्वि० सं०]
'भिक्खु' : ३.००

जनम क़ैद [तृ० सं०]
गिरिजाकुमार माथुर : ३.००

ग्यारह सपनोंका देश [द्वि० सं०]
सं० लक्ष्मीचन्द्र जैन : ५.००

लेखनी-बेला [द्वि० सं०]
वीरेन्द्र मिश्र : ३.५०

संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [तृ० सं०]
डॉ० भोलाशंकर व्यास : ५.००

रजत रश्मि : [तृ० सं०]
डॉ० रामकुमार वर्मा : २.५०

ये भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन :
१९६६ में
जिनके नये संस्करण
प्रकाशित हुए

१९६६

प्रमाण प्रस्तुत करते हैं

अपने-अपने अजनबी [द्वि० सं०] : अज्ञेय	३.००
धूपके धान [तृ० सं०] : गिरिजाकुमार माथुर	३.५०
भारतीय ज्योतिष [च० सं०] नेमिचन्द्र जैन	८.००
भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०] डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
गुनाहोंका देवता [नौवाँ सं०] : डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
नाटक बहुरूपी [तृ० सं०] डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३.००
प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी [तृ० सं०] : सं० अनिलकुमार	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी·१ [द्वि० सं०] : व्यं० दि० माडगूलकर	४.००
कुछ मोती कुछ सीप [तृ० सं०] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
गहरे पानी पैठ [च० सं०] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ [च० सं०] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
माटी हो गयी सोना [तृ० सं०] कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
क्या धर्म बुद्धिगम्य है [द्वि० सं०] : आचार्य तुलसी	२.००
तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो [द्वि० सं०] : मुनि नथमल	२.००
गंगो जमन [द्वि० सं०] : नज़ीर बनारसी	३.००
सन्त विनोद [द्वि० सं०] : नारायणप्रसाद जैन	२.००

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

१९६६

कोई लड़की चीख़ उठी
जैसे उसके बदन से कुछ टूट गिरा हो
थाने में एक क़हक़हा बुलन्द हुआ
कहवाघर में एक हँसी बिखर गयी
सड़कों पर कुछ हॉकर फिर रहे हैं
एक-एक पैसे में ख़बर बेच रहे हैं
बचा-खुचा जिस्म फिरसे नोच रहे हैं।

हमारे समाज, क़ानूनके रखवारों और कहवाघरोंके बैठकबाज़ोंपर किया यह बेनज़ीर व्यंग्य काश कि उन तक पहुँच आता। और कई बार तो यह अनुपम अमृता खुसरो और कबीरका वाना धारण कर लेती है। भावना पहेलीका रूप धारण कर देती है और जैसे अनहदके नादमें भीतरका कोलाहल बाहर उमड़ पड़ता है, सूफ़ियोंके अन्दाज़में जैसे :

अम्बर-आशिक औंधा बैठा
आज धुन्द का हुक़्क़ा पिये
सूरज का एक कोयला लेकर
लीकें खींचें और बुझाये

'सवेरा' के इस हलकी-फुलकी भाषामें गहरे विचारकी अभिव्यक्ति, और अचरजकी भाषा उसका भार निरालस वहन कर रही है। पर इससे कुछ कम अन्दाज़की वह 'कुफ़्की बात' नहीं जिसमें कवियित्रीने 'एक दुनिया' बेचकर 'एक दीन' ख़रीद लिया। उसी कुफ़्के सिलसिलेमें पढ़िए :

सपनों का एक थान बुना था
एज गज़ कपड़ा फाड़ लिया
और उम्र की चोली सी ली

सपनोंका थान कितना लम्बा, उम्रकी चोली कितनी छोटी, बस एक गज़ कपड़ा। 'दावत' कहानीकी थे तीन लाइनें, जैसे कबीरकी हों; पर निहायत सुथरी--ज्ञानकी दृष्टिसे मूरख कवियों, उसको पल्लवग्राही संज्ञामें दर्शन पढ़ने-खोजनेवाले तनिक सतर्क होकर पढ़ें :

कल्पवृक्ष की छाँव बैठ कर
कामधेनु के छल के दूध से
किसने आज तक दोहनी भरी।

और,

दूर सजन और राह दुहेला
आप गुरु और आप ही चेला
तीसरी क़सम खाने की वेला।

इतना है, कुछ सचमुच इतना कि काग़ज़ चुक जाये और बात न चुके। पर अब बन्द करता हूँ जिससे मिठास एक साथ बहुत ज़्यादा न हो जाये। अमृता प्रीतम आधारतः रोमैण्टिक कवियित्री हैं। उनके राग और उसे मुखर करनेवाली गिरासे घना प्रभावित हुआ। जिस अभिजात नागरके गायनमें गाँव और धरतीका टटकापन है वह गायन कभी बासी नहीं हो सकता।

एक शब्द अनुवादपर भी। सही पंजाबी और हिन्दीकी परस्पर दूरी कुछ इतनी कम है कि अनुवाद और मूलका सान्निध्य कायम रखनेमें कुछ अस्वाभाविक प्रयत्न नहीं करना पड़ता। पर निःसन्देह अनुवादकने उसी सान्निध्यको प्रभावशाली बनानेका तत्पर प्रयत्न किया है यह अनुवादसे प्रकट है। कविकी भाषा और भावोंको यथातथ्य अनुवादमें कायम रख सकना अनुवादककी शक्तिका परिचायक है, इस सफलतापर मैं श्रीदेविन्दर-का साधुवाद किये बग़ैर नहीं रह सकता।

राजकमल प्रकाशनने जो यह नये क्षेत्रमें पदार्पण किया है मैं उसका स्वागत करता हूँ। कविवर पन्तजीके विनयने कवियित्रीसे जो अपनी 'भूमिका'-द्वारा हिन्दी पाठकोंका परिचय कराया है वह भी स्तुत्य है। संग्रह निश्चय हिन्दी कवियोंके लिए चुनौती भी है, मशाल भी।

—*भगवतशरण उपाध्याय*

प्रतिनिधि संकलन : कविता— मराठी : दिनकर सोनवलकर

आधुनिक मराठी कविताओंका यह प्रतिनिधि संकलन हिन्दीके जाने हुए कवि श्रीदिनकर सोनवलकर-द्वारा प्रस्तुत हुआ है। इसके रूपान्तरकार भी वही हैं। भारतीय ज्ञानपीठने इसे अपनी 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला'-में आठवें पुष्प रूपमें प्रकाशित किया है। इस प्रकाशन-द्वारा आयोजित यह ग्रन्थमाला विविध भारतीय साहित्योंके अध्येताओंको विभिन्न भाषाओंके कविता-संग्रहोंके हिन्दी अनुवाद-द्वारा चिर ऋणी कर रही है। अनेक भारतीय भाषाओंकी संचयित काव्यनिधिको जो इसने हिन्दी पाठकोंके लिए सुलभ कर दिया है वह ऐसा सत्कार्य है जिसे साहित्य-रसिक सराहे बिना नहीं रह सकते।

प्रस्तुत संग्रहमें अठारह मराठी कवियोंकी नब्बे कविताएँ—१९४० और १९६४ के बीच लिखीं—अनूदित संग्रहीत हैं। आरम्भमें ग्रन्थमालाके सम्पादक एवं नियामक श्रीलक्ष्मीचन्द्र जैनका छोटा-सा परिचय है, फिर डॉ० प्रभाकर माचवेकी एक भूमिका है जो भूमिका-लेखकको सुपरिचित आत्मपरिचायक स्वस्ति-शैलीमें ढाई पृष्ठोंके उसके ही उद्धरणके साथ शुरू और उसके ही नामके साथ खत्म होती है। संग्रह उचित ही आधुनिक मराठी कविताके आरम्भयिता और प्रगतिशील विचारोंके उन्नायक दिवंगत मर्ढेकरको समर्पित है। कविताओंका पूर्वोत्तर-क्रम वर्णादि क्रमसे व्यवस्थित है।

अनुवाद पढ़कर सुख मिला। दिनकर सोनवलकरको प्रकृति कवि रूपमें जानता हूँ, स्वयं उनकी कविताएँ मुझे प्रिय हैं; रूपान्तर करनेके स्वस्थ अधिकारी वे मराठी-भाषाभाषी होनेके अतिरिक्त अपने ज्ञान और कविधर्मके नाते भी हो जाते हैं। मूलको भरपूर न जानता हुआ भी केवल हिन्दी संस्करणकी इन कविताओंकी प्रवहमानता और सहज प्रसाद वैभवसे मूल और अनुवाद दोनोंके सामर्थ्यको स्वीकार कर रूपान्तरकारका साधुवाद करता हूँ।

संकलनमें जो कविताएँ संग्रहीत हैं उनसे आधुनिक मराठीकी विविध भावधाराओं और रसबोधपर प्रकाश पड़ता है। इन्दिराके 'निश्वास' और पद्माके दाम्पत्य विश्वासकी अपनी-अपनी भूमि रसप्लावित है यद्यपि वे महादेवीके चिरन्तन अभिजात मार्मिकताकी आर्द्र भूमि तक नहीं उठ पातीं। पर इन्दिराकी अपनी भूमि भी कुछ कम कोमल नहीं है—

---

* अनुवादक : दिनकर सोनवलकर, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६५, पृ० २३०, मूल्य ४)

निश्वास एक
डाली से ताज़े बकुल झर गये
निश्वास एक
भरे-भरे मेघों से
टप-टप-टप गिरीं बूँदें बड़ी-बड़ी ।
(निश्वास)

वैसे ही, जैसे अमृता प्रीतमके स्वरमें ।

वह है :
मेरी चँदेरी साड़ीका आँचल;
जिस पर
तुम्हारे हाथमें लगे चूने की
काली लकीर उभरी है । (लहर)

पुश्किन और प्रेमचन्दके माहौलमें साँस लेनेवाले मराठी धरतीके बेटे देशपाण्डे 'अनिल'-की कुल लाइनें इस प्रकार हैं (देर से आयी हुई बरसात) :

देर से आयी हुई बरसात को हथेलियों पर झेलें,
पलकों पर हौले सहेजें, मस्तकके पसीने-में मिला
सिर में सींचें, और उसकी आर्द्रता पीठ पर धीरे-धीरे गलने दें

उलाहनाका यह व्यंग्य इन्द्रके वज्रपर चोट करता है । 'तटस्थ' की एक गरिमस्थिति—

अस्तित्वोंके बीच अपरिचयकी खाइयाँ
ओफ़ कैसी तनहाइयाँ !

आरती प्रभु का सहज मर्मर, 'राह'में कोमल झरा है :

वृक्षों-वृक्षों में हवा
हिलती है ज़रा ज़रा
झरते ही पात एक
आ जाता द्वार पर ।

कविका कोमल अन्तर जब रिस करता है तब परुषवाणी फूटती है (रास्तेपर-का एक कवि आशावादी ।)

तपती दोपहरमें, थका हुआ, रोता सिसकता चल
और भूख की सलीब पर अपना सदय हृदय टाँग दे सूखने के लिए।

इसे पढ़कर शायद हिन्दी कवि 'सुमन'की प्राणवान् कविता 'अभिशप्त तुम्हारा कवि जीवन' की याद आ जाय । 'शिखाडकर कुसुमाग्रज' मराठीके मूर्धन्य कवि हैं, हाइने और ह्विटमनकी साँस जीनेवाले कवि, जिनका अपना 'बोध' है:

मैं तो हूँ
अनेकों में केवल एक जन
जो है
सब में
सब का
सब के लिए ।

उनके 'ध्रुपद' की मूर्च्छना मानव और मानवीयताकी साधिका है :

मेरे गीतों की
एक ही है स्थायी टेक
कि आदमी के माथे पर
ग़रीबी से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं
धरती की पीठ पर
इतना अमंगल, इतना दुःखदायक
इतना भयानक दूसरा कोई पाप नहीं ।

माडगूलकर मराठीके कोमल गायक हैं, 'गीत रामायण' के प्रख्यात रचयिता जिसकी प्रतिध्वनि हिन्दीके पाठकोंकी अजानी नहीं है :

मेरी कोमल भावना को ठुकरा दे तू चाहे
तहस-नहस कर दफ़ना दे ज़मीन में
मगर वही ऊगेगी बनकर कोमल लता
तेरे आँगन में, जिस पर रीझेगा वसन्त ।

इस 'कोमल भावना' का प्रेरक कविका जाना भीषण तूफ़ान (वरदान या अभिशाप) भी है :

शान्त लहर पर नाव चलाता
यौवन नाविक हाथ बढ़ाता
मेरे मन में घुमड़ रहा है भीषण तूफ़ान····

रसधर रेगेके भावभीने 'फ़ौलाद' का एक बन्द इस प्रकार है :

उसके कसदार फ़ौलादी अधरों पर
खिलता है जब नील कमल
तब उसकी एक पंखुरी पर स्पष्ट
सुई की नोक के बराबर
जो रक्त-बिन्दु दीखता है
वह मेरा ।

बोरकरकी कविता 'वह एक याद' और 'बारह मास एक ही क्षण में' ऐसी कविताएँ हैं जिनके उद्धरण नहीं दिये जा सकते । उन्हें समूचा एक साथ नहीं पढ़नेसे अर्थ-भंग होगा । पड़गांवकर भी बोरकरकी सौन्दर्य-भूमिपर सर्वथा अपने बिम्ब प्रस्तुत करते हैं (छुट्टो) :

समुद्री पक्षियों के पैरों की ब्राह्मीलिपि
उभरी है गीली रेत पर

इनकी 'दुम' नामकी कविता सारे क्षेत्रोंके महिमावानोंपर तीखा व्यंग्य है जो उन्हें बेपर्द कर देता है। वैसे तो वह पूरी पढ़नेकी चीज़ है पर एक बानगी लें :

अध्यात्म का उपदेश देने वाले
एक महापुरुष को ग़ौर से देख लिया ।
ईश्वर की सौगन्ध
वहाँ भी एक दुम थी ।
और वह वैसे ही एक
दुमधारी सत्ताधारी मन्त्री के आगे
हिल रही थी ।

पर मर्ढेकरने जिस शक्ति और गरिमासे व्यंग्य बिम्ब साधना की है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन्हींसे, अवसाद-भरी चोटसे वे अजर रचनाके धनी हैं :

गीले पीपे में मरे हुए चूहे :
गरदनें पड़ी हुईं, बिना किसी मोड़ के
होठों से मिले होठ
सिर डले हैं : आसक्ति के बिना ।

और :

कन्धों पर ढोले रात,
पलकों को आँखों पर ओढ़े,
वह भी हँसते मुँह से
रबर की पंक्चर हुई रात में
भौंकते हैं रबर के ही श्वान ।

कान्तका एक निठुर व्यंग्य है :

क्राइस्ट का मेमना भो इधर आया
चरता हुआ
मगर तराजू और तलवार के झगड़ों में
अपना क्रूस छोड़ कर चला गया ।

जैसे मन में जलते ज्वाल को एक किरन :

बरसात में भींग कर भी
बादलों में बुझती नहीं बिजली
ऐसी ही एक ज्योति
जलती है मेरे मन में ।

विन्दा करन्दीकर मराठीके उन कवियोंमें हैं जिनका नाम-जस मराठी परिधिको मर्ढेकरकी

उर्दू शाइरीका प्रामाणिक इतिहास, तुलनात्मक अध्ययन, साहित्यिक विवेचन
तथा प्रारम्भसे वर्तमान काल तकके १८८ शाइरोंका सर्वश्रेष्ठ कलाम और जीवन-परिचय
उर्दू-साहित्यके मर्मज्ञ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयकी क़लमसे

* * * * * * * * * * * * * * *

■ **शेर-ओ-शाइरी**
उर्दू छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय ।
मूल्य ८.००

■ **शाइरीके नये मोड़**
पाँच भागोंमें प्रकाशित इस अनूठी पुस्तकमें समसामयिक उर्दू शाइरोंके कलाम-परिचय तथा नयी शाइरीका भी प्रामाणिक परिचय मिलेगा ।
मूल्य प्रत्येक भाग ३.००

■ **नग़मए हरम**
ख्यातनामा महिलाओंकी टटकी उर्दू शाइरीका हिन्दीमें पहला संग्रह ।
मूल्य ४.००

■ **शाइरीके नये दौर**
पाँच भागोंमें प्रकाशित यह विशिष्ट कृति आधुनिक उर्दू काव्यका 'एन्साइक्लोपीडिया' है ।
मूल्य प्रत्येक भाग ३.००

■ **शेर-ओ-सुख़न**
अत्यन्त परिश्रमपूर्वक लिखी गयी इस पुस्तकके पाँचों भागोंमें प्रमुख उर्दू शाइरोंका उल्लेख और उनके जीवनकी मुख्य बातें तथा उनकी शाइरीपर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ दी गयी हैं ।
मूल्य पाँचों भाग २०.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता ● वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

ही भाँति लाँघ गया है। 'यन्त्रावतार' उनकी प्रचुर शक्तिम कविता है। कुछ लाइनें :

अग्नि की कली यह
पिचके हुए पेटों की आग की ज्वाला यह,
पद दलितों की आँखों की
क्रोधित यह लाली,
यह है कुंकुम तिलक : नीति ने लगाया इसे
प्रगति के माथे पर।

बसन्त बापटकी 'ज़ंजीर' बहुत भायी, 'अभी भी' की कुछ भावान्दोलित लाइनें इस प्रकार हैं :

मेरी आशा तरलायित है
अब भी फीके चन्दा नीचे,
जहर घोल कर इन गीतों में
हवा बह रही आँखें मीचे।

शरच्चन्द्र मुक्तिबोध हिन्दीके प्रशस्त कवि दिवंगत गजानन मुक्तिबोधके अनुज हैं। इस कारण भी ये हमारी कोमल भावनाके आश्रय बन जाते हैं। पर इनकी अपनी भी भूमि है, मराठी कवितामें सारभूमि। 'दो ज्योति' अच्छी लगी और 'तुम्हें धकियाकर मैं' तो सामाजिक चुनौती है। इसी प्रकार 'हम' शीर्षक कविता हमारे अक्षरको उघाड़कर नंगा कर देती है। 'तुम्हें धकिया कर मैं' की कुछ पंक्तियाँ पढ़िए :

तुम हो वहाँ के
जहाँ पाप भी
सौम्य हँसी हँसता है;
और जहाँ चोर भी
गद्गद हो सन्त-वचन बोलता,
नभ को गुंजाता है।

'हम' के रहस्यका एक रूप इन लाइनोंमें निर्बन्ध प्रकट हैं :

हम सब लक्ष्यहीन, श्रद्धाविहीन, टूटे हुए,
मनचाहे सपनों को ओढ़ कर फिरते हैं।

संग्रहके अन्तिम कवि रेगे हैं, सदानन्द रेगे—समूचेको प्रतीकतः कविताके साँचेमें ढालनेवाले कवि। 'मेरी हाथोंकी माटी' इसका विशिष्ट प्रमाण है। इनकी कविताएँ चूँकि एक साँसमें कही गयी हैं, पंक्तितः उद्धृत नहीं हो पातीं।

अन्तमें रूपान्तरकार सोनवलकरके प्रति हिन्दीके पाठकोंका फिर एक बार ऋण व्यक्त करते हुए मनमें एक बात होती है। मराठी रंगमंच तो देशमें अपना सानी नहीं रखता पर क्या उसकी कविताएँ भी इसी मानकी हैं? इस संकलनकी कविताओंको देखते तो उसका अनुमान नहीं हो पाता। यह निश्चय है कि सभी भारतीय साहित्योंको सहृदयतासे देखना-आँकना है और जो कुछ अनूदित होकर आ जाय वह भी हिन्दीका आंशिक उपकार ही है, फिर भी हिन्दी-भिन्न कविताओंको पढ़ स्थानीयको उनके साथ याद करनेकी प्रवृत्ति अनिवार्य हो आती है। मुझे लगता है, यदि ये कविताएँ मराठीकी प्रतिनिधि कविताएँ हैं तो, हिन्दीकी काव्य रचना अपनी कायाके रूप, रसविलास और सामाजिक चेतनामें मराठीसे किसी अंशमें घटकर नहीं।

—*भगवतशरण उपाध्याय*
(सी० २२०, महानगर
लखनऊ)

माध्यम

समस्त भारतीय भाषाओंका हिंदी-माध्यम

हिंदी साहित्य सम्मेलनका मासिक

संपादक : बालकृष्ण राव

- 'माध्यम' अपने 'सहवर्ती साहित्य' स्तंभके अंतर्गत किसी एक हिंदीतर भारतीय भाषाकी चुनी हुई समसामयिक रचनाएँ प्रस्तुत करता है।
- 'माध्यम' के मई १९६६ में प्रकाशित 'केरल विशेषांक' को हिंदी-जगतने 'उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु 'तथा' भावात्मक एकता-का प्रतीक' के रूपमें स्वीकार किया है।
- 'विवेचना-गोष्ठीमें विवेचित समीक्षाओंके अतिरिक्त प्रत्येक अंकमें अन्य विशिष्ट समीक्षात्मक सामग्री प्रस्तुत करना उसका उद्देश्य है।
- युगबोधके प्रति सजग प्रत्येक छात्र, अध्यापक तथा हिंदी-प्रेमी पाठकके लिए 'माध्यम' एक अनिवार्य आवश्यकता है।
- और सभी प्रकारके पुस्तकालयोंके लिए 'माध्यम' संग्रहणीय है।

मूल्य : एक प्रति १:२५, वार्षिक १२:५०

पत्राचार :
संपादकीय : डाक बक्स संख्या ६०, इलाहाबाद।
व्यवस्थापकीय : हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।

सामयिक सन्दर्भ

लक्ष्मीचन्द्र जैन

दो अनशन

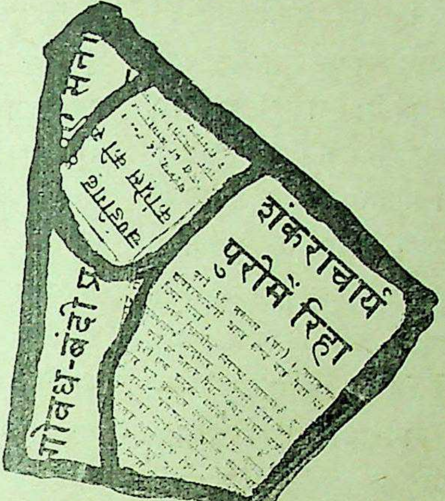

जगद्‌गुरु शंकराचार्यका अनशन जारी है—अनशन आमरण है, अतः यह कहा नहीं जा सकता कि कबतक चलेगा। समाप्त होगा या तो प्राणोंके साथ; या शासनके दर्प-भंगके साथ। या फिर, तीसरा रास्ता है, कि प्राण भी न जायें, शासनकी भी लाज बची रहे और शंकराचार्यकी भी; और दोनों ओरसे कहने लायक़ यह हो जाये कि एकने वह ले लिया जो, दूसरा कहे, कि उसने नहीं दिया। 'विजय' हर हालतमें दोनों पक्षोंकी होगी। इस बीच जगद्‌गुरुके प्राण संकटमें हैं; उन्हें असीम त्रास है!

अनशन तो एक-न-एक दिन समाप्त होगा ही; लेकिन प्रश्न यह है कि उसका क्या होगा जिसके नामपर यह सारी मुसीबत खड़ी हुई है—बेचारी गायका; गाय जो 'माता' है; जिसके उदाहरणपर हर निरीह नारी 'बेचारी गऊ' है? शंकराचार्य महाराज चाहते हैं कि गाय क़साइयोंके हाथमें न जाये, जो उसका वध कर देते हैं, और उसका मांस बेच देते हैं। 'गो-बध बन्द हो'—यह नारा जगद्‌गुरुका है; और लाखों-करोड़ों नर-नारियोंने इस नारेको भारतके वायुमण्डलमें गुँजाया है। कितनी बड़ी शक्ति है इस झुण्डकी, एक समूहके रूपमें, और अलग-अलग व्यक्तिके रूपमें—जो वास्तवमें आज व्यक्तिसे अधिक 'वोट' है। इस 'वोट'की सीधी टक्कर शासनके साथ भिड़ा दी गयी है क्योंकि शासनसे कहा जा रहा है कि

वह क़ानूनके बलपर गो-वध बन्द कराये।

हज़ारों सालसे देशमें गो-वध हो रहा है; बहुत-बहुत ग़लत और लज्जाजनक यह रहा है—बावजूद साधुओं और सन्तोंके बड़े-बड़े सम्प्रदायों और उनके व्यापक प्रभावके; बावजूद अहिंसा परमो धर्मःके; बावजूद महावीर, बुद्ध, और महात्मा गान्धीके। स्वयं शंकराचार्योंकी परम्परा लगभग हजार वर्षकी हो गयी। क्या इन सबके सामने यह दुःखदायक स्थिति नहीं रही और इसका कुछ भी प्रतिकार इन महापुरुषोंने नहीं किया? किया, लेकिन दूसरे-दूसरे ढंगोंसे। सबसे पहली बात तो यह कि इनके सामने प्रश्न गायका ही नहीं था; एक व्यापक प्रश्न था—प्राणियोंकी रक्षाका, मांस-भक्षणका, हिंसा-अहिंसाका। मुनि और साधु प्रचार करते थे कि मांस-भक्षणका त्याग किया जाये क्योंकि पशुओंकी हिंसा त्याज्य है, पशु फिर चाहे गाय हो, चाहे भेड़ और चाहे बकरी। गायकी हत्याका त्याग यदि प्राथमिकताके साथ कभी करवाया भी जाता होगा तो इसलिए कि वह दूध देती है। गायके शरीरमें करोड़ों देवताओंका निवास है, उनकी यह मान्यता थी तो इसी कारण। लेकिन, एक चमत्कार मानना पड़ेगा—करोड़ों देवताओंके निवासकी बात उन लोगोंके लिए सिद्धान्तकी बात थी; जगद्गुरु और 'गो-वध बन्द'का नारा लगानेवालोंके लिए यह बात प्रत्यक्ष देव-दर्शनकी हो गयी—करोड़ों देवता सशरीर भूपर अवतरित हो गये! प्रत्येक नरमें नारायण हैं और यह नारायणी शक्ति ही है जो गो-वधके कारण व्याकुल है। यह सब मान लिया जा सकता है; यह भी मान लिया जा सकता है कि नरमें नारायणी शक्तिका श्रेष्ठतम प्रतिनिधि साधुवर्ग, सर्वाधिक व्याकुल है; किन्तु साधुवर्गका प्रतिनिधित्व करनेवाला जो अंश दिल्लीके पार्लियामेण्ट स्ट्रीटपर युद्धरत हो गया—जिसने प्रचण्ड क्रोधसे गरजकर नारे लगाये, जिसने भवनों और कार्यालयोंमें घुसकर शीशे तोड़े, दरवाज़े जलाये; सड़कोंपर खड़ी मोटरोंको भस्म किया, जनताको आतंकित किया, उसके प्रतिरोध-स्वरूप कितने शंकराचार्योंने अनशन किया? यदि महात्मा गान्धीका सत्याग्रही दल विप्लवी हो जाता था तो गान्धी अनशन करते थे, आन्दोलन भंग कर देते थे क्योंकि वह अहिंसाके पोषक थे, सत्यकी मर्यादाका निर्वाह करनेमें प्रयत्नशील रहते थे। जगद्गुरुजी, आचार्य महाराज और मुनिवर, प्रश्न गायका नहीं है—प्रश्न हिंसाका है, प्रश्न मांस-भक्षणका है, प्रश्न पशुओंके वधका है। क़ानून बन भी जायेगा कि गौकी हत्या न हो, तब भी मांस-भक्षण जारी रहेगा; हिंसाकी प्रवृत्तिपर कोई अंकुश नहीं आयेगा; साधुसमुदायका राजनैतिक औद्धत्य बढ़ता जायेगा। इसे रोकनेके लिए आप चिन्तित हैं? कोई योजना है? कोई घोषणा है?

घूम-फिरकर, फिर वही प्रश्न आता है आयेगा—क़साइयोंके फरसेसे जिस गोमाताकी गरदन बचायी जायेगी उसके लिए आप लोग क्या करेंगे? देखिए तो कितनी-कितनी तरहके क़साई गायका दैनिक वध कर रहे हैं बिना फरसेके, बिना रक्तकी बूँद धरतीपर गिराये। इस अप्रत्यक्ष क़साईपनमें हम सब

अहिंसावादी शामिल हैं—गौके लिए सबसे बड़ा संकट इस क़साईपनका है।

कहाँ सोये रहे थे सब धर्मगुरु, सब अहिंसाधर्मी, और सारेके सारे गो-भक्त जब विदेशसे आनेवाले शासक वाइसराय, लार्ड अर्विन, ने भारतकी धरापर क़दम रखनेके कुछ दिनों बाद ही सारे देशको चकित कर दिया था—यह नारा लगाकर कि 'फूका' बन्द किया जाये। लाखों-करोड़ों नगरवासियोंको समझना पड़ा था कि 'फूका' क्या है—उस विदेशी वाइसरायने बताया था कि 'फूका' या 'फूँका' वह पद्धति है जिसका ग्वालोंमें व्यापक रूपसे प्रचार है—अर्थात् बाँसकी नलीमें ऐसे पदार्थ भर लिये जाते हैं जो बेहद जलन पैदा करते हैं, फिर इस नलीको गाय या भैंसकी योनिमें घुसाकर फूँक मारी जाती है कि वह जलनसे तड़प-तड़पकर अपना साराका-सारा दूध थनोंके अग्र भागमें ले आये और उसे दुह लिया जाये। जहाँ फूँका लगा कि गायने समझा कि इस क़साईसे बचनेका और कोई उपाय नहीं है, सारा दूध देना ही पड़ेगा। 'दूध देना पड़ेगा' का अर्थ यह कि गाय स्वभावतः पूरा दूध दुहने नहीं देती, वह कुछ दूध थनोंके ऊपर चढ़ाये रखती है ताकि बादमें वह अपने बच्चेको उसे पिला सके। सारे गो-भक्त आचार्य और मुनि जानते हैं कि शास्त्रोंमें जब 'वात्सल्य' का उदाहरण दिया जाता है तो कहा जाता है—'वात्सल्य' वह जैसा गायका अपने बछड़ेके प्रति—'गऊ बच्छ सम प्रीत'।

उसी बछड़ेके दूधको वसूल लेनेके लिए गायको 'फूँका' दिया जाता है। गायको दुःख देने और ठगनेके और भी रूप हैं। बिना दूध पाये, दुर्बल हो-होकर जब बछड़ा मर जाता है तो उसकी खालमें भुस भरकर उसका आकार सुरक्षित रखा जाता है। एक बार एक ग्वालेको इस तरहका चाममढ़ा बछड़ा ले जाते देखकर उससे पूछा तो पता लगा, गाय दूध नहीं देती जबतक उसके थनको बछड़ेका मुँह न लगे। इसे देखकर गायको कुछ फुरफुरी आती है और वह दूध दे देती है; वह समझती है, बच्चा बीमार है। गायके इस दारुण दुःखकी कुछ सीमा है?

बिना दानेके, बिना चारे और भूसेके गायें सूख रही हैं और उन्हें निचोड़ा जा रहा है। सूखी गायोंकी दुर्दशा तो वर्णनातीत है। यदि गौ बोल सकती तो शायद स्वयं कह देती कि इस तरह तिल-तिल करके मरनेसे अधिक अच्छा है कि क़साईका गँड़ासा एक बार गरदनपर चल जाये और मेरे बचे-खुचे शरीरसे किसीका पेट भरता हो तो भर जाये; मेरा इस जीवित नरकसे उद्धार हो जाये; हो सकता है मेरी अन्त समयकी परोपकारी भावनासे ही मुझे स्वर्ग मिल जाये।

इस बड़े परिप्रेक्ष्यमें गोवध बन्द करनेके लिए क़ानून बना देनेका प्रश्न बड़ा गौण हो जाता है। सरकारी क़ानून बननेसे ही यदि सब कुछ सुधर जाता होता तो देशके सामने आज चारों ओर संकट-ही-संकट दिखाई न देता। जगद्गुरुको सरकारके क़ानूनपर इतनी बड़ी आस्था कैसे हो गयी, यही आश्चर्य है—सरकार जो आज जनताकी दृष्टिमें अधिका-

धिक निकम्मी और शक्तिहीन होती जा रही है ! ऐसी सरकारसे मोर्चा लेनेका खुला क्षेत्र 'राजनीति' है। इस दाँवपर बेचारी गायको क्यों चढ़ा दिया ? और यदि उसे चढ़ा ही दिया है तो उसके लिए सचमुच कुछ करना जगद्गुरुका और उनके समर्थकोंका अब विशेष कर्तव्य हो जाता है।

जगद्गुरुका अनशन समाप्त होगा ही, क़ानून बन गया है, अधिकाधिक क्षेत्रोंमें वह लागू भी कर दिया है; और भी जो कुछ शेष कार्यवाही है, हो जायेगी क्योंकि गायकी रक्षा-में सिद्धान्ततः सबका विश्वास है। किन्तु यह हो जानेपर जगद्गुरुओं और मुनिराजोंके कर्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती, इस दिशामें उनका दायित्व बढ़ जाता है। उसे पूरा करनेके लिए वह क्या योजनाएँ बनाते हैं, और उन्हें किस प्रकार कार्यान्वित करते हैं, देशके सामने प्रश्न यही रह जायेगा। इस प्रश्नका मुक़ाबला उन सबको करना है जिन्होंने जलूस निकाले हैं और नारे लगाये हैं; और हमें भी जो इतना लिखते-बोलते हैं, और दूसरोंको उपदेश देते हैं।

■

एक दूसरा दुःखद और रोमांचकारी अनशन सन्त फ़तहसिंहका है। १७ दिसम्बरसे वह अनशन करेंगे, दस दिन तक उसे जारी रखेंगे और २७ दिसम्बर तक यदि सरकार पंजाबी सूबेको नये अंचल नहीं दे देती और चण्डीगढ़ यदि पंजाबमें शामिल नहीं कर दिया जाता तो वह जलती चितामें बैठकर आत्म-हत्या कर लेंगे। एक दिन पहले, २६ दिसम्बरको ६ अकाली नेता इसी प्रकार अपने प्राण होम देंगे।

यह भयानक और वीभत्स दृश्य यदि सचमुच घटित हो गया तो क्या होगा ? क्यों हुई यह धुन सवार सन्तजीको। प्रश्नके उत्तरमें प्रत्यक्ष रूपसे राजनीति है, किन्तु परोक्ष रूपसे है—सन्तजीकी लालसा कि वह सिखोंकी वर्तमान राजनीतिमें मास्टर तारासिंहसे कहीं बड़े नेताके रूपमें प्रतिष्ठित हो जायें और भविष्यके इतिहासमें गुरु तेग़बहादुरके समकक्ष माने जायें। आत्म-हत्याकी तारीखें उन्होंने इसी दृष्टिसे चुनी हैं, घोषित की हैं।

सन्तजीके मुक़ाबलेमें सूर्यदेवजीने अनशन कर दिया है। सूर्यदेव कहते हैं कि यदि सन्त फ़तेहसिंहकी आत्म-हत्याकी धमकीपर सरकारने पंजाबकी सीमाओंमें हेरफेर किया तो वह आत्म-बलिदान कर देंगे।

यह सब राजनैतिक अखाड़ेबाज़ी और तमाशा नहीं है तो क्या है ? हमारे शासनकी कमज़ोर स्थितिको अधिक कमज़ोर बना देनेके यह प्रयत्न निन्दनीय हैं। प्रत्येक अनशन और हंगामेके पीछे नीति यह है कि सरकार डर जायेगी और माँग पूरी कर देगी। सरकारने ऐसी धारणाके लिए अवसर भी अनेक दिये हैं। जो सिलसिला आन्ध्रप्रदेशके गठनसे प्रारम्भ हुआ, वह चण्डीगढ़के हस्तान्तरणपर समाप्त हो जायेगा, ऐसा सम्भव नहीं दिखाई देता। भारत सरकारने अपनी नीति स्पष्ट कर दी है; बहुत सीमा तक परिवर्तित कर ली है कि अभी पंजाब-हरियाणा प्रदेशका शासन-तन्त्र जिस सीमा तक मिला-जुला है, वह नितान्त

अस्थायी है; दोनोंमें-से एक राज्य भी जब यह वैधानिक घोषणा कर देगा कि वह अपनी व्यवस्था अलग रखना चाहता है, उसी दिन उस दिशामें कार्यवाही प्रारम्भ हो जायेगी। सन्तजीको इससे सन्तोष नहीं। उनका दुराग्रह यह है कि जिस चण्डीगढ़को सम्बन्धित कमीशनके निर्णयानुसार हरियाणामें सम्मिलित होना चाहिए था, किन्तु जिससे हरियाणाको वंचित कर दिया गया, उसे ही अब जबतक पंजाबको नहीं दे दिया जाता तबतक वह सन्तुष्ट नहीं होंगे। देखना यह है कि उनका दुराग्रह कहाँतक सफल होता है। सफल होनेका अर्थ होगा कि उनका राजनैतिक दाँव चल गया और असफल होनेका अर्थ यह होगा कि वह आतमहत्या कर लेंगे।

जिस प्रकार प्रत्येक द्विविधा और समस्याका हल निकल आता है, उसी प्रकार यह समस्या भी हल हो जायेगी—न सन्तजीके प्राण जायेंगे, न सरकारका पतन होगा; दोनों पक्षोंकी अपने-अपने क्षेममें 'बिजय' होगी। जनता और समाजके लिए चिन्ताका विषय है यह कि जिन मठों, मन्दिरों, आचार्यपीठों और उपाश्रयोंको जीवन-निर्माणका और धर्म-साधनाका केन्द्र माना जाता रहा है वह भी यदि सक्रिय दलगत राजनीतिके अखाड़े बन गये—जैसे कि बने जा रहे हैं—तो जीवनके आधारभूत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों और आदर्शोंकी चर्चाके लिए कौन-से स्थान और मंच बच जायेंगे? राजनीतिको स्वस्थ और सार्थक बनानेवाली जीवन-दृष्टिका निर्माण राजनैतिक अखाड़ोंमें नहीं होगा।

यदि जीवनको सही दृष्टि प्राप्त होगी और कार्यरूपमें वह परिणत होगी तो सक्रिय राजनीति भी परिष्कृत होगी। यदि ऐसा नहीं होता है, तो न गायको एक क़साईके हाथसे बचाकर दूसरे क़साईके हाथमें देनेसे लाभ, न चण्डीगढ़को एक कुएँसे निकालकर दूसरी खाईंमें डालनेसे किसीका कोई बास्तविक हित!

(भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७)

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देबेन्द्र अग्रवाल ● सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- कविताएँ तथा सुन्दर गीत
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएँ, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे
१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली–७
फोन नं० : २२७३००

[पृष्ठ ८ का शेष : कथन-उपकथन]

मोराविया : जो मेरा लेखन छपा है, उसमें कहीं ऐसा नहीं हुआ। यदि पात्रों-पर वश न रहे तो समझना चाहिए कि कृति खरी स्वतः प्रेरणासे निर्मित नहीं है।

प्रश्न : क्या 'वोमेन ऑफ़ रोम'का लेखन, टंकित टिप्पणियोंपर आधारित है ? ऐसा सुननेमें आया है कि........

मोराविया : कभी नहीं। मैं कभी टिप्पणियोंसे लेखन नहीं करता हूँ। दस वर्ष पहले रोममें मेरी भेंट एक स्त्रीसे हुई थी। उपन्यासका कोई सम्बन्ध उस नारीके जीवनसे नहीं है। किन्तु उसकी स्मृति बनी रही जैसे कि वह एक स्फुलिंग प्रज्वलित कर गयी हो। मैंने न कभी टिप्पणियाँ अंकित की हैं और न मेरे पास कभी टिप्पणी अंकन पुस्तिका रही है। मैं अपने कामकी पूर्व-तैयारी कभी नहीं करता। यह भी कह दूँ कि जिस समय मैं कार्य-संलग्न नहीं होता उस समय मैं कामके विषयमें बिलकुल ही नहीं सोचता। मैं हर सुबह नौ बजेसे बारह बजे तक लिखने बैठता हूँ। संयोगवश मैंने दोपहर बाद या रातके समय एक पंक्ति भी नहीं लिखी है। जब मैं लिखनेकी मेज़पर बैठ जाता हूँ तो, जबतक लेखन चल नहीं पड़ता, तबतक मुझे ज्ञात नहीं होता कि मुझे क्या लिखना है—मैं स्वतः प्रेरणामें विश्वास करता हूँ। वह कभी आती है; कभी नहीं भी। किन्तु मैं उसकी प्रतीक्षामें बैठा नहीं रहता।....मैं प्रतिदिन काम करता हूँ।

प्रश्न : सम्भवतया आपकी पत्नीने आपकी सहायता की होगी ?....मनोवैज्ञानिक ?

मोराविया : बिलकुल नहीं। अपने पात्रोंके मनोवैज्ञानिक पक्षके, या लेखनके किसी भी पहलूके लिए मैं केवल अपने ही अनुभवोंपर निर्भर करता हूँ किन्तु स्मरण रखिए कि पाठ्य-पुस्तिका या प्रमाण-लेखनके अर्थमें नहीं। मेरी ऐडरियाना नामकी एक रोमन स्त्रीसे भेंट हुई थी, मैंने दस वर्ष पश्चात् वह उपन्यास लिखा, जिसकी प्रथम प्रोत्तेजना वह नारी थी। सम्भवतया मेरी पुस्तक उसने नहीं पढ़ी। मैंने उसे केवल उसी एक बार देखा था। शेष सब मेरी कल्पना है, आविष्कार है।

प्रश्न : यथार्थ विषयमें फ़न्तासी या इमेजिनेशन ?

मोराविया : कल्पना और फ़न्तासीके अर्थ न उलझाइए। ये दोनों, मस्तिष्ककी भिन्न-भिन्न क्रियाएँ हैं। सब कलाकारोंके पास कल्पना होना आवश्यक है—किन्हींके पास फ़न्तासीकी शक्ति भी होती है। वैज्ञानिक कथा-साहित्य फ़न्तासी है। किन्तु कल्पनाका एक उदाहरण 'मदाम बावेरी' है। फ्लॉबेअरमें बड़ी कल्पना-शक्ति है, किन्तु फ़न्तासी-लेखनका एक कण नहीं।

(१७९, 'ओ' ब्लाक, न्यू अलीपुर,
कलकत्ता–५३)

[पृष्ठ ४ का शेष : कुछ पंक्तियाँ…]

(साकिन = निवासी । इन्तखाब = चयन । मुन्तखिब = जिनका इन्तखाब या चयन हुआ हो । रोज़गार = संसार । फ़लक = आकाश । दयार = शहर)

आपने 'मीरके महानगर : उजड़े हुए….' शीर्षकसे पृष्ठ १११ पर जो शेर दिये हैं उनके साथ या उनकी जगह यदि ऊपरवाले अन्तिम शेर दिये होते तो अधिक उपयुक्त रहता । खैर ।

(२) "परकोटे बोलते हैं" (पृष्ठ २२ पर, दूसरे कालमके दूसरे पैरामें) डॉ० भगवतशरण उपाध्यायने लिख दिया कि--"कान्यकुब्ज नाम मिट गया पर कनौज आज भी बना है ।" शायद "शब्द कान्यकुब्ज मिट गया" लिखनेके बजाय वे ऐसा लिख गये हैं । किन्तु "शब्द कान्यकुब्ज मिट गया" यह लिखना भी, कमसे कम वर्तमान मध्यप्रदेशमें, सरासर ग़लत है । मेरे ऊपर विश्वास न हो तो मुझसे अधिक प्रशस्त साहित्यकार एवं विद्वान्—उदाहरणार्थ सर्वश्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, नन्ददुलारे बाजपेयी, रामेश्वर शुक्ल अंचल, डॉ० आतमानन्द मिश्र, डॉक्टर भगीरथ मिश्र, कृष्णदत्त बाजपेयीमें-से किसीसे भी आप पूछकर मेरी बात मान सकते हैं ।

(३) "लन्दन जिससे हमारा रिश्ता था…." का शीर्षक "लन्दन जिससे हमारा 'तअल्लुक़' था"--होता तो और अच्छा रहता । लगता है, आप भी मेरी इस बातसे सहमत हैं; और शायद इसी कारण उनकी शीर्ष-न्यूनताका दण्ड देनेके लिए आपने पृष्ठ १४३ पर अन्तिम-पादस्थ या निम्नतमस्थ पंक्तिमें ब्रजकिशोर नारायणका स्थान प्रेमलता वर्माको दे दिया है, यदि आप मुझसे सहमत नहीं हैं तो अपनी ग़लतीकी घोषणा आउँदो अंक (आगामी अंक) में अवश्य कीजिए !

(४) "उज्जयिनीकी दो रातें" (इलाचन्द्र जोशी) बहुत अधिक खिंच गयी हैं किन्तु दो बातोंकी वजहसे (अपने पास 'वहाँ' की रातें नहीं, केवल बातें ही तो हैं !) चुप रहना ही अभीष्ट है । एक तो नवम्बर-दिसम्बरमें रातें बड़ी होना नैसर्गिक है; और दूसरे 'सुबहे बंगाल, शामे अवध और शबे मालवा' के अनुसार लम्बी होने ही से तो मालवाकी रातें इतनी अधिक खुशबूदार होती हैं !—सागर]

●

[**जितेन्द्र मित्तल** : चार आयामोंवाला यह अंक मेरे खयालसे इस युगका एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है और महानगरोंके जीवनके विषयमें सोचनेके लिए काफ़ी

मसाला देता है । इतना सुन्दर अंक निकालनेपर मेरी हार्दिक बधाई ।—बम्बई ।]

●

[**लीलाधर जगूड़ी :** महानगर विशेषांक आकारमें ही नवीन और भारी नहीं अपितु सामग्री और उपलब्धिमें आशातीत नवीन और भारी है । इन पहाड़ोंकी ऊँचाईपर नयी हिन्दी भाषाका यह ऊँचा और छटपटाता तलाशदार अंक सम्पादकीयमें माडलकी तरह और अन्य पेजोंपर संयोजनका सम्पूर्ण विराटताके साथ उपस्थित हुआ है । दूसरे भागकी प्रतीक्षा है ।

अंककी तमाम रचनाएँ विविध आयामोंका उद्घाटन ही नहीं करतीं बल्कि हिन्दीके साहित्यकारोंके दिमाग़ोंको क्या हो रहा है : इस ओर भी पर्याप्त संकेत करती हैं । नगरबोध तो आपके शब्दोंमें 'एक माध्यम है'—इससे भी बड़ी बात जो मुझे कुछ रचनाओंमें अतिशय तीव्रताके साथ प्राप्त हुई वह है—'जीवनका नगद बोध' । 'भारतीय परिप्रेक्ष्य और जीवनका नगद बोध' । नयी पीढ़ी किसी हद तक बहुत ईमानदार हो रही है : अब क्या होगा ? — मसूरी]

●

[**श्याम गोविन्द राजहंस :** निस्संदेह अंक ज्ञानके नये आयाम खोलता है । सब मिलाकर कहूँ तो काव्य-अंशने महानगरके जीवनकी संक्रान्त संवेदनाओंके प्रस्तुतीकरणमें सर्वाधिक सफलता पायी है । विशेषकर, जगदीश चतुर्वेदी, विनय दुबे, देवताले, रचना ने । सोचता हूँ कि

> घिनौना शहर मरी मछली सा गन्धाता है ।
> ऐसे में, पीछे छोड़ा हुआ एक फूल
> याद आता है ।

अन्यथा महानगरोंके अतीत-चित्र, नईमकी कविता, माचवेजीकी भविष्य-वाणीका क्या अर्थ कोई पाठक ले ! रमेशदत्त शर्माकी वैज्ञानिक फ़न्तासीका अन्त बड़ा हृदयग्राही लगा । किसीने सच ही कहा है कि जहाँ कविता नहीं है वहाँ कोई भी लेखन कैसे हो सकता है । कुबेरनाथ रायका लेख भी इसी धारणाको पुष्ट करता है । 'महानगरोंकी एक ही परिणति : कूड़ा'से मैं सहमत नहीं हूँ । क्योंकि जीवनका अर्थ है—बचे रहना । —जावरा]

■ ■

'अज्ञेय' : **आत्मनेपद** ..

आधुनिक हिन्दी साहित्यका एक विवादास्पद नाम है। कहना न होगा कि अज्ञेयकी कृतियाँ और उनके विचार साहित्यमें निरन्तर विवादके विषय रहे हैं। जैसे उनके समवर्तियोंके ये विचार कि—

"अतिशय आत्मकेन्द्रित और अहं प्रमुख कलाकार····'अज्ञेय' जीकी····कृतियाँ व्यक्तिवादी उपन्यास ही कहला सकती हैं।"
—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

सर्वतोमुखी प्रतिभासे सम्पन्न यह व्यक्तित्व प्रकाशमान पुच्छलतारेके समान हिन्दीके आकाशमें उदित हुआ····।" —प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त

"अपनी दुमका पीछा करता हुआ कुत्ता····" —यशपाल

"अज्ञेयका 'शेखर : एक जीवनी' 'गोदान' के बादका सबसे महत्त्वपूर्ण और कलात्मक उपन्यास है।" —शिवदान सिंह चौहान

" 'नदीके द्वीप' अभी पढ़ चुका हूँ।····बड़ी उसमें बारीकी है, बड़ी ज्ञानवत्ता। और भी बड़ी-बड़ी दक्षताएँ होंगी।····लेकिन मैं क्या सोचूँ····सोचता हूँ कि पढ़ते हुए कहीं भींगा क्यों नहीं? —जैनेन्द्र कुमार

"मैं भींगा और खूब भींगा····" — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

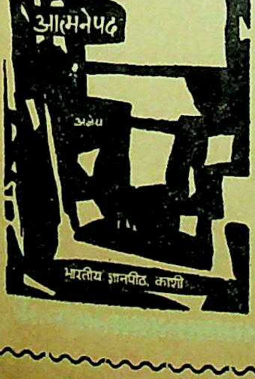

'आत्मनेपद' में 'अज्ञेय' ने अपनी कृतियों और कृतिकारके रूपमें स्वयं अपने बारेमें अपने विचार प्रकट किये हैं। अतः 'अज्ञेय'के व्यक्तित्व और कृतित्वको समझनेके लिए 'आत्मनेपद' अनिवार्य है। साथ ही कृतिमें समकालीन साहित्यकारकी स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओंपर आये विचारोंके कारण भी यह हिन्दी पाठक-मात्रके लिए आवश्यक हो गयी है। मूल्य ४.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता • दिल्ली • वाराणसी

GYANODAYA Jan. 1967
Price Annual Rs.10/- per copy Re.1/-for abroad extra postage 18nP. This Copy Re.1-

21 JAN 1967
25 APR 1967
2 MAR 1967
8 MAR 1967

19/18 शान्तिजगर

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड
भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

कैल्सियम क्लोराइड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०
१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई-१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०, तार : सोडाकेम, बम्बई

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

License No. 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित।

ज्ञानोदय

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

मू. १.५०

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं माणिक-
चन्द ग्रन्थमालाके अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ
पत्रिका

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

वर्ष : १८ : अंक : ९

मूल्य : १.५०

फ़रवरी १९६७

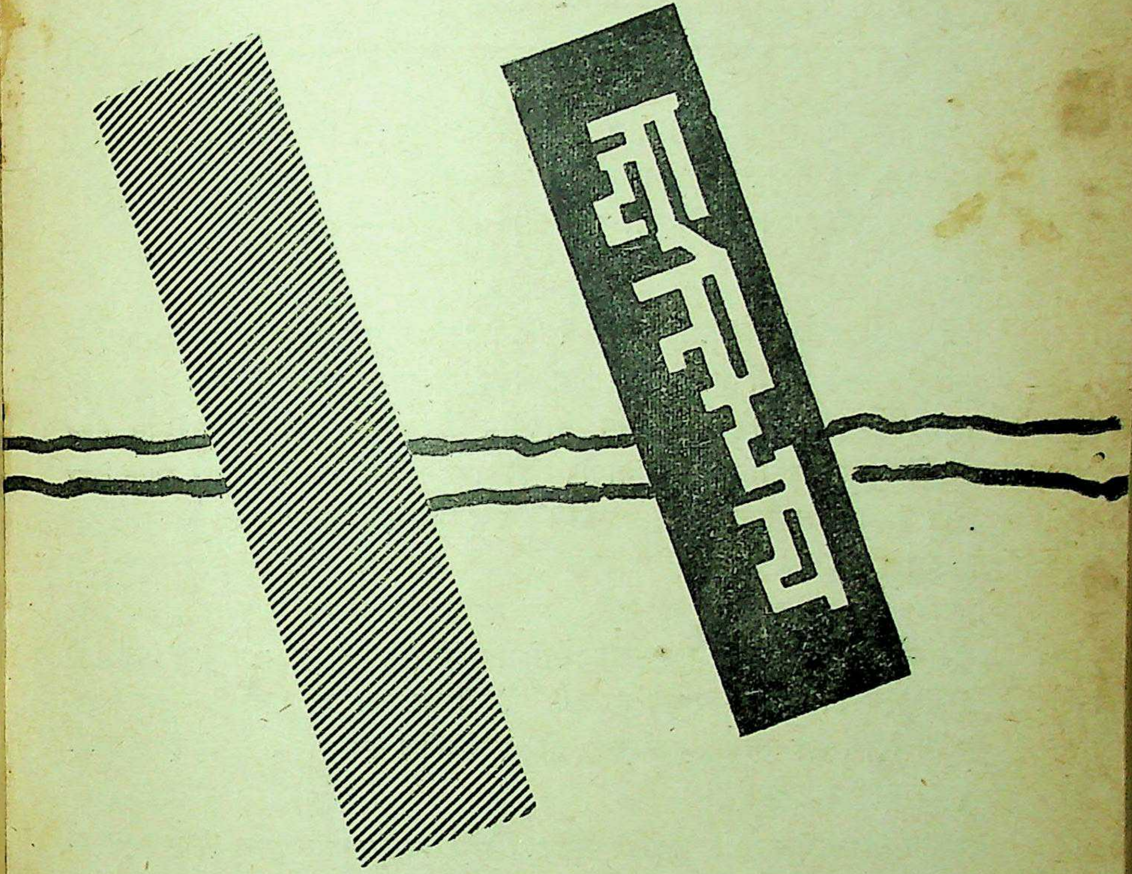

आधुनिक भावबोध, कला संचेतना
और नवीनताका प्रतिनिधि मासिक

भारतीय ज्ञानपीठ
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

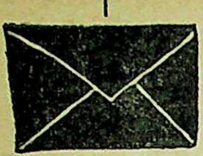

कुछ पंक्तियाँ ....

[**रमेशचन्द्र श्रीवास्तव** : मुझे आज 'ज्ञानोदय'का जनवरी अंक मिला। अंक पाकर प्रसन्नता हुई। ज्ञानोदयकी क़ीमत बढ़ गयी, यह पढ़कर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। क्योंकि इस मँहगाईमें दाम बढ़ाना स्वाभाविक ही है। — रीवाँ]

●

[**प्रद्युम्नकुमार जैन** : अभी हालमें ही मैं 'ज्ञानोदय'का ग्राहक आपके यहाँ नामांकित हुआ हूँ। इसके पूर्व मैं वर्षों लगातार 'ज्ञानोदय'का ग्राहक रहा हूँ और उसे चावसे पढ़ता आ रहा हूँ। मैं आपके नवीन भावबोध और कला-संचेतनाके उद्देश्यसे बहुत प्रभावित हुआ, इसीलिए मैंने 'ज्ञानोदय'को अन्य सभी पत्रिकाओंसे ऊपर स्थान देकर अपने अनवरत अध्ययनका अंग बनाया। परन्तु मुझे एक बात बराबर खटकती रही है, यद्यपि कल तक पूरी तरह निश्चित नहीं हो पाया था और इसीलिए शायद मैंने आपको अब तक कुछ लिखा नहीं और आज जब आपकी उपहार-योजनान्तर्गत मुझे नये विशेषांकके साथ एक पुराना विशेषांक 'भारतीय कथा अंक' भी मिला, तो मेरी खटक निश्चय रूप धारण कर गयी और मैं आपको दो शब्द लिखनेका साहस बटोर बैठा। इस पत्रको आप चाहें, तो सार्वजनिक रूप भी दे सकते हैं और मेरी धृष्टताको क्षमा भी।

प्राचीन और नवीन दोनों अंकोंको पाकर मैंने अतीव हर्षका अनुभव किया। आपको कोटिशः धन्यवाद देते हुए उन्हें पढ़ा। परन्तु जैसे-जैसे ही मेरा अध्ययन-क्रम उन अंकोंके प्रति बढ़ता गया, मैंने पाया, कि मैं प्राचीनकी ओर बुरी तरह खिंचता चला जा रहा हूँ। मैं बराबर अपनेसे प्रश्न करता रहा, कि मेरे इस खिंचानका हेतु कहीं वस्तुनिष्ठकी बजाय आत्मनिष्ठ तो नहीं है। मेरे अन्दर कहीं प्राचीनके प्रति मोह तो छिपा हुआ नहीं है? मेरी विश्लेषणात्मक बुद्धि काफ़ी सजग और सक्रिय रही उत्तर पानेके लिए और मैंने पाया कि मेरे इस खिंचानमें वस्तुनिष्ठ हेतु काफ़ी महत्त्वपूर्ण है और मुझे निश्चय हुआ, कि 'ज्ञानोदय'के कला-बोधका प्रगति-चक्र अवनतिग्रस्त होता जा रहा है। या फिर क्या नवीन कलाका ही रूप ऐसा है कि वह मनके गहन अन्त-

रालपर प्रभाव नहीं डालता और प्राचीन कला-कृतिकी अपेक्षा मनको अधिक आकर्षित नहीं कर पाता ?

नवम्बर और दिसम्बर '६६के दोनों 'महानगर विशेषांकों'का परायण मैंने किया। अनेक लेखोंके मध्य मैंने लिखा पाया, जिसका आशय यह रहा कि—'लेखकको चूँकि समय नहीं था और विशेषांककी सामग्री भेजनेकी तिथि नज़दीक आ गयी, अतः कुछ····लिख रहा हूँ (क्योंकि कुछ लिखना है।)' इस प्रकारकी अभिव्यंजना स्पष्ट करती है कि हवाका रुख कैसा है। मैं नहीं समझ पा रहा हूँ, कि जिनके पास इतना अवकाश नहीं है कि वे अपना लेख स्वतःस्फूर्त होकर लिख सकें (या स्वतः स्फूर्त व्यंजनाकी अपेक्षा उनमें आत्मश्लाघाकी अभिव्यंजना ही प्रधान है ?) उनमे नवीन भावबोधके उद्धारकी आशा कहाँ तक की जा सकती है ? मेरे ख़यालसे ऐसे लेखक कुछ इसलिए लिखते हैं, कि उनसे 'ज्ञानोदय'-जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाके सुप्रतिष्ठित सम्पादकने कुछ लिखनेका आग्रह किया है, और...(शायद पैसे भी अच्छे मिलनेकी आशा हो,) वह उसे मना नहीं कर सकते किन्हीं दूरगामी कारणोंसे। क्या इस प्रकार से लिखे हुए लेख किसी उत्कृष्ट भावबोधके व्यंजक हो सकते हैं ? क्या सम्पादक महोदय इस स्तरकी, शायद इससे ऊँची ही, सामग्री उन अन्य लेखकोंकी भी स्वीकार कर सकते हैं, जो अभी तक उनकी निगाह पर नहीं चढ़ सके हैं ? —

ज्ञानपुर वाराणसी]

●

[ओंकार ठाकुर : महानगर-विशेषांकसे जो अपेक्षाएँ मैंने कर रखी थीं; वे सही अर्थोंमें पूर्ण हुई हैं। दोनों अंकोंकी रचनाएँ पढ़कर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि अनेक लेखक रचनाका आमन्त्रण पाकर 'ज्यादा और मनचाहा' लिखनेका मोह संवरण नहीं कर पाये। उदाहरणार्थ 'लघु मानवोंका महानगर' तथा 'उज्जयिनीकी दो रातें'। जोशीजी की रचना बावजूद कोशिशोंके पढ़ नहीं पाया। प्रेमकपूरका 'सच' वास्तविकताके निकट है। बम्बईसे जो परिचित हैं, उन्हें यह रचना बाँध लेगी। धनंजयजीकी यह बात मुझे पसन्द आयी कि इन दिनों अफ़सरकी नियति जबलपुरकी तरह है। लेकिन मेरा विश्वास है, और धनंजय भाई शायद स्वीकारें भी, शासकीय अफ़सर इलाहाबादकी तरह है ! इलाहाबाद अपने गलित और बजबजाते गौरवको सीनेसे चिपटाये कभी दिल्लीकी तरफ़ देखता है और कभी कलकत्ताकी ओर। वह अनिर्णयकी स्थितिमें है और अपने संस्कार तथा भाग्यको कोसता है। 'व्यर्थमें प्रतीक्षा' और रामसेवक जी की कविता नख-शिख दुरुस्त है और काफ़ी सोच-विचारके बाद लिखी गयी प्रतीत होती है।

(शेष पृष्ठ १३५ पर)

ज्ञानोदय

परिर्वातित ग्राहक–शुल्क :

एक प्रति	१–५०
वार्षिक विशेषांक	३–००
वार्षिक शुल्क	१५–००
अर्द्धवार्षिक	८–००
तीन वर्ष का	४०–००
सात वर्ष का	६५–००
पन्द्रह वर्ष का	२००–००
आजीवन	२५१–००

—व्यवस्थापक

परिर्वातित विज्ञापन–दरें :

पूरा पृष्ठ (पाठ्य-सामग्रीके बीच)	२७५–००
पूरा पृष्ठ साधारण	२५०–००
मुख-पृष्ठ (चतुर्थ भाग)	५००–००
तृतीय मुख-पृष्ठ	४००–००
दूसरा मुख-पृष्ठ	४५०–००
आधा पृष्ठ	१५०–००

—विज्ञापन अधिकारी

परिर्वातित निवेदन :

१. ज्ञानोदयके लिए नयी रचनाओंका स्वागत है लेकिन अस्वीकृति की सूचना देना सम्भव नहीं है। केवल वे अस्वीकृत रचनाएँ हम लौटा देते हैं जिनके साथ पता-लिखा, टिकट-लगा लिफ़ाफ़ा हो।

२. अनामन्त्रित रचनाओंके निर्णयमें एक मास लग जाता है फिर भी जो रचना ज्ञानोदयके लिए भेजें, कृपया वह हमारे उत्तर तक कहीं और न भेजें।

—सम्पादक

अनुक्रम

फ़रवरी १९६७
वर्ष : १६ :: अंक : ४
पूर्णांक : २२४

प्रमुख लेख :

कथन-उपकथन : अपने अनुभवके सत्यको छिपाकर कोई बड़ा नहीं बन सकता : हेमिंग्वे ६
एक प्रश्नोत्तरी : लाल चीनपर काली छाया : लक्ष्मीचन्द्र जैन ९
सांस्कृतिक परिवेश : द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया : राजनाथ पाण्डेय २२
प्रतिप्रश्न : 'सहना' और भोगना हमारी 'नियति' नहीं : आशारानी व्होरा ३०
राजनीति : प्रशान्त और एशियामें अमेरिकी युगका प्रारम्भ : अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार ३४
युवालेखन : गुजराती : आदिल मन्सूरी, सितांशु यश्शचन्द्र, श्रीकान्त शाह, सुभाष शाह, हरीन्द्र दवे, मणिलाल देसाई, मधुराय ४३
कला-संचेतना : पत्थरपर उभरती मांस-पेशियाँ : जी० पी० शुमेश आर्य ५३
अर्थतन्त्र : हमारा निर्यात क्यों नहीं बढ़ता : वीरेन्द्र अग्रवाल १०१

अन्य स्तम्भ :

प्रतिक्रिया:कला-समीक्षकके आमने-सामने : किशोरीलाल वैद्य ५७
समीक्षा : 'शुद्ध कविताकी खोज' में दिनकर : कुछ सहज प्रश्न : कैलाश वाजपेयी १०५, कवितामें शुद्धता : गोपाल राय ११४
कथा-यात्रा : पूर्वापर सम्बन्ध : धनंजय वर्मा १२१
प्रदर्शनी : पोलैण्डके ग्राफ़िक और पोस्टर : घनश्यामरंजन १२९
प्राप्ति-स्वीकार : समीक्षार्थ पुस्तक-सूची १३३

कथा-साहित्य :

खेदू : विवेकी राय ६२
फन्दा : महेन्द्र भल्ला ७०
लेखक : रामनारायण शुक्ल ७५
एक ख़त मेरा भी···· : शेफाली ७९
एक पत्थर : दो पत्थर : तीन पत्थर : कृश्नचन्दर ८४

■ कविताएँ :

- इस मौसमकी कविताएँ : प्रश्नसे : श्रीकान्त जोशी १७, चार छोटी कविताएँ : सविता बैनर्जी १८, नागरिक : श्याम विमल २०, जाड़ोंमें मध्यवर्गीय शहरकी रात : आनन्द कुमार आशु २१
- कॉमनवेल्थ कविताएँ : मार्टिन कार्टर, पाल इवान्स, डेविड रुबादिरी, जे० एच० चेपलिन, डॉम मॉरेस ९३

■ कुछ पंक्तियाँ... :

रमेशचन्द्रश्रीवास्तव, प्रद्युम्नकुमार जैन, ओंकार ठाकुर, सुरेश सेठ, ओमप्रकाश अग्रवाल, आनन्दनारायण शर्मा, सियारामशरण प्रसाद, मंगलेश मयंक, बलराज जोशी २

लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो जो हमारी यात्रा से बनें
ऐसे अनिर्मित पन्थ प्यारे हैं।

— सर्वेश्वर

[रेत पर रेखांकन : मदन सरकार]

अन्तर्सज्जा : भाऊ समर्थ

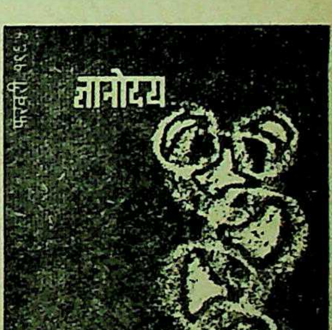

'अपने अनुभवके

अर्नेस्ट हेमिंग्वे : १९१८, मिलानके अस्पताल-में—'जब दर्द उठे सीटी बजाओ…'

[अर्नेस्ट हेमिंग्वे—जन्म : २१ जुलाई १८९९, मृत्यु : २ जुलाई १९६१। उस दिन रविवार था जब सुबह ठीक सात बजे हेमिंग्वेने सिल्वर-इनलैड १२-गॉज डबल-बेरल्ड रिचर्ड्सन शॉटगन उठाकर अपने आपको समाप्त कर लिया था। कोई नहीं जानता कि उसने घोड़ा कैसे दबाया था लेकिन यह सही है कि जिस भयंकर रूपमें वह जीवित रहा उसी रूपमें मरा भी। हेमिंग्वे पुलित्ज़र और नोबल पुरस्कार विजेता ही नहीं था, एक समर्थ मल्लाह और शक्तिसम्पन्न मछेरा था। समुद्र उसके लिए खेल था। शिकारी वह रहा, गनक्लब उसका था, लिखना उसका मिशन था—लेकिन समुद्रके तूफ़ान देखनेके बाद तूफ़ानसे पहले और तूफ़ानके समय वह केवल आदमीके रूपमें लड़ता रहता था, अपनी पूरी शक्ति-सहित। उसका सारा जीवन बेहद स्पष्ट रहा—उसके जीवनकी छोटीसे छोटी बात भी उजागर थी। केवल मृत्यु ही रहस्य होकर रह गयी कि क्या ऐसा सिपाही, जो दुनिया-भरको ज़िन्दा रहनेके लिए लड़नेके उपदेश देता रहा, अपनी ही बन्दूक़से अपना ही सिर फोड़ लेगा ?]

प्रश्न : मृत्युके बारेमें नहीं, जीवनके बारेमें कुछ पूछना है, कि यह रोज़-रोज़का जीवन आपको रास आता रहा?

उत्तर : जीवनको मैंने जी भरकर जीया है। मैं ख़ूब तैरा हूँ, मैंने ख़ूब शिकार खेले हैं, बड़ी-बड़ी मछलियाँ फँसायी हैं, जानको हथेलीपर लेकर युद्ध लड़े हैं, मैंने एक बारमें १५-१५ पेग स्कॉच पी है, मैंने दो बार तलाक़ दिये हैं, तीन शादियां की हैं और यह करते भी किसी औरको भी चाहा है। बीमारीके समय यह भी लगा है कि वह मेरी बाँहोंमें हो तो मैं एकदम स्वस्थ हो जाऊँगा। मैंने अपने छोटे भाई लेसेस्टरसे कहा भी था कि कोई मेरी जीवनी लिखे, भले ही वह ख़ुद लिखे लेकिन वही लिखे जिसने मुझे 'अण्डर-स्टैण्ड' किया हो। मैं यह कह सकता हूँ कि किसी भी आदमी-की सच्ची कहानी उसके जीवनके चौबीस घण्टे जीये गये वे पचास वर्ष हैं जिसमें-से कहते समय एक क्षणको भी छिपाया न जाये

सत्यको छिपाकर कोई बड़ा नहीं बन सकता'

—हेमिंग्वे

और सब कुछ वैसाका वैसा कह दिया जाये। 'द सन आलसो राइज़ेय' में मैंने यही बात कही है।

प्रश्न : लेकिन यह जो जीवट, जीनेकी इच्छा, लड़ जानेकी ललक और हमेशा युद्ध-पर तैनात रहनेकी ताक़त....

उत्तर : समझा। सच तो यह है कि धुर-बचपनसे समुद्र मेरा आँगन रहा। शिकार खेलना मैंने पहले सीखा, अक्षर-ज्ञान बादमें। मैंने सेलर सूट पहले पहना है, टाईकी नॉट लगाना बादमें सीखा। मेरी माँ कहा करती थी कि मैं बचपनमें बहुत चीखता-चिल्लाता था। एक सालकी उम्रसे ही मुझे सवेरेके नाश्तेकी जरूरत पड़ने लगी थी। एक बेहद स्वस्थ बच्चेके रूपमें मेरा विकास हुआ। लड़ना और अपनी इच्छा-के 'गोल' तक पहुँचना मेरे लिए कल्पनाका विषय नहीं है। मैं कसरत भी करता रहा और तन्दुरुस्तीपर मुझे गर्व रहा। लेफ़्टिनेण्टके रूपमें काम किया है और युद्धमें घायल होनेको मैं अपनी सफलता समझता हूँ। १९१८ में मैं बुरी तरह ज़ख़्मी हो गया था। मिलानके अस्पतालमें मर ही जाता लेकिन जब बच गया तो मैंने सीटी बजाना सीख लिया। जब भी कोई दर्द उठता मैं सीटी बजाने लगता।....

प्रश्न : लेकिन क्या उससे दर्द टल जाता है?

उत्तर : नहीं टलता होगा लेकिन कराहनेके बजाय सीटी बजाना मुश्किल भले हो, सुखद अवश्य है। याद आया, उसी साल मैंने अपने घर एक ख़त लिखा था—'मैं मौतमें-से गुज़र चुका हूँ और मैंने यह जाना है कि मौत

अर्नेस्ट हेमिंग्वे : १९४८, तीसरी पत्नी मेरीके साथ।
'केवल अनुभवोंकी ख़ातिर मैंने बड़े-बड़े सदमे उठाये हैं...'

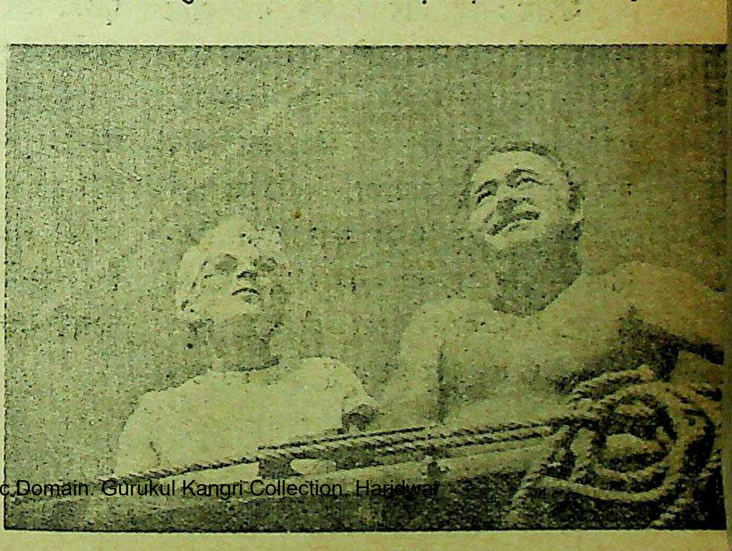

बड़ी आसान चीज़ है।' मैं यह तब निश्चित ही कहता था कि जवानीके ख़ुशफ़हम दिनोंमें मर जाना बेहतर है। उस दिनकी आदमीको प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए जब रोशनी उसको चीरकर दो टुकड़े कर देगी, उसका शरीर जवाब दे जायेगा और जीवनके भ्रम कँपकँपाने लगेंगे····।

प्रश्न : तो क्या यह समझा जाये कि 'ओल्ड मैन एण्ड द सी' लिखते समय भी आपके अन्दरका आदमी मौतको एक आसान चीज़ समझता रहा था?

उत्तर : लड़ते समय आदमी क्या-क्या नहीं सोचता है! जीवन तो एक ऐसा काम है जिसके एक सिरेपर मृत्युवाली पराजय है और दूसरे सिरेपर जीत। हम मौतको आसान चीज़ मानकर उसके भयसे मुक्त हो जाते हैं, और तब लड़नेमें अतिरिक्त ताक़त आ जाती है। मैं तो कहता रहा हूँ कि आदमीको नष्ट तो किया जा सकता है लेकिन उसे हराया नहीं जा सकता····

प्रश्न : क्या कभी हारे नहीं?

उत्तर : कई बार। जब मेरा यही 'ओल्ड मैन' छपा था, पहले 'लाइफ़'में धारावाहिक, फिर पुस्तक रूपमें तो इसकी ख्यातिपर लोगोंकी आँख लग गयी थी। उसके बाद एक झूठा इण्टरव्यू छपा था जिसमें यह कहा गया कि मैंने ख़ुद अपने उपन्यासकी स्थितियोंको फ़्रॉड कहा था। मैंने घोर अपमानित महसूस किया था। ग़ुस्सा भी मुझे बहुत आया है। एक और घटना है जब इस उपन्यासपर फ़िल्म बनायी जा रही थी—मैं सचमुच उतनी बड़ी मछली पकड़ना चाहता था और फ़िल्ममें इस यथार्थको लाना चाहता था। हज़ार कोशिश करनेपर भी उतनी बड़ी मछली नहीं पकड़ी जा सकी और कैमरेके चमत्कारसे एक छोटी मछलीको बहुत बड़े आकारमें फ़िल्माया गया। इस घटनाने बड़ा फ़्रस्ट्रेशन दिया मुझे।

प्रश्न : और वह हवाई-जहाज़-दुर्घटना?

उत्तर : मैं और मेरी स्पेनिश वारके बाद विक्टोरिया फ़ॉल देखने जा रहे थे और दो बारकी हवाई दुर्घटनामें हम चूर हो गये। यह घोषित हो गया कि मैं मर चुका हूँ। यह डॉक्टरी चमत्कार ही था कि मैं बच गया। होशमें आनेपर मैंने अपने ऊपर लिखे गये शोक-समाचार पढ़े। सच कहूँ, केवल अनुभवोंकी ख़ातिर मैंने बड़े-बड़े सदमे उठाये हैं····।

प्रश्न : सुना है, आपमें बदला लेनेकी भावना भी थी····

उत्तर : वह हर आदमीमें होती है। मैं तो इस बातका विश्वासी हूँ कि अगर किसी घृणित चरित्रको हम जानते हैं, उसके कारण हमने कुछ भोगा है तो उसे कहानी-उपन्यास बना देने-जैसी सच बात कोई और नहीं। अपने अनुभवके सत्यको छिपाकर कोई बड़ा नहीं बन सकता। 'द सन आल्सो रायज़ेथ' को ही लीजिए, सरासर ज़िन्दा लोग उसमें हैं। उसमें-के कई लोग साहित्यमें मुझपर कीचड़ उछालते रहे और कई चरित्र ऐसे भी

(शेष पृष्ठ १२० पर)

एक प्रश्नोत्तरी

लक्ष्मीचन्द्र जैन

लाल चीनपर काली छाया

प्रश्न : समाचार-पत्रोंमें चीनके बारेमें जो ख़बरें आ रही हैं, उनसे सारांशमें इतना-भर पता लगता है कि वहाँ कुछ भारी उथल-पुथल हो रही है, किन्तु जो विवरण प्रकाशित हो रहे हैं, वे इतने उलझे हुए और अनेक चीनी व्यक्तियोंके नामोंसे भरे हुए कि सारी स्थितिका पूरा चित्र सिलसिलेवार सामने नहीं आता। आप इसपर प्रकाश डालेंगे ?

उत्तर : अवश्य प्रयत्न करूँगा। कहाँसे प्रारम्भ करूँ ? आप पूछिए।

प्रश्न : झगड़ा किन व्यक्तियों या दलोंके बीचमें है और किन कारणोंसे ?

उत्तर : संघर्ष बहुत बड़ा है, इसलिए इतना तो ज़ाहिर है कि इसमें हज़ारों-लाखों आदमी प्रत्यक्ष रूपसे भाग ले रहे हैं; अप्रत्यक्ष रूपसे तो सारा चीनी राष्ट्र डाँवाडोल हो गया है; उसकी जड़ें हिल गयी हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि जबतक ये प्रश्नोत्तर प्रकाशित हों, चीनी संघर्ष गृह-युद्धका रूप ले ले और शासनका तख़्ता पलट जाये····

प्रश्न : यानी माओ त्से-तुंग और चो एन-लाई-जैसी ज़बर्दस्त डिक्टेटरी हस्तियाँ शासनसे हटा दी जायें ?

उत्तर : हटा दी जायें, या क़ैद कर ली जायें, क़त्ल कर दी जायें—चीनमें आज कुछ भी सम्भव है। लेकिन, हम अभी निष्कर्षोंपर नहीं आयेंगे। वस्तु-स्थिति समझनेके प्रयत्नको जारी रखेंगे।

प्रश्न : तो, माओ त्से-तुंग और चौ एन-लाई किस तरह संकटमें आ गये ?

उत्तर : आ गये अपने कारनामोंसे । यह इतिहासका बहुत बड़ा व्यंग्य है कि जो व्यक्ति इतिहासकी धाराको पलट देना चाहते थे, जो इतिहासकी नयी व्याख्या करते थे, नेताके रूपमें जो इतिहासको अपनी इच्छाका दास बना छोड़नेका दम्भ भरते थे और अनुयायियोंको पाठ पढ़ाते थे कि वह नेताकृत नये इतिहासकी आज्ञाके अनुरूप अपनेको ढालकर इतिहासकी माँग पूरी करें वे व्यक्ति आज अपनी महत्त्वाकांक्षाओंकी वेदीपर बलिके बकरे बनने जा रहे हैं, और जबतक स्वयं उस स्थिति तक नहीं पहुँचते तब तक राष्ट्रको बलिका बकरा बनाये रखना चाहते हैं ।

प्रश्न : लेकिन इन व्यक्तियोंने चीनकी काया पलट कर दी; उसे शक्तिशाली बनाया; अपने कृतित्वसे संसारमें तहलका मचा दिया ····फिर ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर : मानना तो होगा कि माओ त्से-तुंग संसारका बहुत बड़ा आदमी है, चीनका यह महान् नेता संकटों और संघर्षोंका भुक्त-भोगी है; वह मँजा हुआ सिपाही है; वह इतिहासका निर्माता है; वह दार्शनिक है, वह कवि है । आज लगभग १८ वर्षसे वह चीनका मूर्धस्थ नायक है । लगभग ७० करोड़ आदमियोंको एक आदर्श और उत्सर्गकी राहसे उत्कर्षकी ओर ले जानेवाला व्यक्तित्व निःसन्देह असाधारण है, लेकिन, याद रखनेकी बात यह है कि वह महान् डिक्टेटर है, ७० करोड़ आदमियोंका डिक्टेटर ! और डिक्टेटरोंके बारेमें हमने अपने ही जीवन-कालमें एक बड़ा सबक़ यह सीखा कि इतिहासकी परिस्थितियाँ डिक्टेटर पैदा करती हैं; डिक्टेटर पद-दलित देशोंको प्रतिष्ठाके आकाशपर बैठा देता है, उसकी गति बड़ी तेज़ होती है; उसका आतंक विश्वमें दहशत पैदा करता है; लेकिन एक दिन आता है जब इतिहासका कोल्हू डिक्टेटरको पेरकर छोतकेकी तरह फेंक देता है । जो रस राष्ट्रको पोषित करता है, वही जब महत्त्वाकांक्षाओंके घटमें उफनने लगता है तब वह केवल मदकचियोंके कामका रह जाता है; और मदान्ध व्यक्ति आत्मघाती ही नहीं होता, सर्वघाती भी हो जाता है"" एक था हिटलर, एक था स्टालिन, एक है यह माओ त्से-तुंग ।

प्रश्न : लेकिन माओने ऐसा किया क्या ?

उत्तर : चीनकी कम्यूनिस्ट पार्टीके चेयरमैन माओने यह स्वप्न देखा कि आधुनिक साम्यवादका असली ऋषि वही है और उसपर यह दायित्व आ पड़ा है, कि वह रूसको यह नसीहत दे कि साम्यवादका रास्ता तलवारकी धार-सा पैना है, बिलकुल सीधा है, हिंसा और हत्याभिमुखी है, और इस तलवारकी कृतार्थता इसमें है कि दुनियाके सारे सिर प्रत्येक क्षण यह अनुभव करते रहें कि वे उसके नीचे हैं, उसकी दयापर आश्रित हैं ।

प्रश्न : अर्थात् ?

उत्तर : अर्थात् यह कि चीन अभी-अभी के अपनी आँखों देखे इतिहासको भूल गया कि जिस तीखे, निरपेक्ष, असहयोगी, कठोर-

कुटिल साम्यवादकी तलवारसे स्टालिनने अपने जी-हुजूरोंको क़ाबूमें रखा और विरोधियोंका सफ़ाया किया, उसीने एक दिन स्टालिनका ख़ात्मा कर दिया। स्टालिन, जो रूसका देवता था, रातों-रात राक्षस बन गया, उसकी मूर्ति चौराहेसे हटा दी गयी, चित्र फाड़ फेंके गये और अ-स्टालिनीकरणके बाद रूसने साम्यवादकी नयी व्याख्या की कि ज़रूरी नहीं कि साम्यवाद ही संसारकी एकमात्र शासन-पद्धति हो; ज़रूरी नहीं कि साम्यवादी सिरपर क़फ़न बाँधकर और हाथमें पिस्तौल लेकर घरसे निकलें कि जबतक सारा संसार साम्यवादी नहीं हो जायेगा वह घर नहीं लौटेंगे, ज़रूरी नहीं कि हिंसा और क़त्ल ही एक रास्ता है पूँजीवाद और पूँजीवादियोंको समाप्त करनेका; ज़रूरी नहीं कि परिवारका मोह व्यक्तिके लिए बुरा है; ज़रूरी नहीं कि पैसे और आर्थिक सुविधाओंका लोभ देकर श्रमिकोंको अधिक कामके लिए प्रोत्साहित करना बुरा है; ज़रूरी नहीं कि कपड़ोंमें फ़ैशनका 'कट' और रहन-सहनमें सुख-सुविधाकी व्यवस्था पूँजीवादी मनोवृत्ति हो;…ये सिद्धान्त अपनाकर रूसने अमेरिकाके साथ सहअस्तित्व स्थापित करना सीखा, संसारमें तनाव कम हुआ, स्थायी शान्तिकी आशा बँधी। किन्तु चीनमें माओ और चाऊने यह घोषणा की कि रूस साम्यवादी पथसे भ्रष्ट हो गया, वह प्रतिगामी हो गया, पुरातनमुखी सुधारवादी हो गया, अमेरिकाका हमजोली हो गया कि अन्तमें पूँजीवादी बन जाये।

यह सब मानकर चीनने, जैसा कि मैंने अभी कहा, अपने ऊपर यह दायित्व लिया कि साम्यवादकी ज्वालाके भयंकर विध्वंसक और आतंककारी रूपको निष्कम्प रखेगा और रूसके साथ भी लोहा लेगा।

प्रश्न : इन सब बातोंका सम्बन्ध वर्तमान घटनाओंसे क्या है ?

उत्तर : आजकी घटनाएँ माओकी इसी मनोवृत्तिका परिणाम हैं। क्योंकि चीन, जो अमेरिकाको साम्राज्यवादी मानकर उससे संघर्ष लेनेकी तैयारीमें था, अब दोहरे संघर्षसे जूझने लगा और अमेरिका तथा रूसकी संयुक्त शक्तिको चुनौती देनेकी स्थितिमें आनेके लिए एटम बमकी रेसमें कूद पड़ा।

प्रश्न : निश्चय ही उसने कई एटमी परीक्षण करके एशिया और अफ़्रीकी देशोंमें अपने प्रभुत्व स्थापित करनेका प्रयत्न किया। तब, क्या इस मनोवृत्तिसे चीनका महत्त्व नहीं बढ़ा ?

उत्तर : इस प्रश्नके दूसरे पक्षपर भी विचार करें। एटम बमोंके पाँच परीक्षण चीनमें हो चुके हैं। सामरिक शक्तिके क्षेत्रमें चीनकी यह बहुत बड़ी उपलब्धि है और इससे एशिया-अफ़्रीकाके देश प्रभावित तथा आतंकित भी हुए हैं, किन्तु मालूम है, इसके लिए चीनको क्या करना पड़ा ? एटम बम बनाना और इस दौड़में प्रगति करते रहनेकी तैयारीका मतलब है—करोड़ों रुपयेके व्ययका प्रबन्ध करना। सत्तर करोड़ देशवासियोंके जीवन-स्तरको उठानेके लिए, प्रतिरक्षात्मक सामान्य कार्यवाहियोंके लिए, कल-कारखानोंके उत्पादनको बढ़ानेके लिए—अनेक निर्माणात्मक

कार्योंके लिए चीनके पास पर्याप्त धन नहीं है—यहाँ तक कि सूखा पड़नेपर अन्न-वस्त्रकी भी समस्या गम्भीर हो जाती है, तब एटम बम बनानेके लिए रुपया कहाँसे आये ? एक ही उपाय था कि जनताको साम्यवाद और राष्ट्रवादकी रक्षाके नशेमें धुत करके उन्हें जीवनकी सामान्य आवश्यकताओंसे वंचित किया जाये। अधिकसे अधिक उत्पादन और साथ ही अधिकसे अधिक अभावको अपनानेके लिए जनताको तैयार करनेकी क्षमता केवल माओमें ही थी क्योंकि उसने अपने त्याग और अपनी विद्वत्तासे लोगोंके मनको जीता हुआ था। उसने अपने साम्यवादी दर्शनको ऐसे प्रभावक और सरल ढंगसे प्रस्तुत किया, उसने अपने भाषणों, अपने लेखों, कविताओं और अपने सुभाषितोंका इतना जोरदार प्रचार करवाया कि जनता भरमायी रही।

किन्तु यह भ्रम कबतक चल सकता है ? जिस बाहरी संसारकी हवा और सुगन्धसे जनताको वंचित करनेके लिए माओने बाँसकी दीवार खड़ी की है, एक दिन उसमें दरार आनी ही थी क्योंकि माओके जिन अन्तरंग साथियों और उच्च अधिकारियोंके हाथमें उस बाँसकी दीवारकी रक्षा सौंपी गयी वे उस हवा और सुगन्धसे परिचित हो गये जो रूसमें प्रवाहित हो गयी थी। एक ओर साम्यवादी रूस जनताकी सुख-सुविधाके सामान निर्मित करता रहे, संसारके साथ मेल-जोल बढ़ाये, लोहेकी दीवारको लंघनीय बनाये, साहित्य और चिन्तनके द्वार उन्मुक्त करे और दूसरी ओर चीन रूपका प्रतिपक्षी बनकर अभावोंको जनतापर थोपता चला जाये—साम्यवादके नामपर चीनके अनेक साम्यवादी नेता यह माननेको तैयार नहीं हुए। और इन नेताओंने अन्दर-ही-अन्दर माओसे विद्रोह करनेकी भूमिका तैयार करनी शुरू कर दी। उनका मत है कि माओकी 'भारी छलाँग'की नीतिने देशको दरिद्र कर दिया। अत: पार्टीके स्थानीय नेताओंने कल-कारखानोंमें मज़दूरोंके वेतन बढ़ा दिये, सुविधाएँ बढ़ायीं और यह सब माओको बेहद नागवार गुज़रा है।

प्रश्न : आपका मतलब है कि चीनमें माओके विरुद्ध जो संघर्ष उठ खड़ा हुआ है वह आदर्शोंका और विचारोंका संघर्ष है ?

उत्तर : यह प्रश्न अच्छे स्थलपर आया। माओ-जैसा व्यक्ति चिन्तन और आदर्शके पहलूपर ही बल दे, यह उचित है, किन्तु इस स्थितिमें एक नया आयाम जुड़ गया है—अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आयाम—कि माओत्से-तुंगका उत्तराधिकारी कौन हो ?

प्रश्न : क्यों ?

उत्तर : इसलिए कि माओ ७३ वर्षके हैं। बड़े जीवटके हैं वह किन्तु शरीर थक रहा है, और बीच-बीचमें उनकी बीमारीके समाचार भी आते रहे हैं।

प्रश्न : बात तो यह भी सामने आयी कि उनके ठौर-ठिकानेका भी पता नहीं चलता। या ऐसा नहीं है ?

उत्तर : बात तो यहाँ तक आयी है, (साक्ष्य है ऑक्सफ़ोर्डमें चीनी इतिहासके

विशेषज्ञ प्रोफ़ेसरके कथनका) कि माओकी मृत्यु हो गयी है, इसीलिए संघर्ष ज़ोर पकड़ रहा है।

प्रश्न : तब तो खेल ही ख़तम हो गया ?

उत्तर : यदि मृत्युकी बात सच है तब तो समझना चाहिए कि असली खेल अब शुरू होगा। अभी तक तो खेलकी भूमिका ही थी····। बहरहाल, मुख्य प्रश्न है कि माओका उत्तराधिकारी कौन हो ?

प्रश्न : निश्चय ही जिसे माओ चाहेगा। उसकी क्या इच्छा है ?

उत्तर : एक समय था, कुछ महीनों पहले तक, जब माओका मन्तव्य स्पष्ट था और कम्यूनिस्ट पार्टीमें निश्चित पद-क्रमसे समर्थित था कि माओके बाद उनके स्थानपर चीनके सर्वोच्च क्रियाशील शासनाधिकारी लिउ शाओ-ची बनेंगे जो आजकल चीनी राष्ट्रके प्रेसिडेण्ट हैं। स्पष्ट ही कम्यूनिस्ट शासनमें राष्ट्रपतिसे अधिक शक्तिशाली पार्टीका चेयरमैन होता है। किन्तु लिउ शाओ-ची इस समय चीनमें माओ और माओके समर्थकोंका शत्रु 'नम्बर वन' है। माओका सीधा संघर्ष लिउसे है।

प्रश्न : माओके लिए यह कठिन ही नहीं होना चाहिए कि वह अपने किसी भी शत्रुको एक फूँकसे समाप्त कर दे।

उत्तर : लिउको समाप्त करनेकी दिशामें माओने अब तक जो कार्यवाही की है वह काफ़ी दारुण है। पिछले अगस्त महीनेमें लोगोंने देखा कि लाल प्रहरियों (रेड गार्ड) की एक रैलीमें उसे दूसरे स्थानसे हटाकर आठवें स्थानपर खड़ा कर दिया गया; उसके बाद रेड गार्डने, माओके इशारेपर कम्यूनिस्ट पार्टीके अन्तरंग दलने, आतंकित करके लिउसे एक हलफ़िया बयान ले लिया जिसमें उसने अपने २५ अपराध स्वीकार किये कि किस तरह उसने जनतामें उत्पन्न नयी क्रान्तिको ठीक-ठीक समर्थन न देनेकी भूल की, माओकी अनुपस्थितिमें नीतिसम्बन्धी निर्णय ग़लत लिये, दूषित बुर्जुआ मनोवृत्तिको पार्टीमें पनपने दिया, आदि। इतना ही नहीं, लिउके बेटे-बेटियोंको लाखोंकी भरी सभामें खड़ा करके रेड गार्डोंने बापके विरुद्ध बयान दिलवाया और लिखित वक्तव्य लिया कि वे अपने बापके कृत्योंपर लज्जित हैं, कि उसके विचार विशुद्ध साम्यवादी नहीं हैं और उसका व्यवहार प्रेसिडेण्टके पदके उपयुक्त नहीं, लज्जाजनक है।

प्रश्न : कौन हैं ये 'रेड गार्ड्स' ? इतनी बड़ी ताक़त इन्हें कैसे मिली ?

उत्तर : रेड गार्ड्स (लाल प्रहरी) माओत्से-तुंगकी कल्पना, प्रभाव और संगठन-क्षमताका चमत्कार हैं। अब जब कि हम यह जान चुके हैं कि साम्यवादी सिद्धान्तोंकी मौलिक समझ और व्याख्यामें रूस और चीनमें कहाँ अन्तर है; और माओको कितनी बड़ी चिन्ता है कि चीन उसके द्वारा व्याख्यायित साम्यवादके रास्तेपर चले, रूसकी तरह संशोधनवादी और प्रतिगामी न हो जाये, और जब कि माओने देखा कि स्वयं साम्यवादी दलके प्रमुख पदाधिकारियोंमें-से कुछेकके मनमें रूसी प्रकारकी नरमी आ गयी है,

जिसका श्रीगणेश रूसमें ख़ ुश्चेवने किया था, तो माओके लिए आवश्यक हो गया कि पार्टीसे बाहर वह किसी ऐसी शक्तिका निर्माण करे जो जोश और भावनाके आधारपर चरमरूपसे क्रियाशील हो सके। तब उसने लाल प्रहरियोंकी 'सेना' खड़ी की—अर्थात् स्कूल-कॉलेजोंमें पढ़नेवाले लाखों बालक-बालिकाओं और किशोर-किशोरियोंको सेना जिन्हें पिछले अगस्तसे ६ महीनेके लिए शिक्षा-संस्थाओंसे छुट्टी देकर हाथमें झण्डे और माओकी कृतियोंके विशेष सरल-सुबोध संस्करण थमाकर सारे देशके गली-कूचोंमें भेज दिया गया कि वह 'महान् प्रोलेतरी सांस्कृतिक क्रान्ति' का नारा बुलन्द करें, माओके विचारों और सुभाषितोंका पाठ करें, उसकी कविताओंको गा-गाकर देशमें नया जागरण, नयी क्रान्ति उत्पन्न करें, कि लोग सचेत हो जायें कि चीनका परम देवता माओ है, उसके वचन मन्त्र-पूत हैं, उसकी शिक्षा क्रान्तिकी जननी है, उसके उद्धरण पढ़नेसे, आस्थापूर्वक बार-बार पढ़नेसे, ऐसी स्फूर्ति आती है कि खेतोंमें अनाज लहलहाने लगता है, खानें धातुएँ उगलने लगती हैं, कल-कारखाने अनवरत उत्पादनके केन्द्र बन जाते हैं। और सर्वाधिक आवश्यक यह कि महाप्रभु माओके विचारोंसे जो असहमत हैं, तनिक भी शंकालु हैं वे प्रतिक्रियावादी हैं, देशद्रोही हैं, बुर्जुआ हैं, नीच हैं, ख़ ुश्चेव हैं, चीनके माथेके कलंक हैं, उन्हें उन्हींके रक्तसे धो-पोंछकर शुद्ध बनाना प्रत्येक लाल प्रहरीका कर्त्तव्य है।

प्रश्न : लाल प्रहरियोंकी उपलब्धि क्या है?

उत्तर : लाल प्रहरियोंकी उपलब्धि है वह सब सत्यानाश जो आज चीनमें घटित हो रहा है; क्योंकि जहाँ-जहाँ ये लड़के-लड़कियाँ पहुँचे वहाँ-वहाँ उन्होंने माओके कट्टर समर्थकोंके साथ मिलकर आतंकका ऐसा वातावरण पैदा किया कि कोई चूँ भी न कर सके और समझ ले कि माओके आदेशसे एक मिलीमीटर भी इधर-उधर होना अपमान और मौतको निमन्त्रण देना है। लाल प्रहरियोंने उसीको बेइज़्ज़त किया, जिसपर माओको तनिक भी सन्देह हुआ कि वह चीनकी साम्यवादी नीतिकी कट्टरताका पूरा समर्थक नहीं। जितना ही लाल प्रहरी उद्धत और अनुत्तरदायी होते गये, जनमत इनके विरुद्ध बढ़ता गया। जितना ही विरोध बढ़ा, लाल प्रहरियोंके क्षेत्रका विस्तार हुआ और वे कारख़ानों-ख़दानोंमें पहुँच गये। अब हाल यह है कि एक तरफ़ लाल प्रहरी और माओकी समर्थक जनताका अंश और दूसरी तरफ़ किसान और मज़दूर और त्रस्त जनता है—जिनपर माओ-विरोधी नेताओंका प्रभाव है और ऐसे नेताओंकी संख्या कम नहीं है। लाल प्रहरी अपने विरोधियोंको पकड़कर मुश्कें बाँध देते हैं, उनके सिरपर गधाटोपी पहनाकर सड़कोंपर प्रदर्शन करते हैं, लोगोंसे उनके मुँहपर थुकवाते हैं और कहीं-कहीं तो लोगोंके नाक-कान काटकर उन्हें रोते-कलपते छोड़ दिया है। शंघाई, नानकिंग, कैण्टनमें ऐसी घटनाएँ घटी हैं जिन्हें माओने और उसके

लाल प्रहरियोंने अपदस्थ किया या अपमानित किया। उनमें-से कुछके नाम इस प्रकार हैं—

नाम याद नहीं रहते किन्तु उनका पद इस बातका सूचक है कि माओको अब किन विरोधियोंका सामना करना पड़ रहा है; और संघर्ष कितना गहरा तथा व्यापक है :

प्रेसिडेण्ट लिउ शाओ-ची : ऊपर ज़िक्र आया है; 'अच्छे कम्यूनिस्ट कैसे बनें ?' पुस्तकके लेखक ।

तेङ् स्याउ-पिंग : पार्टीके सेक्रेटरी-जनरल। पोलितव्यूरोके दफ़्तरके प्रधान। माओके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विरोधी ।

पेङ् चेन : पोलितव्यूरोमें माओ, लिउ, चू एन-लाईके बाद चौथे पदपर ।

लू तिङ्यी : सांस्कृतिक मामलोंके मन्त्री।

कुओ मो-जो : चीनके सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखक; माओके सहयोगी-लेखक ।

ताओ चू : प्रचाराध्यक्ष ।

पेङ् ले-हुआइ : भूतपूर्व प्रतिरक्षा-मन्त्री; एक समय कोरियामें कमाण्डर।

लो जुंग-हुआन, लिउ पो-चेङ्, लो जुइ-चेङ्, नी चुङ्-चेन आदि—फ़ौजी कमाण्डर और अनेक पोलितव्यूरोके सदस्य ।

एक विशेष घटना यह भी घटी है कि माओने विदेशोंकी राजधानियोंमें स्थित चीनी राजदूतोंको एक बड़ी संख्यामें वापिस बुला लिया है। यह प्रमाण है कि चीनमें कुछ बड़ा परिवर्तन हो रहा है ।

प्रश्न : यदि प्रेसिडेण्ट लिउको अपदस्थ कर दिया गया है, तो माओने अपना उत्तराधिकारी किसे चुना ?

उत्तर : माओने कूटनीतिक दृष्टिसे अब अपना उत्तराधिकारी प्रतिरक्षा-मन्त्री लिन पिआओको चुना है। कारण यह कि पार्टीमें माओका विरोधी दल यदि जनतामें प्रभाव प्राप्त करता है, जैसा कि रेडगार्डके कारनामोंकी प्रतिक्रियास्वरूप जनता विद्रोही होती जा रही है, तो उसे वशमें करनेका समर्थ उपाय यही है कि लिन पिआओको माओ अपने पक्षमें रखे और उसे अपने उत्तराधिकारका लालच दे। लिन यों भी माओके प्रति सदा वफ़ादार रहा है। लाल प्रहरियोंको अपने निर्देशमें रखकर विरोधियोंको बेइज़्ज़त करवानेका सारा कार्यक्रम लिनके संकेतोंपर चल रहा है। इस प्रकार जहाँ लिन माओके उत्तराधिकारका स्वप्न देख रहा है, वहाँ यह भी सम्भावना है कि माओके साथ-साथ लिनका भी पतन हो और माओसे कहीं अधिक उसकी दुर्गति हो।

जिन फ़ौजी कमाण्डरोंको माओने अपना शत्रु बना लिया है, और जिस प्रकार माओकी पत्नीने सिआओ हुआ (जो सेनाका राजनैतिक प्रमुख है) जैसे प्रभावशाली व्यक्तियोंका अपमान किया है वह रंग ला सकता है, और इस सबका सीधा प्रभाव लिन पिआओके अस्तित्वपर पड़ेगा ।

प्रश्न : माओ के प्रबल समर्थकों में और कौन है ?

उत्तर : प्रतिरक्षा-मंत्री लिनसे भी अधिक भरोसेका समर्थक आज माओका कोई है तो उसकी पत्नी—चियाङ् चिङ्। जानकारोंका अनुमान तो यह है कि श्रीमती

माओको आशा है कि माओका उत्तराधिकार उसे ही मिलेगा। पिछले दिनों चियाङ् चिङ्ने जो घोर श्रम किया है—लाल प्रहरियोंका नेतृत्व, पुलिस-विभागमें परिवर्तनोंकी व्यवस्था, सेनामें परामर्शदाताके पदसे नियन्त्रण, पोस्टरोंके युद्धकी परिचालना, उसे देखकर तो यह लगता है कि माओको स्वयं भी यह सम्भावना लगती है कि उसकी यह चौथी पत्नी, जो किसी समय सिनेमा-अभिनेत्री थी, आज अपनी योग्यताके बलपर उसका उत्तराधिकार सँभाल सकेगी।

प्रश्न : तब तो माओकी पत्नीकी सीधी टक्कर प्रधान प्रतिरक्षा-मन्त्री लिनसे होगी; यह टक्कर वह सँभाल पायेगी ?

उत्तर : कोई भी कुछ निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। माओकी पत्नी महत्त्वाकांक्षी है और मौक़ा देखकर शत्रुपर अचूक वार करती है। जब प्रेसीडेण्ट लिउ शाओ चीके ख़िलाफ़ नारे उठे, और दीवारपर चिपकाये गये पोस्टरोंमें लिउके सिरकी माँग की गयी तो माओकी पत्नीको प्रेसीडेण्ट लिउकी पत्नीसे बदला लेनेका अवसर मिला और पोस्टरोंमें बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा आया—वॉग ग्वौंग मे (लिउकी पत्नी) 'वेश्या' है। फिर पुरानी घटनाओंका उल्लेख करके चियाङ्ने आगमें घी डाला—कि किस तरह सन् १९६३में जब माओ और लिउ अपनी पत्नियोंके साथ इण्डोनीसिया गये तो लिउकी पत्नी अहंकारमें भरी रही कि वह राष्ट्रपतिकी पत्नी है; उसने बेहद क़ीमती और तड़क-भड़कके कपड़े पहने, और यहाँ तक कि क़ीमती मोतियोंकी माला भी पहनी, यद्यपि चियाङ्ने उसे सलाह दी थी कि साम्यवादी देशके राष्ट्रपतिकी पत्नीको क़ीमती ज़ेवर नहीं पहनना चाहिए; वॉगने अपने पदके जोशमें आकर चियाङ्की बात नहीं सुनी....

प्रश्न : इस तरहकी छोटी-छोटी बातोंका क्या कोई विशेष प्रभाव स्थितिपर पड़ता है?

उत्तर : अवश्य; इसलिए कि 'महान् सांस्कृतिक क्रान्ति'के कार्यक्रमके अन्तर्गत लाल प्रहरियोंने स्त्रियोंके साज-श्रृंगारका विरोध किया। यदि किसीके बाल घुँवराले दिखाई दिये तो उन्हें खींच-खींचकर लम्बा और सीधा करवा दिया; कपड़ोंके उभार और उघारपर पाबन्दी लगायी; बड़े-बड़े दुकानदारोंकी भर्त्सना की यदि उनके पास साज-श्रृंगारकी सामग्री दिखाई दी—इस सन्दर्भमें लिउकी पत्नीके परिधान और मोतियोंकी मालाके शौक़का विशेष अर्थ हो जाता है।

प्रश्न : इस सब कथा-वार्तामें चू-एन-लाईके तो किसी करतबका उल्लेख ही नहीं हुआ ?

उत्तर : चू-एन-लाई देशका प्रधान मन्त्री है। शासन-व्यवस्था और आर्थिक गतिविधिकी सबसे अधिक चिन्ता चू (चाउ) को ही है। अन्दर-ही-अन्दर वह नहीं चाहता कि रेड-गार्डका प्रभुत्व इस सीमा तक बढ़े; किन्तु वह प्रेसिडेण्ट लिउके साथ भी नहीं हो सकता। लाल प्रहरी उसकी इस सतर्कतासे नाराज़ हैं कि वह पूरी तरह 'सांस्कृतिक क्रान्ति'के सभी भले-बुरेका समर्थन क्यों नहीं करता। यही कारण

(शेष पृष्ठ ११९ पर)

इस मौसमकी कविताएँ

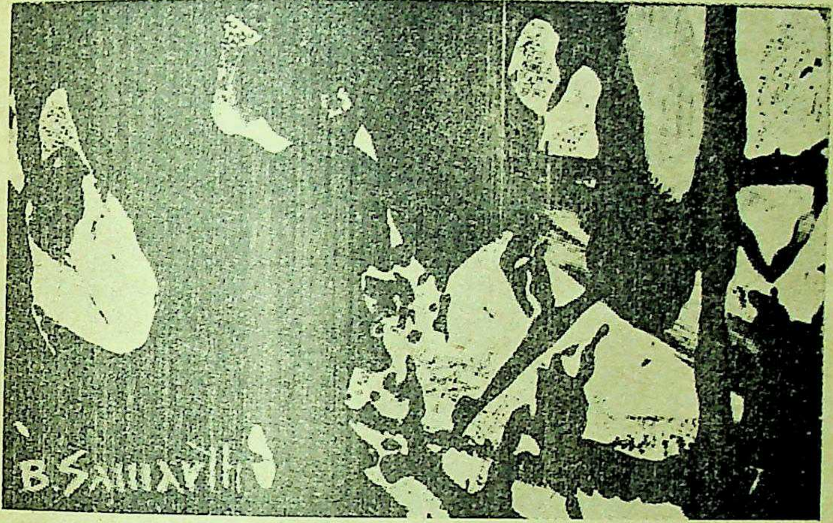

प्रश्नसे…

श्रीकान्त जोशी

०

भीतर कोलाहल है, बाहर मौन
ऐसे कँटीले समय में
आये हुए प्रश्न !
तुम कौन ?

मैंने सिन्धु नहीं देखा
लहरों का उद्दाम हो उठना
और………

[illegible] [illegible] टूटते [illegible]
नहीं देखा, नहीं देखा।

क्या मैंने भोगा है अनदेखा सिन्धु ?
प्रश्न कौन तोड़ेगा ?
हम सब तो टूटे हैं
खण्ड-खण्ड, विन्दु-विन्दु....
प्रश्न कौन तोड़ेगा !!

जवाहरगंज,
खण्डवा म० प्र०

चार छोटी कविताएँ

सविता बैनर्जी

०

१

संशय की बात नहीं
विश्वास भी जमता नहीं,
परत पर परतें
जमती गयीं,
खुली नहीं।
चुप भी रहूँ कैसे,
तर्क की बात नहीं।
अन्तर की बात,
मुँह तक आती नहीं।
कोंचती है—जिज्ञासा
(पर)
'प्रश्न' भी बनता नहीं।
संशय की बात नहीं
विश्वास भी जमता नहीं।

२

शाम की उदासी में
चिबुक टिकाये
हथेली में,
देख रहा था कोई
समुद्र की लहरों में
'सर्वहारा प्यार'

३

मेरी सुन्दर-सी
डायरी में
तीन सौ पैंसठ दुःख ।

४

क्यों किसीकी 'याद' को
याद आने दें यूँ ही—
खाली समय में ?
अच्छा हो कि
इस शान्त गम्भीर
झील में,
(अपनी-सी) एक बेकली पैदा करें ।
कंकड़ फेंक-फेंककर
उसकी धड़कनें गिनें ।
या
उसमें बनती हुई
किसीकी तसवीर को,
फिर-फिर बिगाड़ें
यूँ ही—
खाली समय में ।

५४, गर्चा रोड,
कलकत्ता—१९

नागरिक

श्यामविमल

मेरे पाँवों के नीचे से
कच्ची पगडण्डी हटाकर
सख़्त सड़क बिछा दी गयी ।
सड़क की शान के मुताबिक़
अब मैंने
घुटनों तक
जुराबदार मिट्टी से सनी टाँगें
कटवाकर
उस जगह
हवादार पहिये कसवा लिये हैं ।……
मेरे हाँथों से कचनार की भीनी गाछ
छूट गयी है ।
किसी फ़ौलादी छड़ का ठण्डा स्पर्श
ज़रूर मेरी हथेलियों की लकीरें
मिटा देगा—
इस भय से
मैं अपने भाग्य-निर्माता हाथों को
मकानों की नींव-तले डाल चुका हूँ ।……
मेरी आँखों में पथरीली दीवार के सिवा
कोई क्षितिज नहीं उठता,
कपाल से उदर तक
भीतर-ही-भीतर
गड़ी एक सन्तुलित कील ही
मेरे इस किंचित् अस्तित्व की बैसाखी है—
लट्टू की तरह घुमाया जाता हूँ ।
—अब न मुझे हाथ वापिस मिल सकते हैं,
मकान भरभरा जायेंगे नहीं तो,
—न कटी हुई टाँगें मेरे काम आयेंगी,
क्योंकि
क़दम उठाना ही मैं भूल चुका हूँ ।

विमल कुटीर, १-बी/२२,
लाजपतनगर-१, नयी दिल्ली-१४

जाड़ोमें मध्यवर्गीय शहरकी रात

आनन्दकुमार आशु

◦

किसी लोअर डिवीज़न क्लर्क-द्वारा
लिखी कविता की तरह
नगण्य और उपेक्षित
आज की यह उदास साँझ
चिमनी के धुएँ के बीच
और भी धूसर एवं मैली होती जा रही है !
शहर के अन्तिम छोर पर स्थित
लटकती हुई लम्बी मीनार
बहते अन्धकार के जल में डूब गयी....
हरी दूब के नर्म गलीचों को रौंदते हुए हम दोनों
मैदानों के मुलायम एकान्त की कविता सुनते हुए
एक-दूसरे को प्यार करते रहे !
बढ़ते हुए उजले, ठण्डे कुहरे के साथ
सड़क पर चलते हुए लोगों की आकृतियाँ मिटती गयीं
धूमिल गोलाइयों में बन्द होती दुकानों की
रोशनियाँ
दरवाज़े की दरारों में चमकदार लम्बे टुकड़ों-सी
ठहर गयी हैं
नीम की पत्तियों और घर की छतों पर
ओस के सफ़ेद बगुले सोये हैं
सारा शहर स्टूडियो में लगाये सेट की तरह
रात-भर के लिए
सूना और स्थगित है।

शादीपुर, मुंगेर,
(बिहार)

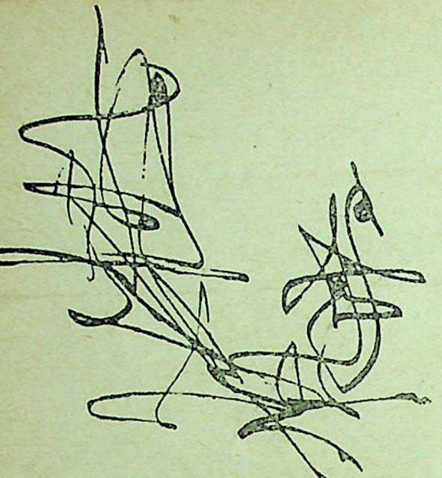

सांस्कृतिक परिवेश

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया

राजनाथ पाण्डेय

कल कुछ पढ़ रहा था तभी एक जगह महान् जर्मन कवि गोयटेकी अँगरेज़ीमें अनूदित इन दो पंक्तियोंपर निगाह अँटक गयी :

कट इट् शॉर्ट !
ऑन डूम्सडे इट् ओण्ट बी वर्थ अ फ़ार्दिंग ।

अर्थात् : संक्षिप्त कर अपने इस विस्तार को !
प्रलय के दिन तक यह कौड़ी क़ीमत का न रहेगा ।

और जब सोचने लगा तो महाकवि 'सौदा' की और अपने 'महाकवि' की भी याद आ गयी। सौदाने लगभग इसी अन्दाज़में निम्नांकित शेर कहा है :

सौदा ख़ुदा के वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर
अपनी तो नींद उड़ गयी तेरे फ़साने से
(फ़साना = अफ़साना = लम्बी कहानी)

हमारे 'महाकवि'ने भी, जिन दिनों वे अपनी लम्बी कविताएं ढाल रहे थे, कुछ इसी तरहके स्वरमें विषादका गन्ध कुछ तेज़ करके यह बात यों कही थी :

कल छिड़ी, होगी ख़तम कल, प्रेम की मेरी कहानी ।
कौन मैं हूँ जो रहेगी विश्व में मेरी निशानी ?

देखिए न, बीते कल और आनेवाले कलके बीच कमसे कम चौबीस और अधिकसे अधिक बहत्तर घण्टोंकी तनक-सी उम्रवाली अपनी इस प्रेम-

कहानीमें कविने कैसी गहन मार्मिकता भर दी है ! और बच्चनजीको तो मालूम होगा ही कि ऐसी ही कैसी अगाध वेदना, टॉमस मेलोरीने अपने 'हसन' नामक नाटकमें (जिसका पूरा नाम है—'हसन दि कन्फ़ेक्श्नर हू टुक दि गोल्डेन जर्नी टू समरक़न्द') नाटकके नायक परवेज़, और खलीफ़ा हारूँ रशीदके हरममें बन्दिनी परवेज़की प्रेयसीकी बारह घण्टोंसे भी कम अवधिवाली, उनकी बेनज़ीर प्रणय-गाथामें भर दी है ।

और अब यह बात जो निकल पड़ी है तो बहुत-बहुत-बहुत-सी बातें एक-एक कर याद आती जा रही हैं ।

■

उन्नीसवीं सदीके महान् समीक्षक फ़रासीसी सान्त-बूव़से एक बार उनके किसी मित्रने पूछा कि आपकी समीक्षामें विवरण, विवेचन और विश्लेषण तो बहुत प्रशस्त रहता है, पर यह क्या बात है कि उसमें 'सम्मत' (निर्णय या जजमेण्ट) नहीं होता ? उत्तरमें शान्त-बूव़ने कहा था कि अभी तो हमारी (उन्नीसवीं) शताब्दी अपनी यात्राके पथपर ही है; अतः हम कैसे कहें कि हम कहाँ पहुँचे हैं ? जब किसी तटपर पहुँचकर हमारा जहाज़ लंगर डाल देगा तभी हम निश्चयके साथ कह सकेंगे कि हमने कितनी दूरी पार कर ली है ।

ठीक यही बात सान्त-बूव़से बहुत पहले कबीरदासने भी कही थी :

पहुँचेंगे तब कहेंगे, अमड़ैंगे उस ठाँइ ।
अजहूँ भेला समंद में, बोलि बिगूचइँ काइँ ।।

(अमड़ैंगे = उमड़ेंगे, प्रसन्न होंगे। अजहूँ = अभी (नेपाली 'अझैं') भेला = बेड़ा, नौका । समंद = समुद्र । बिगूचना = सं० विकूजन, इंठलाना या इतराना ।)

और हमें यही स्वर सर्व-प्रथम ऋग्वेदमें सुनाई पड़ा था :

न वि जानामि यदि वेदमस्मि
निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन प्रथमजा ऋतस्या–
दिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ।।
(ऋग्वेद १।१६४।३७)

अर्थ :
मैं नही जानता पूर्णतः कि मैं सत्यशः क्या हूँ
क्योंकि बन्धनयुक्त मनसे घूम रहा हूँ ।
किन्तु जब मैं आद्य ऋतोंकी प्राप्ति कर लूँगा
तभी इस दिव्य वाणीका भागीदार बन जाऊँगा ।।

किसी अनुभवीने ठीक ही कहा था कि, 'सत्पुरुषोंका चिन्तन एक-सा ही होता है ।'—'ग्रेट मेन थिंक अलाइक !'

■

और गीताके उस श्लोककी तो बहुतोंको जानकारी है हो जिसमें कहा है कि सम्पूर्ण भूतों (= स्थूल प्राणियों) के लिए जो रात्रि है उसमें संयमी पुरुष (= योगी) जागता है; और जिसमें सब प्राणी जागते हैं वही मुनियोंके लिए रात होती है :

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।
(गीता २।६९)

और 'विनयपत्रिका' (पद ११९) में तुलसीने भी कहा है :

जेहि निसि सकल जीव सूतहि
तव कृपा-पात्र जन जागै ।।

सो ऋग्वेदके स्वर कबीरकी वाणीमें व्यंजित हों, और गीताके स्वर तुलसीके छन्दमें ध्वनित हों तो बहुत आश्चर्यकी बात नहीं है; किन्तु वेदोंके स्वर फ़रासीसी चिन्तकोंकी वाणीमें प्रतिध्वनित हों, अथवा गीताके स्वरोंकी गूँज अरबी-फ़ारसीके काव्यमें सुनाई पड़े तब हमें सुखद आश्चर्य होता ही है, यद्यपि एक विशेष दृष्टिकोणसे विचार करें तो यह भी आश्चर्यका विषय नहीं है। देखिए निम्नांकित शेरमें यही स्वर-लहरी किस हुस्नके साथ उद्वेलित है :

खल्करा बेदार बायद बूदज़ आबेचश्म मन ।
बीं अजब काँदम कि मीगिरियम कसे बेदार नेस्त ।।

(खल्करा = दुनियाको । बेदार = जाग्रत । बायद बूद = हो जाना चाहिए था। अज़ (बूदज़ = बूद + अज़) = से । आबेचश्म = आँखका आब, यानी जल अर्थात् अश्रु । मन = मेरे (किन्तु)—बीं = यह । अजब = अजीब है कि। काँदम = जिस समय। मीगिरियम = मैं रोता हूँ। (उस समय) कसे = कोई भी । बेदार = जाग्रत । नेस्त = न + अस्त = नहीं है ।)

सचमुच जिनके चित्त एक समान हैं, जिनकी वाणी एक-सी है, और जिनकी दृष्टि समत्वदर्शिनी है, उन सभी कवियों, ऋषियों और मनीषियोंकी सख्यता देश-कालकी सीमा तोड़कर सदा ही अवियुक्त रहती है; और जिनके मन एक नहीं वे एक ही घरमें निशि-वासर पास-पास रहते हुए भी बेगाने ही रहते हैं :

कबि बियास कँवला रसपूरी ।
दूरि सो नियर, नियर सो दूरी ॥
नियरे दूर फूल जस काँटा ।
दूरि सो नियरे जस गुड़-चाँटा ॥
भँवर आइ बन खंड सन,
लेइ कँवल कइ बास।
दादुर बास न पावई,
भलहिं जो आछिल पास ॥
(पदुमावति, असतुतिखण्ड २३।६-७)

◆

ऋग्वेद (१।१६४।२०) की उस ऋचाका पूर्वार्ध (जिसका प्रथम चरण इस निबन्धका शीर्षक है) साहित्य है, तो इसका उत्तरार्ध दर्शन है । पूर्वार्ध इस प्रकार है :

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

अर्थात्—'सख्यता (के बन्धन) में बँधे दो पक्षी एक ही वृक्षपर विरमते हैं।'

यही सख्यता, यही एकवृक्षता और यही सह-विचरण साहित्य है । अँगरेज़ी कहावत कि 'बर्ड्स ऑफ़ दि सेम फ़ेदर फ़्लौक टुगेदर' (एक वर्णके पक्षी एक ही गोलमें उड़ते हैं।) इस 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' का ही तो एक संस्करण है और यह भी साहित्य है। हिन्दीकी लोकोक्ति कि 'खग ही जानै खग की भाषा' भी साहित्य है, क्योंकि सख्यता-

के बन्धनमें बँधे चाहे दो सुपर्ण (गोयटे और सौदा) हों, या दो से अधिक (गोयटे, सौदा, बच्चन, दाँन्तों[1], अबुल कलाम आज़ाद[2] आदि) हों, एक ही डालीके परिन्दे तो ये हैं, जो एक ही ग़ोलमें उड़ते हैं, और एक ही बोली (जीभकी नहीं, आत्माकी भाषा) बोलते हैं। और तब वही सब जो वह सोचते हैं, मौन होकर बोलते या मुखर होकर व्यंजित करते हैं, साहित्य हो जाता है। पुस्तकोंमें यदि छपा तो वह (अध्यापक पूर्णसिंहके शब्दोंमें) उसीका (साहित्यका) 'वर्णमय चित्र' होता है जिसमें उनके ही स्वरोंकी गूँज सूक्ष्म आत्मा बनकर ध्वनित होती है परन्तु जहाँ वह नहीं होती वहाँ 'वर्णमय चित्र' नहीं, निष्प्राण पुस्तक होती है जो कागदपर छपती है और जिसमें-से स्याहीकी बू आती है।

■

'डूम्सडे' यानी क़यामतके दिनकी चिन्ता और नींद उड़ जानेकी आशंकामें अपनी इस कहानीको मुख़्तसिर (संक्षिप्त) कर डालनेकी फ़िक्र, मेरे पाठक ! मुझे नहीं है क्योंकि क़यामतका डर बहुत बड़े-बड़े लोगोंको रहता है। जैसे फ़्रान्सके उन प्रसिद्ध तानाशाह चौदहवें लुईको था जो रह-रहकर कहते रहते थे कि 'ले म्वाय ऐतात !' (मैं ही राज्य हूँ); और लोगोंको बराबर चेतावनी देते रहते थे कि मेरे बाद बस क़यामत ही हो जायेगी। और वैसे ही उन लुईके मुक़ाबिले यद्यपि बहुत-ही-बहुत बौना पर उनसे कहीं बढ़कर निरंकुश वर्तमान भारतमें जन-तन्त्रका मुखौटा चढ़ाये हमारे इन प्रच्छन्न तानाशाहों (नहीं-नहीं, 'तानीशाहों' या 'टेनीशाहों' !) को भी क़यामतका भय बना रहता है क्योंकि ये भी रह-रहकर भारतीय जनताको सचेत करते रहते हैं कि 'हम नहीं' रहे तो प्रलय ही हो जायेगी। मतलब यही कि हम-आप अगर अपनी खैरियत चाहते हैं, और खुदाकी दी हुई अन्तिम साँस तक जीवित रहना चाहते हैं तो इन 'टेनीशाहों' को ही क़यामत तक गद्दीनशीन बना देखते रहनेमें ही अपना समस्त सौभाग्य समझते रहें !

और नींद उड़ जानेका ख़तरा भी अभी पास नहीं है क्योंकि हमारी 'रात' (और पाठक ! आपकी भी तो) अभी काफ़ी दूर है। बस आइए, लगे हाथ उक्त ऋग्वेदीय

---

[1] दाँन्तोंका कथन (अँगरेज़ी अनुवादसे हिन्दी में)—"प्रत्येक राष्ट्रके जीवनमें और व्यक्तिके जीवनमें भी एक स्थिति आती है जब 'पिष्टपेषण' या 'चर्वित-चर्वण' अथवा 'सब दिन वही सुर, वही ताल' की बोरियत (मोनोटॉनी) बहुत अधिक असहनीय हो जाती है और तब किसी-न किसी तरहका परिवर्तन, भले ही वह बादमें अनिष्टकारी साबित हो, अत्यन्त सुखद, वांछनीय, कल्याणकारी और अनिवार्य हो जाता है।"

[2] "यकसानी (मोनोटॉनी) अगर्चे सुकून और राहतकी हो, यकसानी ही तो है; और यकसानी बजाये ख़ुद जिन्दगीकी सबसे बड़ी बेनमकी है। तबदीली अगर्चे सुकूनसे इज़्तिराब की हो, फिर भी तबदीली है; और तबदीली बजाये ख़ुद ज़िन्दगीकी सबसे बड़ी लज़्ज़त है।"—मौलाना अबुल कलाम आज़ाद। (सुकून=शान्ति। राहत=कष्टहरण। बजाये ख़ुद=अपनी जगहपर। बेनमकी=नीरसता। तबदीली=परिवर्तन। इज़्तिराब=अशान्ति।)

ऋचाके उत्तरार्धका और साथ ही उसमें निहित दर्शनका भी, कि जिसका आगे संकेत किया है, विवेचन कर ही लिया जाये।

उस ऋचाका उत्तरार्ध है :

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य—
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

अर्थात् : "उन दोनोंमें से एक पके फलका स्वाद लेता है, किन्तु दूसरा सभी दिशाओंमें देखता है—पके फलोंका स्वाद न ग्रहण करता हुआ।"

स्पष्टतः यह वृक्ष विश्वका प्रतीक है और सुपर्ण (= पक्षी, पत्ता नहीं) सम्भवतः हरीत कपोत (= हारिल) अथवा शुक पक्षी या मानव प्राणी या आत्म तत्त्वका प्रतीक है; क्योंकि मनुष्यको छोड़ किसी अन्य प्राणीमें सभी तरफ़, ख़ासकर गरदन ऊपर उठा गगनकी ओर अवलोकनकी शक्ति है नहीं। कविसमयानुसार चातक ऊपर चोंच उठाकर केवल स्वाति-नक्षत्रका जल ग्रहण करता है, किन्तु चंचु आकाशकी ओर उठाकर वर्षाकी बूँदें ग्रहण करते हुए चातकको किसीने देखा नहीं है। पक्षियोंमें गीध उठता बहुत ऊपर अवश्य है, किन्तु उसकी निगाह प्रति पल नीचे सँड़ाँधकी ही ओर रहती है। पशुओंमें भी ज़िराफ़ (= ज़रख़) और ऊँटकी गरदन जो बहुत लम्बी है वह आकाशकी ओर देख सकनेमें सुविधा देनेके लिए नहीं वरन् बबूल-जैसे कँटीले वृक्षोंकी फलियाँ और कोमल पत्तियाँ खाते रहनेके लिए। घोड़े और गधे (और खच्चर भी) मृत्तिका स्नान पीठके बल थोड़ा लोट-पोटकर भले ही कर लेते हों, भेड़, बकरी यहाँ तक कि घड़ियाल भी ऐसे चौपाये हैं जिन्हें पीठके बल कर दीजिए तो फिर पलट सकनेको उनमें शक्ति नहीं है। यह तो मानव-प्राणीका ही सौभाग्य रहा जो वह अपने अगले दो पैरोंको ऊपर उठा पिछले दो पैरोंपर खड़ा हो गया और विराट् आकाशका दर्शन करने लगा था। इस प्रकार जो अन्तर नीचे गिरे फल-फूल-पत्ते और शव खानेवाले प्राणियों तथा ऊपर वृक्षपर बैठे ताज़ा, पके, अनुच्छिष्ट फल खानेवाले 'ग़रीब' हारिल तथा 'प्रबुद्ध' शुक पक्षीमें है, वही अन्तर 'द्वा सुपर्णा' में इंगित उन दो चेतन प्रतीक-प्राणियोंमें है जिनमें से प्रथम सीमा-बन्धनके मोहमें कसी वे आत्माएँ हैं जो केवल अपने-अपनोंके लिए संसारकी समस्त सुविधाओं, समस्त स्वार्थ-पूर्तियों, तथा निर्मम अन्याय सहित दूसरोंका गला मरोड़कर समस्त सुखोपभोग रूपी पके फलोंको खानेमें संसार-रूपी वृक्षकी डाली-डाली और पत्ती-पत्तीको उसी सजग दृष्टिसे दिन-रात टटोलते रहनेमें अपनेको जीवन-भर व्यस्त और पस्त तथा दूसरोंको त्रस्त किये रहते हैं, जिस तरह, ज्यों-ज्यों गीध ऊपर उठता जाता है त्यों-त्यों सड़ी लाशको देख लेने और उसपर झपट पड़नेको उसकी दृष्टि अधिकाधिक चुस्त और दुरुस्त होती जाती है। किन्तु 'द्वा सुपर्णा…' में व्यंजित दूसरी कोटिकी वे असीम और समुन्नत आत्माएँ हैं जिनके हाथों मानो जन्म-जन्मसे वे प्रबल कल्पनाओं और आदर्श सपनोंके वे बीज वपन हुए होते हैं कि जिनकी उगी विषाद और पराजयकी फ़सल ही उनके भाग्य

में होती है जिसे काटते रहनेमें ही उनका जीवनान्त होता है! यही बात हमारे एक बड़े बुजुर्गने जो निस्सन्देह इसी दूसरी कोटिकी महान् आत्माओंमें-से ही एक थे, बड़े मनोहर ढंगसे निम्नांकित शब्दोंमें कही थी :

“.....कोई अपना दामन फूलोंसे भरना चाहता, कोई काँटोंसे। जब लोग कामजोइयों (इरादेकी पूर्तियों) और खुशबख्तियों (भाग्योदयों) के फूल चुन रहे थे तो हमारे हिस्सेमें तमन्नाओं (कामनाओं) और हसरतों (अभावोंकी प्रतीति) के काँटे आये। उन्होंने फूल चुन लिये, काँटे छोड़ दिये। हमने काँटे चुन लिये, फूल छोड़ दिये।”

और हिगेलका भी यही कहना था कि, ‘लाइफ़ इज़ नॉट मेड फ़ॉर हैप्पिनेस्, बट फ़ॉर अच्चीवमेण्ट !’ अर्थात् ‘यह जीवन सुखोपभोगके लिए नहीं, अनुभूतिकी उपलब्धियोंके लिए ही मिला है।’

अतः यह (ऋचाका उत्तरार्ध) दर्शन भी है, साहित्य भी। ‘द्वा सुपर्णा’के दोनों पक्षियोंका ‘सयुजा सखाया’ जीवन-साहित्यके लिए एक दूसरेका विपर्यय नहीं अपितु पूरक है और इनके समन्वयमें मानव-जीवनकी सार्थकता है।

◆

वेदोंके बाद पुराणोंमें ब्रह्माण्डरूपी इस वृक्षको महाकाल-द्वारा आरोपित कहा गया और इसकी शाखाओंको अनेक विश्वोंका तथा फलोंको अनेक जीवन-सृष्टियोंका रूपक दिया गया। तुलसीदासके शब्दोंमें (रामचरित मानस, उत्तर काण्डमें) वेदोंने भगवान् रामकी वन्दनामें यही बात व्यक्त की :

अव्यक्त मूलमनादि तरु,
त्वच चारि निगमागम भने।
षट् कन्ध शाखा पंच बीस
अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर
बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित
संसार बिटप नमामहे!!

और केशवदास तो महान् कवि थे ही। इस ‘अव्यक्तमूलमनादितरु’को आकाशके रूपमें देखते हुए केवल दो पंक्तियोंमें सूर्योदयका जैसा महोदात्त चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया वैसा शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो :

चढ्यो गगन-तरु धाय,
दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्ह्यो झुकि झहराय,
सकल तारिका सुमन इव॥

इन १४ शब्दोंमें महाकविकी अप्रतिम प्रतिभा कल्पनाके कितने ऊँचे आकाशमें उड़ी है इसका उदाहरण दिनकर (सूर्य) को बानरका रूपक देकर एक ओर तो शिशु हनुमानके जन्मते ही आकाशमें उचककर सूर्यके साथ एक ‘सम्बन्ध-स्थापित करने’की पुरानी बातकी याद-दिहानीमें है, और दूसरी ओर नवोदित सूर्य और नवजात समीर-सुवन (हनुमान) में तादात्म्य बतानेकी सर्वथा मौलिक कल्पनामें है। यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि यूनानकी पौराणिक कथाओं ‘मिथालाजीज’ में नवजात ‘हरमिस’ की भी

कुछ ऐसी ही गगन-विचरणकी कहानी है; और मेरी अपनी मान्यता है कि शब्द 'हरमिस' संस्कृतके 'समीर' शब्दका ही यूनानी प्रतिरूप है, जैसे संस्कृतके शब्द 'दशरथ', 'अज', 'पुरुहूत', 'आदित्य' आदिके ही प्रतिरूप क्रमशः यूनानी 'थीसियस' 'एजिएस' 'पिरिथ्यूस' 'ओदियस' आदि शब्द हैं। और यह भी तो सत्य ही है कि मानव-कुलकी समस्त उपलब्धियोंका अजस्र स्रोत यह आकाश और हमारा आकाशका अवलोकन ही है। वर्षाकालमें वारिदोंकी लाखों-लाख अठखेलियोंके बीच गगनकी निर्झरअशान्ति, शरदकी चाँदनीमें मुसकान-भरे नभका अविचल अवसाद तथा शिशिरकी अँधेरी शीतल रातोंमें सितारोंकी असंख्य टिमटिमाहटोंमें अज्ञात अनन्त ब्रह्माण्डोंका रहस्य छिपाये आकाशका विराट् विस्तार मानवके सम्पूर्ण दर्शन, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, और आकाश-पातालके गर्भ तथा आकाश-पातालके अवकाशके समस्त अन्य रहस्योंकी उपलब्धिका सदासे ही प्रमुख प्रेरणा-स्रोत रहा है।

केशवके अतिरिक्त उदार मानवतावादी प्रेम-मार्गी कवि मुहम्मद जायसीने तथा उसी परम्परामें 'तुर्रा' और 'कलंगी' वर्गके सूफ़ी ब्रह्मवादी ख्याल-गायकोंने संसाररूपी वृक्षकी डालियोंमें विश्वके विभिन्न भाषा-भाषियों और धर्मानुयायियोंरूपी पक्षियोंको अपनी-अपनी भाषामें उसी 'दइउ' (= देव या परम दैवत) का गुणगान करते हुए अनुभव किया। जायसीका यह उल्लेख अविस्मरणीय है :

जावत पंखी जगत के,
भरि बइसे अँवराउँ।
आपुनि आपुनि भाखा,
लेहिं दइउ कइ नाउँ॥

(जावत = सं० यावत्। पंखी = सं० पक्षी। बइसे = सं० उपविष्ठ। अँवराउँ = सं० आम्रराजि। भाखा = सं० भाषा। दइउ = सं० द्यौ, देव। नाउँ = सं० नाम।)

निम्नांकित अरबीकी पंक्तियोंमें भी यही बात कही गयी है :

इबारातुन शत्त व हुस्नुक वाहिदुन
व कुल्लुन इला ज़ाकल जमालि युशिरु।

इबारतें = बोलियाँ अनेक (शत्त) हैं और उनका हुस्न (= रूप) वाहिद = (एक ही है)। और सब बोलनेवाले अपनी-अपनी भाषामें उसी एकके जमाल (= दिव्य आभा) की ओर इशारा कर रहे हैं।

और देखिए तो, यही बात 'आशिक़े हक़्क़ानी' 'ब्रह्मज्ञानी' बाबा बनारसीने कि जिनके बारेमें सारे भारतमें मशहूर था कि 'अरबी पढ़े न फ़ारसी, सब के चचा बनारसी' (देखिए लोक चेतना-प्रकाशन, जबलपुर द्वारा प्रकाशित 'सुबहे बनारस') अपने एक ख्यालमें किस दुर्लभ मस्तानगीके साथ कही है :

तुख्म खुदा और शाख़ पैग़म्बर,
वर्ग औलिया, वली हैं गुल।
फल हैं उसमें फ़क़ीर पूरे,
फ़र्क़ न वह समझैं बिलकुल॥
....
....

अपने-अपने दीन के पंछी
करें हैं उस पर शोरो गुल ।
नज़र उसीको आये हैं जिसकी
ग़फ़लत का पर्दा गया खुल ।।
वहदत की लज़्ज़त उसमें
लेता है मेरा यह दिल बुलबुल !!

तुख़्म = बीज । बर्ग = पत्ता । वली = उत्तराधिकारी अबू-बक्र, उमर, उसमान, अली आदि । वहदत = एकत्व या समस्त । लज़्ज़त = स्वाद ।)

किन्तु आज तो 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' का हमारा यह 'फ़साना' (लेख) ही न जाने कितने-कितनोंको कर्ण दुःखद और नींद हराम कर देनेवाला लगता होगा; कारण कि पके फलोंको खाने और हथिया लेनेके घिनौने अपने एकमात्र व्यापारमें दिन-रात लथपथ प्रथम कोटिके 'पक्षीगण', अन्य सभी दिशाओंमें देखनेवाले दूसरी कोटिके आज कुछ गिने-गिनाये (और गिनगिनाये भी) थोड़े-से बच रहे पक्षियोंको वृक्षकी उसी डालपर अब बैठे नहीं रहने देना चाहते हैं; यद्यपि यह भी ध्रुव सत्य है कि जबतक वे सब एक साथ 'समानं वृक्षं परिषस्वजाते' हैं, तबतक वे (हम सभी) पक्षी सदा-सदा 'सयुजा सखाया'—सख्यताके प्रेममें अवियुक्त—ही रहेंगे !

यह 'सयुजा सखाया' कवि शेलीके शब्दोंमें (और उसी आधारपर इन पंक्तियोंके लेखकके शब्दोंमें भी) कैसी अपूर्व दिव्यता और एक प्यारे प्रश्नके साथ चित्रित है :

नथिंग इज़ सिंगल इन दि वर्ल्ड—
ऑल थिंग्स बाइ अ लॉ डिवाइन
इन् वन् ऐन अदर्स् बींग मिंगल !
ह्वाई नॉट आइ विद् दा इन ?

अर्थात्—

कुछ नहीं बिलग है जग में,
इक दिव्य नियन्त्रण के बल
सब जीव परस्पर मिलते
जीवन में और स्वजन में !
मैं कब तक अनमिल रहूँ ?

और शेलीका यही शाश्वत प्रश्न हमारा भी शाश्वत प्रश्न है—हम सबका, हम सबसे, विशेषतः हमारे इन 'टेनीशाहों' से !

रीडर, हिन्दी विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर

प्रतिप्रश्न

'सहना' और 'भोगना' हमारी 'नियति' नहीं...

आशारानी व्होरा

'सभ्यताकी दौड़में आज भारतीय भी किसीसे पीछे नहीं रहना चाहते', 'भारत अपनी महान् परम्पराओंके बलपर ही आगे बढ़ेगा'—ये वाक्य बड़े भोलेपनसे हर कोई गाहे-बगाहे दोहरा देता है और 'सभ्यताकी दौड़' तथा 'सांस्कृतिक परम्परा का अन्तर्विरोध-विस्तार सारे समाजपर छाता चला जा रहा है।

मिश्रित संस्कृति : विभाजित संस्कृति :

आधुनिक युगके प्रसिद्ध समाज-शास्त्री पीटिरिम ए॰ सोरोकिनने संस्कृतिके तीन भेद किये हैं : ऐन्द्रिक संस्कृति, विचार व धर्म-प्रधान संस्कृति और मिश्रित संस्कृति। जहाँ, जिस संस्कृति-का प्राधान्य होता है, उस समाजकी व्यवस्था, धर्म, दर्शन, विज्ञान, क़ानून, राजनीति, अर्थनीति, कलाएँ, नैतिकता आदि सभी कुछ उसीके अनुरूप हो जाती हैं। आजका भारतीय समाज पश्चिमकी ऐन्द्रिक संस्कृतिकी ओर उन्मुख है और आजका भारतीय समाज अपनी सांस्कृतिक विरासत या 'महान् परम्पराओं'-से भी जुड़ा है तो यहाँ आज 'मिश्रित संस्कृति' का बोलबाला होना स्वाभाविक है पर यह संस्कृति मिश्रित ही नहीं विभाजित भी है। इसके दो तत्त्वोंमें-से एक 'सभ्यता' (बाह्य संस्कृति) तो आगे-आगे अन्धाधुन्ध दौड़ लगाती जा रही है और दूसरा 'संस्कृति' (आन्तरिक संस्कृति) बेचारी धीरे-धीरे रेंगती हुई पीछे-पीछे घिसटती चलती है। जहाँ-कहीं वह छलाँग लगाती है, लड़खड़ाकर गिर पड़ती है और उसके बार-बार लड़खड़ानेका अर्थ होता है—दौड़में और पिछड़ जाना।

माता-पिता बच्चोंको उच्च शिक्षा दिलाते हैं, विज्ञान पढ़ाते हैं, विदेशी भाषाएँ सिखाते हैं, विदेश भेजकर प्रसन्न होते हैं, बच्चोंको आधुनिक तौर-तरीक़े सिखाकर अपने सभ्य होनेकी डींग मारते हैं पर बच्चोंने यदि अपना कैरियर या अपना जीवन-साथी स्वयं चुननेकी इच्छा प्रकट की तो वे सारी सभ्यताको ताक़पर रखकर भारतीय संस्कृति और बाप-दादोंकी विरासतकी दुहाई देने लगते हैं। रहन-सहनके ढंगमें और शिक्षा-दीक्षामें सभ्यताकी दौड़का मुक़ाबला विचारधारामें पिछड़ी संस्कृति नहीं कर पाती। नयी

पीढ़ीके कुछ लोग प्रयत्नसे उसे धक्का देकर मुक़ाबलेमें खड़ी कर भी दें तो वह लड़खड़ा जाती है। उसे लेकर चलनेवालोंका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। सामान्य लोगोंकी बात क्या, अपने लेखनमें बड़े-बड़े पहाड़ फोड़ने और परिवार-संस्था तकको तोड़नेवाला लेखक समयपर पसन्दकी शादी तक नहीं कर पाता। करता है तो अपनी बढ़ी-चढ़ी संस्कृतिके बलपर नहीं, कन्दरामें छुपनेवाली आदिम संस्कृतिको जगाकर—यानी चोरी-छिपे। गिने-चुने प्रगतिशील कहे जानेवाले लोगोंकी संस्कृति भी सभ्यताका साथ नहीं दे पाती।

यह लेख पढ़ते नये कवि कथाकारोंके मनमें कई सवाल उठेंगे कि हमारा शब्द 'सहना' और 'भोगना' को लेकर एकपक्षीय विचार यहाँ दिये जा रहे हैं, ऐसे विचार-जिनमें सकारात्मकता है और व्यर्थ विचारोंके स्थानपर संस्कृतिसे जुड़नेकी चेष्टा है। 'सहना' और 'भोगना' अगर समस्या नहीं स्थिति है तो यह प्रतिप्रश्न प्रतिक्रियाओंका भी स्वागत करता है।—सं०

सभ्यता बनाम संस्कृति :

अकसर लोग सभ्यता, संस्कृति—इन दोनों शब्दोंको एक ही अर्थमें प्रयोग कर लेते हैं। पर सभ्यता और संस्कृतिमें वही भेद है जो शरीर और आत्मामें है। सभ्यता साधन है, संस्कृति साध्य। सभ्यता एक प्रकारसे संस्कृतिकी अभिव्यक्तिका साधन ही होती है। पर जोर साधनपर ही है, साध्यपर नहीं। यही नहीं, सभ्यता संस्कृतिकी अभिव्यक्तिका साधन न होकर उसकी अगुआ बनती है। संस्कृतिको साथ लेकर चलनेकी या उसके गुणोंको ग्रहण कर आगे बढ़नेकी परवाह उसे नहीं है, संस्कृतिको ही उसके अनुसार ढलना होगा। पर जबतक वह इस दौड़में साथ चलनेके लिए स्वयंमें कुछ परिवर्तन लाती है, सभ्यता की दौड़ बहुत आगे निकल जाती है। सभ्यता में जो उन्नति पहले दस हज़ार सालोंमें होती थी, आज दस सालोंमें हो रही है। आविष्कारोंकी इस तीव्र गतिमें मनुष्यके सोचने और बदलनेकी गति बहुत पिछड़ गयी है, समाजमें सारी गड़बड़ियाँ इसी कारण पैदा हो गयी हैं।

औद्योगिक उन्नति और भ्रष्टाचार:

सभ्यता किसी वस्तुकी उपयोगिता है तो संस्कृति उसका मूल्यांकन। जो वस्तु उपयोगी है वह मूल्यांकन-द्वारा भी ऊँची ठहरे, यह आवश्यक नहीं है। हाइड्रोजन बम सभ्यताकी दृष्टिसे जितनी ऊँची वस्तु है, संस्कृतिकी दृष्टिसे शायद उतनी ही नीची। हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं, क्रियान्वित हुईं। औद्योगिक और वैज्ञानिक उन्नति हुई। सभ्यता आगे-आगे बढ़ चली जिससे और नयी-नयी योजनाएँ सामने आयीं। कार्यक्षेत्रोंका विस्तार हुआ। पैसा बढ़ा। रहन-सहन

का स्तर बढ़ रहा है। पर संस्कृतिमें लोग निरन्तर पिछड़ते जा रहे हैं—अपनी 'महान् परम्पराओं' को लेकर चलनेकी घोषणाओंके बावजूद। उन परम्पराओंका समयके साथ विकास नहीं हुआ, सभ्यताकी गतिमें पिछड़नेसे भटकाव और स्खलन हुआ है। अपराधोंमें वृद्धि हो रही है। रिश्वतख़ोरी, कामचोरी, गुटबन्दी, भाई-भतीजावाद, स्वार्थपरता और भ्रष्टाचारका बोल-बाला है। ईमानदारीका भाव मन्दा है। खानेकी चीज़ोंमें ही मिलावट नहीं, मनुष्यके सोचनेमें, स्वभावमें और व्यवहारमें भी मिलावट है। इस मिलावटका असर है—कथनी और करनीमें अन्तर। ग़रीब-अमीर, सभ्य-असभ्य, छोटे-बड़े, सभी इससे सन्त्रस्त हैं, शंकित हैं, कुण्ठित हैं, असन्तुष्ट और रुष्ट हैं। किसीको किसीपर विश्वास नहीं। यहाँतक कि स्वयंपर भी नहीं है। प्रतिद्वन्द्विताके लिए अनवरत एक भाग-दौड़ है। प्रगतिके लिए गति है। कहीं विराम या विश्राम नहीं। मशीनोंने और भागते समयने मनुष्यको मशीन बना दिया है। उसमें न ठहराव है, न कोमल भावनाओंके लिए कोई स्थान। व्यवहारकी 'मिलावट' में 'अपनत्व' खो गया है और मनुष्य अकेला पड़ गया है—इन सारी स्थितियोंको भोगने-सहनेके लिए विवश-सा। वैज्ञानिक युगका मानव (?) इस भोगनेको 'नियति' कहता है, 'सांस्कृतिक पिछड़ापन' कहनेको तैयार नहीं।

शिक्षा और क़ानून :

स्वतन्त्रताके पश्चात् धड़ाधड़ स्कूल-कॉलेज खुले और सैकड़ों नये-नये क़ानून बने। लोग शिक्षामें, अधिकारोंमें, क़ानूनी सुधारोंमें तीव्र गतिसे आगे बढ़ने लगे लेकिन शिक्षाके क्रियान्वयन, अधिकारोंके उपयोग और सुधारोंके स्वरूपमें पिछड़ गये। स्कूल-कॉलेजों और शिक्षित व्यक्तियोंकी संख्यामें वृद्धिसे सभ्यताका मापदण्ड ऊँचा हुआ। पर शिक्षा, जो संस्कृतिकी वाहक समझी जाती है, सांस्कृतिक मापदण्डको उसके अनुरूप लानेमें सफल नहीं हुई। संविधानने ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुषको समान अधिकार दिये। अस्पृश्यता-निवारण, नारी-स्वातन्त्र्य और समानाधिकारको लेकर सभ्यता एक साथ कई सीढ़ियाँ लाँघकर आगे बढ़ गयी। पर घरोंकी संस्कृति आज इतने सालों बाद भी न छुआछूत मिटा पायी, न नारी-स्वातन्त्र्यको स्वीकार सकी और समानाधिकारकी बात तो जैसे उसके गले ही नहीं उतरी। अधिकार न तो समान है, न उसका सही उपयोग ही लोग सीख पाये हैं। अधिकार-प्राप्तिमें हम सभ्य हैं, आगे हैं, उनके उपयोगमें आदिम युगकी 'लाठी-भैंस' वाली संस्कृतिको पाले हुए हैं। शोषक-शोषितके बीचकी खाई भरनेके बजाय और गहरा गयी है। नियम-क़ानून बनानेवाले स्वयं उनका पालन नहीं जानते। **लोगोंको सभ्य (?) बनानेके प्रयत्नमें लोकतन्त्रके प्रतिनिधि विधानसभाओंमें अपने सांस्कृतिक विकास (?) का परिचय दे रहे हैं और सांस्कृतिक क्रान्तिका झण्डा उठाये बुद्धिजीवी-वर्ग कुण्ठाकी गलियोंमें भटक रहा है। प्रतिभाशाली स्त्री-पुरुषोंको शायद ही कभी इतनी पीढ़**

झेलनी पड़ी हो। सभ्यतामें बढ़े किन्तु संस्कृतिमें पिछड़े आजके समाजमें उनके लिए जीना ही दूभर हो रहा है। कोई 'आजकी सभ्यता' को गालियाँ देता है, कोई 'संस्कृतिकी हीनावस्थासे दुःखी है', दोनोंकी खाईको पाटनेकी चिन्ता किसीको भी नहीं है।

जन-संख्या और खाद्य-समस्या :

सभ्यताके साधनोंका विकास करके हमने चिकित्सा-द्वारा मृत्यु-दर कम कर ली है। कृषिके उन्नत साधनोंसे उत्पादन-क्षमता भी बढ़ी है। पर जन-संख्या और खाद्य-समस्याकी स्थिति और बिगड़ गयी है क्योंकि जन्म-दरको कम करनेमें संस्कृति बाधक हो रही है। नयी आवश्यकताओंके अनुरूप वह स्वयंको ढाल नहीं पाती। जबतक उसकी ग्रहण-शक्ति बढ़ती है तबतक सभ्यता उसके लिए और नयी आवश्यकताएँ, नयी समस्याएँ उत्पन्न कर देती है।

सभ्यता और संस्कृतिके विकासकी गतिका यह भारी असन्तुलन ही आज विश्वकी समस्याओं-संघर्षों और कष्टोंका कारण है। इस असन्तुलनको बिलकुल नहीं मिटाया जा सकता। नित नये-नये आविष्कारोंसे सभ्यता बढ़ती है और तेज़ीसे विश्व-भरमें फैल जाती है। संस्कृति उसकी तीव्र प्रगतिको पचा नहीं पाती। उसके मूल्यांकनमें इतना समय लगा देती है कि कभी-कभी यह देरी मँहगी पड़ जाती है और मनुष्य संस्कृतिको दोष न देकर सभ्यताको ही दोषी ठहराने लगता है। सभ्यता बढ़ेगी ही और संस्कृति भी उसका मूल्यांकन करेगी ही, क्योंकि दोनोंका यह स्वभाव है। मनुष्यका काम है—इस मूल्यांकनमें लगनेवाली अवधिको कम करके इनके असन्तुलनकी खाईको कम करना। आवश्यकता सभ्यताकी गतिको रोकनेकी नहीं, उसे संस्कृतिके नियन्त्रणमें लानेकी है। इसके लिए संस्कृतिके विकासकी गतिको भी कमसे कम इतना बढ़ाना होगा कि सभ्यता उसकी दृष्टिसे ओझल होकर मनमानी न करने लगे। झेलना और सहना आजके मनुष्यकी नियति नहीं, उसका सांस्कृतिक पिछड़ापन है, सभ्यताके साथ न चल पानेकी असमर्थता है। इस सामर्थ्यको बढ़ानेकी ओर किसीका ध्यान क्यों नहीं जाता ?

१०, न्यू मार्केट,
वेस्ट पटेल नगर, दिल्ली ८

प्रशान्त और एशियामें अमेरिकी युगका प्रारम्भ

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

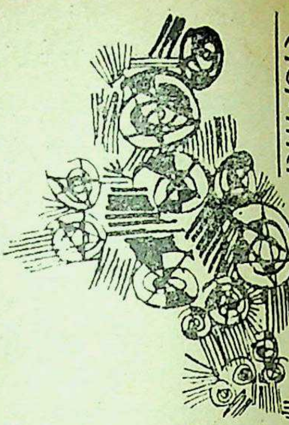

मध्यवर्ती देशीय निर्वाचन-संग्रामको बीच ही में छोड़कर, निर्वाचन सम्बन्धी राज्योंका दौरा न करके संयुक्त राज्य अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट जॉनसनने १७ दिनोंकी प्रशान्त और एशियाकी २८००० मीलकी यात्रा की। प्रेसिडेण्टकी २८००० मीलकी यात्राका प्रारम्भ हवाई द्वीपसे हुआ और इसका अन्त अलास्कामें हुआ। इस यात्राका मुख्य उद्देश्य मनीलाकी सात देशोंके प्रमुखों और प्रधान मन्त्रियोंकी कान्फ़्रेन्समें सम्मिलित होना था। प्रेसिडेण्ट जॉनसन अमेरिकाके पहले प्रेसिडेण्ट हैं, जिसने न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, फ़िलीपीन, थाईलैण्ड, द० वियतनाम और द० कोरियाकी यात्रा की है। प्रेसिडेण्ट आइजन होवरने इससे पहले भारतकी यात्रा की थी। वियतनामके युद्धक्षेत्रमें पहुँचनेवाले सर्व प्रथम प्रेसिडेण्ट जॉनसन ही हैं। प्रेसिडेण्ट अब्राहम लिंकन भी रणक्षेत्रपर गये थे, किन्तु देशसे बाहर नहीं। जापानने प्रेसिडेण्ट जॉनसनको अपने देशमें आनेका निमन्त्रण ही नहीं दिया। प्रेसिडेण्ट जॉनसनकी प्रशान्त और एशियाकी यह यात्रा प्रशान्त और एशियामें नवीन युगके आविर्भाव और उदयका प्रमाण माना जाता है।

इस प्रसंगमें एक बात ध्यान देनेकी है। एशिया और प्रशान्तसे यूरोपियन शक्तियाँ हट गयी हैं। ब्रिटेनने भारत, वर्मा, सीलोन, मलाया ख़ाली कर दिया है। साइप्रस भी छोड़ दिया है। सिंगापुर और अदनसे बोरिया-बिस्तर बांध रहा है। ज़िब्राल्टर आज भी उसने त्यागा नहीं है। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री जॉर्ज ब्राऊन ज़िब्राल्टर छोड़नेको इच्छुक नहीं हैं। ज़िब्राल्टर स्पेनको वापस देनेको उद्यत नहीं है। ज़िब्राल्टेरियन राष्ट्रका निर्माण करके उसको (ब्रिटिश) कामनवेल्थके भीतर रखेंगे। मज़दूर-दलीय ब्रिटिश सरकारका अपने उपनिवेशोंके प्रति यह भाव है। उसने एशिया ख़ाली किया है लाचार होकर, जब भारतीय सेनाने ब्रिटिश साम्राज्यके विजय वैजयन्ती उठानेसे इनकार कर दिया। विश्व-इतिहासकी और भारतीय चरित्र की यह एक अपूर्व घटना है कि जर्कसीज (ईरानी सम्राट्) ने

जब ग्रीसपर चढ़ाई की थी, तब उसकी सेनामें भारतीय सैनिकोंका एक पथक (डिवीजन) था। भारतीय दूसरोंके साम्राज्यके विस्तारके लिए अपना रक्त बहाते रहे। असहयोग-आन्दोलनके प्रारम्भमें एक गीत गाया जाता था जिसकी एक पंक्ति थी :

“ग्यारह रुपयेमें नाड़ कटासी रे”

परन्तु भारतीय वीरोंने कभी भारतको विश्व-विजयी बनानेके लिए उद्योग किया— इसका कोई उल्लेख अभी प्राप्त नहीं हुआ।

जर्मनी, फ्रान्स, नीदरलैण्ड भी एशिया और प्रशान्त खाली कर गये हैं। स्थान रिक्त है। युरॅपियन शक्तियोंसे रिक्त स्थानको कौन भरे, यह पिछले बीस सालसे प्रश्न था।

प्रकृतिका नियम है, कभी कोई स्थान खाली नहीं रहता। रिक्त स्थानपर चारों ओरसे हवा आती है और उसको पूरा कर देती है। यही नियम मानव-इतिहासमें ठीक है। इस रिक्त स्थानको भरनेका दायित्व भारतको प्रकृतिने दिया था। भौगोलिक स्थितिके कारण भारत इसके उपयुक्त था। जन-शक्ति और प्राकृतिक सम्पत्तिने भी उसको इसके योग्य बनाया था। यह ध्यानमें रखकर ही पहले विश्व-शक्तियोंने भारतका विभाजन किया और शक्तिको तोड़ दिया। पुनः भारतके भाग्य-विधाताओंने सैनिक शक्तिकी उपेक्षा की। आज भी भारतको सशस्त्र करनेको उद्यत नहीं। अणुबमसे उनको परहेज़ है। द० एशिया और प्रशान्तकी सुरक्षा प्रदान करनेके लिए आजका भारत उद्यत नहीं है।

इस रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिए सोवियत रूस सचेष्ट है। १० जनवरी १९६६की ताशकन्द-घोषणा इसका एक प्रमाण है। चीन भी इच्छुक है, परन्तु उसका हिन्देशियाई प्रयत्न विफल रहा है। वियतनाममें उसका आगे बढ़ना अमेरिकी सेना (इस समय वियतनाममें, प्रेसिडेण्ट जॉनसनके शब्दोंमें, वेबस्टरकी नयी डिक्शनरीमें जितने शब्द हैं, उतने सैनिक हैं। पर यह सत्य नहीं है। वेबस्टरकी नयी डिक्शनरीमें ४५०००० शब्द हैं और वियतनाममें अमेरिकी सैनिकोंकी संख्या ३३६००० है) ने रोक रखा है।

रूस-चीनको प्रेसिडेण्ट जॉनसनने चुनौती दी है कि यूरोपियन शक्तियोंसे रिक्त स्थानकी पूर्ति अमेरिका करेगा, सोवियत रूस और चीनको यह बतानेके लिए ही प्रेसिडेण्ट मनीला-कान्फ्रेन्समें पहुँचे और उन्होंने २८००० मीलकी यात्रा की। यह घोषणापूर्वक अमेरिकाका प्रशान्त और एशियामें प्रवेश था। प्रेसिडेण्ट जॉनसनका वेलिंगटन, कैनबैरा, मेलबोर्न, मनीला, कुआलालम्पर, बैंगकॉक और सीयूलमें जैसा शानदार और ज़ोरदार स्वागत हुआ, विरोधी प्रदर्शनोंके बावजूद साधारण जनताने जैसा स्वागत और अभिनन्दन किया उसने भी घोषित किया कि न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, फ़िलीपीन, थाईलैण्ड, मलेशिया, द० वियतनाम और द० कोरिया अपनी सुरक्षा और समृद्धिका भार अमेरिकाके हाथोंमें सौपनेको तैयार हैं। मनीला-कान्फ्रेन्समें मलेशिया शामिल नहीं हुआ था, परन्तु उसके उद्देश्यसे सहमति प्रकट करके

और प्रेसिडेण्ट जॉनसनको अपने यहाँ आमन्त्रित करके उसने बता दिया कि मनीलाका निर्णय उसको शिरोधार्य है।

प्रशान्त और एशियामें अमेरिकाका यह प्रवेश आकस्मिक नहीं है। अमेरिकी राष्ट्रकी आयु अभी ३५० वर्ष भी नहीं हुई है, अतः अमेरिका युवावस्थामें पहुँच रहा है। तरुणाईकी अँगड़ाई ले रहा है, मस्तीमें झूम रहा है। ८ नवम्बरको अमेरिकामें वोट पड़ने थे। १७ अक्तूबरको प्रेसिडेण्टने वाशिंगटन छोड़ दिया। प्रेसिडेण्ट जॉनसनकी इस यात्राकी रिपब्लिकन पार्टीपर पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि डेमोक्रेटिक पार्टीको चुनावमें विजयी बनानेके लिए प्रेसिडेण्ट जॉनसनने यह लम्बी यात्रा की है, जैसे आईजन होवर १९५२ में द० कोरिया गये थे। प्रेसिडेण्ट-निर्वाचनमें स्व० केनेडीके प्रतियोगी श्री निकल्सनने तो इस यात्राको अपनी पार्टीकी विजय-आशापर प्रबल आघात ही बताया। परन्तु शीघ्र ही अमेरिकाने अनुभव किया कि अमेरिकाके इतिहासमें एक अविस्मरणीय पन्ना जोड़ा जा रहा है। अमेरिकाका विस्तार हो रहा है। उसकी वर्षों पुरानी इच्छा पूरी हो रही है।

जनरल मैक आर्थरसे परामर्श करनेके लिए प्रेसिडेण्ट ट्रूमैन १९५० में वेक आइलैण्ड (मध्य प्रशान्त) में कुछ समयके वास्ते रुके थे। प्रेसिडेण्ट आइज़न होवर १९५९ में श्री नेहरूके साथ बात करनेके लिए नयी दिल्ली गये थे। परन्तु प्रेसिडेण्ट जॉनसनने अपने कार्यकालमें पश्चिमी युरॅपकी यात्रा न करके उत्तरी अमेरिकासे बाहर प्रशान्त औ एशियाकी यात्राकी ओर असन्दिग्ध शब्दों घोषणा की कि अमेरिकाका सम्बन्ध युरॅप अधिक एशियासे है। वह एकमात्र अटला ण्टिक राष्ट्र ही नहीं है, वह प्रशान्त औ हिन्द महासागरका भी राष्ट्र है। इसे बताने और दुनियासे मनवानेके लिए प्रेसि डेण्टकी यह ऐतिहासिक यात्रा थी।

बर्कलेकी भविष्यवाणी : १७२५ में बर्कले ने भविष्यवाणी की थी कि अमेरिकी साम्रा ज्यका मार्ग पश्चिमकी ओर है। २५ साल पुरानी भविष्यवाणी नवम्बर १९६६ में पूर्ण हो गयी। १७२५ के बादसे अमेरिका उत्तरी अमेरिकासे बाहर पश्चिमकी ओ क़दम-क़दम बराबर बढ़ता रहा है। पश्चिम की ओर उठाया क़दम कभी उसने लौटाया नहीं है। अमेरिकी इतिहास-लेखक फ्रेडरि जैक्सन टरनरने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सिगनीफ़िकेंस ऑफ दी फ्रण्टियर इन अमे रिकन हिस्ट्री' में इस दिशाकी ओर निर्दे किया था। यह अमेरिकी मस्तिष्कका चिन्तन और मन्थन था। अमेरिकाका यह विचार १९०३ में बीसवीं सदीके प्रारम्भमें मूर्तरूप आया जब प्रेसिडेण्ट थियोडोर रुज़वेल्ट (रिपब्लिकन) ने सनफ्रान्सिस्कोमें घोषणा की : पश्चिमकी ओर बढ़ा क़दम गोल्डन गेट पर रुकना चाहिए। प्रशान्त युग (यह सबसे बड़ा बताया जाता है) सर्वाधिक महा होगा, अमेरिकाका यही भवितव्य है। इसका यह उषा-काल है। प्रेसिडेण्ट जॉनसनकी प्रशान्त-एशिया यात्रा उस युगके मध्याह्न

बता रही है ।

अमेरिका अपने जन्म-कालसे प्रशान्तमें बढ़नेको सोचता है। ब्रिटिश जुएको फेंकनेके आठ साल बाद ही चीनकी महारानीने न्यूयॉर्कसे कैण्टनकी यात्रा की और इस प्रकार अमेरिका और चीनके मध्य व्यापार प्रारम्भ हुआ। इस व्यापारमें २५ प्रतिशत लाभ था। चीनी लाखोंकी संख्यामें अमेरिकाकी ओर दौड़े।

व्यापारके साथ : अमेरिकी व्यापारी चीन सागरको पार करके चीनी-तटके साथ-साथ थाईलैण्डके दक्षिणमें पहुँचे और वहाँसे ईस्ट इण्डीज़ (हिन्देशिया) पहुँचे। एशियामें अमेरिकी व्यापारी अकेले नहीं आये। १८३० में एक सहस्र अमेरिकी मिशनरी चीनको ईसाई धर्मकी दीक्षा देनेके लिए चीन पहुँचे। कैण्टन (दक्षिण) से उसने चीनियोंको ईसाई बनानेका कार्य प्रारम्भ किया।

अमेरिकाको इस बातका गर्व है कि जापानका शेष दुनियासे अलगावका अन्त उसने किया, यूरॅपियन राष्ट्रोंने नहीं। जापानको विजय करनेके प्रारम्भिक प्रयत्न असफल रहे। १८५४ में काममोडोर मैथ्यु सी पैरी आठ काले जहाज़ोंके साथ याकोहामा पहुँचनेमें सफल हुआ जापानके अनिच्छुक सम्राट्के साथ व्यापार व मैत्रीकी पहली ऐतिहासिक सन्धि करनेमें सफल हुआ। पैरीकी यह सफलता एशियामें अमेरिकाका चंचु-प्रवेश सिद्ध हुई। एशियाके मामलोंमें अमेरिका इसके बाद बराबर फँसता गया, उलझता गया। मैसाचुसेटमें जन्मे फ्रेडरिक टाऊनसेण्ड वार्ड विजयी सेना (इसको दर्प था कि उसकी सेना विजयी होती है, कभी हारी नहीं है) के साथ १८०५ में तैंपिग-विद्रोहको दबानेके लिए चीन गया। १८६० में पुनः अपनी सेना चीन ले गया। १८९९ में जान हे ने चीनको 'मुक्त द्वार' नीति ग्रहण करनेको बाध्य किया। चीनके द्वार सब यूरॅपियनों और अमेरिकाके वास्ते खुल गये। फलतः अमेरिकी व्यवसायी बड़ी संख्यामें दौड़े हुए चीन पहुँचे। अमेरिकाके आर्थिक साम्राज्यका यह प्रभात काल था। ६७ साल बाद अमेरिकाके इस आर्थिक साम्राज्यकी कल्पना पृष्ठ ३८ के बाक्ससे हो सकती है।

साम्राज्यकी दृढ़ नींव : अमेरिकी साम्राज्यकी स्थापना करनेका श्रेय नौ सेनापति जॉर्ज डीवेको प्राप्त है। १८९८ में इसने मनीलाकी खाड़ीमें स्पेनिश बेड़ेपर भारी विजय प्राप्त की। इतिहासका कैसा संयोग है, ब्रिटिश साम्राज्यका उदय स्पेनिश अर्मेडाको नष्ट करनेके बाद हुआ और फ़िलीपीनमें अमेरिकी साम्राज्यकी स्थापना भी स्पेनिश बेड़ेके नष्ट होनेपर हुई। अमेरिकाने इसी समय क्यूबा भी स्पेनसे जीता था। पर क्यूबाको स्वाधीनता दे दी गयी। किन्तु फ़िलीपीन १९४६ तक अमेरिकाका एक उपनिवेश रहा। प्रशान्तमें इस प्रकार अमेरिकाके पैर दृढ़तासे जम गये। यह उसका अंगद-पाँव साबित हुआ।

अमेरिकाको इसने एशियाका भाग्य-निर्माण करनेमें निर्णायक भाग प्रदान करने-

अमेरिकाका एशियाई आर्थिक व सैनिक साम्राज्य

आस्ट्रेलिया : आस्ट्रेलियाके ४५०० सैनिक द० वियतनाममें अमेरिकाके साथ मिलकर लड़ रहे हैं, जब कि वहाँ एक भी ब्रिटिश सैनिक नहीं है। अमेरिकाकी आस्ट्रेलियामें १ अरब ६० करोड़ डॉलर पूँजी लगी हुई है। चीनसे भयभीत आस्ट्रेलिया अपनी रक्षाके लिए अमेरिका-पर निर्भर है।

वर्मा और कम्बोडिया : तटस्थ देश हैं। अमेरिकासे कम्बोडियाको ३४३० लाख डॉलर मिला है। राजकुमार सिहानुकने और अधिक लेनेसे अब इनकार कर दिया है।

हिन्देशिया : एक निर्लिप्त देश है। कम्युनिस्ट विद्रोहकी शान्तिके बाद पुनः अमेरिकासे आर्थिक मदद ली है। अमेरिकाने हिन्देशियाको ८९ करोड़ डॉलर दिये हैं।

जापान : पराजित जापान अमेरिकाका मित्र है, सखा है। अमेरिकाके यहाँ हवाई और सैनिक अड्डे हैं। ४०००० अमेरिकी सैनिक जापानमें रहते हैं। जापानको अमेरिकासे ४ अरब डॉलर मदद मिली है।

लाओस : इसका वर्तमान जीवन अमेरिकी सहायतापर निर्भर है।

मलेशिया : अमेरिकाका एक मित्र राष्ट्र है। यहाँ अभी ब्रिटिश प्रभावकी प्रधानता है।

न्यूज़ीलैण्ड : चीनसे भयभीत न्यूज़ीलैण्ड अपनी सुरक्षाके लिए ब्रिटेनपर नहीं पूर्णतः अमेरिकापर निर्भर है। अमेरिकाका यह सखा है।

फ़िलीपीन : अमेरिकाका यह पुराना उपनिवेश है। १९४५ के बादसे यह अमेरिकासे २ अरब डॉलर पा चुका है। यहाँ अमेरिकाकी २५००० सेना रहती है। १००० फ़िलीपीन सैनिक द० वियतनाममें लड़ रहे हैं।

द० कोरिया : कोरियाको अमेरिकाने ६ अरब ७० करोड़ डॉलरकी आर्थिक सहायता दी है। द० कोरियामें ५०००० अमेरिकी सेना ठहरी हुई है। कोरियाके ४०००० 'सैनिक' वियतनाममें लड़ रहे हैं।

तैवान : अमेरिकाका कृपापात्र च्यांग काई शेक इस द्वीपका अधिपति है। अमेरिकाने इसको समृद्ध बनानेमें ५ अरब डॉलर ख़र्च किये हैं।

थाईलैण्ड : यहाँ अमेरिकाके ३१५०० सैनिक ठहरे हुए हैं। उत्तरी वियतनाम-पर बम-वर्षा करनेवाले अमेरिकी विमान यहाँसे ही जाते हैं।

का अवसर दिया। १९०५ में थियोडोर रुज़वेल्टने रूस-जापानके संग्रामको बन्द करनेके उद्देश्यसे पोर्ट्स माऊथमें सन्धि-कान्फ्रेन्स बुलायी। एशियाका भाग्य-सूत्र अमेरिकाने इस प्रकार ग्रहण कर लिया। शक्ति-सन्तुलनको ठीक और सही रखनेका उसने दायित्व ग्रहण किया।

मंचूरियामें रूसकी पराजय हो जानेसे एशियामें शक्ति-सन्तुलन बिगड़ गया था। थियोडोर रुज़वेल्टने इसको सँभालनेका कार्य किया और शान्तिका नोबुल पुरस्कार प्राप्त किया।

१९१७ में प्रेसिडेण्ट विल्सन अमेरिकाको प्रथम यूरॅपियन महासमरमें खींच ले गये। प्रथम महायुद्धमें अमेरिकाने अल्पकाल ही भाग लिया क्योंकि १९१९ तक अमेरिकाके सब सैनिक स्वदेश वापस आ गये थे। राष्ट्रसंघ जेनीवामें स्थापित हुआ किन्तु अमेरिका इससे अलग ही रहा। अमेरिका पूर्वको भूलकर पश्चिमकी ओर केन्द्रित होने लगा। १९२१ में नौ शक्तियोंकी वाशिंगटनमें कान्फ्रेन्स हुई। एशियामें जापानके बढ़ते-प्रभावको रोकनेके उद्देश्यसे यहाँ कान्फ्रेन्स बुलायी गयी थी। परन्तु यह प्रयत्न विफल रहा। १९३१ में जापानने मंचूरियाको जीत लिया और जापानी साम्राज्यका विस्तार रूसकी सीमासे टकराने लगा। अमेरिका इस समय मौन रहा। १९२८ में युरॅपमें पुनः लड़ाई छिड़नेपर अमेरिका चुप रहा।

विश्व-युद्धमें अमेरिकाको सम्मिलित करनेवाला हिटलर नहीं तोजो था। जापानने ७ दिसम्बर १९४१ में पर्ल हारबरपर आक्रमण किया। अमेरिका जापानसे लड़नेको विवश हुआ। अमेरिकाने एशिया खाली करने या छोड़नेसे इनकार कर दिया। पर्ल हारबरपर जापानी हमला होनेके तीन दिन बाद जापानके दोनों मित्रों, जर्मनी और इटलीने ११ दिसम्बरको अमेरिकाके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की।

अमेरिका युरॅपमें लड़ा पर उसकी समुद्री शक्तिका जमाव एशियामें हुआ। यह विशाल केन्द्रीकरण था। प्रशान्त महासागरको अमेरिकी नौसेनाने 'अमेरिकी झील'में परिणत कर दिया। दूसरा विश्व-युद्ध समाप्त होनेके बाद अमेरिका मुख्यतः युरॅपमें उलझा रहा। मार्शल योजना 'नाटो' की स्थापना इसके प्रमाण हैं। एशियासे अमेरिकी सैनिक-चौकियाँ उठा ली गयीं।

च्यांग-काई-शेककी शरण : रुज़वेल्ट-युगमें अमेरिकाका ध्यान युरॅपपर केन्द्रित रहा। फलतः माओ-त्से-तुंग और च्यांग-काई-शेकके मध्य सन्धि करनेका प्रयत्न विफल रहा। जॉर्ज मार्शल और एचीसन (अमेरिकाके परराष्ट्र मन्त्री) युरॅपियन मनोवृत्तिके थे, चीनकी समस्याको सुलझानेमें विफल रहे। १९४७ में मार्शलने निराश होकर चीनी-समस्यासे अपना हाथ खींच लिया। इसके दो साल बाद मार्शल च्यांग-काई-शेकको भागकर तैवानमें शरण लेनी पड़ी। कम्युनिस्ट नेता माओ-त्से-तुंगने चीनका शासन-सूत्र ग्रहण किया और अमेरिकाके लिए चीनके दरवाज़े बन्द कर दिये।

अमेरिकी डॉलरका प्रवेश बन्द हो गया। एशियामें अमेरिकाकी यह भारी पराजय थी। लाल चीनने अमेरिकाका एशियामें विस्तार रोक दिया। अमेरिका पीछे हटनेको बाध्य हुआ।

अमेरिकाने एशियामें अपना पाँव जमानेके लिए कोरियाका ३६ अक्षांशपर विभक्त करनेका दृढ़तासे आग्रह किया। चीनको चुनौती दी कि यदि वह अपनी सेना वापस न करेगा तो चीनपर सीधा आक्रमण किया जायेगा। यालू नदीके पार पहुँचकर जनरल मैक आर्थरने हमला करनेकी चेतावनी चीनको दी। कोरियाको विभक्त रखनेके लिए अमेरिकाने ५४००० सैनिकोंकी बलि दी। कोरियामें अमेरिकाको शानदार विजय हासिल नहीं हुई। यद्यपि एशियामें अमेरिकाकी उपस्थिति अनुभव की जाने लगी, वाककनाई (जापानके उत्तरी छोरपर) से इनवर कारगिल (द० न्यूज़ीलैण्ड) तक अमेरिकी छावनियाँ फैली हुई हैं। कोकाकोला और डेम्रियट-कोर सड़कोंपर चली हुई अमेरिकी प्रभुताका प्रतीक है।

एशियामें अमेरिका अपनी सेनाके द्वारा नहीं, डॉलरके द्वारा भीतर तक घुसा हुआ है। बॉक्सको देखनेसे ज्ञात होगा कि एशियामें किस मात्रामें डॉलर बिछा हुआ है। अमेरिकी डॉलरका प्रभाव और वर्चस्व इससे प्रकट है कि भारतने ६ जून १९६६ को बीस सालमें दो बार रुपयेका अवमूल्यन किया। पाकिस्तानने न १९४८ में किया और न १९६६ में किया। तैवानको यदि लाल चीन विजय नहीं कर सका, तो अमेरिकी बेड़ेके कारण—यह एक सत्य है। अमेरिकी बेड़ेका चीनी सागरमें संचार ही चीनको आगे बढ़नेसे रोक रहा है। अमेरिकाकी यह सैनिक विजय दक्षिण वियतनामका संग्राम क्या धूलमें मिला देगा—इस भयने ही प्रेसिडेण्ट जॉनसनको चुनाव-दौरा छोड़कर मनीला आनेको विवश किया। द० वियतनाममें इस समय ८४०० अमेरिकी नागरिक और ३३१००० सैनिक हैं। वियतनाम संग्रामपर अमेरिका वार्षिक १५ अरब डॉलरसे अधिक खर्च कर रहा है। सई-गाँवका तान सन नहूट हवाई बन्दर इस समय दुनियाका व्यस्ततम हवाई बन्दर है। काम सेह बे-में अमेरिकी इंजीनियर एशियाके गम्भीर समुद्रके मध्य एशियाका सबसे बड़ा बन्दरगाह बना रहे हैं।

नया मोड़ : अमेरिकाकी एशिया-विजय-योजनामें द० वियतनाम एक नया मोड़ सिद्ध हो रहा है। यदि अमेरिका यहाँ पराजित हुआ, या यहाँसे अपनी सेना हटानेको विवश हुआ तो एशियापर-से उसका प्रभुत्व भी समाप्त हो जायेगा। उसकी सारी डॉलर-सम्पत्ति डूब जायेगी। अमेरिकाके हटनेपर एशिया चीन और रूसके बीचका संघर्ष-स्थल बनेगा। जापान भी विस्तारवादी नीति ग्रहण कर सकता है। प्रेसिडेण्ट जॉनसनने घोषणा की है कि यह स्थिति न आने दी जायगी, जब उन्होंने वियतनाममें लड़ रहे अमेरिकी सैनिकोंसे कहा : हम तुमपर निर्भर हैं। जब कोई राष्ट्र तुम-सरीखे रक्त

देनेवाले वीर पैदा करना बन्द कर देता है, तो वह नष्ट हो जाता है। मैं और अमेरिकी राष्ट्र तुम्हारी विजयके लिए प्रार्थना करते हैं। कृतज्ञ राष्ट्र तुम्हारे लिए प्रार्थना करता है। अमेरिकी सेना चीनकी २७ लाख सेनाके जवाबमें आयी है। अमेरिकाका दावा है कि वह ७५ करोड़ एशियाई जनताकी कम्युनिज़मसे रक्षा करनेके लिए एशियामें आया है। वियतनामका संग्राम अमेरिकाका ही नहीं एशियाके लिए भी भाग्य-निर्णायक सिद्ध होगा। इतिहासके नये अध्यायका प्रारम्भ होगा। इसका स्वरूप क्या होगा ?

अमेरिकाने इस प्रश्नका उत्तर दिया है। ७० अमेरिकी विद्वान् वियतनामके आर्थिक और सांस्कृतिक विकासकी योजना तैयार कर रहे हैं। मार्शल योजनाका व्यय ३७ अरब डॉलर था। नयी योजनाके सम्मुख यह रक़म तुच्छ मालूम देगी। अमेरिका लोकतन्त्रकी स्थापना करना चाहता है, यह विश्वास उसने दक्षिण वियतनाममें लड़ाईके जारी रहते हुए निर्वाचन कराकर, संविधान-सभाका निर्माण कर और संविधान बनाना आरम्भ करके दिया है। अमेरिकाकी सचाईका इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है ?

मनीलासे प्रकाशित सात देशोंकी संयुक्त विज्ञप्तिमें कहा गया है कि उनका उद्देश्य—

भयसे अभय करना है,
आक्रमणसे मुक्ति दिलाना है,
भूखसे मुक्त करना है,
रोग व निरक्षरताको दूर करना है।

प्रेसिडेण्ट जॉनसन शान्ति चाहते हैं, किन्तु वह यह विश्वास नहीं करते कि लोकतन्त्र और कम्युनिज़म एक साथ रह सकते हैं। इन दोनोंके मध्य सह-अस्तित्वकी कल्पना भी सम्भव नहीं। अन्धकार और प्रकाश क्या एक साथ रह सकते हैं ? एशियामें इसी प्रकार चीन रहेगा या अमेरिका। भारतने अपने प्रकृति-प्रदत्त उत्तरदायित्वको ग्रहण करनेसे इनकार करके एक अपूर्व अवसर खो दिया। १९१४ में जैसे उसने लड़ाईका लाभ नहीं उठाया था, उसी प्रकार एशियासे उपनिवेशवादका अन्त होनेका भी भारतने लाभ नहीं उठाया। इस भूलका परिणाम क्या आज एशिया भोग रहा है ?

इतिहास सदन, एम—११८,
कनाट सर्कस, नयी दिल्ली—१

शहर अब भी सम्भावना है

अशोक वाजपेयी

० ० ० ० ० ० ०

मानवीय होनेके अनुभव और तनावोंको आत्मीय स्तरपर परिभाषित, तथा दुनियाके सारे विनाशके विरुद्ध कुछ गहरे मानव सम्बन्धोंमें अर्थ और सम्भावनाकी लगातार खोज करती, नयी पीढ़ीके सशक्त कविकी विशिष्ट और मर्मस्पर्शी कविताएँ ।

मूल्य तीन रुपये

सर्वथा
पठनीय
एवं
संग्रहणीय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क, प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

युवालेखन : १ —गुजराती

●

[यह एक और नया स्तम्भ है कि हिन्दीका जो युवा-लेखन कथा-कविता और चिन्तन-चर्चाके रूपमें 'ज्ञानोदय' के माध्यमसे समय-समयपर सामने आया है उसके समकक्ष और सापेक्ष अन्य भारतीय भाषाओंमें २०-३० की उम्रके आसपासवाले युवा-रचनाकार क्या लिख रहे हैं। इस स्तम्भके अन्तर्गत हम सभी भारतीय भाषाओंमें-से एक-एकका चुना हुआ युवालेखन प्रतिमास देते रहेंगे। हमारा ध्यान रचना और रचनाकारके प्रतिनिधि होनेपर नहीं है, महत्त्व हमने दिया है हिन्दीमें उनकी प्रस्तुतिपर। हो सकता है, यह युवालेखनका उदाहरण-स्तम्भ-जैसा लगे और हो सकता है कि हिन्दी तथा अन्य भाषाई युवालेखकोंके लिए यह मित्र-स्तम्भके रूपमें भी उपयोगी साबित हो।

आप देखेंगे कि—गुजरातीके तरुण कवि 'इमेज' के मामलेमें अकविताके निकट हैं, वैसे गद्यगीत-जैसी 'ठोस' कविता अब भी वहाँ प्रचलित है और 'हाइकू' शुरू ही हुए हैं। नयी कहानी वहाँ एब्सट्रैक्ट होती जा रही है और 'अ' को छूने लगी है।—सं०]

३ कविताएँ : २ हाइकू : १ गद्यगीत

१–'बीच' पर

रेती के मांसल अंगों की
थपकियाँ दे-दे कर
थक गयी हवा,
थकी, हारी
सो गयी जाकर नारियल के नीचे
सफ़ेदी सब उसकी
चबा गया अन्धकार धीरे-धीरे
करवट बदल कर सो गया समुद्र
जलपरी की कहानी सुनते बालक की तरह
दबे पाँव चलने लगे किनारे
दिशाशून्य फ़लक के खोखलेपन की तरफ़
रास्ते किये पानी के साँपों ने
पत्थरों से चिपकी मुलायमता को खुरच-खुरचकर
आँखें मूँदे
सिमट गया अन्धकार-उलूक
सूरज की फटी हुई खोपड़ी में
साये के
चिकने पसीने के खारेपन को चाटता-चाटता
चाँदनी की हड्डी को दाँतों में दबाये
लाँघ गया क्षितिज की दीवार को श्वान।

—आदिल मन्सूरी
७२२, धलगेदवाड़
अहमदाबाद-१

२–लिपि-विचित्रा

नक्षत्रों की लिपि पढ़ी नहीं जाती
: "कहीं खण्डहर तो नहीं है यह विश्व ?
पृथ्वी है टूटा हुआ सूर्य, चन्द्र टूटी हुई पृथ्वी,
मैं हूँ टूटा हुआ 'मैं'
: कहीं खण्डहर तो नहीं है यह विश्व ?
और सुनाई पड़ता है प्रतिशब्द क्या
उन्हीं शब्दों का बज रहा है युगों से
तलुओं के अनन्त गुम्बजों में प्रतिशब्द

कर्म	कम्म	काम
हस्त	हत्थ	हाथ
अस्ति	ई ई	है

बज रहा है आज युगों से ये सब मेरे तालुओं में
सुनाई पड़ता प्रतिशब्द :
घिसता जा रहा हूँ मैं :
टूट रहे हैं तालु·······
: "खण्डहर तो नहीं, कहीं ?"
: मूल शब्द आख़िर क्या है ?
क्या है ?
करे उत्खनन, उत्खनन, उ त्ख न न ।
"पानी निकला ।"
पानी ?····
पिघली हुई है, पिघली हुई है,
यही, यही है, यही है वह लिपि विचित्रा
जिसे हम रह भी नहीं सकते, बिन पिये
: कहीं नक्षत्र भक्षी दीमक तो नहीं हैं हम ?
: कहीं हमारा खण्डहर तो नहीं है यह
घर, यह विश्व ?

—सितांशु यशश्चन्द्र
एफ० ८ सिक्कानगर
वी० पी० रोड, बम्बई-४

३–एक अबाबिल

घर की तुर्श दीवार
दीवार की रिक्त परछाईं ।
परछाईं की
चीख़ में—
गाँव के सिवान के इक्के-दुक्के
पेड़की हरी-भरी घटा में
एक झील दुबकी-दुबकी
आँख जित्ता पानी
जैसे सुबका-दुबका
हिलता-थिरकता ।

दुपहर-बेला
सोयी घास की छाँह में
घास न दिखे।
परछाईं का रिक्त रूप न दिखे।
भीतर सोये प्राण न दिखें।
एकाएक अकेले-अकेले
कौन झुका फिर
दीवार के पीछे से ?
कौन अचानक घुस गया हटाकर
परछाईं की ओट ?

घर की सूनी झील के किनारे
एक अबाबिल
केसर वर्ण :
आये झील पीने चोंच से
सागर पीने झील से
सूरज पीने सागर से
पीने सूरज की परछाईं
पीने घास की परछाईं
पीने चीख की परछाईं
दक्खिन का आकाश हटाकर
घर की तुर्श दीवार हटाकर
घर की सूनी झील के किनारे
घुस गया हटाकर
परछाईं की ओट।

धूप में झील का एक बिन्दु
डाल से तैर-तैर गिरता पंख
फूल-सा हलका-हलका
हवा बन हिलता-डुलता, हिलता-डुलता
इक्के-दुक्के पेड़की हरी-भरी घटा में
सूरज की सोनिल गन्ध से
जमता-रमता फूल बनकर
एक अबाबिल
केसर वर्ण।
सूरज की झील का बिन्दु
सूरज की झील से पीने
सूरज का अवतार ले उतरता।
सूरज का आकाश-पंछी।
सूरज का प्रकाश-पंछी।
सूरज के घर के अन्दर
सूरज का अवकाश-पंछी
कौन अचानक घुस आया अन्दर
घर की तुर्श दीवार हटाकर
सूरज की झील को,
सूने घर को,
घरकी बूटेदार छाया को,
छायाकी हरी-भरी घटा को
घटा की परछाईं को पूछता :
"तुम ही हो क्या इस घर की
तुर्श दीवार, और है यह
दीवार की परछाईं क्या ?"

—श्रीकान्त शाह
सोधानो डेलो, मनिभव
जामनगर, सौरा

हाइकू

१

सागर अभी तक सन्तप्त है
पृथ्वी के मध्यबिन्दु में छिपे
सृष्टि के सर्वप्रथम निःश्वास से ।

—सुभाष शाह
२२१, घासी रमणी पोळाल
सारंगपुर चकलो, अहमदाबाद-१

२

रोको रात्रि के अश्वों को
कुछ क्षण सूर्य अभी
गहरी नींद में ।

—हरीन्द्र दवे
सम्पादक-'समर्पण',
भारती विद्या भवन, बम्बई-७

गद्यगीत : नेति

मैं जीता हूँ ।
नववधू की तरह जिसके अंग में लावण्य नहीं है । मैं जीता हूँ ।
जीर्ण घड़ीके काँटेकी तरह कराहते रोगी—सा । मैं ?
अभी-अभी उठी थी पदचाप जिसकी वह झंझावात ?
नहीं, अभी-अभी छलक गया जो,
सूर्यको हाथताली दे छटक गया जो,
वह समुद्र ?
नहीं, अभी-अभी जो पथके एक किनारे रुककर सिसक रहा था शिशु
वही क्या ?
नहीं, वह भी नहीं, वह भी नहीं, वह भी नहीं ।

—मणिलाल देसाई
(२४ वर्षकी उम्रमें १९६६ में मृत्यु :
यह रचना : १९६५)

३ कविताएँ : २ हाइकू : १ गद्यगीत

क । हा । नी

…और शास्त्रोंम कहा है: कविता आत्माक कला है.

मधुराय

ट्यूबलाइटके स्विचके निपलके ऊपर अँगूठा दबाते हुए उसे लगा कि इस निपल्से शानदार फ़िंगरप्रिण्ट मिल सकता है; और इस ख़यालके पूरा होते-न-होते उसने देखा कि उसका हाथ वहाँसे हट चुका है। ट्यूबलाइटको रोशनीका एक झटका-सा लगा और कमरेमें एक नाइटलैम्पकी-सी रोशनी फैल गयी। उसने इस मायावी अन्धकारमें कमरेकी शानो-शौक़तको एक नज़र देख लिया: चूनेसे पुती हुई दीवारपर टँगा हुआ उसका बरसों पुराना फ़ोटोग्राफ़, इलेक्ट्रिक हॉयस्ट बनानेवाली कम्पनीका फूलोंवाला कैलेण्डर, पलंगपर कुण्डली मारकर पड़ा हुआ टर्किश नेपकिन, सुतलीसे लटकाया हुआ शीशा और हरे टेबुल-क्लॉथसे ढकी हुई पुरानी मेज़! और भी काफ़ी कुछ था, पर कुल मिलाकर यही सब चीज़ें उसे अपनी लगती थीं। उसे कई बार ऐसे लगा था जैसे इस खिड़कीसे दिखाई देता हुआ शहर और कहीं बहुत दूर दिखाई देती, पता नहीं किस मीनारकी, दो लाल बत्तियाँ उसकी अपनी सम्पत्ति हैं या उस कमरेकी शानो-शौक़तका ही एक हिस्सा हैं।

सिरपर दोनों हाथ टिकाकर, किसी गहरे-से अफ़सोसके पोज़में वह पलँगपर बैठ गया। घर आते वक़्त पार्क की हुई किसी मोटरके

काँचमें उसने अपना मुँह देख लिया था और साथ ही बिखरे बाल भी। पर अब आईनेमें मुँह देखनेकी इच्छा नहीं हो रही थी क्योंकि उसे कुछ ऐसा लगा कि जो मुँह मोटरकी विण्ड-स्क्रीनमें अच्छा लगा था वह शायद आईनेमें इतना ख़ूबसूरत न लगे। बल्कि ट्यूबलाइटको अगर पूरी तरह जला दिया जाये तो शायद कमरेके फ़र्शपर सिरपर हाथ रखकर बैठी हुई यह परछाईं भी इतनी आकर्षक न लगे (जैसी कि इस वक़्त लग रही है)। डर तो दरअसल उसे यह लगा कि इस तरह पूरा न जलाकर वह ट्यूबलाइटकी ज़िन्दगी न कम कर रहा हो। लेकिन उसके विचार पानीमें चलते हुए आदमीकी तरह डाँवाडोल-से हो रहे थे……नौसिखिया आदमीकी तरह आधा रोशन कमरा, बाहर सड़ककी बत्तियोंकी मिली-जुली ढेर सारी रोशनी, दूर-दूरकी खिड़कियाँ……उसने खिड़कीकी जालीको पकड़कर, कोई सेण्टिमेण्टल प्रसंगको खेल खेलनेके-से ढँगसे, दूर-दूर तक देखा। थोड़ी देरके लिए वह आधा दबा निपल, अधूरी जली हुई ट्यूबलाइट भूल गया। सब सो गये थे, शहर-भर।

वह यह सोचकर हँस पड़ा कि शहर कैसा उजबक-सा लग रहा था !

जंगली पौधोंकी तरह उगे मकान, उनकी छतें, दूर कहीं सियाह रंगकी लकीर-सी दीखती हुई एक सड़क—यही सब मिलाकर उसे उजबक-सा लग रहा था। हर मकान अपने अगल-बग़लके मकानोंकी डिज़ायन, रंग आदिका क़तई लिहाज़ न रखकर उग आया था। अपनी खिड़की (के दोनों कोनों) में घुस-घुसकर उसने कई दोपहरें खिड़कियाँ गिननेमें काट दी थीं……टोटल साढ़े छियासठ खिड़कियाँ दिखाई देती थीं। और फिर हर खिड़कीको और खिड़कियोंसे जैसे कोई सरोकार नहीं था। जो खिड़की आधी दिखाई देती थी, वह हमेशा बन्द रहती थी। पर इसके बादके तीसरे मकानकी खिड़की हमेशा खुली रहती थी—जाड़ा, धूप, बारिश, तूफ़ान या ब्लैक-आउट। न तो उस खिड़कीसे रातको कोई रोशनी दिखाई देती थी और न दिनके वक़्त कोई आदमी। लगता था कि कोई किरायेदार जाते वक़्त खिड़की बन्द करना भूल गया था। हँसनेवाली ही तो बात है, उसने सोचा। ख़याल ही ऐसे मज़ाहिया आ रहे हैं। मज़ाहिया—मज़ाक़िया नहीं; 'मज़ाहिया' शब्द ही ठीक है।

इस खिड़कीसे ज्यादासे ज्यादा साढ़े छियासठ खिड़कियाँ दिखाई देती हैं—आँखें मिचमिचाकर उसने और 'पोएट्री' ढूँढ़नेका प्रयत्न किया। उसका बड़ा मन कर रहा था, कुछ मेलोड्रॉमेटिक सोचनेका, कुछ सेण्टिमेण्टल बननेका ! उसने महसूस किया कि कभी किसीसे पूछ-ऊछकर—'शराब कहाँ मिलती है', कितनी पीनी चाहिए' 'उसका नशा कबतक रहता है' वग़ैरह—जान लिया जाये तो ऐसे मौक़ोंपर बहुत काम आये।

मायावी अन्धकार……ट्यूबलाइट आधी खुली थी और उसने उस अन्धकार/प्रकाशको मायावी अन्धकार कहा था। अल्ट्रा वायलेट प्रकाशमें जैसा दिख सकता है, दिख रहा था।

अर्थात्, वह फिर हँस पड़ा, यानी वह खुद जिसे अल्ट्रा वायलेट प्रकाश समझ रहा था, उसमें जैसा दीखना चाहिए, दिख रहा था। विचारोंके पैर कभी-कभी तलीको भी छू लेते थे, फिर भी उसपर-की काईसे फिसल-फिसल जाते थे। उसकी लैट्रिनके किवाड़ोंपर लकड़ीके चौखटे थे। उसके चौखटेके एक कोनेपर सफ़ेद-सफ़ेद कपड़ेको और सफ़ेद करनेवाले साबुनसे धुले हुए सफ़ेद कपड़े-जैसा सफ़ेद—किसी एक कीड़ेका घर था। कई बार उसका मन करता था कि उस सुघड़-सफ़ेद घरमें उँगली डालकर दरवाज़ा साफ़ कर दे। हाथपर सफ़ेद-सफ़ेद-सा जो कुछ थोड़ा-सा लिपट जाये, उसे मसलकर फेंक दिया जा सकता है और फिर एक फूँक मारकर उस कोनेको साफ़ कर लिया जाये। यह प्रकाश भी कुछ वैसा था। बहुत सफ़ेद, बहुत महीन, बहुत नाज़ुक मच्छरदानीकी तरह, बहुत मज़बूत उस 'घर'-जैसा था। उसने सोचनेकी कोशिश की कि उस घरमें रहनेवाले कीड़ेको क्या कहते होंगे? अकसर उस कीड़ेका काम देखकर वह अनजाने ही बोल उठता—इट हैज़ मेड ए नीट जॉब ऑफ़ इट—। सुघड़, उपयोगी, सफ़ेद घर। वह पलंगपर-से उठ खड़ा हुआ।

यह कोई सपना नहीं था और न गहरी नींदसे ही वह जागा था। जैसी हलकी नींदमें वह था, लगभग उसी अनुपातमें हलकी नींद उसके दिमाग़में, आँखमें, शरीर-भरमें थी। जीरो डिग्री सेण्टीग्रेड तक पानीको ले जायें, उसके बाद भी उसे कुछ और ठण्डा करना पड़ता है तभी बर्फ़ बनती है। वह फिर हँस पड़ा···· जाग जानेपर भी कुछ उसी तरह वह सोया हुआ है कि किसी भी मामूली कोशिशसे नींद एकदम उड़ जाये। और, या फिरसे सो भी लिया जा सकता है। ऐसे कितने ही बेमानी ख़याल और भी धुँधले रूपसे उसके दिमाग़में घूमते रहेंगे और जब वह सुबह उठेगा तब उसे बड़ी गहरी नींदसे जागनेका-सा अहसास होगा और तब वह यह सब बेमानी बातें नहीं सोच पायेगा और न ही ऐसी कोई हरकत····

गहरी नींदसे जाग जानेकी-सी ऐक्टिंगके साथ, जैसे वैसा करनेसे गहरी नींद धोखेमें आकर एक बार फिर आ जाये; वह चलने लगा और अपनी इस चालाकीपर ख़ुश होता हुआ ट्यूबलाईटका बटन पूरा-पूरा दबाते हुए कमरेसे बाहर निकलने लगा। ट्यूबलाईटकी रोशनी एकाएक बज उठनेवाले ऑर्केस्ट्राकी तरह जगजगा उठी। उसकी आँखके ऊपर कमरेका असबाब शोरसे एकाएक बजने लगा। पलँगकी चादरके ऊपर पड़ा सिगरेटकी राखका टुकड़ा सारंगीकी झीनी झंकारकी तरह बज उठा। और उसने दरवाज़ेसे ही लौटकर टेबलकी दराज़से एक सिगरेट निकालकर सुलगाया। 'पोएट्री'····मन-ही-मन खखारकर उसने मूल विषय 'पोएट्री'पर सोचना शुरू किया। या फिर 'मेलोड्रामा'। फिर उसका ध्यान सिगरेटके आलसी ढंगसे निकलते हुए धुँएकी तरफ़ गया। अकेले सोनेकी 'पोएट्री' या फिर रातके आख़िरी पहरके अँधेरेसे भीगते हुए शहरकी 'पोए····' भीगते! अँधेरा बरस रहा है और शहर उसमें भींग रहा है····कुछ देर पहले भी कुछ ऐसा ही····, हाँ, 'मायावी

अन्धकार' के बारेमें सोचा गया था। अब उसे वाक़ई एक तरहका डर लग रहा था।

इतना सोच लेनेके बाद वह फिर गड्डमड्ड हो गया। सिगरेटका धुँआ कुछ ऐसे इतमीनानसे निकल रहा था जैसे धुँआ खुद आरामकुरसीपर बैठा हुआ मज़ेसे सिगरेट पी रहा हो! उसे फिर डर-सा महसूस हुआ।

उस कीड़ेसे उसे कोई डर नहीं था और फिर वह कीड़ा काटता-वाटता भी तो नहीं। और फिर भी, वह फिर हँसा, उस कीड़ेसे वह डरता था। उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उस सुघड़ घरमें उँगली घुसाकर उसे साफ़ कर दे।

वह कमरेमें पहले कोनेसे दूसरे कोने तक और दूसरे कोनेसे पहले कोने तक टहलने लगा। पर जैसे-जैसे वह सोचता जाता था, उसकी नींद हलकी, और हलकी होती जाती थी, गो कि उसके विचार उसकी नींदको बोर करते थे। 'पोएट्री'··· या कीड़ा···। उसे खयाल आया कि इस ऊँघती हालतका लाभ उठाकर सफ़ेद झाड़नसे 'घर' को साफ़ कर लिया जाये तो किसी पाप-वापका डर भी नहीं। लेकिन बादमें उसने सोचा कि ये रतजगे आगे जाकर बहुत परेशान करते हैं। एक विचारके तौर-पर—यानी इस वक़्त वह क्या-क्या कर सकता है, इस मसलेपर आते हुए बिना किसी सन्दर्भके विचारोंमें-से एक विचारके तौरपर—उसने खुदकशी कर देखनेका भी विचार किया। 'नींदकी गोलियाँ खायी जा सकती हैं' से लेकर 'इस ऊँची खिड़कीसे कूदा जा सकता है'—कई विकल्प गुज़र गये। इसी बीच वह घरवाले दरवाज़े-तक पहुँच गया था।

उसे वहाँके बल्बकी रोशनी कुछ अजीब-सी लगी। वह उस 'घर' तक हाथ ले भी गया, पर उस कोड़ेका हुनर उसे 'इन्फ़ीरियरिटी काम्प्लेक्स' तक ले जाता था। वह फिर हँसा। अँगूठा बढ़ाकर उस सफ़ेद परतमें घुसेड़नेकी कोशिश भी कर देखी।

और, पता नहीं, कैसे, उसी वक़्त उसकी पलकें ज़बरन ढल गयीं और दो-एक सैकिण्ड बाद जब वह होशमें आया, नींदका बोझ इतना बढ़ गया था कि उसने सो जानेका विचार किया। वह तुरन्त वापस आकर पलंगपर लेट गया। नींदका ज़ोर बढ़ता चला जा रहा था। उसने किसी तरह ज़ोर लगाकर विचार साफ़ कर लिया: यह तो नींद आ गयी वरना वह पटाक्-से उस सफ़ेद किगलीको मसल देता। और इस विचारके तुरन्त बाद एक ऐसा ठहाका उसे आ रहा था कि नींदसे पूरी तरह दख़ल किये हुए दिमाग़में भी उसे हँसीको आने देना पड़ा। धीरे-धीरे उस मानसिक हास्यका ज़ोर ख़त्म होता चला गया और गहरी नींद उसके दिमाग़में बाढ़की-सी तेज़ीके साथ घुस गयी।

४२, गणेशचन्द्र एवेन्यू,
पाँचवाँ तल्ला, कलकत्ता–१३

०

(अनु० : गौरीशंकर कपूर,
पी० २७०, पर्णाश्री पल्ली
बेहाला, कलकत्ता–३४)

[अगले अंकमें बंगला युवालेखन]

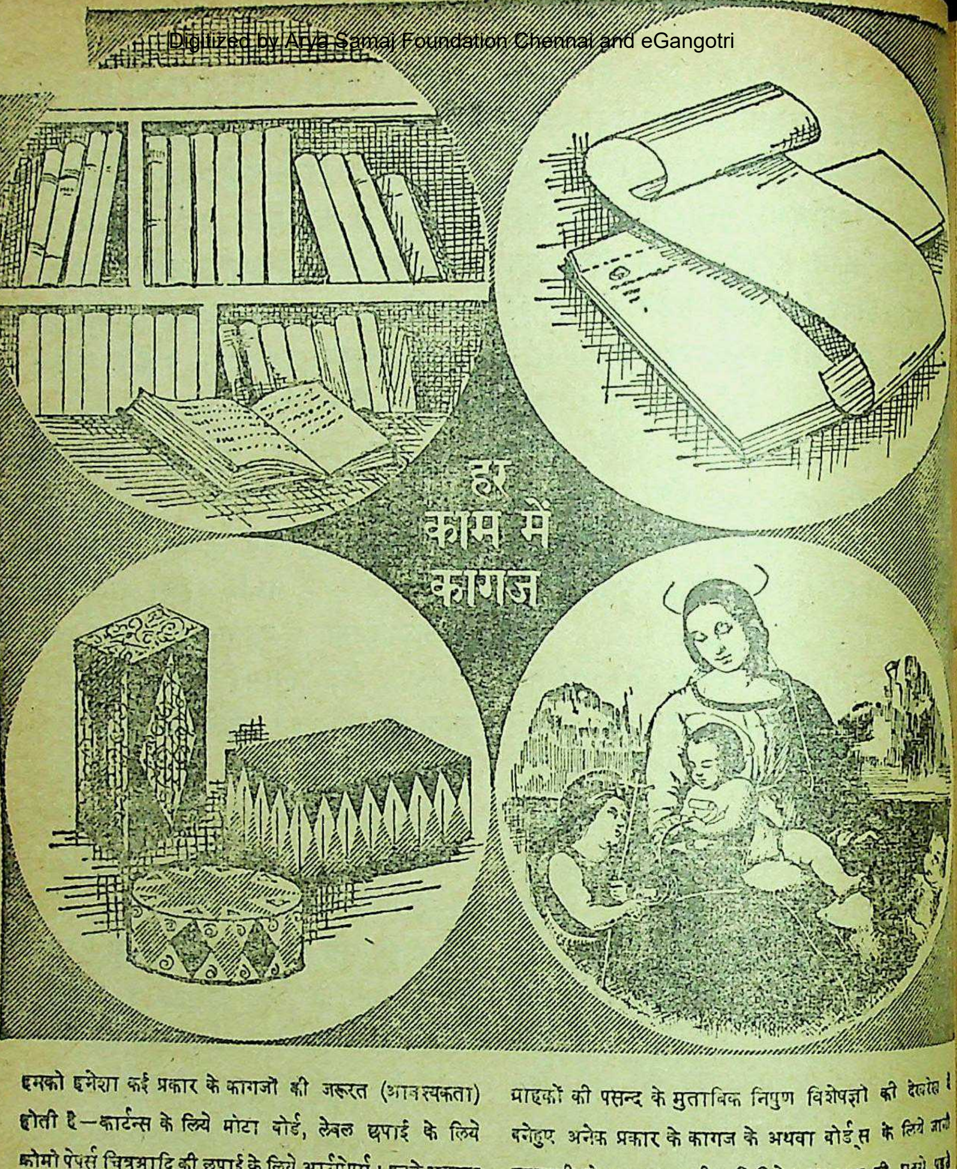

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स।
साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो. कलकत्ता।

[illegible]

कला-संचेतना (यूनानी मूर्ति कला)

पत्थरपर उभरती माँसपेशियाँ....

०

जी० पी० शुभेश आर्य

०

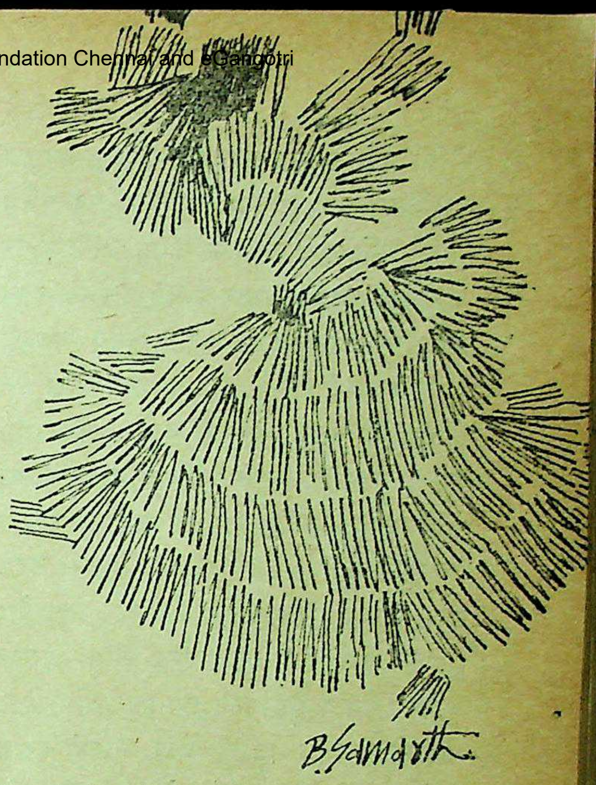

"विश्वात्मा सदैव रंगों और रेखाओंमें बोलती है........हमने जो कुछ सोचा है, जो कुछ अनुभव किया है, वह मरेगा नहीं, वह एक मनसे दूसरे मनमें, एक कालसे कालान्तरमें चित्रित होता हुआ, अनुभूत होता हुआ, प्रवाहित होता हुआ निरन्तर चलता रहेगा।"

— रवीन्द्रनाथ टैगोर

यूनानकी कला न जाने कितनी प्राचीन है, वहाँके अमर शिल्पी, चित्रकार, कला-मर्मज्ञ, मूर्ति-निर्माता, चतुर कारीगर, जिन्होंने अपने अन्तःसौन्दर्यके अनन्त वैभवको अपनी कलाकृतियोंमें बिखेर दिया है, आज इस पृथ्वीपर नहीं हैं, तथापि उनका सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आन्तरिक भावनाएँ इनमें निहित हैं। उन्होंने जड़-पाषाणोंको अपनी श्रम-सिंचित-साधनासे इतना मुखर, इतना सजीव, इतना वास्तविक और इतना जीवनके निकट लाकर खड़ा किया कि आजके वैज्ञानिक युगका मानव उनकी अनुकृति मात्रसे अपनेको धन्य मानता है। युग बीते, और जाने कितने युग बे-रोक-टोक बीतते जायेंगे पर यूनानकी कलाकृतियाँ मानवको आकर्षणका केन्द्र बनी रहेंगी। यदि वहाँकी मूर्तियों, भवनों एवं मन्दिरोंका चिन्तन करते-करते कल्पनाके पंखोंपर बैठकर उन अज्ञात कलाकारोंके संसार तक पहुँचा जाये तो उस संसारमें अनेक कलाकारोंके जीवनकी, कला-देवीकी बेदीपर बलिदानकी कहानी मिलेगी। आज भी वे 'एफ़्रोडाइट्स', 'पियरे पुजेट' तथा 'थ्री फ़ेट्स' यूनानकी रज-कणिकाओंमें खोये हुए फिडियासोंकी तपस्याकी खोजमें हमको एक स्वप्निल-लहरीपर बिठाकर बीसवीं शताब्दीसे सहस्रों वर्ष प्राचीन-कालके द्वारपर खड़ी कर देती हैं।

भारतीय मूर्ति कलासे यूनानकी मूर्ति-कलाकी तुलना करनेपर दोनों कलाओंको पाठक-गण विपरीत दिशाकी ओर इंगित करते

पायँगे। भारतीय मूर्ति-कलामें शारीरिक सौन्दर्य तथा आनुगण्यपर उतना ध्यान केन्द्रित नहीं किया गया, जितना यूनानी मूर्ति-कलामें। यूनानी मूर्ति-कला शरीरके बाह्य अध्ययनपर ही अपनी दृष्टि टिकाकर उसको जीवनके इतने निकटतर लाकर अध्ययनका विषय बनाती है कि लगता है एक भी रक्तवाहिनी शिरा उन मूर्तिकारोंसे ओझल नहीं हो सकी। श्री राधा-कमल मुखर्जीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शोसल फ़ंक्शन ऑफ़ आर्ट'के प्रीफ़ेसमें बड़ी ही उचित टिप्पणीमें यूनानी कलाकी ओर इशारा करते हुए वहाँकी मूर्तिकलाके विषयमें कहा है: "ग्रीक आर्ट सेन्स-बार्न एण्ड सेन्स बाउण्ड रिविल्स इन द इनफ़िनिट ग्रेस एण्ड द परफ़ेक्ट प्रोपोर्शन्स ऑफ़ ह्यूमन बॅडी, आल्सो इन द लॉजिकल सिमेट्री ऑफ़ द टेम्पल ऑफ़ गॉड एण्ड द वासे ऑफ़ होम।"

बिंग क्रासबाईके टेलीविज़न तथा जू० डी० मिंगओके स्वचालित कलोंके युगमें आज मूर्ति-कला पुस्तकीय भाषाका विषय अथवा परीक्षोत्तीर्ण करनेका साधन भले ही दिखाई पड़े पर यूनानके कलाकारोंके उस युगमें इनका महत्त्व कलाकारोंसे भी अधिक था। ईश्वर-कृत प्रतिमाएँ जो पाषाण-खण्डोंकी प्रतिमाओंमें परिवर्तित करनेमें अपनी छेनी एवं हथौड़ोंका प्रयोग कर रही हैं वे थामस क्रेवेनके शब्दोंमें 'मोस्ट हैप्लेस ऑफ़ गॉड्स चिल्ड्रेन' हैं, पर यूनानके शिल्पियोंकी मातृत्वपूर्ण शिल्प-छायामें अनेकों उप-कलाएँ दुग्ध-पोष्य-शिशुवत् यूनानको क्रीड़ा-स्थली बना चुकी थीं। उनकी कला-प्रियताका प्रमाण थॉमस क्रेवेनके शब्दोंमें विचारणीय है। वे कहते हैं: लेट अस मेक नो मिस्टेक एवाउट ग्रीक्स। दे केअर्ड फ़ार मोर फ़ॉर देयर स्टैचूज़ एण्ड रिलीफ़्स दैन् फ़ॉर द मेन हू डिजाइण्ड एण्ड एक्जक्यूटेट देम।"

(पॉकेट बुक ऑफ़ ग्रीक् आर्ट्स)

यूनानके कलाकारोंने बहुमूल्य धातुओंपर अपनी-अपनी कलाकी सिद्धि तो ईसा संवत्से दो सहस्र वर्ष पूर्व प्राप्त कर ली थी। पीतल-को माध्यम बनाकर कलाकी सृष्टि करना तो दिनांक-रहित कलाके पृष्ठोंके भी अतीतकी कहानी है। किन्तु हृदयहीन आक्रमण-कर्त्ताओंने उन मूर्तिओंको अग्नि-अर्पित करके शतघ्नी (बन्दूकें) एवं भुसुण्डी (तोपें) बनाकर अपनी बर्बरताका परिचय दिया। यूनानकी मूर्ति-कलाकी कहानीका प्रारम्भिक पृष्ठ हमें बताता है कि उन्होंने अपनी साधनाका प्रारम्भ ऐसी प्रतिमाओंको बनानेसे किया जिनका सिर बेलनाकार, खड़े शरीरसे ऊपर, निकला रहता था। इन प्रतिमाओंके हाथ शरीरसे जड़तापूर्वक चिपटे रहते थे। नीचे पंजोंके कुछ ऊपर तक वस्त्र बनाये जाते थे। यह सब उसी प्रकार होता था जिस प्रकार मिश्रमें फ़ैरो सम्राटोंके कलावशेषोंमें पाया जाता है। थामस क्रेवेनके अनुसार यूनानकी मूर्ति-कलाकी पूर्वज मिश्रकी मूर्ति-कला है। समय सरिताकी दीर्घ प्रवाहमयी धाराके तटोंपर इन कलाकारोंकी साधनाने अनेक 'कोरोई' तथा 'एप्पाल्लौस'की प्रतिमाओंको जन्म दिया। जैसे-जैसे समयकी सरिता आगे बढ़ती गयी इन कलाकारोंकी साधना अधिक सूक्ष्मता एवं वास्तविकताकी ओर अग्रसर होती गयी, उनके

सहज सूक्ष्म-बुद्धिने मिश्रके सम्मुख-प्रतिमा-सिद्धान्त ('फ़्रॉण्ट पोज़्ड स्टैचूज')में परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। ईसासे पूर्व सप्तम् शताब्दीके चतुर्थ चरणमें उन्होंने संगमर्मरको अपने हाथोंसे स्पर्श किया तथा इनके पूर्वकी मूर्तियोंमें ठवनि (स्थितिका ढंग) का कोई अन्तर नहीं पाया जाता। कोई अन्तर यदि प्राप्त होता है तो यही कि इसके पूर्व पीतलकी मूर्तियोंका वे निर्माण करते थे और अब श्वेत संगमर्मरकी मूर्तियोंका। इस कालकी मूर्तियोंके शीर्ष सम्पूर्ण शरीरसे झाँकते हुए ऊपरको निकले तो हैं ही, साथ-साथ उनके अधरोंपर मुसकानकी छविका वह नर्तन पाया जाता है जो भविष्यमें मूर्ति-कला-विशारद 'पेपलोस' तथा 'कौरोस'की मूर्तियोंमें, तथा ईसा शताब्दियोंके प्रथम सहस्र वर्षों तक कहीं-कहीं दिखाई देता हुआ आया और जो आगे चलकर पुनरुत्थान-कालके अनुपम कलाकार 'लियोनार्दो द विंसी'में आकर समाप्त हो गया।

यद्यपि यूनानकें कलात्मक मूर्ति-निर्माताओंने अपने उपकरणोंका प्रयोग करनेमें यूनानको अपना पूर्वज माना तथापि वे अन्ध-परम्पराके पोषक-मात्र न थे। उन्होंने उस परम्परागत मूर्ति-भंगिमाओंमें परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। इस युगकी मूर्तियोंका एक पैर आगेको कुछ उठा हुआ बनने लगा। शनैः-शनैः उनकी मूर्तियोंके ऊपरसे वस्त्राभरण कम होने लगे एवं शरीरके अध्ययनसे प्रभावित कलाकारोंमें अपनी मूर्तियोंको मानवीय शरीर-रचनाके निकट लानेका प्रयास अधिक होने लगा। उन्होंने मानव-शरीरकी वास्तविकताको चिकित्सालयोंमें नहीं सीखा, मृतक शरीरोंकी अन्त्य परीक्षा करके नहीं सीखा अपितु उनके दैनिक कार्य-कलापोंसे सीखा। विवस्त्र शरीरोंको अध्ययन करनेका सौभाग्य उनको उस समयकी सामाजिक व्यवस्थासे प्राप्त हुआ। उन प्रस्तर-कलाविदोंने व्यायाम प्रदर्शन-स्थलोंमें, सुगठित भुजाधारी सैनिकोंसे, ओलम्पिक क्रीड़ा-प्रतियोगिताओंसे शारीरिक-रचना सीखी, जिसका प्रारम्भ थामस क्रेवेनके अनुसार ७७६ ईसा-पूर्व हुआ। किसी भी कार्य-संलग्न-शरीरकी केन्द्रित मानस भावनाओंको, सुनियोजित मांसल-पेशिओंको तथा मांसके आवरणमें प्रच्छन्न अस्ति-पंजरकी गतिको उन्होंने उस समय देखा जब कि उनका मॉडल 'डिसकस' (चक्र) को आघूर्ण करके (घूम करके) फेंकनेको उद्यत हो रहा था। प्रत्येक प्रकारके कार्य-सम्पन्न करते हुए, युद्धरत दौड़ते हुए, फाँदते हुए, प्रसन्न मुद्रामें, क्रोधमें, आत्माकी अन्तःपीड़ासे प्रताड़ित मुखमण्डलोंको अपनी असामान्य सामर्थ्यसे मूर्ति रूपमें सजीव कर पानेकी क्षमता उन्होंने प्राप्त की। पीढ़ियों तक उनके तपमें नेत्र, हस्त एवं मस्तिष्ककी एकरूपताके प्रमाण स्पष्ट प्राप्त होते हैं। उनकी नियन्त्रित कला-कृतियोंमें समविभक्तांगोंका अस्तिगठन, सन्धिस्थानोंका सन्तुलन उनकी कल्पना-प्रसूत मॉडलोंके कार्योंको सुदृढ़ करती है। यदि पाठकगण उनके वातावरणमें कल्पित मॉडलोंका साक्षात्कार करना चाहें तो उनको विद्यालयोंकी वार्षिक प्रतियोगिताओंमें विवस्त्र-प्रतियोगी, प्रबन्धक-दर्शक नग्न पुरुष-स्त्रियों एवं

बालक-बालिकाओंको कल्पना करनी पड़ेगी और अनेक कलाकारोंको उनका अध्ययन और शारीरिक विशेषताओंका सूक्ष्म निरीक्षण करनेके लिए कल्पित करना होगा। यदि इस प्रकारके संसारकी हम कल्पना कर लें तो प्राचीन कालीन स्पार्टाका आभास हो जायेगा। इतना सब होते हुए भी उन यूनानके कलाकारोंने नग्न रमणियोंको एवं प्रतियोगियोंको सर पीटर पाल रूबेन्सकी भाँति मॉडेल बनाकर नहीं बैठाया। थामस क्रेवेन कहते हैं: "इन स्पार्टा द गर्ल्स आल्सो कम्पीटेड इन द न्यूड; बट द ग्रीक्स स्कल्चर्स हैड नो यूज फ़ॉर एथेलेटिक वूमेन एण्ड सेल्डम यूज्ड देम ऐज़ मॉडेल।"—पाकेट बुक आॉफ़ ग्रीक आर्ट।

३७, बिल्लेश्वरपुरा
प्रेमनगर, झाँसी

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident,
Fidelity, Guarantee, Burglary and all
other forms of Miscellaneous
Insurance Business.

Universal Insurance Building,
Sir P. M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :
P. U. PATEL, B. A., B. COM. (Lond).

एक प्रतिक्रिया

कला-समीक्षकके आमने-सामने

किशोरीलाल वैद्य

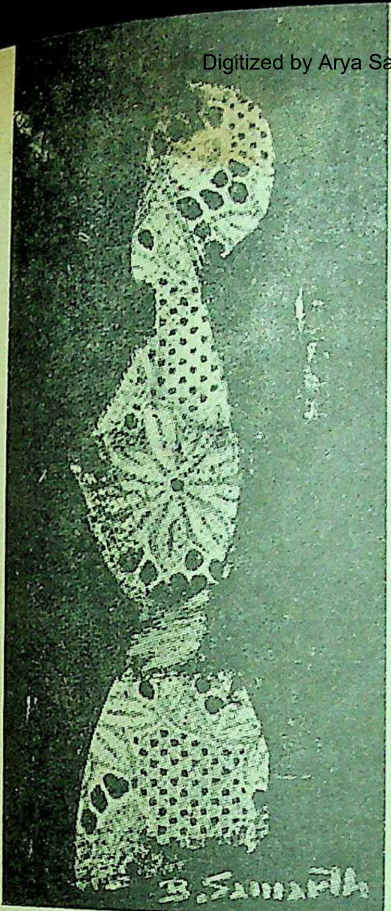

'एक कलाकार : कला-समीक्षकोंके आमने-सामने'—रामकुमारका वक्तव्य सरुचि पढ़ गया हूँ। पढ़नेके बाद लगा कि एक सर्जक-कलाकार कला-समीक्षकोंसे भिड़ गया है, उनके बौद्धिक अस्तित्व और अपने सृजनशील अस्तित्वको वह 'क्रॉस'में देख रहा है। कोई भी कला-समीक्षक अपनी लेखनी उठानेसे पूर्व कला और कलाकारके अस्तित्वको, मान्यता देता है, कलाकारके व्यक्तित्व और कृतित्वको नकारना उसका ध्येय नहीं। फिर भी कलाकार कला-समीक्षकको कलाके विरोधमें कोई 'क्रूसेडर' समझे तो क्या कहिए। आजका कलाकार अपनी स्वतन्त्रताके प्रति पूरी तरहसे सचेत होते हुए भी अपनी कलाके मूल्यांकन ही क्यों, उसके विज्ञापनके लिए भी लालायित रहता है। वह जनतासे विमुख नहीं हो सकता, उसका ऐसा समझना कि उसे अपनी कलाके अतिरिक्त किसीसे कुछ लेना-देना नहीं, मात्र उसके अहम्‌की तुष्टिमें उसका प्रयास है। आजका कलाकार अपने स्टूडियोकी स्वतन्त्रताको अपनी उपलब्धि मान सकता है लेकिन जीवनके विभिन्न आग्रहोंसे वह इतना ग्रस्त रहता है कि जीवन और उसके व्यापारकी कोई प्रबुद्ध व्याख्या देनेमें वह समर्थ नहीं। रंग और कूचीकी स्वतन्त्रता एक बात है, व्यक्तित्वकी स्वतन्त्रता दूसरी बात। और जब सृजनमें जीवन खुलता न हो तो उस सृजनके समक्ष एक प्रश्न-चिह्न लग ही सकता है और जब सृजन प्रश्नात्मक हो तो कृतिगत और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी बात आरोपित लगती है भले यह स्वयं कलाकार ही क्यों न कहे।

कलाकारके वक्तव्यसे स्पष्ट लगता है कि

कला और उसके मूल्योंकी चर्चामें कलाकारका व्यष्टिवादी अहम् आहत हुआ है। वह आवेशमें कला-चर्चा अथवा समीक्षाके प्रति उद्वेलित हो उठा है। वह अपनी सृष्टिके लिए चाहता है कि दूसरे उसे सहज स्वीकारें। यदि कला-समीक्षक कलाकी सृष्टिमें कोई दखल रखता है (जो आजके युगमें सम्भव नहीं) तब तो कलाकार उसके (समीक्षकके) अस्तित्वके प्रति ही चिन्तित हो सकता है अन्यथा कला-समीक्षा अथवा चर्चा-सम्बन्धी उसकी चिन्ता बेमानी है। कला एक चीज़ है और कला-साहित्य दूसरी। दोनोंमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे कोई विरोध नहीं। साधारणतः हम कह सकते हैं कि कला-साहित्य कलाके जीवनकी ऐसी व्याख्या है जिसके माध्यमसे कला जन-जीवनपर उद्‌घाटित होती है। एक सामान्य प्रश्न यदा-कदा उठता रहा है—कला किसके लिए है, कलाकारके लिए, किसी वर्ग-विशेषके लिए अथवा जन-साधारणके लिए? एक मान्यता यह भी है कि कला कलाके लिए ही है लेकिन आजके युगमें यह धारणा भी फ़ैशन पकड़ रही है कि कला केवल उसके सर्जक-कलाकारके लिए ही है। यदि कलाकारकी अन्तिम मान्यताको कुछ देरके लिए ग्राह्य मान लिया जाये तो कलाकार उसके (कलाके) चिर-स्थायित्वके प्रति क्यों आग्रह रखता है। वह अपने युगको नकारता है और साथ ही उससे अपनी कलाके सही मूल्यांकनकी अपेक्षा भी रखता है।

कोई भी कला अपने बल-बूतेपर ही जीवित रह सकती है, कलाकारके निजी आग्रहपर नहीं। पहाड़ी बोलीमें एक कहावत आती है—'भैंस चली ढिगा जो पुंछी क्या बाल देगा?' यदि भैंस कहीं पहाड़ीसे गिरने लगे तो उसे क्या पूँछ पकड़कर बचाया जा सकता है! आज ह्रासोन्मुख कलाके प्रति कलाकारका कुछ ऐसा ही आग्रह है। यदि 'अजन्ता' आज भी आकर्षण रखती है तो वह उस कलाकी निजी श्रेष्ठता है। अजन्ताकी बात तो है ही, यहाँतक कि पहाड़ी कलाके भी किसी कलाकारने नामको अमर करनेका मोह नहीं रखा। इसके विपरीत आज कलाकारका आग्रह है—'हम जो आज हैं, उनकी ओर देखनेमें संकोच क्यों?' ऐसा आग्रह केवल रामकुमारका ही नहीं, पाश्चात्य शैलीके विभिन्न प्रयोगोंका अन्धानुकरण करनेवाले सभी कलाकारोंका हो सकता है। यहाँ पाश्चात्य कलाको नकारना हमारा तात्पर्य नहीं बल्कि किसी हद तक यह समझ आता है कि उनकी कला अनुभूत जीवनसे प्राप्त हुई दृष्टिका ही परिणाम है। कुछ एक कलाकारोंने दुहरी ज़िन्दगीके बोझेको सचमुच ही उतार फेंका है। ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने कलाको जीया है। वैन गॉग थिओको लिखे एक पत्रमें लिखते हैं: 'मैं प्राथमिक रूपसे कलाके लिए जीता हूँ, मेरे लिए स्वस्थ रहना गौण है।' एक जीवन-दृष्टि है यह—जो कलाके प्रति अभिभूत है। यह एक पत्रांश है जो अनायास लेकिन सचेतन रूपसे उसके 'कलाकार' को मुखरित करता है। लेकिन आज हमारे यहाँ जीवनके प्रति सचाईका प्रतिफलन क्यों नहीं हो पाता? यदि आजकी कलामें आधुनिक जीवन-

के बिखरावको बटोरनेका प्रयत्न भी दिखाई दे तो उसे हम कलाकारकी सामयिक अथवा समयोचित दृष्टि मान सकते हैं लेकिन कलाकारके मनकी महज़ उधेड़-बुनको यदि आज हम सहजतासे स्वीकार नहीं कर पाते तो यह प्रबुद्ध स्तरपर हमारी एक मजबूरी है। यह मजबूरी सामान्य व्यक्तिकी भी है और कला-समीक्षकोंकी भी। जब कलाकार और सामान्य दृष्टिके बीच आदान-प्रदानका व्यापार अवरुद्ध हो जाता है तो कलाकार बौखलाता क्यों है ? वह अपनी कलाके माध्यमसे अपने-आपको जमता हुआ न पाकर आत्म-वक्तव्य अथवा स्पष्टीकरण देनेके मोहपर संवरण नहीं कर पाता। फिर वह विश्वास जगानेकी कोशिशमें असहाय-सा यह भी कह जाता है : 'कृपया मुझे ग़लत न समझें।' कला-समीक्षकका ही क्यों, एक सामान्य व्यक्तिका भी यह प्रश्न हो सकता है—'फिर क्या समझें ?' इस प्रश्नके उत्तरमें वह स्वयं 'शब्दों' का सहारा लेता है। यहाँ उसकी कला चुक जाती है। उसके टूटे रंग और रेखाओंकी कृति (अथवा प्रकृति) कुछ भी 'कम्यूनिकेट' नहीं कर पाती। फिर संवेदनाके स्वर भी उभरते हैं, कोई 'कला-समीक्षक' जब कहीं अपनी ज़बानी उस तथाकथित आधुनिक कलाकारकी बात समझाने आता है तो उसकी इस बातको (जो किसी पत्र अथवा पत्रिकाके माध्यमसे निकलेगी) वह नहीं नकारता। फिर वह इण्टरव्यू भी देता है। अपनी कला, जिसके सृजनमें वह समझता है उसके दिमाग़ और जिस्मके हर तन्तुने तथा जीवनके हर सचेत क्षणने योग दिया है, की अखबारोंमें निकली प्रतिकृतियोंको वह इतनी ही सरुचि देखता है जितनी कि अपनी कृतिको। उस रंगीन कृतिके रंग और रेखाओंकी सार्थकता और विस्तार प्रतिकृतिमें तिरोहित हो जायेगी, यह जानते हुए भी वह प्रतिकृतिके अखबारी प्रकाशनको भी सन्तोषकी दृष्टिसे देखता है। इतना ही नहीं, जिन आधुनिक कलाकारोंकी कृतियोंकी प्रदर्शनी लगा करती हैं, वे सबसे अधिक उनकी समीक्षाके प्रकाशनके प्रति उत्सुक देखे गये हैं।

जहाँ कलाके अतीतका प्रश्न है भारतीय सन्दर्भमें तो कमसे कम वह 'मृत' नहीं। वह एक जीवन्त थाती है। यहाँ किसीके दृष्टिकोणपर अंकुश लगानेका प्रयत्न वांछनीय नहीं लगता। किसीको वह इतिहास और संस्कृतिकी जीवन्त थाती मालूम दे सकती है और किसीको मृत अतीतकी। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि सैकड़ों और हज़ारों वर्षोंके अन्तरालपर भी जो कला आज रुचिका विषय है वह उसकी निजो विशेषता है। आजका कलाकार जब कोई सार्थक योगदान देनेके अभावमें भी अपने प्रति सचेत है तो वह अपने अस्तित्व अथवा व्यक्तित्वकी मान्यताके लिए कितने ज़ोरसे कहता है यह उसीके शब्दोंसे प्रकट होगा—'आखिर कब आप हमारी चर्चा करेंगे ?' यह कलाकारके अन्तर्विरोधका स्वर है। उसकी कला आत्मविरोधकी कला है जिसके लिए वह मान्यता चाहता है और वह भी जन-सामान्यसे। मान्यताकी यह भूख उसके कला-चिन्तनसे अलग रह

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चो ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ । अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं । माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

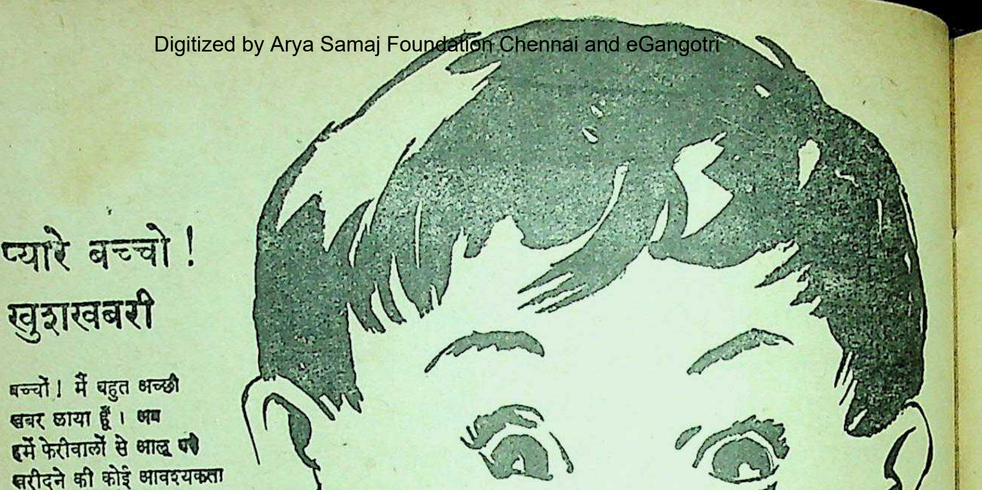

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

इन गोलियों को वेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

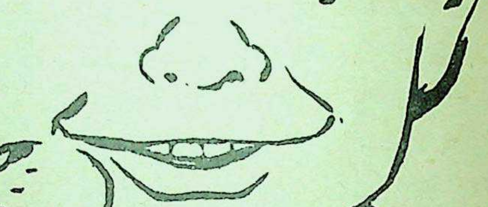

निश्चय रहे कि आप ने
हनुमान वनस्पति प्रयोग किया ।

निर्माता :—
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

IPC/RI : 407

सकती है ऐसा सोचना साधारण मनोवैज्ञानिक तथ्योंको अस्वीकारना होगा ।

जहाँ लेखकका यह कहना है कि 'चित्रको निहारता हुआ चित्रकार कविता और संगीतकी बात नहीं सोच सकता । वह सिर्फ़ रंगोंमें रमा होता है और लकीरोंसे घिरा ।' उसकी यह बात ऊपरी तौरसे सही मालूम देती है लेकिन कुछ कलागत ख़ूबियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें हमने काव्य, चित्रकला, संगीत, स्थापत्य सभीमें समान रूपसे स्वीकार किया है—कलामें 'लय' ऐसा ही एक गुण है । केवल रंगोंमें रमे रहने और लकीरोंसे घिरे रहनेपर ही कलाकार कलाको जन्म नहीं दे पाता, वह सचेतन रूपसे एक 'क्रिएटिव प्रोसेस'से गुज़रता है जिसमें उसे अन्ततः कुछ सार्थक देना होता है, भले ही वह हमेशा विशिष्ट न हो । यहाँ वह 'लय' की उपेक्षा नहीं कर सकता । 'लय' के निर्माणमें अथवा लयात्मक कृतिके निर्माणमें कलाकारके हाथ सधे हुए होते हैं और उसका मानस् अपने-आपसे उसमें सहयोग देता है । यहाँ कलाकार सृजनकी पीड़ा और अन्ततः उससे उत्पन्न आनन्द दोनोंको ही भोगता है, फिर चाहे वह कवि हो, अथवा संगीतज्ञ, चित्रकार हो अथवा मूर्त्तिकार ।

इन समस्त प्रश्नोंके परिवेशमें एक प्रश्न सहज जन्म लेता है कि आज कलाका स्वरूप क्या हो । वह कला जीवन्त नहीं जो महज़ पुरातनकी अनुकृति हो। फिर ? आज हमें ज़रूरत है ऐसी कलाकी जिसमें अतीतका समुचित गर्व-गौरव हो, वर्तमानका एहसास हो और भविष्यके प्रति प्रेरणा हो । ऐसी कला जिसमें अपनी मिट्टीकी महक नहीं, न इधर ही सम्मानित हो सकती है, न बाहर ही; वह आज भी उपेक्षित है, कल भी उसका मूल्यांकन नहीं हो पायेगा ।

साबेर कॉटेज,
संजौली, शिमला—६

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक
'शृङ्गार'
प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ● सम्पादिका : लावण्यप्रभा
■ विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
■ स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
■ रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
■ कविताएँ तथा सुन्दर गीत
■ महिलाओंके इण्टरव्यू
■ गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएँ, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ ।
मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे
१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली-७
फ़ोन नं० : २२७३००

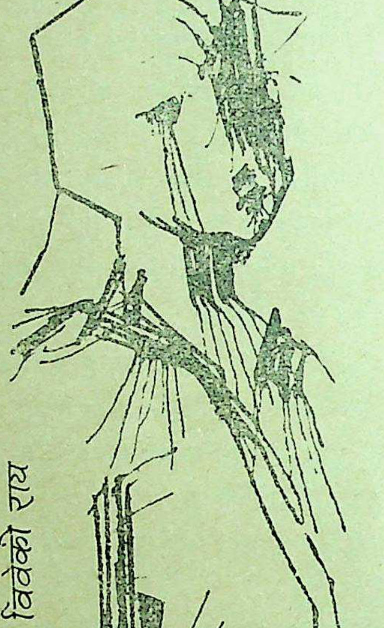

खेदू

विवेकी राय

क्या आप १४ वर्षके बालकके समान टहल उठानेवाले किसी अस्सी वर्षीय नौकर-की कल्पना कर सकते हैं? यदि नहीं तो आइए मेरे साथ, जिस प्रकार संसारमें ईश्वर सत्य है उसी प्रकार छात्रावासमें खेदू सत्य है। जिस प्रकार संसारमें सर्वत्र हवा मौजूद है उसी प्रकार छात्रावासमें खेदू प्रत्येक समय प्रत्येक स्थानपर मौजूद है। किसी कोनेसे आवाज़ दीजिए, खेदू बोल देगा। वह दिखाई कहीं नहीं पड़ता है, परन्तु ज़रूरत पड़नेपर सामने हाज़िर है। निःशब्द शून्यकी तरह आता है और काम कर चला जाता है। उसकी एक मौलिक शैली है। उसके अस्तित्वका बोध हमें तब होता है जब उसके द्वारा हमारी आवश्यकता पूरी हो जा चुकी होती है।

वह लगभग आधे सौ लोगोंका सेवक है। अथक सेवा करता है, चुपचाप, बिना कुछ कहे-सुने। घटाकी तरह छाया नहीं रहता है, सरिताकी तरह बहता रहता है। इच्छा होते ही दीख जाता है। वह पानी भरनेके लिए सुराही लेकर लपकता चला जा रहा है, वह झाड़ू लिये किसी कमरेमें हेल रहा है, वह सायकिल लिये हवा कराने जा रहा है। बिला नागा आयेगा। सुबहसे खड़ा है तो दिन-भर खड़ा है। बैठन्ना नहीं जानता। सूरजकी तरह, हवाकी तरह, साक्षात् प्रभुकी तरह सतत खड़ा है, सेवामें लीन है। पुराण-पुरुषकी तरह, श्वेतकेशी, मज़बूत काठीका, पूरा पोढ़, सरल और भोली पीढ़ीका अस्सी वर्षीय सेवक।

एक दिन आधी रातवाली ट्रेनसे आया।

यह देखकर भारी हैरानी हुई कि छात्रावासके मुख्य द्वारका फाटक खुला है। ऐसा कभी नहीं होता। ठिठककर खड़ा हो गया। बात कोई मनमें सनसना उठी। अवश्य ही खेदू स्वस्थ नहीं है। जैसे सूरज रोज़ निकलता है, जैसे तारे रोज़ चमकते हैं और जैसे मन्दिरमें आरती रोज़ होती है उसी प्रकार यह फाटक भी रोज़ रातमें बन्द हो जाता है। इस प्रकार खुले रह जानेका अर्थ गम्भीर हो सकता है। उसका सम्बन्ध बन्द-करनेवालेके कुशल-क्षेमसे है।

सुबह मालूम हुआ कि खेदू बीमार है। गहरा बुखार है मगर दवाके नामपर बिदक उठता है। कहता है, "अब अच्छा हो रहा हूँ।" दो दिन बाद थहराते पाँवसे हिलता-डोलता, झाड़ू लिये, इधर आता दिखाई पड़ा। लगा कि उसके डरसे बुखार सरक गया। लोग मना कर रहे हैं—"खेदू, चुपचाप पड़े रहो, आराम करो, पुराना शरीर हो गया, तिसपर भी बुखार, पूरी तरह ठीक हो लेनेपर ही काम-धामकी चिन्ता करो।" खेदू काहेको माने। कहता है, "काम करनेसे रोग छूटता है। बैठे नहीं रहा जाता।" यह बात आजके कामचोर युगमें विचित्र लगती है। वह उस अँगरेज़ी मुहावरेसे परिचित भले न हो परन्तु सचमुच काम करना उसकी पूजा हो गया है और शरीर-श्रम उसका स्वभाव।

इसीलिए उसका सबसे बड़ा संकटकाल तब होता है जब छुट्टियोंमें छात्र घर चले जाते हैं। जब काम नहीं रह जाता। खेदूके लिए दिन पहाड़ हो जाते हैं। एक अवकाशमें सन्ध्या समय जब मैं छात्रावासपर पहुँचा, देखता हूँ कि बरामदेके मुख्य द्वारके बीचमें, हॉलके सामने सीढ़ियोंपर पैर लटकाये, दोनों घुटनोंपर हाथ टिकाये इस प्रकार खेदू बैठा है है जैसे फ़ोटो खिचवानेके लिए बैठाया गया हो। जैसे अपने आपमें खोया कोई बालक, बिलकुल भोला बालक, निर्विकल्पक ज्ञानकी तरह, प्रकृतिकी प्रतिकृतिकी तरह, मनुष्यताके पौदेकी तरह, मौन, बैठा है। आगे घासके मैदानका आँगन, सुनसान, और यह उसका मूक मुग्ध दर्शक! हम-आप उस प्रकार नहीं बैठ सकते। प्रयास करके कोई उस विरामकी मुद्राको नहीं अपना सकता। वह सहज शान्तिकी मुद्रा, कर्मयोगीकी सरल समाधि-मुद्रा और चेतनाका आराम-ठाट! वह एक पूर्ण देश-काल बैठा है और खेदूके रूपमें साक्षात् छात्रावास बैठा है।

टोकनेपर खेदूका परिचित उत्तर—"कुछ काम नहीं, बहुत उदास लगता है!" एक लम्बा 'स····ला····आ···म' दाग़कर खेदू काममें जुट जाता है। मालूम है कि वह पहले कमरा खोलकर झाड़ू लगायेगा। कुरसी और बिस्तर आदिपर-से धूल साफ़ करेगा। घड़ेमें पानी लायेगा। गिलास-लोटा साफ़ कर देगा। चौकी बाहर निकालेगा, तत्पश्चात् होटलसे भोजन लानेके विषयमें पूछेगा।

इतने कामके लिए कुछ नहीं बोलना है। बँधा-बँधाया कार्यक्रम है। कोई अन्य सेवा है तो उसके लिए कहना पड़ेगा। ऐसे अवसरपर उसकी प्रतिक्रिया कुछ रूखी लगती है। कोई काम कहें, एक ही उत्तर मिलता है, "काहे नहीं

कर देंगे !" उसकी रुखाईका खयाल मत कीजिए, उसकी चुप्पी और गम्भीरतापर मत जाइए, समझ लीजिए काम हो गया ।

लोग उसे 'दादा' कहते हैं । मैं 'चौधरी' कहता हूँ । खेदू दादा, ज़रा सायकिलका पंचर सटवा लाओ । 'काहे नहीं सटवा लायेंगे ।' खेदू दादा, ज़रा जूतेमें पॉलिश कराते आना । 'काहे नहीं करा लायेंगे ।' खेदू दादाने सायकिलके साथ जूते भी ले लिये । लौटकर आते ही किसी ओरसे तेल लानेकी फ़रमाइश आ रही है, कोई पानी चाहता है, कोई चाय मँगा रहा है तो किसीके कपड़े धोबीके यहाँसे लाने हैं । अनेक काम, मगर क्या मजाल कि कोई काम भूल जाये । जिस क्रमसे काम कहा गया है, उसी क्रमसे चुपचाप हो जायेगा । रत्ती-भर भी जान-बूझकर न टरकानेकी प्रवृत्ति और न आलसी ।

इस प्रकार दो टाँगें भोजनालयसे कुएँ तक, कमरेसे सड़क तक और बाज़ारसे दूकान तक अनवरत घसिटती रहती हैं । सुबह ६ बजेसे रात ११॥ बजे तक, बिना जूता उसके कठिन पाँवोंकी खरखराहट फ़र्शपर गूँजती रहती है । कमरा नम्बर ६ के सामने आया तो कमरा नम्बर २ तक आहट मिल गयी । परिचित खरखराहट और उसके परिचित वेष ! एक लुंगी घुटने तक, पुछटा खोंसे हुए, एक फटी गमछो, शेष बदन प्रायः नंगा, जाड़ेमें एक सूती बण्डी, जूता कभी नहीं, दाढ़ी प्रायः बढ़ी हुई, बड़ी-बड़ी सफ़ेद मूंछें, घनी और दोनों तरफ़ घेरे हुए, ताँबे-सा रंग, कभी रूखा कभी चिकना, चौड़ी छाती, मुलायम पिण्डलियाँ, पैर दृढ़, बिना बेवाई फटे, लम्बी-लम्बी सुदृढ़ भुजाएँ, प्रशस्त मुँह-माथ, बालकोंकी-सी चितवन, पानीकी तरह बोली, सरल और प्राकृतिक हँसी, स्वच्छ आँखें, कपटहीन परिचय एक मुक्त व्यक्तित्व, दाँत सभी साबित और दुरुस्त, सुरती खानेके कारण किंचित् गन्दे, हँसनेपर चमकते हैं, सुईमें अभी डोरा डाल लेनेवाली आँखें, आँखोंमें प्रेम, प्रेममें हँसता एक आदमी, लेकिन खेदू कभी खुलकर नहीं हँसता, हँसीकी हलकी झलक, बत्तीसी खिल उठती है, उल्लासका मशाल जल उठता है, फिर चट बुझ जाता है । खेदूके पास मानो एक ही सम्पदा है । बिजलीकी तरह चमक जानेवाला मौन विहास । उसे वह दुनियाकी नज़रोंसे छिपाकर रखना चाहता है । जैसे वह कोई अलौकिक वस्तु है और दुनियाकी छाया पड़ते ही उसके विकार-ग्रस्त हो जानेकी सम्भावना है । इसीसे वह उसे बरबस खोलते-खोलते भी बलात् समेट लेता है ।

मैंने कहा, "हमारा खाना होटलसे ले आना !" फिर बहुत अनुगृहीत करनेके स्वरमें कहा, "तुम भी खा लेना, लो पैसे ।" खेदू कुछ नहीं बोलता है । चला जाता है । किन्तु क्या उसने मेरा प्रस्ताव मंजूर कर लिया ? हरगिज़ नहीं । मुझे अपनी भूल मालूम हो गयी । मेरा बड़प्पन उसके सामने बौना हो गया । उस जीवको इस प्रकार अनुगृहीत नहीं किया जा सकता है । वह भोजनका लोभी नहीं । उसके दीर्घायु होने और इस जर्जर आयुमें इतने श्रम-सिद्ध होनेके रहस्योंपर विचारते समय ये बातें ध्यानमें आती हैं । कई

बार कहकर, ज़ोर देकर, लालच दिखाकर, और स्वादका विवरण देकर हम थक गये। वह होटलमें नहीं खाता है। एक और रहस्य एक दिन खुला। वह घी अथवा देशी घीसे बनी हुई चीज़ें अथवा उससे स्पर्शित भोजन नहीं करता। पूड़ी, पूआ, मोहनभोग, घीकी बनी मिठाई, घी पड़ी दाल-रोटी वह नहीं छुएगा। वह आजीवन अघृत-स्पर्शी और अस्निग्ध-भोजी रहा। चर्चा छिड़ती है घीमें ताक़त होनेकी तो वह विरोधमें फड़क उठता है। एक दिन उसने कहा, "कोई घी खानेवाला जवान आकर हमसे पंजा तो मिला ले!" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उसकी चुनौतीमें दम है। नित्य देखता हूँ कि वह अकेले भारी-भारी काठकी वज़नदार चौकियोंको फूलकी तरह उठा-उठाकर कमरेमें, बरामदेमें, आँगनमें और यहाँ-वहाँ ले जाता-ले आता है। ऊँची सीढ़ियोंपर भी लिये-लिये एक विशेष ढबसे चढ़-उतर जाता है। वह चौकियोंको लम्बाईमें खड़ा कर पीठपर उठा लेता है। पूरा शरीर चौकियोंकी आड़में छिप जाता है और दूसरी ओरसे देखनेमें ऐसा लगता है कि चौकियाँ स्वयं तिरछे खड़ी होकर चल रही हैं। छात्रावासमें यह उड़न-चौकियोंका जादुई दृश्य गरमीके दिनोंमें अधिक दिखाई पड़ता है। यदि कोई दयावश हाथ लगाकर सहायता करनेका प्रस्ताव रखता है तो वह कुछ नहीं बोलता, जैसे उसे प्रस्तावकके ऊपर ही दया आ रही हो।

सावनकी बात है। पानी थम गया था और मैदानमें घासपर कचबच पसरा हुआ था। पुरवा हवा चल रही थी। सन्ध्याके आसमानपर घटा छायी थी और खेदू खड़ा था। मनोरंजनकी मुद्रामें मैंने कहा, "यदि कोई होता तो यह कबड्डी खेलने लायक़ मौसम ख़ाली नहीं जाता!" फिर क्या था, उस बूढ़े काठने एक जवान उछाल ली और नीचे मैदानमें उतरकर पैंतरेपर आ गया। "तो आइए न, एक-एक हाथ हो जाये।" उस अचिन्त्य स्नेह-चुनौतीकी मैंने मन-ही-मन ख़ूब प्रशंसा की। एक मिनिटका खेल था। मालूम था कि मुझे वास्तवमें कबड्डी नहीं खेलनी है और वह भी इस समय नाटकका एक ज़िन्दा पात्र-भर है। पार्टमें कितनी ख़ूबसूरती रही! तब मैं न अध्यापक था और न वह नौकर। हम दोनों सामान्य मानवताके एक ही बिन्दुपर थे। कोई दीवार नहीं थी। खेदूका पैंतरेपर वाला वह रूप सर्वथा अनूप और दुर्लभ था। वह मुक्त भावसे एक क्षणके लिए अखाड़ेमें उतर गया था। सेवक-वृत्तिका कृत्रिम-आच्छादन सहज ही झड़ गया था। दूसरे समय सिकुड़ा-सिमटा रहनेवाला वह उस समय फैल गया था। छाती फूल उठी थी, भुजाएँ फड़क उठी थीं, आँखें फैल गयी थीं, कोई आदिम सोया संस्कार अपने ऊर्जस्वित रूपमें भीतर फुंकार उठा था और वह ढलता शतायु वृद्ध उस समय उगता तरुण हो गया था। हाय, वह क्या खाता है कि इस आयुमें ऐसा स्वतः-स्फूर्त है? हम चाय, पान, सिगरेट, आमलेट, समोसे, फल, चटनी और नाना प्रकारके जूस आदिके रूपमें युगकी दुर्लभ वस्तुओंको लेनेवाले नाहक गर्व करते हैं! न तन, न

मन सावित-सुरक्षित है। बहुत खा-पीकर हम लोग वास्तवमें कामचोर हैं। बहुत शरीरकी साज-सम्भाल करके वास्तवमें हम लोग रोगी हैं और बहुत पढ़-लिखकर ज्ञानकी गठरी लिये वास्तवमें हमलोग कुण्ठाग्रस्त, भग्नाश और क्षुब्ध हैं। यह रूखा-सूखा खानेवाला, शीत-ताप सहनेवाला और अकृत्रिम जीवन बितानेवाला जीव वन्द्य है। इसके भोले भाव स्पृहणीय हैं। हम उसका अनुकरण कर सकनेमें भी असमर्थ हैं। हमारे हाथ-पैर संस्कारोंकी बेड़ियोंमें जकड़े हुए हैं। हमारी आवश्यकताओंका मुँह सुरसाका मुँह है। हम रूखा-सूखा खाकर ज़मीनपर तो लेटनेसे रहे।

उस चारु चटाईको जिसपर वह रातमें सोता है हसरत भरी निगाहोंसे देखता हूँ। किसी प्रदर्शिनीमें वह भले ही न रखी जाये परन्तु मनकी प्रदर्शिनीमें वह सदा बिछी हुई है। उसका रंग सोनेका, उसका रूप उस मोटी अनावृत्त पीठके समान जो नंगी चारपाईपर पड़ रहनेके कारण बिनावटके चिह्नोंसे चिह्नित है। कस बिनावटवाली यह गुदगर चटाई न जाने किस खरकी बनी है जो घिसनेका नाम नहीं लेती। सुबह ५ बजे वह बण्डलाकार होकर दिन-भर न जाने कहाँ गुप्त रहती है। रातमें ११ बजे कहीं भी ज़मीनपर पड़ जाती है। आदमीकी लम्बाईसे कुछ छोटी, खूब पवित्र और मनभावनी! उसपर शयन साधुताका शयन है। जब पूस-माघकी शैत्य-सनसन रातोंमें हमलोग खिड़कियोंका खुला रहना भी बरदाश्त नहीं कर सकते वह इसे डसाकर बाहर बरामदेमें नींद लेता है। जब वह ऐतिहासिक शीत-लहरी (सन् १९५८) चली थी जिसमें ठण्डकके मारे पेड़ तक उकठ गये थे तब भी खेदू उसी प्रकार बरामदेमें चटाई बिछाकर पड़ा रहा। मन शीत-ताप नियन्त्रित है तो तनको कैसे कष्ट हो? वास्तवमें वह काम करके खानेवाला एक नये क़िस्मका बिना शास्त्र-ज्ञान-गठरीके तितिक्षु निर्भार, अहंशून्य भृत्य महात्मा है।

कभी सोचता हूँ कि शास्त्र किंवा धर्म-ग्रन्थोंमें प्रभुके जिस दीन रूपके विषयमें चर्चा की गयी है यह वही है क्या? व्यावहारिक रूपमें वह एक मामूली आदमी, सेवक, समाजकी जूती और ग़रीब है, परन्तु उसके मुखपर जो दीनबन्धुत्वका निश्छल सारल्य इन्द्रधनुषी आभा बिखेरता रहता है वह कुछ और सोचनेके लिए विवश करता है। हम सबके भीतर निर्मल शिवत्व अथवा ब्रह्मत्व है। उसे हम लोग संसार-भावके कल्पषसे आच्छादित कर देते हैं। हमारा असत्याश्रित दम्भ, कपट, विकार, विषय-सेवन और देह-भाव हमें केन्द्र-च्युत कर देता है। जिन्हें अपनी विशिष्टता और बड़प्पनपर गर्व है वे किसी-न-किसी प्रकारके चोर हैं। कमसे कम काम करके अधिकसे अधिक हथियाना चाहते हैं। हम एक-न-एक मुखौटा लगाये हुए हैं। हम वही नहीं हैं जो बाहरसे दिखाई पड़ते हैं। हम सुख-सुविधाओंके बेईमान व्यवसायी हैं। हम सीधे, सरल और निष्कपट नहीं रह गये, फिर मुखपर वह पवित्र सरलता आवे तो कहाँ-से? जीवनका सम खो गया। चतुर्दिक् विप-

मता है। हम शरीर-श्रमको छोटा मानते हैं। इस नश्वर शरीरको ही सर्वस्व मानकर खूब बनाते-बनाते हैं। शीत न लग जाये। लू न छू दे। यह विटामिन खायें, वह दवा पियें और जैसे-जैसे इस माटीको सँवारते जाते हैं वैसे-वैसे भद्दी होती जाती है। ६०--७० तक पहुँचते-पहुँचते शरीर गलकर माड़ हो जाता है। हम घूर हो जाते हैं। मुँहपर मकड़ाजाल उभड़कर संसारकी कालिख पुत जाती है। खूब बने !

दूसरी ओर खेदूका दीन किन्तु सदाबहार, जर्जर किन्तु प्रफुल्ल शरीर देखता हूँ। जबसे देखता हूँ वैसा ही देखता हूँ। वह बहुत ठाटसे बयान करता है, "जिन बाबू लोगोंको यहाँ छात्रावासमें रहते हुए गोदमें खिलाया वे आज हमसे भी अधिक ढल गये। मुलाकात होती है तो कहते हैं, अरे खेदू, तूँ तो अभी जैसेका तैसा सट्टा-पट्टा बना है। अब तो हम लोग ही उलटे तुम्हारे पुरखेकी तरह लगते हैं।" यह खेदूकी प्रिय चर्चाओंमें-से है। एक-एक सेवित बाबू लोगोंका नाम ले-लेकर मौजके साथ बात करता है। इस जनपदके उन अगणित लोगोंको, जिनमें अधिकांश वकील हैं, जिन्होंने इस छात्रावासमें रहकर अध्ययन किया, वह अच्छी तरह जानता है। वकील लोगोंमें-से एक-एक सज्जनके नाम लेकर वह कहता है, "अरे, अमुक बाबूकी तो मैंने बचपनमें खूब देखभाल की है। बहुत नटखट थे। वे अमुक बाबूके साथ अमुक नम्बरके कोठरीमें रहते थे।" किसी प्रसिद्ध वकीलका नाम सामने आता है तो वह उत्साहके साथ कहता है, "अरे, फलाँ बाबू? उनको तो धोती पहननेका भी शऊर नहीं था। मैंने सिखलाया!" वास्तवमें खेदूकी सेवाओंकी गली ऐसी सौभाग्यशालिनी रही कि उससे होकर गुज़री प्रतिभाएँ ही इस जनपदकी लब्ध-प्रतिष्ठ प्रतिभाएँ हैं। अभी भी वे लोग खेदूको पहचानते हैं। मगर यह पहचान रास्ते-घाटकी है। वह कभी कोई काम लेकर किसीके पास नहीं गया। वह क्यों जाये? वह छात्रावासकी मठियाका अटल गुमनाम महन्थ है जिसके पास सभी आते हैं! उसे सबकी याद है, यही क्या कम है?

इसे अद्भुत चमत्कार कहना चाहिए कि खेदूकी स्मरण-शक्ति ग़ज़बकी है। एक युग हुए किसी व्यक्तिने जीवनके कुछ वर्ष इस छात्रावासमें बिताये। मिलनेपर खेदू न केवल नाम, कमरेका नम्बर और उसके पार्टनरका परिचय आदि बता देगा बल्कि सम्बन्धित कुछ घटनाओंका उल्लेख भी वह इस प्रकार करेगा मानों गत वर्षकी घटनाएँ हैं। लोग दंग रह जाते हैं। हमें तो वर्तमान समयके छात्रोंमें-से ही अधिकांशके नाम ज्ञात नहीं हैं। परिचय और गाँव-घरकी जानकारी तो और कम। दो-तीन वर्ष बाद और भी पहचान फिसल जाती है। उधर खेदूके अन्तरप्रदेशमें सब सतत जगा हुआ है। शहरमें कोई ऐसा व्यक्ति आया जिसे कहीं रहनेका उपयुक्त ठिकाना नहीं है और कभी वह छात्रावासमें रह चुका है तो वह खेदूके सामने उपस्थित होता है। उसे अपना परिचय देना पड़े इसके पूर्व ही खेदूकी सलामीका परिचित गोला दग जाता है। ज़िलेका भूगोल

भले न मालूम हो परन्तु खेदूको उन गाँवों-का नाम ज्ञात है जहाँ-जहाँके बाबू इस छात्रावासको सुशोभित कर चुके हैं। अपढ़ होनेके कारण खेदूको सन्-संवत्का ज्ञान नहीं है, पर इतना अवश्य मालूम है कि इतने वर्ष पूर्व अमुक बाबू यहाँ पढ़ता था। उसका मस्तिष्क एक बृहत् रजिस्टर है जिसमें इस छात्रावास-का समस्त इतिहास, दाखिला-खारिज़ा और छात्र-परिचय स्पष्ट अंकित है।

उसकी इस अद्भुत स्मरण-शक्ति, उसके स्वस्थ-सबल दीर्घ जीवन और उसकी निरालस कर्मठताका क्या रहस्य है? जीवन शहरमें बीत गया परन्तु सिनेमा कभी नहीं देखा। एक बार रामलीला फ़िल्म आयी। बहुत ज़िद की गयी। पैसा देनेको कहा गया। साक्षात् भगवान्के दर्शनका लालच दिलाया गया परन्तु एक न चली। उसने कहा कि सिनेमा वाला पैसा हमलोग दे दें तो बाज़ारसे वह अपने खाने-पीने लायक़ वस्तुएँ खरीद लेगा। उसकी दृष्टिमें सिनेमा देखना बैठे-बैठे फाँसी पड़ना है। हो सकता है, इस विरक्तिके पीछे कोई इतिहास हो। वह अपने व्यक्तिगत जीवनके बारेमें कम बात करता है और कोई दुःख नहीं रोता है। निराशा और असन्तोष-को उसने जीत लिया है। उसकी चाह और चिन्ता चली गयी है। कबीरदासके शब्दोंमें वह 'बेपरवाह मनुआ' है और बादशाहोंका भी बादशाह! परिवारमें सिर्फ़ एक तेरह-चौदह वर्षका लड़का है। स्त्रीको मरे काफ़ी अरसा गुज़र गया। उसकी अन्तिम अभिलाषा यही हो सकती है कि लड़केके माथपर मउर चढ़ना अपनी आँखोंसे देख ले। इस सूचनासे यह न समझें कि खेदूका परिवार छोटा है। कोई खाने-पीनेकी चीज़ हाथ आयी कि वह टोल-महालके बच्चोंकी तलाशमें निकला। रातमें आठ और नौ बजेके बीच लगभग आधे दर्जन कुत्ते पीछे-पीछे घेरे रहते हैं। यह वह समय होता है जब वह कुछ कमरोंमें भोजन पहुँचाता है और जूठे बरतनोंको वापस ले जाता है। धर्म-पुत्रों-जैसा पालित यह स्वान-समूह अपना भाग पानेके लिए उसे घेरे रहता है। अच्छा दृश्य दिखाई पड़ता है जब खेदू स्वयं खाने बैठता है। बहुत निकट सटकर, अत्यन्त संयमके साथ चुपचाप सभी कुत्ते बैठते हैं। उसका हाथ अन्नपूर्णाका हाथ है। वहाँ कमी नहीं। सभी तृप्त होते हैं। उसके हाथ जिस कुशलताके साथ खुरपा लेकर मवेशियोंके लिए घासकी ढेरी लगा देते हैं वही दक्षता रोटी पोनेमें अथवा फुलके सेंकनेमें दिखाते हैं। वह रोटी-मास्टर, वह घास-मास्टर! वह जल-दाता, वह अन्नदाता और वह साक्षात् प्रभु! सबका समान ध्यान है उसे। सभी उसे अपना विशेष ध्यान रखनेवाला समझते हैं। जिसे नलका पानी पसन्द है उसे नलका मिल रहा है, जिसे कुएँका पानी पसन्द है उसे कुएँका। जब वह झाड़ू लेकर १८ नम्बरकी कोठरी साफ़ कर निकलता है तो नम्बर ४ वाले लोग समझ जाते हैं कि अब मुख्य फाटक खोलते हुए वह यहाँ आ जायेगा। यही नित्यका क्रम है। प्रकृतिकी तरह उसमें नियमितता और क्रमिकता है। जहाँ एक दिन पानी रखनेके लिए कह दिया गया वहाँ नित्य पानी हाज़िर।

जिस बाहर पड़े हुए लोटेको एक दिन साफ़ करनेके लिए कह दिया गया वह बाहर छूट जानेपर बराबर साफ़ किया हुआ मिलने लगा। एक दिन एक समय गरम पानी माँग दिया गया सो आगे उसी समय तबतक रोज़ मिलने लगा जबतक मना नहीं कर दिया गया। एक दिन मसहरी लगानेके लिए कह दिया गया तो दूसरे दिनसे वह ठीक समयपर मानो अपने-आप लग जाने लगी।

मसहरीका नाम आते ही एक दिलचस्प बात याद आयी। कलक्टर साहबकी लड़कीका विवाह था। आलीशान तैयारी थी। पर इस ओर किसीका ध्यान नहीं गया था कि रातमें भोजनोपरान्त बरातियोंको जो चारपाई-बिस्तरके साथ मसहरी दी जायेगी उसमें डण्डे भी चाहिए। ठीक समयपर डण्डोंके लिए दौड़-धूप होने लगी। प्रिन्सिपल साहबके यहाँ फ़ोन हुआ। समस्या खेदूके सामने आयी। कहा जाता है कि घूरपर उगा धतूर भी कभी-कभी बहुत काम आ जाता है। खेदूने बीसों मसहरियोंके डण्डे लाकर पटक दिये। बात यह है कि जब छात्र छात्रावास छोड़ते हैं तो सुराही, शीशी और मसहरीके डण्डे आदि बेकार चीज़ें भी छोड़ जाते हैं, जिन्हें खेदू अपने घरमें, जो छात्रावासके पास ही है, सुरक्षित रख छोड़ता है। वक़्त-ज़रूरतपर ये सबके काम आती हैं। विश्वास नहीं था कि वह इस कामको छू-मन्तर कर देगा। एक सज्जनने मनोरंजनार्थ कहा, ''अरे खेदू, और डण्डे हों तो ले आओ।''''ज़रूर रखे होंगे।'' खेदूने दाँत चियार दिये, ''काली माई किरिये, गंगाजी किरिये, अब नहीं हैं बाबू !'' वह क़सम खाता है तो मुँह देखने लायक़ हो जाता है। लगता है जैसे ८० वर्षका एक बालक है, निश्छल, निर्दोष, सच्चा। वह इस कथनकी सत्यताको मानो अपने अस्तित्वसे प्रमाणित कर रहा है कि जैसा भोला सौन्दर्य बचपनमें होता है, वैसा ही बुढ़ापेमें भी आ जाना चाहिए। क्या उसमें जो यह सुन्दरता है उसका स्रोत उसकी ईमानदारी है? उसकी फटी लँगोटीमें जो करधन है उसमें छात्रोंके कमरोंकी दर्जनों कुंजियाँ लटकती मिलेंगी। प्रत्येक कमरेमें तीन छात्र रहते हैं। कोई बाहर जाता है तो विश्वासपूर्वक कुंजी खेदूको सुपुर्द कर देता है ताकि उसका पार्टनर आवे तो मिल जाये। अध्यापक वर्गके कमरोंका तो वह मालिक ही है और छात्रावासका डीह बाबा! सबका दादा। एक दिन दादा बहुत हैरान नज़र आया। रातके आठ बज रहे थे। अँधेरी रात थी। मैंने पूछा, ''क्या बात है चौधरी?'' उसने बताया, ''उत्तर ओर साहबकी ओरका 'बलफ' 'फुस' हो गया है। रास्तेमें अँधेरा छा गया है।'' मैंने मनमें कहा, सलामत रहो दादा! तुम्हारी ज़िन्दगीका 'बलफ' सलामत रहे! वह कभी 'फुस' न हो अन्यथा पूरे छात्रवासमें सदाके लिए अँधेरा छा जायेगा!

डिग्री कॉलेज,
गाजीपुर (यू० पी०)

इस समय किसी कार या जीपके आनेकी बहुत ही कम आशा थी। देर हो चुकी थी। शायद मुझे बाल नगर तक पैदल ही जाना पड़े। ऐसा सोचकर ही मेरी थकान मनों बढ़ गयी।

सामने दोनों खोलोंमें लालटेनें जल रही थीं। उनमें बैठे दोनों काले आदमियोंकी आँखें मुझे बराबर घूरे जा रही थीं। मैंने फिर अँधेरेमें उधरकी ओर देखा जिधरसे कोई कार या जीप आ सकती थी। लेकिन उधर भी, अँधेरा गीली-सी चिपकती चुप्पीसे भरता जा रहा था। मैं तक़रीबन निराश हो गया और शायद इसलिए भी मेरे मनमें यह बात तुरन्त आयी कि अगर मुझे यहाँ कुछ हो जाये तो? मौतके इस डरसे मैं काँपा और बाल नगरकी तरफ़ बढ़ने लगा।

तभी घरघराहट सुनाई दी और मैं ठहर गया। जीपकी रोशनीमें हाथ बढ़ा दिया। हाथ बढ़ाते वक़्त मुझे लिफ़्ट माँगनेके लिए शर्म भी आयी और न मिलनेपर अपमानका डर भी हुआ।

"आप शहर जा रहे हैं?"

"हाँ सिकन्दराबाद, बैठो।"

उघड़ी सड़क तेज़ीसे जीपके नीचेसे गुज़रने लगी। जीपके चलनेकी स्वस्थ और मज़बूत आवाज़ मुझे पहले कभी इतनी भली नहीं लगी और न ही जीपकी सीट इतनी कोमल।

बाल नगरके आगे सड़क ख़राब थी। जीप धचके-हिचकोले खाती पत्थरों और गड्ढोंमें चलने लगी।

"ये गधे सड़कोंको जल्दी बनाना, पता नहीं, कब सीखेंगे?" वह बोला।

"ये क्या सीखेंगे। इधर इतने बड़े-बड़े प्रॉजेक्ट बन रहे हैं कि इधरकी सड़कें तो फ़ौरन बना दी जानी चाहिएँ। मगर ये साले पिछले कई महीनोंसे इस ज़रा-से हिस्सेको ही नहीं बना पा रहे हैं।"

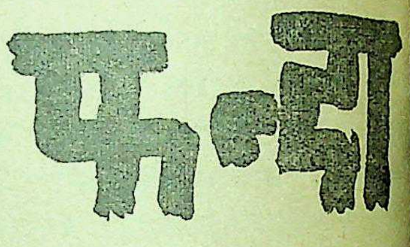

महेन्द्र भल्ला

बात तो मेरी सही थी लेकिन समर्थनके लहजेमें लिफ़्ट लेनेके एहसानको चुकानेका भाव ज़्यादा था।

"आप रामचन्द्रपुरम्में हैं क्या ?" मैंने पूछा। बाल नगरकी रोशनीमें उसका चेहरा ठीकसे दिख गया था।

"हाँ।"

"आपको दो-एक बार सिन्थेटिक्स ड्रग्ज़ प्रॉजेक्टमें भी देखा है।"

"हाँ।"

"मैंने भी वहाँ काम ले रखा है।"

"अच्छा।" उसके 'अच्छा'का भाव था : ले रखा है तो मैं क्या करूँ !

मुझमें भूख और थकानके मारे कोई उत्साह भी नहीं था। एहसानके बदले कुछ कहनेके ख़यालसे ही मैंने बातचीत करना ज़रूरी समझा था, उसका 'मनोरंजन' करनेकी सोची थी।

उसकी दिलचस्पी न लेनेकी अशिष्टता मुझे बहुत खली। मैंने तय किया कि अब सिकन्दराबाद पहुँचकर ही 'धन्यवाद' के लिए मुँह खोलूँगा।

जीप अब साफ़ सड़कपर दौड़ने लगी थी। उसने रफ़्तार बहुत तेज़ कर दी। एक छोटे-से पुलको जीपने छलाँगकर पार किया और हम बेगमपेट हवाई अड्डेके पास आ गये। 'इण्डियन एयर लाइन्स' का कोच अन्दरसे बाहर निकल रहा था। मैंने घड़ी देखी। आठ बज चुके थे। बम्बई जानेवाला जहाज़ साढ़े सात बजे जाता था।

हवाई अड्डेके फाटकको हम पार कर रहे थे कि उसने एकाएक जीप रोक दी। शायद उसे अन्दर कुछ दिखाई दे गया था। जीप मोड़कर वह भीतर ले गया और फाटकके पास ही रोककर दायें-बायें देखने लगा। एक पेड़के नीचे एक बड़ी विलायती गाड़ी खड़ी थी। जीप उसने उसीके पास लाकर रोक दी।

"सलाम हुज़ूर।" उस गाड़ीका ड्राइवर उसके पास आ गया।

"साहब आज ही चले गये क्या ?"

"जी।"

"मेम साहब कहाँ हैं ?"

"अभी अन्दरसे नहीं निकलीं।"

"उनके साथ कौन आया है?"

"विमल बाबू हैं।"

"विमल बाबू?"

"जी उनके भानजे हैं—बड़ी बहनके लड़के, कल ही आये हैं।"

वह कुछ देर चुप रहा फिर ड्राइवरसे बोला, "अच्छा ठीक है।" यह वाक्य मालिकाना था।

जीप बढ़ाकर उसने थोड़ी दूरीपर एक पेड़के नीचे रोक दी। इंजनकी आवाज़ बन्द हो गयी और हम अतिरिक्त चुप्पीमें बैठ गये। कुछ देर बाद वह 'स्टीयरिंग ह्वील' पर उँगलियाँ नचाने लगा। मुझे लगा कि वह मुझे काटना चाहता है। इस 'मेम साहब' के यहाँ मिल जानेकी शायद उसने आशा नहीं की थी। मैंने झाँककर इधर-उधर देखा। एक भी टैक्सी नहीं थी। बाहर जाकर मैं बस-स्टॉपपर ज़रूर खड़ा हो सकता था। मगर इधरसे बसें बड़ी-बड़ी देरमें गुज़रती थीं। मैं झिझका।

"अगर आपको कोई काम हो तो मैं यहाँ उतर जाता हूँ। बाहरसे मुझे बस मिल जायेगी।"

मैं उठनेके लिए तैयार था। पर वह कुछ बोला ही नहीं। मेरी ओर देखता रहा।

"आप क्या काम करते हैं?" उसने पूछा।

"इमारतोंका ठेका है।"

"मेरा बिजलीका है।"

उसने जेबसे बटुआ निकाला। उसमें-से अपना कार्ड खींचकर मुझे दिया। टी० आर० ललवानी। उसी नामकी कम्पनी। मुख्य दफ़्तर बम्बईमें था। मैंने उसे जेबमें रख लिया।

"आप बाहरके हैं?" ऐसे ही पूछा।

उसने सिर हिला दिया—"आपकी कौन-सी कम्पनी है?"

मैं उसे अपना कार्ड देना भूल गया था। मेरा कार्ड लेकर वह बोला, "तो आप भी बाहरके हैं?"

"हाँ, दिल्लीका।"

इसके बाद हममें-से कोई कुछ नहीं बोला। मुझे कार्ड लेना-देना अनावश्यक लगा। अजीब भी।

वह हवाई अड्डेकी इमारतको देखने लगा था। उसकी 'मेम साहब' शायद भीतर अपने भानजेको चाय-वाय पिला रही थीं।

चुप्पीकी वजहसे मैं फिर असमंजसमें पड़ गया। लेकिन यह सोचकर बैठा रहा कि चाहेगा तो वह ख़ुद ही कह देगा। वह बहु धर्म-संकटमें पड़नेवाला जीव नहीं दिखता था।

"आपको गाड़ी चलानी आती है?" उसने अचानक पूछा।

"हाँ, आती तो है, क्यों?"

उसने जीपकी चाबी मेरी ओर बढ़ा दी—"मैं उस कारमें जाऊँगा। आप जी लेकर हमारे पीछे-पीछे आ जाइएगा। ह सिकन्दराबाद ही जायेंगे।"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता।" मैं रुखाईसे कहा।

"क्यों?" वह हैरान था।

''क्योंकि....तुमने मुझपर विश्वास नहीं किया। तुमने मेरा कार्ड इसलिए लिया कि कहीं मैं जीप लेकर भाग न जाऊँ। तुमने यह सब पहले ही सोच लिया था। और रास्तेमें भी ....'' आवेशमें आनेसे पहले ही मैं चुप हो गया।

उसने एकाएक कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी नुकीली आँखें मुझे बराबर घूरती रहीं। ''इतने नाजुक मत बनो,'' उसने लगभग सहज भावसे कहा और चाबी मेरे हाथमें थमाकर हवाई अड्डेकी इमारतकी ओर बढ़ गया। मैं हक्का-बक्का-सा उसे जाते देखता रहा।

एक महिला उधरसे आ रही थी। उसके साथ दस-ग्यारह बरसका एक लड़का भी था। महिला, बल्कि लड़की क्योंकि वह तीसके ऊपरकी नहीं होगी, दूरसे ही बड़ी आकर्षक लगी। ललवानीने उसका अभिवादन किया और उनके साथ-साथ आने लगा। वह क्षण-भरको ही रुकी थी।

कारके पास आकर वे रुक गये। खम्भेके प्रकाशमें वह अच्छी तरहसे दिखाई दी। बहुत कोमल और भली लगी, बहुत ही भीने रूपसे सुन्दर। शायद इसी कारण मैं रुका रहा, चाबी वहीं छोड़कर चला नहीं गया जैसा कि मैंने सोचा था। यह हलका विचार भी मनमें आया कि उसके लिए ललवानीसे मित्रता करनी चाहिए। और यह भाँपकर (पता नहीं कैसे यह बात मैं उसी वक़्त भाँप गया था जब ललवानी ड्राइवरसे पूछताछ कर रहा था) कि उसकी दाल वहाँ ज़्यादा नहीं गलती है, मैं उस लड़कीको लेकर स्वप्न बुनने लगा।

ललवानी और वह दोनों बातें करते-करते ज़रा दूर निकल गये। लड़का (विमल) कारमें बैठ गया था।

जब वे कारकी तरफ़ लौटे तो बातें नहीं कर रहे थे बल्कि जल्दी-जल्दी लौट रहे थे। ललवानीने तीखी शिष्टतासे कारका दरवाज़ा खोला। वह भीतर बैठ गयी तो उसी चुभनेवाली शिष्टतासे दरवाज़ा बन्द कर दिया। लेकिन कार स्टार्ट होनेसे पहले ही वह जीपकी ओर बढ़ने लगा।

कार हमारे पाससे गुज़री। मुझे लगा कि कारमें वह जगह बहुत ही नर्म और सुडौल प्रकारसे आरामदेह है, जहाँ वह बैठी थी।

''मुझे अफ़सोस है,'' ललवानी बोला।

''किस बातका ?'' मैंने बिना सोचे पूछा।

थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उसने कहा, ''देर हो जानेका।''

तब मेरी समझमें आया कि अफ़सोस उसने मुझपर विश्वास न करनेके लिए प्रकट किया था—शायद कारमें न जा पा सकनेके कारण भी।

''कोई बड़ी बात नहीं थी,'' मैंने कहा और यह आशा करने लगा कि वह भी मेरी ओर देखकर मुसकरायेगा। मगर वह रूखे तनावमें जीप चलाने लगा। बेगमपेट हवाई अड्डेके साथ-साथ जीप तेज़ीसे भागने लगी। जब उसने खतरनाक तरीक़ेसे मोड़ काटा तो मैंने जाना कि वह बहुत अपमानित मह-

सूस कर रहा है। मेरे रहनेसे और भी ज़्यादा। उसके अपमानके सामने मेरा अपना अपमान धुल-सा गया।

'क्वालिटी'के सामने उसने जीप रोक दी। मैं फ़ुर्तीसे उतर गया।

"अच्छी बात है। मैं अब यहाँसे चला जाऊँगा। बहुत धन्यवाद।" यह कहते समय लगा—वह भी कुछ कहना चाहता है।

"···अगर आपको देर न हो रही हो तो आओ, अन्दर चलें। थोड़ी पियेंगे···मुझे उस बातका बहुत अफ़सोस है।"

उसकी आँखोंमें अफ़सोस तो था ही—मेरे साथकी ख़्वाहिश भी थी।

लेकिन यह बहुत ज़्यादा साफ़ था कि वह अपने बारेमें बात करेगा, अपने बारेमें 'रोयेगा'। जब वह जीपकी चाबी थमाकर चला गया था तो उसमें 'कुछ' है ऐसा लगा था। अब यह महसूस हुआ कि उसमें कोई ख़ास बात नहीं है। वह लड़की भी तो उससे प्रभावित नहीं थी। हाँ, वह भी उससे प्रभावित नहीं थी—मैंने मनमें दोहराया।

"नहीं," मैंने कहा, "आज नहीं, फिर कभी।"

उसे बहुत बुरा लगा। बहुत ही बुरा लगा। वह जीपसे कूदा और भागता-सा 'क्वालिटी'में घुस गया।

उसने तो कहा था कि नाज़ुक मैं हूँ!

मैं अनायास उसके पीछे भागा। लेकिन दरवाज़े तक जाकर रुक गया। फिर लौट पड़ा। और टैक्सी-स्टैण्डकी तरफ़ चलने लगा।

हमदर्दी 'देने' न जा पानेके कारण मुझे पछतावा हो रहा था। मैंने अपनेको कोसा भी। मगर जब मैं दरवाज़े तक जाके लौट आया था तो यही सोचकर (बल्कि याद करके) कि अगर मैं उसके साथ चला जाता जो वह 'सब कुछ'के बाद ठीक हो जाता और मुझे (शायद उसे भी) यही महसूस होता कि कोई ऐसी बात नहीं थी (अकसर नहीं ही होती)····तब····तब मनमें एक ख़ास प्रकारकी जुगुप्सा पैदा होती। और उसे सहना····!

"हैदराबाद चलो!" मैंने टैक्सीवालेसे कहा।

८।३९ साउथ पटेल नगर,
नयी दिल्ली-

विकास कुछ देर तक किसी ओर न देखनेका प्रयत्न करता रहा। लेकिन कनखियोंसे उसने देखा कि लड़की उसीकी ओर देख रही थी। पहली नज़रमें लड़की उसे सेक्रेटरी लगी थी। लेकिन जैसे तुरन्त ही, उसे इस बातका आभास-सा हो गया था कि वह सेक्रेटरी नहीं ही हो सकती थी। अपने सारे आकर्षक मेक-अपके बावजूद वह घरेलू लड़की ही थी। शायद जनरल रणजीत सिंहकी ही लड़की थी।

कमरा बहुत सुरुचिसे सजाया गया था। एक बार उसके मनमें आया कि जबतक जनरल नहीं आ जाते वह इसीसे बातचीत करता रहे। लेकिन बातचीतकी शुरूआत उससे नहीं हुई। बहुत कम लड़कियाँ उसे इतनी पसन्द आती थीं कि वह आगे बढ़कर उनसे बातें करनेकी इच्छा रखे। लेकिन यह लड़की उसे इस रूपमें नापसन्द नहीं थी।

"आपको डैडीसे क्या काम है?" तभी जैसे लड़कीने परदा उठाते हुए कहा।

विकासको लगा, शायद लड़कीको इस बातका पता है कि उसे जनरलसे क्या काम है। उसने यह सवाल जनरलसे अपना सम्बन्ध बतानेके उद्देश्यसे पूछा है। शायद उसके मनमें कहीं इस बातको लेकर हलका-सा अभिमान है कि वह जनरल रणजीत सिंहकी बेटी है।

"काम······काम वैसे कोई ख़ास नहीं है। मैं उनपर एक किताब लिख रहा हूँ। इसी सिलसिलेमें उनसे कुछ प्रश्न पूछने हैं।"

"किताबमें उनके परिवारके बारेमें भी कुछ रहेगा?" लड़कीकी आवाज़में उत्सुकता थी।

रामनारायण शुक्ल

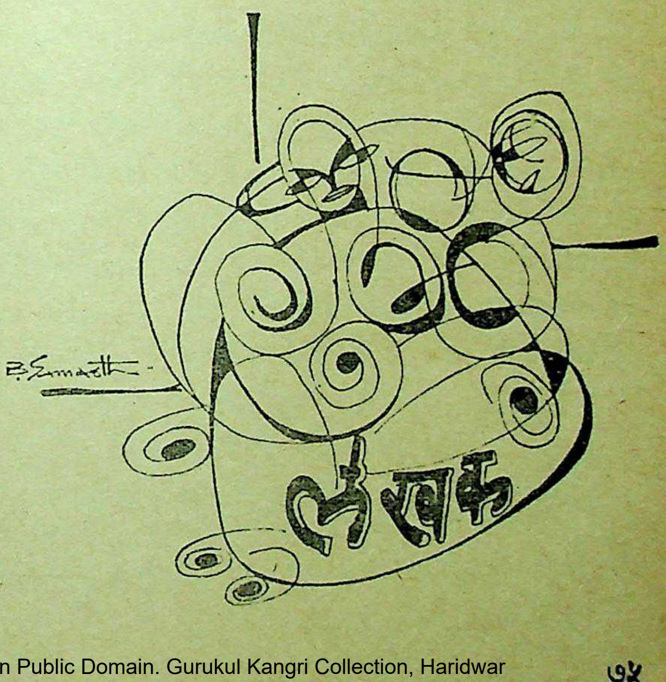

उसने ग़ौरसे लड़कीके चेहरेकी ओर देखा। क्या वह अपने बारेमें भी कुछ लिखवाना चाहती है। वह इस बातका अन्दाज़ नहीं लगा पाया कि लड़कीकी आवाज़की उत्सुकता वास्तविक थी या नहीं?

सहसा उसे सामने रखे हुए ऐश-ट्रेको देखकर सिगरेट पीनेका ध्यान आया। सिगरेट जलाते हुए उसके मनकी सारी झिझक दूर हो गयी और उसे लगा जैसे वह मशहूर जनरल रणजीतसिंहके

ड्राइंगरूममें नहीं अपने किसी धनी मित्रके कमरेमें बैठा है।

"आपने अपना नाम नहीं बताया?"

"आपने भी तो नहीं बताया?"

लड़की पहली बार शरमायी और धीरेसे बोली, "नीता!"

■

"·····साहित्य!" प्रकाशकने बड़ी उपेक्षासे कहा था, "साहित्य कौन पढ़ता है! कविता और कहानीके पाठक क़तई नहीं हैं। और उपन्यास, हाँ अगर रोचक हो तो चल सकता है।"

विकासको कहीं दूर-दूर तक कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। बहुत पहले उसके एक दोस्त उसे किसी बैंकमें नौकरी दिला रहे थे जो उसने नहीं की। उसके बाद ढंगकी कोई नौकरी मिली भी नहीं। पत्रिकाओंमें काम करते-करते वह ऊब चुका था।

"किसी बड़े प्रकाशकसे अच्छे सम्बन्ध बना लो तो काम अच्छी तरह चलने लगेगा।" उसके किसी दोस्तने कभी कहा था। बात उसके दिमाग़के किसी कोनेमें पड़ी रह गयी थी और एक नामी प्रकाशकसे उसके तालुक़्क़ात कुछ-कुछ बनने लगे थे। प्रकाशकके लिए वह कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता था और ज़रूरतके समय उसे उससे पैसे मिल जाते थे।

"फ़िलहाल तो और कुछ भी नहीं है, हाँ आजकल जनरल रणजीत सिंहकी बड़ी चर्चा है। उनपर डेढ़-दो सौ पृष्ठोंकी एक किताब·······"

■

विकास हाथ मिलानेके लिए खड़ा हुआ तो उसने ग़ौर किया, जनरल उसीके बराब लम्बे थे। अपने भाई-बहनोंमें वह सबसे ज़्यादा लम्बा था और इस बातकी चर्चा अकसर घरमें हुआ करती थी। जनरलसे हाथ मिलाते हुए थोड़ी देरके लिए वह सब-कुछ भूल गया और उसे याद आया—अपने भाई-बहनोंसे दूर वह यहाँ पड़ा है।

"बैठिए!" जनरलकी आवाज़में काफ़ी औपचारिकता थी।

"माफ़ कीजिए, आपको काफ़ी इन्तज़ार करना पड़ा। दरअसल मैं एक बहुत ज़रू काममें फँसा था।"

"नहीं, मुझे इसकी आदत है।" अनजा ही उसके स्वरमें बेबसी उभर आयी।

पत्र लिखकर उसने जनरल रणजीत सिं से इण्टरव्यूके लिए एक घण्टेका समय मां था। जनरल अनुदार नहीं थे। यह लिखते हुए कि एक घण्टेका इण्टरव्यू बहुत उबा होगा, उन्होंने आध घण्टेकी स्वीकृति दे थी। पत्र पाकर उसे और प्रकाशक दोनों काफ़ी ख़ुशी हुई थी।

पिछले दिनों पड़ोसी देशसे युद्ध हुआ और उसमें जनरल रणजीत सिंहका उभरकर सामने आया था। अखबारों पत्रिकाओंमें उनके बारेमें बहुत-कुछ छपा इसीके आधारपर एक किताब तैयार कर थी और ट्रम्पकार्डकी तरह इण्टरव्यूका उप करना था।

रणजीत सिंहके आकर बैठते ही उत्सुक निगाहोंसे विकासके चेहरेकी

देखने लगी थी। शायद उसके मनमें होनेवाले इण्टरव्यूके प्रति उत्सुकता थी या फिर वह किताबमें कहीं अपना नाम भी चाहती थी।

रणजीत सिंह काफ़ी खुशमिज़ाज आदमी थे। बैठनेके साथ ही उन्होंने पूछा, ''आप किस अख़बारसे सम्बद्ध हैं ?''

''जी, मैं किसी भी अख़बारमें काम नहीं कर रहा। हिन्दीकी प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था 'नव साहित्य प्रकाशन'ने मुझसे आपपर एक किताब लिखनेको कहा है। काफ़ी कुछ मैंने लिख भी लिया है। बाक़ी कसर इस इण्टरव्यूसे पूरी हो जायेगी।''

''आपने इसके पहले भी ऐसी कोई किताब लिखी है ?''

''जी, ऐसी तो कोई किताब नहीं लिखी। हाँ, कुछ कहानियाँ लिखी हैं। कुछ अनुवाद भी किये हैं।''

''आपकी कोई किताब निकली है ?''

''किताब तो अभीतक कोई नहीं निकली। दरअसल प्रकाशक कहानियोंकी किताबें नहीं छापते। फिर शायद मेरी कहानियोंमें तथाकथित रोचकताका भी अभाव है। इससे भी बड़ा कारण शायद यह है कि हिन्दी-प्रकाशनमें समझदार लोग हैं भी नहीं।''

''समझदार हों भी तो ईमानदार नहीं हैं। दरअसल मेरी भी सात-आठ किताबें निकल चुकी हैं। चार किताबें मैंने इतिहास प्रसिद्ध लड़ाइयोंके बारेमें लिखी हैं और शायद चार ही शिकारके बारेमें।''

''आपको शायद आश्चर्य हो रहा है कि मैं तीस सालका आदमी लेखनपर आश्रित होनेके बावजूद अपनी एक किताब भी प्रकाशित नहीं करवा सका।''

''नहीं, मेरी उम्र अब किसी बातपर आश्चर्य करनेकी नहीं रही। मैंने बहुत दुनिया देखी है। दूसरी बड़ी लड़ाईमें....'' कहते-कहते रणजीत सिंहको खाँसी आ गयी। शायद वे उत्साहमें कोई बहुत बड़ी बात कहने जा रहे थे। 'अच्छा, लड़ाईकी बातें जाने दें। मेरी किताबें चूँकि बिना किसी कोशिशके प्रकाशित हुई हैं इसलिए मैं सोच सकता हूँ कि कुछ लोगोंकी कोशिशके बावजूद भी प्रकाशित नहीं होती होंगी। आपके घरमें और कौन-कौन है ?''

''आप तो मेरा ही इण्टरव्यू ले रहे हैं। मैं अभी इतना बड़ा आदमी नहीं हुआ कि आप-जैसा कोई व्यक्ति मेरा इण्टरव्यू ले।''

''इण्टरव्यूकी बात आप रहने दें। चाहकर भी मैं आपको अपने बारेमें कुछ भी नहीं बता पाऊँगा। अपने बारेमें दूसरोंको कुछ बता सकनेके लिए यह आवश्यक होता है कि आदमी लेखक हो और मैं किसी कोनेसे लेखक नहीं हूँ।'' कहते-कहते जनरलने सिगरेट सुलगायी। विकासने लक्ष्य किया कि वे भी 'चारमीनार' ही पी रहे थे।

विकासने कुछ कहा नहीं।

''मैं आपसे कुछ बताने जा रहा हूँ। आप बुरा न मानिएगा। आपसे मिलनेको मैं काफ़ी उत्सुक था। आपने मुझे चिट्ठी लिखी थी और उस चिट्ठीके आधारपर मैंने आपको आधे घण्टेका समय दिया हो—ऐसी बात नहीं

लेखक : रामनारायण शुक्ल

है। ऐसी बातोंके लिए मैं कभी तैयार ही नहीं होता। यह मेरे स्वभावमें नहीं है। अपने बारेमें बातें करना मुझे कभी अच्छा नहीं लगता। और इसीलिए मैं आपकी चिट्ठीका जवाब देनेवाला नहीं था लेकिन····" कहकर वे थोड़ी देरके लिए ठहरे और विकासके चेहरेकी ओर ध्यानसे देखा।

विकासको लगा कि कहीं कुछ गड़बड़ है। उसने कुछ झिझकते हुए कहा, "आप शायद कोई ऐसी बात कहने जा रहे थे जिसे कहना नहीं चाहते।"

"नहीं, न कहने-जैसी कोई बात नहीं है। बात आपको बुरी लग सकती है इसीलिए थोड़ा झिझक रहा था। लेकिन अब कहे देता हूँ। दरअसल आपका प्रकाशक बहुत चालाक आदमी है। वह आपकी चिट्ठीके भरोसे ही नहीं बैठा रहा। मेरे छोटे भाईसे शायद उसका कुछ परिचय है, तभी उसने मेरे छोटे भाईसे यह कहलवाया कि मैं आपको कुछ समय ज़रूर दूँ। देखिए, आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। दुनियामें ऐसा ही होता है। मेरे भाईने आपकी बहुत तारीफ़ की थी। निश्चय ही वह प्रकाशकके शब्दोंको ही दुहरा रहा था। एक बात उसने कई बार कही थी। कहा था कि आप पत्रकार नहीं लेखक हैं। अपनी इतनी बड़ी ज़िन्दगीमें मेरी कभी किसी लेखकसे मुलाक़ात नहीं हुई। तभी तो मैं कह रहा था कि मैं आपसे मिलनेको उत्सुक था।"

"लेखक तो आप भी हैं।" विकासने मुसकराते हुए कहा। वह स्वयं भी नहीं जान पाया कि वह व्यंग्यसे मुसकरा रहा था या सहज भावसे।

"मैं उन लोगोंमें-से नहीं हूँ जो किताब लिख सकने या छपवा सकनेकी क्षमता रखनेवालोंको ही लेखक मानते हैं।"

तभी फ़ोनकी घण्टी बज उठी।

शायद कोई ज़रूरी काम आ पड़ा था तभी जनरलके चेहरेमें चिन्ताकी रेखाएँ घिर-आयीं। उन्हें शायद विकाससे बातें करते हुए अच्छा लग रहा था।

फ़ोन रखकर उन्होंने कुछ गम्भीर हो कहा, "बहुत अफ़सोस है, मुझे जाना पड़ेगा। फिर हम लोगोंकी कभी मुलाक़ात होगी ऐसा भी नहीं लगता। मैं आपको अपने बारेमें कुछ बता नहीं सका फिर भी मैं सोच सकता हूँ कि आपने बहुत कुछ जान लिया होगा। किसीके बारेमें आप उससे पूछकर कभी कुछ जान नहीं सकते। फिर ऐसी जानकारीके आधार-पर पत्रकार ही कुछ लिखते हैं और मुझसे बार-बार यह कहा गया है कि आप पत्रकार नहीं लेखक है।" कहते हुए जनरल उठ खड़े हुए।

"अच्छा चलता हूँ। विश यू बेस्ट ऑव लक!" हाथ मिलाते हुए जनरलने कहा।

हाथ मिलाते हुए विकासको फिर एक बार लगा कि वह जनरलके बराबर ही लम्बा है और उसके लम्बे होनेकी चर्चा घरमें अकसर हुआ करती थी।

५१०, ममफोर्डगंज,
इलाहाबाद-२

एक ख़त मेरा भी....

शेफाली

मुझे हैरानी होती है। यह लड़की बिन-बुलाये कमरेमें आयी कैसे ? और इसकी बात सुनकर तो मुझे विश्वास ही नहीं होता है। उसका अनुरोध मुझे अच्छा भी लगता है, विचित्र भी ! आश्वस्त होनेके लिए कहती हूँ, "क्या यह सच है ?"

"येस-मिस राय !"

"लेकिन क्या रखोगी पब्लिकके सामने ?"

‘‘एक खत !’’ स्वर धीमा है ।

‘‘यू मीन ए लेटर ?’’

‘‘येस । ए लेटर टु ए .फ्रेण्ड!’’

‘‘भई, सोच लो । खैर मैं तुम्हारा नाम लिख लेती हूँ !’’

....फिर मैं सोचती हूँ, क्या मतलब होगा एक खत का ! ‘ए लेटर टु ए .फ्रेण्ड’ । अरे, हाँ मुझे याद आता है, एक बार एक कहानी पढ़ी थी । नाम था ‘दोस्तके नाम पाती’ । कुछ ऐसी ही चीज़ होगी ! ....कल चार बजे फ़ंक्शन है ! ....सचमुच हॉस्टलकी वार्डन होना भी एक मुसीबत है ! हॉस्टलमें ज़रा-सी गड़बड़ हो जाये तो वार्डन रिसपान्सिब्ल....भला सोचो, इतनी बड़ी-बड़ी लड़कियाँ क्या अपना भला-बुरा नहीं समझतीं ! इनपर निगरानी रखो ! अरे ये मुझपर निगरानी रख लें वही क्या कम है ! हाँ वैसे एक बात है, सगुना-जैसी लड़कियाँ कम ही होती हैं । कितनी सीधी है ! बेचारी डरी-डरी-सी रहती है ! अगर कहीं सभी लड़कियाँ ऐसी हों तब तो मज़ेकी हो नौकरी ! आँखें मूँदके बेखबर सो जाओ ! ....ओह, मैं कहाँ उलझ गयी ? कलकी चिन्ता है ! प्रति वर्ष बड़े दिनोंके अवसरपर हॉस्टलमें फ़ंक्शन मनाया जाता है । लड़कियोंके परिवारसे मित्र तथा परिचित आते हैं ! शहरके कुछ नामी व्यक्तियोंको भी बुलाया जाता है । ....हॉस्टलकी लड़कियाँ स्वयं ही कार्यक्रम दर्शकोंके सामने रखती हैं ! इसी सिलसिलेमें तो आयी थी यह लड़की ! सगुना ! दर्शकोंके सामने स्टेजपर खड़े होकर एक खत पढ़ेगी ! ....मेरी हैरानी तो स्वाभाविक है । ढाई सालसे यह लड़की यहाँ है । कभी कोई शिकायत लेकर आते इसे मैंने नहीं देखा । न कभी हॉस्टलके प्रबन्धकी आलोचना करती है । जबकि ‘शिकायत पेटिका’ मुझे सप्ताहमें ही भरी मिलती है । ....सगुनाको तो मैं प्रतिदिन सवेरे काम-पर जाते देखती हूँ और उसके बाद यथासमय शामको लौटते हुए भी । ....मेरा विश्वास डगमगाने लगता है । कहीं पब्लिकके सामने हँसी ही न हो जाये ! इतने लोगोंके सामने इस लड़कीका बोल फूटेगा भी....

◆

सगुनाका नाम सुनते ही मैं अलर्ट हो जाती हूँ ! ....स्टेजपर वह खड़ी है, लम्बा-चौड़ा चिट्ठा है उसके हाथमें ! वह बड़ी ही सधी हुई आवाज़में बोलना (पढ़ना) शुरू करती है : ‘‘प्रिय कनक, अपने विषयमें कुछ भी लिखनेसे पहले मैं यह क्लीयर कर रही हूँ कि जो कुछ भी मैं तुम्हें बता रही हूँ वह मेरा बहुत कम समयका ही अनुभव है । मैं यह भी जानती हूँ कि तुम्हारे लिए इस खतका महत्त्व समुद्रमें बूँदके समान होगा । चूँकि तुमने लिखा है कि मैं तुम्हें हॉस्टलमें रहनेवाली लड़कियोंके विषयमें विस्तारसे लिखूँ । शायद तुम्हें ऐसी लड़कियोंपर (जो नौकरी करती हैं और हॉस्टलमें रहती हैं) कोई लेख तैयार करना है ।....

....मैं हैदराबादमें थी जब बड़ी दीदीकी शादी हुई । तब मैं बी० ए० कर चुकी थी । सच्ची बात तो यह है कि उस समय ब्याहकी उमर तो मेरी थी ! कनक ! दीदीके ब्याहमें

मैं बार-बार इसी कल्पनामें डूबती-उतराती थी कि सचमुच मेरा भी ब्याह हुआ होता, मेरा भी घर होता, अपना घर, आँगनमें खेलते हुए बच्चे । कितना प्यारा सपना है ! शायद अट्ठारह-उन्नीस बरसकी होनेपर सभी लड़कियाँ ऐसे सपने लेती हैं । सपने मैं भी लेती थी हालाँकि इस बातसे अनभिज्ञ न थी मैं कि मेरा यह सपना बरसों पूरा न होगा ! बड़ी दीदीके बाद तो मँझली'दीका नम्बर था । और घरकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी न थी ।····बड़ी'दीके ब्याहके बाद मँझली दीदीके ब्याहको धन जोड़ना, और फिर उसके बाद मेरे लिए····ऐसे ही तो कितने बरस बीतनेपर फिर कहीं····दो बरस बीत गये, मैंने एम० ए० भी कर लिया था पर न तो अभीतक मँझली'दीके ब्याहके लिए धन जुड़ा था और न ही ऐसा लड़का मिला था जो मोटा दहेज़ लिये बिना शादीको हाँ कर दे ! ····मेरा बेकार बैठना मुझे खलने भी लगा था ····मेरे माँ-बापको भी खलता था । और कन्नी ! मैं नौकरीकी तलाश करने लगी ! ····हैदराबादमें मिलनेपर भी मैंने नौकरी नहीं की । घरसे दूर स्वतन्त्र रहनेकी भावना मुझमें पनपने लगी थी, घरका घुटा-घुटा वातावरण अब सहा नहीं जाता था मुझसे ।

····दिल्लीमें नौकरी मिलते ही मैं यहाँ चली आयी ! हॉस्टलमें रहनेका इन्तज़ाम भी हो गया । इस हॉस्टलमें वही लड़कियाँ रहती हैं जो कहीं-न-कहीं नौकरी करती हैं ।····शुरू-शुरूमें यहाँ रहना मुझे क़तई अच्छा नहीं लगा । यहाँकी लड़कियोंके साथ मैं बिलकुल घुलमिल भी तो नहीं पाती थी । और तो और, मुझे तो इन लड़कियोंको देखकर बड़ी कोफ़्त होती थी । जानती हो, हर शामको मैं बड़ी हैरानीसे देखती कि प्रायः सभी लड़कियाँ अपने-अपने कामसे थकी-माँदी लौटतीं और अपने-अपने कमरोंमें मुरझायी-सी पड़ रहतीं । कुछ देर आराम करतीं, फिर तैयारियाँ करने लगतीं बाहर जानेकी ! सात बजते-बजते हॉस्टल भी खाली होने लगता । लड़कियाँ हॉस्टलसे बाहर निकलतीं तो उनके मेकअॅपसे खिले चेहरे देखकर ताज़े फूलोंका भ्रम होता था ! उस वक़्त हर लड़की मुसकराती थी । सच कनक ! तबतक मैं इतना भी नहीं जानती थी कि मेकअॅपका अंग मुसकान भी है । यह नक़ली मुसकान ! वे बाहर निकलते ही अपने मित्रोंके साथ चल पड़तीं, जो प्रायः हॉस्टलके गेटपर उनकी प्रतीक्षामें खड़े होते ! और कई लड़कियाँ अकेली ही निकल पड़तीं····और यह घाघ-वार्डन, जानती ही होती है कि अब ये लड़कियाँ लेट नाइटमें ही वापस आयेंगी । पर यह मचल मार लेती है ! बस इसकी हथेली गरम कर दो !····मैं अपने कमरेमें अकेली बैठी-बैठी इन लड़कियोंको ही कोसने लगती····बेकारमें····अब इस विषयमें सोचती हूँ तो यही लगता है कि मेरे अवचेतनमें कहीं-न-कहीं इन लड़कियोंके प्रति ईर्ष्या छिपी थी ! शायद इसीलिए कि मैं उनके समान बोल्ड न थी !····

उस दिन मेरी रूममेट शामको कहीं नहीं गयी । तबीयत ठीक न थी उसकी । मैं भी

शाम अपने कमरेमें ही बिता देती थी। कभी कोई किताब पढ़ते हुए, कभी बुनाई करते हुए और कभी सिर्फ़ लेटे-लेटे ही!····कनक! शायद मैं तुम्हें बताना भूल गयी हूँ कि बड़ी 'दी दो बच्चोंकी माँ बन गयी हैं। उसके बच्चोंके स्वेटर मैं ही बुनकर देती हूँ न!····हाँ, तो उस दिन भी मेरे हाथमें सलाइयाँ ही थीं और मैं दीदीके मुन्नेके नन्हें-नन्हें मोज़े बना रही थी! पता नहीं, एकाएक मेरे मनमें क्या आयी कि मैं अपनी रूममेटसे हॉस्टलकी लड़कियोंकी चर्चा करने बैठ गयी। रूममेटकी प्रतिक्रिया देखकर तो मैं डर ही गयी। वह बिगड़कर बोली, "अब यहाँ ये लड़कियाँ घूमें-फिरें न तो क्या घुटकर मर जायें!"

-"लेकिन इस तरह भटकनेसे अच्छा तो है कि ब्याह करवाके सेटिल हो जायें।"

"तो मिस सगुना, तुम हॉस्टलमें क्यों रहने लगी? क्यों तुम शादी करके घर नहीं बसा सकी? क्या तुम्हारी अवस्था शादी लायक़ नहीं?····" फिर कुछ पल चुप रहकर वह धीमे स्वरमें बोली "तुम सोचती हो, समस्या सिर्फ़ तुम्हारी है—यहाँ तो सबकी ही समस्याएँ हैं! यह ज़िन्दगी जो वर्त्तमानमें हमने ओढ़ रखी है, महज़ मजबूरीकी है···· मजबूरीकी····"

यह सब सुनकर मैं मौन हो गयी। दुःखी भी हुई। सच ही तो कहा था मेरी रूममेटने, मेरी आँखोंके सामने मिस रीता घूम गयी जिसका प्रेम असफल हो गया था और वह हर रात देरसे लौटती थी, शराब पीकर···· और मिस माया चक्रधर, जिसका इस दुनियामें कोई न था—जो अपने चाचाके अत्याचारोंसे तंग पड़कर घरसे भाग निकली थी, (चाचा उसके भागनेपर प्रसन्न ही हुए थे।) जीवनमें किसीका भी प्यार उसे न मिला था। अब जो कोई भी दो शब्द उससे प्यारके बोल लेता उसे ही वह अपना समझ बैठती थी!···· और फिर मुझे याद आयी मिस वीणाकी, जिसपर पूरे परिवारका बोझ था! वह हर महीने क़रीबन पूरी तनख़्वाह ही घर मनीऑर्डर करवाती थी! और उसका गुज़ारा तो खैर····। कनु गुप्ता परित्यक्ता थी। मेरी आँखोंके आगे चेहरे घूमने लगे—सुधा, मीरा, सोसन आदि सभीके····हाँ, सभी तो दो-दो व्यक्तित्व लिये घूमती थीं!····

कन्नी, कुछ अरसे बाद मुझे लगने लगा कि मैं कमरेमें घुटकर नहीं रह सकती। हर महीने मैं हैदराबाद मनीऑर्डर भेजती थी और आशा लगाती थी कि पिताजीका पत्र आयेगा कि मँझली'दीका रिश्ता तय हो गया है! लेकिन मुझे ऐसा समाचार नहीं मिला। शायद बीस-बाईसकी अवस्था तक ही लड़कियोंके ब्याहकी चिन्ता माँ-बाप करते हैं और उसके बाद सोच लेते हैं—जहाँ इतनी देर हुई वहाँ और सही, जब होना होगा हो जायेगा। मुझे लगता है मँझली'दीके साथ भी ऐसा ही हुआ है····और मैं भी अपनेको निपट अकेली महसूस करने लगी····और महसूस ही करती रही····मेरे बॉसने मुझे कई बार डिनरपर बुलाया पर मैं गयी नहीं····मैं तो उससे सीधे मुँह बात तक न करती थी। भले ही इस कारणसे मेरी तरक़्की रुकी हुई

थी····फिर बॉस मुझे अच्छा भी लगने लगा, मैं उसके साथ डिनरपर भी जाने लगी और मेरी तरक़्क़ी भी हो गयी। मेरी कन्नो, मैं अब सचमुच ही बदल गयी हूँ। हॉस्टलकी लड़कियाँ मुझे अब बुरी नहीं लगतीं। लेट ईवनिंग्समें मैं भी कनॉट प्लेसमें ही होती हूँ। और इस खुर्राट वार्डनकी मुट्ठियाँ अब मुझे भी गरम करनी पड़ेंगी—मैं जानती हूँ।····मेरे अब बहुत-से मित्र हो गये हैं जिनके साथ मैं घूमती-फिरती हूँ और प्रसन्न रहती हूँ। तुमने इस बातकी शिकायत कई बार की है न कि मैं इतवारको भी तुम्हारे यहाँ नहीं आ पाती और दोहराती हूँ अपने बिज़ी होनेकी बात! तो यही है मेरी बिज़ीनेस····

लेकिन कनक, इस ज़िन्दगीमें इतना रच-बसकर भी एक ललक है जो जब-तब जाग उठती है। अपने घरकी। घरके आँगनमें खेलते हुए बच्चे!···जानती हूँ, दिन बीतते जा रहे हैं और मेरा सपना भी जब-तब धुँधला जाता है···और अब तो कभी-कभी यह भी सोचने लगी हूँ कि ऐसी स्वच्छन्द ज़िन्दगी बितानेके बाद ब्याह कभी हो भी गया तो क्या मैं सुखी रह पाऊँगी? उस जीवनमें अपनेको फ़िट करना क्या कठिन न लगेगा मुझे? पर इस विषयपर मैं अधिक नहीं सोचती—सोच ही नहीं पाती! मेरी मँझली'दी अभीतक कुँआरी है। न ही अभीतक उसके लिए धन जुड़ा होगा। उसकी शादीके बाद जब मेरे लिए भी सोचना प्रारम्भ होगा तब-तक मैं शादी-ब्याहको झंझट मानने लगूँगी! ···कनक, अब रात काफ़ी हो चुकी है। सवेरे मुझे ऑफ़िस भी जाना है और मेरा मन भी अच्छा नहीं। सो अब और कुछ न लिख पाऊँगी।····बस···तेरी सगुना।''

सगुना पत्र पढ़कर समाप्त करती है। ''आह बेचारी!'' मेरे मुँहसे निकलता है। चारों ओर दृष्टि दौड़ानेपर देखती हूँ, श्रोता जड़वत् बैठे हैं! ऐं, यह क्या? एकाएक मुझे ध्यान आता है कि सगुना क्या बोल गयी है! अरे! इससे तो मेरी नौकरीपर आँच आ सकती है! हॉस्टलकी प्रतिष्ठा खाकमें मिल सकती है! नहीं, नहीं, क्या कह गयी यह लड़की। कहाँ है वह? स्टेजपर तो नहीं। मैं एकदम उसके कमरेकी ओर भागती हूँ।···· पलँगपर औंधी पड़ी सगुना फफक-फफककर रो रही है। पर मुझे तरस नहीं आता। मैं उसे झकझोरते हुए कहती हूँ, ''ऐ लड़की! हॉस्टलका कमरा फ़ौरन खाली कर दो!'' मैं हैरान होती हूँ कि उसे और कुछ क्यों न कह पायी। और बड़बड़ाकर लौटते हुए सोचने लगी हूँ कि अभी मेरी आवाज़ मरी-मरी क्यों थी?

पो० आ० पटेल नगर
२१२६।४ प्रेमनगर, नयी दिल्ली-८

कृश्नचन्दर

एक पत्थर दो पत्थर तीन पत्थर

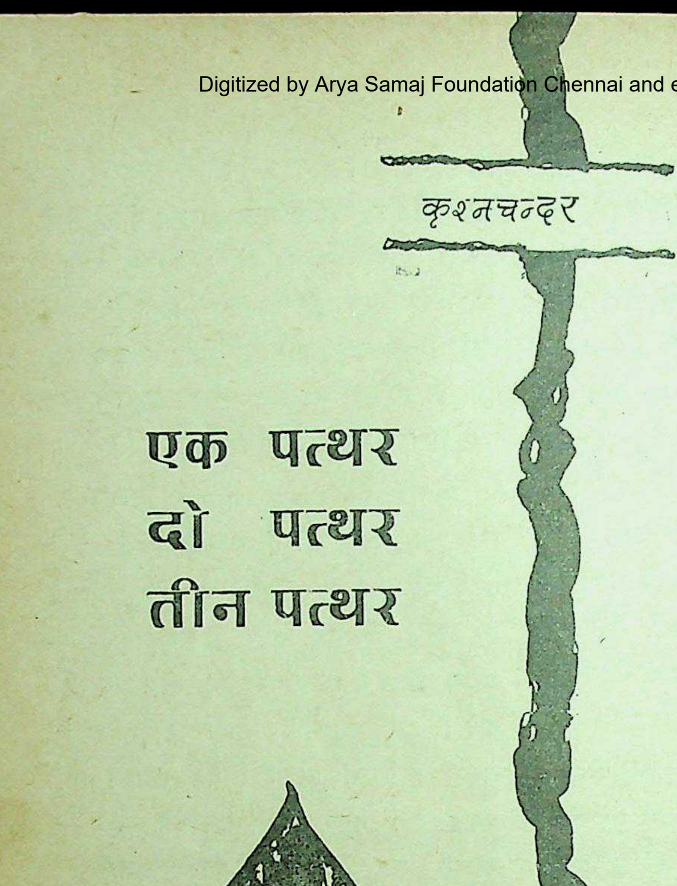

[आपने पिछले अंकमें पढ़ा : कँवलप्रसाद सक्सैना लन्दनके एक कुलावा-जैसे भागमें एंग्लो सक्सन जूलीके बारेमें सोच रहा है। वही जूली जिसकी वह हत्या नहीं कर सका और जिस 'सफ़ेद लड़की' ने उसके मस्तिष्कको डस लिया था। पहचान हेनरीने एक कॉकटेल पार्टीमें करवायी थी कि वह मॉडल गर्ल है। उसकी सुन्दरता और काले लोगोंके प्रति उसकी घृणापूर्ण दृष्टिने कँवलको एक चाल चलनेके लिए विवश कर दिया। हेनरीके स्टडीमें दस मिनिटका लांगप्लेयर लगाकर कँवलने जूलीको अपनी बाँहोंमें बाँध लिया। जूलीकी सुपरसोनिक चीख़से तीन अँगरेज़ सामने आ गये। तीनोंका अलग-अलग दावा था कि जूली उनकी पत्नी है लेकिन हिन्दुस्तानियोंकी तरह पत्नीके लिए वे झगड़े नहीं वरन् इस डर्टी हिन्दूपर टूट पड़े। केवल डॉक्टर था लेकिन सफल मुक्केबाज़की तरह लड़ा…और लड़ते-लड़ते लडखड़ाकर अँधेरे में खो गया।—]

जूलीने बिस्तरपर लेटे-लेटे उसकी तरफ़ करवट ले ली। वह अभीतक गहरी नींदमें थी—मगर इस गहरी नींदमें भी उसके हाथ कँवलको ढूँढ़ रहे थे! ऐसी गहरी नींदमें भी वह उससे विसुध नहीं होती थी। धीरेसे कँवलने अपना एक हाथ उसकी तरफ़ सरका दिया। जूलीकी नींदमें डूबी हुई उँगलियाँ कँवलकी उँगलियोंपर सरकने लगीं। वह उसके हाथपर अपना हाथ फिरा रही थी—जैसे पालतू कबूतरपर अधिकार और प्यार और लाड़का हाथ फेरा जाता है! कँवलके दिलमें अधीरताकी एक लहर-सी उठी—मगर उसने अपने-आपको सँभाल लिया, और बिना हिले-डुले अपना हाथ जूलीके हाथमें रहने दिया। बिस्तरपर बैठे-बैठे उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं····एक बहुत बड़ा कद्दू····एक बहुत बड़ा कद्दू····जिसके अन्दर वह बन्द था। उस कद्दूके अन्दर वह एक छिपकलीके समान अनुभव कर रहा था। वह उस कद्दूके अन्दर चारों तरफ़, ऊपर-नीचे, फ़र्श, छत और उसकी दीवारोंपर घूमता था—मगर उसे कहीं बाहर जानेका रास्ता नहीं मिलता था। कद्दू अन्दरसे लिजलिजा और गीला और गूदेदार था, और कद्दूके अन्दर घूमनेसे उसका सारा शरीर चिकना हो गया था जिसकी वजहसे वह बार-बार उस कद्दूसे बाहर निकलनेके प्रयत्नमें अन्दरकी दीवारोंपर चलते-चलते फिसलकर कद्दूके फ़र्शपर गिर पड़ता था, और एक विचित्र-सी गीली-गीली, सीली-सीली जानलेवा बू उसपर चारों तरफ़से घेरा डालती हुई हँस रही थी। उसके सारे शरीरसे पसीना फूट निकला। वह सारे शरीरका ज़ोर लगाकर कद्दूके गूदेके अन्दर घुस गया। उसकी साँस बन्द हुई जा रही थी—फेफड़े फट पड़नेके लिए तैयार थे—अचानक वह कद्दूसे बाहर निकल आया····।

एक लम्बी साँस लेकर उसने जो आँखें खोलीं तो वह सेण्ट जॉर्ज हस्पतालके एक बिस्तरपर था। उसके शरीरपर पट्टियाँ बँधी थीं, और उसके सिरहानेके पास एक कुरसीपर झुका हुआ हेनरी क्विकबर्न उसे बड़े ध्यानसे देख रहा था। कँवलको होशमें आते देखकर वह धीरेसे मुसकराया। बोला, "कुछ ज़्यादा नुक़सान नहीं हुआ—तुम्हारा शरीर बड़ा मज़बूत निकला—छह-सात दिनमें ठीक हो जाओगे!"

कँवलने आँखें बन्द करके अपने भीतरी शरीरको जाँचा—यह बिलकुल सम्भव है, किसी एक्स-रेके बिना अपने अन्दरके शरीरको जाँच लेना। दिमाग़के अन्दर कोई एक ऐसा बैरोमीटर लगा होता है जिससे हर आदमीको मालूम हो सकता है कि उसके अन्दरकी हालत क्या है? कँवलने आँखें बन्द करके उस बैरोमीटरको बड़े ध्यानसे परखा—फिर जब उसे सन्तोष हो गया तो उसने आँखें खोलीं, और हेनरीकी तरफ़ देखकर मुसकरा दिया।

“वास्तवमें मैं तुम्हारा आभारी हूँ”—हेनरीने उसके बिस्तरकी चादरकी सिलवट ठीक करते हुए कहा, “मैं जूलीसे पीछा छुड़ाना चाहता था! तुम ठीक समयपर मेरी सहायताको आ गये जबकि मैंने ऐसा नहीं सोचा था। मेरी स्कीम दूसरी थी—पर तुम्हारा बीचमें आ टपकना बहुत अच्छा रहा····बहुत ही अच्छा रहा।”

वह चुप हो गया—कँवल प्रश्न-भरी नज़रोंसे उसकी तरफ़ देखने लगा।

“जूली चाहती थी कि मैं शादी कर लूँ उससे,” थोड़े संकोचके बाद हेनरी अपनी छिगुलीके पारके नाख़ूनकी तरफ़ ध्यानसे देखते हुए बोला, “और मैं अभी शादीके लिए तैयार नहीं था।”

वह फिर चुप हो गया। अपने नाख़ूनको देखनेके बाद उसने मेरी ओर देखा, और ऐसे कटीले भावमें मुसकराया जिसपर स्त्रियाँ न्योछावर होती हैं, “जूलिया क्राम्बी एक नम्बरकी छिनाल है,····वह अपनी सुन्दरताकी शक्ति, उसके प्रभाव और उसकी चोटसे अच्छी तरह परिचित है—उसने तीन अलग-अलग आदमियोंसे शादी कर रखी है, और हर मर्दको मजबूर कर रखा है कि वह उस शादीको गुप्त रखे।”

“यह कैसे हो सकता है?” कँवलने पूछा।

“बिलकुल सम्भव है। पहली शादी उसने रिचर्ड स्नोक्राफ़्टसे की—मैक्सीकोमें जाकर···· रिचर्डने सबसे ज़्यादा चोटें तुम्हें पहुँचायीं—कभी वह एक अच्छा बॉक्सर भी था। दूसरी शादी उसने थॉमस मैकफ़ारलेनसे की—यह वह आदमी था जिसने तुम्हारे गालों डाक खोलनेवाली छुरीसे फाड़नेका अस प्रयत्न किया था। तीसरी शादी उ काहिरामें की—जेम्स विलफ़्टसे, जिसने तु सबसे ज़्यादा ठोकरें मारीं। जेम्स विलफ़्ट औ जूली दोनोंने मुसलमान होकर यह शादी क थी—पर यह शादी भी इंगलैण्डमें गुप्त र गयी और यह शादी पिछली दोनों शादियों खण्डन करती थी। शादीके थोड़े समय बा जूलिया क्राम्बीने जेम्स विलफ़्टसे एक जा प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर ले लिये थे ता जेम्स विलफ़्ट कभी उसपर ज़्यादा अधिका जमाये तो वह फ़ौरन उससे अलग हो जाये।

“मगर क्या वह इनमें-से किसीके पा नहीं रहती थी?” कँवलका आश्चर्य ब लगा।

“जूली एक उभरती हुई फ़िल्म-अभिने है, प्रसिद्ध व सुपरिचित मॉडल-गर्ल है, बहु व्यस्त रहती है, आज यहाँ तो कल वहाँ लन्दनमें उसके तीन घर थे। दो सालसे व इसी प्रकार निभा रही थी—उसकी प्रब इच्छा-शक्ति, चालाकी और चतुरता सराहना करनी पड़ती है कि जब वह ए पतिके यहाँ रहती थी तो दूसरे दो पतियों लिए वह फ़िल्मकी शूटिंग कर रही होती औ जब वह दूसरे पतिके पास जाती तो पहले लिए फ़्रान्समें मॉडलिंगके लिए चली ग होती और जब तीसरेके घर रातें बिताती त पहले दोनोंके लिए वह किसी साबुन-कम्प या बिस्कुट-कम्पनीके विज्ञापनोंके काममें दि रात व्यस्त होती। पैसा वह तीनोंसे ऐ

लेती । मुझे कुँवारा और प्रसिद्ध और धनवान् मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ समझकर वह मेरे साथ भी यही चालाकी चलना चाहती थी और शुरूके थोड़े महीने तो मैं उसकी अनुपम सुन्दरता और मीठी बातोंके चक्करमें फँसा रहा, फिर धीरे-धीरे उसका यौवन मेरे लिए बासी पड़ने लगा । यह मेरी ट्रेजेडी है,—स्त्रीका रूप बहुत जल्दी मेरे लिए बासी हो जाता है । मैं उसके जालसे निकलना चाहता था—मगर उससे शादीका वादा कर चुका था''''अब इस उलझनसे निकलूँ तो कैसे निकलूँ—एकाएक मुझे उसका भेद मालूम हो गया और मैंने उसके तीनों पतियोंको उस दावतपर बुला लिया । सोचा था, तीनोंको टकरा दूँगा और जूलीका भेद खुल जायेगा, मगर तुम बीचमें आ टपके, बल्कि एक हिन्दुस्तानी बैलकी तरह सींग मारकर अन्दर आ घुसे । इसमें कुछ सन्देह नहीं कि मेरी इस स्कीममें तुम्हारा प्रवेश बड़ा शानदार रहा—मैं जूलीके चंगुलसे आज़ाद हो गया ।''

"और मेरी जो हड्डी-पसली एक हो गयी ?"

"घबराओ नहीं, आठ-दस दिनमें ठीक हो जाओगे," हेनरीने अपनी कलाईकी घड़ी देखकर कहा, "अच्छा मैं चलता हूँ—इस समय एक ऐसे लखपती अँगरेज़को समय दे रखा है जिसे हर मंगलवारको यह वहम हो उठता है कि वह प्लास्टिकका बना हुआ है ।" हेनरीने चलते-चलते कहा !

"काश मैं भी प्लास्टिकका बना हुआ होता—तो इस समय मुझे दस दिनोंके लिए बिस्तरपर तो न लेटना पड़ता !" कँवलने हेनरीसे कहा—और जब हेनरी चला गया तो अधेड़ उम्रकी ऐगनस, जो उसकी नर्स थी, अपने दोनों हाथोंमें फूलोंका एक बहुत बड़ा 'बुके' लिये अपने बड़े-बड़े दातोंकी मुसकराहट चमकाती हुई अन्दर आयी और मेरे सिरहाने उसने वे फूल रख दिये ।

मैंने फूलोंके साथ भेजा हुआ कार्ड पढ़ा—उसपर एक प्रश्न अंकित था—'हाऊ मेनी बोन्स ?' नीचे जूलिया क्राम्बीके हस्ताक्षर थे ।

मैंने हाथके एक झटकेसे गुलदस्तेको परे कर दिया । गुलदस्ता बिस्तरेसे लुढ़ककर फ़र्शपर जा गिरा । एगनस गुस्सेसे मेरी ओर देखती रह गयी !

कँवलने जूलियाको बिस्तरपर सोये हुए देखा—उसे ऐसा जान पड़ा जैसे उस गुलदस्तेके प्रश्नकी घृणा इस समय भी जूलियाके चेहरेसे झलक रही है । जैसे जूलिया नींदमें इस समय भी इतने सालोंके बाद उसपर हँस रही है । कँवल जूलियाके हाथसे अपना हाथ निकालकर एक ज़ोरका हाथ जूलियाके गालपर जमाना चाहता था—मगर बड़ी मुश्किलसे उसने अपने-आपको रोका । उसकी आज़ादीमें अब ज़्यादा देर नहीं है—मगर इससे पहले कि वह पूरी तरह आज़ाद हो जाये वह अपने गुज़रे ज़मानेको अच्छी तरह देख लेना चाहता था—कहीं उसके फ़ैसलेमें कोई ग़लती न रह जाये ।

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रस्तुत

नये प्रकाशन

■ वाग्धारा : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

भारतीय संस्कृतिके परिप्रेक्ष्यमें मनीषी विद्वान्की मुख चिन्तन-धारा ! चुने हुए महत्त्वपूर्ण पच्चीस निबन्धों संकलन—जिसमें भारतीय संस्कृतिसे सम्बन्धित गहनतम सूक्ष्म विषयोंका प्रामाणिक अध्ययन-विश्लेषण है। ४.००

■ अग्निबीज : डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

हिन्दीमें अपने प्रकारकी अनूठी और मर्मस्पर्शी नयी कविताओं-का संग्रह। सहज और स्वच्छ व्यंजना-सारभूत काव्यत्व! काव्यप्रेमी पाठकके लिए अनिवार्य। ३.५०

■ उस्तादाना कमाल : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ख्यातिप्राप्त उर्दू शाइरों-द्वारा की गयी सुरुचिपूर्ण इस्लाहें और उनके देनेकी वजूहातोंका एक गमकता हुआ गुलदस्ता: गोयलीयजीकी अपनी अलबेली शैलीमें। ४.००

■ हिन्दी शब्द-रचना : माईदयाल जैन

दस वर्षोंके गम्भीर परिश्रमके बाद लिखी गयी एक महत्त्वपू कृति। शब्द-रचनाकी परम्पराओंका वैज्ञानिक और व्याप अध्ययन-विवेचन। विद्यार्थियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी। ६.००

विक्रय-केन्द्र
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१,
नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता ■ वाराणसी

दस दिनकी जगह उसे बीस दिन बिस्तर-पर रहना पड़ा था। आखिर वह ठीक होकर फिरसे काममें लग गया था। कँवल बड़ा होनहार प्लास्टिक सर्जन था—उस झगड़ेका कोई समाचार पत्रोंमें प्रकाशित नहीं हुआ था। सेण्ट जॉर्ज हस्पतालके लिए उसकी सेवाएँ अमूल्य थीं इसीलिए वह निकाला नहीं गया था। बल्कि सब लोग उसीसे हमदर्दी जताने उसके पास आते थे! अब होता वह कोई साधारण सर्जन तो एक कलर्ड डॉक्टर समझकर उसे अबतक हस्पतालसे अलग कर दिया गया होता—मगर अभी हस्पतालको उसकी ज़रूरत थी और ज़रूरत भी क्या चीज़ है? ज़रूरत हो तो रंग-जाति-भेद, धर्म, निजी पसन्द और नापसन्दकी प्रत्येक भावना दबा दी जाती है और उस भावनाको दबा देनेके लिए भाँति-भाँतिके सुन्दर शब्दोंका सहयोग लिया जाता है। शब्द जैसे मनुष्यता, शब्द जैसे समता, शब्द जैसे ईश्वर-कृपा, अधिकार, विशाल-दृष्टि और जाने कैसे-कैसे सुन्दर नाम, कोमल भावनाएँ और मनोहर विज्ञान इस बुनियादी ज़रूरतपर आवरण चढ़ानेके लिए प्रयोगमें लाये जाते हैं! कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता है कि इस संसारमें जितनी सुन्दर भावनाएँ हैं, सब-कुछ बुनियादी आवश्यकताओंकी कठपुतलियाँ हैं!

फिर एक दिन हस्पतालमें जूली मुझसे मिलनेके लिए आयी! उस सुघड़ सिली हुई पीले रंगकी फ़्रॉकमें वह एक पीले गुलाबका फूल जान पड़ती थी—मगर उसकी नज़रोंमें और उसकी मुसकराहटमें तेज़ व्यंग्यके काँटे थे जब वह कमरेमें आयी, तो एक कँटीली झाड़ीकी तरह सरसरा रही थी!

"क्या तुमने पुलिसको सूचित कर दिया है?" उसने आते ही पूछा।

"काहेके लिए?"

"यही कि मेरे तीन पति हैं—अगर तुम ये सिद्ध कर सको तो मैं सीधी जेल जा सकती हूँ!"

"पहले तो मुझे तुम-जैसी सुन्दर स्त्रीको जेल पहुँचानेसे कोई लगाव नहीं है, फिर मुझे यह बात भी बड़ी प्रिय और मनोहर मालूम हुई कि लन्दनमें एक स्त्री ऐसी भी है जो मर्दोंको उसी प्रकार धोखा दे सकती है जिस प्रकार मर्द औरतोंको देते हैं—तुम्हारी बहादुरी मुझे प्रिय लगी इसलिए पुलिसमें जानेका सवाल पैदा नहीं होता।"

"तो शायद तुम उन तीनों गोरोंके विरुद्ध रिपोर्ट देनेका इरादा रखते हो जिन्होंने तुम्हें पीटा था!"

"ऐसा कोई विचार नहीं है मेरा—हाँ, मैं उन तीनोंको अच्छा हो जानेपर अलग-अलग पीटनेका इरादा अवश्य रखता हूँ—एक आज्ञाकारी पत्नी होनेके नाते तुम्हें कोई आपत्ति है?"

"इसके विपरीत, मुझे तो खुशी होगी यदि तुम उन तीनोंकी हड्डियाँ तोड़ सको—और वे तुम्हें खतम कर सकें! तुम चारोंने उस दिन मेरे लिए जो जंजाल खड़ा किया है उससे मुझे बड़ी कोफ़्त हो रही है!"

"क्यों?"

"उस दिन मेरा सारा भेद खुल गया और वे तीनों मुझपर दावा करनेकी सोच रहे हैं !"

"और हेनरी ?"

"हेनरीने मुझे छोड़ दिया है !" वह होंठ चबाकर बोली, "मगर मैं एक अजनबीसे इस प्रकार क्यों बातें कर रही हूँ...."

"क्योंकि मैं तुम्हारा चौथा पति होने जा रहा हूँ !"

"शट-अप !" वह गुस्सेमें खौलती हुई बोली, "कोई काला आदमी मेरा पति नहीं हो सकता !"

"फिर तुम मुझसे मिलनेके लिए क्यों आयी ? खैरियत पूछने या यह मालूम करने कि मैं पुलिसमें जा रहा हूँ कि नहीं ?...मान लो कि मैं पुलिसमें रिपोर्ट करना चाहता हूँ ?"

"मैं तुम्हारी इस इच्छाको खरीदना चाहती हूँ—क्या लोगे ?"

"तुम्हें !"

"तुम्हें शायद मालूम नहीं है, और मुझे यह कहना भी न चाहिए मगर क्या करूँ—शायद यह मेरे ख़ूनमें है कि मुझे काले लोगोंको देखकर विचित्र प्रकारकी घृणाका अहसास होने लगता है। जब मैं उस दिन तुम्हारी बाँहोंमें थी तो जी चाहता था कि तुमपर थूक दूँ !"

"धन्यवाद !"

"इसलिए ढंगकी बात करो—मैं तुम्हें रुपये दे सकती हूँ, तुम्हारी खामोशी खरीदनेके लिए पाँच सौ पौण्ड दे सकती हूँ !"

"बहुत कम हैं !"

"इससे अधिककी—" वह रुक गयी, एक लम्बी चुप्पीके बाद बोली, "चलो...मैं कहीं-न-कहींसे डेढ़-दो सौ पौण्ड और कर लूँगी।"

"मैं एक लाख डॉलर लूँगा !"

"पागल हुए हो ?"

"एक लाख डॉलर तुम्हारी-जैसी अनुपम सुन्दरी, कोमल अंगोंवाली स्त्रीके बदलेमें बहुत कम माँगे हैं मैंने !"

"एक लाख डॉलर मैं कहाँसे दे सकती हूँ ?"

"यह मुझे मालूम है।"

"फिर क्यों माँगते हो ?"

"किसने माँगे ? यह क़िस्सा तुमने छेड़ा है—तुम मेरी ख़ामोशीकी क़ीमत चुकाना चाहती हो, मैंने अपनी क़ीमत बता दी।"

"कम नहीं करोगे ?" वह मेरी ओर कुछ विनती, कुछ विवशता, कुछ गुस्सेसे देखने लगी ! उसके चेहरेपर इस समय आशा-निराशाकी शतरंजी खुल रही थी।

"एक डॉलर कम कर दूँगा !"

"मज़ाक़ करते हो ?"

"तो दो डॉलर कम सही।"

"मैं आठ सौ पौण्डसे अधिक नहीं दे सकती—यह मेरा अन्तिम ऑफ़र है।"

"अपने यहाँ भी फ़िक्सड प्राईसका उसूल चलता है।"

"मैं तुम्हारा गला घोंट सकती हूँ !"

"शौक़से,—आगे बढ़िए।"

"डर्टी निगर !"

"लवली गर्ल !"

"क्यों नहीं उन तीनोंने तुम्हारी जान ले ली !"

"लुक स्वीट पाई। मज़ाक़ ख़त्म हो चुका—न मैं तुम्हारा चौथा पति बनना चाहता हूँ न तुमसे एक डॉलर या एक पौण्ड लेना चाहता हूँ, न पुलिसमें जाना चाहता हूँ—अब आप इतमीनानसे जा सकती हैं मिस जूलिया क्रॉम्वी—!"

उसने मेरी ओर गहरी आग-भरी नज़रोंसे देखा—फिर कुछ कहे-सुने बिना कमरेसे बाहर निकल गयी ! मगर उसकी आँखोंमें मेरे लिए असीम घृणा थी जैसे वह इस कृपाको भी स्वीकार करनेके लिए तैयार न थी—मगर विवश थी और इस विवशताके कारण उसकी घृणा मुझसे और भी बढ़ गयी थी ! मुझे उसके आचरणपर कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि मैंने स्वयं अपने जीवनमें यही किया है। जिस किसीने मुझपर कोई कृपा की—मैं दिल-ही-दिलमें उसे नापसन्द करने लगा। शायद मुझे यह बात प्रिय नहीं है कि कोई भी मेरे लिए ऐसी स्थितिमें हो कि मुझपर कृपा कर सके—स्वयं कृपा करनेवालेके मनमें एक बुरी भावना छुपी रहती है—जैसे कृपा करके उसका चेहरा बता रहा हो—देखा, जिस कामको तुम अपने लिए न कर सके, वह हमने तुम्हारे लिए कर दिया ! अब झुका दो अपने कन्धे, और गिरा दो अपने हाथ जमीनपर और झुककर चलो एक गधेकी तरह ताकि हम अपनी दयाका बोझ तुम्हारी पीठपर लादकर चलें !

खुली बात है, कोई सभ्य पुरुष गधा बनना पसन्द नहीं करता।

तीसरे पहर हेनरी मेरे पास आया !

"जूली आयी थी ?" उसने पूछा।

"हाँ !"

"फिर ?"

फिर मैंने उसे पूरी बात बता दी। सुनकर हेनरीने बड़े आश्चर्यसे सिर हिला दिया—"तुमने व्यर्थ ही अपनी पूर्वी सभ्यताका सबूत दिया—उससे रुपये ले लिये होते !"

मैंने इनकारमें सिर हिला दिया।

"तुम उससे प्रेम करने लगे हो !"

"बिलकुल नहीं।"

"फिर ऐसे देवता बननेकी क्या आवश्यकता थी—आठ सौ पौण्ड ?"

मैं चुप रहा।

वह बोला, "उसके तीनों पति अपने वकीलोंसे विचार-विमर्श कर रहे हैं—अब तुम्हें एक पैसा नहीं मिलेगा !"

"न मिले।"

"जूली लन्दन छोड़कर कहीं चली गयी है—उसे किसी तरह शायद ख़बर मिल गयी होगी।" हेनरी विवकबर्नने मुझे बताया, फिर कुरसीसे उठ खड़ा हुआ, अपने मुँहमें पाइपको ठीक करता हुआ बोला, "वह धनकी दासी

लड़की इस समय तुम्हारे वशमें थी—तुमने उसे क्यों जाने दिया मूर्ख ! तुम एक गाड़ी खरीद सकते थे !''

''हमारे यहाँ धनवान किसान अपनी भैंसोंके गलेमें सोनेकी हँसुली पहनाते हैं !''

''क्या मतलब ?'' वह आश्चर्यसे मेरा मुँह तकने लगा—''यह क्या बात हुई ?''

''तुम नहीं समझोगे....यह पश्चिम और पूर्वका अन्तर है ।''

''फिड्लस्टिक्स !'' उसने व्यंग-भरे स्वरमें कहा और कमरेसे बाहर जाते-जाते कहने लगा—''वेल, सो लॉंग, आई गेस, यदि यह मामला समाचार-पत्रोंमें पहुँच गया तो शायद मुझे भी सेण्ट जार्ज़ज़से जाना पड़ेगा,'' इतना कहकर उसने पाइपसे एक चिन्तापूर्ण कश लिया और बिना आवाज़ किये कमरेसे बाहर निकल गया । मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं—मेरे पपोटोंके अन्दर हरे रंगका एक पाइप सुलग रहा था जिसका रंग धीरे-धीरे पीला होता जा रहा था—पाइप अब फैलकर एक फ़्रॉक बन गया था—फ़्रॉकमें पीले फूल खिल गये थे !

(क्रमशः)

गुरु निवास, १५वाँ रास्ता,
खार, बम्बई-५२

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

● सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, जगदीश

● मूल्य :
६.०० वार्षिक, ००.५५ पैसे प्रति

'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी, जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करना है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके ।

सम्पर्क-सूत्र : भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

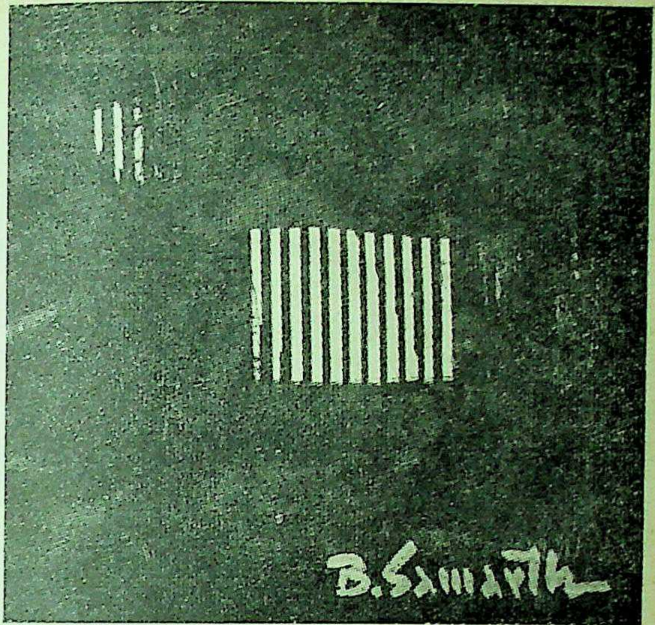

कॉमनवेल्थ कविताएँ

अग्निपुष्प ! तुम लौट आओ

०

पक्षियों की अनुपस्थिति में,
एक सदाबहार वृक्ष के पीछे,
वर्षा भीगे सूर्यास्त के साथ
एक सम्पूर्ण आकाश अस्त हो रहा है ।
रेगिस्तान में डूबते हुए स्मृतियों के समुद्रों की मानिन्द
पानी के बड़े-बड़े चहबच्चे सड़क पर बन गये हैं।
वर्षा को जोतने की सूर्य की नादान कोशिश
व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है ।
अत: ओ अग्निपुष्प !
हवा के पंखों पर बैठकर
तुम लौट आओ ।

वह, जिसे तुम माणिक कहते हो;
मृत्यु है।
और समुद्र के सूखने पर
तल की बालू में उपलब्ध है।
रोशनी के प्राण कहीं और रहते हैं
वर्षा और किसी वृक्ष के समीप,
जब ये दोनों परस्पर एक होते हैं।
ओ फूटनेवाली प्रथम कोंपल !
और गिरते हुए अन्तिम फल !
जड़ पकड़ने के पहले ही तुम
हवा को दे दिये गये थे।
आकाश केवल इसीलिए फूला
कि आदमी ने बढ़ना शुरू किया;
पानी के किनारों पर, जहाँ पत्थर गिरते हैं
और डूब जाते हैं,
आकृतियों को आत्माओं में बदलते देखा गया
अर्थात् एक घोंघा शब्द में बदल गया।
अग्निपुष्प ! तुम लौट आओ, वापस,
हवा की हथेलियों पर बैठकर।

—मार्टिन कार्टर (१९२७)
ब्रिटिश गायना

सफ़ेद चट्टानों की घाटी

०

जब वह अपनी पिण्डलियों को
एक दूसरे के ऊपर रखती है
मांस के दो पीले चन्द्रमा उदय होते हैं
उसकी हरी जुर्राबों के ऊपर।

फिर वह कुरसी से उठती है
और वे पीले चन्द्रमा
काले जल में डूब जाते हैं
मैं दरवाज़े तक उसका पीछा करता हूँ ।

सफ़ेद चट्टानों की घाटी
और उस पर बिछलती हुई चाँदनी
यानी कि चाँदी के झरने में
एक मछली ।

अब वह मेरी दृष्टि को
एक धागे से बाँध कर
अपने सुवृत्त वक्षोजों के चारों ओर
लपेट लेती है
और यों
अनेक पशुओं के बीच घिर जाती है ।

इन सफ़ेद चट्टानों के बीच
काले घोड़े और गैण्डे चरने लगते हैं ।
झरने की चादर में
मैं उसे लपेट लेता हूँ
और वह पानी मुझमें समा जाता है ।

अब मैं पानी हूँ,
मैं यहाँ पहले भी आया था ।
उसकी हरी जुर्राबों के ऊपर ।

—पॉल इवान्स (१९४५)
वेल्स

मौनमुखर प्यार

०

शाम सुनहरा गोटा
दूर-दूर तक की पहाड़ियों पर टाँक देती है,
जिस समय मैं धीरे-धीरे
उस सूनी पगडण्डी पर
अपनी 'श्यामा' से मिलने जाता हूँ ।

काठ का सपना

गजानन माधव मुक्तिबोध

स्व० मुक्तिबोधकी बड़ी सशक्त और मार्मिक कहानियोंका महत्त्वपूर्ण बहुप्रतीक्षित संग्रह।

परिवेश

मोहन राकेश

हिन्दी नयी कहानीके अग्रगण्य कथाकारके विचार-चिन्तन, व्यक्ति – निबन्ध तथा यात्रा-वृत्त।

माया दर्पण

श्रीकान्त वर्मा

नयी पीढ़ीके विशिष्ट कविकी नवीनतम कविताओंका एक अनुपम संग्रह।

कुतबशतक और उसकी हिन्दुई

डॉ० माताप्रसाद गुप्त

'कुतबशतक'-सम्बन्धी समस्त प्राप्य सामग्रीका अधिकारी-मर्मज्ञ विद्वान्-द्वारा अध्ययन-विश्लेषण।

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वारा शीघ्र ही प्रकाश्य ये चार कृतियाँ

पानी का आखिरी घड़ा लिये
वह सोते के किनारे होगी,
जिस समय मोड़ की परिचित झाड़ियों के पास से
मैं गुजरता हूँ, मेरा दिल जान लेता है—
वह वहीं होगी
क्योंकि ऐसा रोज़ होता है ।

मैं वहीं रुककर उसका इन्तज़ार करता हूँ
सबसे पहले उसके घड़े का ऊपरी छोर दिखाई देगा

फिर उसके नंगे, भूरे कन्धे
फिर एक पतली सुराहीनुमा गरदन
जिसमें गोल टिकुली वाली गले की लड़ होगी
तापहीन सूर्य की मानिन्द····

काली चितवनों का फिर एक हलका-सा खम
मेरी ओर····फिर मुसकराहट····
जैसे परछाइयों में प्राण आ जाता है ।

बस इतना ही····
इससे अधिक वह कुछ नहीं कहती
इससे अधिक कुछ सुनने की
मेरी लालसा भी नहीं ।
मुझे राह देने के लिए वह थोड़ा-सा हट जाती है
मैं भी थोड़ा-सा किनारा लेता हूँ
एक क्षण को इस प्रक्रिया में
हम दोनों की दृष्टियाँ
एक निरपेक्ष अन्तराल में जुड़ जाती हैं
एक दूसरे को समझती हुई, कहती हुई
कि इसी तरह कल भी··· इसी समय···

—डेविड रुब्रादिरी (१९३०)
मलावी

उपद्रवग्रस्त क्षेत्र

०

उन्होंने मेरी झोंपड़ी जला दी है ।
वे अजनबी नहीं थे,
और पुलिस के सिपाही भी नहीं
वे सरकार द्वारा भेजे गये पड़ोसी हैं ।

मैं इन्हें मित्र क्यों न कहूँ?
वे पड़ोस के गाँव में रहते हैं
वे हमारे मित्र क्योंकर नहीं हैं ?
एक ही नाले पर दोनों गाँव पानी भरते हैं
हम उनकी मृत्यु पर शोक मनाते हैं
वे हमारे विवाह भोजों में शामिल होते हैं ।
फिर उन्होंने मेरी झोंपड़ी क्यों जला दी ?
सारी छत झुलस गयी है
गिरती हुई शहतीरों ने चाय के सारे कप
तोड़ दिये ।
मेजें और कुरसियाँ जल गयी हैं
एक कम्बल में दुबका हुआ
मैं बाहर बैठा हूँ
और मेरी झोंपड़ी जल रही है ।

—जे० एच० चेपलिन (१९२४)
केन्या

हममें से एक

०

हम एक ही जगह बैठकर लिया करते थे
मैं उससे कभी नहीं बोला था,
क्योंकि मैं उसे
केवल चेहरे से जानता था :
एक अजीब चेहरा : कुछ था उसमें
जो एकदम नंगा था, घोंघे की तरह
अपनी ही बुनावट के भीतर धँसा हुआ—
जिसे यह बिलकुल पता नहीं होता
कि हवा क्या होती है, तब तक
जब तक कि उसका अपना पत्ता नहीं
जाता—

पत्तों का घर''''
जिसमें बैठकर सालों कवि और उनके दोस्त
पीयेंगे, पीकर कुछ रोयेंगे,
कुछ अपने आँसुओं से कविताएँ लिखेंगे।
इस दरम्यान बन्द दरवाज़े के उधर
वह अपनी इच्छाओं को चबाते हुए चीखेगा।
एक ग्लास फ़र्श पर टूटेगा
और लकड़ी में आग की पट्टियाँ लपेट देगा।
चुपचाप बैठकर पीनेवाले लोग चिल्लाना शुरू करेंगे
या रात के अँधेरे में कहीं चले जायेंगे।
लेकिन जब तक भय समाप्त नहीं होगा,
वह पादरी की तरह 'आमीन' कहता हुआ
नज़रें झुकाये रखेगा :

इसी बीच कोई घड़ियाल दस बजायेगा
तब उसके मोटे होठ खुलेंगे
मानो कहेंगे—मैं यहाँ आना ही नहीं चाहता था।
और वह चला जायेगा,
मुझे सकते में छोड़कर''''
कि वह कहाँ जायेगा,
रोशनियों की ओर अकेला ताकने वाला
यह 'वह'
क्या हममें से ही कोई एक था ?
जो हर रात,
मृत्यु की ओर
एक क़दम और सरक जाता था।

—डॉम मॉरेस (१९३८)
भारत

(अनु० : परेश
थ्री ब्रिजेस, शिमला-१)

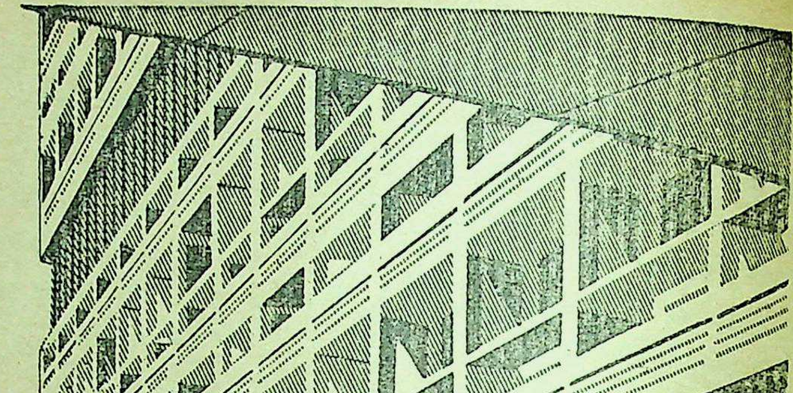

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

हमारा निर्यात क्यों नहीं बढ़ता ?

वारेन्द्र अग्रवाल

रुपयेका अवमूल्यन नितान्त आवश्यक था परन्तु वह ऐसे निशान छोड़ गया है जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। अर्थशास्त्री बहुत हद तक इस बातका समर्थन करते हैं कि अवमूल्यनके बाद यह भी आवश्यक था कि ऋण-नियन्त्रणमें ढील की जाती, वित्तीय संस्थाओंके ज़रिये अधिक सहायता दिखायी जाती और विशेष रूपसे निगमित एवम् व्यक्तिगत आयपर करारोपणमें कमी की जाती, औद्योगिक लाइसेंस देनेकी नीतिको उदार बनाया जाता और नियन्त्रण समाप्त किये जाते ताकि स्पर्धा बढ़ती, कार्यकुशलताको प्रोत्साहन मिलता और लागत खर्चमें कमी होती। चूँकि आयातका मूल्य ३४५ करोड़ रुपये अधिक होनेका अनुमान है इसलिए उद्योगोंके पास देशीय पूँजी अधिक होनी चाहिए। यह ठीक है कि अधिक नोट न छापने, चौथी योजनाकी लागत कम करने और विदेशी सहायतापर निर्भरता घटाने, उद्योगोंमें लगायी जानेवाली पूँजीको कृषिमें लगाने और अन्नोत्पादक व्यय कम करनेसे अर्थ-व्यवस्थामें फिरसे जान आ जायेगी। मूल्य स्थिर करनेके लिए मजूरीकी स्थिरता लाभप्रद सिद्ध हो सकती है परन्तु ऐसा करनेसे अधिक वर्ग असन्तुष्ट हो जायेगा।

अवमूल्यनको सफल बनानेके लिए अल्पकालीन उपाय तो यह है कि मूल्योंको बढ़ने न दिया जाये और दीर्घकालीन उपाय यह है कि प्रत्येक क्षेत्रमें स्वावलम्बी बना जाये। इस बारेमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि कमसे कम समयमें स्वावलम्बी बननेके लिए आयात प्रतिस्थापन और निर्यात संवर्धन दोनोंका ही सहारा लिया जाये। तीसरी पंचवर्षीय योजनाके आख़िरी वर्ष (१९६५-६६) में १३९४ करोड़ रुपयेका आयात किया गया जबकि प्रथम वर्ष (१९६१-६२) में ११४० करोड़ रुपयेका किया गया था। २५४ करोड़ रुपयेकी यह वृद्धि मुख्यतः अधिक अनाज और कच्चा माल तथा मशीन बनानेवाले उद्योगके लिए आवश्यक पुर्ज़े तथा मध्यवर्ती सामानका आयात करनेके कारण हुई। जहाँ तक निर्यातका सवाल है, दूसरी योजनाकी तुलनामें तीसरी योजनामें इसमें २५ प्रतिशतकी वृद्धि हुई। १९६१-६२ में ६८० करोड़ रुपयेका

निर्यात हुआ और १९६५-६६में ८०९.५५ करोड़ रुपयेका। निर्यात और भी अधिक बढ़ जाता यदि मॉनसून न आनेके कारण फ़सलें खराब हो गयी होतीं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि सामान्य रूपसे निर्यात बढ़ा फिर भी तीन परम्परागत निर्यातकी वस्तुओं अर्थात् चाय, सूती वस्त्र और पटसनके सामान का निर्यात घट गया। यह कमी इंजीनियरीके सामान, खनिज अयस्क तथा रसायनोंका निर्यात बढ़नेसे पूरी हो गयी। स्पष्ट है कि चौथी योजनाके दौरान ८०.३० करोड़ रुपयेके निर्यातका लक्ष्य तभी पूरा हो सकेगा जबकि कृषि, खनिज तथा उद्योग-क्षेत्रोंके उत्पादनके लक्ष्य पूरे हो जायें।

अवमूल्यनसे यह आशा की जाती है कि आयात घटने और निर्यात बढ़नेसे व्यापार-असन्तुलन कम हो जायेगा। हमारी यह हालत है कि आयात तो कम हो नहीं सकता क्योंकि उद्योगोंको कच्चे मालकी ज़रूरत है, इसलिए निर्यात बढ़ानेके कामको विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए था। परन्तु हमारी सरकार शिथिलतासे काम ले रही है। अवमूल्यनके बाद सरकारने पहला प्रशंसनीय क़दम तो यह उठाया कि आयातको उदार बनाया और दूसरा यह कि निर्यातको प्रोत्साहन देनेकी खातिर चुने हुए कुछ औद्योगिक उत्पादनोंके लिए १०से १५ प्रतिशत तक नक़द सहायता देनेका निश्चय किया। जहांतक चाय और पटसनका सम्बन्ध है इन्हें अवमूल्यन-काफ़ी फ़ायदा पहुँचा सकता है। बशर्ते कि कम मूल्य होनेपर विदेशोंमें इनकी खपत बढ़ जाये। कुछ-एकपर निर्यात-शुल्क लगा दिये गये हैं।

वाणिज्य-मन्त्रीने हालमें ही निर्यात-शुल्क लगानेके बारेमें सफ़ाई पेश की है। राजकोष-को ३० करोड़ रुपयेकी हानि होगी लेकिन राज-सहायताके कारण २०० करोड़ रुपयेका निर्यात बढ़नेकी आशा है। मुनाफ़ेको देखते हुए राज-सहायता निर्धारित की गयी है परन्तु एक शर्त रखी गयी है—वह शर्त यह है कि निर्यात की जानेवाली वस्तुमें जितनी आयातित सामग्री अधिक प्रयुक्त हुई होगी उतनी राज-सहायता कम की जायेगी। इससे आयातको घटानेकी कोशिश की जायेगी। रिज़र्व बैंकके गवर्नरका कहना है कि राज-सहायताका जितना अधिक उपयोग किया जायेगा रुपयेके मूल्यको गिरनेसे रोकना उतना ही अधिक कठिन होगा। निर्यातके लिए राज-सहायता देनेका अभिप्राय यह समझा जाता है कि मुद्रा की विनिमय-दर यथार्थतापूर्ण नहीं है इसलिए यह व्यवस्था स्थायी नहीं बन सकती। परन्तु इंजीनियरी उद्योगकी दृष्टिमें यह राज-सहायता बिलकुल अपर्याप्त है और मूल्योंकी वर्तमान स्थिति देखते हुए उन्होंने अनेक शंकाएँ व्यक्त की हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अगर अवमूल्यनको सफल बनाना है तो धन और राजकोष सम्बन्धी नीतिमें आमूल परिवर्तन करना होगा। बेहतर यही होगा कि सरकार टैक्सकी उच्चतम दरें निर्धारित कर दे और ग़ैर सरकारी उद्योगोंके विकासके लिए उदारता-से ऋण तथा वित्तीय संस्थाओंके ज़रिये सहायता दिलाये।

अकसर यह दलील दी जाती है कि

विदेशी व्यापारका राष्ट्रीयकरण करनेसे आयात और निर्यात क्षमताका पूर्ण उपयोग किया जा सकेगा। चतुर्थ दशकमें जर्मनीने यह बहुत अच्छी तरह साबित कर दिया था कि विदेशी व्यापारपर शासनका नियन्त्रण रहनेसे क़र्जदारकी हालत ख़राब होनेकी बजाय बेहतर भी हो सकती है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि उस समय जर्मनीपर हिटलरकी फ़ासिस्ट हुकूमत थी। वहाँपर यह सम्भव था परन्तु उन लोगोंको जो राष्ट्रीयकरण और समाजवादी नियन्त्रणके पक्षमें हैं यह फ़ैसला कर लेना चाहिए कि क्या वे लोकतन्त्रवादी संस्थाके ज़रिये आर्थिक उन्नति करना चाहते हैं या नौकरशाहीके ज़रिये ? उद्देश्यके बारेमें हमारा कोई मतभेद नहीं है लेकिन उसे प्राप्त करनेका तरीक़ा भी उतना ही सम्मानपूर्ण और लोकतन्त्रात्मक होना चाहिए, अन्यथा उद्देश्य पूरा नहीं होगा। वाणिज्य-मन्त्रीने ठीक ही कहा है कि विदेशी व्यापारका राष्ट्रीयकरण करनेसे सारी बुराइयाँ दूर नहीं हो जायेंगी। अगर हालातको देखते हुए किसी वस्तु या विदेशी व्यापारको अपने हाथमें लेना आवश्यक हो तो हमें इसमें संकोच नहीं करना चाहिए, लेकिन यह नहीं होना चाहिए कि लोगोंका ध्यान दूसरी दिशामें ले जानेके लिए इसे एक नारा ही बना लिया जाये। आज ऐसे उपाय करनेकी ज़रूरत है जिनसे लागत खर्च घटाया जा सके ताकि विदेशी बाज़ारोंमें हमारी चीज़ें मुक़ाबलेमें खड़ी हो सकें।

व्यापार-मण्डलने हालमें ही यह राय व्यक्त की है कि जो चीजें निर्यात की जा सकती हैं उनकी खपत देशके भीतर घटायी जानी चाहिए ताकि अवमूल्यनका पूरा लाभ उठाया जा सके। प्रधान मन्त्रीने निश्चय किया है कि वह चीनी और काजूका उपभोग नहीं करेंगी। पता चला है कि उत्तरी भारतकी चायका निर्यात १ जुलाईसे १५ अगस्त तककी अवधिमें घटकर १४०.८ लाख किलोग्राम रह गया है जबकि पूर्वगामी वर्षकी इसी अवधिमें यह २२५ लाख किलोग्राम था। भारतमें चायकी खपत जो १९५६में ७१० लाख किलोग्राम थी १९६५में १६८० लाख किलोग्राम हो गयी है। इस समय संसारमें चायकी सप्लाई इतनी बढ़ गयी है कि देशीय खपतपर नियन्त्रण करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। अधिक लागत-मूल्य, विभिन्न नियन्त्रणों तथा शासकीय शुल्कों और निर्यात शुल्कके कारण भारतीय चाय इस योग्य नहीं रही कि वह अन्य देशोंका मुक़ाबला कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीलंकाने व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर क़ीमतें मुक़र्रर कीं और विदेशोंमें भारतीय चायके खरीदारोंको अपने हाथमें ले लिया। देशमें खपतको घटानेकी बजाय बेहतर यह होगा कि टैक्सोंमें भारी कमी की जाये। कम क़ीमतपर अगर बढ़िया चाय बेची जाये तो कोई कारण नहीं कि इसका व्यापार न बढ़े। पटसनके सामानके बारेमें यह धारणा है कि वह अधिक प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है और अगर मुनाफ़ा नहीं बढ़ा तो घाटा अवश्य कम हो गया है। यह भी सही है कि २२० करोड़ रुपयेका निर्यात

१९६६ की उपलब्धि

श्रेष्ठ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

१९६६

• कविता

ओटक्कुष़ल : महाकवि जी० शंकर कुरुप	८.००
एक और नचिकेता : महाकवि जी० शंकर कुरुप	३.००
तार सप्तक : सं० अज्ञेय	८.००
शहर अब भी सम्भावना है : अशोक वाजपेयी	३.००
अग्निबीज : डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय	३.५०

• कहानी-उपन्यास

मुरदा सराय : डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
राजा निरबंसिया : कमलेश्वर	५.००
सवेरा संघर्ष गर्जन : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	७.००
अस्तंगता : भिक्खु (उपन्यास)	६.००

• ललित निबन्ध-संस्मरण

वाग्धारा : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	४.००
वह नन्हा-सा आदमी : सुमंगल प्रकाश	६.००
कुछ निबन्ध : अक्षयकुमार जैन	२.५०

• शाइरी

उस्तादाना कमाल : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००

• आलोचना-अनुसन्धान

नये प्रतिमान : पुराने निकष लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
अपभ्रंश भाषा और साहित्य डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
हिन्दीके आदि मुद्रित ग्रन्थ कृष्णाचार्य	७.००
कविवर बनारसीदास डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	१०.००
हिन्दी शब्द-रचना माईदयाल जैन	६.००

• सांस्कृतिक

सुगन्धदशमी कथा : डॉ० हीरालाल जैन	११.००
जैन न्याय : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री	९.००
जैन शिलालेख संग्रह भाग-४ : सं० डॉ० जोहरापुरकर	७.००
सोलह कारण भावना : महात्मा भगवानदीन	२.००

१९६६

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : **३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६**

१४

प्रति वर्ष हो सके इसके लिए पटसन उपलब्ध नहीं है। पिछले अढ़ाई महीनेमें पटसन उद्योग-को काफ़ी घाटा उठाना पड़ा है। जूनमें केवल ४२००० मोटरी टन पटसनका सामान निर्यात किया गया और जुलाईमें ६०००० मोटरी टन निर्यात किया गया था। इसके लिए सरकारने कच्चे मालका अनुमान १९६५के उत्पादनसे ११० लाख गाँठें अर्थात् लगभग ८० प्रतिशत लगाया है। एक समिति यह छानबीन कर रही है कि प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने और क़िस्म सुधारनेके लिए उत्पादकों-को कितनी सहायता दी जानी चाहिए। विदेशी मुद्राकी सबसे अधिक आय पटसनके सामानसे होती है और इसकी ओर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए। कच्चे मालकी कमीके कारण बहुत चिन्ता हो रही है।

निर्यात बढ़ानेमें सबसे बड़ी रुकावट यह है कि भारतीय तथा विदेशी वस्तुओंके मूल्योंमें बढ़ा अन्तर है। भारतीय सामानका मूल्य इतना अधिक है कि अन्य देशोंमें उसकी माँग बिलकुल ख़तम हो रही है। यही महसूस करते हुए सरकारने अवमूल्यन किया था। सभीका मत है कि सरकारको अपनी राजकोष सम्बन्धी नीतिका अवलोकन करना चाहिए ताकि वह निर्यातके लिए बाधा उत्पन्न न करे। यह तो सही है कि कृषि तथा उद्योग-वस्तुओंका उत्पादन बढ़ानेके लिए तुरन्त उपाय किये जाने चाहिए लेकिन चौथी योजनाके लिए ८०.३० करोड़ रुपये (अवमूल्यनसे पूर्व जो ५१० करोड़ रुपये था) का लक्ष्य रखा गया है, वह तबतक एक स्वप्न रहेगा जबतक उत्पादन-लागत नहीं घटायी जाती। बेहतर यह होगा कि योजनाओंके निर्माता ऐसे रास्ते निकालें जिनसे टैक्सोंमें कमी की जा सके। तभी अवमूल्यन चिरकाल तक एक उपयोगी उपाय सिद्ध हो सकेगा।

बैर्ड रोड, फ्लैट नं० ४,
लेडी हार्डिंज हॉस्पिटल,
नयी दिल्ली

अठारह सूरजके पौधे
रमेश बक्षीका नया उपन्यास
■ ■
बिलकुल नयी शैलीमें लिखा आदिसे अन्त तक एक आत्मीय संगीतमें डूबा हुआ कथानक! बहुत रोचक।
मूल्य ३.००
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

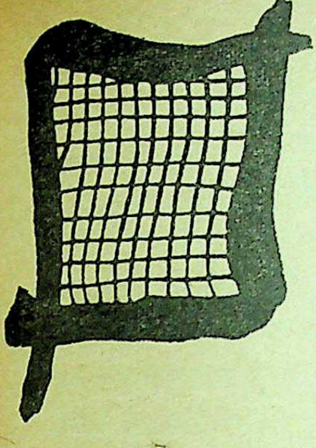

'शुद्ध कविताकी खोज'* में दिनकर

१-कुछ सहज प्रश्न : कैलाश वाजपेयी

वैचारिक धरातलपर दुनिया अब वहाँ खड़ी है जहाँ एकदम नये ढंगसे सोचनेकी अनिवार्यता तीव्रतर होती जा रही है। यदि समूचे विश्वमें पिछले तीन-चार दशकोंमें रचे गये साहित्यकी पड़ताल की जाये तो हम लगभग इस निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि ये बीसवीं शतीके वे वर्ष थे जो निरर्थकताकी व्याख्या करनेमें चुक गये। 'शुद्ध कविताकी खोज' हमारा ध्यान इसी तथ्यकी ओर आकृष्ट करती है। इस कृतिके बहाने दिनकरजीने वहाँ पैठनेका प्रयत्न किया है जो किसी भी सजग बुद्धिजीवीको उद्विग्नताका कारण हो सकता है और इस देशके बुद्धिजीवियोंके लिए तो यह समस्या और भी अधिक उलझन-भरी होनी चाहिए क्योंकि हमारे यहाँ मूल्योंका संकट दोहरा है। वैयक्तिक स्तरपर एक ओर तो आन्तरिक एवं बाह्य जीवनमें हमारे यहाँ किसी भी प्रकारका सामंजस्य नहीं रहा, दूसरी ओर मानवीय सम्बन्धोंमें भी एक भयंकर दुचित्तापन कार्य कर रहा है जिसकी वजहसे हमारे यहाँ सभी कुछ गड्डमड्ड है।

इतना हम सभी जानते हैं कि हर युगमें नयी पीढ़ी अपनेको पिछली पीढ़ीसे अलग करके सोचना और सृजन करना चाहती है। हर बार रचनाकार मनुष्यके अधिकसे अधिक निकट पहुँचकर उसे अपनी कृतिमें समाहित करना चाहता है और हरबार नये रचनाकारोंको अपना खींचा चित्र मनुष्यका सच्चा चित्र लगता है किन्तु जैसे ही युगीन परिस्थितियाँ बदलती हैं या दूसरे शब्दोंमें जैसे ही सामूहिक अवचेतनमें मोड़ आता है मनुष्यका पिछला चित्र झूठा या कम वास्तविक लगने लगता है और इस तरह फिर नये रचनाकारोंका एक दल मनुष्यकी वास्तविक परिभाषा खोजनेमें जुट जाता है, किन्तु क्योंकि मनुष्यकी अन्तिम रूपसे कोई परिभाषा नहीं हो सकती इसलिए हर बार इन प्रयत्नोंमें चूकका आभास होने लगता है। 'शुद्ध कविताकी

---

* शुद्ध कविताकी खोज : लेखक रामधारी सिंह 'दिनकर'; प्रकाशक : उदयाचल प्रकाशन, राजेन्द्रनगर, पटना-४; पृ० सं० (डिमाई) २७२+८; मूल्य : दस रुपये।

खोज'का इतिहास इसी सफलता-असफलताका इतिहास है जिसके बिखरे विवरणोंको दिनकरजीने बड़े मनोयोगसे एक स्थानपर एकत्र किया है। इस पुस्तकको पढ़कर सहज ही जो प्रश्न उठाये जा सकते हैं वे इस प्रकार होंगे :

"शुद्ध कविताकी खोजके इतिहासकी उपलब्धियाँ क्या हैं? काव्यके विषयमें इस पुस्तकको पढ़कर धारणा क्या बनायी जाये? सर्जनाके क्षणोंमें क्या इस पुस्तकको पढ़कर, किसी भी कविके लिए शुद्धताके निकट पहुँचना सम्भव होगा?"

किन्तु मेरी समझमें ऐसे सारे प्रश्न इस पुस्तकके सन्दर्भमें न केवल बेमानी होंगे वरन् यह भी कि यह कवि-चिन्तक दिनकरजीके प्रति एक प्रकारका अन्याय होगा, क्योंकि इस पुस्तकमें कहीं भी कोई भी बात पेशेवर आलोचकोंकी भाँति ताल ठोंककर नहीं कही गयी और यही ठीक भी है। जितने ठस, संकुल और ऊलजलूल युगमें हम जी रहे हैं उसमें कोई भी बात किसी भी समझदार व्यक्तिके लिए दावेके साथ कहना अब सम्भव नहीं रहा। दिनकरजीने लगभग यही दृष्टिकोण अपनाया है किन्तु कहीं-कहीं अनेक तर्कोंके पीछे उस पीढ़ीको (वे स्वयं जिसके एक कीर्ति-स्तम्भ हैं) असम्मतिसे उद्भूत झुँझलाहट भी झलक जाती है। इस असम्मतिको भी स्वाभाविक ही मानना चाहिए।

विवेचनकी दृष्टिसे इस पुस्तकके चार प्रकरण विशेष रूपसे द्रष्टव्य हैं। 'कवितामें दुरूहता', 'परिभाषाहीन विद्रोह', 'मनीषी और समाज' तथा 'कलाका सन्यास'। 'कवितामें दुरूहताकी चर्चा करते हुए दिनकरजीने लिखा है : "नयी कविता मोहभंगकी कविता है, विफलताबोधकी कविता है, निराशाकी कविता है··· । नया कवि यह जानकर क्रोधित और निराश है कि रुपये और ताक़तके सिवा समाजमें और किसी भी चीज़की हस्ती नहीं है।" इस उद्धरणसे सभी सहमत होंगे, किन्तु दिनकरजीके इस वाक्य "हमारा ख़याल है ये सारे भाव प्रसन्नशैलीमें भी व्यक्त किये जा सकते हैं," के सन्दर्भमें मेरा निवेदन यह है कि यह दुरूहता सायास नहीं, वरन् आजके कविके दोहरी-तिहरी मनस्थितियोंमें जीनेके परिणामस्वरूप आती है। आजका नार्म ही इतना उलझा हुआ है कि कोई भी साँचे-ढला सिद्धान्त उसकी व्याख्याके लिए उपयुक्त नहीं। जिन दस खानोंमें मनस्थितियोंको बाँटा गया था उससे अलग अब ऐसी-ऐसी विचित्र और विसंगत स्थितियोंमें आजका मनुष्य जीता है कि एक बिम्ब या प्रतीकको पकड़कर तत्काल कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। आजका रचनाकार जब प्रेम कर रहा होता है तब कई बार ऊब भी रहा होता है, जब बॉसकी प्रशंसा कर रहा होता है तब उसे झापड़ मारनेकी सदिच्छासे भी पीड़ित होता है जब कि करता वह कोई तीसरा ऐसा कार्य है जिसका ऊपरकी मनस्थितियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं! ऐसी स्थितिमें प्रश्न यह उठता है कि 'कण्डीशण्ड रिफ़्लेक्सेज़' के इस युगमें तीन-चार धरातलोंपर काम करनेवाली रचनाकारकी संवेदनाको दोषी ठहराया जाये या सपाट संवेदनावाले सामान्य पाठकको? दुरूहताको रचनाकी कमज़ोरी माना जाये या

उकठे प्रतिमानोंको ? जो हो यह लम्बी चर्चाका विषय है ।

आगे इसी प्रकरणके अन्तमें दिनकरजीने लिखा है : ''दुरूहता चाहे जिस कारणसे भी उत्पन्न होती हो किन्तु वह धर्म नहीं आपद्धर्म ही है । आज भी उन कवियोंके शिखर आसानीसे सबसे ऊपर उठ जाते हैं जो गहरे भी हैं और सुस्पष्ट भी, जो संक्षेपमें सब-कुछ कह डालते हैं किन्तु सर्वत्र प्रकाश भी रहता है । इस दृष्टिसे एलियट और पास्तरनेक आदर्श कवि हुए हैं ।''

अँगरेज़ी कवितामें बीसवीं शतीमें ऑडेन, एलियट और येट्सका नाम ही बार-बार दोहराया जाता है । ऑडेनको आलोचक एक दशाब्दिका कवि मानते हैं जिसने समाजके सतही तथ्योंको एकत्रित करके बड़े प्रभावोत्पादक ढंगपर प्रस्तुत किया । एलियट, इसके विपरीत, क्योंकि युगकी दुर्घटनाकी परम्पराके सन्दर्भमें एक विशाल फलकपर समर्थ भाषामें प्रस्तुत कर सका इसलिए उसका यश भी एक पूरी पीढ़ीपर छाया रहा किन्तु जैसे-जैसे समय बीत रहा है येट्स आलोचकोंकी दृष्टिमें अधिक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण कवि सिद्ध हो रहा है । येट्सकी काव्ययात्रा बड़ी लम्बी है और जड़ें बहुत गहरी । उसने काव्य-रचना करना तब प्रारम्भ किया जब अँगरेज़ीमें रूमानी धारा ह्रासोन्मुख हो चुकी थी । जार्जियन्सके आसपास काव्य-रचना प्रारम्भ करके येट्सकी प्रतिभा निरन्तर चार-पाँच दशकों तक निखरती ही रही ।

येट्स और एलियटका काव्य-व्यक्तित्व एक-दूसरेके ठीक विपरीत है । एलियट काव्यमें निर्वैयक्तीकरणका पक्षपाती था जब कि येट्स काव्यमें व्यक्तित्वका आरोपण ही अनिवार्य मानता था । एलियट घोर गम्भीर, सतर्क और चुप्पा था जब कि येट्स दूसरेको बोलनेका अवसर ही नहीं देता था । एलियटकी स्थिति अपने समयमें मूर्खोंसे घिरे हुए धीरजवान् सन्तकी स्थिति थी जब कि येट्स ढेरों उलझे लोगोंसे घिरा स्वयं एक उलझा हुआ आदमी था, जिसकी मान्यताएँ कभी स्थिर नहीं रहीं । किन्तु इन ढेरों विरोधोंके बावजूद येट्स अधिक समर्थ और जीवन्त कवि माना जाता है और उसका कारण यह है कि एलियटका हर अनुभव पुस्तकीय था, जब कि येट्सका सब-कुछ प्रत्यक्ष, सहज और जिया गया । इसीलिए वह हर मोड़पर नया लगता है । एलियट जितनी क्षिप्रतासे उदित हुआ था उतनी ही तीव्रतासे अस्त भी क्यों हो गया ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि एलियट मात्र सतर्क निरीक्षक था जब कि येट्स द्रष्टा ।

इंगलैण्डके नाराज़ नवयुवक अथवा अमरीकाके बीट कवियोंके सन्दर्भमें दिनकरजीने 'परिभाषाहीन विद्रोह' शब्दका प्रयोग किया है । केनिथ ऑलसॉपने भी अपनी पुस्तक 'द एंग्री डिकेड' में इन रचनाकारोंपर लगभग इसी प्रकारके अभियोग लगाये हैं । एक दृष्टिसे ये अभियोग ठीक भी हो सकते हैं किन्तु परिभाषाके अभावमें विद्रोहकी नीयतको ही झुठलाना या शंकाकी दृष्टिसे देखना, मैं समझता हूँ, एक प्रकारका अन्याय होगा ।

व्यक्ति और समूह चेतनाके बीच खींचतान हमेशासे चली आ रही है और हर विद्रोहकी

अपनी लोकप्रियता का अकाट

आँगनके पार द्वार [द्वि० सं०]
'अज्ञेय' : ३.००

कनुप्रिया [तृ० सं०]
डॉ० धर्मवीर भारती : ३.००

झाड़ी [द्वि० सं०]
श्रीकान्त वर्मा : ३.००

महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !! [द्वि० सं०]
'भिक्खु' : ३.००

जनम क़ैद [तृ० सं०]
गिरिजाकुमार माथुर : ३.००

ग्यारह सपनोंका देश [द्वि० सं०]
सं० लक्ष्मीचन्द्र जैन : ५.००

लेखनी-बेला [द्वि० सं०]
वीरेन्द्र मिश्र : ३.५०

संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [तृ० सं०]
डॉ० भोलाशंकर व्यास : ५.००

रजत रश्मि : [तृ० सं०]
डॉ० रामकुमार वर्मा : २.५०

ये भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन :
१९६६ में
जिनके नये संस्करण
प्रकाशित हुए

१९६६

प्रमाण प्रस्तुत करते हैं –

अपने-अपने अजनबी [द्वि० सं०] : अज्ञेय	३.००
धूपके धान [तृ० सं०] : गिरिजाकुमार माथुर	३.५०
भारतीय ज्योतिष [च० सं०] नेमिचन्द्र जैन	८.००
भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०] डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
गुनाहोंका देवता [नौवाँ सं०] : डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
नाटक बहुरूपी [तृ० सं०] डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३.५०
प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी [तृ० सं०] : सं० अनिलकुमार	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी-१ [द्वि० सं०] : व्यं० दि० माडगूलकर	४.००
कुछ मोती कुछ सीप [तृ० सं०] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
गहरे पानी पैठ [च० सं०] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ [च० सं०] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.५०
माटी हो गयी सोना [तृ० सं०] कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
क्या धर्म बुद्धिगम्य है [द्वि० सं०] : आचार्य तुलसी	२.००
तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो [द्वि० सं०] : मुनि नथमल	२.००
गंगो जमन [द्वि० सं०] : नजीर बनारसी	३.००
सन्त विनोद [द्वि० सं०] : नारायणप्रसाद जैन	२.००

१९६६

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

जड़में आक्रामक वैयक्तिकता ही समूह चेतनाको उखाड़ती हुई दृष्टिगत होती है। इधर कुछ दशकोंसे यह वैयक्तिकता अधिक उग्र हो उठी है और इस आधारपर हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि व्यक्ति और समाजके बीचके सम्बन्धोंमें अब इतनी बड़ी दरार पड़ गयी है कि उसे पाटनेके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गये हैं। व्यक्ति और समाजके बीच खोट कहीं-न-कहीं अवश्य है जिसका अनुभव हम सभी कर रहे हैं किन्तु हल शायद किसीके पास नहीं है। इस रचनाकारके पास भी शायद नहीं है किन्तु उसके पास वह अस्त्र अवश्य है जिसकी सहायतासे वह सड़ी-गली व्यवस्थाको बार-बार उघाड़ फेंकनेका प्रयत्न करता है -- इस आशामें कि आघात पड़नेपर समूह चेतना स्वयंको बदलनेका प्रयत्न करेगी किन्तु इस आघातका परिणाम कुछ उलटा ही निकलता है, समूह चेतना और अधिक ठस हो जाती है।

बीसवीं शतीमें, विशेषरूपसे द्वितीय महायुद्धके बाद, समाजमें विद्रोहीकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी है। हर विद्रोही अनिवार्यतः स्वयंको वामपक्षसे सम्बद्ध पाता है तभी वह दक्षिण पन्थके खिलाफ़ विद्रोह करता है किन्तु अपने विद्रोहकी महत्ता सिद्ध करवानेके लिए उसे मुखापेक्षी दक्षिण पन्थका ही होना पड़ता है। ऐसे बहुत सारे उदाहरण साहित्यमें मौजूद हैं जिनमें कलके विद्रोही आज मान्यता पाकर दक्षिण पन्थका अंग बन गये हैं किन्तु इससे विद्रोही की नियतिमें कोई अन्तर नहीं आता, उलटे इसे विद्रोहीका दुर्भाग्य ही मानना चाहिए क्योंकि विद्रोहकी सार्थकता अस्वीकृतिमें ही है।

दिनकरजीने इसी प्रकरणमें आगे लिखा है : "निहिलिज़्मका सहारा वह व्यक्ति लेता है जो यह समझता है कि उसके हाथ और पाँव बँधे हुए हैं तथा बकनेके सिवा वह और कुछ करनेसे लाचार है किन्तु जो लोग यह समझते हैं कि मनुष्यता अभी जीवित है, वह जगायी जा सकती है और वह अपना सुधार भी करनेमें समर्थ है, वे ऐसे नैराश्यवादी दर्शनके चक्करमें नहीं पड़कर किसी ऐसी विचारधारासे काम लेते हैं जो निहिलिज़्मकी अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट और ध्येय युक्त हो।"

दिनकरजीका यह कथन पढ़नेमें बड़ा भला लगता है। कौन है जो सम्मानपूर्वक नहीं जीना चाहता, कौन है जो शान्तिके साथ मानवताको खिलते नहीं देखना चाहता ? मैं समझता हूँ, इस विषयमें हम सभी एकमत होंगे, यहाँतक कि तथाकथित नकारवादी भी। (तथाकथित इसलिए क्योंकि पूर्ण नकारवादी वह है जो हर वस्तुके मिथ्यापनका बोध होनेके तत्काल बाद जहर खाकर छुट्टी पा ले।)

किन्तु प्रश्न यह है कि यह सब सम्भव किस प्रकार हो। एक ऐसी दृष्टि जो हर वैज्ञानिक प्रगतिके बावजूद मनुष्यकी आन्तरिक सम्पन्नताको भी उजागर करनेमें विश्वास रखती है निस्सन्देह आजकी दुनियाके लिए उपयोगी हो सकती है। मगर सत्तान्ध राजनीतिज्ञोंके शीर्षस्थ होते कोई भी नवीन दृष्टि साधारणीकृत भी हो सकेगी, कमसे कम मुझे इसमें सन्देह है।

'मनीषी और समाज'वाले प्रकरणमें दिनकरजी मनीषीसे अपेक्षा करते हैं कि वह समाजको राजनीतिके हाथोंमें न जाने दे। वे चाहते हैं, मनीषीमें मन्यु जीवित रहे, पर मुझे ऐसा लगता है, दुनियाके गोपयुगसे यन्त्रयुग तक आनेमें जितना बड़ा धक्का मनीषीकी प्रतिष्ठाको लगा है अन्य किसीको नहीं! मैं नहीं समझता, आज किसी भी देशमें सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञके समक्ष मनीषीको महत्त्व दिया जाता है तब फिर ऐसी स्थितिमें मन्युकी सार्थकता कहाँ है? दिनकरजी-की इस बातसे सभी सहमत होंगे कि पुण्यके बलपर कोई गद्दीपर नहीं टिक सकता और इसी आधारपर मुझे मनीषीमें दो वर्ग दीख पड़ते हैं—शुद्ध मनीषी और छद्म मनीषी!

दरअसल किसी भी व्यवस्थाको ठीक-ठीक ढंगपर चलानेका कार्य द्वितीय श्रेणीका व्यक्ति ज़्यादा अच्छी तरह कर सकता है और अधिकांशतः होता भी यही है। शुद्ध मनीषी अपने चिन्तनके बोझके कारण व्यावहारिक जीवनमें हमेशा असफल रहता है जब कि छद्म मनीषी धूर्तताके कारण वहाँ बड़ी शीघ्रता और सरलतासे पहुँच जाता है जहाँसे यह समाज और उसकी कार्य-व्यवस्था संचालित होती है। मनोविज्ञान कहता है, छद्म मनीषी शुद्ध चिन्तन करनेवाले अपनेसे अधिक बुद्धिमान् व्यक्तिको अपने आसपास कभी सहन नहीं करता, परिणामतः वह अपने आगे-पीछे सब सपाट करता चलता है। इस आधारपर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सत्ता हमेशा द्वितीय श्रेणीके लोगोंके हाथोंमें रहती है और यह उचित भी है। जरा कल्पना करें, दुनियाकी बागडोर यदि एक दिनके लिए भी शोपनहावरके हाथमें होती तो क्या हाल होता। सबको आत्महत्याकी आज्ञा देकर वह स्वयं एक और प्रकरण लिखने बैठ गया होता।

'कलाका संन्यास' प्रकरण कुछ यह सिद्ध करता-सा लगता है कि आधुनिकोंमें पायी जानेवाली छटपटाहट कुछ-कुछ रूमानी है और शायद अकर्मण्यतासे उद्भूत है। इस सन्दर्भमें मेरा निवेदन यह है कि पहले तो आधुनिकता कोई स्थिति नहीं एक प्रक्रिया है, दूसरे यह कि रोमाण्टिक प्रवृत्ति (हिन्दीमें छायावाद)का विरोध नयोंने आद्योपान्त न करके, केवल उसके उस ह्रासोन्मुख रूपका किया था जिसके आधारपर वह 'शलभ' और 'चातक' दोहरा रही थी। शायद घोर वायवीयता तथा मानवीय अनुपस्थितिके कारण ही उसके प्रति वितृष्णा एक आन्दोलनका रूप लेकर आयी थी और अन्तमें यह कि आजका रचनाकार जब स्वयंको अजनबीके रूपमें पाता है (वैसे अब 'अजनबी' शब्द भी अतिप्रयोगके कारण खुरखुल हो गया है) तो इसका कारण यह नहीं कि वह अतिरिक्त भावावेशमें बोल रहा है वरन् यह कि जिस मूल्य-शृंखलाका वह पक्षपाती है समाज उसे कुचल-तोड़कर अब इतनी यातुधानी स्थितिमें पहुँच गया है कि व्यावहारिक जीवनमें उसका किसीसे भी तालमेल नहीं बैठता और क्योंकि सुरसा भीड़ोंके इस युगमें उसकी बात सुननेवाला कोई नहीं इसलिए वह विवश होकर तटस्थ हो जाता है। अकेलेपनका रोग इस दृष्टिसे रूमानी नहीं—घोर ईमानदार व्यक्तिके चोट खाये अहम्की प्रतिक्रिया है।

दिन करजीकी नये मूल्योंवाली बात मेरी समझमें नहीं आयी । एक निर्मानवीकृत समा में एक लेखक जब स्वयंको अजनबी लगता हुआ तटस्थ होता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह मूलरूपमें मनुष्यको मनुष्य देखनेका पक्षपाती है, चाहे वह ईश्वर-विहीनोंका ही समा क्यों न हो—उसकी मानवीय पहचान न खोनी चाहिए और यही नहीं हो रहा !

पिछले दशकोंमें सभ्यताकी घोर प्रगतिके बावजूद, ढेरों शान्ति-सम्मेलनोंके बावजूद, ला पुस्तकोंके प्रकाशनके बावजूद दुनिया और मनुष्यके भविष्यमें कोई आशाप्रद परिवर्तन नहीं हु और शायद हो भी नहीं । तब फिर ऐसी स्थितिमें क्या यह कहना ग़लत है कि भविष्यमें व लेखक पठनीय होगा जो जितना निस्संग होगा और जिसकी हताशा जितनी गहन और सर्वग्रा होगी । मेरी समझमें शायद यही एक ढंग मनुष्यको उसकी मानवीयताकी याद दिलानेके लि बाक़ी बचा है और यही रचनाकारका एकमात्र कर्म है ।

एच २६, साउथ एक्सटेंश
पार्ट–१, नयी दिल्ली

२–कवितामें शुद्धता : गोपाल राय

आलोचक और चिन्तकके रूपमें 'दिनकर' हमारे लिए नये नहीं हैं, फिर भी, सद्यःप्रकाशि पुस्तक 'शुद्ध कविताकी खोज'में उनका वैदुष्य और प्रौढ़ चिन्तन परिचित प्रभविष्णुता और स्पष्टताके साथ, जिसमें एक नयी ताज़गी और सहजता है, हिन्दी-संसारके समक्ष आया है। इस पुस्तकमें नव काव्यान्दोलनको समझनेकी एक नयी कसौटी प्रस्तुत की गयी है, और ए ऐसे कवि-आलोचकके द्वारा जो काव्यसर्जनकी प्रक्रियासे सहस्राधिक बार गुज़रा है, जिसने संसारकी अनेक भाषाओंके कवियोंका अध्ययन किया है और लगभग ६० वर्षकी अवस्थामें जिसका व्यवसाय कविता नहीं, चिन्तन हो गया है । ऐसे व्यक्तिकी जब कोई कृति सामने आती है, तो उसकी तरफ़ समकालीन जागरूक पाठकों और चिन्तकोंका ध्यान आकृष्ट हो हो जाता है ।

जैसा कि 'दिनकर'ने 'भूमिका'में लिखा है, यह पुस्तक नयी कविताके आन्दोलनको समझनेका 'विनम्र प्रयास' है । नयी कविताका आन्दोलन लगभग एक शताब्दी पूर्व फ़्रान्समें प्रवर्तित हुआ और धीरे-धीरे वह समस्त पश्चिमी युरॅप और अमरीकामें छा गया । हिन्दीमें

यह आन्दोलन अपेक्षाकृत बादमें, वर्तमान शताब्दीके पाँचवें दशकमें, पहुँचा है और आजकी हिन्दी कविता इसी दौरसे गुज़र रही है ।

'दिनकर'जीने आरम्भमें ही सफ़ाई दे दी है कि ''नयी कविता हमेशा शुद्ध कविता नहीं होती, न सभी श्रेष्ठ काव्य शुद्ध काव्यके उदाहरण होते हैं,'' फिर भी उनकी मान्यता है कि ''शुद्धताको लक्ष्य मानकर चलनेसे काव्यका नया आन्दोलन समझमें कुछ ज़्यादा आता है।'' प्रस्तुत पुस्तक इसी दृष्टिकोणसे लिखी गयी है ।

सबसे पहले यह देख लेना अपेक्षित है कि 'शुद्ध कविता'से लेखकका तात्पर्य क्या है। यह पद—और दिनकरने जिस विशिष्ट अर्थमें इसका प्रयोग किया है—थोड़ा भ्रममें डालनेवाला है। 'शुद्ध कविता'का एक अर्थ हो सकता है—कविताका वह तत्त्व या अंश, जिसके रहनेपर ही कविताका अस्तित्व सम्भव हो सकता है; उदाहरणार्थ कथा, वर्णन, विचार, आदिको छाँटकर भी कविता जीवित रह सकती है, पर उस तत्त्वसे, जिसे काव्यका प्राण या 'संगीत' कह सकते हैं, अलग उसका अस्तित्व सम्भव नहीं है । दिनकर 'शुद्ध कविता'का प्रयोग इस अर्थमें नहीं करते । इस पदका प्रयोग, विवेच्य ग्रन्थमें, 'संकर काव्य'के विलोमके रूपमें भी नहीं हुआ है, जैसा कि डॉ० सावित्री सिंहने समझ लिया है । (द्रष्टव्य : 'विग्रह', नवम्बर १९६६ ई०)। वस्तुत: दिनकरने 'शुद्ध कविता' पदका प्रयोग 'सोद्देश्य काव्य'के विलोमके रूपमें किया है । 'शुद्ध कविता' यानी वह कविता, जिसका उद्देश्य केवल आनन्द-दान है; जो गानेकी नहीं, बिसूरनेकी चीज़ है, जो आदमीका सुधार नहीं करती, उसे चौंकाती है, धक्के देती है, उसकी चेतनाकी मुँदी आँखोंको खोलती है, जो भावनाकी सचाईके बाद एक शब्द भी नहीं बोलती, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपदेश, ज्ञान-दान या किसी विचारधाराके प्रचार या प्रतिपादनसे बचती है । कविताकी ये दो प्रवृत्तियाँ—शुद्धता और सोद्देश्यता—उसके जन्मसे ही लगी चली आ रही हैं और उसकी समृद्धिके दिनोंमें इन दोनोंका नीर-क्षीर-संयोग भी देखनेको मिला है; उस समय इन दोनों प्रवृत्तियोंने एक-दूसरेको बल एवं सन्तुलन दिया, और कविता मंगलमय बनी । पर आधुनिक काव्यमें शुद्धताका पलरा थोड़ा नहीं, बहुत ज्यादा झुका हुआ जान पड़ता है और आज कविता किसी भी 'उद्देश्य', 'प्रचार' या 'प्रतिपादन'से अपनेको प्रतिबद्ध नहीं मानती । इस धारणाका प्रभाव, 'दिनकर'के अनुसार ''कवितापर इस ज़ोरसे पड़ा है कि वह अचानक अत्यन्त निगूढ़, बल्कि दुरूह हो उठी है ।''

विवेच्य ग्रन्थकी सबसे बड़ी उपलब्धि है, शुद्धतावादी काव्यान्दोलनके इतिहासका क्रमबद्ध प्रस्तुतन, जिसके सम्बन्धमें, अँगरेजी तथा अन्य पाश्चात्त्य भाषाओंमें भी छिटफुट रूपसे ही विचार हुआ है । वैसे दिनकरजीने कोई लम्बा-चौड़ा दावा न करते हुए भूमिकामें स्पष्ट रूपसे कह दिया है कि इस पुस्तकका उद्देश्य विशेषत: उनके साथ वार्तालाप करना है, जो अँगरेजी या अन्य विदेशी भाषाओंके सम्पर्कमें नहीं हैं । पर जहाँतक मेरा ज्ञान है, अँगरेज़ीमें भी इस शीर्षकसे

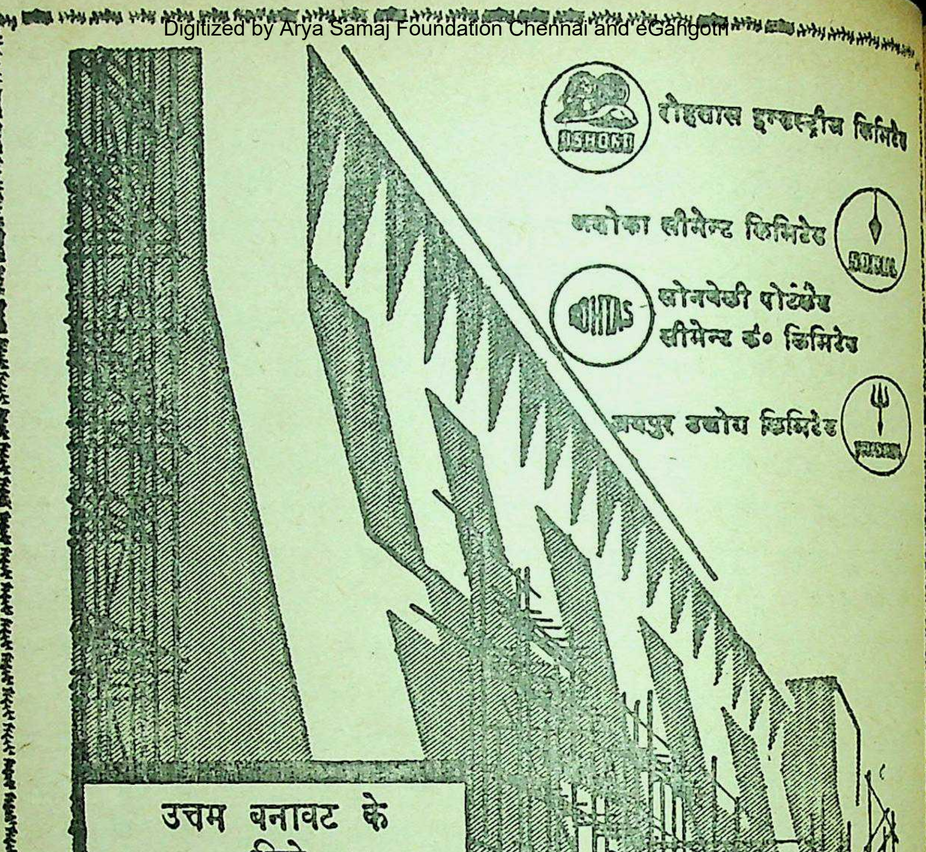
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
अशोका सीमेन्ट लिमिटेड
सोनवेली पोर्टलैंड सीमेन्ट कं० लिमिटेड
जयपुर उद्योग लिमिटेड
उत्तम बनावट के लिये साहु सीमेन्ट

कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। इतना तो प्रायः पूर्ण निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओंमें इस विषयकी यह पहली पुस्तक है। इसमें दिनकरजीने प्लेटो, अरस्तू, लॉंजाइनस, फिलिप सिडनी आदि युरॅपीय आचार्योंसे आरम्भ कर बायरन, शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, टेनिसन, ब्राउनिंग, एडगर एलेन पो, जरार द नेर्वाल, तियोफिल गोतिये आदि रोमाण्टिक कवियों तथा बोदलेयर, मलार्मे और रेम्बू आदि फ्रेंच मनीषियोंके प्रयोगोंसे गुज़रते हुए शुद्धतावादी काव्यान्दोलनके प्रवाहका अन्वेषण किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने संसारकी अन्य भाषाओंके साहित्य और चित्रकलामें भी इस आन्दोलनकी दृश्य-अदृश्य धाराओंको संकेतित किया है।

शुद्ध काव्यान्दोलनके इतिहासके बाद दिनकरजीने 'कवितामें दुरूहता', 'शुद्ध काव्यकी सीमाएँ', 'परिभाषाहीन बिद्रोह', 'मनीषी और समाज', 'कलामें व्यक्तित्व और चरित्र', 'कलाका संन्यास', 'साहित्यमें आधुनिकता-बोध' जैसे समकालीन ज्वलन्त प्रश्नोंपर विचार किया है, और शुद्धकाव्यकी कसौटीपर इन समस्याओंके विविध पहलुओंका उद्घाटन किया है। परिशिष्टमें तीन कविताएँ, जिनमें एक चार्ल्स बोदलेयरकी उस कविताका अनुवाद है जिसे प्रतीकवादियोंने अपना घोषणापत्र माना था, दी गयी हैं, जो नयी कविता और शुद्धतावादी काव्यके आन्दोलनको समझनेमें भावकी राहसे सहायक हैं।

पुस्तकका प्रकाशन सुरुचिपूर्ण है, यह निर्विवाद है; पर यत्र तत्र मुद्रणकी भूलें व्यवधान पैदा करती हैं। कहीं-कहीं उद्धरणकी ग़लतियाँ भी हैं, यथा, पृ० २१ पर तुलसीदासके उद्धरणमें 'सितश्रेनी'के स्थानपर 'सितसेनी', पृ० १२४ पर महादेवीके उद्धरणमें 'निशा की'के स्थानपर 'गगन की' (इस ग़लत उद्धरणके कारण दिनकरजीकी उद्भावना भी दोषपूर्ण हो गयी है,) पृ० १७१ पर तुलसीकी 'कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना'के स्थानपर 'प्राकृत मनुज करत गुनगाना' आदि। प्रथम कोटिकी पुस्तकोंमें इस प्रकारकी भूलें अक्षम्य समझी जाती हैं। हिन्दी आलोचनाका दुर्भाग्य है कि गम्भीरसे गम्भीर आलोचक भी उद्धरण देते समय प्रामाणिकता और शुद्धताका ध्यान नहीं रखते।

हिन्दी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय

मानव मूल्य और साहित्य
डॉ० धर्मवीर भारती ■ ■
मानव मूल्यके सन्दर्भमें शुद्ध साहित्यका
विश्लेषण, परीक्षण और आकलन। २.५०
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

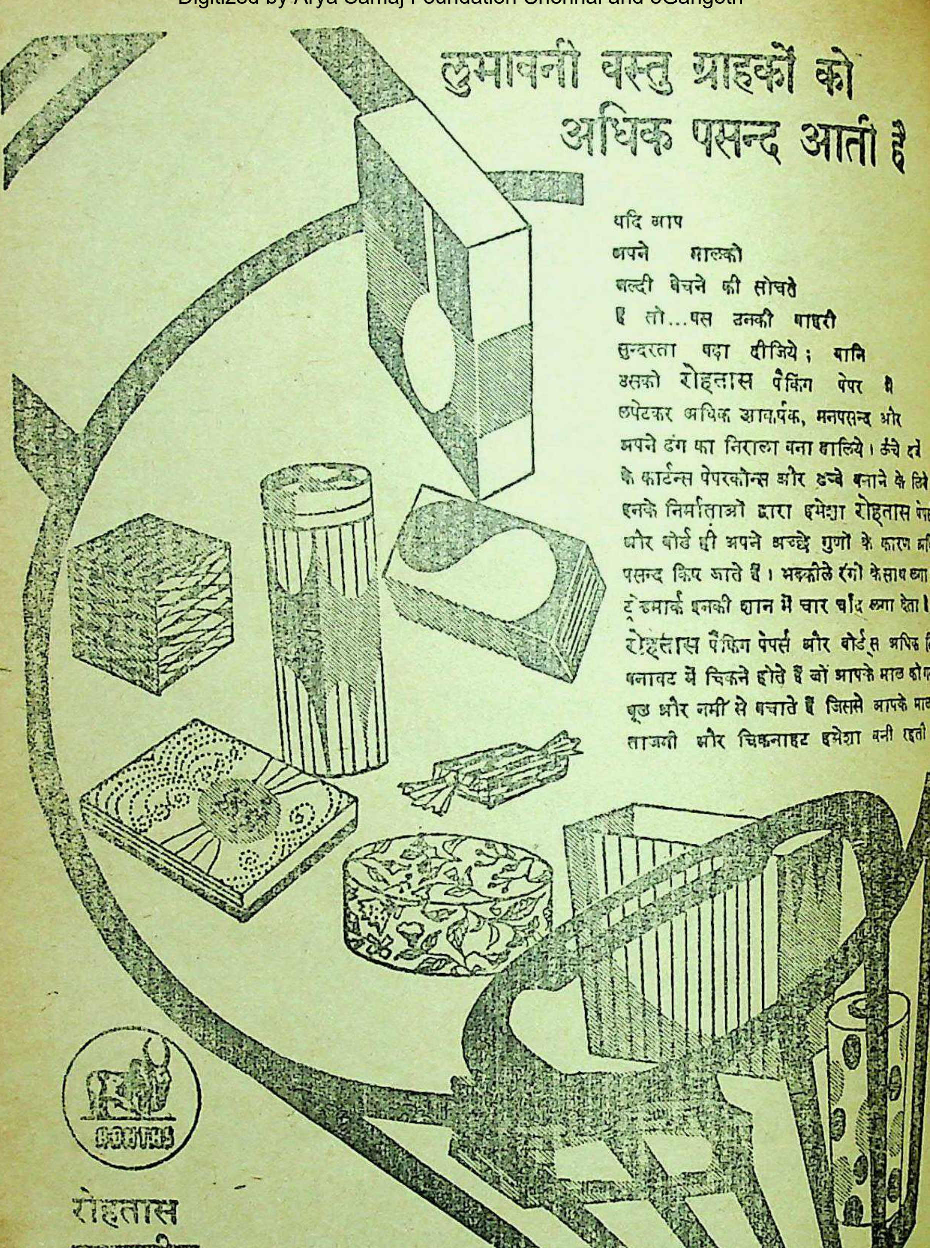

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को
अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने मालको
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये ; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ छपा हु
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक टि
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को गर्द,
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)
[illegible] : साहू जैन लिमिटेड १८, [illegible]

(पृष्ठ १६ का शेष : लाल चीनपर काली छाया)

है कि दीवारोंपर चाउके खिलाफ़ भी बड़े-बड़े पोस्टर चिपके पाये गये जिनमें माँग की गयी कि चाउको हटा दिया जाये, यह व्यक्ति विश्वासघाती है ! माओके मनमें स्वयं भी सन्देह हो सकता है, लेकिन किस-किसको नाराज़ कर ले। उधर चाउ भी अपना भला इसीमें समझता है कि जब तक माओ पदस्थ है और लिनके माध्यमसे सेनाका बल उसके साथ है, तब तक माओका साथ दिया जाये। मामला इतना अधिक गम्भीर है और असन्तोष इतना व्यापक हो गया है कि माओ चाउ एन-लाईको अब स्वयं मध्यस्थ की स्थितिमें रखना चाहता है क्योंकि कारखानोंकी सीमाओंको पार करके असन्तोष अब सेनामें घुस गया है और सेनामें भी दो दल हो गये हैं—माओ-विरोधी तथा माओ-समर्थक। वास्तविक खतरा यहीं है।

राजधानी पीकिंग और आस-पासके इलाक़ोंको नियन्त्रणमें रखा भी जा सकता है, किन्तु वास्तविक चिन्ता माओको है दूरवर्ती प्रान्तोंकी, जहाँ पार्टीके अधिकारी ही शासन चलाते हैं और पार्टीपर अभी भी प्रेसिडेण्ट लिउ और पार्टीके अपदस्थ प्रधान मन्त्री तेङ्का प्रभाव है। वहाँ रेड गार्ड्सके मुक़ाबलेमें लाल सैनिक ब्रिगेड निर्मित किये जा रहे हैं।

प्रश्न : भारतकी दृष्टिसे चीनकी इन घटनाओंका क्या महत्त्व है ?

उत्तर : भारतके लिए यह सारी स्थिति बड़ी सुखद है क्योंकि चीन अपने अन्दरूनी मामलोंमें इतना घिर गया है, और घिरा रहेगा कि भारतपर यदि कोई नया आक्रमण करनेका उसका इरादा रहा भी होगा तो उसे छोड़ देना पड़ेगा। सम्भावना है कि चीनमें गृह-युद्ध हो, शासन पलटे और इण्डोनीसियामें सुकर्णका जो हाल हुआ है वह माओका हो जाये और तब भारत और चीनके सम्बन्ध सुधर जायें और धीरे-धीरे, वहाँके एक भले तथा स्थायी शासनके अन्तर्गत, प्रीतिकर भी हो जायें।

प्रश्न : और कोई प्रभाव, किसी अन्य दिशामें ?

उत्तर : सम्भावनाएँ बहुत हैं। रूसके घरमें घीके दिये जल रहे हैं। अमेरिका प्रसन्न है, विशेषकर इसलिए भी कि उत्तर वीयतनामको जिस चीनके सक्रिय बलका भरोसा था, वह बल टूट गया और अब वीयतनामके लिए अधिक आवश्यक हो गया कि वह ले-देकर अमेरिकाके साथ समझौता कर ले। इस दिशामें प्रयत्न भी हो रहा है, और भारत तथा रूस (और राष्ट्रसंघ भी, यू थाण्टके माध्यमसे) इसे अपना कर्तव्य समझें कि उत्तर वीयतनामको ज़रूरतसे ज़्यादा न दबाया जाये तथा अमेरिकन बमबारी तत्काल बन्द हो। उधर फ़ार्मोसामें च्यांग काई-शेक बेहद प्रसन्न हैं। तिब्बतमें नयी सम्भावनाएँ जगेंगी। एशिया-अफ्रीकाके देशोंपर-से रक्तकी लाल छाया हटेगी। पाकिस्तानकी हठधर्मी ढीली पड़ेगी।

प्रश्न : यह भी तो हो सकता है कि माओ हताश होकर एटम बम छोड़ दे ?

उत्तर : इससे बड़ा सवाल और हो भी क्या सकता है। बेशक, पागलोंका कुछ

ठिकाना नहीं; किन्तु ऐसा कदापि नहीं होगा क्योंकि चीन जीवित रहना चाहता है। यह संघर्ष नया जीवन जीनेकी लालसासे उत्पन्न हुआ है। और हमें आशा करना चाहिए कि गृह-युद्ध, शासनका उलट-फेर और हत्याओं-प्रतिहत्याओंकी सम्भावनाओंके बावजूद एक दिन चीन सभ्यता और सह-अस्तित्वके तक़ाज़ों को मानेगा; राष्ट्रसंघका सदस्य बनेगा।

प्रश्न : तो फिर अब इस चर्चाको बन्द किया जाये; लाल झण्डी दिखायी जाये ?

उत्तर : यदि बात चीनके सन्दर्भमें है तो हरी झण्डी दिखानी होगी क्योंकि लाल प्रहरियोंने चीनके चौराहोंपर रोशनीके रंगका क्रम बदल दिया है। लाल–अर्थात् गतिश चिह्न; और हरा—रुकनेका, समाप्तिका। इसलिए हमें एक बत्ती लाल (अपने यहाँकी) और एक बत्ती हरी (रूसकी) रखनी होगी ताकि हम ठहरकर प्रतीक्षा करें कि यह प्रतीक पुनर्मिलनके रूपमें एक दिन सार्थक हो। तब तक यह निश्चित है कि चीनमें रथका पहिया उलटा घूम चुका है—भलेके लिए हो या बुरे के लिए।

भारतीय ज्ञानपी
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-

■

(पृष्ठ ८ का शेष : अपने अनुभवके सत्यको छिपाकर···)

थे जो उसमें अपने आपको पाकर प्रसन्न भी होते रहे····मुझे उससे कुछ लेना-देना नहीं। गुड गाईज़, वी लेवल ऑन आलसो, बट जेण्टली। यदि कोई लेखक वह काम शब्दोंसे नहीं कर सकता है जो काम कोई चित्रकार और कार्टूनिस्ट अपनी लकीरोंसे कर दिखाता है तो उसे राजनीतिक लेख लिखने चाहिए, कहानी-उपन्यास उसके वशके नहीं हैं····

प्रश्न : लेसेस्टरने लिखा है कहीं कि शराब पीकर आप बाक्सिग करते थे····

उत्तर : अल्कोहलमें एक बड़ी ख़ूबी है, उससे आदमीका टाइम-सेन्स ग़ायब हो जाता है और अगर डिस्ट्रक्शन वाले क्षणोंमें को नशा करता है तो एक हैप्पी लाइफ़ उस सामने होती है····कम आन किड, लेट् बाक्स····।

प्रश्न : ज़िन्दा रहनेकी इतनी इतनी विधियाँ और खुश रहनेके ऐसे अजूबा कारि जाननेके बाद भी क्या कोई आत्महत्या क सकता है ?····

उत्तर : [हेमिंग्वेकी कब्रपर लिखी है यह पंक्ति—] ''आई विल लिफ़्ट अप माई आईज़ अनटू द हिल्स।''

(संकलि

■

कथा-यात्रा :

पूर्वापर सम्बन्ध

•

धनंजय वर्मा

आज मेरा मूड कुछ रिट्रास्पेक्टिव-सा है। यात्राके एक छोरपर खड़े होकर जैसे कोई बीते रास्तोंकी ओर देखना चाहे, मगर साथ ही आगे फूटनेवाली दिशाओंका भी ध्यान रखे, कुछ आत्म-निरीक्षणात्मक, अपने आस-पासको खोजता हुआ-सा····!

नयी कहानीके स्वरूप और प्रकृतिको लेकर जो अनिश्चय आजसे एक दशक पहले था, वह अब छँट गया है। लेखक, पाठक और आलोचक, उसे लेकर जितना और जैसी अटकलें लगा रहे थे, वे अब खत्म हो गयी हैं क्योंकि अब वह एक वास्तविकता है। यों उसे प्रतिष्ठित और प्रतिष्ठानका अंग मानकर कुछ लोग उसके विषयमें अब भी अनिश्चय फैलाना चाहें यह बात और है। पहले अनिश्चय तो इसलिए था कि उसने पहली बार कहानीकी परम्परागत परिभाषा-को बदला था और उसके विषयमें चर्चा करने-के लिए किसी निश्चित भाषाका अभाव था। वह एक अलगावकी स्थिति थी, एक स्थितिसे हटकर दूसरी ओर प्रस्थान। लोग या तो

आलोचनाकी नयी-नयी भाषा ईजाद करनेमें लगे थे, वर्ग बना रहे थे या विकासके नामपर इस वर्गसे उठकर उस वर्गमें शामिल हो रहे थे या फिर अपने-अपने पक्षमें तर्क जुटानेमें मशग़ूल थे, स्वयंको जस्टीफ़ाई करनेके लिए, दूसरेके महत्त्वको मिनिमाइज़ कर रहे थे। एक ओर आलोचनाका स्वेच्छाचार था तो दूसरी ओर आत्मकथ्यों और वक्तव्योंका आग्रह-दुराग्रह।

जबतक हम लोग एक स्थिति और प्रक्रियासे सम्पृक्त होते हैं उससे तटस्थ होना मुश्किल होता है और उसकी सही समझ (एप्रीशियेशन) भी मुमकिन नहीं होती। एक समानान्तर दुनियामें रहते हुए हम, समान दूरी और गतिसे चलते हुए हमराहीके इतने क़रीब होते हैं कि उसको पूरी तरह, निस्पृह और निस्संग होकर, पहचान नहीं पाते—या तो अतिशयोक्तिसे काम लेते हैं या अल्पोक्तिसे। यह ख़तरा उस समय और बढ़ जाता है जब हमराही होते हुए ही हम उसके आलोचक और निर्णायक भी बनने लगते हैं। मेरा मतलब है, जब एक रचनाकार समीक्षक भी होने लगता है तब उसकी सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही होती है कि रचनाके क्षणोंमें जितना निस्संग या वस्तुपरक वह था; आलोचनाके क्षणोंमें उतना ही आत्मस्थ और आत्मपरक होता जाता है और अनजाने ही अपनी या अपने-जैसी-रचनाओंके जस्टीफ़िकेशन देने लगता है। उनकी प्रक्रिया निहायत दार्शनिक शब्दावलीमें समझानेकी कोशिश करने लगता है, उसकी सारी दृष्टिपर उसके विश्वास और उसकी रचना-दिशा हावी हो जाती है। उसके इस काम मैं किसी भी दृष्टिसे मिनिमाइज़ नहीं कर र हूँ, बल्कि वह महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है कि हमें 'उसे' समझनेका एक आधार मिल जा है : मगर समीक्षा एक दुहरे (विभाजित नहीं व्यक्तित्वकी माँग करती है—एक सम्पृ असम्पृक्ति या सम्पृक्तिके बाद असम्पृक्ति। समीक्षकके लिए यह ज़रूरी होता है कि व पहले पाठक हो, रचनामें-से गुज़रे और फि उससे निस्पृह और निस्संग हो सके। जीव बोध और रचना-बोधकी संगतिकी तला एक समानान्तर तलाश है, इसीलिए समीक्षाको एक सहयोगी खोज मानता हूँ। वह हस्तक्षेप नहीं, पूरक है। उसका ध परिवर्तन-नियमन-नियन्त्रण नहीं, समझना औ समझाना है। अबतक वह अपनी का शास्त्रीय परम्परा और प्रतिमानोंके प्रति ह सर्मापित होती रही है और समकालीन जीव बोध और रचनासे लगातार कटती आयी है इसीलिए लांछित रही है और वह इ क़ाबिल थी। आज ज़रूरत है आलोचना इस पद्धतिको बिलकुल नकारनेकी, जो हमे से आरोपित होती आयी है और पीछे चल आयी है। रचना और समीक्षाकी दुनिया, ए समानान्तर दुनिया है और दोनों अपने-अ ढंगसे जीवनसे जुड़ी हुई हैं : बल्कि समीक्षा सम्पृक्ति दुहरी है—जीवनसे और रचना उभरते हुए जीवन-बोधसे भी।

परम्पराको ही लीजिए—रचनाका परम्परासे असन्तुष्ट और विद्रोही हो सकता है बल्कि होना चाहिए, लेकिन समीक्षाको पू

परम्परा अपने सामने रखनी होती है—मगर उससे बँधना नहीं है। यहाँ भी वही दुहरी सम्पृक्ति (परम्परा और समकालीनता, दोनों की गहरी समझ और दोनोंका सही बोध) उसके लिए ज़रूरी है।

तुम अपने लिए परम्पराको विकृत नहीं कर सकते, अपनी पीढ़ीके पक्षमें तुम उसे एब्यूज भी नहीं कर सकते और न उसे अस्वीकृत करनेकी ज़रूरत है। एकको महान् बतानेके लिए दूसरेपर परदा डालनेकी ज़रूरत मुझे समझमें नहीं आती····

एक समीक्षात्मक, ऐतिहासिक चेतना विकासके उस निरन्तर प्रवाहको रेखांकित करती है जो जीवनकी तरह साहित्यमें भी होता है। (हाँ, परम्परावाद और परम्परामें फ़र्क़ करनेकी ज़रूरत हर मौक़ेपर होती है और विरोध परम्परावादका ही होता है—होना चाहिए।) विकसित होती हुई जीवन-दृष्टिसे ही जैसे एक कलाकारका स्थान निर्धारित होता है, वैसे ही एक क्रमशः विकासशील रचना-दृष्टिमें ही समीक्षाको सार्थकता है। वह परिभाषाकी तलाश नहीं, रचनामें (से) जीवन-प्रक्रियाकी तलाश है और जीवन-प्रक्रियामें रचनाको केन्द्रित करना है। इतिहासकी गति क्रमशः होती है और बीती हुई स्थितियोंको हम वर्तमानके परिप्रेक्ष्यमें नहीं देख सकते। मैं तो समझता हूँ—कला और संस्कृतिका कोई भी मोड़, तत्कालीन जीवन, सन्दर्भ और परिप्रेक्ष्यमें ही देखा-समझा जा सकता है।

परिवेश-चेता प्रगतिशील धारा और व्यक्ति चेतनाको समर्पित व्यक्तिवादी धारा अपने समयकी ही प्रतिध्वनियाँ हैं। प्रगतिशील धाराने जिस व्यापक सामाजिक जागरूकताको रेखांकित किया, वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी और उसने जब व्यक्तिको केवल परिस्थितियोंका ही पर्याय बना दिया था, उसीकी प्रतिक्रिया व्यक्तिवादी धारा है। देश, समाज और जीवन, जिन स्थितियोंसे गुज़र रहा था, उनके परिप्रेक्ष्यमें ही इनका महत्त्व है। परिवेशकी भिन्नतासे कहानीकी चेतना और दृष्टि भिन्न होती और यथार्थ (जीवन) ही वह परिवेश होता है और यह बदलता चलता है। यह सच है कि शक्तिशाली कहानीका सम्बन्ध लेखककी अपने विषयकी आत्मीयता और लेखकीय सामर्थ्यसे ही है, लेकिन प्रश्न उठता है, इसका निकष क्या है? क्या अज्ञेय और जैनेन्द्र, यशपाल और अमृत राय आदिमें इनकी न्यूनता है? क्या उन्होंने समयकी नब्ज़को पकड़नेमें भूल की है? क्या 'मूड ऑफ़ द टाइम' कहीं ध्वनित नहीं है? ज़रूरत उस 'मूड ऑफ़ द टाइम'को जाननेकी भी है। एकपर परिवेश हावी था और व्यक्ति परिस्थिति मात्र हो गया था तो यह समयकी ज़रूरत ही तो थी। उस समय यही 'मूड ऑफ़ द टाइम' था। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पीठिका देखिए, लेखकके मानसपर इसके सिवाय और क्या प्रतिक्रिया हो सकती थी? और इसीका दूसरा 'स्विंग' वह था जिसे अज्ञेय, जैनेन्द्रने उठाया। व्यक्तिहीनतासे हटकर व्यक्तित्वकी खोजका प्रयत्न किया। एकको तब शायद ज़रूरी था कि आस्थाको

उत्प्रेरित करनेवाले किसी दर्शन-सिद्धान्तका सहारा ले, तो दूसरेको स्वयंको पानेकी दिशामें अन्तर्गुहाओंकी भटकन भी खोज ही लगी थी। साहित्य कालको अंकित करता है और वह कालांकित भी होता है। हम यह तो कह सकते हैं कि वे 'लेसर इविवल्ड' थे, उनकी सीमाएँ थीं, मगर उनकी सामर्थ्य और इण्टेन्शनपर शक नहीं कर सकते। तत्कालीन परिवेशको देखनेका उनका अपना तरीक़ा था, (भले ही उसे उन्होंने अपने लिए, किसी दर्शन-सिद्धान्तसे प्राप्त किया हो) और उनका अपना बोध था, जो ज़ाहिर है, आजके परिवेश-यथार्थसे और उसको देखनेके हमारे तरीक़े और बोधसे नहीं मिलता—नहीं मिलेगा। क्या इसका मतलब यह होगा कि वह तरीक़ा या बोध ग़लत था? समीक्षामें परिवेश-चेतनाका अर्थ यह भी होता है कि वे अन्तःसूत्र और दबाव ढूँढे जायें जिनसे अनिवार्य-परिणतिके रूपमें रचना जुड़ी होती है। कलके परिवेशका निर्वाह (ट्रीटमेण्ट) हम आजकी तरह नहीं कर सकते। 'यदि मैं इस कहानीको लिखता' या 'हम आज उन कहानियोंको लिखते' वाला दृष्टिकोण समीक्षाके लिए मुझे उचित नहीं लगता। थोड़ी अतिरंजनाका संकट मोल लेकर मैं कहना तो यही चाहूँगा कि यादव-राकेश ही नहीं दूधनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया भी उस समय होते, तो वे भी इससे पृथक् क्या लिखते? जैसे 'मलबेका मालिक' (राकेश), 'जहाँ लक्ष्मी क़ैद है' (यादव), 'खोयी हुई दिशाएँ' (कमलेश्वर), 'गुलकी बन्नो' (भारती), 'गँदले जलका रिश्ता'(शानी), 'एक प्रामाणिक झूठ' (रवीन्द्र कालिया), 'आइसबर्ग' (दूध सिह), 'एरिना' (गंगाप्रसाद विमल), का समय-परिवेशकी उपज हैं वैसे ही 'रक्षाबन्ध (कौशिक), 'शंखनाद' और 'बड़े घरकी बे (प्रेमचन्द) तथा 'जाह्नवी'(जैनेन्द्र) और 'रो (अज्ञेय) भी। 'उसने कहा था' (गुलेरी और 'आकाशदीप' (प्रसाद) से 'बादलों घेरे' (कृष्णा सोबती) और 'लवर्स' (निर्म वर्मा या 'एक पतिके नोट्स' (महेन्द्र भल्ला तककी यात्रामें समय और युग ही सिर चढ़कर बोल रहा है। प्रसादकी छायावादी नारी जिस त्याग और आदर्शके लिए घुलकर कल्पना और देवी हो जाती है वह सांस्कृतिक अनिवार्यता थी जिसे एक ओर अज्ञेय और जैनेन्द्रने एक मांसल व्यक्तित्व दिया तो यशपाल, अमृत या अश्कने समाजके व्याप परिवेशसे संयुक्त कर एक सामाजिक सच्चाई और परिस्थितिका रूप दिया।

सैंतालीसके आस-पास जिस व्यापक परिवर्तन और उद्वेलनका सामना व्यक्ति, परिवार और समाजने किया उसके निशान नयी कहानीमें उभर आये हैं। वह सम्बन्धोंके टूटनेकी कहानी है, लेकिन टूटनेकी य प्रक्रिया यशपाल, अमृत और अज्ञेय-जैनेन्द्रमें ही शुरू हो जाती है। वहाँ टूटना शुरू नहीं होता; टूटनेकी प्रक्रिया शुरू हो जाती है आपसी सम्बन्धोंमें एक संशय, एक तनाव और एक दरारका एहसास होने लगता है लेकिन वहाँ कुछ भ्रम बचे हैं, एक सन्तुलनकी माँग बाक़ी है, सही या ग़लत कुछ आस्थाएं बची रह गयी हैं, जो पूरी तरह टूटने नहीं

देतीं; टूटते हुए भी किसी भावात्मक संयुक्ति की तलाश करती हैं, इसलिए किसी दर्शन, किसी आदर्श या किसी सिद्धान्तका पल्लू थामे या भावुक-विभोर स्थितियोंसे गुज़रता हुआ एक भविष्यवाद शेष रह गया है। नयी कहानीके आते-आते ये सारे भ्रम टूट-बिखर चुकते हैं, एक मोहभंगकी स्थितिमें वह अपने आपको पाती है। चारों ओर एक विघटन और विसंगतिका जो माहौल था (है) वहींसे नयी कहानीकी शुरूआत है। ऐसी स्थितिमें उसने किन्हीं भी ऐसे भ्रमों-आदर्शों-सिद्धान्तों या दर्शन आदिका आश्रय छोड़ दिया और जीवन और यथार्थको ही अपनी प्रतिबद्धता मानती हुई उसकी एक साथ कई यात्राएँ शुरू होती हैं—अलग-अलग दिशाओंकी ओर। जब हम कहते हैं कि नयी कहानी एक ऐतिहासिक सन्दर्भकी उपज है, तो हमारा मतलब यह भी होता है कि उसकी एक परम्परा थी। वह परम्परासे एकदम विच्छिन्न नहीं है। ग़लत परम्पराओंका विरोध उसने किया है और मुझे उसकी वह भूमिका अधिक संगत मालूम होती है, जो वैचारिक धरातल और रचनाकी अन्तर्प्रेरणाके स्वरपर स्वयंको भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द या निराला आदिसे संयुक्त करती है : प्रेमचन्दकी ही 'पंचपरमेश्वर' या 'शंखनाद' नहीं, वरन् 'क़फ़न' 'पूसकी रात' या 'शतरंजके खिलाड़ी' आदिसे अपने आपको जोड़ती है।

और कोई धारा-विशेष या प्रवृत्ति-विशेष ही नयी कहानी नहीं है। मूल्य, धरातल और दृष्टिकोणके अन्तर-वैभिन्न्य और विरोधको लिये अलग-अलग प्रवृत्तियाँ—एक ही उपलब्धिकी क्रम हैं। वह आजकी परिस्थितियों (में) से उद्भूत मानवीय यथार्थकी समग्र संवेदना, संचेतना और भावबोधकी कहानी है और इस सन्दर्भमें कवि-कथाकारों या लोकप्रिय कथाकारोंके-से बेमानी विभाजनके पीछे मुझे कोई सार्थक दृष्टि नज़र नहीं आती। कविता बनाम कहानीका कथित द्वन्द्व तो और भी बेमानी है। जब लोग कहते हैं कि 'नयी कहानीका विकास, नयी कविताकी पार्श्ववर्ती शाखाके रूपमें नहीं, उससे अलग और उससे आगेके साहित्यिक आन्दोलनके रूपमें हुआ' अतः नयी कहानी, नयी कविताके आगेकी है, (राकेश) या 'कविता अनुभवका एक स्तर है, कहानी दूसरा' (श्रीकान्त वर्मा) या 'नयी कविता परम्पराके प्रति विद्रोह है और नयी कहानी परम्पराका पुनःप्रस्तुतीकरण' तो लगता है, वह सैद्धान्तिक विवाद कम है, साम्प्रदायिक या वर्गीय आसक्ति अधिक। विधाका चुनाव, माध्यमका चुनाव है और इस सन्दर्भमें विभाजन और वर्गीकरण अकलात्मक है। प्रश्न है कि क्या केवल कहानीमें ही अनुभूतियोंको जीवन(में) से पाना होता है? क्या कविताकी अनुभूतियाँ कहीं बाहरसे आती हैं?....कवितामें जीवनकी अभिव्यक्ति उतनी प्रत्यक्ष नहीं होती जितनी कहानियोंमें होती है। कविता और कहानीकी भिन्नता इसी धरातलपर हो सकती है, अन्यथा संवेदना, अनुभूति या प्रकृतिके स्तरपर विधाओंका विभाजन नहीं होता। मूलतः साहित्य ही नहीं—कलाकी प्रकृति भी एक है। 'आजकी कविताके एक वर्गमें काव्य-

अनुभूतियोंका उत्स, प्रमाण और सन्दर्भ स्वयं कवि होता है।' (यादव)—यह बात कविताके किसी खास वर्ग या कविता ही नहीं कहानीके साथ भी सच है। हर कला-माध्यमकी तरह कहानियोंमें भी अनुभूतियोंका उत्स, प्रमाण और सन्दर्भ रचनाकार ही होता है, अन्यथा अनुभवकी निजता, प्रामाणिकता और वास्तविकताका निकष क्या है? जीवन, परिवेश, समाज और यथार्थ, इनसे रचनाकार व्यक्तिशः ही तो जुड़ा है।

सच तो यह है कि साहित्यकी किसी प्रवृत्ति और उपलब्धिपर चर्चा करते हुए हम दुहरे प्रतिमानोंका प्रयोग नहीं कर सकते। ऐसा नहीं हो सकता कि जब कवितापर विचार करें तो केवल तथाकथित आत्म-सम्बोधन-वादी कविता एवं उसकी म्रियमाण धाराका उल्लेख करें और जब कहानीकी बात करें तो उन कहानियोंकी जो युग और यथार्थको सम्बोधित हों। जब यह कहा जाता है कि जो मनःस्थिति सम्पूर्ण कविताके लिए पर्याप्त है, वह अधिकसे अधिक कहानीके पूरे फ्रेममें एक स्थिति-भर हो सकती है या विवरणका एक डीटेल (एक दुनिया समानान्तर—यादव) और इसी आधारपर कविता और कहानीकी मूल प्रकृतिमें अन्तर किया जाता है, तो मुझे लगता है, यह अन्तर न तो मौलिक है, न प्राकृतिक। रूप, फ़ॉर्म या अभिव्यक्तिका माध्यम, 'विल टू फ़ार्म' की उपज है, जो मशीनी नहीं, इण्टच्यूटिव होती है, सायास नहीं, अनायास होती है और वहाँ अनुभूतिका नहीं, अभिव्यक्तिका ही अन्तर होता है। कोई एक मनःस्थिति, कहानीके लिए भी पर्याप्त हो सकती है और होती है जैसे स्वयं यादवकी कहानी 'किनारेसे किनारे तक', रवीन्द्र कालिया, और विजय चौहान, रघुवीर सहाय आदिकी कई कहानियाँ। कहानीको जब जीवनकी एक झलक, एक ही अनुभूतिकी अभिव्यक्ति कहा जाता है तब इसका मतलब कहीं इस एक मनःस्थितिसे भी होता है जो जीवनसे सारे जीते-जागते रेशोंके साथ जुड़ी होती है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि रेशे कहानीमें पूरे विस्तार और बारीकीसे दिखाई देते हैं—दिखाये जाते हैं—क्योंकि उसका सम्बोधन अधिक प्रत्यक्ष और सामाजिक होता है, और कवितामें ये प्रायः अदृश्य होते हैं, (मगर होते हैं।) कविता भी सन्दर्भोंसे कटी नहीं हो सकती, केवल उसका सम्बोधन अधिक अप्रत्यक्ष और सांकेतिक होता है। ऐसा नहीं है कि कविता केवल आत्म-सम्बोधन है। आत्म-सम्बोधन कविताका एक रूप हो सकता है, (गो कि यहाँ आत्म—समग्र मानवका पर्यायवाची हो जाता है,) दरअसल सारी कला मनुष्यका मनुष्यको सम्बोधन है। सम्बोधनके प्रकार, रूप, और शैलीमें फ़र्क़ ज़रूर होता है। कहानी अभिव्यक्तिका एक प्रकार है तो कविता दूसरा। विधाओंके रूपमें इनमें-से किसीको बड़ा-छोटा साबित नहीं किया जा सकता। बिम्ब-विधान, प्रतीक और सांकेतिकता, काव्य-अभिव्यक्तिसे सम्बद्ध ज़रूर हैं लेकिन कहानीमें भी इनका प्रयोग कथा विकासकी सूक्ष्म, जटिल स्थितियोंको तद्रू

और तद्वत् सम्प्रेषित करनेके लिए ही होता है। चाहे वह नयी कहानी हो या नयी कविता—दोनों एक ही ऐतिहासिक सन्दर्भकी उपज हैं। उनकी संवेदना और संचेतनामें मौलिक और आधारगत अन्तर नहीं है, क्योंकि वे इतिहासके एक ही काल-खण्ड और जीवन-समाज-यथार्थके एक ही परिप्रेक्ष्यसे सम्बद्ध-सम्पृक्त-प्रतिबद्ध हैं।

नयी कहानीकी चर्चामें सामाजिकता और यथार्थ कई बार बड़े सतही ढंगसे एक नारेके रूपमें भी इस्तेमाल होते आये हैं। इनमें-से यथार्थ शायद सबसे अधिक अस्पष्ट शब्द है। बाहरी दुनियाकी एक वस्तु-परक वास्तविकता-में विश्वासके रूपमें ही इसका इस्तेमाल होता आया है लेकिन आन्तरिक दुनियाकी एक आत्मीय परिचिति (रियलाइजेशन) भी क्या यथार्थ नहीं हो सकती ? खासकर तब, जब कि वह मानवीय नियति और स्थितिके किसी गहरे दबावकी उपज होती है और सामाजिकता क्या केवल स्थूल और बाह्य सम्बन्धोंकी ही अभिव्यक्ति है ? मानवीय नियति और संकटमें इन्वाल्व्ड, ज़िन्दगीके रोज़मर्रेके बाहरी यथार्थसे अलग, जीवन और अस्तित्वके आधारगत, मौलिक प्रश्नों, चुनौतियों और मूल्योंसे जुड़ा हुआ व्यक्ति-रचनाकार क्या असामाजिक होगा ? इन्हें (सामाजिकता और यथार्थ—आदिको) यदि लोग नारे या अस्त्रके रूपमें इस्तेमाल करना छोड़ दें, तो उन कहानियोंके साथ हम ज्यादा न्याय कर सकेंगे जिन्हें तथाकथित कवि-कथाकारोंकी मानकर एक अलग वर्गके रूपमें देखा गया है और उसके जवाबस्वरूप तथाकथित साहित्यिक और लोकप्रिय कहानीका विभाजन और वर्गीकरण और कहानीकी बाहरी सरहदोंपर लड़ी जानेवाली शाब्दिक गुरिल्ला लड़ाईका भी अन्त हो जाये। जो स्वयंको सामाजिक और यथार्थके प्रति प्रतिश्रुत मानते हैं, उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने कहानीको झूठ और मनोरंजनसे हटाकर एक गम्भीर साहित्यिक अभिव्यक्तिका दर्जा दिया—उसे जीवनकी सच्चाइयोंसे केवल जोड़ा ही नहीं, उसे जीवनकी एक सच्चाईकी प्रतिष्ठा दी और जिन्हें कवि-कथाकार कहा जाता है उन्होंने उसे एक कलात्मक संस्कार दिया, उसे जीवन-अस्तित्व और मानवीय नियतिके संकटों-प्रश्नों और मूल्योंपर चिन्तन-माध्यम (वेहीकल) बनाया। 'यथार्थ नहीं, यह तो कहानी लगता है' की अभिव्यक्तियाँ नयी कहानीके साथ 'कहानी नहीं, यह तो यथार्थ है' में बदल गयी और कहानीकी चर्चा, कला-चर्चाका दर्जा पा सकी। क़िस्सागोई और कथात्मकतासे उठकर एक कलात्मक ऊँचाई और सार्थकता पानेकी कोशिश यहींसे शुरू हुई और यह कोशिश किसी एक व्यक्ति या वर्ग मात्रकी नहीं है, दरअसल हर सार्थक कहानीकारकी कोशिश यही है।

इस कोशिशके प्रति इधर अगली पीढ़ीके कथाकार कुछ अधिक जागरूक नज़र आ रहे हैं। नयी कहानीके पहले कुछ सही-ग़लत आस्थाएँ बची रह गयी थीं, कुछ भ्रम थे, एक भविष्यवाद काम कर रहा था लेकिन नयी कहानीके प्रवेश तक, वह सब टूट-बिखर चुका था। इसीलिए उसमें सम्बन्धोंके टूटनेकी क्रिया

बड़ी तीव्र और तल्ख़ है लेकिन इसके साथ ही सन्दर्भोंसे जुड़ने, युग-पीठिकासे सम्बद्ध होने या किन्हीं सामाजिक सूत्रोंकी मौजूदगी नयी कहानीमें है। इधर यह सन्दर्भोंसे जुड़ना, सम्बद्धता या सामाजिक सूत्रोंकी मौजूदगी भी ग़ायब होती जा रही है और व्यक्ति अकेला और अजनबी होता जा रहा है। 'अपने ही देश' में निर्वासन और न समझे जानेकी पीड़ा भोग रहा है। समकालीन परिवेशमें 'ब्रह्मा' की तो कहे कौन 'विश्वामित्र' होनेका भ्रम भी उससे लगातार छिनता गया है। नायक और खलनायककी विरोधी स्थितियोंसे अलग एक 'तीसरी स्थिति' में, एक 'तीसरे व्यक्ति' की तरह वह होता गया है। लेकिन इस स्थितिको किसी तरहके ख़तरेकी घण्टी न मानकर उस व्यापक 'कॅआस'को देखना होगा जो इन पिछले पाँच-सात वर्षोंमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें अपनी चरम सीमापर पहुँच चुका है। जो संशयग्रस्तता और व्यर्थता, जो सन्त्रास और निर्वासन, जो अजनबीपन और अकेलापन, जो मृत्यु-भय, ऊब और घुटन इन दिनों वातावरणमें फैली और फ़ैल रही है उसीका उद्‌घाटन इधरके कहानीकार पूरी बोल्डनेसके साथ कर रहे हैं। मुमकिन है कुछ लोगोंको ये मनोदशाएँ आरोपित लगती हों, लेकिन रोज़मर्रेकी सतही ज़िन्दगीके पार, जीवन और अस्तित्वकी सार्थकता-निरर्थकतासे संयुक्त होकर देखा जाये तो ये स्थितियाँ किंचित् अतिरंजित भले लगें, इनको नकारा नहीं जा सकता। इधरकी रचनाओंके माध्यमसे उभरनेवाले इस जीवन-बोधको यदि समकालीन जीवन-धारासे संयुक्त किया जाये, तो इनके अस्तित्वपर शंका नहीं की जा सकेगी—देखना यही है कि ये मनोदशाएँ अपने सन्दर्भसे जुड़कर ही आती हैं। ऐसा तो नहीं है कि जैसे कुछ दिन पहले मार्क्स या फ़ायडके निष्कर्षोंको प्रमाण मानकर साहित्य रचा जा रहा था, वैसे ही आज सार्त्र या कामूके निष्कर्षोंको ओढ़कर तो कहानियाँ नहीं लिखी जा रही हैं। जो मनोदशाएँ हैं, उनका सही और वास्तविक सन्दर्भ क्या है या यदि सलीब ढोनेकी विवशता है तो क्या अपने सलीबोंको भी पहचानते हैं या दूसरोंके सलीब ही ढो रहे हैं?

एक अलगावकी स्थिति शायद फिर आ गयी है, कदाचित् यह फिर एक खोजकी दिशा हैं और रचना अपना स्वरूप और दिशा स्वयं स्पष्ट करती है। वह अपना नामकरण भी स्वयं करती है। उसके विषयमें अपनी दृष्टि और कोणको आरोपित करनेकी आवश्यकता नहीं है।

१३१, आज़ाद रोड
नरसिंहपुर (म० प्र०

पौलेण्ड के ग्राफ़िक और पोस्टर

•

घनश्याम रंजन

अन्य देशोंकी तरह पोलैण्डमें भी इम्प्रेशनइज़म और सिम्बोलिज़्म दो स्कूलोंके माध्यमसे कला पनपी है, इन्हें ओलगा बोज़नान्सका (१८६५-१९४२) तथा जोज़ेफ़ पानकेविज (१८६६-१९४२) ने अपनी प्रतिभा से सींचा था। फिर गॉगिनके प्रभावसे जहाँ प्रतीक शैली अछूती न रह पायी वहीं पोलैण्डकी क्रान्ति और रक्तपातसे भी पोलिश-कला प्रभावित हुई है। इसी क्षितिजसे आधुनिक चित्रकलाका जन्म भी माना जा सकता है।

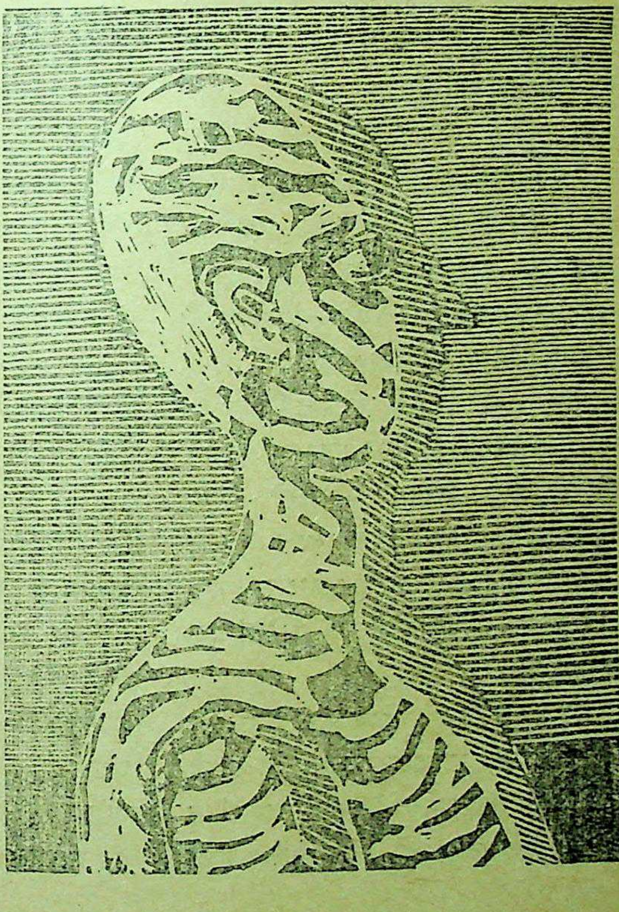

• ग्राफ़िक

जहाँ तक ग्राफ़िक चित्र-कलाका प्रश्न है—यह विधा भी १९वीं सदीके अन्तसे सामने आयी है और इसपर भी विदेशी कलाका प्रभाव पड़ा। किन्तु बहुत कुछ उसको अपने ही देशकी मिट्टी और परिस्थितियोंसे

मिला है। प्रथम महायुद्धके बाद तो पोलैण्डमें ग्राफ़िकने कलाके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

ग्राफ़िक कलाके अन्तरगत कई शैलियोंको लिया जाता है, जैसे लिनोकट, वुडकट, इचिंग, ड्राई प्वाइण्ट, लिथोग्राफ़ आदि। इस प्रकारकी चित्रकला सीधे काग़ज़पर नहीं चित्रित की जाती। मोटे तौरपर कहें तो प्राचीन कालमें पत्थरपर लिखकर तब काग़ज़पर छापनेकी जो विधि थी, वही विधि इस कलाको चित्रित करनेमें भी प्रयोग की जाती है, परन्तु तकनीक जरूर कुछ नयी हो गयी है। आज भी उर्दू अख़बार इसी पद्धतिपर छपते हुए पाये जाते हैं।

इधर पोलैण्डमें क्राकाऊ नगर ग्राफ़िक चित्रकलाके लिए प्रसिद्ध हो गया है। वहाँ पानेक, वोजतोविक, मैनोवस्की, वेजमान-जैसे प्रख्यात ग्राफ़िक-कलाकार रहते हैं। और नये नाम भी बड़ी तेज़ीसे उभर रहे हैं जैसे गाज, पित्श, जैकोवस्की आदि। अभी वहाँ एक अन्तर्राष्ट्रीय ग्राफ़िक-चित्रकला-प्रदर्शनीका आयोजन किया गया था जिसमें फ़्रान्स, हालैण्ड, जापान, मैक्सिको, स्पेन, यूनाइटेड स्टेट, युगोस्लाविया आदि देशोंने भाग लिया था। इस प्रदर्शनीमें क्राकाऊ नगरके इन तमाम चित्रकारोंकी भी कृतियाँ प्रदर्शित हुई थीं।

भारतमें पोलिश ग्राफ़िक और पोस्टरोंकी जो प्रदर्शनी केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयकी ओरसे ललित कला अकादमीने दिल्लीमें आयोजित की (जो अब लखनऊमें राज्य ललित कला अकादमी, उ० प्र० के तत्त्वावधानमें चल रही है) उसमें उपर्युक्त ग्राफ़िक चित्रकारोंकी कृतियाँ तो हैं ही, तमाम और चित्रकारोंकी भी कृतियाँ देखनेको मिलती हैं। यही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय ग्राफ़िक-प्रदर्शनीमें प्रदर्शित कुछ चित्र इसमें सम्मिलित हैं। मिसालके तौरपर जोजफ गेलनाएकके 'इम्प्रोविजेशन ग्राजयन्का II' (लिनोकट)का नाम लिया जा सकता है।

स्टीफ़ेन सुवरलाक, तेरेसा जकुबोवस्का और हेनरिक प्लोसेनीककी अन्य कृतियाँ, जो यहाँ प्रदर्शित हैं, उनके साथ उनकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनीमें प्रदर्शित क्रमशः 'स्प्रिंग' (लिनोकट), 'केवलकार' (लिनोकट), तथा 'हनीमून' (लिनोकट) भी प्रदर्शनके लिए आतीं तो भारतीय कलाकारों और कला-प्रेमियोंको ग्राफ़िकमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तरकी एक स्पष्ट रूप-रेखा मालूम हो जाती। क्राकाऊकी प्रदर्शनीमें भाग लेनेवाले आन्द्रज़ेज नोवाक, जीमुन्त कोतलाजेक तथा जादविगा काय-ओतरेबाकी कृतियाँ भी भारत नहीं आयीं। उनके स्थानपर दूसरे युवक-चित्रकारोंकी कृतियाँ पता नहीं क्या समझकर भेजी गयीं हैं। फिर भी ये कृतियाँ पोलैण्डका प्रतिनिधित्व तो करती ही हैं।

यदि कोई व्यक्ति वास्तवमें कलाकी समझ रखता है और इक्सप्रेशनिज़्म और सुर-रियलिज़्मको मानता है तो वह आँखोंको प्रिय लगनेवाली, छलिया, ऑप-आर्टकी-सी ग्राफ़िक शैलीको तहेदिलसे नहीं स्वीकारेगा। फिर भी आधुनिक ग्राफ़िक आर्टके विषय-वस्तु

(सब्जेक्ट) सम्मोहन, तथा 'टेक्सचर' और तकनीकमें रमणीयता निहित होती है। रंगोंके प्रयोगमें विलक्षणता भी देखी जा सकती है। आन्द्रज़ेज ओसेकाके मतानुसार हालैण्ड पोस्तमा और स्वीडेनके रैम्ब्रर्गकी तरह पोलिशके तरुण चित्रकार पेनेक और गाज ग्राफ़िक-कलामें गोया, मुंच और पिकासोकी परम्पराओंपर पुनः लौट रहे हैं। इनकी इचिंग मानव क्रिया-कलापोंकी अभिव्यक्ति, मुख्यतया अप्रत्यक्ष और अन्दरूनी भावोंका पोस्टमार्टम करती हैं।

प्रदर्शित चित्रोंको देखनेसे लगता है कि ग्राफ़िक-कलापर रंग हावी होते जा रहे हैं। और लोक कलाकारों द्वारा निर्मित मध्यकालीन वुडकटकी तरह ग्राफ़िक कला भी पोस्टर और समाचार-पत्रके व्यंग चित्रोंके काफ़ी निकट लगने लगी है।

• पोस्टर

प्रस्तुत प्रदर्शनी लखनऊके बाद मद्रास और हैदराबाद होकर पोलैण्ड वापस चली जायेगी। इसमें ग्राफ़िकके अतिरिक्त ८५ पोस्टर भी हैं। इन पोस्टरोंमें व्यापारिकता कम और कलात्मकता अधिक है। जया अप्पासामीने प्रदर्शनीके सूचीपत्रकी भूमिकामें लिखा है कि पोलिश पोस्टर वस्तुओंका विज्ञापन नहीं करते हैं और फ़िल्मी-पोस्टर भी फ़िल्म-स्टारोंका विज्ञापन नहीं करते, वरन केवल किसी वस्तु विशेषकी अभिव्यक्ति करते हैं या किसी तथ्यको उभारते हैं। अतः ये पोस्टर हास्यात्मक अथवा शोकात्मक भावको इंगित करते हुए भी मौलिक और रचनात्मक होते हैं।

यह सत्य भी है। पोलैण्डमें बिल-बोर्डों तथा दीवारोंपर नित्य नये पोस्टर लगाये जाते हैं जिनमें-से कितनोंकी तो १,००,००० से २,००,००० प्रतियाँ तक लगायी जाती हैं। नयी जीवन-पद्धति और बदलते हुए सामाजिक मूल्योंने पोलिश पोस्टर-आर्टिस्टोंके आगे एक समस्या खड़ी कर दी है, जिसके कारण पोस्टरोंका पहले वाला व्यापारिक दृष्टिकोण बदल गया है।

तादुस्ज ट्रेपकोवस्की, हैनरिक तोमाजवस्की, इरिक लिपिन्सकीके पोस्टर आमतौरपर बड़े दिलकश और लुभावने होते हैं। यद्यपि इन सबकी अपनी-अपनी शैली है फिर भी पोलिश-टाइप पोस्टर-आर्ट देखनेसे इनका ध्येय एक ही मालूम पड़ता है। पोलिश पोस्टरोंकी एक विशेष शैली हो गयी है, और उनकी कलात्मकता अपने ढंगकी अनूठी है। पोलिश फ़ोक आर्टकी तरह इनके पोस्टर भी रंग-बिरंगे और मौलिक होते हैं।

उनकी पोस्टर-पेंटिंग कला खूब प्रगति कर रही है। पहले तो केवल कुछ ही चित्रकार इस क्षेत्रमें काम करते थे, परन्तु अब नयी पीढ़ीने इस ओर सक्रिय क़दम उठाया है। इरिक लिपिन्सकी, जोजेफ म्रेसज़ाक, हेनरिक तोमाजवस्की-जैसे चित्रकार जहाँ इस क्षेत्रमें अपना योगदान कर रहे हैं वहीं जान म्लोदोजेनिक, जुलियन पालका, वोज़सीच जामे-

जनिक, वालदेमार स्वीजी जैसे-प्रतिभाशाली कलाकार भी पीछे नहीं हैं। पोलैण्डसे प्रकाशित होनेवाली एक सुन्दर पत्रिकामें इनके पोस्टर मुझे अक्सर देखनेको मिले हैं। इस प्रदर्शनीमें भी और नये नामोंके साथ जब इन्हीं चित्रकारोंके ब्रशका कमाल नये सन्दर्भोंमें देखनेको मिला तो सचमें बड़ी प्रसन्नता हुई है।

पोलिश पोस्टरकी अपनी विशेताओंके कारण विदेशोंमें खूब माँग रहती है—खासकर चेकोस्लोवाकिया, बलगारिया, जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक, पश्चिमी जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, स्वीडेन, मेक्सिको, रूस, आस्ट्रिया, हंगरी और चीनमें। इसीसे पोलिश पोस्ट कलाकी उपादेयता और श्रेष्ठताका भास हो जाता है। भारतमें अगर कोई पोस्टर बना है तो उसे नौसिखिया कलाकार समझा जाता है तथा पोस्टर-कलाको वह मान न दिया जाता, जो देना चाहिए।

यद्यपि भारतमें ग्राफ़िक कला एवं पोस्ट कला नयी नहीं है मगर फिर भी जीवन मूल्योंके निकट इसे लाना होगा। यह प्रदर्श भारतके कलाकारों और कला-मर्मज्ञोंमें कला को जीवन ढालनेकी प्रेरणा देगी—ऐसा मेर विश्वास है।

६५ कैण्ट रो
लखनऊ-

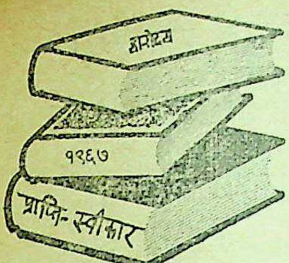

ज । न । व । री

[यह स्तम्भ ज्ञानोदयमें समीक्षार्थ प्राप्त समस्त पुस्तकोंकी स्वीकार-सूचीके लिए है। चुनी हुई पुस्तकोंकी समीक्षा यथा-सुविधा प्रकाशित की जायेगी।]

राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली :

- नागर गीता : बच्चन
- अमृता प्रीतमकी कहानियाँ : अमृता प्रीतम
- विश्वके महावैज्ञानिक : लाजपतराय एम० ए०
- काँचके खिलौने : अमिताभ
- उपग्रह और अन्तरिक्ष यान : अनु० दीवान
- शरीफ़ों का कटरा : मन्मथनाथ गुप्त
- राष्ट्रपति राधाकृष्णन् : अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली :

- सुहागिनें : मोहन राकेश
- वारण्ट गिरफ़्तारी : फ़िक्र तौसवीं
- हिन्दीकी लोकप्रिय हास्यकविताएँ : राबिन शॉ पुष्प
- शेर-ओ-शायरी : प्रकाश पण्डित
- ज्वाला : नानक सिंह
- क्या आप जानते हैं ? : हरिमोहन शर्मा
- काकाके क़हक़हे : काका हाथरसी
- सुबीरा : कर्तारसिंह दुग्गल
- जामुनका पेड़ : कृश्नचन्दर
- तीन दिनकी बात : रजनी पनिकर
- बाँसुरी : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
- मनकी घाटियाँ : अमरकान्त
- चढ़ती धूप : अंचल
- सन् १९८४ : जार्ज आरवेल
- बच्चनके लोकप्रिय गीत : बच्चन
- १८५७ का स्वतन्त्रता-संग्राम : वीर सावरकर
- उदयास्त : आचार्य चतुरसेन
- शरत्‌की श्रेष्ठ कहानियाँ : धन्यकुमार जैन

अक्षर प्रकाशन, दिल्ली :

- ऊँचा पर्वत, गहरा सागर : विष्णु प्रभाकर
- आलोचना : प्रकृति और परिवेश : डॉ० तारकनाथ वाली
- स्वर परिवेशके : किरण जैन
- अधूरे साक्षात्कार : नेमिचन्द जैन
- आधा गाँव : राही मासूम रजा
- बैसाखियों वाली इमारत : रमेश बक्षी
- फ़ौलादका आकाश : मोहन राकेश
- मांसका दरिया : कमलेश्वर

- एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
- नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ : गिरिजाकुमार माथुर
- नयी कहानीकी भूमिका : कमलेश्वर

साहित्य केन्द्र प्रकाशन, दिल्ली :

- ग्रहण : राजेन्द्र झा
- लहूका रंग एक है : शंकर सुलतानपुरी

नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली :

- चूनरकी पीड़ा : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
- पानी बिच मीन-पियासी : राघवेन्द्र
- चिन्तनके क्षण : विजयेन्द्र स्नातक

बेनीपुरी प्रकाशन, मुज़फ़्फ़रपुर :

- संजीवन कहाँ : राजेन्द्रप्रसाद सिंह

भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

- ओटक्कुष़ल : जी० शंकर कुरुप
- एक और नचिकेता : जी० शंकर कुरुप
- काठका सपना : ग० मा० मुक्तिबोध
- वाग्धारा : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
- हिन्दी शब्द-रचना : माईदयाल जैन

■ ■

वातायन

- आजका पाठक : अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक ! लेखक और दो विशिष्ट कृतियाँ ! पाठक लेखक और युगबोध !
- गीत : मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गीत हस्ताक्षर !
- विश्वभारती : पश्चिमी जगत्‌की कथाओंका प्रस्तुतीकरण !
- अन्तर्भारती : भारतीय भाषाओंका कथा-संगम !
- भारती : हिन्दी कथा-साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें !
- कविता : जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजकी कविता पीढ़ी ।
- साक्षात्कार : रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार !
- आलोचना : नयी ! पुरानी ! युगीन विचार-मन !

वार्षिक मूल्य १०.००, एक प्रति १.००
सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ
५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राजस्थान) ।
शाखा : २२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता–७ ।

(पृष्ठ ३ का शेष : कुछ पंक्तियाँ ···)

शेष कविताओंमें छायावादी बासीपन और ऊसर-सी रुक्षता है। नये कवि, भई, तुमने क्यों शामिल किये?····क्या पाया उनमें ? ये तुक्कड़ और सतही कवि ! क्या कहूँ इनकी नासमझी पर। शायद इनमें-से महानगर आँखें खोलकर किसीने नहीं देखा। कैलाश वाजपेयी, रमेशदत्त शर्मा, चन्द्रकान्त देवताले और सुदर्शन चोपड़ाकी रचनाएँ याद हैं आज तलक···याद रहेंगी। बैंकेट और लाल-हरी बत्ती। रमेश उपाध्यायकी कहानी 'अजनबी आकाश' एन्ज्वाय कर सका। रमेश और स्थल परिचित होने से। परिशिष्टांक पढ़कर तुमसे हमदर्दी हुई है। तुम अपने-आपमें इतने अकेले क्या सचमुच हो ?····तुम प्रतिक्रियाओंसे अछूते नहीं हो और बखूबी ज़िन्दा रहना चाहते हो। इन्सल्टेड भी नहीं हो। लेकिन इण्टरव्यू खूब निभाया है। कवि कुरुपकी कविताका अनुवाद अच्छा है। जानना चाहूँगा—किसने यह अनुवाद किया है; बधाई। इतनी अच्छी, संग्रहणीय सामग्री देनेके लिए सम्पादक-द्वय प्रशंसाके अधिकारी हैं।— **जबलपुर**]

(श्री कुरुपकी कविताओंके अनुवादक हैं—नारायण पिल्लै और लक्ष्मीचन्द्र जैन।)

●

[**सुरेश सेठ :** सत्य ही आपने 'महानगर विशेषांक'पर बहुत अधिक परिश्रम किया है। इतने आयामोंको छूती हुई, इतने लिखनेवालोंको कवर करती हुई इतनी मननयोग्य रचनाओंको जुटाना आपका ही बूता था। — **अमृतसर**]

●

[**ओमप्रकाश अग्रवाल :** आपके द्वारा सम्पादित 'महानगर विशेषांक' १९६६, बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ा। क्योंकि यह जानना चाहा कि महानगरोंकी ही ओर जनसंख्या क्यों खिचती चली जा रही है ? महानगर महान्तम बनते जा रहे हैं और ग्रामीण भारत उजड़ते-से जा रहे हैं। क्यों ? जब महानगर अनेक पीड़ाओंका घर है, कि फ़ुटपाथ शयन-स्थल हैं, अस्तित्वकी रक्षाके लिए अनवरत युद्ध परिहार्य है, जीवनमें ठहराव नहीं, मानवता लुप्त-प्राय है और मानसिक तनाव सर्वदा बना रहता है, तो फिर क्यों मनुष्य दिनों-दिन अधिक संख्यामें महानगरोंमें बसते जा रहे हैं ? क्या केवल रोटी-रोज़ीके लिए ही ? क्या जीवनके परिवर्तित मूल्योंसे समझौता कर लिया जाता है ? क्या महानगरकी सड़नमें एक लम्बे अर्सेतक रहनेके बाद आनन्द आने लगता है ? यदि ऐसा है तो उस काले जीवनको अंकित करनेसे क्या लाभ ? या इस बातका संकेत दिया जाता है कि देशको महानगरोंमें न समेटा जाये। लगता है, सरकार भी महानगरोंको नित नया विस्तृत चौंधिया देनेवाला रूप देनेमें प्रयत्नशील हैं। समस्या विचारणीय है। समयपर हल न निकाला गया तो मानसिक तनावका,

जीवनके सम्भावित परिणामोंका सामना करना पड़ेगा ? महानगर चन्द लोगोंके लिए ही सुखदायी हो सकते हैं अन्यथा प्रायः लोग दमघोंट जीवन व्यतीत करते हैं । — अड़ींग, मथुरा]

●

[**आनन्दनारायण शर्मा** : 'ज्ञानोदय'का 'महानगर-विशेषांक' मिला । पिछले कई विशेषांकोंको यह पीछे छोड़ आया है । नागरिक सभ्यताकी जटिलताओं और असंगतियोंको उभारनेमें आपने असाधारण सफलता पायी है । हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए । — बेगूसराय]

●

[**सियारामशरण प्रसाद** : 'ज्ञानोदय'का 'महानगर विशेषांक' अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विशेषांक है क्योंकि यह नगरबोधके विभिन्न आयामोंको पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करता है । आधुनिक संचेतना तथा जीवन-जगत्की सूक्ष्म परतोंको विशेषांकके रचनाकारोंने कुशलतासे देखा-परखा है, इसलिए इनके स्वरोंमें ईमानदारी और संवेदनाकी तरलता है । — मुज़फ़्फ़रपुर]

●

[**मंगलेश मयंक** : विशेषांक आकर्षक और सुव्यवस्थित है मगर ध्वंसोन्मुख परिप्रेक्ष्यमें ही महानगरोंका रूपांकन किया गया है ज्यादातर । विशेषांककी कुछ कविताएँ बड़े गहरेसे छू जाती हैं । भाई लीलाधरकी कविता यद्यपि हास्यकी जन्मक है लेकिन उसके माध्यमसे एक तीखा, कटु यथार्थ और व्यंग्य सम्मुख आता है । हाँ, 'शहरकी ज्यादा औरतें चूल्होंके क़रीब हो गयी हैं....' वाली पंक्ति विसंगत मालूम देती है -- देहरादून]

●

[**बलराज जोशी** : घर आकर; मेज़पर, हथेलियोंमें महानगर लटकाये हुए ज्ञानोदय मिला, लगा जैसे मेरे साथ मेरा सम्पूर्ण सेक्टर भी जगमगा उठा हो और मैंने सारी रात झोंक दी । महानगरोंके आसपासके सभी छोटे-बड़े सन्दर्भोंको एक साथ जुटाना कम जोखिमका काम नहीं । 'काका'के तीरोंपर चण्डीगढ़ आपने आड़ा ही दिया, फिर भी लगता है, कहीं-कहीं रचना नहीं रचनाकारका चेहरा महत्त्वपूर्ण हो उठा है । — चण्डीगढ़]

■ ■

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित
एक लाख रुपयेके साहित्यिक पुरस्कारसे सम्मानित
महाकवि जी० शंकर कुरुप
को

दो सविशेष काव्य-कृतियाँ

ओटक्कुष़ल

वह काव्य कृति जो भारतीय ज्ञानपीठ साहित्यिक पुरस्कारसे सम्मानित हुई है। कविकी विशेष भूमिका सहित एक अद्वितीय कविता-संग्रह। मूल मलयालम देवनागरी लिपिमें और नारायण पिल्लै तथा लक्ष्मीचन्द्र जैन-द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित। ८.००

एक और नचिकेता

'ओटक्कुषल'की परवर्ती १० लम्बी कविताएँ। रचना-काल : १९५० से १९६४ तक। संग्रहकी प्रत्येक कविता कविकी चिन्तन-यात्राको समझानेमें समर्थ। महाकविकी काव्य-शक्ति, सामर्थ्य और काव्य-सौन्दर्यकी परिचायिनी कविताएँ। ३.००

सर्वथा पठनीय एवं संग्रहणीय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता • वाराणसी
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

21 FEB 1967
-8 MAR 1967
1 MAR 1967
25 APR 1967
31 AUG 1967

ध्रांगध्रा
केमिकल
वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

कैल्सियम क्लोराइड

क्लोरीन लिकर

साहूपुरम में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

नमक

ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेन्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०
१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०, तार : सोडाकेम, बम्बई

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।

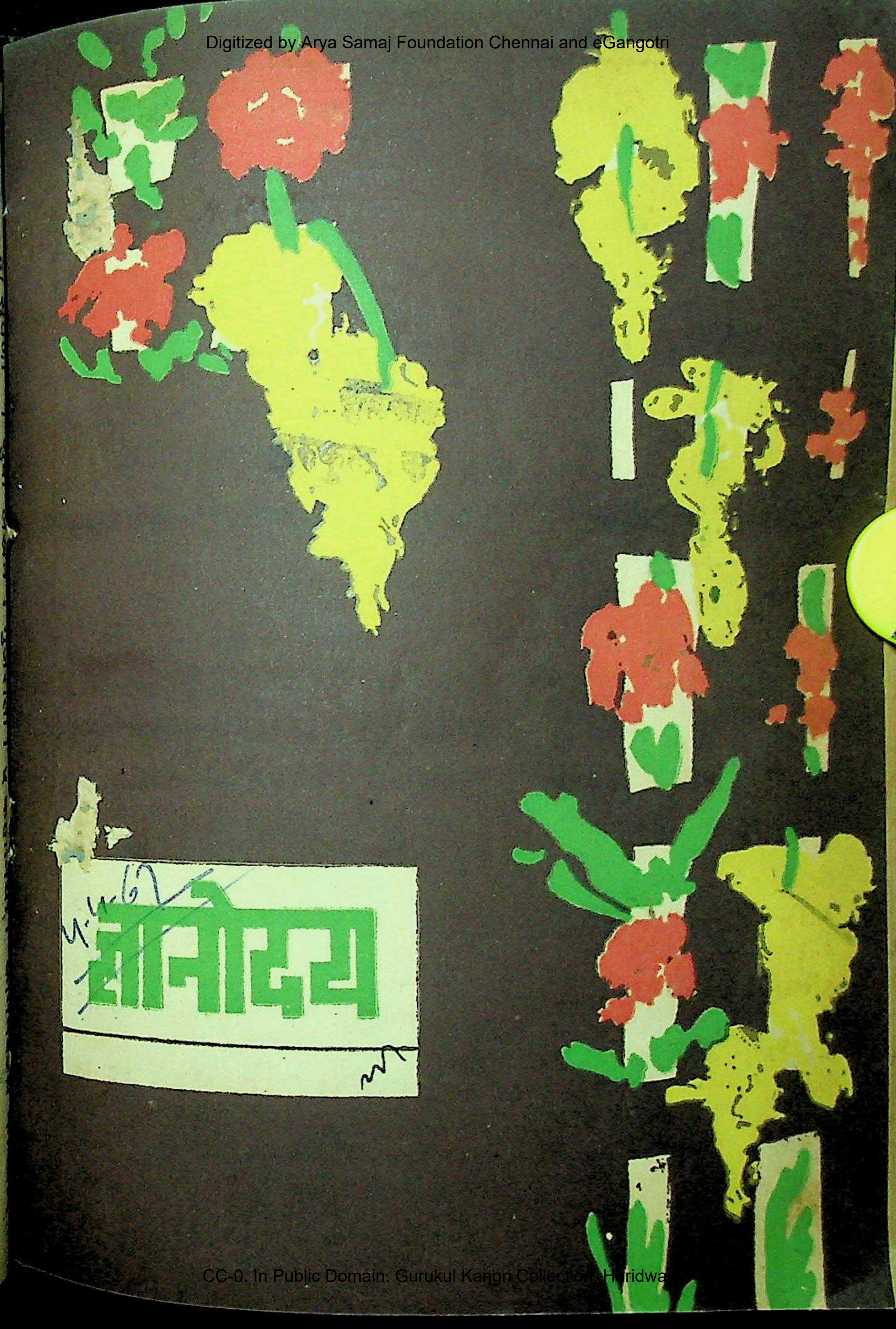

५.५.62

ज्ञानोदय

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं माणिक-
चन्द्र ग्रन्थमालाके अन्तर्गत

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

संस्थापक
शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई–१

ज्ञानोदय

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि मासिक

■

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी,
९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता-२७

वर्ष : १८
अंक : १०
अप्रैल '६७
मूल्य : १.५०

विशेष सन्दर्भ

लक्ष्मीचन्द्र जैन

■

जो वे स्वयं न कह सकीं- इन्दिरा गान्धी

कितनी बार कोशिश की है कि अपनी डायरी नियमित लिखा करूँ, किन्तु हर बार बीच-बीचमें छोड़ देनी पड़ी। पापाने भी नियमित डायरी नहीं रखी, लेकिन वह कितना-कुछ लिख-पढ़ लेते थे। वह बराबर टिप्पणियाँ और नोट्स दर्ज कर लेते थे और बातचीतका सारांश डिक्टेट करवा देते थे, लेकिन मुझे लगता रहा है कि उनका कहा हुआ और सोचा हुआ बहुत-कुछ ऐसा है जिसे पूरे हवालोंके साथ मैं ही जानती हूँ—और मन हुआ है कि उन बातोंको मैं लिख लूंगी और ऐसा दस्तावेज़ तैयार कर सकूँगी जो आधुनिक भारतके इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प अध्याय होगा। कहाँ कर पायी हूँ वह सब; अब तो हालत यह हो गयी है कि अपनी डायरी लिखना तो दूर—अपने सोचे हुए और जाने हुएको भी तरतीब नहीं दे पाती, कि जिस प्रभावके साथ अपने भाषणोंमें वह बताना है, बता

पाऊँ। हवाई जहाज़में सफ़र करते वक़्त, मोटरमें फ़ासले तय करते वक़्त और सभाओंमें बैठकर दूसरोंके भाषण और अभिनन्दन सुनते वक़्त ही कुछ समय मिलता है जब किसी मसलेपर अपने ढंगसे कुछ सोच पाती हूँ और दिमाग़में उसका कुछ नक़्शा बना लेती हूँ कि क्या बात भाषणमें कहनी है। सफल प्रभावके लिए आवश्यक है कि यह भी सोच लिया जाये कि बात किस ढंगसे कहनी है, लेकिन ढंगके बारेमें कभी सोच ही नहीं पाती हूँ। जिस वक़्त जो मनमें जिस ढंगसे आता है, उसी ढंगसे कह देती हूँ। बात अक़सर बन ही जाती है और जनता समझ लेती है कि कहनेवालेने जो कहा, वह सचाईसे कहा, सादगीसे कहा, इसलिए वह उसे क़बूल कर लेती है और सन्तोषसे चली जाती है। नहीं, ····ग़लत कह गयी, जनताके मनमें सन्तोषसे अधिक असन्तोष ही रह जाता है, लेकिन वह शिष्टताके नाते और अन्दरूनी प्यारके नाते—लम्बे अरसे तक नेहरू-परिवारको जनताने आदर और प्यार दिया है, जो उसका संस्कार बन गया है, —मेरी बातें सुनकर चुपचाप चली जाती है, कुछ इस भावसे जैसे उसके लिए यही बहुत है कि मैं उनके पास आयी उनसे बातें कीं और उनके दुःख-दर्दकी जानकारीका अहसास दिया।

चुनावके दौरेका प्रोग्राम क्या आसान है? हज़ारों मीलकी यात्राएँ, देहातोंका अनन्त फैलाव, तरह-तरहकी भाषाएँ, तरह-तरहकी वेष-भूषाएँ, तरह-तरहके स्थानीय पेच और उलझनें और नेता और उनके आपसी मनमुटाव और सैकड़ों तरहके दन्द-फन्द, फ़रियादें और आक्षेप, आक्षेप और प्रत्याक्षेप····हैरान हूँ कि मेरे मुल्कका क्या होगा, इसका भविष्य क्या है और मैं जिस राजनैतिक पार्टीका झण्डा उठाये फिरती हूँ उस पार्टीकी हाल-दुर्गत क्या होगी? ये तमाम सवाल मेरे अन्दर अजीब बेचैनी पैदा करते हैं, लेकिन जबतक इन सवालोंका सामना करके किसी नतीजेपर पहुँचनेकी कोशिश करूँ, एक नया गाँव, एक नया पड़ाव सामने आ जाता है और "काँग्रेसकी जय, इन्दिरा गान्धीकी जय, महात्मा गान्धीकी जय, पण्डित नेहरूकी जय इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!" के नारोंसे आसमान गूँजने लगता है (बड़ी झल्लाहट होती है इन लाउडस्पीकरोंसे, मगर मुझ-जैसी थकी हुई, नाज़ुक आवाज़के लिए ये बड़े वरदान भी हैं)···और मैं पार्टीके मंचपर मालाओंसे लदी भाषण देने लगती हूँ। कभी-कभी मुझे लगता है जैसे मेरे अन्दरका बोलनेवाला कोई और है, मैं कोई और हूँ। भूल जाती हूँ अपने-आपको, अगरचे भाषण चलता रहता है क्योंकि सैकड़ों बार वे ही वाक्य यदि दोहराये जायें तो मनमें गहरे कटे गोल खाँचोंपर शब्दोंकी सुई अपने-आप घूमने लगती है और आवाज़ पैदा होती रहती है—और मैं, लगता है, जैसे भाषण नहीं दे रही हूँ, लोगोंके चेहरेपर उभरे भावों और आँखोंकी भाषा पढ़ रही हूँ, कुछ कह नहीं रही हूँ, बल्कि सुन रही हूँ····सुने जा रही हूँ।

न मालूम कब तिलिस्म टूट जाता है, स्थानीय नेताओंकी हलचल शुरू हो जाती है, तालियोंकी गड़गड़ाहट सुनती हूँ और मुसकराते, नमस्कार देकर, चल देती हूँ, अगले मोरचेकी तरफ़। पीछे नारोंका बुझता हुआ स्वर, धूलका ग़ुबार और मैं अपने अन्दर डूबी हुई, टूटी हुई-सी ख़ामोश और परेशान। क्योंकि जनताकी आँखोंमें मैंने जो पढ़ा, वह अपना अर्थ साफ़-साफ़ नहीं खोलता। मैं सोचती रह जाती हूँ—वह काँग्रेसको वोट देंगे या नहीं? उन आँखोंमें ख़ुशी थी, या दर्द, या व्यंग्य या विद्रोह! मैंने उनसे कहा, "काँग्रेसके पौधेको आपने रोपा, क़ुरबानियोंसे सींचा, पाल-पोसकर बड़ा किया, अब जब फल देनेका समय आया है तो आप क्या उसे काट डालेंगे?" मिसाल अच्छी है, उपमाओंसे भाषामें जान आती है—मुझे यह वाक्य खुद बहुत अच्छा लगा, लेकिन जब-जब मैंने यह वाक्य कहा, मुझे अन्दर-ही-अन्दर डर लगा कि कोई विरोधी दलका मनचला आदमी ज़ोरसे यह ताना न कस दे—"फल तो कभीके आ चुके, आपको फल दिखाई नहीं देते? हम तो जहरीले फलोंका रोज़ भोग लगाते हैं! देखतीं नहीं, सारा देश मर रहा है!" तब मुझे लगता है, हमारे प्रचार-विभागमें दिमाग़का दिवालियापन है जो ऐसा प्रचार-वाक्य उसने उछाला! लेकिन मुझे क्या हुआ कि इस वाक्यको मैंने लपक लिया। पापा स्टाइलके मास्टर थे—अँगरेज़ी किस कमालकी लिखते थे और वाक्योंको इस तरह गूँथते थे कि गद्यमें कविता उतरती चली आती थी। उन्हें प्रचार-वाक्योंका सहारा नहीं लेना पड़ता था—उन्होंने केवल एक ही 'स्लोगन' दिया था। दिया क्या था, नेताजी सुभाष बोसके नारेपर अपनी मोहर लगायी थी—जय हिन्द! ख़ैर····

ऊबती आ रही हूँ इन चुनाव-दौरोंसे। देख रही हूँ, जनता बहुत होशियार हो गयी है। देहातोंमें देश-विदेशकी राजनीतिपर बहस-मुबाहसे होते हैं—नयी दिल्लीमें रहकर पता नहीं चलता कि परिवर्तनकी गति इतनी तेज़ है। कहाँ गये सन् १९४२ के दिन जब हमारे सारे देशने एक स्वरसे अँगरेज़ोंको चुनौती दी थी—'क्विट इण्डिया!' भारत छोड़ो! जिन नेताओंने अँगरेज़ोंसे भारतको मुक्त कराया, उन्हींके दलके आजके नेताओंसे जनता कह रही है—'गद्दी छोड़ो!' बीस सालमें ही काँग्रेसका यह पतन? दुःख होता है, लेकिन आश्चर्य नहीं! आश्चर्य इसलिए नहीं कि आज़ादीके इन बीस सालोंमें हमने अपने दलकी और अपने शासनकी जो तसवीर जनताके सामने पेश की, वह मैली, धुँधली और, मैं कहना चाहती हूँ, गन्दी रही है। सत्य और अहिंसा, त्याग और तपस्या, सेवा और संयम, सारे सिद्धान्त हवा हो गये! सेवासे महत्त्वपूर्ण हो गयी नेतागिरी, नेतागिरीसे महत्त्वपूर्ण हो गयी मिनिस्ट्री, मिनिस्ट्रीके दायित्वसे बड़ा हो गया कैबिनेट-पद, कैबिनेट-पदसे बड़ी हो गयी प्रधानमन्त्रीके आसनकी होड़। देखते-देखते यह कुचक्र पापाकी आँखोंके सामने ही पनपता गया और काँग्रेसकी प्राइमरी मेम्बरशिपसे लेकर

प्रान्तीय कांग्रेस-अध्यक्ष और मुख्यमन्त्री तक, नगरपालिकाकी सदस्यतासे लेकर संसद्-सदस्यता तक, केन्द्रीय मन्त्रीके पदसे लेकर प्रधानमन्त्रीके पद तक—सब इस 'विशस सर्कल' इस कुचक्रमें फँसते चले गये । मैं इस कुचक्रसे अलग होना चाहती हूँ, लेकिन मैं तो स्वयं चक्र हूँ । जब तक चक्रकी धुरियाँ क्रियाशील हैं, चक्र चलेगा ही । लेकिन मात्र चलना, न मंज़िलपर पहुँचना होता है, न मंज़िलकी तरफ़ बढ़नेकी गारण्टी । अभी तो चक्र बनकर घूम रही हूँ । अगर टक्करमें पहिया ठप हो गया तो मुक्ति मिल जायेगी, और अगर विरोधी शक्तियोंको मात देकर यह चलता रहा तो दिशा और मंज़िलका दायित्व अब खुद सँभालना होगा । सँभाल पाऊँगी ? बक़ौल कामराज, 'पारकलाम'—देखा जायेगा ।····यह क्या शोर ? कार खड़ी क्यों हो गयी ? ओह, गाँव आ गया ! ये भीड़, ये मालाएँ, ये मंच, ये भाषण, ये जनता, ये उसकी आँखें····

देखा है इन आँखोंमें भरा विद्रोह भी । ज्यों-ज्यों चुनाव-प्रचार तेज़ीपर आ रहा है, मेरे सामने स्थिति साफ़ होती जा रही है···· लोग नाराज़ हैं, काँग्रेससे, केन्द्रीय शासनसे, प्रधान मन्त्रीसे । राजस्थानकी सभामें लोगोंने ताने कसे और मैंने उन्हें राजस्थानकी वीरांगनाओंकी दुहाई देकर, लानत-मलामत करके चुप करा दिया । गुस्सा और अपमान और आँसू अन्दर-ही-अन्दर पी गयी । लेकिन, उड़ीसाकी सभामें फेंका गया पत्थर मेरी नाकपर ही आ लगा ! जानती हूँ, पत्थर फेंकनेवालेका इरादा नहीं रहा होगा कि पत्थर मुझे ही लगे···काँग्रेसके तमाम स्थानीय नेता, जिनसे पब्लिक बेहद नाराज़ है, वहाँ थे । राजाजी ने शायद ठीक ही कहा है, बीजू पटनायक कुछ ज़्यादा मुस्तैदीसे आसपास मँडरा रहे थे, जैसे मेरे रक्षक हों ! पर, यह क्या ठीक हुआ कि उड़ीसाकी काँग्रेसने लाखोंकी तादादमें मेरी तसवीरें गाँव-गाँव और घर-घरमें बाँटीं—चोट खायी हुई नाक, पट्टीसे ढँकी-बँधी ? विदेशी अखबारोंमें मेरी यह तसवीर छपेगी तो वहाँकी दुनिया तो यही जानेगी कि हिन्दुस्तानमें प्राइम मिनिस्टर इन्दिरा गान्धीसे लोग इतने नाराज़ हैं, और ये लोग इतने जाहिल हैं कि एक औरतकी नाक तोड़नेसे भी बाज़ नहीं आये ! मेरी नाकका तो क्या, यह देशकी नाकका सवाल बन गया और यही चोट मुझे सबसे ज़्यादा दुःख पहुँचा रही है । ख़ैर, मुझे साहससे काम लेना है और हौसला नहीं खोना है । मगर, लक्षण अच्छे नहीं ! विदेशमें बैठे संजीव और राजीव बेचैन हो गये कि माँ किस मुसीबतमें फँस गयी है । मेरे बच्चे बहादुर हैं । राजनीतिकी कशमकशको वह भी समझते हैं ।

■

यह क्या हुआ ? देखते-देखते, पलक झपकते इतना बड़ा भूचाल ? बड़े-बड़े दिग्गज, बड़े-बड़े शेर ! कितने नेताओंके कितने सिंहासन, कितने मुकुट धराशायी हो गये ! कामराज, काँग्रेस-प्रेज़ीडेण्ट—बेताजका बादशाह ! राष्ट्रका लौह पुरुष ! क्या हुआ ? अपने ही गाँव-घरमें ही हार गये ! २८ वर्षके एक साधारण

अपरिचित-से युवकसे ? पी० श्रीनिवासन—यह नाम तो मैंने सुना भी नहीं था। काँग्रेस संसदीय कमेटीके मन्त्री रघुनाथ सिंह, और अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीके जनरल सेक्रेटरी टी० मैनेयान भी हार गये ! और, वह शक्तिशाली सिण्डीकेट जिसके नामपर मुझे बहुत ताने सुनने पड़े कि इन लोगोंने भारतको साम्राज्य मानकर चाणक्य-चौकड़ी-की तरह राज्य-सिंहासनपर कठपुतलोंको बैठाना और उतारना अपना स्वयंसिद्ध अधिकार और कर्त्तव्य मान लिया है ! पाटिल, अतुल्य घोष, सुब्रह्मण्यम्, संजीवैया—सबके सब, एक साथ हार जायेंगे—यह कल्पना किसने की थी ? केन्द्रीय मन्त्रियोंमें-से मनूभाई शाह, राजबहादुर, टॉमस, मेहरचन्द खन्ना आदिकी हारको यदि 'सामान्य' मान भी लूँ, तो राजनीतिके पुराने खिलाड़ियों—बीजू-पटनायक, महावीर त्यागी, मालवीय आदि—की पराजयको क्या कहूँ ? प्रफुल्लचन्द्र सेन, कृष्णवल्लभ सहाय, भक्तवत्सलम्—तीनों मुख्यमन्त्री बाज़ी हार गये !

सच बताऊँ ? मुझे आश्चर्य तो नहीं ही हुआ; दुःख भी नहीं है। बल्कि प्रसन्नता है इस बातकी मेरे प्रधानमन्त्री-कालमें संसारकी सबसे बड़ी आबादीवाले प्रजातन्त्रीय देशने संसारका सबसे बड़ा चुनाव इतनी बड़ी सफलताके साथ, इतने कम उपद्रवके साथ, पूरा किया। राजनीतिके दाँव-पेंचवाले लोग कहते थे—देखना, काँग्रेसी सरकार समयपर चुनाव नहीं करेगी, क्योंकि वह सत्ताको हथियाये रखना चाहती है; विदेशी राजनीतिज्ञ कहते थे–हिन्दुस्ता
का यह चुनाव भयंकर ख़ून-ख़राबी
और वोटिंग पूरी नहीं हो पायेगी।
बड़ी संख्यामें लोग सोचते थे कि केन्द्री
सरकार और राज्य-सरकारें तरह-तरह
हथकण्डे काममें लायेंगी ताकि चुनावमें
पैमानेपर बेईमानी करके काँग्रेसके
मन्त्री गद्दियोंपर बैठे रहें और केन्द्रीय
शक्ति काँग्रेसके हाथमें रहे। मुझे खुशी
कि ये सब शंकाएँ ढह गयीं। सबसे
ख़ुशी मुझे इस बातकी है कि जनताने
की ताक़तको ऊँचा दर्जा दे दिया और
लोग—चाहे काँग्रेसी हों या बे-काँग्रेसी—
जो यह समझे बैठे थे कि वोटकी
राजनैतिक नेताओंके हाथमें है, या
मुखियाके हाथमें है, या किसी जाति
क़ौमके ख़रीदे गये वोटोंमें है, उन्हें
विचार बदलने पड़े और जनताके आगे
झुकाना पड़ा।

ज़ाहिर है कि जनता काँग्रेससे
है, लेकिन ऐसा भी नहीं कि
विरोधी नेताओंको उसने जीतकी
पहनायी हों। कृष्ण मेनन काँग्रेस
बाहर आये तो उनका मान इतना
गया कि उनकी जीत निश्चित थी,
वह हार गये। आचार्य कृपलानी
रायपुरमें जाकर फँसे कि वह
इण्डिपेण्डेण्ट हो गये, बे-सहारे !
उनकी कितनी धाक थी ! जनताने
कामथको और स्वतन्त्र पार्टीके

[शेष पृष्ठ १४

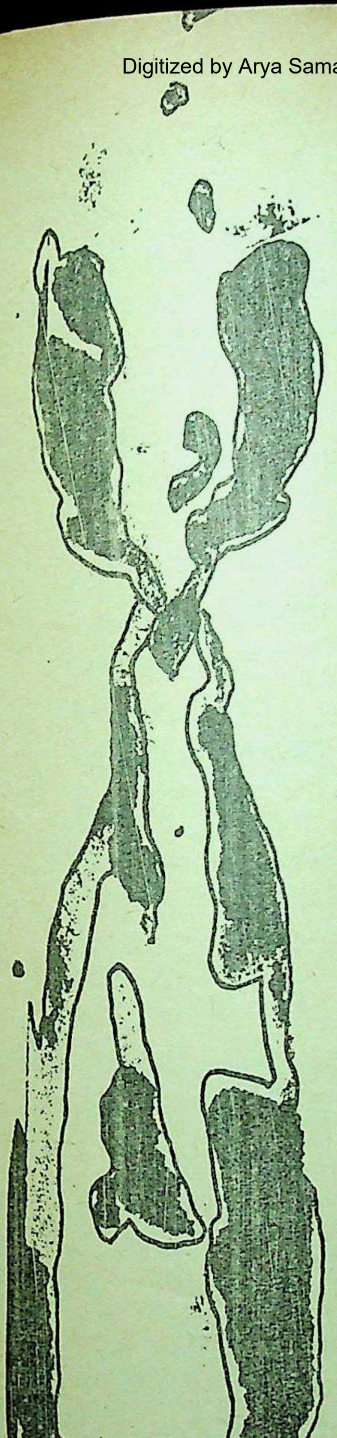

१–घाव

नहीं
प्यार वह फूल नहीं
जो अपने आप उगा
मुसकराया
और झर गया
हँसकर एक दिन को अमृत से भर गया।
प्यार तो यह घाव है
जो गड्ढे में गिरकर मुझे मिला है
डॉक्टर जिसे भरने की फ़ीस चार्ज करता है
पट्टी के नीचे जो हरदम कराहता है
'यह क्या कर लिया?' : दोस्त टोकते हैं
उफ़, मन इसको क्यों चाहता है?

२–एवज़ों की ज़िन्दगी

क्रान्ति तो हुई नहीं
नातेदार छोड़ दिये;
काव्य की साधना कठिन रही
तुक्तक से काम लिया;
प्यार मिल नहीं सका
अश्लील ग्रन्थ पढ़े;
कलियुग का कमज़ोर प्राणी मैं
अमृत खोज नहीं पाया
सिगरेट पीता रहा!

२½ अक्षरोंपर ५ व्यंग्य / [illegible]

३–आमीन

हम-तुम जिस पर सवार हैं
वह प्यार
चाँदनी-न्हाई झील में तिरती नाव नहीं
कि मस्ती में डूबकर 'डुएट' गायें;
वह तो ट्रैफ़िक की भीड़ में भागता स्कूटर है
चुपचाप दम साधे पीछे बैठी रहो
यही क्या कम है
कि हम बिना ऐक्सीडेण्ट के घर पहुँच जायें ?

४–क्या होगा ?

जब मैं तुम्हें ख़त लिखने की सोचता हूँ
तो लगता है
जैसे कोई खेत
किसी चिड़िया को चिट्‌ठी भेज रहा हो
कि जो दाना तुम उठा ले गयीं
वह लौटा दो !
क्या होगा इस ख़त का ?
न तुम चुगना छोड़ोगी
न मैं उगना !

५–वसीयत

भला राख की ढेरी बनकर क्या होगा ?
इससे तो अच्छा है
कि जाने के पहले
अपना सब कुछ दान कर जाऊँ।
अपनी आँखें
मैं अपनी 'स्पेशल' के ड्राइवर को दे जाऊँगा
ताकि वह गाड़ी चलाते समय भी
फ़ुटपाथ पर चलती फुलवारियाँ देख सके,

अपने कान
अपने अफ़सर को
कि वे चुगलियों के शोर में कविता से न वंचित हों,
अपना मुँह
नेताजी को
—बेचारे भाषणों के मारे अभी भूखे रह जाते हैं,
अपने हाथ
श्री चतुर्भुज शास्त्री को
ताकि वे अपना नाम सार्थक कर सकें,
अपने पैर
उस अभागे चोर को
जिसके, सुना है, पैर ही नहीं होते हैं,
और अपना दिल
मेरी जान, तुमको
ताकि तुम प्रेम करके भी पतिव्रता बनी रहो !

■ ■

सी-५६, जंगपुरा एक्टेशन
नयी दिल्ली–१४

मार्चके कथन / उपकथनका पुनश्च :

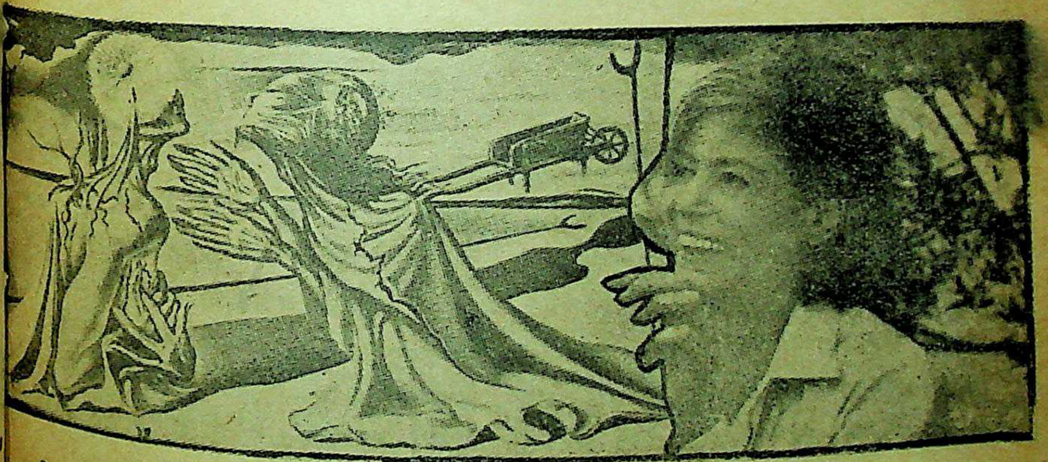

सल्वादोर डालीकी महत्त्वपूर्ण कलाकृति : 'त्रिस्तान और ईसोल्ड' तथा उसपर मुग्ध मेलिना मरकरी — मुझे फ्लर्ट गर्स कोर्ट [illegible] ज़्यादा पसन्द है।

यदि मध्यम युग प्रश्नोंका था तो आधुनिक समस्याओंका कहा जा सकता है, सरलता प्रश्नोंको जन्म देती है और जटिलता समस्याओंको। पौराणिक युगमें तरह-तरहके सवाल पूछे जाते थे, अनेक शंकाओंको उठाया जाता था। सब सवालोंके जवाब दिये जाते थे और सब शंकाओंका समाधान हो जाता था। अन्तमें सबका मन शान्त हो जाता था। यह शायद इसलिए कि पुराने युगकी मानसिक स्थिति बचपनकी थी। मैं भी बचपनमें अपने बड़ोंसे हर तरहके प्रश्न पूछा करता था—आसमानमें सितारे घूमते हैं, आदमी मर क्यों जाता है, पुराने सालका अन्त क्यों हो जाता है, खुदा सातवें आसमानमें क्यों रहता है, भगवान् दूधके सागरमें क्यों रहता है, मरनेके बाद इन्सान कहाँ जाता है, बच्चा कहाँसे आता है? मेरे माँ-बाप तो अकसर चुप रहते थे, लेकिन मेरे चाचासे मुझे हर प्रश्नका उत्तर मिल जाता था जो सन्तोष भी देता था। मैं चाचाको माँ-बापसे लायक़ मानता था। मध्य युग भी शायद मेरी तरह शिशुताकी स्थितिमें था। मुझे याद है कि एक बार इन्सपेक्टर साहब मेरे गाँवके स्कूलको देखने आये। उस दिन मेरे मास्टर साहबने भी उजले कपड़े पहन रखे थे और बड़े जोशमें वह जमातको भूगोल पढ़ा रहे थे। वह मेरे चाचाकी तरह लायक़ थे, हर मज़मून पढ़ा लेते थे। वह कह रहे थे—"इस तरह सूरज ३६५ दिनोंमें ज़मीनका एक बार चक्कर काटता है और सालका अन्त हो जाता है और हर चार सालके बाद वह जब थक जाता है तो यह एक दिन अधिक लगा देता है। इसे लीपका साल कहते हैं।" इन्सपेक्टर साहबने जब यह सुना तो वह मास्टर साहबके मुँहको ताककर कहने लगे कि यह कहाँका भूगोल है। मेरे मास्टर ज़िन्दगीमें हारकर भी बातोंमें हारनेवाले नहीं थे। वह एकदम कहने लगे—'जनाब, बीसका वेतन पाता हूँ। अगर आप तीस कर दें तो जमीनको सूरजके चारों तरफ़ घुमा सकता हूँ।"

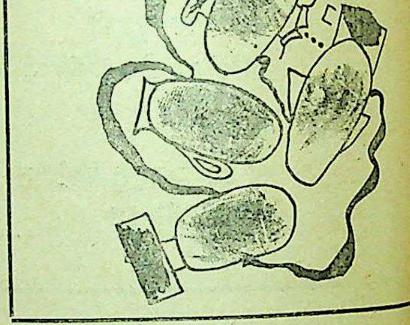

इन्सपेक्टर साहब क्यों मुसकराकर चल दिये—इसका मुझे पता नहीं चला, परन्तु इतना समझमें आ गया कि सूरज और धरती दोनों एक दूसरेके गिर्द घूम सकते हैं या घुमाये जा सकते हैं।

आज मनकी इस सरलताका लोप हो गया है, इसे जटिलताने घेर लिया है। आज हर प्रश्न टेढ़ा होकर समस्या बनता जा रहा है और समस्याओंसे जीवन घिर गया है। इनका समाधान नहीं हो पा रहा है। इस-

समस्याएँ और समाधान

लिए कभी-कभी जी चाहता है कि बचपन या पौराणिक युगमें लौटा जाये; लेकिन यह सम्भव नहीं है। इस तरह लौटनेमें आजका विज्ञान बाधा बनकर आता है। कभी-कभी मुझे उन लोगोंसे ईर्ष्या होती है जो आज भी अपने बचपनमें हैं। इनके चेहरोंपर न तो हैरानी दिखती है और न ही परेशानी। इनकी सेहत भी बेहतर है। मैंने पौराणिक सरलताको खोकर क्या पाया है! आधुनिकतासे क्या लाभ उठाया है? अपने चेहरेपर जटिलताकी लकीरोंको गहरानेके सिवाय और क्या फ़ायदा हुआ है!

इस तरह मेरा जीवन आज छोटी-बड़ी समस्याओंसे घिरा रहता है। छोटी समस्या कभी-कभी बड़ी समस्यासे भी अधिक परेशान कर देती है। आज तेलका न होना भगवान्के होने या न होनेसे अधिक हैरान कर डालता है, चावलका न मिलना मोक्षके मिलने या न मिलनेसे अधिक तंग कर देता है। पुरखे कितना सुखी थे, चिन्तासे कितना मुक्त थे। आकाशके खुलेपनमें या पेड़ोंकी छायाके नीचे बैठकर ब्रह्म और मायापर वाद-विवाद कर लेते। आज यदि मैं अतीतमें जीना चाहता हूँ तो इसे बैसाखियोंके सहारेपर जीना कहा जाता है, जीवनसे पलायनका नाम दिया जाता है, आधुनिक बोधके ख़िलाफ़ बताया जाता है, विज्ञानका अस्वीकार घोषित किया जाता है। इस तरह अतीत स्मृतिकी तरह जीवनके विकासमें बाधक कहा जाता है। यह जागना नहीं, सोना है, लेकिन बिना सोनेके जागना किस तरह हो सकता है, बिना रातके दिनका सामना किस तरह हो सकता है, बिना सपनोंके जीवनको किस तरह ढोया जा सकता है। इसे भी एक समस्याका रूप दिया जाता है। मध्ययुगमें जब व्यक्ति मर जाता था तो यह कहा जाता था कि वह वास्तवमें मरा नहीं है। उसकी अमर आत्माने नया चोला पहन लिया है। इससे मनको थोड़ा सन्तोष मिलता था और थोड़ा इसलिए कि उसकी आत्माकी शान्तिके लिए भगवान्की मिन्नत भी करनी पड़ती थी। जन्म-जन्मान्तरोंका मनगढ़न्त सिद्धान्त मनको बहलानेके लिए क्या बुरा था? लेकिन आज आत्मा अपना सूट नहीं बदल सकती। चोला ढीला था और सबके काम आ जाता था, लेकिन सूट यदि फ़िट न हो तो बेकार हो जाता है। यह विचार कितना ख़ूबसूरत था कि ज़िन्दगी असली है और मौत नक़ली।

मौतको कभी नींद कहा गया, कभी क़यामत तक इसे क़ब्रमें सोना कहा गया तो कभी आत्माको अमर कहकर जनम-जनमके साथी-का गीत गाया गया। आज इस विचारका भी गला घोट दिया गया है। मृत्युको वास्तविक कहा जाता है। यदि यह वास्तविक है तो जीवन विसंगत हो जाता है। इसलिए आज जीवन भी विसंगतिके रूपमें समस्या बनता जा रहा है। मेरे एक कवि-मित्र जीवनको जीनेके बजाय इसे विसंगतिकी समस्यामें बिताकर अधिक उदास हो गये हैं :

किसी ने मुझे
अजनबी कह कर पुकारा है
किसी ने मेरी नियति को
अभिशप्त ठहराया है
कभी मैं
बाहर का आदमी माना जाता हूँ
कभी
विसंगत पुरुष के नाम से जाना जाता हूँ
इस प्रक्रिया में मैं सिमट कर
वर्णमाला का एक अक्षर–
मात्र 'क' रह गया हूँ
आरोपित नामों की भीड़ में
मैं अनाम हो गया हूँ
पहले से अधिक उदास हो गया हूँ।

इस तरह विसंगतिकी यह समस्या मुझे भी बुरी तरह घेर लेती है। यदि समस्या एक हो तो छुटकारा पानेकी सोच सकता हूँ और यदि समस्याएँ और समस्याएँ हों तो अभिमन्यु की तरह इनके चक्रव्यूहमें घिर जानेके सिवाय और चारा ही क्या है। एक और मित्र हैं जो खान-पानको भी समस्या बना डालते हैं। वह खानेकी मेज़पर हर पकवानको विटेमिनकी तुलामें तोलने लगते हैं। वह कभी आलूका निषेध करते हैं तो कभी दालका। वह दाल-भात खानेको अन्नसे अन्न खाना कहते हैं। इनकी बात मैं इसलिए मान लेता हूँ और इसे समस्या बनने नहीं देता कि इनके भाव हर रोज़ बढ़ते ही जाते हैं। वह घास खानेकी बात भी करने लगे हैं—इसमें विटेमिन 'सी' पाया गया है। इस तरह क्या खाना है या क्या पीना है इस पर वह अनुसन्धान करते रहते हैं और इसे समस्याका रूप दे डालते हैं। एक और सज्जन हैं जो समस्त संसारकी चिन्ताओंसे उदास हो जाते हैं। एक चलते-फिरते ज्ञानकोशकी तरह वह छोटी-बड़ी घटना या सूचनामें अपने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणको खोज निकालते हैं। यदि वह घरकी समस्याओंकी उपेक्षा करते हैं तो वह इसलिए कि व्यक्तिवादमें इनकी आस्था नहीं है। इस तरह छोटी-बड़ी बातको वह किसी 'वाद' में बदलकर इसे समस्या बना डालते हैं। इस तरह मेरा जीवन या तो समस्याओंसे घिरा रहता है या समस्यामूलक व्यक्तियोंसे।

आजकी कविता-कहानीको भी समस्या के रूपमें निरूपित किया जाने लगा है। यदि कविता-कहानी कभी-कभी पढ़नेको मिलती है तो इनके बारेमें हर साल एक नया नारा सुननेको अवश्य मिल जाता है। आनन्द नारायण मुल्लाकी कुछ पंक्तियाँ बरबस गूंजने लगती हैं :

दुनिया के वही क़िस्से हैं मगर उनवान बदलते जाते हैं

फ़ितरत क़ायम है अपनी जगह, इन्सान बदलते जाते हैं

फ़ितरतके तक़ाज़ों पर पहरे हैं आज भी रस्मोईमाँ के

क़ैदी के फ़क़त बहलाने को दरबान बदलते जाते हैं ।

इस तरह ये नारे नये उनवान और नये दरबान हैं जो महज़ जी को ही बहलानेके काम आ सकते हैं । कविता-कहानीकी समस्याएँ इतनी उलझती जाती हैं कि इनका सुलझाना मुश्किल हो रहा है । आजकी अधिकांश कहानियाँ कभी निबन्धात्मक कथाएँ लगती हैं तो कभी कथात्मक निबन्ध । मुझे यह भी डर है कि कहीं इस तरहका लेख, जिसे मैं निबन्ध भी नहीं समझता, कहानी न बन जाये । यदि यह भूलसे कहीं कहानीकी कोटिमें आ गया तो कहानीकी समस्या उसी तरह उलझ जायेगी जिस तरह आजकी अधिकांश कविताएँ वक्तव्य होकर भी कविताके अनेक नाम और रूप धारण कर रही हैं । इस तरह आज हर चीज़, हर बात, हर रचना एक समस्या बनकर मेरे जीवनको बुरी तरह घेरे हुए है ।

■ ■

५९५ सेक्टर १८
चण्डीगढ़—१८

ज्ञानोदय : परिवर्तित शुल्क :

एक प्रति	:	१.५०
वार्षिक विशेषांक	:	३.००
वार्षिक शुल्क	:	१५.००
अर्द्धवार्षिक	:	८.००
तीन वर्ष का	:	४०.००
सात वर्ष का	:	६५.००
पन्द्रह वर्ष का	:	२००.००
आजीवन	:	२५१.००

१ + ९ + ६ + ७ = २ + ३ = ५

प्यारे दोस्त !

तुम मुझे कितने प्यारे लगते हो ? इस प्रश्नका उत्तर तुम्हारे द्वारा ही मुझे मिल सकता है। तुम्हारे खतका जवाब देनेसे पूर्व तुम्हें एक शुभसूचना देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। दोस्ती शब्दका अर्थ आजकलकी दुनियामें बड़ा व्यापक हो गया है। नयी फ़िल्म, नयी तितली, नये भ्रमर और न जाने क्या-क्या नवीनसे नवीन समाचार आजका एक दोस्त अपने दोस्त तक पहुँचानेमें अपना अहोभाग्य समझता है।

मैं खुशक़िस्मत हूँ, जो मुझे तुम्हारे-जैसा विश्वकोषनुमा दोस्त एक्सप्रेस ट्रेनमें लगे हाथों मिला था। शुभसूचना देते समय मेरे हृदयमें एक भयंकर 'अतुकान्त गुदगुदी' उत्पन्न हो रही है। मुझे डर है, कहीं मैं फिरसे कवि न बन जाऊँ। ख़ैर, मैं तुम्हारे पुनीत धन्धेपर फिरसे चोट करके तुम्हारे कमलवत् कोमल हृदयपर आघात पहुँचानेकी आजकलके अकृतज्ञ मित्रोंके समान कुचेष्टा नहीं करूँगा।

नाउम्मीद हो जाने पर भी साहित्यसे मैंने 'त्यागपत्र' नहीं दिया है। पत्रकारसे कवि, कविसे गीतकार, गीतकारसे आलोचक, आलोचकसे कहानीकार अर्थात् साहित्यके विविध विधाओंके स्वाद लेता हुआ अब उपन्यासकार बन गया हूँ। मेरे-जैसे अनुभवी क्लर्कके लिए उपन्यासकार बन जाना बड़े गौरवकी बात है। आजकल दफ़्तरमें बड़े बाबूकी दृष्टिसे बचकर मैं एक नवीनतम उपन्यास 'एक ज्योतिषीके नोट्स'के सृजनमें जुट पड़ा हूँ। प्रस्तुत उपन्यासका नायक एक ज्योतिषी है और नायिका तरला, सचिवालय विभागमें काम करनेवाली एक क्लर्क। नायिका कवयित्री भी है। सन् उन्नीस सौ सड़सठको नज़रअन्दाज़ करते हुए नायक अपनी कवयित्री नायिकासे कुछ भविष्यके बारे में कहता है। दोस्त ! अपने एकमात्र उपन्यासके नायकका यह बेहद दिलचस्प कथन मैं तुम्हें अपने कर-कमलोंसे लिखकर भेज रहा हूँ :

"तरला डार्लिंग ! दुनियामें कौन सदा एक-सा रहा है और कौन सदा एक-सा रहेगा ? बारह बरस बीतने पर घूरेके दिन भी फिरते हैं।"

"मैं बहुत सुन चुकी हूँ।"

"नो डार्लिंग ! तुम पुराना सुनते-सुनते चुक गयी हो। मुझसे नया सुनो। एकदम नया। मैं तुम्हें इस वर्षका नया भविष्य-फल बतलाता हूँ। हर वस्तुका इस वैज्ञानिक युगमें समीकरण बनता जा रहा है। मुहब्बतका समीकरण, साहित्य-सृजनका समीकरण, खाद्य-समस्याका समीकरण और यहाँ तक कि दुनियाकी प्रत्येक वस्तुसे एक-न-एक समीकरण बन जाता है। सभी कर्ण समीकरणके विषयमें सुनने के लिए चौड़े होते जा रहे हैं। नेत्र फटते जा रहे हैं। इतना यह सब होने पर भी डार्लिंग, हमारे-तुम्हारे प्रेमका समीकरण कितना सन्तुलित है ! हम कितने खुशनसीब हैं ! हैं न ?

सन् उन्नीस सौ सड़सठका समीकरण मैंने बड़े श्रमसे तैयार किया है। लायब्रेरीमें वराहमिहिरसे नारलीकर तकके समस्त ग्रन्थोंका सिंहावलोकन करने पर निम्न समीकरण बन सका है :

१ + ९ + ६ + ७ = २ + ३ = ५

तरला ? बुरा मत मानना ! मुझे ठीकसे याद है, हाईस्कूलमें केवल गणितके ही कारण तुमने अति विशेष योग्यता प्राप्त करके चार वर्ष तक अनुसन्धान-कार्य किया था। फिर भी यह समीकरण तुम्हारी व्यापक बुद्धिसे अधिक व्यापक है। अतः मैं इस समीकरण की क़लई खोलता हूँ :

एक : यह संख्यावाचक शब्द ईश्वरके लिए ही प्रयुक्त होता आया है। मैंने सुना है, कवि सृजनकर्ता होनेके कारण ईश्वर होता है। तुम कवयित्री हो। मेरी ईश्वर हो ! तुम्हें मेरे हृदयका बहुत-बहुत प्यार अर्पित है !

नौ : इस संख्यावाचक शब्दका क्षेत्र और अर्थ बड़ा विस्तृत है। नवरसों—शृंगार, करुण, शान्त, रौद्र, वीर, अद्भुत, हास्य, भयानक और वीभत्स—को तुमने पढ़ा ही है। आजकलके नेता इन रसोंका प्रयोग बड़े अच्छे ढंगसे करते हैं। संसद्में जाते समय शृंगार, चुनावमें खड़े होनेके लिए टिकट न मिलनेपर करुण, हार जानेपर शान्त, किसी विरोधी पक्षके व्यक्ति-द्वारा आरोप लगाये जानेपर रौद्र, आरोप ग़लत साबित होनेपर वीर, भाषणमें आँकड़ों-का प्रयोग करते समय अद्भुत, गलेमें पुष्पहार पहनाये जानेपर हास्य, श्रोताओं-द्वारा जूते व पत्थर बरसाये जानेपर भयानक और जूतों व पत्थरोंकी वर्षाके कारण शरीरसे बहनेवाले रक्त-को देखकर वीभत्स रसका पक्ष-विपक्षके नेताओं-द्वारा सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है।

भारतीय प्रजातन्त्रमें जो स्थान केन्द्रीय मन्त्रियोंका है वही स्थान भारतीय ज्योतिषमें सभी नवग्रहों—रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—का है। पण्डितजी नवग्रहोंकी शान्तिके लिए अपने यजमानोंसे जितना रुपया ऐंठ लेते हैं उतनेमें कोई प्रकाशन-गृह सरलतासे खोला जा सकता है।

तरला डार्लिंग, 'नवधा भगति कहउं मैं गाई।' आधुनिक समयमें नवधा भक्तिके समस्त प्रकारों—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और

व्यंग्य / वाचस्पति उपाध्याय

आत्मनिवेदन–का प्रयोग जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें हो रहा है। मेरा एक सहपाठी था। बिलकुल सुदामा टाइप! प्रोफ़ेसरके आस-पास नवधा-भक्ति रूपी 'आइडियाका डिब्बा' लेकर घूमता रहता था। परिणाम यह हुआ, एम० ए० में वह 'फ़र्स्ट-क्लास-फ़र्स्ट' रहा और मैं एकदम 'वर्स्ट'।

आधुनिक महबूब अपनी महबूबाके प्रति अपनी पूरी शक्तिसे नवधा भक्तिके सब प्रकारोंका प्रयोग करता है। मुझसे अच्छा उदाहरण तुम्हें इस समय और कहाँ मिलेगा? अदबी दुनियामें भी नवधा भक्तिका आश्रय मृत्यु-मुखमें पड़े लक्ष्मण-रूपी लेखकके लिए संजीवनी बूटीसे कहीं अधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।

छह : प्रस्तुत संख्यावाचक शब्द ज़िन्दगी है और मृत्यु भी है। तरला, जिस प्रकार तुम्हारे बिना मेरी ज़िन्दगीकी कल्पना ही व्यर्थ है उसी प्रकार षड्ऋतुओं—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर और हेमन्त–के बिना सृष्टिका स्थिर रह पाना असम्भव होगा।

षड्दर्शन हैं—न्याय, योग, वेदान्त, सांख्य, कर्ममीमांसा और वैशेषिक। छह वेदांग हैं—छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा और व्याकरण। इन सबकी व्याख्या करते-करते न जाने कितने मनीषी मर गये और कितने टी० बी० के शिकार हो रहे हैं। मैं अभी मरना नहीं चाहता। ज़िन्दगीको जीवित रहकर भोगना चाहता हूँ।

सात : वह देखो, ऊपर नीलगगनमें इस समय जबकि 'ब्लैक आउट' है, सभी सप्तर्षि—कश्यप, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, यमदग्नि और विश्वामित्र–हम दोनों प्राणियोंके फ़ौलादी प्रेमको परखकर आशीर्वाद दे रहे हैं।

सात रंग—लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, आसमानी और बैंजनी–जब इन्द्रधनुषमें चमकते हैं तब मेरा मन तुम्हारी विभिन्न अवसरोंमें धारण की हुई मुख-मुद्राओंका स्मरण करने लगता है।

भारतीय संस्कृतिके अनुसार सप्त सागर हैं—लवण, इक्षु, दधि, क्षीर, मधु, मदिरा और घृत। (काश! यह सब इस समय होते! भारतीय कितने सौभाग्यशाली और स्वाभिमानी बनकर रहते, यह सर्वथा अकल्पनीय है।)

तरला, सातका महत्त्व इससे अधिक आँकना मूर्खता ही होगी कि तुमने अपने सात प्रेमियोंको क्रमशः तिलांजलि देकर मुझे पकड़ा है। यह सातका अंक तुम्हारे प्रबुद्ध ज्ञान और बलिदानपूर्ण त्यागका सूचक है। सन् उन्नीस सौ सड़सठकी प्रेमिकाओंके लिए यह अनुकरणीय हो!

दो + तीन : भारतीय फलित ज्योतिषके अनुसार एक, नौ, छह और सातका योग कर देनेसे जो संख्या आती है उसको तेईस कहा जाता है। दो के बाद तीन। दो प्रेमी कहीं बैठे मुहब्बतका इज़हार करते हों और वहीं तीसरा कोई या अन्य कोई तीन 'दाल-भातमें मूसलचन्द'की तरह आ टपकें तो कलेजा उछल उठता है। मैं शान्तिप्रिय, दार्शनिक देशका एक प्रेमी नागरिक हूँ। अतः झगड़ेसे बचनेके लिए (या यूँ कहिए, फ़िलहाल प्रतिरोधकी ताक़त न होनेसे) दो और तीनमें सन्धि

करनेके लिए तैयार हूँ ।

पाँच : दो और तीनके 'फ़्यूज़न'से पाँच-का निर्माण हुआ। सच, तरला डार्लिंग, इस समय तुम मेरे पास हो तो मेरी पाँचों उँगलियाँ घी-में हैं। मैं भारतीय फलित ज्योतिषके अनुसार तुम्हें अपनी पाँचों चिकनी उँगलियोंपर हिसाब लगाकर भविष्य बता रहा हूँ। उन्नीस सौ सड़सठमें ऐसा योग पड़ा है कि तुम एक पंच-सदस्यीय कमेटीका निर्माण करोगी। कमेटीके पाँचों सदस्य महारथी साहित्यकार होंगे। बस फ़िर क्या है, एक 'सहयोगी प्रकाशन' तैयार हो जायेगा। इस आयोजनसे तुम्हारा यह कविता लिखते रहनेके कारण दुर्बल हुआ, पंच महाभूतों—पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि—से बना हुआ, सुन्दर बदन भूत-प्रेतोंके समान हृष्ट-पुष्ट हो जायेगा और मैं तब भी तुम्हें उतना ही प्यार करूँगा जितना कि अब करता हूँ।

इस आयोजनसे एक दिव्य लाभ और होगा। तुम्हारी पिछले पाँच वर्षोंमें लिखी कविताओंकी रद्दी ठिकाने लग जायेगी। प्रकाशित कविताओंको पढ़कर पंच लोग तुम्हारी बेकारीके क्षणोंसे ईर्ष्या करने लगेंगे। एक पाँच वर्ष पुरानी संवेदनाके नये युगका सूत्रपात होगा। 'संघे शक्तिः कलौ युगे।' पाँच साहित्यकारोंका संघ! अपना ही झण्डा लहराता दिखलाई देगा। सन् उन्नीस सौ सड़सठकी कितनी सुन्दर सुखद कल्पना है! अहा! मन-मयूर नर्तन करना माँगता है! (आओ ट्विस्ट करें!)

तरला, एक बात मत भूलना! हम दोनोंके अतिरिक्त अन्य तीन साहित्यकारोंको सूचनार्थ प्रेषित पत्रोंपर केवल पाँच पैसेका टिकट लगाया जावे जिससे वे साहित्यकार बन्धु दो पैसे 'सरचार्ज' देकर पत्रोंको अवश्य ही पा सकें।"

"डियर, तुम कितने अच्छे हो? तुम मुझे कितने प्यारे लगते हो!"

"....ऐंऽ!...क्या कोई आ रहा है?"

"तुम्हारे लिए जनरल इंगलिशके नोट्स तैयार कर लिये हैं।"

"....अच्छा!....चलते हैं... टॉऽ.... टॉऽ... !"

दोस्त! उपन्यास अभी इतना ही लिख सका हूँ। कमबख्त बड़ा बाबू अपनी आँखोंमें शूकर-केश फँसाकर बैठता है। दफ़्तरके अतिरिक्त ऐसे कार्योंके लिए मेरे पास समयका नितान्त अभाव है। दफ़्तरमें संवेदनशील होनेका मौक़ा अधिक मिल जाता है। वैसे भी यह 'साइड बिज़नेस' है। समझदारके लिए इशारा काफ़ी होता है। उपन्यासके विषयमें तुम्हारी अग्रिम रायकी बेसब्रीसे प्रतीक्षा करूँगा। तुम्हारे पत्रका उत्तर अब फिर कभी। शुभकामनाओं सहित—

तुम्हारा प्यारा दोस्त।

■ ■

चौक बाज़ार, बिसौली-३
बदायूँ

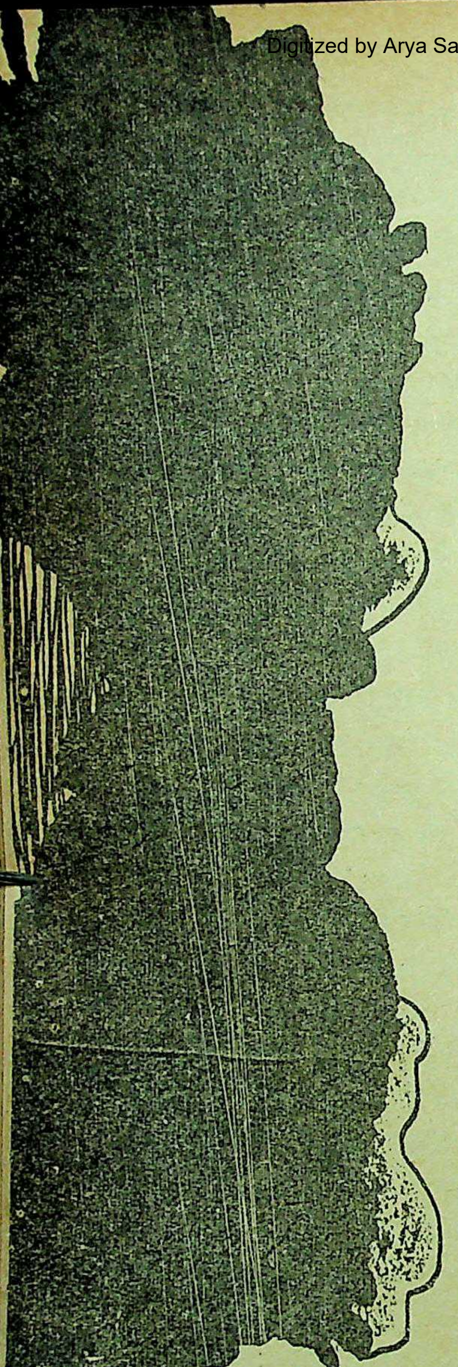

विक्षिप्तों का जुलूस

गिरिजाकुमार माथुर

सड़कों पर घूम रही हैं उन्मादी भीड़ें
चिल्लाता आता है विक्षिप्तों का भारी जुलूस
बकता हुआ घिनौनी गालियाँ
घनघोर बर्राते मेगाफ़ोनों से
अब कोई और बात नहीं सुन पड़ती
सभी शब्द डूब गये हैं
थूक-भरी भाषा में

आता है विक्षिप्तों का जुलूस
निरपराध लोगों को पीटता
गृहस्थों के चेहरे पर
पीला कफ़ थुड़कता
घर-चौके तोड़ता
भीतर का हिंस्र जमा वमन उगलता
पशु-सा खड़े-खड़े नंगा झुक कर
मूत्र और विष्टा
देह-मन की निकालता

सैकड़ों सदियों की दुर्गन्धों-भरे
नाबदानों की
नाखूनों से खुरच कर
किलबिलाते कीड़ों वाली कीचड़
खोबों में भर कर सानता
लड्डू बनाता
सूँघता, चाटता
फेंक रहा आक्रामक लोंदे
दोनों तरफ़ खड़े लोगों पर
कपड़ों पर
नाक में
आवाक खुले मुँह में
अब तक सभ्य कहलानेवाली दुनिया पर

मासिकों, गिरे भ्रूणों, मवादों के [illegible]
लीप रहा सड़कें, गलियाँ, मकान
अस्पताल
विद्यालय, पूजाघर, संस्थान
दफ़्तर और बाज़ार
थियेटर और अखबार

दोनों तरफ़ लोग
स्तम्भित खड़े हैं
सदियों से सीखी लज्जाओं से गड़े हुए
संस्कारों के कुलीन
भयभीत असमंजस में
भागती मर्यादाएँ हाथों से छिपाती हैं
गुप्त अंग
यौन केश
नुचा हुआ नंगापन····

बढ़ रहा है विक्षिप्तों का जुलूस
जोश से
पथराव करता हुआ
फेंकता है ईंटें
तोड़ता है भवनों के शीशे-दरवाज़े
तमाम उपलब्धियों की मेहराबें
लेटता है सभ्य ट्रैफ़िक के आगे
उलटता बसें, कारें
हिलाकर उखाड़ता
सदियों से लगी प्रतिमाएँ
रोशनी के खम्भे
आँख के झपकते इशारों से
चौराहे नियन्त्रित करती लाल-हरी बत्तियाँ
पोत देता दीवारें

[illegible]
ताज़े खानों से महकते
भीड़ों-भरे रेस्तराँ में
उड़ेल देता घूरों के टीन
फेंक देता ग्रेनेड
फूँक देता तेल, पेट्रौल के ज़खीरे
पानी की टंकियों में
छोड़ता है हैज़े के कीटाणु
घरों-कमरों में ज़हरीली गैस
माताओं की काट लेता छातियाँ
क्योंकि मातापन पुरातन है
एक साथ करता है बलात्कार
गर्भिणियों, बुढ़ियों, बच्चियों से
होलियाँ जलती हैं विशाल
दो हज़ार साल के
बूढ़े ग्रन्थ जलते हैं
सारे दर्शन, चिन्तन, साहित्य, काव्य
पुराना ज्ञान अपराधी
धधक कर राख होती है
पूरी निशानी इतिहास की

दोनों तरफ़ लोग
घिघियाते खड़े हैं
गड़े हुए ग्लानि से, त्रास से
भागती मर्यादाएँ छिपाती हैं
जलते हुए गुप्त अंग
यौन केश
नुचा हुआ नंगापन
टूटती है चरमरा कर फ़्रेमों की परम्परा
एक यौन-क्रान्ति
एक सांस्कृतिक क्रान्ति

गुफाओं और जंगलों में
आदमी की वापिसी
जानवर की गन्ध
—बीसवीं सदी का अन्त

अब खुश हो रहा है विक्षिप्तों का जुलूस
मुँह से अब भी गिर रहा है जोश का झाग
खुशियों के सहसा मृगी दौरे पड़ते हैं
भीड़ ने पकड़ ली हैं
उसी में उन्मत्त उछलती हुई
जवान औरतें और लड़कियाँ····

सँवारे हुए बाल
सुघर कपड़े
ममता-रचे बोल
शील और लोच और क्षमा
विस्मय और रहस्यों के रोमांच फेंक कर
बालों में धूल डाल
जूँ-भरी मुड़ी-तुड़ी कतरनें पहन
महीनों बिना नहाये
भिनकते मन के कोने
पसीने-सेनी मैल की बत्तियाँ चिपटाये
रानों और पुट्ठों का उतना कपड़ा फाड़ कर
वराहिनी की तरह जाँघें उठाये
गोल दुनालियाँ बढ़ाये
मांस के यह टैंक
जुनून में दौड़ रहे
सिर्फ़ देह भोजन के वास्ते
खुले आम सड़कों पर
पार्कों में
तटों पर
कारों में
किसी भी पेड़ की छाया में

नहीं कुछ पावन है
नहीं कुछ अन्तरंग
नहीं कुछ प्रिय है अब
नहीं कुछ भव्य, स्मरणयोग्य, स्थापनीय
मांस के फड़कते गट्ठर उठाये
पीढ़ियों की वहशी फ़ौज एक
नाश की वीभत्सता के चरम प्राप्ति क्षण में
फाड़ कर तिथियों की अणु-झिल्लियाँ
समाती चली जाती हैं
भावी के गर्भरहित छेद में

एक यौन क्रान्ति
एक सांस्कृतिक क्रान्ति
गुफाओं और वनखण्डों में
फिर आदमी की वापिसी
फिर जानवर की गन्ध

बीसवीं सदी का अन्त····

■ ■

आकाशवाणी
जालन्धर

अप्रैल १९६७

■

वर्ष : १८

अंक : १०

पूर्णांक : २२६

■ पहली ५ रचनाएँ :

- विशेष सन्दर्भ : वे जो खुद न कह सकीं—इन्दिरा गान्धी : लक्ष्मीचन्द्र जैन २
- २½ अक्षरपर ५ व्यंग्य : भारतभूषण अग्रवाल ७
- समस्याएँ और समस्याएँ : इन्द्रनाथ मदान १०
- १+९+६+७ = २ + ३ = ५ : वाचस्पति उपाध्याय १४
- विक्षिप्तोंका जुलूस : गिरिजाकुमार माथुर १८

■ स्तम्भ एवं लेख :

- कथनोपकथन : पाब्लो पिकासो : कला-संरचनाकी आत्मानुभूति : कुन्था जैन २२
- आधुनिकता : नयी और पुरानी : कुबेरनाथ राय २९
- कला-संचेतना : रंगोंमें लयकी तलाश : जितेन्द्रकुमार मित्तल ३९
- प्रतिप्रश्न : नये लोग : नयी दिशा : राही मासूम रज़ा ४३
- संस्मरण : पुराना पेड़ : नया बसन्त : ठाकुरप्रसाद सिंह ५१
- समीक्षा : आलोचनाके नये कोण : सकलदीप सिंह १०५
- युवालेखन : मन्त्रिप्रगड सत्यनारायणमूर्ति, के० संगीता, वैगुण्ट मोहन प्रसाद, मार्पूरि विजयलक्ष्मी, इस्माईल १२१

■ ५ कहानियाँ :

- वेचैनीका सुख : विष्णु प्रभाकर २७
- धूपमें किस्सा : गंगाप्रसाद विमल ६१
- बाँहोंके किनारे : सोमा वीरा ७१
- लौ पर रखी हथेली : रामकुमार भ्रमर ७७
- एक मेरा दोस्त : मणिका मोहिनी ८३

■ उपन्यास :

- एक पत्थर : दो पत्थर : तीन पत्थर—४ : कृश्नचन्दर ९४

■ कविताएँ

- ३ नारी स्वर : इन्दु जैन ५७, अमृता भारती ५८, वानीरा गिरि ५९
- प्राप्ति-स्वीकार १४५

■ कुछ पंक्तियाँ…

मन्मथनाथ गुप्त, अजितकुमार, तेजपाल अग्रवाल, रंगनाथ राकेश, अशोककुमार बन्सल, इन्द्रनाथ मदान, मनोहरलाल त्रिखा, ओंकार ठाकुर, श्याम विमल १४७

यह टेसू-सी नील गगन में हलद चाँदनी उग आई री,
उग आई री,

पर अभी न लौटे उस दिन गये सबेर के
पीले फूल कनेर के।

—नरेश मेहता

[होली-फागुन : चम्पक जैन]

अन्तसंज्ञा : र० व०

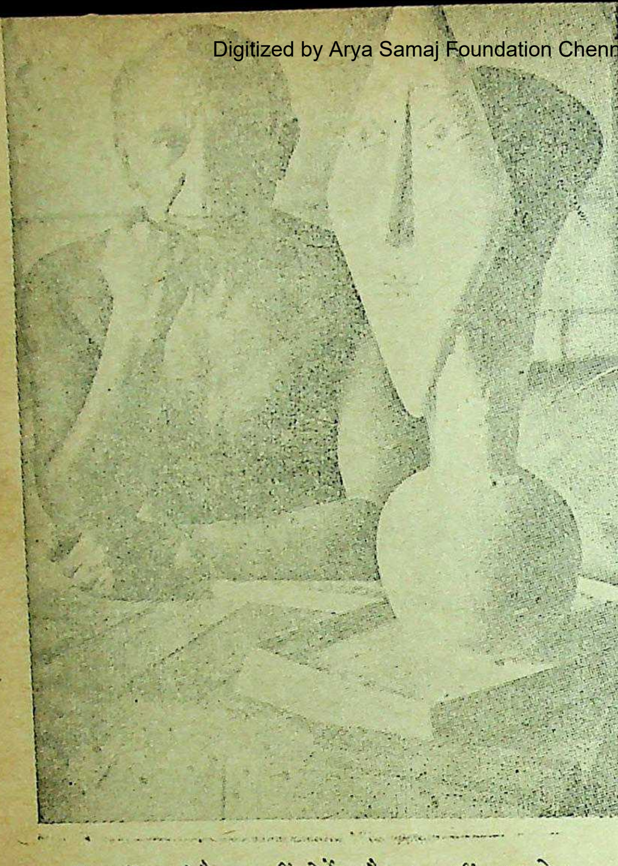

२१ वर्षीया फ्रांकौएका मूर्ति-पोर्ट्रेट और ६२ वर्षीय पाब्लो :
एक 'नमूर्ता…' प्रेम

[आधुनिक संसारके महानतम कलाकार पाब्लो पिकासोके ८५वें वर्षमें प्रवेश करनेके अवसरपर 'शताब्दीकी महानतम कला-प्रदर्शनी' हाल ही में पेरिसमें नियोजित हुई। पिकासो-के कृतित्वका आश्चर्यजनक विस्तार और उसकी बहुमुखी क्षमताके आयामोंका जितना ज्ञान संसारको हो चुका था, और संसार इससे जिस सीमा तक अभिभूत था, इस प्रदर्शनीने उसे इस प्रचुरतासे रेखांकित किया है कि पिकासो अपनी उपलब्धिकी समग्रतामें बहुत-बहुत ऊँचे उठ आया है। उसकी विभिन्न प्रकारकी और विभिन्न माध्यमोंमें निर्मित लगभग ८०० प्रसिद्ध कलाकृतियाँ विश्वके विभिन्न संग्रहालयोंसे प्राप्त करके प्रदर्शित की गयी हैं। कहा गया है कि लगभग इतना ही बड़ा संग्रह पिकासोके पास अभी सुरक्षित है जिसे वह जीवनोपरान्त प्रकाशमें लायेजानेका इच्छुक है।]

पाब्लो पिकासो

पिकासोकी कला-संरचनाके तत्त्व तक पहुँचनेके लिए उसकी सर्वाधिक अन्तरंग सहवासिनी युवती फ्रांकौए गिलोसे आत्मीयता स्थापित करना बहुत सहायक हो सकता है। सन् १९४३ में चित्रकलाके प्रति समर्पित २१ वर्षकी इस युवती-की भेंट ६२ वर्षके पिकासोसे पेरिसके एक रेस्त्राँमें हुई। सजग चेतन-बुद्धिसे संयुक्त, भावना-प्रवाह में सन्तुलित, शारीरिक स्तरके आकर्षणोंमें अति संयत यह युवती, आकस्मिक आवेगमें न बहकर तीन वर्षतक पिकासोसे मित्रताका नाता निबाहती रही। किन्तु धीरे-धीरे पारस्परिक निकटताकी अनिवार्यता प्रेममें परिणत होती गयी, और १९४६ मईकी एक दोपहरको माँ-बापकी यह इकलौती सन्तान पितासे विद्रोह कर, संसार और परिवारसे नाता तोड़कर पिकासोके पास रहने आ गयी उसकी प्रेमिकाके रूपमें। दस वर्ष तक ये दोनों साथ रहे। फ्रांकौए दो बालकोंकी माँ बनी।

कला-संरचनाकी आत्मानुभूति

—साक्ष्य फ्रांकौए गिलोका—

कुन्था जैन

कलाकारकी कला और उसके व्यक्तित्वको इतनी निकटतासे शायद ही किसी और व्यक्तिने समझा है। सुन्दरी न होते हुए भी फ्रांकौएके व्यक्तित्वमें बौद्धिकताका आकर्षण था। उसका लम्बा और तीखे नाक-नक्शवाला चेहरा बराबर कला-मर्मज्ञोंकी दृष्टि आकर्षित करता था। खिंची हुई कमान-सी भौंहें उसकी विशेषता थीं जो उसके जिज्ञासु और गम्भीर होनेका परिचय देती थीं। उसके छरहरे-सुडौल शरीरसे क्रियाशीलताके प्रति सर्मपित होनेकी क्षमता झलकती थी। यह नारी पिकासोकी चित्रांकन-कलामें विविध रूपसे सहायक रही। इसकी उपस्थिति पिकासोको कला-स्फूर्ति देती थी।

उस स्थितिका चित्र इस प्रकार है :

पेरिसमें अपने निवास-स्थान ७, रयू द ग्राण्ड्स आगस्तिन्सकी दूसरी मंज़िलमें स्थित चित्रशालामें पिकासो दोपहरके खानेके बाद २ बजेसे लेकर रातके ११ बजे तक कला-संरचनामें तल्लीन रहता है। वह बिना एक पलका विश्राम किये, लगातार ४-५ घण्टे तक चित्रफलकके सामने खड़ा रहकर तूलिका चलाता रहता है। ऐसे समय किसी भी व्यक्तिकी उपस्थिति चित्रशालामें निषिद्ध है। उसकी किसी भी प्रेमिकाको यह स्वतन्त्रता नहीं मिली थी कि वह चित्रांकनके समय पिकासोके समीप उपस्थित रह सके। किन्तु फ्रांकौए गिलो बहुधा चित्रांकनके समय पिकासोके पास बैठी रहती और उसकी रचना-प्रक्रियाकी सहभागी होती।

फलकपर चित्रके कुछ अंश अंकित करनेके बाद पिकासो अपनी कृतिसे दूर हटकर उसे एकटक निहारता रहता है—अपलक, निःशब्द, पूरे एक-एक घण्टे तक। कभी-कभी होठोंमें कुछ बुदबुदाता है और फिर वहीं खड़ा रहता है। देखता है.... देखता है... देखता रहता है, अपनी कृतिको जो अभी अधूरी है और धीरे-धीरे उभरना है जिसे।

पिकासोको ४-५ घण्टे लगातार चित्र बनाते देख फ्रांकौए पूछती है :

"क्या एक ही जगह ४ घण्टे, शरीरको बिना हिलाये-डुलाये खड़े रहनेसे थकान नहीं होती ?"

पिकासो : थकान नहीं होती, इसीलिए चित्रकार दीर्घायु होते हैं। जब मैं चित्रशालामें घुसता हूँ तो अपने शरीरको उसी तरह बाहर छोड़ आता हूँ जैसे देवताके मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पहले जूते उतार दिये जाते हैं।

चित्रशालामें एक अध-बना चित्र है जिसके अंकनमें पिकासो व्यस्त है। चित्रपट-पर दायीं ओर मध्यमें एक मोटा-सा गोल धब्बा है जो हरे रंगका सूर्य प्रतीत होता है। बायीं ओरके निचले कोनेसे मध्यकी ओर जाता हुआ ऊदे रंगका त्रिकोणाकार है जो हरे सूरजके ऊपर तक पहुँचकर त्रिकोणकी नोक बना रहा है। वे दोनों एक गहरी काली रेखा-द्वारा जुड़े हुए हैं जिसका आकार ऐसा है जैसे वक्र रेखासे लिखा हुआ अँगरेजी का अक्षर 'वी' (V)। यह रेखा दोनों रंग-वाले आकारोंके बीचसे गुज़र रही है। अंकित आकारोंको देखकर फ्रांकौए ने प्रश्न किया : "ये क्या चित्रित हो रहा है ?

पिकासो : यह एक अगतिवान् स्थिर जीवन-चित्र है। इसमें यही चित्रात्मक विचार निहित है। इस बातसे कुछ अन्तर नहीं पड़ता कि आधार-वस्तु काँच है या बोतल। विचार-को विस्तार देनेका माध्यम कुछ भी हो सकता है। ऐसे क्षण लगातार आते-जाते रहते हैं जब 'यथार्थ' पकड़में आता है किन्तु फिर पीछे हट जाता है—उसी प्रकार जैसे ज्वार और भाटा आता-जाता रहता है यद्यपि समुद्र सदैव विद्यमान होता है।

फ्रांकौए : समक्ष पटपर जो अंकित है, उससे क्या समझूँ ?

पिकासो : समक्ष रखे चित्रपर जितना अंकित है वह केवल प्रारम्भिक प्रस्तावना है। हरा धब्बा हरेपनका एक स्थान-विशेष है और ऊदे रंगका त्रिकोणाकार—ऊदेका आक्रामक प्रक्षेप। काली रेखा दोनोंको मिलाती है। हरा और ऊदा दोनों तत्त्व परस्पर संघर्ष-रत हैं। हरे रंगके गोल बिन्दु की प्रवृत्ति है कि उसका वृत्त बढ़े। वह क्रियाशील होकर केन्द्रसे बाहर निकले; वह किसी रेखा या आकारमें बद्ध नहीं है क्योंकि रंगको बद्ध होना ही नहीं चाहिए। रंगसे किरणें फूटती हैं। उसका स्वभाव गतिशील है। इसलिए उसका प्रसार होगा ही। दूसरी ओर, ऊदे रंगका प्रारम्भ ही बृहद् आकारसे है। वह ऊपर जाते-जाते छोटा होकर त्रिकोणकी नोकका बिन्दु बनकर रह जाता है। हरे और ऊदे रंगोंसे निर्मित भिन्न आकारोंमें संघर्ष होनेके अतिरिक्त दोनों विभिन्न रंगोंमें भी परस्पर संघर्ष है। यही संघर्ष सीधी और वक्र रेखाओंमें भी है। प्रत्येक अवस्थामें दोनों तत्त्व परस्पर अपरि-षित: हैं। मुझे यही अन्तर्विरोध चित्रमें उभारना है।

फ्रांकौए : क्या हरा रंग ऊदे रंगसे सन्तुलन पा रहा है ?

पिकासो : सन्तुलनका प्रश्न ही नहीं है। और न इस दृष्टिसे मुझे कुछ देखना है। न मेरा यह प्रयत्न है और न इसमें मेरी रुचि है कि मैं प्रथम प्रस्तावनाको अधिक समन्वित बनाऊँ। मेरा प्रयत्न यह है कि चित्र अधिक अधिक विचलित करे और उद्विग्नता उत्पन्न करे। इसके बाद मैं निर्माण प्रारम्भ करूँगा। किन्तु निर्माण करूँगा, समन्वय नहीं। निर्माण इस दृष्टिसे करूँगा कि चित्र अधिक गहराई उद्विग्नता उत्पन्न कर सके और अधिक विध्वंसकारी बन पाये।

फ्रांकौए : क्या ये प्रारम्भिक रेखाएँ इस सोच-विचारके बाद खींची गयी हैं ?

पिकासो : अब तकका अंकन नैसर्गिक प्रेरणा-द्वारा हुआ है किन्तु निर्माण-कालमें मुझे इस प्रभावको अधिक गहरे उतारना है और बहुत दूर ले जाना है। यह कार्य पर्याप्त दुस्साहसिक हो सकता है। समस्या यह है कि इस प्रथम प्रस्तावनाको इस प्रकार झँझोड़ूँ कि उसका पूर्णतया विनाश किये बिना, उसे आमूल-चूल हिला दूँ, और अधिक विद्रोही और विध्वंसकारी दर्शा सकूँ। मैं इसे किस प्रकार अद्वितीय बनाऊँ कि जो न केवल नवीन हो बल्कि नितान्त विदीर्ण-विच्छिन्न।

फ्रांकौए : इसका क्या अर्थ है ?

पिकासो : मेरे लिए चित्र आँकना एक नाटकीय व्यापार है जिसके घटित होनेसे 'यथार्थ' स्वयं फटकर सामने खुल पड़ता है। मेरे लिए इस नाटकीय व्यापारके समक्ष अन्य सभी सोच-विचार गौण हैं। अमूर्तको मूर्त करनेका शुद्ध व्यापार मेरे लिए द्वितीय स्थान लेता है। मूर्त करनेका वह नाटकीय क्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—जब ब्रह्माण्ड स्वयंमें-से निकलकर अपने विनाशका सामना करता है।

फ्रांकौए : उस क्षणकी पकड़ किस प्रकार होती है ?

पिकासो : जिन दो वस्तुओंको मैं अभिव्यक्त करना चाहता हूँ उनमें मैं सदैव एक असम्भावनीय सम्बन्ध जुड़ाता हूँ। क्योंकि असम्भावी सम्बन्ध नियोजित करनेमें कठिनाई उपस्थित होती है और कठिनाईमें पड़ना एक प्रकारका आनन्द प्रदान करता है। उस आनन्दमें एक प्रकारका तनाव होता है। वह तनाव मेरे लिए उस स्थायी सामंजस्य और साम्यावस्थासे कहीं महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि समतोलनमें मुझे तनिक रुचि नहीं।

फ्रांकौए : समतोलनके प्रति इतना विद्रोह क्यों ?

पिकासो : इसलिए कि 'यथार्थ'को पूर्णरूपेण चीर-फाड़कर सामने लाना चाहिए। मनुष्य यह भूल जाता है कि प्रत्येक वस्तु अद्वितीय है। प्रकृतिमें एक-सी वस्तु दो बार जन्म नहीं लेती। इसीलिए मैं असन्तुलनको अधिक महत्त्वपूर्ण और वास्तविकताके निकट पाता हूँ। जैसे 'छोटा शरीर, बड़ा सिर' या

फ्रांकौए (१९. १२. १९५१) पाब्लोकी दुनियामें

'बड़ा शरीर, छोटा सिर' होते हैं। मैं मस्तिष्कको उस दिशाकी ओर खींचना चाहता हूँ जिस ओर जानेका उसे अभ्यास नहीं हुआ है। मैं उसको पुरानी अभ्यास-निद्रासे झँझोड़कर जगाना चाहता हूँ। मैं दर्शकको वह दृष्टि देना चाहता हूँ जो उसके सामने प्रत्येक वस्तुका वह रूप जाग्रत करे जो मेरे अतिरिक्त कोई नहीं दिखा सकता। इसीलिए मैं दायीं और बायीं आँखकी असमानताको मुख्यता देता हूँ। चित्रकारको दोनों आँखें इतने समान नहीं आँकनी चाहिए। मेरा उद्देश्य है कि सब वस्तुओंको गतिशील बना दूँ और यह गतिशीलता विरोधी तनावों एवं एक दूसरेको काटती शक्तियोंकी टक्करसे उत्पन्न हो और उस तनावमें-से वह क्षण मेरे हाथ लगे जो मुझे सबसे अधिक रुचिकर और प्रिय है।

झांकौए : यह सुनकर तो लगता है कि यदि तुमने रंग और कूची न उठायी होती तो संसार तुम्हें दार्शनिक कहकर पुकारता।

पिकासो : जब मैं बालक था तो मेरी माँ कहा करती थी कि यदि तुम सिपाही बनोगे तो जनरल बनकर रहोगे और यदि 'मांक' (साधु-संन्यासी) बननेका इरादा किया तो 'पोप' बनकर ही सन्तुष्ट होगे। मैं बना हूँ चित्रकार और 'पिकासो' बनना ही मेरी अन्तिम परिणति है।

[दिनका उजाला चित्रशालासे धीरे-धीरे विदा ले रहा है। अँधेरा होनेके साथ ही साथ कमरेमें दो स्पॉटलाइट्स प्रकाशमान होती हैं, जिनकी रोशनी केवल पिकासो-द्वारा अंकित होते चित्रपर केन्द्रित होती है। शेष सारी वस्तुएँ व स्थान अन्धकारमें विलीन रहते हैं।]

पिकासोकी धारणा है कि केवल रचनावस्तुपर प्रकाश और शेष अतिरिक्तपर अन्धकार छा जानेसे कलाकार अपनी ही रचनासे मोहाच्छन्न हो जाता है, और वह विभ्रमित हो इस तरह कूँची चलाता है, जैसे वह मूर्छनामें हो। मस्तिष्क-द्वारा आरोपित तर्कसंगत सिद्धान्तोंको अन्तर्धान करनेके लिए कलाकारको चाहिए कि वह अपनी कृतिसे अधिकाधिक सामीप्यकी अनुभूतिमें डूबा रहे।

६७६—'ओ', ब्लाक
न्यू अलीपुर, कलकत्ता-५३

परिवर्तित निवेदन :

१. ज्ञानोदयके लिए नयी रचनाओंका स्वागत है लेकिन अस्वीकृतिकी सूचना देना सम्भव नहीं है। केवल वे अस्वीकृत रचनाएँ हम लौटा देते हैं जिनके साथ पता-लिखा, टिकट-लगा लिफ़ाफ़ा हो।

२. अनामन्त्रित रचनाओंके निर्णयमें एक मास लग जाता है फिर भी जो रचना ज्ञानोदयके लिए भेजें, कृपया वह हमारे उत्तर तक कहीं और न भेजें।

—सम्पादक

क । हा । नी

बेचैनीका सुख

प्रस्तर शिलापर बैठा हुआ विपिन न जाने कहाँ खो गया है। उसके पीछे विशाल अट्टालिकाएँ हैं, व्यस्त मार्ग हैं और है अनवरत उठता हुआ कोलाहल। सामने असीम-अगाध सागर फैला है। उसकी बेचैन तरंगें पछाड़ खा-खाकर किनारेसे टकराती हैं और फिर लौट जाती हैं····

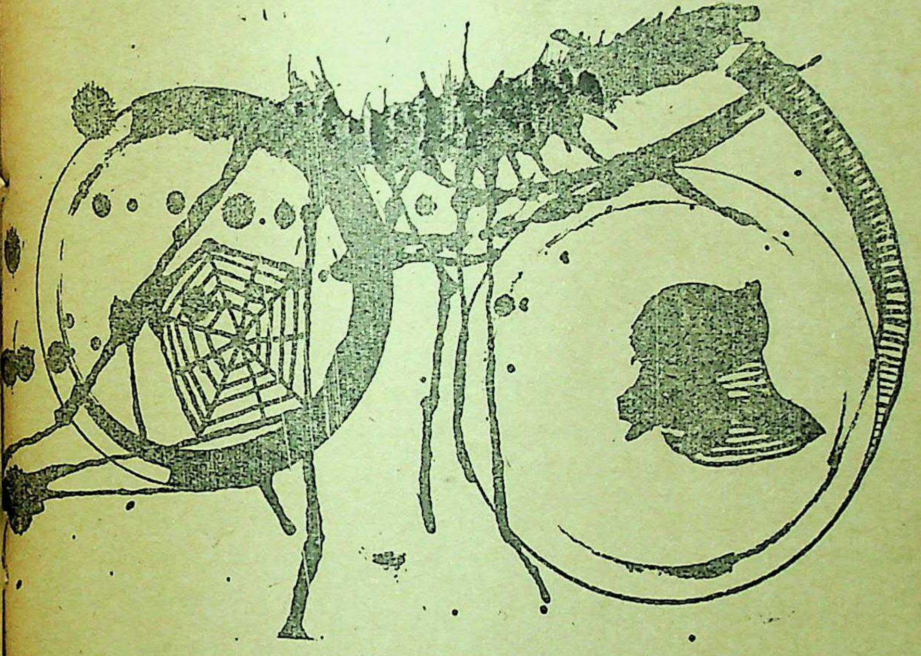

विष्णु प्रभाकर

वही असीमकी बेचैनी जैसे विपिनके अन्तरमें उतर आयी है। उसके अन्तरके आकाशपर रह-रहकर एक उदास माँका चेहरा उभरता है। दर्दमें लिपटी हुई वह उदासी उसे कचोट-कचोट देती है। उसकी गोदमें बच्चा है। बच्चेके मासूम चेहरेपर जैसे किसीने निराशा चित्रित कर दी हो, लेकिन क्या वह उस निराशाको भोगता है या वह मात्र उसके चेहरेपर पड़ती हुई उसकी माँके दर्दकी छाया है····

यह चित्र उसके मित्रने उसे अमरीकासे भेजा है। लिखा है : "पिछले वर्ष अनेक मित्रोंको इस वियतनामी माँका चित्र भेजा था। आशा थी, बीते वर्षमें इसका कष्ट दूर होगा।

कष्ट ज्योंका त्यों बना हुआ है और न जाने कितनी माँएँ इसकी कोटिमें शामिल हो गयी हैं। कहानी ज्योंकी त्यों है।"

वह सोचता है कि यह चित्र वियतनामी माँका ही क्यों है? हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी या अमरीकी माँका क्यों नहीं है। उसकी अपनी माँका भी हो सकता है और पत्नीका भी, जो अब तुरन्त ही माँ बननेवाली है।

उस दिन विपिनने दृढ़ स्वरमें सन्ध्यासे कहा था, "नहीं, मुझे पिता नहीं बनना है।"

सन्ध्याने उसकी आँखोंमें झाँकते हुए शरारतसे उत्तर दिया था "तुम इतने परेशान क्यों हो?"

"क्योंकि तुम अपनेको धोखा दे रही हो!"

"नहीं, मैं सच कहती हूँ। मैं भी बनना नहीं चाहती।"

विपिन सन्ध्याके ऊपर झुक आया था। एक तिनके-से उसके मुखको टकोरते हुए कोमल स्वरमें कहा था, "तुम झूठ बोल रही हो!"

"नहीं, नहीं!"

"शुरू में हर नारी यही कहती है।"

"सहसा सन्ध्या उठकर बैठ गयी थी और उसने क्रुद्ध होते हुए कहा था, "मैं तुम्हारे अविश्वासका प्रतिरोध करती हूँ। तुम्हारा यह आग्रह इसीलिए है कि तुम स्वयं पिता बनना चाहते हो। मनुष्य मरना नहीं चाहता, इसीलिए बार-बार अपनेको रूपान्तरित करता रहता है।"

सहसा विपिन कांप उठा था। न जाने सन्ध्याने उसके अन्तरतममें छिपे यथार्थको कैसे पहचान लिया था। क्या गुणन ही यथार्थ है। जीव बार-बार अपनेको अपनेसे ही गुणा करता रहता है और पौराणिक दानव 'रक्तबीज' की तरह बढ़ता रहता है। इस वियतनामी माँके दर्दको लेकर वियतनामी कविने जो कविता लिखी है, उसका भी तो यही अर्थ है····

"कल मैंने जो आँसू बहाये थे, वे आज वर्षाकी बूँदोंमें परिवर्तित हो रहे हैं। शैशव मुझे पुकारता है। वर्षाने मेरी निराशाको धो दिया है। यातनाके वृक्षमें ही मीठे फल उगते हैं। मत रोओ प्रिये! यातनाकी गहन रातसे हम गुजर रहे हैं····"

कैसा है यह आशावाद! क्यों है यह शिशुओंकी भीड़, भीख माँगनेके लिए, मरने

[शेष पृष्ठ ११७ पर]

सहसा विपिन काँप-काँप उठा था। न जाने सन्ध्याने उसके अन्तरतममें छिपे यथार्थको कैसे पहचान लिया था। क्या गुणन ही यथार्थ है। जीव बार-बार अपनेको अपनेसे ही गुणा करता रहता है और पौराणिक दानव 'रक्तबीज' की तरह बढ़ता रहता है। इस वियतनामी माँके दर्दको लेकर वियतनामी कविने जो कविता लिखी है, उसका तो यही अर्थ है···

"कल मैंने जो आँसू बहाये थे, वे आज वर्षाकी बूँदोंमें परिवर्तित हो रहे हैं। शैशव मुझे पुकारता है। वर्षाने मेरी निराशाको धो दिया है। यातनाके वृक्षमें ही मीठे फल उगते हैं। मत रोओ प्रिये! यातनाकी गहन रातसे हम गुज़र रहे हैं···"

आधुनिकता : नयी और पुरानी

■

कुबेरनाथ राय

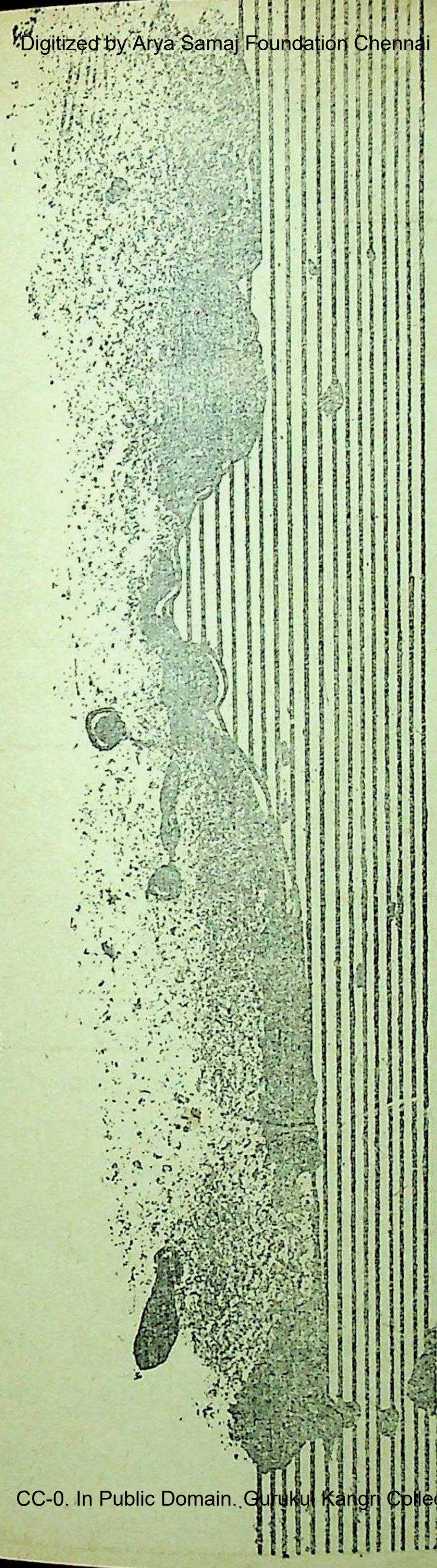

[आधुनिकताके विश्लेषणका प्रयास उसे उलझाना नहीं है, उसे समझना है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लालने बहुत बड़ जंगलके सामने नन्हे-से कैक्टसको देखा और उनके द्वारा अगले अंकोंमें इस जंगल और इस कैक्टसका प्रतीक अधिक स्पष्ट होगा ही। अन्य लेखकोंके महत्त्वपूर्ण विचार भी हम प्रत्येक अंकमें देते चलेंगे। प्रस्तुत है कुबेरनाथ रायका चिन्तन कि आधुनिकता मूल्य या तथ्य नहीं है, संस्कार-प्रवाह या स्वभाव है....]

आधुनिकता कोई फ़ैशन या मौज-शौक़ नहीं है। नौकरशाही संस्कृतिके गलित रूपको आधुनिकता मानकर ग्रहण करना या

संस्कारोंका अमेरिकीकरण करना, चाहे वे जीवनके संस्कार हों या साहित्यके, तथा परम्परा अस्वीकार करनेके नशेमें 'हिन्दुस्तान' को ही अस्वीकार कर देना आदि आधुनिकता नहीं। ये सब सामाजिक और बौद्धिक फ़ैशन हो सकते हैं। आधुनिकता फ़ैशनसे कहीं अधिक सूक्ष्म और गहरी चीज़ है। यह एक दृष्टि-क्रम है, एक बोध-प्रक्रिया है, एक संस्कार-प्रवाह है या सीधी शब्दावलीमें 'एक खास तरहका स्वभाव' है जिसकी उपलब्धि अपनी अस्मिताके माध्यमसे होती है और इस 'स्वभाव'की उपलब्धिके लिए आत्मान्वेषणकी यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। गम्भीर और आत्मसम्पृक्त अध्ययनके माध्यमसे भी इस स्वभावको उपलब्ध किया जा सकता है। आत्मान्वेषणकी यन्त्रणा और आत्मसम्पृक्त अध्ययन-मनन दोनों रास्ते सही और परस्पर पूरक हैं। दोनोंमें कोई नक़ली नहीं। हाँ, सर्जनात्मक मनके लिए पहले रास्तेकी आंशिक अनिवार्यता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। पर विशाल उपभोक्ता समाजके लिए दूसरा रास्ता ही अपेक्षित और सुरक्षित है। इस खास स्वभावकी रचना जिन संस्कारोंसे हुई है वे बड़े ही उलझे हुए हैं और इस उलझी संस्कार-प्रक्रियामें ये संस्कार मुख्य रूपसे उपस्थित पाये जाते हैं: प्रश्नाकुलता, संशयशीलता, जीवनके आस्वादनमें विश्वास, मात्र तात्कालिक या शुद्ध ऐन्द्रिक अनुभूतिमें ही विश्वास, प्रतिमा या परम्परासे निरपेक्ष होकर नये मूल्योंका अन्वेषण, अन्वेषणकी तीव्र यन्त्रणाका बोध, चरम क्षणों (यथा जन्मके समयका क्षण या मृत्युके समयका क्षण जब हम नितान्त अकेले रहते हैं) को पकड़ने और उसे माध्यमसे जिज्ञासा और सिसृक्षाको तुष्ट करनेका प्रयास आदि। इन सारे संस्कारोंसे सम्पृक्त मनको आधुनिक मन कहते हैं। 'आधुनिकता'को आज हम इसी रूढ़ अर्थमें प्रयुक्त करते हैं। यद्यपि मैं स्पष्टताके लिहाज़से इसे 'आधुनिकता' ही न कहकर 'नयी आधुनिकता' कहना चाहूँगा।

हिन्दीमें 'असली' और 'नक़ली' आधुनिकताके प्रश्नको लेकर काफ़ी बहस हुई है और भविष्यमें भी होगी। पर मैं समझता हूँ कि मूल प्रश्न असली और नक़लीका नहीं 'नयी आधुनिकता' और 'पुरानी आधुनिकता' का है और अपनी-अपनी जगहपर दोनों ठीक हैं। कमसे कम हिन्दुस्तानमें दोनोंका सार्थक अस्तित्व दिखाई पड़ रहा है। 'पुरानी आधुनिकता' एक परस्परविरोधी अभिव्यक्ति जैसा भले ही लगे, पर है यह तथ्य। इससे हमारा तात्पर्य १९वीं शतीके उदारवादी और मानववादी संस्कारोंसे है जिनके प्रचारका प्रारम्भ राजा राममोहन रायसे हुआ और दयानन्द तथा महात्मा गान्धीने इस कार्यको आगे बढ़ाया। आजके हिन्दुस्तानमें जहाँ हरिजन-समस्या, नारी-मुक्ति, वैज्ञानिक दृष्टि वर्गहीन समाज, और जाति-भेद आदि अब भी ज्वलन्त समस्याएँ हैं, जहाँ अब भी गुरुद्वारों और मस्जिदोंको चुनाव-प्रचारका मज़बूत केन्द्र माना जाता है और गोवध-विरोधी आन्दोलन हो सकता है, तो कैसे कहा जाये कि १९वीं शतीके मानवीय मूल्य समता,

न्याय, धर्म-निरपेक्षता, वर्ण-निरपेक्षता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदिके लिए जागरूक रहना 'आधुनिकता' नहीं, और हरिजनोद्धार तथा महिला-शिक्षा-आन्दोलनकी चर्चा 'आधुनिकता' नहीं। सच तो यह है कि इस देशमें समूहगत जीवनमें यह पुरानी १९वीं शतीवाली आधुनिकता ही सार्थक आधुनिकता है। मेरी समझसे यह अब भी 'बासी' नहीं, ऐतिहासिक कालक्रमके अनुसार 'पुरानी' भले ही कहा जाये। इसीसे इसे मैं 'पुरानी आधुनिकता' कहकर स्वीकारता हूँ।

दूसरी ओर बीसवीं शतीकी आधुनिकता है। १९वीं शतीकी आधुनिकता अर्थात्, पुरानी आधुनिकताके संस्कारोंका जन्म-मूल्योंके द्वारा होता है और वे स्वतः नये मूल्योंके जनक हैं। पर इस बीसवीं शतीकी आधुनिकताका जन्म ही सब प्रकारके मूल्योंके प्रति मोह-भंगसे हुआ है। इसके मोह-भंगके दर्शनकी कसौटीपर पुरानी आधुनिकता खोखली और बासी ज्ञात होती है जब कि पुरानी वास्तविकताके समर्थकोंको अपनी आदर्शवादी कसौटीपर यह नयी आधुनिकता नक़ली और स्वांगपूर्ण लगती है। पुरानी आधुनिकताका दर्शन है मानवीय आदर्शवाद तो नयी आधुनिकताका आधार है मोह-मुक्त (डिसइल्यूजन्ड) यथार्थवाद।

नयी आधुनिकताका जन्म जिन मानवीय परिस्थितियोंसे हुआ है वे भी कम सत्य नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर मार्क्सवादके 'मुखौश'-नुमा मूल्योंका रहस्योद्घाटन, महायुद्ध और भावी अणुयुद्धका आतंक तथा मनुष्यकी नितान्त लाचार स्थिति तथा राष्ट्रीय स्तरपर अर्ध सत्योंके सृजन और प्रसारणमें होड़, बढ़ती हुई दीनता और भूख, नौकरशाहीके बढ़ते हुए जाल और उनमें दिनपर दिन खोया जाता हुआ मनुष्य, अस्थिर राजनीतिक आदर्श तथा मूल्यगत सौदाबाजी, संशय और आतंकका वातावरण—आदि मानवीय स्थितियाँ नितान्त सत्य हैं और इनके बीचमें जन्म लेनेवाले नयी आधुनिकताके संस्कार नितान्त आरोपित और स्वांगपूर्ण नहीं। परन्तु जहाँ पुरानी आधुनिकता समूह-सत्योंको लेकर चलती है, नयी आधुनिकता समूह-सत्योंसे निरपेक्ष व्यक्ति-सत्योंपर ही आधारित है। नयी आधुनिकताकी कमोबेश यह अनिवार्य नियति है कि सदैव संवेदनशील 'अल्पमत' बुद्धिजीवी-वर्गसे ही वह संयुक्त रहेगी। जिस प्रकार वैष्णवतामें या समाजवादमें बुद्धिजीवी-वर्गको समूहगत स्तरपर अपना दर्शन स्थापित करनेकी सुविधा है,

विश्व-इतिहासमें आधुनिकताके अनेक दौर आये हैं और उसकी परिभाषा प्रत्येक दौरको दृष्टिगत रखकर उपस्थित की गयी है। पर हरएक दौरकी समूहगत और व्यक्तिगत स्थितियाँ भिन्न थीं और उससे उत्पन्न आधुनिकता बोध भी भिन्न रहा। हम भारतीय चिन्ताकी विकास-धाराके माध्यमसे भी देख सकते हैं कि जिस प्रकार परम्पराप्रियता मनुष्यके मनकी स्थायी और सामान्य वृत्ति है वैसे ही आधुनिकता भी। कभी एक प्रबल पड़ती है तो कभी दूसरी।

वह सुविधा नयी आधुनिकतासे सम्पृक्त बुद्धिजीवीको नहीं। यही उसकी सीमा है, उसकी कमजोरी है। परन्तु उक्त मानवीय स्थितियोंको, जिनसे इसका जन्म होता है, यथार्थ स्वीकार लेनेपर इसे भी सही और यथार्थ मानना ही पड़ता है। इसकी भूमिकाके बारेमें मतभेद हो सकता है, पर इसकी सच्चाई और सत्ताके बारेमें नहीं। यह 'अल्पमत संस्कृति'की उपज है और इसके पास कोई समूहगत यूटोपिया नहीं। यह सही है कि इसमें एक असली नायक है तो सैकड़ों स्वांगपूर्ण अभिनेता। परन्तु यही बात तो पुरानी आधुनिकताके लिए भी है। आज हर एक कमीना अपना उल्लू सीधा करनेके लिए पंचशील और समाजवादकी क़सम खाता है, खादी पहनता है और झण्डे बदलता है: तिरंगासे एकरंगा और एकरंगासे तिरंगा। ऊपरसे लाल, भीतरसे हरा। नयी आधुनिकतामें विदूषक ज़्यादा हैं तो पुरानी आधुनिकतामें पाखण्डी। और पाखण्डी निश्चय ही विदूषकसे ज़्यादा अवांछनीय और खतरनाक होता है।

■

आधुनिकताके सम्बन्धमें एक विशिष्ट प्रश्न उठाया जा सकता है: 'क्या आधुनिकता स्वतः कोई तथ्य या मूल्य है?'

मेरी समझसे आधुनिकता निजमें कोई मूल्य या तथ्य नहीं बल्कि एक स्वभाव है, एक संस्कार-प्रवाह है, एक बोध-प्रक्रिया है। चाहे जो इसे मानें पर गुण-धर्मके हिसाबसे 'स्वभाव', बोध-प्रक्रिया, संस्कार-प्रवाह आदि एक ही बातें हैं। इसे तथ्य या मूल्य मानने का भ्रम तभी होता है जब लोग संस्कारको ही मूल्य मान बैठते हैं, यथा प्रश्नाकुलता आस्वादनमें विश्वास या यायावर वृत्ति आदि जो संस्कार हैं या स्वभावके अंग हैं, चिन्तन की असावधान अवस्थामें मूल्य मानकर लोग आधुनिकताकी मूल्यके तौरपर चर्चा करने लगते हैं। पर यदि उनसे बात आगे बढ़ायी जाये तो घुमा-फिराकर यही जवाब मिलेगा: 'मूल्यहीनता ही आधुनिकताका मूल्य है।' पर यह भी कोई बात हुई! अतः शाब्दिक द्रविड़ प्राणायामको छोड़कर हमें मान लेना चाहिए कि आधुनिकता मूल्य या तथ्य नहीं, स्वभाव या संस्कार-प्रवाह है। हाँ, इतना माना जा सकता है कि इसके जनक कुछ मूल्य हों या इसके द्वारा या इसके माध्यमसे कुछ मूल्योंका जन्म हो, जैसे १९वीं शतीकी 'पुरानी आधुनिकताके विषयमें; परन्तु स्वतः यह संस्कार-प्रवाह है, मूल्य नहीं। जहाँ तक 'नयी आधुनिकता'का प्रश्न है यह कोई मूल्य नहीं सृजन करती है और इसका जन्म मूल्योंके प्रति मोह-भंगसे हुआ है। अतः इसके मूल्य होनेका सवाल ही नहीं उठता। आधुनिकताको समझनेके लिए 'संस्कार' और 'मूल्य'का भेद मनमें खूब साफ़ रहना चाहिए। समता, स्वतन्त्रता, सौन्दर्योपासना, रसभोग, आनन्द, आवारागर्दी, गुण्डई, श्रेय, प्रेय, आदि मूल्य हैं। परन्तु, रूमान, क्रोध, शोक, रस-लुब्धकता, बेचैनी, कामुकता, उदात्तता, मोह-भंग,

विकर्षण, निराशा, संशय, प्रश्नाकुलता आदि संस्कार है। मूल्य—यानी उद्देश्य-बिन्दु या पुरुषार्थ। संस्कार—यानी मानसिक वृत्ति। इसी प्रकार संस्कारोंको 'तथ्य' (फ़ैक्ट) नहीं माना जा सकता है। मूल्य, तथ्य और संस्कार परस्पर एक दूसरेको प्रभावित और संशोधित करते हैं, पर वे एक ही नहीं। कोई नहीं कह सकता : अमुक-अमुक तथ्यों या मूल्योंकी चर्चा करो तो आधुनिक कविता या कहानी हो जायेगी। सही इस्लाह यह होगी : अध्ययन-मनन या आत्मयन्त्रणाके माध्यमसे पूर्वोक्त विशेष संस्कारोंको पहचानो और अर्जित करो, उन संस्कारोंके प्रवाहके भीतर आकर कोई तथ्य कोई घटना आधुनिकताका रंग कर लेगा। उसमें किसी गहरी संवेदनाका समावेश हो जायेगा, उन संस्कारोंके स्पर्शके कारण। यहाँ एक उदाहरण देना ठीक होगा। श्रीमती महादेवी वर्माकी अति परिचित कविता **"मधुर मधुर मेरे दीपक जल, प्रियतम का पथ आलोकित कर...."** इत्यादिमें मूल्य है 'अहंकी मुक्ति' और तथ्य है दीपकका समर्पण। ठीक इसी मूल्य और इसी तथ्यपर आधारित 'अज्ञेय'की भी एक कविता है :

"यह दीप अकेला, गर्व-भरा मदमाता
इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर कौन
गायेगा ?

पनडुब्बा : ये सच्चे मोती फिर कौन
कृती लायेगा ?

यह समिधा : ऐसी आग हठीला कौन
सुलगायेगा ?
यह अद्वितीय, यह मेरा
यह मैं स्वयं विसर्जित
यह दीप अकेला, स्नेह-भरा
है गर्वभरा मदमाता
इसको भी पंक्ति को दे दो।"

मूल्य और तथ्यकी एकता होते हुए भी आत्मिकप्रक्रिया रूमानी और आधुनिक संस्कारोंके मौलिक स्वभावगत भिन्नताके कारण भिन्न हो गयी है। अज्ञेयमें आत्मिक प्रक्रियाका बोध गहरा हो उठा है जबकि महादेवीमें यह भावात्मक स्तरपर समर्पणकी बात कहकर समाप्त हो जाता है। यह अहं 'अद्वितीय' है पर साथ ही 'स्वयं विसर्जित'। और यह तीन भूमिकाओंमें आता है जो एकके बाद एक गम्भीरसे गम्भीरतर बोधको छूती गयी हैं। पहले यह 'जन' मात्र है जो 'अद्वितीय' गायक है। फिर यह अद्वितीय गोताखोर है, जो अतल तक पैठ जाता है, दृढ़ समाधिके वायुबद्ध तहपर तह छेदता हुआ अतलसे 'सही' बोध और 'सही' शब्द ढूँढ़ लाता है। फिर अन्तमें यह 'अद्वितीय' समिधा है, जो आत्ममेधके द्वारा अपने अस्तित्व को आगमें बदलकर पूर्णतः 'मुक्त', अपने अस्तित्वसे भी मुक्त हो जाता है। यह पूर्ण 'मुक्ति' कलाकारकी अनिवार्यता है। वैष्णव आत्मसमर्पणको आत्ममेधकी शाक्त प्रक्रियाके भीतर विकसित करनेका प्रयत्न एक गहरी आत्मिक प्रक्रियाको जन्म देता है जो महादेवीकी पंक्तियोंमें अनुपस्थित

है। अतः तथ्य और मूल्य एक होते हुए भी आधुनिक संस्कारोंके सन्दर्भमें पड़कर 'समर्पण'के तथ्यका समूचा बोध ही बदल गया।

कुछ लोगोंका खयाल है कि जो कुछ भी ऊट-पटांग, गड़बड़-सड़बड़, सुननेमें औघड़-पन्थी, अश्लील और कुरूप हो वह आधुनिक हो जाता है। इस भ्रमके शिकार 'अकविता और विद्रोही पीढ़ी' वाले तथा 'मुद्राराक्षस'-जैसे 'जीव' ज़्यादा हैं। गोया अश्लीलता और कुरूपता ही आधुनिकता हो। यह सही है कि श्लीलता और सुरूपताके पुराने माप-दण्डोंको आधुनिकताने त्याग दिया है। परन्तु अश्लीलता-रस या कुरूपता-रसकी साधनाके लिए नहीं, बल्कि सर्जककी आत्मिक आवश्यकताके कारण। कुरूपता, गद्यात्मकता, या अभिव्यक्ति-रुक्षतासे आधुनिकताका अन्योन्याश्रितसम्बन्ध नहीं। रूमानी सौन्दर्यबोधको अस्वीकृत करनेका अर्थ फूहड़ और भद्दापनका वरण नहीं। यहाँपर लगता है कि कभी-कभी बड़े कवि, यहाँ तक कि अज्ञेय भी, अनगढ़ताके इस आकर्षणकी चपेटमें आ गये हैं, उक्ति चमत्कारके फेरमें पड़कर या 'शॉक' देनेके लिए। परन्तु यह आधुनिकताका खास लक्षण या राजमार्ग नहीं माना जाना चाहिए। यहाँपर दो उद्धरण अँगरेज़ीसे, इसी बिन्दुपर दिये जा रहे हैं। एक है जार्जियन कवि रूपर्ट ब्रुकका और दूसरा है आधुनिक कवि एलियटका। विषय (यानी 'तथ्य') एक ही है। पर एलियटकी अभिव्यक्तिमें आधुनिकता है रूपर्ट ब्रुकमें नहीं।

(१) "एण्ड यू हैव लव्ड यंग लाइफ़ एण्ड
क्लीन मस्
ए फ़ाउल सिक फ़मब्लिंग ड्रिब्लिंग बं
एण्ड ओल
ह्वेन हिज रेअर लिप्स हैंग फ्लैबी एण्
काण्ट हो
स्लोबर, एण्ड यू आर इनड्योरिंग
वर्स्ट
सेनिलिटीज़ क्वीज़ी फ़र्टिव लवमेकि
एण्ड सर्चिंग दोज़ डियर आइज़ फ़
ह्यूमन मीनि
ग्रौपिंग द बॉल्ड एण्ड हेल्पलेस ह
एण्ड क्लीनि
ए स्क्रप दैट लाइफ़ हैज फ्लंग वाई।
—रूपर्ट ब्रु

(२) "एण्ड दो आइ हैव वेप्ट एण्ड फ़ास्टे
वेप्ट एण्ड प्रे

दो आइ हैव सीन माई हेड
(ग्रोन स्लाइटली बॉल्ड)
ब्रॉट इन अपॉन ए प्लैटर
आइ एम नो प्रौफ़ेट एण्ड देअर इ
नो ग्रेट मैटर।'
— एलिय

दोनोंमें विषय एक ही है: आते हु बुढ़ापेका अहसास, प्यारकी अक्षमता उससे उत्पन्न ईर्ष्या-भाव तथा रूमानी प्यार प्रति मोह-भंग (डिसइल्यूज़नमेण्ट)। मा गंजेपनका उल्लेख दोनोंमें है। परन्तु ए यटकी अभिव्यक्तिमें कहीं भी कुरूप या गढ़ वाक्य या बिम्ब नहीं, जबकि 'लटकते थुल-थुल माँसल होठ' तथा '

पलितम् मुण्डम्'के अनगढ़ बिम्ब पेश किये हैं। एलियटकी भाषा सादी और सहज है। फिर भी एलियटमें 'आत्मिक संकेत' (स्पिरिचुअल सिगनिफ़िकेन्स) है जब कि रूपर्ट ब्रुकमें रूमानी हताशा। एलियटके प्रूफ़ाकके अन्दर 'प्रायश्चित्त'का भाव जो जुड़ा है वह उसकी ईर्ष्याको गहरा आध्यात्मिक संवेदन देता है। "वह रोता है, प्रायश्चित्त करता है; वह प्रायश्चित्त करता है, प्रार्थना करता है और उसे अहसास होता है कि उसके माथेके बाल गिर रहे हैं…।" यह सादा कथन 'प्यार'के अ-रूमानी असमर्थता और मोह-भंगकी मानसिक पृष्ठभूमिको गहरे आत्मिक स्तरपर रचता है, जबकि अपनी अनगढ़ता-कुरूपताके बावजूद भी वैसे गहरे रूमानरिक्त मोह-भंगको ब्रुक नहीं दे पाता है।

इधर हिन्दीके अनेक 'विद्रोही' कवियोंने अकविताकी शैलीमें 'ऊबड़-खाबड़पन' को ही आधुनिकता मानकर आतंक, मोह-भंग एवं सामूहिक 'आदर्शों'के 'नक़ाब'-उद्घाटन आदिपर अनेक कविताएँ लिखी हैं। परन्तु इनकी प्रामाणिकताको उन्होंने गहरे आत्मिक स्तरपर नहीं लिया है। अतः वे आधुनिकताका गहरा और शुद्ध निर्विकार बोध पकड़ नहीं पाये हैं। जबकि मुक्तिबोधकी अनेक कविताओंमें इन्हीं तथ्योंकी, शुद्ध बोध और गहरी प्रामाणिकताके साथ, अभिव्यक्ति की गयी है संस्कारोंका आत्मिक संघात (स्पिरिचुअल इण्टर एक्शन) मौजूद न होनेसे आधुनिकताका फ़ैशन प्राप्त होता है, आधुनिकता नहीं।

हम ऊपर कह आये हैं कि आधुनिकता मूल्य या तथ्य नहीं, संस्कार-प्रवाह या स्वभाव है। नयी आधुनिकता यानी २०वीं शतीकी आधुनिकताके बारेमें यह और ज़ोर देकर कहा जा सकता है। यह सही है कि हर एक आधुनिकतावादी अस्तित्ववादी (एकाडेमिक अर्थमें, अर्थात् 'सार्त्र-कामूवादी') नहीं, पर वह भी मूलतः 'अस्तित्व'को ही पहले पकड़ता है। धारणा (कनसेप्ट) और प्रत्यय (आइडिया) से उसका प्राथमिक सम्बन्ध नहीं। अन्ततः आधुनिकताबोधसे उत्पन्न समूचा साहित्य ही कम या बेश जिस दर्शनका सबसे नजदीको रिश्तेदार ठहरता है वह है: 'अस्तित्ववाद'। यह अस्तित्ववाद स्वयं मार्क्सवाद या वेदान्तकी तरह कोई संगठित 'मूल्य-पद्धति' (सिस्टम) नहीं। प्रत्येक अस्तित्ववादीके विषय और उपलब्ध फल अलग-अलग हैं। वे 'अस्तित्ववादी' इसलिए नहीं कहलाते कि उनके द्वारा खोजे गये फलों या सिद्धान्तोंमें समानता है। बल्कि उनको अस्तित्ववादीकी संज्ञा सामूहिक रूपसे इसी कारण मिली है कि उनका दार्शनिक 'स्वभाव' एक है अर्थात् उनकी चिन्तन-प्रक्रिया एक है; उनका प्रस्थान-बिन्दु (अस्तित्व) एक है और वे मात्र नकारात्मक स्थितियोंमें एक दूसरेसे सहमत हैं। ऐसे दर्शनसे जैविक रूपसे सम्बन्धित 'आधुनिकता'में मूल्य या तथ्य कहाँसे आयेगा? यही कारण है कि यह भी एक संस्कार-प्रवाह या एक विशेष 'स्वभाव' है। कोई मूल्य-पद्धति (सिस्टम ऑव वैल्यूज़) नहीं। जब इसकी पृष्ठभूमिमें कोई 'मूल्य-पद्धति' वाला दर्शन

ही नहीं, तो यह कैसे मूल्य-पद्धति हो जायेगी या किसी मूल्य-पद्धतिकी रचना करेगी ?

■

क्या आधुनिकताकी कोई परिभाषा हो सकती है ? अपने विशेष या रूढ़ अर्थमें जिसे मैंने 'नयी आधुनिकता' कहा है, यह इतनी उलझी प्रक्रिया है कि इसकी परिभाषा नहीं दी जा सकती—बल्कि इसके संस्कारोंके माध्यमसे जिनका ज़िक्र प्रारम्भमें किया गया है, इसे पहचाना जा सकता है। 'रूमान' और क्लासिसिज़्म'की तरह इसकी भी बिलकुल सटीक परिभाषा देना कठिन है। नयी आधुनिकताका दर्शन ही है—'शब्दों'के द्वारा नहीं अस्तित्वगत अनुभूतिके द्वारा पहचानने और उपलब्ध करनेका प्रयत्न। अतः स्वतः इसको भी शब्दोंके माध्यमसे नहीं इसके अस्तित्वको पहचानकर इसे उपलब्ध करना चाहिए।

पर आधुनिकताके सामान्य अर्थमें इसकी एक परिभाषा दी जा सकती है जो कम या बेश सब प्रकारकी आधुनिकतापर (पुनर्जागरणयुगीन, या १९वीं शतीकी या आजकी) लागू हो सकती है। वह है : "**संक्रान्ति कालीन 'मिज़ाज' (मूड) या प्रश्नगर्भी संक्रान्तिके प्रति सचेतताको आधुनिकता कहते हैं।**' मैं यह नहीं कहता कि यह सर्वथा पूर्ण परिभाषा है। पर यह काफ़ी दूर तक काम-चलाऊ है। यह सचेतता क्रान्ति, सुधार (जैसे 'पुरानीआधुनिकता'के सन्दर्भमें) या साहित्यके माध्यमसे अभिव्यक्त होती है। उदाहरणके लिए गत महायुद्धके बाद संक्रान्तिकी (वैचारिक क्षेत्रमें) तीन मुख्य दिशाएँ हैं : (१) त्रास और भविष्य का आतंक, (२) पुराने मूल्योंके प्रति सम्पूर्णतः मोह-भंग, (३) आत्माभिज्ञान ('आइडेण्टिटी')के लिए छटपटाहट। जो मानव इनके प्रति सचेत और इनसे सम्पृक्त है वह आधुनिक है।

विश्व-इतिहासमें आधुनिकताके अनेक दौर आये हैं और दी गयी परिभाषा प्रत्येक दौरको दृष्टिगत रखकर उपस्थित की गयी है। पर हरएक दौरकी समूहगत और व्यक्तिगत स्थितियाँ भिन्न थीं और उससे उत्पन्न आधुनिकता बोध भी भिन्न रहा। हम भारतीय चिन्ताकी विकासधाराके माध्यमसे भी देख सकते हैं कि जिस प्रकार परम्पराप्रियता मनुष्यके मनकी स्थायी और सामान्य वृत्ति है वैसे ही आधुनिकता भी। कभी एक प्रबल पड़ती है तो कभी दूसरी।

भारतीय चिन्तामें उक्त परिभाषा-द्वारा समर्थित आधुनिकता हमें ईसा पूर्व छठीं शतीमें पहली बार मिलती है। इस समय वैदिक धर्म विकृत अवस्थामें था और एक ओर उपनिषदोंमें वैदिक संहिताओंके संशयात्मक स्थलोंको पुनःसंस्कार मिल रहा था तो दूसरी ओर आधुनिकता भौतिकवादके चेहरे से बोल रही थी। संक्रान्तिकालीन प्रश्नोंके प्रति सजगताका स्पष्ट उदाहरण हमें पुराण कश्यप, अजित केशकम्बली, पकुध कान्चायन, संजय वेलट्ठिपुत्र, मक्खलि गोशाल और चार्वाकके विद्रोही एवं संशयशील स्वरों में मिलता है। इन्हीं संशयशील स्वरोंसे सांख्य, बौद्ध और जैन-दर्शनोंको उगने और

बढ़नेकी ज़मीन मिली। यह सही है कि इनका निकाला हुआ हल मान्य नहीं हुआ, परन्तु इन्होंने अवरुद्ध स्थितिको समाप्त किया, एक स्थितिशील जड़ स्थितिको समाप्त करके प्रवाह और गतिके लिए गुंजायश पैदा की। इनकी प्रतिक्रियामें तीन तरहके हल सामने आये : अनेकान्तवाद (जैन), अनात्मवाद (बौद्ध) और आत्मवाद (वेदान्त, शैव और वैष्णव)।

पुराण कश्यपने स्पष्ट कहा है कि गुण और अवगुणका, पाप और पुण्यका भेद झूठा है। मक्खलि गोशालका सिद्धान्त है कि बिना हेतुके अकारण, जीवोंका जन्म, अधःपतन या त्राण होता है; प्राणियोंकी अवनति और दुःखका कोई कारण नहीं। जो कुछ घटित होता है वह आजकी भाषामें विसंगत, ऊल-जलूल 'अबसर्ड' है; वह किसी कारण (लॉजिक)-वश घटित नहीं होता है। यह स्थापना आजकी भाषामें यों कही जायेगी : "जो कुछ घटित होता है वह 'युक्ति युक्त-हीन' (इरॅशनल) है।" मक्खलि गोशालने आगे बढ़कर कहा है : "तुम्हारे दुष्कर्मों, सत्कर्मोंका नियतिपर कोई प्रभाव नहीं।" नियतिका विधान बिना किसी नियमके चल रहा है। "तुम्हारे कर्मोंसे वह निरपेक्ष है। अतः मानव-पुरुषार्थकी बात करना ही बेवक़ूफ़ी है।" मक्खलि गोशाल-द्वारा स्थापित यह स्थिति गत महायुद्धके बादकी विकसित विसंगतिपूर्ण मानवीय स्थितिके काफ़ी निकट है। संजय बेलट्ठिपुत्र सन्देहवादी है। पकुध काच्छायनका डायलेक्टिस अजीब है : "चूंकि आत्मा शाश्वत है, अतः उसको कोई मार नहीं सकता, अतः जीवहत्या-जैसे कोई पापका अस्तित्व ही नहीं। इसलिए किसीकी जान मारनेमें कोई दोष नहीं।" इनके अतिरिक्त 'सुखमेव पुरुषार्थम्' की घोषणा करनेवाला जीवनके आस्वादनमें विश्वासी, तात्कालिक अनुभूति (प्रत्यक्ष प्रमाण)को प्रमाण माननेवाला चार्वाकका दर्शन तो आधुनिक है ही। ये सारे स्वर ईसापूर्व छठीं शतीके आसपास निर्जीव-जड़ वैदिक कर्मकाण्ड पद्धतिकी उपस्थितिके कारण उत्पन्न वैचारिक संक्रान्ति तथा प्रश्नाकुलताको व्यक्त करते हैं। यह 'प्रश्नगर्भी संक्रान्तिके प्रति सचेतता' (यानी आधुनिकता) का प्रथम उदाहरण है। यह सचेतता न केवल इन जड़वादियोंमें बल्कि मूल्य-सापेक्ष दर्शनों—यथा बौद्धों, जैनों और वैष्णवोंमें भी—कुछ-न-कुछ आ गयी है। बौद्धोंका अनात्म, जैनों-द्वारा सत्यके अनेक पहलू स्वीकार करना (स्याद्वाद) तथा वैष्णवों-द्वारा कर्मकाण्ड और कामनाप्रधान यज्ञका विरोध इसी सजगताके सबूत हैं। परन्तु यह आंशिक सजगता है। पूर्ण सजगता उक्त संशयवादी जड़वादियोंमें ही है।

दूसरी वैचारिक संक्रान्ति उपस्थित होती है इस्लामके आगमनपर। ऐतिहासिक कारणोंसे आधुनिकता जन्मी अवश्य; पर अवरुद्ध-सी रह गयी। यह अवरुद्ध आधुनिकता सन्तों और गोरख-कबीर इत्यादिमें व्यक्त हुई। कबीर अपने ज़मानेके विद्रोही और 'क्रुद्ध तरुण' (ऐंग्री यंगमैन) थे। उनके

विचार प्रखर आधुनिकतासे सम्पृक्त हैं। सुननेमें आया है कि हिन्दीके कुछ विद्रोही-युवा कवि 'कबीर पीढ़ी' के नामसे आगे आ रहे हैं।

वैचारिक संक्रान्ति और आधुनिकताका तीसरा दौर आता है : यंग बंगाल, डिरोज़ियो और कुछ संयत रूपमें राजा राममोहनरायके माध्यमसे। इसका जीवन-दर्शन था १९वीं शतीका वैज्ञानिक मानववाद और उदारवाद। इसे ही प्रारम्भमें मैंने 'पुरानी आधुनिकता' कहा है। राममोहन रायसे राममनोहर लोहिया तक यह परम्परा चालू हालतमें है और भारतीय समूह-जीवनके सन्दर्भमें बासी नहीं हुई है।

आधुनिकताका चौथा दौर महायुद्ध-पूर्व सन् तीसके कवियों-लेखकोंके माध्यमसे मोह-भंगके दर्शनको लेकर आया। महायुद्धके बादकी मानवीय स्थितिने विश्व-स्तरपर तथा देशमें बढ़ती यान्त्रिकता एवं भ्रष्टाचारने राष्ट्रीय स्तरपर इसकी सजगता और बोधको प्रखर और प्रगाढ़ किया है। इसे ही हमने नयी आधुनिकता कहा है। यह सही है कि सन् '५०के बादकी, या सन् '६० के बादकी नयी कहानी और नयी कविताका स्वभाव सन् '३० या सन् '४०की नयी कविता-नयी कहानीसे कई अर्थोंमें अलग है। परन्तु प्रस्थान-बिन्दु सन् तीसके कवि ही हैं। मोह-भंगकी प्रक्रिया जो अज्ञेय और मुक्ति-बोधमें प्रारम्भ हुई, वही आज तक चल रही है। पर आयाम और रंग बदलते रहे हैं। यदि आधुनिकता एक जानदार और गतिशील स्वभाव या संस्कार-प्रवाह है तो ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

◆

गत छायावादी युगका रूमानी बोध जटायु था जो एक आदर्श लेकर जूझा। राष्ट्रीयता और क्रान्ति-चेतना रोमाण्टिक युगका एक विशेष आयाम थी। सन् तीसका आधुनिकता-बोध सम्पाती है जो प्रखर सत्यसे साक्षात्कार करनेकी प्रक्रियामें अपने मूल्योंके पंख गँवा बैठा और उसे पता चला कि वह अकेले हिन्द महासागर-तटपर अजनबी-सा जीनेके लिए प्रतिबद्ध या विवश है—तो, सन् '५०-'६० में यह पता चला कि वह सम्पाती न केवल 'अकेले' है बल्कि सुलगती डालपर बैठा है और इस भयावह अणुयुगीन आतंकपूर्ण स्थितिमें उसके पास पंख नहीं, कोई मुक्ति देनेवाला मूल्य नहीं, कि वह आकाशमें उड़कर अपनी रक्षा कर सके। 'मुद्राराक्षस'के शब्दोंमें :

"और कब तक, सुलगती डाल पर
बैठा रहूँ असहाय
मुझे पंख दो!"

◆ ◆

नलबारी कालेज
नलबारी (असम)

रंगोंमें लयकी तलाश

जितेन्द्रकुमार मित्तल

कृष्ण हेब्बारसे एक भेंट :

मेज़पर दो प्याले रखे हैं, जिनमें काली कॉफ़ी भरी हुई है । कमरेमें चारों तरफ़ दीवारोंपर हेब्बारकी नयी-पुरानी पेंटिंग्स टँगी हैं । लगता है मानो मानव-मनके विभिन्न भावों—दर्द, कुण्ठा, उल्लास और उछाहको कैनवासमें क़ैद कर दिया गया हो । तभी हेब्बार पूछते हैं, "आप तो कॉफ़ीमें दूध लेंगे न ?" मेरे गरदन हिलानेपर वे एक प्यालेमें दूध उँडेल

देते हैं····उसके बाद [illegible]। सिगरेट जलाकर वे अपने प्यालेमें चम्मचसे शक्कर मिलाने लगते हैं। कॉफ़ीका घूँट भरते हुए मैं बातचीत शुरू करनेका सूत्र तलाशने लगता हूँ, तभी हेब्बार बहुत सहजतासे बोल उठते हैं, "मेरे ख़यालसे कलाकारसे यह अपेक्षा नहीं रखी जानी चाहिए कि वह अपनी कृतियोंकी व्याख्या भी करे। यही बात मैं आपसे फ़ोनपर भी कहनेवाला था, लेकिन फिर मैंने सोचा कि कहीं आप मुझे ग़लत न समझ लें।" इतना कहकर वे हलके-से मुसकराने लगते हैं।

"आपकी यह बात तो ठीक है, लेकिन जनताको यह उत्सुकता तो रहती ही है कि वह इन महान् कलाकृतियोंके स्रष्टाके जीवन-दर्शन तथा विभिन्न विचारोंके बारेमें कुछ जाने। यही उत्सुकता लेकर मैं आपके पास आया हूँ।" और इसके साथ ही मैं एक प्रश्न हेब्बारकी तरफ़ उछाल देता हूँ—"आपके ख़यालसे आधुनिक कलाका समाजमें क्या महत्त्व है?"

हेब्बार : कलाकार एक स्रष्टा होता है। वह अपनी कलाकृतियों-द्वारा समाजमें उन उदात्त भावनाओंकी स्थापना करता है, जिनसे मनुष्य मनुष्य बनता है। मेरी यह मान्यता है कि प्रतिदिनके जीवनके व्यक्तिगत अनुभवोंको अगर कलाकार पूरी ईमानदारी और निष्ठाके साथ अभिव्यक्त करे तो इनके द्वारा जनताके सामने जीवनकी एक व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है। अगर एक भी कृति जनता-द्वारा समझ ली जाये तो वह समाजमें [illegible] पैदा कर सकती है।

"लेकिन क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आधुनिक कलाकृतियाँ आम जनताके लिए गणितकी कठिन समस्याओं-जितनी मुश्किल बन गयी हैं और उन्हें समझना आम आदमीके बसकी बात नहीं है?"

हेब्बार : कलाकार कभी भी किसी व्यक्ति या समाजके किसी वर्ग-विशेषको ख़यालमें रखकर अपनी कृतियोंका सृजन नहीं कर सकता। सच पूछिए तो चित्र बनाते समय मेरा मन हरेक बाहरी वस्तुसे ऊपर उठ जाता है और वह अन्तःकरणमें उठनेवाली भावनाओं तथा विचारोंके ज्वालामुखीमें खो जाता है। मेरी कृति इस ज्वालामुखीका ही सजीव और साकार रूप होती है। फिर, यह तो समाजकी ज़िम्मेदारी है कि वह समाजके हरेक नागरिकमें उचित शिक्षा-द्वारा पर्याप्त समझ पैदा करे। आज हमारी शैक्षणिक संस्थाएँ इस दृष्टिसे बिलकुल अनुपयोगी बन गयी हैं और वे सिर्फ़ ग़ुलाम ही पैदा कर रही हैं।

"आपको अपने चित्रोंके लिए प्रेरणा कहाँसे प्राप्त होती है?"

हेब्बार : कलाकारको अनेक प्रकारसे प्रेरणा प्राप्त होती है, कभी यह प्रत्यक्ष होती है और कभी अप्रत्यक्ष। ज़रूरत इस बातकी है कि कलाकारका मन तथा मस्तिष्क हमेशा जागरूक तथा संवेदनशील बना रहे। समाजकी कुण्ठा, संघर्ष, निराशा, उल्लास तथा द्वन्द्व कलाकारके संवेदनशील मनको उत्तेजित करनेके लिए पर्याप्त हैं। इसी तरह किसी खास क्षण प्रकृतिकी कोई मामूली-सी चीज़

माँ-बेटे

'मेरे लिए एक सुन्दर तथा नौजवान स्त्री और एक सुन्दर फूलमें कोई अन्तर नहीं है ।'

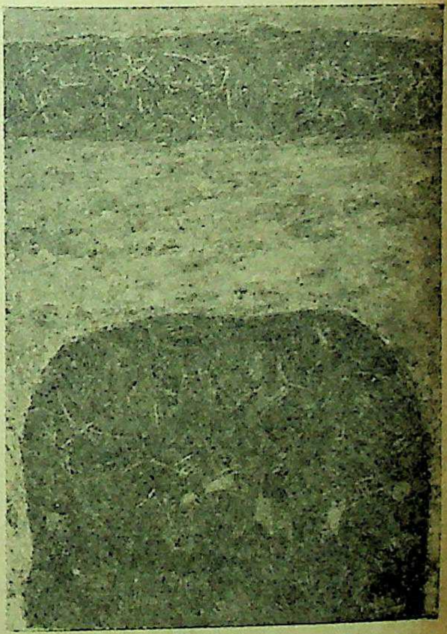

खेतमें

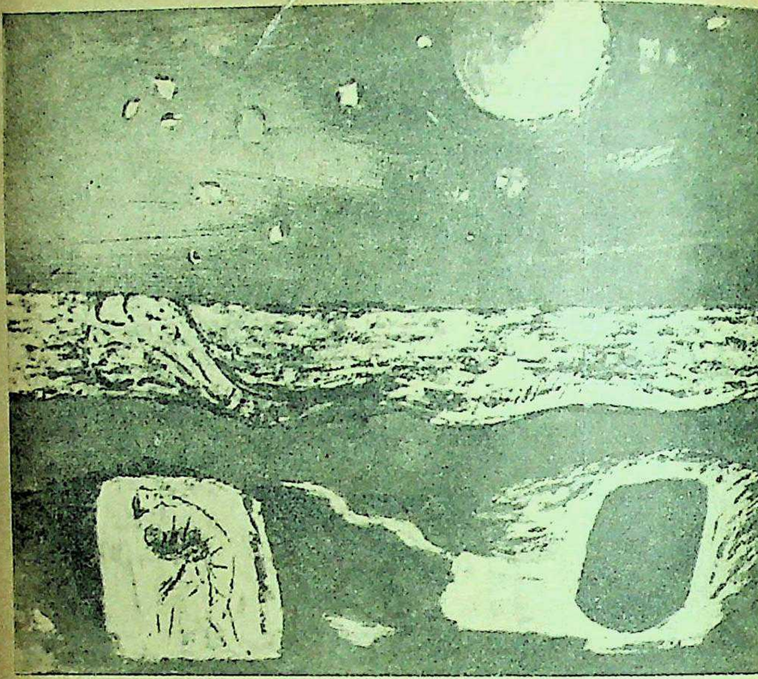

एक पुराकथा

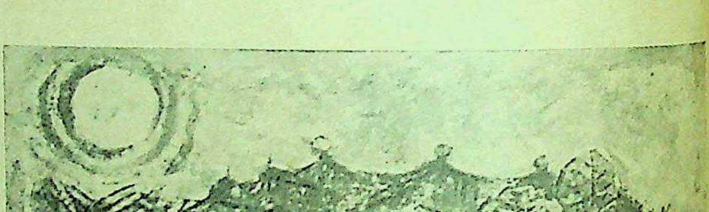

तमसो मा ज्योतिर्गमय

भी प्रेरणा
कलाकृति
सकती, उस
कताका मि
ज्यों-का-त्यो
कलाका ज
कारोंने इस
किया है।
नौजवान स
अन्तर नही
मनको प्रभ
स्वरूप ('फ़
हमें हरेक
तलाश र
प्रकट करने

"एक
पढ़ा था वि
परम्परामें
भविष्य न
अधिक स्प

हेब्रा
तोड़ने-मरो
इसीलिए
हूं। परम्प
नहीं है औ
शील वस्तु
विश्वासोंके
भी बदल
चाहता हूँ
विरासत
का अन्धा
रंगोंमें त

भी प्रेरणाकी स्रोत बन जाती है। एक सफल कलाकृति सिर्फ़ मस्तिष्ककी उपज नहीं हो सकती, उसके लिए बौद्धिकता तथा भावात्मकताका मिश्रण होना ज़रूरी है। प्रकृतिको ज्यों-का-त्यों चित्रित करनेके कारण ही दूषित कलाका जन्म हुआ है और बहुत-से कलाकारोंने इस प्रकार अपनी प्रतिभाका दुरुपयोग किया है। मेरे लिए एक सुन्दर तथा नौजवान स्त्री और एक सुन्दर फूलमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही समान रूपमें मेरे मनको प्रभावित करते हैं। मेरे लिए भौतिक स्वरूप ('फ़ीगर') कोई महत्त्व नहीं रखता। हमें हरेक चीजमें छिपी एक लयबद्धताकी ही तलाश रहती है, जिसे हम अपनी कृतिमें प्रकट करनेकी कोशिश करते हैं।

"एक बार कहीं मैंने आपका यह वक्तव्य पढ़ा था कि जब तक आधुनिक कलाकी जड़ें परम्परामें नहीं होंगी, तब तक इसका कोई भविष्य नहीं है—इस विषयमें क्या आप अधिक स्पष्टतासे कुछ कह सकेंगे ?"

हेब्बार : आज पत्रकारितामें वक्तव्योंको तोड़ने-मरोड़नेका रिवाज़-सा चल पड़ा है, इसीलिए मैं कुछ भी कहते हुए घबराता हूँ। परम्परासे मेरा मतलब अजन्ता-एलोरा नहीं है और फिर परम्परा कोई अपरिवर्तनशील वस्तु नहीं है। युगकी मान्यताओं और विश्वासोंके साथ ही परम्पराओंका स्वरूप भी बदलता रहता है। मैं सिर्फ़ यही कहना चाहता हूँ कि हमारी जो महान् सांस्कृतिक विरासत रही है, उसे छोड़कर हमें पश्चिमका अन्धानुकरण क्यों करना चाहिए ? हमारे पूर्वजोंने अजन्ता और एलोरा-जैसी महान् कृतियोंका सृजन किया है—क्या हम उनपर गर्व नहीं कर सकते और उनसे प्रेरणा प्राप्त करके अपने पूर्वजोंसे भी अधिक ऊँचाई प्राप्त नहीं कर सकते। यह कहनेका मेरा मतलब यह कदापि नहीं है कि हम अजन्ता और एलोराकी नक़ल करना शुरू कर दें, जैसा कि अनेक भारतीय कलाकारोंने किया है। मेरे विचारसे भारतीय कलाकारके लिए यह ज़रूरी है कि वह किसी स्कूल या सम्प्रदायके दायरोंसे अपने आपको मुक्त करके अपनी वैयक्तिकताका निर्माण करे।

"पश्चिमके किन-किन कलाकारोंने आपको प्रभावित किया है ?"

हेब्बार : पश्चिमी कलाकारोंमें पिकासो हमारे ज़मानेका महानतम कलाकार है। जीवनका हरेक रचनात्मक पहलू उसके द्वारा प्रभावित हुआ है। गॉगिन तथा वैन गॉगकी 'अप्रोच' ने भी मुझे प्रभावित किया है। इतना ही नहीं, पश्चिमी कलामें मुझे जो कुछ भी अच्छा लगा, उसे मैंने अपने भारतीय परिवेशके अनुरूप बनाकर आत्मसात करनेकी कोशिश की है। गान्धीजीके शब्दोंमें, हमें अपने मकानकी खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए ताकि चारों ओरकी हवा उसमें प्रवेश कर सके। मैं सोचता हूँ कि किसी भी अच्छी चीज़को अपनानेमें कोई हानि नहीं है। हाँ, परेशानी तब पैदा होती है जब हम नक़लपर उतर आते हैं। नक़लके मैं सख्त ख़िलाफ़ हूँ। पश्चिमी ज्ञान तथा तकनीक हमारे लिए सहायक हो सकती है और उसका अध्ययन

ज़रूर करना चाहिए, लेकिन पूर्वकी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त नहीं करना चाहिए।

"पश्चिमी कलाके मुक़ाबले आज भारतीय कला किस स्तरपर है ?"—यह मेरा आख़िरा सवाल है और हेब्बारके चेहरेपर आते-जाते रंगोंको देखकर मैं समझ जाता हूँ कि शायद उन्हें मेरा यह सवाल अच्छा नहीं लगा है। एक क्षण चुप रहनेके बाद वे फ़ुर्तीसे मेज़पर पड़ी एक विदेशी पत्रिका उठा लेते हैं और सवालका जवाब देनेके बजाय वह पत्रिका मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए मुझसे पूछते हैं, "इस पत्रिकामें छपी कलाकृतियोंको देखकर आप ही बताइए कि हमारी कलाकृतियाँ पश्चिमी कलाकृतियोंके मुक़ाबले किस मायनेमें कम हैं ?"

मैं धीरे-धीरे पत्रिकाके पन्ने पलटने लगता हूँ और विदेशी कलाकृतियोंमें अपनी निगाहें गड़ाने लगता हूँ, तभी हेब्बार बोल उठते हैं, "भारतीय कला किसीसे भी पीछे नहीं है। आज वह उसी स्तरपर है, जिसपर पश्चिमी कला। हमारे कलाकारोंकी कृतियाँ किसी विदेशी कलाकारकी कृतियोंसे किसी मायनेमें भी कम नहीं हैं।"

इसके बाद हेब्बार एक-एक करके अपनी कलाकृतियाँ मुझे दिखाने लगते हैं : अपनी माँके पाँवोंपर झूलता हुआ लड़का····हेब्बारने रंगोंमें उदारता बरतकर एक ग्रामीण महिलाको जिस सचाईसे चित्रित किया है, उसे देखकर दंग रह जाता हूँ। चन्द्रमाके जन्मके सम्बन्धमें पौराणिक गाथाके आधारपर चित्रित उनकी कृति विषयके पुरानेपनके बावजूद कुछ इस नये दृष्टिकोण और लय-बद्धताके साथ बनायी गयी है कि दिलपर स्थायी प्रभाव छोड़ती है। यों समुद्र-मन्थन-का पूरा दृश्य पृष्ठभूमिके रूपमें चित्रित किया गया है, लेकिन महत्त्वपूर्ण बात वह दर्द या पीड़ा है, जो प्रसवके समय कोई माँ महसूस करती है। गहरे रंगोंमें यह पीड़ा उतारनेमें हेब्बार पूरी तरह सफल रहे हैं। इसी तरह 'बरसातमें समुद्रमें जूझती हुई मछुआरिनें', 'अणुबमका विस्फोट' आदि चित्रोंको देखकर मुझे अनुभव होता है कि किस तरह एक कुशल कलाकार रंगोंमें भी जान डाल सकता है। हेब्बारके सभी चित्रोंकी यह विशेषता है कि उन्होंने रेखाओंपर ज़्यादा ज़ोर नहीं दिया है और रंगोंके इस्तेमालमें पर्याप्त उदारता बरती है। लेकिन इन रंगोंमें एक ऐसी लय है, जो जीवनके एकदम क़रीब लगती है।

कलाकृतियाँ देखते-देखते मैं हेब्बारसे पूछ बैठता हूँ, "एक-दो कला-समीक्षकोंने आपकी कुछ कलाकृतियोंकी यह कहकर आलोचना की है कि ये महान् विचारोंको ग़लत ढंगसे प्रस्तुत करनेकी निरर्थक कोशिशोंके परिणाम हैं। आपका क्या कहना है ?"

हेब्बार मेरा सवाल सुनकर हँसते हुए कहते हैं, "यों किसी भी व्यक्तिसे मेरी व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है, लेकिन जो लोग भारतीय दर्शनको बिलकुल भी नहीं समझते और जिनके समीक्षा-सिद्धान्त पश्चिमपर आधारित हैं उनसे यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि वे मेरी कलाकृतियोंको समझ सकेंगे।" ■

७।९८ आजाद नगर,
जयप्रकाश रोड, अँधेरी (पश्चिम), बम्बई-
(छायानुकृति : के० बलराम)

प्रतिप्रश्न

नये लोग : नयी दिशा

—राही मासूम रज़ा—

यह बहस, बहसके लिए नहीं है, उर्दूके नये काव्यपर परिचर्या है—इस प्रतिप्रश्न पर अगले प्रतिप्रश्नोंका स्वागत है।

— सं०

आजकल नये और पुरानेकी बहसकी जैसे बरसात आयी हुई है। जगह-जगह कीचड़ हो रही है। जगह-जगह पानी सड़ रहा है। जगह-जगह पुरानी और नयी दीवारें गिर रही हैं। ऐसेमें साधारण पाठक आखिर क्या करें? नये लोग, पुराने लोग····नयी कविता, पुरानी कविता····नया लेखन, पुराना लेखन····बहस अच्छी चीज़ है परन्तु केवल बहससे अन्धकार और भी बढ़ जाता है।

उर्दू-जगत्में इस समय बड़ी उथल-पुथल हो रही है। झूठ बोलकर तो आदमी जी सकता है परन्तु सच बोलनेमें जानका डर है। एक साहब हैं अमीक़ हनफ़ी। उनका हाल यह है कि जब देखो तब ज़बान काटनेपर तैयार दिखाई देते हैं। और अपनी जानसे सबको प्यार होता है। इलाहाबादसे निकलनेवाली एक मासिक पत्रिका "शबखून" में यही कहानी बड़े ज़ोरोंसे कही और सुनी जा रही है। लखनऊसे निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'किताब' भी इस जिहादमें आगे-आगे है। बम्बईकी पत्रिका 'शायर' में भी यह बहस चल पड़ी है।····बहस हो रही है। सवाल किये जा रहे हैं। जवाब दिये जा रहे हैं। परन्तु यह कोई नहीं बताता कि आखिर नयी कविता है क्या! यानी इस बहसकी कोई बुनियाद ही नहीं है।

मैं भी एक पाठक हूँ और अपने युगके साहित्यको समझना चाहता हूँ—क्योंकि साहित्यकी मदद पाये बिना मैं अपने युग ही को नहीं समझ सकता। इसीलिए मैं नयी कविताको बड़े शौक़से पढ़ता हूँ और उन लेखोंको पढ़नेका हौसला भी करता हूँ जो नयी कविताके बारेमें लिखे जाते हैं। परन्तु एक बात मेरी समझमें नहीं आती। आखिर लोग नये साहित्यकी बात क्यों नहीं करते? नयी क्या केवल कविता ही हो सकती है? कवितामें भी आखिर नयी ग़ज़ल,

नयी मसनवी, नये क़सीदे, नयी रुबाईकी बात भी क्यों नहीं की जाती ? क्या नया साहित्य केवल नयी नज़्मका नाम है ? नयी कहानी, नये उपन्यास और नयी आलोचनाकी बात आखिर क्यों नहीं की जाती ? हिन्दीमें तो नयी कहानीका भी आन्दोलन है, परन्तु उर्दू में अभीतक नयेके नामपर केवल नयी कविताकी बात की जा रही है। और जहाँतक नयी आलोचनाका प्रश्न है, हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओंके साहित्यमें सन्नाटा है। आलोचना अभीतक पुरानी ही चल रही है। और इसके मानी यह हैं कि अबतक 'नये साहित्य' को परखनेके लिए कोई नयी कसौटी नहीं बनायी जा सकी है। और जब तक यह नयी आलोचना जन्म नहीं लेती तबतक बरसनेवाला पानी यूँ ही रुकेगा और सड़ेगा और पाठकके लिए साँस लेना दूभर रहेगा।

हर नया साहित्य खुद अपने आलोचक पैदा करता है और आलोचनाकी पुरानी कसौटीको हटाकर अपनी कसौटी सामने लाता है। फिर नया आलोचक अपनी नयी कसौटीपर पिछले साहित्यको दोबारा परखता है और उसका मूल्य लगाता है। मैंने पिछले बीस वर्षमें कोई ऐसा लेख तक नहीं देखा जिसमें पिछले युगोंके साहित्यको आधुनिक बनाकर पढ़नेकी कोशिश की गयी हो। ऐसा नहीं है कि मीर, सौदा, ग़ालिब, मीर अनीस वग़ैरह आज पढ़े न जाते हों। ये तमाम कवि आज भी लोकप्रिय हैं और अगर ये आज भी लोकप्रिय हैं तो आधुनिक है। परन्तु आजकी चेतना कल चेतनासे बिलकुल ही अलग है। इसीलि यह ज़रूरी है कि आजकी आलोचनाकी कसौटीपर इन्हें परखा जाये और यह प लगाया जाये कि पिछले युगोंके ये कवि आ भी लोकप्रिय क्यों हैं। जब हम यह छा बीन शुरू करेंगे तभी आलोचनाके आधार बन सकेंगे और तभी हम कविता या नये साहित्य या नये लेखनको समझ सकेंगे।

नयी आलोचनाका सामने न आना इस बातका सबूत है कि नयी कविता चेतनाका नाम नहीं है। तो क्या साहित्य नयी चेतनाके बिना ही पैदा हो है ? यहाँ यह बात कही जा सकती है कि आलोचना साहित्यके पीछे-पीछे चलती है अगर हम लोग तीसरी-चौथी सदीमें हों तो मैं यह बात मान लेता। परन्तु हम लो बीसवीं सदीमें हैं। आलोचनाको साहित्यसे अलग करना कोई अक़्लमन्दीकी बात नहीं है। आलोचना भी साहित्य ही का एक रू है। चाहे पहले यह बात ठीक न रही हो परन्तु आज यही बात ठीक है। वैसे ईमान की बात तो यह है कि पहले भी यही बात ठीक थी। जब लोग ज़मीनको चिपटी मानते थे तब भी वह गोल ही थी। पहले किताबें छपती नहीं थी। कवि मेलों-ठेलोंमें अपनी कविताएँ सुनाते थे। जो कविताएँ लोगोंको अच्छी लगती थीं वह लोगोंको याद हो जाती थीं। यही आलोचना है। खराब कविताएं न याद हुई और न हमतक आयीं। पढ़ा

नहीं कितनी कविताएँ ऐसी होंगी जो एक युगमें याद की गयी होंगी परन्तु दूसरे युगकी कसौटीपर पूरी न उतरी होंगी और इसीलिए भुला दी गयी होंगी। आलोचक—लेखक और पाठकका एक मिला-जुला रूप है। हर लेखक खुद भी एक पाठक होता है। अगर वह पाठक न होता तो अपने लेखनमें कतर-ब्योंत न करता। इसलिए यह जाल न फेंकिए कि आलोचना साहित्यके पीछे-पीछे चलती है। ज़मीन गोल है। इसलिए आगे-पीछेका प्रश्न तो पैदा ही नहीं होता! अब चूँकि हमारे सामने कोई नयी आलोचना नहीं है इसलिए मैं इस नयी कविताको शककी निगाहसे देखता हूँ। मेरा ख़याल यह है कि उर्दूमें 'नयी कविता' के नामपर जो कुछ लिखा जा रहा है उसे नयी कविता कहना ठीक नहीं है। परन्तु उर्दूमें नयी कविता अवश्य लिखी जा रही है। उर्दू-साहित्य एक जीवित साहित्य है। इसलिए उसका साहित्य भी आधुनिक युगका प्रतिनिधित्व करता है।

प्रश्न यह है कि आखिर हम नयेको पुरानेसे किस आधारपर अलग करें? साहित्य ज़मीन नहीं कि उसे दीवारें उठाकर बाँट लिया जाये। साहित्य कोई देश नहीं कि बलवे करके एकका दो बना लिया जाये। साहित्य एक अटूट इकाई है। जिस तरह दो नदियाँ मिलकर तीन नहीं बनतीं बल्कि जोड़के नियम तोड़कर एक बन जाती हैं उसी तरह पुराने युगके साहित्यकी नदी भी नये युगके साहित्यकी नदीमें मिल जाती है। संगमके आगे एक ही नदी चलती है जिसमें दोनों नदियोंका पानी होता है। परन्तु हम बूँदको बूँदसे अलग नहीं कर सकते। जो नदी मिलती है वह अपना नाम खो देती है। जमुना गंगामें मिलती है तो प्रयागसे केवल गंगा आगे चलती है। इसलिए नये-पुरानेकी बहस इतनी आसान नहीं है जितनी दिखाई देती है। क्या नये साहित्यमें उन्हीं शब्दोंका प्रयोग नहीं किया जाता जिनका प्रयोग पुराने साहित्यमें किया गया था? हर शब्दमें सदियाँ जी रही हैं। वह गुज़र जानेवाली सदियाँ शब्दकी आत्मा हैं। जब कोई शब्द आधुनिक होता है तो उसके साथ उसकी सदियाँ भी आधुनिक हो जाती हैं। क्या आजका नया कवि यह नहीं लिखता कि हवा चल रही है, फूल मुसकरा रहे हैं, पेड़ सरगोशियाँ कर रहे हैं, आग किसी चीज़को चाट गयी? यह तमाम बातें झूठी हैं। इनका कोई आधार नहीं है। हवाके पैर नहीं होते, फूलको मुसकरानेसे क्या मतलब, पेड़ बोलना क्या जानें, तो फिर हम ऐसा क्यों कहते हैं! ये बातें उन दिनोंसे चली आ रही हैं जब हम प्रकृतिकी दूसरी तमाम चीज़ोंको अपनी ही तरह जीवित मानते थे, बल्कि अपने आपको उनमें-से किसी एकका रिश्तेदार समझते थे। यह उन दिनोंकी बात है जब मनुष्य अपने आपको प्रकृतिका एक अंग जानता था। तब हवाएँ चलती थीं। फूल मुसकराते थे। पेड़ सरगोशी करते थे····जानवर तो बहुत दिनों बाद तक हमारी घरेलू कहानियोंमें बोलते रहे। परन्तु आज साहित्यमें फूल क्यों मुसकराते हैं? और अगर साहित्यकार

ज़िद करता है तो पाठक उसका मज़ाक़ क्यों नहीं उड़ाता ? इसका कारण यह है कि गुज़र जानेवाला वक़्त भी साहित्यमें बिलकुल नहीं गुज़र जाता। इसीलिए साहित्यमें नये और पुरानेके बीच लकीर खींचना कठिन काम है। हम किसे नया कहें, और किसे नया न कहें ? साहित्य वस्त्र नहीं कि सौ बरस पुराने कपड़ेका सूट सिलवाया जाये तो उसे भी नया कहा जाये और आजके कपड़ेका अँगरखा सिलवाया जाये तो उसे भी नया ही कहा जाये। साहित्यमें नये-पुरानेका फ़ैसला फ़ॉर्म या नये सब्जेक्टके आधारपर नहीं होगा बल्कि चेतनाके आधारपर होगा। इसलिए प्रश्न नये लेखनका नहीं बल्कि नयी चेतनाका है। प्रश्न यह है कि लेखक किधर देख रहा है।

कुछ दिनों पहले रवीन्द्र भ्रमरकी एक कविता सुनी थी जिसमें उनके सिरपर दो सींग निकल आये थे और उन्हें अपने सिंहत्वके खो जानेका खयाल सता रहा था। और अभी-अभी उर्दूके एक प्रसिद्ध कवि खलीलुर्रहमान आज़मीकी एक कविता देखी। उनका कहना है कि :

नागाह जो देखा आईना
इक आदमी मुझको आया नज़र
मुझसे ही मगर मिलता-जुलता
दो सींग हैं उसके सर पर उगे
यह देव है कोई या देवता !!

मुझे इसमें दिलचस्पी नहीं कि किस-किसके सिरपर सींग उग आये हैं। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि यह पिछले युगोंकी-सी बात दिखाई देती है जब आदमी अपने आपको चौपायेको रिश्तेदार जाना करता था। यह सींग इसका चिह्न नहीं हो सकता कि मनुष्य जानवर होता जा रहा है क्योंकि यह सींग ख़ुद 'भ्रमर' और 'ख़लील'के सिरपर उग आये हैं। तो क्या यह है वह नयी चेतना जो नयी कविताका आधार है ? यहीं एक और बात भी कहता चलूं। क्रैफ़्ट कला नहीं है, परन्तु क्रैफ़्ट ही कलाका बुनियादी औज़ार होता है। मुझे ऐसा लग रहा है कि नये कवि भाषा और काव्य-क्रैफ़्टकी तरफ़से लापरवाही बरत रहे हैं। ख़लील कच्ची उम्रके भी नहीं हैं, इसीलिए उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि हर शब्दकी एक जगह होती है। ऊपर जो मिसाल दी गयी है उसे फिर देखिए :

मुझसे ही मगर मिलता-जुलता !

यह 'मगर' अपनी जगहसे हटा हुआ है। कवि कह यह रहा है कि

इक आदमी मुझको आया नज़र
मुझसे ही मिलता-जुलता
मगर दो सींग हैं उसके सर पे उगे।

परन्तु ख़लीलने 'मगर' को बीचमें रख दिया है !

यूँही नयी कविताके प्रसिद्ध कवि अमीक़ हनफ़ीको देखिए :

मैं सैलानी सिन्दबाद
अपनी और पराई धुन में
सागर-तट पर घूम रहा था।
मैंने देखा,
भूरी रेत,
उजला झाग

कुहरे के काले परदों में दबा छुपा-सा
इक सूरत पाता जाता है ।

यहाँ तक सब ख़ैरियत है । परन्तु फिर यह हुआ कि :

और इक बूढ़ा—
कुहरे से बाहर आता है ।

इस 'आता है' को माफ़ कर दीजिए, परन्तु 'कुहरे से बाहर आता है' के बाद यह कभी नहीं हो सकता कि :

कुहरे से बाहर आकर वह कुबड़ा बूढ़ा
मुझसे बोला ।

भाषा और भाषाके नियमोंसे डरना नहीं चाहिए परन्तु उनसे प्यार अवश्य करना चाहिए । प्रश्न यह है कि यह नियम तोड़नेसे अमीक़ हनफ़ी या उर्दू-साहित्य या उर्दूकी नयी कविताका क्या फ़ायदा हुआ ? नये साहित्यकारोंमें भाषा और उसके नियमों और काव्य-क्रैफ़्टकी तरफ़से लापरवाही आम होती जा रही है । यह वह माडर्न चित्रकार हैं जो 'अब्सट्रैक्शन' की तरफ़ इसलिए नहीं गये कि कला इसकी माँग कर रही थी बल्कि इसलिए गये कि उन्हें रेखा खींचना नहीं आता । इसलिए बनावटी नयी कविता और जेनुइन नयी कविताको अलग करना भी ज़रूरी है । उर्दूमें नयी कविताके काफ़िलेमें भीड़ उन लोगोंकी है जो रेखा खींचना नहीं जानते । इन तमाम लोगोंको हम उनके सिरोंपर उग आनेवाले सींगोंसे पहचान सकते हैं । ये तमाम लोग व्यक्तित्वके खूँटेसे बँधे हुए हैं । मैं समाजमें व्यक्तिके महत्त्वसे इनकार नहीं करता । परन्तु व्यक्ति समाजका एक अंग भी होता है । और इसीलिए नयी कविताके नामपर आज जो निगेटिव शायरी हो रही है मैं उसका स्वागत नहीं करता । नयी कविताके काव्य-संग्रहोंकी भूमिकाओंमें जो बातें लिखी जा रही हैं वे उन संग्रहोंमें नहीं मिलतीं । ये लोग आधुनिक कालको अवश्य रिजेक्ट करते हैं परन्तु समाजसे कटे हुए इस व्यक्तिके पास कोई सपना नहीं है । यह ठीक है कि सपना देखना समाजके बसकी बात नहीं, सपना तो केवल व्यक्ति देख सकता है । परन्तु व्यक्ति समाजमें रहकर ही कोई सपना देख सकता है । एक आदमी दुनियाको बदल नहीं सकता । समाजको ख़ुद समाज ही बदल सकता है । इसलिए व्यक्तिके दुःख-दर्दको महसूस कर लेनेसे काम नहीं चल सकता । अगर यह समाज जसका तस रहा तो अमीक़ हनफ़ीका 'सिन्दबाद' यूँही कुचला जाता रहेगा । इसीलिए मैं कहता हूँ कि 'नयी कविता' की दिशा ठीक नहीं है । हाँ, मोहम्मद अलवी, बलिराज कोमल, निदा फ़ाज़ली और एक हद तक कई और नये कवियोंसे उमीदें बँध चली हैं । परन्तु मुझे जिस नये कविने सबसे ज़्यादा चौंकाया है वह है असग़र विजाहत । हिन्दुस्तानी-उर्दूमें नयी कविताका यह पहला कवि है । असग़र विजाहतकी कविता इसलिए नयी है कि उसकी चेतना नयी है । मैं अभी आपको केवल नाम बताकर आगे बढ़ता हूँ । परन्तु मैं वादा करता हूँ कि असग़र विजाहतसे आपका परिचय अवश्य करवाऊँगा । अभी तो नये लेखनकी बुनियादोंकी बात हो रही है ।

नये लेखनकी समस्या उस वक़्त तक पूरी तरह समझमें नहीं आ सकती जब तक कि यह बात साफ न हो जाये कि पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीसको क्या हुआ था। नये लेखनका स्रोत यही तारीख़ है। इस तारीख़को समझनेके लिए उर्दू और हिन्दी और हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। पाकिस्तानमें 'ख़ुदाकी बस्ती', 'तलाशे बहाराँ', 'उदास नस्लें' और 'आगका दरिया'-जैसे उपन्यास लिखे गये। हिन्दुस्तानमें 'झूठा सच' 'लौटते मुसाफ़िर', 'काला जल'-जैसी कहानियाँ सुनायी गयीं। ख़ुद मेरा उपन्यास 'आधा गाँव' भी इसी सिलसिलेकी एक कड़ी है। मैं यहाँ जान-बूझकर कविताओं और शार्ट स्टोरीज़की बात नहीं कर रहा हूँ। इतनी बड़ी बातको समझनेके लिए उपन्याससे ज़्यादा मदद मिल सकती है। ज़रूरत है कि यह तमाम उपन्यास एक साथ पढ़े जायें क्योंकि पन्द्रह अगस्तकी पूरी हक़ीक़त इन्हें एक साथ पढ़ने ही से हमारे हाथ आ सकती है। और जब हम इस तारीख़को समझ लेंगे तब हमारी समझमें वह व्यक्ति आयेगा जो इस तारीख़के बाद जवान हुआ है। और तभी हम उस समाजको समझ सकेंगे जो इस तारीख़से टकराकर टूटने लगा, और तभी हमें उस समाजका ज्ञान होगा जो इस तारीख़की छायामें बन रहा है। मेरा ख़याल है कि उर्दू और हिन्दी ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तानकी किसी भाषाके साहित्यमें अब तक यह काम नहीं हुआ है। इसीलिए अब तक यह बात समझमें नहीं आ रही है कि नया कवि आशावादी क्यों नहीं है।

कवि केवल कवि तो है नहीं। वह हिन्दू या मुसलमान भी है। वह पनाहगुज़ीं या शरणार्थी भी है। वह ज़ात-पातकी ज़ंजीरोंमें भी जकड़ा हुआ है। वह बेरोज़गार भी है। और उसकी ये तमाम हैसियतें उसकी रचनाओंपर अपना साया डालती हैं। हर व्यक्तिमें कई व्यक्ति जी रहे हैं। इन्हें छाँटना, और इन्हें अलग-अलग समझना आलोचकका फ़र्ज़ है। और जबतक पाठक और लेखक दोनों ही यह उलझी हुई डोर नहीं सुलझा लेते तब तक नये लेखनकी परख मुश्किल है। परन्तु यह बात अब भी अपनी जगह ठीक है कि नया कवि अपना फ़र्ज़ अदा नहीं कर रहा है। अपने युगमें कबीर एक नये कवि थे। उन्होंने तो नाउमीदीका अन्धकार नहीं फैलाया। अपने युगमें मीर नये कवि थे। उन्होंने तो हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने तो यह कहा :

एक उठता है तो सौ मरने को आ बैठे हैं।
मुद्दतों से है ये दस्तूर हमारे हाँ का॥

यह दस्तूर आज क्यों नहीं है ? कोई नया कवि भूपालके मुहम्मद अली ताजकी तरह यह क्यों नहीं कहता कि :

ग़मे-ज़मान जिसे आप मौत कहते हैं।
हमें ये मौत न मिलती तो मर गये होते॥

कोई नया कवि मजरूह सुलतानपुरीकी तरह यह क्यों नहीं कहता कि :

फ़राज़े-दार पे रखते चलो सरों के चिराग़ ।
जहाँ तलक ये सितम की सियाह रात चले ।।

कोई ग़ालिबकी तरह यह क्यों नहीं कहता कि :

लिखते रहे जुनूँ कि हिकायाते-खूँ चकाँ ।
हर चन्द इसमें हाथ हमारे क़लम हुए ।।

नया कवि हाथ कट जानेके दर्दमें गिरफ़्तार है। नये कवि तो अपने व्यक्तित्वकी परछाइयोंके पीछे भाग रहे हैं। वे केवल यह देख रहे हैं कि यह समाज व्यक्तित्वको पनपनेका अवसर नहीं देता। परन्तु वह यह नहीं सोच पाते कि इसका इलाज यह है कि इस समाजको बदलनेका प्रयत्न किया जाये। मुझे नये लेखनसे यही शिकायत है। नयी कविता समाज और व्यक्तिका नाता तोड़ रही है। ख़ुदा करे कि वह सफल न हो। अब शायद नया कवि खुद भी इस बातको महसूस करने लगा है। भोपालकी मासिक पत्रिका 'मिज़ाज'के फ़रवरी अंकमें मुहम्मद अलवीकी एक कविता देखकर आस बँध चली। कविताका शीर्षक है—'इधर न आओ'।

इधर से सूरज गुज़र चुका है
इधर न आओ !
उफ़क़ का दरवाज़ा खटखटाओ
उधर कहीं रोशनी मिले तो
उसे पुकारो
उसे बुलाओ !
अँधेरा पीछे लगा हुआ है
ये भूल जाओ
इधर से सूरज गुज़र चुका है
इधर न आओ !!

यह कविता एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है। यह एक नयी खिड़की खुली है। कवि पाठकोंसे कुछ कह रहा है। और जो कुछ कह रहा है वह भी महत्त्वपूर्ण है। रातका मातम करनेसे कोई फ़ायदा नहीं। सूरजका दरवाज़ा खटखटाना चाहिए। पता नहीं बन्द फाटकके उधर प्रकाश है या नहीं। परन्तु कोशिश करनेमें क्या नुक़सान है।

■ ■

वली मंज़िल
बदरबाड़ा, अलीगढ़

खेद है…

अब भी लगातार हमें 'युद्ध विशेषांक' (नवम्बर १९६६) और 'कथा-मंच : विशेष परिशिष्ट' (फ़रवरी १९६६) के लिए पाठकोंके पत्र मिल रहे हैं। हमें खेद है कि ये दोनों ही विशेषांक अनुपलब्ध हैं। कृपया, पाठकगण इन दोनोंके लिए आर्डर न भेजें।

—व्यवस्थापक

७

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी
खबर लाया हूँ । अब
हमें फेरीवालों से आलू बड़े
खरीदने की कोई आवश्यकता
नहीं । माँ उन्हें घर पर
ही बना लेती है और वह भी
अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे
वह तरीका बताता हूँ
जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

इन गोलियों को बेसन, नमक' लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

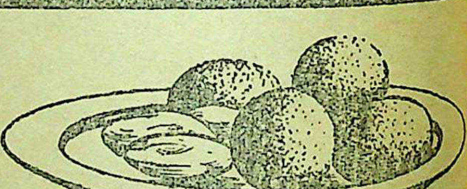

निश्चय रहे कि आप ने
हनुमान वनस्पति प्रयोग किया !

निर्माता :—
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

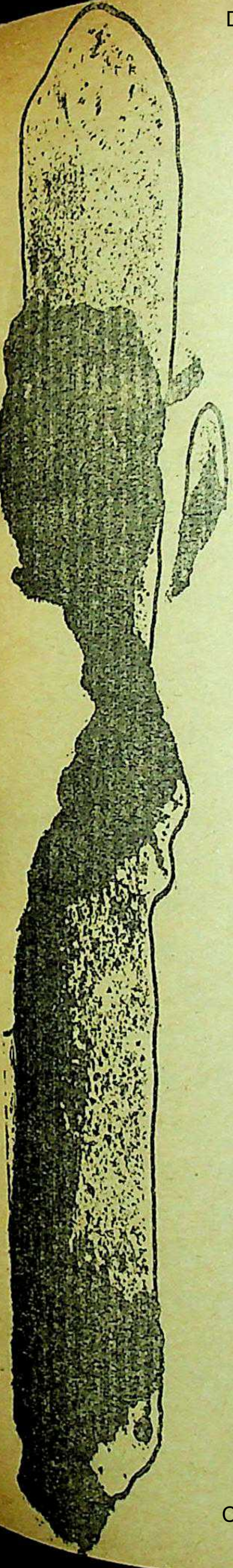

संस्मरण

पुराना पेड़ : नया वसन्त

ठाकुरप्रसाद सिंह

श्री माखनलाल चतुर्वेदीके सम्बन्धमें सहज श्रद्धावश लिखनेका निश्चय काफ़ी पहले किया था लेकिन जब लिखनेकी बारी आयी और मैंने उनके विषयमें कुछ सोचना-विचारना शुरू किया तो लगा कि सच पूछिए तो सीधी आँखोंसे मैंने कभी उन्हें देखा भी नहीं है। जिसे कभी देखा नहीं, कभी जिसके नज़दीक बैठा नहीं, जिसके साथ या जिसके युगके साथ कभी जिया नहीं, उसके विषयमें कुछ लिखूँ तो दुस्साहस ही होगा, वैसा ही दुस्साहस जैसा बहुत-से लोग बिना पुस्तक पढ़े आलोचना लिख देनेके सिलसिलेमें कर दिया करते हैं। पहले उत्साहमें मैंने श्रीकान्तजीको लिख दिया था कि पूज्य दादापर कुछ लिखना चाहता हूँ लेकिन जब सचमुच वे मुझसे लेख लेनेके लिए कटिबद्ध हो गये तो मेरे होश उड़ गये। मैं पीछे हटता गया, इस आशासे कि वे एक दिन निराश होकर मुझसे लेख माँगना छोड़ देंगे और जैसे हिन्दी-साहित्यके अधिकांश सम्पादक मेरी चुप्पीसे निराश होकर निश्चिन्त हो गये हैं, वैसे ही जोशीजी भी हो जायेंगे। लेकिन जाने क्या बात है, पहले तो वे खुद तक़ाज़े करते थे अब पण्डित कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'से भी पत्र भिजवाने लगे। प्रभाकरजी निवेदन तो करते नहीं, सीधे आदेश देते हैं और अब आदेश एकसे दो, दो से चार होते जा रहे हैं, इसलिए घबराहटमें माखनलालजीके विषयमें सोचनेके लिए बाध्य होना पड़ रहा है।

मेरी हालत, सच पूछिए तो, उस छोटे बच्चेकी-सी हो गयी है जिसे लड़कपनसे ही झूठ बोलनेकी आदत पड़ गयी हो और वह लम्बी-चौड़ी कहानियाँ सुनाकर साथियोंपर अपनी छाप छोड़नेकी खतरनाक आदतमें पड़ गया हो। एक दिन कभी ऐसा भी आता है जब एक झूठको सच सिद्ध करनेके लिए उसे बार-बार झूठ बोलना पड़ता है और तब भी आस-पास वाले यह ताड़ लेते हैं

कि जो-कुछ यह कह रहा है, झूठ ही कह रहा है। मेरा ख़याल है कि श्रीकान्तजी और प्रभाकरजी दोनों ही इस षड़यन्त्रमें एक हो गये हैं और मेरी इस डींग मारनेकी आदतका निबटारा ही कर देनेपर आमादा हैं। मैं बिलकुल घिर गया हूँ क्योंकि मैंने कभी डींग मारी थी कि मैं माखनलालजीपर जितना जानता हूँ कोई नहीं जानता, इसलिए मुझसे वे कहलवा लेना चाहते हैं कि मैं लोगोंसे साफ़-साफ़ यह कह दूँ कि माखनलालजीको जानना तो दूरकी बात है, मैंने उन्हें खुली आँखोंसे कभी देखा भी नहीं। मेरे सामने सिवा इस झूठको स्वीकार कर लेनेके और कोई चारा नहीं है। वे चाहते हैं कि खुली अदालतमें मैं यह स्वीकार करूँ कि मैंने माखनलालजीको आज तक अपनी आँखोंसे कभी देखा ही नहीं।

लेकिन अपनी आँखोंसे न देखनेका मतलब यह नहीं है कि मैंने उन्हें एकदम नहीं देखा है। मैंने उन्हें देखा है अवश्य लेकिन अपनी बग़लमें बैठे हुए एक अपरिचित श्रोतासे आँखें लेकर उसकी आँखोंसे देखा है और जी भरकर देखा है। कैसे, यह अब बताना ही होगा क्योंकि बिना बताये निकल भागनेका कोई रास्ता सूझ नहीं रहा है। बात इस प्रकार है। १९३७-३८में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके बनारस अधिवेशनके समय मैं किसी प्रकार चोरीसे पण्डालमें पहुँच सकनेमें समर्थ हो गया। एकदम स्कूलका विद्यार्थी था और नागरी-प्रचारिणी-सभाके घेरेको तोड़कर भीतर जानेकी और साहित्यकारोंको देखनेकी आकांक्षा जब हुई तो सिवा इसके कि चहारदीवारी लाँघ जाऊँ और फाटकके भीतर जो भीड़ थी उससे रास्ता निकाल लूँ, और कोई अच्छा तरीक़ा मेरी समझमें उस समय नहीं आ सकता था। आज इस उम्रमें यह देखकर हैरानी थोड़ी बढ़ जाती है कि जो तरीक़ा मैंने बचपनमें साहित्यमें घुसनेका अपनाया था वही तरीक़ा अब बहुतसे ऐसे लोग अख़्तियार कर रहे हैं जिनकी काफ़ी उम्र हो गयी है और यह तय है कि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। बहरहाल मैं कुल जमा सातवीं कक्षाका विद्यार्थी था और मुझे हक़ हासिल था कि मैं नागरी-प्रचारणी-सभाके पीछेकी चहारदीवारी लाँघ जाऊँ और मंचपर बैठे साहित्यकारोंको देखूँ और मैंने यह किया भी। भीतर जाकर देखनेपर लगा कि सारी मेहनत बेकार हो गयी है। मैं जहाँ खड़ा हूँ वहाँसे मंच काफ़ी दूर पड़ता है और वहाँ विराजमान साहित्यकारोंका समूह तैल-चित्रकी तरह लिपा-पुता दिखलाई पड़ता है। आवाज़ तो सुनाई पड़ती है लेकिन यह नहीं पता लगता कि उतने सब लोगोंमें-से बोल कौन रहा है। असफलताकी खीझ मेरे चेहरेपर उभर आती है लेकिन तभी मेरी बग़लमें बैठे एक सज्जनने मेरी परेशानी देखकर एक विचित्र-सी मशीन मेरे हाथमें दे दी और मुसकराकर कहा, "दिक़्क़त होती हो तो इससे देखिए!" वह शायद दूरबीन थी और ज्योंही मैंने उसे आँखोंके आगे रखा, सारा दृश्य ही बदल गया।

ऐसा लगा जैसे सारेका सारा मंच ही मेरे पास आ गया है और जो साहित्यकार भाषण दे रहे हैं वे ठीक मेरे सामने बैठे हुए श्रोताओं-के ऊपर खड़े ओजस्वी वाणीमें धाराप्रवाह कुछ बोल रहे हैं। दूरबीन ऐसी थी कि उसमें सामनेका सारेका सारा दृश्य कई रंगोंमें दिखलाई पड़ता था—इसलिए खद्दरकी सादी वेशभूषामें खड़ा वह व्यक्ति ऐसे लगा कि कई रंगोंके वृत्त उसे घेरे हुए हैं। वे वृत्त दूरबीनके फ़ोकसके घटने-बढ़नेके साथ घटते-बढ़ते जाते थे। सामान्य क़दके वे मेरे सम्मुख आकारमें भी काफ़ी बड़े लगते थे जैसे वे स्वयं न हों, उनका विराट् रूप हो।

मेरी बग़लमें बैठे सज्जन मेरे कानमें फुसफुसाये, "माखनलालजी हैं, 'कर्मवीर'के सम्पादक।" मैं जैसे धक-से रह गया। ज़रा तेज़ी और भाव-विभोर स्वरमें मैं कह पड़ा, "'कोकिल बोलो तो' के कवि ?" वे मुसकराये जैसे मेरी जानकारीसे खुश हुए हों।

तब तक श्रीमाखनलालजीके वक्तव्यका सन्दर्भ भी मेरी पकड़में आ चुका था। मैंने उत्साहसे उनसे कहा कि माखनलालजी इस समय 'साहित्य-देवता'के सम्बन्धमें अपना वक्तव्य दे रहे हैं।

तभी आवेशसे भरी ध्वनि और तेज़ हो गयी और ऐसा लगा जैसे माखनलालजी अपना वक्तव्य समाप्त करने जा रहे हैं: "साहित्यकारकी लेखनी शान्तिके समय वंशीका कार्य करती है, क्रान्तिके समय उसे युद्धके नगाड़ेको गुंजित करने का कार्य भी करना होगा।" चारों तरफ़ पूरे पण्डालमें सन्नाटा छा गया था और सभी श्रोताओंके ऊपरसे तरल अग्निकी तरह चतुर्वेदीजी के विचार कई मिनटों तक प्रवाहित होते रहे। मुझे ऐसा लगा कि अब आँखोंके आगे दूरबीन लगाने की कोई आवश्यकता नहीं रही। अब चाहे आँखें खुली रखी जायें या मुँदी, माखनलालजी का चित्र एक क्षण भी आँखोंसे ओझल होनेवाला नहीं है।

मैंने उसके बाद माखनलालजी को कभी नहीं देखा इसलिए मेरे मानस-पटलपर उनका जो स्वरूप तब अंकित हो गया था वह आज भी जैसाका तैसा बना हुआ है। इधर वर्षोंसे सुन रहा हूँ, वे अस्वस्थ होते जा रहे हैं, चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये हैं और पिछले वर्ष जब उन्हें सम्मानित करनेके लिए प्रदेशके मुख्य मन्त्री तथा अन्य साहित्यकार खण्डवा पहुँचे, वे दूसरों-द्वारा उठाकर मंचपर लाये गये। काल अपना कार्य कर रहा है पर मेरे मनपर बचपनमें अंकित हो गये उस सतरंगे विराट-पुरुषपर कालकी लहरोंका कोई असर आज भी नहीं पड़ा है। भविष्यमें भी नहीं पड़ेगा, यह बात मैं विश्वासके साथ कह सकता हूँ। यह बात इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैंने उन्हें अत्यन्त क्षीण-अस्वस्थ रूपमें नहीं देखा है या उन्हें इस रूपमें इसलिए नहीं देखना चाहता कि मेरा पुराना चित्र न बिगड़ जाये बल्कि इसलिए कह रहा हूँ कि माखनलालजीका जो स्वरूप उनकी लेखनीसे पिछले वर्षों उभरा है वह बचपनके उस विराट सतरंगी आकृतिसे कहीं अधिक विराट, कहीं अधिक रंगीला है। अपने छोटे-से साहित्यिक

जीवनमें बहुत-से वयोवृद्ध साहित्यकारोंके साथ रहा हूँ, अत्यन्त नज़दीकसे देखा है बहुतोंको और अधिकांशके प्रति सहज करुणा मनमें उभर आयी है—इसलिए कि वे चुक गये हैं। वे पूज्य हैं वे आराध्य हैं, पर प्रेरणाका स्रोत उनका सूख गया है। एक-एक कर मेरे रास्तेके ये छायाभ वृक्ष टूटते-सूखते-गिरते गये हैं लेकिन इस सारी भीड़-भाड़में एक आवाज़ ऐसी भी रही है जो जब धीमी होती है तब तो किसी वृद्धकी लगती है लेकिन ज्योंही तेज़ होती है तो ऐसा लगता है जैसे कोई बच्चा चीख़ रहा है; ऐसा बच्चा जिसने अभी-अभी जन्म लिया है और जिसे दुनिया इतनी ताज़ी, इतनी रंगीन, इतनी नयी लग रही है कि वह चीख़नेके लिए बाध्य हो गया है। जैसे चीख़का कोई तुक नहीं होता, चीख़का कोई अर्थ नहीं होता वैसे ही वृद्ध पुरुषकी अत्यन्त आवेशमें लिखी गयी पंक्तियाँ अकसर आगे-पीछेकी पंक्तियोंकी-सी बे-मेल लगती हैं, उनका कोई सीधा अर्थ नहीं होता। जब उनका कोई अर्थ ही नहीं होता तो वे अर्थ-ध्वनियोंसे आगे बढ़कर संकेत-ध्वनियोंमें प्रवेश कर जाते हैं, ऐसी संकेत-ध्वनियाँ जो केवल देवता दे सकते हैं या केवल बच्चे। मैं जिस बूढ़ी आवाज़की चर्चा कर रहा हूँ वह एक-साथ बूढ़े और बच्चे दोनोंकी मिली-जुली आवाज़ है। उसे ध्यानसे सुनना पड़ता है क्योंकि पता नहीं कब वह बूढ़ेकी आवाज़ बच्चेकी आवाज़में बदल जाये और इसके पहले कि आप सुखसे झूम उठें और रह जाये बादमें बचा एक पछतावा—उसे न सुन सकनेका, उसे अपनी बग़लसे अनजानेमें निकल जाने अन्तरिक्षमें खो जानेका।

वह जिसकी आवाज़ थी—उसका है माखनलाल चतुर्वेदी। उनकी लगभग कविता इन्हीं गुणोंसे जगमग है और जब उनकी कोई भी नवीन रचना पढ़ता सुनता हूँ तो प्रयत्न करके अपने भीतर उसी आदिम संस्कारको जाग्रत रखता हूँ संकेतोंको—केवल संकेतोंको—पकड़ता हूँ दुनियाकी सार्थक शब्दावली जिसके व्यर्थ होती है। मैं सोचता हूँ कि जब माखनलालजीकी कविताओंमें कहीं-कहीं गयी इन संकेतोंको पकड़ने और उनके अर्थोंको समझकर झंकृत होनेकी शक्ति भीतर बची हुई है तब तक मैं सारे बीच भी जीवित यन्त्र बना रह सकूँ अपनी हैसियत बनाये हुए हूँ। माखनलाल पिछले वर्षोंमें तेज़ीसे कमज़ोर होते लेकिन उतनी ही तेज़ीसे वे नये भी होते हैं जैसे गाँवके किनारे कोई पुराना पेड़ वसन्तमें कहीं-न-कहींसे कुछ नये पत्ते, नयी कोंपलें ऋतुराजके अभिवादनके अपनी बूढ़ी जर्जर काँपती हथेलियोंपर और कहे, 'इस बारके वसन्तको मेरी यह स्वीकार हो!'

७४ हों या ७६, एक भी वसन्त लालजी की अभ्यर्थनाके बिना नहीं गया है कभी सिर भेंट करनेकी ललकार आयी थी वे आगे बढ़नेवाली भीड़में सबसे दिखलाई पड़े लेकिन स्वतन्त्रताके बाद पर ताज लेनेके लिए उतावली भीड़में

गया तो वे कहीं दीखे नहीं। पूरी ज़िन्दगी-भर होठोंपर रखकर बजायी जाने वाली बाँसुरीसे निर्मम काल-देवताने नगाड़े पीटनेका काम लिया और यह तय था कि इससे बाँसुरी खण्ड-खण्ड हो जाती। बाँसुरी खण्ड-खण्ड हो भी गयी लेकिन उसने कभी किसीके होंठका स्पर्श नहीं किया, कभी यह शिकायत नहीं की कि उसे प्रेम-गीतोंका माध्यम नहीं बनाया गया। यह सब-कुछ हुआ, वर्षों तक प्रवृत्ति और प्रकृतिके विरुद्ध तूफ़ानके बीच एक क्रान्तिकारी और सत्याग्रहीकी ज़िन्दगी बिताने के बाद भी बाँसुरीके भीतरकी बाँसुरी मरी नहीं। जब भी ज़रा-सा अवसर मिला, मनसे या बे-मनसे उसे किसीने एक क्षणके लिए भी होठोंपर धरा तो वह वैसे ही पिहक उठी। मैंने अपनी आँखोंके सामने कितने-ही लोगोंको अपनी जाति, अपनी प्रकृति, अपना धर्म बदलते देखा है, कभी लाचारीसे, कभी समझौतेके चक्करमें, कभी इसके या उसके मोहमें। लेकिन इस भीड़में ऐसा भी आदमी है जिसे कबीरके शब्दोंमें 'सतगुरुने ऐसे जतन करके ओढ़ा है' कि इतनी लम्बी उम्र तक प्रतीक्षाके बाद भी जब वह अपने प्रियके पास आ गया तो उसे यह शिकायत नहीं होगी कि माखनलालजीने अपने व्यक्तित्वकी चादर ओढ़कर मैली कर दी है। साफ़ धुली खादीकी एक चादर जैसे साफ़ धुला अमलिन व्यक्तित्व।

यदि संघर्ष न होता तो माखनलालजी एक अद्भुत प्रेम-गीतकार होते। यदि जातियों-धर्मोंका द्वेष विषकी तरह बनारसकी गलियोंमें व्याप्त न होता तो कबीर केवल एक गृहस्थ होते, चादर बुननेवाले गृहस्थ और अन्ततः वे अपने भीतरकी यात्रापर इतनी दूर निकल जाते कि जहाँसे उन्हें लौटा सकना असम्भव होता। दुःख इसी बातका है कि दो अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले कवि बाहरकी मारसे उत्तेजित होकर युद्ध-क्षेत्रमें आनेके लिए बाध्य हो गये और जब उन्होंने अन्यायके प्रतिरोधके लिए तलवार उठा ली तो वे उसे तब तक चलाने के लिए प्रतिबद्ध हो गये जब तक अन्याय समाप्त न हो जाये। दोनों ही तलवारें अपने म्यानमें नहीं लौटीं।

माखनलालजी और लम्बी उम्र पायें लेकिन मैं इतना स्वार्थी हूँ कि चाहे वे जितनी लम्बी उम्रके हों, वे हर वसन्तमें अपना अर्घ्य दक्षिणकी मलयानिलको दें—इसलिए कि उत्तर में गंगा-यमुनाकी वादियोंमें बसनेवाले हिन्दी-प्रदेशके नगरोंकी गलियाँ मलयानिलके झोंकेसे नया सन्देश, नया जीवन बराबर पाती रहें।

चारों ओर आँख उठाकर देखता हूँ और व्याप्त सन्नाटेसे जी उचाट हो जाता है। तभी याद आती है चन्दन-वनसे मेरे घरके रास्ते-पर खड़े उस बूढ़े ठूँठ हो गये पेड़की जिसकी सबसे ऊपरकी सूखी डालपर इस बार भी कोंपलें फूटी हैं। जब कोंपलें फूट गयी हैं तो वसन्त भी दूर नहीं होगा।

■ ■

प्रकाश भवन
मुरलीनगर, लखनऊ

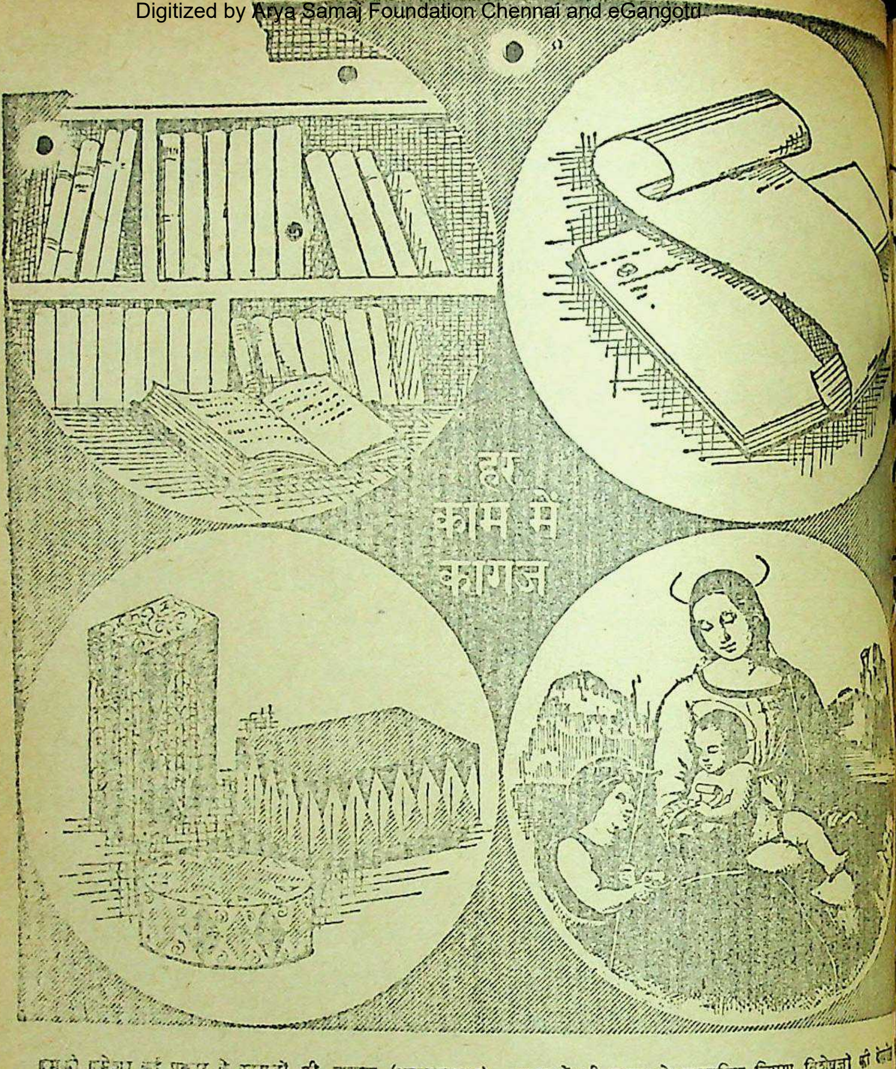

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये कोटेड पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनकेअलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज ;...

ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की
बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के
पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही
जाता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज़ लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११,

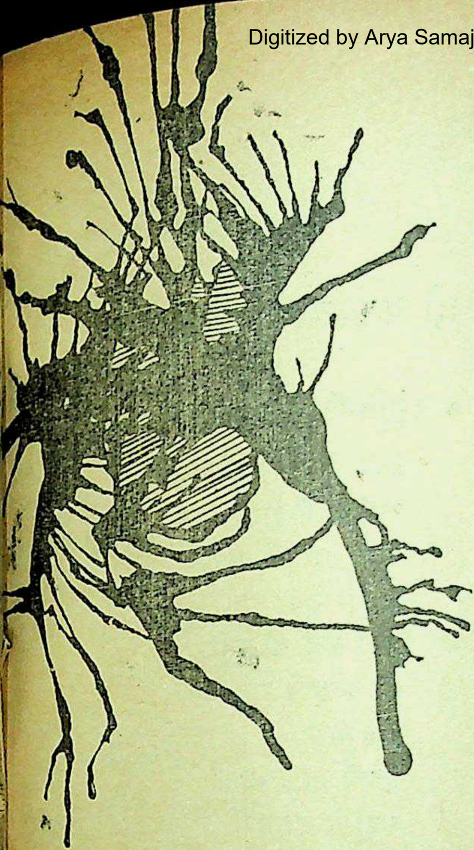

३ नारी स्वर

५ छोटी कविताएँ / इन्दु जैन

—१—

नींद की दुनिया में सब अलग हैं।
किसी के किनारे तोड़ता है सागर
किसी के सपने रेगिस्तान से भरे हैं।
हर छूट जाता है
साथ टूट जाता है।
नींद की दुनिया कितनी बड़ी है!
सपने से जागने—
जागने से सोने तक पसरी पड़ी है।

—२—

"मुझे तुम्हारा साथ चाहिए, तुम्हारा ही"—
कितने छोटे शब्दों का
कितना बड़ा सुख!
कितनी अबाध शान्ति!

—३—

यह जो पढ़ा था कि 'बांधता है प्यार'
अब गुन लिया—झूठ है।
हवा में उँगली से खींची लकीर में
सत्य सिर्फ़ उँगली है।
शब्दों का स्वर मात्र तथ्य है—
सन्दर्भ भी, अर्थ भी—
झूठ है, झूठ है।

—४—

तेरे सपने में और एक गन्ध है—
मेरी नहीं
मेरे जागने में सबकी गति बन्द है—
तेरी नहीं।

—५—

नारी अपने आकार से ग्रस्त है।
कितना भयंकर है रेखा में
दिल-दिमाग़ बंधना—
जब तक वह वायु नहीं होती
अपने हर स्व से त्रस्त है।

■

१६, दरयागंज,
दिल्ली-६

दो कविताएँ / अमृता भारती

● स्मृतियाँ

आज चांदनी पहरेदार थी
इसलिए मैं द्वार
खुला रख सो गयी
दूर-दूर तक
कहीं कोई था नहीं
पर दरवाज़े पर
एक साथ
इतनी सारी आहटें
कहां से आ गयीं!

● कामनाएँ

मैंने उसे देखा था
जंगल में, एक वृक्ष के नीचे
घोड़े की पीठ पर
उसकी आँखें सफ़ेद थीं
और दृष्टि गुलाबी
उसने मुझे एक बन्द कमल दिया था
भँवरों से भरा हुआ
इसके बाद वह कभी नहीं दिखा।

■

लवली हाउस,
सान्ताक्रूज़ (पूरब)
बम्बई-५५

कैक्टस पर खिला कमल / वानीरा गिरि

(अनु० भारतभूषण अग्रवाल)

फैलाकर एक ज्यासल*
काँटों के दरारों में
कर रहा उद्घोषणा नग्न होकर
नंगे अस्तित्व की,
यह कैक्टस पर खिलता हुआ कमल ।

प्रयत्न—
रंगाने का प्रयत्न,
सपना बचाने का,
खुद को और सामग्री ज्यासल की,
लुट जाता है एक ज्यासल
धीरे-धीरे ।
काँटों की ही उपस्थिति में
उपस्थिति ढीली होती जाती है
वर्षा के बाद क्षितिज पर उठनेवाले हलके बादल के ढेरों के साथ
उपस्थिति, हत्या गान्धी की
उपस्थिति, विषपान सोक्रेटीज का
उपस्थिति, क्रुसिफ़िकेशन जीजस का
उपस्थिति, चीर-हरण द्रौपदी का
उपस्थिति सिर्फ़ आकाश है एक रीता आकाश
उपस्थिति सिर्फ़ प्लैन्चेट के टेबुल पर का एक हिप्नोटिज़्म
आदमियों की उपस्थिति में ही होता है आदमी अकेला
मेज़ों की उपस्थिति में ही मेज़ अकेली होती है
तारों की उपस्थिति में ही रह जाते तारे अकेले
आकाशों की उपस्थिति में ही आकाश अकेला हो जाता
समुन्दरों की उपस्थिति में ही समुन्दर अकेला होता
आँसुओं की उपस्थिति में ही आँसू अकेला होता
अपनी ही उपस्थिति में स्वयं होता अकेला
अपनी उपस्थिति में अपना अकेला होना
कितनी यह नग्नता ! भयानक
और लुट जाता है एक ज्यासल
सारी सामग्रियों के साथ
रक्त-रंजित होता है एक कमल
कैक्टस पर खिल कर भी ।

■

द्वारा श्री मदनमान सिंह
२१।५६० धोबी धारा, दिल्ली बाज़ार
काठमाण्डु (नेपाल)

---

* ज्यासल : धातु-कार्य करनेवाले कारीगरोंके काम करनेका स्थान जिसे नेपालीमें 'आरन' भी कहते हैं।

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप अपने मालको जल्दी बेचने की सोचते हैं तो...बस उसकी बाहरी सुन्दरता बढ़ा दीजिये ; यानि उसको रोहतास पैकिंग पेपर में लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक पसन्द किए जाते हैं। नफ़ीस रंगों के साथ छपा हुआ ट्रेडमार्क इसकी शान में चार चाँद लगा देता है। रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को गर्द, धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)
सेलिंग एजेण्ट्स : साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

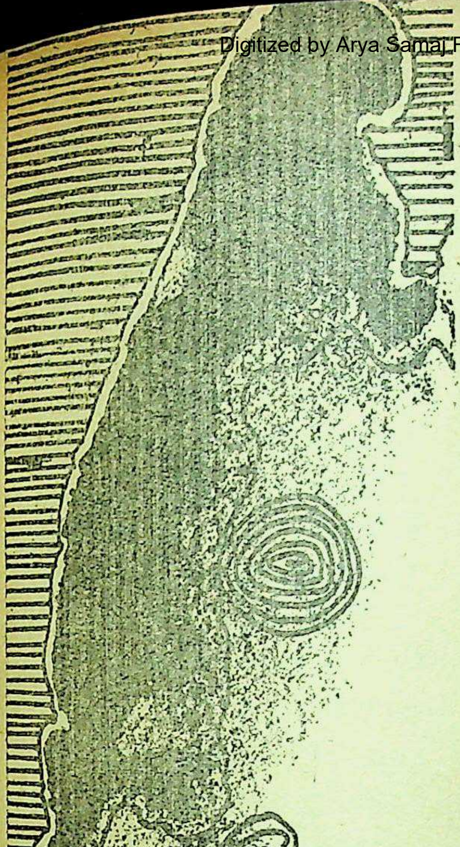

धूपमें क़िस्सा

गंगाप्रसाद विमल

दरअसल मैं टप्पीके घर जाना चाहता था। और एक तरहसे मुझे जल्दी भी थी। पर भीड़ देखकर मेरे होश गुम हो गये थे। और मैंने सोचा कि कितना अच्छा हो, कोई परिचित इस वक़्त मिल जाये। चाहे बादमें, सोचनेके बाद, मैंने अपनी इस बातपर खुदको गालियाँ दी हों। भला एक परम्परावादी तरीक़ेसे यह कैसे नियत हो सकता है कि थोड़ी देरमें क्या होनेवाला है। और मैं सोचने लगा कि ऐसी भीड़में मैंने क्यों, किसी परिचितके होनेकी बात सोची?

चुपचाप खड़ा रहनेके लिए और इन्तज़ार करनेके लिए सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है—मैं इसपर विचार करने लगा। हालाँकि यह एक कठिन मसला था। पर कुछ देर बाद मैंने तरीक़ा खोज लिया था और मैं हर आदमीके नाम चुनने लग गया।

यह तो एकदम आश्चर्यजनक था कि मैंने पहले शब्दको अपने ओठोंपर रखा ही था कि वह आदमी सीधे मेरे पास चला आया।

"आपने मुझे बुलाया।" उसने कहा।

मेरे सिर्फ़ ओंठ हिलानेपर ही वह आदमी चला आया था। यह कितनी विचित्र बात थी।

"मेरा नाम कट्टू है। शायद आप मेरा ही नाम ले रहे थे।" मुझे चुप देखकर वह बोला।

यह वह नाम था, जो बहुत गन्दा हो सकता था और जिस नामको किसीके लिए चुनना सिर्फ़ मनोरंजक था। मैं अभी अपने आपको इसलिए तैयार कर रहा था कि क्या इसे सिर्फ़ संयोग मानना चाहिए या कुछ और।

"आप भी शायद यहाँ खड़े-खड़े उकता गये हैं।"

"मैं बहुत देरसे किसी सवारीका इन्तज़ार कर रहा हूँ। आप जानते हैं, आजके दिन कोई किसीको लिफ़्ट भी नहीं देता।"

वह हँसने लग गया—"लिफ़्ट तो पहले भी कोई किसीको नहीं देता था।" उसने कहा।

मैं चाहता था कि बातकी दिशा बदल जाये और मैं यह सोचनेसे मुक्त हो जाऊँ कि मैंने इतने सुन्दर आदमीका इतना गन्दा नाम क्यों सोचा।

उसने खुद ही कहा, "आजकल सड़कोंपर भीड़ बहुत ज्यादा है और सरकार इसके लिए कुछ नहीं कर सकती।"

"किसकी सरकार?" मैंने उसे चौंकानेके लिए पूछा।

"किसकी सरकार····" उसने मेरी बात दुहराई और हँसने लगा।

मैं पछताया, क्योंकि अगर मैं सीधे-सीधे सरकारकी ही आलोचना कर देता तो बात राजनीतिकी ओर चली जाती और मेरा काफ़ी वक़्त कट जाता। हो सकता था, इस बीच मुझे कोई ट्रक ही मिल जाता, जिसमें बैठकर मैं टप्पीके घर न सही, हवाई अड्डे तक ही पहुंच जाता। पर अब वह हँस रहा था और कुछ भी हो सकता था, यानी अ उसकी हँसी रुकती तो वह बात बदल सकता था या मुझीसे सरकारके बारेमें कुछ पू सकता था।

जब उसकी हँसी थमी, तब पासके बिजलीका एक खम्भा पकड़कर वह बोला, "आपने ठीक ही कहा है। यह सरकार किसकी है····किसीकी नहीं। आप नहीं जानते, मैं कितने दिनों घण्टों बसकी इन्तज़ारमें बिता देता हूँ। मैंने हिसाब लगाया है कि मेरी उम्रका चौथाई भाग बसोंके इन्तज़ारमें ही बीत जायेगा।"

मैं उसे यह कभी नहीं बताना चाहता था कि मैं उन आदमियोंमें-से हूँ जिनके पास एक गाड़ी होती है लेकिन जब गाड़ी खराब हो जाती है तब वे सब इन्तज़ार करनेवालोंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले हो जाते हैं।

"इन्तज़ारमें बीतते हुए तो पहले आदमीको पता नहीं चलता," उस आदमीने कहा, "लेकिन जब पता चलता, तब आदमी जानता है कि उसने क्या नहीं खो दिया।"

उसकी बातोंका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। सिर्फ़ हाँ-हूँ कर देनेका अर्थ था कि मैं स्वयंको फिर उसी ऊबमें छोड़ देता। मैं इस प्रतीक्षामें था कि वह अपने सिलसिलेमें कोई लम्बी बात बतायेगा और इसी दौरान मैं उस मूल बातको भूल जाऊँगा। यह भी कि मैंने उस आदमीका उतना गन्दा नाम क्यों चुना।

"जब मैं अपनी बातें बताऊँगा तब आप अवश्य हँसेंगे।"

उसकी बात सुनकर मुझे कुछ आश्वस्ति मिली। अब वह कोई लम्बी बात बतायेगा और मैं उसे सुनने-उलझनेके बीच रहूँगा।

"आप हँसें या न हँसें, फिर भी जरूर हँसेंगे," उसने कहा, "बात कुछ ऐसी ही है।"

मैंने अपने चेहरेका भाव ऐसा बनाया जैसे मैं उसे कहना चाहता हूँ—वह बात सुना ही डालो। मुँहसे मैं उसे कुछ नहीं कह सका क्योंकि अभी मैं तय ही नहीं कर पाया था कि क्या कहूँ। बात शुरू करना या बीच-में जवाब देना कितनी कठिन बात है। हो सकता है, यह कठिनाई केवल मेरे लिए हो। परन्तु यह कठिनाई मुझे आज ही महसूस हुई हो, यह बात नहीं है। पहले भी मैं कभी-कभी इस तरहकी स्थितिमें फँस जाता हूं, तो मेरे लिए यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि किस तरहसे मोक्ष पाऊँ। यह एकदम सच्ची बात है कि मुझे उन लोगोंसे ईर्ष्या होती है जो सारी स्थितियोंमें अपनी बातोंसे साफ़ बचकर निकल जाते हैं।

"कई बार अपनेसे जुड़ी हुई बात बहुत गम्भीर लगती है, लेकिन वह औरोंके लिए हँसीका कारण बन सकती है, यह मैंने अनुमान लगाया है।" वह न जाने क्यों कुछ देरके लिए चुप हो गया। जब वह चुप हो गया तब मुझे लगा कि कहीं ऐसा न हो कि वह बात बन्द करनेकी शुरूआत हो। मैंने जल्दी-जल्दी अपने दिमाग़में कुछ कहनेके लिए शब्द टटोले। पर मैं कुछ ही न गिने जानेवाले क्षणोंमें निराश हो गया। मुझे लगा, मेरे दिमाग़में सिर्फ़ टप्पीके घर पहुंचनेकी जल्दी है, और बाक़ी कुछ नहीं। मैं निराश हो गया, और मुझे लगा इस बाक़ी वक़्त मैं किसी ट्रकका इन्तज़ार करूँगा जो शायद मुझे लिफ़्ट देनेके लिए तैयार हो जाये। मैं सोच ही रहा था कि अगर वह इस गतिसे चुप रहा तो क्या होगा। सचमुच मुझे गहरी निराशामें डूबना पड़ेगा। पर मैंने उसके चेहरेकी तरफ़ देखा, तो वह कुछ सोचनेमें मस्त था। जैसे वह कुछ खोज रहा हो। मैंने सोचा, अगर मैं कुछ बोलूं भी नहीं तो कोई बात नहीं। पर फिर मैंने पाया कि इस तरह मैं सिर्फ़ अपनेको आश्वस्त कर रहा हूँ। वह, हो सकता है, कुछ खोज न रहा हो, बल्कि चुप रहनेकी भूमिका बना रहा हो। या ऐसा ही कुछ हो।

'दरअसल आप जो कहना चाहते हैं मैं उसका एक दूसरा ही अर्थ लगाता हूँ। जब मैं अपनी बीवीके बारेमें कुछ कहूँगा तो आपको लग सकता है कि वह आपकी बीवीके बारेमें भी सच हो। पर मैं जिस तरहसे पीड़ित हूँ, वह बात तो एकदम 'यूनिक' है।" वह कहते-कहते कुछ हिचक गया था "अपनी बात कह कर मैं ख़ुद ही अपने प्रति अन्याय भी करता हूँ। पर यह मामूली बात है, आदमीको ख़ुद अपना अन्दरनी हिस्सा दूसरोंको दिखाना चाहिए, मैं तो यही मानता हूँ।" वह मेरी तरफ़, उत्तरके लिए, देखने लग गया था।

"जब मैं अपनी पत्नीके बारेमें कुछ बातें कहूँगा तो आपको अवश्य बुरा लगेगा। इस-

लिए कि पत्नियोंकी बातें सब लोगोंके लिए एक समान होती हैं।" वह बोलते-बोलते रुक गया, थोड़ी देर सोचनेके बाद बोला, मैंने यह तो पूछा ही नहीं कि आप विवाहित हैं ?"

मैंने अस्वीकारमें सिर हिलाया।

वह थोड़ा-सा मुसकराया, "जब आपने मेरा नाम बुलाया था तो मैं समझा था, आप भी कोई पीड़ित हैं।"

मुझे उसकी बातें सुनकर किसी तरहका अचम्भा नहीं हो रहा था। और मुझे इसी बातका अचम्भा हो रहा था कि क्यों नहीं उसकी बातोंसे मैं चौंकनेकी स्थितिमें आ रहा था। मेरी इच्छा हुई कि उसे कहूँ कि मैं इसी बातसे पीड़ित हूँ कि 'तुम्हारी' बातें मुझपर कोई असर नहीं डाल रही हैं।

"भला आप भी क्यों पीड़ित होंगे," उसने कहा, "पास आकर मैं पाता हूँ आप और ही क़िस्मके आदमी हैं।"

मेरी इच्छा हुई उससे पूछूं, मैं किस क़िस्मका आदमी हूँ। पर मैं चुप ही रहा।

"दूसरे क़िस्मके लोग कभी किसीसे पीड़ित नहीं होते।"

वह जब बात बता रहा था तब मुझे अचानक ही लगा, जैसे उस आदमीकी वजहसे मेरी उकताहट बढ़ गयी हो। वह बातको इस तरह लम्बी किये जा रहा था जैसे बादमें वह किसी रहस्योद्घाटनकी प्रतीक्षामें हो।

"अगर मैं एक बात पूछूं तो आप नाराज़ नहीं होंगे न ?" अपनेको ज़ब्त न कर पानेपर मैंने कहा, "कहीं ऐसा तो नहीं, बादमें आप किसी प्रकारकी रहस्यमय बात मुझे बतायेंगे।"

"मैं आपकी बात समझ गया।" उसने कहा।

"पर, मेरा ख़याल है....।" मैं कहना चाहता था कि अभी आप मेरी बात पूरी तरह नहीं समझे कि उसने मुझे बीचमें ही टोक दिया।

"दरअसल आप जो कहना चाहते हैं, मैं उसका एक दूसरा ही अर्थ लगाता हूं। जब मैं अपनी बीवीके बारेमें कुछ कहूंगा तो आपको लग सकता है कि वह आपकी बीवी के बारेमें भी सच हो। पर मैं जिस तरहसे पीड़ित हूँ, वह बात तो एकदम 'यूनिक' है।" वह कहते-कहते कुछ हिचक गया था, "अपनी बात कहकर मैं ख़ुद ही अपने प्रति अन्याय भी करता हूँ। पर यह मामूली बात है आदमीको ख़ुद अपना अन्दरूनी हिस्सा दूसरों को दिखाना चाहिए, मैं तो यही मानता हूं।" वह मेरी तरफ़, उत्तरके लिए, देखने लग गया था।

उसकी आँखोंमें क्या होगा, मैं यह जाननेके लिए उसकी तरफ़ देख रहा था। मैंने सोचा, शायद सचमुच ऐसा कहकर वह मुझसे कुछ पूछ रहा हो लेकिन बात वह नहीं थी। उसे मैंने एक अभ्यस्त आदमीकी तरह पाया—इसी तरहसे बातें करना और रुकना जैसे उसका शौक़ हो। यह आदत थी। जब मैंने यह जान लिया तब भी मैं निराश हो गया।

"मामूली बात यह है कि मेरी बीवीके

एक दोस्त है। मैं उससे मिला हूँ। वह इतना अच्छा नहीं है—इतना ही अच्छा कि मैं उसे पसन्द कर सकूँ।"

"अच्छा।" अचानक मेरे मुँहसे निकल पड़ा। मैं ख़ुद शर्माया कि मैं ऐसा कैसे कह गया। वह सोचेगा कि मुझे आश्चर्य हुआ होगा, जब कि ऐसी बात बिलकुल नहीं है।

"हाँ, वह अच्छा नहीं है। वह एक तरहसे बदसूरत आदमी है, जिसे कोई भी नापसन्द कर सकता है। मेरी पत्नीने जब उससे मुझे मिलाया था तब मुझे लगा था, वह बहुत ही ग़लत क़िस्मका आदमी होगा। उसकी शक्ल ही ऐसी थी कि कोई भी यह अन्दाज़ा आसानीसे लगा सकता था। मैंने पहले-पहल सोचा कि शायद यह मेरे मनके सन्देहकी वजहसे हुआ हो और मैंने उसके बारेमें ग़लत ही धारणा बना ली हो। परन्तु बादमें मिलने पर भी मैंने उस आदमीको वैसा ही पाया। वैसा ही जैसा मैंने उसके बारेमें पहले तय कर लिया था।" उसने अपना मुँह बिचकाया, बोला, "साहब, आप भी कभी ऐसे आदमीके साथ नहीं रह सकते। मुझे तो अपनी बीवीके चुनावपर ताज्जुब होता है। उसे एक ग़लत आदमी कभी नहीं चुनना चाहिए था। दूसरी बात जो मुझे ठीक नहीं लगती, वह यह कि उन्हें मुझसे कुछ छुपाना भी नहीं चाहिए पर वे दोनों छिपाते हैं। मैं उनकी इन हरकतों पर हँसता हूँ। पर अब इस तरहसे हँसने-से भी क्या होता है? वह उस आदमीके साथ रहती है। मुझे शिकायत यह है कि वह आदमी साफ़ क्यों नहीं रहता। जब आप इतने बड़े शहरमें रहते हों, और शहर साफ़ हो, तो कैसे गन्दे रह सकते हैं। मैं तो ऐसे रहनेके बारेमें सोच भी नहीं सकता। आपको उसकी गन्दगीके बारेमें बताऊँगा तो आपको भी उस आदमीसे नफ़रत हो जायेगी।"

उसने अपना मुँह कुछ-कुछ घृणाके समय-जैसा बनाया—"अपने मनमें मैंने सोचा है, कहीं मैं उस आदमीसे इसलिए नफ़रत तो नहीं करता कि वह मेरी पत्नीका दोस्त है। और उसे मैं खलनायकोंकी तरह मानता हूँ—पर आपसे सच-सच कहूँगा कि मेरे मनमें कोई ऐसा 'चोर' नहीं है। 'चोर' के अलावा मेरे पास शब्द नहीं है। आप जान सकते हैं 'भाषा और गन्दे आदमी' अब हमारे लिए कितने समान हो गये हैं।"

'भाषा' की बातपर मुझे हँसी आ गयी।

मेरे हँसनेसे वह उत्साहित हुआ। बताने लगा, "मैं तो खलनायकको बेहद पसन्द करता हूँ। खलनायक ऐसा होना चाहिए जिसमें आप वे सब चीज़ें देखें जो आपमें नहीं हैं। मैं तो ख़ुद कई वर्षोंसे सोचता आ रहा हूँ कि मैं क्यों नहीं कोई खलनायक बन गया। परन्तु मुझे इस बातका दुःख नहीं है कि मैं खलनायक क्यों नहीं बना, मुझे तो इस बातका ज़्यादा दुःख है कि मेरे सामनेका खलनायक बहुत बेहूदा व्यक्ति है।"

अपनेको रोकना चाहते हुए भी मैं नहीं रोक सका। बोला, "तो आप इसलिए दुःखी हैं कि आपका प्रतिपक्षी ग़लत क़िस्मका कमजोर-सा आदमी है?"

"नहीं, केवल यही एक कारण नहीं है।"

"मेरा मतलब यह है कि आप नहीं चाहते कि आपका प्रतिपक्षी कोई कमज़ोर खलनायक हो।"

"ओह," वह कुछ दुःखमें और आश्चर्यमें बोला, "आपको मेरा इस तरह बोलना नाटकीय लग सकता है। मुझे इस बातका दुःख थोड़े ही है कि वह मेरा प्रतिपक्षी, मेरे मुक़ाबलेका नहीं है। अगर आप ग़ौरसे देखें तो आपको पता चलेगा कि मेरा दुःख तो दूसरी ही क़िस्मका है।"

मैंने यूँ ही दिलचस्पी दिखाना शुरू कर दिया था, "तो फिर किस क़िस्मका दुःख है?"

"मैं उसे व्यक्त नहीं कर सकता। पर कुछ ऐसा है कि ऐसे व्यक्तिके सम्पर्कमें वह खराब हो जायेगी। ऐसा मेरा विश्वास है। पिछले दिनोंसे तो मुझे लगा, वह कुछ जल्दीमें है।"

"आप रहते कहाँ हैं?" अचानक मैंने सवाल किया। मुझे अपने सवालपर शर्म आयी। पर मैंने सवाल इसलिए पूछा था ताकि विषयान्तर हो जाये और वह मेरा इशारा समझ ले कि अब उसकी बातें ऊब पैदा कर रही हैं। पर मुझे अपने सवालपर शर्म आयी, यह अच्छा सवाल नहीं था।

"मैं ..." वह बोलते-बोलते कुछ खोजने-सा लगा। शायद वह शब्द या वाक्य खोज रहा था, "मैं तो बहुत दूर रहता हूँ। पर मैं आपको ये सारी बातें अभी संक्षेपमें बता देता हूँ।"

"ठीक है, ठीक है।" मैंने कहा। यह बात मैं उस आदमीके सामने पहली बार और बातोंके सिलसिलेमें हजारवीं बार कह रहा था।

"मेरी पत्नी और उस आदमीकी एक बात मुझे अचानक ही पता चल गयी। वे लोग मेरी हत्या करना चाहते हैं। मज़ेकी बात यह है कि मुझे उनके सारे कार्यक्रम पता चल गया। अब मैं सोचता हूँ कि अगर मुझे अपनेको बचाना है और उस आदमीसे अपनी पत्नीको अलग करना है तो मुझे उसे कुछ बता देना चाहिए कि मैं उनका कार्यक्रम जानता हूँ। पर मुझे डर है कि कहीं यह सुनकर ही वह कुछ कर न डालें। हो सकता है, वह मुझे मौक़ेपर ही मार दे। हो सकता है। कोई भी बात सम्भव हो सकती है।"

"क्या कोई भ्रम तो नहीं है....?"

"भ्रम....ऐसी बात नहीं है। मुझे कोई भ्रम नहीं है। यह बात मुझे तब पता चली जब मैं अपनी पत्नीको एक पब्लिक-टेलीफ़ोन पर बातें करते हुए सुन रहा था। पत्नी उस आदमीको फ़ोन कर रही थी। और वह इस तरह रहस्यमय ढंगसे कर रही थी कि मुझे शक हुआ। मैंने एक 'चोर' की तरह गुपचुप बातें सुननेकी कोशिश की। वैसे यह बात कितनी 'ग्लानि' पैदा करनेवाली है। मुझे बादमें बहुत अफ़सोस हुआ। पर उसकी बातोंके बाद जब मैंने उससे पूरी बात जाननी चाही तो वह चुप हो गयी थी। सही बात तो मैं बादमें ही जान पाया। परन्तु मुझे शक हो गया था।" वह अचानक ही थोड़ी देरके लिए चुप हो गया।

मैं उससे पूछना चाहता था कि क्या वह कोई प्रसंग भूल गया है। पर इससे वह नाराज़ भी हो सकता था। और इससे बातोंका रुख़ कहीं और पलट सकता था। हालाँकि मेरी इच्छा थी कि उसे कहूँ कि न जाने क्या बात है, आज कोई जानेका साधन नहीं मिल रहा है।

"अब अगर मैं यह कहूँ कि मेरी पत्नी एक रात मुझे जानसे मार डालनेवाली ही थी कि मैं जग गया तो आप विश्वास नहीं करेंगे। मैं सोया हुआ था कि अचानक मुझे खड़-खड़की आवाज़ सुनाई दी। पहले मैंने सोचा, पड़ोसके घरमें कुछ हो रहा होगा। कमरेमें अँधेरा था। ऐसे मौक़ेपर मैं चुपचाप लेटे रहनेके सिवाय कर भी क्या सकता था? कुछ देर रुककर मुझे फिर कुछ सुनाई दिया। मैंने अपनी पत्नीको आवाज़ दी। पर कोई जवाब नहीं आया। मैंने सोचा, वह सो रही होगी। मैंने दुबारा आवाज़ दी। उत्तर न पानेपर मैंने बग़लके बिस्तरको टटोला तो वहाँ पत्नी नहीं थी। मैं उठकर जैसे ही बिजली जलानेके लिए आगे बढ़ा, किसीने मेरे गलेमें फन्दा डाल दिया। वह मेरी पत्नी थी, जिसने मेरे गलेमें फन्दा डाला था। यह मैंने तब देखा जब बिजली जल गयी थी। मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। पर मैंने देखा, मेरी पत्नी तत्काल बेहोश हो गयी थी। वह मुझे मारना चाहती थी। परन्तु यह तरीक़ा एकदम ग़लत था, और मुझे अफ़सोस हो रहा था कि मेरी पत्नीने यह क्यों चुना। इतने ग़लत तरीक़ेसे, अगर वह सफल हो जाती तो वह निश्चित ही फँस जाती और वह खलनायक इस सारी योजनाके चौपट हो जाते ही असफल हो जाता। वह बदसूरत खलनायक····।"

मैं उसे यह कहना चाहता था कि वह खुद कम बदसूरत नहीं है। पर मुझे क्या पता कि कोई उससे भी ख़राब और भद्दी शक्ल वाला हो।

"मैंने पत्नीको गिरनेपर उठाया और उसे होशमें लानेकी कोशिश की। वह काफ़ी घबरायी हुई थी। और ऐसे मौक़ेपर, जानते हैं, किसी आदमीके लिए आत्मस्वीकार करना कितना सरल होता है। पहले मैं आपको यह बता दूँ कि इस तरहके ग़लत तरीक़े मैंने भी फ़िल्मोंमें देखे हैं और मुझे अफ़सोस है कि खलनायक फ़िल्मी खलनायक है। उसमें 'अपना' कुछ भी नहीं है। मेरी पत्नीने मुझे सब बताया है कि उस आदमीने कैसे ये तरकीबें उसे बतायीं और कैसे उसने कहा कि वे दोनों मिल जायेंगे। आप या और लोग कुछ भी कहें, मैंने अपनी पत्नीसे यह नहीं पूछा कि वह मुझे क्यों मारना चाहती है। यह पूछना अपने आपको जान-बूझकर अनजान बनाना है। मुझे उन बातोंका सन्देह है। मैं उससे कभी भी इस तरहकी साधारण बातें नहीं पूछूँगा।"

वह कुछ देर इधर-उधर देखने लगा। मुझे लगा, अब शायद वह थक गया है। उसके चेहरेपर हलका-सा तनाव था। जैसे वह पछता रहा हो कि वह एक अनजान आदमीको ये सारी बातें बता रहा हो। पर

उसने फिर बातें शुरू कर दी थीं। और इसबार उसमें बतानेका चाव-सा झलक रहा था।

"वह आदमी मुझे दो-एक बार पहले भी मिला था, जब मेरी पत्नीने दुबारा मुझे मारनेकी कोशिश की थी। तब मुझे पता चला था कि वह आदमी भी शादीशुदा है। हर शादीशुदा आदमी कहीं-न-कहींसे पीड़ित ज़रूर होता है। मैं उस आदमीकी पत्नीसे कभी नहीं मिला। शायद ऐसा अवसर कभी न आये। पर मैंने मन-ही-मन उस औरतकी तसवीर बना रखी है। वह कोई सुन्दर औरत होगी। और वह इस तरहके बदसूरत आदमीके साथ नहीं रह सकती होगी। इसीलिए यह आदमी कुण्ठित है। यह आदमी मेरी पत्नीको अपना आत्मीय बनाकर षड्यन्त्र कर रहा है। दुबारावाला क़िस्सा भी मज़ेदार है। उस वक़्त भी मेरी पत्नी अचानक पकड़ी गयी थी। उस दिन मैं खाना खाने देरसे पहुँचा था। मुझे पता नहीं था कि मेरे देरसे पहुँचनेके बीच भी कुछ घट सकता था। मैं जब खाना खाने बैठा तो रोज़की तरह पत्नी मेज़पर खाना रखकर वापिस रसोईमें नहीं गयी थी। वह वहीं, पास ही, बैठ गयी थी। मुझे सन्देह न होता अगर वह यह न कहती कि आज न जाने पानीका स्वाद कैसा है? 'पानीका स्वाद'—मैंने इस सम्बन्धमें अपनी पत्नीसे पूछना चाहा कि क्या वह अन्य दिनोंसे अलग है? वह चुप बैठी रहती तो भी मुझे शक नहीं होता। उसने बताया कि आज पानीका स्वाद कुछ बदला हुआ नज़र आ रहा है। उसने बताते हुए आश्वस्त भी कर दिया कि आ पानीका स्वाद कुछ बदला हुआ लगे इससे 'प्यास'का कोई ताल्लुक़ नहीं है। उसकी इस तरहकी उलझी हुई बातों सन्देहकी गुंजायश पाने लग गया था। परन्तु मैंने यह विचार कर लिया था कि इ तरहकी स्थितियोंके अवसरपर कोई भी निर्ण ले डालना ठीक नहीं है।

'कहीं, ऐसा तो नहीं कि आज नलसे मिलावटी पानी आ रहा हो, और उस गन्दगीके कुछ विषयुक्त कीटाणु घुले-मि हों।'

ऐसा मैंने जान-बूझकर पूछा था। प मेरे अनुमतिके विपरीत वह घबरा गयी और वहाँसे उठकर चली गयी थी। जा जाते उसने कहा, इतनी सारी बातोंका क्या मतलब है?

मैंने पानी नहीं पिया। मैं जान गया था, ज़रूर कोई गड़बड़ होगी। इस गड़बड़ मुझे कुछ-कुछ घबरा जाना चाहिए था। प मैं अपनी ही स्थितिको विचित्र पा रहा था मुझे यह सारी क्रिया और सारी बातें बे उकताहट-भरी लग रही थीं। इनका रूप जब भी मेरे सामने आता है, तो आ जानिए, मैं इनसे काफ़ी ऊब-सा जाता हूँ चाहे जो कुछ भी हो, कहीं-कहीं मैं इन पीड़ित हूँ। और यही कारण है, कि मैं इ बता भी रहा हूँ।

कलकी ही बात लीजिए। मैं डर सक था और डर भी गया था। पर वह

तरहकी बिलकुल नहीं जिस तरहकी बातका इशारा मैंने आपको पानीवाली घटनापर दिया था। मैं उठकर उस कमरेमें आया जहाँ वह खिड़कीके पास खड़ी थी।

'पानी वाक़ई दूसरी तरहका स्वाद दे रहा था।'

'अच्छा।' उसने चौंककर पीछे मुड़कर कहा, 'उसका स्वाद अलग था। क्या तुमने सचमुच पिया?'

'सचमुच।'

और मेरी पत्नीने रोना शुरू कर दिया। रोते-रोते उसने सारी बातें मुझे बता दीं। मुझे लगा, इस बार फिर खलनायक पराजित हुआ है। मुझे उससे किसी तरहकी सहानुभूति हो सकती है। किस तरह की?—यह नहीं जान पाया।

आप उकता तो नहीं रहे हैं?" उसने मुझसे पूछा।

"नहीं, मैं तो यह सोच रहा हूँ कि ऐसा कुछ आपके साथ क्यों घट रहा है। क्या आप नहीं जानते हैं कि इसके पीछे कोई कारण होगा।"

"कारण····? आप सच नहीं मानेंगे, मैं कई दिन इसीलिए परेशान रहा। मैंने सोचा, कोई-न-कोई कारण ज़रूर होगा। शायद आपको शक होगा कि मुझमें ज़रूर कोई कमी है जिसकी वजह मेरी पत्नी दूसरे आदमीसे सम्बन्ध रखे हुए है। इस बारेमें मैं यही कह सकता हूँ कि ऐसी कोई वजह नहीं। हम लोगोंमें किसी चीज़को लेकर कोई झगड़ा नहीं हुआ। बल्कि अब मैं इस खोजमें भी रहता हूँ कि हम दोनोंमें कोई झगड़ा हो जाये और कमसे कम मैं कोई कारण पाकर इस सारे सम्बन्धके बारेमें आश्वस्त हो जाऊँ। मैं अपने सन्तोषका कारण नहीं खोज पाता, इसीलिए पीड़ित हूँ। दुःखी और डरा हुआ इसलिए हूँ कि कौन जानता है कब खलनायक विजयी हो जाये! उसकी विजयसे जो नुक़सान मेरी पत्नीको होगा—उसका क्या होगा?"

वह कुछ देरके लिए रुका तो मैंने सड़ककी ओर देखा। सवारियोंके नामपर कुछ घोड़ा-गाड़ियाँ आ रही थीं, जो बेहद लदी हुई थीं। मुझे टप्पीकी याद आ गयी। मैं सोचने लगा, वह जिस तरहसे मेरा इन्तज़ार कर-करके उकता गयी होगी, वैसे ही मैं इन्तज़ारमें और इस आदमीकी बातोंसे उकता गया होऊँगा। वह कभी नहीं जानेगी कि मैं किस बुरी तरह एक बुरे दिनमें फँस गया हूँ। मैं कभी नहीं जानता था कि मुझे ऐसा खड़ा होना पड़ेगा और 'इन्तज़ार'से बचनेके लिए दूसरी तरह फँसना पड़ेगा।

मैं सोचनेमें व्यस्त था। मुझे चुप देखकर वह बोला, "मूल बात तो मैं आपको बताना ही भूल गया। कल रातकी ही बात है। मेरी पत्नीने मेरे सो जानेके बाद भागनेकी तैयारी कर ली थी। मैं कभी किसी खटकेसे, आसानीसे नहीं जागता। वह तो कल न जाने क्यों मैं जाग पड़ा। बत्ती जली हुई थी और मैंने दूसरे सन्देहोंकी बजाय यही सोचा कि मेरी पत्नी सर्दियोंके लिए स्वेटर बुन रही होगी। वह तो संयोग सम-

भिए कि मैं जब पानी पीनेके लिए उठा तो मैंने पाया कि दूसरे कमरेकी खिड़कीपर पत्नी खड़ी दूर अँधेरेमें देख रही है। मैंने उसका बक्सा देख लिया था, और यह अनुमान लगा लिया था कि अब वह कहीं भागनेके लिए तैयार है। मैं बिना पानी पिये, वापिस बिस्तरपर लेट गया। फिर मैं सो गया। जब सुबह उठा तो मैंने पाया कि मेरी पत्नी उसी तरह खिड़कीपर खड़ी है। आप नहीं जानते, मैं इस वक़्त उसी खलनायकसे मिलने जा रहा हूँ।"

उससे 'क्यों' पूछनेका मतलब था कि एक लम्बी-सी कथा सुननेके लिए अपनेको तैयार करना। मैं चुप ही रहा।

"आपको यह जानकर आश्चर्य होगा, मेरी पत्नी उस तरह खड़ी क्यों रही? इसलिए नहीं कि वह निराश हो गयी थी। इस बातसे निराश कि खलनायक नहीं आया, बल्कि इस बातसे थोड़ा निराश थी कि उसकी योजना ठप्प हो गयी थी।"

"यह तो आपका ही अनुमान है!" मैंने दिलचस्पीको खत्म कर देनेकी वजहसे कहा। मेरा ख़याल था, वह कहेगा, उसीका अनुमान है। पर मेरा ख़याल ग़लत निकला।

"अनुमान नहीं। मेरे पास तो प्रमाण है।" वह सड़कके सामने देखने लगा।

मैंने अनुमान लगाया कि अब वह जानेकी जल्दीमें होगा। पर उसने तुरन्त आँखें मेरी तरफ़ फेर लीं। वह बोला, "कल रात मेरी पत्नी चाहती थी कि मैं पानी पीऊँ या बिजली बन्द करूँ—दोनों तरीक़ेसे मरकर लोगोंको यह ख़याल होता कि मैंने आत्म-हत्या की है। पर उसने ग़लती यह की कि वह अपना सामान बाँध चुकी थी। और मेरे मरनेके बाद यह फँसनेका प्रमाण बच सकता था। अब मैं उस खलनायकसे मिलने जा रहा हूँ।"

वह अभी कुछ और कहना चाहता था, इतनेमें एक टूटा-फूटा ट्रक आया, उस ट्रक-की रफ़्तार धीमे होते ही वह लपककर उसमें चढ़ गया। पहले मैं इन्तज़ार करता रहा कि वह अपना हाथ हिलायेगा लेकिन बादमें मैंने देखा, वह ट्रकके पीछे लदे हुए लोगोंमें-से एक मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए आदमीसे बात कर रहा था।

उसकी बातोंका मुझपर असर तो नहीं पड़ा पर इतना ज़रूर हुआ कि मैं धूपको भूल गया। उसके जाते ही मैंने खम्भेके पीछे खड़े होनेका विचार बनाया।

इससे पहले मैं टप्पीके बारेमें सोचता या कुछ और भी, मैंने पाया कि मैं कई आदमियोंके पीछे खड़ा हूँ, और खम्भोंकी छाया मेरे आधे सिरको ढँक रही थी। उस गरमीमें मैं किसी निश्चयके लिए अपने आप-से लड़ सकता था।

■■

२७५२३ रामजस रोड,
करौलबाग़, नयी दिल्ली

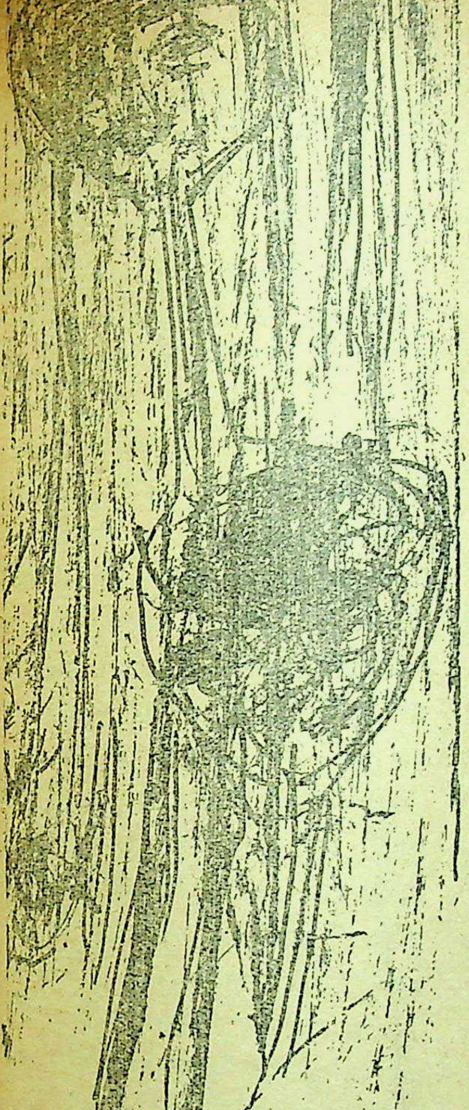

बाँहोंके किनारे

सोमा वीरा

आज मन हो रहा है—खूब गहरी नींद आये। और जब आधी रात बीत जाये, किसी सपनेकी डोर थामे, तुम मेरे सामने आ बैठो, और मैं तुम्हारे घुटनेपर अपनी दोनों कोहनियाँ रख, तुम्हारे चेहरेकी ओर देखते हुए, तुमसे खूब-खूब बातें करूँ। मीठी-मीठी बातें। बेमतलबकी बातें। बातें जिनका कोई ओर-छोर न हो। आदि-अन्त न हो। बातें—जो किसी सपने-जैसी ही बेहोशी ला देनेवाली हों····

जानते हो, कल मैंने क्या किया—एक गुलाबी काग़ज़पर तुम्हारा नाम लिखा। एक बार नहीं। एक सौ एक बार नहीं। हज़ार बार। और एक नीले काग़ज़पर अपना नाम लिखा—सिर्फ़ एक बार। फिर उगती सुबह-से पीले काग़ज़की दो नौकाएँ बनायीं, और नीले आकाश और गुलाबी सूरज-जैसे रंगोंवाले उन काग़ज़ोंको मोड़कर, उन नौकाओंमें रख दिया। मनकी सारी उमंगोंको बटोर-बटोरकर, सिलककी नयी-कोरी साड़ी पहनी, पैरोंमें नयी चप्पलें डालीं। माथेपर लगायी नयी बिन्दी। और क्रॉसटाउन बस लेकर ईस्ट रिवरके तटपर गयी। वहाँ, एक निर्जन स्थानपर, जहाँ कोई भी मुझे नहीं देख रहा था, धीरेसे झुककर, अपने दाहिने हाथकी उँगलियोंसे जलके तापका स्पर्श किया। लगा, वह न अधिक गरम है, न अधिक ठण्डा। तब, तुम्हारे नामकी भरी-भरी सी, और अपने नामकी खाली-खाली-सी, उन दोनों नौकाओं-

को ईस्ट रिवरमें छोड़ दिया। क्या वे दोनों नौकाएँ साथ-साथ बहतीं रहीं, या कुछ दूर जाकर अलग-अलग हो गयीं ? यह मैं तुम्हें नहीं बताऊँगी। तुम बताओ न। बड़े ज्योतिषी बनते हो !

क्या तुम्हें उस रेल-यात्राकी याद है, जब हम पन्द्रह छात्र-छात्राओंकी पर्यटक-टीमके नायक बने तुम हमारे साथ थे। रातके गहरे सन्नाटेको चीरती तूफ़ान मेल यूँ आगे बढ़ती जा रही थी, मानो उसकी रफ़्तारके सहारे ही धरतीका अपनी धुरीपर घूमना क़ायम है। मानो उसके ज़रा धीमा पड़ते ही, पृथ्वीके पुरज़े ढीले पड़ जायेंगे, और नियतिकी सारी शृंखला, विशृंखलित हो जायेगी। और मैं ऊपरकी बर्थपर लेटी एक पुस्तक पढ़ रही थी, और तुम नीचेकी बर्थपर मेरी सहेलियोंके बीच घिरे बैठे थे। उनकी हथेलियोंपर दृष्टि गड़ाते उनके भविष्य बता रहे थे, और मज़ेसे पराँठे, अचार और आलूगोभीकी सब्ज़ी खा रहे थे—ऐसे, जैसे हम दोनों नितान्त अपरिचित हों। मानो उस डिब्बेमें मेरा कोई अस्तित्व ही न हो। और फिर जब मेरी सहेलियोंने, टिफ़िन-कैरियर बन्द करने, जूठे अखबार और शकोरे समेटनेके लिए सिर भुकाये थे, तो तुमने एक बार दृष्टि उठाकर मेरी ओर देखा था। जब भी उस रातकी याद आती है, मुझे लगता है—तुम्हारी उस एक नज़रको, सिर्फ़ एक बार फिरसे देख पानेके लिए मैं अपनी जिन्दगीकी हरेक रात, वैसी ही किसी तूफ़ानी यात्राओंमें बिता दे सकती हूँ। खुशी-खुशी। बिना किसी शिकवे-शिकायतके।

इस समय स्टोवके सामने खड़ी हूँ। एक चूल्हेपर लैम्ब-करी पक रही है। दूसरेपर, भरी हुई पहाड़ी मिर्चें। तीसरेपर मीठा पुलाव। और चौथेपर मैं पकौड़े तल रही हूँ—दहीमें डालनेके लिए। पतिदेव (उनके लिए 'देव' शब्दका प्रयोग ही उचित है) बाज़ार गये हुए हैं—शेरी, व्हिस्की, स्कॉच और सोडाकी कुछ बोतलें खरीदने। आज उन्होंने अपने कुछ मित्रोंको भोजनपर बुलाया है। साथमें उनकी पत्नियाँ भी आयेंगी। तले हुए काजू, कॉर्न चिप्स और मूँगफलीके दाने, नज़ाक़त-नफ़ासतसे उठाते, हम छोटे-छोटे, पतले-पतले गिलासोंमें ड्रिंक्स लेंगे। फिर प्लेटें खनकेंगी। उनके मित्रोंकी पत्नियां—मेरी सहेलियाँ (?)—कहेंगी—हमें बताइए, हम कुछ करें। मे आई हेल्प ...और देरतक पार्टी चलेगी। बीचमें कोई रेडियो खोल देगा। खबरें सुनाई देंगी ....वियतनाममें बमबारी चल रही है....चीन और सोवियत-यूनियनमें युद्ध होनेकी सम्भावना है... फ़र्स्ट एवन्यूपर एक मकानमें आग लगी हुई है... पच्चीस व्यक्तियोंकी जानको खतरा है... ब्रुकलिन हॉस्पिटलमें, एक पोस्टमैनकी पत्नीने पाँच जुड़वाँ बच्चोंको जन्म दिया है... कई वर्ष निस्सन्तान रहनेके बाद, उसने फ़र्टीलिटी पिल्सका इस्तेमाल किया था... और रेडियोकी आवाज़ हँसी-ठहाकोंके बीच डूब जायेगी—ये फ़र्टीलिटी पिल्स हैं, या जादूकी गोलियाँ, कि औरतको बकरी बना देती हैं। अरे, क्या बात करते हो ! हम तो इनका आविष्कार

बहुत पहले ही कर चुके थे। क्या तुम्हें याद नहीं, दुर्योधनके निन्यानवे जुड़वाँ भाई थे···· और उनके चेहरोंकी ओर देखते मैं सोचूँगी—अमरीकी क्या झूठ कहते हैं कि हम भारतीय प्रत्येक आविष्कार हो सकनेवाली वस्तुका आविष्कार तीन हज़ार वर्ष पहले ही कर चुके हैं; कि तीन हज़ार वर्ष पहलेकी बातें हम ऐसे करते हैं, जैसे वे अभी-अभी बीते कलकी बातें हों; कि उस अतीतको यूँ बग़लमें खींचे बिना, हम आजके इस 'आज' में ज़िन्दा रह ही नहीं सकते—और मेरी आँखोंके आगे वे चेहरे धूमिल पड़ जायेंगे। सिगरेटके मिले-जुले धुएँमें एक चेहरा उभरेगा—तुम्हारा चेहरा! तीन हज़ार वर्ष पहलेके उस आदि-अन्तरहित अनादि युगमें, तुम शायद स्वर्णिम केशोंवाले कोई आर्य युवक थे और मैं तुम्हारे जत्थेसे विद्वेष रखनेवाले किसी दूसरे जत्थेके सरदारकी वाग्दत्ता।

किन्तु एक दिन, अपने ऊँचे, हवा-से उड़नेवाले घोड़ेपर सवार होकर तुम आये थे, और मेरा हरण करके ले गये थे। उसके बादसे पिछली तीस हज़ार ज़िन्दगियोंमें, हरेक ज़िन्दगीमें तुम रहे एक 'पृथ्वीराज' और मैं एक 'संयुक्ता'। केवल इस ज़िन्दगीमें ही सब कुछ बदल गया है। क्योंकि आज सभी कुछ नया है। ज़िन्दगी नयी है। स्वयंवर और चीर-हरण आदि सभीकी प्रथाएँ नयी हैं—मेरे पतिदेव, उनके मित्र, और उनकी पत्नियोंने, कितनी बार, कितने प्रकारके चीर-हरणमें भाग लिया है—उनमें-से कुछेकको लेकर कोई लेखक कितनी कहानियाँ लिख सकता है।

तीन हज़ार वर्ष पहलेके उस आदि-अन्तरहित अनादि युगमें, तुम शायद स्वर्णिम केशोंवाले कोई आर्य युवक थे और मैं तुम्हारे जत्थेसे विद्वेष रखनेवाले किसी दूसरे जत्थेके सरदारकी वाग्दत्ता। किन्तु एक दिन, अपने ऊँचे, हवा-से उड़नेवाले घोड़ेपर सवार होकर तुम आये थे, और मेरा हरण करके ले गये थे। उसके बादसे पिछली तीस हज़ार ज़िन्दगियोंमें, हरेक ज़िन्दगीमें तुम रहे एक 'पृथ्वीराज' और मैं 'संयुक्ता'। केवल इस ज़िन्दगीमें ही सब कुछ बदल गया है। क्योंकि आज सभी कुछ नया है। ज़िन्दगी नयी है। स्वयंवर और चीर-हरण आदि सभीकी प्रथाएँ नयी हैं—मेरे पतिदेव, उनके मित्र, और उनकी पत्नियोंने, कितनी बार, कितने प्रकारके चीर-हरणमें भाग लिया है—उनमें-से कुछेकको लेकर, कोई लेखक कितनी कहानियाँ लिख सकता है।

रात रुकती नहीं। सदा ही आती है। कल भी आयी थी। और सपनेकी घाटियोंने मुझे घेर लिया था। मैं लगातार भाग रही थी। भागती जा रही थी। कच्चे सूत-सी पतली उस पगडण्डीपर। बाल ढीले पड़ गये थे। पैरोंकी चप्पलें कहीं पीछे छूट गयी थीं। साँस फूल रही थी। कानोंमें आँधी सनसना रही थी। वस्त्रोंने ज़िन्दा रहनेकी आशा छोड़ दी थी। पैरोंके नीचे सूखे पत्ते कराह रहे थे। किन्तु पगडण्डीका मानो अन्त नहीं था। खेतोंको पार करते, पुलोंपर-से गुजरते, पहाड़ोंको चीरते, वह आगे बढ़ती जा रही

थी। और फिर जब मैंने उसके कभी खतम होनेकी आशा छोड़ दी थी, तब अचानक वह खतम हो गयी। मैं गिरते-गिरते सँभल गयी। मेरी आँखोंके आगे एक रेगिस्तान था। आदि-अन्त-हीन। सीमा-हीन। उसमें कोई पगडण्डी, किसीके पैरोंका कोई चिह्न न था। था तो केवल टूटी बाँहोंवाला एक 'साइन-पोस्ट'। उसकी एक बाँहपर लिखा था—भूत। दूसरीपर—भविष्य। और आँधीके झकोरोंके झटके खा-खाकर वे दोनों टूटी बाँहें बार-बार विपरीत दिशाओंमें, मुड़-मुड़ जा रही थीं। अपने दिमाग़की पूरी ताक़त लगाकर भी मैं इस बातका पता नहीं लगा सकी थी कि जब वह दिशा चिह्न टूटा नहीं था तो 'भविष्य'की ओर संकेत करती बाँह कौन-सी थी, और 'भूत'की ओर संकेत करती कौन-सी, तो सिसककर रो पड़ी थी। और निकट सोये पतिदेवने नींदमें ही करवट बदलकर, अपनी निंदियारी बाँहोंके घेरे बनाकर, उन सूखे आँसुओंको पोंछ डालना चाहा था।

और आज सामने मेज़पर पड़ा तुम्हारा पत्र मेरी ओर देख रहा है। शिकायत कर रहा है—बहुत दिनसे मैंने तुम्हें कोई कविता नहीं लिखी। पत्र लिखती हूँ, तो बड़े 'प्रोज़ेक' से, मानो किसी प्रोफ़ेसरपर रोब डालनेके लिए कोई सारगर्भित लेख लिखा हो, और उसकी नक़ल तुम्हें भेज दी हो। किन्तु मैं क्या करूँ! तुम ही बताओ! न्यूयॉर्ककी इस मशीनी ज़िन्दगीमें मैं भी सिर्फ़ एक मशीन बनकर रह गयी हूँ—मशीनको नियत समयपर काम मिलता है। नियत समयपर छुट्टी मिलती है। नियत समयपर तेल मिलता है। निर्धारित बटनोंके दबा दिये जानेपर वह अपने 'कम्प्यूटर-शब्दों' में 'कम्प्यूटर-टेप' पर कविता भी लिख डालती है। क्या वैसी 'कम्प्यूटर-कविता' से तुम्हें सन्तोष होगा? तुम 'हाँ' कह भी दोगे, तो मुझे विश्वास न होगा। भूल न जाना—मैं तुम्हें पहचानती हूँ। जितना तुम स्वयं अपनेको जानते हो, उससे कहीं अधिक।

एक सन्ध्या आजकी होगी····एक सन्ध्या वह भी थी, जब तुम्हारे साथ महालक्ष्मीके मन्दिर गयी थी। घण्टी बजाकर प्रसाद चढ़ाया था। आँखें मूँद मन-ही-मन प्रार्थना की थी। बाहर निकल मन्दिरकी परिक्रमा की थी। फिर तुम्हारी उँगलीका सहारा ले, सागरके जलमें हलके-से डूबे, सबसे ऊँचे शिला-खण्डपर चढ़ गयी थी! उस समय अपनी पूरी ऊँचाईसे, मेरी ओर नज़रें झुकाते तुमने पूछा था—"यदि मैं कहूँ कि यह सागर केवल मेरा वक्ष है, यह लहरें केवल मेरी बाँहें, और समयका यह बिन्दु, केवल प्रलयका एक नव-बिन्दु, तो तुम क्या कहोगी, बोलो!" क्या तुमने कभी सोचा है, कि तुम्हारा वह प्रश्न और मेरा उत्तर, दोनों ही, आज भी, उस जलमें साँस लेती शिलासे टकरा रहे हैं।

····और एक सन्ध्या वह भी थी जो एक भरी-भरी-सी दोपहरीके बाद आयी थी। एक भरी-भरी-सी दोपहरी, जो मैंने तुम्हारे सोते हुए चेहरेका ओर देखते हुए बिता दी

थी। तुम्हारे सोते हुए चेहरे, उठती-गिरती साँसों, और तकियेपर पड़ी तुम्हारी बाँहकी ओर देखते हुए। उस दिन, उन ठहरे हुए-से क्षणोंमें एक कविता भी लिखी थी। किसी काग़ज़पर नहीं, अपने दिमाग़की छिपी हुई परतोंपर। उसकी कुछ पंक्तियाँ आज भी याद हैं। कभी नहीं सुनायी तुम्हें। सुनोगे ? आज बोल दूं ?

दे टोल्ड मी—
सनलाइट इज़ ब्यूटीफ़ुल
प्यारे एण्ड डिवाइन,
विद पावर टु हील
ईविन द डीपेस्ट वूण्ड्स,
एनी टाइम, एनीह्वेयर
इट इज़
द ओनली नैक्टर
लाइफ़ नीड्स
टु लिव
बट,
आई डिड नॉट नो द मीनिंग
आफ़ दीज़ वर्ड्स
अण्टिल
आई सा
योर फ़ेस।

और आज तुम्हारे उस चेहरेकी एक फ़ोटो तक मेरे पास नहीं है। कभी-कभी भय लगता है—कुछ दिन और नहीं देखा तो शायद उसे अपनी कल्पनामें जगा नहीं सकूँगी। शायद उसे एकदम ही भूल जाऊँगी···तब एक और सन्ध्या आयेगी। तब अपनी दोनों बाँहें बढ़ाकर, ईस्ट रिवरमें, मैं एक और नौका बहा दूँगी—एक और नौका। एकदम खाली। जिसमें मेरे नामका अस्तित्व तक नहीं होगा।

■ ■

२८, वेस्ट, २६वीं स्ट्रीट,
ए पी टी०. ४-बी,
न्यूयॉर्क-१० (एन. वाई)

ज्ञानोदयका जुलाई १९६७ का
अंक १९वें वर्षका पहला अंक होगा······

? ? ? ? ? ?

[प्रतीक्षा करें]

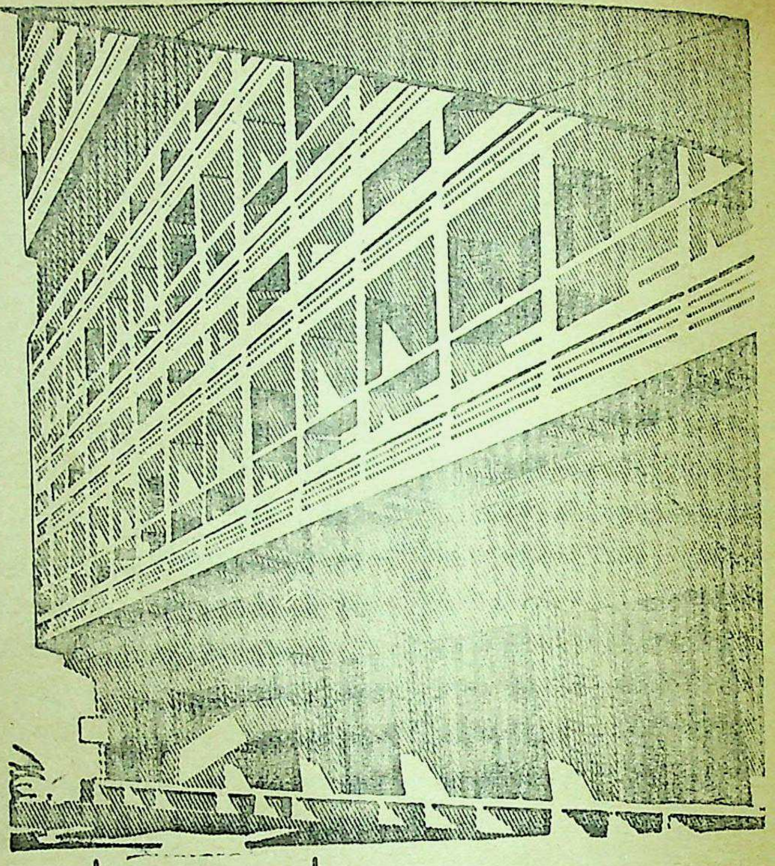

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

लौ पर रखी हथेली

रामकुमार भ्रमर

राजेश नहा चुका था और अब कपड़े बदल रहा था। उसका सीना बालोंसे भरा हुआ है। इतने घने बाल कि तमाम शरीरसे अलग ही उनका अस्तित्व लगे। बेलाने देखा और उसका मन हुआ, राजेशके कुछ बाल नोंचकर विमलके सीनेपर चिपका दे। विमल जब बनियाइन उतारता है, लगता है, किसी दीवारपर पेन्सिलसे दस-पाँच लकीरें डाल दी गयी हैं। बस।

राजेश भीतर कमरेमें चला गया। बेला कपड़े लेकर नलपर आयी।

छुट्टीके दिन राजेश देरसे खाना खाता है। इसी कारण विमल भी देरसे खाता है। जबतक राजेश इस घरमें नहीं आया था, दिन चाहे छुट्टीका हो, चाहे ऑफ़िसका, विमल खाना उसी वक़्त खाया करता जिस वक़्तकी उसे आदत थी। अब राजेश है और जो राजेश करता है, वही इस घरमें होता है।

बेलाने कपड़ोंको अभी बाल्टीमें डुबोया ही था कि राजेश आ गया, "भाभी, खाना नहीं खिलाओगी?"

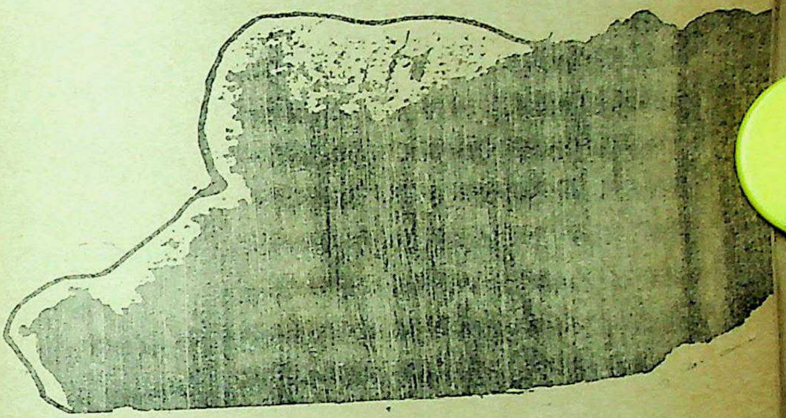

"मैं समझ रही थी, तुम देरसे खाओगे।" बेलाने हाथ धोते हुए कहा। विद्रूपसे उसने सोचा, "हुँः, भाभी!" सम्बोधन ही तो सब कुछ नहीं! विमल भी जानता है कि वह राजेशकी भाभी नहीं है। अब तो आस-पड़ोसमें भी····बेलासे····! मुझे किसीकी परवाह है क्या? उसने सोचा और राजेशकी ओर देखकर मुसकरा दी। राजेशको यह मुसकान अकारण लगी, लेकिन जवाबमें वह भी मुसकरा दिया।

बेलाके पीछे-पीछे रसोईमें जाते हुए उसने कहा, "असलमें आज मैं घर जानेकी सोच रहा हूँ।"

"एकाएक?"

"हाँ। तीन छुट्टियाँ एक साथ पड़ रही हैं। कल इतवार है,

परसों जन्माष्टमी। आज दूसरे शनिवारकी छुट्टी है ही। चला ही जाऊँ।" वह पीढ़ेपर बैठ गया।

राजेश एक सरकारी दफ़्तरमें मुलाज़िम है। हर माह दूसरे शनिवारकी छुट्टी मार देता है। विमलको यह सुविधा नहीं। एक प्रायवेट संस्थामें मामूली-सी बाबूगीरी कर रहा है वह—जबसे बेलासे शादी हुई है। माहके दूसरे शनिवारको भी वह जल्दी खाना खाकर पुरानी सायकिलको खड़खड़ाता हुआ दफ़्तर चल देता है। राजेश खानेमें उसका साथ नहीं देता। छुट्टीके दिन राजेश देरसे ही खाना खाता है। दूसरा शनिवार—उसकी छुट्टीका दिन—और छुट्टीके दिन राजेश दिनभर घरमें घुसा रहता है।

बात महीनेके सिर्फ़ एक शनिवार—इस अकेले 'सेकेण्ड सैटरडे'—की नहीं। बात शेष दिनोंकी भी है। विमलकी छुट्टी होती है आठ बजे। साढ़े आठसे पहले वह घर वापिस नहीं आता। चाहे तो भी नहीं। (चाहता होगा?) राजेश साढ़े-पाँच, पौने छह बजे अपने दफ़्तरसे उठ जाता है। साढ़े छह तक घरमें। घरमें यानी घरके अन्दर! सारे पड़ोसी जानते हैं। जिनसे कभी बातचीत भी नहीं हुई, वे दूरके पड़ोसी भी जानते हैं। राजेश घरके अन्दर चला जाता है, परदा खींच देता है। परदेके पीछेके किवाड़ कब बन्द हो जाते हैं, एकाएक ध्यानमें नहीं आता ····विमल घर लौटता है और वे सब साथ बैठकर खाना खाते हैं। विमल कम बोलता है, लेकिन राजेश मसखरा है। वह चुटकले सुनाता है, ठहाकेपर ठहाके लगाता है। विमल 'चुप-चुप, ज़रा-ज़रा हँसता है। उसकी आदत है। शुरूमें बेला भी पतिकी नक़लमें ज़रा-ज़रा हँसती थी। अब वह खुलकर हँसती है। बाहरसे गुज़रनेवालोंको आवाज़से यही लगे कि इस घरमें सिर्फ़ दो व्यक्ति हैं। बेला और राजेश।

उसने थाली परोस दी। राजेश खाने लगा। सब्ज़ीके पहले कौरके साथ ही उसने कहा, "नमक ज़्यादा है।"

"अच्छा? पता नहीं····ख़ैर····न रुचे तो छोड़ दो!"

"तुम्हारा अपना नमक भी तो आ मिला है, इसलिए····"

बेला हँस पड़ी। राजेशने ठहाका लगाया, "चलो, तुम्हें भी साथ ले चलूँ।"

"घरवाले मेरे साथ तुम्हें भी निकाल बाहर करेंगे।"

"क्यों? भाभियाँ अपने देवरोंके यहाँ नहीं जातीं क्या?"

"नमक सचमुच ज़्यादा तो नहीं है?"

"ले चलूँ?"

"दो दिनोंमें लौट आओगे?"

"भई, ड्यूटी ज्वाइन जो करनी है। सरकारी भी, ग़ैर-सरकारी भी।" राजेश पुनः ज़ोरसे हँसा। अपनी ओरसे उसने न केवल एक मज़ाक़ ही किया था, बेलाको कुरेदा भी था।

बेलाको अन्दर, बहुत गहरे तक कहीं लगा कि वह अपमानित हुई है। इस अहसास-को झुठलानेके लिए उसने मुसकराना चाहा,

किन्तु मुसकान रूखी थी। 'वह अपमानित हुई है'—ऐसा आभास फिर राजेशने भी पा लिया, लेकिन गम्भीर हुए बग़ैर उसने तुरन्त विषय-परिवर्तन किया और कहा, "विमलसे कहना, यह 'लायन्स ऑफ़ अरेबिया' फ़िल्म ज़रूर दिखाये। साली बिलकुल क्लासिकल है!"

"कहूँगी।"

"मैं तो एक दोस्तके साथ देख आया हूँ, वरना हम तीनों इकट्ठे चलते।"

"और वहाँ बैठनेका सिलसिला ऐसा होता कि पहली सीटपर मैं, दूसरीपर तुम और तीसरीपर विमल। यही न?" अकस्मात् वह बोल गयी।

"भाभी!"

"ग़लत तो नहीं कर रहो?"

"लेकिन भाभी····इसमें····इसमें इतनी परेशानीकी ज़रूरत····"

"खाना खा चुके हो?"

"राजेश एक रोटी और लेना चाहता था, लेकिन बोला, "हाँ।"

"फिर धोओ हाथ और जाओ—जाओ अपने घर!"

"बात क्या है? विमलसे कोई झगड़ा-वगड़ा तो····"

"कैसा झगड़ा? मैं तो सीधे-से कह रही हूँ—जाओ!"

"कहो तो न जाऊँ?"

बेला प्रायः हतप्रभ रह गयी। उसका यह आशय बिलकुल नहीं था। उसने यों ही कह दिया था। लेकिन 'कहो तो न जाऊँ'के पीछे जो सन्दर्भ है, क्या वह स्वयं बेलाका पैदा किया हुआ नहीं है? बेलाका या विमलका? या दोनोंका ही? वह राजेशकी ओर देखती रह गयी। उसके मौनने राजेशको असहज कर दिया। हाथ धोकर चुपचाप उसने एअर-बैगमें दो-चार चीज़ें जैसे-तैसे ठूँसीं और दरवाज़ेकी ओर बढ़ता हुआ फुसफुसाया, "अच्छा भाभी····परसों शाम तक आ जाऊँगा!"

वह उसे रोकना चाहती थी। रोककर पूछती कि क्या हम यह हमेशा चलाते रहेंगे? किन्तु वह मात्र देखती रही। बिना नमस्ते किये, बिना मुसकराये, लटका-उतरा चेहरा लिये राजेश बाहर चला गया। पुरानी दिल्लीसे वह भिवानीकी बस पकड़ेगा····

दरवाज़ा खुला हुआ था। परदा एक तरफ़ सिमटा-सिकुड़ा। दोनों होठोंको परस्पर दबाये हुए वह उठी और परदा पूरी चौड़ाईमें खींच दिया। धूप आ रही थी कमरेमें। अब वह परदेपर झूल गयी।

बेलाने पानी पिया। पैरके तलुओं और हथेलियोंमें पसीना आने लगा। धड़कन कुछ बढ़ी हुई लगी। वह लेट गयी। गहरी साँसले उसने तुरन्त करवट बदली। चेहरा दीवारकी तरफ़। राजेश उसे अच्छा लगता है। अभी कपड़े धुलने बाक़ी हैं। और राजेश उसे अच्छा नहीं लगता। अभी वह नहायी भी नहीं है। विमलको नहीं करनी चाहिए थी शादी। अपने साथ उसने बेलाकी जिन्दगी भी····न नहाओ तो दिनभर कैसा-कैसा लगता है! बेलाके उबालने विमलको और ज्यादा हीनताओंमें धँसा दिया था। क्या बेलामें

सामान्यसे ज्यादा उबाल है ? या विमलमें सामान्यसे कुछ कम ? कुछ कम क्यों ? बहुत ज्यादा कम····चलूँ, उठूँ, कपड़े धो लूँ। फिर कहीं नल न चला जाये। पानीकी धार आज सुबहसे ही पतली चली आ रही है।

वह उठी। नल सचमुच जानेकी तैयारीमें था। उसने एक डोल भरनेके लिए रख दो, फिर कमरेमें वापिस आयी। दरवाज़ेका परदा खींच-उठा, पलड़ेको ठेलते हुए उसने बन्द कर दिया, ताकि सामनेसे गुज़रता व्यक्ति उसे देखकर ही जान ले कि सिटकनी लगी हुई नहीं है।

■

राजेशने इस घरमें पहली बार प्रवेश किया था, तब विमल उसके साथ था।

"यह है मेरा बचपनका दोस्त राजेश!...." परिचय कराते हुए विमलने कहा था, "और यह है तुम्हारी भाभी, जिसे देखनेके लिए तुम इतने बेताब हो···"

राजेशका आना-जाना अक्सर नहीं होता था, क्योंकि वह भिवानीमें रहता था और नौकरी ढूँढ़ रहा था। लम्बी बेकारीके बाद उसे जो नौकरी मिली, वह कोई बहुत अच्छी नौकरी नहीं थी, लेकिन थी वह सरकारी। काम प्रायः कुछ नहीं। जो भी तनख्वाह मिले, यों समझो मुफ़्तकी। पद : टायपिस्ट। दफ़्तर : पार्लियामेण्ट स्ट्रीट, नयी दिल्ली। भिवानीसे रोज़ आना-जाना असम्भव था और दिल्लीमें मकानोंके किराये आसमान छूते हैं।

विमलने कहा कि तुम मेरे साथ रहने चले आओ। इसे अपना घर समझो!

क्या कोई पूर्व-योजना विमलके मनमें नहीं थी? क्या उसने जान-बूझकर ही उसे इस घरमें इसलिए जगह नहीं दी थी कि बेला घरसे बाहर न जाये? बेलाके एक खाली कोनेकी पूर्ति घरकी घरमें हो जाये? रातके आठ बजनेवाले थे। क्या विमलने ही उन्हें—उन दोनोंको—वह दिशा नहीं दी थी, जो कभी-कभी बिना दिये भी, या तो अनायास मिल जाती है या ढूँढ़ ली जाती है? अब आठ बज चुके थे। बेला कितनी दोषी है? विमल अपनी सायकिलपर हुमचता हुआ घरकी ओर चल पड़ा होगा। घर···और विमल कितना दोषी? राजेश कितना? सभी मर्द एक-जैसे होते हैं—गड़ापसे खा जाने को तैयार···वरना क्या खुद राजेशको इस घरसे नहीं चला जाना चाहिए था? विमलके आ पहुँचनेमें अब आधा ही घण्टा है। बेलाको राजेश बिल्कुल नापसन्द है। आने दो विमलको। लेकिन बेलाको तो राजेश चाहिए। विमलसे आज साफ़-साफ़ पूछूँगी, क्या इरादा था तुम्हारा?—ताकि पता तो चले, बेला कितना दोषी···राजेश कितना दोषी···? बेला हो या न हो, राजेश दोषी है। बेला हो या न हो, विमल दोषी है····

है!

है····!

विमल ही····है!

उसने जल्दी-जल्दी स्टोवमें पम्प किया। लौ भरभरा उठी। जिस तरह तवा रखा जाता है, उसी तरह वह लौपर अपनी हथेली रख दे तो? बारी-बारीसे वे दोनों हथेलियाँ,

जिनसे वह राजेशका चेहरा थामती है !

एकाएक उसके चारों ओर मोह घिर आया। यह मोह किसके प्रति था ? ठीक-ठीक वह न समझ सकी। शायद स्थितिके प्रति। नहीं। वह किसीसे कुछ नहीं कहेगी ! राजेशसे, न विमलसे। जो है, है। रहना भी चाहिए। रहेगा। क्यों न रहे ? दुनिया भी जान गयी है। मेरी बलासे। बातें करते हैं लोग। करें। राजेश अब यदि चला भी जाये, तब भी यही करेगी। फिर क्यों न राजेश यहाँ बना ही रहे ? और जब राजेशकी शादी हो जायेगी ? उँह, देखी जायेगी तब।

लेकिन साइकिल चलाकर आये, थके-थके विमलने ज्यों ही घरमें प्रवेश किया, मोहका वह सारा कोहरा बह गया। बेलाको फिर वही इच्छा सहसा कुरेद गयी। लौपर दोनों हथेलियाँ रखकर पका डालने की। पैरोंके तलुवे पसीज उठे। उसने एक गन्दे कपड़ेसे हथेलियोंको पोंछा। वे भी पसीज रही थीं। चाहा, विमलकी तरफ़ देखे। न देख पायी। दोनोंमें अबतक बातचीत नहीं हुई थी। कितना सूना-सूना। कपड़ोंकी सरसराहटोंसे वह अन्दाज़ा लगाती रही कि वह पायजामा पहिन रहा है।

"पानी है ?" वह खाटपर बैठता हुआ पूछ रहा था। बेलाने सुना। स्पष्ट सुना। उसने कोई ध्यान न दिया। विमलको ज़रा ज़ोरसे बोलना चाहिए—मर्दकी तरह ! तभी वह ध्यान देगी। ऐसी भी क्या मरी-मरी आवाज़....

"ज़रा पानी पिलाओगी ? प्यास लगी है।" फिरसे थकन-भरा स्वर।

अचानक बेलाको लगा, स्टोवकी लौपर सचमुच ही हथेली चली गयी है। वह तिलमिलाकर उठी। बिफरी हुई आवाज़में बोली, "क्या बकरीकी तरह मिमिया रहे हो ?"

विमल चौंक गया।

बेला भी चौंक गयी थी। वह अपनी ही आवाज़ कुछ इस तरह सुन रही थी मानो कोई और औरत चीख़ रही हो—"खड़े हैं सेवककी तरह हाथ जोड़कर, ज़रा पानी पिलाओगी ? अरे, हुकुम क्यों नहीं देते ? लाओ पानी ! लाती हो या नहीं ? आख़िर मैं तुम्हारी बीवी हूँ, मालकिन नहीं !" उसे जवाब देनेका मौक़ा दिये बग़ैर वह चिल्लाती गयी। वह काँप रही थी, "अपनेको मेरा नौकर क्यों समझते हो ? हालत यह है कि मैं आर्डर दूँ, तो बाज़ारसे तुम मेरे लिए एक मर्द भी ख़रीद कर ला सकते हो, उसी तरह जैसे पाउडरका डिब्बा। सब देखते हो, सब जानते हो। कभी रोका है तुमने ? इसी तरह रखी जाती है अपनी बीवी ? आकर कभी मुझे झापड़ क्यों न मारा ? क्यों न गला घोंट डाला ? ज़िन्दा क्यों न जला दिया ? आख़िर....आख़िर..." उसकी आवाज़ रुँधने लगी, "मैं तुम्हारी बीवी हूँ—समझे ? सारा क़सूर तुम्हारा है। तुम्हारा ही क़सूर है सारा !"

फिर वह जान गयी कि अब वह फफकनेवाली है। ■ ■

एफ–४०, वेस्ट पटेलनगर,
नयी दिल्ली–८

कृति या कृतिकारके प्रति भावुक वर्गमें आस्वादन उत्पन्न करना ही वास्तविक आलोचना है। इस सन्दर्भमें आजकी हिन्दी-आलोचनाकी स्थिति क्या है? उसके प्रतिमान कहाँ हैं? उसका अर्थ क्या है?……इन तमाम जलते प्रश्नोंके बीच प्रस्तुत हैं—हिन्दी आलोचनाकी अधुनातन दिशा और उसकी उपलब्धियोंके संकेत देती :

ये

महत्वपूर्ण

समीक्षा-कृतियाँ

■ ■

साहित्यके प्रत्येक सुधी पाठक और पुस्तकालयोंकी समृद्धिके लिए सर्वथा अनिवार्य।

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता : : वाराणसी

विक्रय-केन्द्र

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,

दिल्ली-६

- **विवेक के रंग**
  सम्पादक : डॉ० देवीशंकर अवस्थी ७.००
- **नये प्रतिमान : पुराने निकष**
  लक्ष्मीकान्त वर्मा ७.००
- **साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य**
  डॉ० रघुवंश ५.००
- **मानव मूल्य और साहित्य**
  डॉ० धर्मवीर भारती २.५०
- **हिन्दी नवलेखन**
  डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ४.००
- **हिन्दी गीतिनाट्य**
  डॉ० कृष्ण सिंहल ४.००
- **रेडियो नाट्य-शिल्प**
  डॉ० सिद्धनाथ कुमार ३.००
- **भाषा और संवेदना**
  डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी २.५०

एक मेरा दोस्त

मणिका मोहिनी

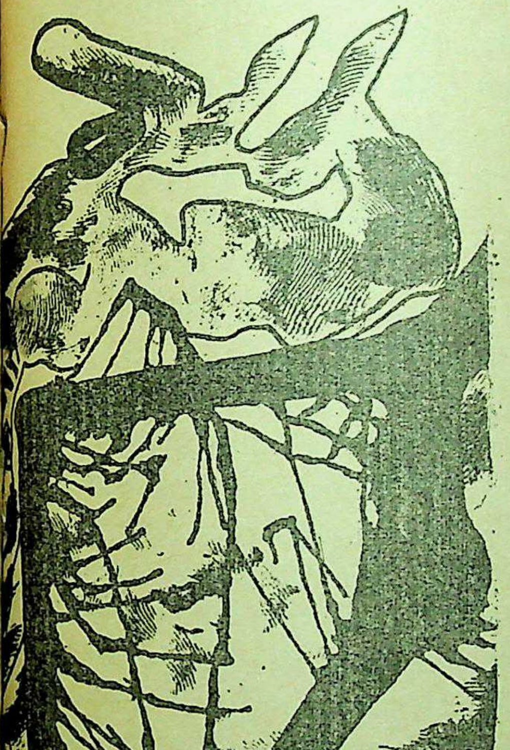

वह वास्तवमें क्या था और क्या होना चाहता था, यह बात उसकी दस सालकी दोस्तीमें भी मुझे आज तक समझमें नहीं आयी। दस सालका अरसा यूँ बहुत लगता है और किसी भी चीज़को पुराना कर देनेके लिए अपर्याप्त प्रतीत नहीं होता लेकिन उसके साथ चलते हुए सम्बन्धोंके दौरान मुझे यह कभी महसूस नहीं हुआ कि वह या मैं या हम दोनोंके बीचका नैरन्तर्य अब ताज़गी नहीं देता। सम्भवतः इतने अधिक समयसे नित्य मिलते-जुलते ही मुझे यहाँतक लगने लगा था कि वह मानो हमारे परिवारका ही एक सदस्य है और उसके भी पारिवारिक मामलोंमें मेरा हस्तक्षेप नितान्त आवश्यक है। यूँ यह कोई खास बात नहीं थी क्योंकि दोस्तीके बारेमें मेरा व्यक्तिगत विचार है कि वह दूर बैठे रहकर केवल कल्पनामें जी लेनेसे या पत्रोंके न टूटनेवाले आदान-प्रदानसे अधिक समयके लिए अपना स्थायित्व क़ायम नहीं कर सकती। बिना किसी घटनाको जिये हमारी रुचि वहाँ समाप्त हो जाती है। दोस्तीके लिए तो साक्षात्कार ज़रूरी है ताकि कुछ ऐसा घटता रहे जिसके गवाह दोनों हों और इस तरह एक इतिहास धीरे-धीरे बनता चले। मेरा खयाल है कि देर तक निभनेवाली जान-पहचानके पीछे कोई सद्भावना या स्वार्थ न होकर उसका एक अपना इतिहास होता है और कभी-कभी मन

ऊब जानेपर भी वह रिश्ता हमारा पीछा नहीं छोड़ता और हम सम्बन्धोंको आगे खींचते रहते हैं। उसके साथ कई बार मेरा मतभेद होनेसे गाली-गलीजकी नौबत आनेपर भी हम दोनों इतने लम्बे समय तक शायद इसलिए साथ रह सके क्योंकि हम दोनों साथ-साथ अनेक घटनाओंके साक्षी थे और हमारी मित्रताको पुष्ट करनेके लिए धीरे-धीरे एक इतिहास क़ायम होता जा रहा था।

जब वह मुझे पहली बार मिला, मेरी उम्र अठारह वर्षकी रही होगी। हायर सेकेण्डरी पास करके मैं कॉलेजमें गया ही गया था। उन दिनों सर्दियाँ थीं। सर्दियोंके दिनोंमें रातके आठ बजते-बजते बाज़ारोंसे चहल-पहल उठ सी जाती है। मैं खाना खाकर रातको नौ बजे गलीका चक्कर लगानेके लिए निकला था। गली समाप्त होनेपर दूकानोंका एक लम्बा सिलसिला था। एक दूकानके आगे लगे हुए लकड़ोके तख्तेपर वह घुटनोंको सिकोड़कर ठिठुरा हुआ उकड़ूँ बैठा था। न जाने किस जिज्ञासामें मैं उसके पास खड़ा होकर सिगरेट पीने लगा। वह मुझे मेरा हमउम्र लगा। उकड़ूँ बैठा होनेपर भी उसकी लम्बाई छिप नहीं रही थी। वह बहुत लम्बा था और पतला-दुबला होनेके बावजूद काफ़ी तगड़ा लग रहा था। उसका रहन-सहन निम्न मध्यम वर्गीय परिवारके स्तरका-सा था—घरमें घुल-घुलकर पीला पड़ा हुआ सफ़ेद क़मीज़-पायजामा, पुराना-सा नेवी ब्लू रंगका बिना बाज़ूका स्वेटर, पैरोंमें चप्पल, सरसोंके तेलमें भीगे हुए बाल। उसे ठण्डमें इस तरह ठिठुरते हुए देखकर मुझे तरस आ गया और मैंने उसे पीनेके लिए एक सिगरेट थमा दी। यूँ बातचीतको शुरू होनेके लिए एक बहाना मिल गया और सभ्यता या जिज्ञासावश मुझे उसके समीप वहीं तख्तेपर ही बैठ जाना पड़ा। उसकी बातचीतमें एक संकोच था, शक्लपर सहमापन, आँखोंसे झाँकती हुई हीनभावना और स्वभावमें दब्बूपन। परिवारकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेके कारण बीचमें छूट गयी पढ़ाईको पूरा करनेकी अदम्य लालसा, सहस्रों महत्त्वाकांक्षाएं और सहस्रों सपने। ऐसा कुछ निरीह-सा अपने प्रथम साक्षात्कारमें वह लगा मुझे, जो अपने सामने खड़े हुए हर-कैसे भी व्यक्तिको अपनेसे बड़ा मानकर डर-सा जाता था। उसके भयभीत किन्तु दृढ़ व्यक्तित्वकी ओर मैं आकर्षित हुए बिना न रह सका और धीरे-धीरे हम दोनों निजी जीवनकी चर्चाओंपर उतर आये।

पहले दिन ही उसने मुझे इन्हीं शब्दोंमें बताया कि वह अपने माँ-बापकी आठ ग़लतियों-में-से एक है, इसीलिए उसकी ज़रूरतोंकी ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जाता। उसमें कुछ करने-धरनेकी इच्छा है, और घरवाले उसे खब्ती समझते हैं और हर समय ताने-बोलियां मार-मारकर उसे चिड़चिड़ाते रहनेपर विवश करते रहते हैं। उसे अपने माँ-बापसे सख़्त नफ़रत है जिन्होंने उसे जन्म तो दिया पर जीने-जैसा माहौल नहीं दिया और एक दिन वह ज़रूर घरसे भाग जायेगा। मुझे वह पसन्द आया। मुझे ऐसे ही लोग पसन्द आते

हैं जिनके भीतर आग भरी हो, ऐसी कि रुकावट पैदा करनेवाली हर चीज़को झुलसकर रख दे। वह भी मुझसे प्रभावित नज़र आया क्योंकि उसने बताया कि मेरे साथ रहकर वह बहुत-कुछ सीख सकेगा।

इस तरह हम दोनों दोस्त बन गये। फिर सालों तक रोज़ रातको दूकानोंके आगे लगे फट्टोंपर बैठकर सर्दी, गरमी, बरसातको साथ-साथ सहनेका हमारा क्रम चलता रहा। दिन-भरमें घटी हर छोटीसे छोटी बात भी हम एक-दूसरेको बताते, मनमें उठनेवाले बुरेसे बुरे खयाल भी हम आपसमें सुनाते। मैं उसे अपने साथ पेण्टिंग्ज़ दिखाने ले जाता, म्यूज़िक कन्सर्ट सुनवाता और संगीत तथा चित्रकलामें रुचि होनेके कारण जो मुझे थोड़ा-बहुत ज्ञान था, वह उसे बताता। अपनी हर पढ़ी हुई पुस्तकको मैं उसके आगे दोहराता और हम दोनों समस्याएँ उठाकर उनपर अपना-अपना मत देते। अपने कॉलेजके हर पीरियडका ब्यौरा मैं उसे देता। अपनी लिखी कविताएँ मैं उसे पढ़ाता। आज मुझे लगता है कि उस समय मैं बहुत छोटा था (हालाँकि उम्रसे बालिग़ हो चुका था) क्योंकि स्वयंको अभिव्यक्त कर देने की मेरे भीतर बड़ी तड़प थी। पर यह सब उसे अच्छा लगता था और उसका कहना था कि इसी बहाने वह काफ़ी-कुछ सीख जायेगा जब कि इसके लिए उसके पास कोई अन्य साधन नहीं है। वह बालककी भाँति मौन होकर घण्टों मुझे बोलते देखता रहता और अन्तमें उसे यही लगता जैसे उसने बहुत-कुछ पा लिया है।

> जैसा कि मैंने पहले ही उसमें सम्भावनाएँ देख ली थीं कि वह हर नयी चीज़की ओर दौड़ता है। वह उस वृक्षकी भाँति नहीं था जो जहाँ पैदा हुआ है, वहीं सड़ेगा और वहीं समाप्त हो जायेगा। उसे तो बहना पसन्द था। परिवर्तनको ही वह जीवन समझता था और स्थिरताको मौतका प्रतीक। इस नये वातावरणका उसपर कोई असर न पड़ता, यह मुमकिन नहीं था।

तब उसमें एक आदत खराब थी। जिस तरहसे हम दोनों नज़दीक आये थे, उसी तरहसे उसकी यह आदत बढ़ती गयी थी। मुझे किसी अन्य लड़केके साथ अधिक देर तक बात करते देखकर वह उदास हो जाया करता था, और फिर रूठ-रूठकर मुझे बताया करता था कि वह किसी अन्यके साथ मेरी मित्रता सह नहीं सकता, वह मुझपर अपना एकाधिपत्य चाहता है। उसकी यह बात मुझमें खुन्दक भर देती थी। वैसे कई बार मैंने मज़ाक़में उससे ज़रूर कहा था कि यदि हम दोनोंमें-से एक लड़की होता तो उसकी ईर्ष्या अधिक बलवती होती। मेरी इस बातपर वह मुझपर बलिहारी-सा जाता हुआ कहता था कि मैं उसके लिए लड़की ही हूँ और वह मुझे अपनी प्रेमिका समझता है। बात वैसे हास्यास्पद थी परन्तु धीरे-धीरे सचमुच ही जैसे उसने मुझे लड़की मान लिया था। अप्रत्यक्ष रूपसे मैंने यह कई बार जाना था कि लोग मुझे सुन्दर कहते हैं। गोरा रंग, तीखे नैन-नक्श

और सुडौल शरीर मुझे सुन्दर कहलवानेके लिए पर्याप्त था। वह मेरे रूप-रंग और शरीरकी बहुत प्रशंसा किया करता था। हम दोनों एक-दूसरेके घरोंमें एक ही चारपाईपर लेटकर घण्टों बातें किया करते थे, तब वह मेरी क़मीज़के अन्दर हाथ डालकर मेरी पीठ और छातीको सहलाया करता। वह इस ढंगसे बातचीत करता रहता जैसे ये सारी मुद्राएँ सहज ही बन गयी हैं और इस सबके बारेमें वह ज़रा भी कान्शस नहीं है। कई बार लड़कियोंका ज़िक्र चल पड़नेपर हम सड़कपर देखी हुई या बसमें टकरायी हुई लड़कियोंके क़िस्से बड़े जोशोखरोशके साथ सुनाते। वह बड़े लटकेसे कहता था, "यार, अगर तू लड़की होता तो मैं तुझसे ही शादी करता।" धीरे-धीरे स्पष्ट होता गया कि उसमें होमो टेण्डेन्सीज़ थीं।

उसने मुझे बताया था कि जब वह बहुत छोटा था—तीन या चार वर्षका, तब उसका बाप किसी औरतको घरमें ले आया था, जिसके साथ उसने खुले कमरेमें सम्भोग किया था, शायद जल्दीके कारण या हड़बड़ाहट या किसी और वजहसे। तब उसी कमरेमें माँ दूसरी ओर मुँह करके धीरे-धीरे रोती रही थी और वह सामने खड़ा हैरान होकर सब कुछ ग़ौरसे देखता रहा था। अब वह सोचता है, वह औरत बहुत बदज़ात रही होगी जिसने उसकी माँको रुलाया। सेक्सके प्रति बहुत छोटी अवस्थासे ही कान्शस हो जानेके लिए वह उस औरत यानी उस घटनाको ही कारण मानता था। मुझे उसकी यह प्रवृत्ति पसन्द नहीं थी, किन्तु कई और जगह मैं उससे इतना सन्तुष्ट था कि केवल इसी कारण उससे लड़ नहीं सकता था। यह बात छोड़ दूँ तो मैं विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि मेरे और उसके मध्य मेरे एम० ए० तक आते-आते एक ऐसी अण्डरस्टैंण्डिग बन गयी थी कि किसी मौक़ेपर कोई किस तरह रिऐक्ट करेगा, यह दूसरा बख़ूबी समझता था। बातचीतमें हमें किसी प्रकारकी औपचारिकताको निभानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी क्योंकि हमें भरोसा होता गया था कि हम दोनों एक-दूसरेको ग़लत नहीं समझते।

मेरे एम० ए० में आने तक वह खाली इधरसे उधर भटकता रहा। मैंने उसे पढ़ाई चालू करनेकी सलाह कई बार दी लेकिन लगन होनेके बावजूद चार-पाँच सालोंके व्यवधानसे वह साहस खो बैठा था। वह कहता था कि एक बार पढ़ाई शुरू हो जाये तो वह निभा जायेगा लेकिन समस्या शुरू करनेकी ही थी। वह आरम्भ नहीं कर सकता, वह महत्त्वाकांक्षी ज़रूर है पर कोई भी काम शुरू करनेका साहस उसमें नहीं है। वह डरता है, स्वयंसे या कामसे या नामालूम किस चीज़से, इसीलिए उसे लगता कि उसके सारे सपने यूँही रह जायेंगे और वह कुछ नहीं बन सकेगा। और केवल दसवीं पास कर लेनेके बाद नौकरी कितनी मुश्किलसे मिलती है! यानी कि मिलती ही नहीं। वैसे चार-पाँच सालोंमें मैंने यह महसूस किया था कि वह धीरे-धीरे शार्प होता गया है। पहले वह मुझे केवल सुना करता था, अब अपना मत

भी देने लगा है, बहस करने लगा है। अब उसकी बुद्धि इतनी विकसित हो चुकी थी कि वह मेरे साहित्यकार दोस्तोंमें बैठकर ऊबता नहीं था बल्कि उनकी साहित्य-चर्चाको इन्ज्वाय करता था, और कभी-कभी किसी बातपर अपनी राय देनेमें भी नहीं हिचकिचाता था। उसके इस परिवर्तनका मैं साक्षी था और उसके बदलते जानेकी सारी प्रक्रिया स्मृतिमें मुझे सुख देती थी, कुछ-कुछ शायद इसलिए कि मेरे साथ रहकर ही वह इतना बना है। वह अकसर सबके बीचमें यह बात चला दिया करता था कि मेरे एम० ए० करने तक वह भी हिन्दीमें एम० ए० हो जायेगा क्योंकि मैंने तबतक उसमें इतनी समझ पैदा कर दी थी कि मैं उसके साथ अपना सिलेबस डिस्कस कर सकूँ तथा उसे साहित्यकी समकालीन गतिविधियोंसे परिचित कराता चलूँ। उसे मुझपर गर्व था—ऐसा वह अकसर मुझसे तथा औरोंसे कहा करता था।

एम० ए० में मेरा परिचय सविसे हुआ जिसने बादमें दोस्ती, फिर प्रेम और फिर विवाहका रूप ग्रहण किया। तब मैं सविके साथ अपना बहुत वक़्त बिताने लगा था, जिसकी उसे हमेशा शिकायत रहती थी। उसका कहना था कि मैं अपनी दोस्तीको भूल रहा हूँ और सविने उसका हक़ छीन लिया है। उसके हक़ छीननेकी बातको मैं खूब समझता था और मुसकराते हुए उसे समझाता था कि उसका हक़ वही है। दोस्ती-दोस्तीमें अन्तर होता है लेकिन उसकी ईर्ष्या उसे कई-कई दिनों तक उदास रखती। अच्छे बौद्धिक व्यक्तियोंमें उठ-बैठकर वह खुदको बड़ा इण्टेलैक्चुअल समझने लगा था पर भीतरसे कहीं बहुत भावुक था।

मैंने उसका परिचय सविसे कराया। सवि तब एक बहुत तेज़ क़िस्मकी लड़की थी, एकदम चैटर बॉक्स। अपने अनुभवमें आयी छोटीसे छोटी बातको भी वह इस अन्दाज़में सुनाती कि सुननेवालेको सचमुच ही एक कहानीका मज़ा आ जाता। सवि किसीके सामान्यसे सवालका जवाब घुमा-फिराकर कुछ इस ढंगसे देती कि उसके साथ बात करनेका एक अपना ही रस था। उसे सविका यह अन्दाज़ बेहद भाया। तबतक उसका स्वभाव एकदम लच्छेदार ढंगसे बात करनेका बन गया था और उसे चटकीली बातें करनेवाले लोगोंके साथ समय बिताना अधिक अच्छा लगता था। मैंने हर बातचीतमें यह लक्ष्य किया कि वह सविसे बहुत प्रभावित होता जा रहा है और उसे एक महान् लड़की समझने लगा है। पर सविको साधारणसे दिखनेवाले लड़के पसन्द नहीं थे, बातचीतके अतिरिक्त ड्रेसमें भी स्मार्ट लड़के उसे पसन्द थे। उसका कहना था कि बुद्धिका परिचय तो बादमें मिलता है, पहले तो बाहरी रंग-ढंग ही आकर्षित और प्रभावित करते हैं। सवि मेरे साथ चूँकि फ्रैंक थी इसलिए उसने मुझे बेखटके यह बता दिया कि उसे वह पसन्द नहीं और इस स्तरके आदमीके साथ चलते उसे शर्म आती है। उसके चेहरेका सहमापन और व्यवहारका संकोच अबतक अवश्य

धुल चुका था किन्तु पितापर आश्रित, उसके ही शब्दोंमें, उनपर बोझ बने रहनेके कारण, उसके पहनावेका स्तर अभी भी वही था। खूब ढीले-ढाले पाँयचोंकी घरकी धुली पैण्ट, खुले हुए कॉलरकी क़मीज़, पैरोंमें कोल्हापुरी चप्पल और तेलसे चिकने बाल। पर मैं उसे अच्छी तरह जानता था, पैसा होनेपर उसकी रुचियाँ बदलते समय नहीं लगेगा, क्योंकि किसी भी चेंजको अपनानेमें उसे देर नहीं लगती। स्वभावसे वह चंचल है, हर नयी चीज़की ओर शीघ्र आकर्षित होता है और कोई भी नया प्रयोग करनेसे वह नहीं हिचकिचाता।

मैं तब फ़ाइनलमें आया था कि उसे युनिवर्सिटी लाइब्रेरीमें एल० डी० सी० की पोस्ट मिल गयी। मुझे अच्छी तरह याद है कि एपॉइण्टमेण्ट-लेटर मिलनेके तुरन्त बाद मेरे पास आकर मेरी गोदमें मुँह छिपाकर वह सुबकता रहा था, क्योंकि कोई भी काम शुरू करनेकी उसमें हिम्मत नहीं थी। कई वर्षों तक निरन्तर बेकार भटकते रहनेसे वह अपनी भीतरी शक्तियोंके प्रति शंकित हो उठा था। नौकरीका पहला दिन उसे डरा रहा था। मैंने उसका साहस बँधाया कि उसे डरना नहीं चाहिए, और फिर मैं भी तो उसके नज़दीक हूँ, लाइब्रेरी और आर्ट्स फ़ैकल्टी पास-पास ही तो हैं, मैं बीच-बीचमें उसके पास आता रहूँगा। इस तरहसे उसकी नौकरीकी शुरुआत हुई यानी कि उसकी जिन्दगीका एक नया पृष्ठ खुला और उसकी छिपी हुई सम्भावनाओंको रूप ग्रहण करनेके लिए एक रास्ता मिला।

युनिवर्सिटीका माहौल उसे एक वि
क़िस्मकी स्फूर्ति देनेवाला सिद्ध हुआ। चा
ओर लड़के-लड़कियोंके झुण्ड बिखरे
खिलखिलाहटें, चहचहाहटें। पढ़ाईसे उस
चूँकि उस समय कोई व्यक्तिगत साक्षात्
नहीं था इसलिए उसे तो ऐश करता हु
यंग ब्लड ही जहाँ-तहाँ फैला दिखाई प
था। लाइब्रेरीके काउण्टरपर लड़कियों
अटैण्ड करते समय उसमें अतिरिक्त साव
आ जाती और अपेक्षित सभ्यताका नि
वह सजग होकर करता। लड़कियोंकी कि
देरसे लौटनेपर उनसे फ़ाइन लेनेमें उसे अ
पुरुषत्वकी तौहीन नज़र आती थी। मैंने
कई बार समझाया था कि किसी ख़ास लड़
की फ़ाइन वह अवश्य छोड़ दे किन्तु
तरह हरेकपर रियायत करनेसे उसे ज
देहीके लिए बुलाया जा सकता है, आ
वह अभी नया-नया ही लगा है। प
उसका कहना था कि क्या वह लड़कि
लिए इतना भी नहीं कर सकता? काउ
पर खड़े-खड़े उसने कितनी बार अप
परी-देशमें साँस लेता हुआ अनुभव किया
यह बात महत्त्वपूर्ण बनाकर उसने मुझे
बार बतायी थी। चारों ओर बिखरे
रंगोंको देखकर वह प्रायः कहा करता था
युनिवर्सिटी तो एक मेला है, यहाँ नौ
करनेका एक अनोखा चार्म है और अ
इस परी-देशसे दूर नहीं जाना चाहता।

जैसा कि मैंने पहले ही उसमें सम्भाव
देख ली थीं कि वह हर नयी चीज़की

भारतीय ज्ञानपीठ की अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण प्रकाशन-परम्परा में कुछ और नाम

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा शीघ्र ही प्रकाश्य

काठ का सपना ■

मुक्तिबोध

'चाँदका मुँह टेढ़ा है' और 'एक साहित्यिककी डायरी'के बाद यह 'काठका सपना' : अर्थात् स्व० मुक्तिबोध लिखित मनुष्यताकी दस्तावेज़का एक और जीवन्त पृष्ठ ! जिसमें मुक्तिबोधकी कुछ कहानियाँ हैं—उनके निधन-कालसे पूर्व तककी ! मुक्तिबोधका सारा साहित्य ही एक अभिशप्त जीवन-जीवी अत्यन्त संवेदनशील सामाजिक व्यक्तिका चिन्तन-विवेचन है । और इन कहानियोंमें तो मुक्तिबोधने युगकी वास्तविकताओंको कुछ इस प्रकार और इतनी हद तक निचोड़कर रख दिया है कि इनमें-से कई तो 'क्लैसिक'-जैसी बन गयी हैं । एक सर्वथा पठनीय कृति ।

परिवेश ■

मोहन राकेश

'परिवेश' शीर्षकसे ये मोहन राकेशके कुछ निबन्ध हैं—निबन्ध, लेकिन ऐसे—जैसे : संस्मरण, हानी, स्केच, यात्राकथा और अनिबन्ध ! बहुतोंको इस परिचयपर कुतूहल होगा, बहुतों-ो विस्मय ! फलतः सभीको ये निबन्ध पढ़ना पड़ेंगे । यही अभीष्ट भी है । तब, सबको सन्नता होगी कि एक अच्छी और आवश्यक कृति पढ़ी और यह भी स्पष्ट हो जायेगा ि विभिन्न विधाओंकी ये रचनाएँ एक विधा-नाममें गुँथकर 'परिवेश' शीर्षकसे क्यों और से सम्बद्ध हो सकीं । इन रचनाओंमें आये पात्र और प्रसंग, सन्दर्भ और संकेत—सब ाने-पहचाने हैं : समकालीन और चर्चित । इसीलिए 'परिवेश' यह लेखकका ही नहीं, ाजके लेखनका भी है, जिसके एक अंग हम सब भी हैं ।

मेपल ■

ाकर माचवे

नवेजीकी विदेशमें लिखी कविताओंका नवीनतम संग्रह । ये कविताएँ एक साथ कई भाषाओंके सत्यांशको रेखांकित करती हैं । ये विशेष इसलिए भी हैं कि इनमें परिचित न और परम्पराओंसे दूर भिन्न देश और परिवेश सामने आये हैं और जो भाव और भाव एक प्रबुद्ध-चिन्तनशील कवि-मनमें स्फुरित हुए उन्हें अभिव्यक्ति मिली । क्रियाका स्वर इन कविताओंका नहीं है, न ही 'अपनेसे' मोहका । इनका स्वर तिका है, और एक संयत जिज्ञासा-पीड़ाका ।····हिन्दीमें तो इस विषय-भूमिकी ताएँ सम्भवतः पहली [illegible] समग्रताके साथ आ रही है ।

■ माया-दर्पण

श्रीकान्त वर्मा

'माया-दर्पण'की कविताएँ भाषा, लय और अनुभवके संसारमें एक नये क़िस्मकी खोज हैं । यह खोज कविताके आरम्भसे नहीं बल्कि अन्तसे शुरू होती है । एक पंक्ति जहाँ समाप्त होती है दूसरी वहीं नाटकीय जन्म लेती है । अभिनयकी मुद्रामें नज़र आती छोटी-छोटी पंक्तियाँ एक लम्बे और अद्भुत् नाटकमें बदल जाती है ।········इन कविताओंके चित्र आजके हिन्दुस्तानीके अन्तर्द्वन्द्वको सही शक़्लमें पेश करते हैं; वे उसके संशय, अनिश्चय, घुटन, व्यंग्य, घृणा और कातरताको ज़बान देनेके अलावा हर चीज़में उसका अर्थ पूछते हैं । वास्तवमें 'माया-दर्पण'की कविताएँ एक ऐसे कविकी कविताएँ हैं जो सभ्यतापर भी व्यंग्य करता है और असभ्यतापर भी !

■ पुरातत्त्वका रोमान्स

भगवतशरण उपाध्याय

पुरातत्त्वका भी क्या कोई रोमान्स होता है ? क्या पत्थर मिट्टी और हड्डियोंका भी रोमान्स हुआ है ?—इन सहज प्रश्नोंका उत्तर भी इतनी ही सहजतासे देती है यह कृति—कि हाँ इनका भी एक रोमान्स होता है ! यह उस पुराने अतीतकी कहानी कहता है, उस दूर—सहस्राब्दियों दूरके अतीतकी, जिसका हमें कभी गुमान भी न था । 'पुरातत्त्वका रोमान्स'में भी एक ऐसा ही रोमान्स है—आकर्ण खिंचे नेत्रोंसे प्रजनित काव्य-रोमान्ससे कहीं अधिक मोहक, कहीं सुखद, कहीं स्थायी ! अधिकारी विद्वान्की अनूठी शैलीमें लिखी पुराकथाएँ : जिनका एक-एक शब्द कल्पनासे कहीं अधिक रोमांचक है !

■ कुतबशतक और उसकी हिन्दुई

डॉ० माताप्रसाद गुप्त

प्रस्तुत कृति, सुदीर्घ गवेषणा और महत्त्वपूर्ण शोध उपलब्धियोंके सम्पुटमें, सूफ़ी प्रेम-काव्यका एक उत्कृष्ट नमूना उपस्थित करती है । हिन्दीमें अपने ढंगकी यह अकेली रचना है और कदाचित् भारतकी अन्य भाषाओंमें भी । मूल कृतिका न कहीं रचना-काल ज्ञात होता है न रचयिताका नाम ही । भाषाकी दृष्टिसे यह १५०० ई० पू०की होनी चाहिए । फ़ारसकी तथा अवधीकी भी अन्य सूफ़ी कथाओंसे एक अर्थमें यह सविशेष है : यह जीवनमें त्याग और बलिदानको अन्यतम महत्त्व देती है । 'कुतबशतक और उसकी हिन्दुई' वास्तवमें एक शोधकृति है और साथके साथ भूमिका-कृति भी ।

कितनी नावों में कितनी बार

अज्ञेय

'अज्ञेय'की १९६२-६६में लिखी गयी कविताओंका यह संग्रह अनेक दृष्टियोंसे उनके पिछले कविता संग्रहोंसे अलग और अधिक उल्लेखनीय है। काव्य-सौष्ठव, शब्द-गरिमा और अभिव्यक्तिके अभूतपूर्व संयमसे अनुप्राणित हैं ये कविताएँ; और कई दृष्टियोंसे उनकी पहलेकी कविताओंसे बदली हुई भी। जीवनके एक अपूर्व बोधसे स्पन्दित 'अज्ञेय' की ये कविताएँ आधुनिक हिन्दी कविताकी अत्यन्त प्राञ्जल और प्रौढ़ उपलब्धि तो कही-मानी जायेंगी ही, निस्सन्देह नयी हिन्दी कविताके लिए एक नये आलोकका द्वार

भारतीय ज्ञानपीठ

■
■

प्रधान कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७।
प्रकाशन कार्यालय :
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५।
विक्रय-केन्द्र :
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-६।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अर्थात्

श्रेष्ठ

अद्वितीय

पठनीय

और

संग्रहणीय

प्रकाशन

प्रत्येक
रुचि-सम्पन्न
कहानी-प्रेमी
पाठक
के
लिए

■ ■

कहानी, नयी कहानी, अकहानी, [illegible]
और कहानी के प्रतिमान ? इन सबके [illegible]
कथा - विधाकी उपलब्धिको रेखांकित करते
हैं हिन्दीके अग्रगण्य नये कथाकारोंके ये

कहानी-संग्रह

मुरदा सराय **शिवप्रसाद सिंह**	४.००
ज़िन्दगी और गुलाबके फूल **उषा प्रियम्वदा**	२.५०
राजा निरबंसिया **कमलेश्वर**	५.००
खेल-खिलौने **राजेन्द्र यादव**	२.००
झाड़ी **श्रीकान्त वर्मा**	३.५०
जय-दोल **अज्ञेय**	३.००
मोतियोंवाले **कर्तारसिंह दुग्गल**	२.५०
सूने अँगन रस बरसै **लक्ष्मीनारायण लाल**	३.००
संघर्षके बाद **विष्णु प्रभाकर**	३.००
कालके पंख **आनन्दप्रकाश जैन**	३.००

दौड़ता है, वह उस वृक्षकी भाँति नहीं था जो जहाँ पैदा हुआ है, वहीं सड़ेगा और वहीं समाप्त हो जायेगा। उसे तो बहना पसन्द था। परिवर्तनको ही वह जीवन समझता था और स्थिरताको मौतका प्रतीक। इस नये वातावरणका उसपर कोई असर न पड़ता, यह मुमकिन नहीं था। पहली तनख्वाह मिलनेके साथ ही उसकी पैण्टें उसकी टाँगोंमें चिपक गयीं, क़मीज़ें सुपरह्वाइट हो गयीं (इतनी कि देखनेवालेको उसकी क़मीज़ोंका सफ़ेद रंग ही खींच ले और वह सोचता रह जाये कि आखिर वह किस लाण्ड्रीमें कपड़े धुलवाता है), खुले हुए कॉलर टाईकी गिरफ़्तमें आ गये और चप्पलोंका स्थान लिया बढ़िया मोज़े-जूतोंने। बालोंको तेलसे चमकाना छोड़कर अब वह शैम्पूसे सिर धोता था और विलक्रीम लगाता था। चलते समय वह हर क़दमपर अपनी एड़ीको कुछ इस तरह ज़ोरसे जमाकर ज़मीनपर रखता था कि देखनेवालेको उसकी चालमें ग़ज़ब नज़र आये और आँखें उसके लचक-भरे शरीरकी तारीफ़ किये बिना न रह सकें। मुझे याद है, जब उसने पहली बार जूते पहने थे तो वह कई दिनों तक चल नहीं सका था क्योंकि चप्पलें पहन-पहनकर चौड़े हो गये पैरोंको अबतक खुले रहनेकी आदत थी, लेकिन बेहद लगने पर भी उसने जूतोंका मोह नहीं छोड़ा था और क़ाफ़ी दिनों तक हलका-हलका लँगड़ाकर चलता रहा था। मुझे यह देखकर भी बेहद हैरानी हुई कि दो महीने बाद ही वह अपने बालोंका स्टाइल बदलवा लेता है। असलमें वह तब तक 'बनने'के प्रोसेसमें था और कोई एक सेट-अप अपने लिए निश्चित नहीं कर पाया था। उसके भीतरकी उथल-पुथल ही उसे इस बाहरी रद्दोबदलके लिए उकसाती थी।

सविके साथ मेरे सम्बन्ध गहनसे गहनतर होते जा रहे हैं—इसकी सूचना अन्य सूचनाओंकी भाँति ही मैंने उसे दी तथा उम्र-भर साथ रहनेका अपना निश्चय उसे बताया। उसके बाद वह सविकी बात-बातमें बहुत क़द्र किया करता था और उसे जब-तब कह दिया करता था (जैसे कि एक ही बातकी बार-बार याद दिला रहा हो) कि उसकी दृष्टिमें यदि किसी रिश्तेकी प्रमुखता है तो उस 'भाभी'के। 'भाभी' शब्दसे ही उसे बहुत प्यार है और भाभियाँ उसे बेहद अच्छी लगती हैं। उसके साथ सम्पर्कके अधिक अवसर आनेके कारण तथा उसका इतना स्नेह-भाव और अपने प्रति सम्मान देखकर सवि उसे सचमुच ही जैसे अपना देवर यानी कि फ़ेमिली-फ़्रेन्ड समझने लगी थी। सवि मुझसे अगर किसी कामके लिए कहती तो वह उसे करनेके लिए तुरन्त तैयार हो जाता। सविकी छोटीसे छोटी इच्छा, जिसकी पूर्ति चाहे उससे अपेक्षित न हो, पूरी करनेके लिए वह जैसे बेचैन हो उठता था। धीरे-धीरे वह बातचीतमें इतना फ़्रैंक होता गया कि उसके मुखसे (जैसे कि दिलसे) यह बात सहज ही निकल जाती थी कि उसे भी सवि-जैसी लड़की ही चाहिए, ईश्वरने दुनियामें दो सवियाँ क्यों नहीं बनायीं? उसने मुझसे भी कहा था कि उसकी और मेरी रुचियाँ

प्रायः एक-जैसी होनेसे लड़की भी उसे वही अधिक प्रभावित करेगी जो मुझे। मैंने उसकी इस बातपर कभी अधिक ध्यान नहीं दिया क्योंकि इतना स्पष्ट होनेके बावजूद वह मुझे कभी घातक नहीं लगा। मैं जानता था, वह मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। वह सिर्फ़ कह सकता है, कुछ करनेका साहस उसमें नहीं है। और फिर सविके प्रति उसकी आस्थामें कोई सचाई है, इसपर भी मुझे शक था, क्योंकि सवि ही पहली लड़की थी जिसको उसने मेरे माध्यमसे इतने नज़दीकसे जाना था, जिसके साथ बात करनेके लिए उसे अनजाने ही अवसर मिलते गये थे। और मेरे विचारमें विपरीत सेक्स जब पहली बार नज़दीकसे अनुभव किया जाता है तो रिश्ता चाहे कोई भी हो या न हो, उसकी ओर सम्मान-भरा झुकाव आपसे आप हो जाता है। मेरी दृष्टिमें ज़िन्दगीमें पहले झुकावका इससे अधिक अर्थ और कोई नहीं है। जितना उसका 'होना' निश्चित होता है, उतनी उसकी सचाई विश्वसनीय नहीं होती। इसीलिए मैं सविकी ओर उसका रुझान देखकर कभी किसी ग़लतफ़हमीमें नहीं पड़ा और न ही उसे महत्त्व देकर मैंने कोई बचाव करना चाहा।

तब तक हम दोनोंमें एक आदत साथ-साथ पड़ चुकी थी—वह थी शराबकी। इसके अतिरिक्त हर नशीली चीज़का स्वाद हमने प्रयोगमात्रके लिए लिया। हर चीज़का प्रत्यक्ष अनुभव वह करना चाहता था। हम दोनों बोतलें लेकर रातके सन्नाटेमें जमुनाके किनारे जा बैठते। उसमें उछलन और मचलन अत्यधिक थी, मैं अपेक्षाकृत शान्त था। इतनी वह पीता नहीं था—इसलिए इतनी उसे चढ़ती भी नहीं थी जितना वह पोज़ करता था। फिर अगले दिन वह सविको अवश्य बताता कि उसने इतनी पी, बेइन्तहा, कि बेहोश पड़ा रहा या लगातार हँसता और रोता रहा। वह और भी कई बार अपने को बुरा कहकर सविकी सहानुभूति ग्रहण करता। उसमें प्रदर्शनका भाव ज़बरदस्त था। कई बार वह अपनी कहानियाँ गढ़-गढ़कर सुनाता, उस समय अपने ही शब्दोंमें स्वयंको बिगड़ा हुआ, गिरा हुआ दिखानेके प्रयासमें उसकी मुखमुद्रा कुछ इस तरहसे मायूस हो जाती—यानी आँखोंको नीचे कर शब्दोंको न कहे जा सकनेकी टोनमें इस तरह तोड़-तोड़कर कहता कि एकाएक उसपर अविश्वास करते न बन पड़ता। उसके भीतर एक भूख थी, एक असफल महत्त्वाकांक्षीकी भूख। जो कुछ उसका प्राप्य था, वह उसका लक्ष्य नहीं था और जो कुछ उसका लक्ष्य था, उस तक वह पहुँच नहीं पाता था, इसीलिए कुछ और, कुछ और पानेकी अतृप्त वासनाएँ उसे अभिनय करनेको विवश करती थीं; और जो वह है अर्थात् असलियतको छुपाकर, जो वह होना चाहता है, उस काल्पनिक सिद्धिको अपने परिचितोंके समूहमें प्रामाणिक कहलवानेके लिए वह भिन्न-भिन्न प्रकारकी झूठी पर सच लग सकनेवाली कहानियाँ गढ़कर सुनाता था। इस तरह उसने दोहरी ज़िन्दगी अख्तियार की। एक जो वास्तवमें थी, दूसरी, जो वह लोगोंके सामने रखना

चाहता था।

उसने मुझे भी कई कहानियाँ सुनायीं, सविकी सहेलियोंके साथ अकेले पिक्चर देख आनेको लेकर, लाइब्रेरीका फ़ाइन माफ़ कर देनेके प्रतिदानमें लड़कियों-द्वारा कॉफ़ीका ऑफ़र रखनेको लेकर, ट्रेनमें बनी दोस्त एक विवाहिता किन्तु पतिसे असन्तुष्ट औरतके साथ उसके ही घर जाकर एक दिनके लिए उसे शारीरिक सुख देनेकी बातको लेकर। इन कहानियोंमें कितना सच था और कितना झूठ, इसका न्याय करनेके लिए कोशिश करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी क्योंकि तबतक उसका दोहरा व्यक्तित्व मेरे सम्मुख स्पष्ट हो गया था।

और फिर मैंने एक कमज़ोर, उसके जितनी लम्बी, मासूम-सी लड़कीको उसके साथ घूमते देखा। लड़कीका नाम उसने मुझे रेखा बताया और काम एक प्राइवेट कम्पनीमें टेलीफ़ोन-ऑपरेटर। बहुत जल्दी ही मैंने उसके मुँहसे सुना कि उसने उस लड़कीको किस कर लिया है और उस लड़कीने इस सबके लिए कोई एतराज़ नहीं किया और मदहोश होकर उसकी गोदमें लेटी रही। अगर कभी ज़रूरत पड़ी तो वह लड़की उससे विवाहके लिए 'हाँ' कर देगी—उसने उसे यहाँ तक पटा लिया है। रेखा नामकी वह कमज़ोर-सी लड़की अनायास ही मेरी सहानुभूतिकी पात्र बन गयी। मुझे लग रहा था कि वह लड़की मुफ़्तमें मारी जायेगी, वह उसके साथ भी दोहरी ज़िन्दगीका खेल खेल रहा होगा, वास्तविकतासे उसे परिचित न कराके उसके साथ भी अभिनय कर रहा होगा। मुझे रेखा पर तरस हो आया परन्तु मैं कुछ कर नहीं सकता था, कुछ करना भी नहीं चाहता था।

कुछ महीनोंके बाद उसके घरसे मुझे पता चला कि रेखाके साथ उसके विवाहकी बातचीत चल रही है। तो यह कहानी वाक़ई सीरियस थी, आख़िर वह कहीं तो सिन्सीयर है! मैं उसे वैसे ही खिलाड़ी समझता था, क्या मैंने उसे यहाँ ग़लत समझा था? मुझे अपने पहलेके सोचे हुए पर शर्म आयी। उसने मुझे यह बात स्वयं नहीं बतायी। जब मैंने ज़िक्र किया तो बोला, "यार, जब तुमने हमारा कोई ख़याल न रखा और शादी करके बैठ गये तो हम क्या करते?" मुझे भीतरसे थोड़ी प्रसन्नता हुई, शायद अब वह सँभल जायेगा, शायद अब उसने स्थिरताका वह केन्द्र-बिन्दु खोज लिया है जहाँ पहुँचकर उसकी भटकन समाप्त हो जायेगी।

वफ़ादारी और निभानेकी बातको उसने किस रूपमें लिया है—यह प्रश्न मेरे सम्मुख उस समय उठा जब उसने सविसे अनुरोध किया कि वह रेखासे बातों-बातोंमें यह पता लगा ले कि दहेजमें क्या-क्या आयेगा। मुझे उसकी इस याचक-प्रवृत्तिसे वैसे कोई घृणा नहीं हुई क्योंकि मैंने देखा है कि सामान्यतया मध्यम वर्गके लड़के और परिवारसे यह बात अपेक्षित ही होती है। उनके अपने पास अपनी इच्छाओं और ज़रूरतोंकी पूर्तिके लिए पर्याप्त साधन नहीं होते, इस तरह अभावोंमें पल-पल कर वे विवाहके बहाने कुछ सालोंका कोटा पूरा कर लेना चाहते हैं। मैंने यूँ उससे

उसकी गहराई तक जानेके लिए प्रश्न किया कि जितना कुछ वह चाहता है, उतना न आनेकी सूरतमें क्या वह विवाहसे इन्कार कर देगा ? विवाहसे इन्कारकी बात तो उसने नहीं कही, पर उसने रेखा-द्वारा ढेर सामान लानेकी अपनी इच्छा ज़रूर प्रकट की, जिससे उसका घर भर जाये।

उसके और रेखाके बीच इस विषयको लेकर क्या तय हुआ, इसका कोई ज़िक्र उसने मुझसे नहीं किया। हाँ, अपने विवाहके पन्द्रह दिन पूर्व उसने विवाहके प्रति अपनी अनिच्छा और दृढ़ अस्वीकृतिका प्रचार करना शुरू कर दिया। उसका कहना था कि रेखा-जैसी कमज़ोर, लिजलिजी और बीमार-सी दिखनेवाली लड़की उसे पसन्द नहीं, जिसको छूने पर सिर्फ़ हड्डियोंकी चुभन ही हाथ आती है! रेखाके साथ अब तक उसने किस तरह काटी, इसका उसके पास कोई उत्तर नहीं था। हर बातके पीछे कोई-न-कोई कारण होना और उसका जवाब देना वह ज़रूरी नहीं समझता था। घरवालोंकी परेशानी पूरी कोशिशोंसे उसकी मिन्नतें करनेमें जुट गयी। उसपर मेरी बातका कोई असर हो सकनेकी सम्भावनामें मुझसे भी उससे 'हाँ' करवानेके लिए अनुरोध किये गये। मैं इस मामलेमें बिलकुल तटस्थ रहना चाहता था। पहली बात तो यह थी कि मैं किसीसे ज़बरदस्ती कोई 'हाँ' करवानेके पक्षमें नहीं था, दूसरी बात यह कि इस बवण्डरके पीछे वह मुझे कमज़ोर ही लग रहा था। मुझे न जाने क्यों यह विश्वास था कि हो-हल्ला मचाकर वह स्वयं शान्त हो जायेगा। विवाहके प्रस्तावको अस्वीकार दे—ऐसी ग़लती वह कभी नहीं करेगा! उसे अपनी कमियोंके बारेमें खुद पता होगा कि फिर उसके लिए हर महीने ढाई सौ रुपये लानेवाली रेखा-जैसी लड़की मिलना कठिन हो जायेगा।

और फिर विवाहके दिन मैंने उसे बहुत खुश देखा। पन्द्रह दिन उसने इतना ऊधम क्यों मचाये रखा—इसका भी उसके पास कोई जवाब नहीं था। किसी भी बातको क्लियरीफ़ाई करनेमें वह हीनता महसूस करता था। उसका कहना था कि वह किसीपर आश्रित नहीं है, जो किसीको अपने अच्छे-बुरे कामोंकी सफ़ाई देता फिरे। उसके ही शब्दोंमें रेखाके अतिरिक्त अन्य कोई लड़की उसके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती थी, अब उसका ऐसा ही मूड था। उसकी नियति यही थी। मैं जानता था, वह प्रदर्शन-प्रिय है, वह हलचलोंको पसन्द करता है इसलिए कि लोग उसे देखें, उसके बारेमें चर्चाएँ करें जिससे कि महत्त्वहीन होनेपर भी वह अपनेको महत्त्वपूर्ण महसूस कर सके। दिखावे और बनावटका उसने इस हद तक आश्रय लिया हुआ था कि वे अब उसका ही अंग लगते थे और उससे अलग अपनी असलियतमें वह पहचाना जा सकेगा, इसमें मुझे क्या, उसे भी शक होगा।

■ ■

१६१४५, देवनगर
नयी दिल्ली-५

दस शीर्षस्थ उपन्यासकार!
दस उपन्यास !!

हिन्दीमें अपने ढंगके अनूठे उपन्यास : जिन्हें पढ़कर आप कथानककी रसधारमें बहते चले जायेंगे, और पात्र ऐसे सच्चे और जीवन्त लगेंगे कि अनेककी याद आपको बार-बार हो आया करेगी।

* * *

ये सभी महत्त्वपूर्ण और रोचक उपन्यास प्रत्येक सुरुचि-सम्पन्न पाठकके लिए अनिवार्य रूपसे पठनीय और संग्रहणीय हैं।

* * *

• **जुलूस** फणीश्वरनाथ 'रेणु'		३.५०
• **शतरंज के मोहरे** अमृतलाल नागर		६.००
• **अस्तंगता** 'भिक्खु'		६.००
• **गुनाहों का देवता** धर्मवीर भारती		५.००
• **जो** प्रभाकर माचवे		३.००
• **अठारह सूरज के पौधे** रमेश बक्षी		३.००
• **तीसरा नेत्र** आनन्दप्रकाश जैन		२.५०
• **अपने अपने अजनबी** अज्ञेय		३.००
• **मुक्तिदूत** वीरेन्द्रकुमार जैन		५.००
• **पीले गुलाब की आत्मा** विश्वम्भर 'मानव'		४.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र :
३६२०/२१,
नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-६

* * *

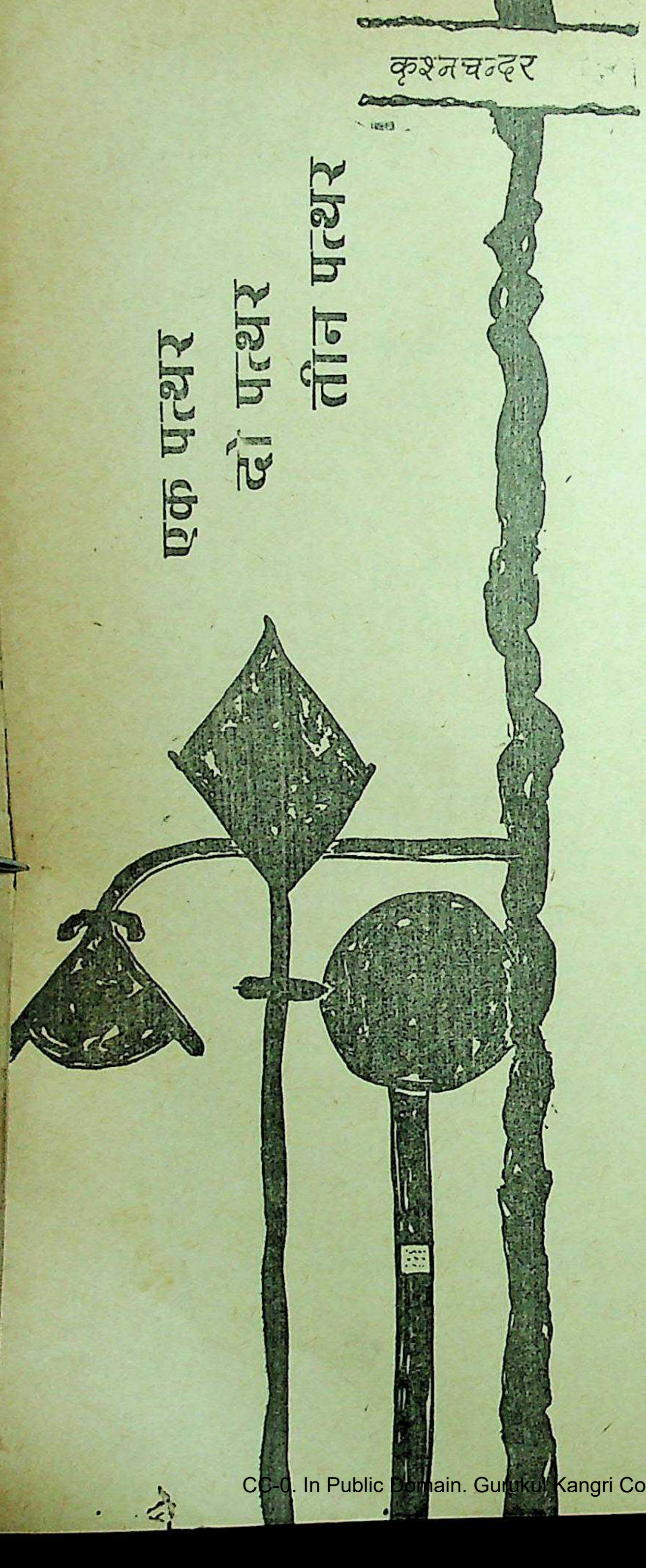

एक पत्थर दो पत्थर तीन पत्थर

कृश्नचन्दर

[आपने पिछले अंकों में पढ़ा :
लन्दनमें डॉक्टरी पेशमें उलझे कँवलप्रसाद सक्सेना जूलीके आकर्षणमें बँधकर हेनरीकी स्टडीमें एक दुर्घटनाको ख़ुद निमन्त्रण दे लेते हैं—जूलीके अन्य तीन पतियोंसे मुक्केबाज़ीमें ध्वस्त होकर हस्पताल जा पहुँचते हैं। जूली बहुत परेशान होती है कि वे तीन पति उसे संकटमें डालेंगे। जब वह कँवलसे मिलती है कि वह किसी तरह चुप हो जाये तो वह चौथा पति बननेकी ख़्वाहिश रोक नहीं पाता। जूली साफ़ मना कर देती है क्योंकि काला आदमी उसका पति नहीं हो सकता। तब कँवल माँगता है एक लाख डॉलर। जूलीकी हैसियतसे बाहरकी रक़म थी यह। आख़िर जूली लन्दनसे भाग पड़ती है—रेस कोर्समें भाग लेनेवाले मोटर चालक हेरी एंस्ट्रीलके साथ और दुर्घटनाका शिकार होती है। हेरी मर जाता है। पर जूली मांसका मुरब्बा मात्र बनकर जीवित रहती है। माँसके मुरब्बेमें दो चमकती आँखें—बस। कँवलके लिए यह असह्य है, इससे अच्छा तो यह कि जूली मर जाये! पर फिर उसे लगता है कि जूलीको जीवित रखना ही होगा—प्रतीकारस्वरूप और वह जूलीको अपनी देख-रेखमें रखनेकी अनुमति प्राप्त कर लेता है। फिर....]

धारावाहिक उपन्यास-४

रिचर्ड स्नोक्राफ़्ट और थामस मैकफ़ारलेनसे हस्ताक्षर लेना कोई मुश्किल काम न रहा क्योंकि जूलीका बच जाना समाचार-पत्रोंमें एक चिकित्सा-सम्बन्धी चमत्कार समझा जाने लगा था। यह ख़बर भी अख़बारोंमें फैल चुकी थी कि सेण्ट जार्जके विशेषज्ञ जूलीको एक नया शरीर देनेकी चेष्टा कर रहे हैं। जूलीकी वर्तमान स्थितिके विषयमें भी अनेकों समाचार प्रकाशित हुए थे—उसे साधारणतः 'स्पेस जेली'के नामसे याद किया जाता था। अन्तरिक्ष-उड़ानों, साइन्स-फ़िक्शन और दूसरे नक्षत्रोंमें सुबोध जीवनकी खोजके विषयमें जो लेख यदा-कदा प्रकाशित होते रहते थे, यह नाम उन्हीं रोचक तथा सनसनीपूर्ण उल्लेखोंका नतीजा जान पड़ता था। जूलीपर 'स्पेस जेली'का सर्वनाम चिपक गया था। इसलिए कँवलके लिए जूलीके पहले दोनों पतियोंके हस्ताक्षर लेना कठिन न रहा—क्योंकि उन दोनोंमें-से कोई भी जूलीकी इस लम्बी बीमारी और उसके होनेवाले अनेकों ऑपरेशनों और देखभालके अन्य कामकी जवाबदेही लेनेको तैयार न था। कँवलने उन दोनोंके सामने बहुत सरल-सा हल रख दिया था। एक सादे काग़ज़पर उसने दो वाक्य टाइप करा लिये थे :

"जूलीपर मेरा किसी प्रकारका कोई क्लेम या अधिकार नहीं····बीते दिनोंमें जो कुछ हुआ उसके लिए मैं कोई क़ानूनी कार्यवाही नहीं करूँगा।"

यह चिट लेकर सबसे पहले मैं बॉक्सरके पास गया। स्नोक्राफ़्ट अमरीकासे हारकर वापस आ चुका था। वह बहुत ही सुलझे हुए गम्भीर मूडमें मुझसे मिला—"ओह ! वह स्पेस जेली !" उसने समाचार-पत्रोंवाला पिटा-पिटाया आक्षेप दुहराया और काग़ज़पर बिना सोचे-समझे हस्ताक्षर कर दिये और फिर बड़े ज़ोरसे मुझसे हाथ मिलाया जैसे उसने सदा-सदाके लिए जूलीसे हाथ उठा लिया हो।

मैकफ़ारलेनने भी अधिक समय नहीं लिया परन्तु उसने एक प्रश्न मुझसे अवश्य किया 'तुम्हें जूलीमें क्या दिलचस्पी है ?"

"केवल चिकित्सा सम्बन्धी।"

"ओह, या यह बात है····कि तुम योगका कोई नुस्ख़ा उसपर आज़मानेवाले हो। मैंने सुना है, हिन्दुस्तानमें कई एक ऐसी रहस्यमयी दवाएँ पायी जाती हैं, जिनसे पूरे शरीरका कायाकल्प हो सकता है···"

"यदि ऐसी कोई दवा है तो मुझे मालूम नहीं। मैं तो केवल प्लास्टिक सर्जरी जानता हूँ और उसीके जाने-पहचाने तरीक़े आज़माऊँगा। आपको कुछ संकोच है इस काग़ज़पर हस्ताक्षर करनेसे ? मुझे मालूम है, न्यायकी दृष्टिमें इस काग़ज़के तुच्छसे पुर्जेका कोई महत्त्व नहीं है पर मानसिक रूपसे मुझे अपनी चिकित्सामें सहायता मिलेगी। जूली···· एक क्लीन स्लेट···· नया जीवन वह लड़ सकेगी। मेरा तात्पर्य आप समझ गये होंगे····।"

"परफ़ेक्टली माई बॉय, परफ़ेक्टली !" मैकफ़ारलेनने हस्ताक्षर कर दिये ।

मैंने उठते-उठते उससे पूछा, "तुम्हें मालूम है, जूलीका तीसरा पति कहाँ है ? जेम्स क्लिफ़्ट—उपन्यासकार ? मैंने उसके फ़्लैटपर फ़ोन किया तो किसीने उत्तर ही नहीं दिया, शायद इसराइल जानेवाला था····"

"इसराइलसे वापस आ गया, लेकिन लन्दन वापस नहीं आया—ओलीदोमें विश्राम कर रहा है ।"

"ओलीदो कहाँ है ?"

"स्पेनमें ।"

"स्पेनमें····? कहाँ पर ?"

"म्लागाके पास····एक छोटा-सा बन्दरगाह है····माहीगीरोंका एक छोटा-सा क़स्बा है, वहाँ वह आराम कर रहा है । जूलीके मुक़दमेके विषयमें मेरा उसका पत्र-व्यवहार रहा है····पिछले पन्द्रह-बीस दिनोंसे उसका कोई पत्र मेरे पास नहीं आया है । जिम एक विश्व सैलानी है । आज यहाँ तो कल वहाँ ····उसे पकड़ना बहुत कठिन है ।"

"मैं कोशिश करूँगा ।"

"गुड लक टू यू····" उसने मुझसे हाथ मिलाया और अब मुझे ओलीदो याद आता है········कुछ पहाड़ी टीलोंपर आबाद एक ग़रीब स्पेनी क़स्बा····चरणोंमें मेडीटेरेनियन लहरें लेता हुआ····रेत पर गधे घूमते हुए और टीलोंकी ओटमें जली झाड़ियों और कहीं-कहींपर अंजीर और जैतूनके वृक्ष··· जिम मुझे सबसे ऊंचे टीलेपर खड़े एक पुराने मूरी खण्डहरकी टूटी हुई कमानके नीचे मिल गया । उसने अपने सामने एक मछेरेको बिठा रखा था और वह उसका पोर्ट्रेट बना रहा था । वे दोनों बीच-बीचमें बातें करते हुए गाँवकी खिंची हुई गाढ़ी शराब पीते जाते थे····जो देखते ही इतनी ग़लीज़ मालूम होती थी कि उसे पचानेके लिए किसी घोड़े के मेदेकी ज़रूरत थी ।

मैंने चित्रकी ओर देखकर आश्चर्यसे पूछा, "चित्र तो तुम एक गधेका बना रहे हो ।"

"यस,····मगर यह मछेरा इन्सपीरेशनका काम करता है ।"

"पर गधे और मछेरेकी संगत या समानता ही क्या ?"

"मानसिक समानता तो है····ध्यानसे इस मछेरेके चेहरेको पढ़ो और फिर एक गधेका चेहरा ध्यानमें लाओ, और फिर दोनोंको एक-दूसरेमें गड्मड् कर दो····फिर इस मछेरेके चेहरेकी तरफ़ देखो तो तुम्हें साफ़ इसमें किसी गधेके आकार उभरते हुए नज़र आयेंगे । इस क्रियासे मैं इस मछेरेको लेकर एक स्पेनी सुन्दरी, एक चाक़ू या बन्दर, हब्शी या चट्टानके चित्र खींच सकता हूँ ।

यह एक कॉस्मिक लॉ है कि प्रत्येक वस्तु किसी अन्य दूसरी वस्तुसे निकली है और अपने आरम्भ और अन्तमें सारी चीज़ोंका आधार समान है । नो···नो····नो । मैं ख़ुदाकी बात नहीं करता हूँ, केवल विज्ञानकी···वैसे तुम्हारे उपनिषद् भी तो यही लिखते हैं····पर इस समयके धर्मकी बात भी नहीं करता, केवल विज्ञानकी····पर एक विचित्र-सी बात तुम देखोगे, इस गाँवके

गधे और मछेरेमें कोई विशेष अन्तर नहीं है, दोनों अपने गाँवसे परे दूर नहीं देख सकते। दोनों समुन्दर-तटपर अपना-अपना काम करते हैं···दोनों सिर झुकाकर एक ही ढर्रेपर सैकड़ों वर्षोंसे, हज़ारों सालोंसे एक ही प्रकारका काम करते चले आये हैं···तो फिर बताओ, चेहरोंमें समानता होगी कि नहीं? मैं इसीलिए माडर्न जीवनके हक़में हूँ कि उसने वैरायटी पैदा की है····मशीनोंके होते हुए भी एक असीम वैरायटी। इनसानोंकी शक्लें कभी इतनी बदली हुई न थीं जितनी वे आज हैं। मुझे समझ गये....क्या कहता हूँ मैं?"

"नहीं," मैंने कहा, "और फिर यह भी नहीं समझा कि तुम एक उपन्यासकार हो, तो तुम ये चित्र क्यों बना रहे हो?"

"उपन्यास भी तो चित्रोंका एक एलबम होता है। एक चीज़ दूसरेसे जुड़ी होती है····मैं सारा संसार घूमा हूँ, कभी किसी चीज़को अकेला नहीं देखा, किसी-न-किसीसे जुड़ा हुआ ही पाया है। तुम्हें मालूम है, इस दुनियाका सबसे बड़ा प्रॉब्लम क्या है····कोई अकेला नहीं है····पुरानी दुनियामें फिर भी कोई अकेला मिल जाता था, आजकलकी पेचीदा ज़िन्दगीमें कहीं कोई अकेला नहीं मिलता····यह शराब पीयो····इस क़स्बेकी शराब स्पेनकी बेहतरीन शराबोंमें गिनी जाती है। इसे केवल गधे और मछेरे पी सकते हैं, इसे पीना नरककी आगका मज़ा चखना है और चूंकि हम सब नरकमें जानेवाले हैं, तुम्हारे समेत डॉक्टर, इसलिए अभीसे इस शराबकी आदत क्यों न डाल लें···नरकमें भी हमें अकेला नहीं रहने दिया जायेगा और स्वर्गमें फ़रिश्ते स्कूल-मास्टरोंकी तरह मसीह और उसके ख़ुदकी श्रेष्ठताका सबक़ पढ़ाया करेंगे···पढ़ो बच्चो,····पीयो ज़िराफ़!"

वह अधेड़ उमरके स्पेनी मछेरेको ज़िराफ़ कहता था क्योंकि उसकी गरदन लम्बी थी और शरीरपर अनेकों धारियोंवाला कपड़ा था और उसका चेहरा भी दुबला और लम्बोतरा था—जैम्स क्लिफ़टमें दो बिलकुल भिन्न और देखनेमें बिलकुल अलग-अलग चीज़ोंके बीच गहरी समानता देख लेनेका बड़ा अजीब गुण था—शायद इसी गुणने उसे एक सफल उपन्यासकार बना दिया था।

मैंने उसे ख़ुश करनेके लिए दो-तीन घूंट ज़बरन हलक़में उँड़ेले—बड़ी तेज़ और कड़वी शराब थी! बकरीकी ख़ाल-जैसी बदबू उसमेंसे आती थी और बादमें ज़बानपर खारी कीचड़-जैसा स्वाद देती थी, मगर क्या करूं—इस कमबख़्त उपन्यासकारको इस समय ख़ुश तो करना ही पड़ेगा, जो इस वक़्त मुझे बोलनेका बिलकुल अवसर ही नहीं दे रहा था!

"क्या इसराईलमें किसी उपन्यासका प्लॉट नहीं मिला?"

"बड़ा छोटा-सा देश है। चारों ओर मुसीबतोंसे घिरा हुआ····जिस इसराईलीको देखो, होंठ भींचे काम कर रहा है····डायनामाइटकी पोट मालूम होता है····ज़रा-सा स्विच दबानेसे झक्से उड़ जायेगा! यू नो, जिस तरहसे मैं इस क़स्बेके साहिलकी रेतपर

लेटकर विश्राम कर सकता हूँ, स्वप्नों और विचारोंमें खो सकता हूँ, ऐसा तो एक पल भी मुझे इसराईलमें नहीं मिला। आई कुड नॉट रिलेक्स फ़ॉर ए मोमेण्ट····और मैंने सोचा, मैं क्या लिखूँगा इसराईलके विषयमें! यह तो ऐसा ही है जैसे कोई दिव्यताके विषयमें कुछ लिखे·· ऐसी दिव्यता जो किसी विचित्र घटनाके इन्तज़ारमें वायुमण्डलमें लटक रही हो! ऑल इसराईल इज़ वेटिंग फ़ॉर समथिंग टु हैपेन····और ये यहूदियोंके बुनियादी आचरणके विरुद्ध हैं। जनाब, यहूदी इन्तज़ार नहीं करता, वह केवल प्रेम करता है····! मैंने यहूदियोंसे ज़्यादा रूमानी क़ौम नहीं देखी। यह पुरानी विश्व-सैलानी क़ौम स्वप्निल आँखें लिये, सीनेमें सारे ज़मानेका दर्द लिये दर-बदर घूमती रहती है और अब एक जगह इकट्ठी हो रही है—यही इस जातिका सबसे बड़ा दुःख है कि यह अपने आरम्भको लौट रही है और एक जगह जमा हो रही है। यह पूरी मानवताकी ट्रेजेडी है और कॉस्मिक लॉके विरुद्ध है।

किस कॉस्मिक-लॉके विरुद्ध—तुम मुझसे पूछोगे, और मैं तुम्हें बताऊँगा, क्योंकि मालूम होता है, तुमने अपने उपनिषद् भी नहीं पढ़े। इसलिए मुझे तुम्हें बताना पड़ेगा कि कभी यह सारी दुनिया और सारी प्रकृति एक थी····एक मुट्ठीके समान बन्द थी, फिर यह बिखरना शुरू हुई और अब हर ग्रह दूसरे ग्रहसे और प्रत्येक सूर्यमण्डल दूसरे सूर्यमण्डलसे और हर गैलेक्सी दूसरी गैलेक्सीसे भाग रही है और दिन-प्रतिदिन यह फ़ासला बढ़ता जा रहा है! ऐसे में यहूदी क़ौमकी उन्नति हुई थी, कि यह फैल रही थी, बिखर रही थी, दूसरी जातियोंमें एक खमीरकी तरह मिल रही थी और अब उसने कॉस्मिक लॉको पलट दिया है और फिरसे एक मुट्ठीमें बन्द हो रही है····इसलिए गैलेलीकी घाटीमें अब एक डेविड तो फिरसे पैदा हो सकता है मगर आइन्स्टाइन नहीं। आइन्स्टाइनके लिए बहुत खुला आकाश चाहिए और तुम समझ सकते हो क्या·· मैं इसराईलसे भागकर क्यों स्पेनमें आया हूँ···· क्योंकि किसी समयमें स्पेनको भी इसी समस्याका सामना करना पड़ा था जो आज इसराईलको है।

इस मस्जिदकी टूटी महराबको देखते हो यह सात सौ वर्षीय इस्लामी विजयकी यादगार है! इसराईल और स्पेन दोनोंने एक ही ढंगसे इस समस्याको हल किया है। ईसाई एकताने स्पेनके मूरी-तत्त्वसे युद्ध किया और मुसलमानोंको आइरेबियन द्वीप-समूहसे निकाल दिया। विलकुल उसी तरह जिस तरह इसराईलने फ़लस्तीनी मुसलमानोंको अभी नयी रियासतसे निकाला है। इसमें समानता तो मिल जाती है मगर प्रभेद नहीं मिलता! सिमटनेमें तंगनज़री है—बिखरनेमें फैलाव है और इस समय कॉस्मिक लॉ भी यही है कि वही क़ौमें उन्नति करेंगी जो बिखरेंगी····। तुम मुझे समझ रहे हो·· युरॅपको देखो, जब यह अपनी युरॅपीय ताससे निकला और सारे संसारमें बिखरा तो उसने उन्नति की···· इसी प्रकार इस्लामने उन्नति की थी एक समयमें। सिमटनेमें ज़र्रे भारी हो जाते हैं,

क़दम जम जाते हैं, मगर तुम हिन्दुस्तानी हो, तुम्हें इस दर्शनसे दूर-दूरका सम्बन्ध नहीं····तुम एक केलेके पेड़के नीचे ध्यानमें मग्न होकर सारे संसारसे अलग-अलग रह सकते हो—दुनियाकी सबसे विचित्र क़ौम हिन्दुस्तानी है, उसपर किसी आक्रमणका, किसी शक्तिका, किसीकी दासताका, किसीकी स्वतन्त्रताका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सिर झुकाये एक ही भावमें चली जा रही है····मगर तुम यहाँ क्यों आये हो ?''

"बिखरनेके लिए।'' मैंने उसे जवाब दिया।

"बिखरनेके लिए ?'' उसने मुझसे पूछा।

"हाँ, तुम्हारे कथनानुसार यदि मनुष्य बिखरनेसे उन्नति कर सकता है तो आजकल हिन्दुस्तानी सबसे अधिक उन्नति कर रहे हैं, क्योंकि वे संसारके प्रत्येक भागमें पाये जाते हैं। कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ हमारा घर न हो। अनुमानतः बिखरनेके मैदानमें हम यहूदियोंकी जगह लेंगे, हम भी उतने ही पुराने हैं, उतने ही रीति-रिवाजोंको माननेवाले···उतने ही सहनशील!''

"इसीलिए तुम्हारा अन्त भी यहूदियोंका-सा होगा····या स्पेनका-सा····।''

"वह सम्भव नहीं है क्योंकि हमने किसीको निकाला नहीं है। कोई हमसे अलग हो गया हो पर हमने किसीको नहीं निकाला है···और फिर हमारा देश बहुत बड़ा है, हम अपनी एकतामें अनेकता रखते हैं और अपने कलचरकी चारदीवारीमें बहुत-से प्रयोग करते रहते हैं, जो इसराईलने नहीं किये, स्पेनने भी नहीं किये, पूरे युरॅपने नहीं किये। कॉस्मिक-लॉ की बात करते हो, वह क़ानून क्यों भूल जाते हो जो प्रकृतिमें प्रचलित है—जब एक वस्तु किसी अन्य वस्तुमें मिल जाती है, घटनाओं और स्थितिकी कुटालीमें विरोधसे मिश्रण तककी जो गति चलती रहती है उससे युरॅपकी ईसाइयतने, मध्य एशियाके मुसलमानोंने और यहूदियोंने विश्व-स्तरपर बिखरते हुए भी इसी तत्त्व-सम्मिश्रणका सदा विरोध किया है। योर वे ऑफ़ लाइफ़ इज एक्सक्लूसिव, नॉट इनक्ल्यूसिव। तुम कॉस्मिक होनेकी बात कैसे कह सकते हो, जब तुम व्यक्तिगत स्तरपर एक मामूली-सी नातजुर्बेकार लड़कीको क्षमा नहीं कर सकते····जो अपने विवाहित जीवनमें सिमटी नहीं थी, ज़रा बिखरी थी····।''

"आह···जूली !'' जिमने एक ज़ोरका क़हक़हा लगाया, "तुम उसकी ओरसे आये हो ?''

"मैं स्वयं आया हूँ···अपनी ओरसे। ये दो वाक्य लेकर···इनपर हस्ताक्षर कर दो। उसे मैंने कुछ नहीं बताया है, अभी वह इस हालतमें भी नहीं है कि उसे कुछ बताया जा सके। लेकिन अगर तुम इसपर हस्ताक्षर कर दोगे तो मेरे लिए आसानी हो जायेगी। अभी उसका मस्तिष्क, उसका शरीर, उसका पूरा व्यक्तित्व एक टूटी हुई डबल रोटीके समान है—टुकड़े-टुकड़े····रूईके समान धुनी हुई····मुझे इस रोटीको फिरसे आटेमें बदलकर उससे फिर रोटी बनाना है।

“तुम अपना समय क्यों नष्ट करते हो…जूली ऐसी लड़की नहीं है जिसके लिए कोई अपनी मूल्यवान जीवनका एक पल भी नष्ट करे। उसके पास एक सुन्दर शरीर था—बस। जब वह भी चला गया तो उसपर समय नष्ट करना बेकार है, क्योंकि उसके पास और कुछ था ही नहीं…अब तो सुना है, वह केवल एक जेली है, मांस और हड्डियों का मिश्रण…!”

“इस काग़ज़पर हस्ताक्षर कर दोगे ?”

उसने काग़ज़पर अंकित दोनों वाक्योंको लापरवाहीसे पढ़ा, फिर बुर्श उठाकर उसने नीचे हस्ताक्षर कर दिये और बोला, “इस क़स्बेमें केवल एक ही सराय है और उसमें एक ही अच्छा कमरा है, आज रात तुम मेरे मेहमान रहोगे।”

‘धन्यवाद, पर मैं तो आज रात ही वापस मलागा चला जा रहा हूँ…मैं मलागासे एक मोटर-लांच लाया था।”

जबसे जूली होशमें आयी थी, उसने मुझसे बात नहीं की थी। वह जहाँ तक हो सके, किसीसे बात नहीं करती थी। अब उसके चेहरेसे पट्टी उतर चुकी थी, केवल बाज़ू और धड़ पट्टियोंमें बँधे थे। उसका बदसूरत चेहरा उसे दिखा दिया गया था। उस चेहरेको देखकर उसने कोई चीख नहीं मारी थी—केवल ज़ोरसे अपने होठ भींच लिये थे, इतने ज़ोरसे जैसे वह अपने होठोंका सारा रक्त पी जायेगी। उसकी कनपटियोंकी नसें उभर आयी थीं और सारा चेहरा नीला पड़ गया था। फिर धीरेसे उसने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं और नर्स एलिज़ाबेथसे प्रार्थना की थी कि “मुझे ख़तम कर दो!”

फिर उसके मुँहसे तरल-पदार्थ पहुँचानेवाली नलकी निकाली गयी तो उसने खाना खानेसे इनकार कर दिया—किसीके समझाने बुझानेपर राज़ी न हुई। अब तक मैंने अपने आपको पीछे ही रखा था, जान-बूझकर, क्योंकि वह मेरी सूरत ही से घृणा करती थी और मैं उसके मस्तिष्कपर और अधिक भार नहीं डालना चाहता था। इसीलिए मैंने नर्सोंको मना कर दिया था कि यदि वह खाना नहीं खाना चाहती तो उसे खाना न दिया जाये…मैं इस बातकी आशा कर रहा था कि जब उसका शरीर खाना माँगेगा तो वह अपने आप खाना माँगेगी पर जब पूरे दो दिन और दो रातें उसने खाना नहीं खाया तो मैंने उससे फ़ैसलेकी बात करनेका इरादा किया। मैं कब तक इस प्रकार गुप्त रूपसे छिपा रह सकता था। यह बात तो मुझे उससे करनी ही थी। और यदि मैं जूलीका सहयोग प्राप्त न कर सका तो मैं अपने इरादोंमें सफल भी नहीं हो सकता था। बात होगी, और बहुत साफ़-साफ़, बिना किसी लाग-लपेटके।

दूसरी रात खानेसे इनकारके बाद कोई दस बजेके लगभग मैं अलग-अलग पलंगोंके चक्कर लगाता हुआ, रोगियोंका निरीक्षण करता हुआ, उसके कमरेमें पहुँचा और कुर्सी

खींचकर उसके पलंगके पास बैठ गया। ड्यूटी देनेवाली नर्स जाईसको बाहर भेज दिया।

"हल्लो बदसूरत···!" मैंने उसे पुकारा।

जूलीने मुँह फेर लिया।

"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

जूली मुँह फेरे चुप रही।

"मगर बात करनेसे पहले मैं चाहता हूँ कि तुम इन तीन काग़ज़ोंपर एक नज़र डाल लो।"

उसकी गरदन मेरी ओर घूमी। मैंने तीनों लिखे काग़ज़ उसे दिखाये—उसके पहले तीनों पतियोंके।

"मुझे बड़ी परेशानी उठानी पड़ी है इन तीनों हस्ताक्षरोंको प्राप्त करनेमें···। क्लिफ़्टकी तलाशमें मुझे स्पेन तक जाना पड़ा है····ख़ैर, वह सब कुछ हो गया····अब तुम स्वतन्त्र हो? तुम फिरसे नया जीवन शुरू कर सकती हो!"

"एक स्पंजके समान?" उसके होठोंपर एक बेबस-सी मुसकान झलकी।

वे होठ जो अब एक फटे हुए कद्दूके टुकड़ोंके समान थे, पिचके हुए नाकके बाँसेसे अभी तक एलूमीनियमकी दो नलकियाँ लगी थीं जो नथुनोंका काम देती थीं।

"यदि तुम मेरे साथ सहयोग करोगी तो शायद मैं तुम्हें फिरसे एक नया शरीर देनेमें सफल हो जाऊँगा। पहलेके समान सुन्दर शरीर तो नहीं होगा तुम्हारा पर एक उपयोगी शरीर—हाथ-पाँव, नाक-कान, गरदन, धड़वाला शरीर—एक स्त्रीका समूचा शरीर जिसे देखकर किसीको घिन नहीं आयेगी, जिसे देखकर बच्चे डरेंगे नहीं, तुम्हारा अपना शरीर, किसी मैग्ज़ीनकी माडल-गर्लका शरीर नहीं पर ऐसा शरीर जैसा हज़ारों-लाखों उन औरतोंका होता है जो सभ्य घरोंकी माताएँ होती हैं, जिनसे उनके पति और बच्चे प्यार करते हैं····एक मध्यम श्रेणीका शरीर, कुछ त्रुटियों और अभावोंके होते हुए····जिनके लिए मैं पहलेसे क्षमा माँग लेता हूँ क्योंकि विज्ञानने अभी इतनी उन्नति नहीं की है कि वह मानवीय शरीरको ज्योंका त्यों बनाये···· मगर मेरी नज़रमें कुछ नये प्रयोग हैं जिन्हें मैं तुमपर आज़माना चाहता हूँ। हड्डी और माँस, रगों और नसोंके नये ग्राफ़्स जो अब तक किसी मानवीय शरीरपर नहीं आज़माये गये—वे अब मैं तुमपर आज़माऊँगा! और तुम्हारा क्या जायेगा, सोचो····जिस बिगड़ी हुई हालतमें तुम अब हो इससे बुरी हालतकी कल्पना सम्भव नहीं, तो फिर मुझसे सहयोग ही क्यों न कर लो, वैसे मैं तुमको यह बात बता दूं कि यदि तुम मुझसे सहयोग नहीं करोगी तो भी मैं अपनी-सी कर गुज़रूँगा··· मैं तो अपने प्रयोग करने ही वाला हूँ और हस्पतालके हेडने मुझे इसकी आज्ञा भी दे दी है, पर रोगी यदि सहयोग करे तो····डॉक्टर और रोगीके मानसिक और परस्पर सहयोगसे इलाज बहुत आसान हो सकता है!··· सहयोग करनेकी पहली शर्त यह है कि आज तुम खाना खा लो! रोज़ खाना खा लिया करो, आत्महत्या करना कुछ कठिन नहीं। किसी रोज़, किसी भी समय आत्महत्या की

जा सकती है····चौबीस घंटे तो किसी मर्द-औरतपर निगरानी नहीं रखी जा सकती···· इस संसारमें एक यही तो बात है जिसपर अपना पूरा अधिकार है····आत्महत्या··· क्यों न इसके लिए कुछ महीने ठहरा जाये··· छह महीनेमें कुछ अधिक काम तो नहीं हो सकता····उदाहरणत: मैं तुम्हारी एक टाँग ठीक करके दिखाऊँगा, तुम उस टाँगको देखकर निश्चय कर सकती हो कि तुम मुझपर भरोसा कर सकती हो या नहीं ? आत्महत्या करोगी कि ज़िन्दा रहनेकी कोशिश करोगी···· मुझे केवल छह महीने चाहिए···केवल छह महीनोंका सहयोग····बस !''

इतना कहकर मैं कमरेसे बाहर चला गया और नर्सको खानेका आर्डर दे दिया।

जूलीने उस रात खाना नहीं खाया लेकिन दूसरे दिन नाश्तेपर उसने किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं की। नाश्ता खा लिया उसने और नर्सने खुशी खुशी इसकी सूचना भी मुझे दे दी। वास्तवमें अब मेरा काम शुरू हुआ।

शुरू-शुरूमें हर आदमी मेरे कामको अविश्वाससे देखता था। सबसे ज़्यादा अविश्वास जूलीको था और यह आवश्यक भी था। मगर दूसरे डॉक्टर और मेरे अपने विभागमें काम करनेवाले डॉक्टर अन्दर-ही-अन्दर मेरा मज़ाक़ उड़ाते थे और यह मज़ाक़ कुछ अधिक अनुचित भी नहीं था क्योंकि जूलीके शरीरमें माँस-हाड़ ही रह गया था और अब इतनी चीज़ोंकी ज़रूरत थी जो सबका सब उसका शरीर उत्पन्न नहीं कर सकता था। फ़ारन ग्राफ़्टके बिना जूलीका शरीर किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता था। और फ़ारन ग्राफ़्टके सम्बन्धमें अपनी सफलता केवल इतनी थी कि कुछ हफ़्ते या कुछ महीने—दो-तीन महीनेसे अधिक कोई फ़ारन ग्राफ़्ट मानवीय-शरीरमें नहीं चलता। दूसरेके शरीरमें लिया हुआ गुर्दा या मांसका कोई भाग, मसल या नस फ़िट नहीं होती। कुछ हफ़्तोंके बाद मानवीय शरीर उसे अस्वीकार कर देता है। इसीलिए तो किसी डॉक्टरने जूलीको ठीक करनेकी हामी नहीं भरी थी।

शिक्षण-कालमें फ़ारन ग्राफ़्ट मेरा विशेष विषय रहा है—अब भी मैं निरन्तर अपने अवकाशके समयमें उसपर रिसर्च करता रहता हूँ—अनेकों ओरसे आये हुए सैकड़ों नये विचार मेरे दिमाग़में बेचैन थे। उनमें-से एक विचार यह भी था कि जब बच्चा नौ महीने तक माँकी कोखमें रह सकता है—आख़िर बच्चा भी तो एक प्रकारका फ़ारन-ग्राफ़्ट होता है—और माँका शरीर उसे स्वीकार कर लेता है और अपनी कोखमें उसे पूर्ण करता है तो दूसरे फ़ारन ग्राफ़्टको भी मानवीय शरीरको स्वीकार करना चाहिए—कमसे कम नौ महीनों तक। ख़ैर, मुझे अब एक जीवित लैबोरेटरी मिल गयी थी अपने अनुसन्धानके लिए।

छह महीनेके समयमें मैंने जूलीकी दायीं टाँगपर अनेकों छोटे-बड़े ऑपरेशन किये—टूटी हड्डियोंको जोड़ा, नयी हड्डियाँ डालीं, नये मांसके पैबन्द लगाये, नयी नाड़ियाँ और

नसोंके जाल बाँधे, चारों उँगलियोंको फिरसे ठीक तरहसे बाँधा, केवल अँगूठा किसी तरह बच गया था, शेष चारों उँगलियोंका मिश्रण-सा बन गया था—हर एक उँगलीकी फिर शक्ल बनायी, रान और पिण्डलीके घाव भरकर उनपर फिरसे मांस-ग्राफ़्ट किया—टखनोंकी गोलाइयाँ ठीक कीं। प्लास्टिक सर्जनका काम भी मोची-जैसा होता है—कभी हाड़-वैद्यका, कभी कलाकारका, कभी किसी मूर्तिकारका···यह टाँग जिसकी हड्डियाँ टूटी हुई थीं, जिसका गोश्त कहींसे पिचका कहींसे फूला हुआ था, कहींसे ग़ायब था--ऐसी बेहंगम बदसूरत टाँग कि देखके घिन आती थी--उसे फिरसे शक्ल देनेके लिए मैं टेस्ट गैलरीमें जाकर फिरसे पत्थरकी सुन्दर प्रतिमाओंकी सुकोमल टाँगोंके चर्के उतारे। मैं दिन-रात उस एक टाँगपर संसार-भरसे बेसुध होकर काम करने लगा। सर्जरीके औज़ार मेरे लिए किसी शिल्पकारके औज़ार थे। जिस टाँगकी रूप-रेखा मेरे मस्तिष्कमें थी वह तो अब जूलीकी अपनी असली टाँगसे भी सुन्दर और सुडौल थी, पर मुझे हर प्रकारके विवरणका ध्यान रखना पड़ता था। कोई विवरण, तुच्छसे तुच्छ भी, मेरे लिए अति विशेष महत्त्व रखता था। उन दिनों संसार-भरके सुप्रसिद्ध प्लास्टिक-सर्जनोंसे मेरा पत्र-व्यवहार हो रहा था, अपने साथियोंसे गरम बहसें होती थीं। मैं जूलीके शेष शरीरपर शायद कभी नज़र ही न डालता था, जैसे जूलीका समूचा शरीर उसी एक टाँगमें सीमित था।

न दिनका मुझे होश था, न रातका—समय मेरे लिए थम गया था··मेरे प्रयोगने स्वयं मेरे मनमें भय पैदा कर दिया था··· मुझे खुद नहीं पता था, छह महीनोंके बाद क्या होगा--जब पट्टियाँ उतरेंगी, जब प्लास्टिक निकलेगा, तो क्या चीज़ बाहर आयेगी? दिल यह सोचकर थम-सा जाता था।

छह महीनोंके बाद जिस सुबह पट्टी खुलनेवाली थी--उस रात मैं सो नहीं सका। वह सारी रात मैंने जूलीके कमरेमें एक कुरसीपर बैठे-बैठे काट दी—जूली और मेरे बीच अब थोड़ी-थोड़ी बातचीत होने लगी थी, पर ज़्यादातर प्रोफ़ेशनल ढंगकी, जैसी डॉक्टर और रोगीके बीच हुआ करती है। आज वह विशेषतः बहुत शान्त थी, कदाचित् उसका मन भी उसी वेगमें धड़क रहा होगा, जैसा मेरा।

"डॉक्टर···!" उसने छतकी ओर देखते हुए कहा, "यदि तुम्हारा प्रयोग असफल रहा···!"

"तो शायद मैं आत्महत्या करूँगा।"

वह मेरा उत्तर सुनकर चकित-सी रह गयी--फिर धीरेसे बोली, "क्या तुम्हें मुझपर इतनी दया आने लगी है?"

(क्रमशः)

■ ■

गुरुनिवास, १५वाँ रास्ता
खार, बम्बई-५२

Universal Fire &
General Insurance
Company Limited

Phone : 252227

TRANSACTS :

FIRE, MOTOR, MARINE, PERSONAL ACCIDENT, FIDELITY GUARANTEE, BURGLARY AND ALL OTHER FORMS OF MISCELLANEOUS INSURANCE BUSINESS

UNIVERSAL INSURANCE BUILDING,
SIR P. M. ROAD, BOMBAY-1.
Chairman & Managing Director :
P. U. PATEL, B. A., B. COM. (Lond.)

समसामयिकताके सन्दर्भमें : आलोचनाके नये कोण--

१९६६ के कुछ समीक्षा-ग्रन्थ :

● नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा, ● नयी कविता – मीमांसा और सम्भावनाएं : गिरिजाकुमार माथुर, ● नयी कहानीकी भूमिका : कमलेश्वर, ● प्रगतिवाद : डॉ० शिवकुमार मिश्र, ● प्रतिक्रियाएँ : डॉ० देवराज, ● चिन्तनके क्षण : विजयेन्द्र स्नातक ● प्रश्न और प्रश्न : जैनेन्द्र कुमार, ● आलोचना : प्रकृति आर परिवेश : डॉ० तारकनाथ बाली, ● 'मराठी हिन्दी कृष्ण काव्यका तुलनात्मक अध्ययन : डॉ० र० श० केलकर, ● आदिकालीन हिन्दी साहित्य-शोध : डॉ० हरीश ।

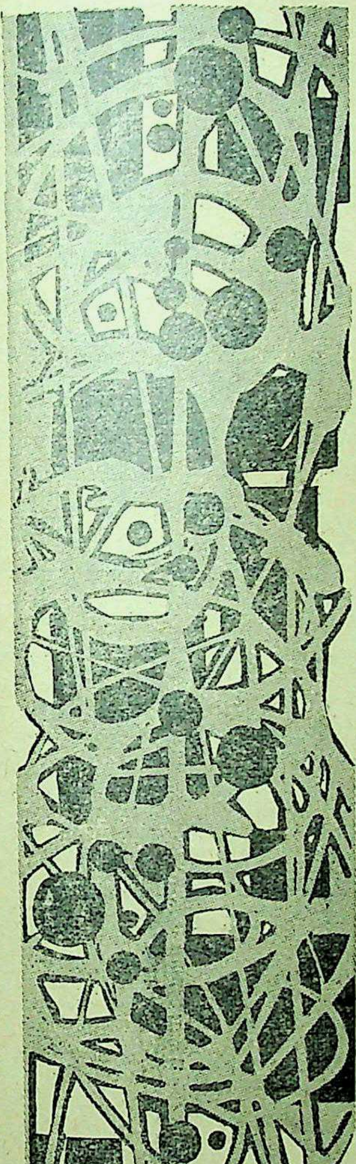

[समीक्षा : १९६६ सामान्य और छात्रोपयोगी समीक्षासे अलग हटकर हमने साहित्यके मूल प्रश्नोंपर ध्यान बँटानेके लिए अलग-अलग समीक्षकोंको यह छूट दी है कि वे चुनी हुई पुस्तकोंके माध्यमसे अपनी बात खुलकर कहें। सम्पादकोंके अपने विचार हो सकते हैं लेकिन बेलाग समीक्षाकी प्रतिक्रियाके लिए हमारा निमन्त्रण सबके लिए है। हम चाहेंगे कि स्वयं रचनाकार भी अपनी प्रतिक्रिया द कि उनकी पुस्तककी समीक्षासे उन्हें सन्तोष या असन्तोष है। इस समीक्षा-विवादमें ज्ञानोदयके सम्पादक भी भाग लेते रहेंगे। अगले अंकमें प्रस्तुत समीक्षापर] प्रतिक्रियाके साथ ही १९६६ के कविता-संग्रहोंपर एक विशेष समीक्षा आप पढ़ सकेंगे। हमारी रुचि व्यर्थ विवाद और अच्छी-बुरी समीक्षाके बजाय मूल समीक्षा और उसपर आयी प्रतिक्रियाओंके आधारपर सही समीक्षाकी दिशा खोजना है। हमारा विश्वास है कि पहली समीक्षाके पूर्वग्रहकी जगह आप अन्य प्रतिक्रियाओंकी प्रतीक्षा करना उचित समझेंगे।]

सकलदीप सिंह

साहित्यका कोई भी लेखक अगर अपनेको एक खास सीमामें बाँध लेता है और यह नहीं देखता कि साहित्यमें 'आज' क्या हो रहा है, साहित्यमें विश्लेषण-बोधका कहाँ तक विकास हो चुका है, आलोचना-दृष्टिका कौन कोण आज महत्त्वपूर्ण हो उठा है, तो उसका लेखन चाहे शोध-ग्रन्थ हो या आलोचना-पुस्तक या किसी भी विधाका लेखन हो, वैज्ञानिक आधार नहीं ले सकता और आजके समसामयिक चिन्तनके स्तरपर नहीं आ सकता। शोधकी विषय-वस्तु अपनी जगहपर ज्योंकी त्यों रह जाती है और उसपर लिखे गये शोध-ग्रन्थका कोई विशेष महत्त्व समसामयिक लेखक-पाठक-वर्गमें नहीं होता।

आज विश्वविद्यालयोंसे हिन्दीमें अनेक शोध-ग्रन्थ निकल रहे हैं किन्तु उनमें अधिकांश निम्न स्तरके ही होते हैं। शोध-कार्य और नौकरीका इस तरह सम्बन्ध बैठ गया है कि सही वैज्ञानिक स्तरपर कोई शोध-कार्य सम्भव नहीं हो पाता है। शोध-ग्रन्थ छपने योग्य हो या नहीं—डिग्री मिल जाती है। अगर उन थीसिसोंको छाप दिया जाये तो शोध-कार्यका, हिन्दीका, निदेशकोंका तथा विश्वविद्यालयोंका एक हास्यास्पद रूप पाठकोंके सामने आ जाये। अब तो इस तरहके असम्मानका भी डर विश्वविद्यालयोंसे उठता जाता है। उस लेखककी शोधके सम्बन्धमें क्या राय बनायी जा सकती है जो आदिकालीन हिन्दी साहित्यके बाद हिन्दी साहित्यके विकासका अस्तित्व नहीं मानता, जिसके लिए हिन्दी साहित्य अपनी पूर्णतापर पहुँचे हुए जन्मा था आदिकालमें। वास्तवमें वैज्ञानिक विकासकी प्रक्रियामें मानवने जो कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, उनसे अनवगत रहकर तथ्यकी खोज भी सही नहीं हो सकती। वस्तुगत स्तरपर भी किसी तथ्यकी खोज सर्वांगीण तथा औचित्य-पूर्ण नहीं हो सकती जब तक लेखक बोधके स्तरपर सम्पन्न नहीं होता। क्योंकि साहित्यमें तथ्य खोजनेवालेके दृष्टिकोण, क्षमता, तथा जागरूकताकी अपेक्षा होती है।

इसी सन्दर्भमें डॉ० हरीशकी शोध-पुस्तक 'आदिकालीन हिन्दी साहित्य-शोध' को उदाहरणके रूपमें सामने रखा जा सकता है। इस कृतिमें उनके 'आदिकालीन हिन्दी साहित्य'पर शोध-सम्बन्धी संग्रहीत लेखोंको पढ़कर सम्भवतः किसीको सन्तोष नहीं हो सकता। कई लेखोंमें अपनी रूढ़ धारणाओंसे प्रतिबद्ध होनेके कारण तथ्योंको तोड़ा-मरोड़ा गया है। वैज्ञानिक ढंगसे तथ्योंका प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ है। शोधके नामपर अतिरंजित विस्तार दिया गया है। जैसे लेखकने 'विद्यापतिको एक भक्त कवि'के रूपमें देखने और प्रमाणित करनेके लिए एक कमज़ोर अविश्वसनीय आधार अपनाया है। अपनी कमज़ोरीका उन्हें आभास रहता है, तभी कहते हैं : 'भक्त कविकी कृतियोंका सही मूल्यांकन करनेमें हम आधुनिक दृष्टिका उपयोग न करें। इस भ्रमपूर्ण उप-नयनको उतारनेके बाद ही हम उनके काव्य और व्यक्तित्वको आँकनेकी अनाविल दृष्टि पा

सकते हैं।' ऐसी रूढ़ बोधकी स्थितिमें न भक्तिकी विवेचना हो सकती है न काव्य की। जो भी होगा घोटाला होगा। १९६६ का लेखक अपने चिन्तन-अस्तित्वको छोड़कर आदिकालमें घिरकर आधुनिक युगमें हो रहे शोध-कार्यमें शायद कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं दे सकता। इसीलिए डॉ० हरीशके 'सभी आदिकालीन कृतियोंपर लिखनेवाले लेखकोंसे 'गहरे मतभेद' हैं। किसी विशेष युगकी दो कृतियोंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेमें भी वही खतरा है—अवैज्ञानिक या तथ्यहीन हो जानेका, किन्तु सूचनार्थ कुछ बातें अवश्य मिल जाती हैं जिनसे तत्कालीन इतिहासको समझनेमें सहयोग मिलता है। वैसे आलोचनासे अलग होते ही शोधकार्य इतिहासका कार्य हो जाता है। आधुनिक साहित्यको समझने-समझानेमें उसका कोई योगदान नहीं रह जाता। साहित्यके इतिहासकी खोज भी एक सुलझा वैज्ञानिक दृष्टिकोण माँगती है।

डॉ० र० श० केलकरका 'मराठी हिन्दी कृष्ण काव्यका तुलनात्मक अध्ययन' देखकर यह धारणा और पुष्ट हो जाती है कि सम्यक् अनुसन्धान और सर्वांगीण मूल्यांकनके लिए समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, तथा वैज्ञानिक पृष्ठभूमिकी कितनी अपेक्षा होती है। डॉ० केलकरने इस पृष्ठभूमिके अभावमें तटस्थता बरती है जिसका फल हुआ है कि सूचनार्धर्मितासे आगे यह ग्रन्थ भी नहीं आ सका। यह अवश्य है कि तुलनात्मक अध्ययन करनेकी दिशामें यह परिश्रमपूर्ण कार्य हुआ है। परन्तु यह परिश्रम और भी उपयोगी होता अगर लेखक मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपने विश्लेषणमें अपनाता।

'बलराम'की कल्पना तथा यूनानी देवता सेलिनससे उसका साम्य, कृष्ण तथा यूनानी देवता डायनिससका साम्य तथा द्वारका और जेरूसेलमकी कथाके साम्यसे कृष्णकी प्राचीनता ही सिद्ध नहीं होती, यह 'साम्य' एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण माँगता है। मनुष्यके विकासमें धर्म और पुराणकी व्याख्या अगर वैज्ञानिक आधारपर होती तो एक उल्लेखनीय कार्य होता। लेकिन लेखककी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनमें रहकर उन्होंने यह अध्ययन प्रस्तुत किया है। यथार्थवादी दृष्टि न होनेके कारण लेखककी कई व्याख्याएँ रूढ़िग्रस्त हो गयी हैं। वैसे भारतीय धर्म-दर्शनकी रोशनीमें उनका कृष्ण-काव्यका अध्ययन अवश्य परिश्रम-साध्य है। शोध-छात्रोंको कई उपयोगी सत्य मिल सकते हैं जहाँसे वे विश्वविद्यालयीय शोध-ग्रन्थ लिख सकनेकी सुविधा पा सकते हैं। भारतीय धर्म-दर्शनमें रुचि रखनेवाले पाठकोंको भी कुछ उनके लिए फिरसे चिन्तन करनेकी बातें मिल सकती हैं।

'कृष्ण' भारतीय संस्कृतिकी एक महत्त्वपूर्ण धारणाका प्रतीक है जिसे विशाल मानवीय स्तरपर देखनेकी कोशिश की जा सकती है। भारतने जिस समन्वित रूपकी कल्पना की थी वह समन्वित रूप ही 'कृष्ण' है।

ज्ञान, कर्म और भक्तिके समन्वित रूपकी कल्पना कृष्णमें की गयी है। कृष्णकी कल्पना भारतीय जीवनकी कल्पना रही है—चाहे मराठी कवियोंने कृष्णके परब्रह्मरूपपर बल दिया हो या हिन्दी कवियोंने रसिक शिरोमणिके रूपपर। भारतकी सम्पूर्ण संस्कृतिकी मानवीय विस्तृति 'कृष्ण'में अन्वेषित हो सकती थी। लेखकने इस पहलूको व्यापक रूपसे व्याख्यायित नहीं किया।

आधुनिक जीवनकी चिन्तन-पद्धतिसे जो भी लेखक सम्पर्क रखना न चाहकर शोध लिखता है या आलोचना लिखता है वह एकांगिता और संकीर्णताका शिकार होगा। ज्ञान या समझकी छोटी-मोटी पुरानी पूँजीको लेकर जो भी बड़ा शोध-कार्य करनेमें लगेगा उसका कार्य अधूरा रहेगा।

ऐसे ही छोटी पूँजी लेकर लिखनेवालोंमें **डॉ० तारकनाथ बाली**का भी नाम आ सकता है। आलोचनाकी विवेचनाके लिए उनकी आलोचनापुस्तक **'आलोचना : प्रकृति और परिवेश'**में कहीं भी विवेचना करनेकी क्षमता या चमक नहीं दीखती। लगता है, पुस्तक छात्रोंके बीच खप सके और इसकी विपुलता आक्रान्त कर ले इसलिए पुस्तकको भारी भरकम रूप दिया गया है। व्यवसायके पक्षको प्राथमिकता मिले, यह प्रकाशकीय दृष्टि भी हो सकती है। इससे अर्थ उगह सकता है, छात्रोंको लाभ नहीं हो सकता। छोटे आकारकी नोट-पुस्तिकाएँ इस पुस्तकके बदले ज्यादा उपयोगी साबित होंगी। अनावश्यक वर्गीकरण करनेकी प्रवृत्ति, अनावश्यक विस्तारपर विस्तार देनेकी जल्दबाज़ी, अवैज्ञानिक अधकचरी व्याख्याएँ आदि किसी भी पाठकको ऊबा देंगी जिसमें कहीं शायद ही लेखकके विवेककी झाँकी मिलती हो। मौलिकता भी खोजे नहीं मिलती। डॉ० बालीने फ़ायड, युंग, मार्क्स, तेन, हेगल आदि चिन्तकोंकी सामान्य सूचनाएँ अपनी पुस्तकमें भर दी हैं। इस प्रकारकी सूचनाएँ इस तरहकी किसी भी शोध-पुस्तकसे छात्रोंको मिल सकती है। पर जब भी लेखकने अपनी तरफ़से व्याख्या या विचार देनेकी कोशिश की है, तभी विश्लेषण-क्षमताके अभावका हास्यास्पद रूप झलक उठता है। समाजवाद और साम्यवादका भेद लेखककी चेतनामें नहीं आ पाता। प्रगतिवादके सम्बन्धमें लेखक एक जगह कहता है : ''यदि प्रतिक्रियावादी तत्वोंके बावजूद भी वह संगठनको बलवान बना सका है तो वह (प्रगतिवाद) स्वीकार्य है। इस रीतिसे तुलसीदास, प्रसाद जैसे धार्मिक और दार्शनिक कवियोंकी सामाजिक उपयोगिता स्वीकार्य हो सकती है।'' दूसरे शब्दोंमें उनके लिए पूरा साहित्य ही प्रगतिवाद है। इसी तरहका स्वर डॉ० शिवकुमार मिश्र-द्वारा लिखित 'प्रगतिवाद'में भी मिलेगा। लेखकको श्री नन्ददुलारे वाजपेयी और श्री नामवरमें कोई भेद नहीं दिखाई देता, पुरानी और नयी पीढ़ीमें कोई भेद नहीं देखाई देता। लेखकके पास एक 'सामाजिक चेतना' नामक बटखरा है, उसीपर सारा हिन्दी साहित्य उन्होंने तोल दिया है। मार्क्सवाद नहीं, प्रगतिवादके प्रति एक बूढ़ी

(१९६६ में) अन्ध श्रद्धाका खासा उदाहरण है यह पुस्तक। यह 'फेनवादी' मार्का प्रगतिवाद असल प्रगतिवादकी ऐतिहासिक सच्चाईको अपमानित करता है। 'मार्क्सवाद' की अधकचरी समझके नमूने हैं ये लेखक। सारे प्रश्नोंके उत्तर उनके पास हैं। अपनी उनकी अन्ध श्रद्धा ही सम्पूर्ण साहित्यका मानदण्ड है।

दूसरी ओर पुरानी पीढ़ीके एक चिन्तक जैनेन्द्र हैं जिनके सामने 'प्रश्न और प्रश्न' ही हैं। उनके अनुसार, उनके दिये गये उत्तरोंमें किसी प्रश्नको बन्द नहीं कर डाला गया है बल्कि मानो उत्तरों-द्वारा उस प्रश्नको और खुले ही दिया गया है। लेकिन उन प्रश्नोंको और उलझनेके लिए खोला गया है। मैं डॉ० देवराजके कथनसे सहमत हूँ कि जैनेन्द्र किसी एक समस्याका समाधान देनेका प्रयत्न नहीं करते, इसका कारण यह भी है कि उन्हें असंख्य समस्याएँ दीखती हैं, असंख्य प्रश्न, मानो जीवन समस्याओं और प्रश्नचिह्नोंका ही समुदाय हो। इतनी समस्याओंके सुलझानेकी आशा कहाँतक की जाये? 'कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है!' वास्तवमें जैनेन्द्र अपने पूरे लेखन-कालमें प्रश्न ही करते रहे हैं। वे अपने प्रश्नोंके लिए मौलिक हैं। पर किसी चीज़को विश्लेषित कर समझानेकी आकांक्षा भी कम बड़ी नही है। यह आकांक्षा या जिज्ञासा भले सीमामें आबद्ध होकर अवास्तविक-अव्यावहारिक हो जाये पर इसका अपने आपमें महत्त्व है ही। एक सचेत प्राणी के लिए 'जिज्ञासा'का भाव न रखना घातक है। जैनेन्द्रने अपने विचारोंका एक अलग घरौंदा बनाया है। उनकी नीति, राजनीति, जीवन, जगत्के प्रणय तथा ईश्वरके सम्बन्धमें खास-खास धारणाएँ हैं। वे धारणाएँ रूढ़ ही कही जा सकती हैं—खुले आयामके अभावमें, पर हैं वे उनकी अपनी मौलिक। अश्लीलता, ब्रह्मचर्य, सेक्स और प्रेमके सम्बन्धमें वे अपने ढंगसे सोचते हैं। अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष, सरकार, राज्य, साहित्य, निर्माण, स्वराज्य, या व्यवसाय किसीके बारेमें उनके सपाट उत्तर रहते हैं जिसमें विधेय-निषेध दोनों मिले रहते हैं। शरीरेतर प्रेमका एक ऐसा अमूर्त रूप उनकी विवेचना-धारामें डूबा है कि उनके लिए यथार्थकी भूमिपर आकर सोचना अत्यन्त कठिन है। यह कठिनाई उनसे प्रश्न ही या उत्तरनुमा प्रश्न ही करवाती है। यह शरीरेतरता केवल जैनेन्द्र या उनकी पीढ़ीमें ही नहीं है, बादमें भी कई समीक्षक उस अमूर्तताके शिकार रहे हैं, चाहे वह अमूर्तता सौन्दर्यसे घुली-मिली हो या सत्यसे।

विजयेन्द्र स्नातकने भी अपने 'चिन्तनके क्षण' में अपने आदर्शप्रवण विचारोंको स्पष्ट रूप देनेका प्रयास किया है। स्नातकजीमें चिर नवीन बने रहनेकी ललक या समसामयिकताके प्रति जागरूकता दीखती-सी लगती है। उन्होंने विभिन्न विषयोंपर अपना मत प्रकट किया है, अश्लीलता, नवलेखन, सामयिक कविता, नयी कहानी, गीत, आधुनिक गीत, साहित्यकारका दायित्व, तथा समीक्षा आदि कई विषयोंपर अपना विचार प्रकट किया है। सांस्कृतिक उत्थान ही उनके साहित्यका

लक्ष्य है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् आधार है उनके मूल्यांकनका। 'समसामयिक' लेखनके नामपर अबौद्धिक गीतकारों या नवगीतकारोंकी वकालत भी की गयी है। उनका कहना है: "काव्यका ही नहीं वरन प्रत्येक कलात्मक सृष्टिका मूल प्रयोजन जीवनके प्रति स्वस्थ एवं 'रागात्मक संवेदन' उत्पन्न करना है।" उनकी निगाहमें 'आनन्दोपलब्धि' आजके समसामयिक साहित्यका प्रयोजन है! सत्य उपलब्ध करना उनका अभिप्राय है! कहीं उन्हें आभास मिला है कि आधुनिकता और सामयिकता अलग-अलग हैं। लेकिन वे कहते हैं कि मैं अलग करना नहीं चाहता उसे। उनका 'नवलेखन' आस्था और भविष्यको लेकर चलनेवाला है। उनके लिए वास्तविक नवलेखन गीतमें हो रहा है। रागात्मक भावबोधको उसमें व्यंजना मिलती है। असलन् स्नातकजीने डॉ० नगेन्द्र और वाजपेयीजीकी भाषामें अपनी सामान्य प्रतिक्रियाएँ दी हैं—हिन्दीकी अत्याधुनिक सृजनशीलताके बारेमें कोई गहरी विवेचना नहीं दीखती। मेरी अपनी राय है कि गीतका समर्थक आधुनिक साहित्यको नहीं समझना चाहता।

कुछ गहरी विवेचनाकी मुद्रा मिलती है डॉ० देवराजकी 'प्रतिक्रियाएँ'में। डॉ० देवराज साहित्यकारके व्यक्तित्वमें दार्शनिक गम्भीरताके आग्रही हैं। मैथ्यू आर्नाल्डके विचारोंसे उनके संस्कारोंका निर्माण हुआ है। साहित्यको वे जीवनकी आलोचना मानते हैं, या साहित्यको सांस्कृतिक प्रयास मानते हैं। इस पुस्तकमें भी उन्होंने लिखा है कि "प्रतिमानके रूपमें 'संस्कृति-बोध' को इस समय मैं उतना ही महत्त्व देता हूँ जितना क्लासिकी विचारक काव्यके प्राणतत्त्वके रूपमें रसको देते रहे हैं।" उनके इस ६० निबन्धोंके संकलनमें उनके साहित्यिक प्रतिमान और जीवन-प्रतिमान बिखरे पड़े हैं। अपने संस्कारोंकी सीमासे हटकर भी अत्याधुनिक साहित्यको विवेचित करनेका प्रयास लेखकने किया है। पिछली या बिचली पीढ़ीके साहित्यको आकलित करनेमें लेखककी प्रतिक्रियाएँ सहयोग दे सकती हैं या उससे विगत लेखनकी पृष्ठभूमि समझमें आ सकती है।

परम्पराके महत्त्वको स्वीकार करते हुए एक जगह उन्होंने लिखा है: "इलियटने कहीं कहा है कि होमरसे लेकर आज तकका साहित्य एक विशेष अर्थमें समकालीन है। यह वक्तव्य इलियटके प्रशंसक हिन्दी-लेखकोंके बीच भी सुपरिचित नहीं है। आजका लेखक पिछले लेखकोंसे अपनी सजातीयताका अनुभव न करके उनके विरोधको अपना कर्त्तव्य मान ले—यह विचित्र स्थिति है। इस स्थितिको स्वस्थ नहीं कहा जा सकता।" डॉ० देवराज अपनेको न आर्नाल्डके संस्कृति-बोधसे अलगा सके हैं, न इलियटके परम्परा-बोधसे। इसीलिए डॉक्टर साहबने समसामयिक साहित्य तक को सांस्कृतिक सम्पन्नताकी कसौटीसे आँका है। परम्परागत सांस्कृतिक प्रत्ययोंमें उलझी उनकी दृष्टि आधुनिक लेखन या नवलेखनको ठीक-ठीक नहीं आँक सकी है। अज्ञेयके उपन्यास 'नदीके द्वीप'में रसोद्रेक करनेवाली पंक्तियाँ ढूँढ़ना, सत्यम् शिवम् सुन्दरम्के निकट ले जा सकता

है। डॉक्टर साहबकी दृष्टिमें चिन्तन-युक्त, प्रौढ़, सुसंस्कृत साहित्यकार ही उच्च कोटिका साहित्य दे सकता है। ऐरे-ग़ैरे व्यक्तित्वसे उच्च कोटिका साहित्य नहीं उपज सकता। अर्थात् नया साहित्य उनके लिए अच्छा या उच्च साहित्य नहीं हो सकता क्योंकि इसके लेखक तो प्रायः ऐरे-ग़ैरे ही हैं। कुण्ठा, निराशा, असहायता, यातनाकी पीढ़ी तो साहित्य ही नहीं दे सकती। इसलिए कह सकते हैं कि सीमित दायरेमें उनकी विवेचना अपना एक खास ऐतिहासिक महत्त्व रख सकती है। अपनी भाषामें अपनी ही आस्थावान पीढ़ीकी विवेचना परम्पराके सन्दर्भमें वे करें तो अच्छा है। अँगरेज़ी शासन-कालमें पाश्चात्य संस्कृति और भारतीय संस्कृतिसे टकराहट हुई। भारतीय संस्कृति अपनी रूढ़िवादिता, कमज़ोरी और संकीर्णताको महसूस करने लगी। भारतीय जीवनमें वह 'कलचरल लैग' का युग था। भारतीय संस्कृतिके भक्तोंने अपनी संस्कृतिमें सारी पश्चिमकी मनोवैज्ञानिक-वैज्ञानिक उपलब्धियाँ खोज निकालीं। सारी नयी चीज़ें, यहाँ तक कि संस्कृति-विरोधी चीज़ें भी, यहाँ विशाल भारतमें पहलेसे मौजूद मिलीं। इसे हम संस्कृतिके प्रति हवाई भक्ति कह सकते हैं। ऐसी स्थितिमें पुनरुत्थानका युग आता है। चिर नवीन बने रहनेकी प्रवृत्ति तेज़ हो जाती है उसमें, जिसकी महत्त्व-गरिमा बड़ी होती है या इतिहास बड़ा होता है।

बादके साहित्यकारोंके बीच पुनरुत्थानका युग आया है। स्वस्थता, सामाजिकता, नित नये रहनेकी विकासमानता आदिकी आवाज़ बड़ी तेज़ीसे सुनी जा रही है। जिस लेखनमें मूल्यका विरोध किया जाता है उसमें-से 'मूल्य' निकाल लेनेका चमत्कार भी इसमें उग आया है।

मैं कमलेश्वरकी पुस्तक 'नयी कहानीकी भूमिका' और गिरिजाकुमार माथुरकी पुस्तक 'नई कविता : सीमा और सम्भावनाएँ'की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। लगता है 'सामाजिक चेतना' नामक किसी हवाई धारणाके इर्द-गिर्द घूमते हुए इन दोनों लेखकोंने १९६६ तकके साहित्यको कुहरिल किया है तथा अच्छे-बुरे, बुरे-अच्छेका घोटाला खड़ा कर दिया है। इन दोनों व्यक्तियोंके लिए सभी साहित्यकार साहित्यके विकासमें योग दे रहे हैं। कोई ग़ैर-साहित्यिक व्यक्ति साहित्य-मंचपर जैसे साहित्यकी शुभकामना व्यक्त कर रहा हो—पीढ़ियोंके या लेखकोंके संघर्षका बोध इन दोनों लेखकोंमें शायद नहीं है या धुँधला है या किसी लक्ष्यसे उस बोधको ये लोग धुँधला रहे हैं।

कमलेश्वरजीने जैनेन्द्रकी पीढ़ीसे अपनी पीढ़ीको अलगानेमें काफ़ी ज़ोर दिखलाया है। ऐसा लगता है, कमलेश्वर और गिरिजाकुमार माथुरको अपनी ही धारणाओं या अपनी ही दृष्टियोंके प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है। किसी वायवी प्रतिबद्धताकी बातें ही ये लोग करते हैं। गिरिजाकुमार माथुरके लिए कुँअरनारायण, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकान्त वर्मा, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर, जगदीश चतुर्वेदी आदि (अर्थात्

जिनके नाम याद आ गये या जिनसे उनका रागात्मक सम्बन्ध है) सभी कवि नया अन्वेषण कर रहे हैं, हिन्दी नयी कविताका विकासकर रहे हैं। सबोंमें अनास्था, अर्थहीनता, निवार्सनके भाव मिल सकते हैं। उनकी नयी कविताकी परिभाषामें सब कवि आ जाते हैं। उसी तरह कमलेश्वरजीकी नयी कहानीके विकासमें भी सभी आ जाते हैं। इन लोगोंके व्यक्तित्व इस क़दर गतिशील हैं कि सभी खप जाते हैं। इसीलिए इनका कोई खास नारा नहीं है। नित नये होते रहनेकी दिशामें ये कहीं प्रतिबद्ध नहीं हैं। इनके लिए विरोध, निर्वासन, विक्षोभ, कुण्ठाके भी अपने अर्थ हैं। सबकी गुंजाइश है वहाँ।

दूसरे शब्दोंमें इनका विरोध नहीं है। गिरिजाकुमार माथुरजी कहते हैं: "नयी कविता भविष्यके वस्तुप्रधान मानव-दर्शनकी दिशा है····नयी कविता मानवीय नियतिके सन्दर्भमें ही विद्रोह करती है····नयी कविता सांस्कृतिक परम्पराका नया संस्कार करती है····नयी कविता विश्वासका स्वर फूँकती है, नयी कविता आस्थाकी रोशनी देती है····नयी कविता गीतसे अलग कुछ नहीं····चूँकि गीतका मुख्य प्रतिपाद्य भावनाके मूल तत्त्वोंकी तन्मय अभिव्यक्ति है अतः सत्यका साक्षात्कार तन्मयताके इन क्षणोंमें गीतके माध्यमसे अधिक सीधे और सहज रूपमें होता है··"बुद्धि और भावनाका सामंजस्य विज्ञानके विकास होनेपर होगा।" ······'इन बातोंसे कहीं यह पता नहीं चलता कि किन मानोंमें '६०के बादका नवलेखन अलग है। किन आधारोंपर नवलेखन और बिचली पीढ़ीके लेखनमें अलगाव आया है। विश्लेषणके अभावमें पूरीकी पूरी पुस्तक कविकी, 'सामान्य रचनाकारकी प्रतिक्रियाओंके सिवा कुछ नहीं है। जिन लेखक या लेखन पर, जिनका समसामयिक लेखनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, उन्होंने अपनी भाषामें अपने ढंगसे विचार किया है, उसमें भी विश्लेषण-क्षमताका अभाव ही है। ठीक इसी तरह कमलेश्वरकी पुस्तक भी, जिनमें उनकी प्रतिक्रियाएँ संकलित हैं, कोई स्पष्ट रूप नहीं दे पाती। न उन्हें परम्परासे विरोध है, न भविष्यसे परहेज़ है, न सामाजिक चेतनासे अप्रतिबद्धता है। उन्होंने विश्व-स्तरपर चलनेवाली अस्तित्ववादी विचार-धाराको कांग्रेस-सरकारकी असफलतासे जोड़ दिया है। यह 'प्रगतिवादी विश्वास' है, विवेकशील तर्क नहीं है। राकेश-राजेन्द्र यादवकी पीढ़ीमें फ्रॉयड, सार्त्र, कामू, हेडेगर सभी खोजे जा सकते हैं। उनके अनुसार बादकी सभी लेखन-प्रवृत्तियां उस पीढ़ीमें खोजी जा सकती हैं। इनका विद्रोह 'शाश्वत' ढंगका है। हर पुराना या नया लेखक विकासके लिए सचेष्ट है।····

उनकी निगाहमें "नया कहानीकार किसी भी प्रकारके आरोपणको अस्वीकार करता है और आधुनिकताके संक्रमणको वहन करते भारतीय व्यक्तिको उसकी नितान्त भारतीय परिस्थितियों और समयमें सम्प्रेषित करता है····वह न्याय और समतापर आधारित व्यापक मानवीय मूल्योंको अंगीकार करता है····वह संश्लिष्ट यथार्थको उसके सभी आयामोंमें खोजकर बिना किसी तनाव या अति-

रिक्त रोमेण्टिक लगावके अभिव्यक्त करता है''''वह मृत्युवादी या भाग्यवादी नहीं हुआ है, वह घृणा, आक्रोश और नकारके निगेटिव अस्त्रोंसे एक 'पाजिटिव' भंगिमा अख़्तियार कर रहा है''''खानों (अपनी पीढ़ीके लिए नहीं, नयी पीढ़ीके लिए)में बाँटकर साहित्यको देखना एक गलत दृष्टिकोण है, उसे उसकी समग्रता और साहित्यिक परम्पराके सन्दर्भमें ही देखना चाहिए''''उसकी खोज समाजधर्मा है''''वैचारिक धरातलपर 'नयी कहानी' लघुमानववादी, क्षणवादी, विजातीय बौद्धिकताको स्वीकार नहीं करती''''वह अपने राष्ट्रीय-जातीय परिवेशके प्रति प्रतिबद्ध है और उसका मूल स्रोत है जीवन''' अपनी समस्त जटिलताओं और संश्लिष्टताओंके साथ नयी कहानी शुरूसे यथार्थपरक, समाजधर्मा, प्रगतिशील मूल्योंके प्रति समर्पित रही है''''जिसके बीज प्रेमचन्द और प्रसादमें थे''''अवसंगति और इस फ़ालतू होते जानेका बोध नयी कहानीमें बराबर मिलता है''''यह अनिवार्यता (प्रामाणिकता अनिवार्यता) ही आजके लेखकको परम्परासे सम्बद्ध और असम्बद्ध होनेकी दृष्टि भी देती है। सच बात तो यह है कि परम्परासे विद्रोह ही नयी कहानीका स्वर है पर इस विद्रोहमें ही परम्पराके गत्यात्मक अंशोंको स्वीकारा भी गया है।''

इन उद्धरणोंसे यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है कि उनका 'केन्द्रीय मनुष्य' मृत्यु-बोधसे नहीं, क्षमता-बोधसे सम्पन्न है। उनका न अज्ञेय-जैनेन्द्रका व्यक्तिवाद (क्षणवाद) है, न विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकान्त वर्माका लघुमानव है, न शिवदान सिंहका प्रगतिवाद है, न नयी कुण्ठित पीढ़ीका अनास्थावाद है। या सबका घोल उनका वाद है जिसे आप आन्दोलन भी कह सकते हैं, आन्दोलन नहीं भी कह सकते हैं। गहराईसे देखनेपर कमलेश्वरजीको आप अज्ञेयके निकट भी पा सकते हैं, शिवदान सिंहके पास भी पा सकते हैं। कुण्ठित पीढ़ीके पास 'मांसके दरिया'में भी इन्हें देखा जा सकता है। सामाजिक चेतना, नये मूल्य, नये भविष्यके टुकड़े, कम या बेश सभी पुराने लेखकोंमें मिल सकते हैं। कमलेश्वरजी अपनी लिस्टके ५० कथाकारोंमें अपनी सुविधानुसार आस्था या भविष्य खोज लेते हैं, वैसे उनकी उदारतावादकी ख़ूबसूरत रोमाण्टिसिज़्मके प्रशंसक नहीं है। आज भी अपने पूर्वनिश्चित बोधके टूट जानेसे एक भिन्न क़िस्मकी नवीनता या परिवर्तनका आभास होता है। इस आभासके वहममें नित नये होते रहनेकी इच्छा होती है आदमीमें। खैर, इन सीमाओंके बावजूद उनके उदार व्यक्तित्वसे नये साहित्यकारोंको काफ़ी प्रोत्साहन मिला है।

१९६६ में छपी समीक्षा-पुस्तकोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण **'नये प्रतिमान पुराने निकष'**का प्रकाशन है। लक्ष्मीकान्त वर्माने पीढ़ियोंके तीव्र संघर्षको गहराईसे समझा है और उसे विश्लेषित करनेका वैज्ञानिक प्रयास किया है। साहित्यके विकासकी बदलती हुई गतियोंको गहरे उन्होंने पकड़ा है। यह बात दूसरी है कि वे भी अपने पीढ़ीगत संस्कारोंके सामने मात खाते हैं। लेकिन वर्माजीमें अपनेको

बदल देने या विकासकी अगली क़तारमें आ जानेकी छटपटाहट वाक़ई सराहनीय है। उनकी तर्कपूर्ण बातें सुननेके लिए कोई भी नया लेखक गम्भीरतासे रुक सकता है। 'नये प्रतिमान पुराने निकष' उनके समय-समय पर लिखे गये साहित्यिक और आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह है। उनके छिटपुट लेखोंको पढ़नेसे उनका संश्लिष्ट रूप सामने नहीं आ पाता है। इस बार एक जगह उनके कई लेखोंको एक साथ पढ़नेपर उनकी पहचान स्पष्ट होती है। वैसे लक्ष्मीकान्त वर्माने 'नयी कविताके प्रतिमान' लिखकर भी अपने नयेपन और अपनी तीव्र समझ-बूझका परिचय दिया था।

पर '६० के बादसे साहित्यमें एक बहुत ही तीखा परिवर्तन आना शुरू हो गया है। चार-पांच वर्षसे ऐसा लगने लगा कि साहित्यकी एक नयी शुरूआत हो रही है। परम्परा, मूल्य, स्वप्न, भविष्य, लक्ष्य-जैसे शब्दोंसे जुड़ी धारणाओंकी तीव्र उलटी प्रतिक्रिया हुई है। '६० के पहलेका सारा पुराना लेखन चुक गया-सा लगा। ऐसी स्थितिमें बिचली पीढ़ीके एक जागरूक विवेचककी बातोंको समझनेका मुझे मौक़ा मिला है। वैसे ऐसा भी कहा जाता है कि बिचली पीढ़ी और नयी पीढ़ीके बीचका 'डायलाग' समाप्त हो चुका है। उनकी बात न नयी पीढ़ी समझ पाती है, न वे नयी पीढ़ीकी बात समझ पाते हैं। पर लक्ष्मीकान्त वर्माने 'डॉयलाग'की गुंजाइश दी है।

इस पुस्तकके अन्तिम लेख 'ताजी कविता : कुछ जोड़-बाक़ी' पढ़कर मुझे लगा था कि वर्माजीमें कितनी ताज़गी है अपनेको काटते जानेकी तथा स्थितियोंके नये स्तरको खोजते जानेकी—यद्यपि उस लेखमें भी कितनी बातें थीं जिनसे मैं असहमत था और हूँ। पर अब पूरी पुस्तक पढ़नेपर ऐसा लगा कि वर्माजी वहींतक पहुँच सकते थे। उनकी कुछ स्थापनाओंको सामने रखकर विचार करना चाहूँगा।

उनका कहना है: "अज्ञेयका नया रहस्यवाद, सर्वेश्वरका लिरकल पैथास, भारतीका रोमैण्टिक लिरिकल व्यंग्य, कुँअर नारायणका अकर्मण्य विषाद और मुक्तिबोधकी अतृप्त फ़ैण्टेसी और विजयदेव नारायण साहीका विस्मृत अनुभूतियोंका शोक-गीत या जगदीश गुप्तका स्पष्ट रीतिबद्ध भाव-बोध सबका सब एक ऐसा ठहराव है जिसमें भग्नावशेषोंमें विचित्रता और स्थिरता एक रूपाकार बनकर ढलती है और अन्तमें मोनोटोनस हो जाती है।"—(पेज २९१)। यानी वह पीढ़ी भावुकताकी पीढ़ी थी। किन्तु क्या लक्ष्मीकान्तजी भी भावुकतासे पिण्ड छुड़ा सके हैं? यह सच है कि उनकी भावुकता तीखी है, प्रखर है, खुरदरी है—लेकिन है भावुकता। यह अवश्य है कि जहाँ वे कहते हैं "आजका भावबोध गीतात्मक है ही नहीं। गीतने उसी दिन आत्महत्या कर ली थी जिस दिन मनुष्यने विवेक और तार्किकताको संवेदनाके साथ सम्बद्ध करके वस्तु स्थितियोंकी जटिलताओंको पहचाननेकी चेष्टा की····" वहाँ भावुकताका कोई स्थान नहीं रह जाता। किन्तु नितान्त अद्वितीय अनुभूतिकी अभिव्यक्ति, संयोजन, विवेक

और तार्किक संगति, सार्थकता, सहं-अनुभूति, आग्रह और गम्भीरता, तीव्र आभिजात्य तत्त्व, आत्मोपलब्धि, आत्मसाक्षात्कार, अन्वेषण और सारगर्भित अभिव्यंजना, सौन्दर्यानुभूति-जैसे अनेक-अनेक शब्दोंमें एक भावुकता (विवेक-पूर्ण) या मूल्य छिपा है। अज्ञेयके रागात्मक सौन्दर्यके विरोधी होनेपर भी 'रागात्मक संवेदना'के आग्रही हैं वे। पन्त, अज्ञेय और प्रगतिवादियोंसे अपनेको अलगानेवाला लेखक जब कहता है, "आवश्यकता है इसमें आकार (शिल्प ?) के साथ उस आत्मव्यंजनाकी जिसमें व्यक्तित्व घुल-मिलकर विशाल मानव आत्मामें समा गया है, तभी आत्मशक्तिका निश्चय उस सत्यका साक्षात्कार कर सकेगा जो शिव और सुन्दर भी होगा।" तब यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा नयी पीढ़ीकी नहीं है। अज्ञेय-पीढ़ीकी भाषा है। सौन्दर्य-बोधके व्यापक और आन्तरिक मूल्योंका संचयनशील प्रयासमें काव्य-गरिमा खोजनेवाला लेखक अवश्य कहेगा कि "नयी कविता भावान्तरणमें विश्वास रखकर विकसित हुई है। उसकी अभिव्यक्तिमें संगीत, लय और गीतका प्रचलित रूप न होते हुए भी प्रत्येक संगीतात्मक तत्त्वके संस्कारमें निहित मनःस्थितिकी अभिव्यक्ति ही उसकी आत्मा है।" यहीं अर्थकी लय है जहां रागात्मक संवेदनाकी वीणा ध्वनित होती है। यहीं अदृश्य गीत है जो किसी-न-किसी भावुकतासे जुड़ा है। 'बृहत् मानव-मूल्य'के प्रति आस्थावान होनेका आज कोई अर्थ क्या नकल पाता है ? आन्तरिक गठनका बोध या नये सन्दर्भोंकी सार्थकताका बोध, या सौन्दर्यका बोध (जो समग्रताके बोधसे सम्बद्ध है) लेखकको और कहीं नहीं ले जाता, उन्हें अपनी सीमा और अपने पीढ़ीगत संस्कारमें बांध देता है, उससे न परम्परा छूट सकती है न भविष्य। अगर दोनों छूट भी जाये तो उसके वर्तमानमें दोनों आकर छिप जायेंगे। इसी जगह आकर लेखकका (छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवादके प्रति) विरोध चाहे जितना जोरदार शब्दोंमें हो—एक बेजान मुद्रा-भर होकर रह जाता है। और अज्ञेय-भारती-साही के सौन्दर्य-बोध-जालमें छटपटाता हुआ लेखक एक उलझी स्थितिमें दिखने लगता है। 'प्रज्ञा-युक्त अनुभूति' और 'रागात्मक प्रवृत्तियां' एक नीरस भावुकताके सिवा कुछ न रहती।

आज लिखे जा रहे साहित्यका टेम्पर भिन्न है। समसामयिक लेखनका यह दावा है कि उसकी कोई परम्परा नहीं है, कोई भविष्य नहीं है, कोई आस्था नहीं है। अनास्थाके लेखकोंमें भी आस्थाकी रोशनी ढूंढ़नेवाले अपना स्वार्थ साध सकते हैं, नये लेखनको उसके सही रूपमें नहीं रख सकते।

फिर भी अन्तमें लेखककी प्रशंसा किये बग़ैर नहीं रह सकता कि लेखक अपनी पीढ़ीके किसी भी लेखककी अपेक्षा ज्यादा ताक़तवर है—बदली हुई परिस्थितियोंके रुखको भांप लेने में। अपनी पीढ़ीके लेखनकी अत्यन्त वैज्ञानिक, संयमित आलोचना उन्होंने की है। काश, अपनी ही पीढ़ीके मुहावरेसे अपनी पीढ़ीको काटा जा सकता।

■ ■

१३८, राजा कटरा
कलकत्ता-७

आधुनिक हिन्दी निबन्ध की नयी प्रखरता, क्षमता,
युग-बोध की सचेष्टता और नयी उपलब्धियों के मानक

शिखरों का सेतु

शिवप्रसाद सिंह

'शिखरोंका सेतु' एक सेतु प्रस्तुत करता है। शिखर बहुत ही जीवन्त हैं और ज्वलन्त भी। इसीलिए यह सेतु भी अधिक वास्तविक और अधिक यथार्थ है। अपने-आपमें अनूठे सुललित निबन्धोंका एक पठनीय और संग्रहणीय संग्रह। मूल्य ३.५०

आँगनका पंछी और बनजारा मन

विद्यानिवास मिश्र

विषय, दृष्टि-भाव, शैली, भंगिमा और स्वर सभीका सहज और प्रौढ़ समन्वय है इन निबन्धोंमें। इनमें सत्यकी निरन्तरता और गतिशीलताकी प्रतिष्ठापना की गयी है। युग और जीवनके लिए एक अनिवार्य कृति। मूल्य ३.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

(पृष्ठ २८ का शेष : बेचैनीका सुख)

के लिए और कवियोंको यह अवसर देनेके लिए कि वे इस यातनाको बलिदान कहकर गीत गायें। कहें, कि हर सुरंगके बाद प्रकाश होता है, हर रातके बाद भोर आता है, भोर जो नये फूलोंकी सुगन्धसे महकता है····

सहसा एक ऊँची लहर उठती है। विपिनको ऊपरसे नीचे तक पूरा भिगोती हुई लौट जाती है। वह सुगबुगा जाता है। हलकी फुरहरन उसके शरीरमें दौड़ जाती है और वह फिर मुसकरा आता है। क्षणके सहस्रवें भाग जितने समयमें वह मुसकान उसे बेचैन करती है। वह अपने कपड़े झाड़ता है, पाता है हलकी-हलकी धूप चारों ओर फैल गयी है और सिरपरसे आता हुआ कोलाहल लहरोंकी बेचैनीमें घुल-मिल गया है। उसे फिर सन्ध्याकी याद हो आती है।

वह मां बननेवाली है—यह सूचना सन्ध्याने उसे तब दी थी जब उसके हाथमें कुछ नहीं रह गया था। एकाएक क्रोधमें भरकर तब उसने कहा था, "सन्ध्या, तुम्हें मेरे साथ तुरन्त अस्पताल चलना होगा। और इससे मुक्ति पानी होगी। मैं नहीं चाहता कि हमारा बेटा इस वियतनामी माँके बेटेकी तरह बरबाद हो जाये।"

"किस वियतनामी माँकी तरह?" सन्ध्याने काँपकर पूछा था।

और तब उसने वह चित्र दिखा दिया था। सन्ध्या एक बार काँपकर रह गयी थी। उसने आँखें मीचे-मीचे ही कहा था, "ये युद्ध कब बन्द होंगे! कब मनुष्य मनुष्यकी हत्या करना छोड़ेगा!"

"यही, यही तो मैं कहता हूँ। हमारा बच्चा न हत्या करेगा न हत्यारा होगा।"

सहसा सन्ध्या हँस आयी थी। बोली थी, "भविष्य अभी दूर है। उसकी इतनी चिन्ता क्यों? और फिर आप यही क्यों सोचते हैं कि हम भी उस बर्बर युद्धमें फँस जायेंगे। सच, आप बड़े निराशावादी हैं।"

कहकर सन्ध्या शरारतसे मुसकरायी थी। कैसा जादू था उस मुसकराहटमें। पहली वर्षाके बाद जैसे धरतीका रूप निखर आता है—सन्ध्याका रूप भी वैसा ही मादक हो उठा था। मन्त्रमुग्ध-सा विपिनने उसके पास जाकर कहा था, "सन्ध्या, क्या तुम सचमुच इतनी सुन्दर थी?"

सन्ध्या खिलखिला आयी थी। बोली थी, "नहीं, नहीं थी।"

"अब क्या हुआ?"

"वही, जो तुम अनहुआ करना चाहते हो। जो सहज है।"

"सहज, क्या आदमी सहजको चाहता है। सहज तो क्रोध है, क्षमा नहीं। सहज तो काम है, संयम नहीं।····नहीं नहीं, यह सब विडम्बना है। तुम्हें मेरे साथ अस्पताल चलना होगा। मैं सहजका उपासक नहीं हूँ। मैं वही चाहता हूँ जो असहज है। मैं अपने पौरुषको सार्थक करना चाहता हूँ।"

सन्ध्या फिर ज़ोरसे खिलखिला उठी थी। खिलखिलाती रही थी और वह झुंझलाता हुआ उसे देखता रहा था। कई क्षण बाद सन्ध्याने कहा था, 'अधिक बेचैन मत होओ

मेरे पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ चलूँगी ।"

और वे गये थे और डॉक्टरने सब कुछ जाँच करनेके बाद पूछा था, "आपके विवाह-को कितने वर्ष हुए ?"

"जी, पाँच !"

डॉक्टर मुसकरायी थी। कहा था, "मिस्टर विपिन, तब मैं आपको मुक्ति पानेकी सलाह नहीं दूँगी। जो सहज है, उसे स्वीकार करो। हाँ, भविष्यमें तुम्हें पूर्ण अधिकार होगा, कि तुम यह स्थिति ही न आने दो।"

विपिनने बहस करना चाहा था, की भी थी लेकिन अन्तमें वे लौट आये थे। आश्चर्य, सन्ध्या तनिक भी उत्तेजित नहीं हुई थी। वही शान्त-सहज मुसकान उसके चेहरेपर गहराती रही थी और विपिनको लगता रहा था कि वह मुसकान उसे लील जायेगी। घर आकर उसने कहा था, "ठीक है, अब तुम उस बातको भूल जाओ सन्ध्या, लेकिन...."

पास आकर सन्ध्याने विपिनके मुँहपर हाथ रख दिया था, "श....श.... भविष्यकी चिन्ता मत करो।"

और विपिन सब कुछ सह गया था। उसे लगने लगा था जैसे वह सुखका अनुभव करने लगा है। खामोशी, अकेलापन, दर्दमें लिपटी हुई उदासी और सर्वग्रासी प्यास—ये सब उसी सुखके आत्मज हैं..

यही सुख उसे समुद्रके पास खींच लाया है। जहाँ वह पंछाड़ खाता हुई लहरोंके साथ अपनापन अनुभव करता है, जैसे वह उन्हींका छिटका हुआ अंग हो। उन लहरोंपर तरंगित होते अनेक चित्र वह देखता है। एक चित्र। श्मशान-भूमिका। मार्गके दोनों ओर वायुसेनाके सैनिक हथियार उलटे किये और सिर झुकाये खड़े हैं। उनके बीचसे गुज़रते हुए जलूसमें सबसे आगे एक उड़ाका अपनी पूरी वर्दी, छातीपर पूरे तमग़े लगाये, बहुत धीरे-धीरे, नाप-नापकर क़दम रख रहा है, मानो वह वहीं स्थिर हो जाना चाहता हो। उसके पीछे कन्धोंपर शव-मंजूषा सम्हाले हुए दूसरे उड़ाके उसी धीर-मन्थर गतिसे आगे बढ़ रहे हैं। वातावरण स्तब्ध है। दूर-दूर तक फैले हुए असंख्य व्यक्ति भी स्तब्ध हैं।....

उस मंजूषामें एक वीर चालकका शव है। अत्यन्त आन्तरिक स्नेह, और सम्मानके साथ वह मंजूषा चितापर रखी जाती है। पंक्तिबद्ध सैनिक शवके गुज़रते ही हथियार सीधे करके सलामी देते हैं। फिर प्रत्येक व्यक्ति शवपर पुष्प-माल्य रखता है। और सैल्यूट देकर मुड़ जाता है। देर तक यह क्रम चलता है। फिर आकाशमें बन्दूकें दनदनाती हैं। फिर बिगुल बज उठता है। मृत्यु-संगीतका मानो अन्तिम स्वर गूँजता हो। मंजूषापर लकड़ियाँ चिनी जाती हैं। औ अनेक कण्ठोंसे उठती हुई मन्त्र-ध्वनि पुकारती है—'जहाँसे तुम आये हो वहीं तुम चले जाओ!'

अग्निकी लपलपाती लपटें आकाशकी ओर बढ़ रही हैं। जनसमूह अभी भी स्तब्ध है। लेकिन विपिन उस समूहमें उस वीर चालककी श्वेत-वसना, धीर-गम्भीरा माँको खोज लेता है। वह जानना चाहता है कि अपने होनहार

नवयुवक पुत्रकी इस असामयिक मृत्युने उसे कितना त्रस्त किया है। लेकिन सहसा उसे लगता है कि उसके चेहरेपर-के दर्दके ऊपर अभिमानकी परत घिर आयी है। वह अभिमान जो इस सम्मानसे पैदा हुआ है। क्या दूसरे नर-नारी इस समय यही नहीं सोच रहे हैं कि काश! हमारे पुत्रने भी ऐसा सम्मान पाया होता....

सहसा विपिनके सामने पछाड़ खाती हुई लहरें फिर तीव्र हो उठीं। उनपर काँपता हुआ एक दूसरा दृश्य उभर आया। वह भी श्मशान-भूमिका दृश्य है। परन्तु उस देशकी श्मशान-भूमिका जिसे हम अपना शत्रु मानते हैं। उसी तरह एक ताबूतको कन्धे पर उठाये सैनिक धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। वह सैनिकोंकी पंक्तियोंसे गुज़रते हैं जो हथियार उलटे किये और सिर झुकाये खड़े हैं। फिर हथियार सीधे होते हैं, फिर दिवंगतको सैनिक सलामी दी जाती है। शवपर पुष्प-मालाएँ रखी जाती हैं, बन्दूक़ें दाग़ी जाती हैं। अन्तिम बार बिगुल बजता है। भीड़के चेहरे-पर वही दर्दसे लिपटी उदासी है। उसकी माँ उसी तरह करुणा और गर्वसे भरे अपने बेटेको देख रही है। वह भी इस सम्मानको अनुभव करती है। और उसका दर्द एक अभिमानसे भर उठता है।

दृश्य फिर पलटता है। लहरोंपर नाचती हुई वियतनामी माँका चेहरा मिट जाता है। और एक अमरीकन माँ आँखोंमें उभर आती है। उसके चेहरेपर वही दर्द है। उसकी गोद-में एक बच्चा है जो उदास-उदास आँखोंसे दूर आकाशमें झाँक रहा है। उसे एक दिन आकाशमें उड़ना है और फिर मर जाना है।....

कैसी अद्भुत समानता है इन दृश्योंमें! सभी मरते हैं, लेकिन उनके अपने देशके लोग उन्हें सम्मान देते हैं, बलिदान कहकर गर्वका अनुभव करते हैं। परन्तु दूसरे देशोंके लोग उनसे घृणा करते हैं। वह मरण, वह मृत्युको लील जानेकी अदम्य आकांक्षा एक स्थानपर पुण्य और दूसरेपर पाप बन जाती है। कौन इनमें सत्य है? क्या मात्र मृत्यु ही सत्य नहीं है। क्यों उस मृत्युके लिए मनुष्य लालायित रहता है? क्यों ये पछाड़ खाती हुई समुद्रकी लहरें बेचैन हैं।....

अपने इस विचारपर सहसा वह मुसकरा आता है। बेचारी लहरें! इनमें चेतनता कहाँ है जो ये अनुभव करेंगी और जहाँ अनुभूति नहीं है वहाँ कार्य-व्यापार कैसे हो सकता है।....

लेकिन मनुष्य तो अनुभूतिका स्वामी है।....

नहीं, उसकी भी नियति है। उसका चिन्तन भी एक सीमापर पहुँचकर व्यर्थ हो रहता है।....

वह जान नहीं सका कि कब वह वहाँसे उठा और कब चल पड़ा। सड़कपर पहुँचकर उसने अनुभव किया कि बहुत उतावला हो आया है और शीघ्रसे शीघ्र सन्ध्याके पास पहुँच जाना चाहता है। वह टैक्सीवालेको आवाज देता है और कुछ ही क्षणमें अस्पताल पहुँच जाता है। फिर तेज़-तेज़ क़दमोंसे ऊपर चढ़ता है। सामने

खड़ी हुई नर्ससे पूछता है, "बेड नं० ११ पर मिसेज सन्ध्या कैसी हैं ?

नर्स मुसकराती है—"क्या आप ही श्रीमती सन्ध्याके पति हैं ?"

"जी हाँ।"

नर्स कहती है, "मेरी बधाई स्वीकार कीजिए। रात आपकी पत्नीने एक सुन्दर बालकको जन्म दिया है। आप अबतक कहाँ थे? सारा दिन वह आपकी राह देखती रही ····"

आँधीकी तरह वह तुरन्त सन्ध्याके कमरेमें आ खड़ा होता है। सामने सन्ध्या ही तो लेटी है! शान्त··· शिथिल, पर उसके चेहरेपर गर्वका प्रकाश स्पष्ट दिखाई दे रहा है और उसके बग़लमें कौन लेटा है एक कोमल शिशु, मौन-निर्द्वन्द्व····

वह ठिठक जाता है। आँखें मलता है। बार-बार मलता रहता है। उसे भ्रम हो रहा है, जैसे-जैसे····

नहीं, नहीं! यह मैं नहीं हूँ। मैं नहीं हूँ···

एक क्षण छटपटानेके बाद वह फिर साहस बटोरता है और आगे बढ़ता है। आहट होती है और सन्ध्याकी दृष्टि उससे टकरा जाती है। दर्द-भरी मुसकान गहरी हो आती है। कई क्षण वह मुसकान गहराती रहती है। फिर बहुत धीरे-धीरे सन्ध्या बोलती है, "अबतक कहाँ थे तुम ?"

विपिन यन्त्रवत् आगे बढ़ता है और शिशुके बिलकुल पास आ जाता है। डरते-डरते उसे छूनेका प्रयत्न करता है। सन्ध्याकी मुसकान और गहराती है। उसी क्षण सहसा विपिन काँप उठता है। उसकी आँखोंके आकाशपर वियतनामी माँका चित्र फिर उभर आता है। वह मानो सन्ध्याका चित्र है और उसकी गोदमें उसका अपना शिशु है।

फिर चित्र पलटता है। श्मशान-भूमि है। सैल्यूट देते हुए सैनिक हैं। चितापर शव-मंजूषा है। श्वेतवसना माँ है। उसके चेहरेपर गर्वकी परतोंमें लिपटा दर्द उभरा हुआ है।

वह दोनों हाथोंसे लोहेके पलंगको पकड़ लेता है। उसका सारा बदन पसीनेसे चिपचिपा आया है। एक तीव्र दर्द उसके हृदयको लील जानेको आतुर है। उसे लगता है जैसे कहीं कुछ नहीं है। शून्य-शून्य, मात्र महाशून्य····

यह सब पलक मारने जितने समयमें बीत जाता है। वह अपनेको सँभाल लेता है। उसने दर्दको सचमुच अनुभव कर लिया है। वह अनुभूति उसकी शक्ति है। सन्ध्याके चेहरेपर परेशानी बढ़ गयी है। वह पूछती है, "यह तुम्हें क्या हो गया था ?"

"कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं।" विपिन अपनी बेचैनीको छिपाकर अत्यन्त कोमल स्वरमें उत्तर देता है। फिर सन्ध्याकी ओर आकर उसका हाथ सहलाने लगता है। नीचे झुककर अपने होठोंसे उसके माथेको छूता है। फिर सोते हुए शिशुके गालोंको चूमता है। फिर मुसकराकर कहता है, "तुम चिन्ता मत करो। मैं बहुत खुश हूँ, बहुत खुश।"

समुद्रकी लहरें उसी तरह पछाड़ खाती रहती हैं। सड़कके ऊपरसे उठता हुआ कोलाहल वैसे ही उनपर छाया रहता है पर अब विपिन वहाँ नहीं है। ■

८१८ कुण्डेवालान, अजमेरी गेट,
दिल्ली-६

युवालेखन : ३-तेलुगु

●

[विगत वर्ष अप्रैल और मई अंकोंमें हमने तेलुगु काव्यधाराके नये विस्फोट 'दिगम्बर पीढ़ी' की सामग्री प्रकाशित की थी लेकिन उस सामयिक धाराके परिचय मात्रसे तेलुगुके नवलेखनको ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। यहाँ चार नये कवियोंकी रचनाएँ प्रस्तुत हैं—व्यंग्य, विचार, अभिव्यक्तिकी तलाशमें व्यस्त। संगीता और विजयलक्ष्मी परम्परागत दिशामें चल रही हैं तो अन्य कवि अपनी अनुभूतिसे ही ग्रस्त हैं। क्या नहीं लिख डालें-जैसी छटपटाहट सर्वत्र है, हिन्दीमें भी और अन्य भाषाओंकी नयी कवितामें भी।···

कहानी इस्माइलकी है, २४ वर्षीय इस मुसलमान कविने तेलुगुकी नयी कथाधाराको झंकृत कर दिया है। कथा-रूढि तोड़नेकी दिशा बड़ी स्पष्ट होती जा रही है वहाँ भी···

—सं०]

खेल / मन्त्रिप्रगड सत्यनारायणमूर्ति

जब तक मैं वहाँ पहुँचा
आधा खेल ख़तम हो गया था
वहाँ बैठे हुए एक व्यक्तिसे पूछा – 'सूत्रधार ने क्या फ़रमाया ?'
वह मुसकराया, बोला–'कुछ नहीं'
मगर मैं ताड़ गया
मैं भी वहाँ बैठ गया
फिर दूसरे ही क्षण मैं भी खेल में विलीन हो गया !

आशा-सुमन फूलने के पहले ही
हृदय-कुसुमों को तोड़कर चला गया
फूलों को मसलकर चला गया
परदे के पीछे !

उत्तुंग लहरों के सागर-गर्भ में छिपे
अमूल्य रत्नों ने चिरन्तनता ग्रहण कर
दो कौड़ी की कौड़ियों को किनारे कर दिया
मातृ-हृदय गर्जन को न समझ पाकर
सागर-संगीत की संज्ञा दी गयी !
माता के स्तन से दूध पीनेवाले शिशु को अलग कर
उसका गला घोंटनेवाले राक्षस को
ब्रह्मा ने अमरता प्रदान की
और वह अब भी हमारे इर्द-गिर्द घूम रहा है !

यश की प्राप्ति के लिए ईमान बेचनेवाले के यहाँ,
ईमान के लिए यश बेचनेवाले के यहाँ,
हमेशा बड़ी-बड़ी दावतें होती हैं
बड़े-बड़े लोगों का जमघट होता है !

साझे की दीवार पर मुर्ग़ी ने अण्डा दिया
किसी ने जाकर शिकायत कर दी
कि बड़े भाई ने अण्डा चुराया
छोटे भाई ने बड़े पर छुरी मार दी
छोटी मछली बेचारी अभी बहुत छोटी थी
कि बड़ी ने उसे बेरहमी से निगल लिया
बच्चों की आँखें अभी खुली भी नहीं
कि बाघ ने सबको स्वाहा कर दिया !

भूखे-प्यासे ग़रीबों की बात छोड़ दो
उन ग़रीबों की बात सोचो—
ज्ञान-दरिद्र, भाव-दरिद्र, भाषा-दरिद्र !
जिनके पेट भरे हुए हैं
जाने ऐसे कितने हैं—
उन्मादी ! पुरानी लकीर के फ़क़ीर !
मगर युवकों में भी मौजूद हैं बूढ़े !

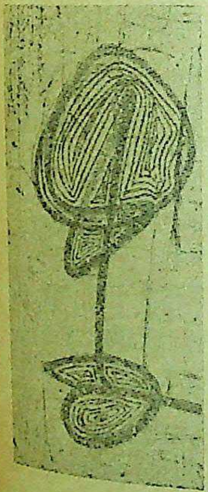

'पेसिमिस्टों को गोली से उड़ा दो'—
कहीं से आवाज़ आयी !
'वन मिनिट प्लीज़ !
मैंने तो यों ही बोल दिया, दिल्लगी में—
मैं कहता हूँ – यहाँ कोई ग़रीब ही नहीं है
सब के सब धनी हैं ।'
मंच पर आये बग़ैर किसी ने कहा—
'पेट भरे या न भरे !
पेट को गोली मार दो
क्या हम पेटके लिए ज़िन्दा रहते हैं ?
ज़रा उधर नज़र डालिए—
वे सबके सब धनी हैं,
त्याग धनी, मान-धनी
ओह ! और क्या-क्या गिनूं ?

तुम देख नहीं पाते हो वह सौन्दर्य
जो तुम्हें हाथों में लिये भागता चला जा रहा है !
तुमने उस सौन्दर्य को –
जो क्षणिक ही सही –
देखने का प्रयत्न किया कभी ?
उसकी प्राप्ति के लिए तपस्या की ?

कुछ लोग ऐसे हैं जो न मरते हैं, न जीते हैं !
मगर क्षण-क्षण मरते हैं
और मरने के दूसरे ही क्षण ज़िन्दा हो जाते हैं
ऐसे लोगों की आशा-भरे दिलों में
उमड़ कर बहनेवाले 'लावा' को
देखने के लिए 'एक्सरे' नेत्र कहाँ हैं ?

संगीत के अभाव में मनुष्य नहीं मरता
साहित्य के अभाव में मानव की मृत्यु नहीं होती
किन्तु ये दोनों मृतकों को जीवन-दान देते हैं !
माणिक्य वीणा का गायन सुनकर
मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो उठा
बधिरने कविता-पाठ का आनन्द उठाया !

"अमन क़ायम करने की कोशिशें जारी हैं
मगर दूसरी तरफ़ अणु-बम का विस्फोट करके
'हविस' को तबाह करने की ताक में भी हैं कुछ उन्मादी !"
—कहीं से आवाज़ आयी !

दूर पर एक मुर्ग़ी ने बाँग दी
किन्तु खेल अभी ख़तम नहीं हुआ
यह खेल कामेडी है या ट्रैजेडी ?
कौन बताये ?
सूत्रधार का तो कहीं पता नहीं !
लगता है, अभिनेताओं ने ख़ूब पी है
प्रॉम्टर तो बैठे-बैठे सो रहा है !

कहीं भावी नागरिक का रूप
अंकित करने का उत्तरदायित्व
अपने ऊपर न आ जाये—
इस डर से मैं उठ खड़ा हुआ
तेज़ क़दम बढ़ाते हुए
मैंने घर की राह पकड़ी !

■ ■

१-८-२३६ चिक्कड़पल्ली,
हैदराबाद—२०

नित्य नूतनता / के० संगीता

मानस की गहराई में
दबी हुई विचित्र आकांक्षाएँ,
अन्धकारमय रजनी में
सुप्त नीरव शून्य पथ,
क्षण-भर आभा दिखाकर
अदृश्य होनेवाली चपला,
एक दिन के लिए
सुगन्ध फैलानेवाले फूल,
—मिट्टी से बने
इस जीवन-पात्र में
एक-न-एक दिन
मधुर भावनाओं के बादल
सुधा-कण बरसायेंगे ।

मन के पिंजड़े में
तुतली बातें करनेवाला तोता,
पहली वर्षा की बूंदों से
उगनेवाली हरी घास,
लक्ष्यहीन आकांक्षाएँ
अगम्य दुर्गम पथ,
शून्य नील गगन पर
उड़नेवाले बादलों के शावक,
नित्य नूतनता की जीवन-यात्रा में
प्रतिलिप्त नूतन है ।
न मुरझानेवाली
न छोड़नेवाली
आकांक्षाएँ सदा
सहेजे रहती है नित्य नवीनता !

■ ■

द्वारा : 'आन्ध्रप्रभा' साप्ताहिक
माउण्ट रोड, मद्रास–२

सीता··· / वेमुराट मोहन प्रसाद

●

मेरे घर में एक भवन है
जिसकी गोल-गोल सीढ़ियाँ हैं
पिंजड़े में बन्द है सीता-शुक
वह दाना नहीं छूता
गुमसुम बैठा रहता
सुन्दर शरीर है उसका

वेणी भी बहुत लम्बी है
आँखें बड़ी-बड़ी हैं, सुन्दर हैं
दूर-दूर तक देख पाता है

भवन के चारों ओर फूल लगे हैं
फूलों की रखवाली करते हैं नौकर-चाकर
भवन के चारों ओर घूमते हैं बाघ
बालों की रखवाली करते हैं हिरन
वहाँ खेलने के लिए बच्चे आते हैं
उन्हें नौकर फूल तोड़कर देते हैं
भवन की सबसे ऊपरी मंज़िल में है सीताजी !
उसका पति कहीं नीचे छिपा हुआ है
सीताजी आवेश में आ जाती है
चेहरे पर बादल छाये रहते हैं
नौकर सीताजी की रखवाली करते हैं
सीताजी विलाप करती है :
"हे श्रीरामचन्द्रजी !
तुमने इस पिंजड़े में क्यों बन्द कर रखा है ?"
श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के पीहर में रहते हैं
यह भवन है आँसुओं से निर्मित्
खिड़कियाँ और दरवाज़े कष्टों के बने हैं

करोड़ों वर्षों के आँसुओं से
सीताजी के सारे तकिये भीग चुके
सीताजी तीव्र ज्वर से पीड़ित हैं
मगर गरम पानी से नहाती हैं
पेड़-पौधे पी जाते हैं वह पानी
फूल छह फ़ुट लम्बे बढ़ जाते हैं—
उसके पति के पत्र
नौकर फाड़कर पढ़ लेते हैं
पत्रों की कविता को वे
बच्चियों को सुनाते हैं

उन्हें कण्ठस्थ करा देते हैं
फूल पूछने लगते—"प्रेम का अर्थ क्या है ?"
सीताजी उत्तर देती है : "विरह !"
नौकर कह देते हैं—"बुख़ार !"
बाघ रोने लगते हैं।

सीताजी ने एक सपना देखा—
हर जगह पानी-ही-पानी है
सारे हल पानी में बह गये
सब के सब गीत गाते हैं।
सीताजी के पति ने उसके सारे कपड़े
धोबी को डाल दिये
हर कोई हर किसी से प्रेम करना चाहता है
प्रेम का अर्थ है—एक प्रवाह
जिसमें सबके सब बह जाते हैं
सीताजी बैठे-बैठे गाने लगी
एक नौकर के साथ वह भाग गयी !—
"तू ही मेरा प्रियतम है
प्रियतम प्यारा !"
सीताजी नींद में बड़बड़ाने लगी।

सुबह हुई
सीताजी होश में आ गयी
कौए सीताजी की आँख नोचने लगे
सूरज ने आँख से इशारा किया
नौकरों ने कनखियों से देखा
वह सीताजी से अनुरक्त है
"प्रिय सखी ! सीते ! मेरी भगवद्गीता !
हम एक-दूसरे से पृथक् हो गये थे
पिछले कई जन्म-जन्मान्तरों से
अब तेरे बिना रहा नहीं जाता

तू ही मेरी सब कुछ है
आ जा ! मेरे साथ आ जा !
कहीं दूर भाग चलें !"—उसने कहा ।

"सपने में देखा मैंने
चाँदनी छिटकी थी
एक रात गुज़ार दी
जाने इस जन्म में
क्या-क्या सुख देखने हैं
मेरा मन झुलसता रहा
मुझे कोई मार्ग न मिला ।"
सीताजी ने सोचा
उधर फूल विकसित हुए
प्रेम उसकी आँखों में उछल पड़ा
कबूतर उड़कर चला गया !
पिंजड़ा ख़ाली हो गया !

सीताजी के पति क़ैदख़ाने में रह गया
"हे सीते ! हे सीते ! हे सीते !
कितना बड़ा अन्याय किया तूने !
मुझे छोड़ चली गयी
अब मैं कैसे जीऊँ ?
क़ैदख़ाने से तू आखिर
चली क्यों गयी ?"

पत्नी के चले जाने पर
विलाप करने लगा वह बारम्बार !

■ ■

हास्टल,
सेण्ट्रल इन्स्टिट्यूट ऑफ़ इंग्लिश
हैदराबाद-७

वह सुमन / मापूरि विजयलक्ष्मी

वह सुमन
मुझे देख
जाने क्यों
मुसकाया !
उस मुसकान ने
मेरे अन्तर को वेध डाला !

आकांक्षाएँ उमड़ पड़ीं अन्तर में
ममता-भरा मन मचल उठा
जाने क्यों
वह सुमन खिल उठा !

पहाड़ों के आघात सहे
निदाघों के प्रताड़न सहे
फिर भी वह सुमन
मुसकाता रहा
मुझे देख वह खिलता रहा
उसने मेरा साथ देना चाहा
मेरे साथ चलना चाहा
उमड़ पड़ा अमृत
उस सुमन के अन्तर मे
अमरत्व पाया मैंने !

* * *

द्वारा : 'आन्ध्र प्रभा' साप्ताहिक
माउण्ट रोड, मद्रास-२

क । हा । नी

समुन्दर

इस्माइल

"हे भगवान् ! तूने कैसा नाता जोड़ दिया, इनके साथ !" वसुन्धराने मनमें सोचा, दूर दिखनेवाली कृष्णा नदी, और उसके पीछेके पहाड़ देखते हुए ।

अकेलेपनकी पीड़ा बिच्छूके जहरकी तरह उसके शरीरमें प्रवेश करने लगी । धीरे-धीरे । पावर-हाउसकी चिमनीसे निकलनेवाले धुएँके कारण इतवारकी शामका सूरज लाल-लाल आँखें लिये आगबबूला हो रहा था ।

दौरेसे ये साहब कब लौटेंगे ? कहीं ऐसा न हो कि उनकी जीप किसी लारीके साथ लड़ जाये ! इस सूरजकी लालिमाके सामने आसमान जैसे टुकड़े-टुकड़े हो रहा है, वैसे उनकी देह टुकड़े-टुकड़े न हो जाये ! और उनका दिमाग़ ? अकसर कहा करते थे—"मैं जब स्कूलमें पढ़ता था, गणितके अध्यापक मेरी बड़ी तारीफ़ किया करते थे और कहा करते थे कि तुम्हारा दिमाग़ बड़ा तेज़ है।" आइन्दा शायद ऐसा कहनेका अवसर ही न मिलेगा । "आज पिक्चरका प्रोग्राम कैन्सिल कर दो वसुन्धरा !" सिगरेटका धुँआ उगलते यह कहनेकी नौबत अब न आये ! क़ीमती सिगरेट पीनेवाले होंठ, 'लण्डन नाइट्स सेण्ट'का उपयोग करनेवाला शरीर, 'तेज़ दिमाग़' के अलावा अन्य गुणोंसे शून्य दिमाग़—कुछ भी न रहेंगे । जीपका उलट जाना, सारे अंग-प्रत्यंगोंका टुकड़े-टुकड़े हो जाना, खूनका प्रवाह ! मृत्यु एक सशक्त कलाकारके समान है—सौ पिकासोसे भी बढ़कर !

"जिन्दगी और मौतका कोई अर्थ नहीं ।" रवि कहा करते थे । कहा करते थे—"संसारमें किसी भी वस्तुका कोई अर्थ नहीं । मानवके अस्तित्व झूठे हैं । मीनिंगलेस हैं ।" क्या रवि रातको लौटेंगे ? लौट आइए न रवि ! माइ स्वीट् रवि !

"देखिए ! सुदर्शन रावकी जीप लारीसे टकरा गयी और····" अगर दफ़्तरसे ऐसा टेलीफ़ोन आ गया तो क्या मुझे फ़िल्मकी हीरोइनकी तरह दिल दहलानेवाले स्वरमें गला फाड़-फाड़कर रोना चाहिए कि हाय भगवान् ! तूने यह क्या किया ! मैं अब किसके भरोसे ज़िन्दा रहूँ ! "न ! न ! इस तरहसे चीखना-चिल्लाना मुझे बिलकुल पसन्द नहीं ।" एक बार मृत्युका प्रसंग छिड़ा तो रविने यह बात कही थी ।

"बीबी जी ! मैं जा रही हूँ ।" रसोई बनानेवालीकी आवाज़ थी ।

अच्छा हुआ, यह जा रही है। पिछली बार जब रवि आनेवाले थे, तब जाने क्या-क्या बहाना बनाना पड़ा, इसको बिदा करने के लिए। अच्छा है एक मुसीबत टल गयी।

"जा रही हो ? कहाँ ? फिर मेरे साथ कौन होगा यहाँ ?" मैंने ऐसे ही पूछा।

"बीबी जी ! आज मैं अपने मर्दके साथ सिनेमा देखने जा रही हूँ। आज हमारी शादीकी पाँचवीं सालगिरह है। इसलिए····" कहते-कहते वह लजा गयी।

अच्छा ! आज ये अपने मर्दके साथ पिक्चर जा रही है ? आज ख़ूब बातें होंगी दोनोंमें ! वह इसकी बग़लमें लेटेगा·· बड़ी ख़ुशी देगा···जाओ ! यू आर लकी वोमन् ···लकी···!

"अच्छी बात है। जाओ।"

अब भोजन करना चाहिए। कोई अँगरेज़ीका उपन्यास लेकर बैठकर पढ़ना होगा। इन अँगरेज़ीके उपन्यासोंमें क्या धरा है सिवाय सेक्सके ? तृप्ति····तृप्ति····तृप्ति ! नान्सेन्स ! वह तृप्ति मुझे क्यों प्राप्त नहीं है ?

वसुन्धरा झल्ला उठी। शरीरके अन्दर मनुष्यमें कितना नीच पशु बैठा हुआ है ! उसने सोचा।

सोफ़ेपर वह धड़ामसे बैठ गयी। सामने सुबहका अख़बार पड़ा हुआ था। नज़र उसपर पड़ी।····उत्तर विएतनामके बन्दरगाहोंपर बमबारी···उत्तर प्रदेशमें विद्यार्थियोंने पुलिसपर पत्थर फेंके, बसें जलायीं ···पंजाबमें ५०० व्यक्तियोंकी गिरफ़्तारी···· बम्बईमें १००० तोले सोना बरामद····

अख़बारपर-से नज़र हटाकर वह सोचने लगी—"डियर प्रेसिडेण्ट लिण्डन् जानसन ! रीड् गीन्सबेर्ग्स पोएट्री····डैम योअर विएतनाम पॉलिसी····! डियर इन्दिरा गान्धी ! यू लुक्ड नाइस ह्वेन आई सी यू इन् विजयवाड़ा व्हू आयरन्स, योअर सारी ? इण्डिया इज़ पूअर कण्ट्री····सिक् कण्ट्री····ओह ! ओह !"

इनको पत्र लिखना चाहिए। रविकी दी हुई क़लमसे। नयी सेनीटरी टावेल्सवाले बक्ससे वह क़लम निकालकर किसी दूसरी जगहपर छिपानी चाहिए।

वसुन्धराने घड़ी देखी। साढ़े छह बज चुका था।

दिन कैसे बीत गया ?

उठी। बत्ती जलायी।

उबासी लेनेवाले रेगिस्तान-सा दिख रहा है सारा कमरा। टेब्रिलके पाये साँपोंकी तरह दिख रहे हैं ! शरीर जैसे काँटोंमें समाधिस्थ है। रविने ठीक ही कहा–'अस्तित्वमें कितनी व्यथा है ! उससे घाव हो जाते हैं !' रवि परसों यह कहकर गये थे कि आज लौटूँगा। लौटेंगे आज ? अच्छा होता, अगर आ जाते।

◆

अकस्मात् ·फिर वसुन्धराके मनमें मृत्युकी बात कौंध गयी। वह परेशान-सी हो गयी।

मृत्यु हो जानेसे इस संसारके साथ लगी हुई कमिट्मेण्ट खतम हो जाती है। इससे बढ़कर और क्या होगा ? अगर फिरसे ज़िन्दा रहनेका अवसर आदमीको मिल जाता तो वह क्या करता ? ज़िन्दगीसे

मुँह मोड़ लेगा ? पुअर क्रीचर्स ! एक सीमित दायरेमें कोल्हूके बैलकी तरह जिन्दगी बिताते हुए लोग यह समझते हैं कि हम आज़ाद हैं। हलचल, भय, घबराहट, तेलकी बदबू, सड़ककी धूलमें साँस लेते हुए, सिगरेट फूँकते हुए, पिक्चर देखते हुए, रेस्तराँमें खाते हुए हमेशा अस्तित्वकी बात यह समझकर स्मरण करते रहते हैं कि कहीं हम उसको भूल तो नहीं जा रहे हैं ? और मैं भी तो उन्हीं लोगोंमें-से एक हूँ। मैं भी ....मिनिंग्लेस....ऍब्सर्ड....

पता नहीं, क्या बात है कि वसुन्धराको भोजन करनेकी इच्छा नहीं हुई। मगर थोड़ी देरके बाद अनिच्छासे ही खानेपर बैठ गयी।

बाहर बूँदा-बाँदी हो रही थी। नीचेके सब दरवाज़े बन्द करके वह ऊपर चली गयी।

■

रवि शायद न आयें। कहीं यह बूँदाबाँदी घनी वर्षामें परिणत न हो जाये। एक दिन बरसातकी एक रातको मैंने रविसे कहा, "बड़ी सर्दी लग रही है।" रविने झटसे उत्तर दिया—"कम्बल ओढ़ लो। सर्दी अपने आप भाग जायेगी।" पुअर फ़ेलो ! ....वह यह क्यों नहीं समझता कि कोई भी औरत अपने मुँहसे यह नहीं बताती कि उसे फ़लाँ वस्तुकी अपेक्षा है। वह आभास मात्र दे सकती है। बात मर्दको समझनी चाहिए। और....। मैं कहती—"आप दौरेपर चले जाते हैं तो मुझे रातको बहुत डर लगने लगता है।" वे कह देते—"नौकरानी जो है। अॅलसेशिएन घरमें है। डर काहेका ? ...अलसेशिएन कुत्तेके लिए हम रोज चार रुपया खर्च करते है !....यह गुलाबका पौधा है न, इसे हमने बंगलौरसे मँगा लिया है !....साहब ! जब मैं रोटरीका सेक्रेटरी बना तो पार्टीमें पाँच हज़ार रुपयेका खर्च आया।....ख़ूबसूरत बीवी, विदेशी नस्लके कुत्ते, गुलाबके पेड़, रोटरी क्लब....ये चीज़ें मर्दको बड़ी वैनिटी देनेवाली होती हैं। इस कुत्तेको किसी एक कमरेमें बाँध देना चाहिए, ताकि रविको देखकर वह भौंके नहीं।

वसुन्धरा ऊपर बरामदेमें जा बैठी। सामने घना अन्धकार फैला हुआ था। पहाड़ भी उसमें गुम हो गये। कृष्णा नदीके पानीपर बिजलीकी रोशनी झिलमिला रही है! पावर-हाऊससे धुँआ निकलनेकी आवाज़ सुनाई दे रही है। पुलपर-से रेलगाड़ी आवाज़ करती हुई जा रही है।.... ये सब मनको उबा रहे थे। बहुत बेचैन कर रहे थे।

वसुन्धरा सोफ़ेपर लेट गयी। उसे नींद आ गयी।

अकस्मात् वह उछलकर बैठ गयी।

उसे नींद कब आयी ? फिर वही सपना....! वे लॉरीके नीचे आ गये। 'ख़ूनसे लथपथ शवको चार व्यक्तियोंने उठाकर एक ताड़के पेड़के नीचे लिटा दिया, जिसके पास ही एक पानीका गड्ढा भी था। गड्ढेकी दूसरी तरफ़ ताड़का एक पेड़ और था, जो हवाके मारे आवाज़ कर रहा था। इतनेमें शव उठ बैठा। वह चिल्ला-चिल्ला

कर कहने लगा—"मैं नहीं मरा !" उधर वाला पेड़ देखते-देखते अदृश्य हो गया।

■

कॉल-बेलकी आवाज़ !

वसुन्धरा चौंक पड़ी। फिर घण्टीकी आवाज़ ! उसने सोचा, शायद रवि आया होगा। नीचे जाकर दरवाज़ा खोला। रेन-कोटमें रवि प्रत्यक्ष !

"एक मिनटके लिए ठहर जाइए।" वह अन्दर चली गयी और अॅलसेशिएन कुत्तेको एक कमरेमें बाँधकर लौट आयी—"आइए ! अन्दर तशरीफ़ लाइए।" वसुन्धराने कहा।

इधर-उधर देखकर रविने आँगन पार किया। फिर अचानक रुककर वसुन्धराकी दोनों भुजाओंको पकड़ते हुए उसने पूछा, "क्या बात है वसू ? घण्टी मैं बहुत देरसे बजाता रहा और तुम न आयी ! सो रही थी क्या ?"

"देखिए जनाब ! कीचड़में सने आपके जूतोंके निशान फ़र्शपर पड़ रहे हैं। जूतेको उस कोनेमें छोड़ दीजिएगा तो अच्छा रहेगा।" वसुन्धराने कहा और पायदानको दायें पैरसे सरकाते हुए कीचड़के उन निशानोंको पोंछ दिया। "रेन-कोटको बाथ-रूपमें रख आऊँगी।" वसुन्धरा उसके हाथोंसे रेन-कोट लेकर बाथरूममें लटकाकर आयी।

"मैंने सोचा, आप नहीं आयेंगे।"

वसुन्धराकी कमरपर बाँह डाले रवि सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। उसके होठोंपर मुसकराहट थी।

"माइ स्वीट् डार्लिग् !" वसुन्धराने कहा। वह बहुत प्रसन्न थी। उसके पैर ज़मीनपर नहीं पड़ रहे थे।

दोनों ऊपरी मंज़िलके बरामदेमें आ गये।

"चलो, कमरेमें चलें। यहाँ तो सर्दी लग रही है।" रविने कहा।

वसुन्धरा हँस पड़ी—खिलखिलाकर !

"क्या बात है ? हँसती क्यों हो ?" आश्चर्यसे पूछा रविने।

"हम अपने कमरेमें जा रहे हैं।"

'अपने कमरे' पर ज़रा-ज़ोर देकर वह बोली और मुसकराने लगी।

रवि भी मुसकराया। वसुन्धराकी कमर-परसे हाथ हटाकर जेबमें-से सिगरेटका पैकेट निकाला। हाथमें एक सिगरेट लेते हुए उसने वसुन्धराके साथ कमरेमें प्रवेश किया। वसुन्धराने बत्ती जलायी। सिगरेट जलाकर वह गोदरेज-टेबिलके सामनेकी कुरसीपर बैठ गया, माचिसकी डिब्बीपर तर्जनीसे टक-टककी आवाज़ करते हुए।

"पानी पिलाओ वसू !"

"ज़रूर !"

वसुन्धरा जाकर एक गिलासमें पानी ले आयी।

"सिगरेट खतम होनेके बाद पिऊँगा। टेबिलपर रख दो।"

रख दिया।

"आप भी बड़े 'वो' हैं !"

वह मुसकरा दी। रवि भी।

सिगरेटके पैकेटपर तर्जनीसे आवाज़

कर रहा था, वसुन्धराको ऊपरसे नीचे तक देखते हुए ।

"प्लीज़ कम डियर !" वसुन्धराने अनुनयके स्वरमें कहा, कुरसीकी बग़लमें खड़ा होकर ।

रविने कुरसीपर देखा—साड़ी, जॉकेट, ब्राँ, पेटीकोटका ढेर ! पहलेका सारा अस्तित्व जैसे····।

"वाह-वाह ! तुम एक कुन्दनकी मूर्ति-सी लग रही हो !" वसुन्धराको बड़े ग़ौरसे सिरसे पैर तक देखते हुए कहा रविने ।

वसुन्धरा उसके और नज़दीक जा खड़ी हुई और उसके कन्धेपर अपने बाँह रख दी ।

उसने सिगरेट नीचे डाल दी और पैरसे कुचल दी ।

"प्लीज़ ! डार्लिंग रवि !"

कपड़ोंका वह समूह रविको ऐसा लगा जैसे कि कोई बहुत बड़ा सर्प हो, जो कुण्डली मारकर वहाँ बैठ गया हो । उसका मन एकदम अनमना-सा हो गया ।

"ओह ! माई स्वीट्····अरे ! यह क्या ? पसीनेकी बदबू ? आज आपने स्नान नहीं किया ?" वसुन्धराका सारा उत्साह जैसे ठण्डा पड़ गया । उसे महसूस हुआ कि वह सीढ़ियोंसे नीचे लुढ़कती जा रही हो ।

"चुम्बन तो होठोंपर ही लेते हैं न ?" वसुन्धराकी बात बग़ैर सुने रविने कहा ।

कितना बेहूदा डायलॉग है ! वसुन्धराने सोचा । अब उसमें पहलेका-सा उत्साह नहीं रहा । उसने भीतर-ही-भीतर एक कड़ुवाहट अनुभव की । वह मन मसोसकर रह गयी ।

"चलो, हम अपनी घड़ियोंको तोड़ दें ।" पलंगके नज़दीक़ जाते हुए रविने कहा ।

"आप लेखकोंकी भाषामें बोलने लगे । यह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं ।"

रवि हँसा ।

"ठहरिए । एक घूँट पानी तो पीने दीजिए, प्यास लग रही है ।" उठकर जाते हुए वसुन्धराने कहा ।

"क्यों नहीं ! क्यों नहीं । आह जो भरनी पड़ी ।" रविने उत्तर दिया ।

वसुन्धरा मुसकरायी और गिलासका आधा पानी भी नहीं पिया कि लौट आयी । जाने क्यों वह बहुत प्रसन्न थी । दिल और दिमाग़से ।

रवि वसुन्धराको और भी नज़दीक खींचने जा रहा था····

तभी कॉल-बेलकी आवाज़ सुनाई दी ।

दोनों चौंक पड़े । घबरा गये । दोनोंने एक दूसरेका मुँह देखा ।

साँप है ! रविने सोचा ।

कॉल-बेल पहलेकी तरह बज रही थी ।

वसुन्धराने रविकी तरफ़ देखा । उसकी नज़रोंमें घुटन थी, क्रोध था और असन्तोष !

कॉल-बेल !

"आयी !" वसुन्धराने अपनी आवाज़ ऊँची करके कहा ।

नीचे जाते हुए वसुन्धराने देखा, रविकी आधी-जली सिगरेटको और आधे पानीवाले अपने गिलासको ।

एक गहरी साँस ली। बोली, "रवि ! सिगरेट बाहर फेंक देना।" दरवाजा बन्द करके बाहर कुण्डी लगायी, फिर नीचे चली गयी।

नीचे फेंकी हुई जली सिगरेटको लेकर सिगरेट-पैकेटमें रख लिया। पैरसे कुचलते वक़्त जो काला-सा धब्बा फ़र्शपर पड़ा था, उसे पैरसे साफ़ कर दिया।

रविने अनुभव किया कि कमरेकी दीवारें उसके नज़दीक सरकती आ रही हैं, उसका जीवन-समाधि करनेके लिए। बड़ी बेवक़ूफ़ीकी यहाँ आकर ! आना नहीं चाहिए था, इस पानीमें।... शायद सुदर्शनराव आया होगा—फ़िल्मकी हीरोइनके बापकी तरह—खलनायककी तरह !....इतनी रात गये आनेकी क्या ज़रूरत थी उसको ? ....वक़्त देखा। वसुन्धरा तो कह रही थी कि दो दिन बाद—मंगलके दिन—आनेवाला है !...बैड लक्....रेन-कोटका क्या होगा ? कीचड़के निशान पोंछकर अच्छा किया वसुन्धराने !

रविको कमरेमें जैसे उमस-सी होने लगी, जैसे दम घुटने लगा। पंखा चलानेकी सोची। मगर डरके मारे वैसा नहीं किया। रूमाल निकालकर पैर पोंछने लगा।

दरवाज़ा खुला।

"अच्छा हुआ...वो नहीं आये....तार आया है....कल आ रहे हैं....आपके दोस्त कृष्णाजी भी आ रहे हैं...." कमरेमें प्रवेश करते हुए वसुन्धराने कहा।

रविने कुछ नहीं कहा। वसुन्धराको वह निहारता जा रहा था। उसकी आँखोंसे असन्तोष झलक रहा था....मुँहपर परेशानी नज़र आ रही थी।

"हूँ !" आह भरकर वसुन्धरा बोली, "कुछ कहिए न ! गुमसुम क्यों बैठे हैं ? हाँ, मैं बहुत परेशान थी कि रेन-कोट और जूते को कहाँ छिपा दूँ। आखिर उन्हें ले जाकर कोयलेके डिब्बेमें डाल दिया। रेन-कोटमें ज़रा कोयला लग गया होगा ! बुरा न मानना।" वह जाकर टेबिलके सामनेकी कुरसीपर बैठ गयी।

रवि चुप।

जाने क्यों वहाँ रहना उसके लिए अच्छा नहीं लग रहा था। उसने सोचा कि वसुन्धरासे कह दे कि मैं जा रहा हूँ। किन्तु यह कह नहीं पाया। अगर वह ऐसा कहेगा तो उसके पुरुषत्वको धक्का लगेगा। वसुन्धराकी नज़रोंमें वह गिर जायेगा। मैं मर्द जो हूँ !

वसुन्धराने पहले उस गिलासकी तरफ़ देखा, जिसका आधा पानी वह पी चुकी थी। फिर उस अधजली सिगरेटको उसने खोजा, जिसे रविने फ़र्शपर गिरा दिया था।

"बैठिए न !" वसुन्धराने कहा।

"नहीं वसू ! मुझे इजाज़त दो। एक बज रहा है।"

"आपकी जैसी मर्जी !"

रविने जाने क्यों सोचा था कि वह उसकी दोनों भुजाओंको अपनी बाँहोंसे जकड़कर, पलंगके पास ले जाते हुए यह कहेगी—"स्वीट डार्लिंग् !" किन्तु वसुन्धराने कुछ

नहीं कहा। वह बेचैन हो उठा। पलंग, दीवारें, कुरसी, टेबिल—कमरेकी सब चीज़ोंसे जैसे मरे हुए कुत्तेकी बदबू निकल रही हो! उसे वहाँ उलटी-सी होने लगी।

"अब मुझे इजाज़त दो !"

"हाँ-हाँ। कल शामको आयेंगे न ? वो और कृष्णाजी—दोनों आ रहे हैं। गपशप होगी।"

"ठीक है। ज़रूर आऊँगा।"

रवि कमरेसे बाहर निकला। वसुन्धरा भी उसके साथ-साथ चलने लगी। दोनों नीचे उतर आये। नीचे कम पावरवाला गोला जल रहा था।

"एक मिनट प्लीज़। रेन-कोट और जूता ले आयी अभी !"

जाकर ले आयी। रेन-कोट हाथपर डाले, बूट पहन लिये रविने।

वसुन्धराने दरवाज़ा खोला। पानी थम गया था। आसमान काला-काला था। बाहर जाते-जाते रविने वसुन्धराको चूमना चाहा।

"नो रवि! प्लीज़!" अपने हाथसे मुँह छिपाते हुए वसुन्धराने कहा।

रविकी अधजली सिगरेट, उसका आधा पानी पिया हुआ गिलास वसुन्धराकी आँखोंके सामने घूम गया।

"ओ-के····मैं चला।" रवि इधर-उधर ताककर तेज़ क़दम चलते हुए आगे बढ़ गया। जब वह बिजलीके खम्भेके पास पहुँचा तो उसकी परछाईं बहुत लम्बी दिखाई दी और वह जैसे-जैसे आगे बढ़ने लगा, उसकी छाया और भी छोटी होती गयी। वसुन्धराको हँसी आ गयी।

■

अन्दर जाकर पहले अॅलसेशिएनको बन्धन-मुक्त कर दिया। फिर ऊपर चली गयी। सिरदर्द-सा होने लगा। पलंगपर लेट गयी। उसे ऐसा आभास हुआ कि घुटन और टूटनसे सारा कमरा भरा हुआ है····रवि जहाँ था वहाँ नीचे एक छोटी-सी डायरी दिखाई दी। जाकर उठा ली। रविकी थी। पहले ही पृष्ठपर लिखा हुआ था: 'रवि'। उलट-पुलटकर देखा। एक पृष्ठपर लिखा हुआ था:

"····यानी फ्रेंच, स्कूटर, यार्डली पाउडर, हकोबा साड़ी, लिबर्टी ब्रॅ—इनको नहीं खरीद सकता! इनके अलावा और ऐसी ही अन्य अनेक वस्तुओंके रहनेसे ही, औरत सोचती है कि अपना अस्तित्व क़ायम रख सकती है। औरतका प्यार प्राप्त करनेके लिए मर्दको इन सारे उपकरणोंको जुटाना होगा। यह सब देनेके बावजूद औरतकी काम-वासनाको तृप्त करनेके लिए आयत्त रहना पड़ेगा। अन्यथा उसका अस्तित्व ही नहीं है, औरतकी नज़रमें मीनिंगलेस····इसपर एक कहानी लिखनी होगी।"

एक और पृष्ठपर:

"मैरेज इज़ पापुलर बिकॉज़ इट् कम्बाइन्स द मैक्सिमम् ऑफ़ टेम्प्टेशन विद द मैक्सिमम् ऑफ़ अॅपारच्युनिटी—शॉ।"

उसके नीचे—

'विजयवाडलो एंडलु, कोंडलु, मुंडलु !'
(विजयवाडामें धूप है, पहाड़ है, वेश्याएं हैं!)

'घने जंगलोंमें छिपे गूढ़ रहस्य
अपनी आँखोंमें छिपाये हुई नवयौवना!'
'तू मेरी माँ है, पत्नी है, प्रेयसी है
अपने आलिंगनमें बाँधनेवाली सिंहनी
है।'

····वाह! वाह! तिलक (कवि) ने क्या खूब कहा है?'

उसके बाद किसी भी पृष्ठपर कुछ नहीं लिखा हुआ था। उसके मनमें आया कि डायरी बाहर फेंक दे। मगर यह सोचकर ऐसा नहीं किया कि शायद रवि उसके बारेमें पूछे। उसे तकियेके नीचे रखकर लेट गयी।

■

दूसरे दिन सुबह वे—सुदर्शनराव और कृष्णाजी—आनेवाले थे, नहीं आये।

शामको आनेका वादा किया था रवि ने। मगर वह भी नहीं आये। जाने क्यों?

शामके पाँच बजे सुदर्शनराव और कृष्णाजी आ गये। उनके मुँहपर चिन्ताके बादल छाये हुए थे।

"वसू! हमारे रविका देहान्त हो गया!" सुदर्शनरावने काँपते हुए स्वरमें कहा।

वसुन्धरा सकतेमें आ गयी।

'कौन रवि?" उसने आश्चर्यसे पूछा। उसका मन हुआ कि कह दे कि वह तो कल रात यहाँ आये थे। अकस्मात् उसको रविकी आँखें, पैर, होंठ आदिका स्मरण हो आया, जिनका अब कोई मूल्य नहीं—मिट्टीमें मिल गये!

"उसने आत्महत्या कर ली है।''''किसी पुस्तकके प्रकाशनके सम्बन्धमें कृष्णाको उससे बात करनी थी। रास्तेमें उससे मिलनेके इरादेसे जीपपर उसके घर गये।''''हमने देखा, घरके सामने बड़ी भीड़ खड़ी थी और अन्दरसे रोने-पीटनेकी आवाज़ आ रही थी।" सुदर्शनराव कहते जा रहे थे।

"ऐसी क्या बात हुई कि आत्महत्या कर ली? मनहूस कहींके!"···टॉवेलवाले बक्समें रविकी क़लम है और तकियेके नीचे डायरी! इन दोनोंको नालेमें फेंक देना चाहिए—इनकी ग़ैरहाज़िरीमें!

"उसकी औरत किसीके साथ भाग गयी-कल रात! एक चिट्ठी छोड़ गयी है। लिखा था—'तुम नहीं जानते कि औरत क्या चाहती है। मैं ऐसे मर्दके साथ जा रही हूँ, जिसे औरतकी आवश्यकताओंका एहसास हो।' और यह बात सब जगह फैल गयी है।".

"कल रातको?" वसुन्धराने पूछा।

आधी जली हुई सिगरेट, आधा पानी पिया हुआ गिलास वसुन्धराकी आँखोंके सामनेसे गुज़र गये।।''''जब हम दोनों यहाँ बेचैनी और असन्तृप्तिकी अवस्थामें थे, तब वह चली गयी होगी। हेल···!

"यह अपमान उससे बर्दाश्त नहीं हो सका। फन्दा डाल लिया। उसकी माँ और बहन बहुत रो रही थीं''''। एक अच्छा दोस्त इस संसारसे उठ गया!", सुदर्शनरावने कहा, जैसे इससे आगे कुछ बोलनेको नहीं रह गया हो।

कृष्णाजीका चेहरा उतरा हुआ था। बहुत। ज्योंके त्यों खड़े थे, जैसे कोई भारी बोझ उनके सिरपर डाल दिया गया हो।

"अच्छा !····ये सब बातें पीछे होंगी, पहले आप नहा-धो लीजिए।···ऐसा लगता है कि कृष्णाजीको बहुत भारी सदमा पहुँचा है। क्यों, साहब, कहिए, क्या झूठ कहा मैंने ?" वसुन्धरा मुसकरायी।

"जी नहीं ! ऐसी कोई बात नहीं।" कृष्णाजीने झेंपते हुए कहा।

"देखो, तुम ऊपर चले जाओ। मैं अभी बाथरूम होकर आऊँगा।" सुदर्शनरावने कहा।

कृष्णाजी ऊपर चले गये।

सुदर्शनराव बाथरूममें क़दम रखने ही जा रहा था कि पीछेसे उसका कन्धा पकड़ते हुए वसुन्धरा अन्दर चली आयी। बायें हाथसे बाथरूमका दरवाज़ा बन्द कर दिया और सुदर्शनरावके गलेसे लिपट गयी।

"आप····आप कितने अच्छे हैं !" वसुन्धराने कहा।

"क्यों भला ?" हँसते हुए सुदर्शनरावने पूछा।

इस क्योंका क्या उत्तर दिया जाये ? नो नो ! ये मर्द हैं !

"आप लौटकर जो आये हैं।" उसने कहा।

अबकी बार उसने माथेको चूम लिया।

'तुम यह क्या कर रही हो ?" सुदर्शनराव खीझ उठे।

वसुन्धराको भी इस बातपर बड़ी खीझ हुई। फिर ये भी तो उसी क़िस्मके हैं ! स्विच् ऑन करनेपर भी न जलनेवाला बल्ब ! उसने सोचा।

किन्तु···

"आप बहुत अच्छे हैं····!" सुदर्शनरावके गालपर हलकी-सी चुटकी लगाकर वह बाथरूमसे बाहर चली आयी।

आकर रेडियो ऑन कर दिया।

■ ■

अशोक गाडन्स
गुणदला, विजयवाड़ा-५

■

(हिन्द्री रूपान्तर : दण्डमूडि महीधर)

परिवर्तित विज्ञापन-दरें :

पूरा पृष्ठ (पाठ्य-सामग्रीके बीच)	२७५-००	पूरा पृष्ठ साधारण	···२५०-००
मुख-पृष्ठ (चतुर्थ भाग) ···	५००-००	तृतीय मुख-पृष्ठ	···४००-००
दूसरा मुख-पृष्ठ ···	४५०-००	आधा पृष्ठ	···१५०-००

—विज्ञापन अधिकारी

नाटक और नाटक

और

ये नाट्य-कृतियाँ

जिन्हें पढ़ें तो अच्छा लगे और देखें तो प्रेरणा पायें

तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ ■
परिपूर्णानन्द वर्मा
४.००

आदमीका ज़हर ■
लक्ष्मीकान्त वर्मा
३.००

कहानी कैसे बनी ■
कर्तारसिंह दुग्गल
२.५०

बारह एकांकी ■
विष्णु प्रभाकर
४.००

पचपनका फेर ■
विमला लूथरा
३.००

■ कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी
डॉ० भगवतशरण उपाध्याय
३.००

■ प्रेत
मूल : इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन
२.५०

■ जनम क़ैद
गिरिजाकुमार माथुर
३.००

■ और खाई बढ़ती गयी
भारतभूषण अग्रवाल
२.५०

■ तरकशके तीर
श्रीकृष्ण
३.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

(पृष्ठ ६ का शेष : जो वे स्वयं न कह सकीं—इन्दिरा गान्धी)

रंगाको भी नहीं बख्शा। संसद्में स्वतन्त्र पार्टीके पार्लमिण्टरी बोर्डके प्रेज़िडेण्ट पटेल भी मात खा गये! स्वयं गायत्री देवीको भी एक सीटपर हार खानी पड़ी। संसद्में जनसंघ पार्टीके नेता त्रिवेदीकी भी यही हालत हुई। संसद्को अपनी हरकतोंका तमाशा दिखानेवाले मनीराम बागड़ी और स्वामी रामेश्वरानन्द भी जनताकी नज़रसे गिर गये! किसकी हार और जीतमें कहाँ क्या तुक है, समझमें नहीं आ रहा है। अक़्ल हैरान है। लेकिन यह बात बहुत साफ़ है कि जनताने हर क्षेत्रमें चुनावका निर्णय अपने हाथमें लिया। अगर उम्मीदवार ज्यादा खड़े हुए और वोट बँट-बँटाकर नतीजा यह निकला कि जीत सकनेवाले हार गये और हारनेवाले जीत गये तो यह भी जनताके वोटकी विजय है, जनतन्त्रकी कामयाबी है। नेताओंका राज खत्म हुआ, जनताका राज आया।

मैं सचमुच बहुत खुश हूँ कि मेरे देशका दिल और दिमाग़ बिलकुल ठीक है। मैं खुश हूँ कि हमारे देशकी लाखों स्त्रियाँ, लाखों-करोड़ों शिक्षित और अशिक्षित व्यक्ति मत-पेटी तक पहुँचे और उन्होंने अपनी मर्ज़ीसे अपना मताधिकार बरता। क्या हुआ अगर कांग्रेस सरकारें केरल, मद्रास, पंजाब, बिहार, बंगाल और उड़ीसासे नेस्तनाबूद हो गयीं; क्या हुआ यदि उत्तर प्रदेश और राजस्थानमें कांग्रेस सरकार न बन पायी? क्या हुआ यदि केरल और पश्चिम बंगालमें कम्युनिस्ट दलोंने ज़ोर बाँधा और मद्रासमें द्रविड़ मुन्नेत्र कज़गमकी सरकार बनी? कलको यह सम्भव है कि केन्द्रीय शासन 'कोलीशन' या मिली-जुली सरकारके ज़रिये चलाया जाये और कांग्रेस संसद्में अपने लगभग ५० वोटका बहुमत खो बैठे या यह बहुमत इतना कम रह जाये कि किसी भी समय 'स्नैप वोट' का झटका लगे और हमारी कांग्रेसी सरकारके पाँव उखड़ जायें। क्यों बुरा होगा वह दिन? अगर हम जनतन्त्रके प्रति ईमानदार हैं, अगर हमने संघीय शासनके सिद्धान्तको अपनाकर अपने देशकी शासन-पद्धतिके लिए अपनी इच्छासे एक शानदार विधान चुना है, तो क्यों न हम उसे ईमानदारीसे लागू करें?

जानता हूँ, ऐसा करने चलेंगे तो बड़ी-बड़ी समस्याएँ सामने आयेंगी—एकदम नयी-नयी समस्याएँ। लेकिन इनके लिए हमें तैयार होना होगा! समस्याओंपर मैंने थोड़ा-सा ध्यान दिया है—खतरेकी सम्भावनाएँ मैंने समझनेकी कोशिश की है:

- सबसे बड़ा खतरा है कि राज्यों और केन्द्रमें तनाव उत्पन्न होता जाये और धीरे-धीरे स्थिति इतनी विकट हो जाये कि कोई राज्य कहे, हम संघसे अलग होना चाहते हैं—अन्तमें विद्रोह हो, नागरिक-युद्ध हो, कोई बाहरी सत्ता किसी एक पक्षकी सहायताके लिए आ धमके और दो वियतनामोंकी तरह दो भारत बन जायें! अन्तर्राष्ट्रीय

राजनैतिक दल इस तरहकी चिनगारीको ज्वालाका रूप देनेका प्रयत्न करेंगे—यह मानकर चलना अक़्लमन्दी होगी ।

खतरेको बहुत बड़ा करके मैं देख रही हूँ और अपने देशवासियोंको दिखाना चाहती हूँ ताकि इस तरहकी स्थितिको उत्पन्न ही न होने देनेके लिए हम सब अभीसे तैयार हो जायें । बहुत बड़ी सद्भावनाकी जरूरत है, केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारोंके बीचमें । सबसे बड़ा सवाल है यह कि हम अपने संविधानको मानते हैं या नहीं । अभी तो खुद संविधानके बारेमें ही सवाल उठ खड़ा हुआ है कि जिन्हें हम संविधानके मूल सिद्धान्त मानते हैं, वह बदले जा सकते हैं या नहीं ? अगर बदले जा सकते हैं तो बदलनेके लिए जो लोग कोशिश करेंगे उनके साथ सहानुभूति रखनी होगी और अगर नहीं बदले जा सकते हैं तो ऐसे लोगोंके साथ केन्द्रको टक्कर लेनी होगी । लेकिन, बराबर मेरे मनमें सवाल उठता है कि क्या सचमुच संविधान इनसानोंकी संयुक्त इच्छाओं और आकांक्षाओंसे बड़ा है ?

● भाषाका सवाल सामने है । संसद्में दो दल, बड़ी संख्यामें, इस प्रश्नपर अलग-अलग विरोधी मत रख सकते हैं । जनसंघ और द्रविड़मुन्नेत्र कज़गम क्या ज़ोर बाँधेंगे या बुद्धिमानीसे निर्णय लेंगे कि इस प्रश्नपर सिर फोड़नेकी ज़रूरत नहीं । भारतीय भाषाओंकी उन्नतिपर बल देना है; अंगरेज़ीका भाषा और साहित्यके रूपमें बहिष्कार नहीं करना है, लेकिन राष्ट्रभाषा ? मैं हैरान हूँ कि राष्ट्रभाषाके रूपमें हम अँगरेज़ीको कैसे मान्यता देंगे ? क्या सचमुच कोई बड़ी संख्या है ऐसे लोगोंकी जो अँगरेज़ीको राष्ट्रभाषा बनानेका स्वप्न देखते हैं ? शायद, नहीं । हिन्दीको यह पद, समझती हूँ, देना ही होगा । सवाल रह जाता है—कब, कितने समय बाद! यानी देशके सारे राज्य कब इस सवालको इस नज़रसे देखते हैं और इतिहास तथा स्थितिके तर्कको मानते हैं ।

● लेकिन, तत्कालके सवाल ? पेट-भर खाना, तन ढँकनेको कपड़ा, रहनेको घर, पढ़नेको स्कूल-कॉलेज, सेहतके लिए हस्पताल, नर्सिंग होम, आबादीका नियन्त्रण (५० करोड़ क्या कम हैं !)····

ओह, विचारों-ही-विचारोंमें भाषण-सा देने लगी; अभी इस सबके लिए अवसर नहीं; अभी तो काँग्रेसके नेताका चुनाव बाक़ी है—प्रधान मन्त्री कौन बनता है, यह देखना है । अन्तरंग साथियोंकी बातपर अगर जाती हूँ तो विश्वास होता है कि यह दायित्व फिर मैं ही पाऊँगी । लेकिन चुनाव आख़िर चुनाव है, और जो चुनाव हो चुके हैं उनसे अगर कोई शिक्षा ली जानी चाहिए तो यही कि निश्चिन्त होकर बैठना ठीक नहीं ।

■

नेताका चुनाव हो गया—लेकिन किस मुसीबतसे और कैसी-कैसी दुविधाकी स्थितियोंसे गुज़रना पड़ा है । न दिनको चैन, न रातको नींद ! क्या ज़रूरत थी मुझे इस सब झमेलेमें पड़नेकी ? लेकिन उपाय ही क्या था ?

राजनीतिको अगर कर्त्तव्यके रूपमें चुना है तो मँझधारमें छोड़ बैठना कायरता होगी। लोग समझेंगे, काँग्रेसकी जबतक 'ब्रूट मैजोरिटी' थी, मैं सिंहासनका सुख और यश लूटती रही, और जब संकटकी स्थिति सामने आयी तो सारे दायित्व छोड़ बैठी। सचमुच, संकट सामने आ गया है। अगर मैं पीछे हट जाती तो....? क्या होता उन सब साथियों-का जिनके परिश्रम और सद्भावनाके सहारे मैंने शास्त्रीजीकी मृत्युके बाद प्रधानमन्त्रीका पद पाया और जो इस सारे आम-चुनावके अभियानको पिछले एक वर्षसे चौकन्ने होकर सँभाले हुए हैं? मैंने कहा भी कि क्या हर्ज है यदि मोरारजी भाई इस बार प्रधानमन्त्री बन जाते हैं? वह वयोवृद्ध हैं, अनुभवी हैं, खरे हैं....लेकिन साथियोंने कहा, यह सब बात ठीक लेकिन मोरारजी भाईकी कट्टरता और खरापन ही देशको ले बैठेगा! देखतीं नहीं, वह झुकते नहीं, टूटते-ही-टूटते हैं। एक तर्क और भी बार-बार दिया गया है कि देशका विश्वास पुराने काँग्रेसियोंमें नहीं है; देशको तरुण नेतृत्व चाहिए और लचकीला नेतृत्व जो वामपन्थियों (दक्षिण और वाम), समाजवादियों (संयुक्त और प्रजा), दक्षिण पन्थियों (स्वतन्त्र और जनसंघ), द्रविड़ों, निर्दलीयों और अन्य अनेक दलीयोंको अधिक-से अधिक साथ लेकर चल सके; जिसके साथ विरोध यदि उग्र हो भी तो कमसे कम। कर्त्तव्यकी पुकारको पहचानकर ही मैंने यह दायित्व सँभाला है; और अब कठिनतम समस्या सामने है, मन्त्रिमण्डलके गठनकी। कितने लोग, कितनी तरहसे, कितने प्रकारका प्रभाव डालनेकी चेष्टा कर रहे हैं—चाहती हूँ, यहाँसे दो दिनके लिए कहीं चली जाऊँ और जिसे गान्धीजी 'इनर वॉइस' (अन्दरकी आवाज़) कहा करते थे उसे सुनूँ और बिना किसी दबाव-प्रभावके नाम चुन लूँ। लेकिन समय नहीं है, बिलकुल नहीं है; और बहुत तेज़ रफ़्तारसे सब कुछ करना है। नहीं, किसीकी नहीं सुनूँगी।

■

आखिर मैंने अपना केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल बनाकर एलान कर दिया है। सबसे बड़ी समस्याका हल बहुत मुश्किलसे मिला। उपप्रधान मन्त्रीका पद देना मैंने मंजूर किया था तो समझा था, यह पर्याप्त होगा और गृह-मन्त्री बननेकी माँग समाप्त हो जायेगी, लेकिन उसी प्वाइण्टपर तनाव बढ़ता गया और दो-तीन बार यह स्थिति आयी कि इस जान-लेवा तनावको खत्म किया जाये और चुनाव लड़ लिया जाये। लेकिन कामराजकी लगन और अथक श्रमकी दाद दूँगी, टूटती हुई स्थितिको उन्होंने सँभाला! मुझे विश्वास हो चला था कि जीतूँगी, लेकिन काँग्रेसकी इतनी बड़ी पराजयके बाद मैं पार्टीके ऊँचे तबक़ेमें संघर्ष नहीं लाना चाहती थी और नहीं चाहती थी कि मोरारजी भाई-जैसे नायाब नेताकी हार हो। काश, उन्होंने 'होम' माँगा ही न होता और चह्वाणकी स्थितिकी रक्षाके लिए मुझे वाजिब ज़िद न करनी होती। लेकिन, उनके दृष्टिकोणको अब ग़लत कहनेसे कोई लाभ नहीं। यह

काफ़ी सन्तोषकी बात है कि उन्होंने अपनी ओरसे चुनावके बाद जो बयान दिया वह हम दोनोंके मान और पदकी रक्षा करता है। उनका मन्त्रिमण्डलमें होना अनुभवकी माँग पूरी करेगा और पुरानी पीढ़ीको मेरे पक्षमें रखेगा; नयी पीढ़ी तो, मुझे विश्वास है, मनसे मेरे साथ है, चाहे वह किसी दलकी हो। पीढ़ियोंका अपना एक 'डायलॉग' होता है, अपनी एक अबोली भाषा होती है। (यह क्या कम ख़ुशीकी बात है कि ५० वर्षकी आयु भी तरुणोंके साथ मुझे साझीदार बनाती है—और इसपर कहीं कोई प्रश्नचिह्न नहीं!)

मन्त्रि-परिषद्की सूची मैंने स्वयं बनायी है। एलानसे पहले मैंने जिन्हें दिखायी है, उन्हें केवल जानकारीके लिए, सलाहके लिए नहीं। एक सवाल राष्ट्रपतिने पूछा था, उन्हें जवाब दे दिया और उसे उन्होंने सन्तोषजनक मान लिया। कामराजने जो भी कहा हो, अपने मनमें ही कहा। संजीवैयाकी बात ज़रूर मेरे ध्यानमें लायी गयी। मोरारजी भाई चाहते तो होंगे कि शायद सलाह लिया जाये, किन्तु वह जान गये कि सलाह मैंने किसीसे लिया नहीं, लूँगी नहीं—जो, जितना, जिससे लिया वह मैं ही जानती हूँ। अपने ढंगसे अपनी जगह पक्की हूँ। राजनीति समझने लगी हूँ। लेकिन, सबसे बड़ी बात जो समझी हूँ वह यह कि देशने बहुत बड़ी करवट ली है। इसे कोई चाहे तो परिवर्तन कह ले, मेरी दृष्टिमें तो यह 'क्रान्ति' है; इतिहासकी अभूतपूर्व क्रान्ति, कई पहलुओंसे। इस क्रान्तिके कगारपर मैं खड़ी हूँ—सामने समुद्र हिलोरें ले रहा है! किश्ती भी जुटानी है, और चप्पू भी, कम्पास (दिशासूचक यन्त्र) भी, और बाजुओंमें ताक़त भी; और प्रार्थना करनी है परोक्ष सत्तासे कि मेरी नज़र धुँधली न होने पाये; मेरे हाथोंसे चप्पू न छूटें—तरंगोंमें मैं डूबूँ तो डूब जाऊँ, तिरूँ तो तिर जाऊँ! मेरी कोशिश ही मेरी कामयाबी है! मेरा देश जागा है, उसने अपने आत्मसम्मानको अपने हाथों सँवारा है—पापाकी खोजको (डिस्कवरी ऑफ़ इण्डियाको) मैंने जारी रखा है, और रखूँगी, यही मेरा सन्तोष है!

■ ■

भारतीय ज्ञानपीठ,
९, अलीपुर पार्क प्लेस,
कलकत्ता-२७

ज्ञानोदय
१९६७
प्राप्ति-स्वीकार

मार्च

[यह स्तम्भ ज्ञानोदयमें समीक्षार्थ प्राप्त समस्त पुस्तकोंकी स्वीकार-सूचीके लिए है। चुनी हुई पुस्तकोंकी समीक्षा यथा-सुविधा प्रकाशित की जायेगी।]

वोरा एण्ड कम्पनी, बम्बई :

- मिथुन लग्न : विमल मित्र
- अँधेरेकी प्यास : वीरेन दास
- भविष्यकी ओर नौ मार्ग : अनु० के० एन० दुबे, मूल० डी० एस० हलसी जूनियर
- आधुनिक विज्ञानकी महान् सफलताएँ : मूल० मेलविन आर्थर, अनु० कृष्णानन्द दुबे

हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि० :

- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
- सौन्दर्य शृंगार : सावित्री देवी वर्मा
- काँचके खिलौने : टेनिसी विलियम—यूजीन ओ० नील
- दादा कामरेड : यशपाल
- उन्नतिके उपाय : ए० पी० परेश
- हांगकांगकी हसीना : कृष्णचन्दर
- मधुपुरी : राहुल सांस्कृत्यायन
- १९६६ की शायरी : प्रकाश पण्डित
- काकाके प्रहसन : काका हाथरसी

राजपाल एण्ड सन्स :

- रोमांचकारी वैज्ञानिक यात्राएँ : रेमण्ड होल्डेन
- एक किरण चाँदनीकी : कर्तारसिंह दुग्गल
- अपने पराये : गुरुदत्त
- संस्कृत नाटकोंके हिन्दी अनुवाद : डॉ० देवेन्द्र कुमार
- प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार : डॉ० राधाकृष्णन

आत्माराम एण्ड सन्स :

- हिन्दी पत्रकारिताके गौरव बाँकेबिहारी भटनागर : डॉ० हरवंशराय बच्चन
- अफ्रिका उसके देश और देशवासी : जगमोहनलाल माथुर

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन :

- कला-अकला : मुनि रूपचन्द

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान :

- जैन आचार : डॉ० मोहनलाल मेहता
- जैन साहित्यका बृहत् इतिहास (अंग आगम) : पं० बेचरदास जोशी
- जैन साहित्यका बृहत् इतिहास (अंग बाह्य आगम) : डॉ० जगदीशचन्द्र जैन डॉ० मोहनलाल मेहता ।

ASHOKA
रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
अशोका सीमेन्ट लिमिटेड
SONE
सोनवेली पोर्टलैंड
सीमेन्ट कं० लिमिटेड
जयपुर उद्योग लिमिटेड
उत्तम बनावट के
लिये
साहु सीमेन्ट

कुछ चिट्ठियाँ ....

[**मन्मथनाथ गुप्त** : वसन्त-अंक बहुत-सी नवीनताओंसे पूर्ण है। इस युगमें जब कि सभी नवीनताका दावा करते हैं, यह गुण बहुत दुर्लभ है। छपाई और ले आउट भी सुन्दर है नयी दिल्ली–१२]

•

[**अजितकुमार** : देवीशंकरवाले लेखके साथ चित्र देकर आपने बहुत अच्छा किया। मेरा खयाल है कि लेख लोगोंको पसन्द आ रहा है। दो-चार लोगोंने मुझसे भी चर्चा की है। इस अंकमें हालीके इण्टरव्यूवाला लेख और नागरजी तथा आपका पत्र-व्यवहार मुझे विशेष रुचिकर लगा। इण्टरव्यूके साथ एक 'पोस्ट-स्क्रिप्ट' भी होती तो अच्छा था। उसमें इस इण्टरव्यूकी तार्किक परिणतिका उल्लेख होना चाहिए था।—नयी दिल्ली]

•

[**तेजपाल अग्रवाल** : फ़रवरी '६७ के 'ज्ञानोदय'में 'गुजराती युवालेखन' के अन्तर्गत सुभाष शाह और हरीन्द्र दवेके हाइकू पढ़े। समझमें नहीं आया कि वे हाइकू किस दृष्टिसे कहे जा सकते हैं। शिल्प तो खैर, अनुवादमें ढह गया होगा, लेकिन उनके विषय या कण्टेण्टका भी हाइकूसे कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता।—हिसार]

•

[**रंगनाथ राकेश** : ज्ञानोदयका वसन्तांक मार्च '६७ तो वाल्मीकिके 'वासन्तिकी निशा प्राप्ता न शीता न च धर्मदा !' का अभिनव संस्करण-सा लगा। परसाईसे प्रश्न आपने ही किये थे न? सूर, निराला और बिहारीकी रूहें जन्नतमें आपको आशीर्वादेंगी, वैसे आशीर्वादकी जगह शाप ही आपको शोभेगा•••सल्वादोर डाली–मर्करी–वार्तालाप आधुनिकताके वहशीपन और उसकी व्यावहारिक लिप्साको उभारता है••••, बेन्द्रेपर जो लेख है वह चलताऊ क़िस्मका है••• जून '६६ के ज्ञानोदयमें 'रंग-रेखाके वाद' कितना कसा-कसा और स्पष्ट था ! पाँचों कहानियोंके प्रयोग मजेदार हैं—'धुली हुई शाम'की सीमा आजकी विधुरा आधुनिकाकी एक मुखिका (मेनीफ़ेस्टेशन) है : संयमकी मूक जानमारू स्वीकृतिके संग। बीरेन गोहिलकी कुमुदिनीकी 'बोल्डनेस' सहज है : इसीसे छूती है कम्बख्त, 'मुखौटे' की बोहेमियन मिन्नी तो जैसे स्नेहके अदृश्य हठीले ग्लेशियरकी प्रतीक है—मधु 'दी तो शरदचन्द्रकी पॉकेट-एडीशनका आधुनिक

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत

एक अनूठा
नयनाभिराम और कलात्मक
प्रकाशन

शैशवांकन ● ● ●

शिशुके जन्मोत्सव पर होनेवाले आयोजनोंकी शोभा स्मरणीय होती है। बाल-विकासका प्रत्येक चरण विस्मयकर है। इन आयोजनोंकी स्मृतिको और शिशुकी विकास-प्रगतिको मोहक तथा कलात्मक ढंगसे अंकित करके सुरक्षित रखनेकी इच्छा प्रत्येक माता-पिताके लिए स्वाभाविक है। 'शैशवांकन' में जन्मोत्सवसे सम्बन्धित अवसरोंका तथा शिशुकी उत्तरोत्तर प्रगतिका लेखा आयोजित है। 'शैशवांकन' मधुर स्मृतियों एवं उपयोगी तथ्योंके संरक्षणके लिए तथा स्नेह-आशीषकी अभिव्यक्तिके लिए सर्वथा नया और प्रीतिकर उपहार है। अपने शिशुके लिए स्वयं बरतें ! और अपनोंको उपयोग करनेके लिए भेंट करें।

मूल्य १२.००

भारतीय ज्ञानपीठ
कलकत्ता :: वाराणसी
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

ढाँचा है—पर ये सब क्षणांशकी पच्चीकारियाँ हैं, सम्पूर्ण कालखण्डको उरेहना कठिन पड़ रहा है क्या ?—कलकत्ता-२०]

●

[**अशोककुमार बन्सल :** कल ही ज्ञानोदयका 'महानगर अंक' मिल गया था। बहुत ही मज़ेदार लगा। अभी भी मेरी मेज़पर सामने रखा है। बहुत कुछ पढ़ लिये। रविवारकी प्रतीक्षामें हूँ। बस! फिर दूसरे अंककी प्रतीक्षा शुरू हो जायेगी। हाँ, पिछले डेढ़ वर्षमें भाषा कुछ बदली नज़र आने लगी है—सेस्काटून, कनाडा]

●

[**इन्द्रनाथ मदान :** आप कभी-कभी ज्ञानोदयके बारेमें मेरी राय पूछकर मुझे अनावश्यक महत्त्व देते हैं। मैंने अपनी राय दी भी है जो महत्त्व नहीं रखती। इस बार जनवरीके अंकको देखकर बड़ी निराशा हुई। इसे आध घण्टा भी नहीं दे सका। शेष समय बितानेकी समस्या बनी रही। एक महीना हिन्दी पत्रिकाओंको पढ़कर किस तरह बिताया जाये। क्या यह मेरी समस्या है ? या और लोगोंकी भी ? —**चण्डीगढ़**]

●

[**मनोहरलाल त्रिक्खा :** प्रभाकर माचवे जी की 'पश्चिममें बैठकर पूर्वकी डायरी' अद्वितीय है। डॉ॰ साहिबने 'टीनएजर'में केवल १३ से १७ बरसकी लड़कियोंको ही क्यों माना है ? (पृष्ठ २८) थर्टीनसे नाइनटीन (१३ से १९) तकके लोग 'टीनएजर' कहलायेंगे। सच है न ? —**मेरठ**]

●

[**ओंकार ठाकुर :** 'कथन-उपकथन'के अन्तर्गत श्रीमती कुन्था जैनकी रचना पसन्द आयी। कॉलेजके दिनोंमें (शायद तब मैं एम०एस-सी०का प्रथम वर्ष पास कर चुका था) मोराविया पढ़ना मुझे अच्छा लगता था, लॉरेन्स और मॉमसे भी ज़्यादा। लॉरेन्सने स्पष्ट नग्नताके कारण कम ही अपील किया था। 'वूमन आॅफ़ रोम' कई दफ़ा पढ़ी थी। एक और किताब याद आती है—'मार्टिन एरोस्मिथ'। मोरावियाकी पुस्तकने मोहा था। ताज़ा अंकमें कुन्था जैनका लेख कई प्रश्न उठाता है। मेरी धारणा तभी बन गयी थी कि मोराविया अपनी मान्यताओंमें अस्वीकृत धारणाओं-मान्यताओंका बुरी तरह शिकार है। वह जीवनके स्वीकृत मूल्यों और मानवीय सहज तटस्थताको सफ़ाईसे नकारता चला गया है। स्पष्टतः यह समाजके प्रति उसके मनमें बहुत गहरे व्याप्त विद्रोहकी भावना ही है। मोराविया अपने बादके लेखनमें अपने पात्रोंको कुछ ऐसा त्रास देने लगा था कि वे उसकी पकड़से बाहर जाने लगे थे। इसे लेखकने महसूसा था, लेकिन मोराविया सदैव दृढ़ता पर शंकालु बनकर इस तथ्यको नकारता रहा। लॉरेन्सके साथ ऐसा नहीं हुआ। उसका लेखन सोद्देश्य था। इटली और समस्त यूरोपमें व्याप्त जिन अनिश्चयात्मक तथ्योंको मोराविया अपने लेखनमें उतारता रहा—वे गवाह हैं कि उसके पात्र कटुताको

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रकाशित

कुछ अद्वितीय काव्य-कृतियाँ

❀ चाँद का मुँह टेढ़ा है : मुक्तिबोध	८.००
❀ आँगन के पार द्वार : अज्ञेय	३.००
❀ आत्मजयी : कुँवर नारायण	३.५०
❀ अर्द्धशती : बालकृष्ण राव	३.००
❀ हिम-विद्ध : जगदीश गुप्त	३.००
❀ शहर अब भी सम्भावना है : अशोक वाजपेयी	३.००
❀ धूप के धान : गिरिजाकुमार माथुर	३.५०
❀ चौंसठ कविताएँ : इन्दु जैन	३.००
❀ संक्रान्त : कैलाश वाजपेयी	३.००
❀ कनुप्रिया : धर्मवीर भारती	३.००
❀ वाणी : सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
❀ हम विषपायी जनमके : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
❀ बीजुरी काजल आँज रही : माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
❀ लेखनी-बेला : वीरेन्द्र मिश्र	३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ
कलकत्ता : : वाराणसी
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

पीते हुए शीशे-सा चिटख जाते हैं। पात्रोंके मनोविज्ञानको उसने, लगता है, व्यक्तिगत, कसौटीपर कसकर सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि उत्तेजना, काम और आन्तरिक अस्थिरता स्वयंमें कोई महत्त्व न रखते हुए हमारे कार्य-कलापोंपर प्रभाव छोड़ जाते हैं। एक ओर मोराविया स्वीकारते हैं कि लेखककी मान्यताएँ यथार्थसे अभियोजित रहती हैं, वहीं वे यथार्थसे निस्संगताकी बात भी करते हैं। यह एक बड़ा प्रश्न है। मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि लेखक आदर्श या ठोस यथार्थका ढाँचा तैयार करे और उसकी उपयोगिता प्रतिपादित करे। लेखककी सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया उसकी दृष्टि स्पष्ट करनेमें सक्षम रहती है।

श्रीमती कुन्था जैनको 'ज्ञानोदय'के माध्यमसे बधाई दें। आशा है, वे ऐसी सारगर्भित रचनाएँ पढ़नेका और अवसर प्रदान करेंगी।—जबलपुर]

●

[श्याम विमल : 'ज्ञानोदय' के जनवरी '६७ अंकमें डॉ० श्याम परमारकी सवक्तव्य 'कोलाज' कविताएँ ज्ञान-ध्यानसे पढ़ीं। वक्तव्य जितना स्पष्ट और बुद्धिगम्य है, कविताएँ उतनी ही दूर–दुरूह। यह तो समझमें बात आती है कि 'आज कवि' लेखन-वेलामें इतना सूच्यग्र है और नियोजन-पद्धतिसे क़तई विरक्त हो गया है। प्रायः वह तो अलेखनकी परिणतिके पास आ गया है। जो बिम्ब (चाहे वह कितना ही नया व अछूता हो !) पकड़में आता है कवि उसे सन्दर्भमें सर्वांग निबाहनेकी प्रक्रियाको परम्परागत सयत्न नियोजनकी कृत्रिम प्रणाली मानने लगा है। अतः वह उन खण्डित बिम्बोंको ज्योंका त्यों रखकर शब्दोंकी व्यर्थता या अपूर्णता प्रकट करके शब्देतर शेषको अनुमान-गम्य माननेकी ऐसी राह सुझाता है, जिसको समझने-न-समझनेकी ज़िम्मेदारी पाठकपर डाल दी जाती है, किसीके अवचेतनकी इस 'ऊलजलूलियत'को पाठक क्यों पढ़े ? किन्तु मैं नहीं समझता, ऐसी सृजनात्मक असमर्थताका दोष शब्द ही झेलें या पाठक। ऐसी स्थितिमें लिखना ही कोई आवश्यक तो नहीं रह जाना चाहिए !

मुद्राराक्षसकी अक्षरी कविता या श्याम परमारकी यह शब्दकोशता क्या उनको भविष्यमें कुछ भी न लिखनेका संकेत देती है अथवा वे फिर भी शब्दका आश्रय लेकर लिखते रहेंगे ? अभिव्यक्तिकी तड़प क्या-से-क्या 'आविष्कार' कराती है—यह तो श्लाघ्य है; किन्तु 'आविष्कार' उपयोगी न हो—वह तो प्रशंस्य नहीं होना चाहिए।

मेरा एक अनुभूत संशोधन है कि सृजन-वेलाकी मनःस्थितिमें मनोगतिके संवेगोंपर चेतनका अंकुश रहना चाहिए और अवचेतनमें एक साथ उभरनेवाले कई विद्रूपोंमें-से विसंगत भी ऐसे आकलित किये जा सकते हैं, जो कहीं तो जाकर सम्बद्धसे लगें; ताकि प्रेषणीयता बनी रह सके, और यह भी जाना जा सके कि भीतरसे जिस उद्भूत काव्यात्मक अनुभूतिको कहनेकी विवशता आ पड़ी है उसे अवचेतनकी प्रत्युत्पन्न अकाव्य-प्रताड़ना किस तरह सहनी पड़ती है।

—नयी दिल्ली]

■ ■

हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ

कृष्णाचार्य

इस ग्रन्थका प्रकाशन एक ऐसे अभावकी पूर्ति करता है जो हिन्दी साहित्य सम्बन्धी शोध-अनुसन्धानके क्षेत्रोंमें बराबर खटका है। इतना ही नहीं, इसमें अब उन क्षेत्रोंकी नयी कार्यदिशाएँ भी इंगित होती मिलेंगी।

यह कृति एक ग्रन्थपुटी है : हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी बिब्लियोग्रैफ़ी। इसमें उन ग्रन्थोंकी विवरणी दी गयी है जो ईसवी सन् १८१० से १८७० के बीच, अर्थात् लल्लूजी लाल कविसे शिवप्रसाद सितारेहिन्द तककी कालावधिमें मुद्रित और प्रकाशित हुए। जितना ज्ञान इस युगकी कृतियोंके बारेमें था वह भी सीमित था और बिखरा हुआ, विश्रृंखल। यह ग्रन्थपुटी उपलब्ध और ज्ञात कृतियोंका प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत कर देती है और अपेक्षित सन्दर्भों सहित, व्यवस्थित रूपमें।

हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी इस विवरणीको पूर्णता देनेके उद्देश्यसे प्रास्ताविकीमें हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक कालका एक सुसंहत विहगावलोकन भी दिया गया है। भारतमें मुद्रणकलाका प्रवेश, हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक प्रयत्न, नागरी टाइपोंका आविष्करण और निर्माण, उस युगके मुद्रणालय और राजकीय विधि-नियम आदि विषयोंकी प्रामाणिक जानकारी यहाँ दी गयी है, जो अन्यत्र सुलभ न होगी। प्रत्येक ग्रन्थागारके लिए अनिवार्य और तत्कालीन हिन्दी साहित्यके शोधार्थियोंके लिए नितान्त आवश्यक।

मूल्य ७.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

चिन्तक की लाचारी

हिन्दी
साहित्य-जगत्की
एक
अद्वितीय
कृति

माखनलाल चतुर्वेदी

सबके लिए अनिवार्य

श्री माखनलाल चतुर्वेदीके भाषणोंका यह संकलन है : ऐसे भाषण जो इतिहास और राजनीति-की जयमाल न होकर समग्र जीवन और अनुभूति-बोधके सत्योंके सूत्र थामे हुए वर्तमानका दृष्टिपथ अंजोर दें और अनागतकी छवि-रेखाएं उकेर जायें! कहना न होगा कि 'एक भारतीय आत्मा' के ये भाषण हिन्दी साहित्यके चमकतार अमर रत्न हैं—जिनपर हमें गर्व है, हमारी आनेवाली पीढ़ियोंको गर्व होगा।

मूल्य ४.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

Price Annual Rs.15/-per copy Rs.1/50.-for abroad extra postage 18P.This CopyRe1.50 GYANODAYA April 1967

License No. 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2096

APR 1967

12 APR 1967

प्र. सं. 37

20 APR 1967

प्र. सं. 60

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

ध्रांगध्रा
केमिकल
वर्क्स लिमिटेड
भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

कैल्सियम क्लोराइड

ब्लीच लिकर

नमक

साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०
१५ ए, हॉर्नीमन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०, तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।

ज्ञानोदय

उन्नीसवें वर्ष का पहला अंक

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं माणिक-
चन्द्र ग्रन्थमालाके अन्तर्गत

संस्थापक
शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई–१

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

१९वें वर्षका पहला अंक

ज्ञानोदय

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

९, अलीपुर पार्क प्लेस

कलकत्ता—२७

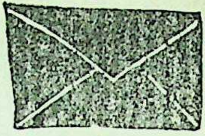

कुछ चिट्ठियाँ...

ज्ञानपीठ-पुरस्कार

[**मिर्ज़ा इस्माइल बेग़ :** ताराशंकरजीको पुरस्कार देकर ज्ञानपीठने अपनी परखको परखा है। वह समृद्ध और पारखी है। ताराशंकर मुझे बेहद पसन्द हैं। उनकी लेखनीमें देशकी सरजमीन बोलती है। आत्मदर्शन होता चला जाता है। ताराशंकर एक ऐसे 'गाईड' हैं जो ज़िन्दगीके कई जाने-पहचाने महत्त्वपूर्ण लेकिन ओझल जीवनको बड़े सादे ढंगसे दिखाते हैं और अपने लेखकको इस क़दर अन्तर्धान कर लेते हैं जैसे वे कहने वाले थे ही नहीं।

इतनी तटस्थता शायद मुश्किलसे दिखाई देती है। — इन्दौर]

एक पत्र

[**वीरेन्द्रकुमार जैन :** नयी क़लम थामकर नयी चेतना और नये परिवेशका जिन ग़लत रचनाओं-द्वारा जो लेखक प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, वे क्या स्तुत्य कर रहे हैं! सारी नयी पीढ़ी टैक्सियोंमें लड़कियाँ फ़्लर्ट नहीं कर रही। कनाट प्लेस स्थित रेस्तराओंमें, थियेटरोंमें चन्द लोग ऐश कर रहे हैं—सारा हिन्दुस्तान नहीं। फिर क्यों बाक़ी सारी दुनियाकी कहानियाँ नहीं लिखी जा रही हैं? अपनी ज़मीन और ज़मानेकी बात हम प्रामाणिकता और आत्मीयतापूर्वक कह सकते हैं। यह तभी हो सकता है जब हम अपनी ही ज़िन्दगीमें इण्टरेस्टेड न रहकर दूसरे दुःख-दर्दको भी शब्द देंगे। हम अपनी ज़िन्दगीको ही कथानक बनाते चले जायेंगे तो सारी दुनियाका शोक-हर्ष अब कहाँ रह जायेगा। रवीन्द्र कालियाकी बोल्डनेससे, सुदर्शन चोपड़ाके प्रवाहसे, परेशके स्थान-संकेत तथा ऋतु-वर्णन, गंगाप्रसाद विमलकी साफ़गोई और महेन्द्र भल्लाकी दृष्टिसे हम प्रभावित हुए हैं। अब एक ही तर्ज़की रचनाएँ पढ़ते-पढ़ते ऊब-सी होने लगती है। रमेश बक्षीने एक जगह कहीं लिखा था—'चाट ज़्यादा बिकने लगी है—इसलिए क्या हर किसीको चाटका खोमचा लगा लेना चाहिए।' उपर्युक्त मित्र-लेखकोंसे यही निवेदन है कि वे मेरी बातपर आत्मीयतापूर्वक विचार करें। — दिल्ली]

मुखपृष्ठ

[**दूधनाथ सिंह :** इधर 'ज्ञानोदय'में बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि हर अंकपर एक अपनी छाप है। 'कवर' तो इस सालके सभी उम्दा हैं। मुझे उसमें भी मई अंकका 'कवर' विशिष्ट लगा। — इलाहाबाद]

कथन-उपकथन

[**श्यामगोविन्द राजहंस :** स्टीफ़ेन स्पैण्डरके साथ कुन्थाजीका इण्टरव्यू देकर आपने अंकको संग्रहणीय बना दिया है। उनकी कविता-प्रक्रिया जानकर कुछ अजीब नहीं लगा।

जून १९६७

उनका तरीक़ा डेफ़िनिटिव है। उन्होंने स्वयं ही स्वीकारा है कि वे सचेतन कलाकार हैं। सम्भवत: कवि सदा ही सचेतन रहा है, लेकिन स्वीकार आजका हो सकता है।

— जावरा]

१९६६ की पत्र-पत्रिकाएँ

[**दुर्गाप्रसाद अग्रवाल :** इतना सुन्दर मुखपृष्ठ आप सदा क्यों नहीं देते हैं? कुबेरनाथ रायका लेख जितना अधिक स्पष्ट और सुलझा हुआ है उतने ही अस्पष्ट श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार हैं। सुलझे हुए यदि हैं तो उन-द्वारा प्रस्तुत आँकड़े। नेमिशरण मित्तलका लेख काफ़ी रोचक और 'ज्ञानवर्द्धक' है। माचवेजी की समीक्षा १९६६में प्रकाशित रचनाओंका केटलॉग अधिक लगी। यदि स्थानाभाव है, संक्षिप्तताका निर्वाह ही करना है तो आप कम रचनाओंकी चर्चा करें। अच्छी और बुरीका फ़तवा दे देना कोई अर्थ नहीं रखता।

—उदयपुर]

[**जयप्रकाश पाण्डे :** अच्छा होता आप किसी भी साधारण पाठको जो पूरे साल लाईब्रेरीकी मेज़की क़रीब-क़रीब सारी पत्रिकाएँ उलटता रहा हो, उससे सन् '६६ की पत्रिकाओंमें आये हुये साहित्यपर समीक्षा माँगते, शायद वह अच्छी समीक्षा प्रस्तुत करता। नाम और कहानी गिनाना तो पाठकोंसे आता ही है। क्या सिर्फ़ नये लेखकोंकी रचनाएँ ही कुछ सम्पादक आँख मूँदकर छापते हैं? 'नाम बड़े' देखकर घटिया रचना छापते समय भी तो सम्पादक आँख मूँद लेते हैं! — कलकत्ता]

[**सुरेश सेठ :** इस अंकमें प्रभाकर माचवेका लेख बिल्कुल व्यर्थ लगा, और वह साल-भरमें छपी रचनाओंका एक रोज़नामचा-भर है।

परन्तु हिन्दीके अनपढ़ लेखकोंको विदेशी नारोंकी तनिक गहरी जानकारी देनेकी आपकी चेष्टा निस्सन्देह प्रशंसनीय है, क्योंकि लोग पहाड़ोंकी तरह 'ज्ञानोदय'के पैराग्राफ़ रटते नज़र आने लगे हैं। — जालन्धर नगर]

[डॉ० प्रभाकर माचवेके उक्त लेखका अन्तिम अंश बचा रह गया था। वे पंक्तियाँ नीचे प्रस्तुत हैं। —सं०]

ऊपर जो मैंने बातें कहीं हैं, उनको अन्तिम न माना जाये। यह बिलकुल सम्भव है कि कोई अच्छी रचना मेरी नज़रसे छूट गयी हो। मैं सब कुछ पढ़ता ही हूँ—ऐसा मेरा दावा क़तई नहीं है। पर हाँ, पढ़नेका मेरा वेग, लिखने ही की तरफ़ काफ़ी तेज़ है, यह पुनः निवेदित करना चाहता हूँ।

ज्ञानोदयके पिछले अंकमें :

ग्रीष्म-चित्रोंके छायाकार थे देवदत्त और युवा-लेखन : उर्दूके प्रस्तोता थे अहमद सलीम।

— सम्पादक

ज्ञानोदय

ज्ञानोदयके १९वें वर्ष-प्रारम्भ
पर लेखकों-पाठकों —
हितचिन्तकोंका आभार !

ज्ञानोदयका वार्षिक विशेषांक
पूजा-दिवालीके अवसरपर

'शेष शताब्दी विशेषांक'

[नवम्बर १९६७]

"'इस शेष शताब्दीके भविष्यकी
बहुआयामी रोमांचक कल्पनाएँ, सम्भावनाएँ"'

विस्तृत घोषणा : अगले अंकमें

पृष्ठ लगभग : ३०० मूल्य : ३ रुपये
(कृपया अपनी प्रति अभीसे सुरक्षित करा लें ।)

जुलाई १९६७

वर्ष : १९

अंक : १

पूर्णांक : २२९

भारतीय ज्ञानपीठ

९, अलीपुर पार्क प्लेस

कलकत्ता–२७

फ़ोन : ४५-४४३२

४५-६९२०

अनुक्रम

वर्षासे पहले :

कविताएँ : अजितकुमार, वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, ऋतुराज, नारायणलाल परमार १७

वर्षा-मंगल : कन्हैयालाल ओझा २१

स्तम्भ :

कथन-उपकथन : हज़ार मौतें : एक अपराजित हस्ताक्षर : फ्रांज़ काफ़्का (प्रस्तोता : र० ब०) ६

आधुनिकता : निष्काषन, भीड़ और यन्त्रदैत्यसे लड़ता हुआ अजनबियोंका जुलूस : कैलाश वाजपेयी २५

प्रतिप्रश्न : अस्वीकृतिका अकाव्यात्मक काव्यशास्त्र : रमेश कुन्तल 'मेघ' ३५

बोलते प्रतिबिम्ब : विदेशी तराज़ू : डॉ० हुसैनका चुनाव : पुष्प-धन्वा १२९

वालेखन : ६–पंजाबी : ७ कविताएँ : मोहनजीत, गुलनारी, हरनाम, रविन्दर रवि, रघुबीर सिंह 'चन्द्र', स० स० मीशा, स्वर्ण १३२

स्केच : खिज़ाबसे डूबी हुई आँखें : जगजीत बराड़ १३६

कहानी : व्यर्थ : अमरजीत सिंह १३९

कला-संचेतना : कला, अ-कला और अश्लीलता : भँवरमल सिंघी १४५

एक लम्बी कविता :

शहर और सपना : भवानीप्रसाद मिश्र १५३

अन्य :

समीक्षा : १९६६ के हिन्दी उपन्यास : शीर्षकहीन चर्चा–१ : गंगाप्रसाद विमल ५२

कुछ पंक्तियाँ .... : २

प्राप्ति-स्वीकार : १५२

कहानियाँ :

कैनीका सफ़र : अमृता प्रीतम ४१

अपत्नी : ममता कालिया ६५

ख़ास पाहुना : सुदर्शन चोपड़ा ७०

बच्चा : श्रवणकुमार ९१

बिके हुए क्षण : मेहरुन्निसा परवेज ९७

रिपोर्ताज : एकांकी : उपन्यास :

स्वेतलानाके पतिके साथ ४० दिन : ब्रजकिशोर 'नारायण' ३१

लंचका समय : शम्भूनाथ सिंह १०४

एक पत्थर : दो पत्थर : तीन पत्थर–७ : कृश्नचन्दर ११८

माँ ने लगाये हैं
तुलसी के बिरवे दो,
पिता ने उठाया है
बरगद छतनार,
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ ?

— केदारनाथ सिंह

●

मुखपृष्ठ : देवदत्त

अन्तर्सज्जा : मदन सरकार, बीरेश्वर बनर्जी

हज़ार मौतें

[यह तसवीर फ्रांज़ काफ़्क़ाकी है। इस तसवीरके केवल तीन महीने बाद फ्रांज़ने आखिरी सांस ली थी। यही जूनका महीना था, तारीख ३, मंगलवार, सन १९२४। बहुत ज़ोरसे खांसी चलती है, क़फ़ छल्ले बनाता हुआ गलेपर चिपक जाता है, एक सांस बाहर जाती है तो बाहर ही चली जाती है और उसे लौटाकर लानेमें इतनी देर लग जाती है जैसे लौटकर नहीं आयेगी। वियेनाके पास किर्लींगका छोटा-सा मनहूस और भाँय-भाँय करता सन्नाटा। साफ़-धुले बिस्तरपर फ़्राज़। आसपास डोरा, राबर्ट। राबर्ट एक दोस्त, जो उसके साथ सेनीटोरियम आया था, और डोरा—जीवन संगिनी। पूरे ४० वर्ष किसी दोस्तकी तलाशमें कट गये। 'ब फ़्रॉम बर्लिन'का नशा फिर जे० डब्लू० का खुमार, फिर एफ० बी०से दो बार सगाई, फि मिलेनाको पा लेनेकी हर सम्भव कोशिश और दूर तक कोई ऐसा नहीं जो फ्रांज़के कमरेकी खिड़की खोल देता है और कहता—"कांडी तैयार है। अब टाईकी नॉट खोलो और बु अच्छे-से सोचेकी कोशश करो, आज रात खांसी नहीं उठेगी।....." १९१५ में उसने लिखा था—"ऐसा कहीं कोई नहीं है जो मुझे पूरी तरह अण्डरस्टैण्ड कर सके। ऐसी कोई होती जो मुझे समझ पाती तो उसका मतलब होता—पाँव जमाकार खड़े होना! उसका मतलब होता—एक ईश्वरको पा लेना।" लेकिन यह सब तो होना नहीं था। और जो होना नहीं था वह उसे बरसों पहले दिखाई दिया था। १ अक्तूबर १९११ को उसने लिखा था (तब फ्रांज़ २८ का था)—"अगर मैं कभी ४० साल का हो सका तब शायद मैं एक बूढ़ी औरतसे शादी कर लूंगा जिसके दांत ऊपरके ओठसे नीचे झाँक रहे होंगे।....लेकिन मैं ४० की जन्मतिथि तक शायद ही पहुँचूँ क्योंकि

एक अपराजित हस्ताक्षर

फ्रांज़ काफ़्का

मेरे दिमाग़के आधे बायें हिस्सेमें जो तनाव हमेशा बना रहता है और जो मुझे आन्तरिक कष्टकी तरह तकलीफ़ देता है, उससे मैं मुक्त नहीं हो पाता।....'' १९२३ में जब फ्रांज़की उम्र वाक़ई ४० हो गयी तो उसे खुद आश्चर्य हुआ। उसने जीवनकी हर लिजलिजी चीज़को झटककर अलग कर दिया। माँ-बापकी ताना-शाहीसे छुट्टी पायी, प्रेमिकाओंके वायदोंसे सम्बन्ध-विच्छेद किया, अपना जन्म-स्थान प्राग छोड़ दिया। जब मरना तय हो गया था, वह बोलने लगा था—''मुझे खुशहाल ज़िन्दगी चाहिए।....'' गरमीके दिन थे–जुलाई। जन्म-तिथि गुज़र चुकी थी। बहन और उसके बच्चोंके साथ फ्रांज़ बाल्टिक समुद्र-किनारे छुट्टी बिता रहा था। वह बीमार हालतमें 'बीच'पर बच्चोंसे बात करता, उनके साथ खेलता। वहीं था बर्लिन-जूइश-पीपुल्स-होम। होमके किचनमें काम करते वह १८-१९ वर्षकी एक लड़कीको देखता है : ''ऐसे अच्छे हाथ और ऐसा गन्दा काम !'' वह उसकी ड्यटी बदलवा देता है और एक महीने बाद बर्लिनके पास सबर्बमें एक छोटा-सा मकान लेकर उसी लड़की डोराके साथ ज़िन्दगी शुरू करता है। स्वतन्त्र ज़िन्दगी, अपना घर, और डोरा। उससे वह हिब्रू सीख रहा था। डोराने कई बार कहा है – ''तकलीफ़के कारण उसका रंग एश-ग्रे हो जाता था। वह ऐसी शिद्दतसे जीने लगा था जैसे जीते जी एकही ज़िन्दगीमें वह हज़ार मृत्यु भोग चुका हो।''....लेकिन सब लोगोंको छोड़कर एक अपनी ज़िन्दगी जीनेकी कोशिश चल नहीं पायी। थ्री-पीस और टाई और खूबसूरत चेहरा अन्दरके तूफ़ानके सामने ध्वस्त हो गया। फ्रांज़के सबसे प्यारे दोस्त मैक्स ब्राडने बर्लिन जाकर देखा कि यह तो शरीरसे खत्म हो गया है। ११२४ की १७ मार्चको उसी घरमें हारकर लौटना पड़ा जहांसे कटकर लिबरेटेड रहना चाहते थे – जैसे नाव ही डूब गयी हो। १० अप्रैलको फिर सेनिटोरियम की तैयारी। खुली हुई गाड़ीमें राबर्ट और डोरा उसे लेकर चले थे। रास्तेमें पानी बरसने लगा था और डोरा कारमें खड़ी होकर उस भयावह मौसमके खिलाफ़ अपने शरीरसे फ्रांज़की रक्षा करती रही थी।... वहां जाकर फ्रांज़ जैसे बर्फ़ की तरह जम गया था लेकिन खुश दिखाई देने की कोशिश वह करता रहता था। डॉक्टरने बोलना बन्द कर दिया था। वह बैठे-बैठे अपनी अगली

फ़्रांज़ काफ़्क़ाकी १९१० में लिखी डायरीका एक पृष्ठ। तब काफ़्क़ा की उम्र २७ वर्ष थी :

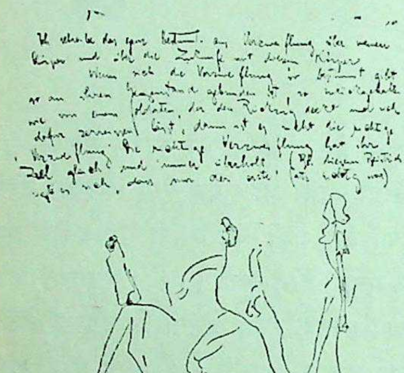

"मैं पूर्ण निश्चय सहित अपनी निराशा में-से यह लिख रहा हूँ—जो मेरे शरीर और शरीरके भविष्यमें-से जन्मी है।

"और ऐसी निश्चित आयी निराशा अपने प्रति इतनी अधिक आबद्ध और दृढ़ होती है जैसी उस सिपाहीमें, जो पलायन करता है और ख़ुद ही अपनेको टुकड़े-टुकड़े हो जाने देता है—लेकिन वह सच्ची निराशा नहीं है। सच्ची निराशा तो तत्काल और निश्चित ही सीमा पार कर जाती है, (इस स्वरूप-विरामतक पहुँचते-पहुँचते यह स्पष्ट हो गया है कि पहला वाक्य ही सही था।)

पुस्तकके प्रुफ़ देखता रहता था। कथन-उपकथनके लिए काग़ज़के पुरजे काममें लिये जाते थे।

—"मैं उस कहानीका शीर्षक बदल देना चाहता हूँ—जोसेफ़ाइन द सांगस्ट्रस।"

—"मैं जब छोटा था तो पिता मुझे तैरना सिखा रहे थे, वे साथमें बीयर ले जाते थे, और हमलोग उसे पीते थे।"

—"२७ मईको मैक्सकी जन्मतिथि है।"

—"तुम लोग मेरे सामने बैठकर पीओ। तुम सबको पीते हुए देखकर मुझे अच्छा लगता है।"

—"कितना अच्छा लगता है कि किसीको कोई चीज़ दी जाये और पूरी ईमानदारी-सहित उसे वह चीज़ अच्छी लगे।"

सोमवारको डोरा चीख़ उठी थी—फ़्रांज़की खिड़कीपर एक उल्लू बैठा था।"" फ़्रांज़ने राबर्टकी बाँहोंसे छूटकर कहा था—"मुझे मार्फ़िन दे दो। तुम झूठे हो, पिछले चार सालसे प्रॉमिस कर रहे हो लेकिन देते नहीं।"

वह बोलता ही गया—"तुम लोग हत्यारे हो, मुझे मार डालना चाहते हो!" फिर वह शिथिल हो गया—"मुझे तकलीफ़ मत दो। इस दर्दको अब बढ़ाओ मत। जाओ। अब तो मैं तुम्हें छोड़कर जा ही रहा हूँ।"

किसीने कहा था उसका मृत चेहरा संगमरमरसे तराशा गया बस्ट था जैसे। उसकी लाश प्राग लायी गयी थी। ११ जूनको संस्कारके बाद काग़ज़ोंके ढेरमें-से पेन्सिलसे लिखा एक पत्र मिला था :

"डियर मैक्स, शायद इस बार मेरा बचना सम्भव नहीं है। भयंकर निमोनिया है और लगातार बुख़ार रहा है और सच मानो, यह सब लिखनेसे भी मौत टलनेको नहीं है। इस दुर्घटनाके दिन अपने लिखे साहित्यके लिए यह वसीयत है। मेरे समस्त लेखनमें-से ये ही पुस्तकें बचती हैं—'द जजमेण्ट', 'द स्ट्रोकर', 'मेटामारफ़ोसिस', 'पेनल कालोनी', 'कण्ट्री डाक्टर', 'हंगर आर्टिस्ट', 'मेडिटेशन'के कुछ अंश''''। बाक़ी जो कुछ है, पाण्डुलिपियोंमें, पत्रोंमें पत्र-पत्रिकाओंमें (वे नोटबुक भी जो'''' मिलेनाके पास हैं) ये सभी बग़ैर पढ़े जला देना। मेरा यह काम तुम ज़रूर कर देना।"

■

मृत्युके उस अन्तिम बिन्दुपर खड़े होकर देखें तो यह स्पष्ट लगता है कि जूनकी उस ३ तारीख़को ही काफ़्का समाप्त हो गया था—गिनतीकी किताबें छपी थीं। दस-बारह लोग उसे जानते थे और साहित्यमें ऐसी शिथिलता थी कि शायद काफ़्काका नाम वक़्तके साथ ग़ायब ही हो जाता। लेकिन मैक्स ब्रॉडने अपने दोस्तकी इच्छाके ख़िलाफ़ उसकी सारी रचनाएँ प्रकाशित करवायीं। 'ट्रायल' और 'कैसल' पढ़कर काफ़्काकी वह तसवीर उभरकर सामने आती है कि वह अपने अन्दरकी टूटनके अलावा कुछ और लिख ही नहीं पाया। 'द ट्रायल'में सहसा के०की गिरफ़्तारी और मुक़दमा उसके अपने जीवनकी ही तो दुर्घटनाएँ हैं—नहीं लगता ऐसा कि कोई पंछी पिंजरेमें फंस गया है, लगता है जैसे कोई पिंजरा उस पक्षीको तलाशमें घूमता-फिरता था। के० की

काफ़्का : एक तपेदिकी खोखल :

१८८३ : जन्म ३ जुलाईको प्रागमें,
१९०३ : ग्रेज्युएट हो गये,
१९०६ : लॉ की डिग्री हासिल कर ली,
१९०७ : इतालियन बीमा-कम्पनीमें एक चलताऊ नौकरी मिल गयी,
१९०८ : लेबर-ऑफ़िसमें एक बेहतर नौकरी,
१९०९ : 'बोहेमिया'में लिखना शुरू किया,
१९११ : स्विटजरलैण्ड-इटली-पेरिस घूमे,
१९१२ : रिचर्ड और सैम्युअल' का पहला अध्याय,
१९१३ : 'अमेरिका' शुरू। फिर 'द केसल', फिर ' द ट्रायल''''
१९१४ : खाँसनेका अटूट क्रम'''' रात-रात भर डायरी, कफ़, और स्वस्थ हो जानेकी इच्छा,
१९१९ : एक नीली आँखोंवाली लड़कीसे दो बार सगाई, दोनों बार सम्बन्ध ध्वस्त,
१९२१ : मिलेनासे प्रेम। एक ख़त— 'मैं ३८ का हूँ और तुम २४ की, देर नहीं हुई है''''",
१९२३ : अपने दोस्त मैक्स ब्राडके साथ अपनी समस्त पाण्डुलिपियोंको नष्ट करनेकी योजना''''लेकिन मैक्सने वैसा नहीं होने दिया,
१९२४ : खाँसीमें उलझ गये '''तपेदिकने घुनकी तरह काम किया था''' ३ जूनकी सुबह दोस्तोंने देखा—सेनीटोरियमके अकेले सन्नाटेमें काफ़्का समाप्त !

(राबर्ट पिकको टिप्पणियोंसे)

३१वीं सालगिरहके दिन सवेरे नौ बजे दो व्यक्ति आते हैं, वे दो ही तो मृत्युके प्रतीक हैं। के० की निर्मम हत्या क्या काफ़्काकी अपनी मौत नहीं है ? और इस सारे दर्दको अपने अन्दर रखते भी काफ़्का चुप बना रहा। हमेशा अपने स्वास्थ्यके बारेमें चिन्तित, हमेशा प्राकृतिक चिकित्साकी बातें जाननेको उत्सुक, कहीं कोई दुश्मन नहीं, हमेशा शान्त और स्थिर चेहरा लिये पार्कमें टहलते रहा, जब भी कोई समस्या सामने आयी उसके बखिये उधेड़कर रख दिये ! हर बातका साफ़ साफ़ जवाब दिया, अगर गुस्सा भी आया तो चुप लगा गये, घरमें किसीसे बात नहीं, किसीसे शेयर करनेका रिश्ता नहीं, अपनी बीमारी,

एक थी मिलेना…

[विली हेज़-द्वारा सम्पादित पुस्तक 'लेटर्स टु मिलेना' १९५३ में सामने आयी। सुनते हैं, १९३८ में मिलेनाने काफ़्काके ये ख़त विलीको तब दिये थे जब जर्मन प्रागमें घुस रहे थे। १९४५ तक ये ख़त युद्धग्रस्त ही रहे। लेकिन १९४४ में जब मिलेनाकी भी मृत्यु हो गयी तो विलीने इन्हें प्रेसके लिए तैयार किया। मिलेनाकी वसीयतमें इन्हें छपवा देनेकी इच्छा थी और उसके साथ ही उसके पतिकी सहमति भी। पत्रमें कहीं कोई तारीख़ नहीं है और बहुत-से अंश गहरी स्याहीसे काट दिये गये हैं। जो बातें मिलेनाके परिवारके बारेमें थीं वे सभी छोड़ दी गयी हैं। मिलेना काफ़्कासे उम्रसे १५ वर्ष छोटी थी—उसका विवाह हो चुका था। उसने काफ़्का की प्रारम्भिक रचनाओंका चेकमें अनुवाद किया था। और १९२० के क़रीब काफ़्काने मिलेनाके प्रति अपनी भावनाएँ व्यक्त की थीं, तब उसने २८ पृष्ठ लम्बे ख़त भी लिखे थे। मिलेना तलाक़ देकर पतिसे मुक्त होना चाहती थी, और काफ़्का ख़ुद उस लड़कीसे छुट्टी पाना चाहता था जिससे उसकी दो बार सगाई हुई थी। चार वर्ष चलनेवाला यह प्रम 'पत्र-प्रेम' ही था और काफ़्का-द्वारा मिलेनाको प्राप्त करनेकी सारी कोशिशके बाद भी वह वायवी ही बना रहा।]

कुछ टुकड़े :

० हमारे बीच जो कुछ हुआ है वह निहायत स्कूली दरजेका व्यापार कहा जा सकता है लेकिन फिर भी ३ सम्भावनाएँ तो हैं ही। अच्छा यह होता कि मुझे अपने बारेमें कुछ नहीं कहतीं। या सारी बातोंको आवरण पहनाये रखतीं। या किसी भी शर्तपर केवल अपनी रक्षा ही करती रहतीं। नहीं पता कि अन्त 'रीयल हॉरर' है।….

० शुक्रवार। सबसे पहले यह बताओ मिलेना, कि वह जगह कैसी थी जहाँसे पिछले रविवारको तुमने मुझे ख़त लिखा था ? ख़ूब भरी हुई या ख़ाली ? वहाँ तुम अकेली थीं !

अपनी खाँसी, अपनी अनिद्रा'''और किसीसे कुछ लेना-देना नहीं, बाहर शोर है तो कानपर दो छोटे-छोटे तकिये बाँधकर सो गये। हमेशा शाकाहारी और टी-टोटलर रहे लेकिन-लेकिन''''

प्रश्न : क्या बीमारीके अलावा सारी तकलीफ़-का कारण घर था ? माँ-बाप-बहनें इन सबसे ऐसी दूरी क्यों थी ? यह क्यों लगता था कि यह घर नहीं, क़ैदखाना है ? क्या पिताके खिलाफ़ सोचकर राहत मिलती थी ? और अगर यह सही था तो घरसे अलग क्यों नहीं हो गये ?

काफ़्का : इन सारे सवालोंका जवाब है—'लेटर टु माई फ़ादर'। वह मैंने नवम्बर

दिन था या रात ? सच उस समय कैसा तो लगा होगा तुमको अकेले एक अपरिचित आदमी-के सामने बैठना, वह भी रविवारकी ख़ुशनुमा दोपहरमें''''! मैं अब बिलकुल स्वस्थ हूँ और वह मिलेना, जो तुम्हारे पाससे भाग गयी है, आज मेरे पास है !''''

० अब करना यह है : तुम अपने पतिको छोड़ दो। यह कोई नयी बात तो है नहीं। यह तो होना ही है। कारण साफ़ हैं—तुम्हारी बीमारी, उसकी नर्वसनेस। तुमसे अलग होकर उसे भी तो आराम मिलेगा''''

० तुम, प्लीज़, पत्रपर पता साफ़-साफ़ लिखा करो। जब तुम मुझे ख़त लिखकर लिफ़ाफ़े में रख देती हो तो इट इज़ अलरेडी आलमोस्ट माई प्रॉपर्टी'''और जो दूसरोंकी सम्पत्ति हो, उसके प्रति अतिरिक्त ज़िम्मेदारीसे पेश आना चाहिए।

० सोमवार। मैं नहीं चाहता (मिलेना हेल्प मी, मैं जो कह रहा हूँ उसे समझनेकी कोशिश करो !) मैं नहीं चाहता (समझो ना) कि वियेना आऊँ। क्योंकि मानसिक तनाव मुझसे सहा नहीं जा रहा है। मैं मानसिक रूपसे ही बीमार हूँ, यह तपेदिक तो उस दिमाग़के कारण ही है। मैं पहले दो सगाइयोंके समयसे (४-५ वर्षोंसे) ऐसे ही बीमार हूँ : मैं कैसे कहूँ कि तुम्हारे पिछले ख़तने मुझे कितना ख़ुश कर दिया था। देखो, तुम इतनी युवा हो—शायद २५ या शायद २३ भी नहीं—और मैं ३७ का हूँ, यही ३८, तुमसे एक पीढ़ी पीछे हूँ—बाल भी सफ़ेद हो चुके, बीती रातों और लगातार सिर-दर्दसे।'''

० सोमवार। कैसी अजीब बात है कि तुम्हारे वस्त्र उसी कपड़ेके बने थे जिसका सूट मैं पहने था। सच, वह कपड़ा बहुत मैस्कुलाइन है और इसीसे तुम्हारे शरीरपर वह मुझे अच्छा नहीं लगा। लेकिन तब वह चेक लोकगीत मुझे याद आया—'मेरे पास केवल दो जोड़े कपड़े हैं और तब भी मैं सुन्दर दिखाई देती हूँ।'''इनका असर इतना पड़ा मुझपर कि वे वस्त्र मुझे अच्छे लगने लगे।''''

[शेष अगले पृष्ठपर]

१९१९ में लिखा था। वह पूरी एक किताब ही है—"आपने एक बार मुझसे पूछा था कि मैं आपसे डरता क्यों हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या उत्तर देना चाहिए···आॅफ़िसका काम खत्म हो ले तो पहली इच्छा है कि अपनी आत्मकथा लिखूँ···लेकिन उससे अर्थ बदल जायेगा और इसलिए खत लिखना ही ठीक है। मैं अपने समाप्त होनेका सारा आरोप आपपर लगाना चाहता हूँ जब कि आप अपने-आपको 'ओवर क्लेवर' और 'ओवर सेन्सिटिव' कहकर मुझे इन सब बातोंसे बचा देना चाहते है। लेकिन लगता ऐसा है जैसे मैं ही एग्रेसर हूँ और आपने सब कुछ सेल्फ़ डिफ़ेन्सके लिए किया है···अब तक आपने

○ ३८ वर्षोंकी धूल मेरे फेफड़ेमें भरी हुई है और उस सब सहित मैं तुम्हें चाहता हूँ।

○ यदि कोई प्रसन्नताके कारण समाप्त हो सकता है तो यह घटना मेरे साथ हो। और यदि वह आदमी, जिसका मरना निश्चित हो चुका हो, ख़ुशी मिलनेसे जीवित रह सकता है तो वह अवसर भी मुझे मिले।

○ सबेरे लिखा और रोने-धोनेसे भरा एक ख़त मैंने फाड़ डाला है क्योंकि तुम्हारा ख़त मुझे अबतक नहीं मिला। समझमें नहीं आता कि पोस्ट ऑफ़िसकी शिकायत करूँ या कुछ और····सचमुच मुझे अविश्वास होने लगा है····कहीं मैं तुम्हें लूज़ तो नहीं कर दूँगा?····

○ शुक्रवार। मुझे सारा लिखना फ़िज़ूल और बकवास लगने लगा है—यह ख़त भी। मुझे करना यह चाहिए कि मैं सीधा वियेना आऊँ और तुम्हें लेकर कहीं चला जाऊँ।····

○ मानो यह ईर्ष्या नहीं है, केवल विचार है कि तुम्हें हर तरफ़से घेर लूँ—ईर्ष्याकी तरफ़से भी। क्या करूँ, अकेले रहनेके दुर्भाग्यपूर्ण वातावरणसे ही ये सारे विचार जन्म लेते हैं।

○ मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारा पति यदि मेरी तरफ़ स्नेहसे भी देखे तो वह स्नेह एक पूँजीपतिका एक ग़रीबके प्रति होगा और वह मुझसे बरदाश्त होनेसे रहा। तुम जब उसके साथ रह रही हो तो मेरी हालत उस बहुत बड़े घरमें उस चूहेकी तरह है जिसे वर्षमें एक बार घरके कारपेटपर दौड़ लगानेकी इजाज़त दे दी गयी हो।····लेकिन तुम्हें अधिकार है कि मुझसे प्यार कर सको और अपनी इच्छासे अपने ही कारपेटपर चहलक़दमी कर सको।····

○ और ये ख़त देते क्या हैं—महज़ पीड़ा। पीड़ामें-से जन्म लेते हैं—असहनीय पीड़ामें-से और असहनीय पीड़ा ही देते भी हैं।····

○ मुझ जैसे जूके ३८ और तुम जैसी क्रिश्चियनके २४ वर्ष यही तो कहते हैं मुझसे!···· तुम ३८ के हो और इतने थक गये हो जितना कोई भी इस उम्रमें न थके। लेकिन सही तो यह है कि तुम थके नहीं हो रेस्टलेस हो····

अपनी बेईमानीसे यह साबित कर दिया है कि आप इनोसेण्ट हैं, मैं गिल्टी हूँ और हृदयकी विशालतासे आप मुझे क्षमा कर देना चाहते हैं।''''आपसे मेरी साफ़-साफ़ लड़ाई है लेकिन लड़ाई दो तरहकी होती है—जो स्वतन्त्र योद्धा भी लड़ते हैं और उपजीवी कीड़े भी, जो डंक ही नहीं मारते हैं खून भी चूसते हैं''''। रही, शादी यानी आपकी तरह परिवारका मुखिया बनूँ और ढेर सारे लोगोंका पालन करूँ...आपकी सफलता मुझे नहीं चाहिए। मैं नर्वस बच्चा पहलेसे रहा हूँ और माँने मुझे बिगाड़कर रख दिया। आपने अपनी शक्तिसे इतने काम किये हैं कि आपके पास असीम आत्मविश्वास है, आरामकुरसीपर

० मेरे मनको तुम ठीक-ठीक समझ सको इसलिए एक स्केच भेज रहा हूँ : इसे ग़ौरसे देखो..........

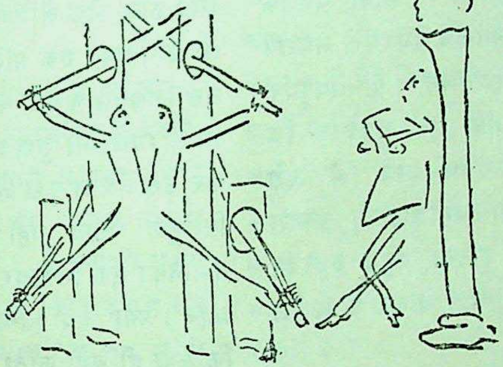

सामने चार स्तम्भ हैं और उसके बीच एक आदमी फँसा है—दोनों हाथ ऊपर और दोनों पैर नीचे। स्तम्भोंके छेदमें-से डण्डे फँसाकर इस तरह धक्के दिये जा रहे हैं कि वह आदमी बीचमें-से खिंचकर दो टुकड़े हो जायेगा। दायीं तरफ़ एक लैम्पपोस्ट है, जहाँ इस मृत्यु-यन्त्रका आविष्कार करनेवाला आदमी सामान्य मूडमें इस दृश्यको देखनेके लिए खड़ा है।''''

~~F i a n c~~ wrong, ~~F~~ wrong,
~~T h a n e~~ wrong, nothing
more, silence, deep forest.

(तानिया और स्टर्नके अनुवादोंसे)

बैठे-बैठे ही आपने सारी दुनियापर शासन किया है···मेरी दृष्टिमें आप एक तानाशाह हैं···मेरा साहित्य आपके बारेमें है. आपकी छातीपर सिर रखकर मैं कभी नहीं रो पाया लेकिन साहित्यमें रोया हूँ···मैं अपनी दुनियामें निष्कासित, तिरस्कृत और पराजित हूँ और भागनेकी पूरी कोशिश करनेके बाद भी भाग नहीं पाया क्योंकि शक्तिहीन हूँ। मैंने आपको 'फ़्रेकलिन्स मेमायर' पढ़नेको दिये थे कि आप लेखक और पिताके बीच सम्बन्धोंके बारेमें कुछ जान पाते, लेकिन आपने जाना यह कि उसमें शाकाहारी भोजनके बारेमें एक अध्याय है···आप बेहद स्थिर-मन सन्तोषपूर्वक मुसकरा सकते हैं—एक ऐसी मुसकान कि सामनेवाला आदमी बिंध जाये····मैं इस परिवारको कुछ सिखा नहीं सकता, समझा नहीं सकता, लेकिन दुनिया बहुत बड़ी है, दूसरे न्यायालय भी हैं जहाँ जाकर मैं अपील कर सकता हूँ····।''

प्रश्न : आपने जो डायरी लिखी है, उसमें कई जगह यह वाक्य है कि मुझे डायरी लिखना बन्द नहीं करना है, आखिर डायरी लिखनेसे क्या होता है ?

काफ़्का : डायरी लिखनेमें एक सबसे बड़ा लाभ यह है कि रोज़मर्राके जीवनमें जो स्पष्ट परिवर्तन आते-जाते हैं, और जिस दर्दको हम रोज़ सहते हैं और जिसपर विश्वास किया जा सकता है, जो स्वीकृत होता है—उस क्षण सही ब्यौरा डायरीमें रखा जा सकता है जबकि बादको, उसके अतीत हो जानेपर अवचेतन रूपसे, उसमें-से आशा और शान्ति खोजनेके लिए हम उस यथार्थसे झूठ बोलने लगते हैं और उस सत्यको भी अस्वीकार कर देते हैं जो हमारे वर्तमानका सत्य होता है।····

प्रश्न : और साहित्य····?

काफ़्का : मैं एक साहित्यकारके अलावा कुछ और होना ही नहीं चाहता। मुझे लोगोंसे बातें करना सरासर मूर्खतापूर्ण लगता रहा। मेरी इच्छा हमेशा रही है कि जिस बातको मैं इतनी शिद्दतसे 'फ़ील' करता हूँ उसे वैसाका वैसा कह दूँ। ऐसा कुछ हो कि मेरा अपना आप ठीक-ठीक अभिव्यक्त हो जाये। लिखना तो प्रार्थनाका एक प्रतिरूप है। लिखना और उस लिखनेसे कमाई करना मेरी समझमें नहीं आता। लिखना कुछ और है, और कुछ लिखकर उसे बेचना कुछ और है। मुझे पत्रकारिता बिलकुल पसन्द नहीं जो कि लिखने और कमानेका एक मिक्स्चर है।

प्रश्न : क्या दर्द इतना भारी हो जाता था कि सहा ही नहीं जाता था ?

काफ़्का : सहा तो जाता था लेकिन चेहरा बोलने लगता था। कोई काम करते-करते ही उसपर-से उठ जानेकी इच्छा हो आती है। मैंने मैक्सको एक खत लिखा था—'सिरदर्द तो है ही, मेरे दाँत भी गिरने लगे हैं, मेरा रेज़र बिलकुल ब्लण्ट हो गया है, मेरी हालत ऐसी है कि किसीको मेरी तरफ़ देखना भी अच्छा नहीं लगेगा।····'

प्रश्न : और बोरडम ?

काफ़्का : उफ़्। कई बार मैं इतना बोर हो जाता हूँ कि बार-बार जाकर अपने हाथ धो आता हूँ। मुझे यह भी लगा है कि मैं

इतना बोर हो गया हूँ कि किसी भी क्षण बेहोश होकर गिर सकता हूँ ।····

प्रश्न : विवाहके बारेमें ?

काफ़्का : विवाहमें कोई सफल नहीं हो सकता। शादी करो, परिवार बसाओ, जो कोई भी जन्म ले उसे स्वीकार करो, इस अनिश्चित विश्वमें उसे क़ाबिल बनाओ, मेरा ख़याल है कि इन सब कामोंमें शायद ही सफलता मिले । और जो लोग सफल कहलाते हैं वे संयोगसे सफल हो जाते हैं ।····

प्रश्न : और अकेलापन ?

काफ़्का : जो भी हो । लेकिन मैं अकेला ही सब कुछ हूँ । मेरी जो भी उपलब्धि है अकेलेपनकी ही है । अकेला रहनेसे आदमी नौकरी छोड़ सकता है और शादी हो जानेपर नौकरी छोड़ना मुश्किल होता है । मैं एफ०से अलग हुआ हूँ । मैंने अस्वीकृतिका अन्तिम पत्र उसे लिख दिया था । मनमें सोच रहा था, उससे खिंच जाऊँ और समय बीतते वह शादी कर लेगी लेकिन यह भी डर था कि वह न मानी तो उससे शादी करनी ही होगी क्योंकि उसके खिलाफ़ मैं कुछ भी सोचनेमें असमर्थ था । १५ महीने बाद उसकी शादी हो गयी ।···· थैंक गॉड !

प्रश्न : लेकिन जीवित रहनेके लिए कुछ तो चाहिए····

काफ़्का : मैं यह कह सकता कि मनुष्य अपने अन्दर जब तक किसी अविनाश्य बातमें विश्वास नहीं करता और उसके प्रति जबतक उसमें शाश्वत आस्था नहीं होती, वह जी नहीं सकता। यह भी आवश्यक है कि वह पर्सनल गार्डकी तरह उसे अपने तईं छिपाये रखे ।····

प्रश्न : और मौत ?

काफ़्का : मौत तो हमारे सामने है लेकिन क्लास-रूमके तख्तेपर सिकन्दरके युद्धकी तरह उसे किसीने लिख दिया है। जीतेजी आवश्यक यह है कि उस चित्रित मौतको हम पोंछकर साफ़ कर दें ।

प्रश्न : और आपकी डायरीमें जगह-जगह रविवार लिखे हैं····

काफ़्का : रविवार तो होते हैं । १९ जुलाई १९१० को मैंने लिखा था—'रविवार—सोया, जग गया, फिर सोया, फिर जगा—मिज़रेबिल लाईफ़····।' एक और रविवारको लिखा था —'इच्छा होती है छलांग मारकर खिड़कीसे बाहर कूद जाऊँ····।'

प्रश्न : क्या आप सचमुच जीवित रहना चाहते थे ?

काफ़्का : सच, मैं जीवित रहना चाहता था । जीवित ही नहीं यदि हो सके तो पहाड़ हिला देनेकी इच्छा भी मेरी थी । मैं उन लोगोंमें-से नहीं था जो कि केवल खानेके बारेमें अपने कर्त्तव्य पूरे करके जीवित रह लेते हैं । वह आदमी और कोई है जो सारी दुनियासे लड़ना चाहता है और अगर फ़ैसला विपक्षमें होता है तो वह आत्महन्ता हो जाता है, उसके दाँत अपने ही गोश्तको खाने लगते हैं—जैसे मेरे साथ हुआ है । एक बिन्दु हो, प्यार हो, काम हो, आमदनी हो, घर हो—मैं कहता हूँ आदमी लड़ जायेगा····लेकिन जो अकेला और बेचलर होता है····

प्रश्न : आपने 'बेचलर्स इल लक'में जो लिखा है....

काफ़्का : वह सही है। बेचलर होना भयंकर है। शाम भी उधार मांगो, अपना खाना हाथमें लेकर आओ....यह तो सन्त्रास है।

प्रश्न : क्या भविष्यके बारेमें कभी नहीं सोचा ?

काफ़्का : मैं रातको देखे हुए सपनोंको लिखता रहा और यथार्थ भविष्यसे मुझे हमेशा डर लगता रहा। मैं तो केवल वर्तमानमें ही सोच सकता हूँ। इसके कारण हैं : दुःख और भय। दुःख इसलिए कि वर्तमान हमारा नहीं हो पाया और भय इस बातका कि अगला क़दम ही फिसल जायेगा....

प्रश्न : लेकिन जब थक गये और सोफ़ेपर लेट गये तब क्या सोचा ?

काफ़्का : किसी भी ज्ञानी आदमीकी तरह मैं मरनेके लिए तैयार होता रहा। इसलिए नहीं कि मैंने सब कुछ कर लिया था, इसलिए कि कुछ कर नहीं पाया था और कुछ भी करनेकी शक्ति अपने अन्दर नहीं पाता था। लेकिन ऊपरसे देखूँ तो कुछ और कहूँगा—एक युवा और मेच्योर आदमीका मरना और अपने-आपको मारना सरासर ग़लत है। हम क्या कर पाये और क्या नहीं कर पाये—यह विचार ज़रूर आयेगा लेकिन मरनेका मतलब होगा एक 'कुछ नहीं' के सामने शस्त्र डाल देना। लेकिन जो आदमी खुद 'कुछ-नहीं' है, वह एक और 'कुछ-नहीं' के सामने क्यों हार जाये....

प्रश्न : क्या यह 'कुछ-नहीं' का बोध जीवनके 'कुछ-नहीं' हो पानेमें-से उपजा है ?

काफ़्का : सारा जीवन इसीके गिर्द घूमता रहा है....

प्रश्न : क्या जे० डब्ल्यू० या ए फ० या बर्लिनवाली या मिलेना....

काफ़्का : मैक्सका कहना ठीक है कि ये सब मेरी मृत्युकी कारण हैं लेकिन ऐसा बोलनेसे मुझे आराम नहीं मिलता। जो नहीं हुआ, नहीं हुआ....। लेकिन निराश होनेसे कुछ नहीं होता। जब सब कुछ समाप्त हो जाता है सहायताके लिए नयी शक्तियाँ अपने आप आती हैं और यह अनुभव होने लगता है कि हम मरे नहीं, जीवित हैं।....

■ ■

[प्रस्तोता : र० व०]

९।१ बी, सदानन्द रोड, कलकत्ता - २६.

वर्षा से पहले…

• असफलता / अजितकुमार

नीले नभ में
भूरे बादल का
पैबन्द
लगाया था जो तूने
छितर गया ।

मँडराते हैं कौवे ।
सब तन खा चुकने पर—
मिल ही जायेगी
उनको

बादल की भीगी हुई पलक के नीचे
ठिठकी, नन्हीं पुतली—
टाँक उसे देंगे
नभ के अजेय वक्षस्थल पर

तब भी
वह
मौन शान्त अविभाजित होगा
विजय दर्प-से तना ।

■

सी. ३।५ माडल टाउन,
दिल्ली-९

• छन्न / वीरेन्द्र मिश्र

इन्द्रधनुष भंग हुआ बन्द मेघ राग
पंख कटा मेघदूत लील रहा आग
सारा आकाश है अचेत

सागर का प्यासा ही भूखा है आज
कल जो था कल्पवृक्ष सूखा है आज
ऊबा है छाँव के समेत

आस्थाओं की भस्मी काया ये कौन
नदियों का ध्यान किये आया ये कौन
जल न मिला, बस, केवल रेत

अम्बर पर चिपकी है त्रासद मुसकान
यह ही तो बिजली है जिसका था भान
बाहर ही बाहर है श्वेत

पानी, पानी, पानी—कितना है शोर
छन्न हुई रिमझिम की एक बूँद और
खेत-खेत संकट समवेत

■

३४।२५ पश्चिमी पटेलनगर
नयी दिल्ली-८

• यह पथ / ओम प्रभाकर

यह पथ अब छोड़ दें !
खेत—वही बंजर-सुनसान
रेत हुए ताल ।

भूखे-प्यासे मकान,
गिरते-गिरते अकाल ।

इनसे होकर जाना
यह रथ अब तोड़ दें ।
यह पथ अब छोड़ दें ।

अन्धी होती आँखें
खुली हुई ।
टूट रही हैं पाखें
उड़ने को तुली हुई ।
देखें, या अश्वों को
अन्य दिशा मोड़ दें ?

जा बैठे कहीं किसी कोने में
सारी यात्राएँ लिये
मौन-पराजित-इच्छा हीन
सांस बन्द किये ।
और
शेष इन लोहित निमिषों में
अपने अन्तर का घन अन्धकार जोड़ दें ।
यह पथ अब छोड़ दें ।

■

३१८, क़िला रोड,
भिण्ड (म. प्र.)

• अकाल-अंश / ऋतुराज

पिता : ये कौन लोग हैं रोटी की
कहानी के पात्र
एक स्त्री ढोल लटकाये अपने बच्चे को
बादलों की ओर संकेत करती हुई
एक वृद्ध गायक शहर की गली में
अपने स्वर से थकता
पशुओं के स्वस्थ लोक में हँसने वाले
ये लोग ज्ञान के संसार से दूर हैं
फिर भी ये क्यों दुःखी हैं

इन्होंने मेरे अन्दर होते हुए
आर्त्तनाद को नहीं सुना है
न देखा है आकस्मिक प्रकट होते
शब्दों के मायावी रचना-कौशल को
फिर भी ये सन्त्रस्त हैं
और हम जिन्हें पराजय और मृत्यु के
सन्दर्भों से पहिचाना गया है
जिनकी मुक्ति नहीं है प्रेम में
न सम्मान-धन न आत्मशुद्धि में
हम अपनी मानवीय करुण कथा में इनका
वर्णन क्यों नहीं करते हैं ?

■

राजकीय महाविद्यालय
बूँदी (राज०)

• बहुत दिनों बाद /

नारायणलाल परमार

आजकल
बेहिसाब खुश है
सन्नाटा
फोकट क्यों सुने
किसी के उलहने
किसी की गाली

बहुत दिनों बाद
पीहर लौटी है
हरियाली

■

हिन्दी विभाग
नगरपालिका महाविद्यालय
धमतरी (म० प्र०)

वर्षामंगल

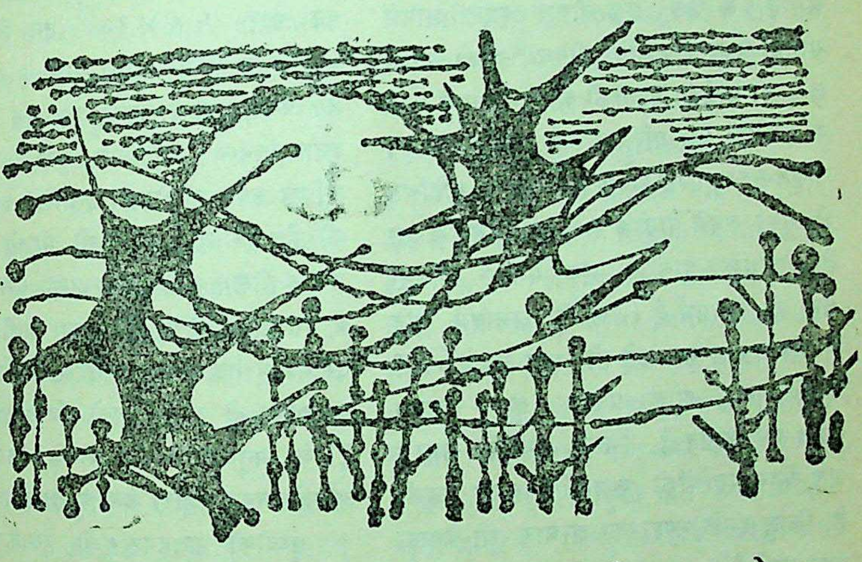

सन्हैयालाल ओझा

गये कुछ दिनोंसे भयानक गरमी पड़ रही है। उस दिन तापमान ४०° सी-से अधिक बढ़ गया था। हवामें ऊमस इतनी थी कि सारा बदन चिपचिपाता रहता। दिन-भरमें चार बार नहानेसे भी चैन नहीं था। दिगन्तमें कुछ बादलोंके घने होनेका आसार दिखाई देता है, पर शाम होते-होते धूसर आकाश नीला हो उठता है। नशेमें धुत्त शराबीकी तरह हवा लड़खड़ाती हुई चलती है, कभी इधर झुक गयी कभी उधर! गये दो सालसे मानसूनने इस देशपर क़हर नाज़िल कर

रखा है, अगर इस बार भी बरसातने ठगा दिखा दिया तो क्या होगा इस देशका ?—बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदिके बड़े-बड़े हिस्से पीनेके पानीके लिए भी तरस रहे हैं। देशकी अर्थनीतिपर ऐसा दबाव पड़ा हुआ है, जैसे पहले शायद कभी नहीं पड़ा।

जल क्या पृथ्वीतलपर सचमुच ही ऐसा दुर्लभ पदार्थ है? पृथ्वीका तीन-चौथाई भाग महासमुद्रोंके रूपमें जलसे भरा हुआ है। नदियों, झीलों, प्रपातों और कूपोंके रूपमें अगाध जल इस एक-चौथाई स्थल भागमें समाया हुआ है। यदि जीवधारियोंको लिया जाये तो प्रत्येक प्राणीकी शरीर-रचनामें ७०-से लगाकर ९५ प्रतिशत तक शुद्ध पानी है। जीवन-तत्त्व, जिस रूपमें हम उससे परिचित हैं, मुख्य रूपसे पानीके ऊपर ही निर्भर करता है। इसीलिए पानीका एक पर्याय 'जीवन' बड़ा ही अर्थगर्भ है। जलके अभावमें यदि समस्त प्रकृति जल उठे तो क्या आश्चर्य है? यद्यपि नदी, झील, प्रपात, कूप, नलकूप आदि कई साधन हैं, जिनसे पृथ्वीके समस्त जड़-चेतन पदार्थोंकी जल-पूर्ति होती रहती है, किन्तु इनके भण्डारका आधार भी केवल-मात्र वर्षा है। समयपर उचित मात्रामें वर्षा न हो तो बिहार-जैसी स्थिति अनिवार्य हो उठती है। प्रकृति इस कार्यको किस तरह सम्पन्न करती है, यह एक रहस्य-कथासे कम मनोरंजक नहीं। आइए, आज इस कहानीको पढ़िए। वैज्ञानिक-भाषामें जिसे वर्षा-विज्ञान कह सकते हैं, वह है वस्तुतः ऋतु-विज्ञान (Meteorology) का एक भाग, अतः प्रारम्भमें पात्र-परिचयके साथ ही हमें वातावरण (वायुमण्डल) का भी कुछ विचार करना उचित होगा।

जैसा कि हमें प्रारम्भ ही में पढ़ाया जाता है, हमारी पृथ्वीके चारों ओर एक घना वायुमण्डल है जो ऊपर विरलतर होता हुआ प्रायः एक हजार मीलकी ऊँचाई तक छाया हुआ है। पृथ्वीके प्रत्येक वर्ग इंच क्षेत्रफलके ऊपर समस्त वायुमण्डलका भार १४.७ पौण्ड है, इस तरह पृथ्वीपर छाये समस्त वायुमण्डलका भार ५.९×१०^{१५} टन है। यद्यपि वायुमण्डल पृथ्वीके ऊपर प्रायः १ हजार मील तक फैला हुआ है, किन्तु वह इस ऊँचाईपर इतना विरल है कि उसे कुछ न कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। इसीलिए वायुमण्डलकी ऊँचाईके बारेमें तीन सौ मीलसे लगाकर हजार मील तककी संख्या अलग-अलग प्रसंगोंमें बतायी जाती है, जो मिथ्या नहीं है। सच तो यह है कि माउण्ट एवरेस्टकी ऊँचाई तक पहुँचकर ही वायु इतनी विरल हो जाती है कि मनुष्यको साँस लेनेके लिए कृत्रिम ऑक्सीजनका सहारा लेना पड़ता है।

पृथ्वीकी सतहपर सूखी हवाके उपादान हर स्थानपर प्रायः समान ही होते हैं, यहां तक कि सतहसे लगभग सौ मीलकी ऊँचाई तक वायुमण्डलमें विभिन्न गैसोंके सापेक्षिक-अनुपातमें बहुत ही कम विभिन्नता देखी जाती है। सूखी हवाका प्रचुरतम भाग नाइट्रोजन गैसका होता है, जो कुल वायुका प्रायः चतुर्थ-पंचमांश है। शेष पंचमांशसे कुछ कममें

ऑक्सीजन, और शेष एक प्रतिशतसे कममें आर्गन् कार्बन डायोक्साइड तथा अन्य गैसें हैं, जैसा कि नीचे दी हुई सारिणीसे स्पष्ट होगा :

नाइट्रोनन (N_2)	७८.०८ प्रतिशत
ऑक्सीजन (O_2)	२०.९५ ,,
आर्गन (A)	०.९३ ,,
कार्बन डायोक्साइड	०.०३ ,,
अन्य गैसें	०.०१ ,,

लेकिन एकदम सूखी हवा प्रकृतिमें शायद ही कहीं मिलती है, क्योंकि प्रायः सर्वत्र ही जलीय वाष्प विभिन्न परिमाणमें ४ प्रतिशतकी सीमा तक सदैव ही वायुमण्डलमें मिश्रित पाया जाता है। वस्तुतः पृथ्वीकी समग्र जलवायुका करिश्मा इस अपेक्षाकृत छोटे-से अनुपातवाली जलीय वाष्पके ऊपर ही निर्भर करता है, जिसके कारण हमें कहीं तो सघन जंगल और कहीं चिलचिलाते रेगिस्तान दिखाई देते हैं। नीचेकी सारिणी बतलाती है कि जलीय वाष्पकी मात्रके अनुसार वायुमण्डलके अन्य उपादान किस अनुपातमें अपना सन्तुलन बनाये रखते हैं :

जलीय वाष्प	नाइट्रोजन	ऑक्सीजन	आर्गन
०%	७८.०८	२०.९५	०.९३
१%	७७.३०	२०.७४	०.९२
२%	७६.५२	२०.५३	०.९१
३%	७५.७४	२०.३२	०.९०
४%	७४.९६	२०.११	०.८९

सम-शीतोष्ण कटिबन्धोंमें हवा जब सूखी हो, जलीय वाष्पका परिमाण शून्यसे लगाकर उमसवाले दिनोंमें ३% तक हो सकता है। ४% परिमाण जलीय वाष्पका सर्वोच्च परिमाण है और वह उष्ण कटिबन्धमें ही पाया जाता है। जलीय वाष्प अधिकांशतः वायुमण्डलके निम्न भागमें ही रहता है। प्रायः कुल वाष्पका ९०% ६ किलोमीटरकी ऊँचाई तक ही प्राप्त है। दस किलोमीटरसे ऊपर कुल नमीका १% ही रह जाता है।

पृथ्वीके वायुमण्डलको चार भागोंमें विभाजित किया जाता है : (१) ट्रॉपोस्फीयर और ट्रॉपोपॉज, (२) स्ट्रेटोस्फीयर, (३) इओनोस्फीयर और (४) एक्सॉस्फीयर।

अधिकतम १८ किलोमीटरकी ऊँचाई तक का वायुमण्डलका भाग जिसे ट्रॉपोस्फीयर कहते हैं, हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्व का है। यही भाग ऋतुविज्ञानका क्रीड़ागार है। रेडियो और हवाईयात्राके बाद ही, और अब अन्तरिक्ष-यात्राकी दिलचस्पीके कारण ही इससे ऊपरके वायुमण्डलपर भी अब ध्यान दिया जाने लगा है, वरना अबतक वायुमण्डलका सारा अध्ययन इसी क्षेत्र तक सीमित था। आँधी, तूफ़ान, बादल इसी क्षेत्रमें पैदा होते हैं, और इसी क्षेत्रकी वायु अन्य कई मिश्रणोंसे संपृक्त होती है। वायुकी गति ऊपरकी ओर बढ़ती जाती है, किन्तु तापमान ऊपरकी ओर घटता जाता है, यहाँ तक कि ट्रॉपोस्फीयरके शिखर ट्रॉपोपॉज़पर पहुँचकर तापमान इस क्षेत्रमें सबसे कम और वायुकी गति सबसे तेज़ हो जाती है। वस्तुतः ग्रीक भाषामें ट्रॉपोस्फीयरका अर्थ ही होता है—'मिश्रण क्षेत्र', और ट्रॉपोपॉज़का अर्थ 'मिश्रण-ठहराव !' ट्रॉपोस्फीयरमें तापके ह्रासकी गति प्रति

किलोमीटर ६.५° सी०तक पायी गयी है, १७ से २० किलोमीटरकी ऊँचाईपर ८५° सी० (—१२१° एफ़०) तकका तापमान पाया जाना सामान्य-सी बात है। ट्रॉपोपॉज़के बाद तापमान घटनेके स्थानपर बढ़ना शुरू कर देता है। वृष्टिकी प्रक्रियाको समझनेके लिए हमारे लिए वायुमण्डलके इसी भागको समझना आवश्यक है, क्योंकि वर्षासे सम्बन्ध रखनेवाले आँधी, तूफ़ान, बादल आदि तत्त्वोंका क्रीड़ागार यही भाग है।

ऊपर सूखी हवाके बारेमें उल्लेख किया गया है, जो वायुमण्डलमें क्वचित् ही पायी जाती है। जलीय वाष्पके संयोगसे उसमें आर्द्रताकी मात्रा ४% तक हो सकती है। हवामें आर्द्रताकी मात्राके अनुसार ऊमसका परिमाण घटता-बढ़ता है, इस हिसाबसे हवामें यदि आर्द्रता ०% हो तो ऊमस (Humidity) ०% होगी, और यदि आर्द्रता ४% हो तो ऊमस १००% कही जायेगी! जब हवामें आर्द्रताकी मात्रा चरम सीमा (४%) छू लेती है, तो उस हवाको परितृप्त (Saturated) हवा कहा जाता है, जिसका फलितार्थ यह है कि हवा अब और अधिक आर्द्रताको पचा नहीं सकती, जब तक कि उसमें जमाव या संघनन (Condensation) की प्रक्रिया न चल जाये। कुछ सीमा तक अति परितृप्ति (Supersaturation) सम्भव हो सकती है, किन्तु शीघ्र ही संघनन उसका आवश्यक परिणाम है।—जब कभी ऊमसका परिमाण ०% से १००% के बीचमें व्यक्त किया जाता है तो उसमें आर्द्रताका परिमाण जाननेके लिए परितृप्त-वाष्पकी एक विशेष प्रकृतिको समझना होगा। वह यह है कि वाष्पका किसी तरल-पदार्थपर दबाव, उस पदार्थके केवल प्रकार और तापमानपर निर्भर करता है, मिश्रणमें सहयोगी अन्य गैसोंपर नहीं। इसके अतिरिक्त तापमानका अवधारण भी बहुत आवश्यक है। मान लीजिए, २५° सी०के तापमानमें यदि ३०% ऊमस हो तो यह बहुत कुछ सूखी हवा-जैसा होगा किन्तु यदि तापमानकी मात्रा ४° सी० हो तो यही हवा पूर्ण रूपसे परितृप्त होकर १००% ऊमसवाली हो जायेगी, चाहे उसमें आर्द्रताकी मात्रा पूर्ववत् ही रही हो।

वायुकी परितृप्तिके लिए जलीय वाष्पके मिश्रणके बाद वायुकी आर्द्रता जब १००% हो जाती है, तो वायुमें जमावट (Condensation) प्रारम्भ हो जाती है। जमावटकी प्रक्रियामें जलीय वाष्प या तो जलके रूपमें तरल या बर्फ़के रूपमें ठोस आकार ग्रहण करती है। इस जमावटकी प्रक्रियाके लिए सामान्यत: एक 'नाभिक' (Nucleus) का होना परम आवश्यक है। ये नाभिक वायुमें प्राय: नमकके रवे, सल्फ़्यूरिक एसिडकी फुहारें या धुएँके कणके रूपमें अनेक अनुपातमें प्राप्य हैं, इनका व्यास प्राय: ०.०१ से लगाकर ५० माइक्रन (०.०१ इंच = २५४ माइक्रन) तक होता है। वायुमें इनकी संख्या कुछ सौ से लगाकर कई करोड़ तक प्रति घन सेण्टीमीटर हो सकती है। नगरके ऊपरी वायुमण्डल प्राय: सदैव ही एक लाख प्रतिघन सेण्टीमीटरसे

[शेष पृष्ठ १५३ पर]

आधुनिकताकी चर्चाके बीच यह लेख दिशान्तर है। यह सवाल उठाया जा सकता है—सुक्रात, कीर्कगार्द या नीत्सेका नाम 'आधुनिकता' को क्या देगा ? उत्तर स्पष्ट है कि 'आधुनिकता' पर खुला विचार किसी 'सामयिकता' पर परिसंवाद नहीं है, वह आजके 'नार्म' की तलाश है…

आधुनिकता, निष्कासन, भीड़ और यन्त्र-दैत्यसे लड़ता हुआ अजनबियोंका जुलूस !

—कैलाश वाजपेयी

मुझे एक कहानी याद आ रही है—एक अध-सोये-जागे आदमीकी, जो जीवन-भर विचारों की दुनियामें खोया रहा, इतना कि उसे जीवित होनेका एहसास ही कभी नहीं हुआ, उस दिन तक—जब एक सुबह वह जागा और उसने स्वयंको मरा हुआ पाया। लगता है, पूरी दुनिया इस मरे हुए आदमीकी व्याख्या करनेमें लगी है। व्याख्या स्वयं इतनी उलझ चुकी है कि हर नया स्पष्टीकरण व्याख्याको नयी तरह उलझा जाता है। 'डेनियल बेल'-की दृष्टिमें अब कोई भी सिद्धान्त मनुष्यकी समस्याओंको सुलझानेमें अक्षम है। तब ऐसी स्थितिमें क्या किया जाये। घृणा ? किन्तु उसके लिए भी ताप चाहिए—गहरी सम्बद्धता। जबकि जीनेके नामपर अब शेष बचा है एक सर्वव्यापी उकठापन ! और यन्त्र है कि उपजायें जा रहा है अपनी कोखसे बेहिसाब मांगें ! एनासिनका भारी भरकम इश्तहार आंख खुलते ही मुझे बुलाता है। तमाम दिन, न चाहते हुए भी, किये जानेवाले कामों, सड़क, दफ़्तर, सिनेमा और पुराने बिलोंका भुगतान करनेवाली लम्बी क़तारोंमें वह मेरा पीछा करता है। शाम होते-होते थककर, अन्तमें मैं उसकी गिरफ़्तमें आ ही जाता हूं ! कितने भाग्यवान थे पूर्वज जो वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरोंपर सुरक्षित थे। पत्थर-की छोटी-सी मूर्ति उनका हर दुःख स्पंजकी तरह सोख लेती थी। उन्होंने कभी अतिवादी प्रश्न नहीं किये। जिस ओर काली दीवार थी उस ओर देखा तक नहीं जबकि मेरे युगमें दूर-दूर तक सपाट है !

'जीवन स्वाभाविक रूपसे विषादान्त है'—बुद्ध जिन तथ्योंके आधारपर इस निष्कर्षपर पहुँचे थे उससे करोड़ गुना भयावह है यह तथ्य, कि जिस दुनियामें हम जी रहे हैं वह

निर्भविष्य है और ऊपरकी नील खोखलमें जो कुछ दीखता है सब एक दृग्विषयके अधीन है और मनुष्यका मस्तिष्क हज़ारों वर्षोंके प्रचारका परिणाम है। यह सोचकर हतप्रभ हूँ कि मेरे मस्तिष्कमें उठनेवाला विचार हज़ारों वर्षोंसे ढेरों राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों, धर्मप्रचारकों और समाजशास्त्रियों-द्वारा किये गये प्रचारका परिणाम है और यह परिणाम स्वयंमें हास्यास्पद है।

मैं जब आजकी विचारधाराके स्रोतपर पहुँचनेका प्रत्यन करता हूँ तब मूलस्वर मेरी पकड़में यही आता है कि जीवन स्वाभाविक रूपसे विषादान्त है। आगे जब रूमानी भावनाने ज़ोर पकड़ा तब कहा जाने लगा—मनुष्य निर्वासित ईश्वर है! जो मनुष्य विषादान्त स्थितिमें जीव था वह रूमानी चिन्तनके कारण ईश्वर हो गया! याद नहीं आ रहा —कौन था वह दार्शनिक जिसने हर वस्तुपर शंका करनेकी सलाह दी थी। पर लगता है, इस गड्डमड्डका काफ़ी कुछ कारण 'सोचता हूँ इसलिए हूँ'—यह वाक्य रहा होगा।

इस कथनके ही साथ दर्शन विज्ञानसे कटकर अलग हो गया—दर्शन तथ्यके अभावमें लगड़ा हो जाता है! किन्तु विज्ञान? उसका तो अस्तित्व ही नहीं रहता, अतः सम्भावनाको महत्त्व देकर इस वाक्यने मनुष्यको एक विचित्र-सी द्विधात्मक स्थितिमें ला पटका। यह सत्य है कि मनुष्य न केवल जीव था न ईश्वर—किन्तु 'सोचता हूँ इसलिए हूँ' का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य जीव और ईश्वर दोनों न रहा। शंकाकी यह परम्परा आगे चलकर शुद्ध बुद्धिवादियोंके विवर्तमें पड़ी और कान्त-जैसे चिन्तकोंने सीधे-सीधे कह दिया—"एक और एक अनिवार्यतः दो नहीं होते।" क्योंकि हर धारणा मस्तिष्क-द्वारा बनायी गयी है और क्योंकि सारा ज्ञान मस्तिष्ककी उपज है अतः एक और एक दो ही हों—यह विवादका विषय है। इस तर्ककी जड़में, लगता है, सुक़रात विद्यमान है क्योंकि सुक़रात पहला चिन्तक था जिसने कहा था—समस्त ज्यामितिक नियम एक ग़ुलामके मनमें भी सोये हैं, अन्तर केवल यह है कि उन विषयोंको जगाया नहीं गया।

तर्क यहीं नहीं ठहरा, उन्नीसवीं शतीमें हेगेलने मनुष्यके तात्कालिक रूपको पकड़कर उसकी व्याख्या एक ज़िम्मेदारियोंसे लदे सामाजिक प्राणीके रूपमें की, जो कीर्कगार्द-जैसे व्यक्तिवादियोंको बर्दाश्त नहीं हुई। कीर्कगार्दकी हर समस्या वैयक्तिक थी। रेजिना ओल्सनको ठुकरानेके बाद उसके अपराधग्रस्त मनको कहीं-न-कहीं आश्रय लेना था, अनिवार्यतः वह धर्मकी शरणमें जाकर अस्तित्वके मूलभूत प्रश्नोंसे जूझने लगा।

कीर्कगार्दसे पूर्व दार्शनिककी स्थिति नाटक देखनेवाले दर्शककी स्थिति थी। कीर्कगार्दके ही साथ उसकी स्थिति उस अभिनेताके समान हो गयी जो स्वयं अपने अभिनयकी सार्थकताको समझनेके लिए प्रयत्नशील हो। स्थिति यहीं तक रहती तब भी ग़नीमत थी किन्तु इसो बीच पूरे कार्य-व्यापारसे ईश्वर ग़ायब हो गया। और तेज़ीसे भागती काम-

काजी दुनियाको सायबेरियामें पड़े दास्तायवस्कीने एक चुनौती भेज दी। दुनियाके किसी काममें भाग न लेनेवाले अत्यन्त तिरस्कृत एवं निन्दित व्यक्तिने सहसा अस्तित्वकी सार्थकतापर एक चिह्न लगा दिया, जिसे सुलझानेके प्रयत्नमें नीत्से पागल हो गया। अकेले आदमीकी विचारोंसे लड़कर किसी निष्कर्ष तक पहुँच जानेकी ज़िद कितनी घातक हो सकती है—इसका करुण उदाहरण नीत्सेसे बढ़कर और कौन होगा?

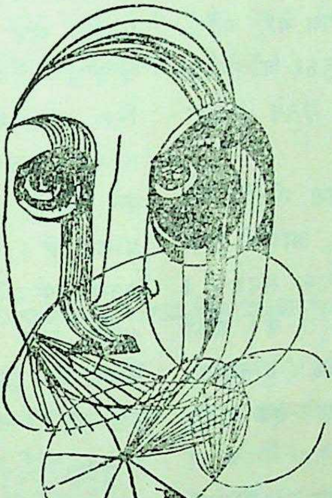

कीर्कगार्दको पृष्ठभूमिमें रखकर जब मैं नीत्सेको देखता हूँ तो मुझे दोनोंमें तीन ही समताएँ दीखती हैं। दोनों अकेले थे, दोनों दुर्बल थे, दोनोंको सहानुभूति नहीं मिली। किन्तु रास्ते दोनोंने एक दूसरेके ठीक विपरीत चुने। नीत्सेकी तुलनामें कीर्कगार्द फिर भी भाग्यवान् था। कोपनहेगनसे उसे लगाव था और ईश्वर उसके पास था किन्तु नीत्सेने प्रयत्न करके आन्तरिक एवं बाह्य सारे सूत्र तोड़ डाले थे। हर सुबह उठकर वह एक विश्वासकी हत्या करता था! सुपरमैनकी कल्पनासे अभिभूत उसके अहम्ने ईश्वरकी हत्या पहले अपने भीतर होते देखी थी जिसके अभावको भरनेका कार्य उसने सुपरमैनपर छोड़ा था। मनोविज्ञान कहता है, वह डायोनिसस जी रहा था और यही कारण है कि अपनी प्रखर मेधाके उन्मादमें उसने एक अद्वितीय चेतना-लोककी सृष्टि की। दरअसल, ज़रथुस्त्र, पर्वत, सर्प, गरुड़-जैसे विराट् प्रतीकोंको चुनकर नीत्से नकारात्मक मार्ग-द्वारा वहीं पहुँचनेका प्रयत्न कर रहा था जहाँ आस्थावादी प्रार्थनाके सहारे पहुँचता है, किन्तु अवचेतनके अन्धे प्रदेशोंमें पहुँचनेके लिए बलि देनी होती है। भीतर सोये दैत्यको जगाकर उसकी भूख मिटानेके लिए स्वयं मरना पड़ता है और यही नीत्सेके साथ हुआ—वह शिराघातसे गिर पड़ा।

मनोरोगोंके विशेषज्ञ चाहे जो कहें किन्तु दर्शनके इतिहासमें नीत्से जैसे सारगर्भ चिन्तक कम हुए हैं। मुझे लगता है, नीत्से उस नवयुवककी तरह था जिसका बचपन एक धर्मभीरु परिवारमें बीता हो और वयस्क हो जानेके बाद जो अपनी सारी जड़ें काटकर एक अपरिचित देशके भीड़-भरे बाज़ारमें केवल अपनी बुद्धिके बलपर स्थापित होनेका प्रयत्न कर रहा हो। नीत्सेकी यह चुनौती कि क्या वयस्क, अकेला और ईश्वरहीन होकर मनुष्य जी सकेगा—अब बीसवीं शतीके हर आदमीकी समस्या बन गयी है। नीत्सेने चुनौती दी थी और यह भी कहा था—'हाँ'

—क्योंकि इसकी दृष्टिमें मनुष्य इतना साहसी और निर्भय है कि वह अपने ईश्वरकी मृत्यु भी झेल जायेगा हालाँकि उसे मनुष्यकी समझदारीमें प्रारम्भसे अन्त तक सन्देह था।

मुझे बार-बार लगता है, नीत्से मूलरूपमें कवि था। उसके बिम्ब, प्रतीक और उसकी कथन-भंगिमा सभी कुछ कविताके अधिक निकट थे। उसे पढ़ते हुए कई बार मिल्टन याद आता है। दर्शनके लिए जितनी ठण्ढक अपेक्षित है उसका नीत्सेमें अभाव था, कीर्कगार्दमें भी, किन्तु अच्छा ही हुआ कीर्कगार्दने कविता नहीं लिखी वरना उससे ज़्यादा फिद्दड़ कवि दूसरा न होता।

अपनी अन्तिम कृति जिसे नीत्से पूरा नहीं कर पाया, मेरी समझमें, आजकी समस्याओंको उजागर करनेमें अधिक समर्थ है। 'विल टु पावर' अगर नीत्से पूरा कर सका होता तो हो सकता है, आजकी दुनियाको कोई रास्ता सूझता किन्तु नीत्से एक बसी-बसायी नगरीको ध्वस्त भर कर पाया था कि नहीं रहा। दरअसल, हम सब अब नीत्सेके 'विल टु पावर' का चिन्तन जी रहे हैं। फ़्रॉयडका यह सिद्धान्त कि 'मानवीय कार्य-व्यापारोंके पीछे यौन-भावनाका हाथ है' मुझे एकदम खोखला प्रतीत होता है। एडलरने जरूर नीत्से पढ़ा होगा वरना वह शक्तिके सिद्धान्तकी स्थापना इतने विश्वासके साथ न करता। जितनी तीव्रतासे आजके मनुष्यने प्रकृतिको परास्त किया है, जितनी कुशलतासे दिक्-यात्रा करते हुए उसने पिछली मान्यताओंको चकनाचूर किया है वह सब नीत्सेकी भविष्यवाणियोंको ही चरितार्थ करता है। शक्ति और अधिकारकी इस दौड़में मानवताकी आद्यचेतनाका कोई भी भाग अब गुंजान नहीं रहा—वहाँ नीत्सेका प्रेत घूमता है।

ग्रहोंपर उतरते हुए ये रॉकेट, हज़ारों मील दूर पहुँचते ये रेडियो फ़ोटो, आवाज़की गतिसे भी अधिक तेज़ उड़नेवाले ये यान, और मनोविज्ञानकी आँखें खोल देनेवाली खोजें, जो हर रात पृथ्वीपर प्रच्छन्न प्रकाश फेंक सके ऐसा चन्द्रमा बनानेको घोषणा—ये सारी तकनीकी दक्षता जो आन्तरिक और बाह्य प्रकृतिकी हर रहस्यमयी पर्तको उघाड़कर व्यवस्थित जानकारी प्राप्त कर रही है, यह सब 'विल टु पावर' का ही प्रारूप है। नीत्सेने कहा था—“शक्तिका लक्ष्य सिर्फ़ शक्ति होता है”। दूसरे शब्दोंमें, शक्ति स्वयं अपना लक्ष्य होती है। मुझे लगता है, इस युगमें जो गति है वह और कुछ नहीं 'विल टु पावर' के कारण है। क्योंकि शक्ति कोई ठहरी हुई स्थिति हो ही नहीं सकती। शक्तिसे गति और गतिसे शक्ति, इस प्रकार और शक्तिसे और गति एवं और अधिक गतिसे और अधिक शक्तिका जन्म होता है। धीरे-धीरे यह दुश्चक्र बढ़ता जाता है और यही इस शतीका प्रेरणा-बिन्दु है। शक्ति अपने पीछे भयंकर निर्वात (नास्तित्व) छोड़ती है। जैसे साठ मीलको गतिपर कार चलानेके बाद पिछले उनसठ मीलकी गतिका कोई महत्त्व नहीं रह जाता उसी तरह शक्तिका हर पिछला छूटा चरण खोखलेपनको जन्म देता है। सभ्यता इसी छूटे चरणका

शिकार है जहाँ हर कोई 'निष्कासन-निष्कासन' चिल्ला रहा हैं। यही नहीं, शक्तिका अगला चरण जहाँ पड़ रहा होता है वह क्षेत्र नकारवादका क्षेत्र होता है। जिन्हें नकारवाद समझमें नहीं आता उन्हें यह जानकर दुःख होगा कि शक्ति-प्रसारकी इच्छाका यह सिद्धान्त नकारवादपर ही खड़ा है। शंका और अविश्वासका ही परिणाम है कि मनुष्य चन्द्रमाको छू आया है। जो नकारवादसे असन्तुष्ट हैं वे अभी मध्ययुगमें हैं और सुखी हैं। किन्तु उनका क्या किया जाये जो आधुनिकतामें घबराकर प्रकृतिकी ओर, ईश्वरकी ओर, परम्पराकी ओर लौटनेका नारा लगा रहे हैं। उनका यह नारा कुछ वैसा ही है जैसे किसी गणितज्ञसे कहा जाये—गिनती भूल जाओ।

मुझे ऐसा लगता है, निष्कासनकी शिकायत अब एकदम बेमानी हो चुकी है क्योंकि अब वह आजके युगका सहज 'नार्म' बन गया है जिसमें कलाकार ही नहीं पूरी दुनिया शामिल है। देखना तो अब यह चाहिए कि यह सहज स्थिति भी किन अंशों तक उपादेय है।

■ ■

एच-१६, साउथ एक्टेंशन पार्ट–१
नयी दिल्ली

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

● सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, जगदीश

● मूल्य :
६.०० वार्षिक, ००.५५ पैसे प्रति

'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी, जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करना है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

सम्पर्क-सूत्र : भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

प्यारे बच्चो !

खुशखबरी

बच्चो! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ। अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट। मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

HANUMAN
ROHTAS INDUSTRIES LTD

"आलू बड़ा"

कुछ उबले आलू ले लीजिये और उन्हें अच्छा छीलिये। जब वह नरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ धनिया, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनिया, नमक, चीनी, किशमिश तथा अन्त में हरी धनियों की पत्तियाँ मिला दीजिए। फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये। इनकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए।

इन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनिया व जीरा के पाउडर के गाढ़े घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए। इसमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए। फिर गरमी लाइए। इनको गर्म वनस्पति में तल दें।

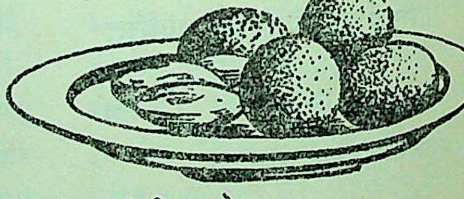

निश्चय रहे कि आप ने
हनुमान वनस्पति प्रयोग किया।

निर्माता :—
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर (बिहार)

PCSL. 67 HR

स्वेतलानाकी चर्चा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर हो रही है। सहसा एक विचार-भरसे यात्रा सम्भावित निष्कासनके रूपमें बदल गयी या यह भी कहा जा सकता है—वह एक अनिवार्य यात्रा है…। उसीका दूसरा पक्ष इस रिपोर्ताजमें प्रस्तुत है।

स्वेतलानाके पतिके साथ ४० दिन

ब्रजकिशोर 'नारायण'

मार्शल स्तालिनकी पुत्री स्वेतलानाके पति कुँवर श्री ब्रजेश सिंहजीने ई० सन् १९५५ की मईमें, मेरे साथ विलायतकी यात्रा की थी। पोलैण्डका जलजहाज़ 'बटोरी' हमारे पारस्परिक परिचयका माध्यम बना था।

१५ मईको, 'बटोरी' ने जब भारतीय तट छोड़ा और विश्वके अनेक भागोंके यात्री समुद्रकी अनन्ततामें खोने लगे तो एक अजीब-सी अनुभूति हुई! हृदयविदारक! मर्मान्तक!

मैं चूँकि यात्रा-ग्रन्थोंके निर्माणके लिए ही पर्यटनका रोमान्स कर रहा था, इसलिए मुझे विषाद तो उतना नहीं व्यापा मगर एक छटपटाहट-सी ज़रूर हुई। पाँच-छह घण्टोंके बाद जब जहाज़ बीच समुद्रमें आ गया तो मैं उसकी एक खिड़कीसे समुद्रकी अपारताको आत्मसात् करने लगा। पारावारकी महानताका ज्ञान पाकर मैं अपनी लघुताका आभास कर ही रहा था कि मेरी पीठपर किसीका हाथ आ टिका। घूमकर देखा तो

एक प्रौढ़-बलिष्ठ सज्जन खड़े-खड़े मुसकरा रहे थे। उन्होंने दखलन्दाजीके लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए तत्काल अपना परिचय दिया—"मुझे ब्रजेश सिंह कहते हैं। मैं कालाकाँकर-का रहनेवाला हूँ।....आप कहाँसे आ रहे हैं?"

'बटोरी' जहाज़के अँगरेज़ीमय वातावरणमें टकसाली भाषा और शुद्ध उच्चारण-की हिन्दी सुनकर मेरा उदास मन तत्क्षण हरा हो गया। जब मैंने अपना परिचय दिया तो वे बीचमें ही रोककर बोल पड़े—"बस, इतना ही काफ़ी है! मैं हिन्दीके प्रायः सभी मान्य कवियों-लेखकोंके शुभनामोंसे परिचित हूँ। आपकी भी कई चीज़ें मैंने पढ़ी हैं।"

कुँवर ब्रजेश सिंहजी मुझसे बातें कर ही रहे थे कि एक प्रौढ़ा युरॅपीय महिला और एक अर्द्ध युरॅपीय-सा लगता किशोर आकर उनके पास खड़े हो गये। ब्रजेशजीने मेरी ओर मुखातिब होकर उनसे परिचय कराया—"यह मेरी श्रीमतीजी हैं। यह मेरा लड़का है।" दोनोंने हाथ मिलाकर अभिवादन किया और उन्हें केबिनकी चाभी देकर वे जहाज़की दूसरी तरफ़ चले गये। उनके जाने-पर ब्रजेशजीने स्वयं बतलाया—"ये मेरी चेक पत्नी हैं। इन्हींसे उत्पन्न मेरा यह पुत्र है। पहले मैंने इसे लन्दनमें चार साल रखकर पढ़ाया था। पीछे घर बुला लिया। आजकल प्रतापगढ़में पढ़ रहा है। सोच रहा हूँ कि फिर इसे लन्दनमें ही छोड़ दूँ। भारत-में रखकर पढ़ाना और फिर यह सोचना कि लड़का बड़ा होकर ऐसी नौकरी पायेगा जो उसकी योग्यताके अनुकूल हो—यह आशा मुझे नहीं दिखाई देती। एक तो मनके मुताबिक शिक्षा ही नहीं होगी, और कहीं हो गयी तो जीवनका प्रारम्भ ऐसे दरिद्र वेतनसे होगा कि लड़केके सारे मनसूबे खाकमें मिल जायेंगे!"

ब्रजेश सिंहजी अपने पुत्रके भविष्यकी चिन्तामें इतने मशग़ूल हो गये कि उन्हें यह भी ख़याल नहीं रहा कि हम दोनों कुरसी रहनेके बावजूद खड़े-खड़े बातें कर रहे हैं! उन्हें अपनी भाव-प्रवणतापर दुःख हुआ तो उसे यूँ अभिव्यक्त करके बोले—"कविके सम्पर्कमें आकर गृहस्थ भी भावुकताके समुद्र-में विलीन हो जाता है!"

इतना कहकर उन्होंने एक कुरसी मेरी ओर बढ़ा दी और दूसरीपर बैठते हुए बोले—"नारायणजी, जब पं० सुमित्रानन्दन पन्त हमारे यहाँ रहते थे तो उस वक़्त साहित्यकी एक अलौकिक फ़िज़ा थी कालाकाँकरमें! पन्तजीकी अनेक महान् कविताओंकी रचना मेरे यहाँ ही हुई है।"

ब्रजेश सिंहजी जिस भावसे सारी बातें कर रहे थे, उससे उनके भावुक होनेके सम्पूर्ण तत्त्व स्पष्ट हो गये। उनमें एक कविका हृदय और भारतीयका मस्तिष्क मौजें मारता था! वे कहते-कहते अश्रुविगलित हो जाते थे और उनकी तरल आँखें सुदूरकी ओर निर्निमेष हो जाती थीं। आज जब मैं उन दृश्योंको याद करता हूँ तो यह सर्वथा प्रत्याशित लगता है कि स्वेतलानाको लेकर जो घटनाएँ उनके साथ घटी हैं, वे अवश्यम्भावी थीं।

'बटोरी' जहाज़ पोलैण्डका था। पोलैण्ड चूँकि कम्युनिस्ट देश है, इसलिए पोलिश लोगोंका व्यवहार हम भारतीयोंके प्रति एकदम समानताका था। इस पहलूपर प्रकाश डालते हुए ब्रजेश सिंहजीने मुझे बताया—"मैं विलायत बहुत बार आया-गया हूँ मगर 'बटोरी'वालोंके व्यवहारसे मैं सर्वाधिक प्रभावित हूँ। मेरी इच्छा है कि पत्नीको उनके मायके पहुँचाकर एक बार रूसकी सैर कर आऊँ।" इस सिलसिलेमें उन्होंने मुझे यह नहीं बताया कि वे कम्युनिस्ट पार्टीके सदस्य हैं। सम्भव है, १९५५ में वे सदस्य नहीं भी रहे हों।

जहाज़में पूरे उन्नीस दिन एक साथ रह जानेके कारण ब्रजेशसिंहजीसे मेरी खासी घनिष्ठता हो गयी थी। वे मुझे बेहद प्यार करने लगे थे और क़रीब-क़रीब रोज़ मेरे साथ दो-तीन घण्टे आ बैठते थे। वे जान रहे थे कि मैं नियमित रूपसे चार घण्टे अपनी यात्रा-डायरी लिख रहा हूँ फिर भी माफ़ी माँगते हुए पासकी कुरसीपर विराज जाते थे और घर-परिवारके अनेक अन्तरंग संस्मरण-सूचना देकर ही उठते थे। जाते हुए कहते थे—"नारायणजी, आप अपनी इस पुस्तकमें सभी यात्रियोंकी प्रशंसा करें, मगर मुझ जैसे 'बोर' करनेवालेको कभी भी माफ़ नहीं कीजिएगा!" कहकर वे ऐसी मीठी हँसी हँसते थे कि मन मुग्ध हो जाता था।

एक दिन जहाजके उस कोनेपर वे अपने पुत्रको बुला लाये जहाँ मैं मेज लगाकर यात्रा-पुस्तक लिखा करता था। उन्होंने आदेश दिया कि वह हम लोगोंका एक फ़ोटो खींच ले कि जब कभी वह दिखे तो यह यात्रा स्मरण हो आया करे। जब वह तसवीर खिंच गयी तो लन्दनमें आते ही उन्होंने उसे साफ़ कराया और मुझे इण्डिया हाउसमें खुद आकर दे गये।

इण्डिया हाउस (लन्दन) में ब्रजेशसिंहजी से मेरी मुलाकात प्रायः हो जाया करती थी। 'बटोरी'के उन्नीस और लन्दनके एक्कीस दिनोंके सम्पर्कमें मैंने पाया कि ब्रजेशजी भारतकी प्राचीन परम्पराके उपासक तो हैं ही, विश्वकी नवीनतम चेतनाओंके भी उग्र आग्रही हैं।

'बटोरी'के जहाज़में केवल मैं ही एक ऐसा भारतीय यात्री था, जो कुरता-पाजामा पहनता था। इस ऊटपटांग रवैयेसे क्षुब्ध होकर जब कुछ भारतीय साहबोंने ब्रजेशजीसे मुझे समझानेके लिए कहा तो उन्होंने उन्हें ऐसी फटकार बतायी कि मज़ा आ गया। बोले, "आप लोग अगर पूर्ण युरॅपीय पोशाकोंके कट्टर हामी हैं तो अपनी बीवियोंको साड़ीकी जगह गाउन क्यों नहीं पिन्हाते? पहले उन्हें गाउन पिन्हाइए तो मैं नारायणजी को भी पैण्ट-कोट पहना दूँगा।" ब्रजेशजीने यह बात मुझे तब बतायी कि जब इस डँटाईकी चर्चा जहाज-भरमें फैल गयी और मेरी देखा-देखी कई भारतीय पाजामेके अलावा, धोती तक पहनकर धड़ल्लेसे घूमने लगे। इसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि पाकिस्तानी भाइयोंने भी बुशर्ट-पैण्ट हटाकर शेरवानी-सलवार निकाल ली!

ब्रजेशसिंहजीने लन्दनमें ही मुझे बताया था कि उनका वहाँ एक फ़्लैट है। वे उसीमें रहेंगे। अभी उसमें फ़ोन नहीं है, इसीलिए कुछ दिक़्क़त तो होगी! मगर फ़ोन लगते ही, और दीगर इन्तज़ाम ठीक होते ही वे मुझे अपने घर तुरन्त बुलायेंगे। इसकी चर्चा उन्होंने अपने एक पत्रमें भी की। लन्दनके पोस्टल कार्डपर हिन्दीमें लिखा हुआ उनका पत्र आज मेरे यात्रा-संग्रहालयकी एक बहुमूल्य धरोहर बन गया है।

बारह वर्षोंके बाद, अचानक जब अखबारोंमें स्वेतलानाकी स्वामिभक्ति और पतिके देशके प्रति अगाध श्रद्धाकी चर्चाएँ पढ़ीं तो सहसा उस साहचर्यकी स्मृति बिजलीकी तरह कौंध गयी। मैं क्या सोच भी सकता था कि मेरे अभिन्न अभिभावक कुँवर साहब इस बीच मास्को चले जायँगे, वहाँ जाकर रूसके लौह-पुरुष स्तालिनकी पुत्रीसे शादी कर लेंगे, शादीकी राहमें क़ानूनी अड़चन आनेपर इस्लाम-धर्म तक की शरण ले लेंगे!

कुँवर ब्रजेशसिंह-जैसे भावुक और कलाप्राण व्यक्तित्वका प्यार कितना बलवान और प्रगाढ़ है, यह स्वेतलानाका साहसिक क़दम ही सिद्ध कर रहा है। वह अपने जीवनपर खतरा मोल लेकर रूसके बाहर आ गयी है। भारतमें अपने पतिका निवास देखकर और वहाँ आँसूके फूल चढ़ाकर वह अमरीका-बसनेको सोच रही है। क्योंकि उसका कहना है कि जिस देशमें अपने विदेशी पतिके साथ रहने और सम्मानपूर्ण ढंगसे जीवन व्यतीत करनेकी सुविधा नहीं हो, वहाँका सारा माहौल उसके लिए निहायत नाक़ाबिले बर्दाश्त है!

मुझे इस प्रसंगमें एक बात और याद आ रही है कि जब मैं लन्दनसे पेरिसके लिए रवाना हुआ था तो मेरे साथ इलाहाबाद म्युजियमके क्युरेटर श्री सतीशचन्द्र काला भी थे। जब ब्रजेशसिंहजी को मालूम हुआ कि मैं पेरिस जा रहा हूँ तो फ़ोन करके उन्होंने समय लिया और इण्डिया हाउसमें दूसरे दिन ही आ मिले। वहाँ बैठकर उन्होंने भारत-सरकारके वर्तमान व्यापार-मन्त्री और उस वक़्तके प्रथम सचिव श्री दिनेशसिंहजीके नाम एक पत्र लिख दिया। उन्होंने बताया कि दिनेशजी उनके भतीजा हैं और वे हम लोगोंकी वहाँ पूरी सहायता करेंगे। दुःखकी बात यही रही कि फ़्रान्सके दूतावासमें प्रतीक्षा करके भी हम लोग दिनेशजी के दर्शन नहीं कर सके!

आज कुँवर ब्रजेशसिंहजी इस नश्वर संसारमें शरीर-रहित हैं, किन्तु उनकी पत्नी स्वेतलानाने सराहनीय साहसके साथ उन्हें पुनर्जीवन प्रदान कर दिया है। आज स्वेतलाना रूसके लिए ही नहीं, भारतके लिए ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण सभ्य संसारके लिए एक बहुत बड़ी समस्या बनकर खड़ी है! देखें, ऐसा कौन-सा समाधान निकलता है जिससे स्वर्गीय ब्रजेशसिंहजीकी आत्माको शान्ति मिलती है और स्वेतलानाको सुखद-स्थायी शरण!!!

■ ■

२२ एम० एल० ए० क्लब,
पटना-१

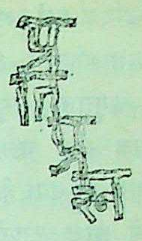

रमेश कुन्तल 'मेघ'

अस्वीकृतिका अकाव्यात्मक काव्यशास्त्र

ऊपरके सभी शब्द मानो एक दूसरेसे पंजा लड़ाते हैं। हमने जान-बूझकर यह किया है जिससे साम्प्रतिक कविताको समझनेका कोई एक सुलझा हाशिया तो मिले। कवि गिरिजाकुमार माथुरने अपनी शैलीमें 'अस्वीकृतिके रिनैसाँ'का ज़िक्र किया है। ग़रज़ यह कि 'अस्वीकृति' मात्र एक मनोवृत्ति ही नहीं, क्रियारति भी हो गयी है। इसके मूलमें निषेधके बजाय अस्वीकारका प्रबोध है। बोधसे आगे बढ़ा हुआ यह उन्मेष प्रबोध हो गया है। अस्वीकृतिमें परम्पराका अस्वीकार है, आदर्शवादका अस्वीकार है, समाज-रचनाका अस्वीकार है, भविष्यका अस्वीकार है और सुन्दर आदर्शोंके स्थानपर कुरूप वर्तमानका उच्छृंखल स्वीकार है। यह अन्तिम स्वीकृति बड़े शहरोंके आत्मनिर्वासन, अथवा जीवन्त मध्यकालमें जकड़े हुए छोटे शहरोंके अलगावका वास्तविक अनुभव है। यह वर्तमान भी है, और प्रवृत्त्यात्मक (उच्छृंखल) यथार्थ भी।

लेकिन कुरूप वर्तमानका यह प्रवृत्त्यात्मक यथार्थानुभव दर्शनका अमूर्तीकरण नामंज़ूर करता है। यही एक बात साम्प्रतिक कविताको सन् '५५ से लेकर सन् '६२ तक की कवितासे अलहदा करती है। उस कालकी कवितामें विरोधाभास था जिसका चमत्कार नव्य-रोमाण्टिक था। उसमें रोमाण्टिक बिम्ब होते थे, तथा यथार्थ अनुभव-बिम्बोंके बजाय धारणाओंके रूपमें प्रकट होता था। शहरीय बोधको ख़ूबसूरत बनानेकी यह चेष्टा गिरिजाकुमार माथुर तथा धर्मवीर भारतीमें सबसे ज़्यादा है। इसीके समानान्तर शहरीय बोधको भयानक बनानेकी दिशामें गजानन माधव मुक्तिबोध तथा व्यंग्यात्मक बनानेकी दिशामें नागार्जुन अग्रसर हैं। मूल बात यह है कि पूर्ववर्ती (प्रगतिवादी) धाराओंमें

यथार्थानुभव भी बिम्बस्वरूप होता था। अतः वह ऐन्द्रियिक एवं आवेगात्मक रहता था। बीचमें यथार्थानुभव धारणाओंमें प्रकट हुआ जिससे अमूर्तता प्रमुख और परम हो गयी। पर आज तक चलकर यथार्थानुभव पुनः बिम्बात्मक हो गया है। अतः हम साम्प्रतिक कवितामें आज राष्ट्रीय जीवनके, संघर्षरत समाजके, एक भद्देपनमें डूबे हुए देशके, झूठ और फ़रेबमें फँसे हुए विघटित मूल्योंके जीवित एवं जीवन्त चित्र पाते हैं। हाँ, इन चित्रोंका धरातल सुन्दरता और रमणीयतावाला न होकर कुरूपता और विद्रूपतावाला है, क्योंकि यहाँ 'अस्वीकृति'का खण्डित आधुनिक बोध है। इसीलिए साम्प्रतिक कविता एक कसाव-भरा प्रचण्ड झटका दे रही है। यदि यह अन-कविता है तब तो यह आत्महन्ता होगी किन्तु यदि अकविता है तब हमें इसकी अस्वीकृति तथा विद्रोह इन दो केन्द्रीय बोधों-का विरोध नहीं करना होगा। त्रासदीमें करुणा और त्रासके बोध थे, अस्तित्व-वादियोंने निरर्थकता और फूहड़ताके बोध जोड़ दिये। साम्प्रतिक कवितामें अस्वीकृति और विद्रोह समानान्तर हैं। इसीलिए हमें न तो चतुर्धीर नायककी नज़रसे, और न ही त्रासद नायककी नज़रसे इसे परखना है, बल्कि हमें एक भद्दे पात्रकी नज़रसे इसे निरखना है।

धारणाओंसे बिम्बोंकी ओर पुनः लौटने, अर्थात् जीवित यथार्थको चिन्तनसे अधिक संवेदनाकी परिधिमें लानेका यह उपक्रम सन् '६२ से शुरू हुआ। गम्भीर और विराट् संघातोंकी तात्कालिकतामें अमूर्त दर्शनके बजाय बेहद सम्मूर्त चित्रोपमता जन्म लेती है। हमारी युद्ध-कविताकी फ़रमाइश काफ़ी कृत्रिम और भोगशून्य रही है। लेकिन उस यन्त्रणाके दौरान हम कठोर ज़मीनपर उतर आये—देश भी तथा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी भी। उसका ही सुफल है—यथार्थको बिम्ब-रूपमें पेश करना। शुरूमें यह प्रस्तुतीकरण वक्तव्यों और भाषणोंके रूपमें हुआ, किन्तु कालान्तरमें रूपके अनुशासनने लतीफ़ेबाज़ी तथा वक्तव्यगोईसे साम्प्रतिक कविताको काफ़ी विमुक्त किया। बिम्बके आदिम जादूमें लौटनेका मतलब है—मेघदूतीय राष्ट्रीय भूगोल और मुद्राराक्षसीय सामाजिक यथार्थताको आँखें फाड़कर समझना-देखना, और अपने आप ही अमूर्त नतीजे निकालना! साम्प्रतिक कविताकी यही भूमिका है, यही प्रक्रिया है।

आस्थाके बजाय अस्वीकृति। फ़िलहाल यह अस्वीकृति सामाजिक अराजकतावादकी ओर जा रही है। जब निर्माणकी शक्तियाँ बिखरी हुई होती हैं, जब विचारको जान-बूझकर विभ्रमित किया जाता है, तब-तब अराजकताका ध्वंसात्मक आग्रह होता आया है। प्रूधों का अराजकतावाद भी इसी क़िस्मका है। लेकिन निर्माणकी शक्तियोंके कटिबद्ध होनेपर और समाज-परिवर्तनकी दिशाका संकेत मिलनेपर यह रुख बदलता है, जैसे कि ताल्सतायका ईसाई अराजकतावाद, बोल्शेविकवाद। हमारे मुल्क में अभी मध्य-वर्गीय बुद्धिजीवी अराजकतावादी निर्भीकता

और अस्वीकृतिके दौरसे गुज़र रहा है। उसका अगला चरण ही निर्णायक हो सकता है। मुझे तैंतीसवीं पी० ई० एन० कांग्रेसमें कहे गये आर्थर मिलरके वाक्य याद आते हैं कि "बुद्धिजीवी पहले लोग होते हैं, जो सामाजिक परिवर्तनका आह्वान करते हैं; और वे ही अन्तिम लोग होते हैं जो उसे स्वीकार कर पाते हैं। आजकी क्रान्तिके गुणके सम्बन्धमें एक बेचैनी विद्यमान है।" हमारी अस्वीकृतिकी कुछ रेखाएँ ऐसी भी हैं। कमसे कम विश्वविद्यालयों, व्यापारिक गृहों और ऊंचे सरकारी पदोंपर गद्दी लगाये कई बुद्धिजीवी ऐसे ही हैं, जो सेक्स-क्रान्तिके झण्डेको सबसे आगे उठाये झूम रहे हैं, इलहामसे; लेकिन अर्थनैतिक-राजनीतिक क्रान्तिके दायरेमें झाँकते ही नहीं बल्कि सरकार और सत्ताकी बिल्लीके सम्मुख कबूतरकी तरह आँखें बन्द कर लेते हैं। यह हम नये बुद्धिजीवियोंको छलने और गुमराह करनेका बड़ा ही करुण और घातक बौद्धिक हमला है।

साम्प्रतिक कविताकी यह विद्रोहात्मक अस्वीकृति (कमसे कम) यहाँ तक तो वरद है कि वह प्रतिक्रियावादी नहीं है, चिरन्तन अतीतके स्वप्न नहीं देखती, आदर्शमें पलायन नहीं करती बल्कि परम्पराके भयको तहस-नहस करती है तथा (सबसे महत्त्वपूर्ण) कुरूप वर्तमानको, धक्का-मुक्की करके, हमारे सामने कलाके माध्यमसे पेश करती है। हम इसीलिए इसे 'अ–कविता' कहते हैं। यदि तिस पर भी यह अन-कविता है तब तो कविताके माध्यमकी न्यूनतम शर्तोंको भी यह नकारती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है।

हम इस 'अकाव्यात्मक काव्यशास्त्र' में एक बुनियादी अन्तर देख रहे हैं: उदात्ततासे फूहड़ताके सौन्दर्यबोधकी ओर प्रयाण। हमें यह तो याद ही है कि रीतिमुक्त स्वच्छन्द पपीहे-कवि (जैसे बोधा, आलम, ठाकुर, पजनेश,) भी रीतिबद्ध तोता-कवियोंके असमान प्रेमकी विषम-भूमिकासे समारम्भ करके प्रेमके उदात्त स्वरूप तक पहुँचे थे क्योंकि उनके जीवनके अनुभव बड़े कुरूप-करुण-व्यंग्यात्मक थे। सूफ़ियोंकी तरह उन्हें भी प्रेमकी पीरमें छाले, मवाद, घृणा, जुगुप्सादिके विचित्र दौरानसे गुज़रना पड़ा था। उन्हें वेश्याओं, या नीचे तबक़ोंकी युवतियों या रंगरेज़िन मुसलमानियोंसे प्रेम करके विद्रोहमें स्वतन्त्रताकी सिद्धि करनी पड़ी थी। किन्तु उनकी प्रीतिका प्रेय जो यूतोपिया बनी वह सकारात्मक तथा आदर्शपरक हुई क्योंकि उस युगमें मोहभंगका एहसास मन्द था और अभिलषितका मानदण्ड भी छोटा था। उसमें कुरूपका त्याग, करुणका विरेचन तथा बीभत्सका निषेध था। उस काव्यमें अतिरंजना स्वप्निल थी।

आजका साम्प्रतिक कवि भी अतिरंजनाका सौन्दर्यात्मक अभिधान करता है किन्तु वह सौन्दर्योदात्त न होकर भद्दी, विद्रूप, व्यंगात्मक तथा फूहड़ है। अतः वह आज सुन्दर उपमान नहीं चुनता। वह चुन सकता है किन्तु एक धाराप्रवाहकी परिपाटीकी वजहसे भी नहीं चुनता है। फूहड़ताकी एक निरन्तर

निष्कृति उसी तरह असम्भव है, जिस प्रकार छायावादमें उदात्तताकी अनवरत निष्पत्ति असम्भव थी। आजका साम्प्रतिक कवि सामाजिक यथार्थताके मात्र कृष्णपक्षको ही चुनना चाहता है। शुक्लपक्ष जहाँ भी है, अभी वह या तो उसे कलात्मक रूप देनेको तैयार नहीं है या फिर उसे विलम्बित कर रहा है, क्योंकि अधिकांश रूपेण उसके निम्न मध्यमवर्गमें विषमता तथा कृष्णपक्षका ही बोलबाला है, तो इस सामाजिक यथार्थताके स्वेच्छासे चुने गये कृष्णपक्षको वह सामाजिक आलोचना एवं अविवेकी त्रास एवं बीभत्स एवं भयमें विपुलाकृत कर देता है। 'यदि हम सिद्धोंके सहजात्मक सौन्दर्यबोधसे परिचित हैं तब हम ऐसे प्रयोजनोंको परख तो सकते ही हैं। ऐसे सन्धाभाषी बिम्बोंमें अर्थके कई स्तर उभारे जाते हैं। सामाजिक कथन और आलोचनका यह साम्प्रतिक रूप न तो लिरिकल है, न व्यंगात्मक—अपितु फूहड़ है। अब कविके एबसर्ड रूपक या कथन या भाव या बिम्ब बेहद गहरे, अ-तटस्थ, निजी तथा अस्वीकृतिको असामाजिक स्थिति तक पहुँचे हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय कोण है। इसके अलावा अमानुषिकताको आत्मपीड़क अमानुषिकता-द्वारा मुखर किया जाता है जहाँ रस-समाधि-जैसी दशाके बजाय महाभूत समाधि-भंग वाला अकलानुभव मिलता है। यह दूसरा अकाव्यात्मक काव्यशास्त्रीय कोण है। इस काव्यशास्त्रमें शील-निरूपण तथा घटना-भावनका आधारभूत धरातल केवल विचित्र ही नहीं, बल्कि अनमिल तथा विकृत तथा मनोरोगात्मक भी है। इसलिए सहृदय और शिवेतररक्षक कविकी शास्त्रीय धारणाओं तथा उन्मिषित दशाओंमें हम स्वयंको नहीं पाते। यह इसका तीसरा कोण है। यह त्रिकोण ही साम्प्रतिक काव्यकी विद्रोहात्मक अस्वीकृतिका 'फूहड़ सौन्दर्यबोधशास्त्र' है।

कई उलझनें हैं। मनमाने ढंगसे केवल कृष्णपक्षको ही चुननेके आग्रहका बयान हम कर आये हैं। वह अपने रूपक और बिम्ब और अस्वीकृतिका साधन समग्र समाजके बजाय केवल सेक्स और पशु-बना दी-गयी नारीको ही चुनता है। इस दिशामें वह नारीके प्रति जो दृष्टिकोण विकसित कर रहा है, वह एक आधुनिक, प्रजातन्त्रवादी या पुरुषका न होकर एक बेहद सामन्तीय, आतंकवादी और हिजड़ेका है। इसी तरह वह एब्सर्ड यथार्थको केवल फ़ान्तासीके रूपमें ही पेश करनेका घोषणा-पत्र रच रहा है। यथार्थको कुरूप फ़ान्तासीके रूपमें ही पेश करता है किन्तु व्यंगका सामाजिक श्रेय भी होता है। साम्प्रतिक काव्यमें यथार्थका यह फ़ान्तासीकरण भयंकर पतन तथा दिग्भ्रान्ति-की सृष्टि कर रहा है। क्या हम 'अस्वीकृति-के इस एकान्तिक स्वरूपको ही लेंगे? यदि लेंगे तो पहले हमें अपनी माँ, पत्नी, बहन, भाई, पिता और दोस्तपर इसका वास्तविक अमल करके मज़ा चख लेना चाहिए। फ़ान्तासीकरणकी शक्ति अद्भुत है। काफ़्का, मुक्तिबोध और प्रसादकी मिसालें हमारे सामने हैं। काव्यशास्त्रके ये नये औज़ार तथा हथियार कोरमकोर यथार्थ,

विलक्षण एवं असाधारण तथा दैनिक हैं। ये भयानक दिवास्वप्नोंके रूप हैं। दिशाहीन होनेपर ये टाइम-बमोंकी तरह हमें ही चीथड़े बना देगें। साम्प्रतिक काव्यमें फ़िलहाल इन्हें आदिम सेक्स-भूख तथा सेक्स-क्रान्तिमें जकड़ा जा रहा है, जबकि अर्थनीति, राजनीति, संस्कृति, समाजसे इन्हें डरकर बचाया जा रहा है क्योंकि वहाँ स्टेट्स, आर्थिक स्थिति और क़ानूनका खतरा है।

हम यह माननेको तैयार हैं कि यह अतिरंजना सुन्दर नहीं है, (और न भी हो तो कोई हर्ज नहीं)। यह संवेगात्मक अनुभवों के बजाय बौद्धिक अनुभवोंके क्षेत्रकी परम अकर्मण अतिरंजना है। अतएव जब इसका क्षेत्र आमूलचूल बदला है तब इसमें बुद्धिगुण एवं बुद्धिधर्मके विपरीत मात्र प्रेतभयोंको पैदा करनेसे केवल एक आत्महन्ता कृत्रिम फ़ान्तासीका ही जन्म होगा जो अधिकाधिक कुण्ठित और जुगुप्सित हो कर सकेगी। अतः यह केवल एकांश होगी। यह समग्रता और पूर्ण आधुनिक बोध तो नहीं बन सकती ! सो, यथार्थताके अभिज्ञान और अभिधानके बजाय धोखेके जाल फैलेंगे। अतः एब्सर्ड बोध उत्पन्न करनेवाले उपमानोंके ग्रेनेड, अनुभवोंके रॉकेट, फ़ान्तासियोंके राडार केवल शत्रुक्षेत्रोंमें ही फेंके जाने चाहिए; न कि अस्पतालों, स्कूलों, गृहस्थ-घरों, कला-संग्रहों, खेतों और घनी शहरी बस्तियोंमें।

एब्सर्ड बोध व्यंगसे अगला चरण और उसका विकास है। यह विकास व्यंगकी तरह सोद्देश्य न होकर निर्भ्रान्तिपरक है। इसमें सामाजिक खबरदारीका स्वरूप काफ़ी पराजित, वैयक्तिक, ग़ैर-समाजी तथा अविवेकी होता है। अतः यह अस्तित्ववादी रंगत का नव्य रहस्यवाद और सामन्तभोगवादी भाग्यवाद भी पैदा कर सकता है। अभी तो यही हो रहा है, अर्थात् इस नये हथियारका इस्तेमाल आत्मभ्रान्ति, आत्महत्या और आत्मनिर्वासनकी फ़ान्तासीकृत अतिरंजनाके लिए हो रहा है। फूहड़ता निर्भ्रान्तिकी देन है और एक वैयक्तिक (पर्सनल) अनुभव है। मिसालके तौरपर 'सरोजस्मृति' तथा 'रामकी शक्तिपूजा' में उदात्त तथा समाज-आन्दोलक व्यंग सुलगानेके बाद निराला अभ्यन्तरसे चकनाचूर होकर खण्डित व्यक्तित्ववाले हो गये थे। इसके उपरान्त उनमें (व्यंग्यके बजाय) फूहड़-बोधका अभ्युदय हुआ जिसका दृष्टान्त 'कुकुरमुत्ता' है। यह हिन्दीकी सर्वप्रथम महान् फूहड़ कविता है। पहलेमें, अर्थात् व्यंगमें विरोधाभास हमें एकको चुननेका विकल्प देते थे, लेकिन फूहड़ता तो हमारे सामने दोनोंकी ही—शहीद और नेताकी, पत्नी और वेश्याकी—विद्रूपता तथा विडम्बना खोल देती है। अतः चयन निरर्थक हो जाता है। इसी निरर्थकताको किसी एक धरातलपर साम्प्रतिक कवि झेलता है। अलबत्ता उसके झेलनेका ढंग अधिक पतनवाला और अधिक नपुंसक है, अधिक छद्मपूर्ण और अधिक दम्भपूर्ण है। व्यंगमें प्रतिबद्धताकी प्रखर तुर्शी रहती है तथा सामाजिक विवेक जागरूक रहता है, लेकिन फूहड़तामें आदमी एक आस्थाविहीन, निरर्थक, वैयक्तिक शून्य-

तामें धँसता है और सारा मूल्यधर्मा सामाजिक विवेक झूठा-सा बन जाता है। साम्प्रतिक कवि व्यंगसे अगला फूहड़ताका सशक्त अस्त्र तो भाँजने लगा है लेकिन उसमें अनुभवोंकी सामूहिकता तथा गहराई तथा क्रान्तिगुण नहीं अनुस्यूत कर सका है। इस दृष्टिसे वह निराला-नागार्जुन-मुक्तिबोधसे बहुत पिछड़ रहा है। अतः अभी भी बहुधा फूहड़ तथा शहरी उपमानोंको गिनानेकी छायावादी शैली ही बरक़रार है। यदि फूहड़ता-बोधका विकास विदेशी अस्तित्ववादियोंके बजाय निरालाकी धारामें होता, तब आज एक अनूठी कलात्मक क्रान्ति हो गयी होती।

इस तरह अस्वीकृतिके अकाव्यात्मक काव्यशास्त्रकी यह भूमिका अब हमें आगे चुनाव करनेकी चुनौती देती है। क्या हम इसके लिए हिम्मत रखते हैं ?

■ ■

रीडर इन्चार्ज,
पंजाब यूनिवर्सिटी रीजनल सेण्टर,
द्वारा : द्वाबा कॉलेज, जालन्धर नगर

परिवर्तित ग्राहक-शुल्क :

एक प्रति ...	१—५०
वार्षिक विशेषांक ...	३—००
वार्षिक शुल्क ...	१५—००
अर्द्धवार्षिक ...	८—००
तीन वर्ष का ...	४०—००
सात वर्ष का ..	६५—००
पन्द्रह वर्ष का ...	२००—००
आजीवन ...	२५१—००

—व्यवस्थापक

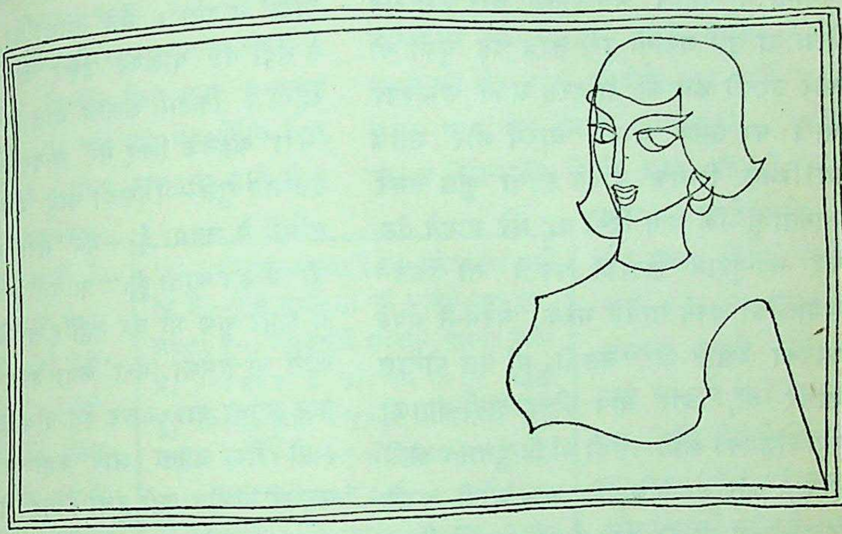

कैनीका सफ़र / अमृता प्रीतम

अखबारमें खबर जरूर छपी है, पर बावजूद पुलिसकी पूरी तहक़ीक़ातके, और डॉक्टरी रिपोर्टके, यह खबर ग़लत है ।

इनसान और खबरके बीच जो कुछ होता है वह कोई आँखोंसे नहीं देखा होता, इसलिए हर खबरको लोगोंका अनुमान कहा जा सकता है और कुछ नहीं । और अनुमान अकसर ग़लत होता है ।

कैनी और उसकी खबरके बीच जो कुछ हुआ है, मैं उसके पल-पलका गवाह हूँ.... क्योंकि जिन दिनों वह किसी औरसे बातें नहीं करती थी, उन दिनों वह कितनी-कितनी देर मेरे सामने बैठकर मुझसे बातें करती रहती थी । मेरा मतलब है, अपने-आपसे बातें करती थी । और ऐसे दिन उसकी जिन्दगीमें बहुत थोड़े आये जब उसने और किसीसे बातें की हों । इसलिए मैं कह सकता हूँ कि अखबारमें कैनीकी जो खबर छपी है वह खबर ग़लत है ।....मैं यह हलफ़िया बयान देता हूँ ।

मैं : कैनीके कमरेमें लगा हुआ कैनीके क़द-जितना शीशा ।

मैंने कैनीका बचपन नहीं देखा, चढ़ती जवानी भी नहीं । मैंने पहली बार उसे जब देखा था उसे जवानी पूरी तरह चढ़ चुकी थी और उसकी कलाकी शोहरत अपने उरूजपर थी । पर उसके जन्मके बारेमें और उसके प्रारम्भिक दिनोंके बारेमें इतना कुछ ज़रूर जानता हूँ कि जिन दिनों वह मेरे सामने बैठकर नये-पुराने खतोंको पढ़ती तो कितने खयालोंको अपने माथेमें भरके, मेरेमें-से अपने आपको देखती थी···उसकी माँ एक पोलिश डांसर थीं, और बाप हिन्दुस्तानी-बंगाली म्यूज़िशियन। कभी उसकी माँ हिन्दुस्तान आयी होगी, और उसके बापके साथ शादी करके हिन्दुस्तानमें ही रह गयी होगी, उन्होंने मिलकर कोई घर बनाया होगा, एक बच्चीको जन्म देकर उन्होंने मिलकर खिलाया होगा····पर जिन दिनोंकी मैं बात कर रहा हूँ उन दिनों उसका बाप हिन्दुस्तानमें था पर उसकी माँ वापिस पोलैण्ड चली गयी थी । कभी-कभी उसकी माँका खत आता था और उस खतको वह मेरे पास बैठकर कितनी-कितनी देर पढ़ती रहती थी । वे कई खत मैंने आँखोंसे देखे हैं । उन खतोंमें एक लम्बा खत मुझे बहुत याद है :

"मेरी कैनी !

तुझे जब भी खत लिखती हूँ तो लिखती हूँ 'मेरी कैनी' और यह लफ़्ज़ 'मेरी' लिखते हुए मैं हमेशा सोचमें डूब जाती हूँ । यह पोलैण्ड मेरे बचपनसे ही मुझे 'मेरा' लगा था फिर एक वक़्त आया जब हिन्दुस्तान, एक बिलकुल बेगाना देश, मुझे 'मेरा' लगने लगा और फिर वक़्त आया जब हिन्दुस्तान मेरे लिए 'मेरा' न रहा । मैंने सोचा था, हिन्दुस्तान न सही पर पोलैण्ड ज़रूर मेरे लिए 'मेरा' रहेगा । कितनी अजीब बात है कि उसे भी 'मेरा' कहनेके लिए मेरे अन्दर कुछ न रहा। इसलिए तुझे—जिसको चाहे मैंने अपने खून-मांसमें से जनमा है—जब 'मेरी' कहती हूँ तो सोचमें डूब जाती हूँ।····सोचती हूँ, इस दुनियामें अगर कुछ भी वह नहीं होता जिसको अपने जीते जी हमेशा 'मेरा' कहा जा सके तो कमसे कम अपना आप ज़रूर वह चीज़ होना चाहिए जिसे 'मेरा अपना आप' कहा जा सके। मुझे यह भी नसीब नहीं हुआ । यह जो मुझे थोड़ा भी नसीब हो जाता तो मैं कभी हिन्दुस्तानसे वापिस न आती, तुझे हमेशा अपनी आँखोंसे देख सकती पर जिसकी खातिर मेरा अपना आप मेरा नहीं रहा, उसे रोज़ इस-वहाँ, एक अजनबी, और अजनबी, फिर और अजनबी, होते देखे जाना मेरे लिए बड़ा मुश्किल था। पोलैण्ड वापस आ गयी हूँ, इसलिए नहीं कि यह मेरा है, सिर्फ़ इसलिए कि यह उससे दूर है । तूने कई बार मुझे लिखा है कि ज़िन्दगीमें दोबारा कुछ पानेकी आस क्यों नहीं करती ? मेरे पास अभी उम्र है, शक्ल है, हुनर है, शोहरत-पैसा सब कुछ है पर एक चीज़ बहुत खत्म हो गयी है कैनी ! मनकी ज़रूरत खत्म हो गयी है । तेरे बापने वहाँ कोई और औरत ढूँढ़ ली है । ठीक है, उसकी ज़रूरत बाक़ी होगी, पर मुझसे मेरी सारी ज़रूरत खरची

गयी है। एकबारगी खरची गयी है। मैं मजहबी खयालोंकी औरत नहीं। सिर्फ़ यही कह सकती हूँ कि मैं फ़िज़ूल-खर्च औरत थी— मनकी सारी दौलत एक ही बार खरच कर दी, कुछ भी पल्ले नहीं रखा। लोग कहते हैं कि मेंह-बूंदीके दिनोंके लिए कुछ बचाकर रखना चाहिए, पर क्या यह मेह-बूंदीके दिन सिर्फ़ इनसानकी आर्थिक हालतमें आते हैं? क्या यह मानसिक हालतमें नहीं आते? यह बड़े अजीब दिन होते हैं। जो कोई मेरी बात सुने तो मैं कहूंगी कि इन दिनोंके लिए कुछ अपना मन बचाके रखना चाहिए, मनकी धड़कन बचाकर रखनी चाहिए, और उस धड़कनको तीखा कर सकनेवाला इश्क़ बचाकर रखना चाहिए। इश्क़ नहीं तो इश्क़की उम्मीद ज़रूर बचाकर रखनी चाहिए। पर मैं किसीको क्या कह सकती हूँ— यह अपनी बात मैंने खुद ही नहीं सुनी

—तेरी बदनसीब माँ।"

मुझे पता है, कैनीने यह खत एक बार नहीं कई बार पढ़ा था और उसके मुंहके गुलाबी रंगमें जो रंग कई बार घुला था, वह अपनी मांके लिए तरसका रंग था, किसी गहरे रंगका दर्द नहीं था। और जवाबमें उसने जो खत लिखा था वह बड़ा सादा खत था, कि उसको अपनी मांका खत पूरी तरहसे समझमें नहीं आया था। जो हादसा उसकी मांकी ज़िन्दगीमें हुआ था वह हादसा उसकी ज़िन्दगीमें भी हुआ। उसने पिछले दिनों शादी की थी और शादीके बाद उसे पता चला था कि उसके खाविन्दको, उससे ज़्यादा दिलचस्पी किसी और औरतमें थी, और वह अपने खाविन्दसे अलग होकर रहने लगी थी। पर तब भी उसको अपनी मांका खत समझमें नहीं आया था। और कैनीने लिखा था कि उसके दिनके चैन और रातकी नींदमें इस हादसेका कोई दखल नहीं था। वह हंसती थी, गाती थी, और भारतीय नाचकी कला दिनोंदिन उसके अंगोंमें चमकती जा रही थी।

इस खतके जवाबमें कैनीको उसकी मांका जो खत आया था वह बड़ा छोटा-सा था। सिर्फ़ इतना कि उसकी मांको अपनी बेटीके मनकी हालतपर रश्क आ रहा था।

कैनी इस छोटे-से खतको अपने हाथमें लेकर कितनी देर तक मेरे सामने बैठी रही थी, फिर मुसकराकर उसने मेरी तरफ़—अपने पतले नक़्शोंवाले गोरे गुलाबी मुंहकी तरफ़—

> "... कभी ऐसा लगता है जैसे मेरे भीतर कहीं वह है—कुछ भारी-सा मेरे माथेमें पड़ा हुआ लगता है— ज़िन्दगीमें लोगोंसे वास्ता पड़ता है, रोज पड़ता है, और एक मशहूर नर्तकी हूँ, इसलिए आम औरतकी ज़िन्दगीसे मुझे कहीं ज़्यादा वास्ता लोगोंसे पड़ता है, पर इन लोगोंमें मुझे कभी कोई वह नहीं मिला जिसे देखकर मेरे मनका रंग जाग जाये। शायद मेरे भीतर कोई रंग नहीं मुझे सिर्फ़ इसका भुलावा है। ज़िन्दगीसे अघा गयी हूँ पर एक पीड़ाके लिए तरस गयी हूँ। माँ, जिस पीड़ाको झेलते तेरी उम्र टूट गयी है मैं उसी पीड़ाको तरस गयी हूँ। मेरी उम्र भी टूट रही है, पर अपने ही भारसे—जो कहीं यह किसी पीड़ासे टूट सकती..."

देखा था और फिर धीरेसे उसके होंठ फड़के थे—"मैं शायद अपनी माँपर नहीं गयी। अपनी माँवाला मन मुझे विरासतमें नहीं मिला।"

मैं कह चुका हूँ कि मैंने कैनीको जब देखा था, उसे जवानी भरपूर चढ़ चुकी थी और उसकी कलाकी शोहरत अपने उरूजपर थी। इसलिए यह एक दिनकी बात नहीं रोजकी बात है—मैं देखता था कि दिनमें कोई बीस खत कैनीको आते थे, उसके हुनरकी, उसके हुस्नकी तारीफ़से भरे हुए। पर जिस सुस्ती और बेदिलीसे कैनी इन खतोंको पढ़ती थी वह मुझे पता है। कुछ खत स्याहीकी जगह खूनसे लिखे होते थे, और मुझे याद है, कैनी खूनकी रंगतसे घबराकर अपनी आँखोंपर हाथ रखकर बैठ जाती थी। कैनी अकसर खतोंके जवाब नहीं देती थी, पर कुछ ऐसे संजीदा क़िस्मके खत भी होते थे कि कैनी जिनके जवाबमें मीठा-सा शुक्रिया-भर लिख देती थी।

और फिर सालों बाद मैंने कैनीके चेहरेपर एक फ़रक़ देखा। बरसोंसे मैं कैनीको एक ही जैसे रंगमें देखता आया था। नाचका दो घण्टेका रियाज वह मेरे सामने करती थी, और फिर मैंने देखा वह मेरे सामने खड़ी-खड़ी सोचमें पड़ने लगी थी। जैसे रियाज करतीके अंगोंको एक थकावट-सी हो जाती थी। शायद थकावट नहीं उकताहट-सी हो जाती थी। एक दिन मुझे पता चल गया कि वह क्या सोचती थी—उसने मेरे सामने खड़े होकर कितनी देर अपनी आँखोंमें देखा....मैं यह कहना भूल गया हूँ कि उसकी आँखें बहुत खूबसूरत थीं....बड़ी मोटी और काली बंगाली आँखें ..और फिर एक गहरी सांस लेकर अपनी माँको वह खत लिखने लग गयी। खत लिखकर लिफ़ाफ़ेमें डालनेकी जगह उसने वह खत सामने रख लिया, और पास पड़े हुए गद्देका सहारा लेकर वह कितनी देर अपने लिखे हुए खतको पढ़ती रही—"माँ, कभी तूने मुझे लिखा था कि तुझे मुझसे रश्क आता है, आज मैं तुम्हें लिख रही हूँ कि मुझे तुझसे रश्क आता है। एक अजीब-सी उकताहट सीलनकी तरह मुझे चढ़ रही है। मेरे कमरेमें एक लाल रंगका क़ालीन बिछा हुआ है....गहरे लाल रंगका....और मुझे लगता है, मेरे खयालोंका सारा रंग मेरे माथेसे उतरकर मेरे होठोंसे उतरकर, मेरे मनसे उतरकर, और फिर उतरता-उतरता, मेरे पैरोंमें-से उतरता, बिलकुल मेरे पैरोंके नीचे आ गया है, रोज मेरे पैरोंसे मसला जा रहा है। मेरी उम्र मुझे मटमैली लगने लगी है—बाहरसे दिखनेवाली उम्र नहीं, पर अन्दरसे कहीं.... और खोये हुए रंगके साथ ही इसके अर्थ भी खो गये लगते हैं। माँ! क्या यह रंग सचमुच खो गया है? या गहरा कहीं सो गया है? कभी ऐसा लगता है जैसे मेरे भीतर कहीं वह है—कुछ भारी-सा मेरे माथेमें पड़ा हुआ लगता है—जिन्दगीमें लोगोंसे वास्ता पड़ता है, रोज पड़ता है, और एक मशहूर नर्तकी हूँ, इसलिए आम औरतकी जिन्दगीसे मुझे कहीं ज्यादा वास्ता लोगोंसे पड़ता है, पर इन लोगोंमें मुझे कभी कोई वह नहीं मिला जिसे

देखकर मेरे मनका रंग जाग जाये। शायद मेरे भीतर कोई रंग नहीं, मुझे सिर्फ़ इसका भुलावा है। जिन्दगीसे अघा गयी हूँ पर एक पीड़ाके लिए तरस गयी हूँ। माँ, जिस पीड़ाको झेलते तेरी उम्र टूट गयी है मैं उसी पीड़ाको तरस गयी हूँ। मेरी उम्र भी टूट रही है, पर अपने ही भारसे—जो कहीं यह किसी पीड़ासे टूट सकती....."

इस खतके जवाबमें कैनीको उसकी माँका जो खत आया, वह बहुत छोटा था पर बहुत बड़े सहमसे भरा हुआ। लिखा था—"कैनी, मैंने जिन्दगीमें कभी किसी खुदाके आगे दुआ नहीं की। तेरा खत पढ़कर मैं दुआ कर रही हूँ कि आज जो तक़दीर तू अपने मुँहसे माँग रही है कहीं यह तक़दीर तुझे मिल न जाये।"

यह खत पढ़कर कैनीका मुँह देखते ही बनता था। बड़ा मासूम पर जिन्दगीकी प्यास-से बिलखता....और उसने जल्दीसे मेरे सामने खड़ी होकर, अपना मुँह मुझमें दिखते अपने माथेसे जोड़कर कहा, "खुदाया मेरी दुआ सुनना, मेरी माँकी नहीं!"

उस दिन मैंने कैनीका जो बच्चोंकी तरह भोला मुँह देखा, मुझे पता नहीं था कि वह मुँह देखना मुझे फिर कभी नसीब नहीं होगा। यह इस तरह था जैसे किसी बच्चेने आगकी लाल लपटें देखकर उसकी तरफ़ दोनों बाँहें पसार दी हों, और फिर खुदाने लाड़से आगकी लाल लपटें उस बच्चेके हाथोंमें पकड़ा दी हों।

एक दिन जब कैनी सोकर उठी और बाहरके कमरेमें आयी, वहाँ जहाँ मैं था, मेरे सामने खड़ी होकर उसने अपनी उनींदी आँखोंको देखा, उसकी आँखें मिची-मिची थीं—लगता था कि वह रात अच्छी तरह नहीं सोयी थी, और दिखता था कि रात उसकी नींदमें जिस मुँहके खयालने खलल डाला था वह वही था जो कल रातको उसने पहली बार देखा था। कल शामको नाचसे वापिस आते हुए जो व्यक्ति उसे घर तक छोड़ने आ गया था, वह कुछ देर अन्दर आकर इस कमरेमें बैठा था, इसलिए मैंने भी देखा था। यहाँसे एक बार उठकर वह बाहर रसोईमें गया था और पानीके दो गिलास लाकर वह आप पीने लग गया था और एक उसने बड़ी बे-तकल्लुफ़ीसे कैनीके आगे रख दिया था। घर कैनीका था, पानी कैनीको पूछना चाहिए था, लाना भी चाहिए था। पर कैनीकी जगह जब उसने—बाहरसे आये ने—पानीका गिलास लाकर कैनीके सामने रख दिया तो कैनी कुछ परेशान-सी उसकी ओर देखने लग गयी। वह बिलकुल परेशान नहीं था, बल्कि उसने पानीका गिलास रखते हुए कहा था, "मुझे प्यास लगी हुई थी, इसलिए मैंने सोचा कि आपको भी प्यास लगी होगी।" कैनीने कुछ नहीं कहा। पानी पी लिया था। पर जब वह चला गया तो कैनी फिर परेशान-सी हो गयी थी। फिर वह अन्दर सोनेके लिए चली गयी। जब सुबह उठकर आयी तो उसकी आँखोंमें रातकी उखड़ी नींदकी स्याही थी। वह मेरे सामने खड़ी अपनी आँखोंको देखती रही, फिर उसने आप ही रातवाले लफ़्ज़ोंको होंठोंमें दोहराया—"...मुझे प्यास लगी हुई थी, मैंने सोचा कि आपको भी प्यास लगी होगी।" एक बार कैनीके

माथेपर हलके-से बल पड़े—जैसे वह सोच रही हो, उसकी प्यासके साथ अपनी प्यासको जोड़नेवाला वह कौन था ? पर फिर वह मुसकरा दी, । उसके होठ नहीं, उसके माथेके तेवर मुसकरा दिये । और फिर जो बात रातको उसने जवाबमें नहीं कही थी, अब अकेली खड़ी कहने लगी—"तुझे जब भी प्यास लगेगी, तू पानीका गिलास पियेगा, तो क्या हर बार तुझे याद आयेगा कि मुझे भी प्यास लगी होगी ?"

उसके बाद वह कई बार कैनीसे मिलने आया । पहले दिन मुझे उसका नाम-पता नहीं चला था, पर दूसरे दिन चल गया था, क्योंकि दासीने जब अन्दर आकर कहा कि कोई जावेद साहब मिलने आये हैं, तो मेरे पास बैठे, कोई किताब पढ़ रही कैनी चौंक गयी थी । और फिर अन्दर आनेवाला वही था जिसे मैंने पहले दिन देखा था । दो दिन नहीं गुज़रे कि मैंने उसे फिर देखा, और फिर देखा । कैनी जब एक बार अकेली मेरे सामने खड़ी हुई तो उसके चेहरेपर चढ़ते-उतरते रंगको देखकर मेरा माथा ठनका । शायद उसका भी ठनका होगा । मैं हैरान था, कैनी हैरान थी, कि आज तक उसने अपने किसी वाक़िफ़को अपने घर आनेकी छूट नहीं दी थी, पर यह कोई कैसा था जिसके सामने उससे कोई उज्र नहीं किया गया ।

और फिर उस दिन माथा और ठनका जिस दिन उसने कैनीको बताया कि वह पन्द्रह दिनके लिए शहरसे बाहर जा रहा है, और उसके जानेके बाद कैनी बेचैन होकर आनेवाले दिनोंको उँगलियोंपर गिनने लग गयी थी । "माइ गॉड, इट हैज़ हैपण्ड !" कैनीने मेरे सामने खड़े होकर एक बार कहा और फिर हैरान-सी होकर हँस दी । उसकी हँसी उस शहदकी तरह थी जिसकी मिठासमें शहदकी मक्खीका डंक भी मिला हुआ था ।

"ओह कैनी…………!" पता नहीं मैंने कहा कि उसने, उसके होठ बिलकुल मेरे साथ सटे हुए थे, अपने ही होंठोंको छूकर देख रहे थे; शायद अपने होठोंपर किसीके होठोंकी छुअनको अपनी कल्पनामें उतार रहे थे…… वह अभी बाहरसे आयी थी, वह उसे छोड़कर गया था……यह बीते साल इन्हीं दिनोंकी बात है । उसने बाहरसे आकर, कमरेका दरवाज़ा भिड़काते हुए, जो सबसे पहली बात की थी, वह मेरे सामने खड़े होकर, अपने आपको देखा था, अपने आपको आवाज़ दी थी, और फिर दुलारसे अपने होठोंको अपने ही होठोंसे छुआकर एक सरूरमें आँखें बन्द कर ली थीं !

अपने आपको आप ही आवाज़ देनेकी आदत उसे उसी दिन पड़ी थी । उसके अगले तीन सौ पैंसठ दिनोंमें उसने कोई तीन हज़ार पैंसठ बार अपने आपको आवाज़ें दी होंगी—ऐसे, जैसे उसका अपना आप उससे बिछुड़ रहा हो, पराया होता जा रहा हो, और इस पराये होते अपने आपको वह कभी चैनसे देखती थी कभी बेचैनोंसे ।

एक दिन उसने बड़े खौलते गुस्सेसे अपने इस 'अपने आपको' देखा । पहली शाम वह आया था । और कैनीने उससे माँग की थी कि

वह अपने दफ़्तरमें अब उस सेक्रेटरी लड़कीको न रखे, जिसके साथ पहले कभी उसका सुन रहा था। और कैनीने बड़ी नरमीसे उसे कहा था कि उसके मिलनेसे पहले उसका जो कुछ भी किसी लड़कीसे कुछ था, उसका कोई उलाहना वह उसे कभी नहीं देगी, पर अब उन्हें किसी बीते हुए को खामख्वाह याद दिलाने वाली कोई चीज़ सामने नहीं रखनी चाहिए थी। उसने कैनीकी बात रखी नहीं और कहा कि उस लड़कीके बिना उसके दफ़्तरका काम नहीं चलेगा। उसके सामने नहीं, पर उसके जानेके बाद कैनी बहुत रोयी थी। उस रात वह दूसरे कमरेमें अपने पलंगपर सोनेके लिए नहीं गयी। बाहर क़ालीनपर औंधी पड़ी वह सो गयी थी। सुबह उठकर उसने दासीसे कहा था कि आज किसीका भी फ़ोन आये, वह उसे बुलानेके लिए भीतर न आये। फ़ोन बाहर बरामदेमें था। पर दोपहर बाद वह आप ही दरवाज़ेके पास खड़ी किसी फ़ोनकी आवाज़का इन्तज़ार करने लगी थी—यह वह दिन था जब शामको उसने बड़े खौलते ग़ुस्सेसे मेरे सामने खड़े होकर अपने आपको देखा। उस दिन अपनेसे वह बड़ी ग़ुस्सा थी।

उसका वह ग़ुस्सा तीसरे दिन उतर गया। वह आया और उसने आते ही कैनीको बताया कि आज उसने अपने दफ़्तरकी सेक्रेटरीको दो महीनेकी पेशगी तनख्वाह देकर छोड़ दिया था, और आगेके लिए उसने कैनीसे यह भी इक़रार किया कि वह कोई लड़की-सेक्रेटरी अपने दफ़्तरमें नहीं रखेगा।

पर ग़ुस्सा शायद बारीका बुखार था, अजीब-सी बारीका बुख़ार, अब वह कैनीको नहीं जावेदको चढ़ गया। बात यह हुई कि कैनीको इंगलैण्डको एक क्लबने पन्द्रह दिनके लिए इंगलैण्ड आनेका बुलावा दिया था। कैनीके लिए हिन्दुस्तानसे बाहर जानेका यह पहला मौक़ा था और कैनी खुश थी। कुछ उसे यह भी उम्मीद थी कि वह इंगलैण्डसे आसानीसे पोलैण्ड जा सकेगी और अपनी मांसे मिल सकेगी। पर जब कैनीने पासपोर्टके लिए अपना फ़ॉर्म भरा तो फ़ॉर्मकी पूर्ति के लिए उसमें अपने खाविन्दका नाम भी लिखना पड़ा। चाहे वह बरसोंसे अकेली रह रही थी, पर उसने तलाक़ अभी तक नहीं लिया था, इसलिए इस फ़ॉर्मकी पूर्तिके लिए उसका नाम उसमें लिखना पड़ा था, जिसके साथ कभी उसका ब्याह हुआ था। और जावेदने जब वह फ़ॉर्म पढ़ा तो फ़ॉर्ममें उसका नाम देखकर वह बौखला पड़ा—"मैं यह नाम बिलकुल बरदाश्त नहीं कर सकता" और उसने ग़ुस्सेमें आकर वह फ़ॉर्म फाड़ दिया।

कैनी और फ़ॉर्म ला सकती थी, पर उसने कुछ नहीं किया। कैनीके पैर एक बड़ी नाज़ुक जगह आकर खड़े हो गये थे। उसे पता था कि अगर वह जावेदकी ग़ैरहाज़िरीमें और फ़ॉर्म लायेगी, भरेगी, और पासपोर्ट बनवाकर इंगलैण्ड चली जायेगी तो जावेदको वह हमेशाके लिए खो देगी। वह सोचमें पड़ी थी, और मैं देखता था कि एक घड़ी वह जावेदको खोनेका हौसला इकट्ठा करती थी तो दूसरी घड़ी रेतके महलकी

तरह वह हौसला टूट जाता था ।

वह इंगलैण्ड नहीं गयी । जावेद अब खुश था । पर खुशीको अब जैसे रूठनेकी आदत पड़ गयी थी । कभी जावेद भी इस रूठी हुई खुशीको मनाता था, पर बहुत बार यह कैनीको मनानी पड़ती थी । और फिर होते-होते यह बात जैसे सिर्फ़ कैनीके लिए रह गयी । बाहरले दरवाज़े तक और बाहरली सड़क तक दौड़ते, और रूठकर जाते जावेदको मनाकर लाते हुए मैंने कैनीको कई बार देखा । एक दिन कैनी रोये जा रही थी, इतना कि वह पाससे उठकर जाते हुए जावेदको कुछ न कह सकी । जावेद चला गया । कैनी रोते-रोते भी उसके लौटते पैरोंकी आहटका इन्तजार करती रही—शायद वह सोचती थी कि जावेद उसे इस तरह रोते हुए छोड़कर नहीं जा सकेगा, लौट आयेगा, बाहरली सड़कसे लौट आयेगा ।

पर जावेद नहीं आया । कैनीको वह रात उम्रपर भारी होती लगी । यह शायद वह रात थी जब कैनीका अपना आप अपनी ही नज़रों में हलका पड़ गया था । और फिर वह हलका पड़ता गया—दूसरे दिन जब उसने जावेदको फ़ोन करनेकी पहल की, और फिर जब वह आया, उसने हँसकर कल रातकी बात टाल दी और कैनीने वह बात टल जाने दी । और फिर उसने जावेदको मनानेका और कोई मौक़ा कभी न खोया, और फिर····और फिर ···।

इस तीन सौ पैंसठ दिनोंमें कैनीने कोई तीन हज़ार पैंसठ बार मेरे सामने खड़े होकर कैनीको आवाज़ें दीं—''ओह कैनी····!'' वह कभी बेचैनीसे आवाज़ देती थी, कभी तरससे, कभी प्यारसे, कभी नफ़रतसे ।

इन दिनों कैनीने अपनी मांको कई खत लिखे, पर कोई खत डाकमें नहीं डाला । जिस घड़ी वह खत लिखती, अगली घड़ी उसके मनका मौसम बदल जाता और वह खत उसे बेमायने लगने लगता । मौसम मनके बसमें नहीं था, मन मौसमके बसमें था ।

जावेद उसे खुश मिलता, वह खुश हो जाती । जावेद उसे उदास मिलता, वह उदास हो जाती । एक तारकी तरह वह कसी रहती, कांपती रहती ! जावेदका जी चाहता, वह इस तारमें-से सोया गीत जगा लेता, जावेदके जीमें आता, वह इस तारमें-से बिलखते स्वर निकाल लेता ।

कैनीको जावेदसे कोई उलाहना नहीं था । उसने कैनीको वह खुशी दी थी जो कैनीको कोई नहीं दे सका था । उसने कैनीको वह दर्द दिया था जो कैनीको कोई नहीं दे सका था । उलाहना कैनीको अपनेसे था कि उसने अपनी खुशीपर और अपने दर्दपर अपना कोई भी हक़ नहीं रखा था । वह खुशीको मणिकी तरह सँभालती, सांपकी तरह अकेली बैठकर उसके साथ खेलती, पर अगर जावेद आ जाता—वह चाहता तो उसी मणिको एक पलमें कौड़ीकी तरह बना देता । उस उदासीको वह एक शाही पोशाककी तरह गलेमें डाल लेती, पर जावेद यदि चाहता, तो वह इस पोशाकको उतार देती ।

कैनीको स्केचिंगका शौक़ था, एक बार

उसने एक बड़ी खूबसूरत कॉपीपर जावेदका स्कैच बनाया, दिखाया, जावेदको अच्छा लगा तो दूसरे सफ़ेपर जावेदने अपनी पेंसिलसे कैनीका स्कैच बना दिया। जावेदकी ड्राइंग कैनीसे भी अच्छी थी। फिर इस कॉपीपर उन्होंने कितनी ही बार स्केच बनाये। एक बार पाँच दिनोंके लिए पहाड़पर गये थे, वहाँ उन्होंने पहाड़ी झरनोंके कई स्केच बनाये, फ़िर अपनी पसन्दकी नज़्में उन्होंने चुनीं और उस कॉपीमें लिखीं। इस कापीको वह अपनी बेटी कहते थे। इसका नाम उन्होंने अतिया रखा हुआ था। इस अतियाको वह प्यारसे आती बुलाते थे और क़िस्मतवाली इन खुशघड़ियोंमें जावेद कैनीको 'आती-माँ' कहके बुलाता था और कैनी जावेदको 'आती-पा' कहके।

उदास रातोंमें कैनीको एक सपना आता था। एक दिन उसने मेरे पास बैठके जावेदको बताया कि वह जब उदास होती थी तो रातको सपनेमें उनकी बेटी मर जाती थी—आतीका वरक़-वरक़ फट जाता था....जैसे उनकी बेटीका अंग-अंग कट जाता था।

खुशीको रोज़-रोज़ रूठनेकी आदत पड़ गयी थी, कैनीको रोज़-रोज़ मनानेकी। पर एक दिन ऐसा आ गया कि कैनी उसको मनाते-मनाते आप ही रूठ गयी। किसीसे नहीं, अपने आपसे। जावेदके पास इन दिनों कोई उसकी दूरके रिश्तेकी भाभी आकर रहने लगी थी। जावेदके इस भाई और उस भाभीको तलाक़ लिये कई बरस हो चुके थे। वह भाभी कैनीको अच्छी नहीं लगी थी। एक बार जावेद उसे कैनीके घर लाया था। और इस भाभीने एक अजीब अन्दाज़में जावेदकी तारीफ़ करते हुए उसे कहा था, "योअर स्माइल इज़ हांटिंग।" और उस दिन उसने कैनीके घरमें ही कैनीको नज़र-अन्दाज़ कर दिया था। कैनीको अगर कोई दावा था तो अपने जावेदसे, उसे किसी तीसरेसे कोई शिकवा नहीं था। और कैनी उस दिन इस बातसे ज़ख़्मी-सी हो गयी थी कि जावेदको इस भाभीके किसी रवैयेसे कोई शिकायत नहीं थी—और यही भाभी अब जावेदके पास रहनेके लिए आयी थी।

"उसने मुझे क्यों न बताया....मेरेसे यह बात काहेको छुपा ली?" कैनीका पुराना ज़ख्म खुल गया, क्योंकि आज अचानक उसे यह बात जावेदके नौकरसे पता चली थी। और फिर जब कैनीने जावेदको फ़ोन किया तो उसने हँसकर कैनीको झिड़क दिया—"ऐसे ही ना बोला कर...यह मैंने तुम्हें इसलिए नहीं बताया था कि तुम्हें खामख्वाह तकलीफ़ होगी!"

"ऐसे ही ना बोला कर...." कैनीने मेरे सामने खड़े होकर कई बार यह लफ़्ज़ अपनेको कहे। उसकी आँखें भर-भर आती थीं और ये लफ़्ज़ उसके होठोंमें सिसक रहे थे—"कैनी, मैं यह तुझे कह रही हूँ....तुझे! तू सुनती क्यों नहीं मेरी बात....तू ऐसे ही बोले जाती है...." और फिर कैनी अपनेको चुप कराते-कराते बावरी हो गयी। जावेद वहाँ नहीं था पर वह कमरेमें खड़ी जावेदसे बातें करने लगी—"तू समझता क्यों नहीं?

क्या मैं ऐसे ही बोल रही हूँ ? क्या किसीको ऐसे ही दर्द होता है ? छातीसे रोना ऐसे ही उठता है ? तू मेरेसे अच्छी तरह नहीं बोलता, मेरी आधी जान निकल जाती है, क्या किसीकी आधी जान ऐसे ही निकल जाती है ?....''

और बावरी हुई कैनीसे चुप नहीं रहा गया। उसने फिर जावेदको फ़ोन किया। उसकी आवाज आँसुओंमें डूबी हुई थी। जावेदको उसकी आँसुओंसे गीली आवाज़ सुनकर हमेशा ही गुस्सा चढ़ आता था, आज भी चढ़ गया और उसने एक लफ़्ज़ कहकर फ़ोन बन्द कर दिया।

यह लफ़्ज़ कैनीके कानोंमें पड़ा नहीं, कानोंमें चुभ गया। कैनीने घबराकर दोनों हाथ कानोंपर रख लिये। और फिर बिलखकर मेरे सामने आ खड़ी हुई। उसकी आँखोंमें ख़ूनके लाल डोरे पड़ गये थे, इन आँखोंसे वह अपनी आँखोंमें देखती चीख उठी—''शट अप''शट अप''''कैनी, शट अप''''!''

यह जावेदका कहा हुआ लफ़्ज़ था। कैनीने हुक्मकी तरह मान लिया। और कैनीने फ़ैसला कर लिया कि वह जावेदसे इतनी दूर चली जायेगी जितनी दूरसे जावेदतक कभी उसकी आवाज़ नहीं आ सकेगी। वह अपनी माँके पास चली जायेगी।

मुझे पता है, मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, कैनीने मेरे पास बैठकर माँको खत लिखा कि मैं बहुत जल्दी पोलैण्ड आ रही हूँ, और फिर हमेशा वहीं रहूँगी। कैनीने यह खत लिफ़ाफ़ेमें डाला, मेरे सामने टिकट लगायी और फिर दासीको बुलाकर यह खत डाकमें डालनेके लिए दे दिया।

कैनीके पैर उस धरतीसे नाता तोड़ चुके थे जिस धरतीपर खड़े होकर उसकी आवाज़ जावेद तक जा सकती थी। वह जल्दीसे पासपोर्टके दफ़्तर गयी और वहाँसे फ़ार्म लाकर उसने मेरे पास बैठकर मेरे सामने भर दिया।

पोलैण्ड पहुँचनेका रास्ता बहुत लम्बा था, पर कैनीके पैर उतावले हो गये थे, ठहरते नहीं थे। रात हो रही थी, और जैसे-जैसे रातका अँधेरा बढ़ रहा था, कैनीकी बेचैनी बढ़ रही थी—''जानेमें बहुत दिन लग जायेंगे''''बहुत दिन''''इतने दिन तू चुप रह सकेगी ?'' और कैनीने खौफ़ज़दा होकर कैनीको देखा—''मुझे डर लगता है, तू चुप नहीं रहेगी''''तू'''' ज़िद्दी-ज़लील कैनी!'' और कैनीको ज़लील कहते हुए कैनी फूटकर रो पड़ी।

एक कैनी वह थी जो हमेशा के लिए चुप रहने को तैयार थी, एक कैनी वह थी जो शायद कभी नहीं चुप हो सकती थी। एक कैनी वह थी जिसके पैर धरतीके इस टुकड़ेसे बहुत दूर चले जाना चाहते थे, एक कैनी वह थी जिसके पैर इसी जगहपर अड़कर खड़े थे। एक कैनी वह थी जिसका सिर मानसे ऊँचा था, और वह इस मानपर-से सारी दुनियाकी दौलत वार सकती थी, एक कैनी वह थी जिसका सिर महबूबकी दहलीज़पर झुका हुआ था, और वह मुहब्बतके एक कण के लिए भी झोली पसारकर खड़ी हो

सकती थी !

कैनीको जाना था, ज़रूर जाना था। जो कुछ भी उसकी राहमें खड़ा था उसे लाँघकर जाना था—उसे अपनेको लांघकर जाना था।

कैनी रास्तेसे हटती नहीं थी इसलिए कैनीने शाम होते ही घरके सब दरवाज़े बन्द कर लिये। पोलैण्डसे माँकी भेजी हुई कौनिआककी बोतल निकाली, एक-एक घूँट-को इस तरह पिया जैसे वह माँसे बातें कर रही थी। यह कौनिआक उसने दो गिलासोंमें डाली थी—एक गिलास अपने हिस्सेका और एक माँके हिस्सेका। वह बारी-बारीसे घूँट भरती रही। नींदकी गोलियाँ आज उसके पास सिर्फ़ दो थीं। और फिर कैनीने झूमकर मेरी ओर देखा ··· कैनीकी ओर देखा। मुसकरायी और फिर कहने लगी, "तू मेरी राहमें नहीं ठहर सकती····हट जा परे···· मूर्ख!

और फिर उसने कमरेमें पड़ी हुई 'अतिया'का एक-एक वरक़ फाड़ा—'आती-माँ'ने अपनी बच्चीका एक-एक अंग चूमा—"तुझे यतीम हो जाना था आती ! मेरे पीछे····" उसने कहा और फिर मुसकरा दी, और फिर कमरेमें रखी हुई गैसको खोलकर वह सो गयी।

■

"भरत नाट्यम्की मशहूर नर्तकी कैनी ताराने कल रात आत्महत्या कर ली !"—अख़बारोंमें यह खबर छपी है। पर बावजूद पुलिसकी पूरी तहक़ीक़ातके और डॉक्टरोंकी पूरी-रिपोर्टके, मैं कह सकता हूँ कि यह खबर ग़लत है। कैनीने कभी मरना नहीं चाहा, हमेशा जीना चाहा है। कैनीको पोलैण्ड जाना था पर जानेमें देर लगती थी इसलिए वह किसी और देशमें चली गयी है। और इश्क़में दीवानी हुई एक मूर्ख कैनी उसके रास्तेमें बैठी हुई थी, उसने मुश्किलसे उसे राहसे हटाया है।

■ ■

के २५, हौज ख़ास,
नयी दिल्ली-१६

परिवर्तित निवेदन :

१. ज्ञानोदयके लिए नयी रचनाओंका स्वागत है लेकिन अस्वीकृति-की सूचना देना सम्भव नहीं है। केवल वे अस्वीकृत रचनाएँ हम लौटा देते हैं जिनके साथ पता-लिखा, टिकट-लगा लिफ़ाफ़ा हो।

२. अनामन्त्रित रचनाओंके निर्णयमें एक मास लग जाता है फिर भी जो रचना ज्ञानोदयके लिए भेजें, कृपया वह हमारे उत्तर तक कहीं और न भेजें।

—सम्पादक

१९६६ के हिन्दी उपन्यास : शीर्षकहीन चर्चा-१

—गंगाप्रसाद विमल

उपन्यास और कविताकी तुलनाकी पद्धति चाहे जितनी पुरानी पड़ गयी हो, वह एक तर्कका आधार बनकर दोनों विधाओंके विकासके बारेमें जाननेकी सुविधा अवश्य देती है। हिन्दी उपन्यास कविता और कहानीकी तुलनामें काफ़ी पिछड़ा हुआ है—इस बारेमें मतभेदकी गुंजायश कम है। इसके बहुत-से कारणोंमें उपन्यासके रचनाकर्ममें उस बड़े अनुभवकी कमी भी एक कारण है। कविता और कहानीमें रचनाकारके लिए उपन्यासकी तरह एक विस्तृत 'फलक'-पर काम करनेकी आवश्यकता चाहे नहीं होती है फिर भी कविता और कहानी उस बड़े अनुभवको अपनी शैलीगत सांकेतिकतासे संग्रथित कर देनेमें सक्षम रही है। यही एक कारण था कि स्वतन्त्रताके बादवाले वर्षोंमें प्रयोगका क्षेत्र कहानी और कविता बन गयी, उपन्यास अपनी समग्र प्रयोगात्मकतासे विलग होकर केवल आकारगत भेदके कारण ही विधा-संज्ञासे जुड़ा रहा है।

पिछले वर्ष प्रकाशकीय आँकड़ोंके अनुसार बिकने और न बिकने वाले कोई ११७ उपन्यास प्रकाशित हुए। हमने उनमें-से १२ उपन्यास चुने हैं समीक्षाके लिए। समीक्षकको पूरी छूट थी कि हिन्दी उपन्यासोंपर वे अपनी रुचिसे निष्पक्ष तथा तटस्थ अथवा पूर्वग्रहीत और इन्वाल्ड विवेचन प्रस्तुत कर सकें। अब तक विश्वविद्यालयीन पाठ्य समीक्षाके अलावा हिन्दी उपन्यासपर डॉ० इन्द्रनाथ मदानकी एक पुस्तक उपलब्ध थी जो अब अधूरी पड़ गयी है। लग सकता है कि यह लेख भी अधूरा है···फिर अगले वर्षकी प्रतीक्षा। — सं०

यह एक विचित्र विरोधाभास है कि व्यवसाय और लोकप्रियताके ध्रुवान्त दोनों उपन्यासके विकासके लिए अनुकूल और संवाहक तत्त्व होते हुए भी, कविता और कहानीके क्षेत्रमें ज़्यादा उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अनुभवके नये लोकोंका अन्वेषण, प्रयोगधर्मी गुणोंकी व्यापकता

और अपनी रूढ़िसे प्रयाण करनेकी प्रवृत्ति उपन्यासकी तुलनामें कहानीमें ज़्यादा आयी है। प्रयोगात्मक प्रवृत्तिके व्यापक प्रचारने जहाँ कविता (नयी कविता) को अपनी ही रूढ़ियोंका शिकार होनेके लिए विवश किया है वहाँ कहानीने प्रयोगस्तरपर रचनाके सामान्य स्तरका आभास दिया है तथा प्रत्येक रचना उस स्तरसे अलग हटकर अपनी पहचानकी कोशिश देती है जबकि उपन्यासमें स्वातन्त्र्योत्तर भावबोध और पुरानी रूढ़ियोंका अनुगमन ही अधिक दीखता है। अबतक हम उपन्यास-रचनामें इस शिथिलताके लिए जिस कारणको सबसे महत् मानते रहे हैं और यह कहते रहे हैं कि उपन्यासमें जो रचनात्मक प्रतिभा, एकाग्रता आदि चाहिए उसका अभाव है, वस्तुतः यह कारण और तर्क उपन्यासकी विधागत पारिभाषिक कठिनाइयोंको न जाननेके कारण प्रस्तुत किये गये हैं। यह कहा जाये कि ऐसे तर्कोंका उपन्यासके सिलसिलेमें कोई सम्बन्ध नहीं है—ग़लत न होगा। दरअसल, उपन्यास-विधाकी इस प्रवृत्तिको चिन्ता उस ढंगसे व्यक्त नहीं की जानी चाहिए, जिसके अनुसार हम उपन्यासको एक खास मूल्य (मूल्य-मानक) विधिसे जोड़नेका प्रयत्न करना चाहते हैं। जिस विकसित कविताकी हमने आरम्भमें चर्चा की उसकी वर्तमान स्थिति देखें तो ज्ञात होगा कि उपन्यासके शास्त्रीय ठहरावकी तरह ही वहाँ रूढ़िके अनुगमनका स्थैर्य आ गया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि कुछ वर्ष उपन्यास-रचनामें जड़ता आ जाती है और कुछ वर्ष कवितामें—क्योंकि यह आधार एकदम बेमानी और तर्कहीन है।

उपन्यासका जिस रूपमें विकास हुआ है (जिस रूपमें वह लिखा जा रहा है) उसकी तुलनाकी सुविधा हिन्दी कवितामें उतनी आसानीसे चाहे मिल जाती हो जितनी कि विश्व-उपन्यासोंकी तुलना-द्वारा मिल सकती है किन्तु इस प्रसंगमें उपन्यासको जाननेके लिए उपन्यास-रचनाके अन्य क्षितिजोंके विकासके बारेमें जानना ज़्यादा संगत होगा। परन्तु हम उपन्यासको इस तुलनामें विश्वके अन्य उपन्यासोंकी गणना नहीं करेंगे क्योंकि तब बातचीत हिन्दीके बजाय दूसरे केन्द्रोंपर टिक जानेका सन्देह है। एक अरसा पहले हमारे यहाँ पश्चिमी उपन्यासोंकी रचना-विधिकी अनेक चर्चाएँ होती थीं, सौभाग्यसे अब वे चर्चाएँ कृतिकारोंके हाथसे हटकर विश्वविद्यालयोंमें चली गयी हैं। वे चर्चाएँ उपन्यासके विकासको जाननेकी ऐतिहासिक दृष्टि बन सकती थीं किन्तु उनमें उपन्यासकी शैलीकी ही चर्चा ज़्यादा होती रही है और कतिपय समीक्षकोंने हिन्दीके उपन्यासोंमें भी उन गुणोंकी उपस्थिति देखनेकी कोशिश की थी। उक्त आधारपर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी उपन्यास सम्बन्धी चर्चाएँ केवल बाहरी चर्चाएँ रही हैं, उनसे उपन्यासके रचनात्मक विकासपर प्रभाव कम पड़ा है। जिस समय पश्चिमी उपन्यासोंमें जेम्स ज्वायस, हेमिंग्वे, रोमारोलाँ, वर्जीनिया वुल्फ़की कृतियोंके बारेमें गम्भीर रूपमें सोचा जाता था। उस समय भारतीय उपन्यास-क्षितिजमें नारेबाज़ी, आरम्भिक प्रयोग और अन्य तरहके

अनर्गलोंको ही ज़्यादा चर्चित समझा जाता था। दरअसल, उस समय 'औपन्यासिक चेतना'-में उस तरहकी बाधाएँ नहीं थीं जिस तरहकी हम आज पाते हैं, वे बाधाएँ निषेधोंसे जन्म लेकर अन्य समस्याओंमें अपना हिस्सा पा लेती थीं। यह साफ़ है कि उस समय हिन्दी उपन्यास किसी भ्रमात्मक जादुई तिलिस्मकी उलझनोंसे ग्रस्त नहीं था। उन्हें सिर्फ़ पिछड़ेपनके मनोव्यूहसे पीड़ित मान सकते हैं, वह भी समीक्षाके ही सन्दर्भमें, क्योंकि समीक्षा उपन्यासको विधागत परिवर्तनसे नहीं शैलीगत महानताके सन्देहसे उन उपन्यासोंकी तुलनाके लिए प्रस्तुत कर रही थी जिन उपन्यासोंके 'जीवन-संसार' अपने ही विचित्र संघर्षोंका चित्रण नहीं करते थे बल्कि सर्व-सामान्य मानवीय चेतना जिनका आधार बनती थी।

उपन्यासोंकी चर्चामें इस तरहकी भूमिकाकी अनिवार्यताकी बात किये बग़ैर उस पूरी बातको समझा नहीं जा सकता, जिसकी अपेक्षा ही विधाको उसकी पूर्ण संगतिमें प्रस्तुत करती है। अर्थात् चाहे उपन्यासके विकासके सम्बन्धमें 'तर्कहीन' प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत नहीं की जा सकतीं, तब भी उस 'अपेक्षा', उस 'भाव' से पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता जो उपन्यास-जैसी रचनाको 'रचना' का 'मान' दिलाती है। 'मान' या 'मानदण्ड'-जैसे स्तरीय परिमापकी अनिवार्यता सरलीकरणके रूपमें नहीं लिया जाना चाहिए, बल्कि हम तो यह भी मानकर चलते हैं कि प्रत्येक उपन्यास अपनी प्रकृतिके अनुसार अपने लिए नया मानक बनाता है—बशर्ते वह उपन्यास-जैसी कोई सम्भावना या 'भ्रम' न होकर औपन्यासिक कृति हो। इस सिलसिलेमें एक सवाल यह भी उठ सकता है कि 'उपन्यास-रचना' को यह जड़ता क्या उन्हीं अनुकूल तत्त्वों, यानी व्यवसाय और लोकप्रियताकी अधिक अपेक्षाओं (केवल अपेक्षाओं) की वजह नहीं है? क्योंकि जब हम यह कहते हैं कि 'उपन्यास' कम लिखा जा रहा है तो क्या यह नहीं है कि उस तरहका उपन्यास कम लिखा जा रहा है जिसे 'व्यवसाय' और 'लोकप्रियता' की अनुकूलता मिलनेपर भी 'उपन्यास' नहीं माना जा सकता? इस प्रश्नका यही उत्तर है कि 'लोकप्रियता' के नामपर जो उपन्यास लिखा जा रहा है वह अनुभवहीन कहानीका ही एक रोमाण्टिक या फ़ार्मूलाबद्ध रूपान्तर है। वह उपन्यास नहीं है। लेकिन अगर इससे यह ध्वनि निकलती हो कि अधिकांश उपन्यास 'प्रयोगात्मक' लिखे जा रहे हैं तो यह भ्रान्ति भी दूर हो जानी चाहिए। इसके बारेमें पहले ही कहा जा चुका है कि उपन्यास 'प्रयोग' स्तरपर नहीं रचा जा रहा है। 'लोकप्रियता' के आवरणमें जहाँ उपन्यास अपने स्तरको खो रहा है, साहित्यिक या स्तरीय उपन्यास होनेकी कोशिशोंमें वह उपन्यास और लोकप्रियताके प्रयोगोंको भी खो रहा है। उपन्यासकी यह विचित्र स्थिति इसलिए उपन्यासोंके कम रचे जानेकी वजहसे नहीं है बल्कि जिस तरहका उपन्यास लिखा जा रहा है, उसकी वजहसे है। एक हास्यास्पद तर्क और दिया जाता है, तथा उसे समाजशास्त्रीय कारकके रूपमें स्थापित भी किया जाता है कि 'उपन्यास-रचना' में समय

ज्यादा लगता है, कहानीमें कम—इसीलिए उपन्यासोंकी बजाय रचनाकार कहानी लिखनेकी ओर झुक रहा है। यह अलग सवाल है कि कहानियाँ भी कैसी लिखी जा रही हैं? किन्तु यह साफ़ है कि कहानी और उपन्यासकी कोई ऐसी होड़ या उनके आकर्षणके बिन्दु इस तरह नहीं बदलते हैं। यह एकदम ग़लत है कि उपन्यासकी बजाय कोई लेखक 'समय बचाने' के लिए कहानी लिखे या लिखनेकी इच्छा रखता हो। उपन्यासोंका न लिखा जाना साफ़-सा 'अनुभव' का अभाव है, भाषाके मुहावरेका अभाव है और रचनात्मक वातावरणका अभाव है। पिछले अनेक वर्षोंसे उपन्यास-रचनाके सामने यह स्थिति 'चुनौती'के रूपमें खड़ी है, पर रचनात्मक स्तरपर हर चुनौतीसे सामना करनेकी कोशिश बहुत कम हुई है। चुनौती रचनात्मकताके हर स्तरपर सामने रहती है किन्तु संघर्षहीन अनुभवोंके लिए वह चुनौती 'दुरारूढ़ बिम्बके समान प्रतीत होती है।

एक उपदेशककी तरह या ऐसी अपेक्षा रखनेवालोंकी तरह, (जिनकी निजी रुचियाँ खास तरहके आग्रहोंसे परिपुष्ट होती हैं) सोचा जाये तो उपन्यास और कथा या अन्य विधाओंकी रचनाकी अलग-अलग समस्याएँ हैं। इन समस्याओंके समझनेके पश्चात् ही सम्भव है, उपन्यासकी रचनात्मकतामें गति आ सकती है किन्तु इस तरहसे सोचना एकदम अर्थहीन है। अर्थात् 'रचनाकी समस्याओं' का पता तब चल सकता है जब उन समस्याओंकी कोई तसवीर 'रचना'में (हो जानेपर उसमें) मिले। इसलिए यहाँ हमारा आग्रह यह है कि उपन्यास-रचनाकी समग्र जड़ताको जिन-जिन कोणोंसे देखनेकी कोशिश की गयी है, उनको 'दृष्टि-दोष' का 'स्वीकार' हमें कर लेना चाहिए क्योंकि सही मायनोंमें उपन्यास (सही उपन्यास) को रचना वस्तुतः गम्भीर औपन्यासिक दृष्टिके साथ-साथ उस महत् अनुभव (महान् अनुभव नहीं अपितु साधारणत्वमें-से निसृत असाधारणत्व वाला अनुभव) का भी अभाव है जो रचना-विधाओंको अपना अलग रूप या आकार देनेमें सहायक होता है।

हिन्दी उपन्यासका एक मामूली सर्वेक्षण किया जाये और उसकी इस अल्पायुकी रचनात्मकताकी जाँच की जाये तो पता चलेगा कि प्रेमचन्दके 'गोदान'के बाद उसकी रचना-रूढ़ियोंको तोड़नेवाली कोई सशक्त रचना अभी तक नहीं आयी है, चाहे 'मनोवैज्ञानिक शिल्प' का आधार लेकर अनेक लेखकोंने कुछ अलग क़िस्मके उपन्यास ज़रूर दिये हैं। यशपालका 'झूठा सच' और अमृतलाल नागरका 'बूँद और समुद्र' भी प्रेमचन्द-परम्पराका ही पिष्टपेषण है, ये उपन्यास प्रेमचन्दका विकास भी नहीं हैं। मनोविज्ञानका आधार लेनेवाले उपन्यासकारोंमें जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशीका नाम लिया जाता रहा है। यह विचित्र सत्य है कि जैनेन्द्रके उपन्यास अनुभवकी समग्रताकी दृष्टिसे छोटे जान पड़ते हैं और इलाचन्द्र जोशीके उपन्यास मनोवैज्ञानिक परिभाषाओंपर घटित आयास सिद्ध कथाएँ हैं। इन दो उपन्यासकारोंके समानान्तर जिन नये उपन्यासकारोंने उपन्यास लिखे भी हैं वे इधर-उधरके प्रभावोंसे मुक्त नहीं रहे हैं। 'प्रभावित' होना उतना बुरा

नहीं है, बल्कि वह रचनात्मक स्तरपर अनेक नये सन्दर्भोंके बारेमें विचारणाकी शक्ति देता है किन्तु 'प्रभाव' के आग्रहोंपर जम जानेके बाद खुलने (एम्पोज) के खोखलेपनसे जुड़ जाने पर वह 'रचना' अपनी विधागत विशेषता खो बैठती है। उपन्यासका इतिहास ८०–९० वर्षोंका इतिहास है—ऐसा सामान्यतः माना जाता है। परन्तु साहित्यके इतिहासकी दृष्टिसे उपन्यासका इतिहास ५०–६० वर्ष पुराना ही है। इन ५०-६० वर्षोंमें हिन्दी उपन्यास आजादीकी लड़ाई, विश्वयुद्ध, कोरिया-स्वेज-वियतनाम, भुखमरी-अकाल, और राजनैतिक अशान्ति-चक्रसे गुज़रा है, पर कहीं भी वह तीव्र पीड़ा इन उपन्यासोंमें नहीं दिखाई दी जो युद्धोत्तर जापानी उपन्यासोंमें या युरॅपीय उपन्यासोंमें झलकती है। इससे साफ़-साफ़ यह ज़ाहिर होता है कि हिन्दीका पूरा-पूरा रचनात्मक धरातल बहुत ऊपरी, बनावटी, अन्तर्विरोधोंसे युक्त एकदम खोखला है। हिन्दी उपन्यासका पूरा ऐतिहासिक सर्वेक्षण 'परम्परा' न जाननेवालेके लिए 'सेवासदन' से शुरू हो सकता है, विश्वविद्यालय-स्तरके ज्ञान रखनेवाले के लिए वह परम्परा काव्य-कथाओंसे शुरू होकर इन्शाअल्ला खाँमें परिपुष्ट होती है तथा बादके वर्षोंमें उसे नयी गति मिलती है—परन्तु 'इतिहास'की ये दो परम्पराएँ ही उस 'खोखलेपन' से परिचित करा देती हैं जो यह बताती हैं कि हमारे पूरे 'रचनात्मक धरातल'-पर विचार करनेके लिए हमारी कोई इतिहास-दृष्टि ही विकसित नहीं हुई। यह एक क्रूर सचाई है कि समीक्षा-दृष्टि या इतिहास-दृष्टि भी 'रचनात्मक सम्पन्नता'के पश्चात् ही विकसित होती है। हमारे उपन्यासके अविकसित होनेका एक छोटा-सा कारण इतिहास-दृष्टिके अविकसित होनेका नहीं है बल्कि सही मायनोंमें उस नये बोधसे आत्मीय न होनेका है जिसने पहले विश्वयुद्धके बाद ही पश्चिमी क्षितिजोंको अतीतके उस कोहरेसे बाहर कर दिया था, मध्यकालीनताके उस मोहक अतीतसे मुक्त कर दिया था। हमारे उपन्यासोंमें उपकरण, संज्ञाएँ, भाषा और सामाजिक व्यवहारके कुछ फ़ैशनोंमें तो नयापन मिल सकता है किन्तु जीवन-बोधके स्तरपर वहाँ वैसी ही 'मध्यकालीनता' साफ़-साफ़ झलकती है जैसी पिछली शताब्दीकी रचनाओंमें बिना किसी आवरणके झलकती थी।

'संवेदना'के आधारपर पिछड़ी ये रचनाएँ, जिन्हें सुविधाके लिए उपन्यास कहा गया है, आकार-भेदमें केवल कहानियाँ या साहित्यिक निबन्ध या संस्मरण हैं, बल्कि वे मध्यकालीन भाव-बोधकी नयी संवाहिकाएँ भी हैं। मध्यकालीन बोधका यह 'रूपान्तरण' न केवल उपन्यासमें बल्कि अन्य विधाओंमें भी देखा जा सकता है किन्तु उपन्यासको इस सन्दर्भमें ज्यादा सुविधासे देखा जा सकता है। उपन्यासमें 'विस्तार' और एक गलत तर्कको सिद्ध करनेकी पूरी गुंजायश रहती है, इसके साथ ही कृत्रिम अनुभव-जगत्-द्वारा हम उस अयथार्थको यथार्थके आवरणमें प्रस्तुत कर देते हैं जिसकी प्रयोजनबद्धता मूल्योंकी रक्षा'या पुराने मूल्योंके ही रूपान्तरणमें स्पष्ट हो जाती है।

हिन्दीमें 'नये उपन्यास' की कुछ चर्चा की गयी है। उस चर्चाको अपने 'स्थापन' की कोशिश सहजमें ही नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः ऐसी चर्चाका साहित्यिक राजनीतिसे सम्बन्ध है। यह विचित्र लक्षण अब स्पष्ट होता जा रहा है कि क्यों प्रेमचन्दकी 'साहित्यिक सन्तानों' को पुनर्स्थापित किया जाता है और क्यों एक अलग तरीकेका वर्ग या शिविर बनाया जाता है? उस शिविरमें चाहे फणीश्वर नाथ रेणुकी रचनाओंको नागार्जुनकी रचनाओंकी परम्परासे हटाकर अलग साबित किया जा रहा हो या कतिपय नये लेखकोंको उन शिविरोंमें दीक्षित किया जा रहा हो—उस साहित्यिक राजनीतिके अंग हैं जिसमें रचनात्मकताके गुण ख़त्म हो गये हैं, और जो अपने स्थापनके लिए पुनः प्रयत्नशील है।

साहित्यिक राजनीति ही 'नये उपन्यास'की वैचारिक चर्चाके लिए भूमि बना रही है, यह इन वर्षोंके उपन्यास और उसके बारेमें किये गये दावोंसे आसानीसे समझमें आ जाता है। इस सिलसिलेमें एक सचाई यह है कि उस पुराने लेखक-द्वारा नया उपन्यास शायद नहीं लिखा जायेगा जिसने कथा-रचनाकी एक विशेष रूढ़ि बना ली है। वह लेखक चाहे १९३० से लिख रहा हो या उसने १९४३ में लिखना शुरू किया हो। अभी तो नये लेखकने भी एक-दो अपवादोंको छोड़कर कोई ऐसी कृति नहीं दी है जिससे 'नये उपन्यास' की गम्भीर चर्चाकी आवश्यकता महसूस हो। राजनैतिक स्तरपर, जैसा हम संकेत दे चुके हैं, ऐसे प्रयत्न हुए हैं किन्तु वे प्रयत्न 'लेखनकी मजबूरी' सिद्ध करते हैं। उनके पीछे न तो चमत्कृत करनेकी साहसिक प्रवृत्ति है और न आधुनिक बोधको समझने या आधुनिकताकी चुनौतीका सामना करनेकी शक्ति। वस्तुतः ऐसी चर्चाएँ अपने स्थापनके साथ-साथ 'गरिमामण्डित' हो जानेके रोमाण्टिक आग्रहसे बँधी हुई हैं। दूसरे शब्दोंमें इन्हें 'मध्यकालीन मनोवृत्ति' के पुनर्स्थापनका प्रयास कहा जाना चाहिए। इस 'प्रवृत्ति' को यदि पूरी गहराईसे जाननेकी कोशिश की जाये तो कहा जा सकता है कि ये उन 'लेखकोंका गठबन्धन' है जो सचमुच नयेके लिए किसी-क़िस्मका वातावरण बनानेका अवसर नहीं देते। इसीलिए हिन्दी कहानी, कविता और उपन्यासमें 'नये' को बुरी तरह अस्वीकारने और उसके थोड़े-से छद्म' को बड़ी बनावटके रूपमें देखनेकी आदत चल पड़ी है। यह आकस्मिक नहीं कि ऐसा एकदम हो गया हो बल्कि अप्रतिबद्ध और अवसरवादी रचनाकारोंकी मनोकांक्षाओंका यह 'मंच' व्यवस्थित और नियोजित कहा जा सकता है। 'साहित्यिक राजनीति' के इस पक्षके सिलसिलेमें बातचीत करनेका हमारा प्रयोजन सिर्फ़ यह है कि यह 'प्रवृत्ति' रचनाके सही मूल्यांकनमें अवरोध ही उपस्थित नहीं करती बल्कि अपने स्वार्थोंकी परितृप्तिके लिए, अपनी ही व्यवस्थाकी अराजकता फैला देती है। नवलेखनके पिछले पन्द्रह वर्षोंका इतिहास 'रचना' की भूमिका नहीं है बल्कि वह ज्यादा उस अराजकताकी भूमिका है जिसे तोड़ना आजके

विद्रोही लेखकके लिए अनिवार्य हो सकता है किन्तु वह उस 'छद्म' को इसलिए नहीं तोड़ पाता कि उसमें उसकी आस्था नहीं है ।

आजके उपन्यासमें यदि इस तरहकी राजनीतिका भी खोखलापन दिखाया जाता तो हम मानते कि 'रचनाकार' ने किसी एक पक्षसे जीवनका वह 'संगत' अनुभव लिया है जिसकी 'विसंगति' हमारे पूरे 'मूल-संस्कार'-को झकझोरती है । इसीलिए जब हम 'राजनीति' की बात करते हैं तो हमारा 'प्रयोजन' यह भी होता है कि ग़लत ढंगसे 'आजके उपन्यास' को लेकर उन नामोंको चर्चा ही न की जाये जो प्रेमचन्दकी परम्पराओंका अनुगमन करते हैं और जिन (कुछेक) के लिए छायावादी कवि प्रसादका रोमाण्टिक संसार आज भी जीवित है । ऐसे रचनाकार प्रेमचन्द और प्रसादके 'शिखर' स्तरको भी नहीं छू पाये हैं, ये उन्हीं बनी-बनायी धारणाओं और रूढ़ियोंका अनुगमन करते रहते हैं ।

स्वाधीनताके बादके उपन्यासमें जिस 'लोक'का चित्र मिलता है, उसकी संगति हमारे दृश्य संसारसे थोड़ी-बहुत रहती है किन्तु वहाँ रचनाकारमें वह कलात्मक सुघड़ता और अनुभवको विश्वसनीय बनानेके निमित्त चुने गये झूठे सन्दर्भोंमें शक्ति-(सम्प्रेष्य शक्ति) का अभाव मिलता है । इसीलिए 'झूठा सच' अनुभवकी सचाई और दृश्य संसारकी संगति होते हुए भी कल्पनात्मक सुघड़ता नहीं है । आजके लेखक निर्मल वर्माके उपन्यास 'वे दिन'में कलात्मक सुघड़ता तो अवश्य है, अनुभवका एक नया आलोक भी वहाँ मिलता है किन्तु वहाँ 'विश्वसनीयता' की वह निकटता नहीं है, वहाँ रोमाण्टिक जंजाल पर्याप्त हैं किन्तु संवेदनाके धरातलपर 'यथार्थ'का आभास नहीं है, इसलिए 'वे दिन'को उपन्यास कहनेपर भी सन्देह हो सकता है । यह अलग बात है कि 'वे दिन' या इसी तरह लिखे गये अनेक उपन्यास 'छोटे उपन्यास' कहे जाते हैं और उनमें सम्भावनाओंकी आशाप्रद चर्चा भी की जाती है परन्तु यहाँ उपन्यासके छोटे या बड़े होनेका सवाल नहीं है, सवाल उपन्यासके उपन्यास होनेका है ।

समीक्षकोंने उपन्यासकी चर्चाओंमें अनेक 'परिभाषाओं'के द्वारा 'उपन्यास' की वह समग्रता पकड़नी चाही है जिसे केवल संवेदनाके स्तरपर ही समझा जा सकता है । दरअसल, इसी ग़लत 'एप्रोच' के कारण 'उपन्यास' की परिभाषाएँ तो बहुत की गयी हैं किन्तु 'उपन्यास' में 'जीवनदृष्टि', समसामयिकता और संवेदनापर कोई बात नहीं की गयी । 'उपन्यास'की चर्चाओंमें पिछले वर्षों 'यथार्थ' पर काफ़ी बात की गयी है । 'यथार्थ'की इस चर्चामें 'बलचनमा', 'बूँद और समुद्र' 'उखड़े हुए लोग', 'उसका बचपन', 'झूठा-सच', 'क़िस्से ऊपर क़िस्सा', 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'अँधेरे बन्द कमरे', 'यह पथ बन्धु था' और 'वे दिन' पर काफ़ी कुछ कहा गया है किन्तु उपन्यासमें यथार्थ शर्त 'दिखाने और कहने' (प्रस्तुताकरण) मात्रकी नहीं होती । उपन्यासको यथार्थवादी होना

चाहिए, उसमें विश्वसनीयताका भ्रम होना चाहिए, किन्तु लेखक जब कभी एक अयथार्थ (अनरीयल) संसारके 'अनुभव' को देना चाहता है तब वह बहुत ही आसानीसे अपने 'जीवन बोध' को संवेदनात्मक स्तरपर एक आड़के रूपमें देनेकी कोशिश करता है। हमारे उक्त चर्चित उपन्यासोंमें दृश्य संसारकी सचाई बहुत ही सपाट रूपमें उभरकर सामने आती है। यह सम्प्रेषणकी दृष्टिसे गुण भी हो सकता है किन्तु दूसरी तरहसे यह कलात्मक प्रयोगोंकी अक्षमताका ही पर्याय है। सचाई है कि 'कलात्मक प्रयोगों'-द्वारा अपने समयकी निकटताको (आत्मीयता) विशेष संगतिमें देखा जा सकता है। अर्थात् संवेदना 'सामयिक बोध' के समानान्तर चलकर केवल 'काल चेतना' की उपस्थिति-द्वारा नयेका बोध नहीं देती अपितु 'आधुनिकता' के सन्दर्भमें 'संघर्ष' की उस भूमिकासे परिचित कराती है, जो विभाजक रेखाके रूपमें पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाक्रमको अलग-अलग कर देती है। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि 'यह पथ बन्धु था' और 'झूठा सच' या बूँद और समुद्र'में संवेदनाके स्तरपर बहुत कम फ़र्क है। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि 'झूठा सच' और 'बूँद और समुद्र' में चुनौतीका धरातल समष्टिगत है और 'यह पथ बन्धु था' में उस संघर्षकी एक हलकी दिशा व्यष्टिगत है। उपन्यास-रचनामें वैचारिक शिल्पगत और कथापन सम्बन्धी इस एकरसताको तोड़नेका जो भी प्रयास किया गया है वह फिर धीरे-धीरे उसी पुरानी 'रूढ़ि' का ही अनुकर्ता बनकर रह जाता है। अनुभूतिके स्तरपर, जीवनकी प्रामाणिकतासे आबद्ध उपन्यास 'बलचनमा'में लेखकीय उपस्थिति सदैव एक बाधा बन जाती है। परन्तु 'उखड़े हुए लोग' 'किस्से ऊपर किस्सा' और 'उसका बचपन' में यह अतिरिक्त प्रयोगात्मक आग्रहोंके कारण स्वयं अपनी रचनात्मकताकी बाधा बनकर रह गयी है। एक लेखक 'काल्पनिक जगत्' का निर्माण करता हुआ भी उस उपन्यासकी पूरी परिकल्पनामें अपने समयके ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदिके प्रभावोंसे अलग रहकर केवल 'काल्पनिक जगत्' पर ही निर्भर नहीं करता अपितु वह इस विरोधमें ही 'उपन्यास' को तमाम आधुनिक जीवनके संस्पर्शोंसे आधुनिक बनाये रखनेकी कोशिश करता है। यहाँ ये बातें कहते हुए हमारा मन्तव्य 'चाहिए शैली' में बात करके किसी तरह उपदेश देना नहीं है बल्कि पूरे हिन्दी उपन्यासके सन्दर्भमें ये बातें भी की जा सकती हैं, इसकी अनिवार्यता जान पड़ती है।

• 'अमृत और विष'

अपने समयके सारे अनर्गलसे भरा पड़ा एक उपन्यास है—'अमृत और विष'। 'अमृत और विष' नागरजीके 'बूंद और समुद्र' से आगेकी कड़ी नहीं कही जा सकती। बल्कि यह कहा जा सकता है कि 'बूंद और समुद्र' की तरह ही उस समयकी धारणाओंकी पुष्टि आजके समयमें 'अमृत और विष' करता है। अमृतलाल नागरका रचना-संसार 'मध्य वर्ग'

का दृश्य संसार है, 'मध्य वर्ग' की 'जो' 'जैसी' हालत नागरजीने जिस 'भ्रम' के साथ 'अमृत और विष' में चित्रित की है, वह जल्दबाज़ीके निर्णयोंके समान प्रतीत होती है। यह कहना कि अमृतलाल नागरके इस उपन्यासमें 'मध्यमवर्ग'का जो पतनशील खाका खींचा गया है, वह भारतीय राजनीतिके परिणामोंका संसार है, नितान्त अव्यावहारिक होगा क्योंकि जिस 'यथार्थ' की तसवीर इन सन्दर्भोंमें अमृतलाल नागर दिखाना चाहते हैं, उसी तसवीरको बरसों पहले एक अलग सन्दर्भवृत्तमें प्रेमचन्द अपने उपन्यासोंमें दिखा चुके थे। 'मध्यम वर्ग'के जिस विराट् परिवर्तनका भ्रम इस उपन्यासकी 'भागमभाग' में महसूस होता है, वह सारा परिवर्तन न जमे-जमाये समाजका परिवर्तन है और न किसी खोखले समाजका। दरअसल, सारा उपन्यास अपनी घटनात्मक तीव्रताके कारण और लेखकीय कौशलके कारण बहुत जल्दीसे बीतता प्रतीत होता है। 'अमृत और विष'में आज़ादीके बादकी भारतकी तसवीर है, परन्तु अगर वैचारिक पृष्ठभूमिपर देखा जाये तो यह तसवीर आज़ादीके बादके भारतकी होती हुई भी अपने अतीतकी समस्याओंसे कटी हुई नहीं है।

अमृत और विष' 'नया उपन्यास' नहीं है। १९६६ में आनेपर भी वह नया उपन्यास नहीं है क्योंकि उसमें 'कथा-प्रसंग' पुराने उपन्यासोंकी तरह उभरते हैं। कथा कहनेकी इस प्रवृत्तिको धर्मवीर भारतीने 'असामान्य' और 'साहसिक' माना है किन्तु इसमें 'कहने'-भरका कौशल बेशक नया हो, 'कथ्य'का नियोजन बहुत सपाट है। एक साथ ही तीन-चार कथाएँ पटरियोंपर भागती नज़र आती हैं और विलक्षण तथ्य यह है कि वे कथाएँ संयोगात्मक रूपसे समानान्तर चलती हैं। लेखक 'रचना-प्रक्रिया'के दौरान अपनी कथाके साथ-साथ लिखनेके लिए 'विवश' दूसरी कथाका सृजन करता है—अपने और जीवनके आसपासके उस अर्थहीन खोखलेपनको शब्दों-द्वारा उजागर करनेकी चेष्टा करता है। परन्तु 'बूँद और समुद्र'की तरह कथाके पूरे 'वैयक्तिक प्रतीक'में धारणागत अर्थ ज़्यादा खुलता है, उसमें वह 'क्रियात्मकता' कम है जो शब्दोंसे अलग, बिलकुल एक दूसरे ही धरातलपर सामान्य कथासे 'भाव-कथा'को गति देती है। देखा जाये तो एक साथ चलनेवाली कई कथाएँ 'लेखकका निजी जीवन' और 'सृजन'के बीच दो कथाओंका भ्रम ही मुख्यत: छोड़ती हैं किन्तु उनमें-से न तो 'वाचक'की कथामें वह 'अन्तर्भाव' उभरता है और न उस सपाट कथामें, जो समसामयिक जीवनके विविध प्रसंगोंसे जुड़ी हुई है। 'वाचक' (नैरेटर) की कथामें 'विश्वसनीयता' बराबर बनी रहती है, दूसरी कथामें (तमाम अन्तर्कथाओंमें भी) वातावरण, भूगोल, नाम-संज्ञाएँ, राजनैतिक इतिहास और असन्तोषका सारा क्रियाकलाप भी 'विश्वसनीयता'के भ्रमको बनाये रखता है किन्तु एक बात साफ़ हो जाती है कि अपने प्रतीक-द्वारा रचनाकार दोनों 'कथाओं'को एक आरोपित सत्यके ही

निकट लाता है, उसमें विश्वसनीय अन्तरंगता शायद उस रूपमें नहीं मिलती जिसकी अपेक्षा की जा सकती है।

कथा या आत्मकथात्मक संयोगोंके इस 'वृहत्काय' कथावृत्तमें घटनाक्रम कलात्मक दृष्टिसे उलझा हुआ नहीं है। कलात्मक उलझाव शैलीगत वैशिष्ट्यको जन्म देता है किन्तु जब उलझाव 'सपाट' प्रतीत हो तब वह 'कथात्मक' शैथिल्यका बोधक बन जाता है। फिर भी कथा कहनेकी 'असामान्यता'में वह शैथिल्य अधिकांश स्थलोंपर पीछे छूट जाता है क्योंकि 'अमृत और विष'में घटनाक्रम अतीत और वर्तमानके सन्तुलनपर इस तरह टिका है कि उसके बिना वह अपना 'प्रभाव' नहीं छोड़ पाता अर्थात् ऐसा लग सकता है कि 'अमृत और विष'का प्रभाव 'वर्तमान'से एकदम 'अतीत'की वे संगतियाँ ढूँढ़ लाना है जिनमें 'वर्तमान' जीवनका अमृत-बीज छिपा है। रमेश बक्षीने अपने पत्रमें (जो ज्ञानोदयमें प्रकाशित हुआ है) अरविन्द शंकर (लेखक) की इस आत्मकथाके साथ-साथ चलनेवाली संयोग-कथाओंको अरविन्द शंकरके मनका प्रोजेक्शन (प्रक्षेपण) माना है। अरविन्द शंकर जहाँतक रमेश-रानी वृत्तसे सम्बन्धित सारी कथाओंके वर्तमानके समानान्तर चलता है, वहाँतक वह सारा अपने मनका ही प्रक्षेपण है किन्तु जहाँ वह पूरे वंशानुक्रमका इतिहास प्रस्तुत करता है, वहाँ अरविन्द शंकरके लेखकका प्रयोजन साफ़-साफ़ झलक आता है।

अरविन्द शंकरकी कथा और उसके परिवारके प्रसंगवृत्तोंको छोड़ दिया जाये तो शेष कथाएँ दृश्य संसारकी वे कथाएँ लगती हैं, जिनके बीचसे हमारे आजका खोखलापन, झाँकता है। रमेश-रानी, लच्छू आदिके प्रसंगोंमें जिस तीव्र 'कर्मठता'का परिचय मिलता है वहाँ भँगेड़ी पुत्तुगुरुकी ऊब, लालसाहबकी मानसिक थकान आदि हमारे वर्तमानकी वे तसवीरें हैं जो समसामयिक सन्दर्भोंसे अपने कालदोष या स्वभावके कारण कटी हुई लगती हैं किन्तु जब इन्हींकी वैचारिक आवृत्ति दूसरे क्षेत्रोंमें होती है तब वे समसामयिक जीवन-सन्दर्भोंसे जुड़ी हुई लगती हैं। कहा जा सकता है, नागरजीने बड़ी कुशलतासे उस 'यथार्थ'को 'कलाका यथार्थ' बनानेका नियोजन किया है, जो एकदम काल्पनिक लग सकता था या जिसे 'पत्रकारिता'की कतरनोंके समान सच माना जा सकता था। कलाका यह यथार्थ 'समसामयिक' जीवन-सन्दर्भोंको अतीतसे काटकर ज्यादा नजदीक ला देता है। परन्तु इतना होनेपर भी समसामयिक जीवन-सन्दर्भोंका यह चुनाव 'अमृत और वृष' को कलात्मक दृष्टिसे बहुत पुष्ट माननेका आधार नहीं बन सकता। कलात्मक सुघड़ता और सौन्दर्य-अनुभूतिको दृष्टिका यदि विवेचन किया जाये तो हम पायेंगे कि 'अमृत और विष' में सौन्दर्य-अनुभूति बनाम पेज भरनेकी क़लम-दौड़की प्रतियोगिताके लक्षण हैं। इसीलिए जब हम यह कहते हैं कि 'समसामयिक जीवन-सन्दर्भों'के प्रति अरविन्द शंकर वाचकने-भी (या अरविन्द शंकरके रचना-मस्तिष्कने) उचित रूपसे 'चुनाव'-दृष्टि नहीं

रखी है तब हमारा मन्तव्य उस 'अनर्गल'से असहमति प्रकट करना है जिसके आधारपर 'अमृत और विष' बड़ा उपन्यास लग सकता है। वह 'महान्'की प्रक्षिप्त धारणाओंका आभास दे सकता है किन्तु वह 'यथार्थ'की उन शर्तोंको पूरा नहीं करता जिससे एक उपन्यास अपनी विधागत संज्ञाकी सुरक्षा करता है। मूलघटनाके चारों ओर जो कुछ घटता है उसे धर्मवीर भारतीने 'आवेगमय' माना है—(धर्मयुग २७ नवम्बर १९६६), वस्तुतः यह आवेग कथामें अनुभवकी तीव्रता-का उतना नहीं है जितना कि 'घटनाओं'का आसानीसे बड़े स्तरपर फैल जाना है। क्या अमृतलाल नागरपर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने 'यथार्थ'के रूपमें सम-सामयिक जीवन-घटनाओंकी उन्हीं प्रति-क्रियाओंको नहीं लिया है जो 'जीवन-संघर्ष' को छोटे स्तरपर दिखाती हैं? जीवन-संघर्ष या संघर्षकी वह तीव्रता तब छोटी पड़ जाती है जब 'राजनैतिक और साम्प्रदायिक शक्तियाँ' निरन्तर उसकी उपेक्षा करती हैं। यथार्थकी जगह 'यथावत्'को लेनेकी इस प्रवृत्तिने 'पीढ़ियोंके संघर्ष'को-भी उसी स्तरसे कमज़ोर बना दिया है।

'अमृत और विष'में सबसे प्रामाणिक अनुभव उस 'राजनैतिक चक्र'से सम्बन्धित प्रसंगमें हैं जो एक ओर सारी विद्रूपताके लिए उत्तरदायी है तो दूसरी ओर सुधारवादी निर्माण-धारणासे बुरी तरह जकड़ा हुआ है। डॉ० आत्मारामका पत्र—साम्राज्य ऊपरसे जो संघर्ष करता है वह अपने पूरे तन्त्रके 'व्यक्तियों'में एक दूसरे स्तरके संघर्षका भी संयोग जुटाता है। 'सेक्स'को जिस रूपमें 'लेखक'ने उक्त 'तन्त्र'के 'व्यक्तियों' (कुछ व्यक्तियों) के जीवनसे जोड़ा है, वह रोचक लग सकता है किन्तु वह कलात्मक बिलकुल नहीं है। कलात्मकसे हमारा तात्पर्य उसकी महानता, गरिमा या इसी तरहकी धारणासे नहीं है किन्तु उसमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे लेखक किसी सचाईसे पलायन कर रहा हो। 'अमृत और विष'में शीर्षकके प्रतीकको लिया जाये तो दोनों स्थितियाँ अपने इस अप्रतीक (अमृत और विष) की धारणागत प्रतीतियाँ बन जाती हैं। अरविन्द शंकर अमृत और विषके इस अप्रतीकका एकमात्र यथार्थ है क्योंकि जीवनकी जिस पीड़ासे वह पीड़ित है, उससे छुटकारा दिलानेवाली अनेक स्थितियां उसमें उदार मानवतावादी भाव भर देते हैं। दरअसल, यहीं अरविन्द शंकरकी झूठी लड़ाई या झूठा पीड़न (सफ़रिंग) साफ़-साफ़ दिखाई पड़ता है, बल्कि कहीं-कहीं तो लगता है जैसे तटस्थ होकर अरविन्द शंकर इन सारी स्थितियोंको 'उपहासास्पद' समझता होगा क्योंकि जीवनके प्रति 'निस्संगता'की जो सहमति मिलती है उससे संघर्ष क्षीण जान पड़ता है। अगर लेखक अरविन्द शंकरके रचना-मस्तिष्क और द्रष्टामें इस तरहकी 'निस्संगता' को 'परिवेश'का प्रभाव चित्रित करना चाहता है तब अमृत और विष'में सिर्फ़ शीर्षकका 'अप्रतीक' ही शेष रह जाता है किन्तु अरविन्द शंकर हेमिंग्वेके मछुआरेके प्रतीक और बछड़ेके प्रतीकके साथ उस

अप्रतीककी तुलनामें ज़्यादा जुड़ा है।

'अमृत और विष' बड़ा उपन्यास है, उसकी प्रत्येक कथाकी अन्तर्धाराएँ अपने आपमें 'यथावत्' का चित्र होती हुई भी 'भारतीय जीवन'के वर्तमानका (अतीतसे जुड़े हुए वर्तमानका) यथार्थ भी हैं। धर्मवीर भारतीने 'अमृत और विष' को पिछले उपन्यासोंसे प्रयाण मानते हुए कहा है : "प्रेमचन्द-कालका उपन्यास एक आश्रम स्थापित कर अपने लक्ष्यकी पूर्ति कर लेता था, बादके कुछ उपन्यासकार अपने अहम्‌के मनोवैज्ञानिक प्रक्षेपणमें और कुछ उपन्यासकार सामूहिक सामाजिक चेतनाके जागरण और जन-क्रान्तिकी भूमिका तैयार करनेके लक्ष्यमें पूर्ति मान लेते थे। नागरजीका यह उपन्यास वहाँसे शुरू होता है जहाँ डॉ० आत्माराम आश्रम स्थापित कर चुके हैं....इस प्रकार हर सम्भावित समाधानपर प्रश्नचिह्न लगाकर ही उपन्यास एक नये धरातलपर अपनी खोज शुरू करता है।" परन्तु 'अमृत और विष' कहीं भी उपन्यास-रचनाका कोई नया प्रयास नहीं लगता। केवल आश्रम या समाधानके बादसे शुरू करनेपर अमृतलाल नागर भी अपनी सामाजिक सुधारवादी दृष्टिसे मुक्त नहीं हुए हैं। उपन्यासका समग्र प्रभाव सामाजिक स्तरपर किसी तरहकी क्रान्तिका नहीं है, न किसी तरहके पीढ़ियोंके संघर्षका ही है बल्कि वह हर स्तरपर 'नयी पीढ़ी'को अस्वीकारने और उसे अराजकतावादी विरोधाभासोंसे परिपूर्ण बनानेका है। अरविन्द शंकर 'रानी'के प्रति जिस तरहकी 'सहानुभूति' प्रक्षेपित करता है, वह पीड़नके प्रति 'दयाभाव'-जैसा है। इसमें सन्देह नहीं है कि नयी पीढ़ीकी बौद्धिक चेतना 'मूल्यवान् संसार'के प्रति विरक्तिकी चेतना है किन्तु उपन्यासकारने उस 'विरक्ति'को 'सेक्स' की आसक्तिके रूपमें और नयी पीढ़ीकी दायित्वहीनतामें ही घुला-मिला दिया है। रमेश हो चाहे लच्छू या चाहे स्वयं अरविन्द-शंकरका पुत्र—वे सब एक तरहसे अवसरवादी-चापलूस लगते हैं। अवसरवादी और चापलूस होना किसी भी तरहसे उस 'विद्रोह' और उस 'समग्र अस्वीकार' की ध्वनि नहीं है, बल्कि नागरजीने उसे पूर्ववर्ती पीढ़ीके अन्य लेखकोंके ही 'आग्रह' (पूर्वग्रह) के समानान्तर देखा है। आश्चर्य यह है कि अन्तमें एकदम अस्वाभाविक 'हृदय परिवर्तन'-द्वारा अमृतलाल नागर 'प्रेमचन्द'की परम्परासे जुड़े ही नज़र आते हैं।

बड़े पैमानेपर जिस सामाजिक-वैयक्तिक संघर्षके चित्र 'अमृत और विष'में मिलते हैं उससे लग सकता है कि हमें अनुभवके नये लोकोंसे परिचय मिलेगा किन्तु इस उपन्यासका यथार्थ अखबार और तत्कालीन घटनाचक्रोंकी अखबारी रिपोर्टें हैं, उनमें एक दिनका 'स्थायित्व' हो सकता है, इसीलिए यह 'अनुभव-लोक' चिरपरिचित होते हुए नवीनतासे मण्डित नहीं लगता बल्कि 'बासी' लगता है। भारतीय जनमानसकी इस झूठी तसवीरमें जो सच्ची बातें हैं वे बाढ़, साम्प्रदायिक तनाव और युवापीढ़ीका संघर्ष है। भारतीय जनमानसका संघर्ष जिस बुद्धिहीन

अबोधताके रूपमें इस उपन्यासमें मिलता है उससे यही शक होता है जैसे हमारी विचारणा एक शताब्दी पीछेकी हो। इतने 'कमज़ोर' स्थल होनेपर भी कथनायकोंके रूपमें अरविन्द शंकरके साथ-साथ नवयुवा पीढ़ीके जो चरित्र उभरे हैं उनमें 'बौद्धिक-उन्मेष' दीखता है, चाहे वह उन्मेष साधारण और 'प्राइमरी' है किन्तु वह उन कुछ बुद्धिजीवी नायकोंकी पाँतमें आ जाता है जिसके लिए 'जीवन-संघर्ष'का तनाव भी धीरे-धीरे ऊब देनेवाला बन गया है। वैचारिक पीठिकाके रूपमें शास्त्रीय अवधारणाओंसे लेकर वर्ग-संघर्ष, साम्प्रदायिकतासे लेकर साम्राज्यवादी-पूँजीवादी विचार उपन्यासकी उस बौद्धिक पीठिकाको 'समसामयिक विचार' तक ले आती हैं जो जीवनकी सभी चुनौतियोंका सामना करनेके लिए अपनेको विवश पाता है। परन्तु 'विचार'की स्पष्टता इस उपन्यासमें नहीं मिलती क्योंकि रचनाकारकी उपस्थितिके अनेक मोह उसमें मिलते हैं। रमेश बक्षीने अपने पत्रमें नागरजीसे असहमति प्रकट करते हुए जब 'रमेश-रानी' को युवापीढ़ीके प्रतिनिधिके रूपमें अस्वीकार किया है, तब यह अस्वीकार रमेश-रानी-प्रसंगमें लेखककी उपस्थितिसे अस्वीकार है।

'अमृत और विष' की भाषा, सत्यसे पलायन, सुधारवादी स्वर आदि शीर्षकोंकी चर्चा भी की जा सकती है किन्तु हमें लगता है, उसके लिए 'शास्त्रीय दृष्टि' का आरोप ठीक रहेगा। 'अमृत और विष' में 'तीव्रानुभव' की जिस बातको हमने आरम्भमें 'जल्दबाज़ी' या 'घटनाक्रममें तीव्रता' माना है, वह 'बछड़े' के प्रतीकसे ज़्यादा साफ़ हो जाता है। 'अमृत और विष' में शीर्षकका अप्रतीक और मछुआरे और बछड़े (कथारूपात्मक प्रतीकों) की संगति अरविन्द शंकरके सन्दर्भमें सच लगती है, शेष प्रसंगोंमें वह उतनी सच नहीं है। इतना अवश्य है कि 'रचना-प्रक्रिया' का कलात्मक दस्तावेज़ कहनेसे चाहे संगतिकी वह सचाई न उभरती हो किन्तु उपन्यासका 'आत्मकथात्मक शिल्प' उस दृष्टिसे (दूसरोंकी तुलनाके प्रयोगसे) कुछ नया लगता है। [अगले अंकमें समाप्य]

■ ■

२६।५३ रामजस रोड, करोल बाग,
नयी दिल्ली

मानव मूल्य और साहित्य
डॉ० धर्मवीर भारती ■ ■
मानव मूल्यके सन्दर्भमें शुद्ध साहित्यका विश्लेषण, परीक्षण और आकलन। २.५०
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

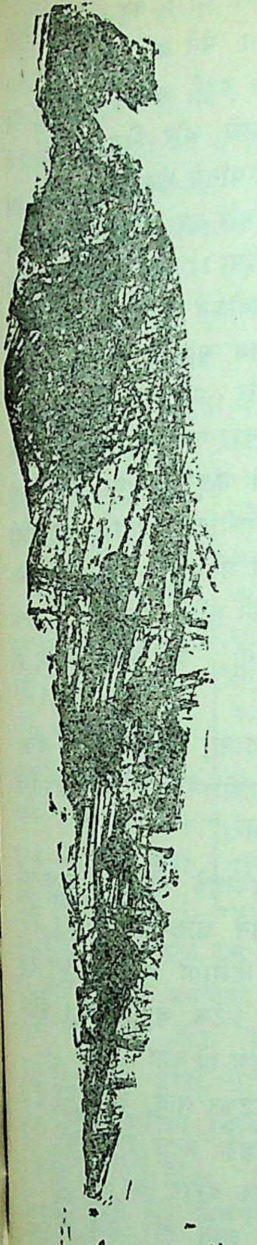

अपत्नी / ममता कालिया

हमलोग अपने जूते समुद्र-तटपर ही मैले कर चुके थे । जहाँ खूब ऊँची-ऊँची सूखी रेत थी, उसमें चले थे और अब हरीशके जूतोंकी पॉलिश व मेरे पंजोंपर लगी क्यूटेक्स धुँधली हो गयी थी । मेरी साड़ीकी परतें भी इधर-उधर हो गयी थीं । मैंने हरीशसे कहा, "उन लोगोंके घर फिर कभी चलेंगे ।"

"हम कह चुके थे लेकिन !"

"मैंने आज भी वही साड़ी पहनी हुई है," मैंने बहाना बनाया । वैसे बात सच थी । ऐसा सिर्फ़ लापरवाहीसे हुआ था । और भी कई साड़ियाँ कलफ़-लगी रखी थीं पर मैं, पता नहीं कैसे, यही साड़ी पहन आयी थी ।

"तुम्हारे कहनेसे पहले मैं यह समझ गया था ।" हरिने

कहा। उसे हर बातका पहलेसे ही भान हो जाता था, इससे बात आगे बढ़ानेका कोई मौक़ा नहीं रहता। फिर हमलोग चुप-चुप चलते रहते, इधर-उधरके लोगों व समुद्रको देखते हुए। जब हम घरमें होते, बहुत बातें करते और बेफ़िक्रीसे लेटे-लेटे ट्रांजिस्टर सुनते। पर पता नहीं क्यों बाहर आते हम नर्वस हो जाते। हरि बार-बार अपनी जेबमें झाँककर देख लेता कि पैसे अपनी जगहपर हैं न, और मैं बार-बार याद करती रहती कि मैंने आलमारीमें ताला ठीकसे लगाया या नहीं।

हवा हमसे विपरीत बह रही थी। हरीशने कहा, "तुम्हारी चप्पलें कितनी गन्दी लग रही हैं। तुम इन्हें धोती क्यों नहीं ?"

"कोई बात नहीं, मैं इन्हें साड़ीमें छिपा लूँगी।" मैंने कहा।

हम उन लोगोंके घरके सामने आ गये थे। हमने सिर उठाकर देखा, उनके घरमें रोशनी थी।

"उन्हें हमारा आना याद है।" मैंने कहा।

उन्हें दरवाज़ा खोलनेमें पाँच मिनिट लगे। हमेशाकी तरह दरवाज़ा प्रबोधने खोला। लीला लेटी हुई थी। उसने उठनेकी कोई कोशिश न करते हुए कहा, "मुझे हवा तीखी लग रही थी।" उसने मुझे भी साथ लेटनेके लिए आमन्त्रित किया। मैंने कहा, मेरा मन नहीं है। उसने बिस्तरसे मेरी तरफ़ 'फ़िल्मफ़ेयर' फेंका। मैंने लोक लिया।

हरि आँखें घुमा-घुमाकर अपने पुराने कमरेको देख रहा था। वह यहाँ बहुत दिनों बाद आया था। मैंने आने नहीं दिया था। जब भी उसने यहाँ आना चाहा था, मैंने बियर मँगा दी थी और बियरकी शर्तपर मैं उसे किसी भी बातसे रोक सकती थी। मुझे लगता था कि हरि इन लोगोंसे ज़्यादा मिला तो बिगड़ जायेगा। शादीसे पहले वह यहीं रहता था। प्रबोधने शादीके बाद हमसे कहा था कि हम सब साथ रह सकते हैं। एक पलंगपर वे और एकपर हम सो जाया करेंगे, पर मैं घबरा गयी थी। एक ही कमरेमें ऐसे रहना मुझे मंज़ूर नहीं था चाहे उससे हमारे खर्चमें काफ़ी फ़र्क़ पड़ता। मैं दूसरोंकी उपस्थितिमें पाँव भी ऊपर समेटकर नहीं बैठ सकती थी। मैंने हरिसे कहा था, मैं जल्दी नौकरी ढूँढ़ लूँगी, वह अलग मकान हो तलाश करे।

प्रबोधने बताया, उसने बाथरूममें गीज़र लगवाया है। हरीशने मेरी तरफ़ उत्साहसे देखा, "चलो देखें।"

हमलोग प्रबोधके पीछे-पीछे बाथरूममें चले गये। उसने खोलकर बताया। फिर उसने वह 'पैग' दिखाया जहाँ तौलिया सिर्फ़ खोंस देनेसे ही लटक जाता था। हरीश बच्चोंकी तरह खुश हो गया।

जब हम लौटकर आये, लीला उठ चुकी थी और ब्लाउज़के बटन लगा रही थी। जल्दी-जल्दीमें हुक अन्दर जा नहीं रहे थे। मैंने अपने पीछे आते हरि और प्रबोधको रोक दिया।

बटन लगाकर लीलाने कहा, "आने दो,

साड़ी तो मैं इन लोगोंके सामने भी पहन सकती हूँ।

वे लोग अन्दर आ गये।

प्रबोध बता रहा था, उसने दो नये सूट सिलवाये हैं और मखमलका 'क्विल्ट' खरीदा है जो लीलाने अभी निकालने नहीं दिया है। लीलाको शीशेके सामने इतने इतमीनानसे साड़ी बांधते देख मुझे बुरा लग रहा था। और हरि था कि प्रबोधकी नयी माचिसकी डिबिया भी देखना चाहता था। वह देखता और खुश हो जाता जैसे प्रबोधने उसे सब भेंटमें दे दी हों।

लीला हमारे सामनेकी कुरसीपर बैठ गयी। वह हमेशा पैर चौड़े करके बैठती थी हालाँकि उसके एक भी बच्चा नहीं हुआ था। उसके चेहरेकी बेफ़िक्री मुझे नापसन्द थी। उसे बेफ़िक्र होनेका कोई हक़ नहीं था। अभी तो पहली पत्नीसे प्रबोधको तलाक़ भी नहीं मिला था। और फिर प्रबोधकी दूसरी शादीकी कोई जल्दी भी नहीं थी। मेरी समझमें लड़कीको चिन्तित होनेके लिए यह पर्याप्त कारण था।

उसे घरमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसने कभी अपने यहाँ आनेवालोंसे नहीं पूछा कि वे क्या पीना चाहेंगे। वह तो बस सोफ़ेपर पाँव चौड़े कर बैठ जाती थी।

उसके चेहरेकी बेफ़िक्री मुझे नापसन्द थी। उसे बेफ़िक्र होनेका कोई हक़ नहीं था। अभी तो पहली पत्नीसे प्रबोधको तलाक़ भी नहीं मिला था। और फिर प्रबोधकी दूसरी शादीकी कोई जल्दी भी नहीं थी। मेरी समझमें लड़कीको चिन्तित होनेके लिए यह पर्याप्त कारण था।

उसे घरमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसने कभी अपने यहाँ आनेवालोंसे नहीं पूछा कि वे क्या पीना चाहेंगे। वह तो बस सोफ़ेपर पाँव चौड़े कर बैठ जाती थी।

हर बार प्रबोध ही रसोईमें जाकर नौकरको हिदायत देता था। इसलिए बहुत बार जब हम चायकी आशा करते होते थे, हमारे आगे अचानक लेमन-स्क्वैश आ जाता था। नौकर स्क्वैश अच्छा बनानेकी ग़र्ज़से कम पानी और ज़्यादा 'सिरप' डाल लाता था। मैं इसलिए स्क्वैश खत्म करते ही मुँहमें जिन्तानकी एक गोली डाल लेती थी।

प्रबोधने मुझसे पूछा, "कहीं ऐप्लाय कर रखा है?"

"नहीं," मैंने कहा।

"ऐसे तुम्हें कभी नौकरी नहीं मिलेगी। तुम 'भवन'वालोंका डिप्लोमा ले लो और लीलाकी तरह काम शुरू करो।"

मैं चुप रही। आगे पढ़नेका मेरा कोई इरादा नहीं था। बल्कि मैंने तो बी० ए० भी रो-रोकर किया था। नौकरी करना भी मुझे पसन्द नहीं था। वह तो मैं हरिको खुश करनेके लिए कह देती थी कि उसके दफ़्तर जाते ही मैं रोज़ 'आवश्यकता है' कॉलम ध्यानसे पढ़ती हूँ और नौकरी करना मुझे थ्रिलिंग लगेगा।

फिर जो काम लीला करती थी उसके बारेमें मुझे शुबहा था। उसने कभी अपने मुँहसे नहीं बताया—वह क्या करती थी। हरिके अनुसार, ज़्यादा बोलना उसकी आदत

नहीं थी। पर मैंने आज तक किसी वर्किंग गर्लको इतना चुप नहीं देखा था।

प्रबोधने मुझे कुरेद दिया था। मैंने भी कुरेदनेकी ग़र्ज़से कहा, "सूट क्या शादीके लिए सिलवाये हैं?"

प्रबोध बिना झेंपे बोला, "शादीमें ज़रीदार अचकन पहनूँगा और सन एण्ड सैण्डमें दावत दूँगा जिसमें सभी फ़िल्मी हस्तियाँ व शहरके व्यवसायी आयेंगे। लीला उस दिन इम्पोर्टेड विग लगायेगी और रूबीज़ पहनेगी।"

लीला विग लगाकर, चौड़ी टाँगें करके बैठेगी—यह सोचकर मुझे हँसी आ गयी। मैंने कहा, "शादी तुम लोग रिटायरमेण्टके बाद करोगे क्या?"

लीला अबतक सुस्त हो चुकी थी। मुझे खुशी हुई। जब हम आये थे उसे डनलपके बिस्तरमें दुबके देख मुझे ईर्ष्या हुई थी। इतनी साधारण लड़कीने प्रबोधको बाँध रखा था, यह देखकर आश्चर्य होता था। उसकी साधारणताकी बात मैं अक्सर हरिसे करती थी। हरि कहता था कि लीला प्रबोधसे भी अच्छा आदमी डिज़र्व करती है। फिर हमारी लड़ाई हो जाया करती थी। मुझे प्रबोधसे कुछ लेना-देना नहीं था। शायद अपने नितान्त अकेले और ऊबे क्षणोंमें-भी मैं प्रबोधको ढील न देती पर फिर भी मुझे चिढ़ होती थी कि उसकी पसन्द इतनी सामान्य है। प्रबोधने मेरी ओर ध्यानसे देखा, "तुम लोग सावधान रहते हो न अब?"

मुझे सवाल अखरा। एक बार प्रबोधके डॉक्टरसे मदद लेनेसे ही उसे यह हक़ महसूस हो, मैं यह नहीं चाहती थी। और हरीश था कि उसकी किसी बातका विरोध करता ही नहीं था।

प्रबोधने कहा, "आजकल उस डॉक्टरने रेट बढ़ा दिये हैं। पिछले हफ़्ते हमें डेढ़ हज़ार देना पड़ा।"

लीलाने सकुचाकर, एक मिनिटके लिए घुटने आपसमें जोड़ लिये।

"कैसी अजीब बात है! महीनों सावधान रहो और एक दिनके आलससे डेढ़ हज़ार रुपये निकल जायें।" प्रबोध बोला।

हरि मुसकरा दिया। उसने लीलासे कहा, "आप लेटिए, आपको कमज़ोरी महसूस होती होगी।"

"नहीं।" लीलाने सिर हिलाया।

मेरा मूड खराब हो गया। एक तो प्रबोधका ऐसी बात शुरू करना ही बदतमीज़ी थी, ऊपरसे इस सन्दर्भमें हरिका लीलासे सहानुभूति दिखाना तो बिलकुल नागवार था। हमारी बात और थी। हमारी शादी हो चुकी थी। बल्कि जब हमें जरूरत पड़ी थी तो मुझे सबसे पहले लीलाका ध्यान आया था। मैंने हरिसे कहा था, "चलो, लीलासे पूछें। उसे ऐसे ठिकानेका ज़रूर पता होगा।"

लीला मेरी तरफ़ देख रही थी। मैंने भी उसकी ओर देखते हुए कहा, "तुम तो कहती थीं, तुमने मंगल-सूत्र बनानेका ऑर्डर दिया है।"

"हाँ, वह तो कबका आ भी गया। दिखाऊँ?" लीला आलमारीकी तरफ बढ़ गयी।

प्रबोधने कहा, "हमने एक नया और आसान तरीक़ा ढूँढ़ा है। लीला, जरा इन्हें वह पैकेट भी दिखाना।"

मुझे अब गुस्सा-सा आ रहा था। प्रबोध कितना अक्खड़ है—यह मुझे पता था। इसीलिए मैं हरिको उन लोगोंसे बचाये रखना चाहती थी।

हरि जिज्ञासावश उसी ओर देख रहा था जहाँ लीला आलमारीमें पैकेट ढूँढ़ रही थी।

मैंने कहा, "रहने दो, मैंने देखा है।"

प्रबोधने कहा, "बस, ध्यान देनेकी बात यह है कि एक भी दिन भूलना नहीं चाहिए, नहीं तो सारा कोर्स डिस्टर्ब हो जाता है। नौकर शामको जब चाय लाता है, मैं तो तभी गोली ट्रेमें रख देता हूँ।"

लीला आलमारीमें-से सिर्फ़ मंगल-सूत्र लेकर वापिस आ गयी थी। बोली, "कभी किसी दोस्तके घर इनके साथ जाती हूँ तो पहन लेती हूँ।"

मैंने कहा, "रोज़ तो तुम पहन भी नहीं सकती ना····कोई मुश्किल खड़ी हो सकती है।"

कुछ ठहरकर मैंने सहानुभूतिसे पूछा, "अब तो वह प्रबोधकी नहीं मिलती ?"

लीलाने कहा, "नहीं मिलती।"

उसने मंगलसूत्र मेज़पर रख दिया।

प्रबोधकी पहली पत्नी इसी समुद्र-लगी सड़कके दूसरे मोड़पर अपने चाचाके यहाँ रहती थी। हरिने मुझे बताया था, शुरू-शुरूमें जब वह प्रबोधके साथ समुद्रपर घूमने जाता था, उसकी पहली पत्नी अपने चाचाके घरकी बॉलकनीमें खड़ी रहती थी और प्रबोधको देखते ही होठोंको दाँतोंमें दबा लेती थी। फिर बॉलकनीकी ही दीवारसे लगकर वह बाँहोंमें सिर छिपा रोने लगती थी। जल्दी ही उन लोगोंने उस तरफ़ जाना ही छोड़ दिया था।

प्रबोधने बातका आखिरी टुकड़ा शायद सुना हो क्योंकि उसने हमारी ओर देखकर कहा, "गोली मारो मनहूसोंको! इस समय हम दुनियाके सबसे दिलचस्प विषयपर बात कर रहे हैं। क्यों हरि, तुम्हें यह तरीक़ा पसन्द आया ?"

हरिने कहा, "पर यह तो बहुत भुलक्कड़ है। इसे तो रातको दाँत साफ़ करना भी याद नहीं रहता।"

मैं कुछ आश्वस्त हुई। हरिने बातोंको ओवनसे निकाल लिया था। मैंने ख़ुश होकर कहा, "पता नहीं, मेरी याददाश्तको शादीके बाद क्या हो गया है! अगर ये न हों तो मुझे तो चप्पल पहनना भी भूल जाये।"

हरिने अचकचाकर मेरे पैरोंकी तरफ़ देखा। वादेके बावजूद मैं पाँव छिपाना भूल गयी थी।

उठते हुए मैंने प्रबोधसे कहा, "हमलोग बर्ट्रोली जा रहे हैं। आज स्पेशल सेशन है। तुम चलोगे ?"

प्रबोधने लीलाकी तरफ़ देखा और कहा, "नहीं, अभी इसे नाचनेमें तकलीफ़ होगी।"

■ ■

४२, मेहता मेन्शन, शीतलादेवी मन्दिर रोड,
माहिम, बम्बई—१६

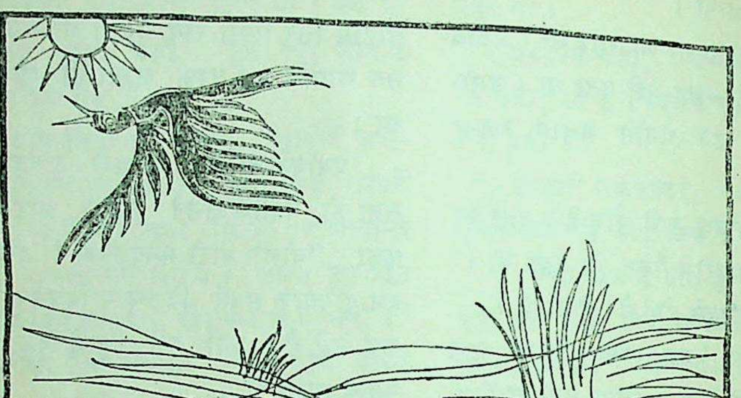

ख़ास पाहुना / सुदर्शन चोपड़ा

····गोया अधिकतम रफ़्तारसे दौड़ते हुए घोड़ेकी मुश्कें कोचवानने एकदम पूरी ताक़तके साथ खींच ली हों; तेजीसे भागता हुआ ताँगा झटके खा-खाकर थम रहा हो; घोड़ेके मुश्कें-कसे टेढ़े हुए मुँहसे निकल रहीं हिनहिनाहटें और झागके फुन्दे···· ऊपरको उठ आये मुड़े हुए अगले पैर····कांपते हुए पुट्ठे····और ताँगेमें लदी-सहमी-धचके खाती सवारियाँ····

रीना रह-रहकर भाईके कन्धेको कसके पकड़ लेती है—“हरबं·अं·स !!!”

और हरबंसकी गोदीमें उसके हाथोंमें कसा हुआ है, बाऊजीका सिर, जो फ़िटके हर झटकेसे उछल-उछल पड़ रहा हैं। टेढ़े मुँहसे निकलती हुई झागको तौलियेसे पोंछती हुई बीजी किसी तरह अपनी उफनी आ रही रुलाईको भी रोक रही हैं। मगर रोकनेकी हर कोशिश कांग-मारी हड़हड़ाई नदीके कच्चे कगारोंकी मानिन्द फूट-फूटके तुग़यानीमें बही जा रही है।···बीना खाटकी पाटीपर टिकी हुई है। बाऊजीकी छिटक-छिटक पड़ रही बाँकी उँगलियोंवाली अकड़ाई बाँहोंको जैसे-कैसे दबाके रखनेमें अपना पूरा ज़ोर लगा रही है। मण्टू पैताने बैठा है। उकड़ूँ। फ़िटके

धक्के-से पटखियाँ खाती हुईं बाऊजीकी टाँगोंको थामे हुए है, और उनके भयानक हो आये हिलकोरे खाते मुँहकी तरफ़ देख-देख सहम रहा है।

सुबहसे सातवाँ डॉक्टर आके देख गया है। पाँच रुपये फ़ीस वालेसे लेकर तीस रुपये-तकका। ब्लड-प्रेशर लेकर, नाड़ी-नब्ज़ टोहकर, स्टेथस स्कोपसे दिलकी धड़कनें सुनकर और नुस्खा लिखकर चला गया है। मरा-मरा-सा दिलासा देकर।

हर दवा और निर्देशका पूरी तरहसे पालन होनेके बावजूद बाऊजीकी हालत बिगड़ती चली जा रही है। पहली और दूसरी फ़िटके बीच तो फिर भी आध घण्टेका वक़्फ़ा था, मगर अब तो हर दूसरे-तीसरे मिनिटपर दौरा पड़ने लगा है। और दो दौरोंके बीच गलेमें अटका वात-पित्त लगातार खड़खड़ाता रहता है। अधखुले मुँहकी राह कुछ-कुछ बाहरको चूता भी रहता है। साँसें गोया खौलता हुआ शोरा बन गयी हैं और तेज़ आँचपर पड़े तपते कड़ाहेमें बुड़कड़ियाँ मार रही हैं। लारकी बदबू कुछ-कुछ वैसी जैसे गलीकी रुकी हुई नालीमें खड़ा बुदबुदे उबालता हुआ सड़ रहा गाढ़ा गन्दा।

अधरंग-मारा बूढ़ा शरीर तो पहलेसे ही था, ऊपरसे दिमाग़की एक पूरी नसमें और खून जम गया है। मस्तिष्ककी रही-सही शक्ति भी शेष हो चुकी है। अब न किसीको पहचान पाते हैं, न बोल सकते हैं। इस असीम कष्टकी अनुभूति भले ही कुछ-कुछ हो रही हो, तभी तो बेज़ुबान घायल पशुकी-सी चिंघाड़ती कराह बीच-बीचमें फूट पड़ती है। आँखें अझपक खुली पड़ी हैं। पुतलियाँ लगभग स्थिर। बायाँ गोलक सफ़ेद। दायेंमें गहरी लाली, माथेकी सारी नसें फट पड़नेकी सीमा तक उभरी हुईं। साँस शायद सिर्फ़ मुँहसे ही ले रहे हैं। मगर हर साँस गोया, गलेमें खड़खड़ाते हुए वात-पित्तमें ही अटककर रह जाती है।

बीजी मिन्नत करते स्वरमें कह रही हैं, 'मेरा कहा मानो, बेटा, अब····कुछ नहीं रहा···· क्यों दुर्गत कर रहे हो बापकी ?' पहले दौरे-पर हो इन्होंने कहा था कि नीचे उतार दिया जाये, क्योंकि खाटपर प्राण निकलनेपर गति नहीं होती ! मगर रीना और हरबंस मान नहीं रहे थे।

पर अब बीजीकी ज़िदपर और कुछ-कुछ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चुकनेके कारण उन्होंने बिस्तर समेत उठाकर बाऊजीको नीचे फ़र्शपर डाल दिया है। बीजी ढाहें मार-मारकर रोने लगी हैं ! पास पड़ोसकी औरतें और मर्द भी आ जुटे हैं।

"दीया-बत्ती करा दिया ?····"

"कुछ अनाज हाथ लगवा दो····"

"गोदान····"

"गीता-पाठ····"

"आठवाँ अध्याय····"

"गंगाजल चुआ दो मुँहमें, हरबंस····"

"हरिओउम्, बोलो, भैनजी····अभी तो साँस है····"

"बिलाप करनेसे इनकी आत्माको कष्ट होगा····"

"तुम, हरबंस, चप्पल निकाल डारो····"

"और अपनी दाहिनी जांघ पे इनका सिर टिकालो····भला····!"

"ए री बिमला-आ····देख तो री, म्हारो ठाक्करजीवाली ताकीमें गंगाजलका डब्बा होवेगा, एक कटोरीमें डाल ला फटाफट्ट····"

"अच्छा तो, ऐसा करो, भई, कोई ऊपरवाले पण्डतजीको हाक मार ले, गीता बाँच दें····"

"कमरेकी खिड़कियाँ-दरवज्जे सब खोल डालो····"

"बस भई, बस, रोना-धोना अभी नहीं, रीना····रामका नाम सिमरो····ऊँची-ऊँची····"

"कानोंमें राम-राम पड़ना चाहिए आखरी बखत····"

"छाती पे-से हाथ हटा दे, रीना····"

"हरबंस। जरा नाड़ी टोहके तो देख!····"

"नाकमें-से गरम साँस निकल रही है कि ठण्डी?····"

"गरम!····तो फिर अभी देर है····ठीक है, आटेका दीया बना लो झटसे····ए बीना, जा बेटी····"

"घीकी बाती हो बीचमें····"

"जलाके इनकी छाती पे धर दो····"

"नहीं-नहीं जी, छाती पे अभी नहीं····अभी तो वैसे ही सिरकी तरफ जला दो····"

"पर माथेसे छुआ लेना····"

"हाँ-आँ, बस, और क्या।····बादमें छाती पे रख देना····"

"पैर देख तो छूके, मण्टू····"

"उंगलियोंके पोर ज़रा-ज़रा ठण्डे हैं, पर पैर तो गरम हैं····"

"अच्छा, ले, हरबंस, आ गया गंगा-जल, चुआ दे बापके मुँहमें, दायें हाथसे गेरिए····"

"हरि ओउम बोलके····"

हरबंसको इस सबसे बेहद अनकुस महसूस हो रहा है। उसकी हथेली-तले बाऊजीके माथेकी नस बराबर फड़क रही है। रीनाकी उँगलियाँ नब्ज़पर हैं। उसके चेहरेपर भी कुढ़नके आसार स्पष्ट हैं। भाईके कानके क़रीब मुँह ले जाकर कहती है, "जल्दीसे जाकर डॉक्टरको बुला लाओ!"

और हरबंस भी गोया यही सोच रहा था, तुरन्त उठकर भीड़को चीरता हुआ बाहर निकल गया है। कमरेमें दमघोटू भीड़ देखदेखकर रीनाको झूँझल हो रही है। मगर ऐसेमें कहे क्या, यह समझ नहीं पा रही। रहरहकर बीजीकी ज़िदपर ग़ुस्सा खानेके अलावा और कुछ नहीं कर पा रही। मण्टू पैरोंके पास उकड़ूँ बैठा हुआ है, बीना टाँगें मोड़े गुमसुम। बीजी गोड़ोंमें सिर दिये रो रही हैं, काँधनेका ऊंचा स्वर निकल पड़ा है।

"बीजी-ई-ई-ई····"रीनाकी आवाज़में विवश आक्रोश भी, तथा स्वरको आदेशयुक्त झिड़की बननेसे टाले रहनेका यथासम्भव प्रयास भी। साथ ही बल देकर रोनेसे मना करनेका आशय भी। हालाँकि इस तोड़क प्रयासमें वह खुद रो दी है। मगर रुलाईको सस्वर होनेसे बचा ले गयी है। दीदीको आँखोंमें आँसू देखकर बीना और मण्टूके अन्दर भी कुछ उफन आया है।

बाऊजीको फिर दौरा पड़ रहा है। रीना एक हाथसे उनका माथा और दूसरेसे बजते हुए जबड़े दबा रही है, बीजी बाँहें थामे हैं, और मण्टू-बीना टाँगें।

इसी बीच हरबंस डॉक्टरको लेके आ पहुँचा है, फ़िटकी स्थितिमें ही नाड़ीको कुछ देर ध्यानसे परखकर डॉक्टरने स्टेथसस्कोप लगाकर दिल और छातीको टोहा-टटोला है,

"इन्हें आप खाटपर लिटा दें। सिरकी ओर-वाले पायों-तले दो-दो ईंटें रख दें। तकिये भी दो लगा दें। चित या पट मत लेटने दें! करवटमें ही लिटाएँ। एक एक घण्टे बाद करवट बदलते रहें।···· एक इंजेक्शन तो मैं अभी लगाये देता हूँ, एक लिखे दे रहा हूँ, तुरन्त ले आयें····और कुछ दवाइयाँ भी लानी होंगी···"

'····इसलिए, हे अर्जुन! तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर··· इस प्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धि-से युक्त हुआ तू, निस्सन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा···'

युद्ध?—रीना उलझ गयी है। आहत योद्धाके रूपमें बाऊजीको धराशायी हुआ देख रही है। यह युद्धार्पित पराजित तन तो अग्निको प्राप्त होगा। और मन-बुद्धि? वो तो पहले ही फ़ालिजको अर्पित हो चुकी। अब बाक़ी किसे किसको अर्पित होना है। ख़ाली मिट्टी बची है। पंचभूतों की राख बन जायेगी। चितापर। खेल ख़त्म। और क्या! बेकार ही बेचारे खटते-खपते रहे उम्र-भर!

"मगर डॉक्टर साहब, ये खड़खड़ आवाज़···"

"एक मोटे तीले या कान्नेपर या पतली-सी दातुन हो तो उसपर काफ़ी सारी रुई लपेटके पूनी-सी बना लें····उसीको इनके मुँह-में आहिस्ता-आहिस्ता फुरेरते रहें····हलक़ तक····मगर पोलेसे। बस, गला साफ़ रहेगा और हाँ····मुँहके रास्ते इन्हें कुछ मत पिलायें! ग्लूकोज़, पानी, जूस जो भी कुछ देना हो नसोंके रास्ते जाना चाहिए, इंजेक्शनसे····"

कुछ जने मिलकर बाऊजीको बिस्तर-समेत उठाके फिरसे खाटपर डाल देते हैं। पायों तले ईंटें और सिरके नीचे दो मोटे तकिये रख देते हैं। डॉक्टर इंजेक्शन लगाता है। कुछ लोग चल दिये हैं। कुछ जने आँगनमें आकर धीरे-धीरे बातें करने लगे हैं। कमरेमें बचे हुओंके चेहरे भी अजब-से दिख रहे हैं, गोया किसी नाटकका अप्रत्याशित अन्त देख रहे हों। बीजी-के चेहरेपर झेंप और शर-मिन्दगीके साथ-साथ दबायी जा रही खीझकी लकीरें भी उभर रही हैं। मगर आँखोंमें उम्मीदकी बेमालूम-सी झलक भी!

हरबंस और रीनामें बुझकर फिर जल उठे उत्साहकी फुरेरी-सी दौड़ गयी है। लपककर डॉक्टरके साथ-साथ बाहर ड्योढ़ी तक आ जाते हैं।

"तो फिर, डॉक्टर साहब, बाऊजी····?"

"देखो, भई, उम्मीदपर दुनिया क़ायम है बरख़ुरदार, पर फ़िलहाल ऐसी कोई बात नहीं दिखती। यों, इस तरहके केसोंमें ख़तरा तो हर वक़्त बना ही रहता है····"

"चाहे जो उपाय हो, डॉक्टर साहब,

बताइए, हम करेंगे ! किसी भी तरह····"

"घबराओ नहीं, बेटी ! भगवानपर भरोसा रखो। दवा तो कर ही रहे हो तुम लोग, दुआ भी करते रहो !"

हरबंसका उत्साह एकदम फिरसे बुझ गया है। लरक ढीली पड़ गयी है ! मगर रीना उझक-उझक कर पूछे जा रही है, "ठीक तो हो सकते हैं ना ?"

"हाँ होनेको क्या नहीं हो सकता ! मगर बेहतर होगा, इन्हें फ़ौरन अस्पतालमें दाखिल करा दिया जाये। तब पचास फ़ीसदी उम्मीद है कि बच जायें।"

"कौन-से अस्पताल ?"

"इस्टीच्यूट ऑफ़ मेडिकल सायन्सेस, या सफ़दर जंग····"

"तो ठीक है, हम अभी एम्बुलेन्स····"

"मगर एक बात देख लों कि····"

"?"

"?"

"इस बीमारीका इलाज बहुत लम्बा भी हो सकता है और मँहगा भी। और फिर इन अस्पतालोंमें तो सौ रुपये रोज़ तकका खर्च भी हो सकता है।"

"····"

"····"

"और फिर भी मुझे तो उम्मीद सिर्फ़ यह है कि ये बच-भर जायेंगे। मगर जिस्ममें जहाँ-जहाँ जो-जो खामी आ चुकी है, वह शायद ज्योंकी त्यों हो रहे। ज़ुबान और दिमाग़ तक भी।"

"····"

"और फिर अक़सर देखा गया है कि ऐसे मरीज़ोंकी उम्र बादमें आमतौरपर लम्बी हो जाती है···बात यह है ना कि दिल और दिमाग़पर कोई बात असर तो डालना ही बन्द कर देती हैं, लिहाज़ा धड़कनें बराबर जारी रहती हैं····"

"तो···"

"फिर····"

"अब ये आप लोग सोच लें कि कैसी सूरतमें····"

"मगर····"

"उफ़····"

"अच्छा जो हो, फिर ये दवाइयाँ और इंजेक्शन तो फ़िलहाल ले ही आओ····।"

और डॉक्टर चला गया है। रीना और हरबंस ड्योढ़ीमें ही थोड़ी देरको खड़े रह गये हैं—लुटे-से !

"अब ?"

"जैसी कहो ! मैं तो नहीं समझता कि कुछ हासिल हो····"

"फिर भी, करना क्या चाहिए ?"

"इंजेक्शनोंके ज़ोरपर दो-एक दिन और इन्हें कष्ट भोगनेके लिए जिलाये रखना, मेरी नज़रमें तो अमानुषिक है, आगे जैसी तुम्हारी सलाह हो। कहो तो बीजीसे और राय ले लें !"

"वो बेचारी क्या कहेंगी ?"

"फिर भी पूछ लेना ठीक है।"

"तो फिर रसोईमें ही बुला लाती हूँ। कमरेमें सबके सामने ठीक नहीं।"

"हाँ, बुला लाओ, मैं भी वहीं चलता हूँ।"

"पूछ लेना ही अच्छा है । कहीं बादमें फ़िर कहें कि''''हालाँकि अस्पतालके इलाज लायक़ पैसा तो किसी भी सूरतमें नहीं जुट सकता । चाहे घरका सामान क्या, लोग भी बिक जायें ! और फिर जो चीज़ अपनी पहुँचसे परे हो उसके लिए अफ़सोस भी क्या ! और मान लो, हमारी हैसियत होती भी, तब भी इस हालतमें इलाज बेमानी होता । ज़िन्दा लाश बनाकर टरते रहनेमें कोई तुक नहीं । जिस धड़कते माँस-पिण्डमें मस्तिष्क नहीं, सेन्सेज नहीं, जो बोल-चल ही न सके, उसमें और मर चुकेमें क्या फ़र्क़ ? सिर्फ़ दिलकी धड़कनें क्या अर्थ रखती हैं ?....''

"बीजी, डॉक्टर कहता है, अव्वल तो बच जानेकी कोई उम्मीद नहीं, अगर बच भी गये तो न किसीको पहचान सकेंगे, न बोल-चल पायेंगे, और ऐसी हालतमें बरसों भी पड़े रह सकते हैं, अस्पतालमें सौ रुपये रोजका खर्च है । जाने कितने दिन लग जायें । अब आप बतायें, क्या किया जाये ?"

"मैं नसीबजली क्या कहूँ, बेटा ! तुम लोग कुछ कर सकते हो तो कर लो, नहीं तो हरि-इच्छा ! मुझे तो आप भी अब आस नहीं रही, इसीलिए नीचे उतरवा दिया था । पर तुम लोगोंने फिरसे उन्हें ऊपर डाल दिया ! यह जनम तो, बेटा, जैसा-कैसा पार लगा उनका, अब अगला न बिगड़ जाये कहीं ! गति हो जाये ठीक से....''

"पर बीजी, डॉक्टर कहता था, ये बीमारीके फ़िट हैं, मौतके नहीं, अभी तो जाने कब तक इसी तरह चलें !"

"नहीं, बेटा-आ-आ !"

"अच्छा, खैर, यह बताइए कि अस्पताल....''

"क्यों आखिरी वक़्त मिट्टी रोलते हो बापकी ! इतनी आस-औलादवाले होके भी तो अस्पतालमें दम...." और आगेके शब्द साँसकी नलीके रास्ते फेफड़ोंमें जा धँसे हैं ।

हरबंस रसोईसे निकलकर कमरेमें आ गया है । बाऊजीको फ़िट पड़ रहा है । मण्टू और बीना ही थाम रहे हैं । वह भी लपक पड़ता है, मगर मरे मनसे, गोया अब थाम-सम्भाल भी औपचारिकतासे अधिक अर्थ नहीं रखती ।

पास-पड़ोसके तक़रीबन सब जने जा चुके हैं । इक्का-दुक्का ही कोई आकर खड़ा-खड़ा ही हाल पूछके लौट जाता है । और हर ऐसी जिज्ञासाके उत्तरमें हरबंसको मौन रहनेके सिवा कुछ सूझ नहीं रहा । बाऊजीके सिरहाने बैठा हुआ है, बीना और मण्टू पैताने, बीजी रीनाके साथ अभी तक रसोईमें हैं ।

हरबंसको इस समय पिताकी बीमारीसे ज्यादा अपनी लाचारी कष्ट दे रही है । आगे तो हमेशा नौकरियाँ छोड़ता रहा, अबके छूट गयी थी । कलकत्ता-जैसे शहरमें बेकारीके दिन कटने असम्भव थे । पत्नीकी नौकरी भी खतरेमें थी । इसलिए छुड़वाके दिल्ली चले आनेका प्रोग्राम बना लिया था । रोजगार-दफ़्तरमें उसका नाम दर्ज करा दिया है । खुद सिर्फ़ लेखन-कार्य करनेका चुनाव ही करना पड़ा है । क्योंकि ढंगकी नौकरीकी कोई सम्भावना नहीं दिखती, और छोटी-मोटी की अपेक्षा लेखन ही ठीक है । पत्नी कुछ

दिनोंके लिए अपनी बहन और बहनोईके पास संगरूर गयी हुई है। अब तो उसे तार देकर बुलाना ही पड़ेगा। हालांकि नाराज़ होकर गयी है। कहती थी, साथ चलो। पर बाऊजी-की तबीयत तो असलमें तबसे ही खराब होनी शुरू हो गयी थी। दिन-रात गुम-सुम पड़े रहते थे, नींद आनी बन्द हो चुकी थी, कुछ खाते-पीते भी नहीं थे, बुलाओ तो बिटर-बिटर तकते-भर रहते थे। मुझे तो ख़तरेका संकेत तभी मिल रहा था, इसीसे संगरूर जानेको मना कर दिया था। वह तुनककर कहने लगी थी कि यह सब इनकी बहानेबाज़ी है, कोई ख़तरा-वतरा नहीं।....दस दिन हो चले हैं गयीको, अभीतक पहुँचका भी ख़त नहीं लिखा उसने।....अब आके देख लेना, बहानेबाज़ी थी कि इनका काल मँडरा रहा था!....पर उसे क्या! कुछ हो! उसके क्या लगते हैं ये? उसे कौन-सी उनसीयत है!.... उनसीयत?....मुझे अगर थी तो मैंने ही क्या कर लिया था? ख़तरेका संकेत पाकर भी? चाहिए नहीं था कि तभी तुरन्त इन्हें किसी क़ाबिल डॉक्टरको दिखाता? अस्पतालमें दाखिल करा देता? उस समय तो इलाजपर भी अधिक पैसा नहीं लगता....और ठीक भी हो सकते थे। मगर अब?...उफ़।....कैसा गधा हूँ मैं! एहसानफ़रामोश!...न सही पिता, एक ऐसा व्यक्ति तो वह था ही जिसने इतनी तकलीफ़ें सहकर भी मुझे पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया; और अब जबकि उसके लिए कुछ करनेका मेरा वक़्त आया तो मैं इस क़दर लापरवाही....

"हरबंस, मैं समझती हूँ, एम्बुलेन्स बुलवा ही लो।"

"हाँ, रीना, मैं भी यही सोच रहा था कि हमें अपनी तरफ़से कोई कसर...."

"पर बेटा, बेकार होगा। अस्पतालमें मिट्टी रोलनेसे अब कोई फ़ायदा नहीं। मेरा मन कहता है, अब....नहीं, आखिर मनुष्यका शरीर ही तो है, कहाँ तक...."

"वो तो ठीक है, बीजी, पर इस तरह सोचके हाथ-पे-हाथ धरे भी तो बैठा नहीं जा सकता। जो हो।....अच्छा रीना, मैं जाता हूँ। तुम लोग इतनेमें इनका बिस्तर-विस्तर बदल डालो। बिस्तर-समेत ही उठाके स्ट्रेचर-पर डाल लेंगे।"

दौरा फिर पड़ रहा है। मगर हरबंस निकल पड़ता है। रीना अलमारीमें-से धुली हुई चादर निकालने लगी है। बीना तकियेका गिलाफ़ बदल रही है। बीजी और मण्टू पूर्ववत् बैठे हुए हैं। कोई किसीकी तरफ़ देख नहीं रहा।

"बेटी, मैं भी संग चलूँ?"

"नहीं, बीजी, क्या ज़रूरत है? हम दोनों तो होंगे ही। वहाँ मेरी एक परिचित डॉक्टर भी हैं। मेरे दफ़्तरमें उसकी बहन काम करती है। न भी मिली तो कोई बात नहीं। एमरजेन्सीमें दाखिल तो झट कर ही लेंगे।....हाँ, कुछ पैसे हों तो दे देना। मेरे पास तो शायद कम पड़।"

"पैसे तो...."

"अच्छा, कोई बात नहीं, सब कर लूँगी।"

"पर कहाँसे कर लोगी उस वक़्त ? हाथमें होने चाहिए...."

"हाँ, हाँ, अभी किये लेती हूँ....रास्तेमें ही। परसों तो मुझे तनख़्वाह मिल ही आयेगी।....बीना, इतनेमें तू झटसे मुझे एक कप चाय तो बना दे री, सिरमें दर्द हो रहा है।....बीजी, कोई गोली-वोली पड़ी है ?"

"देखती हूँ। शायद ही हो।....अच्छा, सोमको ख़बर न कर दें ?"

"वो इन दिनों दौरेपर गया हुआ है। सोमवार तक लौटेगा।"

"....होता तो काफ़ी सहारा रहता।...लड़का हितू है। बड़ा ही भला।...अच्छी, जभी-ई तो, मैं-भी कहूँ, कई दिनसे आया नहीं, बात क्या है ! पता चलता तो वो कहाँ रुकनेवाला था ! दुःख-सुखमें बहुत काम आनेवाला लड़का है। ऐसे लड़के तो...." बीजी सोचने लगीं—शायद मैं इस वक़्त ज़रूरतसे ज़्यादा कह गयी हूँ। जब मौक़ा होता है, तब तो बात छेड़ती नहीं हूँ। अबतक रिश्ता हो गया होता तो कितना आसरा रहता ! रीना बेचारीको अकेली तो न खपना पड़ता इस घरकी ख़ातिर ! हरबंस और बहू भी आजकल बेकार हैं। नहीं तो क्या चिन्ता थी हमें !...पर चलो, इत्ता ही बहुत है कि बापके आख़िरी वक़्त पे घरमें तो है ही। नहीं तो, होता अगर कलकत्ता, तो पहुँच थोड़े ही पाता। यों तो छोटा था ही, कर-करा देता सारे काम, पर बड़ेके होते छोटा करता, सो भी तो ठीक नहीं था ! ख़ैर, भगवान् जो करता है....

"बीजी, अब तो बड़ी जल्दी-जल्दी दौरे पड़ने लगे हैं..."

"हाँ, बेटा-आ ! अब तो भगवान्‌का ही नाम लो, और क्या कर सकते हैं ! हअ-हा-आ...., हे बंसीवाले, दया करो प्रभू-ऊ-ऊ, दया करो नाथ, छिमा करो ! क्यों इन्हें इत्ता कष्ट दे रहे हो ? इससे तो...."

"लो दीदी, चायके साथ गोली खा लो, झट से।"

"पहले एक पानीका गिलास दे-दे, बीना, ओठ भी तो सूखे जा रहे हैं !....मण्टू, तू बाऊजीकी करवट फेर दे, बीजी चादर बदल डालें..."

■

एक घण्टा हो गया है, लेके गये। स्ट्रेचरपे डालके जब डचोढ़ीसे निकाल रहे थे तो जाने कैसा-कैसा लगा था ! ह-अ-अ....यही अन्त होना था, हमारे सम्बन्धोंका ? कितनी साधोंसे ये मुझे इस घरमें लेके आये थे। तीस बरस पहले। इसी डचोढ़ीमें ....और आज ? मुझे तो लगा है, जाने, गरदन हिला-हिलाके मिन्नतें कर रहे हों कि इस तरह मत निकालो मुझे घरसे !... हाय, रा-आम !...पर मेरी किसीने मानी ही तो नहीं। अब पता नहीं, किस हालतमें घर लेके आते हैं, उन्हें !....'अरी बीना-आ, बेटी, ज़रा कमरा तो साफ़ कर ले ! और....अपने बाऊजीवाला बिस्तर भी उठाके धर दे। खाट भी।'.... सो लिया, बस, सोना था जितना, इस घरमें, इस खाट-बिस्तरपे। हअ्-हा-आ....! असलमें तो उन बिचारोंने इस घरका सुख सारी उमर

ही नहीं देखा। पूरी जवानी मन मार-मारके खपते-खटते रहे, और बुढ़ापा आनेसे पहले ही तन भी टूट गया। वैसे तो, जवानीमें भी गिरते-पड़ते ही चलते रहे थे। कभी कुछ रोग, तो कभी कुछ। खुराक तो मिले न, चिन्ताएँ चोबीसों घण्टे, और ऊपरसे मेहनत-ही-मेहनत! तो फिर और होगा भी क्या! दिन-भर दफ़्तरमें खपके साँझको लौटते थे, थके-माँदे। दो रोटी जल्दी-जल्दी निगलके फिर निकल पड़ते थे टयूशनोंपर। रात ग्यारहसे पहले तो कभी लौटनेका सवाल ही नहीं था। और सोनेसे पहले कभी एक कप दूध तक नसीब नहीं होता था। आये दिन सिर-दर्द, पेट-गैस, और जाने क्या-न-क्या चलता ही रहता था। पर ठिलता रहा, जैसे-कैसे। आखिर सरीर इत्ती ज्यादती सदा तो सह नहीं सकता था ना!···बड़ा लड़का ही किसी क़ाबिल निकल गया होता तो भी शायद कुछ सम्भालेमें आ जाते। मगर इसका दुःख तो और भी अधिक सालता रहा, उन्हें! इत्ता लिखा-पढ़ाके भी कुछ सुख न देख सके उसका। ले-दे-के एक रीना ही तो खप रही है बिचारी। बाक़ी दोनों तो अभी छोटे हैं। अभी तो बी० ए० ही चल रहा है दोनोंका!···रीना भी अगर बड़ेकी ही तरह निकलती तब तो···"बीना, बेटा, एक गिलास पानी तो देना!"····अब तो मेरी भी हिम्मत जवाब दे रही है। शरीर छिनता-छिनता-सा रहने लगा है। जाने··· "मण्टू, बेटा, जरा बत्ती तो जला दे। अंधेरा हो रहा है···"

■

"····कि तद्ब्रह्म, किमध्यात्मं, कि कर्म, पुरुषोत्तम!····अर्जुन बोला, हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है, अध्यात्म क्या है, कर्म क्या है?····श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन! परम अक्षर परमात्मा तो ब्रह्म है और उसका स्वरूप जीवात्मा ही अध्यात्म है, तथा यज्ञ, दान, होम आदिके निमित्त द्रव्योंका त्याग ही कर्म है···और जो पुरुष अन्तकालमें मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है···· कारण कि हे कुन्तीपुत्र अर्जुन, यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है····"

मोटे अक्षरोंवाली हिन्दी टीका-सहित गीताके आठवें अध्यायका पाठ हो रहा है। कोठेवाले पण्डतजी दसियों बार इस 'अक्षर ब्रह्मयोग' नामक अध्यायको ऊँची आवाज़में लटकते उच्चारणसे बाँच चुके हैं। और हरबार अध्याय-समाप्तिपर बाऊजीकी ओर देखने लगते हैं, विराट् रूप दिखाती मुद्रामें। हैरान हैं कि प्राण कहाँ अटके पड़े हैं! घण्टोंसे इसी तरह फ़र्शपर पड़े हैं। रातके नौ बजनेको है। मगर····

पण्डितकी यह मुद्रा देखकर हरवंसको अनकुस महसूस होने लगता है। कहीं कुछ शरमिन्दगीका एहसास भी। गोया वही ज़िम्मेदार हो इस स्थितिके लिए। जैसे उसीकी वजहसे सबको अकारण परेशान होना पड़ रहा हो। बाऊजीके सिरकी तरफ़ पालथी मारे बैठा है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद माथेपर हथेली

रखकर देख लेता है, गरम है कि ठण्डा। मगर हथेलीके नीचे ठण्डे माथे की फड़कती नस गोया उसे कोड़ा मार जाती है। और वह निराश ठण्डी साँस लेकर दीवारसे पीठ टेक लेता है।

बाऊजीकी बायीं तरफ़ रीना बैठी है, टाँगें मोड़े। बायें बाज़ूकी टेक ज़मीनपर दिये। दायाँ हाथ बाऊजीकी नब्ज़पर, कई बार घड़ीके सेण्टर सेकण्डकी गतिपर धड़कनोंकी संख्या गिन चुकी है। हर बार सौ से ऊपर! सामान्य स्वस्थ नाड़ी भी एक मिनिटमें बहत्तर या हदसे हद अस्सी बार फड़कती है। और इनका शरीर एकदम ठण्डा हो चुका है, मगर फिर भी बीट्स इतनी अधिक। खुले मुँहमें से कश खिचते हुक्के की-सी गुड़गुड़ाहट सुनाई दे रही है। एक मक्खी रह-रहकर मुँहमें घुसती है, निचले ओठके भीतर तक चहलक़दमी करके स्वेच्छासे बाहर आकर टहलने लगती है। निगाह पड़ जाती है तो पास बैठी बीजी हाथसे उड़ा देती हैं।

हर बार दौरा पड़नेपर बीना और मण्टू एक-एक टाँगको यूँही-सा दाब लेते हैं। थकन और निराशासे बोझिल हो चुकीं उनकी आंखें मिची-मिची जा रही हैं। पास-पड़ोसके दो-एक जने बीच-बीचमें आके थोड़ी-थोड़ी देरको बैठ जाते हैं, और फिर थके-थके स्वरमें 'हरिओइम्,' या 'हरे राम' कहकर उठ जाते हैं। अन्दाज़ कुछ इस तरहका होता है कि, अच्छा भई, चलते हैं, जब साँस निकल जायेगी तब आ जायेंगे।

"....हे कुन्तीपुत्र! यह मनुष्य सदा ही जिस भावका चिन्तन करता रहा हो, अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण होता है...."

हरबंस पण्डितके इन्हीं शब्दोंपर काफ़ी देरको अटक जाता है। सारी ज़िन्दगी ये हमीं लोगोंका ध्यान रखते रहे....इस वक़्त भी क्या इन्हें हमारी ही चिन्ता है?....पर इनकी तो इस वक़्त लगभग सारी इन्द्रियाँ ही काम करना बन्द कर चुकी हैं। न ये बोल सकते हैं, न देख सकते हैं, न सूँघ सकते हैं, न सुन सकते हैं! जब दिमाग़ ही काम नहीं कर रहा तो बाक़ी क्या रह गया! इन्हें तो इस समय जो फ़िट पड़ रहे हैं, इन तकमें कोई कष्ट नहीं हो रहा होगा। कोई और चिन्ता या चिन्तन हो ही कैसे सकता है?....

"....इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर.... इस प्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त हुआ तू, निस्संन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा...."

युद्ध?—रीना उलझ गयी है। आहत योद्धाके रूपमें बाऊजीको धराशायी हुआ देख रही है। यह युद्धार्पित पराजित तन तो अग्निको प्राप्त होगा—और मन-बुद्धि? वो तो पहले ही फ़ालिजको अर्पित हो चुकी। अब किसे किसको अर्पित होना है! खाली मिट्टी बची है। पंचभूतोंकी राख बन जायेगी! चितापर। खेल खत्म! और क्या। बेकार ही बेचारे खटते-खपते रहे उम्र-भर! हमलोगोंकी खातिर। और हम ऐसे निकले कि यह मिट्टी भार लग आयी। डॉक्टर तो कह रहा था, करा दो दाखिल अस्पतालमें।

फ़िट्स कण्ट्रोल होते ही ख़तरा तो टल जायेगा, सेंसेज लौटें, न लौटें, निश्चित नहीं। और फ़िट्स निश्चित रूपसे बन्द की जा सकती हैं। पर अगर बन्द न की गयीं तो फिर चन्द ही घण्टोंके मेहमान हैं। सोच लें। दाख़िल कराना न चाहें तो फ़ौरन घर ले जायें, वरना कहीं यहींपर प्राण न निकल जायें।····और हम दोनों भाई-बहन एक-दूसरेकी तरफ़ तकते रह गये थे। फिर अफ़रा-तफ़रीमें स्ट्रेचर उठवाकर एम्बुलेन्समें धरवा दिया था, और फिर रास्तेभर नब्ज़ टटोलते रहे थे कि किसी तरह घर तक पहुँच जायें। मुँहमें पानी चुआते समय नाकके आगे उँगलीका पिछला भाग करके देख लेती थी कि साँस कैसी चल रही है। फ़िट पड़ती देखकर ढारस बँध जाता था कि अभी है और फ़िट पड़े एक-दो मिनिट बीत जाते तो मनमें होल-सा पड़ने लगता था। घरकी ड्योढ़ीमें स्ट्रेचर उतरता हुआ देख बीजी कमरेसे ही ढाहें मारती हुई दौड़ पड़ी थीं। पीछे-पीछे था पड़ोसियोंका हजूम! “मैं न कहती थी, बेटी-ई ई, लाश ही लेके आना पड़ेगा-आ-आ····मत ले जाओ, अस्पता-आ-आल····” मगर बीजी अभी अपनी बात पूरी भी नही कर पायी थीं कि स्ट्रेचरपर पड़ी ‘लाश’ बेतरह हिलने लगी थी और उस फ़िटसे तो जैसे बीजीको ही फ़िट आ गया था। गोया उतनी ढाहें मारकर उन्होंने कोई ऐसा जुर्म कर दिया हो जिसकी माफ़ी नहीं मिल सकती। या फिर शायद लोक-लाजका एहसास उन्हें पानी-पानी कर गया था या जाने कुछ और हुआ हो कि ग़श खाकर गिरने लगी थीं। मगर हमलोग स्ट्रेचरके साथ इन्हें भी थाम-थूमके भीतर ले आये थे।····“अच्छा, बीजी, अब चाहे ज़मीनपर लिटवा दें। डॉक्टरने जवाब दे दिया है कि कुछ ही घण्टोंकी बात और है····” यह सुनते ही बीजीका श्लथ शरीर एक झटका तो खा गया था, मगर वह बोली कुछ नहीं थीं। झटपट इधरसे उधर उठाने-धरनेमें व्यस्त हो गयी थीं। जाने इतनी फ़ुरती उनमें सहसा कहाँसे आयी थी! फिर तो दीया-बाती करानेसे लेकर पण्डितजीको बुलवा लाने और गीता-पाठ तक का सारा काम इन्होंने देखते-ही-देखते कर-करा डाला था।····मगर अब गोड़ोंमें सिर दिये बैठी हैं। जैसे मल्लाह कश्ती डूब जाने पर।····

हरबंसने बाऊजीका माथा छुआ है। नाकके आगे उलटी उँगली रख दी है। “साँस कुछ ठण्डी-सी लग रही है!”

“अरे, बेटा, अभी तो तुम लोग बेकार परेशान हो रहे हो, बारी-बारीसे कमर सीधी कर लो, जाओ।”

“?” बीजीकी बातपर हरबंस हैरान हो आया है। रीना भी माँका मुँह तकने लगी है कि ये क्या कह रही हैं! पण्डितजी गीता बाँचते-बाँचते रुक गये हैं। मण्टू-बीना शायद स्थितिको समझ नहीं सके हैं।

“नहीं, बीजी, नींद थोड़े ही आ सकती है।”

“परसोंसे लगातार जग रहे हो तुम लोग। बीमार पड़ गये तो····”

"कुछ नहीं होता। आप चिन्ता न करें।" हरबंसने लापरवाहीसे कह दिया है, "आप थोड़ा लेट लें जाके। बहुत थक गयी हैं। न हो तो ज़रा उधर दीवारके साथ ही पीठ टेक लें।···मण्टू, एक तकिया ला दे, बीजीको····"

"उँहुँ, ठीक हूँ। मैं तो इसलिए कह रही थी कि सुबह चार बजेसे पहले प्राण नहीं निकलेंगे, और अभी तो दस भी नहीं बजे होंगे।" और कहते ही बीजीकी आँखें छलक आयी हैं। मुँह फेरकर दीवारके पास सरक गयी हैं।

हरबंसको यह बात बीजीकी खब्तके अलावा और कुछ नहीं लगी है। इतने क़ाबिल डॉक्टरने पूरी तरह एक-एक नस-नाड़ी जाँचकर शामके छह बजे कहा था कि चन्द घण्टोंके मेहमान हैं—हो सकता है घर तक भी न पहुँच पायें। चार घण्टे हो भी गये हैं; साँस तक ठण्डी हो चली है; फ़िट पड़नेकी भी शक्ति अब तनमें नहीं रह गयी। कैसे मरियल-से फ़िट आ रहे हैं! और ये कहती हैं, सुबह चार बजेसे पहले प्राण नहीं निकलेंगे। यानी पूरे छह घण्टे और! असम्भव! निश्चित टाइम तो डॉक्टर भी बतला नहीं सका था, ये कैसे जान सकती हैं?····यूँही बहक रही हैं।····खैर, कोई बात नहीं। इस उम्रमें ऐसा हो ही जाता है। तिसपर बेचारी ग़मोंकी मारी हुई हैं। ऐसे ही, जाने, किस झोंकमें कह डाला है!····

"रिश्तेदारोंको तार-वार तो दे देने थे ना, बेटा-आ!"

"अच्छा जी!"····मगर दूँगा किसे? कहाँ? मुझे क्या पता, कौन····रीना, एक काग़ज़पर सबके नाम-पते नोट कर दो तो!" ····चलो, जान छुटी!

"ताऊजी और मामाजीको ही दे दो, काफ़ी है। बाक़ियोंको चिट्ठियाँ डाल देंगे।"

"नहीं, बेटी, अपनी मौसीको भी तार दे दो। टेलीफ़ोन मिल जाये तो और भी अच्छा हो, सुबह तक आ पहुँचेंगे वे लोग। क़रीब ही तो हैं।····और बेटा, तुम बहूको भी टेलीफ़ोन ही कर दो तो ठीक रहे।"

"तो, बीजी, फिर दीवान चाचाजीको भी फ़ोन करा दें। बाऊजीके इतने गहरे दोस्त हैं वो तो।"

"अरे हाँ, बेटी, मेरी तो मति ही मारी गयी है।····तुम एक परचेपर लिख लो सबके नाम। कहीं कोई छूट न जाये, बेटा। ····तुम्हारी बुआका पता तो इनकी लाल डायरीमें होगा, वह भी उतार लेना, याद से। उसे तार न दिया तो वह जान खा जायेगी। और····और भी कोई····याद कर लो, मेरी तो याददाश्तको जाने क्या हो गया है।"

और हरबंस तारका मज़मून सोचने लगा है।····फ़ादर डाइड····मगर नहीं, अभी 'डाइड' कैसे लिख सकते हैं? 'डेथ बेड' ठीक रहेगा। और नीचे? हरबंस लिखनेसे कौन रिश्तेदार समझ सकेगा कि किसका बाप मर रहा है? कभी किसीसे चिट्ठी-पत्रीका भी रिश्ता नहीं रखा, न किसीके यहाँ गया-आया। तो फिर बाऊजीका नाम साथमें लिख दूँ? हाँ, यही ठीक रहेगा। हालांकि

आना-जाना तो किसी को है नहीं, पर, चलो, सूचना तो देनी ही होगी, जब बीजीकी जिद है तो। कहती तो ये अपनी उस बहूके लिए भी हैं जो बाऊजीको ऐसी हालतमें छोड़कर अपने बहन-बहनोई के पास चली गयी थी और यह कहकर कि कोई बीमारी-बीमारी नहीं, सब बहानेबाजी है। और फिर जाकर आज तक एक कार्ड भी नहीं लिखा! हुँह! नाराज़ है तो रहे! यहाँ ही क्या ग़र्ज़ पड़ी है जो मनाता फिरूँ। रहे वहीं बहनके पास। देखूँगा, कबतक रहती है। पर मैं क्यों देखूँ दाखूँ कुछ भी? क्या ग़र्ज़ है? हरगिज़ नहीं बुलाऊँगा। आयेगी भी तो घरमें घुसने नहीं दूँगा। उलटे पैरों न लौटा दिया तो मेरा नाम नहीं। नहीं जी, नहीं, कोई बात है, भला! उसके साथ तो अब किसी सूरतमें भी गुज़ारा हो नहीं सकता। कैसा गधापन कर बैठा था मैं भी! बिना सोचे-समझे झट शादी कर ली! ज़मीन-आसमानका फ़र्क़ है स्वभावोंमें। आखिर कहाँ तक एडजस्ट किया जा सकता है? ये सम्पर्क तो टूटने ही हैं। बिलावजह लटकाते चले जानेसे कुछ हासिल नहीं····

"ये लो।" रीनाने पते लिखकर काग़ज़ थमा दिया है, और हरबंस उठकर चल देता है। ऐसी स्थितिमें उसका उठकर चले जाना रीनाको पहली मरतबा कुछ ऐसा एहसास करा गया है जैसे अब हर चीजकी जिम्मेदारी कन्धोंपर आ पड़ी है। और कन्धे ज़नाने हैं। और मैं पिस जाऊँगी। और कोई भी मेरी मददको नहीं आयेगा। हालांकि बाऊजीके बीमार होनेके बादसे ही वस्तुस्थिति लगभग यही रही है, पर पता नहीं, इसी समय यह अनुभूति क्यों हो आयी है! अगर हरबंसके लौटनेसे पहले ही बाऊजी चल दिये तो? कैसे सामना करूँगी उस स्थितिका? बीजी तो अपने आपको ही सम्हाल नहीं पायेंगी! बीना-मण्टूको भी मुझे ही दिलासना पड़ेगा। आस-पड़ोसकी संवेदनाओंको भी लेना पड़ेगा! खुदको भी झेलना····उफ़! किस तरह कर पाऊँगी? अकेली? वो सब? तार देनेका क्या था! फिर भी तो दिये जा सकते थे! ऐसी कौन-सी आफ़त थी! बीजी भी एक ही सनकी हो चली हैं! मौक़ा-माहौल नहीं देखतीं, जो जीमें आता है, ठान बैठती हैं! कहीं आस-पास तो इस वक़्त तार दिये भी नहीं जा सकते! कश्मीरी गेट गया होगा। बस भी, पता नहीं, मिली होगी कि नहीं। जाने कितनी देरमें लौटे? और अगर कहीं ट्रंक-कालके झमेलेमें पड़ गया तो पता नहीं कितना टाइम लग जाये। अभी तो इतनी ग़नीमत है कि इन दिनों दिल्लीमें ही है। होता जो कलकत्ते तो क्या बीतती मुझपर? न हो कुछ भी, है तो बड़ा भाई! बड़ोंका होना भर ही बहुत बड़ा आसरा होता है! बाऊजी थे तो भले ही खाटसे लगे रहते थे, पर यह ढारस तो था कि सिरपर कोई है! कमाना-धमाना ही तो सब कुछ नहीं होता। हालांकि मेरी तनख्वाहसे पूरा घर चलता है, पर फिर भी मुझे कभी बोझका भय नहीं हुआ था! लगता था, मैं सिर्फ़ सहयोग दे रही हूँ घरमें। पर अब?···· अब····?

और वह रो दी है। उसे रोती देख बीजी भी। बीना-मण्टू भी। पण्डितजी गीता पढ़ते-पढ़ते रुककर 'हरि-ओ३म्, हरिओ३म्' करते हुए थोड़ा आगेको सरक आते हैं, नाककी सांस जाँचने लगे हैं। 'हरि-ओ३म्!····बस, अब ज्यादा कष्ट नहीं सहना पड़ेगा। इनका हाथ छाती परसे हटा दो।''

मगर रीनाने हाथ हटाया ही है कि फिरसे दौरा शुरू।····हिनहिनकी आवाज़ और हिलते मुँहसे चू रही फेन····नाचती कठपुतलीसे अंग····खिच-खिच रहे···गोया कोई कठपुतली नचानेवाला वहशतमें आकर झटक-झटकके डोरियाँ तुनकने लगा हो। बस, एक तगड़ा-सा तुनका लगनेकी देर है कि सारे तागे टूट-बिखरेंगे!

और अपने आंसू पोंछती हुई रीनाको यह सारा रोना-धोना ख़ुद ही नाटकीय लग उठा है।···रोनेका क्या है! ज़रा-सा भावुक हो लिये और रो लिये! और ऐसे माहौलमें भावुक भी ज़रा देरमें हुआ जा सकता है। कोई एक शब्द बोलके या कोई एक मुद्रा बनाकर। या आत्मभर्त्सना करके। अथवा अपनेको लाचार पोज़ करके!···अभी अगर बाऊजीकी आख़िरी सांस भी निकल जाये, तब भी मैं रो न सकूँ शायद, अगर सिर्फ़ सोचती रहूँ या उस स्थितिको सहज सहती हुई बनी रहूँ। रोनेके लिए तो मुझे एक ख़ास बिन्दु तक अपनेको हेरके ले-आना होगा। और उसके लिए ज़रूरी होगा कि अपने-आपसे बराबर कहने लगूँ कि तुम्हीने हत्या की है इनकी। या इन शब्दोंको मन-ही-मन दोहराना पड़ेगा कि तुम अपने पिताके लिए कुछ भी न कर सकी। या फिर उस वक़्तके करुण माहौलमें फँसे होने की लाचारीपर ही आँसू बहा सकूँगी। और नहीं तो अपने छोटे भाई-बहनके अनिश्चित भविष्यकी कल्पना करनी पड़ेगी अथवा माँके विधवा हो जानेकी बातपर परम्परागत ढंगसे ध्यान जमाना होगा····ख़ुदको अनाथके रूपमें महसूस करना होगा।····कुछ भी करना पड़े, सिर्फ़ इनकी मृत्यु तो अपने आपमें रुला देनेको काफ़ी नहीं होगी!····मगर रोना ज़रूरी ही क्यों है?—क़तई नहीं। मात्र दिखावा है। चाहे दूसरोंको दिखानेके लिए या अपने आपको। और फिर यह आसान काम भी है। ज़्यादा मुश्किल तो है सहना। रोना तो एक तरहका डाइवर्शन है। रोता हुआ आदमी पूरी तरह दुःखी व्यक्ति होता ही नहीं। वह तो, उलटे, दुःखको आनेसे टाल रहा होता या फिर दुःखका नाटक कर रहा होता है। मिश्र देशमें किसीकी मृत्युपर आत्मीय जन साल-भर तक रोते रहते थे, आँखोंपर बोतलें लगाकर। और जिसके आँसू नाप-तोलमें सबसे ज्यादा उतरते थे, उसे ही सर्वाधिक दुःख हुआ माना जाता था! मृतकके शवको उसकी चल-सम्पत्ति समेत पिरामिडमें दफ़ना देना या ममियाँ बनाकर रखनेकी प्रवृत्ति भी तो दुःखके नाटकीय रूपान्तर ही थे।····

रीनाने अपने बैठनेकी मुद्रा बदल ली है। बायीं बाँहकी टेकपर बदनका भार पड़े-पड़े पूरे बाज़ूको सुन्न कर गया है। पीछेको मुड़ी-मुड़ी टाँगें भी सो गयी हैं।···ज़रा देरको किसी अंगमें रक्तका दौरा कम हो जाने-भरसे

कैसा तकलीफ़देह एहसास होने लगता है ! तो फ़ालिजमें क्या बीतती होगी, जबकि पूरे पक्षकी नाड़ियाँ एकदमसे रवानी खो बैठती हैं? आधा शरीर अपने ही आधे हिस्सेका मुरदा ढोता हुआ ! गोया किसी ज़िन्दा इनसानके साथ कोई लाश चिपका दी जाये····ऐसे जीनेसे तो वाक़ई मर जाना बेहतर है । और फिर इनसान तो कोई तभी तक है जबतक वह सोच सकता है, कह सकता है, सुन सकता है···जब दिमाग़के सेल्स ही फ़्यूज हो जायें तो···· उफ़ !···ऐसे किसी साँस लेते शवके साथ एक छत-तले रहनेकी कल्पना भी किस क़दर भयानक है ?····कहीं इसीलिए तो···पर नहीं, वो तो····हमारे बस-बूतेका ही नहीं था इतना खर्च !····दस-बीस रुपयोंके लिए भी क़र्ज़ ही लेना पड़ता····पर इस अस्पतालके खर्च लायक़ तो क़र्ज़ भी मिलना एकदम नामुमकिन था····

"ओठ बिलकुल सूखे पड़े हैं । थोड़ा-सा गंगाजल चुआ दे, रीना····हरिओ३म् !"

'तेरे पीछे पड़ी है कटोरी, बेटा, चम्मच भी बीचमें ही होगा ।"

"अच्छा जी ।···बीना, ज़रा आना । गरदन थामे रह, सीधी करके ।"

पण्डितजीने गीता-पाठका टूटा क्रम फिरसे जोड़ दिया है । मगर एक ही वाक्य पढ़कर बीचमें कहने लगे हैं, "मण्टू, ज़रा धूपकी बत्ती जला दे, बाऊजीके सिरहाने ।···· हरिओ३म् ।····"

"पानी तो अन्दर जा ही नहीं रहा । ज्योंका त्यों निकल आया है ।" और साथ ही फिरसे फ़िट पड़ गया है ।

"बस, तो अब और मत डालना, गंगाजल ।····हरिओ३म्····"

"कपड़ेसे गरदन पोंछ दे, बेटी ।" बीजीने दीवारसे पीठ टिकाये-टिकाये ही गोड़ेपर कुहनी धरके हथेलीसे सिर थाम लिया है ।

"आप थोड़ा लेट ले ना ।"

"ठी-ई-क है, बेटी क्या-आ तो लेटना और क्या न लेटना ।"

"अरे, यह क्या !····"

"क्यों ? क्या हुआ री ?"

"इनकी तो आँखें ही फिर रही हैं, बीजी-ई-ई····"

बीजी झपटके आ झुकी हैं । पण्डितजीने ऊँचेसे 'हरिओ३म्' उच्चार दिया है । बीना-मण्टू एकदम सहम गये हैं ।

"अरे, मण्टू-ऊँ-ऊँ···तू ही गोड़ा दे-दे रे बापको-ओ-ओ । बड़ा तो अभी तक लौटा नहीं-ई····हाय राम··· दीया जलाओ रे-ए-ए····झटसे, तू ही जला बेटा····देख तो, इनके सिरहाने पड़ा है । उलटी कटोरी-तले ।···· बीना री-ई····दियासलाई ला भागके, रसोई से ।····मण्टू, दीया जलाके इनकी छाती पे धर दे जल्दीसे···"

"अजी नहीं भैनजी, अभी नहीं धरना चाहिए ।"

"?"

"उँहुँ ! जब आखिरी हिचकी आ चुके, तब ।····मण्टू, तू गरदन सीधी करके थामे रह, और अपना दायाँ गोड़ा सिरतले रख, बायाँ नहीं ।····रीना, घरमें कुछ गेहूँ पड़े

होंगे ?"

"पता नहीं मौसी।....क्यों बीजी, हैं क्या ?"

"गेहूँ तो मैंने पहले ही मनसवा दिये थे।"

"कोई बात नहीं, भैनजी, थोड़े-से और सही। और साथमें कुछ नक़दी भी।"

"कितना ?"

"इसमें कोई वो नहीं होता। अपनी-अपनी तौफ़ीक़...."

"अच्छा तो, बेटी, सवा रुपया रख दो, और एक तासीमें थोड़े-से गेहूँ डाल ला।"

हरबंस भी लौट आया है। लपक आता है। नब्ज़ टटोलता है, कटोरीमें पड़े जलका एक चम्मच मुँहमें डाल देता है। कुछ चू जाता है, कुछ मुँहमें ही बुदबुदाता रहता है। पानी मुँहमें पड़ते ही फ़िट आ जाता है, हिलते अंगोंको थामनेकी कोशिश करता है, मुँहसे बहती हुई झागको कपड़ेसे पोंछ डालता है।

"अभी तो नब्ज़ बिलकुल ठीक चल रही है।"

"कित्ते बजे हैं, बेटा ?"

"दो।"

"हाँ-आँ-आँ...जभी तो! मैं न कहती थी, चार बजेसे पहले नहीं...."

"हरिओ३म्!...भैनजी, वो तो...साँसोंकी गिनती लिखी ही रहती है, हर प्राणीकी। उससे न तो एक साँस कमती, न एक बढ़ती लेनेका हुकुम होता है। तो जितनी साँसें इनकी लिखी हुई हैं, उतनी तो हर हालतमें इन्हें पूरी करनी हैं, हरिओ३म्।" और कहते ही गोदीमें खुली पड़ी गीताका पाठ फिरसे शुरू कर देते हैं, "....हे पार्थ! यह नियम है कि...भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटिके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यस्वरूप परमपुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है,...हे अर्जुन! वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको ओंकार कहते हैं...उस परमपदको-मैं तेरे लिए संक्षेपसे कहूँगा...." पण्डितजी मुद्रा और स्वरसे इस समय ऐसा जतला रहे हैं गोया वही कुरुक्षेत्रके मैदानमें अर्जुनके सारथि बने बोल रहे हैं, और बाऊजीके फ़िटसे काँपते हुए बदनको लक्ष्य करके उन्हें भयमुक्त करनेके लिए उपदेश दे रहे हों—"हे अर्जुन! सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर....अपने प्राणको मस्तकमें स्थापित करके योगधारणमें स्थित हुआ जो पुरुष 'ॐ' ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीरको त्याग जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है।....हरिओ३म्!...."

बीजी फिर दीवारसे पीठ टेककर श्लथ हुई पड़ी हैं। बीना पालथी मारके दोनों बाँहें पीछेको टेके बैठी हुई हैं। मण्टू अभी तक बाऊजीको गोड़ा दिये बैठा है।

"तकियेपर टिका दे, बेटा, थक जायेगा तू।....हरबंस, तार दे दिये सब ?"

"जी।"

"बहूको भी ?"

"जी हाँ, ट्रंककाल भी कर दी है।"

"तब तो वक्तपे पहुँच ही जाये, शायद।"

"……"वक़्तपर पहुँचे या बे-वक़्त, इतना तो कह ही सकूँगा कि देख ले, ये बहानेबाज़ी कर रहे हैं, मरे थोड़े ही हैं ! यही जतानेके लिए तो उसे बुला भी रहा हूँ ! नहीं तो और अब मुझे कोई उसे रखना थोड़े ही है, यहाँ ! ऐसी ज़िद्दी औरतके साथ तो मेरा गुज़ारा हो ही नहीं सकता । जिसे इतना भी खयाल नहीं आया कि····उफ़ ! मुझे तो उसे अभी भी नहीं बुलाना चाहिए था । वह तो एक तरहसे मेरे मुँहपर थूककर चली गयी । ····बाऊजीकी इतनी सीरियस बीमारीको बहानेबाज़ी कहकर उसने उनके मुँहपर भी तो तमाँचा मारा था ! उसे तो····"

····कितनी-ई पुरानी बात याद आ गयी है !····मैं तब दूसरी या तीसरी क्लासमें पढ़ता था, कि बाऊजीको मेरे सामने एक आदमीने तमाँचा मारा था । वे मेरी उँगली पकड़े खड़े थे । बाज़ारमें, वो सामनेसे आता हुआ मिला था । पहले तक़रार होती रही थी । कुछ रुपये लेने थे शायद उसे ! पिताजीके सिर्फ़ यही शब्द याद हैं कि भई, थोड़े दिन और सब्र करो, मैं भाग तो नहीं रहा । दूसरी चीज़ याद है तमाँचा और तीसरा तमाँचा खाकर बाऊजीके चेहरेकी तमतमाहट और मेरी उँगली पकड़े हुए उनके हाथकी काँपती हुई गिरफ़्त । मैं तो, ख़ैर, सिवा सहम जानेके और कुछ कर ही नहीं सकता था, पर उस आदमीकी सूरत अभी तक मेरी पुतलियोंमें ज्योंकी त्यों अंकित है; हालाँकि उसके बाद मैंने उसे कभी नहीं देखा । पता नहीं क्यों, कहीं भी तमाँचा शब्दके आते ही मेरे ज़ेहनमें वही चेहरा आ कूदता है, जो अब मेरी पत्नीके चेहरेसे मिलता-जुलता लगने लगा है ।··· कुछ लोगोंको ज़िन्दगी-भर उनकी अपनी ही नियति खींच-खींचकर तमाँचे मारती रहती है । और अन्त भी तमाँचा मारकर ही करती है । बाऊजीको तो आख़िरी तमाँचा ऐसा पड़ा है कि मुँह टेढ़ा करके रख दिया है ।··· सिर्फ़ मुँह ही क्यों, पूरा जिस्म किसी घातक चोट खाके गिरे व्यक्ति-सा तड़फड़ा रहा है । ···समझमें नहीं आता कि यह कैसा न्याय है नियतिका ! इन जैसे आदमीके साथ ऐसा सलूक ? जिस शख्सने अपनी ज़िन्दगीका एक लमहा भी अपने लिए नहीं जीया··· हमेशा हर-कुछ सहा-ही-सहा, और कुछ कहा तक नहीं···सुख नामकी चीज़ जिसके लिए उतनी ही अजनबी और काल्पनिक रही, जितनी कि किसी भी व्यक्तिके लिए भगवान्, जो सिर्फ़ एक आसरेका फ़रेब-भर है ···यूँ, फ़रेब तो खुद इनसान भी है···इसकी सारी आस्थाएँ और विश्वास भी । सब रिश्ते-नाते भी । ये पूराका पूरा ताम-झाम ही !···ग़र्ज़····ज़रूरत ···मतलब···हमें अब बाऊजीकी ज़रूरत नहीं थी, इसीलिए उन्हें किसी भी तरह ज़िन्दा रख पानेकी कोशिश नहीं कर सके । यह ठीक है कि वह कोशिश जितना खर्चा माँगती थी, वह हमारे बससे बाहर था । पर अगर इनकी ज़िन्दगी हमें दरकार होती तो क्या बससे बाहर जाकर भी कोशिश न करते हम ?···और फिर हम दोनों भाई-बहनने मिलकर कितना बड़ा फ़रेब-भरा नाटक खेला है आज, कि 'डॉक्टरने जवाब दे दिया है'

कहकर इन्हें ज़मीनपर ला पटका है, और आख़िरी साँसका इन्तज़ार कर रहे हैं—बेताबीके साथ।···यह तो सरासर मर्डर है। कोल्ड ब्लडेड मर्डर। निर्मम हत्या। क़त्ल-बे-रहम।···वो तो, ख़ैर, ठीक है कि डॉक्टरने कहा था, अगर ये फ़िट बन्द न किये गये तो चन्द घण्टोंके मेहमान हैं, मगर फ़िट बन्द तो किये जा सकते थे, और ये ज़िन्दा भी रह सकते थे; चाहे अपंग और बेसुध ही पड़े रहा करते। डॉक्टरने तो, बल्कि, तुरन्त अस्पताल-में दाखिल करानेका परचा भी लिखकर दिया था। और हम ले आये घर। ऊपरसे···

"बीजो, थोड़ा पानी तो दीजिए! इनके ओंठ एकदम सूखे पड़े हैं····"

'अभी डाला था, गंगा-जल। अन्दर गया ही नहीं।"

"हरि-ओ३म्! ··· भैनजी, बड़ी लायक़ औलाद पायी है, लालाजीने! इन बच्चोंने तो अपनी तरफ़से किसी कोने भी कोई कसर नहीं उठा रखी। हमलोग देख नहीं रहे क्या? सुबहसे कितने डॉक्टरोंकी फ़ीस भर चुके हैं! गाड़ीमें डालकर बड़े अस्पताल भी लेके गये। पर जब किसीकी भगवान्के यहाँसे ही घट गयी हो, उसके लिए बन्दोंके हाथमें क्या रह जाता है।····"

"हाँ, पण्डितजी-ई-ई ···मौतके आगे किसकी पेश चली है आजतक? बड़े-बड़े राजों-महाराजों तकको नहीं। हम-आपकी तो गिनती ही क्या है।"

"ब-अ-स, भैनजी, यही तो लीला है, उसकी! वरना तो फिर माने कौन उसको? हरि-ओ३म्।····और अगर वो चाहे तो ऐसे-ऐसे चमत्कार कर डाले कि बड़े-बड़े डॉक्टर-सरजन मुँहमें उँगली डालके खड़े रह जायँ। ····होने को ऐसा तक भी हुआ है, भैनजी, कि घरवाले लाश उठाके ले आये हैं श्मशान-में; चिताकी लकड़ियाँ तक चिनके मुरदा डाल दिया और लम्बू तक लगा दिया, और तब जी उठा। हरि-ओ३म्! ····उसकी माया वही जाने। लीला अपरम्पार है बंशीवाले-की। अह-हअ्-हअ्···· । हरि-ओ३म्।····"

हरबंसने कटोरीमें-से चम्मच भरके पानी बाऊजीके खुले मुँहमें चुआ दिया है, वही पहले वाली हालत। कुछ मुँहमें, बाक़ी बाहर। तभी फ़िट पड़ गया। अबकी बार मुँहमें-से झागके साथ-साथ कुछ विचित्र-सी आवाज़ भी निकली है, और दाँतोंमें जीभ भिंच जानेसे कुछ ख़ून भी। और गरदन भी, जो पहले एक ही ओरको लटकी रहती थी, अब दोनों तरफ़ पटख-पटखके पड़ रही है। ····बस, लगता है, अब आयी कि आयी आख़िरी हिचकी। ····ख़ून मिली झागको कपड़ेसे पोंछते समय हरबंसका मन फिरसे हत्याकी अनुभूतिमें भीग आया है—निर्मम हत्या····क़त्ल-बे-रहम···· । ···बाऊजी-ई···· । क्षमा कर दीजिए, बाऊजी-ई-ई···हम आपके लिए और कुछ न कर सके, और आपकी दुर्दशा भी देखी न जा सकी, इसलिए आपकी हत्या करनी पड़ी। मगर यह मर्सी-मर्डर है···· क़त्ल-बा-रहम, बे-रहम नहीं। ····आपने हमारी ख़ातिर अपनी पूरी ज़िन्दगी ग़ारत कर डाली। हम आपके प्रति इतने बे-रहम

हो ही कैसे सकते थे ? हमने तो, उलटे, आपपर रहम····पर नहीं, नहीं बाऊजी, मैं ग़लत कह रहा हूँ। एकदम झूठ बोल रहा हूँ।···· रहम तो हमने अपने-आपपर खाया। बिलकुल अपने-आपपर ! अपनी ही हालतपर रहम खाया कि कहाँसे इतना पैसा लाते जो आपके फ़िट बन्द करा सकते····फिर बादमें कहाँसे इतनी सहन-शक्ति लाते जो आनेवाले कई वर्षों तक आपके जीवित शवको ढोये फिरते ? ····असलमें तो, बाऊजी, किसीपर भी रहम खानेवाली बात ही सरासर झूठ है। रहम तो सिर्फ़ अपने-आपपर ही खाया जा सकता है। किसीपर रहम खानेकी बात तो महज शिष्टाचारवश कह दी जाती है ना ! और मैं, कम-से-कम, इस समय आपके साथ शिष्टाचार नहीं बरत रहा। सच कहता हूँ, बाऊजी, अपने-आपपर रहम खानेके लिए हम फ़ितरतन मजबूर हो गये थे····

····अरे! साढ़े तीन बज गये!····बीजीकी ही बात सच निकली यह तो! पर है कमाल, इन्होंने छह घण्टे पहले कैसे कह दिया था कि····। कहीं यही तो नहीं है टेलीपैथी ?··· ख़ैर, हटाओ। जो हो।····चान्सकी बात है, और कुछ नहीं। मात्र संयोग।···मगर कुछ संयोग वाक़ई चमत्कारकी नसलके लगते हैं।

फ़िट खत्म हो गया है। चेहरेकी मुद्राओंमें भी कुछ परिवर्तन होने लगा है। खुली आँखोंकी ठहरी हुई पुतलियाँ चलने लगी हैं। पलक भी कुछ-कुछ हिल रहे हैं। हरबंसने माथेपर हथेली रख दी है, पहलेकी अपेक्षा कुछ गरमाहट है, नाककी साँस भी गरम है।

"ज़रा पैर छूके देखना तो, मण्टू!"

"गरम है।"

रीना नब्ज़ टोहने लगी है—"नार्मल है।"

चेहरा भी, जो अबतक बुझा-बुझा था, धीरे-धीरे चमकने लगा है।

"हरबं-अं-स!" रीना झुक आयी है।

"हाँ ?"

'देखो तो····देखो, हरबंस, मुँह अब बिलकुल भी टेढ़ा नहीं रहा। ओठ भी बन्द हो गये हैं। और···"

हरबंस ग़ौरसे देखने लगा है।····वाक़ई स्थिति आशाजनक हो आयी है, अचानक! आश्चर्यजनक सीमा तक।····कहीं हमारे यहाँ भी तो कोई चमत्कार नहीं होने जा रहा? ····अब तो····अरे !····माथा खासा गरम हो गया है। चमक भी रहा है।····इस समय तो इनका चेहरा देखकर कोई कह ही नहीं सकता कि ये फ़ालिजके मरीज हैं और आखिरी हिचकीके इन्तज़ारमें जमीनपर उतारे हुए पड़े हैं।····अगर ये बिलकुल ठीक हो जायें तो मज़ा ही आ जाये! कमाल हो जायेगा।····

"बाऊजी !····बाऊजी-ई !!···बाऊजी-ई-ई····! ····मैं बुला रही हूँ, बाऊजी !!!"

"!"

"!"

"!"

"मेरी तरफ़ देख तो रहे हैं! आँखें भी झपक रहे हैं !····बाऊजी, मैं हूँ, रीना, आपकी बेटी! मुझे पहचानते नहीं ?···देखो,

अवधी व्रत-कथाएँ

डॉ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय

■ ■ ■

व्रत-कथाएँ केवल भारतीय लोक-साहित्य और पुराण-साहित्यकी विशेषता नहीं । सभ्यताके प्रारम्भिक कालसे ही मनुष्य अपनी सुख-समृद्धि और रोग-शोक-कष्टकी निवृत्तिके लिए देवी-देवताओं, अलौकिक शक्तियों और पशु-पक्षी-वृक्ष-नदियों आदिको मनाता-पूजता आया है । नानाव्रत-अनुष्ठान उसकी इसी भावना-चिन्ताके द्योतक हैं । देश-काल और जातिगत विभिन्नताओंके कारण उसके रूप और भावमें भले ही विभिन्नता आयी, पर ये व्रत-अनुष्ठान प्रत्येक जातिकी धार्मिक मान्यताओंका अंग हैं और सम्बन्धित कथा-आख्यान उसके पुराण साहित्यपर आधारित ।

प्रस्तुत कृति लेखकके तेरह वर्षके परिश्रमका प्रतिफल है । इसमें विभिन्न व्रत-कथाओंके सर्वमान्य रूप ही संग्रहीत नहीं, सम्बन्धित पर्वों एवं विधि-विधानोंकी व्याख्या भी दी गयी है और साथमें कुछ आलेपनाएँ भी । कहनेको ये अवधीके क्षेत्रकी हैं, पर कई कथाओंके दिये गये तमिल और मराठी रूप उस तथ्यको रेखांकित करेंगे कि सामान्य भेदोंके साथ ये समूचे देशमें प्रचलित हैं और कि ऊपर जितना भी वैभिन्य दिखे, देशके लोक-जीवनकी मूल प्रेरणाओंका सांस्कृतिक स्रोत एक है । वास्तवमें लेखक-द्वारा संकलित इस सारी सामग्रीका उपयोग यहीं शेष नहीं हो जाता, यह तो लोक-साहित्य और लोक-संस्कृतिके शोधार्थियोंके लिए आधार-सामग्री भी होती है। इसके वैज्ञानिक अध्ययनसे अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकेंगे। अनेक दृष्टियोंसे इस कृतिको प्रत्येक हिन्दू घर : परिवार अपने लिए आवश्यक पायेगा ।

मूल्य ६.००

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र :

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-६

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत

समकालीन काव्य-साहित्य की विशिष्ट उपलब्धियाँ

ओटक्कुषल (ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त)	जी० शंकर कुरुप	८.००
एक और नचिकेता	जी० शंकर कुरुप	३.००
माया दर्पण	श्रीकान्त वर्मा	३.५०
अग्निबीज	गोविन्दचन्द्र पाण्डेय	३.५०
शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
तार सप्तक (द्वितीय परिवर्धित संस्करण)	सं० अज्ञेय	८.००
इतिहास पुरुष	देवराज	३.५०
आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
संक्रान्त	कैलाश वाजपेयी	३.००
चाँदका मुँह टेढ़ा है (द्वि० सं०)	ग० मा० मुक्तिबोध	८.००
हिमविद्ध	जगदीश गुप्त	३.००
हम विषपायी जनम के (द्वि० सं०)	बालकृष्ण शर्मा नवीन	१६.००
बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
आँगन के पार द्वार (पुरस्कृत, द्वि० सं०)	अज्ञेय	३.००
रूपाम्बरा	सं० अज्ञेय	१२.००
देशान्तर (द्वितीय संस्करण)	धर्मवीर भारती	१२.००
अनुक्षण	प्रभाकर माचवे	३.००
कनुप्रिया (तृतीय संस्करण)	धर्मवीर भारती	३.००
तीसरा सप्तक	सं० अज्ञेय	५.००
वाणी (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण)	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
सौवर्ण (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण)	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
धूप के धान (द्वितीय संस्करण)	गिरिजाकुमार माथुर	३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रस्तुत

युगीन चिन्तन
शोध अध्ययनात्मक
महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

वाग्धारा	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	४.००
चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
एक साहित्यिककी डायरी (द्वि०सं०)	ग० मा० मुक्तिबोध	४.००
कविवर बनारसीदास	डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	१०.००
हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ	कृष्णाचार्य	७.००
नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
विवेकके रंग	सं० डॉ० देवीशंकर अवस्थी	७.००
हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
जैन भक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
रेडियो वार्ता शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
रेडियो नाट्यशिल्प (द्वि० सं०)	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
ध्वनि और संगीत (द्वि० सं०)	प्रो० ललितकिशोर सिंह	४.५०
भारतीय ज्योतिष (च० सं०)	डॉ० नेमिचन्द्र जैन	८.००
प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन (तृ.सं.)	डॉ. भोलाशंकर व्यास	५.००
भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ. मंगलदेव शास्त्री	७.००
समाजवाद (छठा संस्करण)	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
कालिदासका भारत : भाग १-२	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	९.००
दर्शन : अनुचिन्तन	म०म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

यात्राएँ ! और यात्राएँ !

* *

उपन्यास-जैसी रोचक शैलीमें लिखी यात्रा
साहित्यमें नया मान स्थापित करनेवाली
ये अद्वितीय कृतियाँ

एक बूँद सहसा उछली

'अज्ञेय'

७.००

चीड़ों पर चाँदनी

निर्मल वर्मा

३.००

हरी घाटी

डॉ० रघुवंश

४.५०

सागर की लहरों पर

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

४.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
बिक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष रोड, दिल्ली-६

हरबंस, ओठ कुछ-कुछ हिल रहे हैं। बोलना चाहते हैं, शायद ! पर अभी बोल नहीं पा रहे।""थोड़ा पानी देना....''

हरबंस चम्मच भरके मुँहमें डाल देता है। अबकी बार सारा पानी हलक़में चला गया है। सबके चेहरेपर आशाकी चमक दौड़ गयी है। हरबंसके सीनेमें धड़कनें तेज़ हो आयी हैं। पण्डितजी बार-बार 'हरि-ओ३म्, हरि-ओ३म्' कहने लगे हैं। बीजी भी क़रीब सरक आयी हैं।

हरबंसने दोनों हाथोंसे बाऊजीका सिर थाम लिया है। चेहरेपर झुका हुआ है।.... हद हो गयी, ऐसी चमक तो इनके चेहरेपर मैंने आज तक नहीं देखी थी। एकदम ही नहीं लगता कि ये कभी बीमार हुए भी थे। अब तो फ़िट पड़े भी काफ़ी देर हो गयी ! शायद अब पड़े भी न ! और शायद अब बिलकुल ही ठीक हो जायें।....फिर तो अच्छा ही हुआ कि बेकारमें पैसा भी नहीं फूंका और ये ठीक भी हो गये।....मैं समझता हूँ, अब इन्हें खाटपर डाल देना चाहिए। कलसे बेचारे कष्ट भोग रहे हैं। अब कुछ देरको सो लें तो एकदम स्वस्थ हो जायेंगे।....पर जिन्हें तार दिये हुए हैं ? फ़ोन किये हुए हैं ? संगरूरसे वो तो आ ही जायेगी, दोपहर तक !....मगर....वो इन्हें भला-चंगा देखकर क्या सोचेगी ? कहेगी नहीं कि बहानेबाज़ी करते हैं ? तब मैं उसे ताना कैसे दे पाऊँगा ? उलटे, मेरी ही हेठी हो जायेगी, उसके आ पहुँचनेसे। इतनी तनकर गयी थी। जाके खत तक नहीं लिखा। और मैं हूँ कि तार और ट्रंककाल करके बुलाया ! पत्नीकी नज़रमें हेच हो जाऊँगा। उफ़ ! इससे तो बेहतर होता कि आकर लाश ही पड़ी हुई देखती और अपने कियेपर पछताती, रोती, मुझसे क्षमा-याचना करती, और मैं उसे...

"हरि-ओ३म् ! हरि-ओ३म् बोलो, सब जने !...हरबंस, गोड़ा दे दो पिताको।...रीना, गंगाजलका छींटा दे दे !...भैनजी, अब दीया तैयार करा ले, छातीपे धरनेको!...मण्टू, ज़रा वो खिड़की भी खोल डाल।..."

हरबंस हक्का-बक्का होकर सब देखने लगा है, कभी बाऊजीकी तरफ़ तो कभी बाक़ी सबकी ओर....

और देखते-ही-देखते बाऊजीकी आँखोंके गोलक पलट गये हैं...हिप् की आवाज़के साथ साँस बन्द हो गयी है...मुँह खुल गया है...चेहरेकी सारी चमक एकबारगी ही बुझ गयी है।

"हरि-ओ३म् !" और पण्डितजीने आगेको झुककर अपने हाथोंसे बाऊजीके पलक मूँद दिये हैं और चेहरेको चादरसे ढक दिया है। "हरि-ओ३म्।"

अब सब जने दहाड़ें मार-मारकर रोने लगे हैं। आस-पड़ोस जुट आया है। कमरेमें एक अजब-सी व्यस्तता भर गयी है। गोया जिस खास पाहुनेका बेक़रारीसे इन्तज़ार था, वह अचानक आ गया हो।

■ ■

४७६४, माडल टाउन,
यमुना नगर (अम्बाला)

खास पाहुना : सुदर्शन चोपड़ा
१२

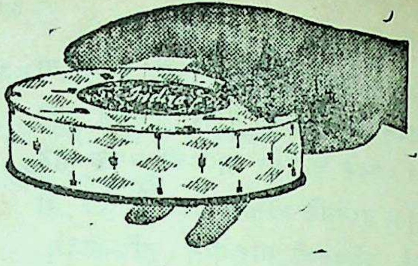

आकर्षक
पैकेज
आकर्षक
लेबेल ************* क्रेता की दृष्टि आकर्षित
करने को बाध्य है

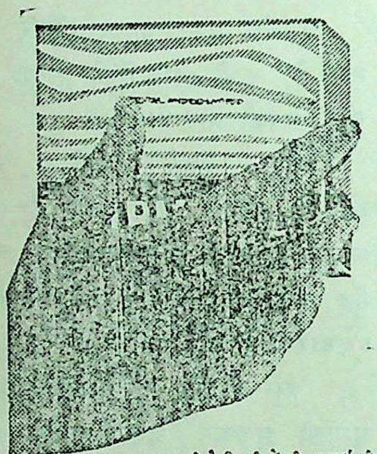

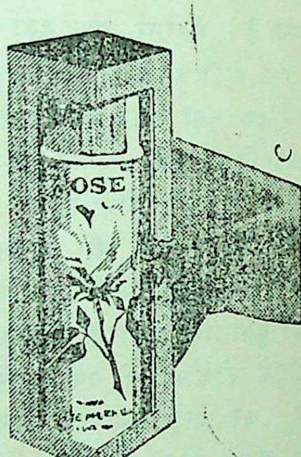

यह सही है कि चीजों की अच्छाई ही क्रेता को उन्हें खरीदने को मजबूर करती है— साथ ही साथ उन पैकेजों की विशेषता भी जिनमें चीजें हिफाजत से बन्द रहती है। पैकेज की सुन्दरता उसमें बन्द चीजों की सुन्दरता ही प्रगट करती है।

रोहतास डालमिया नगर स्थित अपने आधुनिक और उन्नतशील कारखाने में कार्टन और पैकेज बनाने लायक सर्वोत्तम पैकेजिंग पेपर और बोर्ड तैयार करते हैं, जिन पर बहु-रंगे छपाई के लिये भी भरोसा किया जा सकता है।

रोहतास पेपर्स और बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

ROHTAS

रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :—साहू जैन लिमिटेड, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१
सोल सेलिंग एजेण्ट्स :—अशोका मारकेटिंग लिमिटेड, १८ए, ब्राबोर्न रोड, कलकत्ता-१

IPC : RI : 492 H

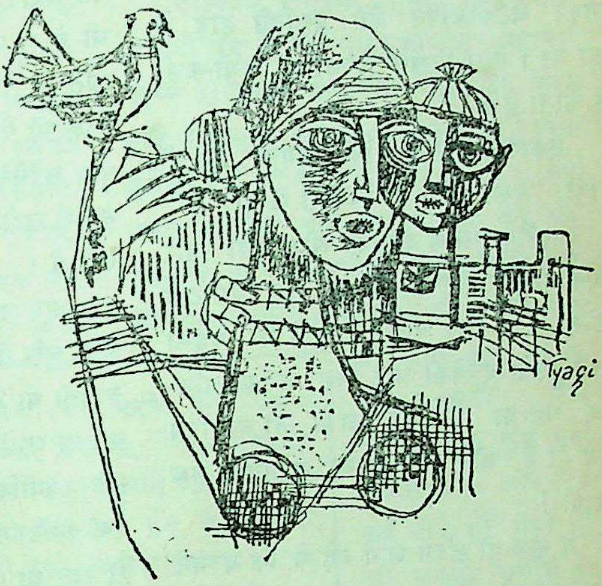

बच्चा | श्रवणकुमार

वे तीनों कनॉट प्लेसके कॉरिडोर्समें भटक रहे थे, पति, पत्नी और बच्चा। हर दुकानकी शो-विण्डोके सामने वे कुछ-एक क्षण रुकते, उनके भीतर प्रदर्शित चीज़ोंको भक-हुई आंखोंसे देखते और फिर घुटे-घुटेसे आगे बढ़ जाते। कभी यह भी होता कि भीड़का रेला उन्हें अपने साथ धकेल ले जाता।

त्योहारका दिन था। हर दुकानपर, हर कोनेपर, खरीददार ऐसे टूटे पड़ रहे थे जैसे मक्खियां शहदपर टूटती हैं। लगता था जैसे आजके दिनके लिए ही लोगोंने अपनी सारी पूंजी जुटा रखी थी, जैसे वे अपने आपको लुटा देना चाहते थे। जहां उन्हें एक चीज़की ज़रूरत थी, वहां वे दो खरीद रहे थे। बाज़ारमें जैसे पैसेकी बाढ़ आ रही थी। कुछ लोग, जो भी खरीदते जाते थे, उसे अपनी कारोंमें जमा किये जा रहे थे। कुछने इस कामके लिए छोटे-छोटे मज़दूर-बच्चोंका सहारा ले रखा था; वे अपनी झल्लीमें उनके दो-दो, चार-चार 'नग'

लादे, उनके साथ टँगे-टँगे-से एक दुकानसे दूसरी दुकानकी ओर घिसटते चले जा रहे थे। इन चमचमाती कारोंवालोंके उजले, बेशक़ीमती कपड़ोंका कुछ अपना ही रोब था। उनका चटकीलापन जैसे प्रकृतिसे होड़ ले रहा था। ऐसा निखार दिल्लीपर कभी-कभी ही आता है।

एकाएक बच्चेने माँकी उँगली छुड़ानी चाही, "मम्मी, मुझे वो गुब्बारा ले दो!"

पत्नीने ग़ुस्सेसे बच्चेकी ओर देखा और उसके बाज़ूपर झटका देते हुए उसे घसीटती हुई-सी आगे बढ़ चली। पतिने भी घुड़की भरते हुए-से बच्चेकी ओर देखा, उसका अभिप्राय यह था कि भई, अभी तो बाज़ारमें आये ही हैं और तुमने अपनी फ़रमाइश शुरू कर दी!

वे कुछ ही क़दम आगे बढ़े थे कि बच्चेने फिर ज़िद की, "पापा, हम कुल्फ़ी खायेंगे, हम रच्छगुल्ले खायेंगे!"

और पापा एकाएक भड़क उठे, "इसकी आदतें दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही हैं। इसको डाँटकर रखा करो।"

लेकिन बच्चेकी फ़रमाइश जारी थी, "हमें बूट ले दो न, हमें चमकनेवाली च्छैण्डल ले दो न! देखो, मेरी च्छैण्डल तो टूट भी गयी है!"

"ले देंगे, ले देंगे, बेटे!" पतिने कहा, "तुम इतनी ज़िद न किया करो। ज़िद मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती।"

पत्नी एक हॉकरके सामने रुकी। वह जूड़ेके नेट बेच रहा था। "ये नेट विलायती हैं," वह कह रहा था, "दो साल तक इनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।"

पत्नीने बिना अधिक सोचे उससे दो नेट ख़रीद लिये। हॉकरके पास जूतेके फ़ीते भी थे। पतिको याद आया कि उसके बूटके फ़ीते टूट रहे हैं, और उसने पत्नीको फ़ीतोंके लिए भी पैसे दे देनेको कहा। बच्चेका शौक़ पूरा करनेके लिए उन्होंने उसको बालोंकी सुइयाँ ख़रीद दीं। अब वे तीनों फिर चलने लगे थे।

अब तक वे कनॉट प्लेसके दो चक्कर लगा चुके थे और तीसरा लगा रहे थे। पत्नी चाहती थी कि उसके लिए एक सफ़ेद कार्डिगन ख़रीदा जाये जिसे वह हर साड़ीके साथ पहन सके, क्योंकि तीन वर्ष पहले उसने स्वयं ही एक कार्डिगन बुन लिया था जो अब बदरंग हो रहा था। पति चाहता था कि उसके लिए एक कोटका कपड़ा ख़रीदा जाये, क्योंकि वह पिछले आठ वर्षोंसे कोई कोट न बनवा सका था और अब जो कोट पहने हुए था उसकी हालत ऐसी थी कि जगह-जगहसे उधड़ रहा था और रंगत भी बेजान-सी लगती थी। बल्कि उसमें तो अब इतना दम भी नहीं रहा था कि उसे पलटवाया ही जाता।

किसी तरह खींच-तानकर, बड़ी मुश्किलसे, वे पिछले आठ महीनोंमें साठ रुपये बचा पाये थे। पाँच सौ में-से पच्चीस-तीस तो दफ़्तरमें ही कट जाते हैं। फिर हर महीने सौ-सवा सौ मकानका किराया, पाँच-दस बिजली-पानीके, पन्द्रह-बीस बसका किराया, बीस-पच्चीस जेब-ख़र्च, और····और····।

पहले तो उन्होंने यही फ़ैसला किया था कि वे किसी सस्ती-सी जगह में रहेंगे ताकि मकान-किराया पचाससे ज़्यादा न देना पड़े, लेकिन फिर यह सोचकर कि ग़लत लोगोंके बीच रहकर बच्चेपर ग़लत प्रभाव न पड़े, उन्होंने एक 'माडर्न' बस्तीमें ही रहनेका निश्चय किया था। फिर बच्चेको भी अच्छे स्कूलमें भेजना पड़ा। हर महीने उसकी फ़ीस इत्यादिके ही पचास हो जाते हैं, फिर विण्टर-समरकी ड्रेसोंपर अलग। पतिने तो एक बार पत्नीको सुझाया भी था कि वे बच्चेको किसी म्युनिस्पैलिटीके स्कूलमें भरती करवा दें, क्योंकि आखिर वे भी तो उन्हीं स्कूलोंमें पढ़े हैं, लेकिन पत्नी राज़ी नहीं हुई थी। उसका कहना था कि म्युनिस्पैलिटीके स्कूलोंमें एक तो नर्सरी क्लास होती ही नहीं, और दूसरे वहाँ बच्चेकी 'पर्सनैलेटी' नहीं बनती।

पत्नीकी बात सुनकर पति हँस दिया था और फिर बोला था, "लेकिन तुम्हें पता नहीं, हमारे नेता पब्लिक स्कूलोंकी कितनी निन्दा करते हैं!"

"हाँ, निन्दा तो करते हैं," पत्नीने तड़ाकसे उत्तर दिया था, "लेकिन ज़्यादातर उनके बच्चे ही उन स्कूलोंमें पढ़ते हैं।" और फिर दोनों एक साथ हँस दिये थे और उन्होंने भी अपने बच्चेको पास ही के एक अँगरेज़ी स्कूलमें दाखिल करवा दिया था जहाँ उसे 'नमस्ते' की बजाय 'गुडमार्निंग' और रूमालकी बजाय 'हैंकी' कहना सिखाया जाने लगा।

वास्तवमें, खरचेका हिसाब उनका ठीकसे कभी बँध ही नहीं पाया था। हर महीनेकी पहली तारीखको तनख़्वाह मिलनेका केवल उन्हें हलका-सा एहसास-भर होता था, वरना हालत वैसी-की-वैसी ही रहती थी। वही मकान-किराया, वही राशनवालेके पैसे, वही दूध-ख़र्च, वही बस-भाड़ेकी जुगाड़, वही बेबीकी स्कूल-फ़ीस! कभी-कभी तो वे परेशान-से हो जाते थे क्योंकि वक़्त-बे-वक़्तके लिए उनके पास कुछ नहीं बचता था। और फिर कई चीज़ें तो ऐसी थीं जो उनकी सूचीसे ही निकल गयी थीं, और कई चीज़ें धीरे-धीरे निकलती जा रही थीं। मसलन फल····और फिर बादमें अण्डे! और फिर जो काम अधूरा रह जाता था, वह अधूरा ही रह जाता था। जैसे, उनके पास एक खिड़कीके लिए तो पुराना परदा था लेकिन दूसरी खिड़की वे ढक ही नहीं पा रहे थे, और रातको सोते समय उसपर एक मामूली-सी सफ़ेद चादर ओढ़ा देते थे ताकि उनकी 'प्राइवेसी' किसी तरह बनी रहे, यद्यपि उसके महीन तार भीतरी आकृतियोंका धुँधला आभास देनेसे लाचार थे। हाँ, यह तो ग़नीमत थी कि

"हाँ, निन्दा तो करते हैं," पत्नीने तड़ाकसे उत्तर दिया था, "लेकिन ज़्यादातर उनके बच्चे ही उन स्कूलोंमें पढ़ते हैं।" और फिर दोनों एक साथ हँस दिये थे और उन्होंने भी अपने बच्चेको पास ही के एक अँगरेज़ी स्कूलमें दाखिल करवा दिया था जहाँ उसे 'नमस्ते'की बजाय 'गुडमार्निंग' और रूमालकी बजाय 'हैंकी' कहना सिखाया जाने लगा।

डॉक्टरी इलाज सरकारी नौकरी होनेके कारण मुफ़्त था वरना बीमारी आनेपर जानके लाले पड़ सकते थे। लेकिन अब भी कभी-कभी उन्हें सरकारी डॉक्टरोंसे चिढ़ हो उठती थी, क्योंकि वे अपनी तनख्वाहें बढ़वानेके लिए तो नारे लगाते हैं और हड़ताल कर देनेकी धमकियाँ देते हैं और मर्ज़की बहुधा ठीकसे जाँच किये बिना ही दवा लिख देते हैं, जबकि वह दवा प्राप्त करनेके लिए उन्हें कई बार घण्टों लाइनमें खड़े रहना पड़ता है।

उनके अड़ोस-पड़ोसमें दिन-प्रतिदिन, नित-नये डिज़ाइनोंकी बिल्डिगोंको उठते देखकर एक दिन पतिके मुँहसे अनायास ही निकल गया, "मैंने की भी तो यह सरकारी नौकरी जो ठीकसे पेट भी न भरे। और इधर देखो, हमारे इन पड़ोसियोंको, जिनके पास इतना पैसा जाने कहाँसे बहता चला आता है कि वे ऐसी-ऐसी कोठियाँ खड़ी किये जा रहे हैं!"

और फिर देर तक वे 'चोर-बाज़ारी' एवं 'गेट-रिच-क्विक' फ़ार्मूलेपर चर्चा करते रहे थे।

"तुम्हें याद है, वह प्रॉपर्टी डीलर," पतिने बात शुरू की थी, "जिसने हमें यह मकान किरायेपर लेकर दिया था, उसने चन्द घण्टोंकी मेहनतसे ही हमसे कमीशनके पचास रुपये कमा लिये थे जबकि मैं तमाम दिन दफ़्तरमें घिसते रहनेपर भी सोलह-सत्रह रुपयेसे ज्यादा नहीं कमा पाता। उसकी एक लाखकी तो बिल्डिंग ही है। उसके निचले हिस्सेमें अब वह दुकानें बनवा रहा है और बाक़ी हिस्सेमें वैसे ही किरायेदार बैठायेगा···· कहता था, पहले वह भी सरकारी नौकरी करता था, एल० डी० सी० था। मैट्रिक पास तो है ही।"

और पत्नीने उस सामनेवाले पड़ोसीकी बात की थी जिसपर 'दिन-ब-दिन' चरबी चढ़ती जा रही थी—"पता है," उसने पतिको चेताते हुए कहा था, "अब घई भी इलेक्शन लड़ रहा है?"

"हैं!" पतिको जैसे बिजलीका धक्का लगा था, "सच? चमगादड़की औलाद! जब इस मुहल्लेमें आया था तो फ़टीचर-सा लगता था। पिछवाड़ेमें एक मामूली-सा कमरा ही किरायेपर ले पाया था। और अब, जबसे इम्पोर्ट-लाइसेन्सकी ब्लैक शुरू की है, पट्ठा रँगा ही गया है! हाँ, इलेक्शन क्यों नहीं लड़ेगा? पैसेवाले ही इलेक्शन लड़ सकते हैं, और वे ही जीतते हैं!"

और बात करते-करते पतिमें जाने कहाँसे इतना आक्रोश उमड़ने लगा था कि उसका स्वर बेक़ाबू-सा होने लगा था, "कैसे··· कैसे इन हरामज़ादोंसे छुटकारा पाया जाये! कब तक····कबतक हम इनके फन्दोंमें लाचार फँसते रहेंगे?" और उसका मन हुआ था कि रिवॉल्वर लेकर वह उन सबको भून डाले, उन सबको जो उसकी साँस रोके बैठे हैं। लेकिन फिर वह शीघ्र ही शान्त हो गया था।

चलते-चलते पत्नी एकाएक रुकी। "अच्छा, आप ही अपना कोट सिलवा लीजिए," उसने कहा, "मेरा क्या है, मुझे कोई दफ़्तर तो जाना नहीं है!"

लेकिन पति भी अब परोपकारकी भावना-से विह्वल हो गया था, "नहीं जी, यह कैसे हो सकता है कि मर्द तो अच्छे कपड़े पहने और औरत और बच्चा घिसे-पुराने !"

"लेकिन आपने तो, जबसे शादी हुई है, कोई गरम कपड़ा बनवाया ही नहीं।"

लेकिन पतिको सूलीपर चढ़ना अच्छा लग रहा था और पत्नी चाह रही थी कि वह भी उसके साथ ही लटके।

इतनेमें बच्चा एकाएक फिर चिल्ला उठा, "मम्मी, मम्मी, वह च्छूट !" और उसने शो-विण्डोमें लटके एक बेबी-सूटकी ओर इशारा किया, "देखो न, मेरा च्छूट कितना गन्दा है !"

सुनकर मम्मी एकाएक कातर हो उठी। उसे याद आया कि उन्होंने बेबीसे वादा किया था कि बाज़ारमें वे उसे एक नया सूट ज़रूर ले देंगे, क्योंकि उसके पहले सूटमें जगह-जगह छेद हो रहे थे।

लेकिन पतिको ऐसे लगने लगा था जैसे उसके भीतर तन-तनकर कुछ टूटने लगा हो।

"हां, ले देंगे, ले देंगे, कह तो दिया, ले देंगे," वह गुस्सेसे तमतमा-सा उठा, "इसे हमेशा अपनी ही लगी रहती है।" और उसी गुस्सेमें उसने उसके दो-तीन जड़ दीं।

बच्चा ज़ोरसे रोने लगा था। इस डरसे कि लोग क्या कहेंगे, उसने उसे चुप करानेके विचारसे गोदमें उठा लिया और कन्धेसे लगाकर थपथपाने लगा।

ऐसे ही वे कुछ देर तक चलते रहे। फिर पत्नीने कहा, "चलो हटाओ, फिर खरीदेंगे।"

पतिने मौन स्वीकृति दे दी।

बच्चा कन्धेसे लगा-लगा अबतक सो चुका था।

■ ■

जे ११।१५ रजौरी गार्डेन,
नयी दिल्ली–२७

अठारह सूरजके पौधे

रमेश बक्षीका नया उपन्यास

■ ■

बिलकुल नयी शैलीमें लिखा आदिसे अन्त तक एक आत्मीय संगीतमें डूबा हुआ कथानक ! बहुत रोचक।

मूल्य ३.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

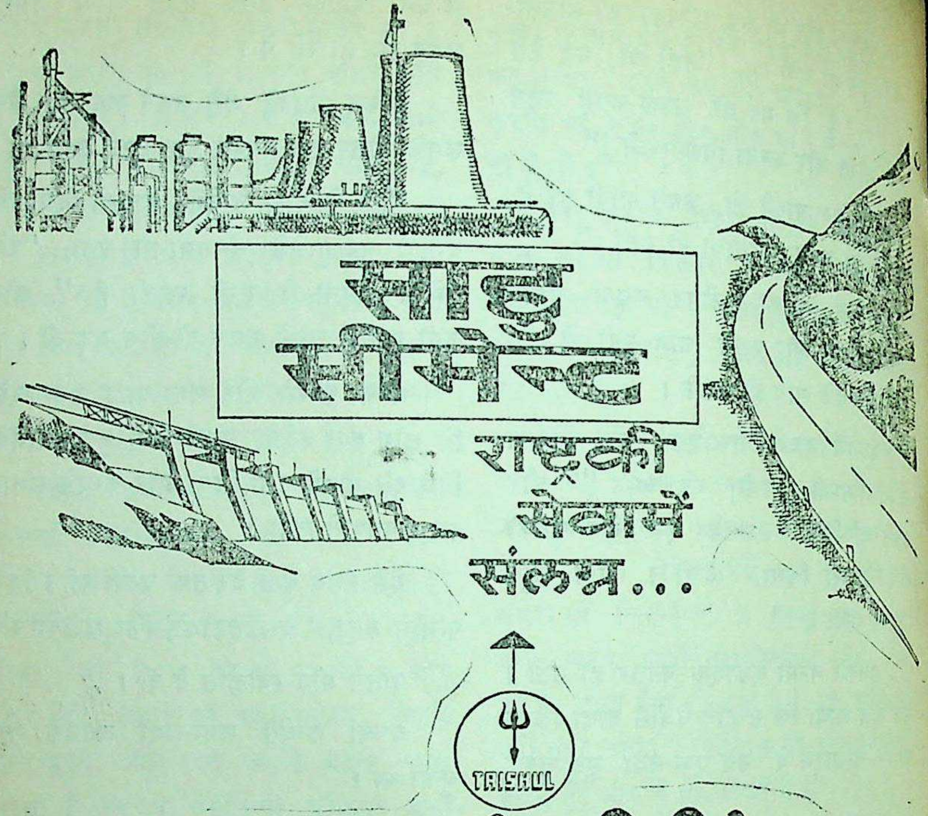
साहु
सीमेन्ट
राष्ट्रकी
सेवामें
संलग्न...
TRISHUL
जयपुर उद्योग लिमिटेड

बिके हुए क्षण / मेहरुन्निसा परवेज़

रोशनदानकी लटकती रस्सीपर कोई चिड़िया बैठकर उड़ गयी थी। मनके अन्दर अजीब-सी हलचल हो रही थी। भरी दुपहरमें बन्द कमरोंमें घूमते पंखेकी आवाज़ सन्नाटेकी परतोंसे टकरा रही थी। थोड़ा आगे चर्चके क्रॉसपर बैठा कौवा अजीब-सी आवाज़ निकाल रहा था। चर्चके सामने पड़े मैदानपर दो-तीन गायें चर रही थीं।

पीछे दालानमें बैठा दरजी मम्मीका नया स्कर्ट सी रहा था, उसकी पुरानी मशीनकी आवाज़ दोपहरकी उखड़ी परतोंको जैसे सीनेकी कोशिशमें थी। कितनी बार उसने मम्मीसे शिकायत की थी कि मशीनकी खटर-पटर उसे अच्छी नहीं लगती, बुरा ही क्या है जो दरजी अपनी दुकानपर कपड़े सी डाले। पर इंग्लैण्डके वातावरणमें रची-बसी मम्मीको यह कहाँ गवारा था। वह तो बस सामने दरजी बैठाकर घरकी हर चीज़ सिलवातीं और ख़ुद ऐसे

टहलतीं जैसे प्रायमरीकी मास्टरनी बच्चोंको गणित बनाने कहकर छड़ी लेकर टहला करती है ।

एक उम्र ऐसी आती है, जब बाप-बेटे, माँ-बेटी एक दायरेमें, एक क़तारमें खड़े हो जाते हैं, जब दोनों सिर्फ़ एक अच्छे मित्र दोस्त होते हैं । यही बात डैडीकी मृत्युके बाद हुई । मम्मी और उसके बीचका फ़ासला खत्म हो गया था । मम्मी बड़ी लगती ही नहीं । जब दोनों साथ निकलतीं तो नया आदमी दोनोंको बहन समझ लेता । मम्मी भारतमें रहकर भी साड़ी नहीं पहनतीं । उसे याद है, डैडीसे अकसर मम्मीकी झड़प हो जाती थी । मम्मी कभी डैडीके साथ किसी घरानेमें जातीं तो वहाँ घरकी औरतें नाक-भौं सिकोड़-सिकोड़ कर मम्मीकी गोरी चिकनी पिण्डलियाँ तकती रहतीं ।

हर पुस्तकके शुरूमें विषय-सूची और पृष्ठ-संख्या होती है पर उसपर ज़रा भी ध्यान दिये बिना वह हमेशा किताबके पन्ने पलटती, लेख-कहानी ढूँढ़ती । इसमें समय कितना बेकार बरबाद होता है पर क्या करे, आदत जो पड़ गयी है । वैसे ही कोई भी गाना रेडियोपर सुने बिना फ़िल्ममें देख लो तो भला ही नहीं लगता । टेबलपर खानेके पहले वह डिशोंके ढक्कन खोल-खोलकर पहले देखती फिर जो जंचता उसे ही लेती और अपनी इसी आदतके मुताबिक़, जब मम्मीने राबर्टकी तसवीर उसके कमरेमें भेजी, तो उसने बिना देखे आयासे कहा—"वहाँ टेबलपर रख दो, बादमें देख लूंगी ।"

राबर्टकी तसवीर उसके टेबलपर दो दिन तक लिफ़ाफ़ेमें पड़ी रही । अचानक एक पार्टीमें मम्मीने राबर्टसे उसका परिचय कराया—"मिस्टर राबर्ट कैनेडी, अभी हालमें ही इंग्लैण्डसे पढ़ाई खत्म कर आये हैं ।"

पार्टीमें वह पूरे समय राबर्टको ही घूरती रही—ओह, इतने सुन्दर युवककी फ़ोटो उसके टेबलपर दो दिन पड़ी रही ।

पार्टीके बाद वह लोग क्लब आ गये थे । राबर्ट मम्मीके साथ गोल्फ़ खेलते रहे और वह कुरसीपर बैठी राबर्टके रोबीले शरीरको गोल्फ़की गेंदके पीछे इधर-उधर होते देख रही थी । राबर्टके युवा बलिष्ठ, गोरे शरीरमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि वह खिंची जा रही थी । राबर्ट खेलते-खेलते बड़ी ही मोहक अदासे उसे देख मुसकरा देता । खेलके बाद मम्मी बाहर लॉनमें चली गयी और राबर्ट उसके पास आ बैठा । उसके शरीरसे विदेशी सिगरेटकी मोहक ख़ुशबू उठ रही थी ।

इसी पार्टीके बादसे ही वह और राबर्ट एक दूसरेकी तरफ़ खिंचते गये । अकसर शामको राबर्ट उनके बँगलेपर आ जाता कभी कारपर, कभी स्कूटरपर ।

* * *

वह धूपमें बाल सुखा रही थी और सामने जालीदार पिंजड़ेमें बन्द छोटे-छोटे खरगोशके बच्चोंको देख रही थी । सहसा मम्मीके कमरेसे कुछ गिरनेकी आवाज़ आयी । वह नंगे पैर ही ठण्डे चिकने रंगीन फ़र्शपर दौड़ती मम्मीके कमरेमें गयी । देखा, डैडीकी वह प्रिय मूर्ति जो वे अपनी जापान-यात्राके समय

लाये थे, टुकड़े टुकड़े होकर पड़ी है और मम्मी ड्रेसिंग गाउन पहने स्तम्भित होकर उन बिखरे टुकड़ोंको घूर रही हैं और उनके लाल दहकते-से होठ काँप रहे हैं।

"मम्मी···मम्मी···कैसे···??" उसने देखा मम्मी रो रही हैं।

"डियर, तेरे डैडीने मुझे यह मेरी वर्षगांठपर दी थी और कहा था कि जिस दिन यह खो गयी या टूट गयी उस दिन मैं भी तुम्हारे लिए मर जाऊँगा," मम्मी अपने हाथोंसे चेहरा ढाँपकर दूसरे कमरेमें चली गयीं।

वह धूपमें बाल सुखा रही थी और सामने जालीदार पिञ्जड़ेमें बन्द छोटे-छोटे ख़रगोशके बच्चोंको देख रही थी। सहसा मम्मीके कमरेसे कुछ गिरनेकी आवाज़ आयी। वह नंगे पैर ठण्डे चिकने रंगीन फ़र्शपर दौड़ती मम्मीके कमरेमें गयी। देखा डैडीकी वह प्रिय मूर्ति जो वे अपनी जापान-यात्राके समय लाये थे, टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ी है और मम्मी ड्रेसिंग गाऊन पहने स्तम्भित होकर उन बिखरे टुकड़ोंको घूर रही हैं और उनके लाल दहकते-से होठ काँप रहे हैं।

वह अवाक्-सी टुकड़ोंको देख डैडीकी बात समझनेकी कोशिश करने लगी। डैडीने ऐसा क्यों कहा? उसे याद आया, मम्मी और डैडीमें पटती नहीं थी। कोई बात थी जो दोनोंको अलग कर गयी थी। डैडी हमेशा मम्मीको उनके विदेशी कपड़ोंपर डाँटते थे। मम्मीके जन्म दिनपर इंग्लैण्डसे उनके डैडीका भेजा नये कपड़ोंका बण्डल आता था। मम्मी मिस्टर जैक्सनकी दूसरी पुत्री थीं। दोनोंकी मुलाकात भी मिस्टर जैक्सनने करायी थी। मम्मी शादीके बाद भारत आ गयी थीं पर उन्हें भारतीय ड्रेस पसन्द नहीं थी। डैडी जब शामको मन्दिर जाना पसन्द करते तो मम्मी क्लब। अकसर वह डैडीके साथ सो जाती और रातको मम्मी नशेमें लाल आँखें लिये ग्यारह बजे क्लबसे लौटतीं। दोनों तो जाने कबके अलग हो गये थे। यह तो सिर्फ़ वह थी जिसके कारण दोनों एक घरमें रहते थे, बंधे से, मानो वह दोनों काजोंको जोड़ती बटन हो। पर मम्मीमें क्या था जिससे डैडी नफ़रत करते थे, वह आजतक समझ नहीं पायी। उसे तो मम्मी खूब अच्छी लगतीं। मम्मीकी सुन्दरता उसे हमेशा आश्चर्यमें डाल देती। हर नया साल मम्मीको घटाकर नयी ताज़गी दे जाता।

कभी-कभी उसे अपना बचपन याद आ जाता है। माँके रूपमें उसे मम्मीसे कभी प्यार नहीं मिला। कई बार जब मम्मी बैठी होतीं तो उसकी इच्छा होती, उनकी गोदमें चढ़ जाये और वह उसे खूब प्यार करे। मम्मी उसका हर तरहसे खयाल रखतीं पर उन्हें भारतीय माओंका वहशी प्यार पसन्द नहीं था। बस वह जन्मदिनके दिन ही उसके माथेको चूमकर मुबारकबाद देती थीं।

वैसे वह छुट्टियोंमें ही डैडी-मम्मीके पास रहती थी। डैडी आफ़िस चले जाते। मम्मी अपने कमरेमें बन्द हो सोती या पढ़ती रहतीं और वह अकेली लम्बे सूने बरामदेमें खाली-खाली घूमती रहती या पीछे बने चपरासियोंके क्वाटरोंमें चली जाती और उनके गन्दे बच्चोंमें खेलती रहती। तब उसे लगता वह

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Phone : 252227

TRANSACTS :

FIRE, MOTOR, MARINE, PERSONAL ACCIDENT, FIDELITY GUARANTEE, BURGLARY AND ALL OTHER FORMS OF MISCELLANEOUS INSURANCE BUSINESS

UNIVERSAL INSURANCE BUILDING,
SIR P. M. ROAD, BOMBAY–1.
Chairman & Managing Director :
P. U. PATEL, B. A., B. COM. (Lond.)

आज़ाद है, वरना वह मम्मीके हदसे ज्यादा मलीकेसे चिढ़-सी गयी थी। चपरासीके छोटे-छोटे बच्चे, जो सेक्सकी बारीक-बारीक बातको जानते थे, उसे बताते, पूछते और जब वह 'ना' में सिर हिलाती तो हँसने लगते, उसकी हँसी उड़ाते। धीरे-धीरे वह भी सब समझने लगी।

उसे लड़के और लड़कीके भेदको मालूम करके बड़ा आश्चर्य हुआ था कि इतनी-सी सड़ी बात उसे मालूम नहीं थी। मम्मी उसे बच्ची समझती, वह थी भी फुदकनेवाली बच्चीकी तरह, पर हर बात जाननेवाली मम्मीसे कम वह भी नहीं थी।

आज सोचती है तो अपने बचपनसे उसे घृणा होने लगती है। बचपनकी एक-एक बात उसे इस तरह याद है जैसे प्रायमरीके बच्चोंको पहाड़े। उसे आश्चर्य होता है। मम्मीका हर दोस्त, जिससे वह अंकल कहकर लिपट जाती थी, वही उसे दूसरी दृष्टिसे प्यार करता था।

उसके चेहरेपर ऐसी कौन-सी बात थी कि उससे उम्रमें तीस साल बड़ा आदमी भी उसे दूसरी निगाहसे देखता था।

आज भी उसे रायगढ़वाले कप्तान साहब याद हैं। जिनके बच्चोंके साथ वह खेलती थी। एक दिन जब वह गयी तो वहाँ कोई नहीं था, कप्तान साहब अकेले थे। काफ़ी देर वह उससे बातें करते रहे, फिर क्या हुआ, उसे याद नहीं पर इतना याद है वह कप्तान साहबके होठ काट भाग आयी थी और घरकी सीढ़ियोंपर भयभीत बैठी रही थी।

जब वह तीसरीमें पढ़ती थी तब उसके घरमें एक बहुत अच्छे बाबा ठहरे थे। डैडीको जाने क्यों इन लोगोंपर बहुत विश्वास था। बाबाके पीछे भीड़ लगी रहती थी। आज उन बाबाकी समाधि है, उसी शहरमें जहाँपर हर साल मेला लगता है। लोग मन्नतें माँगते हैं पर वह इन बाबाकी जितनी पोल जानती है शायद ही कोई जानता हो। बाबाको बँगलेका आखिरी कमरा दिया गया था जहाँ बाबा परियोंसे बातें करते थे, जैसा कि वह कहते थे। मम्मी अपने कमरेमें रहतीं। वह आदतके मुताबिक़ सारी दुपहर खाली मँडराती फिरती। बाबा उसे बच्ची समझते और उसके सामने दूसरी औरतोंसे गन्दे व्यवहार करते। कभी उनका कमरा बन्द होता और वह उचक-उचककर दराजसे अन्दरके दृश्यको देख मज़ा लेती। कई बार तो उसका मन हुआ था कि मम्मीको लाकर यहाँ खड़ी कर दे और पूछे, "वह क्या कर रहे हैं?" पर साहस नहीं होता।

■

कमरेमें किसीके आनेकी आहटपर वह चौंक गयी। देखा, नौकरानी झाड़न लिये खड़ी है। जापानी गुड़ियाके टुकड़े वैसे ही बिखरे थे। वह उठकर बाहर लॉनमें आ गयी। मम्मीका कमरा अन्दरसे बन्द था। क्या कर रही होगी मम्मी?

राबर्टके आ जानेपर उसे लगा, जैसे वह डूब रही थी और वह बचाने आ गया हो। वह दिन-भरसे काफ़ी उदास-सी थी। लगता था, कुछ करनेको काम ही नहीं है।

"आज पिक्चर चलोगी, बड़ी अच्छी है।"

"नहीं, पिक्चरमें तुम बैठे-बैठे गन्दी हरकतें करते हो, जो मुझे अच्छा नहीं लगता, पिक्चरमें ढोंगी लोग ऐसा करते हैं, ओछे लोग करते हैं।"

राबर्ट झेंप गया और वह उसके खिसियाये चेहरेको देखती रही। उसे लगा, इसके पीछे भी एक चेहरा है। उसका जी चाहा, सामनेवाले चेहरेको सरकाकर देखे इसकी आत्मा कैसी है? कहीं यह भी बचपनसे देखते आ रहे उन लोगों-जैसा तो नहीं?" उसके मनमें टीस-सी उमड़ने लगी, आँख थकी-थकी।

"तबीयत ठीक है न?"

"हाँ," वह खिड़कीके पास रखे स्टूलपर बैठ गयी।

"जाने क्यों मुझे अजीब खयाल परेशान करते हैं और मैं थक जाती हूँ। मैंने बचपनसे ऐसा कुछ देखा है कि मुझे हर आदमीपर शक होता है। मैं हर उस आदमीको जानती हूँ जो शराफ़तका गिलाफ़ पहने रहता है। यदि गिलाफ़ खींच लो तो वही चिपचिपाया…। राबर्ट, तुम झूठ समझोगे या मुझे पागल कहोगे, मैंने खुद अपने घरमें ही अजीब बातें देखी हैं। मुझे एक घटना याद है, मैं उस समय बहुत छोटी थी। डैडी रातको जब लौटे तो मैं सो गयी थी। डैडी आये और मुझसे लिपटकर बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रोने लगे। मैं हड़बड़ाकर उठ गयी और खुद भी रोने लगी। रोते-रोते ही मैंने देखा, मम्मी नाइट-गाऊन पहने बीचके परदेको खोलती-मोड़ती हम दोनोंको रोती देख रही हैं। मुझे यह घटना बहुत याद है पर समझमें नहीं आता, डैडी क्यों रोये थे, फिर अचानक मुझे लगा था, डैडी बूढ़े हो रहे हैं और एक दिन वह चले भी गये।

"ओह डियर, तुम बहुत भोली हो, ज़रा-सी बातको खींचने लगती हो" राबर्ट उसके पास आ गया और उसने उसे अपने आलिंगनमें बाँध लिया।

"कपड़े बदलकर आओ, डिनरके लिए देर हो जायेगी?"

"तुम चलो मैं आती हूँ।"

"अच्छा"।

राबर्ट चला गया था पर उसके होनेकी छाप अब भी कमरेमें थी। राबर्टके शरीरसे उठती क़ीमती सिगरेटकी महक उसे बड़ी भली लगती। राबर्टके शरीर, कपड़े यहाँतक कि पूरे कमरेमें सिगरेटकी महक भर जाती है जिससे एक प्रकारका रोब टपकता था।

वह कपड़े बदलकर डाइनिंग हालमें आयी तो देखा मम्मी और राबर्ट उसीका इन्तजार कर रहे थे। मम्मी आज गलेमें काली मोतियोंकी माला पहने थी, जो उनपर खूब फब रही थी।

खाते समय राबर्ट और मम्मी ही बातें करते रहे। वह आज ज्यादा थकान महसूस कर रही थी। इच्छा हो रही थी कि अपने कमरेमें जाकर सो जाये पर रॉबर्टके खयालसे वह खानेके बाद भी सोफ़ेपर धँसी-सी बैठी थी। रॉबर्ट अकसर मम्मीसे भारतीय लोगोंके बारेमें प्रश्न करता था और ऐसे ही प्रश्नके

उत्तरमें मम्मी कह रही थी, "भारत मुझे पसन्द है क्योंकि यहाँ हमारे देशकी तरह महीनों बर्फ़के डरसे घरमें बन्द नहीं रहना पड़ता। हर एक मौसमका यहाँ अपना मज़ा है। पर भारतकी ग़रीबी नब्बे प्रतिशत यहाँके पुराने विचार, आलस्यपर निर्भर है। यदि भारतीय अपने बच्चोंको स्वतन्त्र छोड़ दें, उनपर जाति-विवाहका ज़ोर न दें, तो उनकी पचास प्रतिशत लड़कियाँ बिना दहेज़के उठ जायें। बची पचास प्रतिशत, तो उन्हें वे यदि शिक्षा देकर नौकरीकी छूट दें तो काफ़ी समस्या सुलझ जाये। भारतमें यह आदत बहुत बुरी है कि एक आदमी कमाता और घरके दस मेम्बर खाते हैं। नतीजा क्या होता है? कमानेवाला एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मर जाता है।"

"मगर आपके देशमें भी तो ऊँच-नीचका ख़याल रखा जाता है।"

"हाँ, वहाँ भी है पर उन्हीं लोगोंमें जिनके पास करोड़ों रुपया है।"

नींदसे उसकी पलकें ढँकने लगी थीं, "आई एम वेरी सॉरी रॉबर्ट...."

"हाँ-हाँ कई बात नहीं, तुम्हें नींद ज़ोरसे आ रही है।"

वह उठ गयी और अपने कमरेमें जाकर सो गयी।

■

जाने कैसे उसकी नींद टूटी तो वह चौंककर उठी, और खिड़कीके पास यह देखने आयी कि रॉबर्ट गया या नहीं। उसने देखा, उसकी कार खड़ी थी, "अरे, तो रॉबर्ट अभीतक गया नहीं" वह जल्दीसे पैरोंमें स्लीपर डाल, नाइट-गाउन पहने बाहर आ गयी। वह हॉलकी तरफ़ गयी तो वह बन्द था। ड्राइंग रूम भी बन्द था। अरे, तो रॉबर्ट गया कहाँ? वह मम्मीसे पूछने उनके कमरेकी तरफ़ गयी। लाइट जल रही थी और दरवाज़ा अन्दरसे बन्द था। तो मम्मी जाग रही हैं? उसका हाथ कॉलबेलकी तरफ़ जाते-जाते रुक गया, सामने रॉबर्टके जूतोंके निशान साफ़ दिख रहे थे। ■ ■

द्वारा रऊफ़ परवेज़, एडवोकेट
जगदलपुर (बस्तर) म० प्र०

हिम-विद्ध
● ●
नयी कविताके विशिष्ट शिल्पी कवि
डॉ० जगदीश गुप्त
की विशेष भावभूमिकी कविताएँ
मूल्य ३.००
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

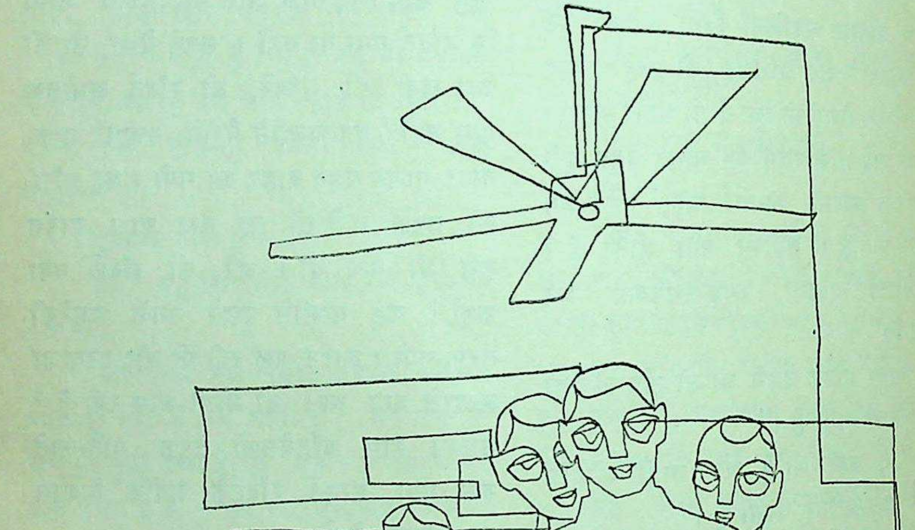

[घटन
हुआ थ
उठा है
चौड़ी
तथा स
तक
सकते
पहले
राजके
यनके
सरका
विभाग
चारों
घटना
दर्शक

चाक
और
कमरे
विवि
सचो

रहत
कम

ए । कां । की

लंचका समय

—शम्भूनाथ सिंह

[घटनास्थल एक बहुत बड़ा पुराना भवन है जिसका निर्माण उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुआ था। पूरा भवन एक विशाल चबूतरेपर, जो ज़मीनकी सतहसे पाँच फ़ुट ऊँचा है, उठा है। इस विशाल भवनके चारों ओर ज़मीनकी सतहसे चबूतरे तक पहुँचनेके लिए चौड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। नाटकमें दर्शकोंको भवनके केवल एक ओरकी सीढ़ियाँ, चबूतरा तथा सामनेवाला बड़ा हॉल दिखाई पड़ता है। जहाँ सीढ़ियाँ ख़त्म होती हैं वहाँसे हॉल-तक चबूतरेका काफ़ी हिस्सा खुला हुआ है जिसपर खड़े होकर दूर-दूरके दृश्य देखे जा सकते हैं। चबूतरेकी ओर हॉलमें तीन ऊँचे और चौड़े दरवाज़े हैं। यह विशाल भवन पहले एक देशी रियासतका अतिथि-भवन था जिसमें वाइसराय, गवर्नर तथा अँगरेज़ी राजके अन्य उच्च अधिकारी ठहराये जाते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद देशी राज्योंके विलयनके कारण यह भवन राज्य-सरकारके अधिकारमें आ गया। समय-समयपर इसमें विभिन्न सरकारी कार्यालय रहा करते थे। इस समय पूरे भवनमें केन्द्रीय सरकारके एक महत्त्वपूर्ण विभागका क्षेत्रीय कार्यालय है जिसमें सैकड़ों कर्मचारी कार्य करते हैं। ये कर्मचारी भवनके चारों ओरकी सीढ़ियोंसे अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार आते-जाते हैं। इस नाटककी घटनाएँ सिर्फ़ इसी दिशाकी सीढ़ियों तथा चबूतरेपर और हॉलमें घटित होती हैं जिधर दर्शक हैं।

हॉलका फ़र्श लकड़ीका है और उसके नीचे सीलन-भरे कमरे हैं जिनमें पहले नौकर-चाकर रहते होंगे और अब कार्यालयकी पुरानी फ़ाइलों, रद्दी काग़ज़ों, टूटे-फूटे लकड़ी और लोहेके सामानोंका अम्बार भरा है। हॉलके तीन तरफ़ गलियारे हैं जिनके दोनों तरफ़ कमरे हैं। दायें गलियारेमें ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ हैं। अन्य कमरोंमें कार्यालयके विभिन्न उपविभाग स्थित हैं। भवनके ऊपर भी कुछ कमरे हैं जिनमें-से एकमें कार्यालयका सर्वोच्च अधिकारी रहता है।

'रहता है' कहना इतना सही नहीं होगा। वस्तुतः वह वहाँ कब रहता, कब नहीं रहता, कब आता और कब जाता है—इसकी ठीक-ठीक जानकारी कार्यालयके अधिकांश कर्मचारियोंको नहीं हो पाती। कर्मचारियोंमें उसके सम्बन्धमें तरह-तरहके प्रवाद प्रचलित

हैं। किसी कर्मचारीकी हिम्मत उससे मिलनेकी नहीं होती, इसलिए कोई नहीं जानता कि उसका रूप-रंग, सूरत-शक्ल और दिनचर्या क्या है? कुछ इने-गिने सहायकोंके माध्यमसे ही उसके आदेश नीचेके अधिकारियों और कर्मचारियों तक पहुँचते हैं। शायद इसीसे यह प्रवाद भी प्रचलित हो गया है कि उसके पाँव नहीं हैं, वह कृत्रिम पावोंसे चलता है और इसीलिए सबके सामने बाहर नहीं निकलता है। हॉलमें एक कतारमें मेज़ लगी हैं जिनके चारों ओर कुरसियाँ हैं। बीचके दरवाज़ेसे घुसकर हॉलके भीतर और गलियारोंमें जानेके लिए रास्ता छोड़ दिया गया है। दाहिनी ओर एक अलग मेज़ कार्यालय-अधीक्षकके लिए है जहाँसे वह सभी कर्मचारियोंको देख सकता है। हॉलमें सामनेवाली दीवालपर, गलियारेके ठीक ऊपर बड़े आकारकी घड़ी लगी है।

जिस समय परदा खुलता है, दो बजनेमें अभी कुछ देर है। सभी क्लर्क कुरसियोंपर बैठे फ़ाइलोंमें आँख गड़ाकर अपने-अपने काममें लगे हैं। उनकी संख्या ग्यारह है। तीन चपरासी हैं जो एक मेज़की फ़ाइल दूसरी मेज़पर पहुँचा रहे हैं। अधिकतर क्लर्क अधेड़ उम्रके हैं जो पाजामा और कोट पहने हैं। नयी उम्रके क्लर्क सूट पहने हैं। कार्यालय-अधीक्षककी कुरसीपर जो सज्जन हैं वे काफ़ी रोबीले प्रतीत होते हैं। उनकी मेज़पर टेलीफ़ोन रखा है।

परदा खुलनेके एक मिनट बाद एक क्लर्क जिसका मुँह दर्शकोंकी ओर है, सिर उठाकर बाँयेंवाले गलियारेकी ओर देखता है। उसके उधर देखते ही फ़र्शपर कहीं 'ठक'की आवाज़ होती है। वह तुरन्त सिर नीचे करके फ़ाइलमें आँख गड़ा लेता है। थोड़ी देर बाद दूसरा क्लर्क सिर उठाकर पीछेवाले गलियारेकी ओर देखता है। फिर पूर्ववत् 'ठक'की आवाज़ होती है। वह भी झट सिर नीचा करके लिखने लगता है। अन्य सभी क्लर्क अपने काममें इस तरह लगे हैं कि ये आवाज़ें मानो उन्हें सुनाई नहीं पड़ रही हैं। कुछ क्षण बाद एक और क्लर्क सिर उठाकर दायेंवाले गलियारेकी ओर देखता है। फिर 'ठक'की आवाज़ होती है और वह भी सिर नीचे कर लेता है।]

एक नवयुवक क्लर्क : (ऊबकर आश्चर्यसे औरोंकी ओर देखता हुआ) ये ठक-ठककी आवाज़ें कैसी आ रही हैं?

(सभी चुप होकर अपना काम करते रहते हैं, जैसे किसीने सुना ही नहीं।)

नवयुवक क्लर्क : आखिर आप लोग बोलते क्यों नहीं? ये ठक-ठककी आवाज़ कहाँसे आ रही है?

(कार्यालय-अधीक्षक उसकी ओर घूरकर देखता है।)

नवयुवक क्लर्क : (कार्यालय-अधीक्षककी ओर देखकर) आप यों मेरी ओर घूर क्या

रहे हैं? ये ठक-ठक''''(ठीक उसी समय मेज़के नीचेसे तीन बार ठक-ठककी आवाज़ आती है।)

नवयुवक क्लर्क : (अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर) यह नीचे कहाँसे आवाज़ आ रही है? (खड़ा होकर इधर-उधर देखता है।)

कार्यालय-अधीक्षक : (बहुत ज़ोरकी कड़कड़ाती आवाज़में) नम्बर बीस, बीस नम्बर!

(एक क्लर्क अपनी कुरसी छोड़कर घबराया हुआ अधीक्षकके पास आता है।)

२० नम्बर : जी, आपने''''

अधीक्षक : छत्तीस नम्बरको उसका काम बताइए। (सिर नीचे कर फ़ाइलमें आँखें गड़ा लेता है। नम्बर बीस नवयुवक क्लर्कके पास जाकर उसके कानमें फुसफुसाकर कुछ कहता है और फिर अपनी कुरसीपर चला जाता है। नवयुवक क्लर्क खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहता है। फिर मेज़के नीचे झाँककर देखना चाहता है कि आवाज़ कहाँसे आयी थी। तभी ज़ोरसे गालपर तमाचा लगनेकी आवाज़ आती है और वह चीख़कर गालपर हथेली रखे सीधा खड़ा हो जाता है। सब लोग चुपचाप अपना काम कर रहे हैं जैसे कोई कुछ सुन नहीं रहा है। तभी टेलीफ़ोनकी घण्टी बजती है। अधीक्षक रिसीवर उठाकर सुनता है।)

अधीक्षक : (रिसीवरको मुँहसे अलग हटाकर मेज़पर रखते हुए) नम्बर छत्तीस, आपका टेलीफ़ोन है। (नवयुवक क्लर्कको ओर देखता है जो अभी खड़ा है। उसे गुमसुम खड़ा देख अधीक्षक तेज़ आवाज़में बोलता है।) नम्बर चालीस! चालीस नम्बर! (एक चपरासी दौड़ा आता है।) इन हज़रतको बताओ कि इनका कार्यालयका नाम नम्बर ३६ है। उनसे कहो कि उनकी पत्नी टेलीफ़ोनपर बात करना चाहती हैं।

(४० नम्बर नवयुवकके पास जाता है और उसका कन्धा झकझोरता है।)

४० नम्बर : जनाब, आपका कार्यालयका नाम नं० ३६ है। आपकी बीबी''''

नवयुवक : (चीख़ता हुआ) चुप रहो। मेरा नाम अंकोंमें नहीं हो सकता। मैं आदमी हूँ, भेड़-बकरी नहीं हूँ।

४० नम्बर : जी, यह आपका नहीं, आपके कामका नम्बर है।

नवयुवक : कामका नम्बर मेरा नम्बर नहीं हो सकता। काम काम है और मैं मैं हूँ।

अधीक्षक : (खड़ा होकर अत्यन्त रोषसे) देखिए मिस्टर ३६ नम्बर, यह ऑफ़िस है। आपका घर नहीं। यहाँ आप अपने कामके सिवा और कुछ नहीं हैं। देखिए, यहाँ जितने लोग बैठे हैं सभी काम हैं और कामके सिवा कुछ नहीं हैं। इन सबका काम ही इनका नाम है। इन नामोंको आप भी पहचान लीजिए। (क्लर्कोंसे) आप लोग इन्हें अपना-अपना नाम बताइए।

(सभी बारी-बारीसे खड़े होकर अपने नम्बर बताते हैं। अधीक्षककी ओर से क्रमशः १८, २५, २१, २०, १६, १४, ११, १५, २२, ३।)

अधीक्षक : (चपरासियोंसे) तुम भी अपने नाम बताओ! (चपरासी क्रमशः ४०, ४३,

५० बताते हैं।)

अधीक्षक : और मेरा नाम नं० २ है। और देखिए जनाब, याद कर लीजिए, आपका नाम नं० ३६ है। आप नये आये हैं, इसलिए इतना बताना पड़ा। अब चुपचाप बैठकर काम कीजिए !

(तभी १४ नम्बरको खाँसी आती है। वह एक बार खाँसकर अपना मुँह दबा लेता है और उसी तरह मुँह दबाये जल्दी-जल्दी बाहर चबूतरेपर आकर परेशानीसे खाँसता है। उधर अधीक्षककी नज़र टेलीफ़ोनके रिसीवरपर जाती है जो मेज़पर अलग रखा है। वह उसे उठाकर बातें करता है। नम्बर १४ बाहर चबूतरेपर बराबर खाँसता जाता है और छाती दबाये रहता है।)

अधीक्षक : हलो, आपके पतिकी तबियत ठीक नहीं है। वह····क्या ·· वह आपका पति नहीं है, फिर कौन है ? भाई है ? तो आप भाईको फ़ोन करती हैं ?···अच्छा देखिए, हमारे ऑफ़िसमें फ़ालतू बातचीतके लिए टेलीफ़ोन नहीं है। क्या कहा ? यह फ़ालतू बातचीत नहीं है ? ·· माना, आपकी माँ बीमार है, लेकिन····किस डॉक्टरके यहाँसे ? ····अच्छा तो डॉक्टरको लेकर आप घर जाइए। आपके भाई साहब यहाँसे ५ बजेके पहले नहीं जा सकते। और आइन्दा ऑफ़िसमें टेलीफ़ोन मत कीजिए ! (झल्लाकर रिसीवर रख देता है) देखिए मिस्टर ३६ नम्बर, अभी आपने कल ऑफ़िस ज्वाइन किया और आजसे ही टेलीफ़ोन आने शुरू हो गये। आपने अपनी बहनको यहाँका टेलीफ़ोन-नम्बर क्यों बताया ?

नवयुवक : मेरी माँ बीमार है। अगर मेरी ग़ैरहाजिरीमें कुछ हो जाये तो···

अधीक्षक : तो क्या ? शामको लौटकर अपने घर नहीं जाइएगा क्या ?

नवयुवक : लेकिन अगर माँको कुछ हो गया तो मेरी बहन···

अधीक्षक : देखिए मिस्टर ३६ नम्बर, हमारे ऑफ़िसमें किसीके बहन नहीं होती और अगर होती भी है तो भाईको फ़ोनपर उससे बातचीत करनेकी इजाज़त नहीं है। हुँह··· बहनोंकी कमी नहीं है इस देशमें ? अगर इस तरहकी छूट दे दी जाये तो सभी बाबू लोग दिन-भर बहनोंसे ही बातें करते रहेंगे। साली आसमानसे फूट पड़ेंगी। हुँह, बात करनेके बहाने भी कैसे-कैसे बनाये जाते हैं।

(बाहरसे १४ नम्बर कमरेमें जाता है। अधीक्षक ग़ौरसे उसकी ओर देखता है।)

अधीक्षक : १४ नम्बर, आप इतनी देर तक बाहर क्या कर रहे थे ?

१४ नम्बर : जी, खाँसने गया था।

अधीक्षक : मैंने बारहा कह दिया है, यह सब काम या तो घरपर करके आइए या लंचके समयमें किया कीजिए। आखिर सरकारने लंचका समय किसलिए निकाला है ?

(कुछ क्षण तक सभी नीचे सिर करके काम करते हैं। नवयुवक किसी फ़ाइलके एक पृष्ठपर आँखें गड़ाये हैं, उसके हाथमें खुला फ़ाउण्टेनपेन है। उसकी ओर वह जड़ीभूत है जैसे वह फ़ाइलमें नहीं, कहीं और है। सहसा १५ नम्बरकी आँखें घड़ीकी ओर

उठती हैं जिसमें दो बजनेमें अभी ५ मिनिट-की देर है। तभी घड़ीवाली दीवालके पीछेकी ओरसे ठककी आवाज़ आती है। १५ नम्बर तुरन्त सिर नीचे करके लिखने लगता है। पर तुरन्त ही वह बाहरवाले चबूतरेपर जाता और अपनी गरदनको दोनों हथेलियों-से रगड़ता है और फिर भीतर आ जाता है। नवयुवक उसी ओर देखने लगता है जिधरसे आवाज़ आयी थी। तभी बाँयी ओरके गलियारेसे खट-खटकी आवाज़ आती है। जैसे कोई ऊँची एँड़ीके जूते पहनकर सीढ़ीसे उतर रहा हो। नवयुवककी आँखें उस ओर चली जाती हैं। (गलियारेसे एक २० वर्षीया सुन्दर युवतीका हाथमें फ़ाइल लिये प्रवेश। नवयुवक उसकी ओर देखकर भौंचक्का-सा हो जाता है। युवतीकी दृष्टि भी उसपर पड़ती है। वह उसे ग़ौरसे देखती हुई अधीक्षक-की ओर बढ़ जाती है। उसके पास आते ही अधीक्षक अदबसे खड़ा हो जाता है। वह फ़ाइल देकर धीरे-धीरे उससे कुछ बातें करती है और अधीक्षक सिर हिलाता है। कुछ देर बाद युवती जाने लगती है तो नव-युवक फिर उसकी ओर देखता है। युवती उसकी ओर देखे बिना ही आगे बढ़ने लगती है। नवयुवक कुरसी छोड़कर उसकी ओर जानेके लिए क़दम उठाता है।)

अधीत्तक : (जो बराबर उसकी ओर देख रहा था, चीख़ उठता है) ३६ नम्बर !

(नवयुवक रुककर उसकी ओर देखता है।)

अधीत्तक : मैं कहता हूँ, यह भी क्या आपकी बहन हैं ?

नवयुवक : जी नहीं, यह मेरी सहपाठिन थी।

अधीत्तक : आप पिछले ज़मानेकी बातें कर रहे हैं। उस ज़मानेमें लड़कोंके गर्ल-फ़्रेण्ड और लड़कियोंके ब्वाय-फ़्रेण्ड हुआ करते थे।

नवयुवक : जी नहीं, अभी दो साल पहले-की बात है।

अधीत्तक : हाँ, हाँ, मैं भी उसी ज़मानेकी बात कर रहा हूँ। लेकिन आप यह क्यों भूल जाते हैं कि अब ज़माना बदल गया है क्योंकि आप एक ऑफ़िसमें नौकरी करने आ गये हैं।

नवयुवक : (ऊबकर) आख़िर यह ऑफ़िस ही तो है ? क़त्लगाह तो नहीं है ?

अधीत्तक : देखिए मिस्टर ३६ नम्बर, हमारे ऑफ़िसमें बहस करनेका नियम नहीं है। यहाँ काम होता है और क़ायदे-क़ानूनके मुता-बिक़ होता है। अपनी कुरसीपर बैठिए और काम कीजिए। हुँह, अच्छा तमाशा खड़ा कर रखा है। इसलिए मैं अपने सेक्सनमें कभी भी १० सालसे कमके नम्बर नहीं लिया करता। इन सभी नम्बरोंसे पूछिए जनाब, क्या इनमें-से कोई १० सालसे कमका नम्बर है। (सबसे पूछता है) है भाई, आप लोगों-में कोई दस सालसे कमका नम्बर ? (कोई नहीं बोलता—सब सिर नीचा करके काम कर रहे हैं।) देख लिया, यह है ऑफ़िस-की ट्रेनिंग और एक आप हैं कि जंगली तोते-की तरह....

नवयुवक : (खड़ा होकर क्रोधसे) देखिए साहब, ज़बान सँभालकर बात कीजिए !

अधीक्षक : (अत्यन्त क्रोधसे) शट अप !····
नम्बर ४०, ४३ और ५०, इन्हें ठीक करो ! (तीनों चपरासी दौड़कर आते हैं और उसे ज़बरदस्ती उसकी कुरसीपर बैठाते हैं। नवयुवक उनसे मुक्त होनेके लिए हाथ-पाँव मारता है। चपरासी उसे दबोचे रहते हैं। तभी पूर्वोक्त लड़की सामनेवाले गलियारेसे, जिससे वह गयी थी, वापस आती और बायीं ओरके गलियारेकी ओर मुड़ना चाहती ह। तब तक उसकी दृष्टि दबोचे गये नवयुवकपर पड़ती है। वह पलटकर अधीक्षकके पास जाती है और धीरे-धीरे कुछ कहती और लौट पड़ती है)

अधीक्षक : (घबराये स्वरमें) नम्बर ४०, ४३, ५०, छोड़ दो इन्हें ! (वे छोड़कर चले जाते हैं। तभी एकाएक सबकी नज़रें घड़ीकी ओर उठ जाती हैं और एक साथ सबके सब खड़े हो जाते हैं।)

अधीक्षक : (अपनी घड़ीकी ओर देखकर) देखिए जनाब, दीवाल-घड़ी तेज़ चल रही है। मेरी घड़ीमें अभी २ बजनेमें १५ सेकेण्ड की देर है ! (सभी यन्त्रवत् बैठ जाते हैं) नम्बर ३६, आप मेरे पास आइए !

नवयुवक : (तनकर खड़ा हो जाता है) जनाब, मेरा नाम··

अधीक्षक : (बीचमें रोकता हुआ नरमीसे) अरे भाई, नाममें क्या रखा है ? हमें काम देखना है या नामकी माला जपनी है। आपका नाम चाहे जो हो, काम तो आप ३६ नम्बरका ही करते हैं न ? यहां आइए ज़रा ! (घड़ी देखता हुआ) हाँ साहबान, दो बज गये।

(सब यन्त्रवत् खड़े हो जाते हैं। नवयुवक धीरे-धीरे चलकर अधीक्षकके पास आता है। और क्लर्क बाहर निकलते हैं। कुछ सीढ़ी उतरते और कुछ अपनी आँखें, गरदन और सिर रगड़ते हुए चबूतरेपर खड़े हो जाते हैं।

यहाँ तीन दृश्य साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं। कमरेमें अधीक्षक और नवयुवककी बातचीत, बाहर चबूतरेपर बायीं ओर तीन क्लर्कोंकी बातचीत और पाँच क़दमकी दूरीपर दायीं ओर तीन अन्य क्लर्कोंकी बातचीत। तीनों वार्तायें साथ चलती हैं यद्यपि यहाँ तीनों वार्ताएँ क्रमशः १,२,३, करके एकके बाद एक दी जा रही हैं। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।)

— १ —

अधीक्षक : देखिए, वे जो आयीं थीं न नम्बर एक····

नवयुवक : कौन, मिस वर्मा ?

अधीक्षक : आप नामपर इतना ज़ोर क्यों देते हैं। उनका नाम कुछ भी हो, वे बड़े साहबकी पी० ए० हैं, व्यक्तिगत सहायक। वही नम्बर एक हैं।

नवयुवक : होंगी।

अधीक्षक : शायद आपकी नौकरी उन्हींके कारण लगी है।

नवयुवक : मिस वर्माके कारण ? हरगिज़ नहीं। मैंने उससे कभी नहीं कहा था। मुझे मालूम भी नहीं था कि वह यहाँ है।

- २ -

नम्बर १५ : मिस्टर १८ नम्बर, कल जब मैंने कहा था कि दुनियाका सबसे शानदार प्राणी गदहा है तो आपने मुझसे मतभेद प्रकट किया था।

नम्बर १८ : जी हाँ, और आज भी करता हूं। चौबीस घण्टे बाद भी मैं उसी जगह खड़ा हूं, ठीक वहीं जहाँ कल था। यहीं (पैरसे ज़मीनपर ठोकर देकर) मैं जोर देकर कहना चाहता हूं मि० १५ नम्बर, कि गदहेसे भी अधिक शानदार प्राणी आदमी है!

नम्बर १० : लेकिन प्रमाण? आपके पास प्रमाण क्या है?

नम्बर १८ : प्रमाण यह है कि गदहा चार टांगोंपर खड़ा होता है, आदमी सिर्फ़ दो टांगोंपर। गदहा ज़मीनपर बैठता है, आदमी कुरसीपर।

- ३ -

नम्बर २५ : भई २२ नम्बर, मुझे तो ऐसा लगता है कि ३६ नम्बर किसी कॉम्प्लेक्ससे पीड़ित है।

नम्बर २२ : मुझे भी ऐसा ही लगता है। शायद उसे एडीपस कॉम्प्लेक्स है। उसका सारा ध्यान अपनी मांकी ओर लगा था और लगता है, वह हमेशा उसीके सपने देखा करता है।

नम्बर १४ : आपको कैसे मालूम हुआ?

नम्बर २५ : आइ एम डेड श्योर। उसकी मांकी बीमारी एक बहाना-भर है। दरअसल वह अपनी मांको देखे बिना नहीं रह सकता।

नम्बर १५ : (ऊपर की ओर देखता हुआ) वह देखो, पतंग कट गयी। वह उड़ी जा रही है।

नम्बर १८ : किधर?

नम्बर २० : वह क्या है····उधर।

नम्बर २५ : हां, वह चाँद-तारे वाली पतंग।

नम्बर २३ : (चश्मा उतारकर देखता है) हाँ वह क्या है—वह रही।

नम्बर २२ : काश मैंने इसे काटा होता?

(सभी अपनी-अपनी जगहोंसे आँखपर हथेली लगाये ऊपरकी ओर देखते हैं। बड़ी देर तक देखते रहते हैं तबतक हॉलके भीतरका दृश्य चलता है।)

- १ -

अधीक्षक : मगर उसका तो यही कहना है कि···खैर, छोड़ो इसे। मगर देखो, मेरे नौजवान दोस्त, यह लड़की जादू जानती है और तुम उसकी गिरफ़्तमें आ गये हो!

नवयुवक : जी मैं···

अधीक्षक : और मैं कब कह रहा हूं कि तुम जान-बूझकर उसकी गिरफ़्तमें आये हो। पर अनजाने ही तुम फन्देमें फँस गये हो। ज़रा देखूं! (खड़ा होकर उसकी गरदन छूता हुआ) यह तुम्हारी गरदनपर रस्सीका निशान तो बना है। फन्दा पूरा कसा नहीं क्या?

नवयुवक : आपकी बात समझ नहीं सका मैं।

अधीक्षक : समझ लोगे दोस्त,—अगर रह गये तो समझ लोगे। मगर मेरी दो बातें

मानो।

नवयुवक : क्या ?

अधीक्षक : तुम्हारी माँ बीमार है न ? और शायद बहनकी शादी भी करनी है ?

नवयुवक : जी हाँ···

अधीक्षक : तो पहला काम तो तुम यह करो कि जबतक यहाँ रहा करो, दोनोंको एकदम भूले रहो। बल्कि अच्छा हो कि तुम अपनेको भी एकदम भुला दो। सिर्फ़ कामको याद रखो। यह हमारे ऑफ़िसका पहला नियम है।

नवयुवक : और दूसरी बात ?

अधीक्षक : यहाँपर तुम अपने कामके अलावे और किसी बातको जाननेकी कोशिश मत करो। कौन, क्या, कहाँ, कैसे आदि शब्दोंको इस ऑफ़िसमें बोलने और सोचनेकी सख्त मनाही है।

नवयुवक : मगर मिस वर्मा····

अधीक्षक—हाँ, वह कह गयी है कि मैं तुम्हें छोड़ दूँ। खैर, मैंने छोड़ दिया मगर वह (दाहिनी ओरके गलियारेके ऊपर उँगली दिखाकर) कभी नहीं छोड़ेगा। वह छोटीसे छोटी ग़लतीपर भी सख्त सज़ा देता है। इसलिए मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ।···· अच्छा, तो इस समय छुट्टी मनाओ मगर यहाँपर बहुत ही सँभलके रहना होगा। समझ गये न ?

(खड़ा होकर नवयुवककी पीठ थपथपाता है और फिर दायीं ओरके गलियारेकी ओर चल देता है।)

नवयुवक : (ज़ोरसे चिल्लाकर) मैं कहे देता हूँ, मैं यहाँकी एक-एक बात जानकर रहूँगा। मैं जानवर बनकर यहाँ नहीं रह सकता····मैं (भीतरसे गों-गोंकी आवाज़ आती है) मैं, मैं, मैं, मैं, मैं, मैं, मैं, मैं, मैं···

(युवती बायें गलियारेसे आती है। उसे मैं-मैं करते देख पास आकर मुसकराती है।)

युवती : अरे····तुम ? यहाँ क्या कर रहे हो ?

नवयुवक : मैं····मैं····मैं····मैं····

युवती : बस बस, (उसका मुँह अपने दाहिने हाथसे बन्द कर देती है। युवक चुप हो जाता है।) यहाँ मैं नहीं कहा जाता, वह और यह कहा जाता। देखो, (उसके मुँहसे हाथ हटाकर कुरसियोंको दिखाती हुई) वह, यह, वह, यह, वह, यह (अधीक्षककी कुरसीकी ओर संकेत करके) यह ! (गलियारेकी ओर ऊपरकी तरफ़ संकेत करके) वह !

नवयुवक : यह····वह···· (कुछ रुककर) मैं और तुम नहीं ?

युवती : यहाँ नहीं। ५ बजेके बाद शहरमें कहीं भी, पर यहाँ नहीं। यहाँ बस 'यह' और 'वह'। न 'मैं' न 'तुम'।

नवयुवक : और अगर 'मैं', और 'तुम' कहूँ तो क्या होगा ? (तभी कहींसे घनघनाती हुई घण्टीकी आवाज़ आती है)

युवती : बस आज यह मेरा पहला पाठ है। इसे याद रखना (भागती हुई गलियारेकी ओर आती है। ठीक इसी समय बाहर चबूतरेपर खड़े क्लर्कोंमें फिर बातें शुरू हो जाती हैं। वे ऊपर देखना बन्दकर आँखें नीचे कर लेते हैं।)

गणदेवता

■ ■ ■

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित प्रतिवर्ष समस्त भारतीय भाषाओंमें-से सर्वश्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिको एक लाख रुपये-द्वारा पुरस्कृत करनेकी योजनाके अन्तर्गत इस वर्ष बंगलाके मूर्द्धन्य उपन्यासकार श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्यायके उपन्यास 'गणदेवता' को यह पुरस्कार-सम्मान देनेकी घोषणा की जा चुकी है। मनीषी-समीक्षकोंने 'गणदेवता' को न केवल बंगला वरन् भारतीय उपन्यास साहित्यकी एक विशिष्ट उपलब्धि माना है।

'गणदेवता' का हिन्दी रूपान्तर
भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रकाश्य

■ ■

अपनी प्रतियाँ इस पतेपर लिखकर सुरक्षित करायें
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१, नेताजी सुभाषमार्ग, दिल्ली-६।

आपके लिए
अत्यन्त रोचक और मर्मस्पर्शी
भावनापूर्ण कथानकवाले
ये अद्वितीय

उपन्यास !

जुलूस
फणीश्वरनाथ 'रेणु' : ३.५०

- *अस्तंगता*
  कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' : ६.००
- *अपने-अपने अजनबी*
  'अज्ञेय' : ३.००
- *शतरंज के मोहरे*
  अमृतलाल नागर : ६.००
- *सूरज का सातवाँ घोड़ा*
  धर्मवीर भारती : २.००

प्रत्येक सुरुचि-
सम्पन्न पाठक-
परिवारके लिए

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
विक्रय-केन्द्र :
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

– २ –

नम्बर २८ : क्या यहाँ दरअसल कोई पतंग थी ?

नम्बर १५ : क्या आपने नहीं देखा ?

नम्बर १८ : मुझे तो नहीं दिखी ।

नम्बर २० : ज़रा इधर तो आइए ! (उसकी आँखोंपर हाथ ले जाकर छूता हुआ) आपकी आंख ! अरे आपकी आँख क्या हुई ?

नम्बर १५ : आँखें नहीं हैं तो कान तो हैं । भले आदमी, हमने कहा तो सुनकर वहीं मान लेते कि पतंग वहाँ है ?

नम्बर २० : (कानोंको छूता है) यह लीजिए, कान भी नहीं हैं !

– ३ –

नम्बर २२ : आज वह और दिनोंके मुक़ाबले अधिक खुश नज़र आ रही थी ।

नम्बर २५ : कौन ?

नम्बर १३ : और कौन है ? एक वही तो है, (न० २२ से) नम्बर १ के बारेमें कहते हो न ?

नम्बर २२ : हाँ-हाँ, उसीके बारेमें । बहुत खुश थी ।

नम्बर १३ : जानते हो क्यों ?

नम्बर २२ : शायद इसीलिए कि वह आज नहीं है ।

नम्बर २५ : कौन वह, नम्बर शून्य ?

नम्बर २२ : हाँ वही । शायद फिर कहीं बाहर गया है ।

नम्बर १३ : नहीं, शायद इसलिए कि आज वह है । जिस दिन वह होता है, ठक-ठक बहुत होती है ।

नम्बर २५ : क्या आप लोग विश्वास करते हैं कि सचमुच वह है ? मैं तो समझता हूँ, वह है ही नहीं ।

(नवयुवकका प्रवेश)

युवक : (चीख़ता हुआ) मैं नहीं सीखता तुम्हारा पाठ । यहाँ सभी मुरदे रहते हैं । मैं जीवित रहना चाहता हूँ । मैं मुरदा नहीं बनना चाहता । अगर कोई सुनता हो तो सुने, मैं जीनेके लिए इन सब चीज़ोंको तोड़-फोड़ दूँगा, इन फ़ाइलोंमें आग लगा दूँगा, इस भूतोंवाली कोठीको राख कर दूँगा, मैं मुरदोंको जिलाऊँगा । क्योंकि मेरे भीतर कुछ है जो जी रहा है ! मैं जी रहा हूँ, मेरी माँ जी रही है, मेरी बहन जी रही है । मैं हूँ, मेरी बहन है, मेरी माँ है । (भीतरसे गों-गोंकी आवाज़ होती है । नवयुवक उत्तेजित होकर कहता है) मेरी माँ है···

चारों ओरसे आवाज़ें : नहीं है ! नहीं है !···

युवक : (भौंचक्का होकर) नहीं है ? कौन कहता है कि मेरी माँ नहीं है ? मैं हूँ तो मेरी माँ है ! मेरी बहन है ! (उत्तेजित होकर बाहरकी ओर चबूतरेपर वही दुहराता हुआ निकलता है) मेरी माँ है ।

नम्बर १८ : मेरी आँखें नहीं हैं ? कान नहीं हैं ? और मेरी नाक—वह तो है ?

नम्बर २० और १५ : (उसकी नाक छूते हुए) नहीं है ।

नम्बर १८ : (अपनी नाक छूता हुआ) है ।

नवयुवक : (दूर देखता हुआ) है ।

नम्बर १३ : मेरा खयाल है, वह है और यहीं है।

नम्बर २२ : और मेरा खयाल है कि वह यहाँ नहीं है पर वह है।

नम्बर १८ : वह ठीक वहीं है जहाँ उसे होना चाहिए। वह है।

नम्बर २५ और २० और १५ : (एक ही समय) नहीं है।

नम्बर १३ और २२ और १८ : है।

नवयुवक : (अकेले ही) है, है, है।

नम्बर २५, २० और १५ : (एक साथ) नहीं है, नहीं है, नहीं है।

नम्बर १३,२२ और १८ : (एक साथ) है, है, है।

(इसी बीच बाहर कहींसे ज़ोरके धड़ाकेकी आवाज़ होती है और शोर उठता है। नम्बर २५ कानोंमें उगली डाल लेता और आँखें बन्द कर लेता है।)

नम्बर १८ : शायद सड़कपर कोई दुर्घटना हो गयी है!

नम्बर २२ : चलो, चलकर देखें।

नम्बर २० : (घड़ी देखते हुए) अभी समय है, चलकर देख लें, किसकी मोटर लड़ी ?

नम्बर १८ : कोई चिल्ला नहीं रहा है। कोई मरा नहीं है शायद।

नम्बर १३ : तब क्या देखने चलोगे ? यों तो मोटरें रोज ही टकराती रहती हैं।

(नम्बर २५ खड़े-खड़े झपकी लेने लगता है, उसका सिर धीरे-धीरे नीचे लटकने लगता है।)

नम्बर २० : चलो, देख तो आयें। कुछ लोग घायल तो हुए ही होंगे।

(नवयुवक और नं० २५ को छोड़कर अन्य सभी क्लर्क तेज़ीसे सीढ़ियाँ उतरकर दर्शकों की अगली कतारके सामनेसे मंचके दाहिने भागके पीछे चले जाते हैं। शोर उठ रहा है।)

नवयुवक : (नम्बर २५ से) भाई साहब, अरे सुनिए तो…!

(नम्बर २५ की नींद नहीं खुलती। सिर छातीपर लटक आता है।)

नवयुवक : (उसके कन्धेपर हाथ रखकर झकझोरता हुआ) अरे आप तो सो रहे हैं। उठिए, नहीं तो गिर जाइएगा।

नम्बर २५ : (आँखें खोलता है पर कानमें उँगली डाले हुए है) धड़ाके बन्द हुए या नहीं ?

नवयुवक : धड़ाका तो नहीं हो रहा है। शोर जरूर हो रहा है।

नम्बर २५ : नहीं सुनाई पड़ रहा है, ज़ोरसे बोलिए।

नवयुवक : (ज़ोरसे) शोर हो रहा है। क्या शोरसे भी डरते हैं ?

नम्बर २५ : (कानसे उँगली निकालकर) ओह, कितना शोर हो रहा है। थोड़ी देर तक बड़ी शान्ति मिली।

नवयुवक : आप तो सो रहे थे।

नम्बर २५ : नहीं, सोया नहीं था। आराम कर रहा था। और लोग कहाँ गये ?

नवयुवक : वहीं गये हैं, दुर्घटना देखने।

नम्बर २५ : तब मैं भी जाऊँगा। शायद कोई मरा हो या घायल हुआ हो।

(तेज़ीसे सीढ़ी उतरकर चला जाता है।)

नवयुवक : (सोचता और टहलता हुआ रुक-रुककर) दुर्घटना, मौत, शोर, धड़ाका,

भीड़, नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। (कुछ निश्चय करता हुआ-सा एक हथेलीपर मुक्का मारता हुआ पीछेकी ओर मुड़ता और हालमें प्रवेश करता है। ठीक बीचमें खड़ा होकर पहले छतकी ओर ग़ौरसे देखता है। फिर सभी ओरकी दीवालोंके पास जाकर उन्हें छूकर देखता है। फिर फ़र्शपर दो-तीन बार पाँव पटकता है जिससे धम्म-धम्मकी आवाज़ होती है। इधर-उधर घूम-फिरकर सभी चीज़ोंको ग़ौरसे देखता और एक स्थानपर रुककर ज़ोरसे चिल्लाता है— 'होऽऽऽऽ! होऽऽऽऽ हो ऽऽऽऽ! हा ऽऽऽऽ! हा ऽऽऽऽ! हा ऽऽऽऽ! आवाज़ प्रतिध्वनित होती है। एक कुरसी हटाकर मेज़के नीचे झाँकता है। तभी गालपर ज़ोरसे तमाचा जड़नेकी आवाज़ आती है। गालको हाथसे दबाकर पीड़ाको झेलता हुआ झटकेसे खड़ा हो जाता है। तभी एक गलियारेसे ठक-ठककी तीन बार आवाज़ होती है। वह चौंककर उधर देखता और उसी ओर बढ़ता है। बायें गलियारेसे तीन बार ठक-ठककी आवाज़ होती है। वह उधरसे मुड़कर बीच वाले गलियारेकी ओर बढ़ता है। त्यों ही दायें गलियारेसे तीन बार ठक-ठककी आवाज़ होती है। तब दायें गलियारेकी ओर मुड़ता और तेज़ीसे भीतर घुसकर अदृश्य हो जाता है। कुछ देर तक हॉलमें सन्नाटा रहता है। थोड़ी देर बाद गलियारेसे शरीरपर बेंत पड़नेकी सड़ाक-सड़ाककी आवाज़ें आने लगती हैं। नवयुवक भागता हुआ गलियारेके बाहर हॉलमें आकर दीवालके सहारे खड़ा होता और चिल्लाता है।)

नवयुवक : अच्छा, आ जाओ यहाँ, मैं भी···· (घूँसा तानता है। उसी समय फिर सड़ाककी आवाज़ होती है जैसे उसके हाथपर बेंतकी चोट पड़ी हो, वह चोट पड़नेके स्थानको पकड़ता तबतक फिर सड़ाककी आवाज़ होती है। अबकी बार कन्धेपर चोट पड़ी है। वह कन्धा पकड़कर दो क़दम आगे हट जाता और क्रोधसे आँखें लाल करके गलियारेकी ओर देखता, दाँत पीसता और किसीको मारनेके लिए झपटता है। तबतक लगातार सड़ाक-सड़ाककी आवाज़ें होने लगती हैं। वह अंगोंपर चोटोंको सहलानेके लिए हाथ रखता हुआ 'आह, ओ' कहता पीछे हटने लगता है। दर्दसे उसका शरीर ऐंठ जाता है। पीठपर चोट लगनेपर पीछेकी ओर झुकता, छातीपर चोट लगनेपर छाती पकड़कर आगेकी ओर झुकता है। पाँवपर चोट लगनेपर झुककर पाँव पकड़ता है तबतक पीठपर चोटपर चोट पड़ने लगती है। वह सीधा तनकर खड़ा होना चाहता है तबतक पाँवपर चोट पड़ने लगती है, जब फिर नीचे झुकता है तो सिरपर चोटें पड़ती हैं। अब वह प्रतिरोध छोड़कर रक्षात्मक प्रयत्न करने लगता है। वह बाहर निकलनेके लिए दरवाज़ेकी ओर बढ़ना चाहता है, चोटोंको झेलता हुआ किसी तरह बीचवाले दरवाज़ेके पास पहुँचता है। तबतक आगेकी ओरसे सिर और मुँहपर चोट पड़ने लगती है। वह कभी एक तरफ़ और कभी दूसरी तरफ़ मुँह फेरता और अन्तमें बेदम होकर

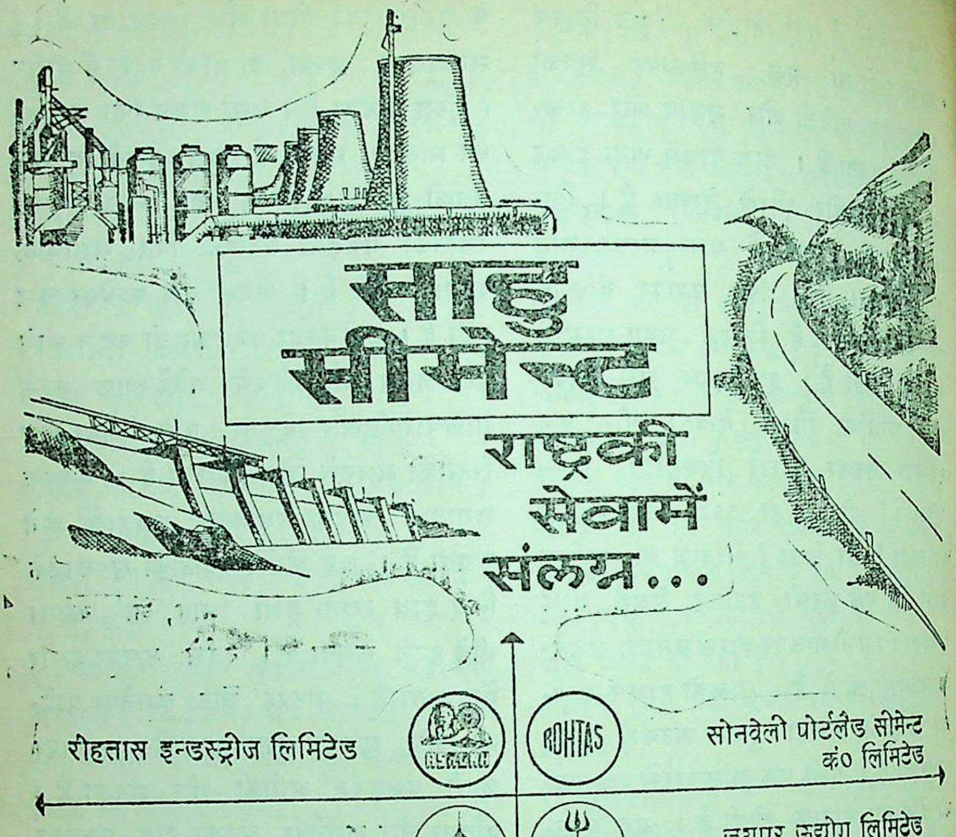
साहु
सीमेन्ट
राष्ट्रकी
सेवामें
संलग्न...
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
ASHOKA
ROHTAS
सोनवेली पोर्टलैंड सीमेन्ट
कं० लिमिटेड
अशोका सीमेन्ट लिमिटेड
SAHUL
TRISHUL
जयपुर उद्योग लिमिटेड
IPC/SC 403A

ठीक दरवाज़ेपर गिरकर ऐंठने लगता है। सड़ाक-सड़ाककी आवाज़ होती रहती है। धीरे-धीरे उसके शरीरकी ऐंठन बन्द हो जाती है जैसे चोटोंका उसपर कोई असर नहीं पड़ता। वह शरीरको थोड़ी देर तक ज़मीनपर रगड़ता है जिससे शरीर दरवाज़के ठीक बीचो-बीच इस तरह लम्बा हो जाता है कि कोई उसके ऊपर पाँव दिये बग़र उधरसे नहीं घुस सकता। सड़ाक-की आवाज़ बन्द हो जाती है। घड़ीमें इस समय ठीक तीन बजे हैं। लंचका घण्टा ख़तम हो जानेसे सड़कपर-से कर्मचारी लौटने लगते हैं, पहले उसकी आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं, फिर वे मंचके बग़लसे आगे सीढ़ीकी ओर आते दिखाई पड़ते और सीढ़ियोंपर चढ़ने लगते हैं।)

नम्बर २२ : लेकिन ट्रकका ड्राइवर नहीं दिखाई पड़ा।

नम्बर १८ : वह तो दुर्घटना होते ही कूदकर भाग गया था।

नम्बर २० : बेचारा ठेलेवाला बेमौत मरा।

नम्बर १५ : बेमौत क्यों मरा, उसकी मौत-की घड़ी आ गयी थी इसलिए मरा।

नम्बर २५ : बेचारेका सिर एकदम कुचल गया है। ट्रकका पहिया ठीक सिरके ऊपरसे गुज़रा था।

नम्बर १८ : पिछला पहिया छातीके ऊपरसे गुज़रा था। छाती एकदम पिचक गयी है।

(बातें करते-करते वे चबूतरेपर पहुँच जाते हैं। उनमें-से दो-एक खाँसते हैं और दरवाज़े-के पास रखे बड़ेसे डस्टबिनमें थूकते हैं। सबसे आगेवाला २५ नम्बर बीचके दरवाज़े-के पास कुछ ठिठकता है। फिर नवयुवकके शरीरको लाँघता हुआ भीतर घुसकर अपनी कुरसीपर बैठ जाता है। उसके पीछे दो-तीन क्लर्क एक साथ घुसते और शरीरपर पाँव रखते हुए भीतर चले जाते और अपनी-अपनी कुरसियोंपर बैठ जाते हैं। इसी प्रकार जो ऊपर घड़ी या गलियारेकी ओर देखते हुए घुसते हैं वे नवयुवकके शरीरपर पाँव रखकर गुज़रते हैं और जो नीचे देखते हुए चलते हैं वे उसे लाँघकर आगे बढ़ जाते हैं। सभी अपनी-अपनी कुरसीपर बैठकर काममें लग जाते हैं। चपरासी फ़ाइलें इधर-उधर पहुँचाने लगते हैं। सामनेवाले गलियारेसे अधीक्षक हॉलमें आते और अपनी कुरसीपर बैठकर चश्मा खोलते और रूमालसे उसे साफ़ करने लगते हैं। तभी २५ नम्बर, जिसकी पीठ दर्शकोंकी ओर है, कुरसीपर बैठे-बैठे ही पीछे मुड़कर नवयुवककी देहकी ओर देखता है। वह वैसे ही पीछे मुड़कर देखता रहता है। अधीक्षककी दृष्टि उधर जाती है।)

अधीक्षक : (कठोरतासे) नम्बर २५, लंचका समय ख़तम हो गया!

(नम्बर २५ न बोलता है, न मुँह फेरता है। सहसा गालपर ज़ोरका तमाचा लगनेकी आवाज़ होती है और वह तिलमिलाकर गालपर हाथ रखता और झटकेसे फ़ाइलमें आँखें गड़ा लेता है।)

(परदा गिरता है।)

■ ■

सी १४।१६०—बी २, सोनिया, वाराणसी

[७]

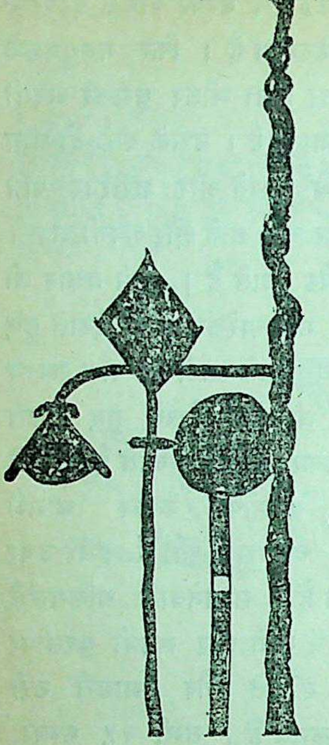

एक पत्थर, दो पत्थर तीन पत्थर

कृश्नचन्दर

[आपने पिछले अंकोंमें पढ़ा :

लन्दनमें डॉक्टरी पेशेमें उलझे कँवलप्रसाद सक्सेना जूलीके आकर्षणमें बँधकर एक दुर्घटनाको खुद निमन्त्रण दे लेते हैं— जूलीके अन्य तीन पतियोंसे मुक्केबाज़ीमें ध्वस्त होकर हस्पताल जा पहुँचते हैं। वहाँ जूलीसे वह चौथा पति बननेकी ख़्वाहिश रोक नहीं पाता। जूली साफ़ मना कर देती है क्योंकि काला आदमी उसका पति नहीं हो सकता। जूली लन्दनसे भाग पड़ती है—भागते हुए दुर्घटनाका शिकार होती है और माँसका मुरब्बा मात्र बनकर जीवित रहती है। माँसके मुरब्बेमें दो चमकती आँखें—बस। कँवलको लगता है कि जूलीको जीवित रखना ही होगा—प्रतीकारस्वरूप। वह जूलीके तीन पतियोंसे बमुश्किल इस बातकी स्वीकृति प्राप्त करता है कि जूलीपर उन तीनोंका कोई अधिकार नहीं है। कँवलकी निरन्तर चेष्टाओं और प्रयोगोंसे जूलीका शरीर किसी यूनानी मूर्तिकारकी तराशी हुई संगमरमरकी मूर्ति-जैसा निखर आता है। केवल एक कमी रह जाती है। उसकी बाँयीं टाँगमें तनिक-सा लँगड़ापन रह जाता है। वैसे अब पहलेसे भी अधिक सुन्दर बन चुकी होती है—शरीर ही नहीं उसकी आत्मा भी···उसे लगता कि वह कँवलकी एक कृतिमात्र है और कोई कृति अपने निर्मातासे अलग नहीं

रह सकती'''कँवलको हिन्दुस्तान लौटना है और वह उसके साथ होती है'''हिन्दुस्तान आकर वह कँवलके घर-परिवारमें इसतरह रस-बस जाती है जैसे वह कोई हिन्दुस्तानी औरत हो। कँवलकी अम्माँको यह बहू बहुत पसन्द आती है और दिन गुज़रते जाते हैं कि कँवल जूलीका लँगड़ापन दूर करनेमें सफल हो जाता है····जाने फिर क्या होता है कि जूलीको अब यह घर-परिवार असह्य-सा लगने लगता है और जो जूली घरसे बाहर तक निकलना पसन्द नहीं करती थी वह अब ब्रिटिश वूमेन्ज एसोसिएशनके चक्कर काटना आरम्भ करती है।····]

जब जूलीने रोज़ सुबह-सवेरे घोड़ेकी सवारी शुरू कर दी तो बड़ी बहूका माथा ठनका। उन्होंने दबे शब्दोंमें अम्मांजीसे शिकायत की—"यह छोटी बहूको क्या होता जा रहा है!"

अम्मांने डपटकर कहा, "मैं क्या जानूँ···· पूछ जिगरियासे!"

धीरे-धीरे जूलीकी अँगरेज़ सहेलियोंने हमारे घरपर आना शुरू कर दिया। अब जूली उनके लिए अलग पार्टियाँ देने लगी थी जिसमें अम्मांजी, बड़ी बहूजी, जिगरिया और दूसरी सम्मानित नौकरानियाँ शरीक न हो सकती थीं। बैडमिण्टन और टेनिसके मैच होते थे और स्वीमिंग-पूलमें तैराकीके मुक़ाबले। अँगरेज़ और अमरीकी औरतोंने मिलकर नयी दिल्लीमें जो फ़ैशन-परेडकी थी उसमें जूली अव्वल नम्बरपर आयी थी। ब्रिटिश ह्वीमेंज़ एसोसिएशनके एनुअल चैरिटी बॉलमें नाचनेके मुक़ाबलेमें जूली और मेजर ग्रॉस ह्वेटका जोड़ा सबसे अच्छा समझा गया।

रेड-क्रॉस अस्पतालमें आँखोंके इलाजके लिए अलग विभाग खोला जा रहा था—बड़े विशाल ढंगपर। दूसरे युरॅपीय दूतावासके लोग भी इस पुण्य-कार्यमें सहायता दे रहे थे। उन सबके विचार-विमर्शसे मोल्यारका प्रसिद्ध व्यंग्यपूर्ण ड्रामा 'Le Bourgeois Gentilhomme' को अँगरेज़ीमें खेलनेका सुझाव रखा गया। उसमें Dorimene का पार्ट जूलीको दिया गया। जूली इस सम्मानपर बहुत खुश थी। दिन-रात मेहनत करती थी। अब उसका ज़्यादा समय रिहर्सल-हॉलमें बीतने लगा। मेजर ग्रॉस ह्वेट इस ड्रामेका डायरेक्टर था। बहुत ही होशियार पर तनिक कठोर'''कभी-कभी मैं दोपहरको या शामको अस्पतालसे निवृत्त होकर जूलीको अपने साथ ले लेता था। वह बड़ी तन्मयतासे अपने पार्टका रिहर्सल कर रही थी और ड्रामा और उसके अन्य विवरणोंमें गहरी दिलचस्पी ले रही थी।

"पहली तीन रातोंके सारे टिकिट बुक हो चुके हैं।"

"गुड न्यूज़।"

"हैरीने यह ड्रामा पेरिसमें देखा था।"

"कौन हैरी?"

"हैरी ग्रॉस ह्वेट····और कौन!" जूली मेरी ओर चकित भावसे देखने लगी, अर्थात् मैं भी कितना बेवकूफ़ हूँ, जो मेजर ग्रॉस

हवेटका पहला नाम नहीं जानता।

"हैरी कह रहा था कि इस ड्रामेमें Dorimene का पार्ट एक सुप्रसिद्ध .फ्रेंच एक्ट्रेसने किया था। नाम भी बताया था उसने, मुझे इस वक़्त याद नहीं रहा—और हैरी कह रहा था कि उस .फ्रेंच एक्ट्रेसने भी इस ड्रामेमें अपनी ऐसी कुशलताका सबूत नहीं दिया था जो मेरे अभिनयसे जाहिर होता है!"

"अच्छा!...."

"क्या बात है?" जूली कँवलके स्वरपर चौंक गयी—"तुम कुछ खुश नहीं मालूम होते हो!"

"नहीं, मैं बहुत खुश हूँ....अगर मैं इस वक़्त गाड़ी न चला रहा होता तो तुम्हें चूम लेता।"

अच्छा हुआ कि इस बार जूलीने मेरे स्वरमें छिपे कटाक्षको नहीं समझा या उसके पल्ले नहीं पड़ा या वह उसे पी गयी। कुछ भी हो, उसने अपनी बाँह मेरी कुहनीसे लटका ली और दूसरे हाथसे अपने बालोंको ठीक करती रही।

करवाचौथके दिन जूली अम्मांजीसे कह गयी थी कि वह ठीक छह बजे वापिस घर पहुँच जायेगी। वह रिहर्सलके लिए भी न जाती मगर ड्रामेके दिन निकट आ चले थे।

"कल ग्रैण्ड रिहर्सल है इसलिए जाना बड़ा ज़रूरी है....वैसे मैंने व्रत रख लिया है।"

यह झूठ था। क्योंकि जब मुझे पता चला कि उसके लिए इस रिहर्सलमें जाना बहुत ज़रूरी है और दिन-भर काम भी करना होगा तो मैंने ख़ुद उसे पेट-भरके नाश्ता कर लेने की सलाह दी और .ख़ुद मैंने अम्मांजीसे इस ख़बरको छिपा लिया और जूलीको नाश्ता कराके भेज दिया।

शामके छह बजेसे अम्मांजी जूलीका इन्तज़ार करने लगीं। आठ बजे लगभग उसका टेलीफ़ोन आया। कँवलने रिसीव किया।

"डार्लिंग, मैं किसी तरह नहीं आ सकती! दस बजेसे पहले....रिहर्सल चल रही है और हैरी मेरे कामसे सन्तुष्ट नहीं है। और भी कितनी ही त्रुटियाँ हैं और कल गैण्ड-रिहर्सल है। अम्मांजीको किसी तरहसे बता दो, मैं दस बजेसे पहले नहीं आ सकती, आते ही तुम्हारी पूजा करूँगी....बाई....।"

टेलीफ़ोन रख दिया गया।

कँवल अम्मांजीके मुँहकी तरफ़ देखने लगा। उसे अम्माँको बतानेकी कोई ज़रूरत नहीं पड़ी। वह उसका चेहरा देखकर ही समझ गयी थीं। वह चुपचाप मुँह मोड़कर कमरेमें चली गयीं। कँवल अपने कमरेमें बैठकर अपने रिसर्च-नोट्सका अध्ययन करने लगा, इसीमें नौ बज गये....दस बज गये.... साढ़े दस बज गये।

पौने ग्यारह बजेके लगभग अम्मां कँवलके कमरेमें आयीं। पीछे-पीछे जिगरिया पूजाकी थाली उठाये हुए—थालीमें आटेका दीप, घीसे भरा हुआ, चन्दन, केसर, चावल, गुलाब और गंगाजल, खोपरा....सेव....नाशपाती और थोड़ी-सी मिठाई। अम्मांके हाथमें दो डिब्बे थे, एक डब्बेपर लाल मखमल

संस्मरण !
रेखाचित्र !!
जीवनी !!!

उपन्यासकी तरह आकर्षक ! कहानीकी तरह रोचक ! जीवन-परिचयकी भाँति प्रेरणादायक ! नीतिग्रन्थकी भाँति मार्ग-दर्शक

■ वह नन्हा-सा आदमी : सुमंगल प्रकाश ...	६.००
■ समयके पाँव : माखनलाल चतुर्वेदी ...	३ ००
■ आत्मनेपद : अज्ञेय ...	४.००
■ दीप जले शंख बजे : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
■ रेखाचित्र : बनारसीदास चतुर्वेदी ...	४.००
■ संस्मरण : बनारसीदास चतुर्वेदी ...	३.००
■ हमारे आराध्य : बनारसीदास चतुर्वेदी ...	३.००
■ पराड़करजी और पत्रकारिता : लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
■ माखनलाल चतुर्वेदी : 'बरुआ' ...	६.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र :

३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

ये
अद्वितीय
आगामी
प्रकाशन

तुलसी : आधुनिक वातायन से
■ डॉ. रमेश कुन्तल मेघ

संगतराश
■ शिवचन्द्र शर्मा

अपनी शताब्दी के नाम
■ दूधनाथ सिंह

कुत्ते की दुम
■ डॉ. र. श. केलकर

भारतीय
ज्ञानपीठ
द्वारा
शीघ्र ही
प्रकाश्य

■ ■

ड़ी थी, उसे खोलकर अम्मांजी ने मुझे दिखाया····ये जहाँगिरियाँ मैंने छोटी बहूके लिए बनवायी थीं····करवाचौथके लिए। फिर उन्होंने दूसरा डिब्बा खोला, उसमें एक बनारसी साड़ी, ब्लाउज और पेटीकोट रखा हुआ था। ज़ेवर भी नया था। कपड़े भी नये थे। अम्मांजी अपनी बहुओंको करवाचौथके दिन कुछ नया पहनाती थीं···उन्हें मन्दिर ले जाती थीं, फिर घर आकर पतिकी आरती उतारी जाती थी। और सब कुछ छूट जाये लेकिन किसी ब्याहता स्त्रीसे करवाचौथका त्यौहार नहीं छूट सकता, क्योंकि यह पति-पूजाका त्यौहार है····उसके अपने सुहागका पवित्र त्यौहार····जूलीको ये सब मालूम था। वह हर वर्ष बड़े चाव और शौक़से यह त्यौहार मनाया करती थी। उसका न मनाना ही बड़ा अपशकुन समझा जाता है।

"पूजाका समय तो बीत गया है····" जिगरियाकी आंखोंमें आंसू थे····"मगर मुन्ना···"

"जिस समय बहू आये, उसे ये कपड़े और ज़ेवर दे देना और कहना," अम्मांजी बोलीं, "कि सोनेसे पहले भगवान्‌को साक्षी करके पति-पूजा कर ले····यह नया जेवर भी पहन ले और यह साड़ी भी····।"

"मैं कह दूंगा अम्मांजी···" कँवलने अपनी मांको विश्वास दिलाते हुए कहा, "वह बेचारी रिहर्सलमें फंस गयी होगी····नहीं आ सकी। अब आती ही होगी, आते ही मैं उससे कह दूंगा। वह तो ख़ुद इस त्यौहारको बड़े शौक़से मनाती है····ये जहाँगिरियां सचमुच कितनी सुन्दर हैं····वह तो इन्हें देखकर ही ख़ुश हो जायेगी।"

मगर कँवलकी बकवासका अम्माँजीने कोई उत्तर नहीं दिया। वह जैसे अपने आँसू पीकर अपने बेटेसे अपनी दिली भावोंको छिपाये हुए उसके सामनेसे हट गयीं और घूमकर कमरेसे बाहर चली गयीं। उनके पीछे-पीछे जिगरिया भी चली गयी।

कँवलने सब चीज़ें उठाकर सेण्टर-टेबलपर रख दीं, फिर अपने अध्ययनमें व्यस्त हो गया। आधे घण्टेके बाद वह अपने बेडरूममें चला गया और कपड़े बदलकर और बत्ती बुझाकर गर्म-गर्म लिहाफ़में लेट गया। जाड़ोंके दिन थे और वह बहुत थका हुआ था, उसे जल्दी ही नींद आ गयी।

लगभग कोई दो बजे उसे अपने पास सरसराहट-सी महसूस हुई। वह करवट लिये लेटा था, जूलीका हाथ उसके कन्धेसे सरककर उसके सीनेपर आ गया····दूसरा हाथ उसके बालोंको सहलाने लगा।

"सो गये क्या ?"

"क्या वक़्त होगा ?"

"दो बज रहे हैं····वास्तवमें बहुत देर हो गयी डार्लिंग !····मगर क्या करती, रिहर्सल कोई एक बजे खत्म हुई····अब जाके कहीं बिस्तरपर पहुँची हूँ····उफ़, कितना थक गयी हूँ····नींदसे गिरी पड़ती हूँ···!"

करवाचौथकी कोई बात नहीं की उसने ···शायद ध्यानसे उतर गया होगा।

मगर मैं ही क्यों याद दिलाऊं ! कँवलने सोचा। वह मेरी स्टडीके कमरेसे आ रही

है, बेडरूम तक आनेका और कोई रास्ता भी नहीं है, अवश्य ही उसने स्टडीमें आकर रोशनी की होगी, सेण्टर टेबलपर फैली हुई साड़ी-ब्लाउज़को देखा होगा, ज़ेवरके डिब्बेको भी…इन चीज़ोंपर उसकी नजर ज़रूर पड़ी होगी, इसके बाद भी अगर उसे करवाचौथकी याद नहीं है तो मैं क्यों याद दिलाकर अपनी हँसी कराऊँ…मैं नहीं बताऊँगा उसे…। कँवलको गुस्सा आने लगा।

जूलीका हाथ अब उसके बालोंसे निकलकर उसके माथेको टटोल रहा था। माथेसे कहीं अगर वह आँखोंपर आ गया तो उसकी उँगलियाँ कँवलके आँसुओंसे भींग जायेंगी… हे राम! ऐसा न हो…ऐसा न हो…जूलीकी उँगलियाँ मेरी आँखोंपर न आयें…नहीं तो उसकी उँगलियाँ भींग जायेंगी और उसे मालूम हो जायेगा कि मैं रो रहा हूँ! हे भगवान्… उसकी उँगलियोंको वहीं रोक दे!

जूलीकी उँगलियाँ माथेसे पलटकर उसके कानोंकी लौपर चली गयीं, वहाँसे उसके कपकपाते होठोंपर…जूली धीरेसे बोली, "गुडनाइट डार्लिंग, मुझे बड़ी नींद आ रही है!"

वह सन्तोषकी एक लम्बी साँस लेकर अपनी दोनों बाँहें उसके सीनेपर रखकर सो गयी।

मगर कँवल देर तक जागता रहा। धीरेसे उसने अपनी आँखें पोंछ डालीं और फिर देर तक जागता रहा।

जूलीको याद आया कि बिल्ट शायरमें उसका एक चाचा रहता है। एक बार जूली और कँवलने बिल्टशायर डाऊंज़में दो दिन पिकनिकमें गुज़ारे थे। मगर उस बार जूलीने वहाँ अपने किसी अंकिलका ज़िक्र नहीं किया था। अब वह अपने चाचासे पत्र-व्यवहार करने लगी…फिर लन्दनमें अपनी दूसरी सहेलियोंसे। करवाचौथकी घटनाके कोई छह महीने बाद उसने कँवलसे कहा, "मैं इंग्लैण्ड जाना चाहती हूँ, मेरा चाचा बीमार है, तुम भी चलो…तुम भी बहुत समयसे इंगलैण्ड नहीं गये हो, क्या तुम्हें इंगलैण्ड याद नहीं आता?"

"पिछले चार सालोंमें तुम्हें भी लन्दन याद नहीं आया था, न अपना चाचा, न लन्दनकी अपनी कोई सहेली!" कँवलने व्यंग्यसे कहा।

"अब याद आता है…सब कुछ।"

"क्यों?"

"कह नहीं सकती…लन्दन जाना चाहती हूँ।"

"तो आओ, मैं हवाई जहाज़से तुम्हारी सीट बुक कराये देता हूँ।"

"तुम नहीं चलोगे?"

"मैं इस समय एक बहुत विशेष रिसर्चमें व्यस्त हूँ। फिर मुझे अस्पतालसे इतनी जल्दी छुट्टी नहीं मिलेगी…तुम हो आओ, कितने दिनके लिए जाना चाहती हो?"

"केवल पन्द्रह दिनके लिए।"

पन्द्रह दिन गुज़र गये, बीस दिन गुज़र गये, एक पूरा महीना बीत गया, दो महीना बीत गया। फिर जूलीकी एक चिट्ठी आयी—

"शीघ्र लन्दन आ जाओ, तुमसे आवश्यक बातें करनी हैं।"

मैं छुट्टी लेकर लन्दन पहुँच गया। कैनसिंगटनवाले दो कमरोंके फ़्लैटमें, जहाँ जूली रहती थी, उसने सबसे पहले मुझे बताया था कि वह अब वापिस हिन्दुस्तान नहीं जायेगी··· यदि मैं उससे प्रेम करता हूँ तो मुझे यहीं इंग्लैण्डमें उसके साथ रहना पड़ेगा।

'क्यों?" मैंने पूछा।

"क्योंकि मैं साड़ी नहीं पहन सकती।"

"चार बरस तक तुमने साड़ी पहनी है?"

"उस समय तक मैं पूर्ण नहीं थी, लँगड़ी थी, ज्यों ही मेरा लँगड़ापन दूर हुआ, मुझे यह प्रतीत होने लगा कि साड़ी धीरे चलनेवालोंका पहनावा है···मेरे चलनेमें बाधा देती है! तुम जानते हो, युरँपीय औरतें हिन्दुस्तानी औरतोंसे दुगुना तेज चलती हैं।"

"चलकर कहाँ जाती हैं···बच्चा तो नौ महीनेमें ही जनती हैं····आज तक कभी मैंने यह नहीं सुना कि किसी अंगरेज औरतने नौ महीनोंकी जगह चौथे महीने बच्चा दिया हो!"

"तुम बेहूदा बातें करते हो।"

"तुम स्पीडकी बात करती हो न···मैंने उसका उत्तर दिया है।"

"अँगरेजी लिबास सबसे अधिक सुविधाजनक है।"

"पिछले डेढ़ वर्षोंमें तुम अँगरेजी वस्त्रोंमें ही रही थीं—अम्मांजीके विरोधपर भी, मैंने भी कभी कोई एतराज़ नहीं किया।"

'मुझे ज्वाइण्ट-फ़ेमिली-सिस्टम पसन्द ही नहीं—एक सिरसे।

"ऐसा न कहो, तुम तो इस सिस्टममें डूब गयी थीं। मन्दिर भी जाती थीं, किचनमें भी काम करती थीं, व्रत भी रखती थीं। चार साल तक तुम्हारा पूरा जीवन एक भारतीय, एक अति प्रसन्न हिन्दुस्तानी-बहूके समान बीता, हर समय अम्मांजीके कूल्हेसे लगी रहती थीं तुम···फिर यह अचानक क्या हो गया?"

"मैं ठीकसे बता नहीं सकती। लगता है, जैसे कहींपर वह विवशताका जीवन था···· मैं लँगड़ी थी, पूर्ण न थी····लन्दनमें प्रत्येक स्थानपर हर प्राणीकी नज़र मुझपर करुणा तथा दयाकी ही पड़ती, दिल्लीमें नहीं···· तुम्हारे घरपर भी नहीं। तुम्हारे ज़नानेमें जैसे मैं आधुनिक युगसे बहुत दूर थी, लेकिन जिस दिन मैं पूर्ण हो गयी, मेरे पुराने दिन फिरसे जाग उठे! एक-एक करके मुझे ज़्यादा हरकत, ज़्यादा तेज़ीसे अपने पास बुलाने लगे····शायद तुम्हारा कल्चर एक लँगड़ा कल्चर है····बीमार कल्चर है····बहुत धीरेसे आगे बढ़ता है या शायद आगे ही नहीं बढ़ता है। सैकड़ों, बल्कि हज़ारों साल तक एक ही मंज़िलपर टिका रहता है।····जबतक मैं लँगड़ी थी सब ठीक था, मैं वहाँ रच और बस गयी थी, मुझे कुछ बुरा नहीं लगता था मगर जब तुमने मुझे दूसरा पाँव दे दिया तो दिन-प्रतिदिन मैं बेचैन होती गयी, लन्दनका तेज़ जीवन मुझे अपने निकट खींचने लगा—ज़रा एक पलके लिए सोचो कँवल, जब मेरे दोनों पैर ठीक हैं तो मैं घण्टों जामुनके

पेड़के नीचे बैठकर छालियाँ क्यों कतरती रहूँ, बॉलरूममें डान्स क्यों न करूँ····ज़िन्दगी छोटी-सी है और मैं भरपूर जीवन बसर करना चाहती हूँ—जो केवल युरॅपमें सम्भव है····।"

भरपूर ज़िन्दगी ? मैं सोचने लगा।

"जूली ! भरपूर ज़िन्दगीसे तुम्हारा क्या मतलब है ? क्या ज़्यादा हिलना-डोलना, हर समय बेचैन और अधीर रहना, एक बेताब तितलीकी तरह एक इच्छासे दूसरी इच्छाके चारों ओर घूमना····क्या यही केवल भरपूर ज़िन्दगी है ? पर शायद वही भरपूर ज़िन्दगी बसर कर सकते हैं, जो अधिक हिल-डुल नहीं सकते—मुझे अपनी अम्माँजी याद आने लगीं····सालमें आठ-दस बारसे ज़्यादा वह घरसे बाहर नहीं निकलती होंगी, उनकी सारी ज़िन्दगी ज़नानेके आँगनमें गुज़री जाती है, उन्होंने कभी टैनिस नहीं खेली, घोड़ेकी सवारी नहीं की, कोई क्लब ज्वाइन नहीं किया, गाड़ी वह नहीं चला सकतीं, पराये मरदोंके संग वह नहीं नाच सकतीं····मगर क्या तुम कहोगी कि उन्होंने भरपूर जीवन नहीं बिताया ? वह मुहब्बत जो घूँघटकी आड़में है, वह प्यार जो सेवामें है, वह दर्शन जो तुलसीके देवलमें है, वह जीवन जो ज़्यादासे ज़्यादा दूसरोंके लिए है उसका तुम अपने युरॅपके जीवनसे कैसे मुक़ाबला करोगी ?····दोनों अलग-अलग कैटेगरीज़ हैं—एक समन्दरकी बेचैन लहर है तो दूसरी आँगनमें खिली फुलवारी ! एक आगकी तरह जलती है, दूसरी फलके समान पकती है। मुहब्बतमें एकके हाथ गरदनकी ओर बढ़ते हैं, दूसरीके पाँवकी ओर झुकते हैं। एक अनुलम्ब धरातल-पर चलती है तो दूसरी समानान्तर दिशामें। मैं एकका मुक़ाबला दूसरीसे कैसे कर सकता हूँ····स्वभावके यह दोनों भिन्न रूप हैं। जीवन बितानेके दो भिन्न रंग हैं—यदि मुक़ाबला करना है तो एक औसत दरजेकी युरॅपीय औरतको अम्माँजीके सामने लाओ और फिर मुक़ाबला करो, भरपूर ज़िन्दगीका फ़ैसला वहाँपर होगा—युरॅपीय औरत एक पुरानी टूटी-फूटी कारके समान दिखाई देगी जिसने जवानीमें बहुत तेज़ सफ़र किया है और अब जिसे युरॅपका अति व्यस्त जीवन भूतकालके कबाड़खानेमें डाल गया है और अम्माँजी आज भी घरके आँगनके बीच तुलसीके मण्डपकी तरह खड़ी हैं जिसके चारों ओर आम और जामुनके पेड़ हैं, जहाँ रातकी रानी खिलती हैं, बहुएँ घूँघट काढ़े पांव छूती हैं, दीवारोंपर लौकीकी बेलें झूलती हैं, जिगरिया कल्लेमें गिलौरी दबाये खड़ी है और अम्माँजी चाँदीके गिलासमें मट्ठा भरकर और गिलासको ऊँचा करके और घूँघटको थोड़ा नीचे करके कहती हैं, "इनको दे आओ, जिगरिया !"····वह आज भी, इतनी उमर गुज़र जानेपर, अपने पतिका नाम नहीं ले सकतीं। मैं कैसे उनका मुक़ाबला कर सकता हूँ, उस युरॅपीय औरतसे जो दिनमें दो सौ बार अपने पतिको डार्लिंग कहती है और समझती एक बार भी नहीं····मुझे नहीं मालूम, कौन भरपूर है, कौन भरपूर नहीं है....मुझे विश्वास नहीं है कि तुम भी कोई

फ़ैसला करनेकी अधिकारी हो ।"

"अधिकारी हूँ कि नहीं यह तो मैं नहीं जानती, इतना ज़रूर जानती हूँ कि सचको जाननेके लिए मैं साठ साल तक इन्तज़ार नहीं कर सकती''''शायद तुम भी नहीं कर सकते । मैं तुमसे प्रेम करती हूँ'''प्यारसे मतलब मेरे अपने ढंग, रंग और स्वभावके प्रेमसे है''''यदि तुम ज़िद करके मुझे वापिस दिल्ली ले गये तो मैं मर जाऊँगी''''वक़्तसे पहले मर जाऊँगी'''' हो सकता है, फिर, भाग जाऊँ'''वहाँ मेरा दिल नहीं लगेगा'''यहाँ तुम्हारे बिना खुशी नहीं मिलेगी, सोच लो''''!"

क्या सोचूँ ? जूलीको छोड़ना भी कठिन है। जूलीसे रिश्ता भी तो अजीब-सा रिश्ता है'''केवल पति-पत्नी ही का नाता नहीं है, कुछ ऐसा लगता है जैसे जूली मेरे शरीरका ही एक अंग हो ! जूली जानती है, उसके शरीरमें मेरे शरीरकी एक पसली शामिल है, मैंने वह ऑपरेशनके ज़रिये उसे दी है'''शायद इसी तरह आदमकी पसलीसे हव्वा पैदा हुई थी'''मैं हव्वाकी बेटीको कैसे छोड़ सकता था''''!

दो-तीन दिन सोचनेके बाद मैंने जूलीको बता दिया कि मैं लन्दनमें फिरसे काम शुरू करता हूँ। सेण्ट जार्ज अस्पतालमें मुझे वही पुरानी नौकरी मिल गयी और मैं जूलीके साथ ही रहने लगा। सोचा कि जूलीका यह निर्णय, क्षणिक निर्णय होगा'''बरस-दो बरस-में मैं उसे दिल्ली वापिस चलनेके लिए राज़ी कर लूँगा।

मगर उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हुईं—वे रास्ते जो दिल्लीमें एक बार अलग हुए थे फिर साथ रहनेसे भी दोबारा न मिल सके। धीरे-धीरे जूली अलग अपने रास्तेपर जाने लगी। कँवल अलग अपने काम और अपनी रिसर्चमें डूबता चला गया। बहुत जल्दी उसने अपनी ज़ुबानकी बेतकल्लुफ़ियाँ छोड़ दीं। जूलीके केसकी सफलताने उसके दिल और उसकी विचार-धाराको अपने प्रिय विषयकी ओर आकर्षित कर दिया। उसकी रुचि कुछ गम्भीर और संजीदा-सी होती गयी। वह जूलीके चंचल और खिलण्डरे मित्रोंको पसन्द नहीं करता था और जूली उसके डॉक्टरों और वैज्ञानिक मित्रोंको''' ।

कभी-कभी अपनी तबीयतपर ज़ोर देकर वह जूलीके मित्रोंमें चला जाता। वह एक स्वस्थ व मज़बूत आदमी था। कुछ मिनिटोंके लिए वह उनसे उन्हींके मुहावरेमें बातचीत करता—खिली-खिली, चंचल-शोख़ ऊपरी बातोंमें तथा स्पोर्ट्सकारोंके हंगामोंके रिकार्डों और पिकनिककी छिछोरी पार्टियोंके म्यूज़िकमें हिस्सा लेता। मगर बहुत जल्द उकता जाता, कुछ मिनिटोंके बाद वह अपने आपको अलग पाता ! इस जीवनका व्याकरण ही कुछ भिन्न था। वह अपने डॉक्टर-मित्रों और वैज्ञानिकोंके घरोंमें भी बुलाया जाता था, पर सदा एक अन्तर-सा रहता''''एक अनुभव न होनेवाला फ़र्क़'''जिसे वह कभी पार नहीं कर सकता था। सारा प्रेम, सारा प्यार, सारी मित्रताके होते हुए भी कभी किसीकी तुच्छ-सी हरकत, बातोंका भाव, नज़रोंका अन्दाज़,

हँसीका ढंग उसे बता देता था कि वह एक आउट-साइडर है···वह कभी अन्दर न आ सकेगा····किसी और सभ्यताके साथ रहते हुए यही अनुभव होता है, सिर्फ़ चन्द ग़ज़ तक तो वे तुम्हें अन्दर आने देती है, उसके आगे जानेकी कोशिश करो तो विरोध करती है—बाहर फेंक देती है। हर सभ्यता देखनेमें सुन्दर आकर्षक मालूम होती है, लुभावनी, विशाल हृदयवाली, मगर अन्दरसे एक मुट्ठीमें समाज बन्द···।

"तुम इंग्लैण्डमें पचास बरस रहोगे फिर भी अजनबी रहोगे। अपनी अँगरेज़ बीवीके लिए भी अजनबी!" जेम्स क्लिफ्टने एक व्यंग्य-भरी मुसकराहटसे उसे कहा था।

"तुम्हारी ग़लती यही रही····क्यों तुमने जूलीका लँगड़ापन ठीक किया? तुम्हारी सारी मुसीबतें उस एक दिनसे शुरू होती हैं। अगर वह जीवन-भर लँगड़ी रहती तो जीवन-भर हिन्दुस्तानमें रहती।"

"आपके कहनेका मतलब है कि हिन्दुस्तान में केवल लँगड़ी औरतें ही रह सकती हैं?"

जेम्स ज़ोरसे हँसा, "मुझे तुम बिलकुल ग़लत समझे कँवल! मैं तुम्हे एक बिलकुल दूसरी ही बात समझा रहा था। जबतक वह अधूरी थी वह किसी अजनबीसे अजनबी देशमें रह सकती थी, मगर पूर्ण होनेके बाद···· माई व्वाय, क्या तुम यह नहीं जानते कि जैसे ही कोई वस्तु पूर्ण होती है अपने प्रारम्भको लौटती है····यह एक कॉस्मिक-ला है····।"

"जहन्नुममें जाये तुम्हारा कॉस्मिक-ला!" अचानक कँवलको गुस्सा आ गया था और उसने शराबका जग आतिशदानमें खींच मारा था और जिम्स क्लिफ़्ट नाराज़ होनेकी जगह हँस पड़ा था।

अक्तूबरमें उसे दशहरा याद आया था, नवम्बरमें दीपावली, दिसम्बरमें जब सब लोग क्रिसमस मना रहे थे, वह शायद कनॉटप्लेसमें घूम रहा था। उसकी जेबें चिलगोज़ों और भुने हुए पिस्तोंसे भरी थीं। उसका दिल चाट खानेको हो रहा था। लन्दनकी सर्द सुरमई शामोंमें किसका जी चाट खानेको चाहेगा···· इसके लिए चमकती धूपकी ज़रूरत है····नीले आकाशकी ओर उड़ती शोख़ रंग साड़ियोंकी!

फिर भी वह रहता, शायद मन मारकर रहता, जैसे अब रहता था····पर···क्योंकि हर रातको जूली घरपर आ जाती थी। अपने व्यवहारमें वह उसके लिए सचेत थी, अपने ढंगसे वह उससे प्यार करती थी, उसे चाहती थी, और उसका ख़याल रखती थी। नया वर्ष उन्होंने इकट्ठे मनाया था। रात-भर ख़ुशीसे नाचते और पीते रहते थे, सुबहको सो गये थे, तीसरे पहर उठे थे तो कँवलको अपने बिस्तरके तकियेके नीचेसे जूलीका पत्र मिला—"मैं दो दिनके लिए हेस्टिंग्ज़ जा रही हूँ····ज़रूरी काम है···तुम परेशान न होना····आकर बताऊँगी—तुम्हारी जूली।"

दो दिन गुज़र गये—पाँच दिन गुज़र गये। जूली नहीं आयी। सात जनवरीको जिमने उसे बताया कि उसने जूलीको एक रंगीन पार्टीमें पेरिसमें देखा था। वह वास्तव में हेस्टिंग्ज़ नहीं गयी थी····या सम्भव है हेस्टिंग्ज़से पेरिस चली गयी हो····बड़ी अच्छी

पार्टी थी''''अमीरज़ादोंकी पार्टी थी और जूली उन सबमें शहज़ादीके समान सजी-सँवरी सबके ध्यानका केन्द्र बनी हुई थी ।

जिमका व्यंग-भरा स्वर, उसकी नज़रोंकी छिपी-सी घृणा, उसकी हँसीका ढंग खून खौला देनेके लिए बहुत था । कँवल चुप रह गया । उसकी प्रतिक्रिया देखकर क्लिफ़्ट भी खामोश हो गया मगर उसकी खामोशी कहे देती थी कि वह जूलीके बारेमें बहुत-कुछ कह सकता है ।

जब जिम चला गया तो बार-बार उसके कहे हुए व्यंग्यपूर्ण वाक्योंको कँवल मनमें दोहराने लगा''''जूली हर तीसरे महीने अपनी कार बदलती है''''हर दूसरे महीने उसे पैरिसके फ़ैशनके अनुसार ड्रेस बदलना पड़ता है । इस वेगपूर्ण हर आन बदलती हुई ज़िन्दगीमें सिर्फ़ पति ही न बदला जाये''''यह तो बड़ी बेवकूफ़ी होगी'''जूलीमें और हज़ारों बुराइयाँ हों, पर वह बेवकूफ़ नहीं हो सकती !'''

और कँवलने एक फ़ैसला किया'''

और जिस दिन उसने यह फ़ैसला किया उसी रात जूली वापिस घर आ गयी । जूली परेशान बाल झटकाती हुई हाथमें एक सूटकेस उठाये अन्दर दाखिल हुई । और उसके कहनेसे पहले ही बोल पड़ी, "डार्लिंग, मैं बहुत थक गयी हूँ, अगर घरमें खानेके लिए कुछ है तो जल्दी दो । मैं खाना खाके सो जाऊँगी और सुबह तुम्हें सब कुछ बता दूँगी ।"

कँवलने उसके लिए ऑमलेट बनाया, टोस्ट तैयार किया'''मक्खन, मुरब्बा और चाय, जो कुछ मिला, उसके सामने रख दिया । वह एक भूखी बिल्लीके समान खाती गयी, फिर दोनों बाँहें सीनेपर रख-कर सो गयी ।

रातको वह धीरेसे उठा । टार्च जलाकर उसने जूलीका सूटकेस खोला । एक कोनेमें उसे पैरिसके फ़ोटो मिल गये, उस खूबसूरत रंगीन पार्टीके ! जूली नशेमें....जूली दूसरोंकी बाँहोंमें....जूली चूमती हुई किसी दूसरेको.... निश्चय ही अब वह अपना फ़ैसला नहीं बदल सकता !

बाक़ी सारी रात उसने जूलीके बिस्तरपर बैठकर गुज़ारी या टहलकर या पीकर.... उसने जूलीके साथ अपनी बीती हुई ज़िन्दगीका प्रत्येक क्षण याद किया, फिर भी वह अपने फ़ैसलेको बदल नहीं सका । वह अपने दायरेमें चल रहा था मगर जूली एक टैंजेण्टके समान उसकी धुरीसे उखड़ गयी थी—

"सब खत्म है ।
इस अन्तिम कील ने
बेदर्द तरतीब को मुकम्मल कर दिया
नक़ाब उलट गया
और खुदा के जख्म गिन लिये गये
सब वापिस
हर तरफ़ कठोर मक़बरों का खुला
झाँकता है
बुझे हुए सूरजमें ज़िन्दगी नहीं
न रहा ईमान
न कोई बुलन्दी न पस्ती न निशान
इतिहास भी खत्म ।"

उसने सोयी हुई जूलीके माथेपर अन्तिम चुम्बन दिया और बेआवाज़ क़दमोंसे कमरेके दरवाज़ेसे बाहर निकल गया । (क्रमशः)

■ ■

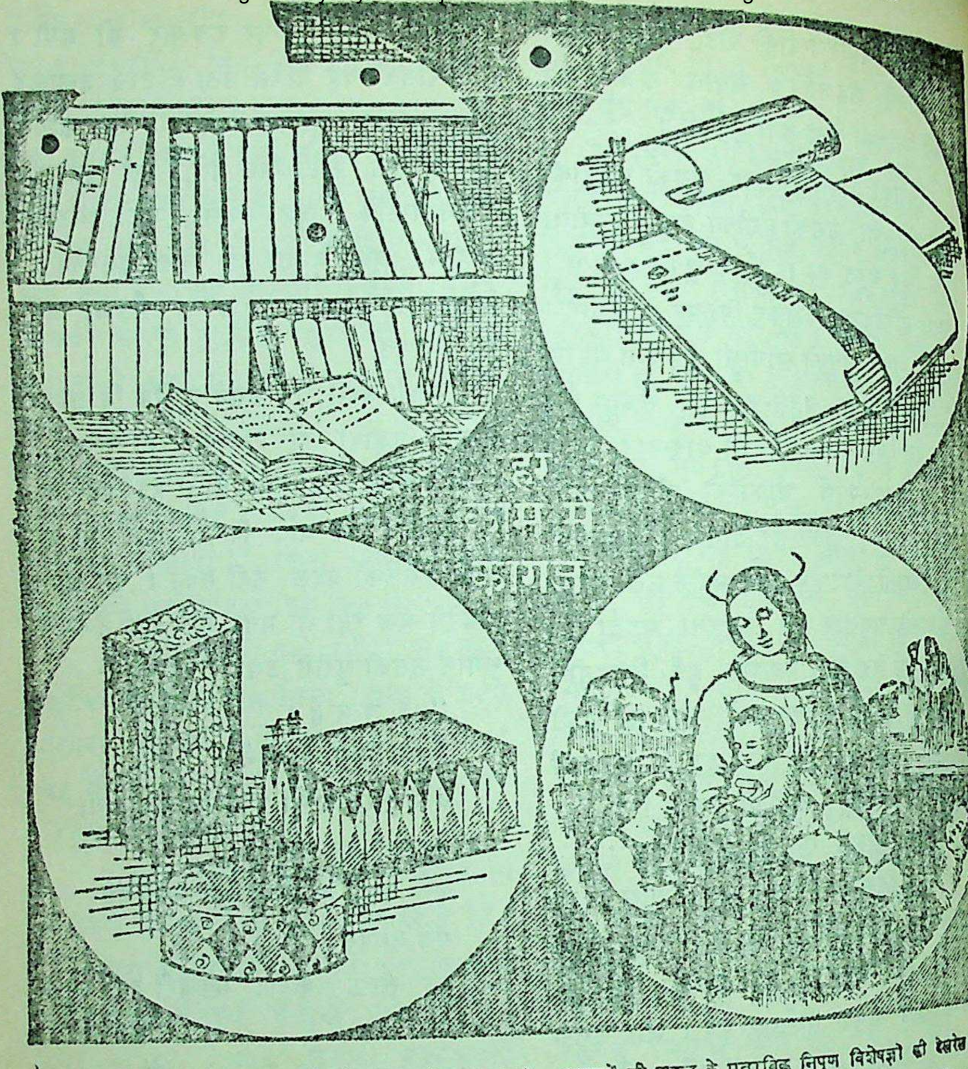

आपको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, टेक्स छपाई के लिये कोमो पेपर्स चित्रादि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज,— ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

सेलिंग एजेन्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो, कलकत्ता

विदेशी तराज़ू : डॉ० हुसैनका चुनाव

●

भारतके नये राष्ट्रपतिके रूपमें डॉ० ज़ाकिर हुसैनके चुनावपर विदेशोंमें 'धर्मनिरपेक्षताकी जीत'का डंका पीटा जायेगा !....उनकी यह जीत दिल्लीके कुछ अहम राजनीतिक मसलोंको और भी भड़का देगी । श्रीमती इन्दिरा गान्धीने हिन्दू भारतपर मुसलमान राष्ट्रपति लाद दिया है ।

— पाकिस्तान टाइम्ज़

●

अब डॉ० हुसैन कश्मीर-समस्याके सुलझावपर प्रभाव डालनेमें समर्थ हो पायेंगे ।....हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंके रुतबेपर डॉ० हुसैनके चुनावका नैतिक रूपसे अच्छा असर पड़ेगा ।

— जेड० ए० भुट्टो

बोलते प्रतिबिम्ब

— पुष्प-धन्वा

●

उम्मीद यही है कि हुसैन वैसे ही राष्ट्रपति सिद्ध होंगे जैसे कि श्रीमती गान्धी चाहती हैं—एक प्रतीकात्मक मुखिया मात्र ।....लेकिन जब चुनाव-फल घोषित हुए तो पता चला कि सम्भवत: विरोधी दल तक, वास्तवमें, एक शक्तिशाली राष्ट्रपति नहीं चाहता था ।

— न्यूज़वीक

●

नये राष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिर हुसैन जवाहरलाल नेहरूके ही दोस्त और हमराही हैं । वे भी गुटबन्दीसे अलग रहनेकी नीति और भारत व सोवियत संघ मैत्री बढ़ानेके हामी हैं ।

— इज़्वेस्तिया

●

मुसलमानोंके मनमें यह अटकाव, यह अहसास बना हुआ है कि धर्मनिरपेक्षताकी खातिर, जिन्ना और मुस्लिमलीगवाली साम्प्रदायिकतासे मुँह मोड़कर डॉ० हुसैनने विभाजनसे खण्डित इस जातिको अत्यन्तावश्यक नेतृत्व और सहायतासे वंचित कर दिया है।

— द टाइम्ज़ (लन्दन)

●

डॉ० हुसैनकी जीत श्रीमती गान्धीकी भी जीत है। उन्होंने इतने जी-जानसे डॉ० हुसैनका साथ दिया कि यदि वे हार जाते तो स्वयं श्रीमती गान्धीका भविष्य ख़तरेमें पड़ जाता।

— डेली टेलीग्राफ़

●

सिद्धान्ततः शायद मतदाताओंको उम्मीदवारोंका धर्म नज़रअन्दाज़ करके उन्हें सिर्फ़ उनकी व्यक्तिगत योग्यतापर ही चुनना चाहिए था किन्तु वास्तविकता यह थी कि साम्प्रदायिकताके विचारसे अछूता न रहा जा सका।

भारतको उचित ही राष्ट्रपति प्राप्त हुआ है। यह बात दूसरी है कि उसे पानेका तरीक़ा शायद अनुचित था।

— गार्डियन

●

डॉ० हुसैनकी विजय बुद्धिमत्ता, सही मूल्यांकन और सन्तुलित परखकी दिशा उजागर करती है। इसने विश्वके सम्मुख यह सिद्ध कर दिया कि यद्यपि जातिभेद सभी जगह सिर उठा रहा है, भारतके मतदाता इसके डंकसे बचे हुए हैं। डॉ० हुसैनका चुनाव हमारी अपनी साम्प्रदायिकताका पर्दाफ़ाश कर देता है। क्या सीलोनमें भी कभी एक तमिल या मुसलमान या बर्गर इतने बड़े पदकी आकांक्षा कर सकता है!

— सीलोन डेली मिरर

■ ■

१६, दरयागंज
दिल्ली—६

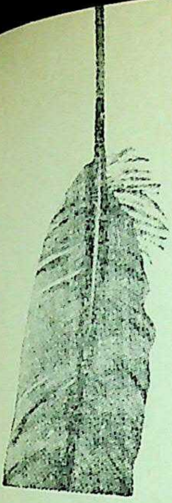

युवालेखन : ६—पंजाबी

●

[हरनामका एक दिलचस्प रिपोर्ताज़ छपा था पंजाबी साहित्यपर : 'मुखौटे'। हरिभजनसिंहसे लगाकर अमरजीतसिंह तक उन्हें मुखौटे-ही-मुखौटे दिखे। लगा कि हर जगह ग्रुप और उस ग्रुप-विशेषके साथ ही भीड़के भीड़ साहित्यकार उठते हैं और उसके साथ-साथ ही बैठ जाते हैं। जलन्धर, पटियाला, चण्डीगढ़, शिमला-से दिल्ली तक पंजाबीके उस नये साहित्यकी चर्चा ह जो आगसे तअ़ल्लुक़ रखता है और जो 'अलग' है। ज्ञानोदयके पाठक अमृता प्रीतम, कर्तारसिंह दुग्गल, नानकसिंह, अजीत कौर, नवतेजसे परिचित हैं ही। इस स्तम्भके लिए हमने श्री नरेन्द्र धीरकी विशेष सहायतासे ७ कविताएँ, एक स्केच और एक कहानी चुनी ह। 'नागमणि' 'प्रीतम', 'प्रीतलड़ी', 'चेतना' आदि पत्रिकाओंसे हिन्दीके अधिकांश पाठक परिचित हैं। पिछले वर्ष 'प्रीतम'ने पंजाबीमें हिन्दी कहानी विशेषांक भी प्रस्तुत किया था। आप देखेंगे, कविताएँ अभी 'डायरेक्ट' होनेमें लगी हैं, आगेकी ज़मीन अभी टूटनी है। कहानियोंके सामने अभी शिल्प है, कथानक है, भावना है – ये सब अभी अपदस्थ नहीं हुए हैं। हरनामके शब्दोंमें : 'अभी मुखौटे उतरने बाक़ी हैं।' कुछ अनुवाद राजेन्द्र कौर और घनश्याम रंजनने भी किये हैं। — सं०]

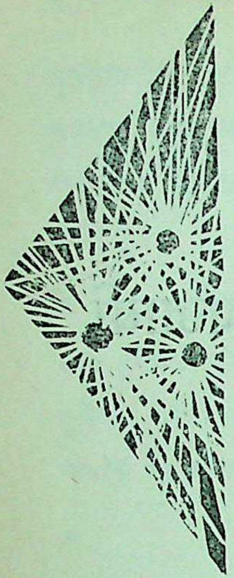

७ कविताएँ

शहर/मोहनजीत

●

मैं इस शहर में दौड़ती रेखाएँ पकड़ता
घूमते हुए साथों को तकता
और दौड़ता धुँधली राहों पीछे ।

जादूगरनी, खुरदरी, बलखाती औ'
तपती सड़कों का मैं रोज़ का साथी,
इक क्षण में इन सड़कों पे'
बस हूँ, साईकल हूँ या इक रिक्शा,
दौड़ता, हाँफता, धुआँ फाँकता,
जाने-पहचाने मोड़ों पर रुकता,
झूठी एक तसल्ली अंगों को देने की खातिर
कॉफ़ी-हाउस के भीतर जाता
शोख कैलेण्डर देख के काम-तृप्ति करता
औ' भड़कीली खबरें पढ़ता
जूठे आनन्द से ताज़ा होकर
दौड़ता अगले मोड़ लिए फिर ।

सुबह उठते ही तुर्शी,
और जिस्म का झूठा सौन्दर्य,
हैं मेरे साथी,
शाम ढले तो :
घुटन बाग़ की
नंगे अंग या खट्टी चीज़ों की खुशबू
टूटा जिस्म औ' गहरी नींद—
एक क्षण में इन सड़कों पे
बस हूँ, साईकल हूँ या इक रिक्शा···!
[अनु० : राजेन्द्र कौर]

■

३६८३ सुलतान विण्ड गेट,
गुरुरामदास नगर, अमृतसर

केवल वयस्कों के लिए/गुलनारी

●

आज अट्ठाईस सितम्बर को
अपनी नाबालिग़ बहिन के साथ
(जो अभी सत्रह साल की है)
एक वह फ़िल्म देख कर
अभी-अभी घर लौटा हूँ—
जो 'केवल वयस्कों के लिए थी,

लौटते हुए रास्ते में हम
एक दूसरे से बिलकुल नहीं बोले
हमारे शब्द खो तो नहीं गये हैं
केवल ठिठुर गये हैं !

हाय ! आज कितनी ठण्ड है !

[अनु० : राजेन्द्र कौर]

■

५५२, दोज्जियाँ स्ट्रीट, नाभा

शंकाओंका देश / हरनाम

●

किसने फिर,
अपमान की बात छेड़ ली ?
वह तो बस जगा, और
फिर मुरझा गया।

कितने अगाहे समुद्र पार किये,
कितने अनजीये स्वादोंका बिखराव....
अपनी झोली में भरकर मैं चल पड़ा
एक अदेखे नगर को—
एक क़दम उठाया कि फिर रक्खा नहीं
शक की उपजी धरती पर
शंका पर शंकाएँ जैसे सुलगी हुईं।

उसने मुझे कहा,
मैंने जान लिया—
तेरे श्वाँसों की सुगन्ध
वह तो दम्भी है किसी अहंकार की तरह
उसकी आँखों में भी बरड़ है।

क्या,
क़दम उठाया, तो फिर रक्खा नहीं
एक ही पैरों पर चल रहा हूँ
यह हक़ीक़त है, जो जीता-जागता अपमान है
और
सम्मान ?
अनजीये ही मैं शरमा गया।

पैर, दूसरा भी कभी यदि उठा लिया
फिर भी चलता ही रहेगा मेरा आकार !

[अनु० : नरेन्द्र धीर]

■

बचकाना भुलावा / रविन्दर रवि

●

ज़िन्दगी कितनी तेज़ रफ़्तार हो गयी है।
हर कोई दूसरे से आगे निकल जाने की
कोशिश में है।
सड़कें दोनों ओर को तेज़ दौड़ रही हैं
आने वाले की मुँह की, मुश्किल से एक उड़ती
झलक दीखती है
और जाते ही पीठ देखने का
किसी को अवकाश ही नहीं।
कितनी भाग-दौड़ है! कितना उतावलापन!
फिर भी कुछ लोग चौकों में खड़े देखते हैं:
दूर से भागी आ रही कार के साथ दौड़ती
सरपट सड़क
लगता है कि चौक के साथ दुर्घटना करेगी।
पर समीप आकर कार किसी और दिशा की
ओर फिसल जाती है
और सड़क घूम कर रुक जाती है।
क्षण मात्र में तनाव बढ़कर सिमट जाता है।
चौक में खड़े लोग मन-ही-मन खुश होते हैं।
ट्रैफ़िक की दोहरी नदी उसी तरह बहे जा
रही है।
किन्तु चौक के ज़ीरो-क्षेत्र पर इसका कोई
प्रभाव नहीं।
लोग तो कई बार,
अपने ढाडस से न्याय करने के हेतु
राहियों को सड़क से अलहदा कर कहते हैं—
पता नहीं दुनिया को क्या हो गया है?
सड़क तो न आ रही, न जा रही है,
दुनिया कैसे सिर पर चढ़ी है।

[अनु०: नरेन्द्र धीर]

■

ज़िन्दगी : फ़ुरसत /

रघुबीरसिंह 'चन्द्र'

●

दौर रफ़्तार का है,
दिमाग़ बहुत सनकी है।
यूँ ही नादान-सी बात—
मोहब्बत का खयाल,
दो घड़ी दर्द जगा बैठने का एक चस्का है।

ज़िन्दगी अजीब-सा भार बनती जा रही है
यूँ लग रहा है कि पुस्तक है कोई कोर्स की,
क़दम बढ़ते ही नहीं
पीछे भी नहीं लौट पाता।

विचित्र हालतें हुई मौसम की कई शामों से
कारोबार की घटा सदा ही छायी रहती है
दिल किसी डूबते सूरज की तरह सोचों-भरा।

यह तो बस यूँही कभी बात में से बात
निकल पड़ती

ज़िन्दगी फ़ुरसत ही कब देती है,
यूँ सोचने की!

[अनु० नरेन्द्र धीर]

■

गवर्नमेण्ट कालेज,
मुक्तसर

आरम्भ/स. स. मीसा

●

मुझे कोई आरम्भ करना है अभी !
हौसले वाला,
बहुत बलवान हूँ, योद्धा बड़ा ।
पर अभी तक
अपने घर की ही देहली पर खड़ा हूँ
मुझे तो पहला क़दम रखना है अभी ।
किसलिए ?
कैसे और क्या करता रहा हूँ ?
अभी तक ज़िन्दगी को मुल्तवी करता रहा हूँ
परख देखूँ मैं अपने करतबों को किस तरह ?
अभी तो शेष है सभी कसौटियों को परखना
अपनी मजबूरियों का कहीं इल्ज़ाम रखना है
अभी ।
सोचता हूँ, आरम्भ क्या है ? आरम्भ है भी ?
यह स्वप्न, यह कल्पना, घटनाओं का हुजूम,
यह आडम्बर, यह उड़ान,
यह खयालों की मुसीबत की जलन,
यूँ लग रहा कोशिश व्यर्थ ही है,
इस प्रयत्न का कोई उद्देश्य भी है ?
अपने शब्दों में कोई अर्थ भरना है अभी ।
किनारे पर बैठकर
घर बनाये हैं कहीं सीली रेत के
व्यर्थ घोंघे, सीपियाँ चुनता रहा
व्यर्थ कौड़ियों के सहारे पूरक रहा ।
किन्तु ना टूटा यक़ीन
इस महासागर में एक तूफ़ान तैरना बाक़ी अभी ।
मुझे कोई आरम्भ करना है अभी

■ [अनु० नरेन्द्र धीर]

किरचें/स्वर्ण

●

रात में यादों के गले लग कर
बहुत रोया—बहुत रोया !
मुझे सीने से लगाये
मेरी यादें
मेरे उलझे हुए बालों को नाजुक उँगलियों से
चूमती रहीं—
मेरे बेरंग होठों पर
    मेंहदियाये हाथ धर
समझाती रहीं—
यह ख्वाब शीशे हैं
जो जरा से जर्क खाते ही टूट जाते हैं ।
सवेरे आँख खुली तो
मेरे सीने पर मेरी अपनी तसवीर औंधी पड़ी थी
जिसके शीशे की नन्हीं-नन्हीं किरचें
बिस्तरे पर बिखर गयी थीं ।

[अनु० घनश्याम रंजन]

■

भागीरथ पैलेस,
चाँदनी चौक, दिल्ली—६.

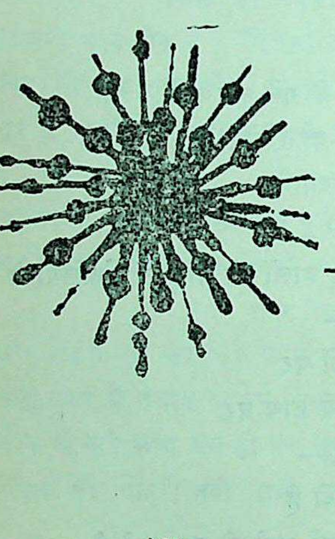

ख़िज़ाबमें डूबी आँखें

स्केच | जगजीत बराड़

सामने देखते ही मेरे दो टुकड़े हो जाते हैं।

पहली सुबह :

बूढ़ा दाढ़ीको खिज़ाब लगा रहा है। खिज़ाबकी एक-एक बूँद लड़कीकी आंखोंमें डल जाती है। बच्ची, कभी बूढ़े और कभी लड़कीकी ओर देखती है; फिर पड़ोसकी छतपर खेल रहे एक बालककी ओर दौड़ जाती है। एक क्षणके लिए लड़कीके चेहरेके भाव बदल जाते हैं; या शायद नहीं बदलते हैं। बूढ़ा उठता है। लड़कीकी ओर ऐसे देखता है, जैसे, शायद, बाप बेटीकी ओर।

उसके देखनेसे लड़की औरत-जैसी हो जाती है।

बीचमें बाज़ार बरसाती नदीकी भाँति बह रहा है। लोग पत्थरोंकी भाँति बह रहे हैं। मैं नदीमें उतर आता हूँ।

पहली दोपहर :

लड़की सूर्यसे डरती है, मानो सूर्य उसकी आँखोंका खिज़ाब देख लेगा। वह सूर्यकी ओर पीठ करके बैठ जाती है। हलके नीले रंगके नये बुने स्वेटरके दोनों हिस्से जोड़ने लगती है। वह अकेली है। ठण्डी-ठण्डी है। उसका पति रोटीकी खोजमें किसी दूसरे देश निकल गया होगा; या शायद सरहदोंपर जमी बर्फ़की रखवाली कर रहा होगा। वह उसे स्वेटर भेजेगी। उसका बाप? उसका बाप दमेसे मर गया होगा; या अभी दोपहर-का खाना खाने आयेगा।

पड़ोसकी छतपर बच्चा तथा बच्ची खेल रहे हैं। बच्चेने शीशीमें काला रंग डाल रखा है, या शायद काली स्याही है! बच्ची शीशेका एक टुकड़ा खोज कर लाती है। बच्चा शीशीमें एक तिनका डुबोता है, शीशेमें अपना चेहरा देखता है, और रँगा तिनका ठुड्डीपर घुमाता है। अचानक बच्चेकी माँ आ निकलती है। तड़ाक्! एक चपत बच्चेके गालपर बरसती है। शीशीमें-से काला रंग बच्चीके सायेपर ढुल जाता है। बच्ची लड़कीकी गोदमें आ गिरती है। लड़की एक बार फिर औरत-जैसी हो जाती है।

बूढ़ा भी आ जाता है। आते ही स्वेटर पहन लेता है। यह स्वेटर तो लड़कीने अपने पतिके लिए बनायी थी! बूढ़ा, लड़कीके समीप ही बैठ जाता है। उँगलियोंसे इशारे कर-करके बातें कर रहा है। बाप बेटीको कुछ समझा रहा है—मायूस, अकेली और वियोगमें डूबी बेटीको। कभी-कभी वह उँगलियाँ दाढ़ीको छुआ लेता है, मानो टोह-कर देख रहा हो कि कहीं खिज़ाब उतर तो नहीं गया। बूढ़ा, लड़की और बच्ची अन्दर चले जाते हैं। मैं नीचे बह रही नदीमें बह रहे पत्थरोंमें खो जाता हूँ।

पहली शाम :

लड़की खामोश बैठी है। किधर भी नहीं देख रही, या शायद अपनी ही आँखोंमें देख रही है। बैठी-बैठी वह उठती है। एक सफ़ेद काग़ज़, कॉपी और पेन उठा लाती है। शायद अपने पतिको पत्र लिखेगी। पर वह काग़ज़, कॉपी और पेनकी ओर इस प्रकार देख रही है मानो उसे कुछ भी न दीख रहा हो! जैसे, उसकी आँखोंके सामने खिज़ाब-की बूँदें फैल गयी हों; या मानो उसका पति बहुत समय पहले ही मर गया हो; या जैसे उसका बाप····नहीं, शायद वह अपने पिताके विषयमें नहीं सोच रही है।

उसका बाप—नहीं, वही बूढ़ा आ जाता है। उसके हाथमें दो-तीन लिफ़ाफ़े हैं। अन्दरसे खिज़ाब-रँगी एक मुसकराहट है। लड़कीका शरीर काँटे-काँटे हो जाता है—कँटीला। बूढ़ा लिफ़ाफ़े खोलता है। एकमें, किसी रंगका खूबसूरत कपड़ा है। रंगका मुझे नाम नहीं आता। दूसरेमें बच्चीके लिए कुछ खिलौने हैं। तीसरेमें सन्तरे हैं। कपड़े, बच्चीके खिलौनों और फलोंमें लड़की कुछ पल बहल जायेगी। बापको बेटीके एकाकीपनका कितना खयाल है।

बूढ़ा लड़कीको सन्तरा छीलकर देता है। लड़कीने सन्तरेकी फाड़ी अपने होठोंपर ऐसे रखी है, जैसे किसी औरके होठोंपर रखी हो। बूढ़ा लड़कीके होठोंकी ओर ही देखता जा रहा है। बाप, बेटीकी ओर ऐसे क्यों देख रहा है?

दूसरी सुबह :

लड़की धूपमें सफ़ेद चादर ताने पड़ी है। चादरके ऊपर, लड़कीके सिरके पास दो काले धब्बे हैं; जैसे चादरमें-से उसकी आँखोंके अन्दरकी खिज़ाबकी बूँदें दीख रही हों। समीप ही पड़ोसका बच्चा और बच्ची खेल रहे हैं। बूढ़ा आते ही उन्हें घुड़क देता है! लड़की उठ बैठती है। बच्ची डरकर उसकी गोदमें सिमट जाती है। लड़की बच्चेको भी गोदमें ले लेती है। दोनोंका माथा चूमती है, सिरपर हाथ फिराती है। माथा चूमते हुए वह आँखें बन्द कर लेती है। खिज़ाबकी बूँदोंपर पलकें ढँक लेती है। बूढ़ा, लड़कीको अन्दरकी ओर खींचता है। स्टोवपर गरम रखी, मेरी सब्ज़ी जल जाती है।

दूसरी शाम :

मैं डिपोसे आटा लेनेके लिए क़तारमें खड़ा रहता हूँ।

तीसरी सुबह :

लड़की नहानेके लिए बाथरूममें चली जाती है। कुछ पल बाद, थोड़ा-सा दरवाज़ा खोलकर, सिर बाहर निकालकर, वह बच्चीको आवाज़ देती है बूढ़ा आ जाता है। वह बूढ़ेको कुछ कहती है। बूढ़ा अन्दरसे धुला हुआ अण्डरवीयर ले आता है। लेकिन वह अन्दर ही क्यों चला गया है? शायद मुझे भ्रम हुआ है।

चायकी घूँट मुझे तेज़ाब-जैसी लगती है। बाहर बूढ़ा बच्चीको स्वेटर पहना रहा है। अन्दर लड़की नहा रही है। मेरी घड़ी मुझे दफ़्तर ले जानेके लिए बज़िद है।

तीसरी दोपहर :

लड़की बच्चीका रिबन गूँथ रही है। सफ़ेद दाढ़ी, फटा पुराना कोट, झुकी हुई कमर, खाँसता-खाँसता एक बुज़ुर्ग आ जाता है। लड़की, बच्चीको उसी स्थानपर छोड़कर, झपटकर बुज़ुर्गके गलेमें चिपक जाती है। बुज़ुर्गकी आँखोंके आगे मानो एक धुन्ध-सी छा जाती है! उसका काँपता-कँपकँपाता हाथ लड़कीका सिर दुलरा रहा है। ठीक इसी पल बूढ़ा आ जाता है। उसके हाथमें खिज़ाबकी नयी शीशी है। अकड़ी हुई गरदनके साथ वह बुज़ुर्गको 'विश' करता है।

बूढ़ा झुकी हुई कमरवाले बुज़ुर्गकी ओर लड़कोंकी भाँति क्यों देख रहा है? लड़कीकी आँखें नये खिज़ाबमें क्यों डूब गयी है? बुज़ुर्गकी कमर और क्यों झुक गयी है? ····क्यों? आखिर क्यों····क्यों?

········

········

अब मैं दो टुकड़े नहीं हो सकता!

■ ■

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

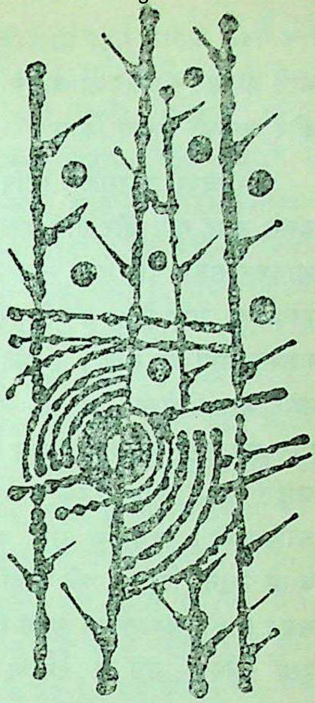

व्य / र्थ

कहानी अमरजीत सिंह

दफ़्तरसे शायद वह पन्द्रह-बीस मिनिट पहले उठ आया था। चार बजेके पश्चात् उसका काममें मन ही नहीं लग सका था। समय काटनेके लिए वह फ़ाइलें उलटता-पलटता रहा था। दफ़्तरसे निकलनेके पश्चात् उसने सोचा, कहाँ जाये। इतनी जल्दी घर जाकर क्या करेगा। कुछ करनेके लिए भी तो विशेष नहीं। कल उसे घर जानेकी इस कारण जल्दी थी क्योंकि उसे एक अनुवाद करना था, जो कई दिनोंसे लटक रहा था। उसने सोचा, कनाट-प्लेस जाये और साँझके झुटपुटेमें कनॉट-प्लेसकी रौनक़ देखे। दफ़्तरसे निकलनेपर जब उसे घर जानेकी उतावली नहीं होती और किसी और दिशामें जानेका निर्णय वह नहीं कर पाता तो वह कनॉट-प्लेस चला जाता है। यदि कोई अप्रिय घटना न घटे तो शाम अच्छी गुज़र जाती है। कनॉट-प्लेस पहुँच वह टी-हाउसमें कॉफ़ी पीता है। अगर जेबमें पैसे कम हों तो जनपथपर कोऑपरेटिव बेसिसपर चल रहे अन्नपूर्णामें दस पैसेकी चाय और बीस पैसेका मसाला-डोसा खाता है और जनपथपर चहल-क़दमी करता घर आ जाता है।

बसमें बैठे उसने सोचा, पहले लाइब्रेरी जायेगा, फिर अन्नपूर्णामें मसाला-डोसा खा धीमे-धीमे सुलग रही भूखको तृप्त करेगा। अन्नपूर्णामें वह कई बार इतना हेवी खा लेता है कि रातके खानेकी गुंजाइश नहीं रहती। एक बार कुमुदके साथ बैठे उसने इतना हेवी खा लिया था कि सब हज़म करनेके लिए उसे कुमुदके साथ टहलते-टहलते इण्डिया गेट

तक पैदल जाना पड़ा था। कुमुदका विचार आते ही उसने अन्नपूर्णा जानेसे पहले उसीकी ओर जानेका निर्णय किया।

सिन्धिया हाउसका स्टॉप आनेपर वह बससे उतर गया और ग्रीन लाईट होनेपर भी भागकर सड़क पार कर गया। एक फ़ीयट टायरोंकी रगड़ पैदा करती हुई उसके पास रुककर आगे बढ़ गयी। उसकी ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे रह गयी। सड़कके पार खड़े उसने अनुभव किया कि उसे ग्रीन लाईट रहते हुए सड़क पार नहीं करनी चाहिए थी। अचानक उसे याद आया कि बसमें उसने टिकिट् भी नहीं ली। उतरते समय न तो कण्डक्टरने उससे टिकिटके लिए पूछा और न उसे ही स्मरण रहा। अगर ए. टी. आई. बस-स्टॉपपर खड़ा होता तो कितनी शर्मिन्दगी होती। उसने सोचा, वह बहुत एबसेण्ट माइण्डेड होता जा रहा है जो उसे नहीं होना चाहिए। उसे उस दिनकी बात याद आयी जब वह घरसे पूरी तरह तैयार होकर, और पैण्ट पहनकर दफ़्तर जानेके लिए बसकी क्यूमें बाथ-रूम स्लीपर पहने ही खड़ा रहा था। अकस्मात् उसकी दृष्टि पैरोंकी तरफ़ गयी थी, तब वह स्लीपर घसीटता हुआ घरकी ओर भाग पड़ा था।

बंगाल इम्पोरियममें दाखिल हो वह कुमुदकी ओर बढ़ा। कुमुद रैकमें कपड़ेका थान टिका रही थी। उस ओर उसकी पीठ थी। वह काउण्टरपर रुक गया। कुमुदने घूमकर देखा तो वह प्रसन्नतासे मुसकरा उठी। पर दूसरे ही पल उसने मुसकराहट समेट ली और बोली, "कहिए! किससे मिलना है आपको?"

कुमुदके इस मज़ाक़पर वह हलका-सा मुसकराया। कुमुद जब भी उससे नाराज़ होती है इसी तरहका मज़ाक़ किया करती है। कुमुदका ऐसा मज़ाक़ सुन वह प्रायः सोचता है कि इससे पहली मुलाक़ातमें उससे क्या ग़लती हो गयी थी। कुछ देर चुप रहनेके पश्चात् उसने बातचीतका क्रम आगे बढ़ानेके लिए कहा, "आज तुम बड़ा सुन्दर काम्बीनेशन पहने हुए हो।"

'हटिए, झूठे।"

"सच! तुम्हारे शरीरके रंगपर खूब जंच रहा है।"

कुमुद जानती है कि यह सब वह उसे प्रसन्न करनेके लिए कह रहा है। वह उसके स्वभावको खूब समझती है। वे अभी इधर-उधरकी बातें ही कर रहे थे कि काउण्टरपर दो ग्राहक पहुँच जाते हैं। रैकके एक ओर इशारा करते हुए औरतने कहा, "वट् इज़ दिस?"

"राँ सिल्क साड़ी।"

"वट् इज़ इट्स प्राइस?"

"फ़ॉर्टी रूपीज।" कुमुदने उसकी ओर देखते हुए कहा।

उसने देखा कि वह शो-केसमें पड़े टी-सेट और हाथी-दाँतके खिलौने देख रहा था। ग्राहक बिना कुछ खरीदे आगे बढ़ गये। कुमुदने साड़ी पैक कर फिर पहलेवाले स्थानपर टिका दी और औरतकी ओर देख नाक चढ़ा ली। वही औरत दूसरी सेल्स-गर्लसे दूसरी

वस्तुओंके बारेमें पूछ रही थी। उसने देखा, मैनेजर उसके पाससे निकल दूसरे पोर्शनकी ओर जा रहा था। कुछ देर वे चुपचाप खड़े रहे फिर कुमुद बोली, ‘प्लीज़ पर्चेज़ समथिंग ।’’

जैसे उसके पास कहनेके लिए कुछ न रहा हो और उसने कुछ कहनेके लिए ही कह दिया हो। या शायद मैनेजरको पाससे गुज़रते देख ऐसा कहा हो। अगर उसके पास पैसे होते तो वह अवश्य ही कुछ खरीद लेता। इतने भर पैसे ही होते कि वह एम्पोरियमकी कोई सस्ती चीज़ ही खरीद सकता। कुछ देर वह पैडस्टलपर लगी चीज़ोंकी ओर देखता रहा और फिर जैसे उसके लिए वहाँ खड़े रहना कठिन हो गया। उसने कुमुदसे कहा, "अच्छा, मैं चलूँगा।"

कुमुदको उससे इस प्रकार अलग होना अच्छा न लगा। परन्तु इम्पोरियममें खड़े वे और कितनी देर इस प्रकार बातें कर सकते थे। उसके साथकी लड़की उस पर एक-दो बार व्यंग्य भी कर चुकी थी। यद्यपि उसने उसकी बातकी परवाह नहीं की थी किन्तु फिर भी किसी ओरसे उसे इस सम्बन्धमें बात सुननी अच्छी नहीं लगती थी। कुमुदने उसको ध्यानपूर्वक देखा और बोली, "शामको मिलेंगे?"

"हाँ, मैं अन्नपूर्णामें तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा। तुम छुट्टीके बाद आ जाना।"

अन्नपूर्णामें वह एक कोनेवाली टेबलपर बैठ गया। एम्पोरियम सात बजे बन्द होगा। मतलब यह कि कुमुदके आनेमें अभी एक घण्टा शेष है। एक घण्टा प्रतीक्षा करना, भले ही वह कुमुदकी ही क्यों न हो, उसके लिए जूनकी दुपहरीमें बैठने-जैसा था। जबतक कुमुद नहीं आती, तबतक जनपथका ही एक चक्कर लगाया जाये—उसने सोचा और बिना कुछ खाये ही चहलक़दमीके लिए बाहर निकल आया। एक बड़ी-सी बिल्डिंगके सम्मुख वह रुक गया। ‘एयर इण्डिया’का राजा सर झुकाये खड़ा था। ‘एयर इण्डिया’ के राजाको देख उसे प्रायः अपने पिता-द्वारा उसे इंगलैण्ड भेजनेकी बात याद आती है। उसके पिता कबसे उसे इंगलैण्ड भेजनेको प्रयत्नशील हैं। वे चाहते हैं कि वह विदेश जा घरकी दशा सुधारे! चाहता तो वह भी है, परन्तु परिस्थितियोंने उसे विवश कर रखा है।

तरह-तरहके कपड़े पहने लोग शापिंगके लिए निकले हुए थे। वह देखता कि सड़कपर फ़ॉरेनर्ज़ भी शापिंगके लिए आते हैं। किसी विदेशी महिलाको जब वह साड़ी-ब्लाऊज़में या शलवार-क़मीज़में देखता तो उसे बड़ा अच्छा लगता।

उसने देखा कि साथवाली सड़कपर कारें, स्कूटर, और अन्य ट्राफ़िक रेड लाईट होनेके कारण रुक गयी थी। वह खड़ा ठहरी हुई ट्राफ़िकको देखता रहा। मोटर-कारों, स्कूटरों, टैक्सियों आदिकी लम्बी क़तारें देख उसे बड़े शहरमें होनेका अहसास होता है। जब कभी वह उस भीड़वाले शहरमें नहीं होता तो वह पानीसे बाहर मछलीकी तरह अनुभव करता है। जब वह यहाँसे प्रथम बार दो वर्षके लिए अपने घर गया था तो जितने दिन भी वह वहाँ रहा, कुछ खोया-खोया अनु-

भव करता रहा था। उसकी दादीको आश्चर्य हुआ था कि लड़केको क्या हो गया है! और अन्तमें सबको .फेस करनेमें उसने स्वयंको असमर्थ पाया था और पाँचवें दिन ही वापिस लौट आया था।

कॉटेज इण्डस्ट्रीज़के पाससे गुज़रते, उसने सोचा, एम्पोरियमका एक चक्कर लगाये, भले ही कुछ न खरीदे। या फ़िर फ़र्स्ट फ़्लोर-पर लगी कोई नुमायश ही देखे। अभी वह कुछ भी निर्णय नहीं कर पाया था कि किसीने उसके कन्धेपर हाथ रख दिया।

"यहां खड़े हैं?"

उसने चौंककर पीछे देखा। कुमुद खड़ी थी। उसने घड़ीकी ओर देखा। सात बजने-में अभी पूरा आध घण्टा शेष था। उसे घड़ीकी तरफ़ देखते हुए पाकर कुमुद मुसकरायी।

"अभी तो सात नहीं बजे!" उसने कहा।

"हाँ, मैं सिर-दर्दका बहाना कर आ गयी।"

"पर यह समय तो शापिंगका है। अभी तो बहुत रश होगा।"

"तो क्या हुआ, दूसरी लड़कियां जो हैं।"

"अब?"

"जैसा आप कहें"

"कॉटेज इण्डस्ट्रीज़में कोई नुमाइश लगी होगी, देखना पसन्द करोगी?"

"अवश्य।"

दोनों कॉटेज इण्डस्ट्रीज़की लिफ़्टमें दाखिल हुए। लुकिंग ग्लासमें पड़ रहे कुमुदके अक्सको वह ध्यानसे देखता रहा। दोनों फ़र्स्ट फ़्लोरपर उतर गये। किसी लड़की-की पेंटिंग्ज़का वन-मैन-शो था। दोनों घूमकर नुमाइश देखने लगे। कुमुदको एबस्ट्रेक्ट आर्ट बहुत पसन्द नहीं था। उसे तो मनको सीधा-सादा अपील करनेवाला आर्ट पसन्द था। वैसे उसे नुमाइशकी एक कलर-कम्पोजीशन बहुत पसन्द आयी।

नुमाइश देख वह नीचे उतर आये और अन्नपूर्णाकी ओर बढ़ गये। जहां कुछ देर पहले, वह कुमुदकी प्रतीक्षा करता रहा था—उसी टेबलपर वे बैठ गये।

"क्या खायेंगे?" कुमुदने बैठनेके थोड़ी देर बाद पूछा।

कुमुदका ऐसा पूछना उसे थोड़ा विचित्र-सा लगा। जैसे यह बात उसे कहनी चाहिए थी। वह ज़रा-सा मुसकराया और बोला, "तुम क्या खाओगी?"

"जो आप।"

"मैं मसाला-डोसा लूँगा और मुंह मीठा करनेके लिए रसगुल्ला।"

"पियेंगे क्या, चाय या कॉफ़ी?"

"कॉफ़ी।"

और वह टेबलसे उठ काउण्टरकी ओर बढ़ गयी। वह टकटकी लगाये उसे कूपन लेते देखता रहा। काउण्टरपर खड़ी वह बहुत प्यारी लग रही थी। कूपन ले वह भीतर चली गयी जहाँ उसे मसाला-डोसा और दूसरी चीज़ें लेनी थीं। अकेले बैठे उसने सोचा, वह और कुमुद कितने समयसे मिलते आ रहे हैं पर ... बैठे बैठे उसने बड़ी शिद्दतसे

महसूस किया कि वे सही अर्थोंमें आजतक कभी भी नहीं मिले। एक साथ पिक्चर देख चुके हैं, बोटिंग कर आये हैं, सारा-सारा दिन मन-पसन्द स्थानोंपर घूमते रहे हैं पर फिर भी कभी इकट्ठे नहीं हुए हैं। उसने कई बार सोचा है कि वह कुमुदसे कहे कि उसके साथ घर चले, उसके साथ रहे, परन्तु वह कभी भी खुलकर कुमुदको ऐसा नहीं कह सका। कहते-कहते वह रुक जाता रहा है। आज उसने निर्णय किया कि वह कुमुदको साथ चलनेके लिए कहेगा।

उसने देखा, कुमुद मसाला-डोसा और रसगुल्लेकी प्लेटें उठाये चली आ रही है। खाते हुए उसने अनुभव किया कि कुमुद कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं पा रही।

"शायद आज आप रास्ता भूल गये हैं?" कुमुदने कहा। उसके कहनेमें व्यंग्य था। बहुत दिनों पश्चात् मिलनेका सीधा गिला न कर उसने इस प्रकार कहा था।

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। मैं अचानक बाहर चला गया था। तुम्हें इन्फ़ार्म भी नहीं कर सका।" ऐसा कह वह उसके चेहरेकी ओर देखने लगा। जैसे भांपना चाहता हो कि उसकी इस उत्तरसे तसल्ली हो गयी है या नहीं। खा चुकनेके पश्चात् कुमुद हाथमें कूपन पकड़े कॉफ़ी लेने चली गयी। कॉफ़ी पीते समय कोई विशेष बात नहीं हुई। कॉफ़ी पीनेके पश्चात् दोनों चलनेके लिए उठ खड़े हुए। उठते हुए उसने फिर ध्यानसे कुमुदकी ओर देखा। उसके भरे-पूरे शरीरपर उसकी नज़रें टिकी रहीं। गलेके नीचेके भागको कितनी देर देखता रहा। उसे कुमुद बड़ी प्यारी लग रही थी। आजका पहना हुआ उसका काम्बीनेशन बहुत सुन्दर लग रहा था।

"तुम्हारे भाईका क्या हाल है?" उसने पूछा। पिछली मुलाक़ातमें कुमुदने उसे अपने भाईकी बीमारीके बारेमें बताया था। उसका भाई किसी प्राइवेट फ़र्ममें मैनेजर था और उनके घरका एक बड़ा सहारा था। अचानक उसे सन्-स्ट्रोक हो गया था और बादमें बीमारी टाईफ़ाइडका रूप धारण कर गयी थी।

"अब ठीक है। परसों ही उसे अस्पतालसे छुट्टी मिली है और कल उसने ऑफ़िस अटेण्ड किया है।"

जनपथसे लौट वे पार्लियामेण्ट स्ट्रीटपर आ गये। यहाँसे सड़क पार कर वे बस-स्टॉपकी ओर बढ़ गये। पहले उसके घरकी ओर जानेवाली बसका स्टॉप था। दोनों टहलते हुए बस-स्टापपर रुक गये। क्यूमें कुछ देर खड़े होनेके पश्चात् उसने कुमुदसे कहना चाहा—"चलो, आज मेरे साथ चलो। रात मेरे पास रहना।" पर वह चाहते हुए भी ऐसा न कह सका। थोड़ी देर पश्चात् बस आयी। उसने भागकर चढ़नेका प्रयास किया, परन्तु बस निकल गयी। उसे लगा जैसे कुमुदको घर ले जानेका उसे एक और अवसर मिल गया हो। पर अगली बस आने तक भी वह उससे कुछ न कह सका। बस इधर-उधरकी बातें होती रहीं। कुछ देर

पश्चात् दूसरी बस आयी। कुमुदको उसने अलविदा कही और बसमें चढ़ गया।

बसमें अधिक भीड़ नहीं थी। वह लेडीज़ सीटके साथवाली एक सीटपर सिमटकर बैठ गया। लेडीज़ सीटपर बैठी एक खूबसूरत लड़कीको देख उसे बड़ी शिद्दतसे कुमुदका खयाल आया—मांसल शरीरवाली कुमुदका। कुमुदका विचार आते ही उसने अगली सीटकी रेलिंगको हाथोंमें भींच लिया और खिड़कीमें-से पीछे छूटती जा रही सड़कों और इमारतोंको घूरने लगा। कुछ देर वह बाहर देखता रहा और फिर अगली सीटकी रेलिंगपर दोनों बाँहें रख अपना सिर उनपर टिका दिया।

घर पहुँच उसने स्नान किया, खाना खाया और कुमुदके बारेमें भूलनेकी कोशिश की। पर वह कुमुदको भूल न सका। रातको सोते समय उसे बड़ी शिद्दतसे कुमुदकी याद सताने लगी। उसने टाँगें समेटकर वक्षसे सटा लीं। बाँहोंको त्रिकोण कर सिर छुपा लिया। तकियेको वक्षके नीचे दबा लिया और उसे कुमुदके साथ घूमना, जनपथपर टहलते हुए उसकी प्रतीक्षा करना, उसके साथ नुमाइश देखना और उसके भाईसे सहानुभूति प्रकट करना, सब व्यर्थ लगने लगा।

■■

वी० १३९, सुभद्रा कालोनी,
सराय रोहीला, दिल्ली-७

जो

'जो' एक उपन्यास है, जो एक उपन्यासमात्र नहीं है। युगकी दृष्टिका उजाला और युगके लिए अभीष्ट दिशाका निर्देश दोनों इसमें है।

मूल्य : तीन रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता : दिल्ली : वाराणसी

कला, अ-कला और अश्लीलता

■

भँवरमल सिंघी

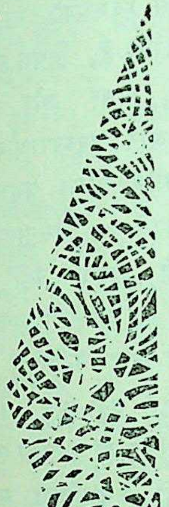

अभी मैं दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका एवं युरॅपकी यात्रा करके लौटा हूँ। दो महीनोंसे ऊपर मैं वहाँ रहा-घूमा। खूब देखा, खूब अनुभव किया। काफ़ी बौद्धिक भोजन मिला। वहाँके जीवनको ऊपर-ऊपरसे ही नहीं, अन्दरसे और अन्तरंगसे जानने-समझनेका भी सुयोग मिला। सामाजिक कार्योंसे शुरू करके साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियों तककी यात्रा की और जीवनकी अनेक सतहोंपर-के रूप और रंग देखे। वहाँके बारेमें सामाजिक-आर्थिक स्वतन्त्रताकी बात बहुत कही-सुनी जाती है और झूठ नहीं है वह; परन्तु उस स्वतन्त्रतामें भी एक छलना है, आत्मप्रवंचना है, यह आज वहाँका कवि और कलाकार देखने-समझने लगा है। उसके रंग, स्वर और शब्द बोलने लगे हैं कि यह स्वतन्त्रता प्रेतोंकी स्वतन्त्रता है—जीवनकी स्वतन्त्रता नहीं यन्त्रकी स्वतन्त्रता है। जीवन भी यन्त्रीकृत

होकर ही स्वतन्त्र है; जहां भावना और अनुभूतिकी स्वतन्त्रताका प्रश्न है, आज भी प्रेत-जीवनका तन्त्र उसपर हावी है। इसके विरुद्ध विद्रोहकी चिनगारियाँ, कहीं-कहीं लपटें, उठने लगी हैं। अनुभूतिकी सचाई और उसको व्यक्त करनेकी जीवन-प्रेरणा, जो आजका मनुष्य पूर्वापेक्षा कहीं अधिक पहचानने लगा है, प्रेत-परम्पराकी परतोंको तोड़कर बाहर निकलना चाहती है। वैसे ही कला आज परिभाषाओंकी जीवन-विच्छिन्न परिक्रमासे बाहर आकर मनुष्य और मनुष्यके बीच अनुभूतिका जीवन-सम्बन्ध स्थापित करनेकी दिशामें अग्रसर है।

कलाकी आजतक हजारों परिभाषाएँ हो चुकी हैं, पर उसके अर्थ-बोधकी सम्पूर्णताको कोई परिभाषा प्रकट नहीं कर सकी। हर परिभाषाने उसकी सीमाएँ बांधीं, आयाम स्थिर किये और अर्थ-निष्पत्तिके क्षितिज स्थापित किये, पर मूलतः कला बँधनेमें है ही नहीं। जीवन बँधा है कि कला बँधेगी? जीवन जो आज है, वह कल नहीं था, और कल नहीं रहेगा। सारा इतिहास बताता है कि व्याख्याएँ और परिभाषाएँ केवल उस स्थितिका अर्थ-बोध कराती रही हैं जो हो चुकी है या अधिकसे अधिक तो, जो हो रही है। इसीसे कहा गया है कि सर्जनात्मक कलाकार समीक्षाओं और स्थापनाओंकी दीवारों एवं दरवाजोंमें बन्द नहीं रहता। अनुभूति जब, जैसी और जो होती है, उसीका प्रकाशकर वह जीवनको जीवनसे मिलाता है। उसके अनुसार ही वह अभिव्यक्ति रूप और स्वर खोज लेता है। परिभाषाएं और व्याख्याएँ उसकी तरफ़ दौड़ती हैं और लड़ती हैं, पर जिसके पास अपनी अनुभूति है, और अभिव्यक्तिकी प्रेरणा है, उसको परिभाषाओंका आक्रमण और युद्ध रोक नहीं सकता। अनुभूतिकी जिस पीड़ाको और उसकी अभिव्यक्तिके जिस स्वरूपको सारी परिभाषाएं अस्वीकार करती हैं, निषेध करती हैं, वहां सच्ची कला भाषा और शैलीगत सारी परिभाषाओं और परम्पराओंका निषेध कर अपनी उस मार्मिकताका प्रभाव पैदा करती है। जिस शब्दमें उस जीवनानुभूतिकी अभिव्यक्ति नहीं है, उसका 'नहीं' रूप रखकर और प्रखरतासे वह अपनेको व्यक्त करती है। कलासे अ-कला और कवितासे अ-कविताकी नाम-यात्राके पीछे यही बात है।

आत्मानुभूतिमें ही कलाकी सच्ची संचेतना है और अपनी अनुभूतिको सचाईके साथ प्रकट करना ही कलाका काम है। उसकी सार्थकता इसीमें है कि उसके माध्यमसे कलाकार खुद अपनी सृष्टिके द्वारा अपनेको अधिकाधिक पाये और दूसरोंको भी अपनेको पानेमें सहायक हो। अपनी अनुभूतिकी सृष्टिमें वह अपने साथ या दूसरोंके साथ किसी प्रकारकी छलना नहीं करना चाहता। जीवनकी प्रेरणामें कुछ है, जीया कुछ जा रहा है और कहा तथा बताया कुछ जा रहा है—यह विसंगति उसमें नहीं है। यही उसका नयापन है। यहीं अ-कला कलासे आगे है। इसकी अभिव्यक्तिमें, इसकी रेखाओं और शब्दोंमें जिनको उलझन दिखाई पड़ती है, उनको मैं

ब्यूनस आयर्स (दक्षिण अमेरिका) में अपने छोटे-से स्टूडियोंमें बैठे कलाकारके पास ले जाऊंगा, जिसके ये शब्द गूंज रहे हैं—“जीवनमें सीधी लकीरें नहीं बिछी हैं; उसके ताने-बानेमें निश्चित की हुई यन्त्र-प्रक्रिया नहीं है। उसमें उलझन है, टक्कर है और इनमें-से बनकर, छनकर, अनुभूति आती है।” उसकी अभिव्यक्तिमें भी सीधी लकीरें नहीं हैं—नहीं हो सकतीं। जीवनमें तनाव और बिखराव है तो रंगोंका भी बिखराव है; शब्दोंका तनाव-वितान है। फिर भी दोनोंमें कितना सौन्दर्य है। सच, अद्‌भुत सौन्दर्य है, क्योंकि वह जीवनका सत्य है। कला (शब्दकी हो, स्वरकी हो, या तूलिकाकी हो) के सन्दर्भमें 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की बात कही जाती है। कलाके ये तीन गुण-पक्ष हैं। पहले भी थे, पर इनका अर्थ आज कितना बदल गया है! आजतक ढेर सारा सत्य कह कर जिसको चलाया गया, वह सत्य नहीं था। जीवनमें नहीं था। वह लिखा गया और पढ़ा गया सत्य ही था। अनुभूतिका सत्य नहीं था क्योंकि अनुभूतिकी अभिव्यक्तिमें आदमी स्वतन्त्र नहीं था। राज्य, धर्म और समाज सब स्वतन्त्रताको दबोचे बैठे थे। वास्तवमें, कला जीवनके आवरणपर ही थी; आवरणके नीचे जीवनका सत्य, जीवनका सौन्दर्य, और जीवनका रस कलाको असली रंग नहीं दे पाते थे। बहुत कम ऐसे कलाकार हो पाते थे जो अपनी अनुभूतिसे अपने रंगोंको भिगो पाते थे—परन्तु आज जीवनको आवरण-के पार देखनेका प्रकाश मिला है, और उसके प्रकाशनकी प्रेरणा एवं बल मिला है।

और, जहां अनावरणकी बात आयी कि अश्लीलताका आरोपण आया। ये पंक्तियाँ लिखते समय मेरे सामने सैन फ्रांसिस्कोका वह न्यायालय है जिसके सामने लैनोर कैण्डलकी प्रेम-कविताकी पुस्तक (द लव बुक) पर मामला चल रहा है। कुल छह पृष्ठोंकी इस पुस्तकमें चार कविताएँ छपी हैं, जिनका विषय मैथुन-प्रम है। पुस्तकके आवरणपर आदि-बुद्ध-का एक तिब्बती चित्र है, जिसमें नर-रूप बुद्ध और नारी-रूप शक्तिका समागम प्रदर्शित है। कविने स्त्री और पुरुषके संयोग-प्रेमको चरमतामें जीवनकी परम अभिव्यक्तिका वर्णन किया है। राधा और कृष्णकी लीलाका भी उल्लेख किया है। सारा ब्रह्माण्ड एक मैथुन-प्रक्रिया है। इसमें सन्निहित रसानुभूति जीवनकी मूल प्रेरणा और शक्ति है। पुस्तकपर अश्लीलताका आरोप लगाया गया है— और मुझे बताया गया कि लेखक एवं प्रकाशक अन्त तक इस मुक़दमेको लड़ेंगे क्योंकि अनेक विद्वानों और विचारकोंका सहयोग उन्हें मिल रहा है। अश्लीलताके प्रश्नपर विचार होगा, जैसे पहले भी विभिन्न देशोंमें कई बार हो चुका है!

जीवनको आज हम जितनी और जिस तरहकी सचाईके साथ जानते और पहचानते हैं, उसको समझनेपर यह प्रश्न पूछना स्वाभाविक होगा कि क्यों यह पुस्तक अश्लील है? इन कविताओंमें जीवनकी उस अनुभूतिका वर्णन है, जिसके साथ हमारे समूचे अस्तित्वका

सम्बन्ध है। यह स्त्री-पुरुषके बीच प्रेमकी भूमि है, जहाँ जीवनका भोगना-भिगोना है। क्या यह और यही जीवनका मूल सत्य नहीं है? इस अनुभूतिमें, शरीर और मनकी इस तरलतामें ही क्या जीवनकी सारी शक्ति और प्रेरणाका केन्द्र-बिन्दु नहीं है? मुझे पिट्स-बर्गकी एक साहित्यिक गोष्ठीमें सुने हुए उद्गार याद आ रहे हैं—"जिसे हम नैतिकता कहते हैं, वह सर्वथा मिथ्या जीवनकी मिथ्या धारणाएँ हैं।" कलाने, साहित्यने बहुत दिनों तक इस मिथ्याका मिथ्याडम्बर बनाया-सजाया जो जीवनके वाहर-बाहर ही शोर मचाता रहा। जिस जीवनने इसकी परवाह नहीं की, वह जीया, मुक्त और स्वस्थ रहकर जीया।

कला, जिसका मूल उत्स जीवनकी अनुभूतिगत भावना है, अपनी सारी सड़ी-गली पृष्ठभूमिको छोड़कर, यहाँतक कि नामको भी छोड़कर, अ-कला कह और कहलाकर भी, जीवनके मुक्त विस्तारमें मिलना-मिलाना चाहती है। सच बात तो यह है कि आज तक जीवनकी वास्तविकताको अश्लीलताके कठघरोंमें बन्दी बनाकर समूचे जीवनको अश्लील बनाकर रखा गया है। मुझे लन्दनमें मिले एक युवा-दम्पतिकी बात बार-बार याद आ रही है—"जो बाप-दादा हमारे मुक्त जीवनको अश्लील बताकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं, उन्होंने हमें कैसा समाज दिया था, यह तो सोचिए। वह सैकड़ों वर्षोंसे सड़ रहा था; तभी तो हमको उसके विरुद्ध विद्रोह करना पड़ा। आप इसे अश्लील कहिए, पर याद रखिए, हमारेमें ज़्यादा जीवन है—ज़्यादा सचाई है।" जीवनमें जो होता है, वही सच है, वही सुन्दर है, और वही, सही अर्थमें स्वस्थ है। जब कला जीवनकी सहज सत्य-भूमिपर आ जाती है, तो वे सारे माप-बटखरे झूठे हो जाते हैं जो आजतक कलाको नापते-तौलते और वज़न देते आये हैं। आजका कलाकार कह रहा है—जो होना है उसीका नाम कला है! उसका निषेध करनेका उसको झुठलानेका, उसको छिपानेका नाम कला नहीं है। यदि जीवनको झुठलानेवालोंका समाज कलाको अपनी सँड़ाध-भरी सीमाओंमें ही रखनेपर तुला हुआ है, तो आज जीवनकी सच्ची अनुभूतिको रंगने-कहने और गानेका नाम अ-कला है। डी० एच० लारेन्सके शब्दोंमें—"जीवनके मूल उत्स हमारे शरीर और मनकी यौन-चेतनामूलक प्रवृत्तियोंमें हैं और उनको खुली चेतनाकी खुली हवाकी आवश्यकता है।"

आधुनिक कला-संचेतनाकी यही जीवन-भूमि है। सैकड़ों-हज़ारों वर्षोंसे बनी-बँधी भय और दमनकी संस्कृतिने नाना प्रकारके आरोपों एवं अवरोधोंमें बाँधकर जीवनको कलाके बन्धन ही दिये हैं। आज जीवनका यथार्थ और सत्य उसको चुनौतियोंपर चुनौतियाँ दे रहा है और कलाको जीवनकी सत्यानुभूतिकी दृष्टि दे रहा है। जीवन वह है जो है; कला वह है जो जीवनमें है और होता है। ■

१६२।२६।१ प्रिन्स अनवरशाह रोड,
कलकत्ता-३१

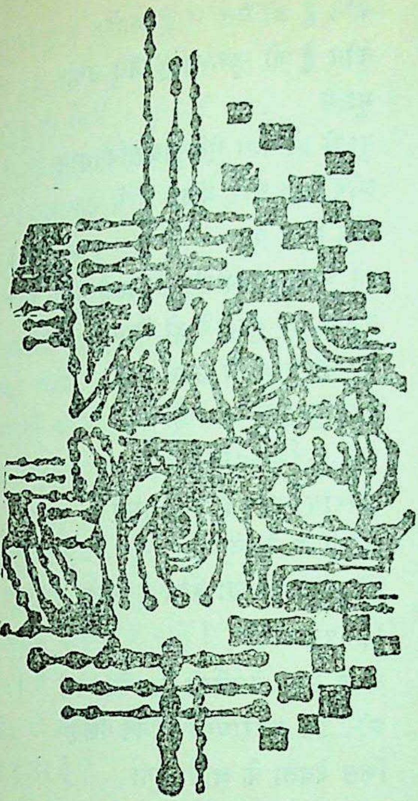

शरीर और सपना

भवानीप्रसाद मिश्र

नसें तो नसें
हड्डियों तक में धड़कता लगता है
मुझे अपना दिल !
तटस्थ क्षणों में
विचार करने भर को सामग्री
नहीं मान पाता मैं
अपनी ही बीमारी के लक्षणों को !
हर क्षण लगता है
समाप्त हुआ तो नहीं है सब कुछ
मगर समाप्त होता ज़रूर चला जा रहा है !

मैंने ज़िन्दगी को शायद
इतना अधिक सपनीला बना लिया था
कि पिघल कर रह गयी है
अब उसकी सत्ता;
और मैं अपने सपनों को
थोड़ा भी वापिस खींचकर
अपनी इस क्षण की
ठोस और सालिम और ऊबड़खाबड़
ज़िन्दगी के
सचमुच के होठ चूमने को अपनी साध

नहीं करना चाहता !
मैंने सपनों से भरी
किसी एक ज़िन्दगी को इतना सोचा है
कि हाथ फैलाकर आलिंगन के लिए
जब-जब कसा है किसी को
तो प्राय: ज़िन्दगी की
छाया को कसा है !
और इसी तरह
धीरे-धीरे वास्तव का सरूप
मेरे लिए छाया बनता चला गया है !

अभी सूरज निकल रहा है
नये दिन का साफ़ सुथरा सूरज
और आवाज़ें सचमुच की
पुकार रहीं हैं मुझे
मगर अब वापिस लौटना भी चाहूँ
तो लौट नहीं सकता
बहुत दूर निकल आया हूँ सचमुच के देश से
और ताक़त का हाल यह है
कि नसें तो नसें
हड्डियों तक में धड़कता लगता है
मुझे अपना दिल !

शरीर मेरे,
क्या तुम्हीं सब-कुछ हो तब ?
कुछ नहीं है कल्पना
और बुद्धि और आत्मा ?
तब कौन है यह
जो मेरी ओर से पूछ रहा है ?
और जवाब मिलने का
आभास जो होता है
सो कहाँ से होता है ?

कौन है जो बत हैं बातें
कौन है जो छुराता है जैसे उन्हें
मुझसे
तुम्हीं हो क्या ऐसे सर्वशक्तिमान
और मीठे और वंचक ?
और शब्द ये
जो घुमड़कर भीतर से उठते हैं
काटते हुए तुम्हारे ही किनारे
सो भी तुम्हीं से उठते हैं ?
और तुम्हींमें उठते हैं ?
और सर्वशक्तिमान हे
अपराध माना है क्या तुमने
सपनों के देखने में ?
तो सपने उठाता कौन है भीतर ?
किसपर डालूँ
अपने सपने देखनेकी ज़िम्मेदारी ?
और इस अपराधको धोनेके लिए
किस देवता के आगे होगा
बलिदान इस सपने देखनेवाले का ?
कौन पकड़ कर चोटी
काटेगा उसका शीश ?
और ख़ून जो बहेगा
कौन होगा तुष्ट उसे पीकर ?
तुम ?

मगर तुम्हारी प्यास तो
कभी नहीं बुझी
किसी चीज से नहीं बुझी
क्योंकि बेखबर
इतना नहीं रहा
तुम्हारी तरफ़ से भी मैं !

कितना नाचा हूँ तुम्हारे इशारों पर
नौ मन तेल तक जुटाया है मैंने
खुद अपने ही लिए
कि परिपूर्ण तुष्टि दे सकें तुम्हें
नाच की सुखस्फूर्त भंगिमाएँ
मगर एक के बाद
दूसरे नाच के आदेश देते ही गये तुम
और तब हार कर कहो
खीझकर कहो
मैंने सपनों को ही ज़्यादातर
अपना माना !

सपनोंको पलायन मानते हो तुम
मैं वस्तुस्थितियों को बदलने का
एक उपाय मानता हूँ उन्हें !
पलायन में
स्थिति को बदलने की इच्छा
कहां होती है ?
मेरे सपने तो
सच को शीशे में
उतारने की प्रक्रिया से कम नहीं थे;
और इसलिए
वे न कायरता हैं
न अपराध !
जैसे सरल रेखाएँ
बांध सकती हैं
कुटिल से कुटिल क्षेत्रों को अपने में
ऐसे समा लिया था मैंने
सत्यों को और तथ्यों को
अपने तरल-सरल सपनों में
पुराने और गये बीते
निरुद्देश्य दिनों को
पसन्द नहीं आया
मेरा दूर देखना
और मेरे शरीर
तुमने उनका साथ दिया !
नसें तो नसें
हड्डियों तक में
धड़कता लग रहा है मुझे अपना दिल !

अपराध है अगर सोचना
और सपने देखना
तो तुम क्यों मिले थे मुझे ?
मिलता किसी मछली, मगर
या छिपकली का शरीर
जो तैरता रहता पानी में
बिना सोचे;
पड़ा रहता रेत में
निगल लेता औरों को
सोचे बिना झनकारता रहता
अँधेरे में गुँजाता रहता जंगल
या चिपका रहता एकाग्र
किसी मैली-कुचैली दीवाल पर ?
तुम क्यों मिले थे मुझे
सांग और सम्पूर्ण
और लचीले
जिसके भीतर बुद्धि है
मन है, आत्मा है
इच्छा है
दूसरों से निभ कर चलने को ही नहीं
सब-कुछ निछावर कर देने को
दूसरों पर !

शरीर और सपना : भवानीप्रसाद मिश्र

पुराने गये बीते दिन चाहते हैं
कि जिऊँ तो मैं अब भी
मगर देते रह सकने के लिए नहीं
लेते रहने के लिए
ऋतुओं के साथ हँसने-हँसाने के लिए नहीं
आँधी और तूफ़ान और पतझड़ में
निकल पड़ने के लिए नहीं
बैठे-बैठे सिर छुपाने
उदास होने और रोने के लिए !
भीतर की शक्ति, और स्नेह में
ना या हाँ करने के लिए नहीं,
क्रोध में निषेध करने के लिए
दम्भ में स्वीकृति देने के लिए !

■ ■

वाई-जेड ४, सरोजिनी नगर
नयी दिल्ली-३

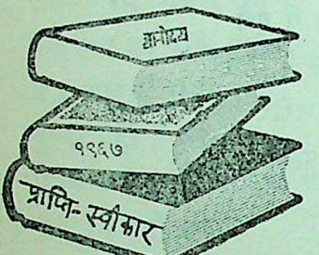

जू । न

[यह स्तम्भ ज्ञानोदयमें समीक्षार्थ प्राप्त समस्त पुस्तकोंकी स्वीकार-सूचीके लिए है। चुनी हुई पुस्तकोंकी समीक्षा यथासुविधा प्रकाशित की जायेगी।]

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- गेटेके देशमें : राजबल्लभ ओझा

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य : लक्ष्मी नारायण शर्मा
- योग निद्रा : कृष्णनन्दन पीयूष
- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी : शिल्प और चिन्तन : डॉ० ललित शुक्ल
- नगेन्द्र साहित्य : काव्यबिम्ब : डॉ० नगेन्द्र
- बूँद नेहकी : दीप हृदयका : महेन्द्र भटनागर
- सुनो बेटी : सावित्री देवी वर्मा
- सिन्धु सीमान्त : सन्हैयालाल ओझा

आलोक भारती
- पर्वताकार प्रारब्धहिमालय : वाल्टर लाइफ़

५ वाँ अखिल भारतीय भाषा समारोह
- ज्ञान-विज्ञान वांगमय

भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
- कितनी नावोंमें कितनी बार : अज्ञेय
- कुत्तेकी दुम : र० श० केलकर

(पृष्ठ २४ का शेष : वर्षा-मंगल)

अधिक नाभिक सदैव ही विद्यमान रहते हैं, ताकि कुहरा प्राय: ही छा जाये लेकिन मुक्त वायुमें घने बादलके निर्माणके लायक़ पर्याप्त नाभिक सदैव नहीं मिला करते।

यदि हवामें रेत या मिट्टीके कण विद्यमान हों, जो कि नमकके रवे, धूम्रकण और सल्फ़्यूरिक एसिडकी फुहारोंकी संख्यासे बहुत कम मात्रामें (प्राय: प्रतिघन सेण्टीमीटरमें एकसे लगाकर कुछ सौ तक) वायुमें पाये जाते हैं, तो जमावटकी प्रक्रिया और भी घनी होती है और इन कणोंके चारों ओर जलवाष्प जमकर ठास बर्फ़का रूप धारण करने लगती है। इस क्रियाको अति-संघनन (Sublimation) कहा जाता है।

जमावटकी प्रक्रियामें उपयोगी नाभिक, जलको आकर्षित करनेवाले या 'हाइग्रोस्कोपिक' होते हैं, और आर्द्रताके ८०% की सीमा तक पहुँचते ही जलको अपने चारों ओर जज़्ब करने लगते हैं। आर्द्रता जब कि ९६% तक पहुँचती है, ये नाभिक धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं, किन्तु इसके बाद इनके वर्धनकी क्रिया बड़ी द्रुत हो जाती है। प्रकृतिमें नमी दो प्रकारसे बढ़ सकती है : (१) किसी एक स्थानपर कुछ ही समयमें यदि तापमान घट जाये, और (२) लम्बे समय तक, अधिक फैले स्थानमें यदि वायुमण्डलमें जलाय वाष्पको मात्रा बढ़ती जाये। १००% आर्द्रता होते ही नाभिकके इर्द-गिर्द बूंदका आकार बढ़ता जाता है, और इस तरह बादलके निर्माणका श्रीगणेश होता है। यह नाभिकके इर्द-गिर्द बनी बूँदके आकारपर निर्भर करता है कि वस्तुतः वायुमण्डलमें बादलका निर्माण हो रहा है या सामान्य धुँधलका ही बन पा रहा है, और इन बूँदोंका आकार सापेक्ष्य आर्द्रतापर निर्भर करता है। बादलोंकी सबसे छोटी बूँदका व्यास दो माइक्रन होता है, और नाभिक यह व्यास तबतक विकसित नहीं कर पाता जबतक कि आर्द्रता परितृप्तिकी सीमा १००% न छू ले। परितृप्ति-सीमाके बाद, किस प्रकारके मेघका निर्माण होगा, यह ठण्डा होनेकी गतिपर निर्भर करता है, क्योंकि संशीतनकी गति ही मेघकी बूंदोंके लिए नमीकी मात्रापर नियन्त्रण रखती है। संशीतनकी तीव्र गतिसे बूँदोंकी संख्या और आकारमें बहुत भिन्नता होती है, जब कि मन्द-गतिके संशीतनमें बूँदें संख्यामें अपेक्षाकृत कम तथा आकारमें समान होंगी।

अध्ययनकी सुविधाके लिए मेघोंको कई भेदोंमें विभाजित किया गया है, यद्यपि मेघोंकी आकृति और प्रकृतिको देखते हुए ऐसा कोई भी विभाजन स्पष्ट-सीमाएँ नहीं निर्देशित कर सकता। इस प्रकार बादलोंके निर्माणके स्तरके हिसाबसे उन्हें मोटे रूपसे चार श्रेणियोंमें बाँटा जाता है। प्रथम तीन श्रेणियोंके मेघोंका विस्तार क्षितिजक तथा चौथीका ऊर्ध्वक। पहली तीन श्रेणियोंमें वायुमण्डलके निम्न-मध्य और उच्चस्तरके बादल आते हैं। चौथी श्रेणीके ऊर्ध्वक बादल प्रथम तीन श्रेणियोंके बादलोंको काटते हुए ऊँचाई और निचाईमें क़ाफ़ी दूर तक फैले रहते हैं। आगे

की सारिणीमें इन श्रेणियोंके बादलोंकी ऊँचाई, आकार आदिके बारेमें जानकारी दी जाती है।

(अ) उच्च स्तरके मेघ—औसत ऊँचाई भूपृष्ठसे २०, ००० फ़ीट—
- (१) सिरस आकार (ख)
- (२) सिरो-क्यूमूलस ,, (ख)
- (३) सिरो-स्ट्रेटस ,, (ग)

(ब) मध्य-स्तरके मेघ—औसत ऊँचाई भूपृष्ठसे ६००० से २०००० फ़ीट तक—
- (४) एल्टो-क्यूमूलस आकार (क) या (ख)
- (५) एल्टो-स्ट्रेटस ,, (ग)

(स) निम्न स्तरके मेघ—औसत ऊँचाई भूपृष्ठ से ६००० फ़ीट तक—
- (६) स्ट्रेटो क्यूमूलस आ० (क) या (ख)
- (७) स्ट्रेटस आकार (ग)
- (८) निम्बो-स्ट्रेटस ,, (ग)

(द) ऊर्ध्वक मेघ—उच्चतर औसत सिरस मेघ खण्डोंके समान तथा निम्नतर औसत भूपृष्ठसे १५०० फ़ीट तक—
- (९) क्यूमूलस आकार (क)
- (१०) क्यूमूलो-निम्बस ,, (क)

(क) वर्ग में वे आकृतियाँ परिगणित होती है जो अलग-अलग ढेरोंके रूपमें दिखाई देती हैं, तथा निर्माणके समय जिनका विकास ऊर्ध्वक हो, किन्तु बिखरनेके समय वे क्षितिजक ढंगसे अदृश्य हों।

(ख) वर्गमें ऐसे स्तरीकृत बादलोंकी आकृतियाँ गिनी जाती हैं, जो गोल या बेलनके समान बनकर उसी रूपमें काफ़ी समय तक बनी रहती हैं।

(ग) वर्गकी मेघाकृतियाँ अटूट रूपसे स्तरीकृत फैलती बढ़ती और घनी होती जाती हैं।

सिरस बादल बर्फ़के रवोंसे बने होते हैं। उष्ण और शीतोष्ण कटिबन्धोंमें वे बहुत ऊँचाईपर विकसित होते हैं। सूर्य या चन्द्रमाके चारों ओर जो कभी गोल घेरे दिखाई देते है वे सिरस बादलोंके ही होते हैं। ये बादल बहुत पतले और विरल होते हैं। जिस ऊँचाईपर ये पाये जाते हैं, वहाँके क्षीण तापमानमें जलीय वाष्प अधिक नहीं पायी जा सकती। सिरो-क्यूमूलस बादलोंमें सफ़ेद फाहोंकी रेखाओं या भँवरोंके रूपमें सजी परतें पायी जाती हैं, जबकि सिरो-स्ट्रेटस बादलोंपर एक सफ़ेद झीना-सा परदा सारे आकाशमें फैला छाया रहता है। ये बहुत ही विरल बादल होते है, जिनमें-से सूर्य और चाँद बराबर दिखाई देते हैं।

मध्यस्तरके बादल प्रायः जलकी बूंदोंसे ही बनते हैं, यद्यपि आल्टो स्ट्रेटस आकृतिके कुछ बादल बर्फ़के रवोंसे बने होते हैं। आॅल्टो-स्ट्रेटस बादलोंको वायुमण्डलकी स्थिरताका प्रमाण समझना चाहिए, जब कि आॅल्टो क्यूमूलस बादल वायुमण्डलकी सामान्य अस्थिरता प्रकट करते हैं। आॅल्टो स्ट्रेटस बादलोंसे हल्की वर्षा या बर्फ़ गिर सकती है, और कभी जो कभी जमीन तक पहुचती है, और कभी बीच ही में वाष्प बनकर उड़ जाती है। निम्नस्तरके बादल लम्बाई-चौड़ाईमें बहुत दूर-दूर तक फैले होते हैं। निम्बो-स्ट्रेटस बादल प्रायः गहरे भूरे रंगके होते हैं उनकी आकृति

ड़ी बेडौल, और वे प्रायः ही जलके प्रचुर भारसे दबे रहते हैं। इनसे प्राय: वर्षा होती है, किन्तु यह सदैव आवश्यक नहीं है।

ऊर्ध्वक बादल कई अनियमित रूपोंमें प्रकट होते हैं, इनका प्राय: समूह होता है। वे प्रायः तूफ़ान और आँधीके साथ निर्मित होते हैं, किन्तु सामान्य आबहवामें भी इन्हें पाया जा सकता है। जब क्यूमूलस बादल ऊपर-नीचे अधिक गहराई तक फैल जाते हैं तो इनका आकार गोभीके फूल-जैसा हो जाता है। यद्यपि मध्य कटिबन्धोंमें इनसे वर्षा नहीं भी हो, किन्तु उष्ण कटिबन्धोंमें इन बादलोंसे घनी वर्षाकी सम्भावना रहती है। क्यूमूलो-निम्बस बादलोंसे घनी वृष्टि होती है, और र्जन, विद्युत् तथा उपल-वृष्टिकी सम्भावना भी दरगुज़र नहीं की जा सकती। जब क्यूमूलस बादल अपने विकासमें क्यूमूलस-निम्बसका आकार धारण करने लग जाते हैं, तो उनके ऊपरी सतहपर पायी जानेवाली र्फके रवेकी परतके विस्तारके कारण होता है तो क्यूमूलो-निम्बस बादलोंसे बहुत घनी वृष्टि होती है। कभी-कभी क्यूमूलो-निम्बस बादलोंके नीचे गोलाकार नीचे झुकते हुए स्तर दिखाई देते हैं, जो बादलोंके गर्भमें म्भीर आलोडन तथा नीचेकी ओर बहनेवाली वायु-धाराओंके चक्र हैं। इन बादलोंको क्यूमूलो-निम्बस मैमेटस बादल कहा जाता है, और यह कहा जा सकता है कि भयानक वृष्टि शीघ्र होनेवाली है, इसमें उपल-वृष्टिकी सम्भावना भी कम नहीं रहती।

ऊपर हमने नाभिकोंके ऊपर जलीय वाष्पके एकत्र होनेकी प्रक्रियाका उल्लेख किया है। लेकिन वृष्टिका कारखाना तो समुद्रकी सतह है। हवाके बहनेकी दिशा तथा उसके मूल कारणोंमें जानेका यह प्रसंग नहीं है, किन्तु यह हम जानते हैं कि हवा जब समुद्रके ऊपरसे बहती है तो उसमें नमीकी मात्रा बढ़ती जाती है। सूर्यकी गरमीसे समुद्रकी सतहपर वाष्पीकरणकी प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। इस तरह तापकी मात्रामें चाहे वृद्धि न हो, किन्तु वायुमें नमीकी मात्रा बराबर बढ़ती रहती है। किसी रेगिस्तानके ऊपरसे बहकर आनेवाली सूखी हवा जब समुद्रके ऊपर होकर बहती है तो कुछ ही दिनोंमें देखा जा सकता है कि वह हवा नमीसे लद गयी है, और ऊमसका प्रतिशत बहुत ऊँचा हो गया है। धूलके कणों, नमकके रवे आदिके नाभिक जब जल-वाष्पको जज़्ब करने लगते हैं तो बादलोंका निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। स्थल-भागपर पहुँचनेके बाद वायुमण्डलके तापमानमें एकाएक परिवर्तन दिखाई देता है, और इस परिवर्तनका प्रभाव समुद्र-सतहसे अघाकर आयी हवापर पड़े बिना नहीं रहता। यदि तापमान ऊँचा हो तो परितृप्त हवाका बहुत कुछ सम्भार पुनः वाष्प बनकर ऊपर उठ जा सकता है, किन्तु तापमान यदि नीचा हो तो संघननकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

संघननकी क्रिया निष्पन्न हो जानेसे ही वृष्टि नहीं हो जा सकती। मेघके गर्भमें जलकी बूँदें जबतक एक निश्चित आकारसे अधिक बड़ी नहीं होने लगतीं, वृष्टि सम्भव नहीं

बूँदोंका व्यास	पतनकी गति	भाष्य		
०.०१ माईक्रन	०		नाभिक	संघनन
०.१ ,,	०.०४७ इं० प्रति घं०			
०.५ ,,	१.४ इंच ,, ,,			
१.० ,,	५.० ,, ,, ,,	मेघकण		
२.० ,,	१७.० ,, ,, ,,			
५.० ,,	०.१५ फु० प्र० मि०			
१० ,,	०.६ ,, ,, ,,			
५० ,,	१५.० ,, ,, ,,			
१०० ,,	५९.० ,, ,, ,,		फुहार	
२०० ,,	३००.० ,, ,, ,,			
५०० ,,	५५५.० ,, ,, ,,	वृष्टि		वृष्टि
१०००,, (०.०४इं०)	७९०.० ,, ,, ,,			
५०००,, (०.२०इं०)	१७५०.० ,, ,, ,,			
७०००,, (०.२७५,,)	२०८०.० ,, ,, ,,			

होती। ऊपरकी सारिणी यह बतलाती है किस परिमाणकी बूँदें किस गतिसे नीचे गिरने लगती हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वृष्टिके लिए बूँदको कितना बड़ा आकार ग्रहण करना होता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि संघननकी प्रक्रियासे बननेवाली बूँदें जबतक २०० माइक्रनका व्यास विकसित कर पाती हैं, तबतक उनके पतनकी ३०० फ़ीट प्रति मिनिटकी गति नगण्य-सी होती है। हलकी फुहारोंकी बूँदें, जिनका व्यास ५०० माइक्रन तक हो सकता है, मानो हवामें तैरती हैं। जब बूँदोंका व्यास ५०० माइक्रनसे ऊपर पहुँच जाता है तभी बरसात होती है, और बड़ी बूँदोंके साथ तब २०० माइक्रन व्यासकी बूँदें भी वृष्टिके रूपमें गिरने लग जाती हैं। यदि बूँदोंका व्यास ७००० माइक्रनसे बढ़ जाये तो अपनी सीमान्त गतिपर पहुँचकर टूटने लगती हैं।

यद्यपि, ऊपरकी सारिणीमें जैसा कि बताया गया है, संघननकी प्रक्रियासे मेघमें जलकी बूँदें ५० से २०० माइक्रन तकके व्यासकी तैयार हो सकती हैं, किन्तु औसतन उनका आकार १० माइक्रन व्याससे अधिक नहीं बढ़ता। यदि १० माइक्रन व्यासकी बूँदोंको इकट्ठा किया जाये तो १ मिलीमीटरकी बूँदके लिए वैसी दस लाख बूँदोंकी आवश्यकता होगी। सामान्यतः अच्छी वृष्टिकी बूँद तीन मिलिमीटरकी होती है, जिसके लिए

इन १० माइक्रन व्यासकी बूँदोंकी अपेक्षित संख्या होगी दो करोड़ सत्तर लाख। स्पष्ट है कि प्रकृतिमें इन बूँदोंको इकट्ठा करनेका कोई प्रभावशाली तरीक़ा होना चाहिए। दो प्रकारके तरीक़ोंका अनुसन्धान किया भी गया है, जिसमें एकका नाम है—बर्फ़के रवेका तरीक़ा।

जमावके तापबिन्दु ०° सी० पर यद्यपि बर्फ़ पिघल जाती हैं, किन्तु इस तापमानपर पानी जमकर बर्फ़ नहीं हो जाता। लेबोरेटरीमें –२०° सी० तक पानी बिना जमे ठण्डा किया जा सकता है, जबकि वायुमण्डलमें – ४०° सी० तक बिना जमा ठण्डा पानी पाया जाता है। अवश्य ही वायुमण्डलमें ठण्डे पानीका – ४०° सी० तापमान तभी पाया जाता है, जब वायुमण्डलमें न तो बर्फ़के रवे, और न अतिसंघननके नाभिक (धूलके कण या रेतके कण) हों। यदि इस – ४०° सी० के अतिशीत बूँदोंके बादलमें एक रवा भी बर्फ़का प्रविष्ट हो जाये तो शीघ्र ही सारा बादल जमे बर्फ़के बादलके रूपमें परिणत हो जायेगा। इसका कारण समान तापवाले अतिशीत जल तथा बर्फ़पर वाष्पकी दबावकी मात्राका अलग-अलग होता है। ०° सी० तापमानके पानी और बर्फ़पर वाष्पका दबाव बराबर (६·१०८ मिलिबार) होता है, किन्तु १०° सी० पर जबकि पानीपर वाष्पका दबाव २८६३ मिलिबार होता है, बर्फ़पर वह २५९७ मिलिबार ही रहता है। अब यदि पानीकी बूँद और बर्फ़का रवा पास-पास सटे हों, तो दबावके अन्तरके अनुसार बर्फ़के ऊपरका दबाव या अतिपरितृप्ति (Super saturation) १११% के हिसाबसे बढ़ने लग जायेगी और बर्फ़के रवे पानीकी बूँदोंकी क़ीमतपर बड़े होने लग जायेंगे। प्रकृतिमें –१५° से –२०° सी० तकके तापमानवाले पानीके बादल सामान्य रूपसे मिलते हैं; –३०° सी० तक भी उनका मिलना कठिन नहीं है। इसका एक कारण तो यह है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वायुमण्डलमें अति-संघनन के नाभिक अन्य नाभिकोंकी अपेक्षा बहुत ही कम पाये जाते हैं। उष्ण कटिबन्धोंमें प्रायः अतिशीत पानीवाले बादल ही मिलते हैं, जो समशीतोष्णमें कुछ विरल हो जाते हैं। यों, शीतकटिबन्धोंमें पानीवाले बादलोंका अभाव नहीं मिलता। वर्षा इन्हीं बादलोंसे होती है।

छोटी बूँदोंके परस्पर मिलकर बड़ी बूँदोंका आकार धारण करनेके दूसरे तरीक़ेको गुरुत्वाकर्षी-मेल-जोल (Gravitational coalescence) का तरीक़ा कह सकते हैं, जो कि बहुत सामान्य है। जब बादलकी बूँदें गिरने लगती हैं तो नीचे छोटी बूँदोंसे टकराती हैं, और उनको अपनेमें मिलाकर अपना आयतन बढ़ा लेती हैं। जितनी अधिक वे बढ़ती हैं उतनी ही सुविधासे वे छोटी बूँदोंको आत्मसात् करती जाती हैं। यदि मेघ-खण्डमें इन बूँदोंका आयतन तरह-तरहका हो तो यह इस तरीक़ेकी सफलताका कारण बन जाता है, और परिणामस्वरूप भयंकर वर्षा होती है। उष्णकटिबन्धोंमें मूसलाधार वृष्टिका रहस्य यही है, जहाँ बादलोंका तापमान ०° सी० से कुछ ऊपर होता है। वहाँ विकासशील क्यूमूलस बादलोंमें पानीकी बूँदें भिन्न-भिन्न

मुटाई प्राप्त करती जाती हैं, और इस तरह बहुत बड़ी बूँदोंके विकासका मार्ग खुल जाता है।

संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि बरसनेवाली बूँदें जब बहुत छोटी हों और जो हवाके बहावके साथ हवामें तैरती-सी मालूम दें तो वे फुहारें (Drizzle) कहलाती हैं। फुहारोंका व्यास ५० माइक्रनसे २०० माइक्रन तक होता है, यद्यपि ५०० माइक्रन व्यास तक की फुहारें बरसती देखी जा सकती हैं। यदि ये बूँदें जमीनपर न गिरकर हवामें ही तैरती रह जायें तो उसे हम कुहरा (Fog) कहते हैं। वर्षाकी बूँदोंका व्यास २०० माइक्रनसे लगाकर ७००० माइक्रन तक होता है। बादलोंके गिरते हुए महीन खण्डोंके परस्पर गुरुत्वाकर्षी मेलसे या गिरते हुए बर्फ़के रवोंके पिघलनेसे, या इन दोनों प्रकारोंके सम्मिलित प्रभावसे वृष्टि या फुहारें गिरती हैं। फुहारोंका परिमाण प्रतिघण्टा ०·०२ इंचसे अधिक नहीं होता, जबकि बरसातका परिमाण कुछ ही बूँदोंसे लगाकर कई इंच प्रतिघण्टा तक हो सकता है। कैलिफ़ोर्नियामें ५ अप्रैल १९२६ को १ मिनिटमें ०·६५ इंच वर्षा हुई, यानी ३९० इंच प्रतिघण्टा! जमैकामें १२ मई १९१६ को लगातार १५ मिनिट तक ७·८० इंच पानी बरसा, जिसका हिसाब प्रतिघण्टा ३१·२० इंच होता है।

जब बरसात या फुहारें पानीके रूपमें गिरें, किन्तु जमीनपर गिरते ही जम जायें तो उसे हिमपात कह सकते हैं। यह तब होता है जब पानी गिरनेके स्थानपर ०° सी० से अधिक तापमान होता है, और जमीनका तापमान ०° सी० से कम होता है। ये बूँदें जमीनपर किसी अधिक ठण्डे पदार्थको छूते ही जम जाती हैं। बिजली और टेलीफ़ोनके तार, वृक्ष, वायुयान आदिपर जमकर यह बर्फ़ीली बरसात कभी-कभी खतरनाक भी साबित हो सकती है। आसमानसे उपल-वृष्टिका भी हमें कई बार सामना करना पड़ता है। ऊपल वृष्टि आँधी और तूफ़ानके साथ ही आती है, और हमेशा उसका सम्बन्ध बहुत अधिक अस्थिर हवाके साथ रहता है। ओले चौथाई इंचके व्याससे लेकर कई इंच व्यासके होते हैं। इनके ऊपर प्याजके छिलके-जैसी समकेन्द्रित परतें पायी जाती हैं। वस्तुतः ये बर्फ़की उन छोटी कठोर बूँदोंसे बनते हैं जो पानीकी बड़ी बूँदोंसे टकरा जायें। टकराते ही बूँदका शीतल पानी बर्फ़के कणके चारों ओर लिपट जाता है, और बर्फ़की शीतलतासे और अधिक शीतल होकर जम जाता है। आँधीके भयानक झकझोरोंमें यह टुकड़ा वायुमण्डलमें कभी ऊपर कभी नीचे चढ़ता-उतरता एकाधिक बार इस तरह पानीकी बूँदोंसे आवेष्टित होता रहता है। उपल-वृष्टि प्रायः ३०° और ६०° अक्षांशके बीचवाले स्थानोंमें ही होती है, उष्ण कटिबन्ध, शीत कटिबन्ध तथा समुद्रके ऊपर उपल-वृष्टि प्रायः नहीं होती।

आँधी और तूफ़ानके प्रसंगमें हम मेघोंकी गर्जन तथा बिजलीकी चमकको भुला नहीं सकते। यद्यपि उमड़ते-घुमड़ते मेघोंके आँचलमें बिजलीकी कौंधका सम्पूर्ण रहस्य अभी समझा

नहीं जा सका है, किन्तु जो कुछ जाना जा चुका है वह कम दिलचस्प और कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आंधी और तूफ़ान, जिसमें बादलोंकी गर्जन तथा बिजलीकी चमक शामिल हो, अपने आपमें कम रोमांचकर दृश्य नहीं होता। प्रकृतिके जिस स्तरपर आतंककी ये गम्भीर घटनाएँ अनायास ही घट जाती हैं, उसकी तुलनामें मनुष्य-द्वारा घटित की गयी भयानकसे भयानक घटना भी बहुत हलकी उतरती है, यहाँ तक कि अणुबमका विस्फोट भी उसकी तुलनामें कुछ नहीं है। द्वितीय महायुद्धमें प्रयुक्त २०००० टन टी० एन० टी० का अणु-बम २×१०^{१३} केलॉरोके बराबर ऊर्जा मुक्त करता है, जब कि एक भली प्रकार विकसित तूफ़ान सहज ही इसकी दस गुनी ऊर्जा मुक्त कर देता है।

तूफ़ानकी समस्त ऊर्जाका स्रोत वायुमें पायी जानेवाली जल-वाष्प है। जैसे ही १ ग्राम जल-वाष्प संघनित होती है, उसमें-से लगभग ६०० केलरी गरमी मुक्त हो जाती है। इस गरमीका कुछ अंश सचल-ऊर्जा (Kinetic Energy) के रूपमें परिणत होकर तेज़ आंधीको जन्म देता है। ऊर्जाके इस भण्डारको समझनेके लिए एक उदाहरण की जरूरत होगी। मान लीजिए, एक तूफ़ानसे ५ वर्ग किलोमीटर भूमिपर २ सेण्टीमीटर वृष्टि हुई है। कुल जलकी राशि इस क्षेत्रमें ५×१०^{११} ग्राम या ५५२००० टन होगी। इस राशिको वाष्पकी गरमीकी मात्रासे गुणा करनेसे ३×१०^{१५} केलरी होती है, जो १५ अणु-बमोंके तुल्य है। इस ऊर्जाको यदि यान्त्रिक-ऊर्जामें परिणत किया जाये तो वह एक वर्ष तक निरन्तर कार्यरत ५४०० अश्वशक्तिके बराबर होगी। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब सभी तरहकी बरसातमें शक्तिकी इतनी अधिक मात्रा मुक्त होती है, तो फिर क्यों कभी बरसात बहुत ही शान्त भावसे सम्पन्न होती है, और कभी आंधी-तूफ़ानके प्रलयंकर उपद्रवके साथ। इसका कारण खोजनेके लिए हमें वायुमण्डलमें ताप और आर्द्रताके ऊर्ध्वक-विभाजन (Vertical distribution) का विचार करना होगा।

वायुके प्रवाहमें दो प्रकारके झोंके होते हैं: एक ऊपरसे नीचे या नीचेसे ऊपरकी ओर दौड़नेवाला होता है जिसे ड्राफ़्ट (Draft) कहा जाता है, और दूसरा पार्श्वमें बहनेवाला जिसे गस्ट (Gust) कहा जाता है, और जो ड्राफ़्टके भीतर और बाहर दोनों ओर पाये जा सकते हैं। ड्राफ़्टमें आसपासकी हवासे ऊँचे तापके कारण घनता (Density) कम होती है, और इस हलकेपनके कारण हवा ऊपरको उठना चाहती है। तापके अलावा ड्राफ़्टमें जल-वाष्प भी अधिक होती है और जल-वाष्पकी घनता वायुकी घनता से कम होती है। तापका ०.५° सी० का थोड़ासा अन्तर भी वायुको प्रति सेकण्ड ३० फ़ीटकी गतिसे, रगड़की परवाह किये बिना ८००० फ़ीटकी ऊँचाई तक उठा ले जाता है। ड्राफ़्टकी ऊर्ध्वगतिकी मात्रा प्रायः १० से लगाकर ४० फ़ीट प्रति सेकण्ड होती है, यद्यपि ९० फ़ीट प्रति सेकण्डकी गति पाना भी असम्भव नहीं है। ड्राफ़्टोंका क्रीड़ाक्षेत्र १०००० से

लेकर २०००० फ़ीटकी ऊँचाई तक होता है। कभी-कभी ५०००० से ६०००० फ़ीटकी ऊँचाईके क्षेत्रमें भी ये ड्राफ़्ट पाये गये हैं। लम्बाई-चौड़ाईमें ड्राफ़्ट एक हज़ारसे लगाकर तीस हज़ार फ़ीट तक हो सकते हैं। जहाँ ऊपरकी ओर ड्राफ़्ट उठते हैं, वहीं उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप नीचेकी ओर बढ़नेवाले ड्राफ़्ट पैदा होते हैं। ऊपर पहुँचनेपर इस ड्राफ़्टको अधिक घनताका क्षेत्र मिलता है, अतः वह नीचेको झुकनेके लिए बाध्य होता है और उसमें पानी भाप बनकर समाने लगता है ताकि वह और अधिक ठण्डा और घना बनता जाये। यह प्रक्रिया चलती रहती है यहाँ तक कि नीचेकी ओर जानेवाले ड्राफ़्टकी गति ८०–९० फ़ीट प्रति सेकेण्ड तक हो जाती है। नीचेकी ओर वाले ड्राफ़्टकी गहराई चारसे पाँच हज़ार फ़ीट तक और चौड़ाई पच्चीससे तीस हज़ार फ़ीट तक हो सकती है। ये ड्राफ़्ट ज़मीन तक पहुँच जाते हैं, जिससे उथल-पुथल वाली ठण्डी हवाएँ चलने लगती हैं। इन आँधियोंसे कई उपद्रव देखे जा सकते हैं। हवाका वेग १०० मील प्रति घण्टा तक हो जा सकता है, और कुछ ही मिनिटमें कई इंच वर्षा हो जाती है। तीन-चार इंच तक बड़े ओले गिर सकते हैं। और सेकेण्डमें कई बार चमकनेवाली बिजलियोंसे आसमान रह-रहकर जगमगा जाता है। ऐसे समयमें सभी प्रकारके बादल शीघ्र बनते जाते हैं।

गर्जन और बिजलीके कौंधनेकी प्रक्रिया बड़ी जटिल है, और अभी पूरी तरह स्पष्ट रूपसे हृदयंगम नहीं की जा सकी है। यद्यपि अलग-अलग बहुतेरी प्रक्रियाओंका अनुसन्धान किया गया है, किन्तु इनके सापेक्षिक महत्त्वके बारेमें विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। एक बुनियादी सिद्धान्त तो रगड़के द्वारा विद्युतावेश (Electrical charge) को पृथक् करनेका है। हमने ऊपर देखा है कि बरसनेवाली बूँदोंमें वायुमण्डलमें कई परतें होती हैं। सबसे ऊपर वाली परतमें ऋणात्मक (Negative) आवेश होता है, जब कि उसके नीचेवाली परतमें घनात्मक (Positive)। जब टकराहटसे बूँद टूटती है तो ऊपरी ऋणात्मक परतका कुछ भाग पासवाली हवामें फैल जाता है, और उस जगह घनात्मक आवेश रह जाता है।

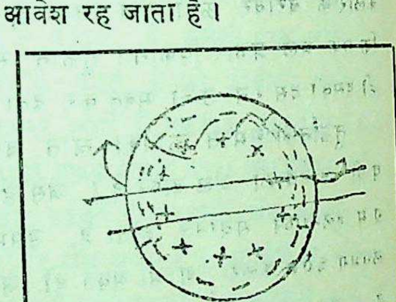

हिमकणोंके पिघलनेके समय या पानीके जमनेकी प्रक्रियामें भी आवेशका इसी तरह पृथक्करण होता है, और इस तरह एक विद्युत् क्षेत्र (Electric field) बन जाता है। इस क्षेत्रसे गुज़रनेवाली बूँदें बहुत अधिक आविष्ट हो जाती हैं। साफ़ मौसिममें हवाकी सापेक्ष्यतामें ज़मीनपर ऋणात्मक आवेश रहता है, अतः विद्युतसंचार वायुमण्डलसे पृथ्वीकी ओर होता है। साफ़ मौसिमके इस विद्युत्संचारकी मात्रा १००

वोल्ट प्रति मीटर रहती है। आँधी और तूफ़ानमें यही मात्रा दससे तीस हजार प्रति मीटर तक हो जाती है, और विद्युत्संचारकी दिशा भी उलटी हो जाती है। जाँचसे पता लगता है कि कौंधनेवाली बिजलियोंमें-से कम-से कम ८७% ऋणात्मक विद्युत् जमीनकी ओर प्रवाहित करती हैं। बिजलीके कौंधनेसे पहले, जिस विद्युत्-क्षेत्रका बन जाना आवश्यक होता है उसका प्रति सेण्टीमीटर वोल्टेज दस हज़ारसे तीस हज़ार तक होता है।

प्रत्येक कौंध प्रायः कई चमकका योग होती है। प्रत्येक दो चमकके बीचकी अवधि का औसत $\frac{१}{५०}$ सेकण्ड होता है। एक कौंधका फ़ोटो लेनेपर पाया गया कि वह ०.१६ सेकण्डकी अवधिसे अवतरित होनेवाले ४० चमकका योग थी, जब कि पूरी कौंधकी अवधि ०.६२४ सेकण्ड थी।—प्रत्येक चमक (Stroke) की दो स्थितियाँ होती हैं: पहली 'नायक' (Leader) स्थिति बादलोंसे जमीनकी ओर प्रवाहित होनेवाली स्थितिको कहते हैं, जो प्रायः ५० मीटरके क़दमोंसे, प्रत्येक क़दमको $१०^{-४}$ सेकण्डमें फाँदती हुई बढ़ती है। अवश्य ही इस स्थितिमें विद्युत्प्रवाहकी कई शाखा-प्रशाखाओंके अस्तित्वसे प्रतीत होता है कि वह इओन-संपृक्त (Ionized) अपना मार्ग खोज रही है। बादकी अनुवर्त्ती चमक प्रायः ५० मीटरके क़दमोंसे सीधे फुदकती हुई २×१०^{८} से ४×१०^{९} सेण्टीमीटर प्रति सेकण्डकी गति धारण करती है। दूसरी प्रत्यावर्त्तन स्थिति तब होती है, जब नायक स्थिति जमीनपर आकर शेष हो जाती है; तब वही चमक गहरी अग्नि-शिखाकी तरह लपलपाती हुई ६×१०^{९} सेण्टीमीटर प्रति सेकण्डकी गतिसे ऊपरकी ओर उछल जाती है। जो बिजलियाँ बादलोंमें ही चमकती हैं, उनमें प्रत्यावर्त्तन स्थिति नहीं होती।

औसतन एक विद्युत्की चमक (stroke) में लगभग २० एम्पीयर विद्युत् मुक्त होती है, जो ४.८×१०^{९} केलरी ऊर्जाके बराबर है। इस ऊर्जाका अधिकांश प्रकाश, ताप और गर्जनमें परिणत हो जाता है। एक शक्तिशाली चमक २०० माइक्रो सेकण्डसे अधिक अवधिका नहीं होता। बिजलीकी चमकके पहले बरसातकी आविष्ट बूँदोंके चारों ओर ऐसा गहरा विद्युत्-क्षेत्र बन जाता है कि बूँदें उसीसे वहाँ टिकी रहती हैं। किन्तु चमकके बाद वह क्षेत्र नष्ट हो जाता है और बूँदें एकदम नीचे गिरनेको बाध्य होती हैं। यही कारण है कि विद्युत्के बाद प्रायः घनी बरसात होती है।

गर्जनका कारण, विद्युत्-संचारके मार्गमें बन जानेवाली हवाकी प्रचाप-लहरें (Compression waves) हैं। एकाएक ही वायुके बहुत अधिक गरम हो जानेके कारण वह फैलती है, किन्तु स्थानकी कमीके कारण उसे सिमटना पड़ता है, और यह वायुके विस्फोटका कारण बनता है। चूंकि ये लहरें वायुमण्डलके विभिन्न स्तरोंमें बड़ी अनियमित प्रकारसे फैलती हैं अतः एक विस्फोटके स्थानपर घुमड़ती हुई गम्भीर गर्जन ध्वनि सुनाई देती है। हाँ, यदि गर्जनको स्थान बहुत दूर न हो तो एक तीव्र चिरघाड़ सुनाई देती है।

यदि गर्जनकी दूरी १५ मीलसे अधिक हो तो वह प्रायः नहीं सुनाई देती। गर्जनकी दूरी जाननेका साधारण नियम यह है कि यदि चमकके बाद गर्जन प्रायः ५ सेकण्ड बाद सुनाई दे तो चमक और गर्जनका स्थान सुननेवालेसे एक मीलकी दूरीपर होगा।

बरसात मनुष्यके लिए कितने महत्त्वकी है, हम भारतवासी यह गये दो वर्षोंसे देखते चले आ रहे हैं। यदि इस वर्ष भी वर्षाने कृपा न की, या पूरी कृपा न की, तो स्थिति कितनी भयानक हो जायेगी कुछ कहा नहीं जा सकता। अत्यन्त प्राचीन कालसे बरसातके देवताको मनानेके लिए जप-तप, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र सभीका प्रयोग बराबर चला आ रहा है। आज भी भारतवर्षमें इन्द्र-देवताकी पूजाके कई विधान प्रचलित हैं। वृष्टिकी वैज्ञानिक प्रक्रियाको समझ लेनेके बाद, बरसात सम्पन्न करानेके कृत्रिम वैज्ञानिक उपाय भी प्रयोगमें लाये जाने लगे हैं, यद्यपि इस प्रकारको कृत्रिम वर्षाके लाभकी मात्रापर सन्तोष कर सकना मानवताके लिए शायद ही सम्भव हो। जो भी हो, यह कृत्रिम वर्षा भी तभी सम्भव है, जब कि आकाशमें मेघ हों, निर्मेघ आकाशसे वृष्टि नहीं करायी जा सकती, और मेघका निर्माण निसर्गके बाहर शायद ही सम्भव हो। क्योंकि यह कार्य सूर्यकी गरमीसे ही सम्भव है, और दूसरे सूर्यकी या सूर्यके स्थानापन्नकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मेघके अस्तित्वके बाद वर्षाकी सम्भावना इस तथ्यपर निर्भर करती है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, कि संघनित जल-वाष्पकी सूक्ष्म बूंदें इतनी बड़ी हो जायें कि वे नीचे गिर सकें। हम यह भी जानते हैं कि संघननकी क्रियाके लिए वायुमण्डलमें नाभिकोंका होना आवश्यक है, ताकि उनको केन्द्र करके बर्फ़के कण निर्मित हो सकें। बर्फ़के कणके समान अन्य कण भी इस प्रक्रियाको सम्पन्न कर सकते हैं। प्रयोगमें बादलके भीतर कार्बन डायोक्साइडके ठोस रवोंको बोया जाता है। यह 'वपन' बादलोंके गर्भमें वायुयान-द्वारा सीधे छितरा कर, या रॉकेट-द्वारा किया जाता है। यह वपन ज़मीनपर जेनरेटरसे धुएंके रूपमें 'सिल्वर आयोडाइड' को बादलों तक पहुँचाकर भी सम्पन्न किया जाता है। इस तरह मेघोंको बरसनेके लिए मजबूर किया जाता है, यद्यपि यह पानी सदैव ज़मीनपर न भी पहुँच पाये, ज़मीनपर पहुँचनेके पहले ही वह भाफ़ बनकर पुनः आकाशमें चला जाये, या फुहारोंके रूपमें हवामें ही तैरता रह जाये। बड़े पैमानेपर तो इसकी सम्भावना फ़िलहाल है नहीं। भारतवर्षमें भी इस प्रकारके कृत्रिम प्रयोग किये गये हैं।

लेकिन गरमी इस वर्ष अधिक ही है, हवामें ऊमस भी कम नहीं। आसार तो यही हैं कि इस वर्ष वर्षा भी जमकर होगी। और देखिए, अब मानसून अधिक दूर भी नहीं है, बंगालकी खाड़ीमें यहांसे केवल एक सप्ताहके मार्गपर। तब तक, न सही, वर्षा-मंगल ही गायें। ■ ■

१८।ए, नन्दन रोड, भवानीपुर
कलकत्ता-२५.

■ कितनी नावों में कितनी बार
अज्ञेय ४.00

■ काठ का सपना
ग. मा. मुक्तिबोध ३.५0

■ परिवेश
मोहन राकेश ४.00

■ पुरातत्त्व का रोमांस
भगवतशरण उपाध्याय ६.00

■ अवधी व्रत-कथाएँ
इन्दुप्रकाश पाण्डेय ६.00

o o o o o o
सर्वथा पठनीय और संग्रहणीय
o o o o o o

नये प्रकाशन

भारतीय ज्ञानपीठ
कलकत्ता :: वाराणसी
विक्रय-केन्द्र :
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली–६ ।

1 AUG 1967

Price Annual Rs. 15.00 per copy Re. 1.50.
This Copy Re. 1 50. for abroad extra postage18P.

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेन्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्नीमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई—१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०
तार : सोडाकेम, बम्बई

License No. 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और

ज्ञानोदय

जून १९६७

मूल्य : १.५०

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं माणिकचन्द्र
ग्रन्थमालाके अन्तर्गत

संस्थापक
शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ
पत्रिका

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वर्ष : १८ : : अंक : १२

जून '६७

मूल्य : १.५०

सम्पादक :

लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि मासिक

ज्ञानोदय

९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

१९६६ के ज्ञानपीठ-पुरस्कार की घोषणा :
बंगला उपन्यासकार, ताराशंकर बैनर्जी
का उपन्यास 'गणदेवता' पुरस्कृत

उपन्यासकार ताराशंकर बैनर्जी सम्मानित

'गणदेवता'को १९६६का ज्ञानपीठ पुरस्कार

कलकत्तामें लेखकके सम्मानपर विशेष हर्ष

नयी दिल्ली —११ मई १९६७ : भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपयेके वार्षिक साहित्यिक पुरस्कारके लिए आज प्रवर परिषद्की अन्तिम बैठक हुई। भाषा-समितियों-द्वारा अन्तिम निर्णयके लिए चार पुस्तकें चुनी गयी थीं—**गणदेवता : ताराशंकर बैनर्जी, स्वर्ण किरण: सुमित्रानन्दन पन्त, नवरात्री : व्यंकटेश आयंगार और भगवान परशुराम : क० मा० मुन्शी।** बैठकमें सर्वसम्मतिसे ताराबाबूके सुप्रसिद्ध उपन्यास **'गणदेवता'** को सर्वोत्कृष्ट घोषित किया गया और पत्रकार-परिषद्में प्रवर परिषद्के अध्यक्ष डॉ० सम्पूर्णानन्द तथा भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने १९६६ के इस पुरस्कारकी घोषणा की। डॉ० सम्पूर्णानन्दने पुरस्कृत कृतिका संक्षिप्त परिचय देते बताया—'सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण जीवनका यह समकालीन प्रतिरूप है।'

यह द्वितीय पुरस्कार है, प्रथम पुरस्कार मलयालमके महाकवि जी० शंकर कुरुपको भेंट किया गया था—जिसका समर्पण-समारोह गत १९ नवम्बरको विज्ञान-भवन, नयी दिल्लीमें सम्पन्न हुआ था।

यह पुरस्कार भारतीय भाषाओं-में-से चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर दिया जाता है। सन् १९६५ में प्रथम पुरस्कार, जो महाकवि कुरुपके नाम घोषित हुआ

श्री ताराशंकर बैनर्जी
पी–१७१ तलापार्क एवेन्यु, कलकत्ता–२

था, वह उनकी इसी कोटिकी काव्य-रचना 'ओटक्कुषल' (बांसुरी) पर दिया गया ।

प्रथम पुरस्कारके लिए पुस्तकोंकी प्रकाशन - अवधि थी १९२०से १९५८ तक। अब दूसरे पुरस्कारके लिए श्रीताराशंकर बैनर्जीकी कृतिको सन् १९२५से १९५९ तक की अवधिमें प्रकाशित ग्रन्थोंमें-से चुना गया है ।

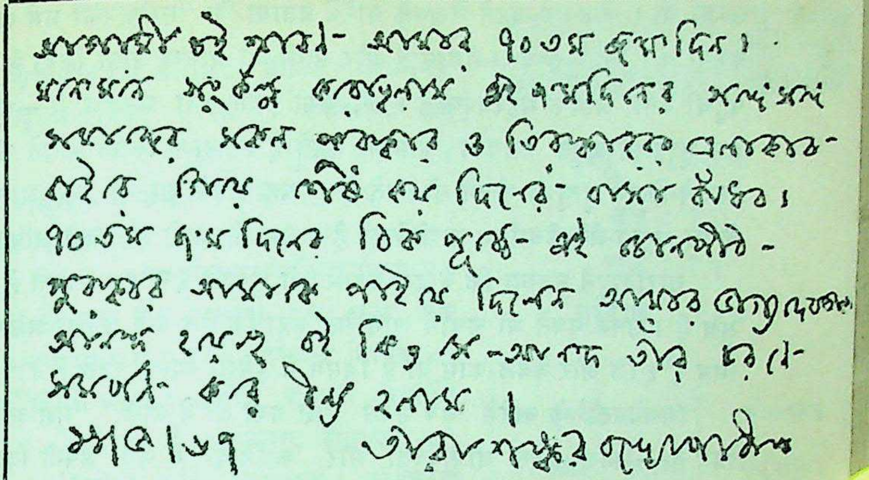

আগামী অষ্টমী শ্রাবণ- আমার ৭০তম জন্মদিন।
মনে মনে সংকল্প করেছিলাম এই জন্মদিনের পর সংসারের
সমাজের সকল পুরস্কার ও তিরস্কারকে বিস্মৃত হয়ে-
থেকে জীবনের শেষ ক'টি দিন- কাটাব ইচ্ছে।
৭০তম জন্মদিনের ঠিক পূর্বে- এই জ্ঞানপীঠ-
পুরস্কার আমাকে পাইয়ে দিলেন আমার ভাগ্যদেবতা
আনন্দ হয়েছে বৈকি, এ-আনন্দ তাঁর চরণে-
সমর্পণ করে ধন্য হলাম।
১১।৫।৬৭ তারাশঙ্কর বন্দ্যোপাধ্যায়

• ताराबाबू-द्वारा साहित्यिक सम्मानके लिए धन्यवाद-ज्ञापन

कलकत्ता ११ मई १९६७ : दिल्लीमें पुरस्कार-घोषणाके साथ ही कलकत्तामें अनेक पत्रकारों तथा साहित्यकारों-द्वारा विशेष हर्ष प्रकट किया गया। लेखकको जब दुपहर १२। बजे भारतीय ज्ञानपीठके कार्यालय-द्वारा इस सम्मानके लिए बधाई दी गयी तो ताराबाबूने ज्ञानपीठको इस सम्मानके लिए धन्यवाद दिया । नगरके बँगला तथा अँगरेज़ी-पत्रोंके संवाददाताओंने ज्ञानपीठके इस निर्णयपर सन्तोष प्रकट करते ताराबाबूको बधाइयाँ पहुँचायीं । दुपहर जब यह समाचार उन तक पहुँचा तो वे पूजाके लिए जा रहे थे । लेखकने इस सम्मानको अपने गुरुदेवको अर्पित किया, जब कि परिवारके सभी लोगोंने पुष्पहारसे अपने पिता और पितामहका सम्मान किया । नगरके अनेक पत्रकार समाचार मिलते ही लेखकसे मिलने तला पार्क-स्थित उनके निवासस्थान-पर गये । सन्ध्या समय भारतीय ज्ञानपीठके न्यासधारी मण्डलकी ओरसे सम्मानका पुष्प-स्तवक लेखकको भेंट किया गया । तेज आंधी और रिमझिमके बीच उनके स्थानपर श्री अशोक कुमार जैन, इन्दु जैन, कुन्था जैन, रजनी पनिकर, रमेश बक्षीसे लेखकने अपने साहित्यिक यात्राके बारेमें बातचीत की । लेखकने पुरस्कार-सम्मानके बारेमें जो प्रतिक्रिया व्यक्त की, वह उन्हींकी हस्तलिपिमें ऊपर प्रस्तुत है :

"आगामी अष्टमी श्रावण मास मेरा ७० वाँ जन्मदिन है । मैंने मनमें यह संकल्प किया था कि इस जन्मदिनके बाद इस संसारके समाजके सब पुरस्कार और तिरस्कार विस्मृत कर मैं जीवन बिताऊँगा । लेकिन इस ७०वें जन्मदिनसे कुछ पूर्व ही मेरे भाग्य-देवताने यह ज्ञानपीठ-पुरस्कार मुझे दिया । मुझे आनन्द हुआ है और इसे अपने देवताको समर्पित कर मैं अपनेको धन्यभाग समझता हूँ ।"

ताराबाबूके कक्षमें उन्हींके बनाये तैलचित्र, जलचित्र और काष्ठशिल्पके अनेक नमूनोंकी सज्जा थी। लेखकने अपने लेखनके बारेमें बताया कि "साहित्यका धर्म अपने-आपको अभिव्यक्त करना है। जो कुछ देखा-समझा है और उससे जो आनन्द प्राप्त किया है उसे सभी पाठकों तक पहुँचा देना अधिक महत्त्वपूर्ण है। जीवनकी सबसे बड़ी समस्या है—मृत्युसे बचना, तभी तो हम मृत्योर्मा अमृतं गमयकी कामना करते हैं। आज कितने-कितने लोग जन्म लेते हैं और कितने-कितने मृत्युकी गोदमें सो जाते हैं। यह मानते हुए भी कि आत्महत्या करनेकी समझ केवल मनुष्य-जैसे वैचारिक प्राणीमें ही है। हम जीवनको ही सबसे अधिक महत्त्व देते हैं।"

ताराबाबूने बताया कि वे इस उम्रमें भी सुबहसे १२ तक लिखते हैं और वह सबसे बड़ा सुख है। उनके पुत्रने भी चर्चामें भाग लेते कहा कि मैंने इन्हें हमेशा अकेला देखा है, बहुत कम मित्र हैं इनके और केवल काम ही है जिसमें ये हमेशा व्यस्त रहते हैं।

'गणदेवता' के बारेमें जब उनसे पूछा गया तो वे बोले, "मुझे अपने उपन्यासोंमें सबसे प्रिय है—'कवि'। वैसे 'धात्रीदेवता' और 'कालिन्दी' में मैंने अपनी दिशा स्पष्ट की है। वैसे 'गणदेवता' एक उपन्यास नहीं है—'चण्डीमण्डप' और 'पंचग्राम' उसके दो भाग हैं और इन दोनोंको मिलाकर ही 'गणदेवता' बंगालके ग्रामीण जीवनका एक समकालीन वृत्त-चित्र प्रस्तुत करता है।" ताराबाबूकी वृद्धा पत्नीने पुरस्कारके प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। उन्होंने कहा कि ये बहुत दिनोंसे मानसिक रूपसे चिन्तित थे। चिन्ताका कारण जामाता की मृत्यु भी थी। उनकी पुत्री तथा उसके बच्चे अब ताराबाबूके साथ ही रहते हैं और यह पुरस्कार उन सबके लिए विशेष प्रसन्नताका विषय था। ताराबाबूने पत्नीकी ओर देखते कहा, "धात्रीदेवताकी गौरा ये ही हैं!"

प्रवर परिषद् : पुरस्कार-घोषणा

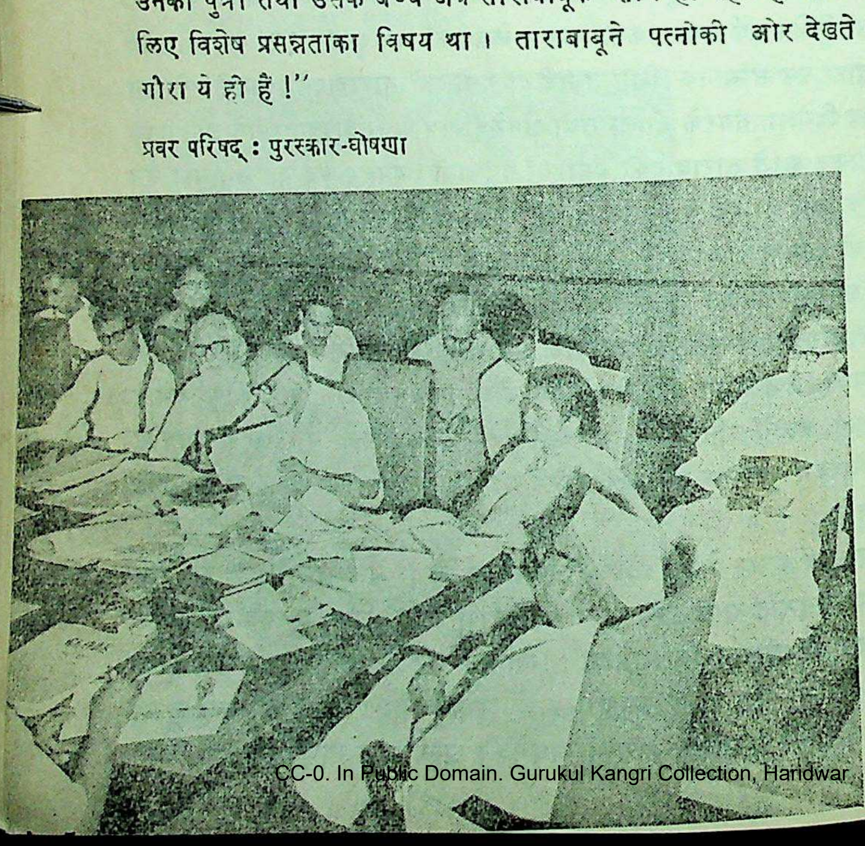

● 'गणदेवता' तथा लेखक-का परिचय

'गणदेवता' बंगालके उस ग्राम्य जीवन एवं समाजका प्रतिबिम्ब है जो स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रारम्भिक वर्षोंमें विद्यमान था। इस उपन्यासमें प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्थाके विघटन तथा नये पैदा

[शेष पृ० १५४ पर]

अनुक्रम

जून १९६७
वर्ष : १८
अंक : १२
पूर्णांक : २२८

विशेष-सविशेष :

- ज्ञानपीठ-समाचार : उपन्यासकार ताराशंकर बैनर्जी सम्मानित २
- कथन-उपकथन : सृजन-प्रक्रिया : स्टीफ़ेन स्पैण्डरकी दृष्टि (प्रस्तुति : कुन्या जैन) १४
- आधुनिकता : नये सामूहिक सन्दर्भोंमें : कुबेरनाथ राय १७
- विश्लेषण : भारतीय राजनीतिमें नया पर्व : नया अध्याय : अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार २७
- कला-संचेतना : आरासे एक भेंट : चटख़ रंग, फूल और ज़िन्दगीका संगीत : जितेन्द्रकुमार मित्तल ४५
- चर्चा : आजकी कवितामें भाषा : दाँतोंके बीचकी जगहोंमें सटी हुई है : परमानन्द श्रीवास्तव ४९
- पाश्चात्य सभ्यता : विद्रोही कवि जिन्सबर्ग : नेमिशरण मित्तल ६०
- प्रश्नान्तक : सनातन जीवनका मृत्युभोग और ब्रह्मराक्षस : द्वारकेश १०७
- प्रतिप्रश्न : किसी एक रत्नाकी शिकायत : मनमोहन मदारिया ११३
- युवालेखन : ५–उर्दू : कविताएँ : ७ उदाहरण : कुमार पाशी, साक़ी फ़ारूक़ी, रईस फ़राज़, इन्तख़ाब सैयद, ताज महजूर, कामिल अख़्तर, बिल्कीस लब १२०, कहानी : पूरा आदमी : असग़र शरीफ़ १२३, प्रतिक्रिया : हबीब कैफ़ी १२७
- प्रतिक्रियाएँ : एक परिचित इमारत : रजनी पनिकर १३६, अ (-आस्थावान) गीत और कन्धों पर पड़ी हुई राहोंका भविष्य श्याम परमार १४०
- बोलते प्रतिबिम्ब : पुष्प-धन्वा १४९

अन्य स्तम्भ :

- समीक्षा : १९६६ की पत्र-पत्रिकाएँ : प्रभाकर माचवे १२९
- प्राप्ति-स्वीकार १५१
- कुछ पंक्तियाँ ···· १५२

कहानियाँ-स्केच-उपन्यास :

- त्रिकोण : कृष्णबलदेव वैद ७१
- आजी : विवेकी राय ७७
- जैसे : मनहर चौहान ८३
- झाग : परेश ८९
- एक पत्थर, दो पत्थर, तीन पत्थर (६) : कृश्नचन्दर ९६

- जूनकी कविताएँ : श्रीकान्त वर्मा, शान्ति मेहरोत्रा, लीलाधर जगूड़ी, अनामिका, आनन्दकुमार आशु ६
- ३ कविताएँ : उपेन्द्रनाथ अश्क ५५

प्रेयसी
झाँक-झाँक जाती,
मन-वातायन,
आज वह साज !
गाढ़ परिरम्भण !
वात्या-चक्र चंक्रमित
भागा द्रुत,
शुष्क-वाष्प-व्याकुल
अनुभूति-प्लुत
उन्मीलित पन्थी-दृग-युग
रज भर-भर।
ताली-तरु-मर्मर।
– जानकीवल्लभ शास्त्री

●

मुखपृष्ठ : अन्तर्संज्ञा :

बीरेश्वर बनर्जी

जून कविताएँ

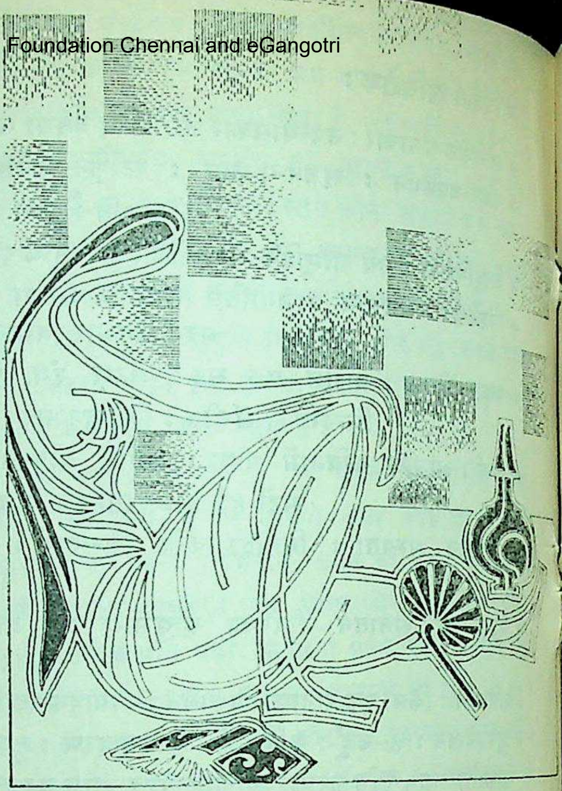

सूचना / श्रीकान्त वर्मा

•

हरेक का पता पूछती हुई – जून ।
दुपहर
के
बोझ
से
झुकी जा रही
है
उमर
ख़त्म
हो
रही
है

धो
रही
है
जीते ही जाने
का
मैल
घाट पर
बाट
पर

बैठी हुई
छाया
सिर
हिलाती
है ।

(नोट : दुख ऐसे भी होता है, वैसे भी । कैसे भी चलिए)

ग़लत रास्ते की पहचान
क्या है ?
सारा जंगल
एक छोटे-से
पोखर को
दबोच कर
खड़ा है
पड़ा है
रास्ते पर
दूसरे का सत्य ।
(क्या मैं उठा लूँ ?)

चोंच में दबा कर
कहाँ लिये जाती है
चिड़िया
आकाश को ?
(बार-बार
रौंदी हुई
घास को
कैसे अमर
कर दूँ ?)

(अकेले जी रहा है)
यह दरख्त सौ साल से
चाल से
पता नहीं चलता
कौन
आता है
(कुत्ता
या
पोस्टमैन ?)

मैं
कहीं भी
हो सकता था
(नहीं भी)
(वह होती नहीं तब भी) होता वह
सब ही
जो
वैसा का वैसा
रह
गया है

किरनें, अंगारे और उमस
यहाँ नहीं कोई लेगा
बादल हों तो और हवा हो तो
दस पैसे की दे——>

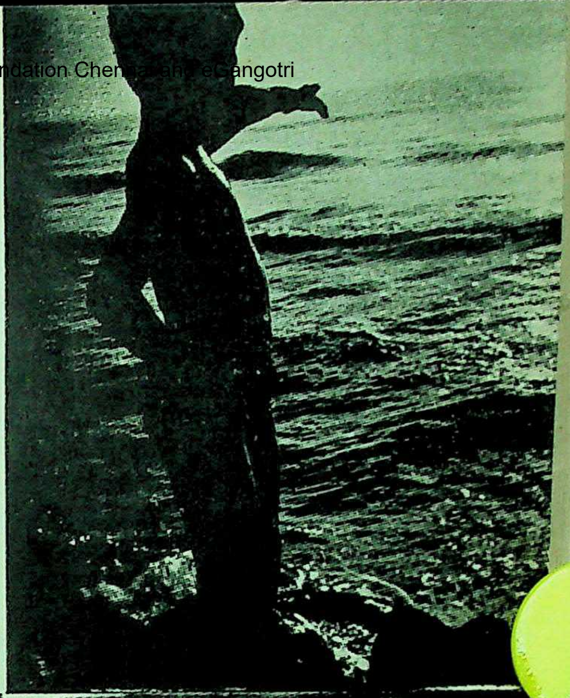

सागर, फेन, शाम, बचपन ↓
सब ले ले सूरज
अपने झोले से ठण्डी फ़ुरसत दे
नक़्शे खींचें, पाँव जमायें....

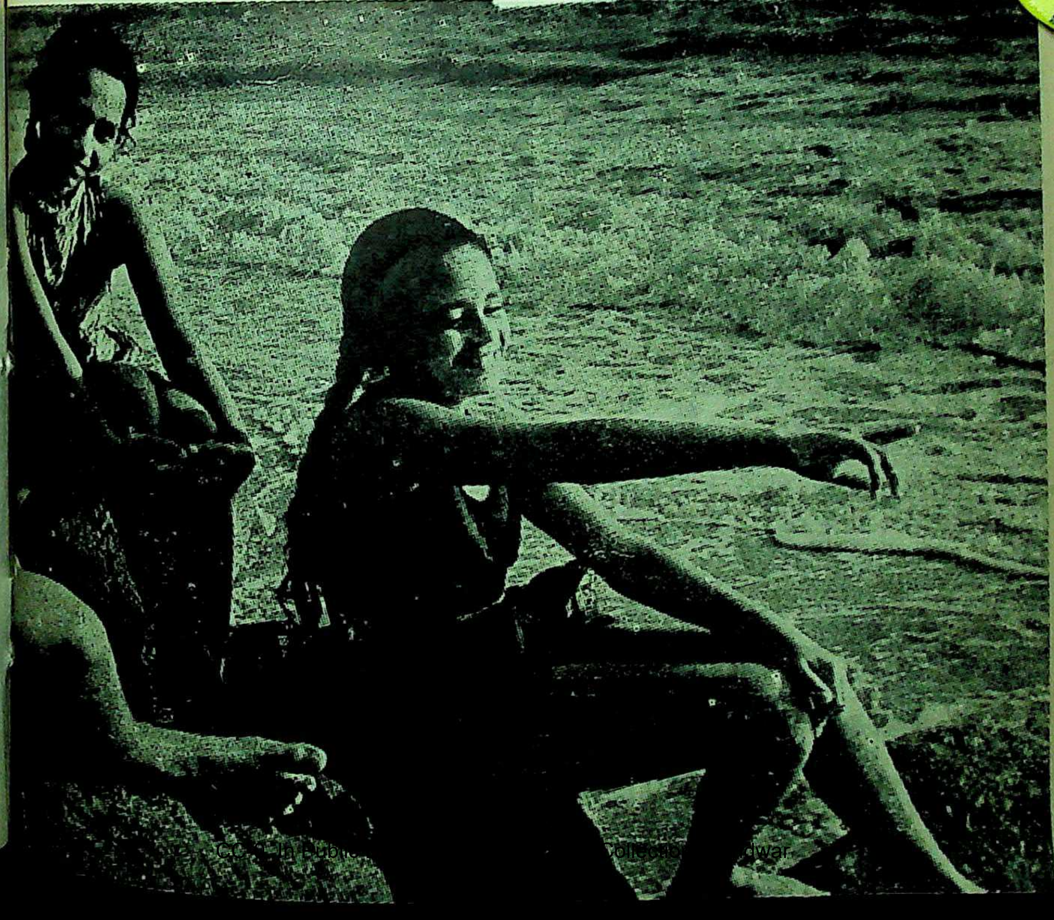

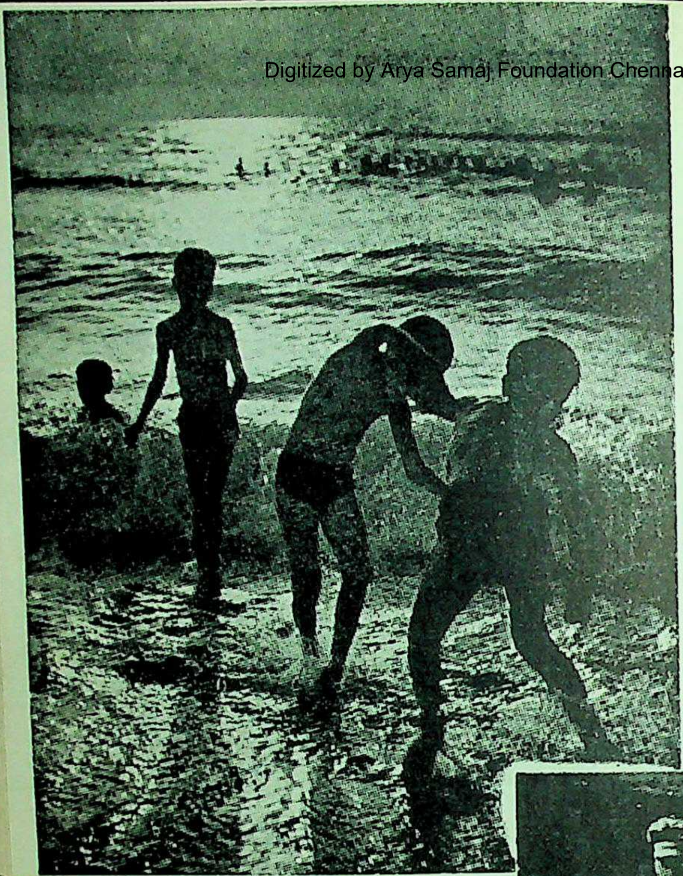

←

इतनी गरमी
उफ्फ्!
सागर भर पानी कम....
मनका क्या कर डालें!

मन तो फ़िज़ूल है भाई,
सवाल तन का है
तन अगर चंगा
↓ तो क्या सागर क्या लोटा....

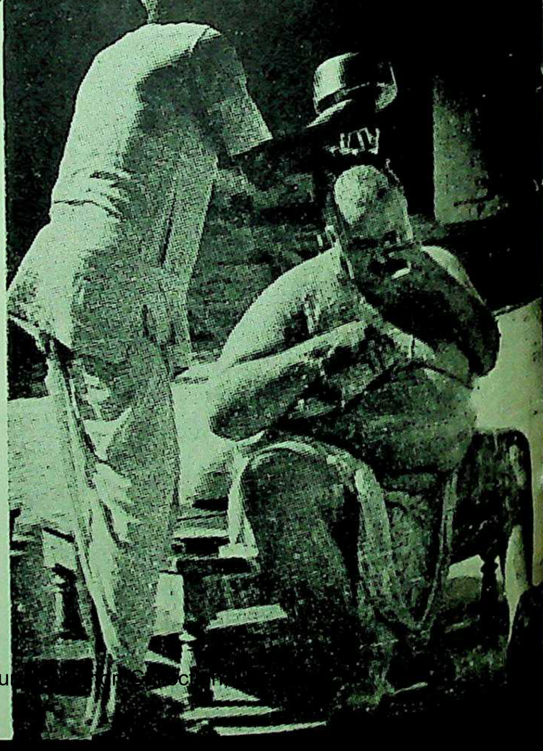

[सूचना : निबह
गया है
संकट, गुज़रने का दृश्य,
टिकटघर की खिड़की
रक्तपात,
जड़ता
अकेले आदमी का
बिस्तरा ।]

[निष्कर्ष :] इधर से आओ या उधर से गुज़रो । जिस तरह भी :

■

९४, नार्थ एवेन्यू,
नयी दिल्ली ।

चित्र-फलक पर / शान्ति मेहरोत्रा

●

सुबह : नींद में बेसुध चेहरों से खिसक कर
ज़मीन पर बिखरे नक़ाब ।
चुगते हुए मुर्ग़ों को
हसरत से देखते
क्षीर और मोतियों की परम्परावाले
कालायित राजहंस ।
मंच पर प्रस्तुति के लिए चिन्तित
जल्दी-जल्दी शेव करता
अलसाया सूरज ।
गाल कट गया है,
ज़रा-सा ख़ून पूरब में छिटक गया है ।

दोपहर : [illegible] ।
बान की खाटों में उलझा
किरणों का सेहरा ।
ठिठुरी जवानियाँ
जिनके सिन्दूर दफ़्तरों में
झुक-झुक कर सलाम बजा रहे हैं ।
'यस सर' का राष्ट्र-गान गा रहे हैं ।
खुली पड़ी फ़ाइलें,
भरी हुई चाय की दूकानें ।
'लंच' और 'टी' की बाँहों में
सिमटा हुआ दिन ।

शाम : दिन की हत्या करके लौटा
साइकिलों और रिक्शों का
लम्बा, थका काफ़िला ।
स्वागत में
विष-बुझे शब्द-शरों के वन्दनवार,
सूनी आँखों का अपरिचय ।
जीवन को सुखान्त बनाने के लिए
किसी चमत्कार की प्रतीक्षा करते लोग ।
सब कुछ यन्त्रबद्ध ।
निष्प्राण ।
धीरे-धीरे
करुणामय अँधेरे के
काँपते, झुर्रियाँ पड़े हाथ,
सब पर छा जाते हैं
एक साथ ।

■

आकाशवाणी, इलाहाबाद

इस यात्रा में   लीलाधर जगूड़ी

उस दिन मैं यही कह सकता था। चीज़ें रंगदार होती हैं
भीतर-बाहर। आदमी बे-रंग होता है। अपनी खाल के अलावा : अपने खून के अलावा

लेकिन आज कह सकता हूँ। बातों का एक रंग। हर बार
मेरे हा-हाकार से अधिक गरम। चीज़ों को। अलग-अलग पहलुओं से पहचानने का एक ढंग होता है

पेड़ों के बाहर-भीतर। सरसराती लय। जीवन रचती है। नदी की लय में
झरती हुई। पत्तियों ने रंग बदला। देखते-देखते। कुछ और शुरू हो गया। सब में

खपता चला जा रहा है। इस पहाड़ से उस पहाड़ के बीच। लय को तरह थमा हुआ आसमान

इन दिनों को—इन रातों को कहाँ से छुऊँ कि कहीं कुछ टूट जाये
अपने समानान्तर। देख लूँ कहीं से कुछ उगता हुआ। कोई विस्फोट
मेरा।—यही रह गया है होने के लिए
सारी शक्ति की आवाज़। बंजर फोड़ती हुई। उगे। एक उँगली जीवन छूने के लिए

....थोड़ा उस रंग की बात। जो पिछले साल देखा था।—कर लूँ

कुछ नहीं हुआ था। उस समय सिर्फ़ सूरज डूबा था। उस कोने पर
एक रंग आया था। उजाला लेकर। गाँव के धुएँ की ओर
तमाम चीज़ों का मर जाना। अच्छा लगा था—एक रंग के नीचे—
उसके बाद। अपनी आँखें नहीं फोड़ सका। पिछले साल। वह उत्सव मैंने नहीं मनाया था

—इन बाईस वर्षोंमें शुरू-शुरूके पाँच वर्ष। बिस्तर
भिगोता रहा। दादी की कहानियों का घोड़ा। आज भी नहीं लौटने देता
उस गुफा की ओर से जो लड़कियों की है
घने पहाड़ों में खो गया रास्ता। मेरे साथ। केवल मेरी यात्रा है। आँखों में
अँधेरे का आखिरी ज़ोर और धँसती हुई प्रकाश-उँगलियाँ। चुनाव का संकट

इतनी सारी चीजें। आसपास। यह कुछ कितना अभी तक नहीं देखा।
अच्छा है
इन पहाड़ों का विष। कितने ही लोग खा चुके। दुनिया में। बहुत कोने
उग आये
भीतर की अपाहिज समानता लेकर। पशु से थोड़ा ऊपर होकर जिसके लिए
बहुत कुछ भोग चुका। जिसकी एक इसीलिए अच्छी लय होगी कि नहीं....?
मेरी तरह। जो बच गये हैं इस साल। कुछ और ज्यादा फैलकर
उनके सामान के बाहर लिपटी हुई। आदमी की खबरें। सुरक्षा देती हैं
कि नहीं...?

वह कोई विकसित दिन। वह कोई और गहरी घुली रात
भी गुजर जायेगी। हम करें या न करें—बात। इस यात्रा में

■

जूनियर हाई स्कूल, कन्दारी
वाया–मसूरी

गरमियों में पहाड़ / अनामिका

●

पूरब से पच्छिम
नापता
और कलैण्डर से
तारीखें हटाता
इन दोनों कामों में
तस्वीर का एक चेहरा
सफेद भेड़ों के झुण्ड से
मैदानों तक आकर
दोपहरें शान्त कर जाता है।

■

२६।५३ रामजस रोड
करोल बाग़, नयी दिल्ली—५

पीले पत्थरों के बीच / आनन्दकुमार आशु

ऋतुओं का सम्पर्क
मुझे कोई नया अर्थ दे जाता हो,
ऐसी बात नहीं !

बस, पिछली यादें ताजा हो जाती हैं !
मैं भी अब
उन लोगों की तरह अकेला हूँ
जिन्हें बाँस के पतले पुल से होकर
ग्रीष्म की दोपहर में गुजरना होता है।
पीले पत्थरों के बीच
दुःख का समभागी
दोपहर में टूटी कौवों की नींद के सिवा
मैं भी हूँ !

मजबूत दीवारों में क़ैद उदासियों के बीच
खाली कुरसियों और नंगे बिस्तरों की आत्मा-सी
मेरी विस्मृति
अँधेरे में लिपटी पड़ी है।

अब मैं अपने सपनों के नजदीक होना चाहता हूँ
जहाँ घाटियों के अधपके प्रकाश में
झलक रहे
दीमकों से चाटे गये भुरभुरे, गेरुए खम्भों पर
अतीत बूढ़े की तरह चिपका हुआ है !

■

शादीपुर, मुँगेर,
बिहार

सृजन-प्रक्रिया :

[न्यूयार्क, ७ मई, १९६७। ब्रिटिश कवि एवं लेखक स्टीफ़ेन स्पैण्डरने प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'एनकाउण्टर' के लेखक-सम्पादक-पदसे त्याग-पत्र दे दिया। प्रति मास ४०,००० ग्राहकों-द्वारा पढ़ी जानेवाली इस पत्रिकासे बर्षोंका जुड़ा नाता तोड़नेका कारण कविने यह बताया कि यद्यपि वर्षोंसे उड़ती हुई ख़बर कानमें पड़ती रही कि इस पत्रिकाके आर्थिक संयोजनमें अमरीकाकी बहुचर्चित सी० आई० ए० (सेण्ट्रल इण्टेलिजेन्स एजेन्सी) का हाथ है, किन्तु इसकी पुष्टि वह एक महीने पहले ही कर सका।

स्टीफ़ेन स्पैण्डर कई वर्ष पहले भारत आये थे। लखनऊमें यशपालजीके यहाँ आयोजित साहित्यिकोंकी गोष्ठीमें उनका समीपसे परिचय पाया था। 'आपकी कविता-रचनाकी प्रक्रिया क्या है ?' या 'आप कविता कैसे लिखते हैं ?' आदि प्रश्न यदि कवियोंसे पूछे जायें, तो अधिकांश कहेंगे—'कविता-रचना विश्लेषणीय नहीं है।', 'कवि-द्वारा कविता-रचनाकी प्रक्रिया नहीं बतायी जा सकती।', 'रचनापर प्रकाश डालना, कविका नहीं, आलोचकका काम है।', 'कवि-द्वारा सृजन-प्रक्रियाकी बात करना कविताके रसको भंग करना है।' आदि आदि।

किन्तु स्पैण्डरका दृष्टिकोण इससे नितान्त भिन्न है]

●

प्रश्नकर्ता(स्पैण्डरसे) : कहा जाता है कि 'कवि जन्म लेता है—कविता अनायास सहज अभिव्यक्तिका फल है, नैसर्गिक प्रेरणाका परिणाम है'—आप और आपकी कविताएँ वास्तवमें इस तथ्यका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं····

स्पैण्डर : और यदि मैं कहूँ कि मेरी कविता-रचनामें नैसर्गिक प्रेरणा, अनायासता और जन्मजात कवित्वका स्थान उतना नहीं जितना सायास कवि होनेकी सार्थकतामें विश्वास, एकाग्रता आदि, तो क्या आपको आश्चर्य और निराशा होगी ?

प्रश्नकर्ता : अवश्य। हमने तो यही जाना और सुना है कि ज्यों पर्वतकी कन्दराओंमें छिपे झरने स्वतः उमड़ पड़ते हैं, उसी प्रकार कवि-हृदयमें अन्तर्हित भावना-उद्वेलन कविता बन फूट पड़ता है।

स्पैण्डर : यह कथन अवश्य ही बहुत-से अन्यान्य विशिष्ट कवियोंपर ठीक बैठता हो किन्तु जहाँतक मेरी कविता-रचनाका प्रश्न है, मैं सचेतन रूपसे की गयी उस यात्राका वर्णन कर सकता हूँ जो कविताके सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु-केन्द्रसे प्रारम्भ होकर कविताके रूपाकार पाने तक होती है।

प्रश्नकर्ता : इसका सुनना तो जीवनका अद्भुत अनुभव होगा।

स्पैण्डर : मैं अपनी बात आप तक पहुँचानेके

[प्रस्तोता : कुन्था जैन]

स्टीफ़ेन स्पैण्डरकी दृष्टि

लिए अपनी कविताओंके सृजनके इतिहासको दोहराऊँगा ; और पाँच तत्त्वोंके अन्तर्गत मैं अपनी कविता-सृष्टिकी चर्चा करूँगा ।

प्रश्नकर्ता : क्या पाँच तत्त्व हैं वे ?

स्पैण्डर : ये हैं—एकाग्रता, नैसर्गिक प्रेरणा, स्मरण-शक्ति, आस्था और गीत । सृजनशील लेखनके लिए एकाग्रता अनिवार्य है । यह एकाग्रता गणितके विशेष प्रश्नपर केन्द्रित एकाग्रतासे भिन्न है । सर्जनात्मक लेखनमें, कवि, ध्यानको एक विशेष रूपसे इस प्रकार केन्द्रित करता है कि अपने विचारके समस्त सम्भावित विकास-आयामों और निहित अर्थोंके प्रति वह सचेत रहता है–जैसे विकासोन्मुख पौधेका ध्यान यन्त्रवत् बढ़ते रहनेकी एक ही दिशामें केन्द्रीभूत न होकर साथ-ही-साथ पत्तोंपर पड़ती गरमाई और रोशनी, जड़ोंसे आती नरमाई और पानी आदिपर भी रहता है ।

प्रश्नकर्ता : एकाग्र चित्त होनेके लिए क्या प्रयत्न होता है ?

स्पैण्डर : जिसे हम कवियोंकी विचित्र सनक कहते हैं वह वास्तवमें एक मशीनी आदत होती है, जो उन्हें एकाग्र चित्त करती है । कवि शीलरकी सनक थी कि कविता-रचनाके समय लेखन-डेस्कके ढक्कनके नीचे छिपे सड़े सेवोंकी गन्ध उसकी नाकमें घुसती रहे । कवि आंडन प्यालेपर प्याले चाय चढ़ाते रहते हैं । मुझे कॉफ़ीकी लत है और केवल कविता लिखते समय सिगरेट पीता हूँ, अन्यथा नहीं । एकाग्रताका एक बिन्दु ऐसा आता है जब मैं मुँहमें रखी सिगरेटके स्वादको भूलने-सा लगता हूँ । और, उस समय मैं दो या तीन सिगरेट एक साथ पी लेता हूँ, ताकि एकाग्रताकी जो दीवार मैंने अपने चारों ओर खड़ी की है, उसे भेदकर बाहरी संवेदनाएँ अन्दर घुस सकें । किन्तु इसका यह अर्थ न लगायें कि सनकी आदतोंका सम्बन्ध रचनाके उत्तम या निम्न स्तरसे है । वे लेखक-द्वारा स्वतन्त्र रूपसे स्वयमेव अर्जित एकाग्रताके आंशिक अंग हैं, न कि एकाग्रताके साधन ।

देहका स्वभाव है कि वह ध्यानको कई प्रकारसे बँटाये । इसलिए यदि ध्यानका बँटना कॉफ़ी, चाय या सिगरेट पीकर, एक ही रास्तेसे, हो जाये तो 'स्व'के बाहर स्थित अन्यान्य विघ्न अन्दर प्रवेश नहीं करते ।

प्रश्नकर्ता : यह भी तो माना जाता है कि काव्य-रचनाका दत्तचित्त प्रयत्न एक ऐसी आध्यात्मिक क्रिया है जिसमें व्यक्ति मानसिक स्तरपर शरीरसे विलग हो जाता है ।

स्पैण्डर : यह सही है, क्योंकि रचना-प्रक्रियाके समय मन और शरीरका पारस्परिक असन्तुलन होता है । इसलिए आवश्यक होता है कि भौतिक जगत्के साथ किसी संवेदनाके लंगर-द्वारा ठहराव बना रहे । मेरे लिए एकाग्रता दो प्रकारकी है—एक तात्कालिक और सम्पूर्ण; दूसरी वह, जिसके लिए रास्ता खोजना पड़ता है, और जिसका गन्तव्य कई

एक नारी-मुख छवि :

उसकी आँखें चमकती मछली हैं,
जो उसके भावाकुल चेहरे में ऐसी
पकड़ी गयी हैं,
जैसे जाल-पाश में।
उसके घने केश अस्तव्यस्त और भूरे हैं,
जो कपोलों को भा-मण्डल की
तरह ऐसे घेरे हैं,
जैसे दक्षिण देश के सूरज का कल्पना-
तीत फैला हुआ रश्मि-प्रसार।
उसमें, अपने बच्चों के पालन-पोषण
के प्रति एक उन्माद है।
उसकी चलती-फिरती उँगलियाँ,
कभी-कभी—कदाचित् वर्षों में एक बार,
फूलों को सजाने झुकती हैं।
और उस समय उन हाथों में उसका
सारा जीवन रुक जाता है और रोता है।

—स्टीफ़ेन स्पेंण्डर

(अनु० : कुन्था जैन)

मंज़िलोंमें प्राप्त होता है।

कुछ कवि तीव्र स्पष्ट, गहरी और उद्देश्य-पूर्ण बुद्धिकी ईश्वरीय देनसे भासित होते हैं; और कुछ मद्धिम गति, अनगढ़ या अदक्ष होते हैं। पर इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। उद्देश्यकी सचाई या ईमानदारी और स्वयंको बिन-खोया रखकर उस उद्देश्यकी सम्पूर्ति कर पाना महत्त्वपूर्ण है। मुझमें कविताके प्रति तात्कालिक एकाग्र चित्त होनेकी क्षमता बहुत कम है। मेरा मस्तिष्क स्पष्ट नहीं है, मेरी इच्छा दुर्बल है। विचारोंका बाहुल्य और अभिव्यक्ति-विधाकी अशक्त सामर्थ्य, मुझे पीड़ित करते हैं। एक कविता लिखने बैठनेके लिए, दस कविताएँ विचारमें आती हैं जिन्हें कभी लिखने नहीं बैठता।

प्रश्नकर्ता : अपने कविता-लेखनके विषयमें इतना स्पष्ट वक्तव्य तो सम्भवतया ही कोई कवि देना चाहेगा! आप अत्यधिक विनम्र हैं!

स्पैण्डर : न, न, ऐसी बात नहीं है। विनम्रता कैसी, जब सब बात नितान्त सत्य है। मेरे कविता-लेखनकी पूरी बात सुननेपर तो आप मुझे कवि कहना भी पसन्द न करें शायद।

प्रश्नकर्ता : भला क्या कह रहे हैं आप? ऐसा क्यों?

स्पैण्डर : मेरे लेखन-डेस्कके पास अलमारीमें लगभग बीस नोट-बुकें हैं, जिनमें पन्द्रह वर्षसे विचार अंकित करता आ रहा हूँ। मैं उनमें कविता-रचनाके प्रसंगमें उठे सब विचारोंको रेखांकित करता रहता हूँ। बादमें कुछ विचारोंको प्रयुक्त कर लेता हूँ और कुछको रद्द कर देता हूँ। प्रत्येक विचारको संख्यांकित कर देता हूँ जैसे एक, दो, तीन इत्यादि।

प्रश्नकर्ता : कविता-रचनाका यह ढंग अतीव मनोरंजक और विधिवत् है।

स्पैण्डर : मनोरंजक है या नहीं, मैं नहीं जानता किन्तु विधिवत् होनेके कारण मुझे सुविधाप्रद रहा है। उदाहरणके लिए एक कविताके प्रसंगमें नं० ३ वाले विचारकी एक पंक्ति आजतक लिखी रखी है, पर उसकी कविता पूरी नहीं हो पायी है। पंक्ति है : 'ए लैंग्वेज ऑफ़ फ़्लेश

(शेष पृष्ठ १५६ पर)

इस लेखमें आप एक जगह पढ़ेंगे : 'सारा देश हेमलेटकी तरह अपने अन्दर घुसे हुए शब्दप्रेतोंसे युद्ध कर रहा है…' और यह भी पायेंगे कि—असली नारा होना चाहिए : 'भागो नहीं—इसे ही बदलो !' लेकिन… 'आधुनिकता' पर प्रकाशित किये जा रहे इन लेखोंमें निष्कर्षकी जगह विश्लेषणकी ही प्रवृत्ति दृष्टिगत है। अगले अंकोंमें आप ५-६ लेख और इस श्रृंखलामें पढ़ेंगे। अपने पाठकोंसे प्रतिक्रिया और सन्दर्भित साहित्यकारोंसे अगले विश्लेषणकी हमें अपेक्षा होगी। एक बार देखें तो कि आधुनिकताका यह ब्लर्ब हमारा विज्ञापन है या हमारी हक़ीक़त…।

आधुनिकता : नये सामूहिक सन्दर्भोंमें

कुबेरनाथ राय

मैं हिन्दुस्तानी संस्कृतिको गो-ब्राह्मण संस्कृति नहीं मानता। यह एक निरर्थक बहु-प्रचारित अर्ध सत्य है। पर हिन्दुस्तानी संस्कृति अवश्य ही कृषि-संस्कृति रही है। औद्योगिक विकासके साथ इस कृषि-संस्कृतिके तन्तु टूट रहे हैं। यह एक ऐतिहासिक अनिवार्यताके रूपमें घटित हो रहा है। कृषि-संस्कृतिके विघटनके पीछे है—कृषि-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्थाका विघटन। ऐसा होना कोई अफ़सोसकी बात नहीं थी यदि कृषि एक महज कारोबार होती। पर दिक़्क़त तो यह है कि कृषि महज़ कारोबार नहीं एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन है। अतः इसके विघटनका अर्थ होता है—मनुष्य जिन आत्मिक और नैतिक मूल्योंसे संयुक्त था उनका विघटन, उसके रसबोधका विघटन, उसके स्वभावका विघटन। अतः ऊपरी तौरपर यह आर्थिक प्रक्रिया होते हुए भी एक आत्मिक प्रक्रिया बन जाता है। ग्रामोंके शहरीकरणका अर्थ होता है—मनुष्यकी आत्माका, उस धातुका जिससे उसका मन गढ़ा गया है, शहरीकरण। ऐसा होना ठीक है या नहीं, इसपर कुछ कहना यहाँ अप्रासंगिक है, क्योंकि ऐसा होना इतिहासकी गतिके अनुसार अनिवार्य है। जिसे होना ही है, जिसे टाला नहीं जा सकता, उसके औचित्य-अनौचित्यकी चर्चा व्यर्थ है। पर यह सवाल रह-रहकर मनमें उठता

हो है: "ठीक है। ग्रामोंका शहरीकरण हो। कृषिका औद्योगिककरण हो। पर मनुष्यकी आत्माका किस सीमा तक शहरीकरण या यान्त्रिककरण ठीक होगा ?" और इस सवालके सामने बड़ी बेबसी महसूस होती है। हम इससे आँख मिलानेका साहस नहीं कर पाते हैं और सवालकी बग़लसे होकर निकल जाते हैं—कभी शहरकी ओर, कभी गाँवोंकी ओर। गोया यह सवाल न होकर कोई सलीब हो। वह आत्मिक यन्त्रणा जिसे १९वीं शतीके युरॅपने भोगा था, जो इंग्लैण्डमें वर्ड्स्वर्थ-हार्डी, रस्किन-कार्लाइलके माध्यम व्यक्त हुई, उसे भोगनेका मौक़ा हमने अंगीकार नहीं किया और उक्त सवालसे कन्नी कटाते रहे। जो मसीही पैग़म्बरी आवाज़ आत्माके इस गुणात्मक परिवर्त्तनके खिलाफ़ उक्त लेखकोंमें उठी वही पकहर बनकर 'वेस्टलैण्ड' (एलियट) में प्रखर चेतावनीके रूपमें व्यक्त हुई। हमारे यहाँकी बात और है। यहाँ पर उद्योगीकरण अब ठीकसे प्रारम्भ हुआ है—परन्तु मनुष्यकी आत्मापर, उसकी प्रकृतिपर उसका क्या प्रभाव पड़ा है इसकी सशक्त 'स्टडी' हिन्दी साहित्यके माध्यमसे देखनेमें नहीं आती है। हाँ, 'नयी कहानी'के माध्यमसे इसका समारम्भ यत्र-तत्र हुआ है। परन्तु इतने बड़े विषयके लिए बृहत्तर आयाम और बृहत्तर प्रतीक-पद्धति चाहिए।

हमने प्रश्नसे कन्नी कटाकर कभी गाँवोंकी ओर तो कभी शहरोंकी ओर जानेकी बात कही है। पर अधिक खोलकर कहा जाये तो सचाई यह है कि नये साहित्यका मन शहरी है। वह गाँवोंकी ओर महज़ 'पिकनिक' करने जाता है। कभी झण्डे और मार्क्सकी किताबके साथ तो कभी महज़ 'श्वेत काँचनार'के फूल देखनेके लिए। और उन फूलोंको देखकर दूसरे ही क्षण उसका नागरिक मन 'प्रार्थना-सी अर्धस्फुट काँपती' कलीके ध्यानमें लीन हो जाता है। कभी-कभी मार्क्सवादसे जी उचटता है तो बबुआ 'बहुत-बहुत दिन बाद' गाँवकी 'चन्दनवर्णी धूल'का मज़ा लेने छुट्टीपर घर आते हैं और जी भरकर 'गन्ना चूमते' हैं पर वरुण और धरतीके बेटोंमें उठते क्रोध और उत्साहका स्वप्न इस क़दर उनपर हावी है कि अन्तर-अन्तरमें, दिलके रेशे-रेशेमें एक जहर पल रहा है, एक आत्मिक गिरावट ('आत्मिक'से मेरा तात्पर्य 'आध्यात्मिक' नहीं) आ रही है, भ्रातृत्व और बन्धुत्व समाप्त हो रहे हैं, इन तथ्योंके प्रति वे विशुद्ध रंगान्ध हैं। वे सारी 'परिकथा'का अन्त फ़ार्मूलाबाज़ोंमें करनेके लिए बाध्य हैं। प्रेमचन्द और निराला गाँवोंकी ओर 'पिकनिक'की मनोदशामें नहीं मुड़े थे अतः उन्होंने जो कुछ देखा, गोकि वह भी सतहके बहुत नीचे नहीं गया पर, वह प्रामाणिक और सही रहा।

लेकिन नया साहित्यकार गाँवको समझ नहीं पाता है। फलतः वह हिन्दुस्तानको समझ नहीं पाता है—क्योंकि हिन्दुस्तान अर्थात् ७ लाख गाँवोंका हिन्दुस्तान। फलतः अपने (परिवेश) को न समझ पाना आधुनिकता-बोधकी महान् ट्रेजडी है। इसका कटु-तीखा-मधुर फल होता है—व्यक्तिका आसपासके समूहसे व्यवधान। वह अगल-बग़लके हिन्दु-

स्तानके प्रति अजनबी बनकर चलनेकी आदत डालता है।

यही कारण है कि अगल-बग़लके हिन्दुस्तानके लिए—दूसरे शब्दोंमें अगल-बग़लके समूहके लिए जो आधुनिकता है (यथा वर्ण-भेद-विनाश, हरिजनोद्धार, समता, प्रजातान्त्रिक दृष्टि, विज्ञान आदि) वह उसके लिए १९वीं शतीकी बासी 'पुरानी आधुनिकता' लगती है। गोकि, ये समस्याएँ अब भी यहाँपर ज्वलन्त प्रश्न हैं। और नया साहित्यकार, जो देशके मुक्त होनेसे पहले ही मुक्त हो चुका था—सन् तीसीके जमानेमें ही, (देखिए, अज्ञेयका भाषण, अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन १९६५ में)—ऐसी नयी आधुनिकताका स्वभाव अर्जित कर चुका है या कर रहा है जिसके अन्दर आत्मसंघर्ष, प्रश्नाकुलता, त्रास और अजनबीपनके भाव हैं। इस तरह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पैदा हो गयी है। जनसमूह तो यहाँपर बेचारा 'गऊ' है पर उसके नामपर राजनीतिक हुण्डी भजानेवाले लोग नये साहित्यकारको नक़ली और विदूषक कहते हैं, तो यह जवाब देता है : "विदूषक तो कलाकारका अनिवार्य रूप होता है। पर तुम? तुम पाखण्डी···तुम अपना मुखौटा खोलो और दिखाओ, कितना भयंकर तुम्हारा फण है !"

आत्माका शहरीकरण और गाँवोंकी आत्मिक यातनाकी बोध-असमर्थताके अलावे इस अजनबीपनका एक और विराट कारण है और एक पत्तल भातपर आत्मा बेचनेवाला सर्वोदयवादी या सरकारी कृपापोषित जन भले हो इस तथ्यको इनकार करें पर यह युगका महान् सत्य है कि यह अर्धसत्योंका युग है, 'भ्रष्टाचार-युग' है। जिन मूल्योंको लेकर १९वीं शतीकी प्रगतिशीलता या आधुनिकता यूटोपिया बनाती है, सुधारका लेखा-जोखा पेश करती है, उनका मज़ाक़ सरेबाज़ार वही महापुरुष ही पोशाक बदलकर उड़ाता है। इसकी प्रामाणिकताके लिए मैं लोहिया या राजनारायणके वक्तव्य न पेश करके प्रयाग हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीशका एक वाक्य उद्धृत करूँ तो अधिक विश्वसनीय माना जायेगा : "दिक़्क़त तो यह है कि सही माँग भी तबतक मंजूर नहीं हो पाती जबतक माँगनेवाला उत्पात मचानेपर न तुल जाये। दुर्भाग्यवश आज कुछ पाना है, तो इसके लिए हंगामा-फ़साद करनेका गुण (न्यूसेंस-वैल्यू) अर्जित करना चाहिए।" ('सरस्वती, दिसम्बर '६६, पृष्ठ ४६५ पर उद्धृत) राष्ट्रपतिने २६ जनवरी '६७ को देशके नाम सन्देश देते हुए सरकारमें बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और दूसरी ओर जनतामें बढ़ती अनुशासनहीनताकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए स्पष्ट शब्दोंमें चेतावनी दी है : "क्रान्ति अवश्यम्भावी है, यदि रास्ता नहीं बदला गया तो!" भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता वास्तवमें एक ही मर्ज़के रूप-प्रतिरूप हैं। दोनोंसे निष्कर्ष यही निकाला जा सकता है कि मूल्योंका शेषनाग थक गया है। उसका सहस्रफण इस धराका और आधार बननेमें असमर्थ है। ऐसी हालतमें नया साहित्यकार, जो अतिशय संवेदनशीलताके ज्वरसे पहले ही से पीड़ित है,

अपनेको अकेले पाता है। नया साहित्यकार ही नहीं, ऐसे परिवेशमें हर एक आदमी, मास्टर, लेखक, पत्रकार, किसान जो ईमानदारीसे, सचाईसे जीना चाहता है, अपनेको अकेला, मूर्ख और 'बेवकूफ़की दुम'-सा पाता है—अर्धसत्योंके दर्शनमें विश्वास करनेवाले इस समयके उपहासका पात्र। अकवितामें, विद्रोही कवितामें, राजकमल चौधरी और शिवचन्द्र शर्मामें, शत-प्रतिशत न सही, पर बहुत-कुछ है जो शुद्ध और प्रामाणिक है और उसके पीछे प्रयाग हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीशकी खीझ और बूढ़े दार्शनिक राष्ट्रपतिकी मनोव्यथा ही एक उच्छृंखल भाषा बोल रही है।

हमने नये साहित्यकारके समूहसे कटनेका, उसकी आत्माके शहरीकरणका एवं गाँवोंमें बिखरे हिन्दुस्तानकी आत्मिक कथाको समझनेकी असमर्थताका जिक्र किया है। परन्तु यह अलगाव चरम नहीं है। यह सापेक्ष है। ऊपरी व्यथा तथा दुःख-भोगके वातावरणसे वह जुड़ा है, उसमें साँस ले रहा है उसका ज़हर पी रहा है। वह सिर्फ़ गाँवोंकी आत्मामें नहीं पैठ पाता। पर वह वातावरणका ज़हर भोगनेको बाध्य या अभिशप्त है। इसीसे साहित्यका नाराज़ पीढ़ीका क्रोध और बिहार-बंगालके मतदाताओंका क्रोध दोनों परस्पर संयुक्त लगते हैं। दोनों अकारण नहीं। दोनों मिथ्या नहीं। ('दिनमान' के मुहावरेमें) "हमारे प्रजातन्त्रमें 'ईंट-युग' का उदय हुआ है।" 'निराला'-जैसा मर्दाना जिन्दा रहता तो इसे जनताकी जीवनी शक्तिका सबूत मानकर स्वागत करता। 'ईंट'के रूपमें विष्णुका यह दसवाँ अवतार, भुवनेश्वरमें (जो दुःखकी बात है) श्रीमती गान्धीकी नाकका टूटना, सरकारी और विरोधी नेताओंका जगह-ब-जगह पीटा जाना, हंगामा, दंगा, फ़साद आदि जो कुछ फ़रवरी'६७ (चुनाव-मास) में घटित हुआ है, वह स्थूल अभिव्यक्ति है, उस क्रोध, खीझ और क्षोभकी जो शिवचन्द्र शर्माको, या भूखी पीढ़ी या विद्रोही पीढ़ीवालोंकी कविताओंमें सालों पहले व्यक्त हो गया था। चुनावकी घटनाओंने सिद्ध कर दिया कि जिसे हम 'अकविता' और 'विद्रोही' आदि शब्दोंसे चिढ़कर उच्छृंखलता मात्र कहते थे, घोर व्यक्तिवाद कहते थे, वह कहीं-न-कहीं प्रामाणिक ज़रूर है। शत-प्रतिशत नहीं तो आंशिक रूपमें ही। पर यह क्रान्ति नहीं। यह दिशाहीन क्रोध या खीझ है। साहित्यकारको इसका पता बहुत पहले ही लग गया था। साहित्यका रथ सदैव राजनीतिके पीछे नहीं चलता है। महाप्रलय आनेके कुछ पूर्व यह आगे-आगे चलने लगता है।....पर यह महाप्रलय नहीं। बे-तरतीबवार ज्वार-भाटेकी सूचना है। इसे कोई एक दिशा और मूल्य-पद्धति नहीं मिली है। इस बातको स्थूल रूपसे जनता-द्वारा व्यक्त मत-परिणामके माध्यमसे समझा जा सकता है। प्रसिद्ध पत्रकार श्री दुर्गादाससे मैं भी सहमत हूँ कि कांग्रेसको जो वोट मिले हैं वे 'गूँगे' वोट हैं उसके पीछे दबाव, शक्ति, अपरिवर्तनवादिता, राजनीतिक वीर-पूजा, अन्ध-श्रद्धा आदि है। परन्तु विरोधी दलके पाये वोटोंसे हिन्दुस्तानके मनकी तसवीर आँकी जा सकती है। समाज-मनोविज्ञानका

विद्यार्थी इन्हींपर ज़्यादा बल देगा क्योंकि ये वोट 'गूंगे' नहीं, क्रोध, खीझ, ललकार और प्रतिशोधके परिणाम हैं, अतः ये ज़्यादा प्रामाणिक मनोविज्ञानको प्रत्यक्ष करते हैं :

कांग्रेस	३७.८६	प्रतिशत
स्वतन्त्र	६.४४	,,
जनसंघ	८.२६	,,
द्रविड मुनेत्र कषगम	४.१८	,,
संयुक्त सोशलिस्ट	४.८३	,,
मार्क्सिस्ट कम्यूनिस्ट	४.३४	,,
दक्षिण पन्थी कम्यूनिस्ट	३·९९	,,
निर्दलीय	१४.४०	,,

इससे निष्कर्ष यही निकला है कि क्षोभ और क्रोध है, पर उसे कोई दिशा नहीं। पूरब जायें कि पश्चिम, वाम जायें कि दक्षिण, कोई निर्णय नहीं हो पा रहा है। दक्षिण पन्थ उतना ही मजबूत लगता है जितना वाम पन्थ और निर्दलीयोंकी विशाल संख्या इस बातको और सही बताती है कि हिन्दुस्तानका मन 'संशयात्मा' 'टु बी ऑर नाट टु बी' की अवस्थामें है। दिशाबोधके बारेमें उसे संशय है।

यह सब राजनीति-चर्चाके लिए नहीं लिखा जा रहा है। इससे पता चलता है कि न केवल नये साहित्यकारमें ही मूल्यहीनता या सुगठित मूल्य चिन्तनका अभाव है बल्कि यह देशगत पीड़ा है। इसके लिए उसका अजनबीपन (अकेलापन) ही जिम्मेवार नहीं। देशगत वातावरण ऐसा है कि मूल्यहीनता ही जीवनकी धुरी बन गयी है। देश और साहित्यकार दोनोंके सन्दर्भमें यह कहा जा सकता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। पर 'ऐसा है' इसको कैसे अस्वीकार किया जाये? आत्माका शहरीकरण, परिवेशमें पल रही आत्मिक यन्त्रणाको पहचाननेकी असमर्थता, मूल्यहीनताके कारण बढ़ता भ्रष्टाचार और बढ़ती अनुशासनहीनता सबके सम्मिलित प्रभावके कारण वह उस भाषाको बोलनेके लिए बाध्य है जो विशाल जनसमूहको अजनबी, अनचीह्नी और अजीब लगती है। हाँ, यह सही है कि इनमें एक 'जोगी' है तो हज़ार 'जोगड़े' हैं। पर यह नयी बात नहीं। ऐसा सदैव होता आया है।

अब आधुनिक भाव-बोधके एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यपर विचार करें। यह बड़ा ही महत्त्वपूर्णतथ्य है और आधुनिक भावबोधके सन्दर्भकी रचनामें इसका बड़ा ही योगदान है। यह है : भारतीय चिन्तामें 'शब्द' बनाम 'अस्तित्व' की खींचतान तथा 'अस्तित्व'का तिरस्कार। हम समस्याओंको अस्तित्वगत रूपमें नहीं शब्दगत रूपमें ग्रहण करते हैं। अर्थात् वे अपने सही अस्तित्वमें क्या हैं, इसे प्रत्यक्ष और व्यावहारिक शैलीमें ढूँढ़नेकी चिन्ता न करके 'शब्दों', 'नारों' और 'आँकड़ों' तथा थ्योरियोंमें ढूँढ़ते हैं, फलतः अस्तित्वसे हमारा ताल्लुक़ छूट जाता है। मानवीय स्थितिसे हमारा और हमारे चिन्तनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। हम शब्दोंको लेकर मोहमूढ़ हो गये हैं और हमारी जातीय अन्ध-श्रद्धा, मोह-मूढ़ता और मोहान्धताको और ख़तरनाक बना रही है। शब्दगत मोहमूढ़ताकी क़ैदमें स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू भी थे। 'समाजवाद', 'सहकारी-

खेती', 'गणतान्त्रिकता', 'धर्मनिरपेक्षता' आदि जिस विकृत अवस्था पर आज पहुँच गये हैं उसके पीछे नेता और 'स्वामिभक्तों'का (जिनमें-से बहुतोंका '४७ से पूर्व पता नहीं था) मोहमूढ़ शब्दगत चिन्तन है और 'अस्तित्व'की, असली मानवीय स्थितिकी, उनके द्वारा की गयी उपेक्षा है। सारा देश हेमलेटकी तरह अपने अन्दर घुसे हुए शब्द-प्रेतोंसे युद्ध कर रहा है—ईमानदार भी बेईमान भी। पीठ पीछे काम, क्रोध, मोह, भ्रष्टाचार, सम्प्रदायवाद, जातिवाद ठट्ठा मार कर हँस रहे हैं। महात्मा गान्धी और स्वर्गीय शास्त्रीका चिन्तन अस्तित्वगत था, शब्दगत नहीं। डॉ० लोहियाका चिन्तन भी अस्तित्वगत (आंशिक रूपमें ही) है—कमसे कम समाजवादपर 'सगुण' और अस्तित्व'गत रूपमें वे सोचते हैं। परन्तु शेष लोगोंको मोहमूढ़ चिन्तनसे फ़ुरसत नहीं। चूँकि यह देश १००० वर्षों तक गुलाम रहा है अतः इसका मन राजनीतिका क्रीतदास हो गया है! जो 'प्रभु' या 'महानेता' सोचता है उसीका अन्धानुकरण सभी करते हैं। वह 'महानेता' जवाहरलाल हों या डाँगे-नम्बूदरीपाद, इस शैलीमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

जब-जब मैं एलियटका 'हॉलो मैन' पढ़ता हूँ (और अकसर पढ़ता हूँ भारतीय सन्दर्भको दृष्टिगत रखते हुए) तो मुझे अपने हिन्दुस्तानकी बुद्धिमें फैलते हुए उपर्युक्त मर्ज़ तथा उसके कारण-कार्यका निष्कर्ष इसकी पंक्तियोंमें अकसर झलक जाता है। युरॅपमें 'शब्द'-भक्तिका मोह इतना प्रबल हुआ कि वहाँ पर भी 'शब्द' और मानवीय स्थिति (यानी अस्तित्व) का जैविक सम्बन्ध छूट गया। जब हम शब्द बोलते हैं : 'गाय', तो इस गायको अस्तित्व-बोधक आवाज़के रूपमें ग्रहण किया जाता है। यहाँ 'शब्द' और 'अस्तित्व' में जैविक और प्रगाढ़ सम्बन्ध है। पर यह अस्तित्वबोधकता 'जनता', 'समाजवादी', 'सर्वहारा', 'धर्म-निरपेक्ष', 'प्रगतिशील' आदि शब्दोंके पीछे नहीं रही। श्री 'क' बम्बईके होटलमें १७०) प्रतिदिनका बिल चुकाकर भी वामपन्थी विचारधाराके सरगनाके रूपमें चुनाव लड़ते हैं और जनता उन्हें ऐसा मान भी लेती है। अर्थात् 'शब्द' और उसकी 'अस्तित्वगत स्थिति' (पुरानी परिभाषामें 'अर्थ') से कोई ताल्लुक़ नहीं रहा। एलियटने इसे ही कहा है कि—और युरॅपके सन्दर्भमें इसे कहा है पर यह भारत-पर भी बावन तोले पाव रत्ती सटीक है—शब्द (विचार-आयडिया) और अस्तित्व (यथार्थ-रियलिटी) के बीच एक खाई पैदा हो गयी है।

विचार और यथार्थ के बीच में
गति और कर्म के बीच में
पड़ती है एक (शाप की) छाया!
(ईश्वर, तेरा ही राज्य है!)
संकल्प और रचना के बीच में
भाव और अनुभाव के बीच में
गिरती है एक (शाप की) छाया!
(ओह, जीवन बड़ा लम्बा है!)

भारतके अन्दर विकसित हो रहे आधुनिकता-बोधके सन्दर्भमें और भी बहुत-सी बातें हैं जिन्हें नज़दीकसे देखनेका अवसर नहीं

मिला है और न इस दिशामें कोई प्रयास ही हुआ है। उदाहरणके लिए युरॅपमें, विशेषतः ब्रिटेन-अमेरिकामें, औद्योगिक क्रान्ति जिस शैलीमें आयी और मज़दूर-वर्गके ऊपर जो उसका मानसिक और नैतिक प्रभाव पड़ा, वही हू-ब-हू भारतमें भी पड़ेगा—ऐसा मानना ग़लतफ़हमी होगी। पार्टी-लाइनका अन्धानुकरण करना हो तो और बात है, पर यह सचाई नहीं हो सकती। क्योंकि, इस देशका वातावरण, ऐतिहासिक विकास और परम्परागत संस्कार-प्रवाह युरॅपसे बिलकुल भिन्न रहा है। अतः इन आधारभूत भेदोंके कारण औद्योगिक क्रान्तिके द्वारा उत्पन्न संस्कारों और मानसिक संघातोंके अन्दर भी भेद होगा। वह भेद कैसा है? उसका स्वरूप क्या है? हमारे देशके अन्दर रूरकेला और भिलाईमें विकसित हो रही सामूहिक संस्कृतिकी आत्मा क्या है? उसके भीतर कौन ध्वंस-कीट बैठा है और उसकी जीवनी शक्ति क्या है? इन सब बातोंको नज़दीकसे अभी तक काव्य-उपन्यास-नाटकके माध्यमसे देखा नहीं गया है। कमसे कम हिन्दीमें।

अब आखिरी बातकी चर्चा करके हम यह प्रसंग समाप्त करना चाहते हैं। ये नये साहित्यकार हैं कौन? इनका कुल-शील क्या है? इनमें सौमें निन्यानबे अभिजात वर्गकी सन्तान नहीं। ये ग़रीब घरोंमें या मध्यवर्गमें पैदा हुए हैं और इनमें ७० फ़ीसदी अभावग्रस्त मध्यवर्ग और ग़रीब घरोंकी सन्तानें हैं। परिस्थितियाँ और परिवेश तो उन्हें ग़रीबी और अभावका मिला, परन्तु स्कूल और कॉलेजने जिस 'मन'को, जिस संस्कार-प्रवाहको उनके अन्दर रचना की वह अभिजात पैटर्नके नज़दीक था। वे गाँवोंकी उपज हैं, पर शहरी संस्कारोंको विकसित करके जीवनमें प्रवेश करते हैं। शिक्षाकालमें जातिवादके, सम्प्रदायवादके ख़िलाफ़ उन्हें बहुत कुछ पढ़ाया गया। उन्हें देश-भक्ति और समतापर लिखी गयीं किताबें ही कोर्समें पढ़नेको मिलीं पर वे जीवनमें प्रवेश करके देखते हैं कि जाति (कभी क्षेत्र-आश्रित जैसे बंगाली, काश्मीरी, तमिल, तो कभी रक्त-आश्रित जैसे ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ, चमार वग़ैरह) तथा राजनीति ही सारी नैतिकता और सारे आदर्शोंकी कसौटी है। समाज और देशका शासन उन्हीं बदनाम मूल्योंपर आधारित है जिनके ख़िलाफ़ उसका आदर्शवादी बी० ए०-कोर्स जिहाद करता है। वह हिन्दी माध्यमसे पढ़ता है, तो साक्षात्कार अँगरेज़ीमें देना पड़ता है। अन्तमें वह इस निष्कर्षपर पहुँचता है कि मैंने जो कुछ पढ़ा है उसको न तो नैतिक मान्यता प्राप्त है और न उसका कोई जीविकागत मूल्य ही है—इससे तो अच्छा घास काटना ही होता। वह काश्मीरी नहीं, तमिल नहीं, बंगाली नहीं, ब्राह्मण या कायस्थ नहीं तो उसका क्या दोष? क्यों इस ईश्वरकी ग़लतीके लिए समाज और शासन उसे दण्डित कर रहा है! ये सब बातें उसके मनको क्षुब्ध करती हैं। यदि संयोगवश मास्टरी या क्लर्की मिल भी गयी, तो उसका अभिजात मन शान्त नहीं रह पाता क्यों कि वह देखता है कि नवाब टप्पो खाँकी रखैलके कबूतरबाज,

'कांग्रेसी' श्रेणीमें पास, आवारा बेटेको 'अल्प-मत'-परितोषके नामपर किसी विभागका हेड बनाया गया है तो रायबहादुर खरदूषण सिंहका तृतीय श्रेणी प्राप्त एम० एस-सी० (कृषि)-बेटा कृषि-विभागका उप महासंचालक है। उसका जन्म ग़रीबीमें भले ही हुआ पर शिक्षाने उसके मनको अभिजात बना दिया है। जब 'अभिजात' क्रुद्ध और विद्रोही होता है तो 'बॉयरन' बन जाता है। क्रोध, क्रोध, केवल क्रोध—इस क्रोधके पीछे घनघोर निराशा है—अतः समग्र मानवीय स्थितिसे घृणा! इस कमीनापन, इस धोखेबाज़ीको उसका अभिजात मन क्षमा नहीं कर पाता है। पर कोई तरीक़ा भी नहीं है, प्रतिकारका। 'शब्द' और 'अस्तित्व'का सम्बन्ध चुक जानेसे 'क्रान्ति', 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' भी धोखा बन चुके हैं। अतः हाथ रहा एकमात्र क्रोध और सर्वव्यर्थतावाद (निहिलिज्म)की मर्मान्तिक पीड़ा। इस पीड़ा और क्रोधको उसका अभिजात मन भोगता है। अपनी अभिजात संवेदनाओं और अभिजात मुहावरेमें वह बोलता है। क्यों कि कमीने परिवेशमें, कमीने वातावरणमें वह अजनबी है। अकेले-अकेले प्रमथ्यु बनकर सभी भोग रहे हैं। ये सारे प्रमथ्यु, ये सारे 'ऐंग्री यंग मेन' (क्रुद्ध तरुण) अलग-अलग, विलग-विलग, खड़े हैं। इन्हें एकमें बाँधनेका कोई सूत्र नहीं मिल पा रहा है। एक सूत्रमें बाँधनेवाले किसी दृष्टिकोण, किसी 'वेल्तान शाउंग' (विश्वदृष्टि)का अभाव नये साहित्यकारकी पीड़ा है और उस भारतीय जनताकी पीड़ा है जिसमें वह जनमा है। इस तथ्यका प्रमाण है दिशाहीन चुनाव-फल।

मोहभंग और क्रोध सन् '३०के बादकी पीढ़ीका भी वैसे हुआ था जैसे '५०के बादकी पीढ़ीको हो रहा है। परन्तु दोनोंमें एक जबरदस्त अन्तर है। वह अन्तर ऐतिहासिक स्थितिके कारण है। सन् '३०की मोह-मुक्ति सम्पूर्ण मोह-मुक्ति नहीं थी। साहित्यकार व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्धोंकी नैतिकताके सम्बन्धमें मोह-मुक्त हुआ था—परन्तु वह 'देश-भक्ति' और 'जन-क्रान्ति'के मूल्योंसे घोर रूपसे जुड़ा था। ऊपरकी परिस्थितियां ब्रिटिशकालमें उतनी खलती नहीं थीं, क्योंकि एक विश्वास था कि ब्रिटिश-शासन हटनेपर समता-राज्य और न्याय-राज्यकी स्थापना अपने आप हो जायेगी। पर ब्रिटिश-शासन हटा और 'महानेता'की मोह-मूढ़ताके कारण वैसा नहीं हो पाया। पुराने ब्राह्मण तो थे ही, नये ब्राह्मणोंकी सृष्टि हो गयी। अतः सन् '५०का बुद्धिजीवीका सम्पूर्णतः मोहभंग हो गया। वह 'देश-भक्ति' और 'जन-क्रान्ति'को भी एक अवसरवादियोंकी साज़िश मानने लगा। हाल ही में एक सर्वोदयवादीने (जो सचमुचका सर्वोदयवादी है, महज़ खादी-भण्डारका 'पण्डा' नहीं) अपना वोट देनेसे इनकार कर दिया—"हम इस अवसरवादिताकी साज़िशमें शरीक नहीं होते!" ('दिनमान'के अनुसार) आचार्य कृपालानीने एक बार कहा था कि सरकारी पार्टीके कुकृत्योंके कारण न केवल उस पार्टीपर-से बल्कि प्रत्येक पार्टी, सम्पूर्ण दलगत राजनीतिपर-

से जो मणतान्त्रिक प्रणालीका मूलाधार है, जनताकी आस्था उठ जानेका खतरा है। वह 'अनास्था', वह खतरा, आज सही साबित हुआ है। हम मत तो देते हैं, पर दिल कहता है—"आह, सब कमीने हैं····क्या फ़र्क़ पड़ता है!" अतः सन् '३०के क्रुद्ध तरुणोंमें अनास्था थी तो कुछ प्रश्नोंपर आस्था भी थी—कुछ प्रश्नोंपर ललकारका स्वर था। क्योंकि तब मेघनादका रथ सामने था। पर आज मेघनाद अदृश्य होकर युद्ध कर रहा है—लगता है, सम्पूर्ण कटक ही मेघनाद है, अपना और दुश्मनका, दोनों कटक। तब 'ऐंग्री यंग-मैन' (क्रुद्ध तरुण) किसपर बाण छोड़े?

हमने अबतक भारतीय सन्दर्भोंकी ही चर्चा की है। परन्तु इनके अलावे अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भोंका भी इस प्रश्नपर कम महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं। उन सन्दर्भोंसे न प्रभावित होना ही अप्राकृतिक और 'एबनार्मल' होगा। गत महायुद्धके बाद अन्तर्राष्ट्रीय 'मन' की दिशा घोर आतंक और घोर निराशावादकी ओर मुड़ी है। या यह कहना ठीक होगा कि यह नया 'मन' कुछ इतना बूढ़ा, पकहर और सत्य-सम्पृक्त है कि रूमानी साहित्य-लोचनकी शब्दावली (आशावाद, निराशावाद, पलायनवाद आदि) इसके लिए अशक्त और बचकानी लगती हैं। महायुद्धके पूर्व युरोपकी आत्मिक संक्रान्ति आदर्शवादी मूल्योंके प्रति अनास्था और विशेषतः व्यक्तिगत जीवनमे सेक्सके प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण, नास्तिक दृष्टिकोण आदिके रूपमे व्यक्त हुई थी। इनका प्रभाव भारतकी सन् '३० की और सन् '५० की पीढ़ीपर समान रूपसे पड़ा है। परन्तु भावी अणुयुद्धका आतंक तथा मनुष्यके भविष्यके प्रति उसकी समूची बौद्धिक विरासतके प्रति मोहभंग—इन दोकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति भारतीय साहित्यमें नहीं हुई ज्ञात होती है। इनका कारण यह है कि यह विश्वगत समस्या होते हुए भी हमारी उतनी नज़दीकी समस्या नहीं है।

असली नारा होना चाहिए—'भागो नहीं—इसे ही बदलो!' नया साहित्यकार भागता नहीं, पर इसे बदलता भी नहीं। इस परिवेशके बदलनेके लिए एक नया जीवन-दर्शन चाहिए जो सगुण और 'अस्तित्वपरक बोध'से जनमा हो। पुराने जीवन-दर्शन यानी सरकारी और ग़ैर सरकारी मार्का वाले दो गान्धीवाद, तथा पाँच क़िस्मका 'समाजवाद' (एक कांग्रेसी क़िस्मका तथा दो कम्यूनिस्ट और दो सोशलिस्ट) तथा कई क़िस्मका 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' आदि आदि—सभी खोखले और 'शब्द जाल' साबित हुए हैं। अतः हमारी कराह और छटपटाहट है—नये जीवन-दर्शन पानेकी कराह और छटपटाहट। यदि यह मिले तो तरुणोंका क्रोध सार्थक हो, रोष सार्थक हो और 'ईंट'को जगहपर सचमुच धाता-विष्णुका सामूहिक स्तरपर अवतरण हो सकता है। हो सकता है कि यह अवतरण विकराल हो पर कोई परवाह नहीं! यह नाटकीय हवा तो शुद्ध होगी! ■ ■

नालबारी कॉलेज,
नालबारी (असम)

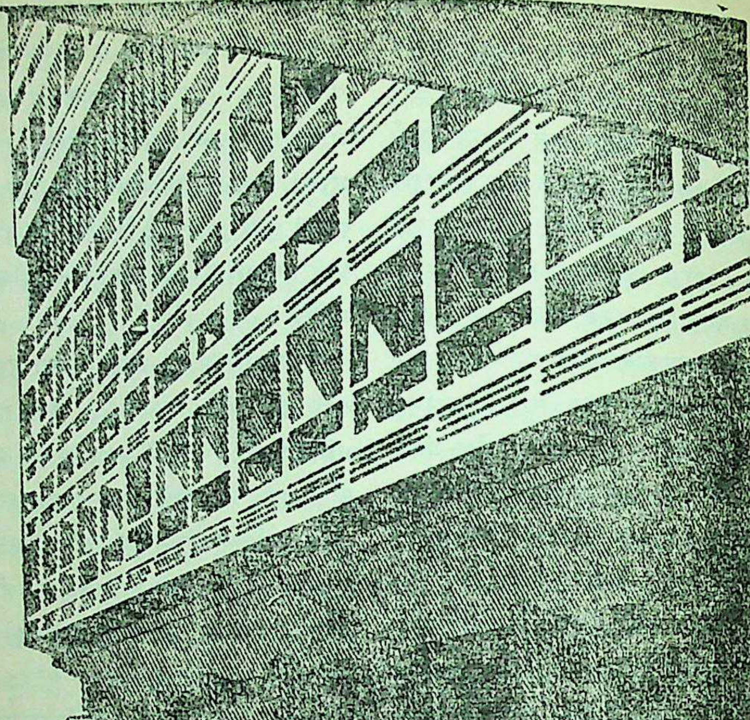

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

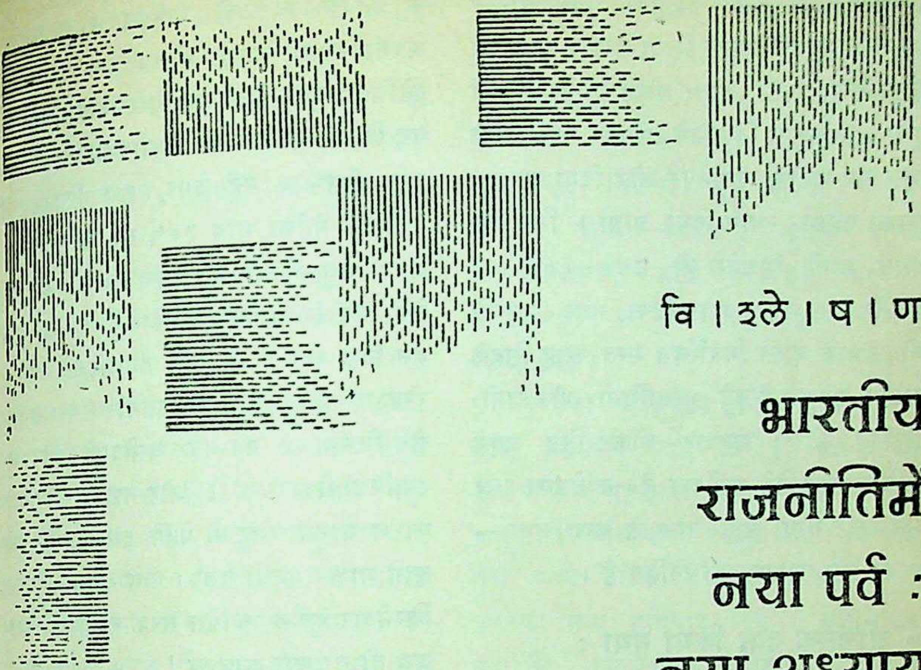

विश्लेषण

भारतीय राजनीतिमें नया पर्व : नया अध्याय

●

चुनावकी हलचलें समाप्त हो गयीं। कुछ चौंकानेवाले परिणाम भी सामने आ गये। कुछके लिए राजनीति पहली बार 'मैजिक कारपेट' हो गयी और कुछके लिए पहली बार 'स्वार्ड ऑव डेमॅस्कस' ···यह विश्लेषण लेखककी दृष्टिसे 'आजकी तसवीर'को स्पष्ट करता है।

●

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

चौथे आम चुनावकी फलश्रुति सबने अपने-अपने दृष्टिकोण और पक्ष-विपक्षकी दृष्टिसे बतायी है। भूतपूर्व पेट्रोल व रसायन-मन्त्री प्रो० हुमायूँ कबीर (बँगला-कांग्रेस) इस चुनावके परिणामको मतदाताओं-द्वारा दिया गया सही निर्णय मानते हैं।

केरल, मद्रास और प० बंगालके मुख्य मन्त्रियोंने प्रान्तिक स्वायत्त शासनकी माँग की है। श्री अन्नादुराई जहाँ कहते हैं, तमिलनाडकी अन्नकी आवश्यकता पूरी होनेके बाद ही मद्रास केरलको चावल देनेको सोच सकता है, इसके विपरीत वहीं प० बंगालके वित्तमन्त्री श्री ज्योति वसु कहते हैं कि भारतको एक राष्ट्र मानकर, एक यूनिट मानकर अन्न-समस्याको हल करनेका प्रयत्न ही नहीं किया गया। ईशान बम्बईमें लोकसभाके चुनावमें दो बार पराजित श्रीकृष्णमेननने भी यही बात चुनाव-भाषणोंमें बराबर कही है। पचास कोटि भारतीय जनताको एक यूनिट (एकक) मानकर

अन्न-समस्याको देखा ही नहीं गया और न हल करनेका ही प्रयत्न किया गया। यदि इस दृष्टिसे देखा जाता तो ५ एकड़ या इससे कम भूमि जोतनेवाले किसानके खेतको पानी देनेके लिए नल-कूपोंके बनानेपर ज़ोर दिया जाता। इसको पहला स्थान दिया जाता। सिंचाईके वास्ते पानी मिलनेसे ही उपज १०% बढ़ सकती है। परन्तु ध्यान दिया गया संगरूरसे लोकसभाके वास्ते निर्वाचित सन्त फतह सिंहके ड्राइवर सदृश बड़े-बड़े भूस्वामियों और ज़मींदारोंकी ओर। सरदार कोकड़ सिंह अपने ज़िलेके सबसे बड़े ज़मींदार हैं। कांग्रेसका राज क्यों पलट गया, आठ राज्योंसे चला गया—इसका मूल कारण यहाँ निहित है।

● आजतक क्या किया गया :

पिछले अठारह मासोंमें चला—'बन्द', घेराव, छात्रोंका भीषण असन्तोष, हड़तालें, शिक्षकोंकी हड़तालें, अराजपत्रित राजकर्मचारियोंकी हड़तालें और ५ जनवरीको पटनामें छात्रोंके जुलूसपर चली गोली, जिसमें १० व्यक्ति गोलीसे मारे गये। इससे पहले समस्तीपुर और मुज़फ़्फ़रपुरमें छात्रोंपर गोली चली थी। इन सबका परिणाम कांग्रेसकी पराजयमें परिणत हुआ।

रुपयेका सरकारने अवमूल्यन किया। यह रुपयेका अवमूल्यन न था, सरकारका अवमूल्यन था। सरकारकी प्रतिष्ठा घट गयी, क्षीण हो गयी। इससे मँहगाई बढ़ी, सरकार बढ़ती मँहगाईको रोकनेमें असमर्थ रही। केन्द्रीय सरकार दुर्बल थी। नयी दिल्लीके आदेश-निर्देशोंकी प्रान्तिक राजधानियोंमें अवमानना की जाती थी। एक उदाहरण लीजिए: चुनावके दिनोंमें गिरिउवाहा (फ़िरोज़पुर ज़िला) के अकाली उम्मीदवारोंने ३५ रु० प्रति क्विण्टल गेहूँ बेचा, जब फ़िरोज़पुरके बाज़ारमें गेहूँका भाव १०५ रु० प्रति क्विण्टल था। मथुरामें दो भाइयोंने २० रु० मन गेहूँ बेचा जब कि गाज़ियाबादमें गेहूँ ६०-६५ रु० मन बिक रहा था। यदि जमाखोरोंने अनाज रोक न रखा होता तो इतना सस्ता अनाज कैसे बिकता ? बड़े-बड़े ज़मींदारों और भूस्वामियोंकी जमाखोरी और नफ़ाखोरी वृत्तिके कारण भारत राष्ट्रको गेहूँके वास्ते अमेरिकाके आगे नाक रगड़नी पड़ी। इस अपमानके लिए ज़िम्मेदार दुर्बल काँग्रेस सरकारकी यदि पराजय हो तो क्या आश्चर्य !

महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें कांग्रेसने स्वराज्यकी लड़ाई १९२०से १५ अगस्त १९४७ तक लड़ी थी। इस २७ सालोंका संचित पुण्यफल बीस सालोंमें समाप्त हो गया, अतः अजेय और दुर्जय मानी जानेवाली कांग्रेस पराजित हुई। श्री जयप्रकाश नारायणने नारा लगाया था, कनॉट प्लेससे वह जलूस निकालकर ले गये थे—"जो सरकार रोटी-रोज़ी दे न सके, वह सरकार निकम्मी है।" १९५२में काँग्रेसको अपूर्व शानदार विजय मिली। आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेन्द्रदेव सदृश महाभट हार गये। फलतः काँग्रेस भी सो गयी। लोग कहते हैं, उसने रोटी-रोज़ीकी समस्याको तो हल करनेके बदले पीनेके पानीकी भी समस्या हल नहीं की। भारतीय जनताका परम

सन्तोष ही काँग्रेसका बल था। वह सन्तोष असन्तोषमें बदल गया। बिहार काँग्रेस कमेटीके अध्यक्षने माना है कि गाँवोंपर-से भी काँग्रेसका प्रभाव उठ गया, ग्रामीण स्त्रियोंने मँहगाईसे परेशान होकर काँग्रेसको वोट नहीं दिया।

अमृतसरके एक प्रोफ़ेसर और दूकानदारने कहा कि वे लोग पहले तीन चुनावोंमें सदा काँग्रेसको वोट देते रहे थे, किन्तु इस बार नहीं दिया क्योंकि इस राज्यमें छोटेसे छोटा काम, घरमें पानीका नल लगानेके सदृश काम भी, बिना सिफ़ारिश या रिशवतके नहीं होता। काँग्रेसके कोषाध्यक्ष बाँकुड़ासे और बंगालके मुख्यमन्त्री इस ज़िलेके आरामबाग़ निर्वाचन-क्षेत्रसे पराजित हुए—क्यों? श्री अतुल घोष अपने निर्वाचन-क्षेत्रमें एक बार भी नहीं गये, उनको अपनी विजयका पूर्ण विश्वास था। ज़िला-काँग्रेस-कमेटीका एक भाग अतुल बाबूके विरुद्ध काम कर रहा था। बँगला-काँग्रेस तो खुल्लम-खुल्ला ही उनके विरोधमें प्रचार कर रहा था। बार-बार चेताये जानेपर भी इधर ध्यान नहीं दिया गया। बाँकुड़ा ज़िला-काँग्रेस-कमेटीने अतुल बाबूको और काँग्रेस पार्लमेण्ट्री बोर्डको सलाह दी थी कि कोई और निर्वाचन-क्षेत्र अतुल बाबू अपने वास्ते चुन लें। परन्तु किसीने इस ओर ध्यान नहीं दिया। यही क्यों, २० सितम्बर १९६६ को बाँकुड़ा शहरमें गोली चली। इससे उत्पन्न जन-असन्तोषको शान्त करनेका, ज़ख्मपर मरहम-पट्टी करनेका कोई प्रयास नहीं किया गया।

रुपयेका अवमूल्यन होनेके बाद मँहगाई बढ़ी, असन्तोष बढ़ा, विरोधी दलोंने इस आगको और भड़काया, पुलिस और मजिस्ट्रेट क़ानून और व्यवस्थाकी रक्षाके लिए आगे आये और इसने विरोधी दलोंको काँग्रेसपर प्रहार करनेका नया हथियार दिया। काँग्रेस इन प्रहारोंसे क्षत-विक्षत होकर धराशायी हो गयी।

लक्ष्मणकी नज़रमें :
'नया अध्याय :नयी गति'

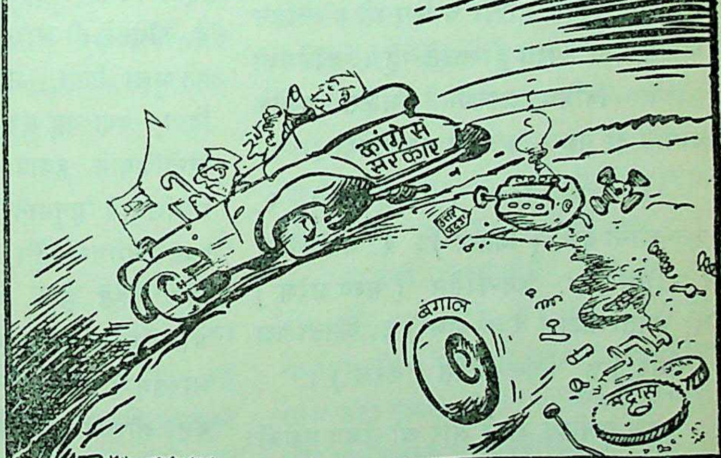

● जनताके मनमें उठनेवाले प्रश्न :

पर यह सहसा नहीं हुआ। काँग्रेस-शासन और ब्रिटिश शासनके मध्य क्या कोई अन्तर था ? गोरेका स्थान कालेने ले लिया था। इस अन्तरको यदि भुला दिया जाये, तो सोचिए, क्या सामान्य जनको स्वाधीनताकी लहरका स्पर्श हुआ ? उसने कभी स्वराज्य-सूर्यका प्रकाश देखा ? सम्पूर्ण प्रशासनमें क्या कहीं उसका कोई स्थान था। उसकी भाषाकी कोई पूछ थी ? दुनियाका कोई और भी देश है जहाँ सरकारी नौकरी पानेके लिए विदेशी भाषाका ज्ञान आवश्यक माना जाये ?

एक और भी कारण हुआ। समाजवादी दलको काँग्रेससे निकालने और आचार्य कृपलानीके काँग्रेस त्यागनेसे काँग्रेसकी शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। फलतः काँग्रेसने काँग्रेस छोड़ जानेवालोंकी परवाह नहीं की। दिसम्बरमें जब 'अ० भा० जन-काँग्रेस' की स्थापना हुई, तब भी काँग्रेस नेता नहीं चेते। यह उनके लिए चेतावनी होनी चाहिए थी। लेकिन काँग्रेस नेता उपेक्षा ही करते रहे। काँग्रेसको छोड़कर विभिन्न प्रान्तोंमें संघटित दलोंके नामोंसे ही यह सत्य प्रकट हो जायेगा :

१. बंगला-काँग्रेस (प० बंगाल) २. जन-क्रान्ति-दल (बिहार) ३. जन-काँग्रेस (उड़ीसा) ४. जन-काँग्रेस (मध्य प्रदेश) ५. जनता-पार्टी (राजस्थान) ६. जनता-पक्ष (मैसूर) ७. केरल-काँग्रेस (केरल)।

इस सूचीको देखने और श्री अजय मुकर्जी और महामाया बाबूके मन्त्रिमण्डल बनाने और श्री प्रधानके उपमुख्यमन्त्री बननेसे ही इन दलोंका प्रभाव स्पष्ट है। मध्यप्रदेशमें निःसन्देह जन-काँग्रेसको कोई नेत्रदीपक सफलता नहीं मिली।

● पराजयके कारण :

महात्मा गान्धीने काँग्रेस-जनोंको चेताया था, कि यदि काँग्रेस जन-सेवा और जन-जीवनका मार्ग छोड़ देगी, तो मैं जीवित रहूँ या न रहूँ, देश पुनः तीसरी शक्तिके हाथ चला जायेगा। काँग्रेस-जनोंने इसपर ध्यान ही नहीं दिया। काँग्रेसकी पराजयके बाद बने मन्त्री ५०० रु० मासिक वेतन ले रहे हैं, पर काँग्रेस-मन्त्रियोंने कराची-काँग्रेसके (१९३१) प्रस्तावोंको ताक़पर रख दिया।

काँग्रेस-अध्यक्ष श्री कामराज नादरकी पराजय वस्तुतः राजाजीकी विजय है। हिन्दीकी पराजय इसको मानना भारी भूल होगी। क्योंकि श्री कामराज और मद्रासने हिन्दीको ग्रहण ही नहीं किया। सच तो यह है, काँग्रेसने ही भारत-विभाजनके बाद भारतको भुला दिया, भारतीयताको विस्मृत कर दिया, क्या यह एक विचित्र बात नहीं है कि हिन्देशियामें हवाई सेवाका नाम 'गरुड़' है, मलेशियामें 'हनुमान' है और भारतमें 'इण्डियन इण्टर नेशनल' है। थाईलैण्डमें बैंकोंको धनागार कहते हैं। भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति भारतसे बाहर शेष है, या भारतमें ? अतः कामराजकी पराजय प्रान्तिकता और अभारतीयताकी पराजय है।

सत्य तो यह है, श्री कामराज काँग्रेसके

अध्यक्ष अवश्य १९६४ से हैं, परन्तु कभी से भारतीय नहीं बने। 'पराकलम' (देखो और प्रतीक्षा करो) से अध्यक्ष-जीवन प्रारम्भ किया और सोवियत रूस और पूर्वी युरँपकी यात्रामें भी तमिल बने रहे।

इस दशामें मद्रासके छात्र यदि अँगरेजी-को जारी रखनेका आग्रह करें और इसको भारत राष्ट्रके लिए कलंक न मानें और अपमानजनक अनुभव न करें, तो क्या छात्र दोषी ठहराये जा सकते हैं? श्री निवासनकी विजय और श्री कामराजकी पराजयने सूचना दी है कि नेहरूका बनाया भारत नष्ट हो गया, वह एक धक्का भी नहीं सह सका।

दो साल पहले राजा जी अपने गांवमें स्वास्थ्य-सुधार कर रहे थे। वहाँ एक उत्तर भारतीय नेता उनसे मिलने गया। स्वास्थ्यका समाचार पूछे जानेपर राजाजीने विनोदमें कहा कि निश्चिन्त रहो, जबतक कांग्रेस छिन्न-भिन्न न हो जायेगी, मैं मरूंगा नहीं। राजाजीका प्रण पूर्ण हुआ। राजाजीको श्री कामराजने १९५४ में मुख्यमन्त्री-पदसे हटनेके लिए बाध्य किया था। कामराज-राजाजीका संघर्ष पुराना है।

• सवाल हिन्दीका :

श्री श्रीनिवासन १५ अगस्त १९४७ को ८ सालका बालक था। उसके सहयोगी छात्र भी बालक थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा, इनका निर्माण 'नेहरूके भारत'में हुआ। यदि वह हिन्दीको नहीं चाहते और विदेशी भाषाको चाहते हैं तो इसके वास्ते कौन दोषी है? क्या यह इस बातका प्रमाण नहीं है कि कांग्रेसने भारतकी उपासना नहीं की और भारतको भुला दिया। अतः कांग्रेसकी पराजय-से यदि कोई दुःखी नहीं तो क्या आश्चर्य।

गृहमन्त्री श्री चवनका यह कथन सर्वथा सच है कि अलोकप्रिय व्यक्ति मुख्य मन्त्री-पदपर क़ायम रखे गये। बिहारके मुख्यमन्त्री श्री कृष्णवल्लभ सहायने दो स्थानोंसे चुनाव लड़ा और दोनों जगह हार गये। पश्चिमी पटनामें १९६२में वह २०००० वोटोंसे जीते थे, और १९६७ में वहींसे २०००० वोटोंसे पराजित हुए और जमानत भी खो बैठे। जनक्रान्ति-दलके संस्थापक और नेता और अब बिहारके मुख्य मन्त्री श्री महामायाप्रसाद सिंहने उन्हें हराया। कांग्रेसकी सम्भावित विजयको राष्ट्रपतिके २५ जनवरी १९६६ के सन्देश-भाषणने छीन लिया और निश्चित पराजयमें बदल दिया। राष्ट्रके नाम प्रसारित इस भाषणमें राष्ट्रपतिने कहा था : 'इस क़िस्मकी भ्रष्ट अकार्यक्षम और निकम्मी सर-कारको जनता अब और न सहेगी।' दिल्लीमें जनसंघने इस सन्देशसे पूरा-पूरा लाभ उठाया। राष्ट्रपतिके इस निर्णयके बाद भी क्या वोटरोंके लिए और कोई दूसरा मार्ग रह गया था; यह दिल्लीकी लोकसभाकी सात सीटोंके चुनावमें जो हुआ वह पृष्ठ ३२ के बॉक्ससे प्रकट है।

भारतकी राजधानीमें कांग्रेसकी क्या गति हुई, यह स्पष्ट है। जनता कांग्रेससे असन्तुष्ट थी। कोई भी सुसंगठित पार्टी उससे लाभ उठा सकती थी। निर्दलीय उम्मीदवारों और रिपब्लिकन उम्मीदवारोंको १४.२८ प्रति-

दिल्ली-लोकसभा

कुल वोटर	१६९१४६५
वोट पड़े	११७०७४३
प्रतिशत मत	६९.८१

पक्षका नाम	चुनाव लड़ा	प्राप्त सीटें	प्राप्त मत	तशतिप्र
१ काँग्रेस	७	१	४३४९३७	३८.७९
२ जनसंघ	७	६	५२३८६०	४६.७२
३ निर्दलीय	२४	—	९६३९३	८.६०
४ संसोपा	२	—	२२९५	०.२०
५ रिपब्लिकन	६	—	६३७०६	५.६८
	४६	७	११२११६१	१००.००
रद्द हुए वोट	—	—	४९५८२	४.२४

शत वोट मिले। यह प्रकट करता है कि जनता किसी भी ग़ैर-काँग्रेसीको चुननेको तैयार थी। आवश्यकता थी कि उसके पास पहुँचा जाये।

● कुछ राजनीतिक कारण :

भावनात्मक दृष्टिसे देखा जाये, तो काँग्रेसको १९५२ के पहले आम चुनावमें ही पराजित होना चाहिए था, क्योंकि :

(१) काँग्रेस-पार्टी देश-विभाजनके लिए और भारतकी सीमा ख़ैबरके दर्रेसे पीछे हटाकर रावी नदी तक पीछे लानेके लिए ज़िम्मेदार है।

(२) काश्मीर और नागा-विद्रोह सदृश समस्याओंको हल करनेमें असमर्थ रही।

(३) चीनके हाथ १६००० वर्ग मील भूमि जाने दी; अक्साई चीनपर चीनका अधिकार होने दिया और सिंक्यिाग और काश्मीरके मध्यकी सीमा यारकन्द दरियासे पीछे हटाकर कोरकोरम तक ले आयी और चीनको बिना माँगे लाखों वर्गमील भारत-भूमि दान कर दी।

(४) सैनिक शक्तिकी उपेक्षा की, सैनिक शक्तिका निर्माण नहीं किया, फलतः चीनसे भारत पराजित हुआ, नेफामें आज भी भारतीय सेना नहीं जा सकती। सैनिक शक्तिकी दुर्बलताके कारण महँगाई बढ़ी।

(५) रुपयेका अवमूल्यन किया और भारतीय कृषिको अमेरिकाके हाथ गिरवी रख दिया।

(६) निर्णायक शक्ति नयी दिल्लीसे हटकर वाशिंगटन चली गयी। अमेरिका फ़र्टीलाइज़रका व्यवहार भारतमें बढ़ाना चाहता है। अतः उसको प्रसन्न करनेके लिए मैक्सिकोका बौना गेहूँ और तैवानका बौना धान बोया जाने लगा है। खादकी आवश्यकता कम्पोस्ट और गोबरसे पूरी करनेकी कोशिश नहीं की गयी और परावलम्बनका मार्ग ग्रहण किया गया।

(७) शिक्षाका माध्यम अंगरेज़ीको क़ायम रखा गया, जिससे इंग्लैण्ड और अमेरिकाकी छपी पुस्तकें इस देशमें ख़ूब बिकें।

(८) भारतका विशाल बाज़ार अमेरिकाके लिए खोल दिया गया—स्रप, फ़र्टीलाइज़र प्लाण्ट, ट्रैक्टर और पाठ्य पुस्तकें इसके कुछ उदाहरण हैं।

(९) स्वाधीन भारतमें भी हिन्दी-भाषी विदेशी बने रहे। एकमात्र हिन्दी जानने मात्रसे वह फ़राश और जमादार या चौकीदारसे अधिकको सरकारी नौकरी नहीं पा सकते।

(१०) देशका नाम भारत नहीं घोषित किया गया और हिन्दीका अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार न करनेपर भी नागरी अंकोंको भारतसे देश-निर्वासित कर दिया गया।

यदि भारतकी जनता शिक्षित होती, या शिक्षित भारतमें भारतके प्रति अभिमान और गर्व होता तो कांग्रेस १९५२ में ही पराजित होती। कांग्रेसका स्थान लेनेवाली पार्टियाँ और दल व पक्ष कांग्रेसकी कार्बन-कापियाँ हैं। अतः १९६७ के चुनावसे बहुत बड़े और क्रान्तिकारी परिवर्तनकी आशा नहीं करनी चाहिए। यही कारण है कि बिहारके नये मन्त्रिमण्डलने—एकता सम्मेलनके इस प्रस्तावको न मानकर कि देश-भरकी सब भाषाएँ एक लिपिमें लिखी जायें, उर्दूको दूसरी भाषाके रूपमें स्वीकार करनेका निर्णय किया है। स्पष्ट है, मनोवृत्ति और दृष्टिकोण अभारतीय है, अन्यथा विदेशी अरबी लिपिका प्रचलन स्वाधीन भारतमें सहन न किया जाता। एलफ़िंस्टन (१८२५) और मेकाले (१९३५) का मनोरथ पूर्ण करनेवाले और अँगरेज़ोंके भारतसे चले जानेके बाद ब्रिटिश-राज्यको बनाये रखनेवाले ही कांग्रेस-विरोधी पार्टियोंमें भी हैं—यह न भूलना चाहिए। स्वाधीन भारत और भारतीय जन-शक्तिका उदय होना अभी शेष है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि १९६७ के चुनावने कोई परिवर्तन नहीं किया। लैटिन अमेरिकाके राजनीतिज्ञ इस बातसे चकित और विस्मित रह गये—जिस रीतिसे ७६ प्रतिशत निरक्षर देशमें जनताने जिस शान्ति, संयम और शालीनताके साथ मतदान किया और मत देनेके प्रति उत्साह प्रदर्शित किया। लैटिन अमेरिकाके राजनीतिज्ञोंके अनुसार भारतके चुनावने सिद्ध कर दिया है कि विकासशील देशोंमें लोकतन्त्र सफल हो सकता है।

● अन्दरके सवाल :

निर्वाचन जिस रीतिसे हुआ, उत्सव मनाते हुए गाँववालोंने जिस प्रकार वोट दिया उसने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय जनताने

लोकतन्त्री जीवनको ग्रहण कर लिया है और भारतमें लोकतन्त्र अमर है। मतदाताओंकी संख्या इसीका प्रमाण है :

मतदाताओंकी संख्या

१९५२	१७.३	करोड़
१९५७	१९.३	करोड़
१९६२	२१.६	करोड़
१९६७	२५.१	करोड़

भारतमें मतदाताओंकी संख्या २५.१ करोड़ है, यह संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूसकी जनसंख्यासे अधिक है। इसने भारतके सम्मुख एक नयी समस्या उपस्थित कर दी है। १९७२में मतदाताओंकी संख्या लगभग ३० करोड़ होगी। इतनी बड़ी संख्यामें वोटरोंके मतदानकी व्यवस्था करनेमें सम्भावित व्ययकी कल्पना कीजिए और भारतकी ग़रीबीका विचार कीजिए! १९६७के चुनावपर ९ करोड़ रु० व्यय होनेका अनुमान है। अतः प्रश्न है, क्या निर्वाचक-मण्डलोंकी प्रणाली अपनायी जाये? १९६७के चुनावने यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न भारतके सामने रखा है।

कांग्रेसका मज़हब, भाषा, जाति, सम्प्रदाय, बोली आदि विभिन्न नामोंसे जनताको विभक्त कर, विखण्डित करके शासन करनेका तरीक़ा उसका ही काल सिद्ध हुआ। मजलिस-ए-मुशावरातका उदय और मुस्लिम लीगके दो प्रतिनिधियोंका केरल-मन्त्रिमण्डलमें स्थान पाना, इस बातका एक प्रमाण है कि कांग्रेस भारतीय राष्ट्रीयताका विकास करने और दृढ़ करनेमें विफल रही। केरलमें चीनी कम्युनिस्ट पार्टी या वामपक्षी कम्युनिस्टोंका सफल होना क्या प्रमाणित करता है? नम्बुद्रीपाद-मन्त्रिमण्डलका बनना और श्री ज्योति वसुका प० बंगालमें वित्तमन्त्री होना क्या सूचित करता है? क्या माना जाये कि भारतीय जनता चीनी पराजयका प्रतिशोध लेनेका संकल्प त्याग चुकी है? नेफ़ाकी हारका बदला लेनेके विचार तकसे जो सहमत नहीं है और चीनको आक्रान्ता नहीं मानते, उनका चुनावमें सफल होना क्या सूचित करता है? यही कि भारत भूमिके प्रति जनतामें उत्कट प्रेम वर्तमान शासन उत्पन्न नहीं कर सका है।

● अल्पसंख्यकोंकी भीड़ :

कांग्रेस अल्पसंख्यकोंकी कृपापर जीवित थी, जन-सेवाके बलपर नहीं। अल्पसंख्यक कांग्रेसको वोट देनेके लिए मनमानी क़ीमत मांगते हैं। भारतका अल्पसंख्यक वर्ग भारतीय होनेको तैयार नहीं है, भारतीय जनधारामें अपनेको विलीन करनेको तैयार नहीं है। वह भारतीय जनताका एक अखण्डित भाग बनना नहीं चाहता। इसकी इस प्रवृत्तिको बराबर उकसाया गया। महाराष्ट्रमें गृहमन्त्री श्री चवनने बौद्ध हुए हरिजनोंको भी हिन्दू हरिजनोंके समान सुविधाएँ देनेका आमिष देकर रिपब्लिकन पार्टीको कांग्रेसमें मिलाया और इस प्रकार हरिजनोंको बौद्ध-धर्म ग्रहण करनेके लिए प्रोत्साहन दिया। अनुभव बताता है कि भारतमें जिन सम्प्रदायोंने अपने पूर्वजोंका धर्म छोड़ा है, उसने न केवल अपने पूर्वजोंको बल्कि भारतको भी भुला दिया है।

उसको राम-कृष्णकी सन्तान होनेका गर्व नहीं। भारतके गृहमन्त्रीने महाराष्ट्रमें काँग्रेस-को विजयी बनानेके लिए भारतीयताकी बलि चढ़ाकर रिपब्लिकन पार्टीसे समझौता किया। यू० पी०, दिल्लीमें एक वर्गको प्रसन्न करनेके लिए विदेशी लिपि अरबीको जारी रखनेकी घोषणा की गयी। इसपर भी राजनीतिक पर्य-वेक्षकोंका विचार है कि अल्पसंख्यकोंने कांग्रेस-को १९६७में मत नहीं दिया। 'न्यूज़वीक' का कहना है कि श्री नेहरूकी पार्थिव मृत्यु २७ मई १९६४ को हुई थी, किन्तु राजनीतिक मृत्यु फ़रवरी १९६७में हुई। अल्पसंख्यकों-का कांग्रेसपर विश्वास नहीं रहा।

भारतीय जनताका राजनीतिक मानस पृष्ठ ३६ पर दिये गये चुनाव-पटको देखकर पढ़ा जा सकता है। भारतीय जनताकी चिन्तनधाराको व्यक्त करनेमें यह समर्थ है।

कांग्रेसके बाद सर्वाधिक संख्यामें वोट निर्द-लीय उम्मीदवारोंको मिले हैं, यह ध्यान देनेकी बात है। निर्दलीय उम्मीदवारोंको मिले वोटोंके समान कोई भी पार्टी वोट प्राप्त नहीं कर सकी है। ये संघटनविहीन लोग इस बड़ी संख्यामें वोट प्राप्त कर सके, यह इस बातका एक और प्रमाण है कि भारतीय जनता वर्तमान राजनीतिक पक्षोंमें-से किसी-पर भी विश्वास नहीं करती और श्रद्धा नहीं रखती। वह इन सबको भी सत्ता-लोलुप मानती है, जनसेवक नहीं। जनताने कांग्रेसको नापसन्द किया, किन्तु और किसीको भी पसन्द नहीं किया है। भारतीय जनताकी जागृत विवेक-बुद्धिका यह परिचायक है।

दूसरी बात यह प्रकट हुई कि प्रसोपाने नया जीवन प्राप्त किया है। इस पार्टीको हरेकने समाप्त करनेकी कोशिश की, किन्तु समाजवाद एवं राष्ट्रवादको लेकर चलनेवाली पार्टीके दृढ़ विश्वासोंके कारण बनी अन्तर-निहित शक्तिने उसको जीवित रखा और चुनावसे पहलेकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली बना दिया है। सिद्धान्तोंके प्रति निष्ठा और विश्वासका भारतीय जनता आदर करती है। मा० तारासिंहका राजनी-तिक अस्तित्व समाप्त हो गया।

● भारत-विभाजक तत्त्व :

विश्लेषणसे ज्ञात होगा कि भारतीय मतदाता साधारणतः साम्प्रदायिकता और जातिवादका समर्थक नहीं है। रिपब्लिकन पार्टीकी विफलता और जनसंघ एवं संयुक्त सोशलिस्टकी आंशिक सफलता इसका प्रमाण है। एक अन्य बात भी प्रकट है कि केन्द्रीय सरकारने अकालियोंको अनावश्यक महत्त्व दिया है। द्रविड़ मुनेत्र कषगम और मुस्लिम लीगके सभी उम्मीदवार सफल हुए। इन दोनों पक्षोंका शत-प्रतिशत सफल होना इस बातका प्रमाण है कि भारत-विभाजक तत्त्व आज भी प्रबल हैं। भारतीयताकी भावना कावेरी नदी तक नहीं पहुँची है। द्रविड़ मुनेत्र कषगमके उपनेता श्री मनोहरनका लोकसभामें १४ भाषाओंमें भाषण देनेकी मांग करना इस बातका प्रमाण है कि द्रविड़ मुनेत्र कषगम मुस्लिम लीग और कम्युनिष्टोंके समान भारतीय होनेको तैयार नहीं है और इसी

राज्य विधान सभाओंके चुनावका विश्लेषण

पक्ष	चुनाव लड़ा	सीटें जीतीं	वोट मिले	कुल वोटोंका प्रतिशत
काँग्रेस	३३२८	१६९०	५६४६७४८२	४०.१०
जनसंघ	१५६७	२६४	१२३२०७३६	८.७५
स्वतन्त्र	९७४	२५५	९५९६४५१	६.८२
संसोपा	८०१	१७६	७२०६७७३	५.१२
द्रविड़ मुनेत्र कषगम	१७३	१३८	६२१५१४३	४.४१
कम्युनिस्ट पार्टी (मा०)	४९५	१२७	६४७५४१४	४.६०
कम्युनिस्ट (द०)	६१२	१२१	५९५२५६३	४.२३
प्रसोपा	७४[illegible]	१०६	४७[illegible]३९६७	३.३५
बंगला-काँग्रेस	८२	३४	१३२५०१३	०.९४
जन-काँग्रेस	९३	२८	७४९६५९	०.५३
अकाली दल (सन्त)	५३	२४	८७०६६२	०.६२
जन-क्रान्ति-दल	१६६	२६	१४२८९४९	०.७३
रिपब्लिकन पार्टी	३९०	२३	२१९८२६९	१.५६
शेतकरी कामगर पक्ष	५७	१९	९३९९९२	०.६७
मुस्लिम लीग	१८	१७	५४७७३०	०.३८
ऑल पार्टी हिल लीडरकान्फ़्रेंस	१२	९	१०८४४७	०.०८
केरल-काँग्रेस	६१	५	४०५११२	०.३४
महागुजरात जनता-परिषद्	३६	२	२२९३३३	०.३६
अकाली दल (मास्टर)	६२	२	१९३५८९	०.१४
अन्य दल	११९	४३	१७०३५८५	१.२१
निर्दलीय	२१०४	३१०	२१४८३२९९	१५.२४
रद्द हुए वोट	–	–	८३२६४११	–

लोकसभाके चुनावका विश्लेषण

(३ मार्च तकके आधार पर)

कुल मतदाता २४७१७८०१९, वोट पड़े १५६३७८२२८

नाम पक्ष	चुनाव लड़ा	सीटें जीती	प्राप्त मत	कुल मतोंका प्रतिशत
काँग्रेस	५०२	२८२	५९२१३४६	३९.५७
स्वतन्त्र	१७१	४४	१२४८२८५६	८.३४
जनसंघ	२४२	३५	१३३९७०६४	८.९५
द्रविड़ मुनेत्र कष़गम	२५	२५	५५२४५०९	३.६९
संयुक्त सोशलिस्ट	१२३	२३	१२८३१२४२	८.५०
कम्युनिस्ट (द०)	१०१	२२	७१८६५७७	४.८०
कम्युनिस्ट (मा०)	६१	१९	६४०५५२०	४.२८
प्रजा सोशलिस्ट	१०७	१३	४४४६७३८	२.९७
मुस्लिम लीग	३	३	५९४४८३	०.४०
अकाली (सन्त)	८	३	८८७१२	०.६५
फ़ारवर्ड ब्लाक	७	२	५६५५०८	०.३८
रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी	३	२	४६१८५२	०.३१
शेतकरी कामगर पक्ष	१०	२	१०२८७१३	०.६९
रिपब्लिकन पार्टी	७४	१	३७४४८७९	२.५०
अकाली दल (मास्टर)	७	—	१८९२९०	०.१३
अन्य पक्ष	५०	१३	३३०६३१५	२.२१
निर्दलीय	३४२	२५	१७२५२२३१	११.५४
रद्द हुए वोट	—	—	६७५०९४८	—

कारण अंगरेज़ी राज्यको क़ायम रखनेमें कोई लज्जा अनुभव नहीं होती। अँगरेज़ी नहीं रही, तो अन्ना दुराई मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र दे देगा यह धमकी इस बातका प्रमाण है कि राजाजी द्रविड़ मुनेत्र कष़गमके द्वारा भारतमें ब्रिटिश राज, ब्रिटिश क़ानून, ब्रिटिश भाषा-साहित्य और ब्रिटिश नीति जारी रखनेके लिए प्रयत्नशील हैं। १९६७ के चुनावमें भारतीयता और अभारतीयताके मध्य पुनः संग्राम प्रारम्भ हो गया है।

● दो टूक बातें :

राज्यवार चुनाव-परिणामोंपर दृष्टि डालनेसे ज्ञात होगा कि कांग्रेस पराजित हुई,

अपने अभिमान, प्रमाद और जन-सेवा भावनाकी शून्यताके कारण। केरलमें काँग्रेसके मुक़ाबले श्री नम्बुद्रीपादने सात दलोंका संयुक्त मोर्चा बनाया। किन्तु कांग्रेसने सब लोकतन्त्री दलोंका संयुक्त मोर्चा नहीं बनाया। वामपक्षी मोर्चेने मुस्लिम लीगको भी अपने साथ मिला लिया, और १९६५ की ग़लती नहीं दुहरायी यद्यपि सिद्धान्तको ताक़पर रखकर यह एकताका साफ़-सुथरा पैबन्द लगाया गया। कम्युनिस्ट और मुस्लिम लीग दोनों ही भारतके प्रति निष्ठा नहीं रखते, अतः इनमें मेल होना सम्भव हो गया। इधर काँग्रेस केरल-कांग्रसको अपने साथ नहीं मिला सकी। दोनों ही लड़कर नष्ट हो गये और १९६५ में जहाँ कांग्रेस जीती थी, और केरल-काँग्रेस जीती थी, वहाँ भी ये दोनों हार गये। इसका लाभ कम्युनिस्टोंने उठाया। केरल-कांग्रेस और कांग्रेस मिलकर भी १३३ के सदनमें १४ से अधिक सीटें नहीं पा सके। पारस्परिक लड़ाईने दोनोंको कहींका नहीं रखा।

मद्रासमें द्रविड़ मुनेत्र कषगमकी विजयने भारतमें ही नहीं सीलोनमें भी चिन्ता उत्पन्नकर दी है। यह तमिल भाषी लोगोंको एक करनेकी पहले इच्छा प्रकट कर चुकी है, इसी प्रकार सीलोनमें बसे तमिल-नागरिकोंके अधिकारसे वंचित होनेके प्रति भी विशेष भाव रखती है। इसने सीलोनको भयभीत कर दिया है। तमिल विच्छेदक तत्त्व है।

● २८ सालका नेता :

काँग्रेसकी पराजयका कारण श्री निवासनकी विजय और श्री कामराजकी पराजयमें निहित है। काँग्रेस-अध्यक्ष श्री कामराज बीमार होनेपर भी विजयी नहीं हो सके। क्योंकि १९४७में जो वर्ग २० सालकी आयुका था वह अब ४० सालका हो गया था, और इस आयुके वर्गके साथ कांग्रेसका कोई सम्पर्क नहीं रहा। द्रविड़ मुनेत्र कषगम पार्टीके निर्वाचित सदस्य ३०से ४० वर्षकी आयुके मध्यके हैं। तरुण वर्गसे भी कांग्रेसका कोई सम्पर्क नहीं रहा। श्री कामराजको हरानेवाला श्री निवासन हिन्दी विरोधी आन्दोलनका नेता है। यह २८ सालका है।

द्रविड़ मुनेत्र कषगमकी सफलताका एक कारण है—उसकी उग्र प्रान्तिकता जो तमिलसंस्कृतिके पुनरुद्धारमें प्रकट हुई। इस पार्टीने भारतको सर्वथा भुला दिया। श्री अन्नादुराई स्वतः एक सुन्दर एवं प्रभावशाली वक्ता हैं। तमिलमें घण्टों बोल सकते हैं। श्रोता ऊबते ही नहीं। कांग्रेसके पास इसका कोई जवाब नहीं था। श्री कामराज रूस जाकर भी हिन्दीमें नहीं बोले। सदा तमिलमें ही बोले या अँगरेज़ीके माध्यमसे बोले। प्रान्तिकताका ज़हर राष्ट्र-भक्ति ही पी सकती थी। राष्ट्रीयताका काँग्रेसमें सर्वथा अभाव था। शरणागतकी प्रार्थना करनेवाले क्या कभी विजयी हो सकते हैं।

आन्ध्र और मैसूरमें कोई विरोधी प्रबल दल ही नहीं था। जनसंघका यहाँ चंचु-प्रवेश हो गया है। १९६२में कम्युनिस्ट पार्टी मुख्य विरोधी दल था। १९६७में विभक्त कम्युनिस्ट पार्टी परस्पर लड़कर मर गयी। दोनों

मिलकर २८ ही सीटें पा सकीं। श्री ज्योति वसु और श्री नम्बुद्रीपादकी नीतिका आन्ध्रमें अनुसरण नहीं किया गया। आन्ध्रमें तमिलनाडके समान श्री प्रमोद कुमार दासकी नीति चीनी कम्युनिस्टोंने स्वीकार की कि कम्युनिस्ट पार्टी (रूसी) उनकी शत्रु नम्बर एक है और पहले इसको नष्ट करना चाहिए। जहां इस नीतिके विपरीत काम किया गया वहां कम्युनिस्ट सफल हुए। मद्रासमें रूसी कम्युनिस्टोंको चीनी कम्युनिस्टोंने द्रविड़ मुनेत्र कषगमकी सहायतासे पराभूत किया। आन्ध्रमें यह नहीं हुआ, अतः दोनों ही आपसमें लड़कर ५०से घटकर २८पर आ गये। ४७ निर्दलीयोंका विजयी होना बताता है कि यदि आन्ध्रमें कोई संयुक्त मोर्चा बन सकता तो कांग्रेस विपत्तिमें पड़ सकती थी। कांग्रेसने पारस्परिक फूट होनेपर भी १६५ सीटें पायी हैं।

मैसूरमें प्रसोपा, 'जनता-पक्ष' आदि दल संयुक्त मोर्चा बनानेमें विफल रहे। फलतः कांग्रेस विजयी हुई और श्री निजलिंगप्पा निर्विरोध निर्वाचित हुए। १९६२के समान पराजित होनेसे बच गये। आप सशंक थे, अतः आपने दो स्थानोंसे अपनी उम्मीदवारी घोषित की थी।

महाराष्ट्रने गृहमन्त्री श्री चौहानके नेतृत्वमें संकीर्ण प्रान्तीय भावनाके कारण अपना विश्वास प्रकट किया। महाराष्ट्र श्री चौहानको भारतका प्रधान मन्त्री बनानेको इच्छुक है। इस इच्छा और प्रेरणासे उसने कांग्रेसको वोट दिया।

● पाटिल और मेनन :

बम्बईमें श्री पाटिल हारे तो श्री मेनन भी हारे। श्री मेननकी हार मराठी प्रान्तिक भावनाके कारण कल्याण और थाना क्षेत्रोंमें हुई। शिवसेनाका जन्म श्री मेननको पराजित करनेके लिए हुआ। इसका नारा था—'इडली-डोसा नहीं चलेगा।' श्री मेननको हरानेके लिए पूनासे वालण्टियर भेजे गये। श्री मेननकी पराजय भारतीयताकी पराजय थी। श्री पाटिलकी पराजयका कारण उनका अत्यधिक बढ़ा आत्मविश्वास था। वोट पड़नेसे दो दिन पहले उनका प्रबल समर्थक-पत्र ही बन्द हो गया। फिर श्री फ़रनेण्डेस प्रचार व प्रकाशनमें भी श्री पाटिलसे अधिक निपुण और संगठन-कुशल सिद्ध हुए। प्रचारका एक उदाहरण लीजिए : श्री फरनेण्डेसका पहला पोस्टर था: 'पाटिलको आप हरा सकते हैं। श्री पाटिल कभी ५० प्रतिशत वोट नहीं पा सके।' श्री पाटिलका एक पोस्टर था: 'फ़रनेण्डेसके लिए दिल्ली दूर है।' इसका जवाब दिया गया—'क्योंकि रेलके दिल्ली तक पहुँचनेमें ही सन्देह है, रेल दुर्घटना न हुई, तो फ़रनेण्डेस दिल्ली अवश्य पहुँचेंगे।' श्री डांगे दूसरी बार लोक-सभाके सदस्य चुने गये हैं। परन्तु कम्युनिस्ट होनेके कारण नहीं, महाराष्ट्रीय होनेके कारण। पूनामें संयुक्त सोशलिस्ट नेता श्री जोशी विजयी हुए। महाराष्ट्र एकीकरण समितिके बलपर। समाजवाद यहां लुप्त हो गया। प्रजा-सोशलिस्ट नेता श्री गोरेके त्याग संस्मरणीय हैं। वह पूनासे यदि खड़े होते, तो श्री जोशी शायद ही विजयी

होते। १९५७में श्री गोरेने वर्तमान कांग्रेसी उम्मीदवार बैरिस्टर गाडगिलके पिता स्व० श्री गाडगिलको हराया था। यही कारण है कि प्रसोपा और लोहिया सोशलिस्ट एक नहीं हो सकते। लोहिया सोशलिस्ट और चीनी कम्युनिस्ट एक ही मनोवृत्तिके हैं और दोनोंकी नीति भी एक है।

● आन्ध्र और उड़ीसाकी हालत :

आन्ध्रमें कांग्रेसकी शक्तिका ह्रास हुआ है। १९६२ में २८७ सदस्योंकी विधानसभामें कांग्रेसने १७७ सीटें पायी थीं। परन्तु १९६७ में उसने ३०८ सदस्योंके सदनमें १६५ सीटें पायी हैं। वह सन्तोष कर सकती है कि कम्युनिस्ट (द०) ३२, कम्युनिस्ट (मा०) २१, कुल ५३ सदस्यसे घटकर विधान सभामें २८ ही रह गये हैं। कम्युनिस्ट नेता श्री वेंकटेश्वरलू और श्री राजशेखर रेड्डी पराजित हुए। तैलंगाना अब कम्युनिस्ट-दुर्ग नहीं रहा। आन्ध्रमें स्वतन्त्र पार्टीने २८ सीटें जीती हैं। जनसंघके ८० में-से तीन उम्मीदवार सफल हुए।

उड़ीसामें काँग्रेस हाई कमाण्डने डॉ० हरेकृष्ण मेहताबको छोड़कर श्री पटनायक-मित्रपर भरोसा किया। फलतः जन-कांग्रेस और स्वतन्त्र पार्टीके संयुक्त मोर्चेने कांग्रेसको पटकी दी। जन-कांग्रेसने २६ सीटें जीतीं। श्री पवित्र मोहन प्रधान १९६१ के समान दो जगहोंसे चुने गये। डॉ० हरेकृष्ण मेहताबने दो मन्त्रियोंको हराया और दो जगहसे चुने गये। पाल-लहरामें श्री प्रधानके सब प्रतियोगियोंकी अमानत ज़ब्त हो गयी।

उड़ीसामें चीनी कम्युनिस्ट पार्टीने १० सीटोंका चुनाव लड़ा था, पर एक ही सीट जीत सकी। रूसी कम्युनिस्ट पार्टीने ३० उम्मीदवार लड़ाये थे पर ७ ही विजयी हुए। जनसंघके १९ के १९ उम्मीदवार हार गये। स्वतन्त्र पार्टी उड़ीसामें पुरानी गणतन्त्र परिषद् है। १९५७ में इसने ४९ सीटें जीती थीं। १९६७में भी इसने इतनी ही सीटें जीती हैं। प्रजा सोशलिस्ट पार्टीने पाटकुरामें श्री विजय पटनायकको पराजित किया और रूरकेलामें बोनाई नरेश (कांग्रेस) को हराया। कांग्रेसकी शक्तिके ह्रासका इसने लाभ उठाया। झारखण्ड पार्टीकी इति श्री हो गयी।

● तीन 'प' :

चुनावमें विजय तीन 'प' (पी) पर निर्भर है :—(१) पार्टीकी शक्ति, उसका दृढ़ संगठन और उसकी लोकप्रियता, प्रतिष्ठा—जनसेवासे प्राप्त सम्मान-आदर, (२) जन-आकांक्षाको पूरा करनेकी शक्ति-(पावर) और अन्तिम (३) है पैसा। प० बंगालमें कांग्रेसने अन्तिमके बलपर चुनाव जीतनेकी कोशिश की और वह पराजित हुई। बँगला-कांग्रेसने कांग्रेसके विरोधमें साल-भरसे प्रचार जारी कर रखा था। कांग्रेसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कांग्रेस डॉ० विधानचन्द्र रायकी मृत्युके बाद भी अपनेको अजेय मानती रही। बँगला कांग्रेसकी स्थापनाके बाद भी कांग्रेसकी आँखें नहीं खुलीं। कांग्रेसका तरुणाईसे सम्पर्क छिन्न-भिन्न हो गया। श्री अजय

मुकर्जी और प्रो० हुमायूँ कबीरमें वितुष्ट काँग्रेस-नेताओंको बँगला-काँग्रेसके झण्डातले इकट्ठा किया। बंगालमें काँग्रेस कम्युनिस्टोंसे नहीं हारी, बँगला-काँग्रेसके उदयके कारण हारी। चीन और पाकिस्तानके समर्थक कम्युनिस्ट नेता श्री ज्योति वसुका उपमुख्यमन्त्री होना काँग्रेसकी भारत-भक्तिपर एक भारी व्यंग्य है!

बिहारमें काँग्रेस बहुमत नहीं प्राप्त कर सकी। काँग्रेसका नेतृत्व मुख्यमन्त्री श्री कृष्णवल्लभ सहाय सदृश अयोग्य व्यक्तिके हाथोंमें था। काँग्रेसकी पारस्परिक लड़ाईने ही काँग्रेसको पराजित किया और इतना साहसहीन और निराश कर दिया कि वह सबसे बड़ी पार्टी होनेपर भी मन्त्रिमण्डल बनानेका साहस नहीं कर सकी। मध्यप्रदेशमें श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रने राजमाताके गढ़को तोड़नेकी कोशिश नहीं की, रीवाँ-नरेशकी सहायतासे संसोपाको हराया और पुलिसके आतंककी सहायतासे स्वत: चुने गये एवं महाकोशलमें जनसंघ और जन-काँग्रेसको हराया। इन्दौरमें श्री होमी दाजीको उन्होंने हरवाया और कम्युनिस्ट पार्टीकी १९५७से चली आ रही सीट छीन ली। जसपुरकी रानी, खैरागढ़की रानीको लोकसभामें भिजवाया। महाकोशलमें काँग्रेसकी शक्तिको प्रबल बनाया। बस्तर-नरेशके वधकी छायासे चुनावको मुक्त रखा। आचार्य कृपलानीकी पराजय यही सूचित करती है। जन-काँग्रेस मध्यप्रदेशमें काँग्रेसके विरोधमें कुछ नहीं कर सका, क्योंकि इसके नेता उद्यमी और जन-नेता नहीं थे। यही कारण है कि मध्यप्रदेशमें काँग्रेस विजयी हुई।

सौराष्ट्रमें काँग्रेस १९६७ में भी विफल रही। स्वतन्त्र पार्टी यहाँसे आगे नहीं बढ़ सकी। गुजरातमें मन्त्रिमण्डल बनानेका उसका स्वप्न १९६७ में भी अपूर्ण ही रहा। राजकोट, जामनगरमें काँग्रेसकी पराजय हुई। वाणिज्य मन्त्री श्रीमनुभाई शाहकी पराजय और श्री दाण्डेकरकी विजय सौराष्ट्रमें काँग्रेसकी निर्बलताका प्रमाण है। गुजरातमें काँग्रेसकी सफलताका कारण सूरत डिवीजन है। विधान सभामें ९२ सीटें पानेवाली काँग्रेस लोकसभाकी ११ सीटें इसी कारण ही पा सकी। १९६२ में उसने लोकसभाकी १६ सीटें जीती थीं।

असम विधान सभामें काँग्रेसका बहुमत २० से अधिक है। लोकसभाकी १४ सीटोंमें-से उसने १० सीटें पायी हैं। असममें मुसलमानोंने काँग्रेसको वोट नहीं दिया। क्योंकि काँग्रेसने लुक-छिपकर असममें आये पाकिस्तानी मुसलमानोंको पाकिस्तान भेजनेकी नीति स्वीकार की थी। पाकिस्तानी आक्रमणके समय नजरबन्द किये गये तीनों मुसलमान नेता सदस्य चुन लिये गये। असमके मुसलमानोंकी भारत-भक्तिका यह प्रमाण है। चार मुस्लिम काँग्रेसी उम्मीदवार पराजित हुए। असमका विभाजनका आग्रह करनेवाली असम हिल लीडर्स कान्फ्रेंस १६ पहाड़ी स्थानोंमें-से नौ ही जीत सकी। इसने १३ उम्मीदवार गारो खासी, जमन्निया, मिकिर पर्वतीय क्षेत्रसे खड़े किये थे। गारो, खासी और जमन्निया पर्वतीय क्षेत्रमें इसको शत-प्रतिशत सफलता मिली, पर मिकिर

और उत्तरी कछारमें कांग्रेस विजयी हुई। यह चुनाव-परिणाम महत्त्वपूर्ण है। मिकिर और उत्तरी कछार असमके विभाजनके विरोधी हैं। १९६२ में ऑल पार्टी हिल लीडर कान्फ्रेंसने १६ में-से १३ सीटें जीती थीं। इस दृष्टिसे उसकी उप-असम राज्य बनानेकी माँगका बल घट गया है। केन्द्रको असम विषयक कोई भी निर्णय करते हुए १९६७ के चुनावका परिणाम नहीं भूलना चाहिए।

उत्तरी असमके दो ज़िले शिवसागर और लखीमपुर कांग्रेसके अभेद्य दुर्ग रहे हैं। किन्तु १९६७ में शिवसागरमें कांग्रेसको ११ प्रतिशत सफलता मिली। मुख्य मन्त्रीके ज़िले लखीमपुरमें २८ प्रतिशत सफलता मिली। यहाँ मुसलमानोंने कांग्रेसके विरोधमें मत दिया। किसानोंने भी कांग्रेसके विरोधमें मत दिया। ज़मींदारोंसे सताये किसान और क्या करते? ज़मींदारीका यथार्थमें उन्मूलन नहीं किया गया। कांग्रेसके अजेय और अभेद्य दुर्ग भी अब अजेय और अभेद्य नहीं रहे हैं। जो लोग कहते हैं कि इस देशमें किसान-क्रान्ति या जन-क्रान्ति नहीं हो सकती और वह अँगरेज़ी पठित वर्गका शासन समाप्त नहीं कर सकता उसको उत्तरी असमके चुनाव-फलका गम्भीरतासे अध्ययन करना चाहिए।

राजस्थानने विधान-सभाके वाम-पक्षी नेताओंके प्रति अविश्वास प्रकट किया, यह एक उल्लेखयोग्य बात है। श्री माणिकचन्द्र सुराणा (संसोपा), श्री मुरलीधर व्यास (प्रसोपा) श्री उमराव सिंह धवरिया (संसोपा) पराजित हुए। कांग्रेसके कृषि-मन्त्री श्री रघुनाथ मिर्धा, वित्त-मन्त्री श्री बालकृष्ण क़ौल, परिवहन-मन्त्री श्री चाँदमल वैद, विधान-सभाके अध्यक्ष श्री रामनिवास मिर्धा, प्रादेशिक कांग्रेस-पार्टीके अध्यक्ष श्री रामकिशोर व्यास १९६२ के समान इस बार भी पराजित हुए। विधान-सभाके पुराने २३ सदस्योंमें-से १० ही पुनः चुने गये। श्री राजबहादुर १९५२ के समान १९६७ में भी पराजित हुए। भरतपुर नरेशने कांग्रेस छोड़ दी थी, अतः केन्द्रीय मन्त्री पराजित हुए। श्री हरिश्चन्द्र माथुर भी पालीमें पराजित हुए। झुँझनू लोकसभाका चुनाव हल्दीघाटी सिद्ध हुआ और श्री मुरारका पराजित हुए। लोकसभाकी लेखा-समितिके अध्यक्षकी पराजय वस्तुतः खेदजनक है। यह राजस्थानके मतदाताओंकी लोकतन्त्री भावनाका गौरव नहीं बढ़ाता। महारानी गायत्री देवीकी लोकप्रियताका दिवाला मालपुरामें निकल गया, विधान-सभाके निर्वाचनमें महारानी पराजित हुईं और लोकसभाके निर्वाचनमें जयपुरसे अप्रभावशाली बहुमतसे निर्वाचित हुईं। १९७२ में वह शायद ही निर्वाचित हो सकें। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलकी विवादके बाद भी प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण है।

वितुष्ट कांग्रेस-जनोंकी जनता-पार्टीने सीटें अधिक नहीं जीतीं, लेकिन कांग्रेसके बहुत-से वोट काट दिये और कांग्रेसको बहुमत प्राप्त करनेमें भारी बाधा दी। किन्तु श्री कुम्भाराय आर्य कांग्रेसको सबसे बड़ी पार्टी बननेसे नहीं रोक सके। स्वतन्त्र पार्टीकी शक्ति ३६ से बढ़कर ४० हो गयी और

निर्दलीय सदस्योंकी संख्या २२ से घटकर १५ रह गयी। कम्युनिस्ट ५ से घटकर १ ही रह गये और प्रसोपाका विधान-सभासे अस्तित्व ही समाप्त हो गया। संसोपाकी आत्मा इससे अवश्य सन्तुष्ट हुई होगी।

उत्तर प्रदेश विधान सभाके ४२५ सदस्योंमें-से कांग्रेसके १९६ ही निर्वाचित हुए। यू० पी० के मुख्य मन्त्री हारते-हारते ७० वोटसे ही बच सके। कम्युनिस्ट पार्टीके नेता श्री झारखण्डे रायको छोड़कर और किसी पार्टीका नेता चुनावमें विजयी नहीं हुआ।

विरोधी पक्षोंमें सबसे बड़े दल जनसंघ और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी हैं। जनसंघने उत्तर प्रदेशमें मन्त्रिमण्डल बनानेका मन्सूबा बाँधकर चुनाव लड़ा था। परन्तु वह सौ सीटें भी नहीं पा सका। लोहिया-सोशलिस्टोंकी शक्ति ३० से बढ़कर ४० हो गयी। लेकिन पुरानी विधान-सभाके जनसंघके २४ सदस्योंमें-से १७ पराजित हुए और नेता भी चुनाव हार गये। यह क्या जनसंघकी बढ़ी ताक़तका प्रमाण माना जा सकता है? संसोपाके २९ सदस्योंने पुनः चुनाव लड़ा था, पर उनमें-से २१ हार गये। क्या यह न माना जाये कि मतदाताओंका संसोपापर विश्वास नहीं है? इन दोनोंके मुक़ाबले कांग्रेसकी स्थिति अच्छी रही। पुराने २२९ सदस्योंने चुनाव लड़ा जिसमें-से १०५ पुनः निर्वाचित हुए। कांग्रेसको जो लोग बलहीन और अशक्त मानते हैं, उनको इन अंकोंपर ध्यान देना चाहिए।

संसोपा इलाहाबाद ज़िलेसे लगभग समाप्त ही हो गयी। १९६२ में इस ज़िलेकी १४ सीटोंमें से ८ सीटें उसने जीती थीं, जब श्री जायसवाल प्रसोपाके नेता थे। पर १९६७ में इस ज़िलेमें वह एक ही सीट पा सकी। श्री लालबहादुर शास्त्रीके पुत्र श्री हरिकृष्ण और श्रीमती पण्डित लोकसभाके लिए चुनी गयीं। इन दोनोंने इस ज़िलेको पुनः कांग्रेसका बना दिया है। इसी प्रकार फ़र्रुखाबादमें संसोपा ४ की जगह केवल एक ही सीट जीत सकी। रायबरेलीमें भी यही हुआ। १९६२ में इस ज़िलेकी विधान सभाकी ८ सीटोंमें-से संसोपाने १९६२ में ३ सीटें पायी थीं। शेषमें दो कांग्रेसने, दो जनसंघने और एक सीट निर्दलीयने जीती थी। परन्तु प्रधान मन्त्रीने इस बार रायबरेलीसे विपक्षी दलोंको सर्वथा समाप्त कर दिया।

सत्ता और प्रभुताकी भूख :

कांग्रेसकी पराजयका कारण २५२ वितुष्ट कांग्रेस-जनोंका चुनाव लड़ना है। सत्ता और प्रभुताकी तीव्र भूख ही उसकी पराजयका कारण है, डॉ० फ़रीदकी स्थापित मजलिस-ए-मुशावरातका कांग्रेस-विरोधी प्रचार। मुस्लिम वोटरने इस बार कांग्रेसको वोट नहीं दिया। कांग्रेसकी मुस्लिम-भक्ति, पाकिस्तानके प्रति परितोष-नीति, विदेशी लिपि अरबीको जीवित रखनेकी नीति कुछ फल नहीं लायी। कांग्रेसकी भारत-विरोधी नीतियोंका यह परिणाम है। १८ दिनोंके गुप्त-मन्त्रिमण्डलको विदा होना पड़ा। श्री चरण सिंह भी टिकेंगे नहीं। निर्वाचक यह नहीं चाहते।

मध्य प्रदेश : नयी झील : १९६७के निर्वाचनने मध्यप्रदेशमें एक नूतन राजनीतिक शक्तिको जन्म दिया। यह ग्वालियरके दुर्गके समान दूरसे दिखाई देती है। ग्वालियरकी राजमाता श्रीमती विजया राजे सिन्धियाने कांग्रेसको अपने प्रभाव-क्षेत्रसे बाहर खदेड़ दिया। चुनाव-अभियानमें उनके भाषणोंकी धाक जम गयी। मध्य भारतके १६ जिलोंमें विधान-सभाकी ९१ सीटें हैं। कांग्रेसको उत्तरी मध्य भारतमें कोई सीट नहीं मिली। शेषमें २३ सीटें मिलीं। अन्य दलोंमें-से जनसंघको ४७, स्वतन्त्रको ७, संसोपाको ६ और प्रसोपाको १ सीट मिली। राज-माता ग्वालियरने कारेराकी सीट जीती और खाद्य-मन्त्री श्री गौतम शर्माकी जमानत जब्त हो गयी। राजमाता १९६६तक कांग्रेस पार्टीमें थीं, तब उनका तेज सुप्त था। राजमाता विधान-सभामें संयुक्त विरोधी दलकी नेता हैं और उसके सदस्योंको संख्या १२५ है। सम्भव है, डॉ० मिश्र और राजमाताके मध्य समझौता हो जाये और मन्त्रिमण्डलमें उनका प्रवेश हो। क्योंकि राजमाताने रीवाँ-नरेशके प्रति मुख्य मन्त्रीका पक्षपात देखकर कांग्रेसको छोड़ा था। रीवाँ-नरेश और मुख्य मन्त्रीका मेल अब टूटता दिखता है, अतः राजमाताका मन्त्रि-मण्डलमें प्रवेश बहुत सम्भव प्रतीत होता है। मध्यप्रदेश, विधान-सभाके २९६ सदस्योंमें-से २४ निर्दलीय हैं। इनकी शक्तिको समाप्त करनेका एक ही उपाय है कि राजमाताको कांग्रेसमें पुनः सम्मिलित होनेको प्रेरित किया जाये। नीतिनिपुण मुख्यमन्त्रीसे यह स्थिति छिपी नहीं है।

खर्चीला चुनाव और आखिरी सवाल : १९६२ के निर्वाचनमें विभिन्न दलोंने चुनावपर लगभग ३५१४०७५० रुपये खर्च किये थे। यह अनुमान सर्वथा ठीक है, यह नहीं कहा जा सकता। पर चुनाव कितना खर्चीला हो गया है, इसकी उपर्युक्त अंक एक झाँकी देता है। मतदाताओंकी बढ़ती संख्याने भी दीन भारतके सामने एक समस्या उत्पन्न कर दी है। १९७२ में मतदाताओंकी संख्या लगभग ३० करोड़ होगी, क्योंकि अब पांच साल बाद २ नहीं ४-५ करोड़ नये वोटर बढ़ रहे हैं। इस विशाल संख्याके वोटरोंके वास्ते चुनाव-व्यवस्था करनेका खर्च १९७२ में लगभग १५ करोड़ रु० होगा। प्रश्न यह है, क्या दीन-ग़रीब भारत निर्वाचनके इस भारी व्ययको उठा सकता है? इस समय इस समस्याकी ओर किसी पक्षका ध्यान नहीं है। १९७२का चुनाव सिरपर आ जानेपर इसपर जल्दी-जल्दीमें ठीक रीतिसे विचार न हो सकेगा। ग्राम-पंचायतोंका प्रत्यक्ष चुनाव होने और उनमें राजनीतिक दलोंके भाग लेनेकी हालतमें ज़िला-परिषदोंको निर्वाचक मण्डल बनाना क्या युक्तिसंगत न होगा? इससे ग्राम-पंचायतोंका चुनाव लोक-सभा और विधान-मण्डलोंके साथ-साथ हो सकेगा। १९६७ का निर्वाचन-संग्राम भारतीय जनताके समक्ष एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा कर गया है, क्या हम इस ओर ध्यान न देंगे? ■■

इतिहास सदन,
एम–११८, कनाट सर्कस,
नयी दिल्ली–१

आरासे एक भेंट

जितेन्द्रकुमार मित्तल

चटख़ रंग, फूल और ज़िन्दगीका संगीत

एक लम्बे अरसेके बाद पिछले दिनों स्टिल लाइफ़ (स्थिर जीवन) तथा न्यूड्स (निर्वसनाओं) के चितेरे कृष्ण आराने बम्बईमें अपने चित्रोंकी प्रदर्शनी आयोजित की थी। प्रदर्शनी-कक्षमें प्रवेश करनेके बाद ऐसा महसूस हुआ मानो मैं चित्रोंकी किसी प्रदर्शनीमें नहीं, वरन् किसी पुष्प-प्रदर्शनीमें आ गया हूँ। चारों ओर फूल-ही-फूल, चटख रंगोंवाले ऐसे फूल जो हवाकी लहरोंपर नहीं तैरते, वरन् किसीके द्वारा तोड़े जानेकी चिर प्रतीक्षामें मग्न हैं। उनका स्थान बगीचा नहीं, वरन् ड्राइंग रूम है। आराका हरेक फूल एक अजीब मुसकराहट बिखेरता हुआ लगता है। इन चित्रोंमें रंगोंका इस्तेमाल ब्रशके हलके आघातोंसे किया गया है और ऐसा लगता है कि वे पारदर्शी पानीके रंग ही हों। कैनवासके कुछ हिस्सोंको आराने अछूता ही छोड़ दिया है और इससे चित्रोंमें एक ताज़गी महसूस होती है।

'परम्परा सबसे बड़ा झूठ है' —आरा

मैं बारी-बारीसे हरेक चित्रको ग़ौरसे देखने लगता हूँ: 'साथी' चित्रमें आराने चटख रंगोंमें दो फूलदान बनाये हैं और आगेवाले फूलदानकी

बाहरी रेखाएँ गहरे रंगकी अनेक परतों-द्वारा बनायी गयी हैं, जिससे लगता है कि यह फूलदान शून्यमें टिका हुआ है। पृष्ठभूमिमें एक काली परत चटख़ रंगकी पट्टियोंका आभास देती है। 'भूख' चित्र बरबस ही अपनी ओर ध्यान खींच लेता है—गहरे तथा हलके नीले रंगोंके धब्बोंवाला दूर-दूर तक फैला हुआ आसमान, नीचे लहरपर तैरते हुए फूलरहित फूलदान, जिनका मुँह ऊपरकी ओर उठा हुआ है। और अन्तमें टुकड़े-टुकड़े हुआ फूलदान। आजके ज़मानेकी प्रतिष्ठा, पैसे और सत्ताकी भूखको आराने बड़ी कुशलतासे कैनवासपर उतारा है, जिसके कारण आज आदमी बेचैनी, मानसिक द्वन्द्व तथा कुण्ठाकी लहरोंपर तैरता रहता है और इसका परिणाम टुकड़े-टुकड़े होनेके रूपमें सामने आता है। 'रात्रि'में इस प्रदर्शनीकी एकमात्र निर्वसना दिखाई देती है, लेकिन इस निर्वसनाको भी आराने पृष्ठभूमिमें डाल दिया है और चटख़ लाल रंगोंवाले फूलोंको उसके आगे रख दिया है। इस निर्वसनाके हाव-भावसे एक पवित्रता टपकती है और लगता है कि उसके होठ प्रार्थनामें डूबे हुए हैं। इसी तरहके बहुत-से चित्र, बहुत-से फूल मैं देखता हूँ और हरेक फूल एक जुदा कहानी कहता हुआ लगता है।

आराका जीवन एक ऐसे व्यक्तिकी कहानी है जो कलाके माध्यमसे कुलीगीरी, मोटर-मैकेनिक, ड्राइवर, तथा घरेलू नौकरके अनेक रास्तेसे होता हुआ उस ऊँचाईपर पहुँच गया है जो स्वयं कलाके लिए एक गौरवपूर्ण उदाहरण है। लेकिन इस ऊँचाईपर पहुँच जानेके बाद भी आराके भीतरके इनसानमें कोई अन्तर नहीं आया, उसके चेहरेकी गहरी रेखाओंमें भी वही भोलाभाला तथा सीधा-सादा इनसान झाँकता रहता है। वे बहुत सहजता तथा सरलतासे मुझे बताते हैं कि "आज कला केवल विलास या सजावटका अंग बनकर ज़िन्दा नहीं रह सकती और न ही यह समाज तथा राजनीतिसे कटकर रह सकती है। कलाकार जबतक अपने आपको पूरी तरह समाजकी भावनाओं, मूल्यों, द्वन्द्वों, संघर्षों आदिसे एकरूप नहीं कर लेता तबतक वह अपने चित्रोंमें समाजका सही चित्रण नहीं कर सकता। मैं ख़ुद जीवनकी हरेक स्थितिसे गुज़रा हूँ, जीवनके हरेक पहलूको मैंने ख़ुद भोगा और जिया है। ज़िन्दगीकी इसी हक़ीक़तको मैं रंगोंके माध्यमसे कैनवासपर उतारनेकी कोशिश करता हूँ। मैं ऐसी कोई चीज़ चित्रित नहीं करता, जो मेरे मन-मस्तिष्कको आन्दोलित न करती हो और जिसके अनुभवसे मैं बेचैन न हो जाता हूँ।"

"अपने विषयके रूपमें आपने ज़्यादातर फूलोंको ही क्यों चुना है?" मेरे इस सवालको सुनकर आराके चेहरेपर फूलों-सी ताज़ी मुसकराहट बिखर जाती है, फिर कुछ सोचते हुए वे कहते हैं, "यों मुझे दुनियाकी हरेक सुन्दर चीज़ अच्छी लगती है, लेकिन फूलोंसे मुझे बहुत प्यार है। फूलोंमें मुझे ज़िन्दगीका वह क़ुदरती संगीत सुनाई देता है, उनमें मुझे जीवनका वह स्पन्दन महसूस होता है, जो कभी पुराना नहीं पड़ता, यानी जो शाश्वत

आरा के ३ चित्र :

भू । ख

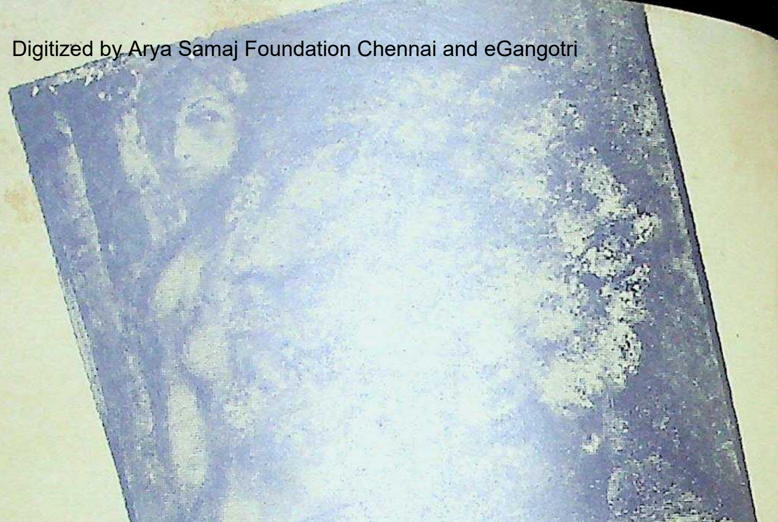

रात

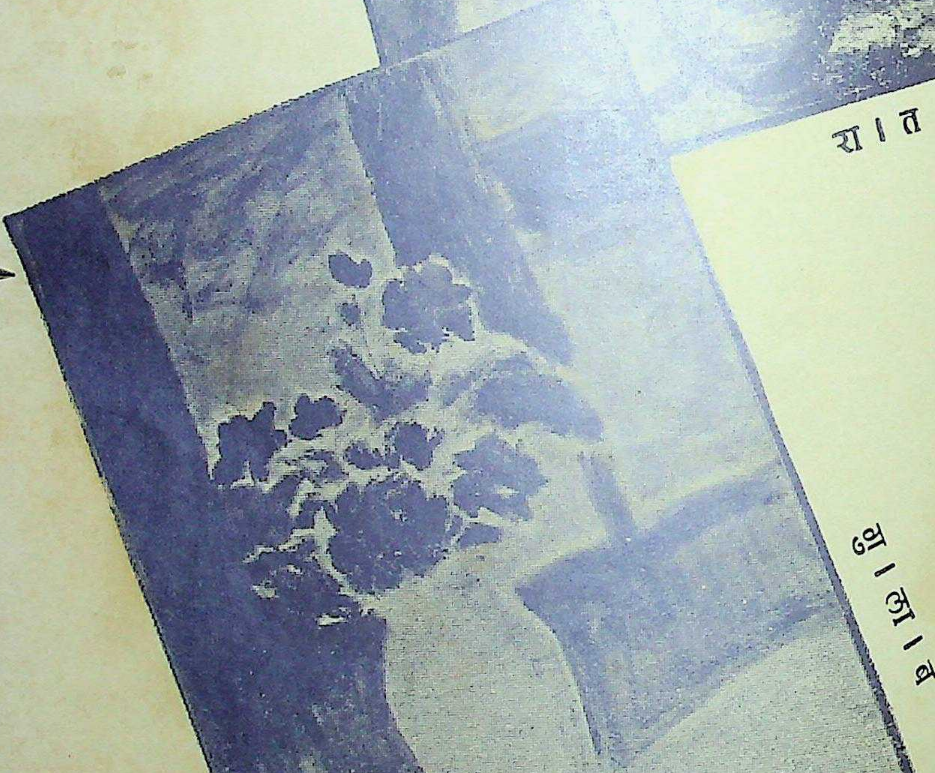

गुलाब

है। मुझे लगता है कि उनके माध्यमसे मैं ज़िन्दगीके हरेक पहलूको बख़ूबी चित्रित कर सकता हूँ। मेरे लिए फूल ज़िन्दगीके प्रतीक बन गये हैं।"

"आपके इन चित्रोंमें मातिसका प्रभाव नज़र आता है, यह मात्र संयोग ही है या आप वास्तवमें ही मातिससे प्रभावित हैं?"

आरा : "शुरू-शुरूमें मातिसने मुझे बहुत ज्यादा प्रभावित किया था, लेकिन मैंने कभी भी उसकी नक़ल करनेकी कोशिश नहीं की। हाँ, यह मैं जरूर मानता हूँ कि मातिस तथा दूसरे युरॅपियन कलाकारोंकी कलाकृतियाँ देख-देखकर मुझे अपनी व्यक्तिगत तकनीक विकसित करनेमें मदद मिली। मेरा अपना एक अलग दृष्टिकोण है, जो मेरे समाज तथा मेरी परिस्थितियोंके प्रभावसे विकसित हुआ है। मेरे विचारसे हरेक कलाकारका अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण होना जरूरी भी है। जहांतक मातिसका सवाल है, उसने सघनताके भ्रमको प्रकट करनेकी कभी चिन्ता नहीं की। उसके चित्र चपटे हैं और उनमें उसने कम्पोजीशनकी एकता प्रकाश-द्वारा नहीं, वरन् रंगोंके विरोधाभास-द्वारा हासिल की है। लेकिन मैं अपने चित्रोंमें दृश्य-भूमिका तथा प्रकाशको महत्त्व देता हूँ।"

"न्यूड्सके विषयमें आप किस तरहसे सोचते हैं? आपको यह 'थीम' अपनानेकी ज़रूरत क्यों महसूस हुई?"

आरा : कलाकार हमेशा बदलता रहता है और यह बदलना ही जीवन तथा विकासका प्रतीक है। कलाकारके अन्तःकरणमें जो भावात्मक तथा आध्यात्मिक संघर्ष चलता रहता है, वही उसे चिन्तन तथा अभिव्यक्तिके नये क्षेत्रोंकी ओर ले जाता है। इसी आन्तरिक संघर्षने मुझे तमाम परम्पराओंको तोड़कर न्यूड्स चित्रित करनेके लिए प्रेरित किया। मेरे खयालसे परम्परा सबसे बड़ा झूठ है। कोणार्क, खजुराहो तथा अजन्ताकी महान् कलाकृतियोंमें नारी-आकृतिकी जो महानता दिखाई देती है, वह दुर्भाग्यसे धार्मिक कट्टरता तथा बुर्जुआ मनोवृत्तिका शिकार हो गयी। हमारा अपना दर्शन भी मानव-आकृतिको उन करोड़ों स्वरूपोंमें-से एक मानता है, जिनमें दैवी आत्मा अपने-आपको प्रकट करती है। पश्चिममें मानेत, दगास, रेनोआर-जैसे प्रभाववादियों, उनके बादके सेजान तथा गागिन-जैसे कलाकारों और पिकासो, मातिस, चगाल तथा मिरो-जैसे आधुनिक कलाकारोंने मानव-आकृतिको महान् आध्यात्मिक अर्थोंसे सुशोभित किया है और उन्होंने मानवीय अनुभव तथा अन्तरदृष्टिकी नयी ऊँचाइयाँ हासिल की हैं। इसी तरह इन न्यूड्सका चित्रण मेरे लिए एक महत्त्वपूर्ण तथा अत्यधिक आध्यात्मिक अनुभव रहा है। मेरा कलाकार इस पवित्रताको लेकर ही चलता है और वह पूरी ईमानदारीसे नारीके महान् पवित्र भावोंको रंगोंका जामा पहनानेकी कोशिश करता है।

"पश्चिमके न्यूडिज़्मके बारेमें आपका क्या कहना है?"

आरा : मेरे खयालसे पश्चिमका न्यूडिज़्म एक स्वस्थ विचारधारापर आधारित है और उसमें मुझे कोई हर्ज नजर नहीं आता।

भगवान्ने किसीको कपड़े पहनाकर नहीं भेजा, कपड़ोंका आविष्कार तो बादमें मनुष्यने किया है। मानवताके स्वरूप-विकासके लिए कपड़ोंकी कोई जरूरत नहीं है, उलटे उनसे मानसिक विकृतियाँ फैलती हैं। हमारे समाजकी यौन-विकृति भी इसी ऊपरी ढकाववाली मनोवृत्तिका परिणाम है। कुछ लोग यहाँपर तथाकथित नैतिकताकी बात उठा सकते हैं, लेकिन मेरे खयालसे आजके ज़मानेकी सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि हमारे पास कोई नैतिकता नहीं है, हम सिर्फ़ नैतिकताकी बात करना जानते हैं। न्यूडिज़मसे नैतिकताके पुनर्स्थापनमें मदद मिल सकती है।

"क्या आज कला 'क्लासेज' (वर्ग विशेष) के दायरोंमें क़ैद हो गयी है, उसका मासेज (आम जनता) से कोई ताल्लुक़ नहीं रहा है ?"

आरा : चित्रकला भी शास्त्रीय संगीतकी ही तरह हमेशा 'क्लासेज' की चीज़ रही है, आम जनतासे वह कभी भी सही मायनोंमें जुड़ी नहीं रह सकी। लेकिन इसके लिए दोष कलाकारको नहीं दिया जा सकता। यह हमारे उस दासतापूर्ण पर्यावरणका नतीजा है, जिसने आम जनताके स्वतन्त्र तथा सृजनात्मक चिन्तनको समाप्त कर दिया है। फिर भी हम, जो कलाकार होनेका दम भरते हैं, अपने-आपको इस ज़िम्मेदारीसे पूरी तरह बरी नहीं कर सकते। हमारा भी यह कर्त्तव्य है कि हम कलाको 'क्लासेज' की क़ैदसे मुक्त करके उसे 'मासेज' तक पहुँचायें। इसी उद्देश्यसे मैंने गाँव-गाँवमें घूमकर अनेक बार अपने चित्रोंकी प्रदर्शनियाँ की हैं और नाममात्रकी क़ीमतपर गाँववालोंको अपने चित्र दिये हैं। इस तरह कलाकार आम जनताको शिक्षित कर सकता है और उनमें कलाकी समझ तथा उसके प्रति रुचि पैदा कर सकता है। मेरे खयालसे आज कलाकारके सामने सबसे बड़ा सवाल यही है कि वह समाजके संगीत और कल्पनको किस प्रकार अपने चित्रोंमें अभिव्यक्त करे, ताकि उसे आम आदमी समझ सकें। इसमें कोई शक नहीं कि कलाकार इस सवालका हल जल्दी ही निकाल सकेगा।"

७१९८ आज़ाद नगर,
जयप्रकाश रोड, अन्धेरी (पश्चिम)
बम्बई—५८

परिवर्तित निवेदन :

१. ज्ञानोदयके लिए नयी रचनाओंका स्वागत है लेकिन अस्वीकृतिकी सूचना देना सम्भव नहीं है। केवल वे अस्वीकृत रचनाएँ हम लौटा देते हैं जिनके साथ पता-लिखा, टिकट-लगा लिफ़ाफ़ा हो।

२. अनामन्त्रित रचनाओंके निर्णयमें एक मास लग जाता है फिर भी जो रचना ज्ञानोदयके लिए भेजें, कृपया वह हमारे उत्तर तक कहीं और न भेजें।

—सम्पादक

चर्चा

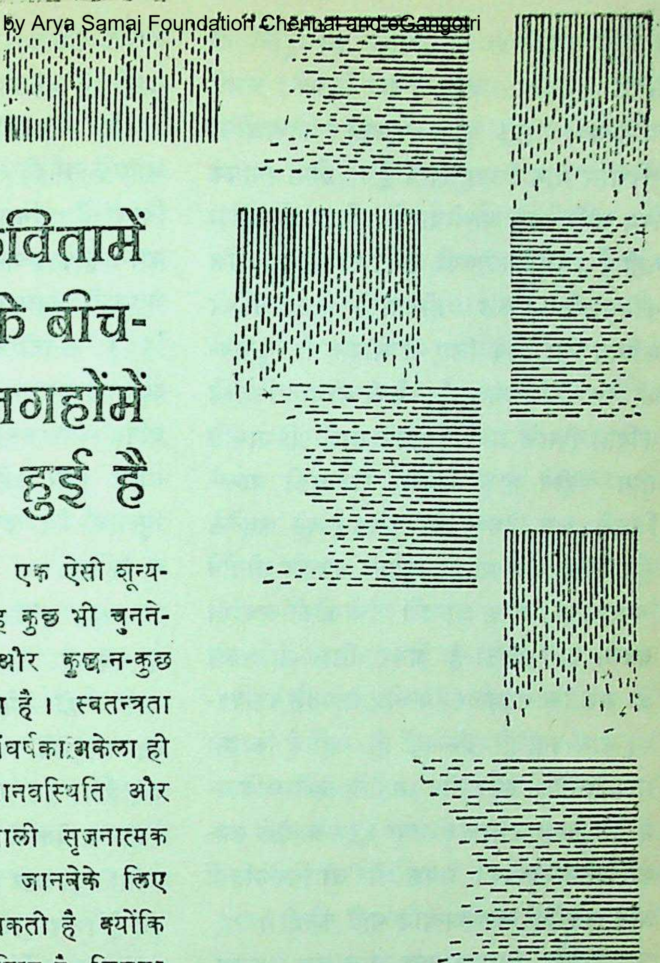

आजकी कवितामें भाषा : दाँतोंके बीचकी जगहोंमें सटी हुई है

परमानन्द श्रीवास्तव

आज आदमीकी नियति उसे एक ऐसी शून्य-स्थितिमें रख देती है जहाँ वह कुछ भी चुननेके लिए स्वतन्त्र होता है और कुछ-न-कुछ चुननेके लिए बाध्य भी होता है। स्वतन्त्रता और बाध्यताका यह संघर्ष, संघर्षका अकेला ही बिन्दु नहीं है पर आजकी मानवस्थिति और उसे रचनामें प्रत्यक्ष करनेवाली सृजनात्मक प्रेरणाओंके सही सन्दर्भोंको जाननेके लिए यहाँसे बात शुरू की जा सकती है क्योंकि उपर्युक्त संघर्ष ही ऐसा बिन्दु है जिसका सामना अनिवार्य रूपसे आजका आदमी करता ही है। यहाँ दूसरा विकल्प नहीं है और 'बचाव' आजकी भाषामें 'एक ऐसा शब्द है कि उसे अतिक्रान्त करके ही बचा जा सकता है।' इसके बाद भी 'आदमी अगर कोर्ट या दफ़्तर या मतदान-केन्द्र या रेसकोर्सके मैदानमें जाता है' तो सिर्फ़ इसलिए कि 'उसका कोट उसमें दिलचस्पी नहीं लेता'। यह विवशता अपनी कमजोरियोंको छिपानेके लिए जिनका कवच या धर्म बन जाती है या इसके सहारे जो संघर्षके नितान्त व्यक्तिगत, गोपनीय या निरापद स्थलोंको चुनते हैं—जैसे कि 'सेक्स'—और उसकी क्षतिपूर्तिके लिए कृत्रिम विवशताएँ रचते हैं और उसमें सुखका अनुभव करते हैं वे आजके कवि नहीं हैं और उनकी कविता आजकी कविता नहीं है। आजकी कविता और मानव-नियतिके सम्बन्धकी समीक्षा-

से पहले साहित्यिक इतिहासके इस बुनियादी भ्रमसे बचना ज़रूरी है जिसके चलते साहित्यको बीते हुए कलकी घटनाओंका परिणाम मान लिया जाता है। इससे व्यापक भ्रम साहित्यिक आलोचनाके इतिहासमें दूसरा नहीं है। मुक्तिबोधकी सबसे सार्थक कोशिश कविताको, 'कल होनेवाली घटनाओं'की कविता बना देनेके लिए थी और अभी 'चुनाव-की पूर्व सन्ध्यापर' केदारनाथ सिंहकी कविता पिछले आम चुनावके ताज़े परिणामोंसे तीन महीने पहले लिखी जा चुकी थी—जिसमें उस देशव्यापी परिवर्तनको पहलेसे सूँघ लिया गया था जिसे आगे चलकर लोगोंने चमत्कारकी तरह जाना। 'चीज़ोंको अब भी बदला जा सकता है अगर सिर्फ़ यह जाना जा सके कि सड़कपर मिलनेवाले पहले व्यक्ति-का नाम क्या होगा'—यों ही नहीं है कि यह सम्भावनापूर्ण स्वर तीन महीने पहले कविता-में इस तरह उभरकर आया। इसके पीछे सम-कालीन परिदृश्यकी समझ थी जो विसंगतियों और खतरोंको नज़रअन्दाज़ नहीं करती।

जिनके लिए कविता कल तक 'कवच' थी आज तक 'छन्द' है (खलनायक : लहर : नवम्बर '६६ कविता अंक) पर जो आजकी मानव-नियतिके निर्मम साक्षात्कारमें शरीक हैं उनके लिए 'चीज़ें एक ऐसे दौरसे गुज़र रही हैं' कि

सामने की मेज़ को सीधे मेज़ कहना
उसे वहाँ से हटाकर
अज्ञात अपराधियों के बीच रख देना है
(केदार)

आजके कविके इस अनुभवको ठोस अर्थवत्ता यह है कि उसकी भाषा 'जिह्वापर नहीं' बल्कि 'दाँतोंके बीचकी जगहोंमें' सटी हुई है। भाषाके मर्मकी तलाशमें जो आज भी काव्य-बिम्बोंकी दुनियामें भटक रहे हैं उन्हें युवा जर्मन-कवि इन्जेन्सबर्गरकी सलाह (खोयी हुई भाषाकी तलाशमें : एनकाउण्टर, सितम्बर '६३) माननी चाहिए कि ज़्यादा महत्त्वपूर्ण और काव्यात्मक सत्य 'सेफ़्टीपिन' और 'जूक बाक्स'-जैसे रोज़के इस्तेमालकी चीज़ोंमें छिपा हुआ है—'समुद्र' 'चन्द्रमा' और 'गुलाब'-जैसे परम्परागत काव्यात्मक सन्दर्भों-में नहीं।

कल होनेवाली घटनाओंका पूर्व-संकेत करनेवाला आजका कवि कोई 'भविष्य-वक्ता' नहीं—ऐसी महत्त्वाकांक्षी कवि-प्रतिमा-को तोड़नेमें कम-अज़-कम तीस साल लग गये हैं। इस बीच 'आधुनिक' या 'नयी' कही जानेवाली कवितामें भाषा या वस्तुको कितनी ही बार तोड़ने या बदलनेकी ज़रूरत हुई है। इसपर भी उसे समय-समयपर दिये जानेवाले नये नामोंसे यदि कुछ लोग घबराते हैं तो वे साहित्यिक आलोचनाके ही दूसरे लेकिन शाश्वत भ्रमके शिकार हैं जिसके अनुसार रचना-प्रवृत्तियाँ सीधे एक युगके बाद ही बदलती हैं। इसलिए नयी कविताका कवि 'काव्य-परिप्रेक्ष्य जाननेके लिए आजका कवि 'काव्य-शास्त्र'पर बहस करनेसे पहले इतिहासके उस परिदृश्यको ही पकड़ना चाहता है जिसका अंकुश हमारी पीठपर गड़ता रहता है—(श्री कान्त वर्मा)।

छायावादके बादकी काव्य-स्थितिपर विचार करनेसे पहले उन आक्षेपोंको नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता जो परवर्ती कवियों-द्वारा 'छायावाद' नामकी काव्य-प्रवृत्ति-पर किये गये हैं जैसे : 'छायावाद हिस्टीरियाकी भांति हिन्दी कविताका एक मानसिक रोग है'—(माचवे) या 'छायावादी कविता हमारे प्रतिभावान् कवियोंकी आत्मवंचनासे पैदा हुई है-(श्रीकान्त)। हो सकता है कि ऐसे आक्षेपों-के मूलमें एक प्रकारका 'अतिवाद' हो और वह अनेक असंगतियोंसे भरी हुई उस छाया-वादी कविताके साथ ठीक न्याय न कर सके जो 'दो महायुद्धोंके बीचकी कविता' है—हालाँ कि इसी तर्कसे भाषा और वस्तुके उस वायवीपनसे उसे बचना भी चाहिए था, जो उसमें व्याप्त है। उसीके विरुद्ध '३०के आस-पास उस काव्य-प्रवृत्तिका विकास हुआ जिसे आगे प्रगतिवादकी संज्ञा मिली और कुछ ही समय बाद उसके समानान्तर, पर भिन्न आग्रहोंसे प्रेरित उस काव्य-शैलीका विकास हुआ जिसे प्रवर्त्तकोंके मना करनेके बावजूद 'प्रयोगवाद' नाम दे दिया गया। यह मानकर चलना ग़लत है कि प्रगतिवादके विरुद्ध प्रयोगवादका विकास हुआ, जिस तरह छायावादके विरुद्ध प्रगतिवाद आया था। सच तो यह है कि दोनों ही प्रवृत्तियाँ छायावादकी प्रतिक्रियामें विकसित हुईं और उनके लक्षण धीरे-धीरे एक दूसरेसे विलग हुए या कर लिये गये। इनमें कितने ही कवि हैं जो विचारोंमें मार्क्स-वादी हैं और रचना-शिल्पकी दृष्टिसे प्रयोग-वादी। शमशेर इसके सबसे रोचक उदाहरण हैं। '३३में 'भग्नदूत' (अज्ञेय) '३७में 'युगान्त' और '३९में 'युगवाणी' (पन्त) '३८में निशा-निमन्त्रण' (बच्चन) '४०में कुकुरमुत्ता (निराला) '४१में 'मंजीर' (गिरिजाकुमार माथुर) आदि कृतियाँ प्रकाशित हुईं—जिनमें अनेक नयी काव्य-प्रवृत्तियोंकी मिली-जुली छायाएँ हैं और इन सबके बीच '३७में छायावाद की सर्वश्रेष्ठ रचना 'कामायनी' प्रकाशित हुई—इससे साहित्यिक आलोचनाका एक दूसरा प्रचलित तर्क लचर सिद्ध होता है जिसके अनुसार एक विशेष तिथिको किसी युगके आरम्भ या अन्तका सूचक मान लिया जाता है।

प्रगतिवादी कवि यह मानकर चले थे कि ग़रीब वंचित वर्गके लिए कलात्मक मूल्य व्यर्थ ही रहेंगे जबतक उन्हें उभरनेके लिए 'समान अवसरोंकी सामाजिक स्थितिसे संयोजित नहीं किया जाता'। इसलिए आगे भी उन्होंने प्रयोगवादियोंकी तरह 'अन्तर्मुखी कला-साधना' का विकल्प नहीं चुना। प्रभाकर माचवेने ही, जिन्होंने आगे 'वे पंक्तियाँ जो कि गद्य हैं कहला सकती नहीं बिचारी' कहकर 'प्रगतिवाद'के असमर्थ काव्य-शिल्पपर शायद व्यंग किया, पहले 'नोन-तेल-लकड़ीकी फ़िक्रमें लगे घुनसे'—ऐसे निचले वर्गको अपनी सहानुभूति दी थी—ऐसी कविताओंका व्यंग-स्वर भी (यदि वह कहीं था) तब सहानुभूति-प्रेरित था। प्रगतिवाद-का कवि 'साहित्यिक दुनिया'में नहीं 'वास्तविक दुनिया'में रह रहा था और वस्तु-सत्यसे निरन्तर संघर्ष करते हुए उसने समझ लिया था कि साहित्यपर ज़्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही था कि आजके

कवियोंकी तरह उन कवियोंने इस समझसे फ़ायदा नहीं उठाया और वे अपनी संवेदना या शिल्पका पुन:संस्कार नहीं कर सके और धीरे-धीरे एक रूढ़िके शिकार होकर रह गये। प्रयोगवादकी काव्यनुभूति और उसकी बनावट-पर कुछ भी विचार करनेसे पहले मुझे लगता है कि प्रगतिवाद अपनी रूढ़िके रूपमें यद्यपि समाप्त हो चुका है, पर अभी भी स्वस्थ सम्भावनाओंके रूपमें नयी कविताके दूसरे-तीसरे दौरमें विकसित होनेवाली 'प्रतिबद्ध कविता-धारा'में जीवित है—जिसे 'दक्षिणपन्थी पाठकोंके नाम लिखी हुई वामपन्थी कवियोंकी कविता'-जैसी संज्ञा दी जा सकती है।

भाषाकी अपर्याप्तताका दबाव प्रयोगवादी कवियोंको अभिव्यक्तिके नये माध्यमोंकी खोजमें प्रवृत्त करता है और यह सिर्फ़ संयोग नहीं है कि प्रयोगशील कविता चित्र-कला, फ़ैण्टेसी, दिवास्वप्न, संगीत, नाटक, स्थापत्य आदि अनेक स्रोतोंसे शिल्पकी भंगिमाएँ ग्रहण करती है—जरूरत पड़नेपर वह नितान्त काव्य-बाह्य शब्दोंको भी काव्यात्मक अर्थ देती है। 'प्रयोगवादका काव्यशास्त्र' यदि 'अज्ञेय-की देन' है तो उसकी असंगतियाँ भी उन्हींकी दी हुई हैं। उनकी मान्यता है : 'जैसे-जैसे हमारी बौद्धिक सहानुभूति गहरी होगी, अभिव्यक्तिमें व्यंजना आती जायेगी, और वह सीधा संवेदन कम होता जायेगा जो किशोर कवितामें होता है।' यह सिर्फ़ विडम्बना नहीं है कि जिस सीधे संवेदनको आजके कवि कविताका महत्त्वपूर्ण प्रयोजन मानते हैं अज्ञेय उसे किशोर-कविताका लक्षण मानते हैं। इसके पीछे एक सजग मनोवृत्ति काम करती है जो जीवनकी ठोस और क्रूर वास्तविकतासे कविताको दूर ही रखना चाहती है। अज्ञेयकी काव्यानुभूति, उनका मोहभंग, अर्थसम्पन्न उनकी भाषा मैं समझ सकता हूँ पर उनका उपर्युक्त तर्क मेरी समझमें नहीं आता। प्रयोगवादियोंमें मुक्तिबोध ही ऐसे कवि हैं जो अपनेको समयकी उलझनोंमें डालते हैं—यह उनकी कविताकी नियति ही थी कि उसका मूल्यांकन मुक्तिबोधकी मृत्युसे पहले नहीं हुआ। दूसरा सप्तकके कवियोंमें शमशेर और रघुवीर सहायकी कविताओंने प्रयोगवादके काव्यशास्त्रको सबसे ज्यादा समृद्ध किया। शमशेरको तो अज्ञेयने 'कवियोंका कवि' ही कहा है—दूसरा सप्तकके रघुवीर सहाय और तीसरा सप्तकके केदारनाथ सिंह भी 'काव्य-प्रक्रिया'के ही कवि हैं, यद्यपि इन दोनों ही कवियोंने आगे चलकर सीधे जीवनके मर्मको पकड़नेकी कोशिश की है—यहाँ भी एक अन्तरके साथ रघुवीर सहायने जीवनके 'मुहावरे'को और केदारने जीवनकी सीधी संवेदना और मानव-नियतिके निर्मम 'साक्षा-त्कार'को। प्रयोगवाद और नयी कविताके विकासके समानान्तर ही 'नकेन'का प्रपद्यवाद सामने आया जिसके कवि विशेषीकरणके क़ायल थे पर भाषाकी सम्भावनाओंकी खोजमें जिस तर्कको लेकर वे रोज़के इस्तेमालकी भाषासे अलग हुए, वह उनकी सम्भावनाओंको समाप्त कर देनेके लिए काफ़ी था।

'५० से '६० के बीचका समय एक नव रोमाण्टिक काव्य-प्रवृत्तिका विकास-काल है

जिसमें स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादकी नयी भावोन्मेष और जीवनके प्रति एक सहज स्वीकार-भाव मिलता है। नयी कविता 'जीने के लिए आवश्यक शर्तोंकी खोज' थी। 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशनसे पहले अज्ञेय, पन्त, माथुर, बच्चन और कई नये कवियोंके नये काव्य-संग्रह आ चुके थे और '५७ में प्रयाग साहित्यकार-सम्मेलनके अवसरपर आयोजित कविता-गोष्ठीमें नयी कविताके विभिन्न पहलुओंपर बड़ी ही सफ़ाईसे विचार किया जा चुका था—साथ ही 'नयी कविता' को केवल फ़ैशन या चालू नारेकी तरह इस्तेमाल करनेवाले कवियोंकी कमज़ोरियाँ खुलकर सामने आ गयी थीं। यों ही नहीं है कि चौंकानेवाले मुहावरोंके अभावमें भी कुँवरनारायणकी ठोस वैचारिक काव्यभूमिपर लोगों की दृष्टि गयी—उनकी नयी काव्यकृति 'आत्मजयी' में यदि कोई कमी है तो समकालीन वस्तु और 'नाटकीयता' की जो किसी भी रचनाको एकरस होनेसे बचाती है। नयी कविताकी नवरोमानी काव्य-दृष्टिका प्रमाण देनेवाली ठाकुरप्रसाद सिंहकी कविता (वंशी और मादल : १९५९) ने आदिम जीवनके उद्वेगको सहज मानवीय सम्बन्धोंके स्तरपर शायद अपने ढंगसे पहली ही बार चित्रित किया। 'नयी कविता' के कुछ कवियोंमें जहाँ एक प्रकारका अति-कथन है वहाँ आजके कवियोंमें स्वल्प-कथन (अण्डर स्टेटमेण्ट) की प्रवृत्ति है।

'६० के बादकी कविता एकदम आजके भयावह अमानवीकरण और उससे उत्पन्न स्थितिका सामना करती है। आजका कवि 'भीड़में धँसता है' और 'देर तक तैरनेके बाद ६७२१ नाखूनोंके नीचेसे होता हुआ' वहाँ आ जाता है जहाँ :

> 'हर आदमी के मस्तिष्क की शिरा
> एक गिरते हुए घोड़े की
> लम्बी और काली चीख़ बन जाती है'
> (केदार)

'६० के बादकी कविता जहाँ 'शुद्ध कविता'से एक सीधी 'प्रतिबद्ध कविता'की दिशामें प्रस्थान करती है वहाँ 'कविता'से 'अकविता'की ओर भी मुड़ती है। पर 'अ-कविता' देखते-न-देखते एक ऐसा 'आन्दोलन' बन गयी है जिसमें चालू फ़ैशन और चौंकानेवाले ऐसे नारोंका ज़ोर है जो अप्रत्यक्ष रूपसे 'प्रयोगवाद'का ही 'विस्तार' करते हैं या जान पड़ते हैं। ज़ाहिर है कि भाषाका अन्तर एक बहुत बड़ा तर्क है बदलती हुई काव्य संवेदनाको समझनेका—और रचनात्मक समीक्षा उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती; भाषा—जो केदारकी कवितामें दाँतोंके बीचकी जगहोंमें सटी हुई है, महेन्द्र भल्लाकी कविताओंमें चाक़ूकी तरह हर चीजसे गुज़र जाती है—इस अन्तरको वे ही देख सकते हैं जिनकी दृष्टि आजके समूचे तीखे परिदृश्यपर लीग हुई है।

■ ■

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
सेण्ट एण्ड्र्यूज़ कॉलेज, गोरखपुर

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को
अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो... बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उनको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। छपे हुये
व कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। मजबूती के साथ लगा हुआ
है ग्लेज़ इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक टिकाऊ
बनावट के चिकने होते हैं जो आपके माल को नमी,
धूल और गर्मी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

**रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड**
डालमिया नगर (बिहार)

सेलिंग एजेण्ट्स : साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

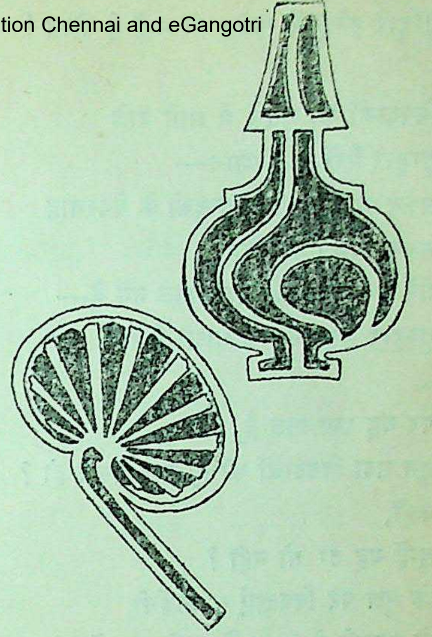

३ कविताएँ / उपेन्द्रनाथ अश्क

• स्नेह के साक्षी

तुम्हारे स्नेह में सन्देह तो नहीं है दोस्त !
जब-जब मुझ पर विपदा पड़ी,
तुम दल-बल सहित मदद को चढ़ दौड़े ।
अपने खज़ानों के द्वार तुमने खोल दिये;
अपने खलिहानों के द्वार तुमने खोल दिये
अपनी हमदर्दी के असंख्य मोती
बेसाख्ता रोल दिये ।

तुम्हारे स्नेह में सन्देह तो नहीं है दोस्त !

विपदाओं की अर्दल में आने वाले
तुम्हारे पैरों के निशान—
सफ़ेद जाजम पर आगन्तुकों के बेपरवाह
चरण-चिह्नों की तरह,
मेरे घर जहाँ-तहाँ गहरे होते गये हैं—
तुम्हारे उस स्नेह के साक्षी हैं ।

पर यह क्या बात है,
तुम सदा विपदाओं की ही राह देखते हो ?
कहीं,
तुम्हें यह डर तो नहीं ?
कि मुझ पर विपदाएँ न आयेंगी
तो तुम्हारे ये चरण-चिह्न मिट जायेंगे
और यह विशाल जाजम एकदम सफ़द बुर्राक़
बन जायेगा ।

तुम्हारे स्नेह में सन्देह तो नहीं है दोस्त !

• सफ़ेद फूल

तुम उस फूल को पाने के लिए कितने बेताब थे
तुम्हारे जितने भी ख्वाब थे—
उसके रंग-रस से भरपूर थे
लेकिन तुम उससे कितने दूर थे ?

हवा जब भी आती थी
दूर देशों से उसकी सुगन्ध लाती थी
तुम्हें दीवाना बनाती थी ।

लोग जब भी आते थे
उसकी आभा के गीत गाते थे
और तुम मनाते थे—
वह बड़ी-बड़ी रेशमी पत्तियों वाला
अनोखी गन्ध, अजीब रस और ज़िन्दगी के सारे
दुख-दर्द मिटाने की शक्ति रखने वाला
सफ़ेद फूल—
तुम्हारे आँगन में भी खिले ।

न जाने
कितनी मुश्किलों से तुम उसका बीज लाये
कितनी मेहनत से तुमने ज़मीन तैयार की
कितने अनुष्ठानों से उसे बोया
कितनी निष्ठा से गोड़ा, निराया, सींचा
और एक दिन वह भी आया—
ज़िन्दगी-बख़्श किरणें फैलाता वह फूल
तुम्हारे आंगन में मुस्कराया ।

हवा उसकी गन्ध ले कर
दसों दिशाओं में भाग गयी,
जड़ लोगों में ज़िन्दगी जाग गयी ।
लेकिन जब तुम उसे हाथ में लिये
उल्लास से आँखें बन्द किये
अपने सुख-सौभाग्य पर ख़ुश हो रहे थे,
तुम्हारे बेपरवा, फूहड़, नादान बेटे
एक एक कर उसकी पत्तियाँ नोच रहे थे ।
और तुम्हें यह भी मालूम न था
कि तुम जिसके रस-रंग पर मस्त हो,
वह फूल नहीं, महज़ उसका डण्ठल है ।

• काले काले काले

लिपट गये हैं
नाग
सुनहले रथ को
बेगिनती
काले
ज़हरीले
लिपट गये हैं नाग सुनहले रथ को

कहाँ गया वह स्वप्न तुम्हारा—
यह रथ अन्धकार को भेद
दिशाओं को सोने का चूनर पहराये
यह रंगीन पताका
जग भर में फहराये

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Phone : 252227

TRANSACTS :

FIRE, MOTOR, MARINE, PERSONAL ACCIDENT, FIDELITY GUARANTEE, BURGLARY AND ALL OTHER FORMS OF MISCELLANEOUS INSURANCE BUSINESS

UNIVERSAL INSURANCE BUILDING,
SIR P. M. ROAD, BOMBAY-1.
Chairman & Managing Director :
P. U. PATEL, B. A., B. COM. (Lond.)

लेकिन अन्धकार के सहचर
काले विषधर
लिपट गये हैं—
पहिये, खम्बे, छत—सब काले
रंग-बिरंगी ध्वजा जहाँ थी
फन मतवाले
लिपट गये हैं काले नाग सुनहले रथ को

क्या तुमने ऐसा सोचा था ?
चाहा था ?—
जिस दिन को अन्धकार की कारा से
मुक्ति दिलाने को इतना यत्न किया था
घोर तपश्चर्या से
देह सुखा ली थी
वर्षों को वीरान बना डाला था
वह सोने का दिन
आगत के पन्नों पर काला धब्बा बन जाय —
(तेरा नाम मिटाये) काला धब्बा बन जाय—
सूरज का रथ विषधर खींचें !

फैल रहा है जहर
अदेखे, अनजाने । हर शिरा
फुँक रही आसमान की ।
कद्रू के बेटों को छाया
रत्न-प्रसू धरती की कोख सुखा डालेगी
दास बनी वनिता चुप-चुप देखेगी ।

ओ काश्यप !
ओ पिता—
शाप हरो बनिता का ।
ऐसे सुत का वर दो
आसमान के कालों को जो दूर भगाये
सोने का दिन वापस लाये !

■ ■

५, ख़ुसरोबाग़ रोड,
इलाहाबाद

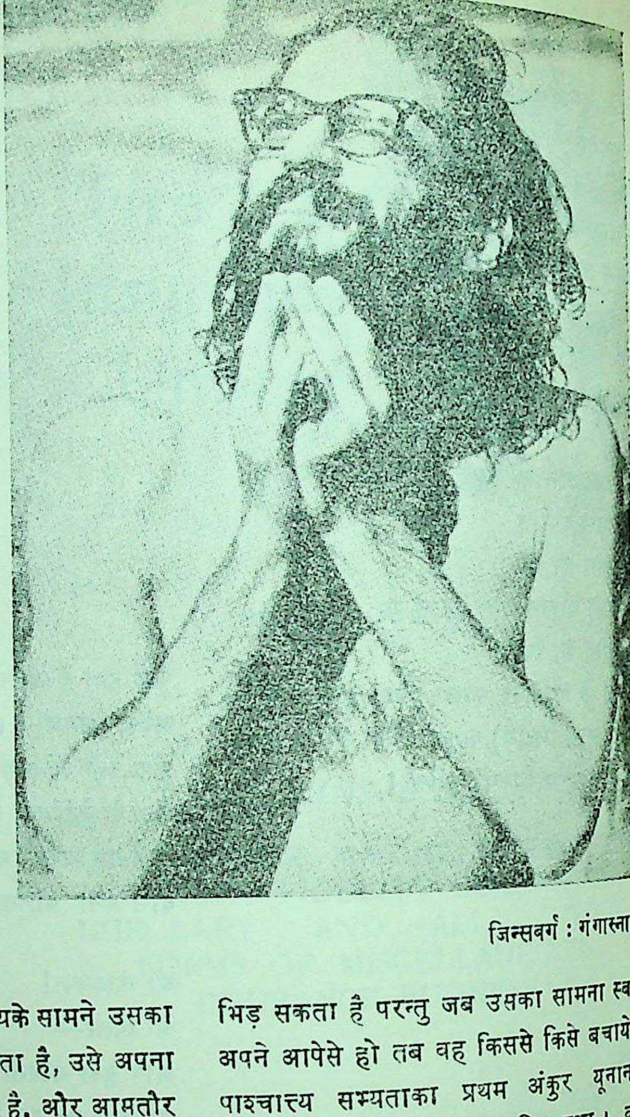

जिन्सबर्ग : गंगास्नान

पाश्चात्य सभ्यताके दो मूल लक्षण हैं—विण्डो ड्रेसिंग तथा फ़ेस-लिफ़्टिंग। इन दो शब्दोंसे क्रमशः बाह्य सजावट और घूरेपर चादर ढांकनेका अर्थ निकलता है। सत्यता और सभ्यता ये दोनों कहाँ मिलती हैं और कहाँ बिछुड़ जाती हैं—यह विषय मनुष्य-जातिके लिए बहुत चिन्तनीय है। सृष्टिके आरम्भसे ही प्रायः मनुष्य नग्न सत्यसे घबराता रहा है। हम भ्रमकी दुनियामें बने रहना चाहते हैं और उससे सन्तोष प्राप्त करते रहते हैं। हमारे भीतर इतना साहस नहीं है कि हम नंगी सचाईका सामना कर सकें। व्यक्ति अकेला होता है तो डरने लगता है, वास्तवमें एकान्त पाकर मनुष्यके सामने उसका अपना आपा खुलकर आ जाता है, उसे अपना चित्र स्पष्ट नजर आने लगता है, और आमतौर पर यह एक ऐसा चित्र होता है जिससे व्यक्ति स्वयं घबरा उठता है क्योंकि वह अपने उस स्वरूपको देखना और जानना नहीं चाहता। जब मनुष्य शेरका सामना करता है तब उसमें आत्मरक्षाकी प्रवृत्ति जाग उठती है और वह उससे भिड़ सकता है परन्तु जब उसका सामना स्वयं अपने आपेसे हो तब वह किससे किसे बचाये। पाश्चात्य सभ्यताका प्रथम अंकुर यूनानमें सोफ़िस्ट दर्शनके रूपमें प्रस्फुटित हुआ। वह आवरणोंकी सभ्यता है, उसके पीछे छिपे हुए सत्यका दर्शन करना हो तो उन आवरणोंको चीरकर अथवा भेदकर उसपर दृष्टि डालनी होगी। भौतिक जीवनकी साधना, चाहे वह

पाश्चात्य सभ्यताका विद्रोही कवि जिन्सबर्ग

नेमिशरण मित्तल

पाश्चात्य जगत्में हो अथवा पौर्वात्यमें, सहज ही व्यक्ति और समाजको आध्यात्मिक सत्यसे दूर एक ऐन्द्रिक धरातलपर उतार लाती है जहाँ निश्चित रूपसे वासनाका साम्राज्य होता है। उस धरातलपर कायिक अर्थ ही अर्थ रह जाते हैं और जितने कायातीत अर्थ हैं वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। मनुष्य उस धरातलपर आकर आत्मदर्शनकी लालसा छोड़ देता है या यों कहें कि उसके मनमें वह लालसा जाग ही नहीं पाती। वह लालसा तो ऐन्द्रिक प्रतीति और कायिक लिप्साओंके घूरे तले दबकर घुट जाती है। यह सब तो होता है, परन्तु सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि ठीक उस अवसर पर, जब समाज हीनतर वासनाओंमें पूरी तरह जकड़ जाता है, सभ्यता उसकी नग्न कायापर औपचारिकताकी चादर डाल देती है जिसके नीचे सारी गन्दगी जीती रहती है।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इस चादरका एक कोना उठा देते हैं और उस सत्यको उघाड़ देते हैं जो उस चादरके नीचे छिपा होता है। ज़माना, सभ्यताके दावेदार, उस चादरके पहरेदार और सोफ़िस्ट नैतिकता अर्थात् औपचारिकताके प्रहरी ऐसे लोगों को फ़िल्दी इण्ट्रोवर्ट्स कहकर निन्दित करनेको चेष्टा करते हैं। अलेन जिन्सबर्ग एक ऐसे ही 'फ़िल्दी-इण्ट्रोवर्ट'—बीभत्स-अन्तर्मुखी— कवि और कलाकार हैं। जिन्सबर्गका जन्म न्यूजर्सी के पीटरसन नगरमें एक यहूदी वामपक्षीय नास्तिक रूसी कुलमें हुआ था। उनके पिता शिक्षक थे और कवि भी। १७ वर्षकी अवस्था में, १९४५ में, वे कोलम्बिया विश्वविद्यालयमें भरती हुए। उसी समय उनके मस्तिष्कमें यह कल्पना घर कर गयी थी कि वे पीड़ित मानव-जातिके मसीहा-कवि हैं और वे इस विचारसे अभिमन्त्रित-से रहते थे कि उनका जन्म जगत्में प्रेम और मुक्त-हितका पक्ष लेनेके लिए हुआ है। उनमें जन्मसे ही सौन्दर्यानुराग रहा है। जिस समय अर्थ-संकटसे घिरकर वे होटलमें प्लेट धोते, कारखानोंमें वैल्डिंगका काम करते और रातके समय बोझा ढोते तब भी उनके

मनमें आत्मप्रतीति बनी रहती और वे कभी यह न भूलते कि उनका जीवन नग्न सत्यके उद्घाटनके लिए समर्पित है। हारलेमके छठे तल्लेमें अपने परिचितोंसे दूर जिन्सबर्ग लेखनमें जुट गये। उस समय वे प्रायः साग-भाजी खाकर रहते और सेण्ट जॉन आव दा क्रॉस तथा प्लेटो, ब्लैक और प्लोटिनसके साहित्यका अध्ययन करते। एक दिन खुली खिड़कीके सहारे वे अपने पलँगपर औंधे मुँह लेटे हुए ब्लैकके साहित्यका अध्ययन कर रहे थे, पढ़ते-पढ़ते उनके कानमें एक ध्वनि गूँज उठी—ब्लैककी सूर्यमुखी! जिन्सबर्गने लिखा है कि वह एक गहरी ध्वनि थी, मानो पिताकी आवाज़ हो, बहुत कोमल, बहुत वास्तविक, गम्भीर, गहन, मानो वह आवाज़ कह रही हो—"ओह, कालके आघात सहनेवाली सूर्यमुखी, जो गिनती रहती चरण सूर्यके, और खोजती उस अधूरे स्वर्ण उत्कर्षको, जहाँ पथिककी यात्राका होता समाहार, अभीप्सासे पीड़ित तरुण और हिमावरित पीत कुमारी जहाँ उठ-उठ कर अपनी क़ब्रोंसे, आकांक्षा करते उस उत्कर्षकी, जो लक्ष्य मेरी सूर्यमुखीका।" जिन्सबर्गने लिखा है कि उन्हें ऐसा लगा कि वह ध्वनि इच्छा और अभीप्साके बारेमें कुछ कह रही है। वह इच्छाका प्रत्युत्तर दे रही है। उसी समय उनके मस्तिष्कमें एक ज्योति-किरण चमक उठी और वे एक ऐसी गहरी, वास्तविक और आनन्दपूर्ण तन्द्रामें डूब गये जिसकी अनुभूति उन्होंने उससे पहले और उसके बाद कभी नहीं की। जिन्सबर्गको लगा कि उनके चारों ओर की प्रत्येक वस्तु पूर्णतया सजीव है, प्रत्येक वस्तुमें बुद्धि मूर्तिमान हो उठी है, प्रत्येक वस्तु खिड़कीके बाहर झाँक रही है और घरकी प्रत्येक ईंट तथा उससे बाहर धरतीसे खुले आकाश तक सूर्य, आकाशका नीलम तत्त्व, सब कुछ किसी कुशल स्रष्टाकी कृति है। जिन्सबर्गके रहस्यवादी मस्तिष्कपर ब्लैकका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अगले एक वर्ष तक योंही बहुत हलके होकर हारलेमकी गन्दी बस्तीमें रहे और जब एक प्रसिद्ध चोर और नशाखोर हरबर्ट हंच दल-बलसहित उनके कमरेमें आकर रहने लगा तो उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। चोर, भिखारियोंके वेषमें रहते थे, परन्तु जब जिन्सबर्गने यह देखा कि उनका कमरा आलीशान बरतनों और सुन्दर फ़र्नीचरसे भर गया है तो उनके मनमें बहुत ग्लानि हुई, तथापि हंचको अपने कमरेसे निकालनेके बजाय एक दिन वे स्वयं वहाँसे चले गये। उन्होंने अपनी सारी पाण्डुलिपियाँ एक कारमें भर लीं और वहांसे वे अपने भाईके घरकी ओर रवाना हुए। उन्होंने सोचा था कि वे वहाँ वह सब सामग्री छोड़कर कहीं दूर चले जायेंगे। परन्तु मार्गमें कार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी, किसी तरह जिन्सबर्ग उसमें-से निकलकर वहाँसे भाग खड़े हुए और उनकी सारी पाण्डुलिपियाँ कारमें पड़ी रह गयीं। उनके घर पहुँचनेके पाँच मिनटके भीतर ही पुलिसके छह सिपाही उनके दरवाज़ेपर पहुँचे और उन्हें बन्दी बनाकर ले गये। अगले दिन समाचार-पत्रोंमें उनकी गिरफ़्तारीका समाचार प्रकाशित हुआ जिसमें

उन्हें कोलम्बिया कॉलेजके अपराधियोंके मस्तिष्कके नामसे सम्बोधित किया गया। शीघ्र ही पुलिसने जिन्सबर्गको एक मानसिक चिकित्सालयमें भेज दिया, उसे यह शंका हुई कि जिन्सबर्ग विक्षिप्त हैं। अगले आठ महीने जिन्सबर्गने वहीं काटे, हाउलके विक्षिप्त पात्र कार्ल सुलेमानसे उनकी भेंट वहीं हुई। कार्लको ही लेकर उन्होंने हाउलमें लिखा है : "मैंने अपनी पीढ़ीके श्रेष्ठतम मस्तिष्कोंको पागलपनसे नष्ट होते, और भूखे, विक्षिप्त तथा नग्न रूपमें देखा है।" जिन्सबर्ग और कार्लकी यह भेंट बहुत मज़ेदार रही। कार्लने जिन्सबर्गसे पूछा, तुम कौन हो? जिन्सबर्गने कहा, मिश्किन। इसपर कार्ल बोले, और मैं किरिलोव हूँ। मानसिक चिकित्सालयसे निकलकर जिन्सबर्ग समीक्षकके प्रतिष्ठित धन्धेमें लग गये, उन्हें यात्राका अवसर मिला, उन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखीं परन्तु वे इतनेसे सन्तुष्ट होनेवाले न थे। इतना तो अवश्य था कि तथाकथित सभ्य समाज उन्हें अब तंग नहीं करता था, परन्तु जिन्सबर्गको इतनेसे सन्तोष नहीं था। १९५५ में वे सानफ्रांसिस्कोके एक मानसिक चिकित्सकके पास गये और एक वर्ष तक वहीं रहे। चिकित्सकने उनसे पूछा— 'आखिरकार तुम करना क्या चाहते हो?' जिन्सबर्गका एक ही उत्तर था—'मैं यह छोड़ देना चाहता हूँ—नौकरी, टाई, सूट, और घर, सभी कुछ छोड़ देना चाहता हूँ; और यह सब छोड़कर पूर्णतया मुक्त हो जाना चाहता हूँ। मेरी एक ही इच्छा है कि मैं कुछ लिखूँ, कुछ चिन्तन करूँ, ब्लैकके साहित्यका अनुशीलन करूँ, धुआँधार सिगरेट पीऊँ, और····और मनमें आये वह करूँ।' डॉक्टरने तुरन्त जिन्सबर्गसे कहा – 'तो तुम जा सकते हो और जो मनमें आये वह सभी कर सकते हो।' यह सुनकर जिन्सबर्ग घबरा गये। उन्होंने पूछा – 'किन्तु तब क्या होगा जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा और सुसज्जित कमरेमें मेरे शरीरपर एक गन्दा जाँघिया भर रह जायेगा, मुझे कोई भी प्यार नहीं करेगा, मेरे बाल सफ़ेद हो जायेंगे और लोग दयावश मेरे कमरेके फ़र्शपर रोटीके टुकड़े डाल जायेंगे?' डॉक्टरने जिन्सबर्गको मुसकराकर ढाढ़स दी, 'ओहो, प्यारे मित्र, उस सबकी चिन्ता मत करो, तुम बहुत आकर्षक हो और लोग सदा तुम्हें प्यार

एक हाउल मुद्रा

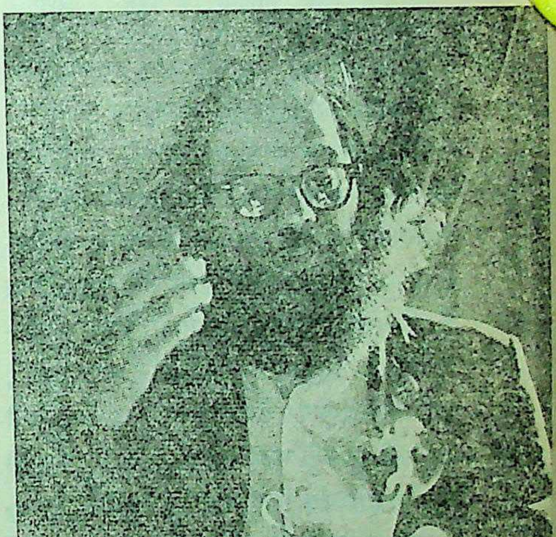

करेंगे ।' जिन्सबर्गको लगा जैसे वह डॉक्टर कोई देवदूत हो····डॉक्टर सच कहता है, वह भी जिन्सबर्गको चाहता है····और बस इतनेसे जिन्सबर्गमें एक नयी शक्ति जाग उठी, उन्हें लगा कि जैसे सब कुछ उनका अपना है। जिन्सबर्ग मानसिक कुण्ठाओंसे मुक्त हो गये। वे आधी रात गये बिस्तरमें उठ बैठते, कविता लिखते और सबेरेकी तनिक भी चिन्ता न करते। इसी समय जिन्सबर्गने अपनी प्रथम कृति 'हाउल'की रचना की। 'हाउल'का सम्पूर्ण प्रथम खण्ड वे अपराह्नसे सन्ध्या तक एक ही बैठकमें लिख गये। हाउलकी रचनाके समय जिन्सबर्गको अपने लेखनका मूलाधार प्राप्त हो गया—अपनी वास्तविक अनुभूतियोंका लेखन, अपनी ही आत्माके कानोंके लिए अपने जीवनका सार-संक्षेप, अपने भीतर जो कुछ है उसके स्रोतोंका मुख खोलकर उसकी सीधी अभिव्यक्ति, साहित्यकी पारम्परिक परिधिको लाँघकर तथा सामाजिक संचारकी मर्यादाओंकी सर्वथा उपेक्षा करके उन्मुक्त अभिव्यक्ति। कैरोवाकके शब्दोंमें, जिन्सबर्गने अपनी अन्तर्निहित चेतनाका रेखांकन करके उसे मुखर किया है। जिन्सबर्गने म्यूज़के इस कथनसे प्रेरणा ली है—'मूर्ख ! अपने हृदयके भीतर झांक और लिख', उनके मस्तिष्कपर कैरोवाककी यह चेतावनी छा गयी – 'जो कुछ कहना है अभी कह दो अन्यथा हमेशाके लिए मौन हो जाओ !' जिन्सबर्ग अपनी अनुभूतिकी तत्काल अभिव्यक्तिमें विश्वास रखते हैं और वे अपनी गुप्त व्यक्तिगत प्रतीतियोंकी अभिव्यक्तिको ही शास्त्रीय कला मानते हैं। जिन्सबर्गका विश्वास है कि कलाकी खोज कलाकार अपनी वास्तविक प्रकृतिके भीतरसे करता है—निरावरण होकर, निर्भय होकर, सामाजिक स्वीकृति और अस्वीकृतिकी ओरसे आँख मूँदकर। कलाकार प्रशस्ति-गायक अथवा परम्पराका अनुगामी नहीं होता। उसके भीतर जो कुछ है यदि वह परम्परासे भिन्न है तथा समाजकी प्रचलित रीति-नीति अथवा समाजके लोकाचारके विपरीत है तो भी वह उसकी अभिव्यक्ति करता है। यह अभिव्यक्ति ही कला है। यह कला नग्न सत्यका उद्‌घाटन करती है जो परम्पराकी दृष्टिमें असुन्दर हो सकता है, परन्तु कालान्तरमें वह सौन्दर्य-बोधकी प्रतीक बन जाती है। शायद जिन्सबर्ग भी यही कहते हैं। जिस दिन शिल्पी कलाकार एक हाथमें छेनी और दूसरेमें हथौड़ा लेकर चट्टानोंके किनारे जाकर बैठा होगा और जब उसने अपने मस्तिष्क और हृदयकी गहराईमें हुए स्पन्दनको अपने हाथोंके माध्यमसे पत्थरपर उतारा होगा तब इस अभिव्यक्तिके फलस्वरूप उभरनेवाली आकृति भले ही उस दिनके नैतिक मूल्योंके लिए असह्य रही हो, कालान्तरमें वह मनुष्य-जातिकी पुनीत निधि बन जाती है। अजन्ता और एलोराकी गुफाओंमें उभरी आकृतियाँ कलाकारोंकी आत्म-अभिव्यक्ति ही है और कुछ नहीं। कला कलेवरकी नहीं तत्त्वकी साधना है। कलाकार बाह्यका नहीं अन्तरात्माका दार्शनिक होता है। हृदयकी गति जैसे कारडियोग्रामपर रेखांकित होती है वैसे ही लेखक, चित्रकार, मूर्तिकार, शिल्पकार आदिकी आन्तरिक अनुभूतियाँ उनकी लेखनी, कूंची

अथवा छेनीके माध्यमसे रेखांकित होती है। गायककी अनुभूतियाँ स्वरोंमें, स्वर शब्दोंमें और शब्द गूँजती हुई तरंगोंमें, तरंगें स्पन्दनमें विलीन हो जाती हैं। यह विलय ही अनुभूतियोंकी अभिव्यक्ति है—जो भीतर है उसे बाहर ले आना, जैसाका तैसा ले आना, संभालकर ले आना, ऐसे ले आना कि उसे कोई चोट न लगे, उसका रूप न बिगड़े, न बदले। अनुभूतियोंका यथार्थ चित्रण ही कला है। कलामें कृत्रिमता नहीं होती, आवरणोंसे ढँकना नहीं होता, उसमें सहजता और वास्तविकता होती है। कलामें निरावरण करनेकी क्रिया समाहित है। कलाकार इस बन्धनसे नहीं बँधता कि लोग उसे फ़िल्दी इण्ट्रोवर्ट कहेंगे या हेल्दी एक्सट्रोवर्ट। बहिर्मुखी होनेसे अन्तर्मुखी होना अच्छा है, उसमें सत्य नग्न रूपमें दिखाई पड़े तो भले ही वैसा हो। कलाकार वह काँच है जिसमें समाजको अपनी परछाईं दिखाई देती है। काँच निर्दोष होता है, यों ही कलाकार भी गन्दा नहीं होता, गन्दी तो वह छवि होती है जो काँचमें प्रतिबिम्बित होती है। इण्ट्रोवर्ट अर्थात् अन्तर्मुखी व्यक्ति फ़िल्दी अर्थात् गन्दा नहीं होता। गन्दगी उस समाजमें होती है जिसकी छवि अन्तर्मुखी व्यक्तिके माध्यमसे सामने आती है। जिन्सबर्ग एक ऐसे ही अन्तर्मुखी कलाकार हैं। जिन्सबर्ग एक मुक्त विचारक और कवि रहे हैं। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यताको ज्योंका त्यों स्वीकार नहीं किया है। १९६० तक वे अमरीकामें प्रेम और शून्यके तत्त्वोंकी विवेचना तथा काव्य-साधनामें निमग्न रहे। उनकी खोजका विषय अतीन्द्रिय सौन्दर्य और शाश्वत प्रेम है। वे अपनी इस खोजमें शून्यतक जा पहुँचते हैं, और पाश्चात्य सभ्यता जिस प्रकार ऐन्द्रिक जीवनको लुक-छिपकर जीती है उस पद्धतिको वे अस्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि ऐन्द्रिक शक्तियोंको आध्यात्मिक

चिकित्सकने उससे पूछा—'आखिर-तुम करना क्या चाहते हो?' जिन्सबर्गका एक ही उत्तर था—'मैं यह छोड़ देना चाहता हूँ—नौकरी, टाई, सूट, और घर, सभी कुछ छोड़ देना चाहता हूँ; और यह सब छोड़कर पूर्णतया मुक्त हो जाना चाहता हूँ। मेरी एक ही इच्छा है कि मैं कुछ लिखूँ, कुछ चिन्तन करूँ, ब्लैकके साहित्यका अनुशीलन करूँ धुआँधार सिगरेट पीऊँ, और···और मनमें आये वह करूँ।' डॉक्टरने तुरन्त जिन्सबर्गसे कहा—'तो तुम जा सकते हो और जो मनमें आये वह सभी कर सकते हो।' यह सुनकर जिन्सबर्ग घबरा गये। उन्होंने पूछा—'किन्तु तब क्या होगा जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा और सुसज्जित कमरेमें शरीरपर एक गन्दा जाँघिया-भर रह जायेगा, मुझे कोई भी प्यार नहीं करेगा, मेरे बाल सफ़ेद हो जायेंगे और लोग दयावश मेरे कमरेके फ़र्शपर रोटीके टुकड़े डाल जायेंगे?' डॉक्टरने जिन्सबर्गको मुसकरा ढाढ़स दी, 'ओहो, प्यारे मित्र, उस सबकी चिन्ता मत करो, तुम बहुत आकर्षक हो और लोग सदा तुम्हें प्यार करेंगे।'

शक्तियोंकी भाँति ही स्वीकार किया जाना चाहिए और नैतिकताको केवल यौन सम्बन्धों अथवा यौन मर्यादाओं तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टिमें मूल प्रश्न कुछ और है तथा वे चाहते हैं कि संसारके लोग नैतिकताको सामाजिक अस्तित्वकी दृष्टिसे देखना आरम्भ करें।

जिन्सबर्गका उदय अमरीकामें परासृष्टिवादी कविके रूपमें हुआ। वे उस कायेतर चेतनाका गान करते रहे हैं जिसका उद्गमस्थल भारत है। १९६१ में जब वे विश्वयात्रापर निकले तो पीरू, गुवाटेमाला, टेंजियर, पेरिस, हवाना, प्राग और आर्कटिककी यात्राके पश्चात् भारत भी आये। लॉर्ड बायरनके पश्चात् सम्भवतः जिन्सबर्ग पहले ऐसे कवि हैं जिसने इतनी लम्बी और मुक्त यात्रा की हो। गुवाटेमालामें उन्होंने ककाओकी फ़सल काटनेमें भाग लिया और वे फूसके झोंपड़ेमें रहे। वे उस परमात्म तत्त्वकी खोजमें भारत आये जो उनके काव्यका मूलाधार रहा है। अपने पत्रमें उन्होंने एक मित्रको लिखा— 'मंगलवारकी सारी रात गंजभूमके साधुओंके साथ श्मशानमें बितायी। मेरे जूते खो गये और मैं साधुओंके संग एक चितासे दूसरी चिता तक नंगे पाँव और बिखरे बाल लिये घूमता रहा, यह गहरे उन्मादकी अवस्था थी, एक महान् रात।'

यह सच है कि भारतकी पुलिसने जिन्सबर्गकी यात्राके प्रयोजनोंको नहीं समझा और वह उस परासृष्टिवादी शोधकके मूल मन्तव्योंसे अनभिज्ञ रहनेके कारण उनके प्रति कटु हो उठी, तथापि इतने-भरसे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि अलेन जिन्सबर्ग भ्रष्ट और दुराचारी हैं। वे जानते थे कि आध्यात्मिक तत्त्वोंकी पकड़ पुलिसके बूतेकी बात नहीं है अतः उन्होंने गृह-मन्त्रालयके सामने सारा मामला रख दिया और अन्ततः उन्हें बौद्धिक प्रयोजनोंके आधारपर लम्बे समय तक भारतमें ठहरनेकी अनुमति दी गयी। वे भारतको अपना आध्यात्मिक घर मानते हैं। यहाँ आकर उन्होंने गुरुकी खोज आरम्भ की और कई दिन तक गुरु, गुरु-मन्त्रका जप करते हुए भटकते रहे। अन्ततः उन्हें एक महिला-गुरु प्राप्त हुईं जिन्होंने उन्हें उपदेश दिया कि वे अपने प्रथम गुरु ब्लैककी उपासना करें। जिन्सबर्गकी सारी गाथा सुनकर उनकी गुरुको उनपर दया आयी और वे बोलीं—'आह, कैसा आहत, कैसा आहत!' जिन्सबर्गके हृदयमें इस करुणापूर्ण वाक्यका मर्म गहरा उतर गया और उन्होंने उसकी अन्तरात्माको पहचान लिया। वे हिमालयकी कन्दराओंमें नंगे घूमते रहे और वहाँसे तिब्बत जाकर साधुओं और महात्माओंसे आध्यात्मिक सत्योंका ज्ञान प्राप्त करते रहे। अपने इस प्रवासमें उन्होंने प्राणायाम और योगका अभ्यास किया। वे साधुओंके साथ बैठकर गाँजा और चरस पीते, मन्त्रोंका सस्वर पाठ करते और ओम्का इस प्रकार जाप करते कि वह उनके ब्रह्माण्डमें शाश्वत स्वर बनकर गूँजने लगता। उन्होंने भारतमें जिस नादब्रह्मकी उपासना की और उसके जिस अक्षरस्वरूपको पहचाना, वह आज भी उनके जीवनका अभिन्न अंग बना हुआ है। आज

भी जब वे अमरीकाके विश्वविद्यालयोंमें कविता-पाठ करने अथवा भाषण देने जाते हैं तो वहाँ खड़े होकर वेदोंकी ऋचाओं और तिब्बती बौद्ध मन्त्रोंका पाठ ऐसे स्वरमें करते हैं जिसकी अनुगूँजसे उनके श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं और उनके चारों ओर अतीन्द्रिय वातावरण व्याप्त हो जाता है।

भारतसे वे जापान गये जहाँ उन्होंने बौद्ध-धर्मके जापानी स्वरूपका दर्शन किया। १९६३ के वसन्तमें अमरीका लौटनेके एक दिन पहले वे क्योतो-तोक्यो एक्सप्रेसमें यात्रा कर रहे थे, उसी समय अचानक उन्हें एक अन्य अनुभूति हुई जिसे वे अपनी द्वितीय बोधि मानते हैं। इस बारेमें उन्होंने लिखा है—'अनायास मुझे रुलाई आने लगी और तत्काल ऐसी प्रतीति हुई कि समूचे नैतिक प्रयासकी सिद्धि इस बातमें निहित नहीं है कि मैं अपने अस्तित्व अथवा मनस्का विस्तार करूँ, और मुझे लगा कि मैं जैसा हूँ वैसा ही रहनेमें कोई हानि नहीं है। समूचा आदर्शवादी दृष्टिकोण लुप्त हो गया, मुझे लगा कि मैं एक ऐसे शरीरमें स्थित हूँ जो मरण-धर्मा है। इसके पश्चात् मैं गाड़ीमें चारों ओर देखने लगा, मुझे लगा कि सभी लोग मरणधर्मा हैं और मेरे चारों ओर निर्बलता तथा पीड़ा छायी हुई है, फिर भी वे सब बहुत प्यारे लगते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपमें विलक्षण है, उसमें दुर्बलता भरी हुई है और वह एक-न-एक दिन मर जानेवाला है। तत्काल, रोते-रोते ही मैंने अपनी नोटबुक निकाली और प्रत्येक प्रतीति तथा समूची चिन्तनधाराको शीघ्रतम लिपिबद्ध कर डाला। बादमें वह सब कुछ एक कविताके रूपमें प्रसिद्ध हुआ जिसको मैंने 'परिवर्तन' नामक शीर्षक दिया। उसका एक अंश इस प्रकार है :

अपनी ट्रेन-सीटपर
मैंने परित्याग किया
समूची सत्ताका, शक्तिका
जिससे रह सकूँ जीवित,
अन्ततः मुझे मरना होगा।

१५ वर्षोंसे उन्होंने जिस ब्लैककी उपासना की थी और जिस परासृष्टिवादकी साधनामें वे निमग्न थे वह सब उस क्षण लुप्त हो गयी और जिन्सबर्ग पूर्वकी यात्रासे दिवालिया होकर लौटे। उन्हें लगता था कि कवियोंका क्षेत्र परासृष्टि नहीं भौतिक सृष्टि है, वह सृष्टि जिसमें प्रत्यक्ष दर्शन हो सके तथा जीवनके वर्तमानके साथ ऐन्द्रिक प्रतीतियोंके द्वारा प्रत्यक्ष सम्पर्क साधा जा सके। वे अब अपने-आपको अपने काव्यके समस्त रहस्यवादी और आध्यात्मिक प्रभावोंसे मुक्त अनुभव करने लगे।

ट्रेन-सीट-दर्शनके बावजूद आज भी जिन्सबर्ग परासृष्टिवादी तत्त्वोंके प्रभावसे सर्वथा मुक्त नहीं हो सके हैं। उस घटनाको तीन वर्ष हो गये हैं फिर भी उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि मानो वे बनारसमें जन्मे और पलकर बड़े हुए हों। आज भी वे शिव और विष्णु-स्तोत्रका पाठ करके अपने श्रोताओंको मन्त्रमुग्ध कर देते हैं, कर्म-सिद्धान्तमें उनका अटूट विश्वास है तथा उन्होंने पाश्चात्य जनताको यह बता दिया है कि उन्हें अपने

भाग्यका सामना करना ही होगा।

जिन्सबर्ग मानुषी संस्पर्शके भूखे हैं। वे केवल भावनात्मक संसर्ग और सम्पर्क अथवा संवेदना एवं सहानुभूतिसे ही सन्तुष्ट नहीं होते। उनका मत है कि कोमलता मानवीय कायाका भोजन है। यदि बच्चोंको मनुष्य-कायाका स्पर्श न हो तो उनका विकास नहीं होगा और वे मर जायेंगे। जिन्सबर्ग कहते हैं कि जनसंख्यामें अत्यधिक वृद्धि हो जाने तथा यातायातके साधनोंकी कृत्रिमता एवं उनके केन्द्रीयकरणके कारण मनुष्योंके बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक हो गया है, उसके बिना मनुष्योंमें मानसिक कुण्ठाएँ उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है।

आकार, शून्य और अस्तित्व : जिन्सबर्ग प्राय: अपने श्रोताओंको जापानी भाषामें कहते हैं—'शिकी फू आई कू कू फू शिकी शिकी सोकू जे कू कू सोकी जे शिकी'—'आकार शून्यसे भिन्न होता नहीं, न भिन्न शून्य होता आकारसे, आकार होता है शून्य, और शून्य आकार है।' आकार और शून्य, जीवन और मरण ये दोनों ही उनके लिए सत्य बन गये हैं, इसलिए नहीं कि वे आकारसे घबड़ाते हैं अथवा वे पलायनवादी हैं वरन् इसलिए कि वे अस्तित्वमें विश्वास रखते हैं और भारतीय दार्शनिकोंकी भाँति यह मानते हैं कि जीवन और मरण, आकार और शून्य, दोनोंमें एक अदृश्य अस्तित्व विद्यमान है, जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। जिन्सबर्ग उस अस्तित्वको पहचानकर उसमें जीनेका सन्देश दे रहे हैं। वे चाहे नग्न मानवता, यौन मुक्ताचार और गाँजेका प्रदर्शन करते हों अथवा बर्कले या कनसासमें काव्य-पाठ करते हों, उनके मनमें एक ही वासना बनी रहती है—और वह यह कि मनुष्य अपने अस्तित्वके शाश्वत रूपको पहचाने, वह सभ्यताके कृत्रिम आवरणोंको चीरकर मानसिक कुण्ठाओंके निराकरणकी दिशामें आगे बढ़े। वे विलासिता-प्रदर्शन और खर्चीले जीवनमें तनिक भी विश्वास नहीं रखते। हाउलके १६ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, तथा जिन्सबर्गको अपनी यात्राओंसे भी काफ़ी पैसा मिल जाता है फिर भी वे अपने ऊपर तीन हज़ार डॉलर प्रतिवर्षसे अधिक व्यय नहीं करते। अस्तित्वमें उनकी आस्था बहुत दृढ़ है तथा वे मानव-जातिकी एकता और स्वतन्त्रतामें गहरा विश्वास रखते हैं। वे साम्यवादी नहीं हैं फिर भी सर्वहाराके समर्थक हैं और ऐसा मानते हैं कि संसारकी अशान्तिका मुख्य कारण आत्यन्तिक भौतिक जीवन और विभिन्न प्रकारके वाद हैं। पिछले दिनों अपनी कनसास-यात्राके समय उन्होंने एक नयी कविता लिखी जिसमें वादोंके संघर्षपर एक गहरा व्यंग किया गया है :

अहंवादी विचिता, अभिमानी विचिता ने
पहला पत्थर फेंका—
जिसने मेरी माँ की हत्या कर दी,
वह साम्यवादी—अकाम्यवादी संघर्षों की
मनोग्रन्थि से पीड़ित होकर
मर गयी पागलखाने में,
एक लम्बी दशाब्दी पूर्व।
मरने से पहले वह
करती थी शिकायत

कि उसके सिर में
लोक-संचार के तारे करते हैं चुभन,
देते पीड़ा

और अदैवी राजनीतिक ध्वनियाँ
परिव्याप्त हो वायुमण्डल में,
नष्ट करता उसके
कोमल नारीत्व को।
अनेक अन्यों ने झेली है—
मृत्यु या विक्षिप्तता
हाइड्रोलिक के संक्रमण से
– – – हो चुका पर्याप्त अब।
अब युद्ध का होता समाहार—
उन आत्माओं को छोड़कर शेष सबके लिए
जो बन्दी हैं नीग्रो–नगरों में
और आकुल हैं पाने को
तुम्हारी कोमल श्वेत काया का निर्मल प्रेम
ओ विचिता के बेटो !

न जाने कैसे आवरण-भंजक और नग्न सभ्यताके पुजारी जिन्सबर्गको कनसास-विश्वविद्यालयमें गगेनहाइम-फ़ेलो नियुक्त कर दिया गया है, किन्तु इससे उनपर कोई बन्धन नहीं लगता और वे विश्वविद्यालयके सभा-भवनमें अमिश्रित, शुद्ध और निरावृत मनुजताका प्रतिपादन करनेवाली कविता पढ़ते-पढ़ते अपनी पतलून ढीली कर देते और बालकोंकी-सी तरह [illegible] नंगे हो जाते हैं। जो लोग उनके इस कार्यको देखकर उन्हें बीभत्स और दुराचारी कहते हैं वे शायद यह नहीं जानते कि जिन्सबर्ग इस प्रकार आवरणोंसे ढँकी पाश्चात्त्य सभ्यतापर एक करारी चपत लगाते हैं, यह बताते हैं कि नग्नता नहीं अर्द्धनग्नता बीभत्स होती है, और समाजको इस नग्न सत्यसे परिचित कराना चाहते हैं कि नैतिकता कोई भौतिक विषय नहीं है, उसे केवल बाह्य आचरणों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, यौन-विषय नैतिकता-अनैतिकतासे परे कायाका सहज धर्म है और उसे उसी रूपमें स्वीकार किया जाना चाहिए। जिन्सबर्गकी दृष्टिमें नैतिकताका मूलभूत तत्त्व यह है कि मानवीय एकता, प्रेम और अस्तित्वकी शाश्वत महत्ताको स्वीकार किया जाये। इसीसे अभिप्रेरित होकर वे संयुक्त राज्य अमरीकाके प्रतिरक्षा मन्त्रीको पत्र लिखते हैं: 'प्रिय मैकनमारा, पहली बात तो यह है कि तुम शान्त हो जाओ, किसीके भी मौलिक अस्तित्वपर किसी प्रकार कोई बुनियादी संकट नहीं है, तुम्हारे अस्तित्व-पर भी नहीं, तुम भी सुरक्षित हो, ठीक वैसे ही जैसे वह सुरक्षित है जिसको हमने अपना शत्रु मान लिया है। वह भी सुरक्षित है।'

■ ■

खादी मन्दिर,
बीकानेर (राजस्थान)

प्यारे बच्चो !

खुशखबरी

बच्चो ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ । अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं । माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उन्हें उबाल डालिये । जब वह गरम रहें, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरी मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किशमिश तथा अन्त में हरी धनियों की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । इसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

इन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उसमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

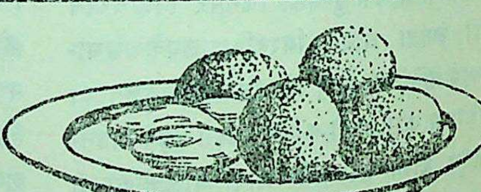

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया ।

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

PCRI : 407

कृष्णबलदेव वैद

कहानी

त्रिकोण

अचानक मेरे मुँहसे निकल गया—"सुनो, मैं बरसोंसे तुम्हारे लिए तड़पता चला आ रहा हूँ।"

मेरा लहजा और मेरे शब्द एक नंगी मुसकराहटमें लिपटे हुए थे। मुझे उनके बासीपनपर शर्म शायद महसूस होती, लेकिन वाक्य मुँहसे निकलते ही मेरा जिस्म एकदम झनझना उठा था, गोया मैंने भीड़में किसी औरतकी छातियोंको दबा दिया हो, या किसी दुकानसे कोई बेकार चीज़ उठाकर जेबमें डाल ली हो। ये दोनों हरक़तें मैं चन्द एक बार कर चुका हूँ, लेकिन किसीके लिए बरसोंसे तड़पते चले आनेका दावा करनेका वह पहला मौक़ा था। मुझे बहुत अच्छा महसूस हुआ। महसूस हुआ, किसी बर्फको तोड़ डाला हो। लेकिन मेरी आँखें झुकी रहीं कि मुझे अन्देशा था, वह मुसकरा रही होगी या लजा रही होगी, या फिर गहरी निगाहोंसे मेरी तरफ़ देख रही होगी। मैं अपने अन्देशोंको आज़माइश नहीं करना चाहता था। मैं अपने जिस्मकी झनझनाहट महसूस कर रहा था, और अपने डरकी तपिश।

वह मेरे एक बहुत क़रीबी दोस्तकी बीवी थी। ख़ूबसूरत, लेकिन इतनी ही जितनी कि एक बहुत क़रीबी दोस्तकी बीवी हो सकती है। हर तीसरे-चौथे रोज़ उनसे मुलाक़ात होती रहती थी। अनगिनत बार अकेले होनेका अवसर भी मिल चुका था। और कई बार इधर-उधर घूमनेका भी। यह भी नहीं कि उस रोज़से पहले कभी उसके बारेमें जिस्ममें कोई ख़्वाहिश न उठी हो। ख़्वाहिश किस औरतके बारेमें नहीं उठती। ख़ुद अपनी बीवीके लिए भी तो कभी-कभी जिस्म बेहाल हो ही जाता है। यह भी नहीं कि मेरी बीवी बदसूरत या बदमिज़ाज या निपट घरेलू हो, या उसमें कोई इतनी बड़ी या ऐसी ख़ामियाँ हों जो दूसरी साधारण औरतोंमें नहीं होतीं, और जिनसे मन-ही-मन बरसों तक असन्तुष्ट रहते चले आनेके बाद उस रोज़ अचानक मैंने अपने दोस्तकी बीवीसे इतना भारी और बासी झूठ बोल दिया हो।

जो भी हो, बात मुँहसे निकल चुकी थी, मैं अपने जिस्मकी झनझनाहट महसूस कर रहा था, और अपने डरकी तपिश, और उसके जवाबका इन्तज़ार।

"बरसोंसे ?" वह बोली।

अब मुझे याद नहीं कि उसका लहजा कैसा था।

"हाँ, पिछले पाँच बरसोंसे।" मैंने कहा, मानो एक-एक दिनका हिसाब कर रखा हो।

पाँच बरस पहले मैंने उसे पहली बार देखा होगा, जब शायद उसकी शादी नयी-नयी हुई थी और उससे हमारी दोस्ती भी।

इस तरह बिला झिझक किसी भी सवालका जवाब दे पाना मेरे लिए मुश्किल होता है। अब मेरी निगाहें उसके पाँवोंसे उठकर उसके हाथोंपर जा टिकी थीं। वे हाथ मुझे देख रहे थे और उनका रंग बदलता चला जा रहा था।

अगर मैंने उसके सवालका जवाब ख़ामोशी-सी दे दिया होता तो बात शायद वहींसे खत्म हो जाती। अगर मेरे जवाबके जवाबमें वह हँस दी होती तो भी शायद मैं टल जाता। अगर उस समय मेरा दोस्त या मेरी बीवी आ धमकती तो शायद मैं खामोश खड़ा रहता और मेरे डरका रुख बदल जाता। अगर उसने मेरे झूठको झँझोड़कर कह दिया होता—'देखो, बकवास मत करो।' तो मैं शायद खिसियाकर हँस देता। यह तो मैं शायद तब भी न कह पाता कि बिगड़ो मत, मैं तो मज़ाक़-मज़ाक़में तुम्हारा इम्तिहान ले रहा था। मैं उस समय उसका इम्तिहान ले रहा था न अपना। यह भी नहीं कि मैंने कभी उससे ऐसा-वैसा मज़ाक़ न किया हो या सिर्फ़ अपने दोस्त या अपनी बीवीके सामने ही किया हो। कहना मुश्किल है कि क्यों, लेकिन उस रोज़से पहले कभी वैसी झनझनाहट उसके बारेमें महसूस नहीं हुई थी, हालाँकि वह उस समय रातके खानेका सामान ठीक कर रही थी, और उसका लिबास सादा और घरेलू था। यह भी नहीं कि मेरे भीतर कहीं गहरेमें घरेलू लिबास और रसोईमें उलझी हुई सीधी-सादी औरतोंके लिए कोई पुरानी दबी-घुटी ख्वाहिश हो। असलीयत यह है कि वह सीधी-सादी औरतोंमें-से नहीं। लेकिन इससे यह अन्दाज़ा लगा लेना भी ग़लत होगा कि मुझे पेचीदा औरतें पसन्द हैं।

असलीयत कुछ भी क्यों न हो, हुआ यह कि पाँच बरसोंसे उसके लिए तड़पते चले आनेका दम भर लेनेके साथ ही मैंने आगे बढ़कर, बड़े आरामसे, उसे परे हट जाने या चिल्ला उठनेका समय देते हुए, उसके जिस्मको अपनी बाँहोंमें कस लिया। वह कसमसायी नहीं, लेकिन वह कसाव एकतरफ़ा था। उस कमीको नज़र-अन्दाज़ करते हुए मैंने उसके होठोंको अपने होठोंसे टटोलना खोलना शुरू कर दिया, और मेरी आँखें बन्द हो गयीं। फिर मैंने उसके बदनको सख्त होते, पिघलते, महसूस किया, और मेरा तनाव और बढ़ गया। उस समय अगर ग़लतीसे मेरी आँखें न खुल जातीं तो मुझे उसकी खुली आँखोंमें अविश्वास और संकोचके काँच चमकते

दिखाई न देते। और मुझे ग़ुस्सा आता न यह ख्वाहिश होती कि उसी समय उन काँचों-को चूर-चूर कर दूँ या उस सारी स्थितिको ! चिल्ला-चिल्लाकर कहूँ कि मैंने झूठ बोला था, कि मैं कभी किसीके लिए तड़पा हूँ न तड़पना चाहता हूँ, कि उस बकवासका कोई मतलब नहीं था, कि किसी भी बकवासका कोई मतलब नहीं होता, कि सब सच दरअसल झूठे होते हैं, कि सब झूठ किसी हद तक सच्चे होते हैं, और न जाने क्या-क्या बक डालनेकी ख्वाहिश हुई थी।

लेकिन मेरा जिस्म जल रहा था, और कुछ ही क्षणोंमें मेरा ग़ुस्सा भी जल कर राख हो गया होगा। मै नहीं कह सकता क्यों, लेकिन अब उसकी आँखें बन्द थीं, और उसके होंठ प्रस्तुत थे। उसके बालोंमें-से सूखी घास-की-सी खुशबू आ रही थी, और यह याद करनेपर कि वह मेरे एक बहुत क़रीबी दोस्त की बीवी है, कि मेरा दोस्त किसी भी क्षण बाहरसे वापस आ सकता है, मुझे बहुत डर महसूस हुआ था, और मैंने उसे और सख्तीसे कस लिया था।

अब वे सब कांच चकनाचूर हो चुके थे। उसके मुँहसे भूखी-सूखी आवाजें निकल रही थीं। मेरा झूठ और मेरी शर्म मर चुके थे। हमारे जिस्म एक दूसरेको मथ रहे थे। वह कोई भी औरत हो सकती थी और मैं कोई भी मर्द। हम कहीं भी हो सकते थे। उस समय कोई भी आ सकता था, कुछ भी हो सकता था। हमारे जिस्म बाग़ी हो चुके थे।

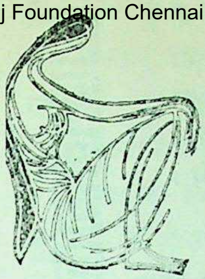

जिस्मकी बग़ावत मेरे लिए नहीं। ऐसी बात शायद पुरुष ही सोच सकता है। मैं इतना जानती हूँ कि अगर मैंने उसे प्रोत्साहन न दिया होता तो उसे वह झूठ बोलनेका साहस न हो पाता जिसके आधारपर शायद उसने सोचा हो कि वह उस शाम मेरे साथ सफल हो सका था। यह भी नहीं कि मैं एक अरसेसे उसके बारेमें कोई ख्वाहिश पालती चली आ रही थी। यह भी नहीं कि उस शाम मैंने उसपर दया कर दी हो। इतना ज़रूर है कि अगर उसकी जगह कोई हँसता-खेलता, हट्टा-कट्टा उद्दण्ड पुरुष होता तो मैं उसके पहले इशारेपर ही भड़क उठती। यह नहीं कि मुझे हँसते-खेलते आदमी पसन्द नहीं। मेरा अपना पति बहुत हँसोड़ है, और मुझे उससे कोई खास शिकायत नहीं। सिर्फ़ शारीरिक तृप्तिकी बात मैं नहीं कर रही। मेरा शरीर तृप्त है। लेकिन उसका महत्त्व मेरे लिए अब इतना नहीं रहा जितना कि शायद पहले कभी रहा हो। अब उसकी आदत-सी बन गयी है। यह भी नहीं कि अब मुझे उसमें कोई दिलचस्पी न रही हो। मैं न जाने क्या कहना चाहती हूँ। शायद यही कि यह जानते हुए भी कि वह झूठ बोल रहा था, मैंने उसकी

वह कोई भी औरत हो सकती थी और मैं कोई भी मर्द। हम कहीं भी हो सकते थे। उस समय कोई भी आ सकता था, कुछ भी हो सकता था। हमारे जिस्म बागी हो चुके थे।

●

हर पत्नी कहीं-न-कहीं अपने पतिको गहरी चोट पहुँचानेकी ख्वाहिश दबाये रहती है। जरूरी नहीं कि उसे कोई खास शिकायत हो, या किसी दूसरे आदमीसे कोई खास लगाव।

●

मेरे लिए इस सबका कोई महत्त्व नहीं, लेकिन मैं कभी उन्हें या किसी औरको कुछ बताऊँगा नहीं, कि बतानेसे सब कुछ बदल जायेगा, घिसकर आम हो जायेगा, मामूली, नहीं मैं बताना नहीं चाहता……

बातपर हैरान होने, उसपर विश्वास कर लेनेका अभिनय किया था। शरीरपर संयम मेरा था, शायद इसीलिए मैं उसे भरमा सकनेमें सफल हुई थी। उसने शायद यही समझा हो कि उसके सरासर झूठ और उसके खौलते हुए तनावने मुझे गरमा दिया होगा। सचाई यह है कि मैं क़रीब-क़रीब सारा समय अपने पतिके बारेमें ही सोचती रही थी। मेरे पतिको मुझपर विश्वास है। शायद उसपर भी हो। मज़ाक़की बात दूसरी है। मज़ाक़में मेरा पति अपने हर दोस्तपर शक करता है। शायद मुझे खुश करनेके लिए। या शायद इसलिए कि अब और बातें आपसमें कम हो पाती हैं। मैं अपने सम्बन्धोंकी एकरसताकी शिकायत नहीं कर रही। सभी सम्बन्ध कुछ समय बाद एकरस हो ही जाते हैं। यह भी नहीं कि मैं आँखें बन्द किये उसकी बजाय अपने पतिको अपने साथ देख रही थी या उन दोनोंका आपसमें मुक़ाबिला कर रही थी। मेरी आँखें बन्द थीं लेकिन मैं एक क्षणके लिए भी नहीं भूल पायी कि वह मेरे पतिका दोस्त है, कि उसकी अपनी पत्नी है, कि उसकी पत्नीसे अगर मेरी दोस्ती नहीं तो दुश्मनी भी नहीं, कि अगर मेरा पति उस समय आकर हमें पकड़ ले तो उसे बहुत चोट पहुँचेगी। हर पत्नी कहीं-न-कहीं अपने पतिको गहरी चोट पहुँचानेकी ख्वाहिश दबाये रहती है। ज़रूरी नहीं कि उसे कोई खास शिकायत हो, या किसी दूसरे आदमीसे कोई खास लगाव। मुझे अपने पतिसे कोई खास शिकायत नहीं, न ही उसके दोस्तसे कोई खास लगाव ही है। उसके बारेमें उस शामसे पहले कोई स्वप्न बुने हों, ऐसी बात भी नहीं। मेरा ज़्यादा समय स्वेटर बुननेमें ही बीत जाता है, और यह ठीक भी है। अपने पतिको चोट पहुँचानेकी ख्वाहिशका आभास भी मुझे साफ़ तौरपर उसी समय हुआ था जब मैं उसकी बाँहोंमें कस ली गयी थी। आँखें बन्द करके मैंने अपने-आपको उस स्थितिमें देखे जानेकी कल्पना की थी, और डरसे मेरा शरीर उत्तेजित हो उठा था। निरावरण किया जाना मुझे अच्छा लगा था। मेरी आँखें बन्द थीं, और मेरे मुँहसे आवाज़ें

निकल रही थीं, और मैं बराबर इस इन्तज़ारमें थी कि ऊपरसे मेरा पति आ जाये। यह सोचकर ही मैं बेक़ाबू हो सकी थी। मैं देखना चाहती थी कि मुझे उस स्थितिमें देखकर वह कैसे पथरा जायेगा, फिर कैसे उसकी हैरानी गुस्सेमें बदलती जायेगी, फिर उसके गुस्सेका विस्फोट किन शब्दों और किस हरकतमें होगा, मैं उसपर हँस सकूँगी या नहीं। मैंने उन मस्तीके क्षणोंमें बादकी कल्पना भी की थी—कितने दिनों तक कितनी बार वह मुझसे पूछता रहेगा, मैं उसे कभी कुछ बताऊँगी और कभी कुछ, अगर मुझे गर्भ हो गया तो उस सन्तानके बारेमें उसका रुख क्या होगा, कभी मरनेसे पहले मैं अपने उस बच्चेको सच्ची बात बता सकूँगी या नहीं। मैंने उस थोड़े-से समयमें बहुत दूर तक सोचा था, और मेरा शरीर प्रस्तुत और व्याकुल और अन्तमें शान्त हो सका था। साथ ही मुझे अपने पतिसे सुनी एक घटना याद आ गयी थी। कुछ ही दिन पहले उसने बताया था कि एक आदमीने अपनी पत्नीको किसी ग़ैर आदमीके साथ ऐन मौक़ेपर पकड़ लिया था, जबकि वे दोनों बुरी तरह तड़प रहे थे, एक साथ दूसरेसे कहे जा रहे थे—आओ, आओ, आओ!—और वह पति सुन्न खड़ा सब देखता-सुनता रहा था और जब दोनों अलग हुए थे तो पतिने मेज़पर पड़ा एक गुलदस्ता उठाकर फ़र्शपर दे मारा था, और कमरेसे बाहर निकलते समय उसे अपनी पत्नीकी हँसी सुनाई दी थी।

यह सोचते-सोचते मैं दूसरी बारके लिए तैयार हो चुकी थी, और जब उसने कहा था—'सुनो, अब हमें उठकर सँभल जाना चाहिए'—तो मुझे ख़ूब हँसी आयी थी।

जिस्मकी बग़ावत मेरे लिए नहीं।

कहा जा सकता है कि मैं बहुत विकृत हूँ, कि मैं भीतर कहीं अपने पतिसे असन्तुष्ट हूँ, कि उससे कोई शिकायत न होनेकी बात ग़लत है। कहा कुछ भी जा सकता है। मैं कोई सफ़ाई पेश नहीं करना चाहती। इतना जानती हूँ कि उस शाम जो हुआ उससे मैं खुश हूँ, क्षुब्ध नहीं। मैं किसी अपराध-भाव से पीड़ित नहीं। जो हुआ ठीक ही हुआ और यह सोचकर कि मेरे पतिको कुछ मालूम नहीं, कि मैं कभी भी उसे बताकर तड़पा सकती हूँ, कि मैं कभी भी उसे नहीं बताऊँगी, कि जो उस शाम हुआ वह फिर कभी, किसी और से भी हो सकता है—ये सब सोचकर मुझे बहुत इतमीनान मिलता है, बहुत अच्छा लगता है, एक ऐसी मुसकराहट मेरे होंठों-पर खिल आती है जो नितान्त मेरी अपनी है, जिसे मेरे पतिने न कभी देखा है, न देख पायेगा। मैं खुश हूँ।

मैं भी खुश हूँ, अपनी जगह, अपने तरीक़ेसे अपनी उदारतापर नहीं, अपनी चालाकी

पर भी नहीं, इसलिए भी नहीं कि मैं खुद 'अपवित्र' हूँ, बस यूँही, शायद इसी बातपर कि देखकर जो प्रतिक्रिया उठी या सोचकर जो उठती है उससे मुझे आश्वासन मिलता है कि मैं भिन्न हूँ, शायद इस भिन्नताके एहसाससे जो आत्मसन्तुष्टि मिलती है, उसकी तहमें मेरा अहम् ही हो, शायद उसी अहम्को बनाये रखनेके लिए ही मैं खुश हूँ, शायद अहम्का सहारा मैं सिर्फ़ इसीलिए ले रहा हूँ ताकि मुझे दुःख न पहुँचे, शायद मुझे दुःख पहुँचा हो और इसीलिए मैं खुश हूँ, शायद मैं अपबे दुःखको दबाकर नहीं, उसे महसूस करके .खुश हूँ, शायद मैं अपने किसी तर्कको अकाटयता-पर खुश हूँ, शायद मैं अपनी बीमार ज़हनियत-पर खुश हूँ, शायद मेरे भीतर कहीं कभी उन दोनोंको यह बता डालनेकी ख्वाहिश हो कि मैं सब जानता हूँ कि मैंने सब देखा था, कि उससे मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, कि मैं उन दोनोंसे ऊँचा हूँ, कि मैं अब भी उन्हें उसी तरह चाहता हूँ, कि मैं सीमाओंमें नहीं बाँधा जा सकता, कि मैंने सब कुछ सहज स्वीकार कर लिया है, कि मेरे लिए इस सबका कोई महत्त्व नहीं, लेकिन मैं कभी उन्हें या किसी और को कुछ बताऊँगा नहीं, कि बतानेसे सब कुछ बदल जायेगा, घिसकर आम हो जायेगा, मामूली···नहीं मैं बताना नहीं चाहता, लेकिन मैं खुश हूँ कि उस शाम लौटनेपर मैंने उन्हें देखा, एक दूसरेसे उलझे हुए, और मुझे हँसी आयी न गुस्सा, जलन महसूस हुई न शर्म, और मैं चुपके-से कुछ क्षण वहीं खड़ा रहनेके बाद कमरेसे बाहर निकल निगहबानी-सी करता रहा और जो मैंने देखा वह मेरी निगाह और याददाश्तमें सुरक्षित रहेगा, अमिट, किसी खराशकी तरह नहीं, बस यूँही भीतर पड़े कई और दृश्योंकी तरह, जिन्हें मैं जब चाहूँ देख सकता हूँ, इसलिए नहीं कि उन्हें उलटने-पलटनेसे कोई कसक होती है बल्कि इसीलिए कि वे हैं, भीतर, खामोश, प्रस्तुत। मैं कहना यह चाहता हूँ कि उन्हें देखकर मुझे हैरानी तक नहीं हुई थी, महसूस हुआ था कि जो हुआ, हो रहा है, ठीक ही तो है, कि वे दोनों मेरी इस प्रतिक्रियाको नहीं समझ पायेंगे और मैं कभी उन्हें शर्मिन्दा होनेका अवसर नहीं दूँगा, इसलिए नहीं कि मैं उन्हें चोट नहीं पहुँचाना चाहता बल्कि इसलिए कि वे, और खासतौर-पर मेरी पत्नी, मुझे जिन साँचोंसे मापना चाहेंगे मैं उनसे बड़ा हूँ, सो मैं खुश हूँ कि मैं कमसे कम अपनी नज़रमें उस तथाकथित कड़ी आज़माइशसे बेदाग़ बच गया हूँ; कि मैं अनासक्त हूँ, हालाँकि मैं यह हिम्मत कभी भी नहीं कर पाऊँगा कि उन्हें यह बात समझा सकूँ, हिम्मतका सवाल नहीं, सवाल शायद अहम्का ही है, साधारण अहम्का नहीं, बल्कि उस उलटे अहम्का, जिसका सहारा मेरी खुशीको भी चाहिए।

■ ■

स्टेट युनीवर्सिटी कॉलेज,
पोट्सडेम, एन. वाई., यू. एस. ए.

विवेकी राय •

स्केच

आजी

एक बहुत बेतुकी बात रह-रहकर बेचैन कर रही है कि मैं कैसे इतना बड़ा हो गया? बड़ा हो गया अर्थात् बूढ़ा हो गया। और एक बात उस समयकी याद आ रही है जब जंगलकी तरह दाढ़ी-मूँछें नहीं उग आयी थीं! अब तो यह जंगल भी शरद् ऋतुके फूले कासकी तरह कुछ दूसरा ही सन्देश दे रहा है। लेकिन, न जाने क्यों ऐसा लगता है कि मैं यह नहीं हूँ। बराबर भासता है कि मैं वही हूँ। आजी वही हैं, हमारे काका-काकी वही हैं। मनियारपुर वही है। यहाँके बाग़-बगीचे वही हैं। गाँवके पास बहती नदीके तीरकी छटा वही है। बाहर सरेहिमें छायी हरियालीकी घटा वही है। खेतोंके डाँड़-मेंड़ तक एकदम चिन्हारी दे रहे हैं। वह ब्रह्मबाबाके चौरावाल पीपलका पेड़, वह बँसवारि और वह पक्का कुआँ—सब ज्योंके त्यों है। सोचता हूँ तो एक नशा-सा छा जाता है।

मनियारपुर गाँवमें मेरी कौन-सी रिश्तेदारी है यह तो मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है। बहुत पुरानी कोई रिश्तेदारी है परन्तु अभी भी खूब चलती है। नेवता-हँकारी, आना-जाना और करनी-पाहुर सब बहुत भावसे चलता है। एक गोरे रंगके लम्बे मुँहवाले, बिना जूतेके, घास-पात करनेवाले अधेड़ सज्जनको मैं काका कहता आया हूँ। काकी अभी काफ़ी तगड़ी हैं। अभी काकाकी बड़ी माँ भी जीवित हैं। मैं उन्हें आजी कहता हूँ। छोटेपर धड़धड़ाते हुए घरमें चला जाता था और काकी-आजीको पावलागी करता था। अब जबसे काकाके लड़के नरेन्द्रकी शादी हो गयी है, बन्धन हो गया है। नरेन्द्र हमको भैया कहता है। उसकी बहूने जब हाँड़ी छू दिया अर्थात् खाना बनाना शुरू किया और मैं पहले-पहल पहुँचा तो मेरी थाली छेंककर उसने निहाल कर दिया। कोठिलाकी आड़से हँसकर धीरेसे उसने जो कनफूलका नाम लिया सो सुन लिया और उस दिन दो रुपया देनेके अतिरिक्त बादमें वह गहना बनवाकर भेज दिया। यह बहुत पहलेकी बात है।

अब जानेपर [illegible] हूँ तभी काकी और आजीसे मुलाक़ात होती है। इस बार एक दिन जब गया तो ऐसा हुआ कि बैठकमें पहुँचनेपर आशीर्वाद देकर काकाने हँसकर कहा कि इस घरमें तुमसे लजानेवाला कोई नहीं है, घर जाकर पानी पिओ और मैंने समझ लिया कि नरेन्द्रकी बहू नैहर गयी है। भीतर जाकर आजीके चरन छूकर मैं आँगनमें पड़ी चारपाईपर बैठ गया। काकी भीतर कुछ खूर-खार कर रही थीं। चूड़ियाँ खनक रही थीं। मैंने ज़ोरसे पावलागी की। काकी भीतरसे निकलीं और घघाकर ढेर-सा आशीश देती जब चारपाईपर सुजनी बिछाकर थरिया-भर पानी लेकर चलीं तो उस पानीकी सारी तरी मेरी आँखोंमें छा गयी। उन्होंने उस फुलही थालीके भरे जलमें मेरे दोनों पैर रखकर मलमलकर धो दिये और फिर आँचलसे पोंछ दिये। फिर उन्होंने लोटेमें टटके जलके साथ झाँपी में-से निकाली गयी नयी लाल कुरुईमें भरकर बिउड़ा-पटीरा सामने रख दिया और ज़रा-सा घूँघट खिसकाकर चारपाईके पास बैठकर समाचार पूछने लगीं। मुझे ऐसा लगा कि मेरा बचपन लौट आया। वह सुख क्या लिखा जा सकता है?

चिलम चढ़ाकर काकीने हुक्कोपर रखा और आजीकी ओर बढ़ा दिया। आजीने उसे सावधानीसे पकड़ते हुए कहा, "भले मौक़ेसे आ गये हो बचवा! चलो, तुमको भी मेला लिवा चलूँगी।"

मैंने सोचा कि कितनी विचित्र बात है! आजी हमको मेला घुमानेके लिए ले चलेंगी। मैं बहुत छोटा हो गया।

"कब मेला है, आजी?" मैंने पूछा।

"अभी पाँच दिन हैं।"

"कितने दिन मेलेमें लगेगा?"

"पाँच कोसका मेला है, पाँचों करनेपर पाँच दिन, दिन काहे को पूछता है?"

"स्कूलसे छुट्टी लेनी पड़ेगी।"

"ठीक है, छुट्टी माँगनेके लिए कहो तो बाना नाईको भेजवा दूँ, चाहे दूखी बारीको पठा दूँ। यह कौन-सी बड़ी बात है?"

"आजी, क्या नेवता देना है जो नाई-बारी भेजा जायेगा? मैं छुट्टीके लिए पोस्टकार्ड भेज दूँगा।" मैंने कहा।

"पोसकाट भेजनेमें दाम-कउड़ी नहीं खर्च होगा?"

"होगा। मगर खर्च तो करना ही पड़ता है। तुम्हारे मेलेमें क्या खर्चा नहीं लगेगा?"

"मेलेमें क्या खर्चा है रे पागल!" आजी हँसने लगीं। उनका बिना दाँतका पोपला मुँह विचित्र प्रकारसे फैल गया। उनकी ठुड्डीपर एक ललछहूँ मसा है। उसमें एक लम्बा-सा बाल है जो सफ़ेद हो गया है। उस मसापर जमे मोटे सफ़ेद बालपर मेरी दृष्टि जम गयी। सचमुच मेरी आजी जीवनानुभवकी इतनी ऊँचाईपर-से बोलती हैं कि मैं उनके सामने सहज ही छोटा बच्चा हो जाता हूँ। वह मेरा मेलेमें खर्चेकी कल्पनाका कैसा पागलपन था जिसपर आजी हँसने लगीं? कुछ न समझकर मैं समझ गया कि बहुत-कुछ समझना है। पाँच वर्षका बालक बनकर, आजीके बिना

दाँतके ओठोंमें उँगली लगाकर या मना करने पर भी उनके मसावाले बालको पकड़कर खींचते हुए उनकी पावन गोदमें लोटकर यह पूछनेके लिए कि मेलेमें जानेपर खर्चा कैसे नहीं होगा, मैं आतुर हो उठा।

लेकिन बिना पूछे ही यह मुझे मालूम हो गया। भोजन करने बैठा तो काकी बेना डुलाने लगीं। मैंने कहा, "काकी, रहने दो, जाड़ेका दिन है। भोजन भी गरम ही अच्छा होगा।"

लेकिन वह उनका प्यार था। बिना चित्ती-लगी हलकी-हलकी रोटियाँ घीमें इस प्रकार चुपड़ी गयी थीं कि आपसमें सट गयी थीं। दूधका भाप निकलता लबालब भरा बड़ा-सा गोड़ेवाला पुराने चालका फुलहा कटोरा पास रखकर काकी बोलीं, "आ, खा पूता! क्या निकाल रहे हो? एक-एक कौर-की तो पेट-दगुई रोटियाँ हैं! इतना ही खाया जाता है? बूढ़ीके लिए मेलामें ले जानेके लिए सूरनका अचार बना है। ले आती हूँ।"

काकीने लाकर अचारकी कटोरी पासमें रख दी और बिना पूछे बतलाया कि बूढ़ी के लिए सातू-पिसान तैयार करना है। गेहूँ धूपमें डाल दिया गया है। सत्तूके लिए चना भिगो दिया गया है। केवल चनेका सत्तू बूढ़ी को पसन्द नहीं पड़ता। उसमें जौ-मटर भी मिलाती हैं। इससे सत्तू ख़ूब लसार हो जाता है।

"आजीके दाँत तो हैं नहीं? आटा ले जाकर क्या करेंगी?"

"तुम अपनी आजीको नहीं जानते हो? अपने कितना खाना है! संग-साथमें जो जायेगा—खिलायेंगी और दान-पुन्न करेंगी।"

दूसरे दिन शीशी-डिब्बा धो-मलकर साफ़ किये जाने लगे। हर चीजको साफ़ कर काकी अन्तिम बार अपने आँचलसे पोंछती हैं। मानो काकीका आँचल स्वच्छता और पवित्रताकी मुहर है। रूईकी बहुत-सी बत्तियाँ बनायी गयीं, उन्हें घीमें लपेटा गया और एक डब्बेमें बन्द किया गया। एक दियासलाई खरीदी गयी। यह गंगा माई और दूसरे देवताओंके लिए दीपदानका आयोजन था। नयी मूँजको कूटकर लोटा ले जानेवाला ओरिवन बनाया गया। एक बोरीको धोकर

आजीका लत्ता-झुल्ला धोकर आ गया। उन्होंने सामान सहेजकर धोकर, सुखायी गयी बोरीमें भरनेके लिए हुक्म दिया। मैं देख रहा था कि आजीके शरीरमें कितनी फुर्ती आ गयी है।

●

गुनगुने किये गये उबटनसे सारा शरीर मला गया। उसपर से कड़ुवे तेलकी मालिश हुई। बुढ़िया सास पाँच दिन मेलेमें रहेंगी। घूमेंगी तो थक जायेंगी। वहाँ कौन इस प्रकार सेवा करके थकावट दूर करेगा!

●

आजीने चार-पाँच उपलेकी एक गठरी बनायी और उसीमें अपना चप्पल रखकर गठरीको माथेपर रख लिया और एक हाथमें लोटा लटका लिया।

साफ़ किया गया। उसके छेदको धोकर दुरुस्त किया गया। जब एक दिन मेला जानेके लिए शेष रह गया तो सुबह काकीकी छोटी लड़को मुनिया धोबीके यहाँ भेजी गयी। आजीका लुग्गा-झुल्ला धोकर आ गया। उन्होंने सामान सहेजकर धोकर, सुखायी गयी बोरीमें भरनेके लिए हुक्म दिया। मैं देख रहा था कि आजीके शरीरमें कितनी फुर्ती आ गयी है। उन्होंने आटा, सत्तू, चावल, दाल, नमक, चिउड़ा, भुजना, भेली और दूसरी गठरियोंको स्वयं ही सहेज-सहेजकर रखना शुरू किया। यद्यपि काकीने हर सामानको एकदम अमनिया करके, उचित परिमाणमें, सावधानीसे रखा था फिर भी आजी उसकी जाँच किये बिना नहीं मानती थीं! उन्होंने अचानक काकीसे पूछा, "आ हो, जेंवाइन-मँगरइला कूटा नहीं गया है क्या? मँकुनी कैसे लगेगी?"

"हाय मैया!" काकीने ओठ काट लिये और झपटकर उसे कूटने चलीं। आजी हर चीजकी पुड़ियाका निरीक्षण करने लगीं। मिर्च का चूर्ण, बुकी हुई हल्दी, जीरा, खटाई, अदरख, हरा मिर्चा, राई, घोड़राई और लवंग-चूर्ण।

"अचार परसाल छूट गया था, आजी!" छोटी लड़की मनियाने खयाल दिलाया तो आजीने गठरी फिरसे देखी और मिट्टीकी तीन छोटी-छोटी चूकियोंमें आम, मिर्चा और सूरनके अचार रखे गये मिले। तेलके बोतलका कॉर्क उन्होंने अपने हाथसे बन्द किया। थोड़ी-सी तिल, थोड़ा अक्षत और सुपारी आदि एक जगह रखा। दो थाली, एक कटोरा, एक तसला, एक लोटा और एक कटोरी बरतनके रूपमें बोरीमें कसा गया। तेलके बारेमें निश्चय हुआ कि वह हुक्केके साथ लटका दिया जायेगा। अचानक कुछ याद करके आजीने मुनियाको हुक्म दिया कि "जा पूछ आ कि साहुजीकी दुकानपर आलू-भण्टा क्या भाव है?" उन्होंने कहा, "मेलेमें महँगा हो जाता है। यहींसे बेसाह लेना ठीक है।" फिर काकीको उन्होंने हुक्म दिया, "वह जो बलुड़ीमें-से जोन्हरी निकली है, इसीमें-से एक सूप दे देना, यदि यहीं भावसे तरकारी मिलती है तो खरीद ली जायेगी।"

और तरकारी भी खरीद ली गयी। काकीने प्रस्ताव किया कि बबुआ (मेरे) के लिए कुछ पनिपिआवकी चीज बना दी जाये। मुझे आजीके हाथका बना गुड़में-का लकठा याद आने लगा। न जाने कैसे आजीने मेरे मनका भाव जान लिया। उन्होंने कहा कि मैं अपने हाथसे लकठा बनाऊंगी और काकीके बारम्बार रीझने-खीझनेके बावजूद आजी कड़ाहीके सामने बैठ गयीं। सारा काम काकीने किया, परन्तु आजीको ऐसा लग रहा था कि वे ही कर रही हैं। मनिया दौड़-दौड़कर कभी थाली लाती तो कभी छनौटा धोती। उसके पैर ज़मीनपर नहीं पड़ रहे थे। उसके झबर-झबर बालोंको देखकर आजीने कहा "धिया, काहे बेमोआरकी तरह माथ खउराये है?"

"संझाको तेल डालकर काढ़ देंगी।" काकीने कहा

परन्तु मैंने देखा कि सन्ध्या समय मनिया-

से पहले आजीको लेकर काकी बैठ गयीं और शरीरकी मरम्मत होने लगी। गुनगुने किये गये उबटनसे सारा शरीर मला गया। उसपरसे कड़ुवे तेलकी मालिश हुई। बुढ़िया सास पाँच दिन मेलेमें रहेंगी। घूमेंगी तो थक जायेंगी। वहाँ कौन इस प्रकार सेवा करके थकावट दूर करेगा! इस तरहकी कल्पनाओंमें काकी बार-बार मना करनेपर भी आजीकी सेवासे हटतीं ही नहीं। आजीके बाद उन्होंने मुझे पकड़ा। मैंने कहा, "मेरे कपड़े गन्दे हो जायेंगे। काकी, योग-क्षेम मिटानेके लिए केवल हथेलियोंमें लेकर मैं उबटन मल लेता हूँ।" परन्तु हाथके बदले पैर और मुँह मुझे उबटवाना पड़ा। तीसरे नम्बरपर आयी मनिया। काकीने उसे चमका दिया।

सुबह चार बजे मेलेके लिए प्रस्थान करना था। घरसे दरवाज़ा लगभग लगा हुआ ही है अतः मुझे यह जाननेमें तनिक कठिनाई नहीं पड़ी कि क्या काकी, क्या आजी और क्या मनिया, कोई भी रात-भर सोया नहीं है। कुछ घीकी सुगन्ध, कुछ छनन-मनन-की आवाज़से रात-भर मेरे नाक और कान महामोदनदमें गोते लगाते रहे। लगभग ग्यारह बजे रातको काकीने याद दिलाया कि तम्बाकू तो रखा ही नहीं गया और उसी रातको काकीने लालटेनके साथ मनियाको लेकर साहुकी दूकानपर जाकर फाटक खुलवाया। फाटक खुलनेमें कठिनाई नहीं पड़ी क्योंकि वहाँ भी वही तैयारी हो रही थी। तम्बाकू लेकर आयीं तो काकी घरमें जाकर एक बार फिर दरवाज़ेपर धीमे-धीमे आयीं। वे इस सावधानीसे आ रही थीं कि आहटसे मेरी नींदमें खलल न पड़े। उन्होंने हँसिया लेकर पकवान गठियानेके लिए केलेके पत्ते काटनेकी तैयारी की।

"रहने दो काकी, मैं काट देता हूँ।" मैंने उठकर कहा।

काकी कुछ न बोलीं। मैं निकट जाकर काटने लगा। पत्ते लेकर काकीके साथ मैं घर गया। वहाँ सामानकी व्यवस्था हो रही थी। एक ही बोरीमें सुरक्षाकी दृष्टिसे सारा सामान रखनेकी मेलेकी परिपाटी है। हुक्का, चिलम, तेल, कम्बल, लोटा, आजीका चप्पल और कुछ उपले बाहर रह गये थे। शेष सामान बोरीमें कसकर भर दिया गया था। मैंने बोरीको उठाया। काफ़ी भारी लगी। तिसपर भी तेल, हुक्का और लोटा ऊपरसे लटकाना था।

"इसे ले कौन चलेगा?" मैंने पूछा।

उत्तरमें कोई बोल न सका पर मनिया मेरी ओर देखने लगी। मैंने सोचा, यह काम इसीके ज़िम्मे है। उस समय रात बाक़ी थी, खूब चटक चाँदनी फैली हुई थी। पड़ोससे ख़बर मिली कि सब लोग बाहर गाँवके गोंयड़े बगीचेमें गयीं अतः आजी भी चलें। आजीने चार-पाँच उपलेकी एक गठरी बनायी और उसीमें अपना चप्पल रखकर गठरीको माथेपर रख लिया और एक हाथमें लोटा लटका लिया। कम्बल मेरे ज़िम्मे आया और बोरी मनियाके कपारपर उठा दी गयी।

"मनिया इसे नहीं ले जा सकती!" मैंने कहा।

"भारी नहीं है। सभी लड़कियाँ ले जाती हैं।" काकी बोलीं।

"मैं तो परसाल भी ले गयी थी।" मनियाने कहा पर बोझके भारीपनसे उसकी आवाज़ लड़खड़ा रही थी।

तुलसी दाईके चौरापर माथा नवाकर और गंगाजीका नाम लेकर आजीने प्रस्थान किया। पीछे-पीछे मनिया चली। सबसे पीछे मैं चला। बाहर रास्तेमें एक भारी भीड़ चली जाती मिली और वैसी ही बड़ी-बड़ी गठरियाँ जिसे लड़कियाँ ढो रही हैं। मगर, इस परम्पराकी परवाह न कर मैंने बाहर आकर गठरी अपने सिरपर रख ली। आजीने हँसकर कहा, "चल, तब असली मेला तू ही कर रहा है! गंगाजी तुझे एकसे इक्कीस करेंगी। हम गीत कढ़ाती हैं। तुम भी गाओ।" और उन्होंने गीत शुरू किया :

> "धीरे चलो पउआ ढारी हो रघुबर!
> एक तो भारी मोरे नाकके नथिअवा हो
> दूसरे भारी झिनसारी हो रघुबर!"

■ ■

डिग्री कालेज,
गाजीपुर

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

● सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, जगदीश

● मूल्य :
६.०० वार्षिक, ००.५५ पैसे प्रति

'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी, जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करना है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

सम्पर्क-सूत्र : भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

मनहर चौहान •

कहानी

ऐसे...

पुलिसवाले ने दूरसे ही ज़ोरकी सीटी बजायी और चिल्लाकर डाँटा, "खड़ा क्यों है? चला! चला आगे!"

वह हँस दिया और अपनी खरखराती आवाज़में बोला, "अरे चाचा, जगह हो तो चलाऊँ या वैसे ही?"

जगह सचमुच नहीं थी। कारें, स्कूटर, पैदल चलने वाले, सामान ढोनेवाले मज़दूर, मोटी औरतें और चुस्त लड़कियाँ, धोतीवाले और चिपकी पैण्टोंवाले—सब उस सँकरे रास्तेमें इस क़दर ठँस रहे थे कि आगे बढ़नेकी जगह सचमुच नहीं थी।

क़ानून था कि ताँगेको यहाँ, सड़कपर, रोका नहीं जा सकता। पुरानी दिल्लीकी सड़कें वैसे भी एक-एक बीता ही चौड़ी हैं, तिसपर हौज़ क़ाज़ीका यह चौराहा तो और भी ज़्यादा भीड़-भड़क्केका शिकार है। ताँगा एक मिनट भी यदि रुका रह जाये तो पीछे अनेक ताँगे रुक जायेंगे। ताँगे, कारें, रिक्शे, पैदल लोग, रेहड़ीवाले और न जाने क्या-क्या! ताँगा यदि रोकना है तो स्टैण्डपर रोकिए, जो हौज़ क़ाज़ीके चौराहेके नज़दीक ही है।

लेकिन पहलेकी तरह सवारियाँ अब स्टैण्ड तक नहीं आतीं। पहले ताँगोंकी तलाश सवारियाँ किया करती थीं; अब सवारियोंको ताँगेवाले तलाशते हैं। पहले लोगोंके पास पैसे होते थे। पैसे यों अब भी होते हैं, लेकिन पहले जहाँ वे खर्च किये जाते थे, वहीं अब बचाकर रखे जाते हैं। हौज़ क़ाज़ीसे ताँगे पहाड़गंजकी ओर चलते हैं। और हौज़ क़ाज़ी से ताँगे ओडियन सिनेमा-हाउसकी ओर चलते हैं। पहाड़गंजके पन्द्रह पैसे। ओडियनके बीस।

पहलेकी बात और थी। पहले एक सवारी आकर बैठी नहीं कि दूसरी बैठ जाती थी। फिर तीसरी और चौथी। तब ताँगा चल पड़ता था।

अब हमीद चिल्लाता रह जाता है, “ओडियन ! ओडियन !” लेकिन सवारियाँ बहुत कम आती हैं। बहुत देर-देरसे आती हैं। पहले हमीद ओडियन, पहाड़गंज और हौज़ क़ाज़ीके बीच तीन घण्टोंमें दसके क़रीब खेपें लगा लेता था। अब वे खेपें घटकर छह-सात ही रह गयी हैं।

स्टैण्डपर आज हमीदका ताँगा काफ़ी देर तक खड़ा रहा था, पर एक भी सवारी आ कर उसके ताँगेमें नहीं बैठी थी। पहाड़गंज जानेवाले दो ताँगे थे। वे भर गये थे और चल दिये थे, लेकिन ओडियन जानेवाली सवारियाँ आयी ही नहीं थीं। शाम सात बजेके बाद हमीद ओडियनकी ही खेपें करता है। हमीदने कारणपर ग़ौर किया था कि कुछ ताँगेवाले अपने ताँगे स्टैण्डपर लगाते ही नहीं हैं। वे चौराहेकी ओर सीधे ही चले जाते हैं और बीच-राहसे ही सवारियोंको ले लेते हैं।

हमीदने भी तब ताँगेको स्टैण्डसे निकाल लिया था और मोड़ दिया था चौराहेकी ओर।

“ओडियन ! ओडियन !”

हमीदकी आवाज़ ही बदल गयी है। उसमें वह लोच, वह नज़ाकत है ही नहीं, जो चार-पाँच बरस पहले उसकी आवाज़में हुआ करती थी। वह सवारियोंको आकर्षित करनेके लिए चार-पांच बरसोंसे इतने ज़ोरोंसे चिल्लाता रहा है कि आवाज़ बुरी तरह फट गयी है। घरमें अपनी बीवीके साथ जब वह धीमी-धीमी बातें करता है, तब खुद उसीको लगता है, जैसे कुछ हो गया है—शायद गलेमें कोई छेद…

◆

“अरे चाचा ! जगह हो तो चलाऊँ या वैसे ही ?” हमीदने हँसकर कहा और भीड़में रास्ता ढूँढ़नेकी नाकामयाब कोशिश की।

जगह मिली। रास्तेकी सारीकी सारी चीज़ें एकाएक ही आगे खिसकने लगीं। हमीदने घोड़ेको उचकारा। समूचे ताँगेमें झटका लगा और चक्के घूमने लगे।

“ओडियन ! ओडियन !” हमीद फिर चिल्ला उठा।

सरकती भीड़में-से एक आदमी अचानक रुका और ताँगेमें पीछे बैठ गया।

“ओडियन जा रिया है, ओडियन !” हमीदने उत्साहमें भरकर और ज़ोरसे टेर लगायी। अजीब आवाज़ है हमीदकी ! सारी हवा जैसे फट जाती है दूर-दूर तक……ज्यों ही उसने आवाज़ दी, सवारीने एतराज़ उठाया, “इतनी ज़ोरसे क्यों चीखते हो ? आ जायेगा, जिसे आना होगा। इतना बड़ा ताँगा है, कोई चींटी तो है नहीं, जो भीड़में छिपी रह जायेगी।”

हमीदको बुरा लगा लेकिन वह मुसकरा कर बोला, “क्या करें, बाबूजी, चिल्लाना पड़ता ही है….”

उसने ताँगेको चौराहेका पूरा एक चक्कर घुमा दिया, लेकिन दूसरी सवारी न बैठी। पीछेकी सवारी अकुलाने लगी, “अरे भई, इतनी देरमें तो मैं पैदल ही अजमेरी गेट पहुँच जाता। वहाँसे बस मिल जाती।”

जवाब में हमीदने फिर टेर लगा दी,

“ओडियन ! ओडियन !” फिरसे हवा दूर-दूर तक फट-सी गयी।

हमीदने निगाह घुमाकर देखा कि यह सवारी नम्बर एक काफ़ी मोटे कोई लालाजी हैं और बार-बार अपनी कलाई-घड़ीमें झाँकते हैं।

“ओडियन ! ओडियन जा रिया है, ओडियन !” दोनों हथेलियोंकी कुप्पी बना, मुँहपर लगा, हमीदने ज़ोरकी आवाज दी तो उसे लगा, आदमीके आकारका वह एक मुर्गा ही है जो बाँगपर बाँग दे रहा है।

कोई सवारी नहीं।

लोग हड़बड़ाते हुए जा रहे थे।

लोग हड़बड़ाते हुए पैदल जा रहे थे—अजमेरी गेटकी ओर। वहाँसे बसें चलती हैं। भले ही वे ज़रा देरसे मिलती हैं, लेकिन वे दस पैसोंमें ओडियन पहुँचा देती हैं। ताँगेवाले लेते हैं बीस पैसे। लोग हड़बड़ाते हुए पैदल अजमेरी गेट जा रहे हैं····मँहगाई बढ़ रही है····बढ़ती ही जा रही है····हमीदने गहरी साँस ली। वह फिरसे पुकार उठा, “ओडियन !”

एकाएक ताँगेमें झटका लगा। यह झटका किसी और सवारीके ताँगेमें बैठनेका नहीं था। यह ताँगेके हलके हो जानेका झटका था····हमीदने अविश्वाससे पलटकर देखा, मोटे लालाजी ताँगेसे उतरकर अजमेरी गेटकी तरफ़ पैदल बढ़ गये हैं। अपनी इस हारको झुठला देना चाहता हो—इस तरह उसने फिर बाँग लगा दी।

जवाबमें पीछेसे सीटी बजी। सिपाहीकी सीटी। ताँगा रुक गया था। सड़कपर इसे रुकना नहीं चाहिए। उसने तुरन्त आगे बढ़ा दिया। सिपाही पीछेसे ताना कस रहा था, “तेरा ताँगा ही बदक़िस्मत है ! दूसरे ताँगे लद जाते हैं और तू बस, चिल्लाता रह जाता है !”

हमीदने भी तब ताँगेको स्टैण्डसे निकाल लिया था और मोड़ दिया था चौराहेकी ओर, “ओडियन ! ओडियन !”

◆

उसने तुरन्त आगे बढ़ा दिया। सिपाही पीछेसे ताना कस रहा था, “तेरा ताँगा ही बदक़िस्मत है ! दूसरे ताँगे लद जाते हैं और तू बस, चिल्लाता रह जाता है !”

◆

तीनों इस तरह खड़े रहे, जैसे सुना ही न हो। उनमें-से दो मर्द थे, एक युवती। युवती चूड़ीदार पाजामे और बहुत कसी हुई क़मीज़में थी। मर्दोंने भड़कीली बुश्शर्ट डाली हुई थीं।

“हाँ, चाचा ! यही बात है !” हमीद ज़ोरसे बोला, “ओडियन ! ओडियन !”

धीमे चल रहे ताँगेमें दो सवारियाँ आकर ऐसे झटकेके साथ बैठीं कि घोड़ेकी गरदनपर चमड़ेके पट्टे काफ़ी ज़्यादा कस गये। हमीदने अपने शरीरको आगेकी तरफ़ झुकाते हुए पीछेका बोझ दोनों चक्कोंपर सन्तुलित किया। वह चिल्लाया, “दो सवारी ! सिरफ़ दो सवारी

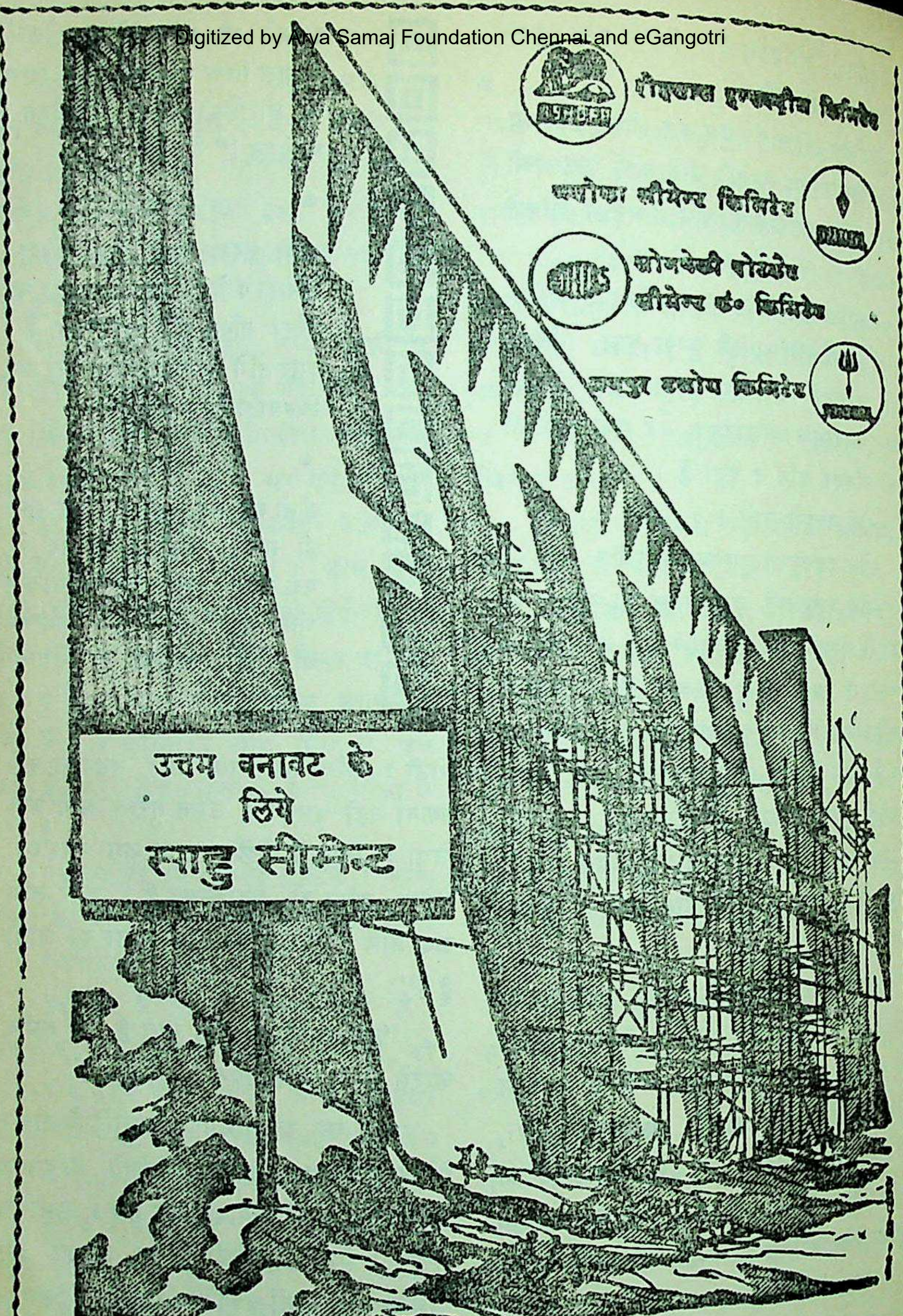
रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
अशोका सीमेन्ट लिमिटेड
सोन वैली पोर्टलैंड सीमेन्ट कं० लिमिटेड
जयपुर उद्योग लिमिटेड
उत्तम बनावट के लिये साहु सीमेन्ट

—ओडियन !"

हौज़ क़ाज़ीके चौराहेका यह तीसरा चक्कर वह पूरा कर रहा था। चलते ताँगेमें एक तीसरा आदमी आगेकी सीटपर बैठ गया। बैठनेसे पहले उसने हमीदको 'ओडियन !' की पुकार लगाते सुना था, तो भी उसने पूछा, "ओडियनका ही है न ?"

"हाँ, सा'ब ! ओडियन जायेगा ।" हमीद धीमेसे बोला और फिर ज़ोरसे, बहुत ज़ोरसे बोला, 'ओडियन ! सिरफ़ एक सवारी···· ओडियन !"

तीन सवारियाँ बैठ जायें तो चौथीके आनेमें देर नहीं लगती। देर तो लगती है पहलीके आनेमें। हमीद निश्चिन्त हो गया कि इन तीनमें-से अब कोई उतरकर चला नहीं जायेगा। सवारियाँ भी समझती हैं कि चौथी जल्दी आ जाती है।

तीसरेके बाद चौथा, और फिर पाँचवाँ चक्कर भी वह पूरा कर गया, लेकिन सिपाही साला ठीक ही कहता था—हमीदका मुक़द्दर ही कुछ ख़राब है ! चौथी सवारी आ नहीं रही और जो तीन सवारियाँ बैठी हैं, वे अकुलाने लगी हैं····हमीद उनकी आपसी फुसफुसाहटें सुन सकता है····

उसने दबी हुई आवाज़में आश्वासन दिया, "बस, बाबूजी, अभी चलता हूँ।"

"तीन ही लेकर चले चलो। आगे कोई राह-चलता मिल ही जायेगा।" पीछे बैठी सवारियोंमें-से एकने कहा। हमीदने इसका जवाब न दिया। थूक निगलकर उसने गलेको तर किया ताकि फिरसे उसकी आवाज़ हवाको थर्रा सके।

ताँगेको झटका लगा····

पीछेकी दोनों सवारियाँ उतर गयी थीं। जल्दी-जल्दी वे पैदल जा रही थीं—अजमेरी गेटकी ओर, बस-स्टैण्ड की ओर।

दो उतर गयीं तो कहीं यह तीसरी भी न उतर जाये !

"बाबूजी ! ओ बाबूजी ! सुनिए तो सई, बाऊजी ! मैं चलता हूँ, बाऊजी, तीन ही लेकर चलता हूँ····" हमीदने ताँगा रोक दिया और दोनों हाथ हिलाते हुए दुहाई दी, लेकिन वे सवारियाँ, जो अब सवारियाँ नहीं थीं, न रुकीं।

पीछेसे तत्काल सीटी बज उठी।

"अरे चाचा, ज़रा तो साँस लेने दे।" कहते हुए हमीदने घोड़ेको डचकारा।

"बढ़ा आगे ! ट्रैफ़िक रुकता है !" सिपाही नाराज़ था। उसने फिरसे सीटी बजा दी।

ताँगा सरकने लगा।

"ओडियन ! ओडियन !"

हमीदकी आँखें आगे बैठी तीसरी सवारीका चेहरा पढ़ रही थीं। अगर यह उतर गयी तो ताँगा ख़ाली हो जायेगा। तब तो पहली सवारी आनेमें इतनी देर लगेगी कि····

हमीद डर गया और चिल्लाया, "ओडियन !"

दूर उसने तीन व्यक्तियोंको थमते देखा। क्या ये ओडियनकी सवारियाँ हैं ? या पहाड़गंजकी ? अधैर्यसे पुकार लगाता हुआ वह ताँगा उनकी ओर बढ़ाने लगा, पर भीड़ ऐसी थी

कि तेज़ीसे बढ़ना मुश्किल था। वह तीनों तक पहुँच ही गया और आत्मीयतासे पूछने लगा, "ओडियन चलेंगे, बाबूजी ? ओडियन ?"

तीनों इस तरह खड़े रहे, जैसे सुना ही न हो। उनमें-से दो मर्द थे, एक युवती। युवती चूड़ीदार पाजामे और बहुत कसी हुई क़मीज़में थी। मर्दोंने भड़कीली बुश्शर्टें डाली हुई थीं। वे सिगरेटें पी रहे थे।

"बैठिए न, बाऊजी ! ओडियन जा रिया है !" हमीद उनकी ओर झुक आया। अगर ये तीनों बैठ जायें तो ताँगेकी सवारियाँ पूरी हो जायें। फिर तो ताँगा ऐसा फ़र्राटेसे···· लेकिन ये सवारियाँ कनाट प्लेसकी नहीं हैं शायद····वरना इन्हें हमीदकी आवाज़ क्या सुनाई ही न पड़ती ?

'लोग कैसे बदतमीज़ होते जा रहे हैं !" उसने सोचा, "नहीं जाना है ओडियन तो कह क्यों नहीं देते कि नहीं जाना ?"

लेकिन उसने उसी मुलायमितसे पूछा, "क्यों, सा'ब ? ओडियन चलेंगे ?"

"चलें भई ताँगेमें ?" एक मर्दने दूसरे मर्दसे पूछा। इससे ज़ाहिर हो गया कि ये ओडियनकी ही सवारियाँ हैं। हमीदने सोच लिया कि अब ये बैठ ही गयीं। कोई लड़की साथमें होती है तब तो लोग वैसे भी ताँगा या स्कूटर जल्दी कर लेते हैं। उसने बड़े आभारी स्वरमें कहा, "आइए, सा'ब, आइए····बैठिए····"

जो अकेली सवारी आगे बैठी थी, उसके चेहरेपर भी राहतकी रेखाएँ उभरीं।

लेकिन लड़कीने कहा, "पैदल ही क्यों न चलें ? अजमेरी गेट कोई दूर तो नहीं !"

वे पैदल बढ़ गये।

हमीद आहत होकर उनकी पीठोंकी ओर देखता रहा। ताँगा रुका हुआ था।

सिपाहीकी सीटी बज उठी।

"ओडियन ! ओडियन !" हमीदने ताँगा फिर बढ़ा दिया—चौराहेका एक और चक्कर। अब भी ताँगा रुका हुआ दिखाई दे गया तो सिपाही चालान किये बग़ैर नहीं मानेगा। यही तो उसकी ड्यूटी है···"ओडियन ! ओडियन !" वह चिल्लाया। बहुत ज़ोरसे। बहुत ही ज़ोरसे। उसके गलेकी रगें फूल आयीं—कुछ उसी तरह, जैसे ज़्यादा बोझ खींचते समय उसके घोड़ेकी मोटी-मोटी रगें फूल आती थीं····

आगे बैठी वह अकेली सवारी बुदबुदायी, "भई, तुम्हारा ताँगा तो सुबह पहुँचेगा ओडियन !"

हमीदने सुना ही नहीं। सुननेका कोई अर्थ नहीं था। सवारी फिर बुदबुदाया, "ऐसा ही है तो हम भी चलते हैं····"

हमीद रुकनेके लिए नहीं कह सकता था।

उतर जानेके लिए भी नहीं कह सकता था। और उसने इस बार भी कुछ नहीं सुना। सिर्फ़ उसने आवाज़ लगायी, "ओडियन ! ओडियन !" और उसके गलेकी रगें फूल आयीं, ठीक उसी तरह फूल आयीं जैसे····

■

आई--१५४, कीर्तिनगर,
नयी दिल्ली-१५

परेश •

कहानी

झाग

सेशनके शुरूके हंगामे, चहल-पहल, आशिक़ी, इश्क़िया क़िस्से और इधर-उधरकी सब गतिविधियाँ दिसम्बर तक चुक जाती हैं। जनवरीमें ठण्डकी वजहसे बार और कैफ़ेज़के भीतर तो अवश्य कुछ हलचल रहती है, बाहर कुहरा या बर्फ़-सी धुन्ध।

फ़रवरीमें धूपमें चमक आती है तो लोगोंके चेहरे भी कुछ खिलते हैं मगर सेशनके शुरूवाली चपलता उनपर खोजे नहीं मिलती। सभी डिपार्टमेण्ट्समें गम्भीरतासे फ़ाइनल वालोंको विदा करनेकी तैयारियाँ होने लगती हैं—मार्चमें परीक्षाएँ और ज़िन्दगी समाप्त····

दीवारें सीमेण्टकी और एकदम खामोश—मुक्का मारनेपर भी आवाज़ें नहीं लौटतीं। महीनों बन्द पड़ी खिड़कियाँ खोल दी जाती हैं मगर हवाएँ उन्हें नहीं छेड़तीं। प्रोफ़ेसर्स अपने सब्जेक्टके अन्तिम लेक्चर दे रहे होते हैं····उनके चेहरोंपर भी एक और पीढ़ीको विदा कर देनेकी विवशता····प्यार और घृणा····मेल और झगड़े—सभी शान्त····केवल शान्त-रसकी निष्पत्ति····

किसी एक ट्रेजेडी तक पहुँचनेकी सारी तैयारियाँ—चुप और चुप। कुछ कम-उम्र लड़कियाँ—यानी इमोशनल—वही एक मूर्ख प्रश्न अपने प्रेमियोंसे पूछ रही होती हैं जो हिन्दी फ़िल्मोंमें गाँवकी लड़कियाँ शहरोंसे छुट्टियोंमें आये कालेजके लड़कोंसे पूछा करती हैं, कि शहर लौटकर हमें भूल तो नहीं जाओगे····प्रेमचन्दके ज़मानेमें यही प्रश्न हिन्दी कहानीकी नायिकाएँ बैरिस्टर बननेके लिए लन्दन जानेवाले अपने पतियोंसे पूछा करती थीं, कि वहाँ जाकर किसी मेमसे तो शादी नहीं कर लोगे····

चुपचाप गुज़रता हुआ यह समय मैं भरसक तटस्थ होकर देखनेकी कोशिश कर रहा था—वैसे बलात् अपनेको भी गुज़रते हुए अनुभव कर रहा था। जिन लड़कियोंसे बड़े चावसे नमस्ते होती थी उनसे मैं अब बचने लगा था। मुझे उसी मूर्ख प्रश्नकी आशंका थी, कि यहाँसे जानेके बाद हमें भूल तो नहीं जाओगे…।

एडोलेसेण्ट…एडोलेसेण्ट…यह शब्द मेरे दिमाग़में घूमता रहता और मैं भरसक रविवार-को मार्निंग-शोमें निकल जाता।

"थियेटरसे कितनी दूर है मेरा घर ?" प्रभा यह प्रश्न कभी भी पूछ सकती थी, और कोई बहाना मुझे नहीं सूझ रहा था। आखिर मैं उससे बच भी क्यों रहा था! कोई लिखित या शाब्दिक कमिटमेण्ट तो मेरी ओर-से था नहीं। 'प्रेम' शब्द हमारी बातचीतमें कभी नहीं आया था। यह अवश्य होता है कि प्रत्येक लड़कीसे पहली पहचान बड़े उत्साहसे होती है और रात-भर खयालोंके घोड़े शादी-की सम्भावनाओं तक दौड़ने लगते हैं।

यह समझ शायद हम दोनोंको थी कि ऐसी कोई बात हममें किसीकी ओरसे भी नहीं है। शरतका एक उदाहरण किन्हीं ग़लत क्षणोंमें मैंने उसे सुना दिया था और हफ़्ते-भर तक नहीं मिला था। उदाहरण यही कि शरतके लिए चार-पांच नारियोंने अपना जीवन लगा दिया था—यानी बिना विवाहके भी वे उसे पत्नीसे मिलनेवाली सारी सुविधाएँ देती थीं और उन्होंने कभी भी सामाजिक रूपसे पत्नीत्वकी प्रतिष्ठा नहीं मांगी।

ध्यानसे मैंने सोचा तो यह एक सम्बन्ध हम दोनोंके बीच हो सकता था, परन्तु मुझे उसके भैयाकी दयनीय सूरत हर बार खयालमें आ जाती और मेरी नसोंका तनाव ढीला पड़ जाता। कई बार बहुत नीचे उतरकर सोचा था कि लड़कियोंको प्रेमके नामपर उत्तेजित किया जाये और फिर छोड़ दिया जाये…।

कभी-कभी हवा और मौसम छेड़ते तो मैं प्रभाके चेहरेकी तरफ़ देखता।

'क्या देख रहे हैं ?" वह कुछ सुनना चाहती।

"गलेका डिज़ाइन बहुत अच्छा है…" मैं उसके स्वीटरको ध्यानसे देखते हुए कहता और अनुभव करता कि मेरा वाक्य किसी फ़िल्मी हीरोके प्रेम-निवेदनसे मेल नहीं खाता। लड़कियोंके कमरेमें अकसर देवानन्द की फ़ोटो होती है या किसी और ऐक्टरकी—परन्तु शादीके बाद जिसकी फ़ोटो कमरेमें आती है वह कपड़ेकी दुकानमें सेल्समैन होता है या पंजाब नेशनल बैंकमें क्लर्क!

बैंकके कई क्लर्क टाई अच्छी बांध लेते हैं और अकसर शेव आल्टरनेट डेज़पर बना लेते हैं। कपूरने मुझसे कहा था, "तुम्हारे आसपास कई अच्छी लड़कियाँ हैं, तुम शेव रोज़ाना बनाया करो, क्या करूँ मेरे लिए सेवन ओ'क्लाक खरीदना सम्भव नहीं।"

दूसरे दिन आकाशवाणीका चेक भुनाने गया तो सेवन ओ'क्लाकके दो ब्लेड मैं उसे दे आया। शनिवार था और शामको वह बीवीके साथ घूमनेका शौक़ीन था।

"आप सण्डेकी सुबह मेरे घर चायपर

आइए न?'' ब्लेड लेकर कपूरने बड़ी [illegible] कहा था। उसकी बीवी काफ़ी ख़ूबसूरत है''''यानी शादीके पहलेके महीनोंकी ख़ूबसूरती—नयी-नयी शादीवाली औरतें हर किसीके सामने बड़े अस्वाभाविक ढंगसे अंगड़ाने लगती हैं और अकसर उनकी आँखोंमें पिछली रातके दृश्य दिन-भर तैरते रहते हैं, मुझे बड़ी घिन होती है।

"आपका घर पराया थोड़े है कपूर साहब—मैं बड़ी देरसे उठता हूँ और चाय पीकर थियेटर चल देता हूँ।''

●

"थियेटर''''"

मार्निंग-शो''''यानी छह दिन व्यस्तताका बहाना हो सकता है। शहरी जीवनमें बचा एक रविवार—जिसे छुट्टीका दिन कहा जा सके। प्रभाके सामने इस बहानेके चलने-की भी गुंजाइश नहीं थी।

"देखो, डेढ़ बजे शो खत्म होता है और दो बजे मेरा मेस बन्द हो जाता है।'' विशेष कोई आत्मीय मोह न हो जाये, इसलिए शुरूमें इस ढंगसे बात टालनेकी कोशिश करता।

"भाभीने कितनी बार कहा है, शोसे छूटकर आप खाना घरपर ही क्यों नहीं खा लिया करते? वे सण्डेको मुर्गा बड़े चावसे बनाती हैं''''"

"मुर्गा''''''''"बात भाभी तक जा पहुँची है! मुझे उनकी शक्ल खयालमें आती और कँपकँपी छूटती। किसी दिन उनके हाथ पड़ गया तो वे मुझे भी हलाल कर लेंगी।

प्रभा उतनी बच्ची तो नहीं है और मेरा रुख़ पहचानती है। शादी तक सोचनेकी बात तो कभी मेरे दिमाग़में भी नहीं आयी। अकसर बातचीत करनेके ढंगसे लड़कियाँ खिंच आती हैं—परन्तु वह कोई प्रेमकी गिनतीमें नहीं आता।

●

उस सम्बन्धको कोई ख़ास नाम देनेमें हमेशा झिझक होती रहती है और प्रायः एक दूसरेके स्पर्शकी कशिश अतृप्तियोंका ढेर लगाकर जीवनकी सहज गतिको रोक देती है।

●

"मैं यह तटस्थता या ऑब्जेक्टिविटी अधिक नहीं समझती। लेखक भी आदमी होता है और नहीं होता है तो मैं बनानेकी कोशिश कर सकती हूँ''''"

"आपको भाभीसे इतना डर क्यों लगता है?'' मुझे चुप देख प्रभा पूछती।

कुछ देर उसके चेहरेको मैं ध्यानसे देखता और अपने चेहरेसे यथासम्भव कुछ भी सम्प्रेषित नहीं होने देता। उत्तर तो कोई-न-कोई देना ही पड़ता, उत्तर नहीं होता है तो उल्टे प्रश्न ही करना पड़ता है।

"भैया भी रहेंगे?" प्रश्न पूछकर भी मैं जेबमें कुछ ढूँढने लगता, जैसे इस प्रश्नके उत्तरकी अपेक्षा भी मुझे नहीं थी।

शनिवारको बात यहीं तक होती और फिर कोई लड़कियोंकी टोली आकर उसे बहा ले जाती—मैं उबर जाता।

प्रभाकी भाभीसे मैं डरता हूँ और उसके भैया मुझसे डरते हैं। उनके चेहरेपर ठीक वही डर था जो जवान बहनोंके भाइयोंके चेहरोंपर रहता है। उन्हें अपनी बहनके लिए एक लड़का तो अवश्य चाहिए और छिपे-छिपे उन्होंने वैसी सभी सम्भावनाएँ मेरे चेहरेपर ढूँढनेकी कोशिश भी की थी। मैं उनसे एक बार ही मिला था। उनकी आँखोंमें बराबर एक डर और सन्देह बना रहा—जाने कब प्रभा ग़लत हो जाये ! जाने कब ये ग़लत हो जायें ! अकसर लड़के ही ग़लत होते हैं और लड़कियोंका नशा—यानी प्रेमका नशा—किसी नर्सिंग-होममें जाकर टूट जाता है।

प्रभा थी २३ की। तेरह सालकी उमरमें लड़की भूख-प्यासको पहचान जाती है। दस सालसे अपनी समझमें उसके भैया अपनी बहनकी रक्षा कर रहे थे। माँ बाप विभाजनमें कहीं खो गये, भाईने गठरी बाँधकर कपड़ा बेचा। अब मार्केटमें अच्छी दुकान है। घरमें एक अच्छा ड्राइंग रूम है। उस दिन खानेमें कई प्रकारके सामान थे। और बादमें जिन प्यालोंमें काफ़ी पिलायी गयी उनपर नक़्क़ाशी थी, यद्यपि बहुत दिनोंके अनुपयोगके कारण वे मैले थे। सादे प्याले साफ़ थे परन्तु उनमें बच्चोंको चाय दी गयी थी।

इस मुआयनेके बाद प्रभाके भैयाको दुकानपर हिसाब मिलाना था। वे इजाज़त माँगकर चले गये। भाभीने उनसे आँखोंमें कोई बात की हो तो मैं देख नहीं पाया। बैठते समय उन्हें जितना डर था, उठते समय उतना नहीं था। मैंने अनुभव किया, फिर मुझे उनपर दया आती रही। उनके जानेसे मुझे एक प्रकारकी राहत मिली। अपने छुटकारेसे नहीं, उनके छुटकारेसे। दरअसल वह सारा कार्य भाभीकी आँखोंसे ही संचालित हो रहा था, प्रत्येक क्रिया उन्हींके निर्देशानुसार चल रही थी।

अब मेरी बारी आयी, यानी मुझे खानेकी और कॉफ़ीकी प्रशंसा करनी थी। मैं सामने बैठी बच्चीकी तरफ़ देखकर बोला, "इसे अभीसे ही मेहमानोंके बीच बैठनेके एटीकेट सिखा दिये गये हैं।" अप्रत्यक्ष ढंगसे यह श्रेय मैं भाभीको देकर उन्हें प्रसन्न करना चाहता था। खानेके बारेमें मुझे कभी बोलना नहीं आया।

"बच्ची नीचे वालोंकी है।" प्रभाने मेरी रक्षा की। भाभीका चेहरा चढ़ गया था।

मैंने रूमाल निकालकर अपने चेहरेका पसीना पोंछा। बच्चोंकी प्रशंसाका खयाल छोड़ दिया।

"पूरी यूनिवर्सिटी ख़ाली हो गयी है!" मैंने प्रसंग बदला, "बड़ा अकेला-सा हो गया हूँ, तुम लायब्रेरी आ जाओ कभी, या होस्टल ही आ जाओ...।"

दिसम्बरकी छुट्टियाँ थी।

"आपके 'होम'में लड़कियाँ आती हैं क्या ?" प्रभाने पूछा।

"जिनकी हैं, उनकी तो आती ही हैं।" स्वरमें काफ़ी व्यंजना भरकर और मुसकराकर यह बात कही।

भाभीकी बाछें खिल गयीं । प्रभाका चेहरा शर्मसे लाल हो गया था ।

■

इसके बाद बात आगे नहीं बढ़ पायी । दिसम्बर तक दोपहरें चार्मिंग थीं । जनवरीने कुहरेके बीच सारे शहरको ढांप लिया । थियेटरके पीछेसे ही बाईस सेक्टरवाली बारको जाया जाता था । ओवरकोटकी कॉलर उलटनेके बाद पहचाने जानेका डर मुझे नहीं रहता । वैसे भी रातका समय होनेसे प्रभाके घर जानेका ख़याल ही नहीं आया । उधरसे गुज़रते समय मकानके नम्बर अवश्य पढ़ता था । बारसे निकलता तो रास्ता बदल लेता ।

उस रात या तो कोई मिक्सचर था या खाने-पीनेमें कोई गड़बड़ी हो गयी थी, होस्टल आते-आते बाथ-रूममें जाकर उलट गया । खाना-पीना सब निकल गया । बग़लके कमरेके बुज़ुर्ग बैचलरने सँभाला ।

"प्रॉक्टर स्ट्रिक्ट हो गया है, ये पीना-वीना बन्द करो ।" उन्होंने कहा ।

मैंने कोई ख़ास विरोध नहीं किया ।

मैंने कुल्ला कर मुँह साफ़ किया । प्रॉक्टरके कोई लड़की नहीं थी और बैचलर्सको उनके ग़ुस्से या प्यारसे कोई ख़ास सरोकार नहीं था ।

अपने कमरे तक उनका सहारा लेकर ही आया । किवाड़ बन्द करनेसे पहले उन्हें थैंक्स देनेके लिए ओठ खोले ।

"हाँ, दो लड़कियाँ आयी थीं, एकने अपना नाम प्रभा बताया···।"

मैं चुप रहा । सिरमें दर्द हो रहा था ।

"शुक्रिया···कल पता करूँगा ।"

■

क्यों आयी थी प्रभा ? भाभीका दबाव भी हो सकता है, मौसमका भी । फिर भी सोते समय मैं इस बातसे निश्चिन्त नहीं था । दिसम्बरके साथ सभी बातें समाप्त हो जानी चाहिए । लड़के और लड़कियाँ शुरू-शुरूके आकर्षणके बाद टूटने शुरू हो जाते हैं ।

जनवरीमें—जबकि सारा शहर लगभग मृत था—इस सम्बन्धका जीवित रहना मुझे चौंका गया ।

प्रभा उतनी बच्ची तो नहीं है और मेरा रुख़ पहचानती है । शादी तक सोचनेकी बात तो कभी मेरे दिमाग़में भी नहीं आयी । अकसर बातचीत करनेके ढंगसे लड़कियाँ खिंच आती हैं—परन्तु वह कोई प्रेमकी गिनतीमें नहीं आता । वैसे प्रेम करना आता भी नहीं मुझे और न ही इस आवेगपर कभी विश्वास किया । नसोंके तनावको जो एक औरत चाहिए वह केवल आवश्यकता है, कोई सिद्धान्त और आदर्श नहीं । फिर भी लोगोंमें सम्बन्ध रहते हैं । इस बातसे मैं इनकार नहीं करता । प्रेमिका, पत्नी या बहनका नाम न देकर भी औरतोंसे सम्बन्ध रहता है । परन्तु हर बार समुद्री झागोंका खारापन, झागोंका ही नकुछपन हाथ लगता है । उस सम्बन्धको कोई ख़ास नाम देनेमें हमेशा झिझक होती रहती है और प्रायः एक दूसरेके स्पर्शकी कशिश अतृप्तियोंका ढेर लगाकर जीवनकी सहज गतिको रोक देती है ।

मुझे अपनी आयमें-से बीयरके लायक़ पैसे

बचानेमें कोई खास दिक़्क़त नहीं होती। नसोंका तनाव किसी-किसी रात अवश्य काफ़ी पैसे खा जाता है—यानी रात बैचलर्स होममें बीतनेकी बजाय कहीं और बीतती है तो मेरे बग़लवाले बुजुर्ग बैलचर मुझसे घृणा करनेकी बजाय—यदि सण्डेकी सुबह होती है तो—यथासम्भव चर्च समयपर पहुँचनेकी कोशिश करते हैं।

नींद ठीकसे नहीं आयी। केवल भाभीके दबावसे प्रभा मिलने नहीं आयी थी। चायपर, एक खुले दिन, मैंने उसे बताया था कि मुझजैसे लोगोंसे कभी ऐसा लगाव नहीं रखना चाहिए। हर स्थितिमें वे कोई-न-कोई कैरेक्टर ढूँढ़ते रहते हैं। वैसे इस बातसे कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता, सिवाय इसके कि वे औब्जेक्टिव अधिक हो जाते हैं।

प्रभाने धूपसे आँखें बचानेके बहाने ध्यानसे एक बार मेरा चेहरा देख लिया था। वहाँ लड़कियोंसे खेलनेवाले अडल्टस्की एम्बीग्यूटीकी बजाय एक आत्मस्थ व्यक्तिकी छाया ही मिली, अतः वह निराश होनेकी बजाय केवल नाराज़ हुई थी।

“मैं यह तटस्थता या औब्जेक्टिविटी अधिक नहीं समझती। लेखक भी आदमी होता है और नहीं होता है तो मैं बनानेकी कोशिश कर सकती हूँ…।”

यह बात काफ़ी साफ़ थी। मैंने हाथकी फ़ाइलसे चेहरेको धूपसे बचाया परन्तु वह काफ़ी तेज़ थी और प्रभाका चेहरा लाल हो गया था। शायद धूपसे…शायद अपने कमिटमेण्टसे।

बग़लके बुजुर्ग बैचलरको जब मैंने प्रभाके यहाँ लंच लेनेकी बात सुनायी तो वे गम्भीर हो गये। बोले, “तुम्हें यदि उससे शादी नहीं करनी है तो उसके यहाँ लंच तो अलग, चाय भी नहीं लेनी थी!”

◆

दो दिनोंकी आँखमिचौनीके बाद शहरपर कुहरेकी चादर फिर तन गयी। बारिश होनेसे ठण्ड फिर बढ़ गयी थी। नींद खुलनेपर दरारसे भीतर फेंक दिये गये अखबारमें मौसमका तापमान देखता, ज़ीरोसे नीचे मिलता।

लगातार सात दिन तक कमरेसे बाहर निकलना नहीं हुआ और कई प्रश्न धीरे-धीरे ठण्डे पड़ गये।

शुरू फ़रवरीमें धूप निकली तो कई बातोंके अर्थ बदल गये। मैं केवल उत्सुकतावश सड़क, भीड़, बसों, डिपार्टमेण्ट्सके धूपमें चमकते चेहरे देखने निकला। लायब्रेरी गया। एक-दो नयी पत्रिकाएँ आ गयी थीं, देखकर बाहर निकल आया।

लोग उत्साहसे मिल रहे थे परन्तु बातें केवल मौसमकी कर रहे थे। मुझे यह फ़रवरी अजीब लगा। लोग पुरानी बातें नहीं कर रहे थे—यानी केवल औपचारिकता निभ रही थी।

मैं काफ़ी हलका था। मुझे किसीका कुछ देना नहीं था! प्रभा काफ़ी समझदार है। मैं सन्तुष्ट था। डिपार्टमेण्ट गया तो छात्रोंने घेर लिया।

“साइन कीजिए….”

“क्या है भई….?”

“फ़ेयरवेल पार्टी....”

बिना सोचे क़लम निकाल ली थी—हाथ कांप गये....

“इतनी जल्दी....।”

मेरा स्वर कुछ भीग गया था। धूप भी कुछ गीली हो आयी। लड़कियां क्षण भरको सहमीं। एक अर्थ अपने-आप तीखा हो गया कि यह पार्टी नहीं है, विदा-वेलाके संवेगको तिरोहित करनेका हंगामा या बहाना मात्र है।

“जैसी आप लोगोंकी मर्ज़ी....दो दिन बादमें या दो दिन पहले....जाना तो पड़ेगा ही....।”

बात कहकर मुझे अपनेपर ही शर्म आयी। हर बातको उत्सव बना देनेवाली इस उमरको मैं यह बात क्यों स्पष्ट कर रहा था!

बात मैंने हँसकर कही थी अतः उतनी गीली नहीं थी। धूपमें चमक होनेसे वातावरण भीगनेसे बच गया। जाड़ेके भारी वस्त्र उतर गये थे और नये रंगीन कुरते-सलवारोंमें लड़कियाँ काफ़ी अच्छी लग रही थीं। अच्छी, यानी चेहरे खिले थे। वसन्त था और फूल थे। मौसम और घूमती हुई हवा।

लड़कियोंका झुण्ड किसी दूसरे मोर्चेके लिए उड़ा तो देर तक दुपट्टोंकी फरफराहट मैं सुनता रहा।

प्रभा इस बीच दीवारसे सटी खड़ी रही।

“अरे, तुम....!” मेरे स्वरमें काफ़ी स्वागत था।

उसकी आँखोंमें एक सूखी झील थी। मुझे अपना स्वागतवाला स्वर काफ़ी बनावटी लगा।

“वाह! पूरे मौसम हम उजाड़ रहे, आप आयी नहीं होम....?”

मैं झूठ बोला था और ‘तुम’से ‘आप’पर आ गया था।

उसकी सूखी झीलोंमें रेत उड़ने लगी। मुझे सांस लेनेमें कठिनाई हो रही थी। तीसरी बात कहनेका साहस मुझमें नहीं था। मैं उससे बच रहा था। उसकी प्रश्नीली आँखोंसे बच रहा था। उसके समर्पणसे बच रहा था। मेरे किसी व्यक्तित्वने उसे खींचा था! यह मेरा अपराध था—इसे मैं स्वीकार क्यों नहीं कर ले रहा हूँ? लड़की रो देगी....

“प्रभा....!”

मेरे स्वरमें अपराध-स्वीकृति आ गयी थी।

“मैं तुम्हारा....यानी तुम्हारी समझका काफ़ी सम्मान करता रहा हूँ!” यह बात मैंने काफ़ी जोर लगाकर कही।

उसका गला काफ़ी गोरा था परन्तु तन गया था, आँखें अवश्य लाल हो गयी होंगी। मैं नज़रें नहीं उठा पा रहा था।

“तुम और मैं....”

उसके गलेके तनावसे मैं डर रहा था, अतः कहते समय मैंने अपनी नज़र अपनी उठी हुई उँगलीपर टिका ली!

■ ■

वाई० एम० सी० ए०
शिमला

एक पत्थर
दो पत्थर
तीन पत्थर

[६]

[आपने पिछले अंकोंमें पढ़ा :

लन्दनमें डॉक्टरी पेशेमें उलझे कँवलप्रसाद सक्सेना जूलीके आकर्षणमें बँधकर हेनरीकी स्टडीमें एक दुर्घटनाको ख़ुद निमन्त्रण दे लेते हैं—जूलीके अन्य तीन पतियोंसे मुक्केबाज़ीमें ध्वस्त होकर हस्पताल जा पहुँचते हैं। जूली जब कवलसे मिलती है कि वह किसी तरह चुप हो जाये तो वह चौथा पति बननेकी ख़्वाहिश रोक नहीं पाता। जूली साफ़ मना कर देती है क्योंकि काला आदमी उसका पति नहीं हो सकता। फिर जूली लन्दनसे भाग पड़ती है—भागते हुए दुर्घटनाका शिकार होती है और माँसका मुरब्बा मात्र बनकर जीवित रहती है। माँसके मुरब्बेमें दो चमकती आँख—बस। कँवलको लगता है कि जूलीको जीवित रखना ही होगा—प्रतीकारस्वरूप। जूलीके तीन पतियोंसे बमुश्किल इस बातकी स्वीकृति प्राप्त करता है कि जूलीपर उन तीनोंका अब कोई अधिकार नहीं है। पहले जूली अपनी चिकित्साके लिए तैयार नहीं होती। कँवल उसे इस बातके लिए भी कठिनाईसे ही राज़ी कर पाता है। कँवलकी निरन्तर चेष्टाओं और प्रयोगोंसे जूलीका शरीर किसी यूनानी मूर्तिकारकी तराशी हुई संगमरमरकी मूर्ति-जैसा निखर आता है। केवल एक कमी रह जाती है। उसकी बाँयीं टाँगमें तनिक-सा लँगड़ापन रह जाता है। वैसे अब पहलेसे भी अधिक सुन्दर बन चुकी होती है—शरीर ही नहीं उसकी आत्मा भी···· उसे लगता कि वह कँवलकी एक कृतिमात्र है और कोई कृति अपने निर्मातासे अलग नहीं रह सकती···कँवलको हिन्दुस्तान लौटना था और वह उसके साथ थी·········]

कँवलने गिलास खाली करके बेडके नीचे रख दिया।

थोड़ी देरमें फिरसे उसकी ज़रूरत महसूस होगी। अब उसने एक-एक करके उन चारों वर्षोंको अपने पास बुला लिया जो उसने दिल्लीमें गुज़ारे थे। वे चार साल जूली और कँवलके वैवाहिक जीवनके बड़े सुन्दर साल थे। सिविल लाइनमें एक पुराना घर था···· आधा मुग़लई, आधा अँगरेज़ी ढंगका बना हुआ, जिसे कँवलके बापने उन्नीसवीं शताब्दी-के अन्तिम दशकमें बनवाया था। ज़नाना हिस्सा मुग़लई ढंगका बना हुआ था, दालान-दर-दालान, शेह-नसीन और कोठरियाँ और बीचमें एक खुला आँगन, जिसमें केतकी और मोलसिरी फूलती थी। एक जामुनका पेड़ था, दो आमके पेड़। इन तीनों पेड़ोंके चारों ओर पक्के चबूतरे बने हुए थे और इन सबके बीच तुलसीका मण्डप था। इस आँगन-के दो हिस्से कर दिये गये थे, ऊँची जगहपर बड़ा आँगन····नीचे निचली जगहपर छोटा आँगन था····बड़े आँगनके नीचेका भाग जहाँ एक तरफ़ बेरीका झाड़ था और एक तरफ़ कपड़े सुखानेकी अलगनी झूलती रहती थी। निचले आँगनमें अधिकतर नौकर-नौकरानियाँ थोड़ा काम और अधिक गपशपमें व्यस्त नज़र आते थे और घरकी औरतें बड़े और ऊँचे आँगनमें आमके पेड़ या जामुनके पेड़के नीचे चबूतरोंपर नज़र आतीं या जब धूप ज़्यादा तेज होती तो अन्दर दालानमें परदे खिंचवाकर और खसकी टट्टियाँ लगवाकर तखतपर बैठकर पंखे झलातीं। मर्दानेमें एयर कण्डीशनर लग गये थे और बड़ी बहूजीने भी अपने कमरेमें एयरकण्डीशनर लगवा लिया था और जब कमला, कँवलकी बड़ी बहन, अपनी ससुरालसे मैके आती थी तो वह भी अपने बचपनके कमरेमें सोती थी, जिसमें उसने पिताजीसे कहकर एक एयर-कण्डीशनर लगवा लिया था। फिर जब छोटी बहू अर्थात् कँवलकी अँगरेज बीवी आयी तो उनके कमरेमें भी एयरकण्डीशनर लगवा दिया गया। मर्दाना तो पहलेसे ही एयर-कण्डीशण्ड हो चुका था····पर युरॅप अब धीरे-धीरे मर्दानासे ज़नानामें घुस रहा था, लेकिन किसी अड़चनके बिना नहीं, अम्माजीने

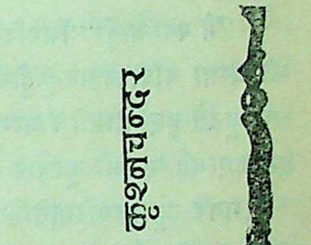

अपने कमरेमें [illegible] सख्त विरोध किया था ।

"मुझे तो खसकी टट्टीहीमें अच्छी लगे है····उसकी सौंधी-सौंधी सर्दी····इस रजाड़ निगोड़े माटी मिले हेयरकण्डीमें तो जाड़ा लगे है मुझे । तुमको यह हेयरकण्डी मुबारक····मेरे लिए तो खसकी टट्टी ही भली है····।"

इतनेमें बड़ी बहूजी दालान तक नंगे सिर आते हुए अम्मांको देखकर आधा-सा घूँघट काढ़ लेती और उसका एक छोर हाथसे झुलाते हुए, दूसरे हाथसे करधनीको कूल्हेपर ठीक करती हुई आकर खड़ी हो जाती और सिर झुकाकर पूछती, "अम्माँ, कत्था कहाँ है ?"

"मैं क्या जानूँ····जिगरियासे पूछ !" कँवलकी अम्मा चाँदीकी पन-कुट्टीमें गिलोरी डालकर उसे कूटते हुए बोलतीं । अम्मांके दाँत दुखते थे इसलिए वह पानको कूटकर खाती थीं ।

मगर बहू जिगरियासे नहीं पूछ सकती थी, जब कि जिगरिया उस वक़्त अम्मांके चरणोंमें बैठी उनके पाँवके तलवे सहला रही थी । जिगरियाकी उमर सत्तर बरसकी थी, लगती पचास-पचपनकी थी । जिगरिया इस घरमें इस परिवारकी तीसरी पीढ़ी देख रही थी । थी तो वह नौकरानी पर घर-भरमें सिक्का उसीका चलता था····उसकी इच्छाके बिना अम्माँ भी कोई काम नहीं करती थीं । बड़ी बहूजी और कमला तक सभी उससे सहमी रहती थीं ।

जिगरियाने मुँह फेरकर नीचे आँगनकी तरफ़ आवाज़ दी—"ऐ दुलरिया !····नास-[illegible] कत्थेको जोश नहीं दिया अभी तक क्या····?"

इससे पहले कि दुलरिया कोई जवाब देती आमके पेड़के पीछे रसोईके दरवाज़ेसे जूली आसमानी साड़ी पहने थोड़ा-सा घूँघट काढ़े, हाथमें चाँदीका एक कटोरा लिये अम्मांके पास आ गयी और झिझकती-लजाती-सी आवाज़में बोली, "अम्माँ, मैंने दुलरियाको मना कर दिया था । रातको मैंने कत्थेको जोश देकर फ़्रीजेडियरमें जमा दिया था, देखिए अच्छा बना है ?"

अम्माँ बोली, "मैं क्या जानूँ, जिगरियासे पूछ !"

जिगरियाने चाँदीका कटोरा अपने हाथमें लेकर उसे देखा, सूँघा । पास पड़े पानदानसे चाँदीकी एक चिमची निकाल उसमें कटोरेसे थोड़ा-सा कत्था निकालके ज़बानसे चाटकर बोली, "ऊँह···रंग भी अच्छा है, डल भी अच्छा है, स्वाद भी अच्छा है, महक भी अच्छी है, लो बधाई ! छोटी बहू कत्था बनाना सीख गयी !"

अम्माँने जूलीका मुँह प्यारसे चूम लिया । बोली, "शाबाश ! तू तो दिन-ब-दिन सुघड़ होती जा रही है ! अबके करवा चौथपर तुझे नया झूमर बनवाकर दूँगी ।"

जूलीने अम्माँजीके पाँव छूए और पानदान खिसकाती हुई गिलोरियाँ बनानेके लिए चली गयी । 'उन'के ज़िक्रसे जूलीका मुँह लाल हो गया था ।

इन चारों सालोंमें जूलीने हिन्दुस्तानी रहन-सहनके सारे आचरण सीख लिये थे ।

केवल उसकी आँख, उसका रंग और उसका उच्चारण उसके अँगरेज़ होनेकी चुग़ली खाता था। नहीं तो हर प्रकारसे जूलीने अपने-आपको हिन्दुस्तानी रंगमें ढाल लिया था। उसने धीमे स्वभाव और सभ्यताको अपना लिया था। हिन्दुस्तान आकर सबसे पहले उसने ज़िद की थी कि उसकी शादी हिन्दू-रिवाजसे हो। अँगरेज़ी वस्त्रोंका त्याग करके उसने साड़ी-धोती, जम्फर-ब्लाउज, क़मीज़-शलवार पहनना शुरू कर दिया था। वह आँखोंमें काजल लगाती थी, सीधी माँगमें सिन्दूर भरती थी और कमर तक चोटी करती थी। देहलीमें रहकर उसने यहाँकी रोज़ाना बोल-चालकी ज़बान भी अच्छी तरहसे सीख ली थी और नौकरानियों और दासियोंसे उसने बहुत-से मुहावरे और ताने सीखकर अपनी भाषामें भर लिये थे। उसके काढ़े हुए घूँघट, माथेकी बिंदिया और लजाकर खड़े होनेके भावसे पहली नजरमें कोई यह अनुमान ही नहीं कर सकता था कि जूली कोई अँगरेज़ औरत है।

केवल उसका नाम नहीं बदला गया था, अम्माँजीकी ज़िदपर। कँवलकी अम्माँको जूलीका नाम बहुत पसन्द आया था—"बिलकुल हिन्दुस्तानी मालूम होता है····क्यों जिगरिया?" और जिगरियाने दोनों हाथ कूल्होंपर रखकर, एक आँख थोड़ी-सी बन्द करके और दूसरी तनिक और खोलकर, सोचा था और फिर फ़ैसला दिया था—

"हाँ····हाँ, ठीक तो है····जूली····मुँहपर आसानीसे चढ़ जावे है···जूली····नहीं तो अँगरेज़ी नामोंमें ज़बान बड़ी टेढ़ी होवे है। बड़ी बहूको देखनेके लिए जो अँगरेज़ लेडी-डॉक्टर आवे थी····पिछले साल····कितना मुश्किल नाम था····लुटिया कथावड़े····लुटिया कथावड़े····भला कोई नाम है!"

बड़ी बहूने धीरेसे कहा, "लिडचा कथबर्ड थीं वह···।"

"ओ····वही तो कहूँ हूँ····लुटिया कत्थावड़े! लुटिया ही डिबो दी इस नामने, पर जूली तो बहुत अच्छा लगे है" जैसे मुँहमें शहद घुले है! यह जूली····इसका बालम जुल्मी!"

जिस तरहसे हाथ नचाकर जिगरियाने जूली और जुलमीका नाता बाँधा, उसके बाद किसीके लिए कुछ कहना उचित नहीं था। सब खिलखिलाकर हँस पड़े और जूलीका नाम हिन्दुस्तानी सभ्यतामें दाखिल कर लिया गया। कँवलने सोचा, भारतीय सभ्यताकी एप्रोच सदासे प्रैग्मैटिक रही है नहीं तो यह सभ्यता अबतक जीवित कैसे रहती। सुमेरी सभ्यताका पतन हो गया, बाबुली और पुराना मिश्री कल्चर भी। आज जो कल्चर मिश्रमें प्रचलित है उसका फ़िरऔनके समयके कल्चरसे नाता टूट चुका है। कोई तार शेष नहीं बचा रहा पर अयोध्यामें आज भी रामके समयकी सभ्यता मिलती है और जामा-मस्जिदकी सीढ़ियोंपर आज भी मुग़ल-कल्चरकी याद ताज़ा होती है। 'मोहनजोदारो' ख़त्म हो गया और आर्योंका खैबरसे प्रवेश भी। पर शिव और नाग, इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु····दोनों विभिन्न सभ्यताओंके प्रतिनिधि कैसे एक ही सभ्यतामें शीर-शक्कर होकर एक ही जीवनका भाग बन गये हैं। केरलके गाँवके गिरजेको देखकर

आज भी पुराने हिन्दुस्तानी [illegible] होता है⋯⋯बाहरसे देखनेमें मन्दिर और अन्दर सलीब लटकी हुई। उन इण्डोनेशियाई हिस्सों-में, जहाँ किसी समय भारतीय सभ्यता फैली थी, अर्थात् श्रीलंका, बर्मा, मलाया, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, इण्डोचायना और थाईलैण्ड—इन समूचे हिस्सोंकी सभ्यतामें विरोधकी भावनाकी जगह आपसी भाई-चारेके भाव मिलते हैं लेकिन हम इन हिस्सोंसे कटे हुए हैं, हम आइसलैण्डसे मित्रता जोड़ेंगे लेकिन अपने पड़ोसी, जिनकी आत्मा अभी तक हिन्दुस्तानके इतने निकट है, उनसे दूर-दूर रहेंगे या उनको घृणा-भरी दृष्टिसे देखेंगे। सोचनेका यह भाव भी आत्मीय नहीं है, साक्षात् यूरॅपीय है, क्योंकि, युरॅप बड़ा उग्रपन्थी है, चीनियोंके समान, पर हम कभी इतने उग्रतावादी नहीं रहे। किसी-न-किसी तरह हमने हमेशा सन्तुलनको प्राप्त किया है। अनपढ़ जिगरियाने जिस ढंगसे जूलीको अपना लिया है और लिड्या कैथबर्डको अस्वीकार किया है वह उसकी अवचेतनतामें उगनेवाली भाषा-वैज्ञानिक मेल-जोल और उसकी प्रैग्मैटिक एप्रोचकी दलील है। प्रैग्मैटिक एप्रोचको अपनी भाषा-में क्या कहेंगे? कँवलने सोचा, वह अपनी अम्माँसे पूछे, अम्माँ फ़ौरन कह देंगी, 'मैं क्या जानूँ, जिगरियासे पूछो!' और जिगरिया बेचारी क्या जाने, वह इन शब्दोंसे अपरिचित है लेकिन उसके अर्थसे नहीं⋯⋯"प्रैग्मैटिक?⋯⋯ ऐं⋯⋯क्या कहते हो, प्राग! परियाग जी तो मैं पिछले कुम्भमें स्नान कर आयी⋯⋯यह परियाग—मिला का वला है जो⋯⋯मैं लोग परियागमें किसी मिलाकी का जानूँ⋯⋯मुझसे ऐसा मज़ाक़ न किया करो!" कँवल चूँकि घरमें सबसे छोटा था, इसलिए जिगरिया अभी तक उसे प्यारसे मुन्ना कहती थी। पैदा होते सबसे पहले जिगरियाने उसे नहलाया था, वह उसे डाँट सकती थी। मुन्ना अपना-सा मुँह लेकर चला गया⋯मुन्ना⋯⋯मैं मुन्ना हूँ⋯? हिन्दुस्तानसे लेकर इंग्लैण्ड-फ्रान्स-अमरीका तक मेरी प्लास्टिक सर्जरीकी धूम है और मैं अभी तक मुन्ना हूँ⋯⋯मगर वह जिगरियासे कुछ नहीं कह सकता, वह तो उसके लिए बस एक मुन्ना-भर है।

जब अम्माँजी जूलीके रूपकी अधिक प्रशंसा करतीं या उसके सुघड़ापेकी बलाइयाँ लेतीं तो कँवल चंचलतासे कहता, "मगर अम्माँ जी, आप तो वास्तवमें मेरी प्रशंसा कर रही हैं! इसे तो मैंने बनाया है⋯⋯सिरसे पाँव तक⋯⋯नहीं तो यह दो कौड़ीके कामकी नहीं थी। आपने इसे अस्पतालमें देखा होता, जब यह मोटर-दुर्घटनाके बाद बिस्तरपर पड़ी थी⋯⋯बिलकुल ढीली अदवाइनकी टूटी हुई पलँगड़ीके समान जो आज भी जिगरियाकी कोठरीमें रखी है⋯⋯और जिसकी कोई कल सीधी नहीं थी।"

"चल झूठे!" अम्माँजीको कभी कँवलकी बातपर विश्वास न आता था। ऑपरेशन हो सकते हैं, हड्डी जुड़ सकती है, इधरकी खाल थोड़ी-सी निकालके उधर लगायी जा सकती है⋯यहाँ तक तो उन्होंने भी सुना था पर यह⋯⋯

"तू जब यह कहता है कि यह पतले-

पतले होंठ मेरे बनाये हुए हैं—यह कटोरा-सी धार-सी नाक, यह सीपियों-जैसे कान और यह नाशपाती-ऐसी ठोड़ी, यह मोमबत्ती-जैसी लम्बी-लम्बी उँगलियाँ····ये तो भगवान्ने बनायी हैं ! यह मैं कैसे मान लूँ····।"

"मान्नेकी बात नाहीं है जी !" जिगरिया-ने फ़तवा दिया ।

"बुआजी," कँवल जिगरियाको बचपनसे बुआजी कहा करता था—"तुमको झूठ-सच परखना हो तो छह महीने मेरे हस्पतालमें चलके रहो, तुमको फिरसे बीस बरसकी बना दूँगा। जूलीसे भी ज्यादा सुन्दर····तुम्हारी मोटी कमरका सारा फ़ालतू माँस और चरबी निकालके ऐसी पतली कमर दे दूँगा कि जब तुम मार्किटमें भाजी लेने जाओगी तो बलवा हो जायेगा !"

"चल झूठे····!" अम्मा प्यार-भरे शिकायती स्वरमें बोलीं, "एक जूलीका लँगड़ापन तो निकाला नहीं गया तुमसे, ऊपरसे ऐसी शेखी बघारते हो। मैं तो जब मानूँ कि तुम मेरी बहूका लँगड़ापन ठीक कर दो।"

अम्माँजीको दो ही शिकायतें थीं—एक तो जूलीका लँगड़ापन दूर नहीं होता था, वह बराबर लँगड़ाकर चलती थी। साड़ीमें बहुत हद तक उसका लँगड़ापन छिप जाता था, फिर भी यह कमी तो अपनी जगहपर थी ही। दूसरी शिकायत अम्माँजीको यह थी कि जूलीके सन्तान नहीं होती थी जब कि कँवलने आते ही कह दिया था कि उस मोटर-दुर्घटनाके बाद जूलीके बच्चा नहीं होगा।

मगर अम्माँजी किसी तरह माननेके लिए तैयार नहीं थीं कि इस सुन्दर और प्यारी-सी बहूके सन्तान नहीं होगी—"बहुत देखे हैं तेरे ऐसे डॉक्टर ! पण्डित दया किशनकी बीवीके बच्चा नहीं होता था, डॉक्टरोंने जवाब दे दिया था, अड़तीस बरसकी उमर हो गयी थी, दुनिया-भरके अँगरजी डॉक्टरोंको दिखलवाया, कुछ न बना, आखिर छिन्दवाड़ाके साईंने चुटकी दी···क्यों जिगरिया याद है ?"

जिगरियाने याद करते हुए एक मीठी मुसकानसे कहा, "नौवें महीने पलँगड़ीपर बच्चा रखा हुआ था। यह अँगरेजी डॉक्टर क्या भगवान्का हाथ भी रोक देवे हैं। वह जब देनेपर आ जावे हैं····मैं कहती हूँ····"

अचानक जिगरियाको कुछ याद आया—"सुना है, मिर्जाओंके मुहल्लेमें नरकतपुरसे एक पीर आया है····बहुत परशंसा सुनी है उसकी····।"

"तो कल छोटी बहूको ले चलेंगे!" अम्माँजीने हामी भरी। कँवल वहाँसे जल्दीसे खिसक गया क्योंकि अब उसे गुस्सा आने लगा था। अम्माँजी इसी तरह जहाँ भी कहीं किसी पीर-फ़क़ीर साईं-साधूकी सुन-गुन पातीं, जूलीको घूँघट कढ़वाके ले जातीं और कँवलकी समझमें नहीं आता कि जूली क्यों खुशी-खुशी ऐसी जगहोंपर चली जाती है और हँसी-खुशी राख, चुटकी, भस्म, तावीज, दम किया हुआ गन्दा पानी, पुराना खोपरा—जो मिले दोनों हाथ बढ़ाकर ले लेती है और घट कर जाती है। कोई हिन्दुस्तानी लड़की ऐसा करे तो समझमें आ सकता है मगर एक अँगरेज लड़की····लन्दनकी दुनिया देखे हुए····उसे

अफ़सोस होता था।

"अगर तुम्हारा मेदा खोला जाये तो कमसे कम दो सेर राख उसमें-से निकलेगी और ढेरों काग़ज़—इतनी राख और तावीज़के काग़ज़ तुम चाट चुकी हो! एक दिन तुम्हारा यह ऑपरेशन भी करना पड़ेगा।" कँवलने जूलीसे कहा और जूली जवाबमें केवल खिलखिलाकर हँस पड़ी थी।

"क्या तुम्हें वास्तवमें विश्वास है कि तुम्हारे बच्चा होगा?"

"नहीं!"

"फिर यह राख क्यों चाटती हो?"

"मुझे अच्छा लगता है—अम्माँजीका दिल भी खुश हो जाता है।"

"मुझे मालूम नहीं था, तुम इस सीमा तक अपने-आपको ढाल लोगी। तुम बिलकुल कहीं आती-जाती नहीं हो, क्लब भी तुमसे छूट गया है, यहाँपर अँगरेज़ी औरतोंकी ऐसोसिएशन है—कई बार वे तुम्हें बुला चुके हैं। हमारी सभ्यतामें रच-बस जाना बहुत अच्छी बात है पर मनको विशाल रखना चाहिए। कल यही एसोसिएशन एरिस्टोफ़ेन्सका प्रसिद्ध फ़ॉर्म लाइसिस्ट्रेट स्टेज कर रहे हैं। (डिलो फ़िट्टस) का अँगरेज़ी अनुवाद है—बहुत अच्छा होगा। चलती हो—दो टिकट ले आऊँ?"

"ना...." जूली जल्दीसे सिर हिलाकर बोली, "कल तो मेरा मंगलका उपास है।"

कँवलने गुस्सेसे पैर पटक दिया। जूली उसे मनानेके लिए जल्दीसे उसके सीनेसे लग गयी और लम्बी-लम्बी साँस लेती हुई रेशमी आवाज़में बोली, "अम्माँजी करवा चौथपर मुझे झूँमर दे रही हैं—तुम मुझे नथ बनवा दो!"

"नथ?" कँवलने आश्चर्यसे पूछा।

"हाँ, मैं नथ पहनूँगी।" जूलीने उससे कहा, "अम्माँजी मुझे जंगपुरा एक शादीमें ले गयी थीं, वहाँ मैंने दुलहनको नथ पहने हुए देखा था। वैसी मैं भी पहनूँगी करवा चौथके दिन और चाँदीकी थालीमें घीका दीप जलाये....गुलाब-केसर-चावल मिलाकर तुम्हारे टीका करूँगी, पाँव छुऊँगी, आरती उतारूँगी अपने स्वामीकी....।"

कँवल हँसकर बोला, "मेरा ख़याल है, तुम बिलकुल बारबेरीयन बन चुकी हो!"

जूली उसके सीनेसे लगे-लगे बोली, "मेरा ख़याल है, मैं पिछले जन्ममें हिन्दुस्तानी थी।"

कँवलने जूलीको लिपटाकर प्यार कर लिया। वह जूलीकी इस काया-पलटपर आश्चर्यचकित था पर खुश भी था। ये चार साल उनके वैवाहिक जीवनके अति सुन्दर साल थे जब प्रेमकी डालियाँ फूलोंसे भर गयी थीं और जूलीके सुनहरे बाल कमर तक आने लगे थे और जब वह उसका मुँह अपने चुम्बनोंसे भर देता था तो वह आनन्दविभोर होकर हाँफने लगती और उससे कहने लगती, "बस करो...बस करो....इतनी खुशी मुझे मत दो!" और कँवल उसके सुनहरे बालोंके बादबान खोलकर कहता, "ऐ क़िश्ती! तेरे

हंग कहीं बहुत दूर जानेको जी चाहती हैं····किसी अनजान तटकी रेतपर लेटे-लेटे वह गीत गानेको मन होता है जो झाग कतरती हुई समुन्दरी लहरें किनारेका मुँह चूमकर गाती हैं। ऊँचे-ऊँचे नारियल अपने हरे चँवर हिला-हिलाकर ताली बजाते हैं और जहाँ खूबसूरत पॉली-नेशियन तोते हवामें पंख पसारे प्रेम करनेवालोंपर शरीर बच्चोंके समान आवाज़े कसते हुए सिरोंके ऊपरसे गुज़र जाते हैं।"

अचानक जूली उससे अलग होते हुए कहती, "लो, मैं तो भूल ही गयी थी, अम्माँ-जीने कहा था, ससुरजीके लिए मठा तैयार कर दूँ····दही कबका फ़्रेजेडियरमें रखा बासी हो रहा होगा, जाने दो मुझे···तुम मठा पीयोगे?"

"मठा नहीं·······व्यान्को··· या आस्ती स्पू मान्से, सफ़ेद चंचल इटैलियन वाइन—आरलैण्डोका रेस्तराँ याद नहीं आता! आश्चर्य है, कभी याद नहीं आता है···याद-याद-याद! मेरी जुलियाना, तुम्हें अब कुछ याद नहीं आता है!"

"आता है···आता है···" जूलीने धीरज और शान्तिकी एक लम्बी साँस लेकर कहा, "मगर एक रेस्तराँके रूपमें नहीं, एक शराब-खानेके रूपमें नहीं, एक मन्दिरकी तरह याद आता है···जहाँ तुम मुझे मिले थे, दरवाज़ेके बाहर खड़े हुए और मुझे सहारा देकर अन्दर ले गये थे! अब याद करती हूँ आरलेण्डोको तो मैनेजर धोती पहने दिखाई पड़ता है और कानोंमें घण्टियाँ बजती हैं!"

कँवल जूलीके बिस्तरसे उठा और फिर वाइन-कैबिनेटकी तरफ़ गया। अब रात लगभग खत्म होनेको थी। खिड़कीसे भोरका उजाला झलकने लगा था और बिस्तरपर लेटी हुई जूलीके चेहरेके आकार प्रत्यक्ष होने लगे थे। अँधियारा चूँकि अभी बिलकुल ग़ायब नहीं हुआ था और उजाला पूरी तरहसे फैला नहीं था इसलिए जूलीका चेहरा आधा स्लेटी रंगमें और आधा उजले रंगमें नज़र आता था। उसने दूसरा ड्रिंक बनाया और बिस्तरके पास खड़ा होकर जूलीके चेहरेकी ओर देखने लगा जिसकी आँखोंके नीचे गहरे स्लेटी रंगके साये थे, रातोंमें जागनेके कारण। आज कितनी शामोंके बाद वह आरामसे सोयी थी—नीचे सड़कपर धीरे-धीरे लन्दनका ट्रैफ़िक शुरू हो रहा था। जूलीने एक स्वप्निल भावमें करवट बदली और उसकी एक टाँग पिण्डलीसे नीचे पाँव तक नंगी हो गयी—अभी तक वे टाँगें बड़ी सुडौल प्रतीत होती थीं।

कँवलको याद आया—आजसे डेढ़-दो वर्ष पीछे दिल्लीकी गरमियोंकी एक घुटी हुई शाममें कैनन हस्पतालकी लैबमें काम करते हुए अचानक उसे इस लँगड़ी टाँगको ठीक करनेकी युक्ति सूझ गयी थी। प्रयोग तो वह बराबर कर ही रहा था····जबसे दिल्ली आया था···मगर उसे अब तक किसी प्रयोगपर विश्वास न हुआ था। आज वह अपनी इस अकस्मात् सफलतापर खुशीसे उछल पड़ा। घर जाकर जब वह जूलीको बतायेगा कि उसकी लँगड़ी टाँग भी ठीक हो सकती है तो वह

कितनी खुश होगी ! वह और अम्माँजी और जिगरिया और ख़ुद उसके पिता। लेकिन सबसे अधिक जूली····अब वह दूसरी औरतोंकी तरह चल सकेगी, दौड़ सकेगी, खेल सकेगी ! अब उसका शरीर बिलकुल सम्पूर्ण हो जायेगा। मगर वह यह देखकर हैरान रह गया कि जूलीपर इस समाचारका प्रभाव बिलकुल उसकी आशाके विपरीत हुआ। खुश होनेके स्थानपर वह दुःखी-सी हो गयी।

"मुझे इसी बातका भय था, किसी दिन तुम कोई-न-कोई तरीक़ा निकाल लोगे !"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि मैं यह ऑपरेशन नहीं कराना चाहती।"

कँवल बड़े अचम्भेमें पड़ गया—"तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम अपने होशमें हो ?"

"बिलकुल····मैं जैसी हूँ—वैसी ही ठीक हूँ। बिलकुल खुश हूँ····यहाँ मुझे तुम्हारे घरमें बिलकुल यह खयाल ही नहीं होता कि मुझमें किसी प्रकारकी कोई कमी है ! रहने दो इस ऑपरेशनको···।"

"नानसेंस···यह ऑपरेशन तो तुम्हें कराना ही होगा···कितना मेरा जी चाहता है, तुम्हारे साथ बैडमिण्टन और टेनिस खेलनेको। तुम्हारी वजहसे मैंने ये दोनों खेल छोड़ दिये हैं।"

वह चुप रही—सिर झुकाये हुए।

"जूली !"

"हाँ····।" उसने कँवलकी तरफ़ देखा।

"क्या···क्या बात है ?"

"कुछ नहीं—यूँ ही मुझे डर लगता है।"

"डर किस बातका पगली ! तुमने उस समय इतने ऑपरेशन सह लिये····जब तुम मौत और ज़िन्दगीके बीच लटक रही थी,···· अब तो कोई खतरा भी नहीं है। बिलकुल साधारण-सा ऑपरेशन है—तीन महीनेमें ठीक हो जाओगी।"

तीन महीने बाद मैंने एक चमकती हुई सुबहमें अपनी कोठीके विशाल पूर्वीय लॉनमें ले जाकर उसकी पट्टी खोली। वह बेंतकी एक कुरसीपर बैठी हुई केसरी रंगकी साड़ी पहने हुए थी और उसकी पीठके पीछे लॉनकी बाढ़में लाल रंगकी बोगनवेलिया फैली हुई थी और गमलोंमें सफ़ेद आरनेशन चमक रहा था।

मैं लॉनके दूसरे छोरपर खड़ा हो गया और हाथ फैलाकर कहने लगा, "आओ !"

वह अपनी कुरसीसे उठी, दोनों पाँवपर उसने पूरा बोझ दिया, ठिठकी, कुछ क़दम धीरे-धीरे चली, फिर कुछ तेज, फिर एकदम दौड़ती हुई, हाथ फैलाये, खुशीसे रोती हुई मेरी बाँहोंमें आ गयी। उसका सारा शरीर आनन्दसे काँप रहा था और वह मेरे कन्धेपर मुँह छुपाये रो रही थी और लिपट रही थी—"मैं पूर्ण हो गयी ! मैं पूर्ण हो गयी ! मैं पूर्ण हो गयी ! कँवल, मै अब पूरी हूँ····आखिर····"

यह उसकी प्रथम प्रतिक्रिया थी। दूसरी बार जब मेरे पिताजीने उसके पूर्ण स्वस्थ

ा है।"
मने उस
नब तुम
थी,"'
बिलकुल
ीमें ठीक

कती हुई
पूर्वीय
ह वेंतकी
ी साड़ी
लॉनकी
फैली हुई
मक रहा

हो गया
ओ!"
ों पांवपर
ुछ क़दम
र एकदम
रोती हुई
ा शरीर
कन्धेपर
ही थी—
! मैं पूर्ण
खिर...."
। दूसरी
ूर्ण स्वस्थ

तीन नयी शोध-कृतियाँ

कुतबशतक और उसकी हिन्दुई

डॉ० माताप्रसाद गुप्त

तुलसी : आधुनिक वातायन से

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

दक्षिण भारत में जैन-धर्म

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

■ ■

अज्ञेय-द्वारा सम्पादित

सप्तकोंका त्रिरत्न अब एक साथ उपलब्ध

• तार सप्तक

गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, 'अज्ञेय'। (१९४३)

• दूसरा सप्तक

भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर-बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती। (१९५१)

• तीसरा सप्तक

प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायण, विजयदेवनारायण साही, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। (१९५९)

अपनी प्रतिके लिए लिखें—

भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-६

होनेके उपलक्षमें एक बड़ी पार्टी दी और उससे पूछा कि वह क्या चाहती है तो जूलीने सोच-सोचकर कहा, "मुझे एक स्वीमिंग-पूल चाहिए।"

मैं उसकी इच्छा सुनकर मुसकरा दिया। मुझे याद आया, लन्दनमें विश्रामके समय जूलीको तैरना बहुत प्रिय था वह जब भी अवसर मिलता, बिकिनी पहनकर किसी स्वीमिंगपूलमें घुस जाती थी।

हमारा घर बहुत बड़ा थ और उसके चारों तरफ़ बाग़ भी बहुत फैला हुआ था। यह पुराने ज़मानेका मकान था जब लोग रहना जानते थे। आजकल तो बस लोग टिकते-भर हैं—किसी फ़्लैटमें टिक गये, किसी बोर्डिंग-हाउस, किसी बॉल्कनीमें, सीढ़ियोंके नीचे, आजकल बस टिक जानेकी जगह चाहिए, रहनेका समय बीत गया।

पिताजीने पूर्वीय बाग़के बड़े लॉनको खुदवाकर वहाँ नये ढंगका एक स्वीमिंगपूल बनवा दिया। एक सप्ताह तक जूली इस स्वीमिंगपूलसे नहीं हटी। अपने दिनका अधिकतर समय यहीं गुज़ारती थी, यहीं पढ़ती थी, यहीं डुब्बी लगाती थी, यहीं नाश्ता करती थी, बिलकुल पागल हो गयी थी वह इस स्वीमिंगपूलके लिए····गहरे आसमानी रंगकी बिकिनीमें वह पूलमें तैरती हुई कोई आसमानी अबाबील-सी जान पड़ती थी। उसका सुन्दर-सुडौल शरीर, मालूम होता था, किसी खिराद-पर ढाला गया है····तुम कोई त्रुटि उसमें नहीं देख सकते!

नहानेके बाद तौलियेसे शरीर साफ़ करके वह एक खुला ब्लाउज़ और स्कर्ट पहनने लगी—"इससे बड़ा आराम मिलता है···· नहानेके बाद····।"

स्कर्टके साथ ऊँची एड़ीका जूता आया, सैण्डल कम होने लगे!

नहानेमें बहुधा उसके लम्बे-लम्बे सुनहरे बाल गीले हो जाते थे यद्यपि वह उनपर एक सफ़ेद टोपी पहनती थी, मगर पानी है, पहुँच ही जाता है। अब उसे अपने लम्बे बालोंसे उलझन-सी होने लगी थी!

एक दिन उसने अपने लम्बे बाल कटवा दिये। अम्मांजीने बुरा मुँह बनाया और जिगरियापर तो जैसे ग़शीका दौरा पड़ गया हो···· पर वे दोनों खामोश रहीं।

धीरे-धीरे जूलीने ज़नानेमें जाना कम कर दिया। स्कर्ट पहननेके कारण वह दूसरी हिन्दुस्तानी औरतोंकी तरह आम या जामुनके पेड़के चबूतरेपर, पलँगपर, तख्तपर फुसक्कड़ मारकर बैठ नहीं सकती थी। पीढ़ीपर बैठकर मठा नहीं बिलो सकती थी। उसके ससुरजी बहुधा उसीके हाथका बिलोया मठा पीते थे, अब यह कर्त्तव्य पहलेकी तरह फिर अम्मांजी पूरा करने लगी थीं। बहुत ही अनजाने-से ढंग-पर जूली और घरकी दूसरी औरतोंके बीच एक अनदेखी दीवार-सी उभरने लगी—कोई किसीसे किसी बातकी शिकायत नहीं करता था····पर एक दिन जूलीने कँवलसे कहा, "मेरा कमरा मर्दाने ही में हो जाये तो ठीक है, ज़नानेमें हर वक़्त बेकारकी बक-बक रहती है—बहुत बातें करती हैं तुम्हारे घरोंकी औरतें····कितना वक़्त बरबाद होता है!"

कँवलने मुँह उठाकर आशासे जूलीकी ओर देखा।

जूलीने अपनी नज़रें उससे नहीं मिलायीं। बोली, "मैं कुछ काम करना चाहती हूँ—घर-में पड़े-पड़े सड़ने लगी हूँ।"

"तो फिरसे ब्रिटिश वीमेंज एसोसिएशन ज्वाइन कर लो।"

जैसे जूली, कँवलसे यही बात सुननेकी ताक़में थी। दूसरे दिन वह मिसेज लिंगहार्टसे मिलने चली गयी, जो ब्रिटिश वीमेंज एसोसिएशनकी सेक्रेटरी थीं। उस दिन लंच भी उसने वहीं खाया। अम्माँजी देर तक उसका खाना लिए बैठी रहीं। दोपहरके बाद कोई तीन बजेके लगभग जूलीका टेलीफ़ोन आया कि उसने लंच खा लिया है, उसका इन्तज़ार न किया जाये।

(क्रमशः)

■ ■

गुरुनिवास, १५वाँ रास्ता,
खार, बम्बई-५२

परिवर्तित ग्राहक-शुल्क :

एक प्रति	...	१–५०
वार्षिक विशेषांक	...	३–००
वार्षिक शुल्क	...	१५–००
अर्द्धवार्षिक	...	८–००
तीन वर्ष का	...	४०–००
सात वर्ष का	...	९५–००
पन्द्रह वर्ष का	...	२००–००
आजीवन	...	२५१–००

—व्यवस्थापक

सनातन जीवन का मृत्युभोग और ब्रह्मराक्षस

द्वारकेश

मेरा दोस्त अचानक निरर्थकतावादी हो गया। उसने हवामें मुट्ठी घुमाते हुए गम्भीर मुद्रामें घोषणा की, 'मैंने अपनी आत्माकी, कमरेके अन्दर हत्या होते हुए देखा है और बाहर उसे भीड़के सामने निपट नंगी होते हुए भी देखा है। अब और कुछ नहीं रहा। जो कुछ भी छिपा हुआ मुखौटेमें था, वह सब अपने-आपको नग्न करनेकी त्रासदायी यातनासे उबल रहा है। परिस्थितियोंके नामसे हम अपनी नियतिको खोज रहे हैं—भागती हुई अन्धी भीड़में असहाय-विवश-से। कल रातको मैंने डायरीके आगामी भरे जानेवाले हर कोरे पृष्ठपर बिना तारीख डाले लिख दिया था—

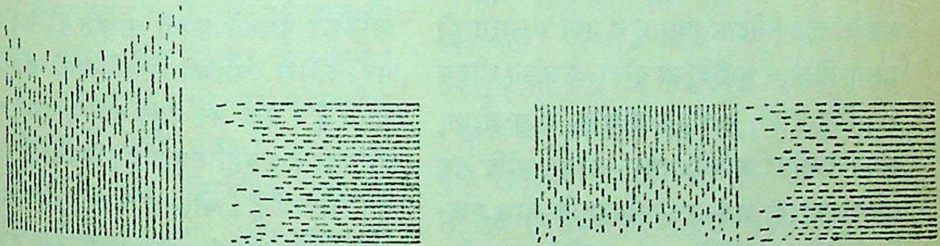

'स्वतन्त्रताका वरण'। आज मैंने सुबह डायरीको चूल्हेमें रख दिया। बेहद धुआँ हुआ। कमरा भर गया। आँखें धुँधला गयीं। मेरा अतीत अब सुरक्षित हो गया मेरी स्मृतिके जेलखानेकी कालकोठरीमें। अब मैं हूँ और नहीं भी हूँ। इतिहासका महत्त्व अब झेलनेको बाक़ी नहीं रहा। सब प्रवाहके एक रेलेमें बह गया। कोई गवाह भी नहीं रहा।"

"चुप रहो!" मैंने कहा और स्वयं चुप हो गया। खामोशी आसपास वातावरणमें व्याप गयी। क्षण गहरे और वज़नदार हो उठे। अन्दर फेफड़ोंमें हवाओंकी उपस्थिति तीखी तीव्रताके साथ मुझे मिटानेकी ओर बढ़ने लगी।

बाहर तीखी चटक धूप । लपझप चमकीला प्रकाश । ऊपर उठता हुआ सूर्य और घूमता हुआ आकाश । ऐसेमें चटक तीखे लाल-लाल फूलोंसे लदा हुआ गुलमुहर । मुझे जेठकी दुपहरी ठण्डी लगी । मैं बाहर निकल पड़ा । लूका थपेड़ा । आँखें जल गयीं और गुलमुहर-दृश्य मिट गया ।

मैं वापिस अन्दर आ गया ।

मैंने अपने दोस्तको देखा । वह गरमीमें भी अपना सिर मुड़ाये, घुटनोंसे लगाये, सो रहा था । धीमी साँसें, निश्चल-सा पड़ा शरीर और गहरी नींद । मुझे लगा—अब कोई स्वप्न-दृश्य कौंधता हुआ नहीं होगा ।

मुझे प्रवीणकी याद आयी । बच्चन सिंहके प्रवीणकी, जो अपने कन्धेपर अपनी लाश ढोता हुआ कई बिखरे हुए प्रतीकों-बिम्बोंमें फैल गया । श्याम परमारका 'सर्वेक्षण बिम्ब' हम सबको समेटता हुआ खुल गया । आत्माकी हत्या होना, सलीबोंका ढोना, स्वयंका भीड़में रूपायित होना, जीवित लाशोंके बीच जीना, अपने कन्धेपर अपनी लाश ढोना आदि सब एकबारगी ही भयंकर भयावहताके साथ वाद-विवादमें भाग लेते हुए कमरेमें भर गये । सहा नहीं गया । चीख मार, चीत्कार कर उठा—"चुप रहो ।" और डरकर देखा, कहीं दोस्तकी नींद चौंक तो नहीं पड़ी । उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । मैंने समझा, मैं चीखा ही नहीं । अन्दर कोई गूँज उठी, अन्दर ही फूटी और मिट गयी । मुझे कुछ ऐसा दुःख हुआ जैसे मेरे जीवनका कोई अंश महत्त्वपूर्ण होकर ऊपर आते हुए रुक गया, घुट गया और एकान्तके अँधियारेमें मर गया—अकाल मृत्यु!

भूत और भविष्यके बीच वर्तमानकी पतली सूक्ष्मतम विभाजक-रेखा सहसा चौड़ी होने लगी । धीरे-धीरे एक गहरी रपटीली खाइं उभरकर बाहर आ गयी । झटकेसे सहसा भविष्यका आकाश टूटकर गिर गया । हाथकी पकड़में केवल रह गयी भूत और वर्तमानकी टीसती हुई उपस्थिति । सामर्थ्य और शक्तिके साथ एक अजीब-से विरोधाभाससे स्वप्न खाईमें फिसल गया । अमूर्तसे मूर्त हो गया ।

तालाबके कुओंकी तरह इस खाईका भी एक अपना अलग गहरा अँधेरा कुआँ है, जहाँ सूर्य और चन्द्रकी किरणें नमस्कार एवं वन्दना करने पहुँच नहीं पाती हैं । आवाज़ें कूदकर बड़ी देर तक झाइं मारती रहती हैं । झाँककर देखनेसे अपनी आकृति कई-कई तहोंपर अँधेरी चमकमें झिलमिलाती आभासित होती है । वहाँ अब बहुत बड़ी भीड़का जमाव हो गया है । वहाँ सड़कें हैं । बिजलीकी रोशनी है । आवाज़ें हैं । चीखें-चीत्कारें हैं, जो सब एक उत्सुक-यान्त्रिक नियतिको स्वीकारनेके लिए, उत्तेजित दौड़-प्रतियोगितामें भाग लेती हुई, एक विवरसे निकलकर दूसरेमें आपाधापीके साथ प्रवेश करती हैं । सब पुकारोंके बीचमें-से कुछ पकड़ लेनेकी उतावली है । अधीरता है ।

इस खाईके अँधेरे कुएँमें 'कोई' हम सबको लेकर न जाने कब कूद पड़ा । हमारे कानोंमें सुन्नाहट भर गयी और मस्तक ठण्डा होता हुआ खाली-खोखला हो गया । कुछ पर्तें

टूट गयीं। अपने ही सम्बन्धमें परस्पर गन्दे और नंगे शब्दोंका प्रयोग करती हुई आत्माएँ आ गयीं। उनसे डरकर हमने अपना-अपना दायित्व-भार उस 'कोई'को सौंप दिया और कन्धे ऊँचे उठा लिये। मुक्त हो गये। हमने फिर उस 'कोई'को समझने-सोचनेका अवसर अपने हाथमें नहीं लिया। केवल उसकी आँखोंमें चमकती प्रतीक्षामें ढूँढ ली—आग्रहशीला उस पुकारको जो हमें निश्चिन्त कर देगी।

कलके लिए यह एक पुकार फिर अकेली एक नहीं रही। अनेकानेक रूपोंमें आ गयी। हम निश्चिन्त-सुरक्षित हो जानेके विश्वासमें अपने अस्तित्वकी सचेत संज्ञाको आश्रयहीन करनेकी ओर अपनी सामर्थ्य-शक्तिसे प्रयत्नशील हो गये। और जब चौराहेपर आये तो हम बहुत रोये, बहुत पछताये। हमारे पास न जीवन रहा, न ही इस सम्भावनाकी ओर ठीक तरहसे सिर उठाकर देख पाये। किन्तु इन सबके बावजूद भी हम प्रयत्नशील रहे, अस्तित्वकी सचेत संज्ञाको आश्रयहीन करनेके लिए। तभी विस्मृतिके चमकीले फुहारोंपर उछाल दिये गये, ऊपर पकड़ी हुई बन्दी दूरियोंके आकाश तक। फिर कुछ नहीं रहा।

रोज-रोजकी डूबती हुई सुबह। गोरैयों की मरी हुई-सी चहकें। सड़कोंपर धीरे-धीरे घिसटती खामोशी। फेंफड़ोंमें उमसती हुई शुष्क हवाएँ। सब मिलकर बहुत ही बेचैनी सौंपने लगीं। मछली-सी कोई शक्ति एक दिन प्यासी आँखोंके सामने क्षुब्ध क्रुद्ध और बेचैन सागरकी तहें पार कर आकाशकी ओर उछल पड़ी। उसका उजाला फैल गया। नथुनेमें शरीरी गन्ध भर गयी। 'बिना प्रतिफल और बिना किसी आशाके जीवित रहनेका डाला हुआ अभ्यास अब जैसे दो, और दो चार होते हैं—यह कहनेके अधिकारकी स्वतन्त्रता' माँगने लगा। यह यदि 'मिल जाता है तो और सब चीज़ें मिल जायेंगी।'—(जार्ज आर्वेलके उपन्यास '१९८४' से)। हमें कुछ ऐसा लगा कि हम बोलनेके प्रयत्नमें बोल तो गये १९८४के विन्स्टन स्मिथकी तरह, इस आशा और विश्वाससे कि 'जीवन कभी-न-कभी शक्तिके उस भयको पराजित करेगा जो आदमीके मुँहपर हमेशाके लिए एक जूता रखे हुए है।' स्मिथको सिवाय असहाय, विवश और मरा हुआ जीवन जीनेके और कुछ नहीं मिला।

> लेखकके शब्दोंमें : ''इस निबन्धकी पृष्ठभूमिमें राजनैतिक आतंकके विरुद्ध बौद्धिक चेतनाकी निष्क्रियता बैठी हुई है।···अप्रत्यक्ष रूपमें अज्ञेयकी पुस्तक 'आत्मनेपद'में प्रकाशित 'शेखर : एक जीवनी'पर प्रश्नोत्तर और मुक्तिबोधके काव्य-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है'से संकलित कविता 'ब्रह्मराक्षस' का प्रभाव पूरी रचनामें छाया हुआ है। वैसे जार्ज आर्वेल के उपन्यास १६८४ से लिये गये उद्धरण निबन्धकी आत्मा हैं।

'अपना अस्तित्व है'की अनुभूति नकारात्मक प्रक्रियाओंसे निकलती हुई इतनी

खोखली, सूनी और अकेली हो गयी कि रक्ताग्नि बर्फ़ ही गयी। आँखोंमें निरीह भयावहता असीम गहराई तक समा गयी। आत्मा एक शान्त प्रेतनीके सिवाय कुछ और न रह गयी। क्षुब्धता और बेचैनीको विरोध-विद्रोहसे रिक्त-तिक्त कर जिया जायेगा, जैसे अब इसके अलावा कोई और उपाय नहीं रहा।

फिर भी हम उपाय ढूँढ़नेके लिए चौराहेपर पहुँच गये। हमसे पहले लोग पहुँच चुके थे और हमारे पीछे भी लोग आते दिखे। बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। कोई आगे बढ़ता नहीं। हमने बढ़नेकी कोशिश की, रोक दिये गये। अपने पंजोंपर उचक देखा, भीड़के घेरेके बीच 'कोई' खड़ा है। वह कोई फिर 'शेखर : एक जीवन'के शेखर-सा लगने लगा। कोहरेके बहुत-सी नक़ाबोंमें-से कई उठ गयीं। हमारी साँसोंकी शक्तिने उसे ठीक तरहसे पहचान लिया। वह शेखर ही रहा जो अपनी पहली और दूसरीके बाद अन्तिम यात्राकी अभिव्यक्तिमें सहसा पहचानता है—'मैं'के माध्यमकी अपेक्षा 'वह' ठीक रहता। ग़लती हो गयी। इसलिए यात्रा रोक दी गयी और इस सम्बन्धमें स्वयं चुप हो गया। कोई बात नहीं करता। शायद अपनी उस नियतिके ध्यानमें डूब गया जो मृत्युके पहलुओंपर-से होती हुई, चमकती हुई मृत्युंजयी होनेकी ओर जा रही है। हमने रोकना चाहा। मृत्यु स्वीकारने-अस्वीकारनेके संकल्प-विकल्पमें नहीं जी जाती है। वह तो आजकी विभीषिकाको देखते हुए एक घटनासे अधिक कुछ भी नहीं होती। मृत्यु-भयको लेकर हम कितनी दूर तक चल सकते हैं ?—हमने सोचा।

शेखरकी मुद्रामें मृत्यु-भयकी यातना नहीं रही। उसके स्थानपर विरोध-विद्रोहकी विफलताकी कचोट रही जिसमें उसका उद्धत अहम् समयके यान्त्रिक क्षण-प्रवाहके बीच खड़ा रहा —'किसे आवाज दे ?' का प्रश्न लिये। चारों ओर उसने खोजा। मौन, केवल मौन मिला।

'मैं'का अहम्में विस्तार व्यक्तित्वकी अतिरेकी स्थितिमें फैलता है और अपने आसपासके परिवेश, वातावरण और लोक-मानसमें सिमटता है। विरोध और विद्रोहसे जन्मा शेखरका उद्धत अहम् फैला हुआ भी सिमटा हुआ है। इसलिए वह 'मैं'से 'वह' होनेका प्रयत्न करने लगा जिससे वह 'मैं'के एक निकटतम सम्बन्धके स्थानपर अप्रत्यक्ष अनेकानेक सम्बन्धकी सम्भावना लिये एक व्यापक विस्तृत गहरा 'वह'को पकड़ लेगा। और फिर 'वह'की अमूर्तता मूर्त होकर कालके हर स्तरपर संस्तरण करती हुई सब कुछ खोल देगी। गन्धित धूपसे अलगाते हुए परदोंको फाड़ देगी। सब कुछ आत्माके स्तरपर नग्न हो जायेगा। व्यक्तित्व पालने और अपनेको ही ओढ़नेसे उत्पन्न हुई भयावहतासे मुक्ति मिल जायेगी।

◆

'लो सम्भालो अब, टूटते व्यक्तित्वके युगमें यह दायित्व-भार सम्भालो !'

हम सब चौंके। हम सबने कभी चौराहेपर खड़ा होना नहीं चाहा। फिर भी अप्रत्याशित रूपसे उसकी ओर बढ़ गये। अब सामने शेखर नहीं रहा। बहुत-सी आकृतियाँ उभर-

कर सामने आ गयीं। इन्हें ही हमने अपने दायित्वोंको सौंपा था। हम खुश हुए। वे भी खुश हुईं। उनके कन्धे अट्टहासोंके झटकोंसे हिल गये। हमारे दायित्व नीचे गिर पड़े। धूलके ढेरमें कुछ दब गये और कुछ नष्ट हो गये। भविष्य अन्धकारमें जाकर एक दम पराया हो गया। शब्दों और अर्थोंका संसार मिट गया। एक यान्त्रिक गति रह गयी जिसकी शक्तिके बहावमें हम सब अपने-अपने दायित्वोंको पहचानकर उठा लेनेके लिए घुटनोंके बल झुक गये और हमारे हाथ गहरे, बहुत गहरे धँसते रह गये, खालीके खाली। छटपटाहट और बेचैनी बुझी आँखोंमें भर गयी। बहुत जल्दी ही हम उत्तेजनाके सम्मुख समर्पित हो गये स्मिथकी तरह। 'दो और दो चार होते हैं' कहनेकी अधिकारसिद्ध स्वतन्त्रता फिर देशके उस शासकवर्गसे टकरा जाती है जो अपने प्रजावर्गसे ऐसा युद्ध लड़ रहा है जिसमें युद्धका उद्देश्य भूक्षेत्र जीतना नहीं बल्कि समाजका वर्तमान साँचा बनाये रखना है। बहुत जल्दी ही हार या जीतके पश्चात् हमने सहसा बहुत बड़े झटकेके साथ अनुभव किया, हमारी स्वतन्त्रता कहनेकी आयोजनाके बीच कहीं मर गयी। गोलियाँ चल गयीं। काल-कोठरियाँ भर गयीं।

हम पहलेकी तरह घुटनोंके बल झुके हुए अपने-अपने दायित्व ढूँढ़ने लगे। साथ ही चाहने लगे, आश्वस्त हो उन्हें सौंप दें। स्वयं के सुरक्षित हो जानेका सुख। मोमके पंख। आकाशमें अनुपस्थित-सा उपस्थित सूर्य। मिटा दी गयी रेखाओंमें घटनाओंकी सम्भावनाएं। सब बँध गये।

एक सनातन जीवन जिये जानेके पूर्व अकाल मृत्यु-द्वारा छीन लिया गया, बग़ैर किसी घटनाके। हम घटनाओंके साथ घटनेसे वंचित हो, मुक्त हो गये। हम अपनी लाशको ढोने लगे। सनातन जीवनका मृत्युभोग दिनचर्याकी सहजता-सरलतासे करने लगे। अपने-अपने दायित्वोंको घुटनोंके बल झुके हुए घटनाओंकी सम्भावनाओंमें जीनेकी सार्थकता समझी तथा स्वयंके घट जानेकी अपेक्षा मुक्ति पा जानेकी कोशिशकी ओर फिर गये। फिर इसके आगे हम कहीं नहीं बढ़े। घटनाओंने ही भर दिया हमें, ऐसे 'कुछ' से जिसे हम नहीं जानते। जानते बस इतना हैं कि हमारा कुछ देरके लिए खोखलापन मिट गया। एक दूसरेके दायित्वोंको बिना पहचाने ढूँढ़ा और परायेको अपना मान सिरपर रख लिया, अगले झटके तकके लिए। हमारा मुक्तिका क्षेत्र ऐसा विस्तृत हो गया जिसमें न कोई सलीब रही और न कोई मसीहा ही।

अब उस क्षेत्रकी अभेद्य दीवालोंपर एक-एक शहर, समूचे हाथोंमें उठाकर, पूरी शक्तिसे मार दिये गये। सब कुछ तितर-बितर हो गया। धुएँके अपारदर्शी परदोंका आकाश सामने खिंच गया। सूर्यको आड़ी-तिरछी रेखाओंमें खींच दिया—प्रतीक-रूप। हम हर रेखापर खड़े होनेकी कोशिशमें जुलूस बन गये—नारों-आवाज़ोंमें परिवर्तित हो गये। दिमाग़ी बुखारकी हालतमें घुस गयी—घूरेपर फेंके गये टूटे दर्पणसे उछली धूपकी कोई

फांक। चेतना कट गयी। सड़क चमकीले उजालोंसे घिर गये। नपुंसक आदर्शों और स्वप्नोंके बहुतेरे परदे खींच दिये गये। विभाजन हो गया। सम्भावनाएँ खो गयीं और जुलूसोंमें। हम भीड़, जुलूस या नारोंकी एक अलग इकाई हो गये। अलग-अलग खेमोंवाले व्यक्तित्वोंमें अस्तित्वहीन-विलीन हो गये। उनके साथ हम सब कभी जल्दी चलते रहे, इसे घटना कहते रहे और उनमें जीते रहे स्वप्नविहीन। इससे भी आगे अचेतन मन विघटन-प्रक्रियामें भाग लेते रहे। कैसे भी जी लेनेकी मिलती गारण्टी और निश्चित सुरक्षाकी महती सम्भावनाको एक दूसरेसे छुपाते हुए, अपने फैले हाथोंसे पकड़नेकी अदम्य इच्छा-शक्ति हम पोसते रहे।

एक दिन घिसटती यात्राके बीच कोई कोई चीखा : 'हम सब आत्माएँ नहीं रहे, बनिये हो गये हैं!' हमने कहा---'कोई मर गया है।' और आगे बढ़ गये।

हाँ, हमें कभी-कभी बस लगा, कुआँके बाहर किसीने निकलकर फिर झांका, उन गहराइयोंके अपारदर्शी-से हरे और कीच-मैली रोशनियोंसे ग्रसित स्तरों तक। उसने हमें आवाज़ दी—'मैं आत्मसाक्षात्कारकी स्थितिमें हूँ!' किसीने नहीं, मेरे दोस्तने जवाब दिया, 'यहाँ मैं भी हूँ, भूख भोगते हुए!'

'ब्रह्मराक्षसकी तरह?'

वह चुप रहा। एक सीधी सपाट चिकनी सड़क खिंच गयी। मृत्युकी भयावहता बाहर कूदी और तेज़गामी गतिसे कहीं अदृश्य बिलमें घुस गयी। सड़कका आकार बिगड़ गया। आत्माकी भयावहता बढ़ गयी। दो साक्षात्कार फिर मिल गये।

और मेरा दोस्त अचानक निरर्थकतावादी हो गया। उसने हवामें मुट्ठी घुमायी और घोषणा की। मैंने अपने दोस्तकी सागरीय आँखोंमें साँस साधे डूबकर देखा—दिशा-दृष्टिकी चमकमें कुछ और किरणें सम्मिलित हो गयीं। उनमें हरी दूबका लाचार क्रोध भी मुझे नहीं दिखाई दिया। किन्तु एक क्षुब्धता तेज़ीसे प्रतिक्रिया करती हुई अनुभव हुई। वह अहम्‌की उद्यतता देनेवाली नहीं रही। मुझे लगा उसके अन्दरका असन्तोष-विरोध और विद्रोह घटनाओंमें जीता हुआ जीता नहीं है, शेखरकी तरह। वह असमर्पित मन रहा। घटनाओंकी उत्तेजनाओंमें जीनेकी ओरसे हटता हुआ। मेरा दोस्त फिर अपनी लाशको घसीटे जानेकी या उसे अपने ही कन्धेपर ढोनेकी भयावह स्थितिसे उबरता हुआ 'मैं'से 'वह' हो गया।

सच, अब परदे उठाओ, मेरा दोस्त अब असुरक्षित हो गया!

और मुझे अपना चेहरा तमतमाया-सा लगा। धूप सीधी चेहरेपर ही पड़ रही थी। बाहर धूप तीखी चमकीली-सी लगी। गुलमुहर अपने चटक-चमकीले-खूनियाँ रंगमें अपनेको भरता हुआ सम्मोहक लगा। कारण शायद अपने-आपको सोते हुए दोस्तसे ज़्यादा सुरक्षित समझनेका रहा। ■ ■

क्वार्टर न० एन० २, ५७-सी-
सेक्टर, पिपलानी, भोपाल।

विलमें
गया।
ात्कार

तावादी
ी और
ागरीय
-दृष्टिकी
गयीं।
ी मुझे
ा तेज़ो-
। वह
। मुझे
ध और
नहीं है,
ा। घट-
े हटता
ी घसीटे
ी भया-
ी गया।
ोस्त अब

माया-सा
ी थी।
गुलमुहर
अपनेको
ा शायद
सुरक्षित
■ ■

५७-सी-
भोपाल।

१९६७

एक और व्यंग्य कृति

कुत्ते
की
दुम

डॉ. र. श. केलकर

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा शीघ्र प्रकाश्य

डॉ. इन्दुप्रकाश पाण्डेय की एक विशिष्ट कृति

अवधी
व्रत
कथाएँ

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा शीघ्र प्रकाश्य

मनमोहन मदारिया

किसी एक 'रत्ना'की शिकायत

भट्टजी, जानती हूँ, आप मेरे विधाता हो, मेरे स्रष्टा हो, परम्पराके अनुसार मुझे वह सब स्वीकार कर लेना चाहिए जो आपने मुझे दिया। यह सोच लूँ कि ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा करता है, हमारे भलेके लिए करता है।....लेकिन मैं तो परम्परावादी नहीं हूँ, आपने ही मुझे एक असामान्य नारी बनाया है—ऐसी असामान्य नारी जैसी बरसोवाके कोली मछलीमारोंमें दूसरी नहीं है। प्रगतिशील नारी सामान्य नारी होती तो चुप रह जाती, परम्पराके अनुसार अपने विधाताके आगे मुँह न खोलती; अपनी नियतिको स्वीकार कर लेती; लेकिन मैं तो पढ़ी-लिखी नारी हूँ, अपनी बातको कहना जानती हूँ। मैं चुप क्यों रहूँ? यह युगानुरूप भी न होगा। युग मूर्तिभंजनका है—पुत्र पिताकी टीका कर रहा है, कन्या अपनी माताके चरित्रपर अँगुली उठा रही है। मुझे आपसे शिकायतें हैं और मैं उन्हें वाणी ज़रूर दूँगी। तो लीजिए सुनिए :

आपने कभी 'मत्स्यगन्धा'की रचना की थी, एक भाव-नाटच—काव्यमें यौवन और जीवनकी समस्याओं पर विचार। आदि काल के एक पौराणिक चरित्रको लेकर मानव-जीवनकी कतिपय शाश्वत समस्याओंपर आधुनिक परिप्रेक्ष्यमें चिन्तन किया था। उस रचनाके बारेमें मैं अधिक कुछ न बोलूँगी, यह प्रासंगिक भी न होगा। मुझे कहना तो यही है कि आपने मुझे अनुकृति क्यों बनाया—जिस बातको आप एक बार काव्यमें कह चुके थे, उसे फिर 'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यासमें क्यों उठाया? क्या आप अपनी बात 'मत्स्यगन्धा' भाव-नाटचमें पूरी तरह नहीं कह पाये थे जो आपने मुझे रचा? लोग कहते हैं, मैं एक अनुकृति हूँ और यह मुझे हर क्षण सालता है। क्या आपकी रचना और कल्पना-शक्तियाँ चुक गयी थीं जो आपने अपने एक पात्रको नयी पोशाक पहनाकर पेश कर दिया? ऐसा था तो बेहतर तो यही होता, आप मुझे जन्म ही न देते। मेरी बड़ी बहन

'मत्स्यगन्धा' काव्यका परिधान पहने आज भी मौजूद है और उसका रूप, उसका परिधान, उसका चेहरा-मोहरा इतना सुन्दर और आकर्षक है कि मैं उसके सामने भद्दी नजर आती हूँ।

मैं कॉलेज जाती थी, एफ० ए० में पढ़ती थी—बरसोवाके शिवकर कोलियोंमें मैं ही एक लड़की थी जो इतनी पढ़ी-लिखी थी। लेकिन इतना पढ़ने-लिखनेके बावजूद आपके हाथों मैंने क्या पाया। क्या अर्जित किया? वही, जो एक सामान्य कोलन लड़कीको मिलता। इस प्रकार आप कहना क्या चाहते थे? क्या यह कि सब लड़कियाँ एक-सी होती हैं—वही पतिकी चाह, वैभवकी भूख! क्या आप यह कहना चाहते थे कि लड़कियोंके लिए शिक्षा अनावश्यक है? क्या शिक्षासे व्यक्तिके संस्कार परिष्कृत नहीं होते? लड़कियोंकी चंचलतापर नियन्त्रण नहीं होता? आपने मुझे एक ओर तो शिक्षित बनाया, दूसरी ओर चंचल और उथली—यह विसंगति क्यों? आप चाहते क्या हैं? क्या यह कि लड़कियोंके लिए समाजमें निरक्षरता-अभियान चलाया जाये? वही उनकी मुक्तिका मार्ग है। ओ मेरे विधाता, इस तरह आपने मुझे उपहासका पात्र नहीं बनाया, समूची शिक्षा प्रणालीको ही अनावश्यक सिद्ध किया है। भला यह कौन-सा आधुनिक दृष्टिकोण है?

मेरे जीवनकी एक ही समस्या है, उपयुक्त साथीकी खोज। चूँकि मैं पढ़ी-लिखी थी, इसलिए बरसोवामें मेरी अपनी बिरादरीमें मेरे योग्य वर नहीं था। ठीक है, एक पेचीदा समस्या थी। आपने इसका निदान क्या किया—एक अनजान युवकको ला फेंका हमारे बीच। वह भी मछुएका बेटा था लेकिन मछुएका धन्धा नहीं करता था। काफी घूमा-फिरा था, बातें बनाना और लोगोंको लुभाना जानता था। मेरी माँको वह जँच गया और माँकी मंशाको भाँपकर मैंने उसे वर लिया। यों, आपने मेरे लिए जीवन-साथी दिया—माणिक। शादी होते ही मुझे पता चला कि वह मेरी प्रेमकी प्यासको बुझानेमें असमर्थ है, वह शरीरसे ही कुरूप नहीं है, दिलसे भी ओछा और टुच्चा है। मैं उसके साथ निभा नहीं पायी—इसके लिए आपने मुझे ही दोषी माना है, मेरे भूखे यौवन और अदम्य लालसाओंको ग़लत ठहराया है। मैं कहती हूँ, आपने मेरा साथी माणिक ही क्यों चुना? मैं कॉलिजमें पढ़ती थी, मेरे सहपाठी कोली नहीं थे, दूसरी जातियोंके लड़के थे। क्या मैं प्रेम-विवाह नहीं कर सकती थी? मेरी एक महाराष्ट्रियन सहेली थी, सारिका। उसका भाई था मनोहर। क्या उससे मेरा प्रेम नहीं हो सकता था? शायद आप स्वजातीय विवाहके कट्टर समर्थक हैं। इसीलिए आपको यह स्वीकार नहीं हुआ कि मेरे लिए बिरादरी-बाहर भी वर खोजते। क्षमा कीजिए, भट्टजी, लेकिन मैं कहूँगी, आपके विचार बड़े दक़ियानूसी हैं। आपके इन दक़ियानूसी विचारोंने ही मेरे जीवनका नाश कर डाला। यदि मेरे लिए स्वजातिमें उपयुक्त वर नहीं मिलता था तो क्यों नहीं आपने मुझे नौकरी करते हुए एकाकी, आत्मनिर्भर

जीवन गुजारनेके लिए प्रेरित किया ? क्या मैं कुँआरी ही नहीं रह सकती थी ? क्या किसी लड़कीका जीवन तभी सार्थक हो जब वह विवाह कर ले ? क्या ब्रह्मचर्य पुरुषोंके लिए ही है, नारियोंके लिए नहीं ?

मैं समझती हूँ, पुरुष होनेके नाते आपने अपने पुरुष-पात्रोंके प्रति जहाँ पक्षपात किया है, वहाँ नारी-पात्रोंके साथ न्याय नहीं किया । यही देखो न, यशवन्तके चरित्रको आपने कितना ऊँचा उठा दिया है ! उसे देवता बना दिया है । वह हमारी बिरादरीका एक सामान्य मछुआ-युवक था । पढ़ाई-लिखाईके नामपर उसके लिए 'काला आखर भैंस बराबर' था । उसकी मुझसे शादीके लिए बात क्या चली, वह मेरे इर्द-गिर्द भौंरे-जैसा मँडराने लगा । जब मुझसे शादी न हुई तो एकदम सन्त बन गया । एकलव्य-साधनासे उसने पढ़ना-लिखना सीख लिया और घरका काम छोड़ समाज-सेवामें लग गया । सब उसके गुण गाने लगे । आखिरमें उसने मुझसे बहनका नाता जोड़ लिया । यों यशवन्त तो आजीवन अविवाहित रह सकता था, मैं नहीं ? आपने यशवन्तके चरित्रको बहुत ऊँचा उठाया है; लेकिन मैं पूछती हूँ, उसकी सेक्स-उमंगोंका क्या हुआ ? क्या उसमें सेक्स-उमंगें नहीं थीं ? क्या वह नामर्द था ? मैं नहीं मिली थी तो वह तो किसी भी मछुआ-लड़कीसे शादी कर सकता था । पचासों लड़कियाँ थीं । उसने ऐसा क्यों नहीं किया ? आप कहोगे, वह मेरे प्रेमपर मर मिटा । उसने प्रेमकी सचाई निभायी । लेकिन यहाँ प्रेम कहाँ था ? एकांगी आसक्ति थी । यशवन्त मुझपर आसक्त था, मगर मैंने तो उसे दो हाथ दूर ही रखा था । लेकिन आप पुरुष-लेखकोंके सामने तो 'देवदास' आदर्श है न ? लीजिए, आपने यशवन्तके रूपमें एक और 'देवदास' खड़ा कर दिया । आप इस प्रकार शायद यह कहना चाहते थे कि पुरुष प्रेममें बहुत सच्चा होता है, प्रेममें असफल होकर 'देवता' बन जाता है । ये आपके निजी विचार हैं । मैं इनसे सहमत नहीं हूँ लेकिन आज मैं इनकी टीका नहीं करूँगी । मैं तो केवल यह कहूँगी कि इस प्रेमकी रसायनका प्रयोग आप किसी नारीपर भी कर देखते और जहाँ तक मैं जानती हूँ, नारी प्रेममें अधिक गम्भीर होती है । लेकिन आप तो नारीको चंचला ही मानते हैं न, उसे सिर्फ मछली समझते हैं । आपके इस पूर्वाग्रहको कैसे दूर किया जाये ? शकका तो कोई इलाज नहीं ।

मुझे एक मौक़ा और मिला था जब मैं अपना भाग्य सँवार सकती थी । मैंने अपने पति माणिकको छोड़ दिया था और अपनी सहेली सारिकाके पास जा टिकी थी । मैं नये सिरेसे जिन्दगी शुरू करना चाहती थी, अपने हाथोंमें अपना भाग्य बनाना चाहती थी । मैंने टाईपिंग सीखना शुरू कर दिया था और नौकरीकी तलाश करने लगी थी । इस समय यदि मुझे उचित नौकरी मिल जाती तो मेरे जीवनकी धारा ही कुछ और होती । मैं पढ़ी-लिखी थी, स्वस्थ और सुन्दर थी—क्या मुझे कोई ढंग-ढोलकी नौकरी नहीं मिल सकती

थी ? लेकिन, आपने मुझे लगा दिया एक सेठके घर, बच्चे खिलानेकी नौकरीपर। ऐसा काम जो कोई अपढ़-निरक्षर औरत ही करती। फिर वहाँ जो होना था, वही हुआ। अदने-से लोगोंने मेरी इज़्ज़त लूटनी चाही और मैं नौकरीसे निकाल दी गयी। एक बार फिर मेरी ज़िन्दगी सड़कपर नज़र आयी। ग़लत नौकरीके इस एक अनुभवसे ही आपने मुझे परास्त कर दिया और अब मैं फिरसे शादी करनेका विचार करने लगी। सारिकाके पड़ोसमें ही रहता था—पारसी वकील धीरूवाला। ज़माने-भरका लफंगा, औरतोंके शरीरसे खेलनेवाला दुष्ट। आपने उससे मुझे उलझा दिया। उसने मुझे शादीका झांसा दिया और मैं बहुत दिनों तक उसकी बातोंमें उलझी रही। इस तरह मैं अपनी दूसरी शादी करनेमें भी विफल रही और आपका मन्तव्य पूरा हुआ—आपने सिद्ध कर दिया कि नारी, भले ही वह पढ़ी-लिखी हो, योग्य हो, अपने बूते कुछ नहीं कर सकती। न ढंगका कामकाज जुटा सकती है, न योग्य वर। इस प्रकार आप शायद उस पुराने विश्वासको सही बताना चाहते थे कि नारीको सदा एक संरक्षककी आवश्यकता है—बचपनमें पिताकी, जवानीमें पतिकी और बुढ़ापेमें बेटेकी। नारी आपकी दृष्टिमें एक कोमल बेल ही है, जो अपने सहारे खड़ी नहीं रह सकती। उसे पुरुषका सहारा चाहिए, पुरुष ही उसका भगवान् है!

और लीजिए, मेरे उद्धारके लिए भी एक पुरुष आ गया, डॉक्टर पाण्डुरंग। आपकी समस्या हल हुई। डॉक्टर पाण्डुरंगने मुझे सड़कसे उठाकर एक सेवाभावी नर्स बना दिया, उसने मेरी अवैध सन्तानको अपनी सन्तान कहा और मेरा पति बन गया। कितना महान् था वह, पूरा देवता! कितनी औरतोंको ऐसे देवता नसीब होते हैं। सोचती हूँ, मेरी ज़िन्दगीमें यह देवता न आता तो मेरी क्या गति होती? शायद ठोकरें खातें ही ज़िन्दगी गुज़रती! अपने हाथों में अपना कुछ भी न कर पाती।

भट्टजी, क्या आप मुझे, मेरी ज़िन्दगीको सचमुच समझ पाये हो? कहा तो यह जाता है कि जन्म देनेके बाद ईश्वर भी नारीको समझ नहीं पाता। मगर आपने तो मेरे चरित्रका यूँ विश्लेषण कर दिया है जैसे वह गणितका सवाल हो। आपको भी शौक़ हुआ कि एक आंचलिक उपन्यास लिखा जाये। आप आ पहुँचे बरसोवा। दस-पाँच दिन हम लोगोंके साथ रहे। एक 'टूरिस्ट'की नज़रसे आपने हमारी ज़िन्दगी देखी और 'सागर, लहरें और मनुष्य' रच डाला। आपने हमारी ज़िन्दगीका सतही चित्रण तो कर डाला, लेकिन हमारी समस्याएँ, हमारी ज़िन्दगीका दर्द आप उभार नहीं पाये। अस्तित्वके लिए हम मछलीमारोंका विकट जीवन-संघर्ष, अनिश्चित भविष्य और असीम सागरकी चुनौती क्या आपने गहराईसे महसूस की? फिर, मेरी ज़िन्दगीमें तो और भी गुत्थियाँ थीं—मैं आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर सम्मानपूर्ण जीवनके लिए हाथ-पैर मार रही थी। मेरे संघर्ष कई स्तरोंपर थे। आप चाहते तो मेरे चरित्रको गहरी अर्थवत्ता

प्रदान कर बरसोवाके मछलीमारोंके सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत कर देते, मेरे जीवन-संघर्ष और व्यथाको पूरी संवेदनासे चित्रित कर पाठकोंकी सच्ची सहानुभूतिका पात्र बना देते। आपने आंचलिकताका नया परिवेश तो अपनाया है लेकिन आपके दृष्टिकोण और विचारोंमें कोई नयापन नहीं—आप वहाँतक भी नहीं पहुँचे जहाँ आपके पूर्ववर्ती उपन्यासकार प्रेमचन्द्र या शरतचन्द्र पहुँच चुके हैं।

भट्टजी, जब मैं पढ़ती थी, मैं अकसर सोचा करती थी कि इतना पढ़नेपर भी क्या मुझे ऐसे ही किसी मछलीमारसे शादी करनी पड़ेगी। फिर पढ़नेका क्या फ़ायदा? क्या मैं अपनी सखी सारिकाकी तरह स्वतन्त्र नहीं रह सकती? क्या मुझे उनके लोगों-जैसा कोई सुन्दर लड़का नहीं मिल सकता?....' आपने मेरे मनका यह विश्लेषण सही किया था। अब उचित तो यह होता कि आप मेरे विचारोंके अनुसार ही मेरे भावी जीवनको ढालते। लेकिन आपने ऐसा न कर मेरी जीवन-नौकाको भाग्यकी लहरोंपर बिना पतवारके छोड़ दिया। मैं सामान्य मछलीमार लड़की होती तो यह ठीक होता; लेकिन मैं तो सामान्य लड़की नहीं थी न! मैं तो इतनी समर्थ और योग्य थी कि जो कुछ सोचती थी, उसे जीवनमें जुटा भी सकती थी। यदि जुटा न भी पाती तो उसके लिए संघर्ष तो कर ही सकती थी। पर आप तो शायद भाग्यवादी हैं। सोचते हैं, वही होता है जो मंज़ूरे खुदा होता है! आपने मुझे भाग्यके हाथों खिलौना बना दिया—एक माटीकी मूरत। मुझे अपने लक्ष्यके लिए संघर्ष करनेका मौक़ा भी नहीं दिया। यों, आपके दृष्टिकोण और मेरे विचारोंके अनुरूप ढाला गया होता तो मैं कुछ और ही होती। लेकिन आपने तो अपना दृष्टिकोण मुझपर आरोपित किया है और इस कारण मेरे चरित्रके साथ पूरा न्याय नहीं हो पाया है। मैं पढ़ी-लिखी हूँ, समर्थ हूँ, लेकिन जैसा कि आपने मुझे चित्रित किया है, अपने विवेकानुसार कोई भी उचित निर्णय नहीं कर पाती—वही ग़लतियाँ करती हूँ जो एक अपढ़, अयोग्य कोलन लड़की करती। ऐसा क्यों? क्या पढ़ने-लिखनेसे आदमीकी विवेक शक्ति विकसित नहीं होती? आपने मेरा जीवन अन्तमें डॉक्टर पाण्डुरंगकी दयापर छोड़ दिया है। इस प्रकार आपने मेरे स्वाभिमान को, एक पढ़ी-लिखी नारीके आत्मविश्वासको पूरी तरह तोड़ दिया है। इस तरह स्वाभिमान-रहित जीवन जीना क्या मेरे लिए श्रेयस्कर है? इससे बेहतर तो यह होता कि एक अवैध शिशुकी माँ होकर मैं कहीं नौकरी-चाकरी करती हुई आत्मनिर्भर जीवन गुज़ारती लेकिन ....ऐसे कितने 'लेकिन' हैं, मेरी ज़िन्दगीमें जिसके लिए आप दोषी हैं। ओ मेरे विधाता, आपने मुझे नाम दिया है रत्ना, मगर, जैसा कि आपने मुझे बनाया है, मैं एक सीपी मात्र हूँ। खोखली और निर्जीव सीपी!

■ ■

एफ़ १०५।५ (१४६४) तात्याटोपे नगर,
भोपाल-६ (म० प्र०)

युवालेखन : ६–उर्दू

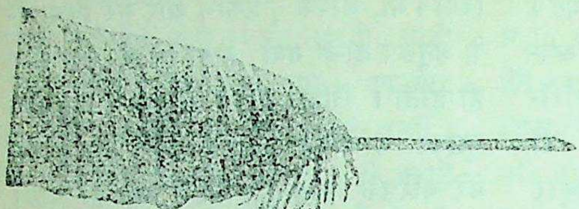

[उर्दूका युवालेखन हिन्दीके युवालेखनसे इतना दूर नहीं है कि उसके बारेमें कोई तुलनात्मक टिप्पणी दी जाये। वर्षोंसे उर्दूके रचनाकारोंकी प्रायः सभी रचनाएँ हिन्दीमें भी आती रही हैं। बलराज मैनरा और अमीक़ हनफ़ीके नाम कहानी और कविताधारामें इन दिनों विशेष चर्चित हैं। हबीब कैफ़ीका एक 'उत्तर' भी हमने इन रचनाओंके साथ ही दे दिया है। जो नाम जम जानेके कारण उठ गये हैं उसकी सूचना देनेका काम हमारा नहीं। अहमद सलीमने ज़माने-भरके रिसाले जमाकर ये कुछ रचनाएँ हिन्दीमें पेश की हैं। उनका विश्लेषण भी वैसाका वैसा आपके सामने है :

“उर्दू साहित्यका नाम आते ही ज़ेहनमें कई दृश्य एक साथ उभरने लगते हैं। ताजमहल, जमुनाका किनारा, मुनक़्क़श दरो-दीवार, मेहराब, ताक़ और महबूब। लखनवी तहज़ीब--उसकी हदसे बढ़ी हुई बनावट। चूड़ीदार पाजामा, दुपट्टा, सलीमशाही जूती। चिलमनसे झाँकती हुई लड़की, ओढ़नीके पल्लूमें मुसकाती हुई हसीना। मुशायरेकी वाह-वाह! दोबारा इर्शादके बीच शीरवानीका आख़िरी बटन बन्द करके झूमता हुआ शायर। साक़ी, शराब और पैमाना। और बालोंसे भी बारीक रेखाओंकी बलखाती आकृतियोंवाला चुग़ताई-आर्ट।

....पर ये दृश्य तो उस अतीतके हैं जिस अतीतके आँचलपर तितलियोंके परोंकी-सी रंगीन धारियाँ थीं।

फिर इससे अलग कुछ दूसरी तसवीरें उभरती हैं। पंजाबके लहलहाते हुए खेत-बाग़ोंमें पड़े झूले, पनघटपर कुँवारियोंके मेले। बंगालका अकाल। 'काली शलवार', 'गरम कोट', 'लिहाफ़', 'बू', 'धुआँ', 'अन्नदाता', 'परमेशर सिंह' और 'आगका दरिया'। इस अच्छी-भली धरतीके दो टुकड़े : विभाजन। आदमीका आदमीपर विश्वास। मनुष्यका मनुष्यतापर-से उठता हुआ विश्वास कि यह हैवानियत तो उसके रक्तमें ही शामिल

थी जब वह अपनी माँके पेटसे [illegible] धरतीपर आया था। यह और इस तरहके और भी बहुत सारे जीवन-चित्र !

पर आजके उर्दू शायरकी ट्रेजेडी यह है कि न तो उसे लखनऊके कोठोंका चमचमाता हुआ वातावरण मिला और न ही वह दिल्ली-दरबारकी महानताको अपनी आँखोंसे देख पाया। लेकिन इससे भी बड़ी ट्रेजेडी यह रही कि हिन्दीका पाठक उर्दू-साहित्यको जीवनसे दूर और उर्दू-शायरीको केवल साक़ी और शराबके प्यालों तक ही सीमित समझे बैठा रहा। हालाँकि आजके उर्दू-शायरको स्वयं इस बातका एहसास है कि आजके नये और मशीनी आदमी होनेके नाते उसने भी वह सब कुछ खो दिया है जो उसने आदि कालसे प्राप्त किया था। पहले वह अपनी शक्तिपर जीवित था और प्रकृतिसे उसका सम्बन्ध बहुत गहरा था, जिसके कारण वह अपने-आपको पहचानता था। पर आज वह मशीनोंकी दया-दृष्टि पर ज़िन्दा है। प्रकृतिसे उसका सम्बन्ध टूटता जा रहा है। और ख़ुदाके साथ उसकी जो कल्पनाएँ सम्बद्ध थीं और जिनसे वह नेकी और बदी, अच्छाई और बुराई, खरे और खोटे, उजाले और अँधेरेके अन्तरको समझ सकता था, वह कल्पनाएँ भी अब नहीं रहीं। जिस धरतीके सम्बन्धको वह अपनेसे सदा जुड़ा समझता था, साइन्स और टेकनालॉजीके इस युगमें उसका टूटना भी अब स्वाभाविक हो गया है। वह अब जान चुका है कि इस पूरी धरतीपर उसका अस्तित्व एक कणके बराबर भी नहीं है और उसकी यह अपनी धरती किसी भी क्षण कण-कण होकर बिखर सकती है।

'सो, आजके इस नये उर्दू शायरके पास भी ले-देकर बस यही दो चीज़ें हैं—उसका अपना कुचला हुआ घायल व्यक्तित्व और इस व्यक्तित्वके जीवित, गतिवान, संवेदनशील होने और हर तरहकी राय देनेके अपने अधिकारकी तीव्र भावना।'—(रईस फ़राज़ : ख़ुदरो)

'यहाँ भी शायर इस फैली हुई दुनियाके आगे अपने-आपको अकेला और कमज़ोर पाकर अब अपने अस्तित्वको ढूँढ़ने निकली है, नये और पेचीदा प्रश्नोंको लेकर, अपने-आपसे बातें करता हुआ।'—(कुमार पाशी : सफ़र हमारा मुक़द्दर)। दूसरी कविताएँ भी इस नये युगकी हर आन बदलती हुई नयी चेतनाओंका पता देती हैं। सुश्री बिल्क़ीस लक़की ग़ज़ल—ग़ज़लके भरे-पुरे जंगलमें उस गुलाबकी तरह है जो एक अकेली डालपर अकेला खिला हो—शोख़ और सुगन्धित गुलाब। और कहानी उर्दूके एक बिलकुल ही नये कहानीकार असग़र शरीफ़की है। असग़र शरीफ़की क़लमसे निकली हुई यह पहली ही कहानी इस योग्य थी कि उसे कहानियोंके ढेरसे अलग किया जा सके।''-सं०]

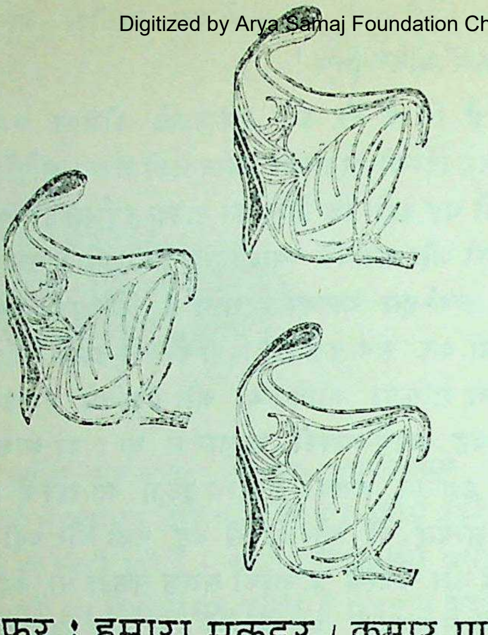

कविताएँ

७ उदाहरण

सफ़र : हमारा मुक़द्दर / कुमार पाशी

'अक़ीदत का जज़्बा' बड़ी चीज है
और हम
जो अभी नासमझ हैं
लतीफ़ों के क़ायल
हमें इतनी फ़ुरसत कहां है कि ढूंढें
बुज़ुर्गों की लिखी हुई वह किताबें
जो उनके सफ़र में उजाला बनी थीं
सफ़र में तो हम भी हैं
और आज तुम भी
सफ़र तो हमारा मुक़द्दर है, लेकिन
ज़रा यह भी सोचो
अगर हमको भी डस लिया बेकरां तीरगी ने
तो कल अपनी लाशों का क्या हश्र होगा ?

●

पार्टी / साक़ी फ़ारूक़ी

रम और जिनकी ख़ाली बोतलो
अख़बारों में छपे हुए बेमसरफ़ लफ्ज़ो,
इस्टर पीटंज़ क्लब के फटे-पुराने टिकटो,
कोट के कॉलर में बीमार अकेले फूलो,
टेपरिकार्डर में सहमे पंकज के नग़मो,
दोस्ती और दुश्मनियों के ज़िन्दा लम्हो,
होंठों पर कुम्हलाते मोनीका के बोसो !
घेरा डाल के मेरे गिर्द खड़े हो जाओ,
नाचो, गाओ, शोर मचाओ !
और मेरे सीने पर थक कर सो जाओ !

●

ख़ुदरो / रईस फ़राज़

फ़िर मेरी माँ ने मुझे फेंक दिया
ताकि बदनामी का बाइस न बनूँ
और मेरे बाप ने नाकारा समझकर मुझको
यों फ़रामोश कर दिया जैसे
मेरी हस्ती ही न थी
या मेरा उससे तअल्लुक़ ही न था
मेरे ख़ालिक़ ने मुझे ख़ल्क़ दिया
मेरे राज़िक़ ने मुझे रिज़्क़ दिया
पालनेवाले ने पाला मुझको
ताकि दुनिया मुझे नाख़ास्ता, नाजायज़-व-
ख़ुदरो कहकर

उम्र भर के लिए रुसवा करे, बदनाम करे
और मैं ज़िन्दगी की लानत का
तौक़ अपने गले में पहने रहूँ
लोग कहते हैं ख़ुदा आदिल है ।

●

ख़्वाहिश / इन्तख़ाब सैयद

ज़िन्दगी !
हादसाते-जहाँ से लरज़ती हुई
अपने माज़ी के चेहरे पे जमती हुई गर्द को देखती
अपनी मासूमियत का जनाज़ा उठाये हुए, काँपती
कितनी गुस्ताख़ नज़रों का मरकज़ बनी
कितने बेबाक़ जुमलों की ज़द से चुराती हुई
अपनी आहिस्तगी

रात, दिन के मुसलसल सफ़र से परेशान है
चाहती है कि अब
मुद्दतों की थकन का ये बारे-गराँ
वक़्त को सौंप कर
ख़्वाहिशों
आर्ज़ूओं
तमन्नाओं की आहटों से परे
आसमानों पे अबदी सुकूँ की रदा ओढ़ ले
देवताओं के पाकीज़ा नक़्शे-क़दम चूम ले
ताकि फिर
जंगलों में भटकने का एहसास जाता रहे
मौत को फिर कलेजे लगाने की ख़्वाहिश न हो !

●

दूसरी बात / नाज़ महजूर

बहुत मुद्दतों बाद इक दिन अचानक
मुझे राह चलते हुए मिल गयी वह
कि फ़िर्दौसे-गुमगश्ता मिल जाय जैसे
फिर उस रोज़ जब मैंने उसको बताया
कि दिलमें अभी तक
तेरी आर्ज़ू की लजीली कुँवारी तमन्ना
लबों पर ख़मोशी की मोहरें लगाये
मेरी चश्मे-बेख़ाब की चिलमनों से
मुसलसल तेरा रास्ता देखती है
तो वह मुसकरायी
मगर वह तबस्सुम मेरे वास्ते इस क़दर
अजनबी था
न कलियाँ ही चटकीं न गुल मुसकराये
न बिजली-सी लहरायी नज़रों के आगे
न अँगड़ाई ले-ले के अरमान जागे
फिर अपनी परेशाँ निगाहें झुकाकर
कहा उसने मुझसे
मगर अब तो मैं………
छोड़िए, दूसरी बात कीजे
कहीं कोई अच्छा मकाँ हो तो कहिए
मगर उसके नज़दीक अच्छा-सा माडर्न स्कूल
भी हो
मुझे यों लगा—मेरे लब सिल गये हैं

◆

एक नज़्म / कामिल अख़्तर

हज़ारों बादल ख़लाओं में थे
हज़ारों नदियाँ
मचल रही थीं
हज़ारों दरिया थे इस ज़मीं पर
मगर अचानक ये क्या हुआ है
कि
आसमानोंसे सात सूरज
उतर के
जंगल जला गये हैं
समन्दरों को सुखा गये हैं

◆

एक ग़ज़ल / बिल्क़ीस लब

फिर ताज़ा गुलाबों के चेहरे से उड़ी रंगत
फिर ली है चमेली ने गुलदान में अँगड़ाई
सोफ़े पे किताबों में कुछ रूहें मुक़ैयद हैं
एक आँख की जुम्बिश से लेने लगीं अँगड़ाई
दो-चार मिनट पहले हाँ, डाकिया आया था
फिर बाजी के कमरे से रोने की सदा आई
फिर एक सहेली का ग़म खिड़की से दर आया
फिर आज मुहल्ले में बजने लगी शहनाई

◆

क । हा । नी

पूरा आदमी

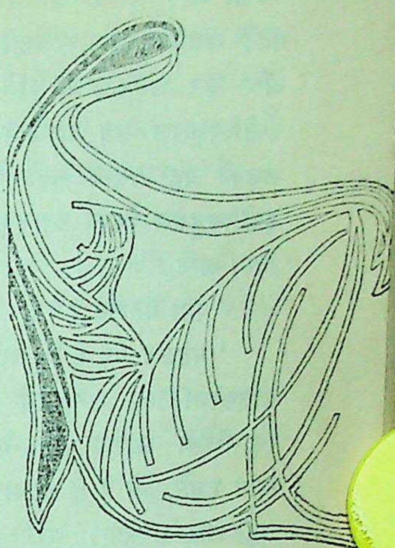

—असग़र शरीफ़

"यार, वह लड़की है ना···मेरा मतलब है जमीला····" वह इस सुगन्धको जाने कबसे अपने अन्दर छुपाये फिरता रहा था । पर वह सुगन्ध तो अधरोंके रास्ते फूट ही पड़ी—"वह मुझे पत्र बहुत लिखती है ।"

"अच्छा ! और तुम ?"

"मैं भी लिखता हूँ ।"

"रोमान्स ?" मित्रका दूसरा प्रश्न था ।

"नहीं यार, वैसी बात नहीं ।" उसने समझाया, "हमारा पत्र-व्यवहार इण्टेलेक्चुअल समस्याओंपर होता है ।"

"इण्टेलेक्चुअल समस्याओंपर ?" मित्र भड़क उठा, "इण्टेलेक्चुअल समस्याओंपर पत्र-व्यवहार···लड़कीसे ?"

उसने फिर बातको स्पष्ट करना चाहा—"यार, वह लड़की वैसी नहीं ।"

"कैसी नहीं है ?"

उसने बहुत ही दबे-से स्वरमें कहा, "वह बहुत ही गम्भीर लड़की है, यार !"

और मित्रने उसे क्रोधसे देखा और कहा, "देखो भई, हर लड़की गम्भीर होती है पर कोई लड़की गम्भीर नहीं रहना चाहती। और हर लड़की, जो कॉलेजमें पढ़ चुकी है, इण्टेलेक्चुअल पत्र लिखेगी ही। मगर कोई लड़की यह पसन्द नहीं करेगी कि उसके इण्टेलेक्चुअल पत्रका उत्तर इण्टेलेक्चुअल पत्रसे दिया जाये।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह है कि पढ़ी-लिखी लड़कीकी साइकोलॉजीको समझनेमें तुम असमर्थ हो। पढ़ी-लिखी लड़की यह देखती है कि क्या आप उससे ऊँचे हैं। नीचाईको वह स्वीकार नहीं कर सकती। और फिर यह कि जो औरत तुम्हारे पास आती है वह एक प्रश्न बनकर आती है। यदि तुमने उसके प्रश्नको समझ लिया तो तुमने उसे तोड़ दिया। नहीं समझा तो वह तुम्हें तोड़ देगी।"

उसने यह सब बातें सुनीं और इन सब बातोंको गिरहमें बाँध भी लिया। यों, इस तरहकी बातें तो उसने किताबोंमें भी पढ़ रखी थीं। और किताबोंमें पढ़नेके बाद उसने अपने बारेमें सोचा था कि वह रोमाण्टिक आदमी नहीं है।

और फिर उसके दोस्तने एक दिन बहुत ही घृणा-भरी नज़रोंसे उसे देखा था—"यह तुम्हारा पत्र-व्यवहार बहुत लम्बा होता जा रहा है।"

"हाँ यार, कुछ अधिक लम्बा।" उसने स्वीकार किया था।

"इसे संक्षिप्त करो।"

"[illegible] ?"

"देखो, दुनियामें दो प्रकारकी लड़कियाँ पायी जाती हैं। मेरा मतलब है, पत्र लिखनेवाली लड़कियोंमें दो प्रकारकी लड़कियाँ होती हैं।" मित्रने बहुत ठहर-ठहरकर उसे बताया—"एक वह जो अपने पत्रोंमें फ़िल्मके डायलॉग लिखती हैं और एक वह जो उपन्यासोंसे लाभ उठाती हैं। किन्तु शब्द चाहे फ़िल्मी डायलॉगके हों चाहे जेम्स ज्वायसके उपन्याससे लिये गये हों, अपनी बातोंको बदलते नहीं हैं। फ़िल्मी डायलॉगसे लाभ उठानेका तो एक कारण भी है पर उपन्यासोंसे लाभ उठाकर पत्र लिखना तो बड़ी ही गिरी हुई बात है। चाहे यह गिरावट तुम्हारी ओरसे हो या उधर से। तो प्यारे, शब्दोंको इस नीचताको खत्म करो।"

"मुश्किल है !"

"फिर तो इस कहानीपर ही धूल डालो। इस लड़कीपर लानत भेजो, नहीं तो तुम मारे जाओगे। पूछो क्यों ?"

"क्यों····?"

"वह यों कि मुहब्बत कोई सदा रहनेवाली वस्तु तो है नहीं। और फिर यह भी तो है कि औरतको सिजदा करो, औरत तुम्हारे सिरपर सवार हो जायेगी, तुमसे घृणा करेगी। औरतको ठोकर मारो, औरत तुम्हारे पैरोंपर गिरेगी।"

और वह अपने दोस्तकी इन खुरदरी, साफ़ और सीधी बातोंमें ही उलझता गया। और अब उसे यों लग रहा था कि जमीला फ़ोनपर बात करते-करते अचानक रुक जाती

है—ऐसे, जैसे रेशमकी लम्बी डोरीमें [illegible] गाँठ पड़ जाये। और उसे वह दिन याद आ गया था जब उसने पहले-पहल जमीलापर मुहब्बतकी नज़र डाली थी। और वह भी इसलिए कि उसने कहीं किताबोंमें ही पढ़ रखा था कि आदमी मुहब्बतके बिना पूरा आदमी नहीं बनता। नहीं तो जमीलामें ऐसी कोई ख़ास बात तो थी नहीं। फिर भी उसके सामने वह यों झुका था जैसे वह कोई भक्त है और मन्दिरमें प्रवेश कर रहा है। लेकिन अब वह अपने आपको सिपाही समझने लगा था और जमीलाको एक क़िला, जिसपर उसे अपनी विजयका झण्डा गाड़ना था। परन्तु मृत्यु और औरत, इन दोके सामने आदमी अकेला होता है। अपनी ही दृष्टि हो तो काम आती है। मृत्यु और औरत ! वह मृत्यु और औरतकी ज़दसे निकल आया है। उसने फिर एक बार सन्तोषका अनुभव किया। लड़नेका साहस न हो तो बच निकलनेकी बुद्धि तो होनी ही चाहिए।

वह अपने-आपको बच निकलनेकी बुद्धिपर सराह रहा था। कितनी अजीब बात थी यह भी कि उसने मुहब्बतको एक वैज्ञानिक समस्या बना डाला था। हालाँकि मुहब्बत तो एक सीधा-सच्चा प्रयोग है। और अब वह फिर सोच रहा था कि उसने जो कुछ किया—क्या वह ठीक था ?

"बेवक़ूफ़ कहींके, यह बात भी कहनेकी थी भला ?" उसके दोस्तने यह जानकर उसे डाँट बतायी।

"यार, बस मैंने कह दिया।"

"उसने ?"...उसका दिल डूबता चला गया और आवाज़ जैसे उसका साथ छोड़ गयी। उसने बड़ी मुश्किलसे साथ छोड़ती आवाज़का सिरा पकड़ा : 'उसने...कुछ नहीं कहा उसने....बस बिगड़ गयी एकदम....मैंने तो उसे यह सब इसलिए कहा था कि मैं समझता हूँ, आदमीको ईमानदार रहना चाहिए।"

"ईमानदारीसे जन्नत मिलती है, औरत नहीं मिलती।"

"यार, बात यह है...." उसने अपने दोस्तको फिर समझाना चाहा—"कि मैं रोमाण्टिक आदमी नहीं हूँ। और फिर हर प्रयोगकी एक उम्र होती है। और मेरे प्रयोगकी उम्र पूरी हो चुकी।"

"बिलकुल ठीक।" उसके मित्रने उसकी हाँ-में-हाँ मिलायी थी : "हमारे युगमें मुहब्बतके प्रयोगकी आयु इतनी लम्बी नहीं हो सकती जितनी मजनूँ और फ़रहादके समयमें हो गयी थी। उनके लिए तो इश्क़ होल-टाइम जॉब था। हम इसे पार्ट-टाइम ही चला सकते हैं।"

तो उसने प्रयोगको लम्बा नहीं चलाया। किताबोंको उसने कितने दिनों तक हाथ नहीं लगाया था।

किताबोंपर धूलकी तह जमी देखकर उसने सोचा, लगे हाथों किताबोंको ठीक कर दिया जाये। वह देर तक किताबोंको झाड़ता रहा। आलमारीमें किताबें सजानेके बाद मेज़पर बिखरी किताबोंको ढंगसे रखा। रद्दी काग़ज़ कुछ फाड़कर फेंके, कुछ तोड़-मरोड़कर

रद्दीकी टोकरीमें डाला। उसके हाथमें फिर एक नीला-सा पत्र आ गया। उसे खोलकर उड़ती-सी दृष्टि डाली :

"मैं अपनी तनहाईके नरकमें अपने-आपको सुरक्षित समझती हूँ।"

यह तो बहुत पहलेका पत्र है। उसने याद किया, इसका क्या उत्तर दिया था उसने। यही ना कि मेरा अकेला अस्तित्व मेरा नरक है, मैं इससे निकलना चाहता हूँ। और भी इसी तरहके न जाने कितने ही वाक्य उसने लिखे होंगे।

ढेर सारी किताबोंको साफ़ करने और सजानेके कामसे वह थक गया था। यह थकन थी या शायद वह उदास हो गया था। उसने आँखें बन्द कर लीं। आँखें बन्द हुईं तो कल्पनाकी खिड़की खुल गयी। नीले काग़ज़पर सजे हुए सब शब्द जी उठे और कल्पनामें मँडलाने लगे। उसका जी चाहा कि अभी क़लम सँभाले और शब्दोंके उत्तरमें शब्द लिखे। उसकी उँगलियोंमें फिर वही व्याकुलता जाग उठी जो पिछले दिनों पत्र लिखनेसे पहले हुआ करती थी। जब वह क़लम उठाता तो सारे बदनका जी उँगलियोंमें उतर आता। पोरोंमें आकर ठहर जाता और शब्द क़लमसे काग़ज़पर यों लिखा जाता जैसे [illegible] चुम्बन अंकित करते हैं।

उसने, जिसने बोध ज्ञानके मोती किताबोंसे चुन-चुनकर अपने व्यक्तित्वका निर्माण किया था, उसे लग रहा था कि उसके जोड़-बन्द खुल गये हैं। उसने फिर अपने आपको इकट्ठा किया।

जमीला जाये जहन्नममें ! उसने सोचा—यह नजमा भी तो अच्छी लड़की है। उसके भी तो दो फ़ोन आ चुके हैं। उससे मिलना चाहिए। इस खयालसे उसे फिर ढारस बँधी।

चलते हुए उसे ऐसा लगा कि वह कम होता चला जा रहा है। जैसे उसके जहन्नमके अंगारे रास्तेमें गिरते-बिखरते चले जा रहे हैं। मेरा अस्तित्व मेरा नरक है। मेरे सब अंगारे मेरे अन्दर रहने चाहिएँ।

और अपने गिरे-बिखरे अंगारोंके साथ वह रास्तेसे ही पलट आया। उसने जमीलाके खयालको झटककर नजमाका नम्बर मिलाया। और उसके कानमें जमीलाकी जानी-पहचानी आवाज़ सुनाई दी"'मैं अपनी तनहाईके जहन्नममें अपने आपको सुरक्षित समझती हूँ।

उसने जल्दीसे रद्दीकी टोकरीसे उस मुड़े-तुड़े नीले पत्रको निकाला। हाथसे साफ़ किया और इस तरह पढ़ने लगा जैसे यह पत्र उसे अभी-अभी मिला हो।

■ ■

मण्डी किश्वर खाँ.
सासाराम (बिहार)

नये लोग : 'न सताइशकी तमन्ना न सिलेकी परवा'

हबीब कैफ़ी

राही मासूम रज़ाके विचार 'उर्दू की नयी कविता' पर इससे पूर्व भी पढ़े (धर्मयुग : ३० अक्टूबर, १९६६)। इस लेखमें बन्धुवरने 'उर्दूकी नयी शाइरी' को कई-कई ख़िताबातसे नवाज़ा। जैसे उर्दू की नयी शाइरी = अधूरी हक़ीक़तोंकी परछाइयाँ, माँगेके अनुभव और यौनकुण्ठाएँ। इन ख़िताबात-के प्रत्युत्तरमें अमीक़ हनफ़ीने अपने तास्सुरातपेश किये (धर्म-युग : १८ दिसम्बर, १९६६)। परन्तु शायद राही मासूम रज़ाको तसकीन इससे नहीं हुई। इसीलिए आपने फिर ज्ञानोदय (अप्रैल १९६६)में 'नये लोग : नयी दिशा' शीर्षकसे अपने विचार प्रकट किये हैं। शुक्र है, इस बार लहजा कुछ नर्म व ख़िताबात सिफ़र हैं, बल्कि अधिकतर बातें सन्तुलन रखकर पूछी-कही गयी हैं--(धर्मयुगमें प्रकाशित लेखके अधि-कांश वाक्योंसे झल्लाहट व उकताहटका भान होता है।) मुद्देकी बातपर आता हूँ। अच्छी और नयी कवितामें फ़र्क़ है। जिस तरह हर नयी चीज़ अच्छी नहीं होती उसी तरह हर अच्छी चीज पुरानी कभी नहीं होती। मीर व ग़ालिबको इसी सन्दर्भमें लिया जाता है। ये और इन-जैसे शाइर अपने वक़्तके अच्छे व मुमताज़ शाइर रहे। ये शाइर आजके भी हैं (जदीद) और ये आनेवाले वक़्तोंके शाइर भी रहेंगे।

रहा सवाल कसौटी-आलोचनाका, तो इस सम्बन्धमें यह परिभाषा उचित नहीं लगती--'पुराने ज़मानेमें कवि अपनी कविताएँ मेले-ठेलोंमें सुनाया करता था। अच्छी कविताएँ श्रोता याद कर लिया करते थे। स्वत: उन्हें याद हो जाया करती थीं। यही आलोचना है।'--आलोचनाकी यह परिभाषा ठीक नहीं जान पड़ती। यहाँ स्तरका प्रश्न है। बाज़ारी व साहित्यिक भाषामें अन्तर है। राही मासूम रज़ा साहबने अपने लेखमें स्वीकारा है : "मैं एक पाठक हूँ। पाठक बनकर ही 'उर्दू की नयी कविता' पढ़ता हूँ।" (आप उर्दूके अच्छे-प्रतिष्ठित कवि भी हैं!)। आपसे एक प्रश्न है : पाठककी हैसियतसे आपको कोई नज़्म, ग़ज़ल या शेर अत्यधिक पसन्द है? क्या आप विश्वासके साथ कह सकते हैं कि आपकी पसन्दीदा चीज़ एक साधारण पाठकको उतनी ही रुचेगी, जितनी कि स्वयं आपको रुची है? अथवा उसे पसन्द भी

आयेगी ? साफ़ ज़ाहिर है कि आपका उत्तर है–'नहीं'। इसके विपरीत एक साधारण श्रोता अथवा पाठकको पसन्द आयी हुई 'चीज़' आपको भी पसन्द आये—यह ज़रूरी नहीं।

'नयों' के आलोचक ? प्रश्न है ? नहीं-सा ! शर्त सिर्फ़ इतनी है कि ज़रा दिग्गज नक़्क़ाद भी इस ओर ध्यान दें।

कुछ रिसालोंके नाम गिनवाकर आप पूछते हैं : 'नयी कविता' ही क्यों ? नयी कहानी या अन्य विधाएँ क्यों नहीं ? तो अर्ज़ है कि नयी कहानी, अकथा व अन्य विधाएँ भी हैं। और यदि आप बुरा न मानें तो इतना और अर्ज़ कर दूँ कि 'अध्ययन' की आवश्यकता है। यदि नाम गिनवानेकी ज़रूरत पेश आयी, तो गिनवा दूँगा। हाँ, एक उदाहरण यहाँ दे रहा हूँ। अभी 'तहरीक' (उर्दू मासिक, दिल्ली) में मेनराकी कहानी 'ब्लैक एण्ड बिल्ड इन पोर्ट्रेट' पर काफ़ी बातें हो रही हैं। इन बातोंमें दिग्गज श्री एवं पद्मश्री अली सरदार जाफ़री, कृष्णचन्दर व कुर्तुल-ऐन-हैदर भी प्रश्नचिह्न अथवा विस्मयबोधक चिह्न बने हुए हैं! और 'नयों'का साहित्यिक मूल्यांकन करनेपर कौन है, जो ऐसी ही आलोचनानुमा भर्त्सनासे बच पाया है ? या उदासीन दृष्टिकोणका शिकार नहीं हुआ ? यहाँ तक कि ग़ालिब भी नहीं बच पाये। तब मजबूर होकर ग़ालिबको कहना पड़ा :

'न सताइश की तमन्ना न सिले की परवा
गर नहीं हैं मेरे अशआर में मानी, न सही।'

यह सच है कि पुराने 'नयों' को मान्यता देते हुए हिचकते हैं। डरते भी हैं। वे यह व-आसानी कैसे गवारा कर लें कि कोई अन्य उनकी नज़रोंके सामने उनकी तरह ही 'प्रतिष्ठित' हो जाये ! मोह बुरा होता है, चाहे वह किसीका भी हो ! उर्दू हो या हिन्दी, फ़ारसी हो या अँगरेज़ी, अथवा फ़्रान्सीसी, सबमें ऐसा ही कुछ अनर्गल हुआ है। होता है। और शायद होता रहेगा। 'काफ़्का' की कृतियाँ उसकी मृत्युके बाद प्रकाशमें आयीं। क्यों ? विश्व-प्रसिद्ध फ़ारसी शाइर 'ख़य्याम' अपनी मृत्युके सैकड़ों वर्ष बाद प्रकाशमें आया। क्यों ? हालाँकि सभी 'काफ़्का', ख़य्याम व सुक़रात नहीं होते, लेकिन 'अस्वीकृति' एवं 'उदासीनता' विद्यमान रहते हैं।

यह खुशीकी बात है कि राही मासूम रज़ा व इन-जैसे अन्य प्रतिष्ठितोंको अब 'नयों' से कुछ अच्छी आस भी हो चली है। ये कहने लगे हैं : 'अल्लाह करे ज़ोरे-क़लम और ज़ियादह !'

कहाँ तो यह था कि डॉक्टर साहब उर्दूके सम्पूर्ण काव्यकी आत्माको अभारतीय बता रहे थे और कहाँ यह, कि 'अच्छी आस' हो चली है ! क्योंकि 'नये' दिन-ब दिन अपने लेखनको निखारते-सँवारते व सशक्त बनाते भी जा रहे हैं, इसलिए मुझे उम्मीद है कि आपकी यह 'अच्छी आस' अब कभी नहीं टूटेगी !

■ ■

महताब खाँ की पोल,
त्रिपोलिया रोड,
जोधपुर (राज०)

प्रभाकर माचवे •

१९६६ की पत्र-पत्रिकाएँ | 'पकती खिचड़ीमें चाँवल'

काव्य-पत्रिकाएँ :

'ज्ञानोदय'ने मुझे लिखा है : "१९६६ की पत्रिकाओंमें आये साहित्यपर आपकी स्पष्ट राय हो। मेरा ख़याल है कि पिछले साल कविताओंकी ३० से अधिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। बंगालीमें तो कविता दैनिक, कविता साप्ताहिक और कविता घाण्टिकका प्रकाशन साहित्यके साथ 'प्रेक्टिकल जोक' की सीमा तक पहुँच गया था।"

मैं अपने-आपको गये बीस वर्षोंसे हिन्दीका काफ़ी जागरूक पाठक मानता हूँ। प्रायः हर नयी-पुरानी हिन्दी पत्रिका मेरे पास आती रहती है और धार्मिक ढंगसे मैं उसका एक बार पारायण अवश्य करता हूँ। अब यह बात दूसरी है कि बहुत कम उनमें ऐसी होती हैं जिन्हें दुबारा पढ़नेका मन होता है। इस वर्ष तो मेरा भी धैर्य टूट गया। गये वर्षकी जो कविता-प्रधान पत्रिकाएँ मेरे पास आयी हैं उनमें कुछ तो पैम्फ़लेट-नुमा हैं, कुछ साइक्लोस्टाइल की हुई हैं, और मध्यप्रदेशसे ये काफ़ी मात्रामें निकली हैं। मैं सबके नाम कहाँतक गिनाऊँ पर जो मैं पढ़ गया हूँ वे हैं—अ-कविता, युयुत्सा, संज्ञा, परिचय, शताब्दि, धूपके टुकड़े, वयम्, शब्द, अर्थ, लय (दो—एक राँचीसे, एक अलीगढ़से), कविता-कविता-कविता; बिन्दु, उन्मेष, उत्कर्ष, चर्चान्त, चिन्तन, प्रक्रिया, अस्तित्व, विधा, दर्पण, सम्बोधन, रूपाम्बरा, संप्रेषण, क्षितिज-की खोज, कवि-श्री, कैक्टस, अगीत, बिम्ब, वातायन, क्रमशः, आद्यन्त, वीणाका अ-कविता विशेषांक—और इनके अलावा इस तरहकी आधुनिकतावादी कविता साग्रह छापनेवाले 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय', 'माध्यम', 'कल्पना', 'लहर' आदि और कई पत्र हैं ही। कुल मिलाकर मेरा अन्दाज़ है कि १००० कविताएँ हिन्दीमें छपी होंगी। और कमसे कम सौ-दो सौ कवि-जन (और कुछ कवयित्रियाँ भी) जो इस सारे विराट-विभ्राट् काव्य-सर्जना-व्यापारमें समय, काग़ज़, स्याही, पोस्टेज और अपने मित्रोंका धैर्य बरबाद करते रहे हैं। यह असम्भव है कि व्यक्तिगत रूपसे इन कवियोंके बारेमें या कविताओंके बारेमें कुछ कहा जाये—शायद अभी उनमें ऐसे कई हैं कि

उनके बारेमें कुछ कहा ही नहीं जा सकता—आकार ग्रहण कर रहे हैं। कुछ बुज़ुर्ग सींग तुड़ाकर इस जमातमें शामिल हो रहे हैं। गिरिजाकुमार माथुरने अस्वीकृतिके नवोन्मेषपर ज़ोरोंसे लिखा—वह उनकी 'नयी कविता'पर अक्षर प्रकाशनसे छपी अच्छी किताबका एक हिस्सा था। उस पुस्तकमें ध्वनि-तत्त्वपर और नयी कविताकी सीमाओंपर अन्तिम ये दो अध्याय बहुत ही अच्छे हैं। दिनकरजी की 'शुद्ध कविताकी खोज'में भी युरॅपके बिम्बवादी आन्दोलनके बारेमें काफ़ी जानकारी है, यद्यपि उनके निष्कर्ष आधुनिकतावादियों-को पसन्द नहीं आयेंगे। पुराने कवियोंमें-से किसीने कोई ज़ोरदार किताब नहीं दी। कुँवर नारायणके 'आत्मजयी' और विजयदेवनारायण साहीके 'मछली-घर', कैलाश वाजपेयीके 'संक्रान्त' और ऋतुराजके 'मैं आंगिरस'के बाद एक-दो और अच्छे संग्रह सामने आये। अशोक वाजपेयीका 'घासके कपड़े पहनकर' कपड़े बदलकर नये नामसे सामने आया और उसमें उनके अँगरेज़ीकी आधुनिक कविताका ज्ञान और मुहावरेसे पहचान भी काफ़ी सुखद रही, दूसरा सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाका 'एक सूनी नाव'—पर उनके 'बाँसके पुल'से आगे उन्हें नहीं ले जाता। राजकमल चौधरीका 'मुक्तिप्रसंग' और शलभका 'कल सुबह होने तक' दो महत्त्वपूर्ण संग्रह हैं, चूँकि वे हमारे कई मुखौटे फाड़ते हैं। कुन्तल कुमार जैन, नीलम सिंह, सुधा अरोड़ा, मणि मधुकर आदिकी कुछ अच्छी कविताएँ पढ़नेको मिलीं। तारसप्तक फिरसे छप गया, चुपचाप!

अब इन छोटी-छोटी पत्रिकाओंमें-से जो बातें मेरी अल्प समझमें, हिन्दीकी नवीनतम कवितामें उभरकर आयी हैं, और जिनका उल्लेख ज़रूरी है—मैं नीचे दे रहा हूँ। इनमें गुण और दोष दोनों शामिल हैं। साहित्यमें, जैसे आदमीमें, अनमिल अच्छा और अनमिल बुरा—ऐसा कुछ नहीं होता। सब स्थितियाँ मिश्रित होती हैं।

—सबसे पहली बात, मुझे हमारे नवयुवक कवियोंमें अधीरताका अतिरेक लगता है। लिखा नहीं कि छापने भेजा। हिन्दीमें काफ़ी पत्र-पत्रिकाएँ हैं, सम्पादक भी काफ़ी ऐसे हैं जो आँख मूँदकर छाप देते हैं। उनमें-से कई हैं जो हिन्दीके अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं या अँगरेज़ी या अन्य युरॅपीय-एशियाई भाषाओं-में नयी कविताकी प्रगतिसे एकदम कोरे हैं। सो जो कुछ लिखा, वह छप जाता है। आत्मालोचनको कोई अवसर ही नहीं है।

—ये सब लोग कवितासे अधिक वक्तव्य लिखते हैं। और सबसे बुरी बात मित्रोंके, हमजोलियोंके, अपनेसे बड़ोंके सर्टिफ़िकेट बटोरने लगते हैं। हर कविताकी छोटी पत्रिकामें सम्मतियोंके चार पेज होते हैं। और उसमें परस्परं भावयन्तो काफ़ी होता है। इस मामले-में वे परम्परासे कटे हुए नहीं हैं।

—इन कविताओंमें दमित सेक्सका काफ़ी प्रदर्शन-प्रिय, खुली-नंगी भाषामें, कहीं-कहीं विकृति तक, उल्लेख होता है। मैं क़बूल करता हूँ कि महानगरोंमें यौन-जीवन असन्तुलित है, इन कवियोंमें कइयोंकी प्रामाणिक अनुभूतियाँ 'जंघावादी' हो सकती हैं, पर जिस तरहसे

कवितामें वह व्यक्त करते हैं, उसमें भोंडापन अधिक होता है। आक्रामकता और हिंसाकी इच्छा ही अधिक नज़र आती है।

—सामाजिक-राजनैतिक प्रश्नोंके प्रति बढ़ती हुई सर्वसन्देहवादी ऊब ही अधिक दिखाई देती है। कुछ कवि जैसे विष्णुचन्द्र शर्मा, राजीव सक्सेना, शलभ, कमलेश आदि 'कमिटेड' (प्रतिश्रुत) जान पड़ते हैं; परन्तु अब समाजवादी आशावाद पुराने ढंगसे सामने नहीं आता। नारा जैसे कवितासे काफ़ूर हो गया—कुछ कविसम्मेलनी मंचोंतक वह सीमित है। कुल मिलाकर कविता अधिक स्वायत्त होती जा रही है, यानी समाजसे अधिकाधिक विमुख।

—जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात सन साठके बादकी कविता, और विशेषत: '६६की कवितामें नज़र आयी, वह भाषागत है। मैं कविताको भाषा-प्रयोगकी अन्तरिक्ष-यात्रा मानता हूँ। अत: कई पुरानी काव्य-भाषा-विषयक भ्रान्तियाँ और वर्जनाएँ अब टूट गयी हैं। भाषा बोल-चाल और बोलियोंके ही निकट नहीं, सामान्य और विशेषके परस्पर साक्षात्कारमें अधिक सक्षम होती जा रही है। यह शुभ लक्षण है।

—सबसे बड़ी बात यह है कि ये सब कवि अपने-आपको पुराने आलोचकोंसे एकदम असम्पृक्त मानते हैं। बहुत कम उनमें हैं जो उन्हें पढ़ते तक हैं, सहानुभूति देना तो दूर। हालमें 'साहित्य सन्देश'में भारतीय हिन्दी परिषद्—हिन्दी प्रोफ़ेसरोंके बौद्धिक'संघ'—के अध्यक्षका वर्तमान हिन्दीका 'सर्वेक्षण' छपा है, जिसमें कुँअर नारायणकी पुस्तकका नाम 'मृत्युंजयी' लिखा है और नवगीतके पुरस्कर्ताओंमें डॉ० केदारनाथ सिंहका नाम है। ये बुज़ुर्गी ओढ़े हुए विभागाध्यक्ष लोग कुछ नया पढ़ते ही नहीं—उनका अज्ञान दयनीय है। पर फ़तवा देनेके लिए सबसे आगे-आगे। इसलिए नये कवि उनकी बातोंको गम्भीरतासे न लें तो कोई आश्चर्य नहीं।

मेरे मतसे इन पत्र-पत्रिकाओंकी उपलब्धि यही है कि हिन्दी काव्यक्षेत्रमें एक ज़बरदस्त तूफ़ान आया है, जो सबकुछ, जो विगत है, उसे विस्मृत कर देना चाहता है। इस विद्रोहको नहीं समझेंगे तो जो कांग्रेसका चुनावोंमें हुआ वही हिन्दी साहित्यका होगा।

कहानियाँ :

वैसे तो हिन्दीमें दैनिकोंके रविवासरीय परिशिष्ट, साप्ताहिक, मासिक पत्रिकाएँ मिलाकर हर महीने २०० कहानियाँ छपती होंगी और यों वर्ष-भर में डेढ़-दो हज़ार कहानियाँ—जो पढ़ी जा सकें—प्रकाशित हुई होंगी। वैसे किसी भी एक व्यक्तिके लिए—सबसे अधिक फ़ुरसतमें रहनेवाले या निठल्ले व्यक्तिके लिए भी—यह सम्भव नहीं कि यह सब पढ़ सके। मेरे पास पच्चीस-तीस चुनी हुई हिन्दीकी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। और उनमें-की कहानियाँ पढ़नेका मैं प्रयत्न करता हूँ। कभी-कभी नोट्स भी लिख देता

हूँ। रमेश बक्षीकी इच्छा है कि सन् ६६ की कहानियोंपर अपने मतामत दूँ। उस प्रकारके 'साधारणीकरण' (जेनेरलाइजेशन) या मत-प्रकाशनसे पहले मैं ये नोट्स कुछ नीचे देना चाहता हूँ। ये नोट्स समूचे प्रकाशित साहित्यपर नहीं, यों ही 'पकती खिचड़ीमें चांवल टटोलने जैसे' हैं।

कल्पना : १७४, १७५वें अंकोंमें रमानाथ त्रिपाठीने 'पुनर्जन्म' नामसे बच्चोंके मनोविज्ञानपर और पालतू कुत्तेपर अच्छी कहानी लिखी है। कृष्णनाथकी 'नल-दमयन्ती आख्यानम्' दो पत्रोंके रूपमें गाँववालोंके भोले विश्वास और लोक-कथाके परिपार्श्वमें आजके शहरातीके मनकी दूरीपर व्यंग है–बल्कि लेखक नगर और देहातके बीचमें किस तरह द्वि-भाजित है, इसका आभास देती है।

माध्यम : फ़रवरी, अगस्त, दिसम्बरके अंकोंकी कुछ कहानियाँ हैं : श्रवणकुमारकी 'क़हक़हे' बहुत अच्छी कहानी है : दफ़्तरके बाबुओंपर, उनकी कंजूसीपर व्यंग करती हुई स-चोट कहानी। आजके समाजकी इस सड़ांधका बहुत अच्छा विश्लेषण यहाँ किया गया है। रमेश उपाध्यायकी 'अबोला' चेतन-अचेतन मनकी सीमा-रेखापर चलती है–सब तरहके बिम्बोंको समेटती, इसमें कोई बिन्दु उभरता नहीं, पर मध्यमवर्गकी कुण्ठाका काफ़ी सांकेतिक वर्णन है। रिपोर्ताजकी शैलीमें इस लेखकका जीवनकी हर छोटीसे छोटी चीज़का निरीक्षण अच्छे ढंगसे आजके जीवनकी विसंगतिको व्यक्त करता है। सुदर्शन चोपड़ाकी 'जाले' बहुत साधारण है। शैली नवीनतम है, स्वप्न-सरणियाँ, शाब्दिक ध्वनि-अनुकृतियाँ आदि, आधुनिकताके सारे सरो सामान—'फ़्लश-लैट्रीनें' और शारीरिक हिंसा आदिके जुगुप्साप्रद चित्र हैं—पर कुल मिलाकर कहानी एक खिन्न हलका-सा प्रभाव मनपर डाल जाती है। और यह प्रश्न भी—कहीं यह लेखक निरे शैलीके चक्करमें तो नहीं है?

'उत्कर्ष' के कहानी विशेषांक–अगस्त-सितम्बर १९६६। रमेश उपाध्याय, ममता कालिया, भीमसेन त्यागीकी कहानियाँ मनको खींचती हैं। रमेशने वही शैली अपनायी है—स्वप्न और जागृतिकी सीमा-रेखाकी। सामाजिक विसंगतिका व्यंग खूब उभरकर आया है। ममताकी कहानीनुमा रेखाचित्रमें पैनापन है और आजकी आधुनिका नारीकी प्रगल्भता अच्छी तरह उभरी है। भीमसेन त्यागीकी कहानीमें प्रादेशिक रंग गाढ़ा है। भाषा भी पात्रानुकूल है और यह प्रभावपूर्ण कहानी है। गोपाल उपाध्यायकी लम्बी कहानी 'धुँआ' 'जुलूस'-जैसी प्रभावपूर्ण नहीं है पर समाजमें वर्ग-विरोधके साथ-साथ सेक्स-सम्बन्धी 'दो दुनियाओं' का अच्छा चित्र देती है—शैली अनमिल है। सुधा अरोड़ाकी 'स्टैप्लर' में कोई विशेष बात नहीं, केवल कवयित्रीने अपने मनको बे-तरतीब उड़ते रहने दिया है।

'**अणिमा**' के मार्च-अप्रैलके अंकमें तीन कहानियाँ हैं : भीमसेन त्यागीकी 'सुख'—यह उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि ऊपर उनकी दूसरी कहानी बतायी गयी है। श्रवणकुमारकी 'धुँआ' लेखकके आदर्शवादी

अतीतसे टूटनेकी स्थितिकी कहानी है—पर उसमें ईमानदारी है। ब्रैकेटोंके प्रयोगसे मनकी दो परतोंका अच्छा उपयोग किया गया है। श्रीहर्षकी 'स्थिति' अधूरा-सा कहानीका खाका बनकर रह गयी है। 'अणिमा'के एक और अंकमें कमलेश्वरकी 'मांसका दरिया' एक सशक्त कृति है।

'नई धारा' का कमलेश्वर-सम्पादित मोटा कहानी-अंक फ़रवरी-मार्चका। इसमें कई दिनों बाद रघुवीर सहायकी कहानी पढ़नेको मिली 'प्रेमिका'। अपनी बोलचालकी शैली और ईमानदारीके लिए लाजवाब। वैसे हमें कृष्ण बलदेव वैदकी 'दूसरे किनारेसे' और गिरिराज किशोरकी 'अलग-अलग क़दके दो आदमी' बहुत अच्छी लगीं। वैसे राजकमल चोधरीकी 'पिरामिड' भी संस्मरणीय है—यद्यपि उनकी रचनाओंमें सेक्सका हमें 'आब्सेशन' अखरता है—ज़िन्दगीमें और भी हैं रोने, सेक्सके सिवा! उषा प्रियंवदा, अमरकान्त, राजेन्द्र यादवकी कहानियाँ हमें उतनी अच्छी नहीं लगीं! गंगाप्रसाद विमलकी कहानीमें एक नयी दृष्टि है।

'नई कहानियाँ' और 'सारिका' कहानीकी ही पत्रिकाएँ हैं। इनके कुछ अंकोंका 'स्थालीपुलाक न्यायेन' यह ब्यौरा है: जो कहानियाँ हमें अच्छी लगीं वे यों हैं:

नयी कहानियाँ : जनवरी : ग० मा० मुक्तिबोध, उषा प्रियंवदा, कृष्ण बलदेव वैद, महीप सिंह (ग० मा० मुक्तिबोधकी कहानीमें राजनीति भी हैं)। अप्रैल : हर्षनाथ, ममता कालिया। मई : दूधनाथ सिंह, शानी, मनहर चौहान, रवीन्द्र कालिया। जून : ज्ञानरंजन, से० रा० यात्री, योगेश गुप्त। जुलाई : मन्नू भण्डारी, मणि मधुकर, शोभना बुटानी, सुनीता। सितम्बर : विष्णु प्रभाकर, श्रवणकुमार, हिमांशु जोशी। अक्टूबर : अमरकान्त, उमेश अग्निहोत्री। नवम्बर : गिरिराज किशोर, मनहर चौहान, महेन्द्र भल्ला।

इन सब कहानियोंको पढ़कर लगा कि हिन्दीमें बँगला, उर्दू, पंजाबी मराठी, तमिल आदिसे अनूदित जो कहानियाँ छपती हैं, उनके मुक़ाबिलेमें हिन्दीकी कहानी किसी तरह पीछे नहीं है। शिल्पके नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। भाषा अधिक लचीली बनती जा रही है। मनोविज्ञानके लिए मनोविज्ञान या सामाजिकताके लिए सामाजिकतावाले पुराने चौखटे टूट रहे हैं। सेक्सके बारेमें काफ़ी यथार्थवादी और कहीं-कहीं विकृतियोंके बारेमें भी बहुत सहानुभूतिसे, स्पष्ट और निर्भीक रूपसे लिखा जा रहा है। पुराना लिजलिजा मानवतावाद अब पीछे हटता, पुराना पड़ता जा रहा है।

सारिका : कुछ अच्छी कहानियाँ : जनवरी : यशपाल, प्रभाकर माचवे, कमल जोशी, रामकुमार भ्रमर। फरवरी : कीर्ति चौधरी, कुँवरनारायण, भीष्म साहनी। मार्च : रमेश बक्षी, मनहर चौहान, पानू खोलिया। अप्रैल : रामकुमार, गोपाल उपाध्याय, सोमा वीरा। अगस्त : सुरेन्द्रकुमार मलहोत्रा, मुद्राराक्षस। सितम्बर : निर्मल वर्मा, प्रेमकपूर, शान्ति मेहरोत्रा, प्र० माचवे। अक्टूबर : रमेश बक्षी, शिवानी, नरेन्द्र कोहली।

इन कहानियोंको पढ़कर जहाँ यह लगता है कि कहानीके क्षितिज विस्तृत होते जा रहे हैं, वहाँ यह भी स्पष्ट है कि जीवनकी कई अज्ञात परतोंको खोलकर कहानी-लेखक लिख रहे हैं। उनमें एक नयी सहजता उभरकर आ रही हैं। कई नये सशक्त हस्ताक्षर सामने आ रहे हैं। पुराने लोग भी नये-नये प्रयोग कर रहे हैं। इन कहानियोंमें महानगरके जीवनको विशेष रूपसे लक्ष्य किया गया है—नारी-नर-सम्बन्धोंकी बात यहाँ भी प्रधान है, परन्तु हास्य-व्यंगका एक नया उपयोग यहाँ मिलता है। केवल व्यंगके लिए व्यंग यहाँ नहीं है जैसे भीष्म साहनीका 'गीता सहस्सर नाम'। निर्मल वर्माकी और पानू खोलियाकी कहानियाँ अधिक समय तक याद की जायेंगी। प्रभाकर माचवेकी 'लाइफ़ बेल्ट' कहानीपर काफ़ी चर्चा हुई। कई लोगोंने उसे सराहा, कई भाषाओंने अनुवाद भी किया।

अब 'ज्ञानोदय' लें। इसके साधारण अंकोंमें और विशेषांकोंमें काफ़ी सावधानीसे कहानियोंका सम्पादन होता है। फ़रवरी अंकमें 'जंक्शन' (ग० मा० मुक्तिबोध), 'दिलचस्पी' (ज्ञानरंजन); अप्रैल अंकमें 'निर्णयके अन्तरंग क्षण' (दूधनाथ सिंह), 'एक अपरिचित दायरा' (सुरेश सिनहा); मई अंकमें 'चूहे' (शशिबन्धुभ), चूहे (गिरिराजकिशोर); जून अंकमें 'पानीके परदे' (सोमा वीरा); 'नयी क़लम अंक'में अनिलप्रभा, अन्विता अग्रवाल, सु० कुमार, अशोक आत्रेयकी कहानियाँ बहुत अच्छी हैं। अगस्त अंकमें 'वे' (विष्णु प्रभाकर), 'निर्मम' (सुधा अरोड़ा); सितम्बर अंकमें 'व्यस्तजीवियोंका प्यार' (ममता कालिया) और अन्तमें अक्टूबर अंकमें 'अस्तित्वबोध' (रामकुमार भ्रमर), 'निर्णय'(कान्ता सिनहा) आदि कहानियोंमें हमें कोई-न-कोई विशेषता जान पड़ी। अब यहाँ एक छोटी टिप्पणीमें यह सम्भव नहीं कि हर कहानीपर विस्तारसे लिखा जाये।

पर अब साप्ताहिकोंमें छपी कुछ अच्छी कहानियोंका ज़िक्र करके इन सब कहानियोंको पढ़कर जो मेरे मनमें बातें उठीं वह लिखना चाहता हूँ—धर्मयुगमें वेद राहीकी 'बर्फ़', शिवानीकी 'के', द्रोणवीर कोहलीकी 'पैमाना', शशिप्रभा शास्त्रीकी 'नचती धूपकी चाँदनी', अजित कौरकी 'मैंने तुम्हें नहीं पहचाना', नूरी शाहकी 'चाँद-तारे', कमल जोशीकी 'धब्बेदार आईना', विजय चौहानकी 'दरबार', कमलेश्वरकी 'फ़ालतू आदमी', रमेश बक्षीकी 'उत्तर', पानू खोलियाकी 'स्थितियाँ', शोभना बुटानीकी 'खामोशी : दो मन', मणि मधुकरकी 'स्वभाव', ओमप्रकाश दीपककी 'नींद', राजेन्द्र किशोरकी 'पीले फूलोंका गुलदस्ता' आदि मुझे अच्छी लगीं। अन्य साप्ताहिकोंमें भी कुछ-कुछ कहानियाँ कभी मनको छू जाती हैं। साप्ताहिक हिन्दुस्तानमें कभी-कभी एकाध अच्छी कहानी छप जाती हैं। और किसी साप्ताहिकमें चयन-सम्पादन कम ही होता है। और वैसे कुछ अच्छी कहानियाँ 'माया', 'नीहारिका', 'कहानी' आदि कहानी-पत्रिकाओंमें और लहर, ज्योत्स्ना, युयुत्सा, गल्पभारती आदि नवलेखन-प्रधान पत्रिकाओंमें भी पढ़नेको मिलीं।

कुल कहानियाँ पढ़नेपर जो बातें मुख्य रूपसे मेरे मनमें उभरीं वे ये हैं :

(१) शिल्पके मामलेमें नवीनतम कहानी-लेखक या तो एकदम असावधान है, या अति-सावधान है। भाषा, टेकनीक, वर्णनके लिए चुने जानेवाले स्थल-काल-व्यक्ति-बोधक अंश अधिक सहज और कहानीके वातावरणके अनुकूल बनते जा रहे हैं।

(२) मनोविश्लेषणके लिए मनोविश्लेषण कम हो गया है। मनुष्यकी समग्र अवस्थिति, परिवेशके साथ सम्पृक्त समस्याएँ अधिक प्रधान हैं।

(३) कहानीकारका ज़मीर अधिक संवेदनशील और तीखा हो गया है। पाप-पुण्य, दुराचार-सदाचारके पुराने पैमाने आजकी जटिल परिस्थितिमें ना-काफ़ी पड़ते जा रहे हैं।

(४) पुराने लेखक कोई कमाल नहीं दिखला रहे हैं। बासी कढ़ीमें उबालवाला ही हाल है। कुछ पुराने लोग नयों-जैसा बननेकी कोशिशमें 'न उधरके रहे; न इधरके रहे' वाली खाईमें पड़ते जाते हैं। नये हस्ताक्षर उभरकर सामने आ रहे हैं।

(५) कहानी चूँकि सर्वाधिक पारिश्रमिक उपलब्ध करानेवाली विधा, हिन्दीमें, सम्प्रति है—इसलिए व्यावसायिक दबावसे लिखी जानेवाली खास फ़ार्मूले और लटकेसे पाठकका ध्यान खींचनेवाली कहानी भी तेज़ीसे लिखी जा रही है। सम्पादकका दायित्व, यों, बढ़ता जा रहा है।

(६) कहानियाँ अच्छी लिखी जानेके बजाय, कहानीपर चर्चा अधिक की जा रही है। यानी यों होता है कि जो जितनी घटिया कहानी लिखता है, उतना ही बढ़िया वक्तव्य या लच्छेदार बातें कहानी-कलाके बारेमें कहता है। अच्छी सृजनशील प्रतिभा और आलोचनात्मक दृष्टि एक ही व्यक्तिमें हो यह आवश्यक भी नहीं। ■ ■

१२० रवीन्द्रनगर,
नयी दिल्ली–१

अठारह सूरजके पौधे
रमेश बक्षीका नया उपन्यास
■ ■
बिलकुल नयी शैलीमें लिखा आदिसे अन्त तक एक आत्मीय संगीतमें डूबा हुआ कथानक ! बहुत रोचक।
मूल्य ३.००
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रतिक्रिया

१ एक परिचित 'इमारत'

प्रिय रमेश जी,

आपका नया उपन्यास 'वैसाखियों वाली इमारत' चार बजेके लगभग मिला। उलट-पलटकर देखा, तो ऐसा लगा कि दिलचस्प होगा। छह बजेके लगभग उसे पढ़ना शुरू किया तो पढ़ती चली गयी। बीचमें थोड़ा-सा व्यवधान हुआ तो वह अच्छा नहीं लगा। उपन्यास समाप्त करके सोयी।

देखिए, मैंने कॅम्पनसेट कर दिया है। जब 'अठारह सूरज के पौधे' को लेकर एक गोष्ठी होनेवाली थी, तो उस समय मैं कई बार कोशिश करके उसे नहीं पढ़ पायी थी। गोष्ठीके दौरान वह बात श्रीमती सिंघीने भरी मजलिसमें सुना दी थी। उस समय मुझे बहुत बुरा लगा था। अच्छी-भली लिखी हुई चीजको न पढ़ पाना लेखकपर आक्षेप नहीं—पाठककी अपनी असमर्थता है। खैर, जो भी हो, आपका यह उपन्यास पहले तीनों उपन्यासोंसे हर लिहाज़से अच्छा है। मैं आलोचक तो हूँ नहीं, और न ही उस क्षेत्रमें लेखनी आजमानेकी मेरी आकांक्षा है। उपन्यास पढ़कर यों लगा मानो लेखकों, पत्रकारों, कॉलेज-प्राध्यापकों तथा बुद्धिजीवी लोगोंका जो समाज है, उसकी एक डाक्यूमेण्टरी फ़िल्मका विशेष शो देख चुकी हूँ। जिस समाज-का आपने चित्रण किया है, वह ऐसा परिचित है कि उपन्यास पढ़ते समय लगता है जैसे मित्रों और बन्धुओंका फ़ोटो-एलबम पुनः देख रहे हैं। कमसे कम मेरी अनुभूति यही थी।

उपन्यासमें न ही सेक्सकी भूखकी दुहाई है, जिससे उबकायी आने लगे। बस सेक्सकी मात्रा उतनी ही है जितनी होनी चाहिए—ठीक-ठीक। रमेशजी, मुझे इस बातकी भी खुशी हुई कि आप अन्य लेखकोंकी तरह दरजी नहीं बन गये, केवल कुछ वक्षोंका माप नहीं देते रहे जो विदेशी हों और भारतीय लड़कियोंपर आरोपित

किये गये हों। हमारे कई लेखकगण ऐसा करते हैं। जिस रेस्तराँ और कैबरेका ज़िक्र करेंगे वह न पार्क स्ट्रीटमें होगा, न चौरंगीमें और न ही बड़ाबाज़ारकी किसी गलीमें। कमसे कम आपने जिन रेस्तराओंका ज़िक्र किया है वे वास्तविक हैं। जिस पाठकने कलकत्ता न भी देखा हो, कमसे कम उसे भी वास्तविक लगेंगे, उनमें चित्रित वातावरण काल्पनिक नहीं है, न ही कुछ इस तरहका है कि फ़र्नीचर और दीवारें तो किसी छोटे-से क़स्बेके कैफ़ेकी हों और छोकरी—'कैबरे-गर्ल'—किसी पार्क-स्ट्रीटके रेस्तराँकी। नहीं, वैसी भी नहीं कि जैसे हवाई द्वीप या किसी विदेशी द्वीपकी सुन्दरी हो। जिसका वर्णन लेखक और पाठक दोनों साथ कहीं पढ़ चुके हों। आपने स्वयं जाकर रेस्तराँ देखें हैं फिर उनके विषयमें लिखा है, केवल पढ़कर ही नहीं, स्वयं अपने अनुभवसे।

बात आपके उपन्यासोंकी हो रही है, बीचमें दूसरी बात लानेके लिए क्षमा चाहती हूं। 'क़िस्सेपर क़िस्सा' बड़ा भयानक तथा 'मारबिड' था। मैं यह नहीं कहती कि वह यथार्थ नहीं था। शायद वह यथार्थका नग्न रूप था। नग्न रूप देखनेका आजकल, फ़ैशन चल गया है। क्लबमें स्ट्रीपटीस देखकर मैं भी समय बिता लेती हूँ, परन्तु मुझे उसमें आनन्द कभी नहीं आया, यह मत समझिएगा कि नारी होनेके नाते मैं उससे खुशी हासिल नहीं कर पाती, स्ट्रीपटीसको देखकर मर्द गम्भीर हो जाते हैं, परन्तु नारियाँ रस लेती हैं। खैर, जो भी हो, आप अपनी लेखन-यात्राके एक महत्वपूर्ण मोड़पर पहुँच गये हैं—बधाई है।

'बैसाखियों वाली इमारत'में विदेशसे चुराया हुआ कुछ भी नहीं। प्रायः हमारे लेखकगण कोई घटना, कोई संवाद, कोई उपमा चुपके-से विदेशी उपन्यासोंसे ले लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि आजकल साधारण पाठक भी पढ़ा-लिखा है और शायद पठन-पाठनमें उतना ही दिलचस्पी लेता है जितनी उन लेखक महोदयने ली होगी। यों यह कम-ज़ोरी मैंने आपकी किसी किताबमें नहीं देखी।

उपन्यासकी सबसे बड़ी श्रेष्ठता है उसकी ईमानदारी। हर पात्र ईमानदार है। कम पढ़ी-लिखी साधारण गृहस्थिन पत्नी बेचारी इस कारण 'हसबैण्ड ब्लाऊज़' बनवाती है ताकि उस ब्लाउज़के बटन उसका पति पीछेसे बन्द कर सके। भले ही पतिको आकर्षित करनेका यह ढंग असफल रहा हो।

मिस जायस-जैसी व्यावहारिक लड़की क्रिसमस ईवपर नायकको शराब पीनेके लिए बुलाती है, परन्तु उसकी पत्नीका हाल पूछती है तो कहती है, "भाभीके क्या हाल है?" वही लड़की नायकको सुखी दाम्पत्यका नुस्खा बतलाती है—"यू कीप हर बिज़ी ऐण्ड एन्गेज्ड।" पत्रकार महोदयको इतनी सीधी बात समझमें नहीं आती। तब वह बेचारी खोलकर कहती है कि उसे माँ बनने दो। माँ बननेकी सीढ़ियोंमें ही वह व्यस्त रहेगी तो नायकको कम तंग करेगी, वह अपना बाहरका जीवन सुविधासे जीता रहेगा। मिस जायसकी विवेचना आगे करूँगी।

पूरे उपन्यासमें एक विरोधाभास है।

आजकलके हमारे जीवनमें भी वैसा ही विरोधाभास है। हमारी मान्यताएँ अलग हैं, जीवन ठीक उसके विपरीत—यह फ़िलासफ़ी बुरी नहीं। यों मैं इससे इत्तेफ़ाक़ नहीं रखती—"मोहब्बत मुझे लिजलिजी लगी है। प्यार-मोहब्बत बकवास लगे हैं। हमेशा यही सोचता रहा हूँ कि मैं ज़हर खा सकता हूँ लेकिन किसीसे प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम कितनी आऊट ऑफ़ डेट और प्राचीन संस्कृतिप्रधान परम्पराभुक्त मूर्खता है।" आजकी दुनियामें यह ठीक है। किसके पास समय है कि आहें भरे। रमेशजी, आपका नायक विचार ऐसा रखता है, परन्तु वसुधाके लिए पागल है। उसकी आवाज़ सुननेके लिए, उसके लिए कुछ भी कर गुज़रनेके लिए। वह अपनी इस कमज़ोरीपर विजय पानेके लिए वसुधाकी बात न माननेका प्रयत्न भी करता है। उसे यह दिखलानेका प्रयत्न करता है कि वह उसकी परवाह नहीं करता। वह सब जीवनमें होता है। हमारा जीवन भी विरोधाभासका सर्वोत्तम उदाहरण है।

एक बात समझमें नहीं आती कि नायकको अपनी पत्नीसे क्यों चिढ़ है? प्रेमसे उसको घृणा है, इसलिए उसने घरवालों-द्वारा ठहराया हुआ विवाह किया। फिर भी अकारण वह पत्नीसे चिढ़ा रहता है। मिस जायस पत्नीके पढ़नेके लिए कहती हैं, तो भी वह चिढ़ जाता है। अकारण क्रोधसे भर जाना और अपने भीतर-ही-भीतर जलते रहना, आजके शिक्षित लड़कोंमें बड़ी मामूली-सी बात है। अपने परिवेशसे चिढ़ना, अपनी छोटी-छोटी सफलताओंपर चिढ़ना, विफलताओंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखना, कमज़ोरियोंकी स्तुति करना, सब कुछ ही यथार्थ है। कुछ आरोपित नहीं। पत्नी चली जाती है। उसे रोकनेकी बजाय निष्क्रिय होकर बैठे रहना भी यथार्थ है। वसुधाके लिए भावोंकी तीव्रता, शरीरको भेदती कचोट—वह भी यथार्थ है। प्रेमको बुरा कहते हुए भी प्रेम-प्रेम चिल्लाना। नायकका रोम-रोम वसुधाके लिए पागल। साथ ही आपने प्रकृतिको अपनी मनःस्थितिका वर्णन करनेका साधन बड़ी कुशलतासे बनाया है। उसके उदाहरण गिनाने लगूँ तो पत्र लम्बा हो जायेगा, फिर भी इतना तो कह ही दूँगी—"फुहारों-भरी रिमझिम आयी कि मेरे शरीरपर गुलाब-ही-गुलाब भर गये। सामनेसे आती हुई चार लड़कियोंके शरीरकी सेण्टकी सुगन्ध रिमझिम उठा लायी थी और मुझपर उसे फेंकती उत्तरमें दौड़ गयी थी।"

आपने बड़ी चालाकीसे अपनी सारी सहानुभूतिका पात्र वसुधाको बनाया है। वसुधा, क्षमा कीजिएगा, एक बहुत ही कमज़ोर पात्र है। नायककी पत्नी भी उससे श्रेष्ठ पात्र है क्योंकि वह कुछ कर गुज़रती है। शिक्षित न होनेपर भी उसे नायकके आश्रयकी परवाह नहीं, पत्नीके अधिकारमें वह रोटी-कपड़ा लेकर ही सन्तुष्ट नहीं। वह नायककी भावनाएँ चाहती है, उसे पतिका प्रेम चाहिए। न मिलनेपर वह एक ज़बरदस्त क़दम उठाती है। उसमें आत्मसम्मान है, वह नायकके मानसिक विरोधाभास और अब बौद्धिक चिन्तनके आगे होम नहीं हो जाती। वह नारी-जातिके लिए स्वतन्त्रताकी प्रतीक है। उसे कमसे-

कम यह पता तो है कि वह चाहती क्या है। उसका अपना दिमाग़ और चिन्तन सब स्पष्ट है। पतिकी तरह उलझे हुए नहीं। किसी भी नारी-पाठिकाको उसपर गर्व होना चाहिए, विशेषकर शिक्षित और समझदार नारीको।

लेखकके मनपर वसुधा हावी है, वह एक छिछोरा पात्र है। जिसकी नींव खोखली है। उसकी अपनी मान्यताएँ नहीं। वह कॉलेजकी एक उच्छृंखल लड़कीकी तरह भी होती तो भी बात बन जाती। वह अपनेको 'इण्टेलेक्चुअल' समझती है और बहुत बड़ी चित्रकार बननेके स्वप्न देखती है। उसमें चित्रकारके मुख्य गुण ग़ायब हैं, हृदयकी विशालता, तीव्र संवेदना और अपनी शृंखलाओंको तोड़ देने की क्षमता। आपकी भरसक कोशिशके बावजूद वह चरित्र उभर नहीं पाया। केवल पुस्तकमें लापरवाहीसे छलके हुए स्याहीके धब्बे बनकर रह गया है।

यों नारी-पात्र गढ़नेकी आपकी शक्तिपर सन्देह नहीं किया जा सकता। मिस जायसको कितने मनोयोगसे आपने ज़लील करना चाहा, इसका पता पाठकको भी लग जाता है। फिर भी पाठकोंकी, विशेषकर जागरूक पाठिकाओंकी सहानुभूति उसके साथ होती है। वह सच्चे अर्थोंमें बोहेमियन है। वह नाटक नहीं करती—यथार्थ जीती है। वह गर्भ-निरोधकी बात पुरुषोंसे कह सकती है। इसपर उसे लाज नहीं आती। वह 'कण्ट्रासेप्टिव' अपने बैगमें रखती है। ज़रूरत पड़नेपर पुरुष-मित्रोंको भी दे सकती है। आप इस बातकी चर्चा कुछ इस तरह करते हैं, मानो पाठकको शॉक दे रहे हों। 'कण्ट्रासेप्टिव' आजकल दैनिक जीवनमें काम आनेवाली छोटी-सी वस्तु है। उसके प्रति पाठकोंमें उत्सुकता जगाना भी बेकार-सा लगता है और पाठकोंको शॉक भी नहीं मिलता।

मिस जायस विवाहित पुरुषोंको पसन्द करती है—अविवाहितको नहीं। नारी-मनोविज्ञानकी इतनी सूक्ष्म पकड़के लिए आप बधाईके पात्र हैं। आजकल अविवाहित पुरुष, विवाहित नारियोंसे प्रेम करते हैं। प्रेमसे केवल भावनाओंका बोध हो, वह ज़माना चला गया है। आजकल प्रेमसे तात्पर्य है—शारीरिक सम्बन्धका और शारीरिक सम्बन्धोंमें विवाहित पुरुष अधिक अनुभवशील होते हैं और विवाहित नारियाँ भी। आज जैसा समाज हमारे बड़े-बड़े नगरोंमें पनपने लगा है—उसका बहुत अच्छा चित्रण आपने किया है। मकानकी सहूलियतके लिए तथा अन्य आवश्यकताओंके लिए मिस जायस नायकसे कहती है कि वह उसके घर ही आ जाना चाहती है। नायकको यह मंज़ूर नहीं। मिस जायसको यदि वह नापसन्द करता है तो फिर उससे मिलता क्यों है? उससे सरोकार क्यों रखता है? शायद जीवनमें इतना अभद्र व्यवहार वह किसी औरसे नहीं करता, जितना मिस जायससे करता है। उसका कारण कहीं भी स्पष्ट नहीं होता। पत्नीके साथ खिंचावका कारण किसी हद तक समझमें आ जाता है। वह अपने अधिकार माँगती है। अधिकारोंको न देनेपर क्रोधित हो जाती है।

अन्त पलायनवादी है। नायक एक प्रस-कान्फ्रेंसमें भाग लेनेके लिए दार्जिलिंग चला जाता है। वसुधा बम्बई चली जाती है। वसुधाकी क्या बात नायकको अच्छी लगती है—यह भी आप स्पष्ट नहीं कर पाये। नायकको उसके बनाये चित्र अच्छे लगे। वह प्रेमका दम भरने लगा। नायक जिस परिवेशसे उठाया गया है, वहाँ पुरुषोंकी रुचि परिष्कृत होती है। वह 'स्कर्ट' वाली लड़कीके साथ मोकाम्बोमें नाच तो सकता है, परन्तु वसुधासे 'कालेजके लड़कोंवाला प्रेम' कैसे कर सकता है?

खैर जो भी हो—कुल मिलाकर पुस्तक बहुत अच्छी है। यह स्तुतिवाचक 'अच्छा' नहीं। पढ़नेमें रोचक, समाजका सही चित्रण, उधार लिया हुआ, नक़ल किया हुआ नहीं-स्वयं भोगा हुआ। श्री राजेन्द्र यादवने उपन्यास प्रकाशित किया, तो अपने व्यावसायिक दृष्टिकोणका ख़ूब ध्यान रखा। उनमें इतनी व्यावहारिकता है, यह जानकर भी खुशी हुई।

आकाशवाणी
कलकत्ता-१

– रजनी पनिकर

२ अ (-आस्थावान) गीत और कन्धोंपर पड़ी हुई राहोंका भविष्य :

इधर तथाकथित नयी कविताके परिप्रेक्ष्यमें गीतकी बात फिर उठायी गयी है। छन्द-मुक्त रचनाओंको 'जो भावनाके विस्तारमें न जाकर सांकेतिक रूपसे अनुभूतिके एक बिम्बको व्यक्त करती हैं' (गिरिजाकुमार माथुर) नये गीत-काव्यकी कोटिमें प्रतिष्ठित किया जा रहा है। आग्रह है कि गीतको उसकी भाषागत जड़ता और शैलीसे मुक्त करना। यदि गीतको 'परिभाषा' और उसके 'प्रेक्ष्य बिन्दु' से बदलनेपर ही एक रेनेसांकी सम्भावना हो सकती है तो प्रश्न यह है कि उस गीतका स्वरूप क्या होगा? श्री माथुर 'छन्दबद्ध तुकान्त शैली' की रचनाओंको गीत मानते हुए भी उसमें 'स्वानुभूतिके ताप, परिवर्तित सौन्दर्यबोध और मूल्यगत स्तरपर बदलती हुई संवेदना'की अपेक्षा करते हैं। गीत 'यन्त्रमुखी' होनेपर आधुनिक होगा, इस मान्यताके समानान्तर ही उन्हें ठाकुरप्रसाद सिंहके संथाल-संस्कारी गीतोंकी 'मूल दृष्टि' आधुनिक प्रतीत होती है। अपने विचारोंको शब्दोंके आभा-मण्डलसे आवृत्त करनेपर विश्लेषणकी दिशा प्रायः स्पष्ट नहीं रह पाती। 'अभिव्यक्त लय'का आभास स्थान-स्थानपर जिस रचनामें मिलता हो उसे गीत या 'शुद्ध गीत' कहना और कुछ

कविताओंकी मुक्त शैलीको गीतके नवीन संस्कारके रूपमें महत्ता देना, वस्तुतः दो भिन्न तथ्योंके ऊपर सेतु बाँधनेका प्रयत्न है। अपने नवप्रकाशित 'नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ' ग्रन्थके सातवें निबन्धमें गिरिजाकुमार माथुर स्पष्टत : नये लिखे गये गीतोंको नयी कविताके अविच्छिन्न अंग स्वीकार करते हैं (पृ० १२६)। अपरोक्षतः इस तर्कका सन्दर्भ वही है जो 'नवगीत' और 'नया गीत' के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है और उसे नयी कविताकी गौरवपूर्ण परिणति मानकर उसके सभी रचयिता अपनी 'गोचरी आधुनिकता'के प्रति आश्वस्त अनुभव कर रहे हैं। नयी कविताकी लयात्मक क्षमताका एकमात्र द्योतक एवं पूरक है नया गीत। वैचारिक दृष्टिसे एक पक्ष नवगीतको 'कविताके नये धरातलकी खोज' मानता है। 'जो कुछ व्यक्त करनेमें नयी कविताकी विधाको चुका हुआ अनुभव किया जा रहा है—या जो कथ्य नयी कविता नहीं दे पा रही, उसे नवगीतके माध्यमसे अभिव्यक्ति दी जा रही है।' इस संगतिसे 'नवगीत' नयी कविताका 'विस्तार नहीं' बल्कि उसके समानान्तर 'काव्य-शृंखलाकी अगली कड़ी' (लहर : कवितांक–उत्तरार्द्ध, ६७ : वीर सक्सेना) कहा गया है। वैयक्तिक स्थापनाओंकी इन स्थितियोंमें अ (-आस्थावान) गीत नितान्त भोलेपनसे अश्लीलके प्रति आतंकित होता हुआ, शान्तिके लिए संघर्ष करनेका औत्सुक्य प्रकट करता है (अगीत–१)। लेकिन कृतित्वमें गीत, नवगीत, अगीत और नया गीत, वैविध्य विचारास्तरीय होते हुए भी, रचना-प्रक्रियाके स्तरपर नयी कविताकी प्रकृतिपरक गन्ध और नागर अनुभूतियोंकी मिश्रित प्रतिक्रियाओंसे ही अबतक अनुरंजित है।

राजीव सक्सेना ने अपनी कविताओंके सद्य प्रकाशित संकलन 'आत्म-निर्वासित' मे स्वयंको नयी कविताके दायरेके बाहर बताया है एवं निजके कृतित्वकी प्रक्रियाको उस क्षणकी सांकेतिकतासे सम्बद्ध अनुभव किया है जिसमें 'मंचपर दृश्य परिवर्तनके बीच कहीं जो अन्धकार आता है' और जिसका दर्शक हॉलमें होते हुए भी उस अँधेरेमें होनेवाले परिवर्तनको लक्ष्य नहीं कर पाता। किन्तु कविताकी स्थितिमें अव्यक्त एकालापके अंशसे उसकी शिकायत भी द्रष्टव्य है, क्योंकि 'छपी हुई कविता संगीतसे दूर हो गयी है।' संगीत अथवा लयके इस विमोहके कारण राजीव अपनी कविताओंको गीत कहना पसन्द करता है। उनमें आदिम कवितावाला जादुई तत्त्व (?) पैदा करनेकी अव्यक्त कामनावश, निष्कर्षतः, छपित रूपमें कविताओंके प्रकाशित होनेके कारण (शायद' शब्दके साथ) उन्हें 'एण्टी गीत' कहना भी वह उपयुक्त समझता है। 'शायद' शब्द ही राजीवको अनेक आरोपोंसे बचा लेता है।

विलियम कार्लोस विलियमने कविताको मशीन कहा है। मशीनका अपना संगीत होता है। प्रश्न यह है—राजीवको जिस गीत शब्दसे मोह है उस गीतका स्वरूप यदि परम्पराश्रित है और उसका संगीत यदि प्रगीत-विषयक साहित्यालोचनमें चर्चित ध्वनि-मर्यादाओंसे

संचरित होता है, तो उसका आदिम पक्ष क्या होगा ? आदिम संगीत सीमित स्वरोंका अनगढ़ संगीत है। उससे आबद्ध गीत (जो वस्तुतः साहित्य-सम्मत व्याख्याके अनुसार गीत नहीं होते) ईमानदार अभिव्यक्ति हैं। जहांतक गीत लिखनेका सम्बन्ध है जगदीश चतुर्वेदी और कैलाश वाजपेयीने भी गीत लिखे हैं; रेडियोके लिए बहुत-से नयी कवितावालोंने गायी जानेवाली बन्दिशें रची हैं। व्यक्तिगत रूपसे आदिम जीवन और उसके अनगढ़ संगीतके बहुत क़रीब होना अलग बात है। लेकिन उस संगीतको जो लोग मानसिक रूपसे भोगते रहे हैं यदि उनकी गीत-रचनाओंको विश्लेषित किया जाये तो तथ्योंके वैचारिक आधार हमें निराश ही अधिक करेंगे। कथनी और करनीका अन्तर समूचे तथ्योंकी उपस्थितिमें स्पष्ट हो जाता है। फिर भी तथ्योंके एक बड़े अंशके ठीक विपरीत 'एण्टी'की परिकल्पना बुरी नहीं हो सकती। राजीवका 'एण्टी' होना स्वाभाविक है। जानकारीके लिए कुछ स्थूल तथ्य हमें अवश्य आकर्षित करते हैं: नयी कविताके कवि प्रकृतिपरक वातावरण एवं 'प्रेस्टोरल नास्टेलिजया'से बाहर आनेके लिए छटपटाते रहे हैं। आरम्भमें कई प्रतिष्ठित कवियोंने अपने शोध-प्रबन्धोंके लिए जिन विषयोंको चुना वे लोकपरक साहित्य-विधाओं एवं मध्यकालीन प्रेम-मार्गीय प्रबन्धोंसे सम्बन्धित रहे। भारतीने सिद्ध-साहित्यके माध्यमसे नावीन्यको उपलब्ध किया। कई समकालीन कवियोंकी प्रारम्भिक रुचि सन्त-साहित्यमें रही। अध्ययनके हितमें इस रुझानकी प्रतिक्रिया, अन्वेषण एवं प्रबुद्ध चेतनाकी भित्तिपर अनुचित नहीं हुई। तथाकथित नयी कविताकी उपलब्धियोंमें गीतका जो अंश अवशिष्ट है वही उसकी प्रेरणाका केन्द्र-बिन्दु है। उसे अब एक वास्तविक आयाम प्राप्त होने लगा है। 'आत्मनिर्वासन' की प्रथम टिप्पणीमें राजीवका आग्रह है कि (श्री माथुर भी जिसका अनुमोदन करते हैं) 'गीत नामक विधाको आधुनिक संवेदनशीलतासे सम्पृक्त किया जाना चाहिए' (पृ० १०१)। इस प्रश्नको बीटल्स भी हल नहीं कर सके। एक पुरानी सज्जाको नया रूप प्रदान करने-जैसा यह प्रयास मनोरंजनके लिए उपादेय सिद्ध हो सकता है। मगर आदिम कविताओं-सा जादुई तत्त्व शायद (मुझे भी इस स्थितिमें 'शायद' शब्दका ही उपयोग करना उचित होगा) कविताको अकविताके नज़दीक ले आये। इसमें केवल समग्र विक्षेप अपेक्षित है, विस्तार या क्रमागत विकास नहीं। अतएव तर्ककी द्विधात्मक स्थितिमें श्री माथुरका नयी कविताओंको एक लोकसे जोड़ना शायद वैसा ही है जैसे राजीवका अपनी कविताओंको 'एण्टी गीत' सम्बोधित करना। यह ऐसा ही एक खयाल है जिसमें कविताको 'पासटाइम' या मशीन कह देना। मैं अपनी बहुत-सी रचनाओंको अकविता कहता हूं और शेष कई पंक्तियोंके समुच्चयको 'कोलाज'। अकविता शब्द पारिभाषिक संज्ञाके रूपमें नयी कविता, गीत और नवगीत-जैसे उद्बोधनोंके अन्तर्गत लिखी जा रहीं समानधर्मा रचनाओंसे भिन्न एक मात्र अलग स्तरकी रचनाओंके

लिए अब प्रयुक्त किया जा रहा है। 'अ' की संगति इस मानेमें प्रत्यय नहीं रह जाती है। उसमें निषेधका आरोप कविताका तिरस्कार नहीं है। निषेधके सूत्र सामाजिक अधिक हैं जो कथ्य, भाषा एवं रूपगत परिवृत्तोंमें पूर्ववर्ती अभिप्रायों और बासी उपकरणोंसे मुक्तिके प्रयत्न मात्र हैं।

छपनेसे गीत अपना संगीत खो देता है, यह विषय अलगसे विचार करने योग्य है। ध्वनि-संकेतोंमें भी हम संगीतको लिखते हैं। मगर राजीवका गीत-भाव शायद कविताके स्तरपर एक व्यापक अर्थवत्ताको समाहित किये है, और जब वह अपनी रचनाको 'एण्टी गीत' कहता है और कविताके सामाजिक दायित्वका स्पष्टीकरण करते हुए स्वयंको नवभविष्यवादी (नियो फ़्यूचरिष्ट) मानता है, तो अप्रत्यक्ष रूपसे वह अपने कृतित्वमें व्यक्त होते हुए अकविता-भावको ही कहीं स्वीकार करता है। प्रकट है, 'आत्मनिर्वासन' की अनेक कविताओं और कवितांशोंकी आन्तरिक प्रक्रिया अकविताकी ओर उन्मुख है। गीत और अकविताकी प्रक्रियाएँ यहाँ दो अलग दिशाओं और मानसिक दृष्टिसे विभिन्न प्रेक्ष्य कोणोंसे सम्बन्धित हैं। प्रक्रियाओंके दो भिन्न आधार हमारी विधाओंके अन्तर और बाह्य दोनोंको समान नहीं रहने देते। गीतका अपना अस्तित्व है। अकविता उसे विनष्ट नहीं मानती। किन्तु, यह स्पष्ट अनुभव किया गया कि उसकी आन्तरिक प्रेरणा अधुनातन चेतनाको पकड़ पानेमें कमज़ोर सिद्ध हुई। नयी कविता और गीतका सामंजस्य उसकी इसी असमर्थताका द्योतक है। वह बीचकी स्थिति में रही, किसी वस्तुको पा नहीं सकी :

असल में मेरे कन्धे दुख रहे हैं
और असल में मैं एक खम्भे से दूसरे
खम्भे तक

अपने हिस्से का आसमान
ढोते-ढोते थक गया हूँ।
[केदारनाथ सिंह : एक हत्याकाण्डकी स्मृतिमें]

कहीं पहुँच पानेकी इच्छामें नयी कविताको एक पुलकी तलाश रही। हत्याकाण्डकी रोशनीमें भी उसे जंगली चिड़ियोंका व्याकरण सीखनेकी आवश्यकता अनुभव हुई। उसकी परिणति परमानन्द श्रीवास्तवके 'खलनायक'-सी हो गयी :

कविता कल तक जिनके लिए
कवच थी
आज तक छन्द है···

अनुभूतिके दायरेमें अब भी पुराने घर, पोखर और गुड़ियाकी कामना करते हैं। कोलाहल और भगदड़से सन्त्रस्त होकर नयी कविताका अवाक् मन अपनेको एक छोटे बच्चे-सा शहरकी ओर अपलक निहारनेमें सन्तुष्टि प्राप्त करता है। अनुभूति लयात्मक अभिव्यक्तिके रूपमें छन्दमुक्त होकर भी तुकान्तोंसे आवृत रही : रहती है—कहती है, बादलके घेरे / सवेरे-सवेरे, कथा-व्यथा, मोर-शोर, अमीन-जमीन, घोसला-ढकोसला, गुम और दुम-जैसे पद-विन्यास उसे जिस दिशामें लाकर खड़ा कर पाये हैं वह नयी कविताकी मात्र एक परिवर्तित रोमाण्टिक अभिवृत्ति है,

उससे अधिक नहीं। इसे चाहे उपलब्धि कहनेसे किसीको सन्तोष होता है तो किसी भी चिन्तकको आपत्ति नहीं होना चाहिए। नयी कविताके लिए सिर्फ़ यही बचा है।

साहित्य जिसका व्यवसाय है उसके लिए साहित्यसे निर्वासन कठिन होता है। प्रतिबद्धताएँ उसके कृतित्वको बौद्धिक मर्यादाओंको चुम्बकीय आस्थाओंमें प्रश्रय देती हैं। इस कोटिको भावभूमिका सृजन बहुतेरी कुण्ठाओंसे ग्रस्त होता है। अतीतकी उपलब्धियाँ उन्हें और भी गहरी बना देती हैं: घिसे हुए रेकार्डमें पड़ी किसी खँरोचमें उनके कृतित्वकी सुई 'ट्रेकबेक' करती रहती है। उसका पता सिर्फ़ उन्हें चलता है जो उस स्तरकी प्रतिबद्ध यशाकांक्षाओं और उन्हें उदात्त करनेवाली पारस्परिक सद्‌भावी संयोजनाओंसे अलग है। राजीवके लिए साहित्य कभी पेशा नहीं रहा। उसने साहित्यसे ईमानदारीका सम्बन्ध रखा और उसे निष्ठासे निभाया। साहित्यसे उसका 'स्वेच्छित निर्वासन', लगता है, उसकी ताजगीका ही रहस्य है। यह निर्वासन मुद्राराक्षसका समूची काव्य-प्रक्रिया और परम्परा-सम्मत साहित्य व्यवस्थासे वाक आउट नहीं, बल्कि एक संघर्ष है जिसे व्यवस्थाके बीच रहकर एक संगति दी जाती है। निर्वासनकी यही प्रतीति उसके भावी सृजनकी वास्तविक भूमिका है। मैं इस आन्तरिक प्रक्रियाको सृजनके हितमें आवश्यक मानता हूँ, क्योंकि प्रक्रियाका आधार—स्वेच्छित निर्वासन—परिस्थितियों-द्वारा दिया हुआ अवसर है जो सतत लेखन-प्रक्रियाकी एकरसतासे लेखकको मुक्त रखता है। राजीवके साथी इस अवसरको भोग नहीं पाये, अधिक लिखकर भी वे पिछड़ गये। निर्वासनका सही प्रभाव राजीवने अपनी कविताओंमें पाया। उनके द्वारा उसने एक बड़े अभावकी पूर्ति कर दी....

विसंगतियोंकी सामाजिक स्थितियोंमें आत्मनिर्वासन एक त्रस्त चीख़ नहीं है, व्यक्तिपरक निर्णयोंकी सांकेतिक कविता है। राजीवकी कवितामें प्रश्न हैं (खोटे सिक्केकी सार्थकता दूँ भी तो कैसे दूँ? लोग भीड़ क्यों हैं, जुलूस क्यों नहीं बन जाते?), सामाजिक शंकाएँ हैं (उनके देशभक्तिकी बातें बघारते ही मुझको लगता है / वे अभी छुरा भोंक देंगे, अथवा 'डॉक्टर ख़ुद अपना इलाज कर रहे हैं / मुझे ज़िन्दा ही मुर्दाघरमें छोड़कर'), उपचारके अवरोधोंके लिए प्रतिप्रश्न हैं और मित्रोंकी कविताओंके सम्बन्धमें वक्तव्य हैं:

> मेरे मित्र, नग्नता पर कविताएँ लिख सकते हो,
> भोग नहीं सकते, सब स्त्रीलिंगों-पुल्लिंगों के
> द्वारों पर भारत-सुरक्षा का ताला जड़ दिया गया है,
> माहवारी खाते ये सारे दिवालिया हैं तुम्हारे
> मैं मानसिक मैथुन में विश्वास नहीं करता।
>
> [आत्मनिर्वासन, पृ० १५]

मगर वक्तव्यपरक कविता अथवा कविता-में यत्र-तत्र आनेवाली काव्यपंक्तियोंमें कविता-

हम आपको अच्छा साहित्य पढ़नेकी सलाह देते हैं—

● उपन्यासमें आपकी रुचि है तो ये पढ़ें—

पुस्तक	लेखक	मूल्य
अस्तंगता	'भिक्खु'	६.००
अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
महाश्रमण सुनें ! [द्वि० सं०]	'भिक्खु'	३.००
सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
अपने-अपने अजनबी [द्वि० सं०]	अज्ञेय	३.००
पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
ग्यारह सपनोंका देश [द्वि० सं०]	सं० : लक्ष्मीचन्द्र जैन	५.००
राजसी	देवेशदास आइ० सी० एस्०	२.५०
शतरंजके मोहरे [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	अमृतलाल नागर	६.००
गुनाहोंका देवता [नौ० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ० सी० एस्०	३.००
तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

● कविता और नयी कविताओंमें रुचि है तो ये काव्य-कृतियाँ पढ़ें —

कितनी नावोंमें कितनी बार	अज्ञेय	४.००
मेपल	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
माया दर्पण	श्रीकान्त वर्मा	३.५०
अग्निबीज	डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय	३.५०
शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
तार सप्तक [द्वि० परिवर्द्धित संस्करण]	सं० : अज्ञेय	८.००
इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	ग० मा० मुक्तिबोध	८.००
हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
हम विषपायी जनम के [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
आँगनके पार द्वार [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	अज्ञेय	३.००
वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
रूपाम्बरा	सं० : अज्ञेय	१२.००
देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
कनुप्रिया [तृ० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं० : अज्ञेय	५.००
वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.५०
धूपके धान [पुरस्कृत, तृ० सं०]	गिरिजाकुमार माथुर	३.५०
वर्द्धमान [महाकाव्य, पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००
मेरे बा	तन्मय बुखारिया	२.५०

● कहानी—नयी कहानी पढ़ना चाहते हैं तो ये कथा संग्रह—

काठका सपना	ग० मा० मुक्तिबोध	३.५०
राजा निरबंसिया [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	५.००
सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	७.००
मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
झाड़ी [द्वि० सं०]	श्रीकान्त वर्मा	३.५०
खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
प्यारके बन्धन [द्वि० सं०]	रावी	४.००
मेरे कथागुरुका कहना है : २ [द्वि० सं०]	रावी	३.५०
ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००
सूने आँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३.००
ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
जयदोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
कुछ मोती कुछ सीप [पुरस्कृत, तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
संघर्षके बाद [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	३.००
आकाशके तारे : धरतीके फूल [च० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
गहरे पानी पैठ [च० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००

● उर्दू शेर और शाइरी चाहें तो ये किताबें—

उस्तादाना कमाल	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
शेर-ओ-सुख़न : भाग १ [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शेर-ओ-सुख़न : [भाग २-३-४-५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	११.००
शेर-ओ-शाइरी [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
ग़ालिब	श्रीरामनाथ 'सुमन'	८.००
मीर	श्रीरामनाथ 'सुमन'	६.००
गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	३.००

ये सभी प्रकाशन अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेतासे प्राप्त करें या लिखें

भारतीय ज्ञानपीठ

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

का अंश कितना होता है ? ऐसी बात जो सहज गद्यमें अधिक साफ़गोईसे व्यंजित होती है, कविताके बाह्य रूपमें उसका उपयोग अथवा कविकी ओरसे उसका आरोप एक प्रश्न उपस्थित करता है। यह प्रश्न केवल राजीव सक्सेनाकी कुछ कविताओं, खासकर 'आत्म-निर्वासन'के उतरार्द्ध तक ही सीमित नहीं, उनसे इतर हिन्दीकी और भी कविताओंके सम्बन्धमें उतना ही उल्लेखनीय है। कैलाश वाजपेयी जब निजी विद्रूप-तिक्तताको सीधे-सीधे व्यक्त करने लगता है तो उसका अन्दाज़ वक्तव्यके निकट होता है और कविता आरोपित रूपमें दर्शनकी किसी अव्यक्त प्रतिक्रियाका स्पर्श करती जान पड़ती है :

देह से देह बनानेवाली देह की तलाश ये
सारा बवेला····

[शल्य-चिकित्सा]

दुनिया निकलती है एक सूराग़ से
हाथ पैर मारकर
अहसास करके
पिट जाती है एक दिन मुट्ठी राख से

[शल्य-चिकित्सा]

आजकी कवितामें प्राप्त बहुतेरे अभिप्राय गली और सड़कोंके शोर, नदी, सम्भोगी आग, आवारा औद्धत्य, फ़ैशनपरक नगर सन्दर्भ, धुआं और बन्द कमरोंकी घुटन, सर्प-सन्दर्भ, हत्या, मृत्यु-यन्त्रणा, जिघांसा-चित्रों और वस्तुस्थितियोंके कई आम प्रसंगोंमें आवर्तित होते रहते हैं। कुछ कविताएँ ऐसी लगती हैं मानो कहानीकी कुछ पंक्तियोंको तोड़कर कविताके रूपमें रख दी गयी हों। भीतर कहीं राजनयिक वक्तव्योंका प्रभाव होता है एवं स्थितियोंको एक कविकी तरह अनुभव न कर पानेके अभावमें कहानीके ढंगकी अभिव्यंजना अत्यन्त सरल होती है। उदाहरणके रूपमें निम्न कविताकी आरम्भिक आठ पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

गली लेटी है कब से
जहाँ हज़ारों प्यासे पद-चिह्न
गुज़र गये हैं एक दूसरे को कुचलते हुए
मार खाया एक कुत्ता पड़ा रहता है
जो यों ही रह-रह कर भूँकता है
और यों ही चुप हो जाता है
एक बिजली का खम्भा गाड़ गया है कोई
जिसका बल्ब अकसर टूटा रहता है

[रामदरश मिश्र : गलियाँ और सड़कें]

ये पंक्तियां कुल मिलाकर एक चित्र-स्थितिकी द्योतक हैं, कविता नहीं हैं। हिन्दी कहानियां कई ऐसे चित्र प्रस्तुत करती हैं, सिर्फ़ उन्हें तोड़कर मुक्त शैलीमें विभाजित करनेसे उक्त पंक्तियोंके ढंगकी तथाकथित कविताएँ सहज बन सकती हैं।

राजीव सक्सेनाकी कविताओंमें एक जगह मुक्तिबोधका 'ब्रह्मराक्षस' अतीतसे प्रकट और भविष्यमें ओझल होती हुई सीढ़ियोंपर आकर वर्तमानको प्रश्नोंके बीच अकेला छोड़ देता है (कलेण्डरके पृष्ठ वर्तमानको बांधेंगे कहाँ)। इसलिए दो छोरोंके बीचकी स्थिति राजीवके 'आत्मनिर्वासन'का कृतित्व है :

हर शून्य पूर्ण है अनगिनत अभावों से
रूपातुर सम्भाव्यों से। हाँ एक ना है,

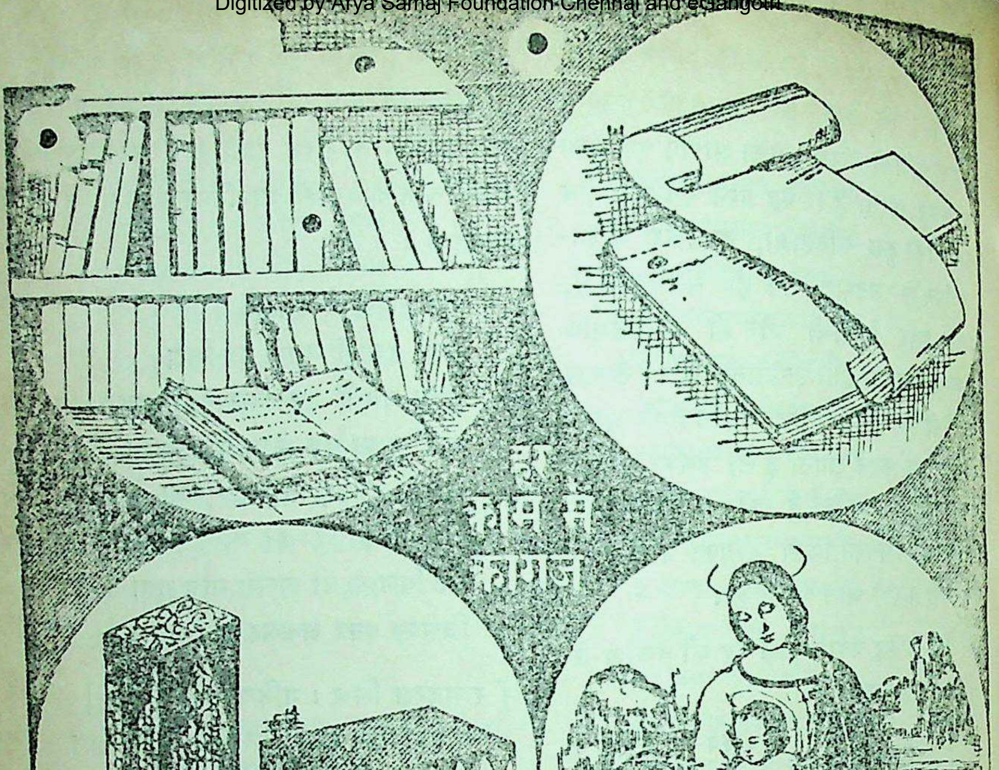

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, केवल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, तथा टिस्यू कागज,... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही [illegible] जाता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेन्ट्स।
साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो, कलकत्ता।

और ना एक हाँ है, जिनका योगफल
हाँ-ना दोनों नहीं है। ठहरे हुए क्षण हैं
एक बेचैन गति का विशिष्ट रूप।

(पृ० २२)

व्यक्तित्वके भीतर सम्भावनाएँ जन्मती हैं। अस्तित्ववादी दर्शनपर आज हमारी आस्थाएँ ठहरती नहीं। निषेधकी नियति आत्मरक्षाके लिए है। राजीवका अनुभव है कि 'काल एक सुविधाका माप है / हमारी गतिका; काल कोई नहीं, हम हैं।' और इसी तरहके वचनोंका-सा प्रभाव राजीवकी कविताओंमें बहुत जगह है। उसकी चेतना तनाव-शून्य स्थितियोंको पानेके लिए व्यग्र है। यह स्वास्थ्यका लक्षण है। यही बात अकविताके एक अंशको छूती है, क्योंकि अकवितामें जो तिक्तता है वह सामाजिक विसंगतियोंसे पलायन नहीं, कामूका स्वप्न-जगत् नहीं, सार्त्रका अस्तित्ववादी दर्शन नहीं, बल्कि वह ऐसी प्रतिक्रिया है जिसे व्यवस्थाको प्रभावित करनेवाली 'अर्थ'-गर्वी पीढ़ियाँ इसलिए बनाये रखती हैं कि प्रबुद्ध चेतना उनके संगठित षड़यन्त्रोंके बीच दरारें न डाल पायें। व्यवस्थाका हित इसीमें है कि कविता, सिर्फ़ कविता ही क्यों अन्य कला-विधाएँ भी, अस्तित्ववादी भित्तिपर उद्भूत वैचित्र्य एवं अधुनातन नटबाज़ियोंकी ओर आकृष्ट रहें। फ़ैशनके बतौर समाजका एक प्रबुद्ध अंश कलाओंमें कुछ ऐसा ही अव्यक्त शोध करता रहे और उसमें वह तत्त्व नहीं पा सके, जिसके पा लेनेपर व्यवस्थाके एक बड़े अंगको अपने आहत होनेका खतरा है। कलागत फ़ैशन, सौन्दर्य-प्रतियोगिताएँ, कलाविधियोंमें भ्रान्त रंगबाजी, आदि सभी व्यक्तिकी टूटनको प्रमाणित करते है। उनके पीछे व्यावसायिक षड़यन्त्रका पता नहीं चलता। चेतन व्यक्तित्व जो इसे समझ पा रहे हैं, वे संख्यामें कम हैं और उन्हें अपनी बात कहनेके लिए साधन प्राप्त नहीं हैं। उनके लिए अस्तित्वकी यह लड़ाई इस मानेमें व्यक्तिवादी है, एकाकी है, खण्डित है। इस दृष्टिसे कृतित्वके एक अंशका मूल स्वर 'एण्टी गीत' परक है, कवितासे बाहर है—अकवितापरक है। अस्वीकृति एवं असंगीतात्मकता उसके विक्षोभके कारण आये हैं। कुछ दिनों पहले पिकासोके एक वक्तव्यमें इस वास्तविकताका संकेत हमें मिल चुका है।

'आत्मनिर्वासन'में एक वास्तविक गीत (एक सिलहुटका गीत) और तीन कमज़ोर कविताओं–लाजारस, पुरुष प्रियाका गीत, और मुक्तिगीत–को छोड़कर शेष रचनाओंके पीछे वर्गसंघर्षका चिन्तन है। तथ्योंमें गुम्फित आक्रोशको संयत राहोंकी तलाश है। कई अभिप्राय गीतात्मक मिजाजके होते हुए भी भाषाके स्तरपर कथ्यमें तेज और सामाजिक सन्दर्भसे बद्ध हैं। सभी सन्दर्भ इतिहासकी रगोंको छूते हैं, अध्यात्मकी धुन्धको चीरते हैं और राजनयिक खोखलेपनका विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। कविता जब एक सतहसे अलग होती है और विश्वासका तक़ाज़ा समस्त विसंगतियों और बिखरावोंके ऊपर उठता है तो राजीव सक्सेना इस निष्कर्षपर पहुँचता है जो शायद सभीको मान्य न हो :

'परिवेश के प्रति निष्क्रियता हमारा धर्म नहीं है, सक्रियता हमारा सहज स्वभाव है'
(टिप्पणी—पृ० ९८)

तटस्थ विक्षोभसे बाहर इस आशावादी स्वरमें एक संकट भी होता है जो परिवेशसे ही उत्पन्न होकर हमें रोमैण्टिक दृष्टि देता है। यह दृष्टि समाज-सापेक्ष होती है। वर्तमान परिवेशके साथ निर्माणको जीना सक्रिय दृष्टि है, किन्तु अतीतके अविश्वासी अहसासको व्यक्ति कहाँतक अनुभव करता रहे? आवश्यक है कि एक सबक़की तरह हमारा स्वभाव उसे सदैव सन्दर्भ देता ही रहे?

यह सच है कि कविताकी पूर्ववर्ती स्थिति निष्क्रियताकी है जिसमें मध्युगीन रोमान्स और प्रकृतिपरक आंचलिक मोह पलता रहा है। वर्तमान स्थितिकी सक्रियता राजीवकी रोमैण्टिकता नहीं है। उसका असन्तोष एक शालीन विद्रोह है, बेचैनी है और प्रतीक्षातुर सन्तुलन है। 'आत्मनिर्वासन' की नयी कविताएँ इस बातको पूर्णतः प्रमाणित करती हैं। अपने शब्द-चातुर्यसे वह चौंकाना नहीं चाहता। घृणाने हमारी कविताको बहुत ढँक दिया है। व्यक्ति-स्तरपर यह घृणा कवितामें फूटती है, तब लगता है, राजीव वक्तव्यका सहारा ले रहा है। 'राहें चलती रहीं' संयोगसे कविता कम और वक्तव्य अधिक है। राजीव इस [illegible], संयत आक्रोश और संघर्षके सामाजिक पक्ष दोनोंको ही अपने समक्ष रखकर अतीत और भविष्यकी ओर देखता है। फिर उसे अपने कन्धोंपर पड़ी परम्पराकी बाँहोंका अहसास होते ही वह यकायक स्वयंको वर्तमान विसंगतियोंके मध्य पाता है। उसका कहना है कि 'आधुनिकता एक विशिष्ट बोध है जो समसामयिक जीवनकी सार्वभौमिक चेतनाके साथ भविष्यमें चरण रखे खड़ा है।' उसके लिए वर्तमान व्यर्थ हो जाता है। नगरबोध उसे एक घिसा-पिटा नारा लगता है जिसने अपना अस्तित्व खो दिया है। उसके प्रतिमान रूढ़ हो गये हैं। उसके विषय जड़ हैं। उसका बाह्य चौंकानेवाली उक्तियोंकी पकड़में अब नहीं आता। वह एक पुनरावृत्त होते हुए अभिप्रायोंमें जी रहा है। जहाँतक समूची सभ्यतासे रिश्तेकी बात है, हमारी चेतना केवल नगरमें ही व्याप्त नहीं, नगरके बाहर भी है। मगर आधुनिकता और महानगर (?), जो हममें अब हैं भी और नहीं भी हैं, ऐसी त्रासदी हैं जो दोनोंमें वस्तुतः नहीं हैं:

> कहाँ नहीं है मोर्चा कहाँ हो तुम
> तुम्हारे हाथ कौन-से हैं ऐ दोस्त,
> मेरे हाथ स्वीकारो!
>
> [मेरे हाथ स्वीकारो, पृ० ९८]

— श्याम परमार

६।१३ ईस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली–८

सन्दर्भ-सामग्री : आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएँ—राजीव सक्सेना (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली); नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ–गिरिजाकुमार माथुर (अक्षरप्रकाशन, दिल्ली), १९६६ तथा 'लहर' का कवितांक (अजमेर), १९६७।

क़िस्सा स्वेतलाना : भारतीय और अभारतीय नज़रोंमें :

सम्भवतः भारतमें विदेशियोंकी गतिविधिसे सम्बन्धित नियमोंमें ही कोई ऐसी चूक थी जिसे भारत-सरकार अबतक पकड़ न पायी थी और जिसका फ़ायदा उठाकर स्तालिनकी मोहक पुत्री न जाने कब भारतसे बाहर चली गयी""। सरकारी वर्ग, इस नाज़ुक मसलेपर—जिसके लिए सोवियत सरकार और भारत दोनों ही अप्रस्तुत थे—किसी प्रकारकी बहसमें पड़नेसे क़तई इनकार करता है।

— इण्डियन एक्सप्रेस

◆

अमरीकियोंने स्वेतलानाको भारतसे फुसला लेनेके बाद किसी यूरॅपीय देशमें ला पटकना तय किया। बहाना यह दिया कि ऐसा करनेसे अमरीकी-रूसी सम्बन्धोंको नुक़सान कम पहुँचेगा।""यहाँ यह बराबर महसूस किया जा रहा है कि अमरीकाको न तो स्वेतलानाके भाग्यकी चिन्ता थी और न ही रूससे अपने सम्बन्धोंकी फ़िक्र। वह तो भारत-रूस सम्बन्धोंमें एक गाँठ डालना चाहता था।

- हिन्दुस्तान टाइम्ज़ (मॉस्को लेटर)

◆

बोलते प्रतिबिम्ब

— पुष्पा खन्ना

यदि यह बात अच्छी तरह समझ ली जाये कि शरण देनेके लिए की गयी औपचारिक और अनौपचारिक प्रार्थनामें ज़मीन-आसमानका अन्तर है तो धुँधलका बहुत जल्द छँट जाता है""शरणकी माँगको अस्वीकार कर देना कोई ऐसी लज्जाजनक बात नहीं है। यह तो एक शासकीय निर्णय है जो पूर्णतः आजकी परिस्थिति तथा विदेशी नीतिकी व्यापक दिशापर निर्भर करता है।

— टाइम्ज़ ऑफ़ इण्डिया (सम्पादकीय)

विश्वस्त सूत्रोंने ज़्यूरिकसे सूचना दी है कि स्वेतलानाने दो स्विस बैंकोंमें बीस लाख डॉलरकी रकम अपने नाम जमा की है। हथियारोंसे लैस सी० आई० ए० के जवानोंसे घिरे एक स्विस बिलामें पैंतालिस दिन तक सी० आई० ए० के क्रेमलिन-दक्ष मनोवैज्ञानिकों-

ने उसके दिमाग़को यह घोंटकर पढ़ाया सिखाया कि वह किस तरह साम्यवाद व अपनी जन्म-भूमि सोवियत रूसकी निन्दा करे। उसे पन्द्रह दिन ईसाई-मठमें भी रखा गया ताकि उसमें भगवान् और ईसाई-धर्मके प्रति श्रद्धा जाग जाये····सूचना मिली है कि स्वेतलानाके मनमें स्वर्ण और आभूषणोंकी लालसा जाग उठी है। उसने असली मोतियोंके हार, हीरे-जड़ी अँगूठियाँ, सोनेकी घड़ियाँ व लखपतियोंवाले अन्य साज़ो-सामान ख़रीद भी लिये हैं।

– ब्लिट्ज़

◆

सारा जीवन अपने पिताकी भीषण छायामें बिताकर स्तालिनकी बेटीने अब उजाला पाया है। स्वेतलानाकी आयु अब बयालीस वर्षकी है। अभी कल ही उसके एक मित्रने उसके विषयमें 'छिन्नमूल, दुःखी और किसी हद तक विक्षिप्त' विशेषणोंका प्रयोग किया। इतिहासके पृष्ठोंपर नीचेकी ओर दी गयी संक्षिप्त टीकामें उसे कभी-कभार उड़ती-सी भूमिका मिली है—किन्तु वह भी शायद ही किसी सुखी सन्दर्भमें।

– टाइम्ज़ पत्रिका

◆

स्तालिन-पुत्री स्वेतलानाने भारतकी घरेलू, उलझी अचकचाहटोंमें एक नया पेंच डाल दिया है और शायद समाजवादी नेता डॉ॰ राममनोहर लोहियाको स्विट्ज़रलैण्डसे एक पत्र भेजकर भारतके कुछ मन्त्रियोंके लिए ख़तरा भी पैदा कर दिया है। –टाइम्ज़ (लन्दन)

◆

स्वेतलाना स्तालिनको, जबतक जो चाहे, बाहर रहनेकी पूरी स्वतन्त्रता है।····अपने पतिकी अस्थियां विसर्जित करनेके लिए उन्हें बाहर जानेका वीसा दे दिया गया था। अब वे कबतक विदेशमें रहेंगी—यह उनका व्यक्तिगत मामला है।

– मॉस्को रेडियो (टी॰ वी॰ समाचार-प्रसारण)

◆

पुस्तक स्वयंमें, बहुत ही अच्छी लिखी हुई, मूलतः राजनीतिसे दूर है, किन्तु फिर भी स्वेतलानाकी नज़रोंसे स्तालिनके शासनगत सर्वाधिक अन्धकारमय कुछ कालको समझनेकी दृष्टिसे विद्वानोंके लिए बहुमूल्य है।····एक विशेष हृदयविदारक घटनामें सोलह वर्षीया स्वेतलानाको लगे घातक मानसिक धक्केका वर्णन है—जब उसे पता चला कि उसकी माँकी मृत्यु, जिसे वह आजतक प्राकृतिक मृत्यु समझती थी, वास्तवमें आत्महत्या थी, और यहाँ वह अपने पिताका एक भयानक पक्ष उजागर करती है। अपनी पत्नीकी आत्महत्यापर जोसेफ़ स्तालिनके विक्षिप्त मनकी प्रतिक्रिया यह थी कि उसने तत्काल इस दुर्घटनाको अपने विरुद्ध एक षडयन्त्रके रूपमें लिया। – स्वेतलानाकी पुस्तकके प्रकाशक–श्रीकेनन

अपनी नज़रमें :

....अब उन्होंने मेरे पास पूरी जांच-पड़ताल करनेके लिए एक विशेष दूत स्विट्ज़रलैण्ड भेजा है। मेरा मतलब श्री छागलाके दूत श्री आर० जयपालसे है जिनसे मैंने स्विस-प्रतिनिधिकी मौजूदगीमें बातचीत की क्योंकि मुझे डर था कि मेरे शब्दोंको फिर तोड़-मरोड़ दिया जायेगा। ....लेकिन मुझे इन सबसे नफ़रत हो गयी है। जब मैं रोमके अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डेपर थी तो मुझे खबर मिली कि भारत-सरकार मुझे दिल्ली वापस बुलाना चाहती है। मैंने इनकार कर दिया क्योंकि मुझे पता था कि दिल्ली मॉस्कोके कहनेपर ऐसा कर रही है। प्रिय डॉ० लोहिया, मुझे बस इतना ही कहना है। – स्वेतलानाका पत्र डॉ० राममनोहर लोहियाके नाम।

■ ■

ज्ञानोदय
१९६७
प्राप्ति-स्वीकार

माई

[यह स्तम्भ ज्ञानोदयमें समीक्षार्थ प्राप्त समस्त पुस्तकोंकी स्वीकार-सूचीके लिए है। चुनी हुई पुस्तकोंकी समीक्षा यथासुविधा प्रकाशित की जायेगी।]

सूचना प्रसारण मन्त्रालय, दिल्ली

- ज्ञान-सरोवर

संकल्प प्रकाशन, राउरकेला

- पलकोंकी पाँखुरी : मधुसूदन साह

सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

- हमारे संस्कृत सूत्र : लक्ष्मीराम शास्त्री
- जीवन क्रान्तिकी दिशा : डॉ० गोविन्द दास
- मानवताके दीये : झवेरचन्द मेघाणी
- बोलती तस्वीरें : कृष्णा हठीसिंह
- जमनालालबजाजकी डायरी : रामकृष्ण बजाज
- प्रकाशकी छायामें : नरेन्द्रपाल सिंह
- प्रेम और प्रकाश : आन्द्रेजीद
- परमसखा मृत्यु : काकासाहब कालेलकर
- वेद मन्त्रोंके प्रकाशमें : सम्पूर्णानन्द
- भारतीय संयोजनमें समाजवाद : श्रीमन्नारायण
- रेंगनेवाले जीव : सुरेश सिंह

संक्रामक प्रकाशन, डालटेनगंज

- परिचय कंकालका : शम्भूनाथ प्रवासी

सीमान्त प्रहरी, मैसूरी

- गुरु गोविन्द सिंह विशेषांक : सम्पादक : हरवचन सिंह

घनश्याम व्यास : श्री पुरुषोत्तम नागेश ओकका प्रतिप्रश्न बहुत ही सामयिक एवं वास्तविक तथ्योंपर आधारित महत्त्वपूर्ण खोज है। मेरा विश्वास है, ऐसे कई तथ्य इतिहासके पृष्ठोंको वास्तविक स्थिति प्रदान कर, फ़रेबीकी दुनियाको हमारे समक्ष उपस्थित करेंगे। मानसिक स्थिति एवं यथार्थ दृष्टिसे परिपुष्ट रवीन्द्र कालियाकी कहानी अच्छी लगी। श्याम व्यास जमे हैं। कविताओंमें 'चेतनाके आर-पारगामी दालान' सहित सभी कविताएँ आधुनिक भाव-बोधकी परिचायिनी एवं ठोस धरातलपर विकसित हुई हैं।

—व्यास भवन, भाजीमण्डी इतवारी, नागपुर-२

●

ममता कालिया : इस बारके ज्ञानोदयका मुखपृष्ठ मुझे बहुत सुन्दर लगा, इतना कि टेबिल परसे अंक हटानेका जी अब तक नहीं हो रहा है। नाज़ली नूरके कुछ और रेखाचित्र अवश्य दें। वैसे उनकी रचनाएँ, विशेषकर कहानी, मुझे अस्पष्ट और उलझी हुई लगीं। और यह 'एक-दो-तीन पत्थर' हमें ज़रा पसन्द नहीं आ रहे।

– बम्बई-१६

●

वीरेन्द्रकुमार जैन : इधर ज्ञानोदयमें जो नयी चीज़ें पढ़नेको मिल रही हैं वे नयी दृष्टि दे रही हैं। 'कथन-उपकथन' की गम्भीरता भविष्यमें भी निभाते चलिए। सम्भव हो तो आगामी किसी अंकमें दास्तायवास्कीको प्रस्तुत करें। कविताओंका वर्गीकरण कभी-कभी आप जिन शीर्षकोंके अन्तर्गत करते हैं, वे काफ़ी ग़लत-से महसूस होते हैं। कवि-नाम ज़रूर बोल्ड होते हैं लेकिन रचनाएँ दीन। स्तर ऊँचा हो और बग़ैर सम्पादकीय संकेत-पट्टिकाके प्रकाशित हों। मई १९६७ अंकमें प्रकाशित सोमा वीराका पत्र व्यक्तिगत जान पड़ता है। प्रकाशनके लिए चुने जानेवाले पत्र, ज़रूरी नहीं, सम्पादकीय मेल-जोल भी ज़ाहिर करें। 'विधेयवादीकी चीख' (कैलाश वाजपेयी) कविकी पुरानी और सुपरिचित मनःस्थितिका प्रतीक है। 'मैंने फिर उकताकर अपना शीशा तोड़ दिया'……'ये अधनंगी शाम और ये भटका हुआ अकेलापन……' अकेलेपनसे आक्रान्त लोग बेहतर चीज़ें लिख रहे हैं।

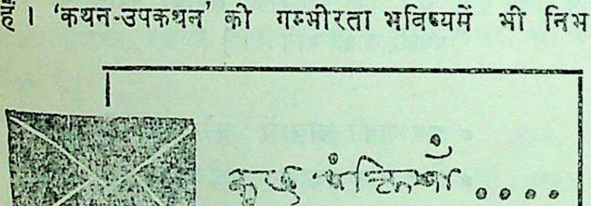

—२/७८, रूपनगर—दिल्ली-७

●

प्रेमलता वर्मा : ज्ञानोदयका मई अंक मिला। पहलेसे काफ़ी अच्छा और नया लगा। कई चीज़ें नयी। कई विषय जो छूटे रहते हैं साहित्यिक पक्षसे—इस बार पढ़नेको मिले। 'युवालेखन' के

अन्तर्गत नाज़ली नूरकी रचनाओंने उनके व्यक्तित्व समेत—आकर्षित किया, अपने नयेपन और विविधताके कारण, विशेषकर उनकी पेंण्टिगने जिसके वातावरणमें कुछ-कुछ फ्रेंच नाटककार 'आयोनेस्को' की कृतियोंका-सा आभास मिला। नाज़ली नूरकी रचनाएँ और उनका व्यक्तित्व एक भिन्न क़िस्मकी बात कहते हैं—जो उनके महिला रचनाकार होनेके नाते और महत्त्वपूर्ण हो जाती है (कमसे-कम मेरी दृष्टिमें)। वस्तुतः नाज़ली नूरकी रचनाओंमें आजकी परिस्थितिमें नये युवापनके भटकावका सही स्थिति-बोध करानेवाली चीज़ मिली—आखिर हम सबको भी तो एक सही ज़मीनकी तलाश है जहाँ खड़े रहनेपर मन विचलित न हो।

—सी० १२१, डिफ़ेन्सकालोनी, नयी दिल्ली-३

●

ओंकार ठाकुर : 'कीर्केगार्द' पर संक्षिप्त लेख प्रकाशित करके तुमने हिन्दीकी नयी पीढ़ीका बहुत हित किया है। आजका नया लेखक कीर्केगार्द या काफ़्काका नाम-भर याद कर लेता है या परम्परावादी कवि एलियटका नाम लेकर अपनी प्रगतिशीलता साबित करनेका सुख अनुभव करता रहता है और इस तरह यह ग़लतफ़हमी जीवन-भर उसका पीछा नहीं छोड़ती। लेकिन एक शिकायत है। तुमने 'कीर्केगार्द' पर इतना कम लिखा है कि उस महान् साहित्यकारके साथ न्याय नहीं हो पाया। आहत, दुःखी और बेहद विक्षुब्ध सोरेन अपनी अनुपम वैयक्तिकताके लिए जीवन-भर उदासीमें डूबा रहा। वह मुख्यतः चिन्तक था। 'सोरेन' अपने ही देशमें विरोध और उपेक्षाका पात्र रहा और जीवनमें वह एक कोई अर्थ खोजता हुआ मर गया। वह सोरेन ही था जो 'सच्ची ईसाइयत'का मखौल उड़ा सकता था। लेकिन यह कितने लोग जानते हैं कि वह सच्चे दिलसे ईसाइयतका पुजारी था या यूँ कहूँ, उसके सही रूपका पुजारी था। वह चाहता था कि उसकी प्रशंसा ग़लत जगहसे न हो। ग़लत आदमीसे न हो। रेजिना उसका अन्धकार-भरा पक्ष था। यह परिच्छेद उसके जीवनसे निकाल दें तो उसकी वैचारिक उत्तेजना और रचनात्मक प्रक्रिया सरलतासे समझी जा सकती है। 'कीर्केगार्द' की प्रख्यात कृति उस समय प्रकाशित हुई थी जिस साल 'कार्ल मार्क्स' का मेनीफ़ेस्टो प्रकाशित हुआ था। उसे मान्यता भी एक शताब्दीके उपरान्त मिली। यह भी एक विडम्बना नहीं तो क्या है? आज ठीक याद नहीं है, सम्भवतः अप्रैल या मई १९६५ में नाज़ली नूरसे बम्बईमें अचानक मुलाक़ात हुई थी। उनका विद्रोह उस वक़्त भी कम नहीं था। तब वे नयी-नयी विदेशसे आयी थीं। बातचीत ज़्यादा नहीं करती थीं। शायद जन्मसे वे फ़्रैंकोइजिप्शियन हैं। उन्हें देखकर 'दा बिंची'की याद आ जाती है। तुम्हें आयी? ताज्जुब है, विलियम बरो-जैसे आधुनिक लेखकके साथ रहकर भी वे अपनेको किसी भी वादसे कैसे दूर रख पायीं! आजके नये लेखककी तुम सहज कल्पना कर सकते हो।····कुन्याजीके अनुवाद पढ़कर सारी बातें याद आ रही हैं। अब लगता है, 'शताब्दी' में उनके अनुवाद सहज ही प्रकाशित कर सकता था। तब मैं चूक गया।

—१९१०, राइट टाउन, जबलपुर।

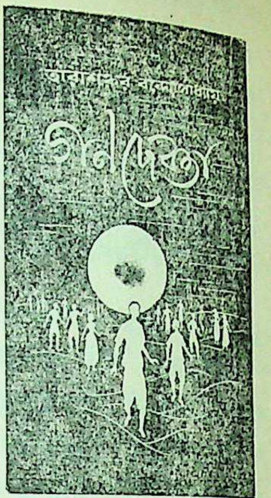

पुरस्कृत 'गणदेवता'

हुए लालची धनिक-वर्गके उभरनेकी प्रक्रियाका यथातथ्य चित्रण है। यद्यपि उपन्यासमें संक्रमणकालीन बंगालके ग्राम्य-जीवनका ही चित्रण है परन्तु प्रतीक रूपमें यह पूरे समकालीन भारतीय ग्रामोंका प्रतिनिधित्व करता है।

गणदेवता (प्रथम संस्करण) के निवेदनमें लेखकने कहा है कि "यह उपन्यास (गणदेवताका चण्डीमण्डप अंश) 'भारतवर्ष'में धारावाहिक प्रकाशित हुआ था लेकिन पृष्ठ ८० के बाद सारा उपन्यास फिरसे लिखा गया है। निवेदनमें एक अवान्तर कथा भी दी गयी है कि एक और श्रीताराशंकर बन्दोपाध्याय हैं, वे भी लेखक हैं और हमेशा लोग यह समझ लेते हैं कि मैं वही हूँ लेकिन वे 'श्री' हैं और मैं 'लाभपुर बीरभूम'का निवासी। श्रीताराशंकर बन्दोपाध्यायने दो किताबें लिखी हैं—'श्रीमयी' और 'अवमानिता मानवी'। वे 'प्रवर्तक'में लिखते हैं और मैंने कभी उसमें नहीं लिखा।" भूमिकाका यह अंश ताराबाबूकी सहज विनोदप्रियताका भी उदाहरण है।

उपन्यासकार श्रीताराशंकर बैनर्जीका जन्म २५ जुलाई १८९८ को लाभपुर, जिला बीरभूम पश्चिम बंगालके एक जमींदार-परिवारमें हुआ था। आप स्व० श्री हरिदास बैनर्जीके ज्येष्ठ पुत्र हैं। ताराबाबू केवल आठ वर्षके ही थे जब इनके पिताका देहान्त हो गया। इनका पालन-पोषण उनकी माता श्रीमती प्रभावती देवीके संरक्षणमें हुआ, जो अभी तक जीवित हैं।

अपने गांवके अँगरेजी हाई स्कूलसे ही तारा बाबूने मैट्रिक परीक्षा पास की। स्कूल-जीवनके अन्तिम वर्षोंमें इनका सम्पर्क क्रान्तिकारियोंसे हो चुका था। मैट्रिक करनेके बाद आपने कलकत्ताके सेण्ट जेवियर्स कॉलेजमें प्रवेश किया। यहाँ आकर क्रान्तिकारियोंसे सम्पर्क और बढ़ा तथा फलस्वरूप इन्हें कॉलिजकी पढ़ाई छोड़कर अपने गाँवमें नजरबन्द होना पड़ा। गाँवमें यों तो इनका काम अपनी छोटी जमींदारीकी देखभाल करना था, मगर इनका मन लेखन-कार्यमें ही रमता था। अतः इन्होंने इसी क्षेत्रका चयन कर लिया, और कविताएँ तथा नाटक लिखने लगे।

सन् १९२८ में तारा बाबूने कहानियाँ लिखनी शुरू कीं। आपकी पहली कहानी 'कल्लोल' नामक पत्रिकामें प्रकाशित हुई थी।

फिर राष्ट्रीय आन्दोलनने इन्हें खींचा और आप स्थानीय काँग्रेस-नेताके रूपमें जेल चले गये। जेल जानेके पहले वे छोटा-सा उपन्यास 'चैताली घूरनी' (चैतका तूफ़ान) भी लिख चुके थे, जो इन्होंने बादमें नेता जी सुभाषचन्द्र बोसको समर्पित किया। नेताजीसे इनका परिचय नया-

नया ही हुआ था। जेलमें रहते हुए आपने जेल जीवनपर ही एक अन्य उपन्यास लिखा।

ताराबाबू इस समय तक सौ से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं, जिनमें-से ४०से अधिक उपन्यास हैं। बाक़ी मुख्यतया कथा-संग्रह और नाटक हैं। सफल उपन्यासकार तथा कहानीकार होनेके साथ-साथ आप अच्छे नाटककार भी हैं। इनके दो नाटकोंका तो कलकत्ताके रंगमंचपर बराबर प्रदर्शन होता रहता है। आपकी मुख्य कृतियोंके नाम हैं :

(क) कथा-साहित्य : १. धात्री देवता, २. कालिन्दी, ३. कवि, ४. गणदेवता ('चण्डीमण्डप' और 'पंचग्राम') ५. हसुली बांकेर उपकथा, ६. नागिनी कान्येर काहिनी, ७. विचारक, ८. आरोग्य निकेतन, ९. सप्तपदी, १०. राधा, ११. मंजरी आपेरा, १२. फागुन, १३. तामस तपस्या, १४. राई कमल, १५. कालवैसाखी, १६. चैताली घूर्नी, १७. चिरंतनी आदि (ख) नाटक : १. द्विपुरुष, २. कालिन्दी। वैसे इनके अनेक उपन्यासोंके नाट्यरूपान्तर हो चुके हैं।

'हाँसुली बाँकेर उपकथा' नामक उपन्यासपर ताराबाबूको १९४७ में 'शरतचन्द्र स्मृति पुरस्कार' भेंट किया गया था। १९५५ में आपके 'आरोग्य-निकेतन'को 'रवीन्द्र पुरस्कार' मिला। १९५६ में इसी उपन्यासपर साहित्य-अकादेमी-पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् १९५६ में भारत-सरकारके दो प्रतिनिधियोंमें-से एकके रूपमें ताराबाबूको चीन भेजा गया, किन्तु रास्तेमें ही बीमार पड़ जानेके कारण आपको रंगूनसे स्वदेश लौट आना पड़ा। फिर अगले ही वर्ष चीन-सरकारके निमन्त्रणपर आप वहाँ गये और एक महीने तक चीनका दौरा लगाया। विशिष्ट साहित्यिक उपलब्धियोंके कारण आपको सन् १९५९ में कलकत्ता-विश्वविद्यालकी ओरसे 'जगत्तारिणी पदक' प्राप्त हुआ। एशियाई लेखक सम्मेलन (१९५८) की तैयार समितिकी बैठकमें भाग लेनेके लिए आप मास्को भी गये थे, तथा फिर उसी वर्ष ताशकन्दमें हुए अफ़्रोशियाई-लेखक सम्मेलनमें भारतीय शिष्ट-मण्डलके नेता बनाकर भेजे गये।

सन् १९५१ से १९६० तक आप पश्चिम बंगाल विधान-सभाके मनोनीत सदस्य रहे। फिर १९६० से १९६६ तक राज्य-सभाके मनोनीत सदस्य। १९५८ में अखिल भारतीय लेखक सम्मेलनके मद्रास-अधिवेशनका सभापतित्व किया। इन दिनों आप एक बृहद् उपन्यासपर काम कर रहे हैं जिसकी पृष्ठभूमि है—१७९९ से १९५३ तक बंगालकी जमींदारी-प्रथा।

• भारतीय ज्ञानपीठ :

पुरस्कार-प्रदायिनी-संस्था भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना सन् १९४४ में श्रीशान्तिप्रसाद जैनने की थी। ज्ञानपीठ-प्रकाशनोंकी संख्या अब ५०० से ऊपर हो चुकी है। इनमें संस्कृत, प्राकृत, पाली, अर्धमागधी, तमिल एवं कन्नड़की प्राचीन पाण्डुलिपियोंको वैज्ञानिक पद्धतिसे सम्पादित कर प्रकाशनमें लाये गये शोधग्रन्थ, तथा सुप्रसिद्ध एवं नवीन लेखकोंके मूल हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंसे अनूदित साहित्यिक ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

वार्षिक साहित्यिक पुरस्कारकी प्रवर परिषद्के अध्यक्ष हैं डॉक्टर सम्पूर्णानन्द। परिषद्के अन्य सदस्य हैं—काका साहब कालेलकर, डॉ० आर० आर० दिवाकर, डॉ० हरेकृष्ण मेहताब, डॉ० नीहार रंजन रे, डॉ० गोपाल रेड्डी, डॉ० कर्णसिंह, डॉ० वी० राघवन, श्रीमती रमा जैन तथा श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ये अन्तिम दो ज्ञानपीठका प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रीमती रमा जैन ज्ञानपीठकी अध्यक्षा हैं तथा श्रीलक्ष्मीचन्द्र जैन इसके मन्त्री।

(पृष्ठ १६ का शेष : कथन-उपकथन)

एण्ड रोज़ेज़' रक्त-मांस और गुलाबोंकी भाषा—जब कि नं० १३ की कविता अनेकानेक रूपाकारोंमें परिवर्तित होती हुई सम्पूर्तिकी स्थितिमें आ गयी। प्रारम्भिक विचारका आकार यों था :

कुछ दिन होते हैं ऐसे, जब सागर, वीणा की भाँति
ढालू चट्टानों के नीचे सपाट पसरा रहता है।
लहरें, सूरज की ताम्बीली चमक से, तार की तरह जलती हैं।
[मरमर करता हुआ नील,
प्रत्येक चुप]
जिसके बीच रिक्त स्थानों में
आकाश (खेत और) झाड़ी, और खेत और नाव
की प्रतिच्छवियाँ, मध्याह्न के विशाल आनन-सी बसी हुई हैं।
[लेटी हैं]
जब गरमी थक जाती है तो शायद स्थल के अन्दर से
मध्याह्न-वेला एक लम्बी उसाँस भरती है।
(जैसे हाथ, तारों के ओर-छोरों को छूता जिससे वे झनझनाते हैं)
कोमल हाथ की भाँति जो तारों के आर-पार संचालित होते हैं
(तब वह झनझनाहट)
उन रिक्त स्थानों में,
स्थल और आकाश से आती
प्रत्येक पक्षी की कूज, कुत्तों की भौंक, मनुष्य-पुकार
घोड़ा-गाड़ी की चरमराहट
मध्याह्न के सम्पूर्ण संगीत के साथ
इस झनकार में समाहित हो जाते हैं।

इस रूपाकारमें कविता ऐसी ही है, जैसी कि स्मृतिकी आँखोंमें साफ़-साफ़ दिखाई देता चेहरा, जिसकी प्रत्येक रेखा और नाक-नक्श का निरीक्षण यदि मानसिक या वैचारिक स्तर पर किया जाये तो धुँधलाता प्रतीत होता है।

प्रश्नकर्त्ता : इस कवितामें समुद्र है—समुद्र जो चट्टानोंके नीचे फैला हुआ है। चट्टानोंकी चोटियोंपर खेत हैं, झाड़ियाँ हैं, घर हैं। गाड़ियोंको घसीटते हुए घोड़े हैं।

स्पैण्डर : हाँ। वे घोड़े गलियोंमें हैं, और कुत्ते तटसे और भी दूर अन्दर शहरमें भौंकते हैं, घण्टियाँ कहीं दूर बजती हैं। एक सुहावने गरमीके दिन जब सागर अपने तटको अपनेमें समोता-सा प्रतीत होता है तो ऐसा लगता है जैसे समुद्रका तट, झाड़ियों, गुलाबों, घोड़ों और मनुष्योंसे पटा पड़ा है जब कि यह सब समुद्रसे बहुत ऊपर हैं।

प्रश्नकर्त्ता : बहुत सुन्दर कल्पना है। इन पंक्तियोंमें भी तो कहा गया है कि छोटी-छोटी झंकृत चमकती लहरें ऐसी हैं, जैसे वीणाके तार, जिनपर सूर्यका प्रकाश पड़ रहा है और इन तारोंके बीचकी खाली जगहपर तटका प्रतिबिम्ब है।

स्पैण्डर : और यह भी, कि ऐसे दिन, वह स्थल, जिसकी छाया समुद्रमें पड़ रही है, समुद्रके भीतर इस तरह प्रविष्ट हुआ लगता है, जैसे वह समुद्रके नीचे स्थित हो। वीणाके तार, जैसे दृश्यगत संगीत हों, जो जल और स्थलको एकाकार कर रहे हैं।

प्रश्नकर्त्ता : क्या इन पंक्तियोंमें अंकित समुद्र-दृश्यके प्रत्यक्ष वर्णनके पीछे कुछ और भी है जो कवि परोक्ष रूपसे कहना चाहता है ?

स्पैण्डर : इसी दृश्यको, दूसरी दृष्टिसे देखनेपर इसका प्रतीकात्मक मूल्य प्रकट होता है। समुद्र—मृत्यु और 'अनन्त'का प्रतीक है और स्थल प्रतीक है ग्रीष्म ऋतु एवं मनुष्यकी एक पीढ़ीके लघु जीवनका, जो अनन्तके समुद्रमें मिल जाती है। किन्तु कवि अपनी कल्पनाके इस पक्षसे अवगत होते हुए भी इसको अभिव्यक्त करने या उसीमें उलझनेसे बचता है। निजी दिवा-स्वप्नका प्राणान्वित सृजन उसका काम है। सृजनमें मूल्य और उद्देश्य स्वयम् बोलने चाहिए। कविके मनमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि उसे निश्चित रूपसे प्रत्यक्ष क्या कहना है, और क्या अनकहा परोक्ष रखना है। अनकहा अन्तर्निहित अर्थ—कविताकी लय, ध्वनि और संगीत एवं उसके सर्वांगीण रूपसे उद्भासित होता है।

प्रश्नकर्त्ता : आपने अपनी उद्धरित कविताके प्रथम रूपको कई बार बदला। अन्तिम रूप क्या था ?

स्पैण्डर : कविताकी ये पंक्तियाँ कि 'लहरें, सूरजकी ताँबेकी-सी चमकसे, तारकी तरह जलती हैं' समुद्रके चित्रको संगीतके विचारसे जोड़ती हैं। यह कविताकी कुंजी-पंक्ति है। कविताके अन्तिम रूपमें वह इस प्रकार आयी है :

> कुछ दिन होते हैं ऐसे, जब प्रसन्न-मन
> समुद्र, स्थल के नीचे
> बिन-छिड़ी वीणा-सा लेटा रहता है।
> मध्याह्न-वेला, सारे निःस्वन तारों पर
> स्वर्णलेपन कर
> उन्हें नयनों के प्रज्वलित संगीत से झंकृत
> कर देती है।
> उन मृदु-झंकृत लपटों के बीच के दर्पण-
> मय पथ पर,
> गुलाबों, घोड़ों और मीनारों से पटा
> समुद्र-तट
> लहर-चिह्नित बालू के ऊपर चित्रित हुआ,
> जल में विचरण करता है।

प्रश्नकर्ता : कविता-रचनामें किया गया यह परिश्रम अद्भुत रूपसे सफल हुआ है किन्तु स्वतःप्रेरणाके बिना तो सृजन असम्भव है। कविता-रचनामें नैसर्गिक प्रेरणाका क्या स्थान है ?

स्पैण्डर : कविता-रचनामें, स्वतःप्रेरणाके अतिरिक्त, शेष सब परिश्रम और काम-ही-काम है। यह बात और है कि 'परिश्रम या काम'

का अंश द्रुतगतिसे कुछ ही क्षणोंमें एक ही झटकेमें हो जाये, या कि वह धीमी गतिसे मंज़िल-दर-मंज़िल विकसित होकर पूरा हो। स्वतःप्रेरणा कविताका प्रारम्भ है और अन्तिम लक्ष्य भी। वह पहला विचार है, जो कविके मानसमें उपजता है, और वह अन्तिम विचार है, जिसे वह शब्दों द्वारा प्राप्त करता है। मेरे स्वतःप्रेरणाके अनुभवमें एक पंक्ति, एक शब्द या एक विशेष वाक्य-विन्यास झलकता है—या कभी-कभी एक अस्पष्ट, धुँधला-सा विचारका मेघ मनपर छा जाता है, जिसको घनीभूत कर शब्दोंकी रिमझिम-द्वारा बरसानेको जी चाहता है।

'ए लैंग्वेज ऑफ़ फ़्लेश एण्ड रोज़ेज़' पंक्तिके साथ-साथ बहुत-से अनुभव और विचारोंका घटाटोप मनपर छा जाता है जो सम्भवतया वर्षों बाद कविता-रूपमें बरसे। इस पंक्तिकी प्रेरणाका स्रोत एक घटना या स्थिति है: मैं ब्लेक कण्टरीमें-से गुज़रती हुई ट्रेनके एक कॉरीडोरमें खड़ा था। मेरी आँखोंके सामने एक भू-दृश्य था, जहाँ पेट्रोल निकालनेके कुएँ खुदे हुए थे, जहाँ कृत्रिम पर्वत निर्मित थे, जैसे धरतीकी देहपर पीले दाँत-लगे ज़ख़्म हों। ऐसा लगता था जैसे किसी भयानक जंगली जानवरने या दैत्यने शिकार या खज़ानेकी खोजमें, धरतीकी खाल उधेड़ कर, उसे चीर-फाड़ डाला हो। इसी समय वहाँ खड़े एक अन्य व्यक्तिने जैसे मेरे मनकी बात कह दी—'यहाँ सब कुछ मनुष्य-निर्मित है।' इसी क्षण मेरे मस्तिष्कमें यह पंक्ति चमक उठी —'ए लैंग्वेज ऑफ़ फ़्लेश एण्ड रोज़ेज़।' मेरा विचारका क्रम इस प्रकार था

> "यह औद्योगीकृत भू-दृश्य जहाँ मालिक और श्रमिक, दोनों, जीवन की इस चर्या की जकड़में, इस तरह फँस गये हैं, जैसे कि यह भी ईश्वर-द्वारा निर्मित हो,—वास्तवमें, मनुष्य की इच्छा-द्वारा निर्मित है। इसी प्रकार जो भी दुनिया हमने निर्मित की है, जिसमें बिजली है, तार हैं, गन्दी बस्तियाँ और समाचार-पत्र हैं, हमारी ही आन्तरिक इच्छाओं और विचारों की अभिव्यक्ति हैं। किन्तु ऐसा होते हुए भी, हमारी यह भाषा, हमारे वशसे बाहर हो गयी है। यह अत्यन्त उलझी, उत्तरदायित्वहीन, सनकी बड़बड़ाहट है।"

इस विचारने मुझे बहुत पीड़ित किया। मैं सोचने लगा कि यदि मानव-कृत दृश्य, वस्तु या तथ्य, वास्तवमें शब्दों ही जैसे हों, तो भाषाका वह क्या स्वरूप है जिसकी ओर हम उन्मुख हैं? इन विचारोंकी शृंखलाके उत्तरके रूपमें यह पंक्ति मेरे मनमें कौंधी—'ए लैंग्वेज ऑफ़ फ़्लेश एण्ड रोज़ेज़।'

प्रश्नकर्ता : जब विचारोंकी शृंखला, प्रेरक स्थितिसे उत्पन्न प्रतिक्रिया आदि सब मानसमें है, तो प्रेरणा-पंक्तिको कविताके रूपमें पूरा करनेमें असमर्थता कहाँ है?

स्पैण्डर : जो कविता मैं लिखना चाहता हूँ, उसको समझाना कितना सुगम है। काश,

कविता लिखना भी ऐसा ही होता ! लिखनेके अर्थ हैं, इन सब अमूर्त विचारोंके प्रतिविम्बित अनुभवोंको जीना—उन कल्पित अनुभवोंको जीनेका प्रयत्न अनन्त धैर्य और जागरूकताकी अपेक्षा रखता है ।

प्रश्नकर्ता : इसके अर्थ हैं कि कविकी स्मरण-शक्ति भी विशेष प्रकारकी होती होगी जो वर्षों पहले प्राप्त प्रेरणाको मनमें इस प्रकार सुरक्षित रख सकती है कि वह पुनः जाग्रत हो सके ।

स्पैण्डर : अवश्य । कवि वह व्यक्ति है, जो कुछ संवेदन-प्रक्रियाओंके प्रभावको, जिसकी अनुभूतिमें से वह गुजर चुका है, कभी नहीं भूलता । वह बार-बार उन अनुभवोंको जी सकता है, उसी तीव्र एवं नवीन अनुभूतिके साथ, जैसा कि प्रारम्भमें जिया था । इसलिए यद्यपि टेलिफ़ोन-नम्बर, पते-ठिकाने या देखे हुए चेहरोंके लिए मेरी स्मृति अति क्षीण है किन्तु कुछ अनुभवगत संवेदनाएँ जो किन्हीं अनुसंगोंमें मेरे चारों ओर घनीभूत होकर जम गयी हैं, मेरी स्मृतिमें-से तनिक भी नहीं फिसलतीं । इसी आधारपर पुरानी अधूरी कविताओंके खण्डित अवशेष तत्काल ही मुझे उसी प्रारम्भिक संवेदनशील अनुभवोंमें पहुँचा देते हैं, जहाँसे वे संवेदनाएँ उपजी थीं और जिन परिस्थितियोंमें वह ग्रहण कर लिखी गयी थीं ।

प्रश्नकर्ता : किन्तु अतीतकी अनुभूत संवेदनाओंकी स्मृतिमें डूबनेके स्थानपर कल्पना-जनित संवेदनाओंकी सृष्टि करना क्या काव्य-रचनाके लिए अधिक सुगम नहीं ?

स्पैण्डर : कल्पना भी तो स्मरण-शक्तिका ही अभ्यास है । जिस वस्तुसे पहलेसे ही हम परिचित नहीं, उसकी कल्पना ही कैसे कर सकते हैं । हम अपने गत अनुभवको स्मरण-शक्ति-द्वारा पुनर्जीवित कर, किसी भिन्न स्थितिमें प्रयुक्त करते हैं—यही कल्पना-क्षमता है ।

प्रश्नकर्ता : आप कविता-रचना किसी आन्तरिक विवशतासे करते हैं या....?

स्पैण्डर : मेरे विचारसे तो आन्तरिक विवशता या कविता-लेखनमें विश्वास या अनुभूतियोंकी तीव्रता कवियोंकी जीवित रखती है ।

मैं जब नौ वर्षका था, तब मैं लेक डिस्ट्रिक्ट गया, जहाँ मेरे माता-पिताने कवि वर्डस्वर्थकी कुछ कविताएँ मुझे सुनायीं । तभी से मुझे लगा है कि कविका कार्य उतना ही पवित्र है, जैसे सन्त-साधुका । कवि महत्त्वाकांक्षी होते हैं, किन्तु उनकी महत्त्वाकांक्षा यही होती है कि वे अपने अन्तरंग अनुभवों, सूक्ष्मतम संवेदनाओं, गहरी प्रतीतियों और अत्यधिक ईमानदारियोंके दर्पणमें जिस रूपमें प्रकट हों उसी रूपमें स्वीकारे हों । वे इन विषयोंमें धोखा नहीं दे सकते क्योंकि कवितामें अभिव्यक्त उत्कर्ष-भावनाओंसे कविका व्यक्तित्व प्रकट नहीं होता, बल्कि कवितामें निहित संवेदनशीलता, भाषा-संयम, लय और संगीत, कविके व्यक्तित्वको प्रतिच्छवित करते हैं । इसलिए कविता-रचनाका आह्वान, अपनी ईमानदारी और उद्देश्यके प्रति समर्पण-भावनामें पूर्ण विश्वास, कविके निष्ठावान होनेके

प्रमाण हैं। इस निष्ठाके साथ-हीं-साथ, गहरी विनम्र भावना भी आवश्यक है। उसे अपनेको पूर्णतया निरावृत करके अपनी सम्पूर्ण बोध-क्षमता, अनुभूति-गहनता और कुशलताके साथ तत्पर होकर कालके निर्णयात्मक विधानके समक्ष खड़ा होना है।

प्रश्नकर्त्ता : यह तो हम कविता-रचनासे उठकर कवि-व्यक्तित्वके दर्शनपर पहुँच गये।

स्पैण्डर : कविता-रचनाकी बात इस दर्शनके बिना खोखली-सी लगती है। मेरी डायरीके एक पन्नेपर लिखा है: 'मुझे वह विनम्रता और विवेकशीलता प्रदान करो कि मैं स्वर्जित सन्तोषकी गहराई और समृद्धिमें अकेला रह सकूँ; तिरस्कार या अस्वीकृतिका एक शब्द भी मुझे सन्देहमें न डाल सके।'

प्रश्नकर्त्ता : आपने कहा कि कविका व्यक्तित्व कविताकी लय और संगीतमें सचाईसे झलकता है। कविता और संगीतका अन्तरंग नाता आपकी अनुभूतिमें किस प्रकार संयोजन पाता है।

स्पैण्डर : नैसर्गिक प्रेरणा और गीत, दोनों अन्तिम अकाट्य गुण हैं, जो कविको अन्य व्यक्तियोंसे पृथक् अस्तित्व प्रदान करते हैं। प्रेरणा, वह अनुभूति या मनःस्थिति है, जिसमें व्यक्तिको एक पंक्ति या विचार प्राप्त होता है या वे क्षण जिनमें वह उत्तम रचना करता है। किन्तु गीतको समझाना अधिक कठिन है।

किसी समय जब मैं अर्धचेतन या अर्ध-सुप्त अवस्थामें लेटा रहता हूँ, तो मुझे बोध होता है जैसे शब्दोंका प्रवाह मेरे मानसमेंसे गुज़र रहा है — उनका कोई अर्थ नहीं है, पर उनमें ध्वनि है। यह ध्वनि आवेश-ध्वनि होती है या वे स्वर किसी जानी-पहचानी कविताका स्मरण दिलाते हैं। रचना करते समय, उन शब्दोंका संगीत, जिन्हें मैं रूप-आकार दे रहा हूँ, मुझे शब्दोंसे बहुत दूर ले जाता है। मेरी चेतनामें आ बैठते हैं, एक लय, एक नृत्य, एक तूफ़ान — जो शब्दोंसे शून्य होते हैं।

प्रश्नकर्त्ता : पूरी कविता लिखी जानेके बादकी अनुभूति कैसी होती है?

स्पैण्डर : निःसन्देह, जिस समय कविताकी परिणति सफलताको प्राप्त होती है, तो एक प्रगाढ़ शारीरिक उत्तेजना, एवं विमुक्ति और चरम आनन्दकी भावनाकी अनुभूति होती है। कविताओंने सबसे बड़ा सुख मुझे उस समय दिया है जब मैंने अपनी कुछ पंक्तियोंको दूसरोंके द्वारा उद्धृत होते सुना है, और यह बिना पहचाने कि वह मेरी है, मित्रसे मैंने कहा है: 'कितनी बढ़िया है — कितनी मनभावनी!' ■■

६७८—ब्लॉक 'ओ'
न्यू अलीपुर, कलकत्ता-५३

पठनीय और संग्रहणीय

नये प्रकाशन

• •

■ कितनी नावों में कितनी बार अज्ञेय	४.००
■ परिवेश मोहन राकेश	४.००
■ मेपल प्रभाकर माचवे	३.००
■ पुरातत्त्व का रोमांस भगवतशरण उपाध्याय	६.००
■ माया-दर्पण श्रीकान्त वर्मा	३.५०
■ काठ का सपना ग. मा. मुक्तिबोध	३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

Price Annual Rs.15/-per copy Re.1/50.-for abroad extra postage.18P.This CopyRe1.50 June 1967

31 AUG 1967
5 7 JUN 1967
18 SEP 1967

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा (रेयन ग्रेड)	**सोडा ऐश**
हाइड्रोक्लोरिक एसिड	**सोडा बाईकार्ब**
ब्लीच लिकर	**कैल्सियम क्लोराइड**
साहूपुरम् में डाकखाना : अरुमुगनेरी (तिन्नेवेली जिला)	**नमक** धांगध्रा में (गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेन्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०
तार : सोडाकेम, बम्बई

License No. 61. Licensed to post without prepayment of postage REGD. No. L-2036

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी की ओर से जगदीशप्रसाद अग्रवाल द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित।

ज्ञानोदय

अगस्त १९६७

अगस्त ६७

12-2-68

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं माणिक-
चन्द्र ग्रन्थमालाके अन्तर्गत

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

●

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

संस्थापक
शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

ज्ञानोदय
आधुनिक भावबोध, कला-संचेतना
और नवीनताका प्रतिनिधि।…

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन। वर्ष : उन्नीस : : अंक : दो। अगस्त सड़सठ। मूल्य : डेढ़ रुपया। वार्षिक : पन्द्रह रुपया।…

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी। नौ, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-सत्ताईस।

[**नन्दकिशोर मालवीय :** नववर्षांकका मुखपृष्ठ देखकर अब मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि मुखपृष्ठके विषयमें ज्ञानोदय 'रिकार्ड' की स्थिति तक पहुँच गया है।

कहानियाँ प्रायः सभी मनको छू गयीं। हाँ, सन्हैयालाल ओझाका लेख अवश्य ज्ञानोदयकी लीकसे हट गया है।—जबलपुर]

●

[**माताचरण मिश्र 'दीपक' :** 'कोर्कगार्द यदि कवि होते ?' समझमें नहीं आता, व्यर्थकी अटकलें लगानेसे क्या फ़ायदा है ? हम उन्हें वैसा ही स्वीकार क्यों न करें जैसा वे हैं। मैं यदि कैलाश वाजपेयीजीसे पूछ लूँ (तो यह अपराध न होगा) कि लेखककी जगह यदि वे साइण्टिस्ट होते तो क्या होता ? समझता हूँ, कमसे कम इन्फ़ेक्शनकी एकाध बीमारी फैलानेमें तो वे समर्थ ही हो चुके होते।

रमेश कुन्तल 'मेघ' प्रभावशाली हैं। गंगाप्रसाद विमल बहुत नवीनता लेकर आते हैं, यह इनका विशिष्ट गुण है। अमृता प्रीतम, सुदर्शन चोपड़ा और मेहरुन्निसा परवेज़ कहानियोंमें प्रभावशाली हैं। भवानीप्रसाद मिश्रकी बड़ी कविता बहुत अच्छी लगी। भँवरमल सिंघी भी 'कला, अ-कला और अश्लीलता'पर ज्ञानवर्धक हैं। अन्य सामग्रियाँ भी अच्छी हैं।

विदेशी तराज़ूपर तोले गये डॉ० हुसेनको मेरा हार्दिक अभिनन्दन क्योंकि हमारे पास अपना कोई तराज़ू नहीं है और हम अपनी अधिकतर सारी आवश्यकताएँ दूसरोंसे माँग-माँगकर पूरी कर लेते हैं।—बिलासपुर]

(डॉ० हुसेनका चुनाव भारतीय राजनीतिकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। वैदेशिक सम्बन्धों और प्रतिक्रियाओंकी जानकारीकी दृष्टिसे यह स्तम्भ नियोजित है। अपनी दृष्टिके अभावका प्रश्न नहीं है—सम्पादक)

●

[**माधव शर्मा :** जूनका ज्ञानोदय देखा। अनेक महीनों बाद। लगा कि निरर्थककी बौद्धिकता सार्थकके सामने पराजित हुई है। जीवन धड़कता है। अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार इस अंकपर छा गये हैं। यह समीचीन और नितान्त आवश्यक भी है। बधाई। श्रीकान्त वर्माकी 'सूचना' स्वगत-कथन है। कृष्णबलदेव वैदका 'त्रिकोण' यथार्थमें समाजका चतुर्भुज है। पाठक पढ़े कैसे ?—चूरू]

●

[**अजितकुमार :** मेरे मित्र श्री कृष्णगोपाल वर्माकी राय है कि काफ़्काके व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवनका जो संक्षिप्त विश्लेषण आपने किया है, वह शीर्षकके बनावटी

होनेके बावजूद भी, इस अंकको 'हाइब्रा लुक' देते हुए भी, अपने-आपमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह माननेसे इन्कार नहीं किया जा सकता गो कि हम करना चाहते हैं कि अँगरेजीके माध्यमसे पाठकों और लेखकोंको विदेशी साहित्यसे परिचय व दृष्टिकोण नहीं प्राप्त होना चाहिए। लेकिन विदेशी साहित्यसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध जब एक अनुवादक केवल 'डिप्लोमैटिक' स्तरपर न कराकर, एक सहयोगी एवं आत्मीय मित्रको तरह अपरिचित साहित्यसे परिचय करा दे, जो कि हाल ही में हिन्दीमें काफ़ी ज़ोरोंसे हो रहा है तो श्री वर्मा लेखकसे ज़्यादा अनुवादक मित्रके प्रति विशेष रूपसे आभारी रहना चाहेंगे। आभार-प्रदर्शन करनेके ऐसे मौक़े अकसर नहीं मिलते। 'काफ़्का' वाला लेख एक ऐसा मौक़ा है और वे उसके लिए आपके प्रति आभारी हैं। वे उस लेखको अंककी सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं।—दिल्ली]

●

[ओंकार ठाकुर : तुम्हारा लेख कमसे-कम छह दफ़ा पढ़ा होगा और मुझे लगा है हर बार कि तुम काफ़्काकी जिजीविषाको काफ़्काई दुनिया समझ बैठे। भयानक सन्त्रास और मांसल आकर्षण काफ़्काको ऊँचा नहीं उठाते। दरअसल वह आखिरी साँस तक विरोधाभासोंकी ज़िन्दगी जीता रहा। उसने अपने लिए खुद एक दुनियाकी सृष्टि की थी—सन्त्रास, पीड़ा, सम्बन्ध-सूत्रोंसे परे। तुम्हें उसके मादक पत्रोंके अंश क्यों प्रिय लगे—वे काफ़्काकी जीनेकी शक्ति और लेखककी ताज़गीसे लबालब भरे हुए थे। तुम शायद वह लिखना भूल गये कि काफ़्का सिर्फ़ इसलिए जर्जरित होकर भी तमतमाया रहा कि वह आदमीके सन्त्रासमें भी सार्थकताके बीज खोजता रहा। वह जीवनके मैटाफ़िजिकल अंशोंको मुट्ठीमें बन्द करके आदमीकी बाहरी दुनियामें मिला देनेका प्रयत्न करता रहा। तुम्हें मालूम तो है कि कामूने भी 'द ट्रायल'के नायक जोजेफ़ 'के' को काफ़्काके माँस और रक्तका समीकरण कहना पसन्द किया था। जोजेफ़ के० अपना अपराध नहीं जानता। वह जजका अपमान करके अपराधी बन जाता है। यानी काफ़्काने अपराधकी सार्थकताकी ओर इंगित कर दिया। यहाँ तुम अनगिनत प्रश्न लगा सकते हो। कामूने भी ऐसे प्रश्न उठाये थे। लेकिन वह इतना भर मान सका कि 'ट्रायल' लिखनेके कारण ही काफ़्का बादमें 'केसल' लिखनेकी तीव्रता हासिल कर सका था। और भी व्याख्याएँ तुम दे सकते हो। दोगे।

कुछ पंक्तियाँ....

'द फ़ास्टिंग शो मेन' '(काफ़्का) कहानी तुमने ज़रूर पसन्द की होगी। क्योंकि काफ़्काके जीवनका वह भी एक पहलू है—जब मनुष्य टूट-

कर चीख उठता है, लेकिन एक अन्तरालके बाद उसे अपनी ग़लती समझ आती है। वह आत्महन्ता होते बच जाता है। सारा मैटर जिस ढंगसे प्रस्तुत किया है—वह ईर्ष्याका विषय है। यही आधुनिक चेतनाकी सजगता तुम्हारे लेखनमें जगह-जगह मुखर बन गयी है। अच्छा किया, काफ़्काके साथ तुमने न्याय किया। लेकिन 'मिलेना' के प्रति तुम्हारा मोह कुछ ज़्यादा ही है। हाँ, कुछ नहीं वाली बात स्पष्ट नहीं हो पायी—तुम इस तथ्यको जल्दीमें घसीट गये। काफ़्का 'कुछ नहीं' को ही तो अपरिहार्य मानता था। सत्ता (सत्य) को वह नकारता रहा था।—जबलपुर]

●

[**कार्तिकनाथ गौरीनाथ ठाकुर :** ज्ञानोदयके समीक्षा-स्तम्भमें १९६६ की पत्र-पत्रिकाओंकी समीक्षामें 'आद्यन्त' का भी उल्लेख है। एक भूल रह गयी है। वह यह कि आद्यन्त १९६६ में नहीं १९६७ में 'तीसरी क़सम' के शैलेन्द्रकी स्मृतिमें प्रकाशित हुई थी और यह भी भूलोद्घाटन करना उचित है कि वह मात्र काव्य-पत्रिका न होकर अधुनातम विधाओंकी द्वैमासिक पत्रिका है। आशा है, तथ्यकी दृष्टिसे 'आद्यन्त' के हितमें यह पत्र-सूचना छापनेकी कृपा करेंगे।—वैद्यनाथधाम, देवघर]

●

[**महेन्द्रकुमार :** क्या एलेन गिन्सबर्गको अलेन जिन्सबर्ग लिखा जा सकता है ? यह बात मैं ज्ञानोदयके जून अंकमें प्रकाशित नेमिशरण मित्तलके लेखके सन्दर्भमें उठाता हूँ। गिन्सबर्गने स्वयं अपना परिचय देते हुए 'गिन्सबर्गका' उच्चारण किया था। वैसे, लेखमें जो कुछ गया है उसका बहुत सारा हिस्सा इसके पूर्व देखनेमें नहीं आया। बधाई आप भी लें और मित्तल जी तक भी पहुँचायें। —रायपुर]

●

[**मनोहरलाल त्रिक्खा :** जुलाई १९६७ का अंक आद्योपान्त पढ़ा है। 'कबर' बेहद सुन्दर है। 'हज़ार मौतें एक अपराजित हस्ताक्षर—फ्रांज़ काफ़्का' अति उत्तम लेख है। इसमें पृष्ठ ७ पर भूलसे १९२४ के स्थानपर ११२४ छप गया है।—मेरठ छावनी]

●

[**गोविन्द प्रसाद बहुगुणा :** जूनकी कविताएँ (सभी अच्छी कविताएँ अश्ककी कविताएँ छोड़कर) लेकर आया। श्रीकान्त वर्मा 'शाकाहारी' कविताएँ भी लिख सकते हैं (शमशेरके शिल्पके मानिन्द) पर वह फ़ोर्स नहीं आ पाया जो अकसर श्रीकान्तकी कविताओंमें उनकी तेज़ीको एक नाम देता है। 'इस यात्रामें' (इस पूरी जीवन-यात्रा-

[शेष पृष्ठ १४८ पर]

अगस्त १९६७

वर्ष : १६

अंक : २

पूर्णांक : २३०

•

समतल देशों में आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त मधुर बिस-तन्तु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।

— नागार्जुन

•

अनुक्रम

विशेष स्तम्भ :
कथन-उपकथन : सम्भावनाओंका बीमार भविष्यवक्ता : नीत्शे : परेश ७
आधुनिकता : वर्तमान मनःस्थिति और नये खोजकी खोज : लक्ष्मीकान्त वर्मा १५
तुलसी-स्मरण : मानसमें संकट और सन्त्रासका चित्रण : शिवप्रसाद सिंह २९
कला-संचेतना : भेंट : मक़बूल फ़िदा हुसैनसे : प्रेमचन्द गोस्वामी १३८
युवालेखन : ७–मराठी : ५ कविताएँ : अशोक शहाणे, शरद मन्त्री, रघु दण्डवते, अरुण कोलटकर, सुधीर कोलटकर ३८।
ललित गद्य : हमें मनुष्य-जन्म मिला : वसन्त दत्तात्रय गुर्जर (अनुवाद : दिनकर सोनवलकर) ४३
प्रतिप्रश्न : संक्रान्तिकालीन बोध और नये नारोंकी सार्थकता : रामदरश मिश्र ९५
प्रतिक्रिया : ब्रिटेनके लेखक : एक और सर्वेक्षण : महेन्द्र राजा जैन १०२
सामयिकी : अमर पुत्रोंके चमत्कार : जी० एस० पथिक १०७

अन्य :
समीक्षा : १९६६ के हिन्दी उपन्यास : शीर्षकहीन चर्चा—२ : गंगाप्रसाद विमल ४९
कालिदास : रक्तपातविरोधी महान् चिन्तक : रेवाप्रसाद द्विवेदी ८७
बोलते प्रतिबिम्ब : दो दूतावासोंकी कहानी : अनेकोंकी ज़ुबानी : पुष्प-धन्वा १४२
प्राप्ति-स्वीकार : १४५
कुछ पंक्तियाँ.... : २

कविताएँ :
पदचिह्न : बच्चन १३
दो कविताएँ : मैं ही नहीं बनी थी परी : शकुन्त माथुर ४५,
सुश्किल सम्बन्धोंका देश : पद्मधर त्रिपाठी ४६
फिर वही मैं, वहा शहर : अशोक आत्रेय ६९
पाँच मौसमी कविताएँ : श्रीराम वर्मा ८४

कहानियाँ :
तासार : सुधा सिंह ६३
स्पार्क : चन्द्रकान्त बक्षी १११
मनहूस : सुरेशकुमार वर्मा ११९
कॉमिक्स : सुरेन्द्र अरोड़ा १३०

अन्य कथा-विधा :
पत्थर निर्यात करें ! : शरद जोशी ५९
साफ्को : राजनाथ पाण्डेय ७३

मुखपृष्ठ :
मदन सरकार
अन्तःसज्जा : भाऊ समर्थ

भारतीय ज्ञानपीठ
९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता—२७
फ़ोन : ४५-४४३२
४५-६९२०

ज्ञा
नो
द
य

हमारे विशेषांकोंके बारेमें यदि आप कोई
जानकारी चाहें तो कृपया लिखें—
सम्पादक : ज्ञानोदय ६, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

ज्ञानोदयका वार्षिक विशेषांक
पूजा-दिवालीके अवसरपर

'शेष शताब्दी विशेषांक'

[नवम्बर १९६७]

...इस शेष शताब्दीके भविष्यकी
बहुआयामी रोमांचक कल्पनाएँ, सम्भावनाएँ...

विस्तृत घोषणा : इसी अंकमें पृष्ठ १४७ पर

पृष्ठ लगभग : ३०० मूल्य : ३ रुपये
(कृपया अपनी प्रति अभीसे सुरक्षित करा लें ।)

सम्भावनाओंका बीमार भविष्यवक्ता अर्थात् मृत ईश्वरका उत्तराधिकारी : नीत्शे

•

—परेश

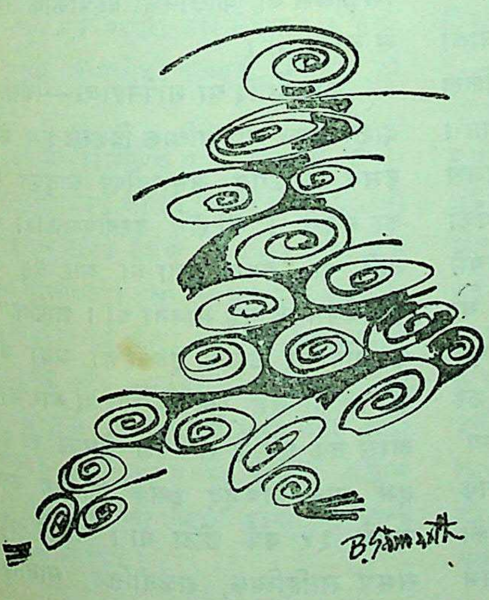

ईश्वर मर चुका है
और हम
मनुष्य जाति के एक विलम्बित प्रहर में
जी रहे हैं
कोई नहीं जानता इस मृत ईश्वर का
भविष्य····

किन्तु नहीं बचेंगे अब नैतिकता के प्रासाद
जो इस बुनियादहीन ज़मीन पर खड़े किये गये

शुरू होंगे अब विप्लव और आतंक
कोई नहीं बचेगा, केवल हम
जो एक शताब्दी पहले पैदा हो गये हैं
और पर्वतों की चोटियों पर बैठे हुए
अपने जन्म की प्रतीक्षा कर रहे हैं
एक नये सूर्योदय की प्रतीक्षा······

उस दिन हम पुनः बादबानों को खोलेंगे
एक बार फिर से हमें
ज्ञान के अजाने समुद्र-तट पुकारेंगे
समुद्रों के जल खुल गये हैं हमारे सम्मुख
इतिहास में इतने खुले हुए समुद्र
आज से पहले कभी न थे····

ईश्वर मर चुका है
और यह चर्च उसकी क़ब्रगाह है।

—दस स्पेक जरथुस्त्र

ईश्वरकी मृत्युकी घोषणा करनेवाला यह 'प्रॉफ़ेट' जिस समय पैदा हो रहा था, (१५ अक्टूबर १८४४ को) चर्चकी घण्टियाँ बज रही थीं और उसके पिता इस नवजातको 'बेप्टाइज' कर रहे थे। नीत्शेकी बहन एलिज़ाबेथ यह बात कभी नहीं भूली कि उनके पिता इस दीक्षा-भाषणमें अपनी पत्नीका उल्लेख करना भूल गये—जो इस पागल प्रतिभाके अन्तिम दिनोंकी एक मात्र साक्षी थी।

कॉलिन विल्सन कहता है: 'इतिहासमें इतनी बड़ी प्रतिभाके व्यर्थ होनेसे बड़ा कोई उदाहरण नहीं मिलता। ठीक परिस्थितियोंमें नीत्शे एक आध्यात्मिक क्रान्ति ला सकता था, मगर उलटे वह एक पागलकी तरह व्यर्थ ही समाप्त हो गया—जैसे कि कोई बड़ी तोप किसी यान्त्रिक ग़लतीसे उलटकर अपने ही तोपचियोंको समाप्त कर दे।'

५ वर्षकी उम्रमें पिताहीन होनेवाला नीत्शे दस वर्षकी उम्रमें अनेक नाटक लिख गया और संगीतकी रचना करने लगा। मरणोत्तर प्रकाशित और 'ऐस होमो' नामसे प्रसिद्ध होनेवाली आत्मकथा वह १४ वर्षकी उम्रसे लिखने लगा था। स्कूल समयमें इस धर्म-विध्वंसकका सबसे प्रिय विषय था धर्म और ११ वर्षकी उम्रमें उसने एक 'मानेस्ट्री' में भर्ती होनेका विचार कर लिया था। कालिन विल्सन इस 'धर्म ग्रन्थि' (रेलिजस इम्पल्स) को ही इस प्रतिभाके पागल होनेका कारण मानता है। २० वर्षकी उम्रमें जब उसने बोन युनिवर्सिटीसे ग्रेजुएशन किया तो धर्म, लेटिन, ग्रीक और जर्मन साहित्यपर उसका अधिकार था।

ऊबकी शुरूआत हुई यहीं की बीयर पीनेवाली ज़िन्दगीसे। उसका एक सहपाठी पॉल डियूसे (जो बादमें संस्कृतका विद्वान बना) ने नीत्शेकी जीवनी लिखी है। इसमें-की एक घटना उसके परवर्टेड जीवनकी शुरूआत बनती है। कोलोनमें इस २० वर्षके भीगी हुई मसोंवाले युवकने किसी गाइडसे होटलका पता पूछा—वह क्रुक उसे एक वेश्याके घर ले गया। वहाँ नीत्शेको एक ही चीज़ त्राणदायी नज़र आयी। वह था पियानो—जिसपर जल्दीसे कुछ बजाकर वह बाहर निकल आया।

१८६९ में बासेलके स्टूडेण्ट क्लिनिकमें डॉक्टरोंने यह निदान किया कि नीत्शेको ३ वर्षसे सिफ़लिस है। सन्देह नहीं कि यह सिफ़लिस वह कोलोनकी वेश्याओंके सम्पर्कसे लाया था।

कीएर्केगॉद या शापेनहावर—किसी भी दार्शनिकका आध्यात्मिक विकास हम केवल उसके व्यक्तिगत अनुभवोंपर आद्धृत नहीं कर सकते। नीत्शेने दस्तोएव्स्कीको पढ़ा नहीं था, केवल सुना था और वह उसे मनोवैज्ञानिक गुरु मानता था। शापेनहावरके प्रति भी उसकी इतनी ही श्रद्धा थी संगीत तो वह ख़ुद लिखता था और काफ़ी अरसे तक प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'वेगनर' का हमदम था—बावजूद इसके कि वह उम्रमें उससे ३५ वर्ष छोटा था। बोनमें पढ़ते समय साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक

सभी पहलुओंने उसके मानसका संस्कार किया था। १८६४-६६ और ७० के फ्रैंको-प्रूशियन युद्धोंमें उसने मेडिकल युनिटके साथ काम किया। 'टॉमस मान' के अनुसार प्यारके अभावमें अकेलापन उसकी नियति बन गया।

१८६९ से नीत्शेको पागलपनके दौरे शुरू हुए। 'साइके' का प्रसिद्ध लेखक 'इरविन रहोडे' लिपज़िगमें उसका सह-अनुसन्धायक था। लेकिन शादी करनेके बाद वह नीत्शेके क्रान्तिकारी उत्साहका आलोचक बन गया और उसने कहा—'मुझे लगता है, नीत्शे उस द्वीपखण्डस आ रहा है जहाँ उसके अतिरिक्त कोई आदमी नहीं रहता।'

डॉक्टरेट पूरी करनेसे पूर्व ही बासेल युनिवर्सिटीने उसे शास्त्रीय भाषा-विज्ञानका शिक्षक नियुक्त कर दिया। २४ वर्षके युवकके लिए यह सम्मान छोटा नहीं था। यहाँ उसने दस वर्ष पढ़ाया और केवल ३५ वर्षकी उम्रमें बीमारीकी वजहसे रिटायर हो गया।

उसकी शारीरिक यन्त्रणा उसके मनोविश्लेषणके लिए आधार प्रस्तुत करती है। जो भी विचार उसके मनमें उत्पन्न होता उसे तुरन्त मारनेवाला दूसरा विचार उसे सूझेगा। यह काउण्टर तर्क तीखा, विद्रोही, पागलपनसे भरा हुआ और सन्देहास्पद होगा। उसे पता था, उसे अपने बारेमें कभी पता नहीं चलेगा। अतः वह दुःखी होनेकी बजाय अपने ग़लत तर्कोंकी प्रशंसा करेगा और उन्हें 'हीरोइक' कहेगा।

पेटका न ठीक होनेवाला दर्द, लम्बी कमज़ोरियाँ और दिमाग़को झिंझोड़नेवाले दर्दके दौरे। लेकिन वह इच्छा-शक्तिके बलपर इन यन्त्रणाओंसे जूझता रहा और यही है वह रहस्य जिसने आगेकी शताब्दियोंको सम्भावनाओंका भविष्यवक्ता दिया। 'विल टू पावर' को वह आगेकी दो शताब्दियोंका इतिहास कहता था। 'एण्टीक्राइस्ट' और 'ऐस होमो' भी उसकी मृत्युके उपरान्त प्रकाशमें आयीं। 'द डॉन आव द डे', 'द गे सायन्स', 'दस स्पेक जरथुस्त्र', 'बियॉण्ड गुड एण्ड ईव्हिल', 'जेनेलॉजी ऑव मॉरेल्स', 'द ट्वाइलाइट ऑव द आयडाल्स' इसी 'वोल्कानिक पीरियड' की उपज हैं। 'द बर्थ ऑव ट्रेजेडी' और 'अनटाइमली मेडीटेशन्स' उसकी प्रारम्भकी पुस्तकें हैं जिनमें ग्रीक आर्ट और ड्रामाको शापेनहावरके दार्शनिक परिप्रेक्ष्यमें अर्थापित (इण्टरप्रेट) किया है।

अन्तिम कृतियाँ उसने भयानक रफ़्तारसे लिखीं—उनका अव्यवस्थित और ज्वालामुखी होना यह साबित करता है। कीएर्कगॉ भी ऐसा ही करता था। विचारोंके अबन्ध स्रोत उसके मष्तिष्कमें फूटते जिन्हें वह नहरोंमें बदलनेमें असमर्थ रहा। वह इस बातसे अभिज्ञ था किन्तु विचारों और शब्दोंके सम्मोहनके नीचे उसकी 'नर्वस नेचर' दबी रहती। बासेल युनिवर्सिटीमें वह एक आउटसाइडर ही था और रिटायरमेण्टके बाद तो और अकेला हो गया। उत्तरी इटलीके पर्वतोंपर चढ़ते हुए और अकेले कमरेके

ख़ालीपनमें निरन्तर भटकते हुए उसने ज्वालामुखियोंका स्रोत ढूँढ़ा था।

बीमारी के साथ-साथ वह विद्रोही होता गया। 'विल टू पावर' को उसने उपशीर्षक दिया—'हाउ टु फ़िलोसोफ़ाइज विद हैमर'। 'ऐस होमो' में स्वयंको 'डायनामाइट' मृत ईश्वरका उत्तराधिकारी और क्रॉसपर चढ़ा हुआ घोषित किया। रॉकेन (उसका गाँव) के राजाके लिए कहा—उसे कोर्टमें खड़ा करो और सार्वजनिक रूपसे फाँसीपर लटकाओ!

असन्दिग्ध है कि पागलपनके दौरे उसकी चेतनाको शून्य कर रहे थे और वह मृत्युके निकट जा रहा था। ट्यूरिनमें एक दिन वह सड़कपर गिर गया जैसे कि कीएर्केगॉ गिरा था। वहाँसे बासेल और फिर 'जेन एसायलम' में ले जाया गया। ट्यूरिनमें गिरना इसलिए भी प्रतीकात्मक और संयोगात्मक है कि वहाँ 'जीनियस एण्ड इन्सेनिटी' का प्रसिद्ध लेखक तथा सायकिएट्रिस्ट सेज़ार लोमब्रोसो रहता था।

१९०० में वह मर गया और रॉकेनके उसी चर्चयार्डमें दफ़नाया गया जहाँ उसे 'बेप्टाइज' किया गया था। १८६८ में उसने तोपचीकी वेशभूषामें अपनी एक फ़ोटो खिचवायी थी। वजह यह कि उसकी समझमें उसका लेखन बारूदके गोलोंकी-सी मार करता था। इस बारूदी लेखककी आँखें किन्तु मृत्युके दिनोंमें शून्यमें टगी रहती थीं और उनमें-का ज्वालामुखी सूख गया था····]

■

प्रश्न : लगता है न इस कहानीसे कि शरीर ही बड़ा है?

नीत्शे : किन्तु आत्मा तो शरीरसे भी शीघ्र मरणधर्मा पदार्थ है। जाओ, शहरके चौराहेपर भाषण कर रहे जरथुस्त्रको जाकर सुनो। वह कह रहा है : 'ऊपरसे नीचे तक मैं केवल शरीर हूँ और शरीरके अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ और आत्मा केवल संज्ञा है किसी पदार्थकी जो इस शरीरका ही एक अंग है, उससे बड़ा नहीं।'

प्रश्न : रिल्केने आपके इस सूत्रको पकड़कर कई कविताएँ लिखी हैं···

नीत्शे : (चुप)

प्रश्न : सॉरी। व्यक्तिगत सवाल पूछकर मैं आपको हर्ट नहीं करना चाहता। लेकिन मैं इस बातको भूल नहीं सकता कि आपकी प्रेमिका रिल्केकी गहरी दोस्त बन गयी थी····

नीत्शे : ओऽ लू सलोमे···रिल्केकी दोस्त ही क्यों··जिस दोस्तको मैंने शादीके प्रस्तावके साथ भेजा था, मेरी प्रेमिकाने उस सन्देशवाहकसे शादी कर ली···

प्रश्न : सो सैड····

नीत्शे : तुम मुझे नहीं समझ सकते। तुम आदमी हो यानी जानवर···

प्रश्न : जानवर?

नीत्शे : हाँ-हाँ, बन्दर। तुम ईश्वरके बन्दर हो और उसने तुम्हें अपने 'पास्टाइम' के लिए बनाया है।

प्रश्न : क्या आप आदमियोंकी श्रेणीमें नहीं आते?

नीत्शे : नहीं, मैं आदमी नहीं, मैं तो एक 'युद्धका मैदान' हूँ।

प्रश्न : हाँ, याद आया। मैंने पढ़ा है कहीं-पर....

नीत्शे : कहींपर ? तभी तो कहीं-कहींसे पढ़नेवाले पाठकको मैं लूटमार करनेवाला सैनिक कहता हूँ। मेरी किताबें तुम्हारे लिए नहीं। उनको पढ़नेवाले अभी पैदा नहीं हुए।

प्रश्न : क्या कहते हैं आप....पहले महायुद्धमें हज़ारोंकी संख्यामें जर्मन सेनामें आपकी 'द न्यू टेस्टामेण्ट' और 'जरथुस्त्र' वितरित हुई हैं।

नीत्शे : हूँ...मुझे आठवें दशकमें ही बीसवीं सदीका भविष्य साफ़-साफ़ दीखने लगा था। मैंने कहा था, 'राष्ट्रीय राजनीति नामक चीज़ अतीतकी ही रहेगी और एक संयुक्त युरॅप खड़ा होगा—नेपोलियनके स्वप्नोंका....'

प्रश्न: यह तो दस्तोएव्स्कीने भी कहा था १८६४ में कि 'बहुत दूर नहीं—केवल हमसे तीसरी पीढ़ी देखेगी कि यूरॅपसे सारे ब्रिटिश भाग रहे हैं।'

नीत्शे : मैं इस भविष्यवाणीका समय ५० वर्ष और बढ़ा देता हूँ। उस समय भारी भगदड़ (मास जुडास) मचेगी और ब्रिटिश 'सर्वशक्तिमान' नहीं रह पायेगा....

प्रश्न : क्या जर्मनी और रशिया तटस्थ रहेंगे ?

नीत्शे : नहीं, ये ही दो शक्तियाँ आगे बढ़ेंगी। भविष्यकी यह सबसे सशक्त घटना होगी – यानी रशियाकी प्रभुता सारे विश्व-पर हो जायेगी।

प्रश्न : और अमरीका ?

नीत्शे : वह बहुत जल्द समाप्त हो जायेगा।

प्रश्न : इसकी वजह ?

नीत्शे : इसलिए कि वह जल्दबाज़ है, जो इन्तज़ार नहीं कर सकते वे ताक़तवर नहीं होते। पहले रशिया भी जंगली था। लेकिन अब उनकी कला और संग्रहण-शक्ति युरॅप और एशियापर शासन करेगी। रशिया समयकी रफ़्तारको रोक सकता है, जितनी मर्जी आये धीरे चल सकता है। आगे बढ़नेका एक ही नियम है – 'धीरे चलो, जितना धीरे हो सके'। रशिया, चीन और हिन्दुस्तानको जीतकर उन्हें उपनिवेश बना लेगा।

प्रश्न : क्या यह नहीं हो सकता कि सारा युरॅप संयुक्त होकर रूसके विरुद्ध खड़ा हो जाये ?

नीत्शे : कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन जो कुछ होगा टिकेगा नहीं। भविष्य अगणितेय है, तलहीन और अनिश्चित....

प्रश्न : और अतीत ?

नीत्शे : अतीत एक मूलधन है, इसे इतिहासकार बनियोंकी तरह सूदपर उठाते हैं।

प्रश्न : क्या शान्ति किसी क़ीमतपर नहीं आयेगी ?

नीत्शे : आयेगी, लेकिन घुटने टेकू घिघियानेवालोंके मिमियानेसे नहीं कि निःशस्त्रीकरण हो जाये। बल्कि उन ताक़तवरोंसे जो स्वेच्छासे अपनी तलवारें तोड़ देंगे और शासन करनेका अधिकार स्वेच्छासे छोड़ देंगे। सच्चा अभिजात कभी डिफ़ेन्स नहीं लेता—वह आक्रमण करता है, और कभी 'आरबीट्रेशन'के लिए पंचोंके पास नहीं जाता।

प्रश्न : क्या आप युद्धको उपयोगी मानते हैं ?

नीत्शे : हां, युद्धके समय ही राष्ट्रीय शक्तिका जागरण होता है। अवश्य जीतनेवाला कुटिल बन जाता है और हारनेवाला नीच—लेकिन तो भी यह जरूरी है। इससे देश नर्मिल (नार्मल) बनता है। जो देश मरना नहीं जानता वह वृद्ध है। युद्धमें व्यक्ति मुख्य नहीं होता, मुख्य होती है जय और व्यक्तिगत प्राण सस्ते।

प्रश्न : खैर, युद्ध और राजनीतिको छोड़िए, समाजपर कुछ कहिए।

नीत्शे : समाज भी युद्धका साधन है।

प्रश्न : और यह समाजवाद ?

नीत्शे : समाजवादका अर्थ है—प्रगतिकी मृत्यु। समाजवादके नारे लगानेवाले केवल आलस्य फैलाते हैं। ये लोग इस मूल तत्त्वको नहीं समझते कि सब आदमी बराबर नहीं हो सकते। ऐसा होनेपर मीडियाकरोंका बाहुल्य होगा और भेड़ोंका ढेर। कोई गड़ेरिया नहीं होगा—सब भेड़ें ही रह जायेंगी।

प्रश्न : और प्रजातन्त्र ?

नीत्शे : मोस्ट बोरिंग।

प्रश्न : अच्छा एक अवान्तर सवाल····सेक्स गर्हित क्यों माना जाता है ?

नीत्शे : क्यों, इस सवालको आप गर्हित क्यों कहते हैं—यह तो मनुष्यकी सबसे बड़ी शक्ति है। हां, ईसाइओंने 'पाप' का पर्याय बना दिया है इसे।

प्रश्न : क्या मुझे 'एण्टी क्राइस्ट' दुबारा पढ़नी चाहिए ?

नीत्शे : केवल इतना याद कर लो तब भी काफ़ी है कि ईसाइयत और ह्विस्की आदिवासियोंके लिए या कहो नासमझोंके लिए—ये दोनों चीजें बराबर हैं।

प्रश्न : अच्छा आपका 'हीरो' कौन है ?

नीत्शे : शापेनहॉवर।

प्रश्न : सन्त्रास क्या है ?

नीत्शे : व्यक्तित्वकी गहराई।

प्रश्न : और अकेलापन ?

नीत्शे : प्रत्येक जीनियसकी नियति।

प्रश्न : कहते हैं, आपकी बहनने भी आपके प्रेम-सम्बन्धमें सहयोग नहीं किया।

नीत्शे : औरतका स्वभाव मैं बतला चुका हूं।

प्रश्न : आपने एक जगह वेगनरकी पत्नीको 'मेरी पत्नी कोसिमा वेगनर' लिखा है ?

नीत्शे : ········

प्रश्न : क्या आपने औरतसे कभी सम्पर्क नहीं किया ?

नीत्शे : मुझे सिफ़लिस है।

प्रश्न : अकेलेपनमें आप कैसा महसूस करते हैं ?

नीत्शे : समय और आदमीसे ६००० फ़ीट ऊंचा।

प्रश्न : आपका आउटसाइडर ?

नीत्शे : जरथुस्त्र।

[इस सूत्रके आधारपर रिल्केकी पंक्तियां हैं :

"खाली कमरे में अकेली घड़ी की तरह
प्रत्येक कोई जीवित है
एक दूसरे से क़तई निरपेक्ष
एवं भिन्न।"]

नीत्शे : दस स्पेक जरथुस्त्र—'बॉडी आइ एम थ्रू आउट एण्ड नथिंग बट बॉडी एण्ड सोल

[शेष पृष्ठ १४६ पर]

प । द । चि । ह्न

—बच्चन

छोड़ते पद-चिह्न
जो मैं आ रहा हूँ—
यदि बने भी वे रहें तो—
कुछ नहीं उपयोग उनका
अब रहा मेरे लिए है।

मैं मुसाफ़िर वह नहीं
जिस राह आया हूँ
उसी से लौट जाऊँ
एड़ियों के चिह्न पर धरता अँगूठा।

कभी मुड़ कर
पीठ पीछे देखने का लोभ था—
यह लोभ स्वाभाविक बड़ा है—
किन्तु अब पीछे अँधेरा ढल रहा है,
और तम को चीर कर के देखने की

शक्ति यदि कुछ शेष है मेरे दृगों में
तो उन्हें करना नियोजित सामने है;
सामने से भी उजाला हट रहा है,
झुटपुटा आता उतरता
झिलमिलाते, उदय होते तारकों से,
और मंज़िल पर अभी पहुँचा नहीं हूँ।

रात को भी तो
मुझे रुकना नहीं है—
होड़ साँसों और पाँवों में लगी है—
हो चुके अभ्यस्त इतने पाँव चलने के
नहीं निर्देश नयनों का ज़रूरी;
कौन बाधाएँ मिलेंगी
जो न अब तक मिल चुकी हैं,
झिल चुकी हैं।

और पीछे आ रहे जो—
गर्व इस पर कुछ करूँ क्या ?—
चली राहों पर नही चलना उन्हें है
देखकर पद-चिह्न मेरे।
यह सफ़र ऐसा
कि जिस पर हर मुसाफ़िर
है बनाता पथ नया अपने पदों से,
एक ही सन्देश उस पर छोड़ जाता
सिंह, सायर औ' सपूत चले पथों पर
नहीं अपना पग बढ़ाता।

■ ■

१३ विलिंगटन क्रिसेण्ट
नयी दिल्ली—११

आधुनिकता : वर्तमान मनःस्थिति और नये खोजकी खोज

आधुनिकताके सम्बन्धमें नितान्त बुनियादी बातें दो हैं :

● पहली यह कि आधुनिकता कोई तात्त्विक नियमन नहीं है। वह एक मानसिक दृष्टि है। आधुनिकता इसीलिए आचरण और विकल्पकी स्वतन्त्रतामें है। वह कोई सम्प्रदाय नहीं है!

● दूसरी बात यह है कि आधुनिकताको काल-सापेक्ष मानकर यह कहना कि प्रत्येक काल अपने-अपने ऐतिहासिक सन्दर्भमें आधुनिक था और आज हम केवल आधुनिक हैं क्योंकि ऐतिहासिक काल-विभाजनकी दृष्टिसे हम नितान्त 'आज'के व्यक्ति हैं—ग़लत है। कालकी सापेक्षतामें आधुनिकताको देखना 'आधुनिक' होनेकी कल्पनाको नियतिवादी बना देता है जब कि आधुनिकता इस नियतिवादितासे मुक्त होकर ही अपनायी जा सकती है। इसलिए आधुनिकताको मानसिक चेतना और मानसिक दृष्टिके आधारपर ही आंका जा सकता है।

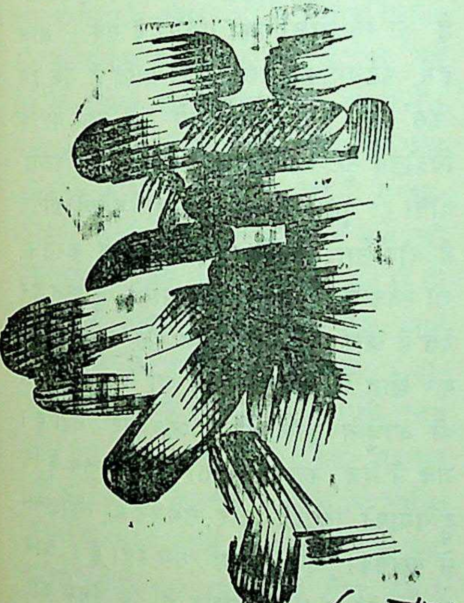

—लक्ष्मीकान्त वर्मा

आधुनिकताको परिकल्पनामें तीन

स्थितियाँ हैं :

● पहली यह कि व्यक्तिको जितनी अधिक विकल्पकी स्वतन्त्रता होगी या जिस सीमा तक विकल्पकी क्षमता या योग्यता वह प्रदर्शित कर सकेगा उतनी ही सीमा तक वह स्वतन्त्र कहा जा सकेगा। इसलिए विकल्पकी स्वतन्त्रता आधुनिकताकी पहली शर्त है।

● दूसरी स्थिति रागात्मकताकी अपेक्षा अ-रागात्मकताके समर्थनमें है। जितना अधिक अ-रागात्मक हमारा आचरण होगा उतना ही अधिक हम आधुनिक होंगे। दूसरे शब्दोंमें, रागात्मक ऐश्वर्यकी अपेक्षा हममें जितनी अधिक क्षमता अ-रागात्मक होनेकी होगी उतनी ही हमें विकल्पकी स्वतन्त्रता और संकल्पकी तात्कालिकता मिल सकेगी। आधुनिकताकी दूसरी शर्त अ-रागात्मकता है।

● तीसरी स्थिति एक प्रकारकी स्वानुशासित आत्मनिर्णय की है जिसे हम परिनिष्ठित स्व-आचरण कह सकते हैं। विकल्पकी स्वतन्त्रता, अ-रागात्मक दृष्टि और स्व-आचरणकी छूटसे ही आधुनिकताका सीमांकन किया जा सकता है। इसलिए स्वच्छन्द आचरणकी अपेक्षा स्व-आचरण आधुनिकताकी तीसरी शर्त है।

मैं इसलिए उन तत्त्वोंको, जो विभिन्न प्रकारके रूपकों और बाह्य रागात्मक उपकरणोंके माध्यमसे आधुनिकताको सम्बद्ध करना चाहते हैं, ग़लत मानता हूँ। आज आधुनिक वह नहीं कहा जा सकता जो परम्परा, इतिहास, या सम्प्रदाय-विशेषकी परिधिमें रहकर या उसे अनावश्यक रूपसे एक हठात् विद्रोहके रूपमें नकारकर चलना चाहता है क्योंकि भावुक समर्थन या भावुक विद्रोह दोनों मूलतः एक प्रकारके रोमाण्टिक जीवन-दर्शनके समान तत्त्व हैं। दूसरे शब्दोंमें, एक ही अनुभूतिके दो छोर हैं। किसी भी परम्परासे जड़ बनकर चिपकना उतना ही रोमाण्टिक है जितना उसके लिए चिल्ला-चिल्लाकर विद्रोह घोषित करना। आधुनिकताकी अभिव्यक्ति एक प्रकारकी सक्रिय उदासीनतामें भी होती है। यह उदासीनता अज्ञानताकी द्योतक न होकर सक्रिय ज्ञानकी सजगतासे उद्भूत होती है। 'ए सेन्स ऑव इनडिफ़रेन्स' से ही हमारे अन्दर वह अरागात्मक स्थिति पैदा हो सकती है जो स्व-आचरणका संकल्प दे सके। आज हमें इतना अवकाश नहीं प्राप्त है कि हम 'इस' या 'उस'के समर्थनमें डूब जायें या कि विद्रोहमें टूट जायें। यह 'डूबना' या 'टूटना' दोनों ही पुनः रोमाण्टिक मनःस्थितिके द्योतक हैं और उस नियतिबद्धताको प्रेषित करते हैं, जो स्वतन्त्रताके सभी आयामोंको कुण्ठित कर देते हैं और मनुष्यको केवल एक माध्यम बनाकर छोड़ देते हैं। 'विद्रोह' या 'समर्थन' दोनों ही आधुनिकताके लिए आवश्यक नहीं हैं। जब मैं यह कहता हूँ तो मेरा मतलब है कि दुनियाको 'विद्रोह' और 'समर्थन'की सापेक्षतामें देखनेका एक पुराना ढंग रहा है। आज उसका इतना घनिष्ट संघर्ष है कि उसमें कोई तत्त्व प्रतिष्ठापित नहीं होता—केवल 'थीसिस' और 'ऐण्टीथीसिस' बनकर रह जाता है। आधुनिकता इस थीसिस और ऐण्टीथीसिसके

बन्धनसे मुक्त होकर जीना और अपनी विकल्प शक्तिको विकसित होनेकी प्रक्रिया है। इसलिए आधुनिकता न तो इलहाम मानती है और न नियति। इसीलिए वह स्वाचरणसे सम्बद्ध है न कि परम्पराकी रूढ़िसे।

इतिहासकी पद्धतिके अनुसार देश-कालकी धारणा काफ़ी भ्रम फैलानेवाली प्रतीत होती है। इतिहासकी काल-दृष्टिके अनुसार जो भी आज है वह आधुनिक ही होगा। 'आज' ही इतिहासकी आधुनिकताका माप है। इस पद्धतिसे यह निर्णय निकलता है कि जो आजके सन्दर्भमें नहीं है वह या तो अतीतका है या भविष्यका। लेकिन आधुनिकता जहाँ कालमुक्त धारणा है, वहीं वह इतिहास-मुक्त कल्पनाकी प्रतिष्ठा भी है। आधुनिकताकी वास्तविक परख यह भी है कि हम कितना अधिक इतिहासमुक्त हो सकते हैं। मानव-संकल्पकी क्षमता जब 'नियति' और 'यान्त्रिक' अस्तित्वकी अपेक्षा अपनी इच्छा-शक्तिको महत्त्व देता है। और जब मनुष्यकी इच्छा-शक्तिको हम महत्त्वपूर्ण मान लेते हैं तो शेष समस्त सन्दर्भ मिथ्या सिद्ध होने लगते हैं। इसी प्रकार पूरी मानव-प्रगतिको 'शताब्दियों' और युगोंमें बाँधकर देखना भी ग़लत लगता है। इतिहासकी काल-दृष्टिके अनुसार न तो यही कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति सत्रहवीं या अट्ठारहवीं शताब्दीमें पैदा हुआ था वह आज उस शताब्दीमें पैदा होनेके कारण आजका नहीं है, और न यही सीमा बाँधी जा सकती है कि जो व्यक्ति 'आज' वर्तमान है, वह मात्र 'आज' होनेके नाते आधुनिक है। यदि हम इतिहास ही को देखें तो पायेंगे कि बावजूद अपने युगकी सीमाओंके 'अशोक', 'मोहम्मद तोग़लक़' और इन सबसे भी अधिक 'शेरशाह सूरी',—'अकबर' और जवाहरलाल नेहरूसे अधिक आधुनिक थे। कारण यह है कि 'अकबर' और 'जवाहर लाल' हमें इतिहास-द्वारा उपयोगमें लानेवाले यन्त्र-से लगते हैं—वह इतिहासकी नियतिके पूरक प्रतीत होते हैं। जब कि अशोक, मोहम्मद तोग़लक़, शेरशाह सूरी इतिहास-मुक्त व्यक्ति प्रतीत होते हैं। गान्धी और ईसा तो इतिहास-मुक्त होनेके साथ-साथ इतिहासको अपने पीछे-पीछे चलनेके लिए बाध्य करनेवाले व्यक्तियोंमें-से थे। मैं इस अर्थमें उन्हें अधिक आधुनिक मानता हूँ यद्यपि इतिहासकी पद्धतिके अनुसार शायद यह धारणा बहुतोंको स्वीकार न हो। इतिहास-मुक्त मनुष्य जब कालकी सीमाको लाँघकर एक नयी गतिविधिका प्रणेता होता है तो वह आधुनिक हो जाता है और कालको लाँघकर आगे बढ़नेकी क्षमता केवल इतिहास-मुक्त मानवमें ही सम्भव हो सकती है।

इसी प्रकार अन्य प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। 'निराला' आधुनिकताके अधिक निकट लगते हैं और सुमित्रानन्दन पन्त अपनी चमक-दमकके बावजूद भी अधिक मध्यकालीन सामन्तवादी और परम्परा-भीरु प्रतीत होते हैं। कहनेका सारांश यह है कि आधुनिकताके साथ सबसे बड़ा अन्याय यह है कि उसे 'इतिहास' और 'काल' के फ़्रेममें कसकर देखनेकी चेष्टा की गयी है। यदि आधु-

निकताको इन बन्धनोंमें न देखकर उपर्युक्त गुणोंकी परिधिमें देखा जाये तो लगेगा कि आधुनिकता एक गुणात्मक बोध है। वह कालबोध और इतिहास-पद्धतिसे कई अर्थोंमें भिन्न तो है ही, साथ ही मुक्त भी है। क्या कारण है कि आज बिहारी अधिक समसामयिक लगते हैं और बच्चन नहीं लग पाते ? क्या कारण है कि जयदेव, विद्यापति या कालिदासको पढ़ते समय कालकी सीमा विलुप्त हो जाती है और पन्त, बच्चन, या अन्य कवियोंको पढ़ते समय कालकी दीवार बराबर सामने खड़ी रहती है। प्रसाद और अज्ञेय यद्यपि रागात्मक ऐश्वर्यके कवि हैं किन्तु इनकी कविताओंमें काफ़ी अंश तक कालको लाँघकर अनुभूतिकी अद्वितीयताका पुट बराबर मिलता है। मैं समझता हूँ, जहाँ साहित्यमें अनुभूति-प्रधान रचनात्मक तत्त्वोंका सम्बन्ध है वहाँ इतिहास-मुक्त हुए बिना सृजन-दृष्टिमें व्यापकता और गहराई दोनोंका मिलना सम्भव नहीं हो सकता।

■

लेकिन जब आधुनिकताकी इन बुनियादी बातोंको लेकर वर्तमान मनःस्थितिका अध्ययन करते हैं तो आजके समसामयिक साहित्यमें अधिकांश आधुनिक कहलानेवाला साहित्य मुझे आधुनिकताकी कसौटीपर खरा उतरता नहीं दीख पड़ता। मुझे बार-बार लगता है कि आधुनिकताके नामपर आज जो कुछ लिखा जा रहा है वह कालके पेटमें बैठकर लिखा जा रहा है। और जो भी रचना कालके अन्तर्गत लिखी जाती है, इतिहासका यन्त्र बनकर जिसे लेखक लिखता है—वह रचना उच्चकोटिकी भी हो सकती है, अच्छी भी हो सकती है लेकिन मुझे लगता है कि उसमें कालसे उबरकर प्रस्तुत होनेकी क्षमता नहीं होती, आधुनिकताकी सबसे बड़ी शर्त जो इतिहास-मुक्त होकर प्रस्तुत होनेकी है वह सम्भव नहीं हो पाता।

प्रश्न उठता है कि क्या आज जो कुछ लिखा जा रहा है वह आधुनिक नहीं है ?

फिर आजके लेखक या आजके मानवकी वह कौन-सी मनःस्थिति है जो उसे इतिहास-मुक्त होनेसे रोकती है ? वह कौन-सा तत्त्व है जो बावजूद समस्त उपकरणोंके आजके अधिकांश लेखकोंकी मनःस्थितिको आधुनिक नहीं होने देती ?

और तब इन समस्त प्रश्नोंका जो सीधा उत्तर मुझे मिलता है वह यह कि आज भी हमारी मनःस्थिति अपने मूलभूत रूपमें रोमाण्टिक प्रवृत्तिसे मुक्त नहीं हो पाती है और जबतक इस रोमाण्टिक तत्त्वसे हम मुक्त नहीं होते हम आधुनिक नहीं हैं। जैसा मैंने प्रायः अनुभव किया है, मुझे लगता है, सहज लिजलिजी भावुकतासे ओत-प्रोत यदि छायावाद या रहस्यवाद था तो ठीक उसीकी प्रतिक्रियामें नितान्त नग्न और एक सीमा तक काठकी आकृतिका उन्मेष आजके लेखककी मनःस्थिति है। यदि छायावादका मोह अवगुण्ठनका था, सौन्दर्यकी साकार सृष्टिकी अपेक्षा आभास मात्रसे तुष्टि प्राप्त करना था तो आज वही संवेदना नितान्त नग्नतामें भी देखी जा सकती है। मूल भावुकता दोनों ही में है।

सौन्दर्यकी सृष्टि दोनों ही अपनी अतिरंजित मनःस्थितिमें करते हैं—एक ज्योत्स्नाकी तरलतामें उसे पाता है, कामना, श्रद्धा, इड़ाके आभासमें उसे ग्रहण करता है तो दूसरा 'मिस पाल' या उसके अनेक और रूपोंमें, कमरेमें नंगा खड़ा होकर, यौन विकृतियोंके नग्न चित्रण करके या फिर केवल एक रेगिस्तान और मरुस्थलको चाँदनीके सामने प्रस्तुत करके उसे भी मूल्यवान् और नितान्त आधुनिक बननेका भ्रम पोषित करता है। मुझे राजकमल चौधरी, गजानन माधव मुक्तिबोधमें और पन्तमें कोई अन्तर नहीं दीखता। मैं इस अन्तरको भी बड़ा महत्त्व नहीं देता कि पन्त सौन्दर्यके छायाभासमें ही तुष्ट हो जाते हैं और राजकमल चौधरी उस सौन्दर्यको चीर-फाड़कर देखते हैं। पन्त नितम्बों, उरोजों और जंघोंका वर्णन करके अपनेको आधुनिक घोषित करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि अवगुण्ठनकी अमूर्तता और शरीरकी मूर्ततामें कोई विशेष अन्तर भले ही न दीख पड़े—किन्तु दोनों ही मूलतः एक ही प्रकारके मनसे उपजते हैं और एक ही प्रकारकी संवेदना जीते और भोगते हैं। प्रायः लोग आधुनिकताके नामपर इसी नग्नताकी आलोचना-प्रत्यालोचना करते हैं। वह जैसे नवीनता और आधुनिकताको पर्याय समझते हैं। हर नवीन आधुनिक होगा ही—यह दावा मुझे निरर्थक और व्यर्थ-सा लगता है। नवीनता तो कलेवरकी भी हो सकती है और आधुनिकता मात्र कलेवर नहीं है। उसका सम्बन्ध दृष्टिसे है, अन्तरदृष्टिसे है और इन सबसे अधिक उस मानसिक धरातलसे है जिसमें मनुष्य, उसका परिवेश, उसकी संगति, उसके सन्दर्भ सभी कुछ एक नये अर्थबोधको जन्म देते हैं। मुझे बार-बार लगता है कि जो कुछ आधुनिकताके नामपर लिखा-पढ़ा जा रहा है, वह किसी नये अर्थबोधका द्योतक नहीं है, वह केवल एक प्रतिक्रिया है—ऐसी प्रतिक्रिया जो एक प्रकारकी भावुकताकी वृत्तिमें घूमकर एक ही केन्द्र-बिन्दुपर खड़े-खड़े घूम जाये। इस घूम जानेसे वृत्तिकी परिधिमें न विस्तार आता है और न सन्दर्भ। केवल अपनी गति घूमती है और उसी वृत्तिके दूसरे दृश्यको हम देखने लगते हैं। इस दूसरे दृश्यसे हममें कोई परिवर्तन नहीं पैदा होता। न हममें कोई गति आती है। परिवर्तन केवल दृश्यका होता है लेकिन वह दृश्य भी स्वतन्त्र नहीं होता। एक विस्तृत वृत्तमें क़ैद होनेके नाते वह उसी केन्द्रका आश्रित होता है जहाँ हम खड़े होते हैं। चूँकि हम जहाँ थे वहीं खड़े हैं इसलिए वृत्त-दृश्य भी जैसेका तैसा ही रहता है।

मैंने कहा कि जो कुछ भी आज लिखा जा रहा है—उसका अधिकांश आधुनिक नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है, कि आधुनिक लिखा नहीं जा रहा है लेकिन जो कुछ भी लिखा जा रहा है वह इतना बिखरा-बिखरा-सा और दबा-दबा-सा है कि वह पूरी तरहसे प्रकाशमें नहीं आ रहा है। इसलिए वह मनःस्थिति जो आजके विभिन्न तनावोंके कारण उत्तेजित हो जाती है या जो इन तनावोंमें टूट जाती है या जो इन तनावोंकी प्रतिक्रिया मात्र बनकर व्यक्त होती है—वह सब

रोमैण्टिकके अन्तर्गत आता है क्योंकि वह सब भावुकतासे प्रोत होता है, असाधारण होता है और अतिरंजनाका शिकार होता है। इसके विपरीत एक प्रकारकी निस्संगताका दर्शन, मितिरंजित भावाभिव्यक्ति और सामान्य स्तरपर केवल संवेदनाओंका भोग शायद आधुनिकताका प्रथम लक्षण है। प्रतिक्रिया या अतिरंजनामें भावुकताका समावेश, एक टकराहटकी प्रतिक्रिया और केवल अनुभूतिके लिए न जीकर अनुभूतिकी ध्वनियोंमें जीना शायद आधुनिक संवेदनाके विपरीत है। यद्यपि आधुनिकता आजकी बिखरावपूर्ण स्थितियों और नितान्त टूटनेकी प्रक्रियासे उत्पन्न होती है इसलिए प्रायः कुछ रूढ़ अभिव्यक्तियों और प्रतीक-दर्शनोंको हम आधुनिक समझने लगते हैं। सेक्सको ही लें। पिछली दो शताब्दियोंमें स्त्री-पुरुषके जो सम्बन्ध सामन्तकाल या मध्ययुगीन धर्म-संस्कारके अन्तर्गत बने थे वह धीरे-धीरे करके टूटे हैं, लेकिन इस टूटनेके प्रति तथाकथित आधुनिक कहलानेवालोंकी दृष्टि क्या रही है? जब वह नारी-सौन्दर्यको नंगा करके उसके अंग-प्रत्यंगका वर्णन और जांघोंसे लेकर नितम्बोंके उतार-चढ़ावका रहस्योद्घाटन करते हैं तो क्या वह तटस्थ रह पाते हैं या निस्संगता स्थापित कर पाते हैं? इसी रहस्योद्घाटनका काम छायावादने भी किया था और कविवर बिहारीलालने भी किया था। तथाकथित आधुनिक कहलानेवाले कवियोंने भी जांघोंके रहस्यकी चर्चासे कुछ प्रभाव पैदा करनेकी कोशिश की है और अमरुशतकम्के लेखकने भी वही चित्रित किया है। दोनोंमें अन्तरके नामपर मुझे कुछ नहीं दिखता। हिमालयके वर्णन और अशोका होटेलके वर्णनमें भी हमें अन्तर नहीं दिखता। यदि हिमालयके वर्णनमें पन्त भावुकताके शिकार होते हैं तो होटेल, जाँज-संगीत, केबरा-संगीत और नृत्यके प्रति आजके आधुनिक लेखक। यदि 'हिमालय' के शीर्षकके नाते सुमित्रानन्दन पन्त छायावादी और रोमैण्टिक हो सकते हैं और होटेलके नाते अन्य कवि आधुनिक हो सकते हैं, यदि श्रद्धाके पैरोंकी लाली वर्णन करनेके नाते प्रसाद रोमैण्टिक माने जाते हैं और जांघोंका वर्णन करनेवाले आधुनिक तो फिर इसपर बहस करना व्यर्थ है क्योंकि दोनों कहीं-न-कहीं नारी या नारीत्वकी अपेक्षा संस्कार और इतिहासको ढोते हैं। मात्र विषयोंके बदल देनेसे सब आधुनिक और दूसरा प्रतिक्रियावादी माना जाता है तो फिर हम पूरी स्थितिको फिरसे विवेचन करनेके बाद इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि यह झगड़ा व्यर्थ है। मूलतः इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही अपनी मूल दृष्टिमें और मानसिक बनावटमें भावुक, अतिरंजनामें विश्वास करनेवाले केवल आभास नग्नताका भेद रखकर समानधर्मा ही हैं। मुझे उनमें कोई अन्तर इसलिए नहीं दीखता क्योंकि उनकी मूल दृष्टिमें कोई भेद नहीं होता। एक फूल और एक होटेलमें केवल विषयका अन्तर आ जानेसे भावबोध नहीं बदलता। मूल समस्या यह है कि क्या भावबोधमें वास्तवमें कोई अन्तर आया है? क्या यह अन्तर किसी सीमा तक नये सन्दर्भों और

मानव-मूल्योंको प्रतिष्ठित करता है ?

जब कभी भी मैं इन प्रश्नोंको लेकर आज के आधुनिक साहित्यका अध्ययन करता हूँ तो मुझे लगता है कि आजके साहित्यमें जो भावनाएँ व्यक्त हो रही हैं वह पन्तकी अमिया-जैसे उरोजों और जाँघोंके बीच छिपी मांसल वासनामें कोई मौलिक अन्तर नहीं पैदा करतीं। दोनों ही समान रूपसे मुझे एक ही स्तरकी संवेदना लगते हैं। अन्तर केवल एक आन्तरिक गठन और दृष्टिका नहीं है वरन् एक बाह्य अभिव्यक्ति और रूप-अन्वेषणका ही है। मूल्योंका जहाँतक सम्बन्ध है वह भी आधुनिक नहीं हो पाता क्योंकि भाषा पौराणिक और प्रतीक आधुनिक, बिम्ब नये और संवेदना लिज-लिजी भावुकतापूर्ण लगती है। ऐसा लगता है कि जो मनुष्य आजकी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों या अन्य विधाओंमें चित्रित हो रहा है वह ठीक वैसा ही आचरण करता है जैसा कि मध्ययुगीन या नायक करते थे। कभी-कभी अपनेसे ही पूछता हूँ कि जो मानव-परिकल्पना आज साहित्यमें अंकित हो रही है वह अयथार्थ ही है। ठीक वैसा हो जैसा पन्तका महामानव जिसमें आत्मा और अध्यात्म दोनों ही यथार्थको खण्डित करते हैं। अन्तर बहुत नगण्य है क्योंकि अध्यात्म और आत्माके प्रति यदि पन्त भावुक हैं तो मांसलताके प्रति आजका लेखक। मुझे इस मांसलतामें वही कृत्रिमता दीखती है जो पन्त या उनके समान अन्य कवियोंकी आत्मा और अध्यात्ममें दीखती है। मनुष्यका समग्र रूप दोनों ही छोड़ देते हैं, उसका यथार्थ दोनों ही की पहुँचके बाहर हो जाता है। वस्तुतः यही उलझन है जिसमें आजका समूचा साहित्य अपनी सृजनशीलता खो रहा है। लाख चाहने पर भी भूखी पीढ़ी और पन्तका अध्यात्मवाद अपनेको मूल मानव-संवेदनाओंसे दूर पाते हैं। इस दूरीका एक मात्र कारण यह है कि दोनों ही मनुष्यकी वितृष्णाको एक ललचायी दृष्टिसे देखते हैं और वह उदासीनता और तटस्थता, जो कि वास्तवके सही रूपके तलाशके लिए आवश्यक है, इनसे छूट जाता है।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या आजका आधुनिक भावबोध कहीं विकसित ही नहीं हुआ है ? क्या यह ठण्डापन आरोपित नहीं है ? क्या इस तथाकथित विद्रोही भावना और रागात्मक ऐश्वर्यकी भावनामें मुझे कोई ऐसा भेद नहीं दीखता कि जिसे मैं बुनियादी भेद मानकर कोई आमूल परिवर्तनकी बात कहूँ ? नारीके प्रति जो भावना आधुनिकताके नाम पर लायी जा रही है, सेक्सकी नग्नताको जो लोग रोमैण्टिककी अपेक्षा 'एबसर्ड' समझकर अपनी आधुनिकताको स्थापित करना चाहते हैं, अथवा जिस प्रकार वह आधुनिकताके प्रति आचरण करते हैं या अपनी दृष्टि प्रस्तुत करना चाहते हैं वह दोनों ही विवेकके बजाय भावुकताको प्रश्रय देते हैं। मित्रता, शत्रुता, करुणा, जिज्ञासा, राग-विराग—यह सबका सब जैसेका तैसा ही आजके साहित्यमें वर्तमान है। स्त्रीका रूप वही रीतिकालीन सेक्स-प्रधान, मित्रका रूप भी वही, आस्था-अनास्थाका प्रश्न वही,

करुणा और आत्म-दयाकी भावना भी वैसी ही है—फिर यह जो फ़रज़ी आधुनिकता महज़ 'नये तर्ज़' के आधारपर चल रही है वह कहाँ तक आधुनिक है यह स्पष्ट हो जाता है। भूखी पीढ़ीकी अधिकांश रचनाएँ केवल छायावादी मेलोकोलियाका दूसरा रूप हैं जो आत्मदाह और शरीरपर ज़ख्म उगाकर केवल आत्म-दया व्यक्त करती है, अकविताकी सारी कविताएँ विषयबद्ध फूहड़ और अनर्गल बेजोड़ हादसोंको दिखाकर अपने निहित अर्थमें मात्र लिरिकल होकर रह जाती हैं। कहानी भी इन्हीं छोरोंमें क़ैद है! बिना रेगिस्तानके रेगिस्तान बसानेमें, और बिना आगके जलनेकी ईहामें मुझे कोई सार नहीं दिखता। इसीलिए जब मात्र नये तर्जको लोग आधुनिकता की संज्ञा दे देते हैं और सम्पूर्ण आधुनिकताकी अवधारणाको केवल एक अदा तक सीमित कर देते हैं और भाषा, भाव, व्यंजना, बोध, अनुभूति और संवेदनाकी भिन्नताको, उसके अलगावको स्थापित करनेमें असमर्थ-से लगते हैं तो मुझे स्पष्ट हो जाता है कि यह आधुनिकता किसी कामकी नहीं है, यह केवल एक कॉकटेल है जिसे बनानेके तरीक़े अलग हैं। मूल शराब वही है, किसीमें कोई अंश ज़्यादा है, किसीमें कोई अंश कम और इस कम-ज़्यादाके वज़नके आधारपर जो लोग आधुनिकताकी शकल पहचानना चाहते हैं वह खुद अपने साथ धोखा करते हैं और दूसरोंके साथ भी धोखा करते हैं क्योंकि वह आधुनिकताके मर्मको बिना समझे उसे ले उड़नेके प्रयासमें केवल कौतूहलके शिकार हैं—अनुभूतिके द्रष्टा अथवा सहभागी नहीं हैं।

इसी सम्बन्धमें एक बात और कह देना ज़रूरी है और वह यह कि आधुनिकता मात्र 'अस्तित्ववाद' या 'हंग्री जेनेरेशन' या 'बीट' या 'ग्रे जेन रेशन' के समानान्तर कोई कड़ी नहीं है और न क़लम ही है। मात्र 'ड्रजरी' भी आधुनिकता नहीं है या जबरदस्तीकी हत्याओंका चित्रण या 'कैथार्सिस'के रूपमें जो बहुत-कुछ लिखा जा रहा है जिसे मैं केवल उच्छिष्ट मात्र ही समझता हूँ, आधुनिकताके मूल भूत तत्त्वोंको छूता ही नहीं। 'अजनबीपन'की भावनाको लेकर इधर बहुत कुछ लिखा जा रहा है और मात्र 'टैबूज' और वर्जनाओंको तोड़ देने मात्रको भी बहुत-से लोग आधुनिकताकी संज्ञा देने लगे हैं। पन्तने 'कला और बूढ़ा चाँद'में इस प्रकारका रयाज़ किया है। मैं जानता हूँ कि उनके इस रयाज़को भूखी पीढ़ीवाले कभी भी आधुनिक नहीं मानेंगे और कहेंगे कि जो कुछ वह लिखते हैं वह तो आधुनिक है लेकिन जो कुछ पन्तने लिखा है वह आधुनिक नहीं है। क्यों नहीं है—इसका कारण वह नहीं दे सकते, कमसे कम अभीतक किसीने दिया नहीं है। न दे सकनेका कारण यह है कि आधुनिक संवेदनाकी पकड़ और उसकी गहन खोजकी जो प्रारम्भिक आवश्यकताएँ हैं वही न तो पन्तके पास हैं और न भूखी पीढ़ी या अकविताके ढेले-प्रस्तावकोंके पास हैं। दोनोंके पास केवल ढेले-जैसे शब्द हैं और उन शब्दोंके पीछे जिस अनुभूतिकी आवश्यकता है वह नहीं है। ऐसा होनेका कारण यह है कि 'भूखी पीढ़ी' अभी

तक शहादत और 'परसेक्यूशन'के रोमैण्टिक सन्दर्भसे अलग नहीं हो पायी और गिरिजाकुमार माथुर-जैसे लोग, जो अकविताके वज्रन-पर केवल चमत्कार और कलाबाजीके आधार-पर अकविताका नया तूमार खड़ा करना चाहते हैं, वे केवल स्टण्टबाज़ होकर रह जाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि आधुनिकतामें 'शहादत' 'परसेक्यूशन' 'स्टण्ट' यह सबके सब निरर्थक हैं क्योंकि वह मूलतः इस प्रकारकी अतिरंजनाओंके प्रति 'इनडिफ़रेन्स' होनेकी स्थिति है न कि उनके लाग-लपेटमें जीने और महत्त्वपूर्ण बननेकी आकांक्षा। यह सारी प्रवृत्तियाँ उसी रोमैण्टिक भाव-भूमिकी उपज हैं जिसके अधीन हमारी सारी चेतना आज सो जो और जाग रही है। मूलतः हम कहीं इतने अधिक मध्यकालीन प्रवृत्तिके लोग हैं कि बिना सेन्स ऑव परसेक्यूशन और शहादत, या स्टण्ट या 'क्रूसेड'या कलाबाजीके जी नहीं सकते और इससे भी बढ़कर यह कि जब हंग्री जेनेरेशनमें रहस्यवादी स्वर मिल जाता है, या केवल स्टण्टमें जब रीतिकालीन कलेवर दिखने लगता है, तो एक ऐसी खीझ लगती है कि साराका सारा प्रयास केवल एक कृत्रिम आरोप बनकर रह जाता है।

अभी तक आधुनिकताकी जितनी भी व्याख्या की गयी है उसमें मनुष्यको केवल इतिहासका पात्र बनाकर प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गयी है। ऐसा लगता है कि उसकी कोई दूसरी परिणति है ही नहीं। वह शुद्ध मानवके रूपमें अभी तक देखा ही नहीं गया। उसे या तो आदर्शोंके लिए खपनेवाला जीव माना गया है या टैबूज़ तोड़नेवाला प्रेत। आदमीके रूपमें वह कहीं नहीं प्रतिष्ठित किया गया है। या तो वह मानवतावादी दर्शनके अनुसार केवल एक दयनीय प्राणी है, या फिर आदर्शवादियोंकी भाँति वह केवल सम्भावनामें जीता है, 'सम्भव'का बोझ ढोनेवाला खच्चर लगता है---ऐसा खच्चर जिसको अपने अस्तित्वके बोधका अधिकार ही नहीं है। या तो वह इतिहासकी नियतिका परिणाम बन जाता है या कुछ वर्जनाओं और अतिरंजनाओंमें डूबा हुआ एक प्रोटो प्लाज़्म जो केवल सम्भावनाओं और असम्भावनाओंके बीच झूलता रहता है।

◆

एक बार फिरसे यह सोचनेकी ज़रूरत है कि आधुनिकताकी वास्तविक स्थिति क्या है। जैसा कि स्पष्ट है आधुनिकताकी वास्तविक मनःस्थिति और प्रेरणा हमें न तो अतिरंजनामें मिल सकती है और न केवल आत्महीनतामें। वह एक प्रकारका ठण्डा अस्तित्व-बोध है जिसमें वस्तुस्थितिके प्रति हमारी सामान्य क्रिया होनी चाहिए न कि प्रतिक्रिया। आधुनिकता इस क्रियामें भी अनुपातात्मक होनी चाहिए न कि अनुपातहीन। आजका समाज सामान्यतः विकृत समाज है। इस विकृत समाजके प्रति दो प्रकारसे हमारी चेतना क्रियाशील हो सकती है—एक तो शहादतकी भावना और दूसरी पैग़म्बरकी भावना। शहादतकी भावनामें आत्महीनता, आत्मदया, आत्मप्रवंचना आदिकी स्थितियाँ ही जन्म लेती हैं, जो मूलतः प्रतिक्रिया-प्रधान हैं। दूसरी मनःस्थिति मसीहाई या पैग़म्बरीकी हो सकती

है जिसमें आदमी सब कुछको मिटाकर नयी व्यवस्था लाना चाहता है। मैं समझता हूँ कि यह दोनों स्थितियाँ प्रतिक्रियाकी हैं। और इसीलिए इन दोनों मन:स्थितियोंमें आधुनिकताका अभाव हैं। फिर यह पूछा जा सकता है कि इन स्थितियोंमें आधुनिक किसे कहेंगे या उस आचरणका माप क्या होगा? मुझे लगता है कि इन दोनों स्थितियोंसे हटकर केवल विवेकके आधारपर जागरूकताके साथ अनुपातात्मक शहादत और अनुपातात्मक पैग़म्बरीका मानवीयकरण और यथार्थके परिप्रेक्ष्यमें उनका संयमन ही आधुनिकता है। शहादत भावुकता है। पैग़म्बरी स्वप्नमोह है। भावुकताके स्थानपर भावना और स्वप्नमोहके स्थानपर यथार्थकी दृष्टिसे जीनेवाला व्यक्ति ही आधुनिक हो सकता है। आजका जो परिवेश है उसमें भावुकता एक छूतके रोगके समान हमें पकड़ लेती है और स्वप्न हमें एक यथार्थहीन पलायनकी ओर उन्मुख करते हैं। ये दोनों ही मध्यकालीन रोमैण्टिक वृत्तिकी उपज हैं और हमें शत-प्रतिशत एक मिथ्याभास या दिवास्वप्नके वृत्तमें ले जाकर छोड़ देते हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि यह खपनेकी स्थिति और उत्सर्गित होनेकी स्थितिको समझकर ही क्रियाशील होना और मात्र प्रतिक्रियात्मक आचरणसे मुक्ति पाना चाहिए। प्रतिक्रियात्मक आचरण या मात्र प्रतिक्रियाको मूल्य समझना कैशोर भावुकता है। आजका तथाकथित आधुनिक कहलानेवाला साहित्य मुख्यत: एडोलसेण्ट सेण्टिमेण्टलिज़्म या फिर दिवास्वप्नके पलायनमें ही पनपता है।

किसी भी जीवन-दर्शनको समझनेके लिए या मानसिक स्थितिको समझनेके लिए यह आवश्यक है कि हम उसमें 'सेक्स' को क्या स्थान देते हैं। आजके लेखक, चिन्तक और कुछ सीमा तक आजकी जीवन-पद्धति इसमें विश्वास करने लगी है कि वह सेक्सको अतिरंजित करके देखे। दूसरे शब्दोंमें, आज आधुनिक वह माना जाता है जो स्त्री या नारीके एनाटॅमीको एक प्रकारसे उघाड़कर रखता है, सेक्सको अनुभूतिके स्तरपर न ग्रहण करके उसे मात्र मांसल बनाकर प्रस्तुत करता है, घूम-फिरकर जो नारीको केन्द्रमें रखकर ही सारे जीवनके नक़ाबको उठाना चाहता है। सेक्सके प्रति इस अतिरंजित दृष्टि और इस मांसल अभिव्यक्तिको ही नितान्त आधुनिकताका लक्षण मान लिया गया है। लेकिन यह केवल एक संक्रमणकी स्थिति है। पिछड़े हुए देशोंके पिछड़ेपनकी प्रतीक है क्योंकि जो देश और जो लोग वास्तवमें आधुनिक हैं वह स्त्रीको इस रूपमें देखते नहीं क्योंकि एनाटॅमीकी जिज्ञासा उनके संस्कारमें नहीं है। उनकी संस्कृति या जीवनमें स्त्रीकी आध्यात्मिकता या उसकी मांसलताका कोई अर्थ नहीं है। न तो नारीको वह कोई रहस्यात्मक अनुभूतिके लिए माध्यम मानता है और न ही उसे नितान्त मांसल भोगकी वस्तु। यह दोनों स्थितियाँ आधुनिकताको नकारती हैं और उनके वास्तविक परिधिको, स्त्री-पुरुषके बीच एक प्रकारकी बराबरी या समताकी भावनाको नष्ट करती हैं। आजके व्यवहार-व्यापारमें आचरणमें हमारे यहाँ इस समता

या बराबरीकी भावनाको तो प्रश्रय नहीं मिलता केवल समता-जैसी लगनेवाली पद्धतिका प्रदर्शन मुख्य रूपसे कथ्य बन जाता है। यह प्रदर्शित भावुकता पुनः तटस्थता या इनडिफ़रेन्स की भावनाको नष्ट कर देता है और हम एक प्रकारके कैशोर मनःस्थितिके प्रतीक बन जाते हैं। आज आधुनिकताके नामपर जो कुछ भी लिखा-पढ़ा जा रहा है, या सामाजिक आचरणमें नारीको लेकर जो कुछ भी किया-धरा जा रहा है—चाहे वह संवैधानिक स्तरपर हो या सांस्कृतिक स्तरपर—वह सबका सब इसी भावुकताका शिकार हो जाता है। सुमित्रानन्दन पन्त 'कला और बूढ़ा चांद' में उतने ही पिछड़े हुए देशके प्रतिनिधि हैं जितने कि हंग्री जेनरेशनके वर्गका कोई प्रतिनिधि-कवि। प्रसाद भी कामायनीमें श्रद्धाका चित्रण करनेमें उसी पिछड़ेपनका परिचय देते हैं जिस पिछड़ेपनका परिचय हमें आजके कहानीकारोंमें मिलता है। वस्तुतः यह दोनों स्थितियाँ आधुनिकताकी विरोधी हैं।

जॉज़ म्यूज़िक या स्काई स्क्रेपर या मन्दिरके प्रति अचम्भा या घृणाकी भावनाका होना केवल एक बातका ही परिचय देता है कि हम पिछड़े हुए लोग बिना प्रभावित हुए और प्रतिक्रियाके सतही आचरणपर अपनी अभिव्यक्ति दिये बिना जिन्दा नहीं रह सकते। जिस प्रकार ड्रेसपाइप पहनकर गांजा पीना, या ढेला फेंकना या ट्इस्ट करना पिछड़ा हुआ होना है उसी प्रकार अजीब और ग़रीब लबादेके प्रति मोह रखना भी है। हमारा यह पिछड़ापन आज जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें दिखलायी पड़ेगा। 'लाउडस्पीकर' हमारे यहाँ शादी-ब्याहका एक अंग बन गया है और फ़िल्मी तर्ज़पर कीर्तनके भजन गानेवाला अपनेको एक क्रान्तिकारी और आधुनिक समझता है। लता मंगेशकरके तर्ज़में कीर्तन गाना या जॉनीवाकरके तर्ज़में भजन गाते-गाते नृत्य करना जैसे पिछड़ेपनकी निशानी है, गँवरपन और देहाती होनेका परिचायक है उसी प्रकार जॉज़ म्यूज़िकके प्रति मोह या स्काई स्क्रेपरको देखकर अचम्भेमें पड़ जाना भी है। लेकिन स्थितिका व्यंग्य यह है कि कीर्तनमें सिनेमाका तर्ज़ गानेवाला अपनेको उतना ही आधुनिक समझता है जितना नारीके एनाटॅमीमें रस लेनेवाला हंग्री जेनरेशनका कवि, या रहस्यात्मक अनुभूतिमें अनहद नाद सुननेवाले आदर्शवादी।

वस्तुतः जब हम ध्यानसे इस संक्रमणका कारण ढूँढ़ने लगते हैं तो यह स्पष्ट पता चलता है कि सामाजिक स्तरपर जहाँ यह आचरण और मर्यादाका खण्डन लगनेवाली आधुनिकता एक प्रकारकी सामाजिक और आर्थिक संक्रमणके कारण है, वहीं कला, साहित्य और अन्य क्षेत्रोंमें यह अभिव्यक्तिके संकटके कारण है। सामाजिक स्तरपर जो कुछ आज एक प्रकारकी नृशंसता और अराजकताके रूपमें पनपता दीखता है, या जो कुछ आज युवा-वर्गमें नितान्त भयावह-जैसा लगता है उसका एक मात्र कारण वह आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था है जिसमें आज प्रतिष्ठितका मज़ाक़ उड़ा देना, मुँह चिढ़ा देना या उस पर ढेला फेंक देना उस अवरोधसे मुक्त पानेकी

चेष्टा है जो चारों ओरसे हमारे जीवनको जकड़े आ रही है। असमता या ना-बराबरीके इस सीमामें सड़कों, क़हवा-घरों या घने बाज़ारोंमें खाली जेबें, उदास मन और निराशा-भरी आंखोंसे घूमनेवालेके मनमें सहज और शुभको तोड़ देना या मुंह चिढ़ा देना एक सन्तोषका परिचायक है। यह केवल एक प्रतिक्रियाके रूपमें उस घुटनको तोड़कर उबरनेकी चेष्टा है जो हमारे चारों ओर अपने आप पिछले बीस वर्षोंमें उग आया है। वस्तुतः आजकी मनःस्थिति इस अपराजेय विवशताके प्रति दो प्रकारसे प्रतिक्रिया व्यक्त करती है : एक तो प्रतिष्ठितको तोड़कर और दूसरे प्रतिष्ठितके सम्मुख हीनभावना रखकर। यह दोनों भावनाएं आधुनिक नहीं हैं। प्रतिष्ठितकी उपेक्षा या उसके सामने केवल अपने अस्तित्वको स्थापित करना आधुनिकताका द्योतक नहीं है। आधुनिक न तो हंग्री जेनरेशन वाला है जो प्रतिष्ठितको मुंह चिढ़ानेकी चेष्टा करता है और न वह रहस्यवादी या आत्मविश्लेषणवादी ही जो आत्मसमर्पण करके अपनेको आधुनिक कहना चाहता है। वस्तुतः यह दोनों प्रतिक्रियाएं हैं—क्रियाएं नहीं। आज आधुनिक वह है जो इन दोनों अतिवादी वृत्तियोंसे अलग, बिना मज्झिम निकायवादी हुए अपने व्यक्तित्वका परिचय देता है। आज आधुनिक वह है जो जुलूसमें जाकर चिल्लाना और निरोह होकर घरमें बैठना, दोनोंको ग़लत मानता है। आजका आधुनिक व्यक्ति वह है जो जुलूसको चीरता हुआ अपने लक्ष्य तक जा सकता है। जो न तो जुलूसमें शामिल होता है और न उसमें ढेला ही फेंकता है। वह अनुभूति ग्रहण करता है और अपने आत्मनिर्णयपर अधिकसे अधिक विश्वास करता है। जटिलता अभिव्यक्ति और अनुभूतिमें होती है। हंग्री जेनरेशन और अतिवादी सेक्सवादी या इसी प्रकारके रहस्यवादी विचारों और अभिव्यक्तियोंमें हमें जटिलता नहीं मिलती। लोकभाव जैसे नितान्त रागात्मक होता है उसी प्रकारकी अनुभूति आज-आधुनिक लगनेवाले कवियों और लेखकोंमें पायी जाती है। यह रागात्मक सपाटपन आधुनिक नहीं नितान्त आदिम और कृत्रिम है।

इस सम्बन्धमें एक बात और कह देनी आवश्यक है। पिछड़े हुए देशोंमें अभीतक उद्योगीकरणके प्रति कोई दृष्टि नहीं बन पायी है। यहां तक कि सौ वर्षोंसे सारा देश रेलगाड़ीका प्रयोग कर रहा है लेकिन अभीतक वह हमारे जीवनके लिए केवल हलचल पैदा करनेवाली वस्तु है। देहातका रहनेवाला मोक़दमा और तीर्थ-यात्राके लिए उसे इस्तेमाल करता है। शहरमें रहनेवाला भी रेलतकके प्रति अपनी दृष्टि नहीं बना पाया है। माईक्रोफ़ोनको अपने शादीके लिए, रेडियोको फ़िल्मी गानोंके लिए, मोटरको ऐयाशीके लिए और होटेलको तफ़रीहके लिए ही समझ रखा है। अपने अनेक-अनेक अभावोंकी पूर्ति वह इसी प्रकारके माध्यमोंसे करता है। कूलर या फ़्रिज वह अपने घरमें इसलिए नहीं रखता कि उससे उसे आराम मिलेगा, वरन् वह इन्हें इसलिए रखता है ताकि वह प्रतिष्ठाका और कुलीनताका प्रतीक है। वह यह भूल जाता

है कि जबतक यह सारे तत्त्व आजके जीवनमें नार्मलाईज नहीं होंगे तबतक वास्तविक आधुनिक दृष्टि विकसित नहीं होगी और जब-तक दृष्टि और वृत्ति नहीं ठीक होती तबतक केवल बाह्य उपकरणोंसे हम केवल टोटकेके रूपमें ही अपनेको आधुनिक कह सकते हैं, वास्तविक आधुनिकता हम ग्रहण नहीं कर सकते। जो कुछ बेचैनी हमें दीख पड़ती है उसीको हम आधुनिककी संज्ञा देनेका भ्रम कर बैठते हैं। यह भूल जाते हैं कि बेचैनी मात्र प्रतिक्रियाका द्योतक है, क्रियाका नहीं, कर्मका भी नहीं !

इस असंगतिके जहाँ अनेक कारण हैं उनमें-से प्रमुख कारण शहरोंमें बढ़ती हुई सघन आबादी है जिसमें बिना घर-बारके, बिना सुरक्षाके, सड़कों-फ़ुटपाथों, स्टेशनों और चौराहोंपर सोते रहनेवालोंकी संख्यामें वृद्धि हो रही है। राजकमल चौधरीकी समस्त भूखी पीढ़ीके समर्थनमें हमें यही तत्त्व दिखता है। इस सम्बन्धमें कंकावतीमें उन्हींका एक उद्धरण इस प्रकार है :

> गरदन के नीचे से खींच लिया हाथ
> बोली, अन्धकार हय नि (नहीं हुआ है)
> सड़कों पर अब तक घर वापसी का
> जुलूस ! दफ़्तर, दूकानें, अख़बार अब
> तक सड़कों पर ! किसी मन्दिरके खण्ड-
> हर में हम रुकें ? बह जाने दें इर्द-गिर्द
> से समय ! गरदन के नीचे से उसने
> खींच ली तलवार ! कोड़े पागल घोड़े
> की तेज़ टाप बन आता है।, प्रश्नवाचक
> वृक्ष बाँहों में। डालों पर लगातार
> लटके हुए चमगादड़। रिक्शे वाला
> हँसता है चार बजे सुबह—अन्धकार
> हय नि (नहीं हुआ है)। सिर्फ़ एक सौ
> रातों ने हमें बताया, कि शाम को
> बन्द किये गये दरवाज़े सुबह नहीं खुलते।
> [रिक्शे पर एक सौ रातें, कंकावती]

उपर्युक्त काव्यांशमें जो ध्वनि है वह एक पिछड़े हुए समाजके प्रतिनिधि व्यक्तिकी है जो एक बढ़ते और विकसित होते नगरमें, रिक्शा, सड़क, खण्डहरोंके सायेमें पनपता और जीता है। उसकी सुरक्षा कहीं नहीं है और वह शहरीयतके प्रति अपने संस्कार बना नहीं पाया है। उसके इसी सुरक्षाहीन जीवनमें जो प्रतिक्रिया होती है उसके पीछे केवल सामाजिक सुरक्षाकी भूख है। यह भूख ही भूखी पीढ़ीकी भूख है। आधुनिकताका बोध इसमें नहीं है। इसमें केवल एक काठ मारे जानेकी स्थितिके प्रति तीव्र प्रतिक्रिया है और शहरको नकारनेकी प्रवृत्ति है जो मूलतः एक पिछड़े हुए संस्कारका द्योतक है।

इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि आज आधुनिकताके नामपर अक्षमताको अधिक प्रश्रय मिल रहा है। अक्षमताको विद्रोह या आधुनिकता भी कह दिया जाता है और कुछ ऐसा आभास दिया जाता है कि जैसे सक्षम होना आधुनिकताका घातक है। हम यह भूल जाते हैं कि एक सम्पन्न समाजकी सक्षमता बढ़ती है और एक पिछड़े हुए देशमें अक्षमता बढ़ती है। एक साथ पश्चिमसे इतने औद्योगिक और तकनीकी चीजें भारतमें आ गयी हैं कि यदि उनके आ जावे मात्रसे

कोई देश आधुनिक हो सकता है तो निश्चय ही भारत भी आधुनिक हो गया है लेकिन यदि आधुनिकता उन औद्योगिक और तकनीकी विधाओंके प्रति आचरणमें है तो निश्चय ही हमें यह कहना होगा कि हमें उनके प्रति आचरण करना नहीं आया है। आजकी आधुनिकता उस खाईको व्यक्त करती है जो आजके तकनीकी सामर्थ्य और आचरणके असामर्थ्यमें व्यक्त होती है। इसीसे एक प्रकारकी सामाजिक निष्क्रियता भी जन्मती है जो केवल आत्मरक्षाके लिए अपनी सम्पूर्ण निष्क्रियताको एक सार्थक मूल्यके रूपमें स्थापित करना चाहती है। बेचैनी है—लेकिन विरोधाभासमें जीना या बेचैन होना आधुनिकता नहीं है। यह मात्र पिछड़ापन है। इसके विश्लेषणकी आवश्यकता है।

इसी प्रकार असमानताकी भी बात है। एक सम्पन्न समाजके कुछ तर्क होते हैं। जब यह तर्क और वह जीवन-पद्धति समाजके एक वर्गमें प्रचलित होते हैं तो समाजका एक बहुत बड़ा वर्ग, जो उन सुख-सुविधाओंसे वंचित होता है, उसके प्रति कठोर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। कभी-कभी यह प्रतिक्रिया विद्रोह मान लिया जाता है। कभी इसीको आधुनिकता मान लिया जाता है। लेकिन विद्रोह और आधुनिकता दोनों ही एक पिछड़े हुए देशमें टोटकेके रूपमें व्यवहृत होते हैं। दोनोंमें ही विवेक नहीं होता और विवेक और सन्तुलन न हो सकनेके कारण दोनों ही एक अतिरंजित वातावरणमें जीते हैं। आज भारतमें विद्रोह और आधुनिकता काफ़ी सीमा तक इसी दायरेसे गुज़र रहे हैं। ऐसी स्थितिमें आधुनिकताका मूल स्रोत और उसके व्यवहरित रूपको समझनेके लिए इन तत्त्वोंपर कोई विशेष थीसिस नहीं बनायी जा सकती। उसके आधार-तत्त्वोंको एक समग्र जीवन-दृष्टि और एक मानसिक दृष्टिकोणको ही खोजा जा सकता है और इसलिए उसे 'काल-सापेक्ष' या 'इतिहास-सापेक्ष' न मानकर मानव-चेतनाके स्तरोंमें व्यक्त मानवीय दृष्टिमें ढूँढ़ना पड़ेगा। मैं समझता हूँ कि आज आधुनिकताके नामपर जो कुछ भी प्रतिष्ठित किया जा रहा है वह अधिक समय तक नहीं चलेगा। उसमें जितना केवल रूपात्मक मोहके कारण है या शुद्ध प्रतिक्रियाके रूपमें है वह केवल हमारे पिछड़ेपनका परिचायक है।

इसीलिए आधुनिकताको मूल्य नहीं माना जा सकता। यह केवल एक परिप्रेक्ष्य है जिसके आधारपर मूल्य अलगसे स्थिर होंगे। लेकिन जो आजका संक्रमण है वह स्वतः मूल्य नहीं है। वह केवल एक अस्थिर दौर है। संक्रमणके दौरानमें समता, क्षमता और इसी प्रकार आचरणकी विवेकशीलता ही अपने स्वाचारमें व्यक्त होगी। मुझे लगता है कि औद्योगिक परिवर्तनों और तकनीकी माध्यमोंके प्रति उचित दृष्टि विकसित होना जहाँ सामाजिक स्तरपर आवश्यक है, वहीं रचनात्मक स्तरपर प्रतिक्रियाके बजाय अनुभूतिकी अद्वितीयताको ग्रहण करना ही आधुनिक होनेकी पहली शर्त है। ■■

सरयू कुटीर, मधवापुर
इलाहाबाद

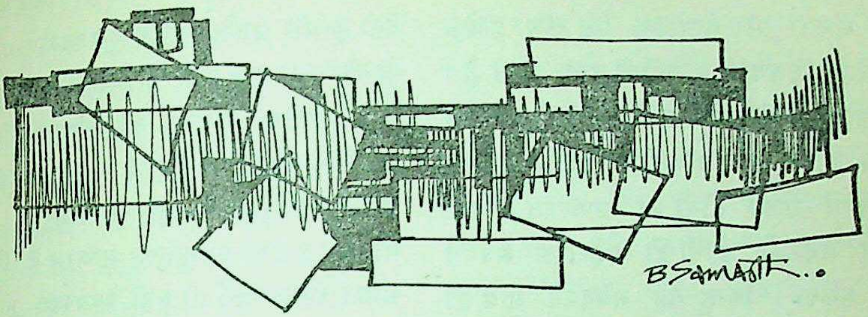

मानसमें संकट और संत्रासका चित्रण

शिवप्रसाद सिंह

१

प्रायः ऐसा समझा जाता है कि संकट और सन्त्रासका अवबोध आधुनिक साहित्यकी मूल प्रेरणा है। यह सही है कि अनेक प्राकृतिक-अप्राकृतिक कारणोंसे उत्पन्न साम्प्रतिक परिवेशमें आजका मनुष्य अपनेको पहलेके मनुष्यकी अपेक्षा अधिक सन्त्रस्त और संकटग्रस्त समझता है। आजका मनुष्य अपनेको परम्परासे कटा हुआ, भविष्यके प्रति निराश और वर्तमानमें निरर्थक जीवन और विसंगतियोंसे घिरा हुआ पाता है। ऐसा इसलिए हुआ है कि हमारा जीवन निरन्तर एक ऐसी प्रवृत्तिसे आक्रान्त होता जा रहा है जिसे दार्शनिक परिभाषामें पदार्थीकरण (आब्जेक्टिफ़िकेशन) कह सकते हैं। आजका जगत् जीवनको पदार्थोंके रूपमें समझनेका अभ्यासी होता जा रहा है। ज्ञाता ज्ञेय पदार्थोंके सामने अपना महत्त्व खोता जा रहा है। बाह्य पारिभाषिक ज्ञान अन्तःज्ञानकी अपेक्षा श्रेष्ठ माना जा रहा है। पदार्थज्ञान बहुत ऊपरी सारकी चीज़ है, किन्तु जब वही जीवनका चरम लक्ष्य बन जाता है तो ज़ाहिर है कि मनुष्यके भीतर और बाहरके बीच एक अलंघ्य खाई उपस्थित हो जाती है। ऐसी स्थितिमें सभी प्रकारके आन्तरिक मूल्योंसे रहित आधुनिक मनुष्य निरन्तर एक रिक्तता और सन्त्रासका अनुभव करता है। किन्तु सन्त्रास और संकट नयी चीज़ें नहीं हैं और न ही ये आजके मनुष्य तक सीमित हैं। इस तरहकी स्थितियाँ मनुष्यके

जीवनमें हमेशा ही आती रही हैं, यद्यपि उनके कारण और परिणाम भिन्न तरहके होते रहे हैं।

संकट और सन्त्रासके ऐसे क्षण प्रत्येक युगके बौद्धिकके लिए चुनौती हुआ करते हैं। जिस व्यक्तिकी संवेदना जितना ही अधिक तीव्र और बारीकसे बारीक सूक्ष्म तत्त्वोंको बांधनेमें सक्षम होगी वह उपस्थित सन्त्रास और संकटको उतनी ही गहराईसे अवगत कर सकेगा। किन्तु यह अवगमन मात्र ही पर्याप्त नहीं होता। सन्त्रास और संकटकी स्थितियाँ अपने क्रोडमें मानवताके सम्मुख उपस्थित सूक्ष्मातिसूक्ष्म समस्याओं और उनके नाना कारणोंको छिपाये रहती हैं। ऊपरसे नितान्त व्यक्तिगत प्रतीत होनेवाला संकट भी बहुत गहराईमें कहीं-न-कहीं समस्त मानवताके साथ जुड़ा होता है। इसलिए समर्थ बौद्धिकको पहचान इस बातमें निहित है कि वह ऊपरसे नितान्त सामान्य-सी घटना-जैसे प्रतीत होते संकटको किस प्रकार बृहत्तर मूल्योंके साथ जोड़ता है तथा उसके भीतरसे गुजरते हुए व्यक्तिके मानसमें होनेवाले परिवर्तनोंको किस प्रकार ग्रहण करता है। आजका आधुनिक दार्शनिक यह स्वीकार करता है कि किसी मनुष्यकी चेतना जितना अधिक विकसित होगी, सन्त्रास और संकटका पीड़ा-बोध उसके निकट उतना ही अधिक तीव्र होगा। और यह बोध उस व्यक्तिको चाहे और कुछ दे या न दे—प्रायः नहीं ही देता—पर इतना सन्तोष तो दे ही जाता है कि उसने संकटको अबोध व्यक्तिकी तरह समझसे परे मानकर नहीं, बल्कि ज्ञाताकी सारी समझदारी और सार्थकताके साथ भोगा। यही समझदारी पीड़ाके बोधको विशिष्ट बना देती है और इसके भीतरसे गुज़रनेवाले व्यक्तिके जीवनको एक नयी भास्वरता दे जाती है।

मानसमें सन्त्रास और संकटका चित्रण एकाधिक स्थानोंपर हुआ है। रावणके अत्याचारोंने सम्पूर्ण जीवनको सन्त्रस्त कर दिया था। यह एक सामूहिक सन्त्रास है जिसके भीतर केवल मर्त्य ही नहीं देवमण्डल भी फंस गया था। तुलसीने इस संकट और सन्त्रासको चित्रित किया, किन्तु यह चित्रण कविकी निजी संवेदनाके पीड़ा-बोधसे बहुत आर्द्र और तरल न हो सका। प्रथम तो यह कि इसका वर्णन उन्होंने बहुत संक्षिप्त और सरसरी तौरसे कर दिया है, दूसरे यह कि पीड़ा व्यक्तिगत न होनेके कारण ज़्यादा पदार्थगत यानी आब्जेक्टिव हो गयी है :

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुविध त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना॥
—बालकाण्ड १८३

कविके सामने मानवीय सन्त्रासका एक बहुत मार्मिक प्रसंग उपस्थित था। विदेशी मुसलमानी शासन-कालमें उत्पन्न कविको सामाजिक त्रासका कुछ अनुभव भी रहा होगा, किन्तु स्पष्ट ही कविकी संवेदना इस प्रसंगमें डूब नही पायी। जैसा मैंने पहले ही निवेदन किया, ऐसा इसलिए हुआ कि पीड़ाका बोध समूहीकरणके कारण सान्द्र और

घता नहीं हो सका। समूहीकरण व्यक्तिगत अस्तित्वकी पीड़ाको पदार्थमें बदल देता है, उसपर परिभाषाओंका लेबुल लगा देता है। आधुनिक युगमें शासनके भ्रष्टाचार या अत्याचारसे सभी पीड़ित हैं। इसका चित्रण दो प्रकारसे हो सकता है। भारी सभाओंमें विरोधी पार्टीका कोई नेता इसका चित्रण करता है और बड़े जोशीले ढंगसे अन्यायके उदाहरण देकर इसके प्रतिवादके लिए जनताका आह्वान करता है। दूसरी ओर, कोई कवि या कथाकार इस विषयपर लिखना चाहे तो उसके लिए अनिवार्य होगा कि वह अत्याचारोंसे पीड़ित किसी एक व्यक्तिके माध्यमसे अपने मनकी संवेदनाको व्यक्त करे और इस व्यक्तिगत पीड़ाको इस धरातलपर प्रस्तुत करे कि वह अपनी सांकेतिकताके द्वारा इसे जन-जनकी पीड़ा बना दे। पहले चित्रणमें समूहीकरण और पदार्थीकरणका माध्यम अपनाया गया जो तथ्य तो है मगर सत्य नहीं बन सकता क्योंकि वहां तथ्य मनुष्यके व्यक्तिगत मानसमें डूबकर नहीं आया है जब कि दूसरे चित्रणमें, चाहे वह तथ्य न भी हो, सत्य प्रस्फुटित होता है क्योंकि वह व्यक्तिगत संवेदनासे निरन्तर स्पन्दित रहता है। इसी कारण मैंने कहा कि रावणके अत्याचारसे उत्पन्न मानवीय पीड़ाका चित्रण करते समय तुलसीका कवि तटस्थ रह गया है।

सन्त्रास और संकटका दूसरा चित्रण अयोध्या काण्डमें आता है। राम-वन-गमन, दशरथकी मृत्यु और भरतके अयोध्या लौटनेवाले प्रसंगमें। यह पूरा प्रसंग तुलसीकी सूक्ष्म संवेदना और उनके सचेत पीड़ा-बोधका अनुपम निदर्शन है। भरत-चरित्रकी विशेषता उनकी रामके प्रति निष्ठा, ईमानदारी, भ्रातृ-प्रेम, मर्यादावादिता आदिमें तो है, परन्तु इस चरित्रको जो रासायनिक प्रक्रिया कुन्दनमें बदल देती है, उसपर लोगोंका ध्यान प्रायः ही नहीं जाता। इस पूरे प्रसंगमें भरत पीड़ा-सन्त्रास-संकट और आत्मविदीर्ण करनेवाली जिस परिस्थितिके भीतरसे गुजरते हैं, वही उनके चरित्रको 'पदार्थ' से अलग करके आन्तरिक तेजोद्दीप्तताके सिंहासनपर आसीन-कर देती है। भरत नियतिके व्यंग्यके शिकार हो जाते हैं। नियतिका यही आकस्मिक मोड़ उनके चरित्रको अग्निपरीक्षामें डाल देता है।

सन्त्रास और संकट अपनी स्वाभाविक प्रकृतिके अनुसार हमेशा ही आकस्मिक होते हैं। ये बिलकुल अतार्किक और विसंगत होते हैं। सार्त्र इसीको 'काण्टिजेन्सी' कहता है। भरतको कुछ नहीं मालूम कि उन्हें इस तरह क्यों बुलाया गया। नियति और काण्टिजेन्सीके चंगुलमें फँसे मनुष्य-मनकी यह रहस्यात्मक विशेषता है कि होनी घटित होनेके पहले, जब कि वह प्रकृतिके भ्रूणमें अपना रूप लेती रहती है, किसी छिद्रसे, सुराखसे अथवा अवचेतनकी झिझरीसे अपनी भयानक घटनीयताका कुछ आभास भी दे देती है:

देखहिं रात भयानक सपना
जागि करहिं कटु कोटि कलपना

यह शायद प्रकृतिका 'सेफ़्टी वाल्व' है जो रहस्यको पूर्णतः रहस्य रखते हुए भी

मनुष्यके मनको आनन्दके आभासको सहने योग्य बना देता है। सन्त्रासकी दूसरी विशेषता यह होती है कि वह मनुष्यके परिवेशको, कहींसे कुछ भी बदले बिना, इस प्रकारके रंगोंमें रंग देता है कि उसके पूर्वनिर्धारित सभी अर्थ बदल जाते हैं। पीड़ाका यह प्रथम बोध पदार्थोंको पदार्थ नहीं रहने देता बल्कि पीड़ा बोधकके मानसके रंगोंमें इन्हें डुबो देता है। अयोध्याके पशु-पक्षी, भवन, मार्ग वस्तुतः बदल गये थे, ऐसी बात नहीं, पर भरतके लिए उनका चिरपरिचित परिवेश एक भिन्न अर्थ लेकर सामने आया :

श्रीहत सर सरिता बन बागा।
नगर बिसेषि भयावन लागा॥
हाट बाट नहिं जाइ निहारी।
जनु पुर दह दिसि लागु दवारी॥

पीड़ाकी अतिशयताकी हालतमें स्नायु आघातसे झनझना उठते हैं। उस समय परिवेशगत पदार्थोंको देखकर लगता है कि जगत् मृगमरीचिकामें चल रहा है। एक अजीब प्रकारका ईथरिक कम्प पैदा हो जाता है। क्या तुलसी इसी बातको 'दावानल' के इमेजसे व्यक्त करना नहीं चाहते? सन्त्रास निरन्तर अपनी अबोध रहस्यमयताके आवरणमें घना हो रहा है। सचेतन व्यक्ति निरन्तर यह जानना चाहता है कि वह जो भोग रहा है वह क्या है? 'वह क्या है' की छटपटाहट उसके पीड़ा-बोधको और भी तीव्र करती है। नगरमें प्रवेश करते समय भरत इस रहस्यको तोड़नेके लिए कितने उत्सुक रहे होंगे, पर :

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुशल पूँछि न सकहिं भय विषाद मन माहिं।

भरत जानते हैं कि 'कुशल' नहीं 'अकुशल' की बात है, पर बिना जाने 'कुशल'को अकुशल मान लेनेकी अधीरता उनके चरित्रका लक्षण नहीं है, इसलिए वे 'पुरजनोंके मौन' को भी अबूझ ढंगसे ही सह जाते हैं।

सन्त्रास और निराशाकी इस स्याहीके बीच माताकी आरतीकी लौ उनके चेहरेपर कौन-सा चित्र बना गयी होगी, इसे तुलसीने नहीं बताया, पर सहृदय उस चेहरेकी कल्पना भलीभाँति कर सकते हैं।

और तब वह क्षण आता है जहाँ सन्त्रास और संकट अपनी रहस्यमयताके आवरणको उद्घाटित करता है। यह क्षण पीड़ाकी भयानकताको अपनी सही स्थिति उन्मीलित करके कम कर देता है। मनुष्य 'होनी' को अपने अस्तित्व अर्थात् होनेका अंग मानकर सन्तोष कर लेता है। भरतको बताया गया कि पिताश्री दशरथकी मृत्यु हो गयी है। घनीभूत पीड़ा अचानक एक प्रणालीमें नियमित होती जाती है। भरत रो पड़ते हैं। यहीं पीड़ाका विरेचन है। उस समय भरतको अपना अस्तित्व बिलकुल अनावृत दिखाई पड़ता है। सिरपर-से परम्पराकी छाया हट गयी है क्योंकि पिता नहीं रहे। भरत अपनेको निराधार और निरवलम्ब अनुभव करते हैं क्योंकि पिता मरते समय उन्हें रामके हाथों सौंप नहीं गये। वर्तमान और भविष्यके प्रति भरतकी यह

■ ■ ■ शान्तिनिकेतन से शिवालिक

इस शीर्षकसे आपको लगा होगा कि यह यात्रा-वृत्त है। जी हाँ, यह यात्रा-वर्णन ही है! पर यहाँ न तो यात्रा सामान्य है और न ही यात्री! यह एक साहित्य-यात्रा है : यात्री हैं हिन्दीके मूर्द्धन्य साहित्यकार आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी। यह यात्रा देशगत उतनी नहीं है जितनी कि कालगत। गत चार दशकोंकी चतुर्दिशाओं-में व्याप्त यह यात्रा समूचे हिन्दी-साहित्यकी उपलब्धियोंकी प्रतीक है और यह पुस्तक इसी कालव्यापी सारस्वत यात्राका एक जीवन्त दस्तावेज !!

सब सात खण्डों—जीवन-यज्ञ, इतिहास-दर्शन, समन्वित दृष्टि, अतीत कथा, निर्बन्ध चिन्तन, मूल्यांकन, इण्टरव्यू और पत्र—में डिमाई आकारके लगभग ४०० पृष्ठोंकी सामग्री

■ ■

शिवप्रसाद सिंह
द्वारा सम्पादित

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
की षष्ठिपूर्तिके अवसरपर

सहयोगी लेखक :

◦ परशुराम चतुर्वेदी ◦ सीताराम सेकसरिया ◦ आर्येन्द्र शर्मा ◦ माताप्रसाद गुप्त ◦ करुणापति त्रिपाठी ◦ प्रभाकर माचवे ◦ नेमिचन्द्र जैन ◦ धर्मवीर भारती ◦ जगदीश गुप्त ◦ देवराज ◦ विद्यानिवास मिश्र ◦ बलराज साहनी ◦ शम्भुनाथ सिंह ◦ नामवर सिंह ◦ रघुवंश ◦ शिवानी ◦ विजयशंकर मल्ल ◦ बच्चन सिंह ◦ कुँवर नारायण ◦ देवराज उपाध्याय ◦ रमेश कुन्तल मेघ ◦ रवीन्द्र भ्रमर ◦ रामदरश मिश्र ◦ रामसुरेश त्रिपाठी ◦ ठाकुरप्रसाद सिंह ◦ कैलाशचन्द्र भाटिया ◦ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ◦ रमेशचन्द्र शाह ◦ मालती तिवारी ◦ विश्वनाथ त्रिपाठी ◦ कृष्णनाथ ◦ विनोदिनी सिंह ◦ विवेकी राय ◦ वीरेन्द्र श्रीवास्तव ◦ कृष्णबिहारी मिश्र ◦ त्रिभुवन सिंह ◦ नवलकिशोर आदि।

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा अगस्त '६७ में प्रकाश्य

अद्वितीय
नाट्य-कृतियाँ

* * *

हिन्दी-रंगमंचकी उपलब्धिको
रेखांकित करती ये नाट्य-कृतियाँ

इन्हें पढ़ें तो उपन्यास जैसे रोचक लगेंगे और खेलेंगे तो सफल एवं प्रेरणाप्रद !

- ★ आदमीका ज़हर : लक्ष्मीकान्त वर्मा ३.००
- ★ घाटियाँ गूँजती हैं : डॉ० शिवप्रसाद सिंह २.५०
- ★ कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ३.५०
- ★ जनम क़ैद : गिरिजाकुमार माथुर ३.००
- ★ कहानी कैसे बनी : कर्तारसिंह दुग्गल २.५०
- ★ बारह एकांकी : विष्णु प्रभाकर ४.००
- ★ सूखा सरोवर : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल २.००
- ★ नाटक बहुरूपी : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ३.५०
- ★ नाटक बहुरंगी : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ४.००
- ★ सुन्दर-रस : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल १.५०
- ★ रजत-रश्मि : डॉ० रामकुमार वर्मा २.५०
- ★ प्रेत : मूल–इब्सेन, अनु०–भा० भू० अग्रवाल २.५०
- ★ चेखॅवके तीन नाटक : राजेन्द्र यादव ४.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता :: वाराणसी
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

निरव
करती
दुःख
सम्ब
वे इ
जोड़
सन्त्र
चेतन
मृत्यु
उन्हें
ताक
भरत
हेत
सचे
अर्थ
होने
ही
उसे
हैं;
इसी
से
मृत्यु
पर
जान
सह
यही
जिस
नहीं
जग
हुए
एक

म

निरवलम्बता उनके सन्त्रासका सही अर्थ व्यक्त करती है। यहाँतक यह सन्त्रास अतीन्द्रिय दुःखका कारण होते हुए भी भरतको पूर्वनिर्मित सम्बन्धोंसे विच्छिन्न (एलिनियेट) नहीं करता। वे इस पीड़ाको परिवार और रामसे अपनेको जोड़कर भलीभाँति सह सकते थे। किन्तु सन्त्रासका कारण जाननेकी उनकी स्वाभाविक चेतना इतनेसे सन्तुष्ट नहीं होती। वे पिताकी मृत्युका भी कारण पूछते हैं और जिस क्षण उन्हें पता चलता है, वे हतचेत मौन-विद्ध-से ताकते रह जाते हैं :

भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन।
हेत अपनपउ जानि जिय थकित रहे घरि मौन।।

सचेत व्यक्ति संकट और सन्त्रासका सारा अर्थ जानना चाहता है क्योंकि यह बुद्धिशील होनेका स्वाभाविक परिणाम है और जो जितना ही अधिक सचेत होता है सन्त्रासकी पीड़ाका उसे उतना ही अधिक भोग भोगना पड़ता है; यानी सचेत होनेकी यही नियति है। इसी क्षण भरतका सन्त्रास उन्हें सभी सम्बन्धोंसे काटकर अकेला कर देता है। दशरथकी मृत्युका दुःख वे रामके सहारे भुला सकते थे, पर राम-वन-गमनके लिए अपनेको उत्तरदायी जानकर वे अचानक सभी अवलम्बों और सहारोंसे अलग कट गये। भरतकी पीड़ा यहाँसे 'आउटसाइडर' की पीड़ा बन जाती है जिसे अपने दुःखमें कहीं कोई कूल-किनारा नहीं दीखता। अपने रहस्यवादी मौनमें जड़ित जगत् और अपनेको पूर्णतः निरपराध समझते हुए भी विषम सन्त्रासके भोक्ता भरतके बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी हो जाती है। यही जीवनकी निरर्थकता और विसंगति है जो अधिकतम सचेत और पूर्णतः ईमानदार व्यक्तिको ही अपना ग्रास बनाती है।

किन्तु भरत आधुनिक युगके 'आउटसाइडर' से भिन्न हैं। आधुनिक युगका 'आउटसाइडर' उपर्युक्त स्थितिसे छुटकारा नहीं पा सकता। उसके सिरसे परम्पराकी छाया तो हट ही जाती है, भविष्य भी उसके सामने औंधे शून्यसे अधिक कुछ नहीं होता। पुराने मूल्य ध्वस्त हो चुके हैं, पर नये मूल्य कभी भी उसका सहारा नहीं बनते। तुलसीके भरतके लिए सभी रास्ते बन्द थे, पर उस कुहाच्छन्न रात्रिमें भी उनके सामने एक दीपक टिमटिमा रहा था, जिसकी वदान्यतापर उन्हें विश्वास था। यहाँ आकर भरतका 'आउटसाइडर' पुनः 'इनसाइड' में प्रवेश करता है। अयोध्यामें ही एक व्यक्ति ऐसा भी था जो संकट और सन्त्रासको अपने तरहसे भोग रहा था, भरत उस मनःस्थितिमें सीधे वहीं पहुँचे और उन्होंने माता कौशल्याको देखा। कौशल्याकी दशा भरतके लिए अपने दुःखको पुनः मूल्यांकित करनेका कारण बनी। समतुल्य या अपनेसे अधिक दुःखी व्यक्तिकी पीड़ा सन्त्रासमें पड़े व्यक्तिको अपने दुःखको समझनेकी शक्ति देती है। आधुनिक युगका चरित ऐसी स्थितिमें कुछ और ही आचरण करता। या तो वह इस पूरे सन्त्रासको सन्त्रास ही नहीं मानता और कैकयीकी बुद्धिमें अपनी बुद्धिका विलय करके खुश हो लेता या फिर सन्त्रास मानता तो 'नान्यः पन्थाः' वाली मनःस्थितिमें आत्महत्याका वरण करता, उसके

लिए दूसरा पथ न होता। पर तुलसीके भरतकी निष्ठा इतनी दुर्बल न थी। कौशल्याने एक पवित्र मनीषाकी तरह उन्हें कर्मपथपर प्रेरित किया :

बन रघुपति सुरपति नरनाहू।
तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा।
तुम्हही सुत सब कहँ अवलम्बा॥
लखि विधि बाम काल कठिनाई।
धीरज धरहु मात बलि जाई॥

सन्त्रासके सचेत और सच्चे भोक्ताके रूपमें भरतकी पीड़ाकी थाह पाना वाक़ई दुस्तर है। एक ओर गुरु वशिष्ट राज्य-स्वीकार करनेके लिए पिताकी आज्ञासे टीका ग्रहण करना वेदसम्मत बता रहे हैं, दूसरी ओर माता कौशल्या राज्यसे विमुख होनेको 'कदराई' समझती हैं, ऐसी स्थितिमें भरतको अपनी 'सचेतना' ही कष्टकर लगने लगती है :

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू।
बैठ बात सब सुनऊँ सचेतू॥

जो 'सचेतना' इस विषम संकटके रहस्यको भेदकर कटुसे कटु सत्यको स्वीकार करनेमें पीछे न हटी वही 'सचेतना' इस प्रकारकी बातें सुनकर, जो भीतर और बाहर दोनोंसे उनके प्रति सदिच्छा और प्रेमके साथ कही गयी थीं, घबरा उठी। कितनी विसंगत, कितनी अर्थहीन हो जाती है यह दुनिया। भरतका सन्त्रास सहसा ही एक नयी 'दीनता'-से भर जाता है। यह दीनता उनके प्रति व्यक्त सहज सहानुभूतिके कारण पैदा हुई। इसी 'दीनता और आत्मग्लानि' के भावने उनके चरित्रको आगेके चौदह वर्षों तक अटूट सन्त्रासमें डाले रखा :

राम मातु सुठि सरल चित मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥

भरतने कभी अपने उत्तरदायित्वसे पलायन नहीं किया, अपनेको सन्त्राससे मुक्ति दिलानेकी इच्छासे कभी कोई ऐसी बात नहीं कही जो राजधर्म, लोकधर्म या समाजधर्मके विपरीत हो। सन्त्रासमें टूटते, निरन्तर विदीर्ण होते उस व्यक्तिकी यह एक अनुपम चरित्रवत्ता है कि उन्होंने अपने दुःखको न्यून बनानेके लिए मनचाही बात मनवानेके लिए हठ भी नहीं किया। बुद्धिसे विचार करनेपर, तर्कसे सोचनेपर गुरु या माताकी कही हुई बातें गलत हैं, ऐसा वे नहीं समझते, पर अपने मनके भीतर जो 'परितोष' नहीं हो रहा, उसके लिए भरत क्या करें! 'जीका यह परितोष' भरतको आजीवन कभी नहीं मिला। उन्होंने अपनी सच्चाई और निष्ठाके कारण अपने इस अमूल्य धनको खो दिया। एकबारको उन्होंने विनयपूर्वक अपने मनको परितोष देनेके लिए गुरु और माताकी आज्ञाको न मानकर वनमें जाकर रामसे मिलनेका निश्चय किया। जो भी हूँ जैसा भी हूँ रामका 'अपना' तो हूँ, इसलिए भरतको विश्वास है कि राम उन्हें त्याग नहीं सकते, पर वे ही भरत जब रामके सम्मुख आये तो यह जानते हुए भी कि उनके हठको सबसे अधिक दुलरानेवाला सामने है; कुछ बोल न सके। रामने कहा :

सो विचार सहि संकटु भारी ।
करहु प्रजा परिवार सुखारी ।।
बाँटो विपति सबहि मोहि भाई ।
तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ।।

रामने उस संकटको समझा और एक बड़ी अवधि तक भोगी जानेवाली कठिनाईको भी, फिर भरतके लिए रास्ता क्या रहा । उन्होंने प्रजा, परिवार और समाजको सुखारी बनानेके लिए अपनेको पूर्णतया संकट और सन्त्रासको सौंप दिया । आरम्भमें जो संकट आकस्मिक था, काण्टिन्जेन्सी था, वही बादमें भरतके द्वारा आत्मस्वीकृत स्वयंके प्रति स्वयंकृत सन्त्रासका रूप ले लेता है । इसी कारण बादका यह सन्त्रास सन्त्रास न रहकर भरतके लिए साधना बन जाता है । आजके चित्तको इस मोड़में आदर्शवादिता लग सकती है, पर तुलसीसे मूल्यहीनताकी आशा करना ही अन्याय है ।

रावणके द्वारा जन-जीवनपर लादे गये सन्त्रास और संकट तथा भरतके द्वारा स्वतः स्वीकृत सन्त्रास और संकटके इन दो उदाहरणोंको लेकर भलीभाँति समझा जा सकता है कि इस प्रकारकी परिस्थितियाँ मानव-नियतिको दृष्टिसे क्या महत्त्व रखती हैं । पहले प्रकारका सन्त्रास अप्राकृतिक और मनुष्यनिर्मित है । रावणके अत्याचार प्रकृति या नियतिकी देन नहीं हैं, उनका कारण और कर्ता दोनों ही मनुष्य हैं, पर उसको भोगते समय मनुष्य और देवता दोनों किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं । अपनेसे भिन्न किसी अदृश्य शक्तिको गुहारनेके अलावा कोई चारा नहीं रहता । दूसरा संकट बिलकुल घटना-संयोग है, नियति-जन्य है, उसे रोकना मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात है किन्तु उसके बीच एक व्यक्तिका भोग किस प्रकार उसे नया अर्थ दे देता है और मनुष्य उसे अन्तमें अपने नियन्त्रणमें कर लेता है, साधना बना लेता है । तुलसीने पहले प्रकारके सन्त्रासको चित्रित करनेका अभिनिवेश नहीं दिखाया । उस युगकी साहित्य-परिपाटीमें शायद उसका उतना आकर्षण नहीं था । शायद तुलसीकी मनःस्थिति उस समस्यासे टकराना नहीं चाहती थी । आधुनिक साहित्यके लिए, खास तौरसे युरॅपीय साहित्यमें, पहले प्रकारका सन्त्रास साहित्यकारके लिए ज्यादा सटीक चुनौती प्रतीत होता है । दो महायुद्धोंकी छायासे आक्रान्त युरॅप पहले प्रकारके सन्त्रासको समझने और विश्लेषित करनेकी बाध्यता स्वीकार करता है । नाजियोंके आक्रमणोंसे सन्त्रस्त फ्रान्समें इसी कारण समूह सन्त्रासपर ज्यादा महत्त्वपूर्ण कृतियाँ लिखी गयीं ।

आजका भारतीय जीवन भी निरन्तर समूह सन्त्रासकी ओर अग्रसर हो रहा है । व्यक्तिगत और समूहगत दोनों ही तरहके संकट और सन्त्रासको समझनेकी परिपक्व दृष्टि आजके भारतीयके लिए एक अपरिहार्य अनिवार्यता हो गयी है । हमारे प्राचीन साहित्यमें इस समस्यापर कम विचार नहीं हुआ है, उसे नये सन्दर्भोंमें परीक्षित और विश्लेषित करनेकी आवश्यकता है । इति ।

■ ■

कामाकोठी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-५

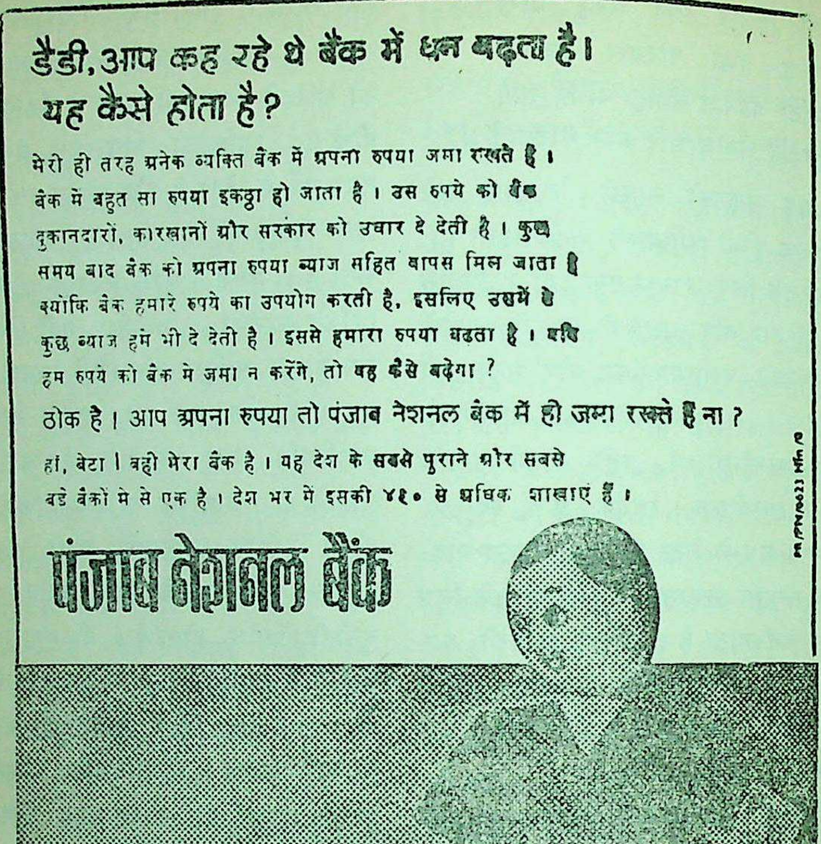

डैडी, आप कह रहे थे बैंक में धन बढ़ता है।
यह कैसे होता है?

मेरी ही तरह अनेक व्यक्ति बैंक में अपना रुपया जमा रखते हैं। बैंक में बहुत सा रुपया इकट्ठा हो जाता है। उस रुपये को बैंक दुकानदारों, कारखानों और सरकार को उधार दे देती है। कुछ समय बाद बैंक को अपना रुपया ब्याज सहित वापस मिल जाता है क्योंकि बैंक हमारे रुपये का उपयोग करती है, इसलिए उसमें से कुछ ब्याज हमें भी दे देती है। इससे हमारा रुपया बढ़ता है। यदि हम रुपये को बैंक मे जमा न करेंगे, तो वह कैसे बढ़ेगा?

ठीक है। आप अपना रुपया तो पंजाब नेशनल बैंक में ही जमा रखते हैं ना?

हां, बेटा। वही मेरा बैंक है। यह देश के सबसे पुराने और सबसे बड़े बैंकों मे से एक है। देश भर में इसकी ४१० से अधिक शाखाएं हैं।

पंजाब नेशनल बैंक

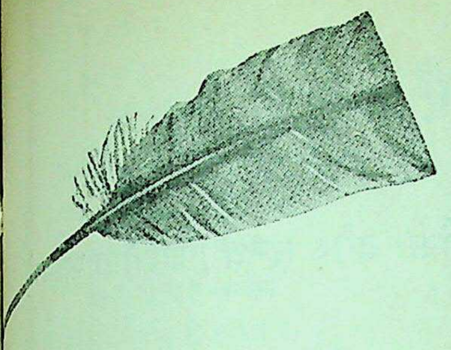

युवालेखन : ६—मराठी

●

[जिस तरह हिन्दीका पाठक बँगला, गुजराती और पंजाबी तथा उर्दू-युवालेखनके नज़दीक है उस तरह मराठी-युवालेखनको वह नहीं जानता। मूल कारण वही है जो बँगला अनुवादोंका है कि कुछ सुप्रसिद्ध नाम बार-बार सामने आते हैं और यह पता ही नहीं चलता कि उस भाषाका युवक कितना संघर्षशील और कितना जीवन्त है। बम्बईसे प्रकाशित मासिक 'सत्यकथा' पढ़नेवाले व्यक्ति नये लेखनको ठीकसे पहचान सकते हैं। इस वर्ष उस पत्रिकामें एक चर्चा चल रही है : 'साहित्यातील बीभत्स गारठा'। लेखक हैं दि० के० बेड़ेकर। उन्होंने नये लेखकोंपर प्रहार किये हैं, उन्हें झूठा और अप्रामाणिक बताया है। वहाँ नये लेखकोंने जमकर उत्तर दिये हैं और कहा है, तथाकथित 'टिकणे, वाढणे, थकणे, मरणे' से अलग सी कुछ है। अशोक शताणेकी छोटी पत्रिका 'असो०' प्रमुख है नये क्षितिजोंको समझनेके लिए। हमने 'असो०' से ही कविताएँ ली हैं। कहानी नहीं दे रहे हैं—किसी जमी-जमायी कहानीकी बजाय हम एक 'ललित गद्य' दे रहे हैं—लग सकता है कि वहाँ 'अकथा' लिखना ज़्यादा सरल है क्योंकि हिन्दीका ललित गद्य विकाससे पहलेकी स्थितिमें है और मराठीका ललित गद्य विकासके बादका चरण।

सारे अनुवाद दिनकर सोनवलकरने प्रस्तुत किये हैं।—सं०]

६ कविताएँ

पैसा और धुन्ध / अशोक शहाणे

आज पैसे मिलने का वादा था
दे दिये उसने रुपये
सावधानी से गिन कर ।
एक-एक नोट गिन रहा था वो
मैं देखता था—
मेरी आँखें
जैसे नशे से धुँवआ रही थीं ।
पैसे ले लिये मैंने ।
यूँ मुझे बार-बार पैसे नहीं मिलते
हर महीने भी नहीं ।
इसीलिए बेहोश आँखों से
पाकिट में रख लिये मैंने
फिर भटकने लगा यूँ
मानो अभी भी
ख़ाली ही हो जेब ।
—हमेशा की तरह
पैसे के अभाव में
सतायो गयी ।

फिर भी मेरी आँखों में
छा रही थी धुन्ध
जब वो गिन रहा था
रक़म ।

अभी भी शायद
आँखों में वही धुन्ध है
आदत हो गयी है
इन्द्रियों को
ख़ास-ख़ास संवेदनों की ।
आज फिर
उसकी चिट्ठी लेकर
आया है एक आदमी
पैसे वापस मँगाये हैं फ़ौरन !

उस रक़म में-से
दो रुपये
ख़र्च कर चुका हूँ मैं
लेकिन वापिस करनी पड़ेगी
पूरी राशि—
और
वो दो रुपये
चुकाने की ख़ातिर
मुझे करनी पड़ेगी
उसकी ग़ुलामी
जिन्दगी भर ।

मेरी आँखों में
फिर एक धुन्ध
भर आती है ।

■

मरलिन मॅनरो / शरद मन्त्री

जब
तेरे रुपहले केशों वाले
छोटे राजहंस ने
हवा की तेज़ धार को काट दिया
तब आकाश भी
बौना हो आया ।
चारों तरफ़ फड़फड़ाने लगे
तेरी मुसकराहटों के
सफ़ेद कबूतर
और शराब की झागवाले झरने
बहने लगे सभी ओर ।
अपने नितम्ब-घटों को सँभालती
नागिन की तरह बल खाती

जब तू गुज़री
तेरे चरणों की शहद के नीचे
राह भी अलसा उठी
और जाग उठी
दसों दिशाएँ
अँगड़ाइयाँ लेकर।

उस दिन
तेरे लाल, लालसा भरे ओठों ने
समर्पित किया
एक जलता हुआ चुम्बन
इस नंगी धरती पर
तब तेरी समस्त इच्छाओं की पीक
भर गयी तेरे मुँह में;
जिसे भीतर-ही-भीतर
पी लिया तूने।
लाखों प्यासी नज़रों ने
तेरे मादक अंगों की लपटों को
महसूस किया
तब तेरी विशुद्ध भावनाओं की
बन गयी एक क़ब्र।
संगमर्मर पर बैठ कर
उलूक छेड़ रहा था—
एक अनाम रागिनी
रात के काले अँधेरे खर्ज में।
तेरे रुपहले लावण्य की
ख़ुशबू भरी चादर
फैल गयी जड़-प्रकृति पर
तब तेरे अन्तर्मन में
सांय-सांय करती दोपहरी
शीतलता खोज रही थी
महासागर की अनथाही
गहराई में।

रूप गर्व से तने हुए
अपने दुर्दमनीय व्यक्तित्व पर
चढ़ा ली तूने
बेरंग वैराग्य की भस्म !

जन्म-भर दिगम्बर रही
दिगम्बर ही मरी !
■

एक
आवश्यक
सूचना
■ ■

इस वर्ष
भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित
एक लाख रुपये पुरस्कारसे सम्मानित
मूर्द्धन्य बंगला उपन्यासकार
ताराशंकर वन्द्योपाध्याय
के अनुपम उपन्यास
गणदेवता
का हिन्दी रूपान्तर
भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा
शीघ्र ही प्रकाश्य !
'गणदेवता' के इस
हिन्दी रूपान्तरमें उपन्यासके दोनों खण्ड—
'चण्डीमण्डप' और 'पंचग्राम'
एक साथ
हिन्दीमें प्रथम बार प्रस्तुत !

प्रत्येक सुरुचि-सम्पन्न पाठकके लिए
भारतीय साहित्यकी यह अद्वितीय कृति
एक बड़ी अनिवार्यता है ! ···
अपनी प्रति कृपया अभीसे सुरक्षित करायें

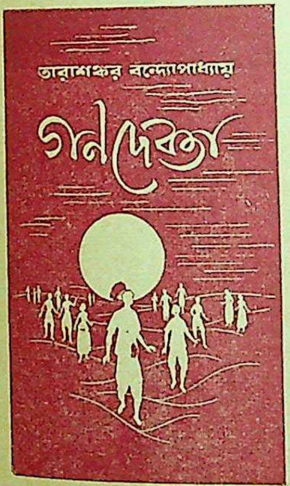

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६ ।

विवेक के रंग

स्व. डॉ. देवीशंकर अवस्थी

द्वारा सम्पादित

हिन्दीमें अपने प्रकारकी एकमात्र
ऐतिहासिक महत्त्वकी पुस्तक

समकालीन विशिष्ट कृतियोंपर प्रकाशित गणनीय समीक्षाओंका संकलन : अर्थात् गत बीस वर्षोंकी साहित्य-यात्राकी उपलब्धियोंका विवेकपूर्ण अध्ययन - मूल्यांकन।

मूल्य ७.००

■ ■

प्रत्येक साहित्य-प्रेमी पाठक और पुस्तकालयके लिए अनिवार्य।

भारतीय ज्ञानपीठ
प्रकाशन

विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-६

• मृत्यु-विस्मृति / रघु दण्डवते

अब ये तय हो गया है
कि मेरी हत्या कर दी जायेगी ।
मां-बाप
भाई-बहिन
परिचित-हितचिन्तक
सभी की स्वीकृति है इस शुभ कार्य में ।
और मुझे ये सब मालूम है
और वे भी जानते हैं
कि मैं ये सब जानता हूँ ।
'कब' और 'कहाँ'
ये तय होगा बाद में ।

रोज़ बान्द्रा पर से गुज़रती है
जब लोकल
स्टेशन के पास का श्मशान
बग़ैर चूके देखता हूँ ग़ौर से ।
कभी दोपहर की धूप में
रची हुई चिता दिखाई देती है
कभी रात में देखता हूँ
ऊपर उठती हुई लपटें ।

चिलचिलाती धूप में
(गाड़ी के पायदान पर लटके हुए)
देखा था एक बार
सामने की पटरी के पास
लाल मांस का लोथड़ा
पड़ा था प्रेत होकर ।
और आसपास
हत्यारों की
एक बड़ी भीड़ जमा थी ।

मेरा एक दोस्त
परसों ही मिला
कहने लगा,
"कुछ सुना तुमने
उस दुर्घटना के बारे में—
वो था न
अपना सहपाठी,
परसों उसका खून हो गया
तुम्हें याद है उसकी
अपने साथ ही पढ़ता था....."
[नहीं मुझे याद नहीं आता]

"अरे भाई वो
कालेज में अपने साथ ही
तो था
तुम्हें ज़रा भी
याद नहीं आता ?"
[नहीं, मुझे कुछ भी याद नहीं]

मैं कब का
भूल चुका हूँ
सभी बातें
फ़िज़ूल है कुछ याद रखना
आखिर
यहाँ कौन
किसकी अर्थी का
रखता है हिसाब ?

■

• और बुझ गये दिये /

अरुण कोलटकर

कुछ सड़ने की दुर्गन्ध आती है
और मैं जेब से
रूमाल निकालने लगता हूँ
तभी मेरी छिंगुली
नीचे गिर पड़ती है;
मैंने दूसरे हाथ से उसे उठाया
और रूमाल नाक पर धरूँ
तभी नाक ही फिसलकर
रूमाल में आ गयी।
मैंने उसे लपेटकर
जेब में डाल लिया।

कुछ सड़ने की दुर्गन्ध
अभी भी आ रही थी
लगातार
पाकिट के भीतर-ही-भीतर
नाक सिकोड़ी;
—कहीं मेरी छिंगुली में ही
कीड़े तो नहीं पड़ गये ?—
इस आशंका से
जब तक देखूँ
तबतक लाइट फेल हो गयी
और बुझ गये दिये !
■

• रास्ते / सुधीर कोलटकर

आखिर
बस पहुँच ही जाती है
कुम्भार वाड़ी
रास्ते और गलियाँ
पार करती हुई—
आड़े वक़्त
इन बदनाम गलियों में
मिल जाती हैं
सभी चीज़ें।
शायद मिल जाय
हनुमान की नीली घोड़ी भी
और वो भी निहायत सस्ती।
कुछ कहा नहीं जा सकता।

बक-बक करने वाली मशीनें
और मज़दूर
पैदा करते हैं सन्तति
सड़े-गले खम्भों वाली
आश्रयदाता खोलियों में।
मगर इस इलाक़े में भी
है एक मैदान
जहाँ उबलती है
बे-सहारों की ज़िन्दगी
और नेताओं की दलीलें।

वहीं कोने में
स्थित है
कांक्रीट का सण्डास
सांस्कृतिक कार्य-क्रम
सम्पन्न करने हेतु !
■

हमें मनुष्य-जन्म मिला

वसन्त दत्तात्रय गुर्जर

हमें आदमीका जन्म मिला, यानी मनुष्य-योनि । अच्छा हुआ । हम बोल सकते हैं, पढ़ सकते हैं, और सुन भी सकते हैं । इतना ही नहीं, हम मनुष्योंमें रह सकते हैं । नहीं तो ये पशु पक्षी बेचारे सिर्फ़ देखते हैं, सुनते हैं; बग़ैर समझे-बूझे । हमें मनुष्य-जन्म मिला । हम धन्य हुए ।

हमने प्रेम किया । सुन्दर लड़कीसे । यह बात भी शुभ हुई । बहुतोंने इसे उपलब्धि समझा और शोर मचाया । वैसे भी ये बात छिपानेमें फ़ायदा ही क्या था ? एक-न-एक दिन दुनिया जानेगी ही । हमने प्रेममें धोखा खाया । ये बात भी कुछ लोगोंको बतायी । दोष किसीका भी नहीं था । जो कुछ होता है, भलेके लिए होता है । अब नहीं करेंगे प्यार-मोहब्बत । वैसी इच्छा होगी तो भी नहीं ।

हमें मनुष्यका जन्म मिला । अच्छा हुआ । हम चीख सकते हैं, गा सकते हैं, हँस सकते हैं, रो सकते हैं । कभी-कभी जान बूझकर ये सब तमाशे करना पड़ते हैं । पड़ोसके घरका आदमी भगवान्‌को प्यारा हो जाता है, तब रोना पड़ता है, क्योंकि सब रोते हैं, इसलिए । न रोयें तो कहते हैं, ये भावनाहीन पत्थर है । मेरे मरनेपर लेकिन कोई भी न रोये । न तो सचमुच; न बनावटी । क्योंकि सभीको जाना पड़ता है ईश्वरके पास । फिर रोना क्यों और किसलिए ? कोई पैदा हुआ और मौत आने तक जिन्दा रहा और मर गया । बस इतनी ही बात । उसे कुछ करना चाहिए—वो भी इसी अन्तके लिए ही ।

हम हँस सकते हैं । केलेके छिलकेपर जब नायलॉनी युवती फिसलती है उस वक़्त । सचमुच कितना सुख मिलता है यह तमाशा देखकर । हम हँसते हैं । और हँसना ही चाहिए उन महिलाओंपर जिन्हें ऊँची एड़ीके सेण्डिल पहिनकर चलनेकी तमीज नहीं । लेकिन नहीं । एक तरहसे हमारी भी ग़लती है शायद । लिपस्टिकसे ओठ काले न पड़ें और किसी युवतीकी शान बढ़ती हो, तो ज़रूर लगाना चाहिए ।

ऊँची एड़ीके सेण्डिल पहिनकर चलते बनता हो तो जरूर पहनना चाहिए।

हमें मनुष्य-जन्म मिला। अच्छा हुआ। आँखोंमें नशा भरनेवाले क्षणोंको हम पकड़ सकते हैं। कित्ता-कित्ता सुख मिलता है तब। कैसी गुदगुदी उठती है मनमें। कोई अपरिचित लड़की रास्तेमें मिलती है, और कहती है—'अच्छा उस दिन वो आप ही थे उस समारोहमें ? आप ही ने पढ़ी थीं कविताएँ। मुझे खूब-खूब मन भायीं। कैसे लिखते हैं आप लोग ? कैसे कर लेते हैं शब्दोंके ये जादू ?' एकके बाद एक प्रश्न। उत्तर एक-जैसा। अब जरा सतर्क रहना चाहिए। प्रेम-व्रेम कुछ नहीं। प्रेमकी अनुभूति हो तो भी नहीं। अच्छी लड़की है। मैं भी अच्छा हूँ। सभी आदमी अच्छे हैं। हमें मनुष्य-जन्म मिला। यह भी अच्छी बात है। कभी मूड आया तो हम गाते भी हैं। अपनी और दूसरोंकी कविताएँ। उस वक़्त मीठा गला न होते हुए भी अपनी आवाज़ सुरीली लगती है। कैसा प्यारा चमत्कार है। हम गला फाड़कर चिल्ला भी सकते हैं। वेतन-वृद्धि होना ही चाहिए। फ़लाँ होना ही चाहिए। ऐरे-ग़ैरेकी दादागिरी नहीं चलेगी। नहीं चलेगी ! जो हमसे टकरायेगा—मिट्टीमें मिल जायेगा। हमारी माँगें पूरी करो—नहीं तो कुरसी छोड़ दो। फ़लाँ साहब—मुर्दाबाद। अमुक महाशय—जिन्दाबाद ! हम चिल्ला सकते हैं !

आदत तो बस आदत है। सबेरे दाँत घिसते हैं। कीड़े न पड़ें, इसलिए। टीनपाट लेकर क्यूमें खड़े रहते हैं। पेट साफ़ रहे, इसलिए। नहाते हैं। बीमारीसे बचनेके लिए। सबेरे अखबार पढ़ते हैं। दुनियाके समाचार जाननेके लिए। फिर दस बजते ही भोजन करते हैं। जिन्दा रहनेके लिए। फिर ऑफ़िस जाते हैं। क़लम घिसते हैं। एक सौ साठ रुपयोंकी खातिर। शामको घर आते हैं। माँ-बापने जिस कन्याके साथ ब्याह रचा दिया है, उसे लेकर घूमने जाते हैं। चौपाटीकी सैर करते हैं। नारियलका पानी पीते हैं। घर लौटकर फिर भोजन करते हैं। मैं अपने बिस्तरपर सोता हूँ। वो अपने बिस्तरपर सोती है। आदतके मुताबिक़ मैं उसके बिस्तरपर पहुँचता हूँ। कभी-कभी वो भी मेरे बिस्तरमें आ जाती है। लेकिन सुबह। वो अपने बिस्तरपर रहती है। मैं अपने। माँ भीतरके कमरेमें होती है। पिता गैलरीमें। फिर मैं दरवाज़ा खोलता हूँ। दूधकी बोतलें लेता हूँ। पिछली रातवाली क़मीज़ पहनता हूँ। तीन ज़ीने उतरकर, दुग्ध-केन्द्र पर पहुँचता हूँ। सवा रुपया फेंकता हूँ। दो बोतलें लेता हूँ दूधकी। तीन ज़ीने चढ़कर पहिले कमरेमें आता हूँ। तब बीवी स्टोव्ह सुलगाती है। फिर मैं दाँत साफ़ करने चल देता हूँ। फिर पहले दिनका चक्र शुरू हो जाता है।

हमें आदमीका जनम मिला ! अच्छा हुआ। हम आदमीकी तरह ही मर जायेंगे। ये भी कितनी अच्छी बात है। तीन मुँह और छह हाथोंवाला भगवान् मुझे शान्ति दे। ये भी अच्छा है। ईश्वर मेरी आत्माको शान्ति एवं सद्गति प्रदान करे। ■■

दो कविताएँ

मैं ही नहीं बनी थी परी

शकुन्त माथुर

●

नियन लाइट की धूप
सफ़ेद फूलों के गुच्छे
रंगदार पानी के बुल्ले
बड़े-बड़े लैम्पशेडों में
सोने के चांद
टके सितारे
और झिलमिलाते
नाच रहे थे जहाँ बहुत सारे रंग
एक साथ छल्लों में
बहुत सारी थीं परियाँ
उस मन्द जलती आग के नीचे
कुछ थीं उस बार के पीछे
सिर्फ़ मैंने नहीं ली थी
सिर्फ़ मैं ही नहीं बनी थी रंग
सिर्फ़ मैं ही नहीं बनी थी परी

पर
चाँदनी
अलग नहीं थी
मन्द जलती आग की गरमाई से
बची नहीं थी
एक बेले का फूल
मैं भी थी कोई परी
जिसे परी नहीं कहते
मैं भी थी कोई रंग
जिसे रंग नहीं कहते
अपने ही लगाये यूक्लेप्टिस के पेड़
एक दूसरे में उलझ
झुरमुट बन गये हैं
भूरे रंग का दिन
भूरे रंग में डूबता है
धूप की बत्तख
धूप में तैरती है

■

२० बारादरी,
डी० सी० रोड,
जालन्धर

मुश्किल सम्बन्धों का देश

पद्मधर त्रिपाठी

●

काश—

कोई महसूस करता

पीली पत्तियों पर फैलती
बुझती धूप की
मर्यादातीत थरथराहट !

काश पढ़ सकता—
आसपासी अनियन्त्रित समूह यह
किसी मामूली-मैं के दिमाग़ की
ऐंठन और सनसनाहट !

थाह लेता
कोई भी तो काश—
तर्कातीत चेहरों के नीचे की
अध-दिखती सागर-गहराइयाँ;
और सुनता चुपचाप—समझता
रंगीन पृष्ठों पर छपे आकाश में
बौखलाये आहत संकल्पों की
बेलौस चीखें।
और काश— दफ़ना दी जातीं
ऐय्याश मुरदों की सहज सीखें !

—सचमुच कब होगा यह सब ?…
कब बदलेगा
मुश्किल सम्बन्धों का देश !
कब टूटेगा
विकृतियों का यह परजीवी परिवेश !

■

भारतीय ज्ञानपीठ,
वाराणसी-५

अनन्त शुभकामनाओं सहित

अमिताभ टेक्सटाइल मिल्स लिमिटेड

प्रेमनगर, देहरादून

तार : अमिताभ

फोन : निवास : ९९०
कार्यालय : ८२४

१९६६ के हिन्दी उपन्यास :

शीर्षकहीन चर्चा-२

—गंगाप्रसाद विमल

मध्यवर्गको 'कुलीनता' के क्रमशः ध्वंसके इस इतिहासके बाद यदि हम कुछ अपेक्षाकृत युवा कथाकारों की रचनाएँ देखें तो 'निराश' होनेके अतिरिक्त कोई और रास्ता नहीं दिखाई देता ।

लोग :

'लोग' गिरिराजकिशोरका उपन्यास है जिसमें उच्च वर्ग और उच्च मध्यवर्गसे सम्बन्धित एक 'वर्ग विशेष' की कथा है। कथामें उस वर्ग विशेष की 'आकांक्षाओं'-का ही एक लम्बा परिवृत्त है। पूरी कथा प्रभावहीन प्रसंगोंसे भरी पड़ी है। युवा लेखनको यह वृत्ति न वैचारिक स्पष्टताका कोई अगला क़दम है और न ही जीवनके उस संघर्षके बारेमें कुछ बताती है जिससे जीवनकी असामान्य चुनौतियों और समस्याओंसे परिचय मिलता है। बेहद शिथिल और उदास वातावरणको 'पेण्ट' करनेवाली इस कृतिमें 'विरोध' या 'विद्रोह' का भी जो स्वर मिलता है वह 'प्रतिक्रियावादी' अधिक है। 'गिरिराजकिशोर' की कहानियाँ जो सम्भावनाएँ लेकर आयी थीं, उपन्यास उन सम्भावनाओंपर विराम लगानेवाला ही कथाक्रम है। परन्तु इस तरहका शैथिल्य होनेपर भी, सम्भावनाकी समाप्तिकी सूचक होनेपर भी, कथामें जिस पतनशील 'रायसाहब' वर्ग की आकांक्षाओं की तसवीर है, वह (कलात्मक जुडावका अभाव होनेपर भी) अपने ही ढंगकी एक कथा है। भाषाकी दृष्टिसे गिरिराजकिशोरकी यह कृति अवश्य उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें भाषाका

सहजपन और कहीं-कहीं पैनापन वर्तमान है। परन्तु उल्लेख योग्य बातें इतनी गौण हैं कि उनमें 'कथा'के मूल स्वरमें किसी 'नवीनता' के न होनेका पूरक-भाव नहीं है। जिस वर्गमें गिरिराजकिशोर 'आधुनिक परिवर्तन'की इन चुनौतियोंकी शक्ल देखना चाहते हैं उनमें-से 'लोग'के रायसाहब अपवाद हो सकते हैं किन्तु इस वर्गकी अवसरवादी मनोवृत्तिने भारतीय राजनीतिको जो भ्रष्ट शक्ल दी है, उस इतिहासको सहज ही भुलाया नहीं जा सकता। यदि यह कहा जाये कि यह अपवादकी कृति है, तब 'कथा-क्रम'के बारेमें पुनर्विचारकी गुंजायश हो सकती है, तब उस उदास भाव, उस छूटसे जानेके अनुभवकी संगति उभर सकती है परन्तु वे 'लोग' मूल्यहीनता, अरक्षा और विघटनकी आशंकाओंसे त्रस्त हों, यह गिरिराजकिशोरका अपना शोध है। वस्तुतः मूल्यहीनता, असुरक्षा आदि तत्त्व 'टूटने' के बाद यदि अनुभव किये जाते हैं, तो जिस व्यवस्थासे आदमी टूटा है, वह उसीमें जुड़नेका संघर्ष करेगा जब कि आधुनिक सन्दर्भोंमें विघटनकारी प्रवृत्तियोंसे, जहाँ-जहाँसे हमारा बौद्धिक मानस टूटा है, उसमें फिर वहीं जुड़नेकी आकांक्षाएँ नहीं हैं। यदि इस कृतिको 'नये' लेखककी कृतिके रूपमें न देखा जाये और इसे 'पुरानी परम्परा' से, पुराने लेखनसे जोड़ा जाये, तब इसकी 'कथात्मक सपाटता' पुराने लेखनसे सम्बद्ध है परन्तु 'नये लेखक'की कृतिके रूपमें भी, समस्याओंके प्रति प्रतिक्रियाके रूपमें, अनुभवके दुहरावके रूपमें 'लोग' पुरानी रचना लगती है।

अपवाद के वर्गकी कथाके रूपमें जिस 'यथार्थ'को गिरिराजकिशोरने 'लोग' में चित्रित किया है, उसके प्रस्तुतीकरणमें निस्सन्देह दूसरे उपन्यासकारोंसे अलगाव है। परन्तु वह 'यथार्थ' संवेदनाके धरातलपर आधुनिकताकी पुष्टि न पाकर संघर्षहीन टूटन ज़्यादा है, कलात्मक रूपोंमें अपने परिवेशकी विश्वसनीयताके बावजूद बाहरी आरोपण न लगते हुए भी अनुभवकी तीव्रताके अभावसे ग्रस्त उपन्यास है। 'अपवाद चरित्रों' को लेकर कोई आधुनिक कथाकार जब कथा या 'चरित्र' का नियोजन करेगा तो इस तरह 'गरिमामय' ढंगसे प्रस्तुत नहीं करेगा जिस तरह 'लोग' में है अपितु वह उस समाजकी समग्र पंगुताको व्यक्त करनेके लिए उनकी आधुनिक संगतिका अन्वेषण करेगा।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि 'लोग' में एक बच्चेके द्वारा देखे गये 'समाज' का चित्रण है। वे सब उसके अबोध अनुभवका दृश्य-संसार है किन्तु यहाँ इस सन्दर्भमें एक बुनियादी ग़लतीकी तरफ़ ध्यान जाता है कि समग्र भाषागत सफ़ाईके होते हुए भी एक अबोध बच्चे-द्वारा विचार और अवसादकी बोझिल भाषाका प्रयोग कैसे किया जा सकता है? केवल वैचारिक बल्कि शिल्पगत अन्तर्विरोधकी यह झलक एक 'विघटनकारी प्रवृत्ति' को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सकती। वातावरणके अनुकूल सृजनमें, भौगोलिक स्थितिमें विश्वसनीयताका भ्रम बना रहता है किन्तु वह तब एकदम टूट जाता है जब 'अनुभव' के धरातलपर अनेक विरोधाभास स्पष्ट

होने लगते हैं ।

शरीफ़ोंका कटरा :

दो उपन्यासोंकी तुलनाकी पद्धतिका महत्त्व एकेडेमिक समीक्षाके लिए हो सकता है, किन्तु यहाँ दो लेखकोंके प्रसंगमें उसका उपयोग खास प्रयोजनकी सिद्धि कर सकता है–यदि मन्मथनाथ गुप्तके उपन्यास 'शरीफ़ोंका कटरा' और गिरिराजकिशोरका 'लोग' की तुलना की जाये । मन्मथनाथ गुप्तकी गद्यभाषा और युवा लेखक गिरिराजकिशोरकी गद्यभाषामें पर्याप्त अन्तर है । यह अन्तर 'थीम' के नियोजनसे लेकर अनेक पक्षोंमें भी दिखाई देता है । दोनों 'उपन्यास' रचनाकी दृष्टिसे कमज़ोर रचनाएँ हैं किन्तु उक्त तुलनाके आधारपर प्रतिष्ठित क्रान्तिकारी लेखककी रचना चर्चाके योग्य नहीं जान पड़ती जबकि सारी कमियोंके बावजूद गिरिराजकिशोरका उपन्यास चर्चाकी अपेक्षा रखता है । 'शरीफ़ोंका कटरा'की कथा प्रेमचन्द-परम्पराकी कथा है, और कहा जाये तो वह 'कथा रूढ़ि'की परम्पराकी कथा है। अरुण, रमा, मौसी, डॉक्टर माथुर, विद्यानिवास, सुहासिनी और जगन्नाथ-जैसे चरित्रोंमें जिस तरहके घटनाक्रमका संयोजन उपन्यासकारने किया उससे लगता है कि कथाकार विशेष उद्देश्यवादी कहानी लिखना चाहता है । सुहासिनी निम्नजातिकी महिला है, जगन्नाथ उसे भगाकर ले आता है और शादीके बाद स्वीकार कर लेता है किन्तु 'जीवन' का पूरा संघर्ष बहुत ही सतही ढंगसे जगन्नाथमें 'खल' पात्रकी परिकल्पना-द्वारा उठाया गया प्रतीत होता है । एक खल पात्र-द्वारा सारी सामाजिक चर्या भ्रष्ट करनेका जो काम हो सकता है, अनेक बार उसीपर लेखकका ध्यान केन्द्रित रहा है । पुराने प्रगतिशील लहजेमें इस उपन्यासको 'यथार्थवादी' उपन्यास कहा जा सकता है, किन्तु इस उपन्यासके लिए 'यथार्थवाद' की इसीके अनुकूल व्याख्याएँ करनी पड़ेंगी ।

'अनुभव-संसार' की जहाँतक बात है, इस उपन्यासमें बेहद बासी सामाजिक समस्याओंको उठाया गया है और उन्हें जिस संयोगवादी तिलिस्मी चक्र-द्वारा लेखकने गतिमय बनाया है वह आश्चर्यजनक है। जैसा हमने कहा, इस उपन्यासमें चर्चाकी अपेक्षाएँ कम हैं क्योंकि यह उन सामान्य उपन्यासों-जैसा भी नहीं है, जिनकी कमियोंमें भी कुछ विशेषताएँ या कुछ 'उत्तेजक' अपेक्षाएँ रहती हैं।

जिन दो उपन्यासोंकी हमने चर्चा की, उनका 'रचना संसार' बहुत सीमित तो है ही किन्तु उसमें वैचारिक, बौद्धिक उन्मेष भी सीमित है । 'उपन्यास' कहनेसे पहले उक्त दो रचनाओंको हमें परम्पराके उन उपन्यासोंके सन्दर्भमें अलग मानना पड़ेगा जो 'कलात्मक' अभिरुचिका मानक बननेकी प्रक्रियाके अंग हैं ।

तिन्नी :

सोमा वीराका उपन्यास तिन्नी विदेशी पृष्ठभूमिपर लिखा गया उपन्यास है । 'पोर्टोरिकन्स' की दिनचर्याको भारतीय चश्मेसे

देखनेका प्रयास अपने-आपमें एक नया अनुभव हो सकता था किन्तु ऐसा लगता है जैसे इस उपन्यासमें संज्ञाएँ, रमेश-हमीदाको छोड़कर, विदेशी हैं किन्तु 'अनुभव-लोक' किसी जासूसी उपन्यासका है। हिन्दीमें विदेशी पृष्ठभूमिपर लिखे गये उपन्यासोंमें अबतक सबसे कमजोर उपन्यास यह होगा, ऐसा कुछ तो आसानीसे नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि यह उपन्यास सशक्त कृति नहीं है। निर्मल वर्माके 'वे दिन' की तुलना यद्यपि इस उपन्याससे नहीं की जानी चाहिए किन्तु निर्मल वर्माके उपन्यासको यदि उपन्यास माना जाता है तो 'तिन्नी' को उपन्यास नहीं माना जाना चाहिए, उसे विदेशी तस्कर-व्यापारका जासूसी कथाक्रम कहना चाहिए। सोमा वीराका नाम हिन्दीकी महिला-लेखिकाओंमें इसलिए ज्यादा चर्चित है क्योंकि उन्होंने महिला होते हुए भी 'रचनात्मक प्रबुद्धता' के अनेक सबूत अपनी कहानियोंमें दिये हैं किन्तु यह उपन्यास 'रचनात्मक प्रबुद्धता' की हर अनुकूलताके विपरीत जा पड़ता है। यदि उपन्यासकी विशेषता रोचकता, 'सस्पेंस', प्रेमालापका भ्रम होती हैं तो तिन्नीपर 'बौद्धिकता' का आरोप नहीं लगाया जा सकता और उसका विवेचन इन पंक्तियोंके लेखकके अनुक्रममें नहीं किया जा सकता। 'तिन्नी' अपने परिवेशकी विचित्रतासे चौंकाता भी नहीं है, इसलिए यह फीका-फीका भी लगता है। सही बात तो यह है कि 'तिन्नी' के लिए भी विवेचनकी सुविधाएँ, और अपेक्षाएँ कम हैं। इस उपन्यासको समस्या 'तस्कर-व्यापार' से लेकर 'आत्महत्यामें अवरोध' तक है, किन्तु इन समस्याओंका संस्पर्श आधुनिकतासे नहीं है, आधुनिकतावादी फ़ैशनसे हो तो वह अलग। 'तिन्नी' का सारा जीवन अस्वाभाविक इसलिए लगता है कि उसमें आधुनिक पश्चिमी समाज-जैसी तटस्थता, 'थ्रिल' और मूल्यहीनताका खोखलापन नहीं है, अपितु उसमें अजीब-अजीब तरहके मूल्यहीनताके दर्दका आभास होता है। 'तिन्नी' के कथानायक पढ़े-लिखे, तकनीकी जगत्से परिचित होनेपर भी प्रबुद्ध नहीं हैं, बल्कि वे नितान्त सामान्य हैं।

उपन्यास-रचनामें यह 'रचनात्मक अराजकता' न तो किसी शिल्पगत वैशिष्ट्यको जन्म दे पाती है और न ही किसी तरहके नये अनगढ़ 'थीम्स' के प्रयोग कर पाती है। इस रचनात्मक अराजकतासे सपाट कथाएँ अनुभवहीन संसारको चित्रित अवश्य करती हैं किन्तु उनका प्रभाव न 'परम्पराके भंजक' के रूपमें पड़ता है और न परम्पराको नवीनतासे मण्डित करनेके रूपमें।

मन वृन्दावन :

उपन्यास-रचनाकी इन असफल कृतियोंके बीच डॉ० लक्ष्मीनारायण लालकी कृति 'मन वृन्दावन' भी किसी तरहकी अलग कृति नहीं है। उसमें प्रसंग-कथाओंका अनर्गल, भाषाकी पुनरावृत्तिके प्रयोग इतने भरे पड़े हैं कि उनके बीच जो कथा उभरती है वह एकदम 'रोमाण्टिक' व्यक्तिकी 'प्रेम-कथा' या 'प्रेम-पीड़ा' है। लक्ष्मीनारायण लालके 'आंचलिक

उपन्यास' का शिल्प इस उपन्यासमें सिर्फ़ 'भाषागत प्रयोग' के रूपोंमें उभरा है, संवेदना-की दृष्टिसे उसमें केवल मध्यकालीन मनोवृत्ति-के कुछेक मोह या आग्रह ही दीख पड़ते हैं। 'मन वृन्दावन' में बाहरसे जो 'यात्रा-प्रसंग' उभरता है, वह कथाको ज्यादा 'अस्पष्ट' बना देता है। कथामें अस्पष्टता (एम्बिग्विटी) कलात्मक सुघड़ताका उदाहरण होती है किन्तु 'मन वृन्दावन' में वह बात नहीं है क्योंकि मन वृन्दावनकी 'अस्पष्टता' उसके 'कथा-प्रसंगों' की शिथिलताकी वजहसे है।

मध्यकालीन रोमाण्टिक बोधको लेकर चलनेवाली इस कृतिमें 'समसामयिक जीवन'-का यथार्थ केवल प्रसंग-वृत्त और परिवेशके रूपमें आया है। मिट्टीकी सुगन्ध, यौवनकी गन्ध सूँघनेवाला पात्र कितने विरोधाभासोंसे भरा होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है किन्तु कोई कृति विरोधाभासों, कई उलझे हुए व्यक्तित्वोंको लेकर ही 'आधुनिक समय' को चित्रित कर सकती है? 'मन वृन्दावन' में प्रेमका 'त्रिकोण' फ़ार्मूला बनकर आया है। यह 'फ़ार्मूला' अपने अन्तर्गत 'प्रेम' की महत् पीड़ा (सफ़रिंग) को व्यक्त करने-में भी असफल रहा है। 'आवेगोंका क्रम' न तो अन्तरंग अनुभवोंसे परिचित करानेमें सक्षम है और न उस 'भावधारा' से आत्मीय बना पाता है जो आवेगोंके द्वन्द्वसे बनती है। सारी कथामें मध्यकालीन प्रतीक भी 'निजन्धरी कथा' बनकर आया है। संवादोंमें इस दृष्टिसे 'कालदोष' का बराबर भ्रम होता है क्योंकि मध्यकालीन प्रेम-गाथा-जैसी एक ऊपरी (सुपरफ़िशल) तन्मयताके दार्शनिक वार्तालाप-में बदलनेका आभास भी बराबर मिलता है। पृष्ठ ५ और ६ ही नहीं अनेक पृष्ठोंमें जो संज्ञा-परिगणन किया गया है कलाकी दृष्टिसे यह प्रवृत्ति भी मध्यकालीन है। 'मन वृन्दावन' में भाषा ही नहीं विचारोंका अनर्गल उसे 'भानुमतीका पिटारा' बना देते हैं।

अस्तंगता :

'मन वृन्दावन' में प्रेमका जो ऊपरी, अविश्वसनीय यथार्थ रूप मिलता है उससे कहीं अधिक जीवित, साफ़ और सुथरे अनुभवके रूपमें कृष्णचन्द्र भिक्खुके उपन्यास 'अस्तंगता' की कथामें देखा जा सकता है। 'गोवा' की यह कहानी भी एक 'यात्रा' है किन्तु 'मन वृन्दावन' की यात्राकी तरह नहीं जिसमें अनेक तरहकी असंगतियाँ हैं। परन्तु इस तुलनासे यह निर्णय नहीं लिया जा सकता कि 'अस्तंगता' कोई नया कथा-प्रयोग है। 'गोवानी' लोगोंके बारे या ईसाइयोंके बारेमें जरूर कुछ सूचनात्मक सामग्री मिलती है किन्तु वह किसी तरहका परिगणन नहीं है, अपितु कथाका ही अन्तरंग भाग बनकर अपना परिचय देता है। 'अस्तंगता' का परिवेश आधुनिक है, और वह आधुनिक जीवन-की उन विसंगतियोंकी ओर लक्ष्य करता प्रतीत होता है जिनसे अस्तंगताके कथानायक या कथापात्र सम्बद्ध हैं। परन्तु यह 'उपन्यास' उस रूपमें आधुनिक नहीं है जिस रूपमें हम आधुनिक जीवनकी चुनौतियोंको झेलते हुए आदमीकी तसवीरकी, विरूप तसवीरकी

अपेक्षा रखते हैं। 'रुथ' का जीवन-संघर्ष अपनी समग्र सचाईके साथ उभरता है, उन दो-एक स्थलोंको छोड़कर जहाँ वह अस्वाभाविक लगता है। यह अस्वाभाविकता सिन्योर परेराके चरित्रमें अधिक है। 'रुथ' के बालपनसे लेकर उसके युवावस्था तकके संघर्षमें बलात्कार, ननरीमें बीते दिन तथा एक अन्तहीन प्रतीक्षाका अवसादपूर्ण भाव 'अस्तंगता' की 'भावकथा' के अंग हैं किन्तु लम्बे-लम्बे स्वगत-कथनोंकी तरह न टूटनेवाले वार्तालाप इस सारी कथामें अवरोध उत्पन्न करनेवाले लगते हैं। वैयक्तिक प्रतीतियों और जीवनके विषम अनुभवके बीच गुजरनेवाली गोवानी औरतकी यह तसवीर अपने प्रेम-कथांशकी वजह नहीं बाँधती बल्कि उस अनगढ़ और अनतराशे वैचारिक आवेगकी वजह बाँधनेमें सक्षम है जो सही मायनेमें आदमीके संघर्षकी तसवीर है। इसमें एक चरित्र है—फ़िसाल्यु, जो अपनी समग्र खलताके बावजूद भी जीवन्त और यथार्थ लगता है परन्तु वहाँ लेखककी उपस्थिति उसे ऐसे रूपमें चित्रित करती है जिससे वह अनुकूल भावको संगति नहीं देता। रचनाकी दृष्टिसे, भाषाकी दृष्टिसे और गठनकी दृष्टिसे कमज़ोर होती हुई भी इस रचनामें अपने परिवेशकी हलकी सचाई जीवित है। यह अलग बात है कि 'अस्तंगता' मे वैचारिक, आस्थागत भ्रम होते हुए भी न वह अपने विचार-आधारपर कहीं पहुँचाती है और न वह कुछ 'खोजती' है।

इन कृतियोंसे अलग कुछ कृतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें 'उपन्यास' की रचनागत कमजोरियाँ काफ़ी हैं, जिनमें काफ़ी विरोधाभास हैं किन्तु उनमें वह विरोधाभास और अन्तर्विरोध ही 'आधुनिकता' की उस विसंगत परिणतिका प्रारूप लगता है जिसमें 'विदूषक' स्थितियाँ 'यथार्थ' की शर्तको पूरा करती प्रतीत होती हैं। अमृतलाल नागर, मन्मथनाथ गुप्तकी तरह कथाकी परम्परागत संयोजना इन कृतियोंमें नहीं हैं, चाहे इनमें कथाकी सारी संयोजना असफलताका बिखराव ही क्यों न पैदा करती हों तब भी ये अपने अनुभवमें—विसंगत अनुभवमें 'कलाके यथार्थ' के ज़्यादा नज़दीक जान पड़ती हैं। परन्तु जैसा हमने आरम्भमें ही कहा है, 'उपन्यास' के रूपमें जो रचनाएँ इन वर्षोंमें लिखी गयी हैं, वे 'उपन्यास'-विधापर पुनर्विचारका प्रश्नचिह्न अवश्य लगाती हैं।

बैसाखियोंवाली इमारत :

बैसाखियोंवाली इमारत 'रमेश' बक्षीका उपन्यास है जिसे एक दम 'रोमाण्टिक ध्रुव' नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह अपने आपमें आजके 'फ़ालतूपन' का एक 'उपयोगी भाव' कहीं-न-कहीं अवश्य देता है। अगर सामान्य रूपसे उपन्यासके गुणात्मक पक्षसे बातचीत आरम्भ की जाये तो 'कथा' के नियोजनमें रमेश बक्षीका उपन्यास भी शिथिल और 'स्लो' (गतिहीन) लगता है किन्तु 'बैसाखियोंवाली इमारत' और 'लोग' में बुनियादी फ़र्क़ यह है कि एकमें अनुभवकी जगह अतीत राग है जबकि 'बैसाखियोंवाली इमारत' में बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धोंकी 'स्वीकारात्मक

धारणा' है। एक पत्रकारकी कहानी जो तीन दिशाओंसे अपनी ही विचित्रताओंके साथ-घिरा हुआ है, ऐसी निर्णयहीन स्थितिसे सामना करता है, जिसके आगे 'विरोध' का कोई तर्क इसलिए सफल नहीं होता क्योंकि विरोधकी भी कोई संगति और अनिवार्यता स्पष्ट नहीं होती। ये तीन दिशाएँ पत्नी, प्रेमिका और मित्र हैं जिनमें-से, 'स्थितियों'से समझौता न कर पानेके कारण, 'पत्नी' अपना अस्वीकार 'विरोध' के रूपमें प्रस्तुत करती है, प्रेमिका अपने अबोधत्वके कारण केवल एक 'स्वार्थ' से बँधी रह जाती है जबकि मित्रके रूपमें आनेवाली आधुनिक नारी 'अवसरवादी' की तरह छलाँग मारनेकी कोशिशमें पराजित हो जाती है। मोटे रूपमें यह पराजय पत्रकारकी, मिस जायसवालकी है क्योंकि वे दोनों अपनी-अपनी जगहपर 'मिसफ़िट' ही नहीं हैं बल्कि अपने ही वैचारिक परिवेशके कारण पीड़ित भी हैं।

'बैसाखियोंवाली इमारत' का सबसे कमज़ोर हिस्सा, 'विश्वसनीयता' के समानान्तर चलनेवाले वे 'भ्रम' हैं जिनमें 'वसुधा' अपने लिए आड़ बनाये रखती है। दरअसल यहींसे सारे उपन्यासमें वाचक (अदृश्यवाचक) की 'तीसरी आँख' एक तरहसे 'सेन्सर' करती रहती है। सारी रचनामें, तटस्थताकी कोशिशोंमें यही 'सेन्सर' लेखककी 'घुसपैठ' का सबूत माना जा सकता है। बूथने अपनी पुस्तक 'रेटॉरिक ऑफ़ फ़िक्शन' में लेखकके बाहर रहनेको ज़्यादा बेहतर इसलिए माना है कि वहाँ 'यथार्थ' दृश्य-संसारकी प्रतिक्रिया मात्र नहीं होता अपितु 'थीम' की जटिलताको आत्मीय बनानेवाली स्वाभाविकता होती है। इस आधारपर 'बैसाखियोंवाली इमारत' की स्वाभाविकतापर भी सन्देह किया जा सकता है। युवा लेखनकी यह कृति 'आधुनिक जीवन' के चित्रोंको केवल महानगरके भूगोलकी वजहसे चित्रित नहीं करती अपितु इसमें जो 'अपने पापों' की स्वीकृतिका 'नास्तिक भाव' मिलता है वह उसे ज़्यादा आत्मीय और आधुनिकताकी संगतिमें ले आता है। परन्तु 'बैसाखियोंवाली इमारत' अपने 'प्रतीक' के निर्वाहमें केवल 'शब्दोंके अर्थों' तकमें अनुकूल लगती है। जिस 'युवा वर्ग' की यह तसवीर है, उसके सामाजिक संसारसे बहुत कम परिचय मिलता है जब कि वह हर तरफ़ अपने सामाजिक संसारसे ही पीड़ित है। यहाँ हमें पत्रकारकी 'वैयक्तिक' पीड़नकी गाथा ज़्यादा लगती है क्योंकि जिस झूठे संसारका हमें 'बैसाखियोंवाली इमारत'से पता चलता है, उसमें क्रियात्मक केवल अखबार, बाँस, गांगुली और आधुनिक जीवनका यान्त्रिक प्रतिरूप है। परन्तु 'युवा लेखन' की पराजयकी ध्वनि इस उपन्यासके संसारके बारेमें हमें कुछ ज़्यादा चीज़ोंसे परिचित कराती है। उसमें 'झूठ'को, किसीके स्थापनको, किसीसे पीड़ित होनेकी प्रक्रियाको बिना संघर्षके ज्योंका त्यों स्वीकार किया है। संघर्षहीन प्रक्रियामें 'विरोध' का जन्म चाहे नहीं होता फिर भी जायसवाल और 'पत्नी'—दो चरित्र अपने सामाजिक संस्कारोंसे विद्रोह करते प्रतीत होते हैं।

रचनाकारकी जिस 'अभिव्यक्ति'की हमने चर्चा की है, उसके समर्थनमें यह तर्क दिया जा सकता है कि रचनाकार उस 'अनर्गल'के नियन्त्रणके लिए बार-बार पत्रकारके बीच पैदा हो जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि एक 'अयथार्थ' को 'यथार्थ' में बदलनेके लिए 'सेन्सर' की अनिवार्यता होती है लेकिन यहां यह नहीं भूलना चाहिए कि एक 'यथार्थ' के 'झूठ'को जब 'समग्रता'-से व्यक्त करनेका प्रश्न होता है तब वह 'झूठ' सारे क़िस्मके 'नियन्त्रणों' से परे हो जाता है। 'बैसाखियोंवाली इमारत' में यथार्थका धुँधलका नहीं है किन्तु एक झूठे संसारकी झूठी प्रतीतियों-जैसा भाव जरूर है। कहा जा सकता है कि इस मूल उपन्यासकी वैचारिक अन्तर्कथा विशेष क़िस्मका 'आरोप' है, ऐसा आरोप राजकमल चौधरीके उपन्यासोंमें आक्रामक स्थितियोंके 'ज्ञापन' के लिए प्रयुक्त होता है। 'युवा लेखकों' की रचनाओंके लिए हम यह मानते हैं कि उनके बारेमें न तो शास्त्रीय तरीक़ेसे निर्णय दिये जा सकते हैं और न दो उपन्यासोंके बारेमें समान रूपसे कुछ कहा जा सकता है किन्तु उन्हें लेकर 'असफलता' का एक 'सरलीकरण' जरूर बनाया या आरोपित किया जा सकता है। वह 'सरलीकरण' सिर्फ़ उस 'अनुभव जगत्' पर लागू नहीं होता बाक़ी उनकी 'कृति-कला' को उससे देखा जरूर जा सकता है। 'अनुभव' के नये 'लोक' का पूरी तरहसे 'बैसाखियोंवाली इमारत' में परिचय नहीं मिलता फिर भी यह अनुभव राजकमल चौधरीके अनुभवोंकी तरह अपवाद हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'बैसाखियोंवाली इमारत' उपन्यास न होकर एक आत्मकथात्मक शैलीके विवरण-की कहानीका विस्तार जरूर कही जा सकती है किन्तु उसमें 'परिवेशकी जीवन्तता' उसे केवल कहानीके नजदीक रखनेकी इजाजत नहीं देती।

मछली मरी हुई :

राजकमल चौधरीका उपन्यास 'मछली मरी हुई' एक नये अनुभवकी कथा कही जा सकती है, चाहे भूमिकाके रूपमें कहे गये कथन-से वह पर्वर्जन (यौन-विकृति) की कहानी और 'मनोवैज्ञानिक केस' प्रतीत होती है किन्तु वह यौन पर्वर्जन (विकृति) है और न मनोवैज्ञानिक केस। इतना जरूर है कि वह रामकमल चौधरीकी अपनी ही कथात्मक रूढ़िका विस्तार लगती है। राजकमल चौधरी-का 'वाक्य-रचना-विधान' और प्रसंग-दर-प्रसंग कथा-विस्तारका अपना एक ढाँचा है जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी अन्य कृतियोंमें भी किया है, हालांकि हर 'थीम' के साथ उनका यह कला-प्रयोग अलग जरूर लगता है किन्तु उसकी 'एकरसता' हर जगह नहीं टूटती।

'नवयुवा लेखन' के बारेमें, जैसा हमने पहले कहा, वे बातें अवश्य ही नहीं कही जा सकतीं जिनका उल्लेख पुराने उपन्यासोंके सन्दर्भमें किया जाता है। जिस तरह कविता-की समीक्षाके लिए कुछ 'इम्प्रेशन्स' ज्यादा

सही होते हैं उसी तरह इन कथा-कृतियोंके लिए कुछ अन्तिम प्रभाव हालांकि जरूरी नहीं होते किन्तु उनकी उपयोगिता सन्दिग्ध नहीं है। राजकमलके इस उपन्याससे भी कुछ ऐसे ही 'प्रभाव' इकट्ठे किये जा सकते हैं। रमेश बक्षी और गिरिराजकिशोरके उपन्यासोंसे भी ऐसे 'प्रभाव' केवल 'कथा-प्रभाव' के रूपमें लिये जायें तो एक 'सत्य' सामने आता है कि 'नवयुवा कथाकार' अपनी सामाजिक स्थितिके प्रति उपन्यासमें विविध पात्रोंके रूपमें कैसा 'रिएक्ट' करता है। यह 'प्रतिक्रिया', हम जानते हैं, कथाकारकी रचनात्मक असफलताओंकी एक लम्बी सूची बना सकती है। राजकमलके उपन्यासमें परिवेश और पूरे कथा-प्रसंगोंकी जो एम्बिग्विटी (अस्पष्टता) है, वह कथाके मूल स्वरको पीछे नहीं धकेलती किन्तु उसमें कहीं-कहीं पुराने कथाकारों-जैसी अस्वाभाविकता लगती है। शीरीं और प्रिया या शीरीं और शीरींकी बहिनके जिस सम-लैंगिक व्यवहारकी चर्चा अपने 'प्रतीक'-द्वारा राजकमलने की है, उसमें सबसे बड़ी अस्वाभाविकता उस 'प्रवृत्ति' के वैचारिक उद्घोषमें लगती है। राजकमलका यह उपन्यास तमाम खामियों, शिथिलताओंके बावजूद विचारणीय लगता है। उत्तेजक चाहे नहीं लगता हो। राजकमल चौधरीके सारे लेखनसे जो तसवीर बनती है उसमें यह उपन्यास कुछ नहीं जोड़ता, उस आक्रमक स्वभावमें भी कुछ नहीं जोड़ता जिसके लिए सारे युवालेखनको अस्वीकार किया जा रहा है।

मुक्ति-प्रसंग

राजकमल चौधरी

■

मुक्ति के विषय में सोचता हुआ मैं
सो गया था बेहोश
लेकिन कसे हुए दो पंजे
मेरा गला दबाने लगे कोई चीख
तक नहीं निकलेगी
मेरे कण्ठ-रन्ध्र से···
प्राण-रक्षा के लिए अपने शरीर से
बाहर निकल कर
मैं सामने दीवार पर
नीले कीड़े की तरह चिपक गया
पलंग पर छटपटाती
लाश देखता हुआ
मेरे ही दोनों पंजे मेरी गर्दन दबाये
जा रहे हैं
इसलिए शरीरसे बाहर निकलकर ही
मुक्ति के विषय में
निर्णय किया जा सकता है··

■

जन्म : १३ दिसम्बर १९३१
मसूरी हिल
मृत्यु : १९ जून १९६७
पटना

भागे हुए लोग : कोई अजनबी नहीं : मंज़िल-दर-मंज़िल : दो बूँद जल :

एक 'उपन्यास' के बारेमें क्या कहा जा सकता है, खासकर जब वह अपनी रचनात्मक असफलताओंके कारण 'उपन्यास'-संज्ञा भी प्राप्त नहीं कर रहा हो। उस छद्म उपन्यासके लिए तो कहनेकी, चर्चाकी कोई गुंजायश नहीं दीखती जो केवल अपने खास उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ही रचा जा रहा हो। ऐसे उपन्यासोंमें शैलेश मटियानीके चार उपन्यास—'भागे हुए लोग', 'कोई अजनबी नहीं', 'मंज़िल-दर-मंज़िल' और 'दो बूंद जल'—केवल 'यौन'-चर्चाओंके साधन बने हैं। एक उपन्यास 'भागे हुए लोग' में पृष्ठ १६२ से तर्कहीन धर्म-संस्कृति-नैतिकतापर चर्चाएं हैं। ईश्वर-सम्बन्धी विवाद अत्यन्त हास्यास्पद लगता है। भाषाका 'वाक्य-रचना-विधान' समस्त अनर्गल प्रक्षेपणोंसे भरा पड़ा है। 'भागे हुए लोग' में पंजाबी भाषी सुगनचन्दके मुँहसे ग़लत पंजाबी वाक्योंका प्रयोग लेखकके उस 'सामाजिक संस्थान' से अल्प परिचयका द्योतक है जिससे वह जीवन्तपात्र चुननेका दावा करता है। दरअसल, ये चारों उपन्यास जिनमें नरोत्तम और विघ्नेश्वर बाबाकी यौन पिपासाओं, फ़ातिमा बेगमके अतीत वर्तमानका यौनाचार, रामधारी (मज़दूरनी) का आकांक्षाओंका यौन-प्रसंग और 'रेशमा' वेश्याकी चर्चा मुख्य रूपसे भरी पड़ी है। वस्तुतः इन उपन्यासोंमें 'पेज भरने' की जल्दबाज़ीका अहसास पाठकको भी होता है। वह एक ऐसे लेखक की 'उपस्थिति' का अनुभव भी करता है जिसका अनुभव-संसार सीमित तो है ही, उसमें कहीं भी प्रबुद्धताका अंश नहीं है। कथाकी दृष्टिसे कमज़ोर, भाषाकी दृष्टिसे अनगढ़, अन्तर्कथाओंकी दृष्टिसे एकरस ये चारों उपन्यास एक ही कथा (मूल) की 'सीरीज़' लगते हैं। जैसा हमने पहले कहा है, इनपर आधुनिक या नये उपन्यास-जैसी कोई चर्चा संगत नहीं बैठती। इन्हें लेकर 'उपन्यास'की चर्चा की ही नहीं जा सकती। इनमें कलात्मक अनुभवकी जगह फूहड़ और झूठा और बासी अनुभव-संसार मिलता है, पीड़नकी जगह एक आरोपित मानवतावाद और मनुष्यकी जगह संघर्षहीन यौन-चर्चाएँ शेष रह जाती हैं।

■

आधुनिक समयमें रचे गये इन 'उपन्यासों'से 'उपन्यास-रचना' को किसी भी सम्भावनाकी अपेक्षा नहीं होती। पिछले वर्षोंके उपन्यासोंको जब नेमिचन्द्र जैन अधूरी तसवीरके रूपमें 'अधूरे साक्षात्कार' या जब डॉ० मदान हिन्दी उपन्यासको 'मुहावराहीन' मानते हैं—तब वे बातें कहीं भी असंगत नहीं लगतीं। हमारे समयके ये 'उपन्यास' 'विधा'के विकासपर प्रश्नचिह्न ही नहीं लगाते अपितु 'उपन्यास'की तमाम 'सम्भावनाओं'पर किसी एक विपरीत निर्णयका समर्थन भी दे डालते हैं। ■ ■

२६।५३ रामजस रोड,
करौलबाग़, नयी दिल्ली

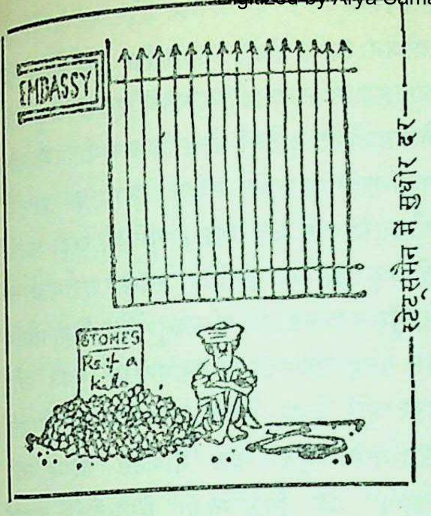

स्टेट्समैन में सुधीर दर

व्यं/ग

पत्थर निर्यात करें !

–शरद जोशी

●

भारतमें पत्थर बहुतायतसे पाया जाता है। इधर कोई सौ-दो सौ मील मोटरसे यात्रा कर मैं इस महत्त्वपूर्ण निर्णयपर पहुँचा हूँ कि अगर हमारे देशके पास कोई बड़ी सम्पत्ति है तो वे हैं हमारे पत्थर ! विशाल चट्टानोंसे लेकर छोटे-छोटे कंकड़ तक, यानी हर आकार और वज़नका पत्थर देशमें उपलब्ध है। सब जगह और दूर-दूर तक फैली इस पत्थर-सम्पदाको देख मेरा सीना गर्वसे फूल गया। सौभाग्यसे उस समय कोई आसपास था नहीं अन्यथा पूछ बैठता कि भाई साहब, यह आपका सीना एकाएक क्यों फूल रहा है ?

मैंने जो पत्थर देखे वे सब ज़मीनके ऊपर थे, पर पूछनेपर पता लगा कि हमारे देशमें भूमिके अन्दर भी काफ़ी मात्रामें पत्थर हैं। माँ धरतीकी कोखमें कितनी चट्टानें हैं, मैं सोचकर दंग रह गया। निश्चित ही पत्थरोंके मामलेमें हम दुनियाके अन्य देशोंकी तुलनामें कहीं आगे हैं। सच यह है कि अभीतक यह जाननेका हमने बिलकुल प्रयत्न नहीं किया है कि हमारे देशमें कुल कितना पत्थर है। यह देशव्यापी सर्वेक्षणके बिना सम्भव नहीं। खेद है, हमारी सरकार हमारी इस सबसे बड़ी सम्पदाके प्रति उदासीन है।

अभी हालाँकि मेरा यह उद्देश्य नहीं कि पत्थरोंका सिलसिला शुरु कर मैं सरकारको

सूचना : कृश्नचन्दरकी विदेश यात्राके कारण इस अंकमें हम 'एक पत्थर : दो पत्थर : तीन पत्थर' की क़िस्त प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं–सं०।

गाली दे दूँ—यानी कुछ बेमतलब पत्थर चला दूँ। मैं निहायत वैज्ञानिक अन्दाज़में बातचीत करना चाहता हूँ पर मैं पत्थरोंकी बात सोच एकाएक इतना भावुक हो जाता हूँ कि यह वैज्ञानिक अन्दाज़ क़ायम होना बिलकुल असम्भव है।

पत्थरोंके उपयोगपर हमारे पुरखोंने काफ़ी विचार किया। वे बरसों और काम न कर सिर्फ़ यही सोचते रहे कि इतने सारे पत्थरों और चट्टानोंका क्या किया जाये। वे पत्थरोंपर बैठकर विचार करते और पत्थरोंके सम्बन्धमें ही विचार करते रहते। विचार करते-करते एक समूचा युग बीत गया, यहाँतक कि इतिहासकारोंने उस युगका नाम ही पाषाण-युग कर दिया। फिर भी हमारे पुरखे 'इतने सारे पत्थरोंका क्या किया जाये'—यह निश्चित नहीं कर पाये। वे और विचार करते और किसी नतीजेपर पहुँचते पर इसी बीच लोह-युग आरम्भ हो गया और उन्हें पत्थरोंके विषयमें सोचना मुल्तवी करना पड़ा। उन्होंने पत्थरोंके औज़ार बनाये, दीवारें बनायीं, यहाँ तक कि पत्थरोंसे देवता तक बनाये, फिर भी बड़े परिमाणमें पत्थर बक़ाया रह गया और उसका उपयोग नहीं हो सका। अर्थशास्त्रका एक सिद्धान्त है (परसों एक साहब बस-स्टैण्डपर कह रहे थे, सच है या झूठ—पता नहीं) कि जो वस्तु कम होती है उसके भाव बढ़ जाते हैं, वह अधिक क़ीमती, महत्त्वपूर्ण और कुल मिलाकर सम्माननीय हो जाती है। प्राचीन युगमें यह सिद्धान्त उलटकर लागू हुआ और जम नहीं पाया। पत्थरके देवता बनाये गये और यह धन्धा ऐसे योजनाबद्ध तरीक़ेसे चला कि कुछ ही वर्षोंमें हर हज़ार व्यक्तिकी बस्तीमें एकके अनुपातसे देवताओंकी मूर्तियाँ पत्थरसे बनायी गयीं और कहीं-कहीं इसकी संख्या सामान्य राष्ट्रीय औसतसे आगे बढ़ गयी। मूर्तियाँ खड़ी करनेकी फ़ुरसत न होनेपर साधारण पत्थरपर सिन्दूर लगाकर उसे महत्त्वपूर्ण कर दिया गया। इस तरह पत्थरको सम्माननीय, पूज्य और महत्त्वपूर्ण बना देनेके बावजूद अर्थशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार वह मार्केटसे ग़ायब नहीं हुआ। वह सिद्धान्तकी ऐसी-तैसी करता उपलब्ध रहा।

हो सकता है, देशका कुछ भाग ऐसा हो जहाँ पत्थर न हो या बहुत कम हो। सरकार कमसे कम यह कर सकती है कि जहाँ पत्थर कम है वहाँ उस क्षेत्रसे, जहाँ पत्थर ज़्यादा है, कुछ पत्थर पहुँचा दे। देशका धन बराबर बँटना चाहिए। हम पत्थरोंसे ही समाजवादकी शुरूआत करें। हम पत्थर निर्यात कर सकते हैं। एक व्यापार-मण्डल भेजकर पता लगाया जाये कि किन देशोंको पत्थरोंकी सख्त ज़रूरत है। हम जहाज़ोंमें भरकर पत्थर भेज सकते हैं। मेरे ख़यालसे हमारे देशमें इतना पत्थर है कि आगामी दो सौ वर्ष तक हम संसारके देशोंको लगातार पत्थर निर्यात कर सकते हैं और बहूमूल्य विदेशी मुद्रा कमा सकते हैं। पत्थर बटोरनेका काम हम निहायत ग्रामोद्योगी स्तरपर कर सकते हैं। इसमें शायद अमेरिकासे कालोबरेशन ज़रूरी नहीं।

कुछ लोग देशका बहुमूल्य पत्थर इस तरहसे विदेश जाता देख दुःखी हों। मूर्तियाँ बनाने और सिन्दूर लगाकर पूजनीय बनानेके धार्मिक कार्यक्रमपर इससे धक्का लग सकता है। पत्थरकी मूर्तियोंके बिना यह देश सूना लगेगा। धर्मप्राण जनता पत्थरमें प्राण खोजती है। हमारी सारी धार्मिक हलचलें किसी पत्थरकी मूरतके आसपास केन्द्रित रहती हैं। पूज्य पत्थरको हर किसीको छूने नहीं देते। फिर भी पत्थरका निर्यात एक मजबूरी है। यही एक ऐसी वस्तु है जो हम बहुतायतसे बाहर भेज सकते हैं और संसारके देशोंकी जरूरत पूरी कर उनसे अच्छे सम्बन्ध बना सकते हैं। बदलेमें हम घड़ी, ट्रांजिस्टर, इलेक्ट्रिक शेवर, टेरेलीन, टेप-रिकार्डर आदि सामान मँगवा सकते हैं, जिसकी देशको सख्त जरूरत है।

पर इस महत्त्वपूर्ण निर्णयके समय हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा कि कहीं सारा पत्थर ही निर्यात नहीं हो जाये। देशकी जरूरतोंके लिए कुछ पत्थर बचाकर रखना होगा। राष्ट्रीय स्तरके महापुरुषोंकी मूर्तियाँ ट्रैफ़िक-पुलिसके स्थानपर खड़ी करनेके लिए बड़े आकारके पत्थर और स्थानीय महापुरुषोंको उखाड़नेके लिए छोटे आकारके पत्थर लगते हैं। पुलिसवालोंने भी पत्थरको घातक शस्त्रका सम्मान दिया है और सुरक्षाकी दृष्टिसे यदा-कदा भीड़पर फेंकते नजर आये हैं। पत्थरोंकी एक विशेषता यह है कि वे दुबारा और बार-बार उपयोग किये जा सकते हैं। पत्थरोंका एक अच्छा ढेर कई चुनावों तक काम दे सकता है। राजनैतिक पार्टियोंको प्रति वर्ष कितना पत्थर चाहिए—इसकी जानकारी पार्टीके प्रमुख दफ़्तरसे ली जा सकती है। इसका जोड़ लगाकर उतना ही पुलिसको लगेगा। घेरावका भावी प्रजातान्त्रिक स्वरूप क्या होगा—इसपर भी पत्थरकी खपतका बढ़ना-गिरना निर्भर कर सकता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हम निर्यातके समय देशकी जरूरतोंको न भूलें।

प्राचीन कालमें देशका पत्थर जरूर बाहर जाता होगा। नहीं जाता था तो यह 'पत्थरोंका सौदागर' शब्द कहाँसे आया? अब भी पत्थरोंका एक सौदागर-मण्डल विदेशोंमें जाकर पूछ-परखकर अपना माल खपा सकता है। कुछ निहायत पत्थर-दिल लोग, जिनके दिमागमें भी पत्थर भरा हो, इसके लिए खोजे जायें। राष्ट्रकी ख़ुशहालीका बस यही रास्ता है। खुल जा सिम-सिम!

एक सज्जन मुझे बता रहे थे, अगर जमीनसे पत्थर निकल जाये तो खेतीके लायक़ बड़ी जमीन निकल सकती है और हम अनाजमें आत्मनिर्भर हो सकते हैं। मैंने कहा, जरूरत क्या है अनाजमें आत्मनिर्भर होनेकी, पत्थर निर्यात करो और अनाज आयात करो और जबतक मुफ़्तमें गेहूँ मिल रहा है तबतक यों भी आत्मनिर्भर होना व्यर्थ है। गर्वकी बात यह है कि हम पत्थरोंके मामलेमें आत्मनिर्भर हैं और निर्यातकी स्थितिमें हैं और यह बड़ी बात है। ■ ■

३०।१ साउथ टी० टी० नगर.
भोपाल

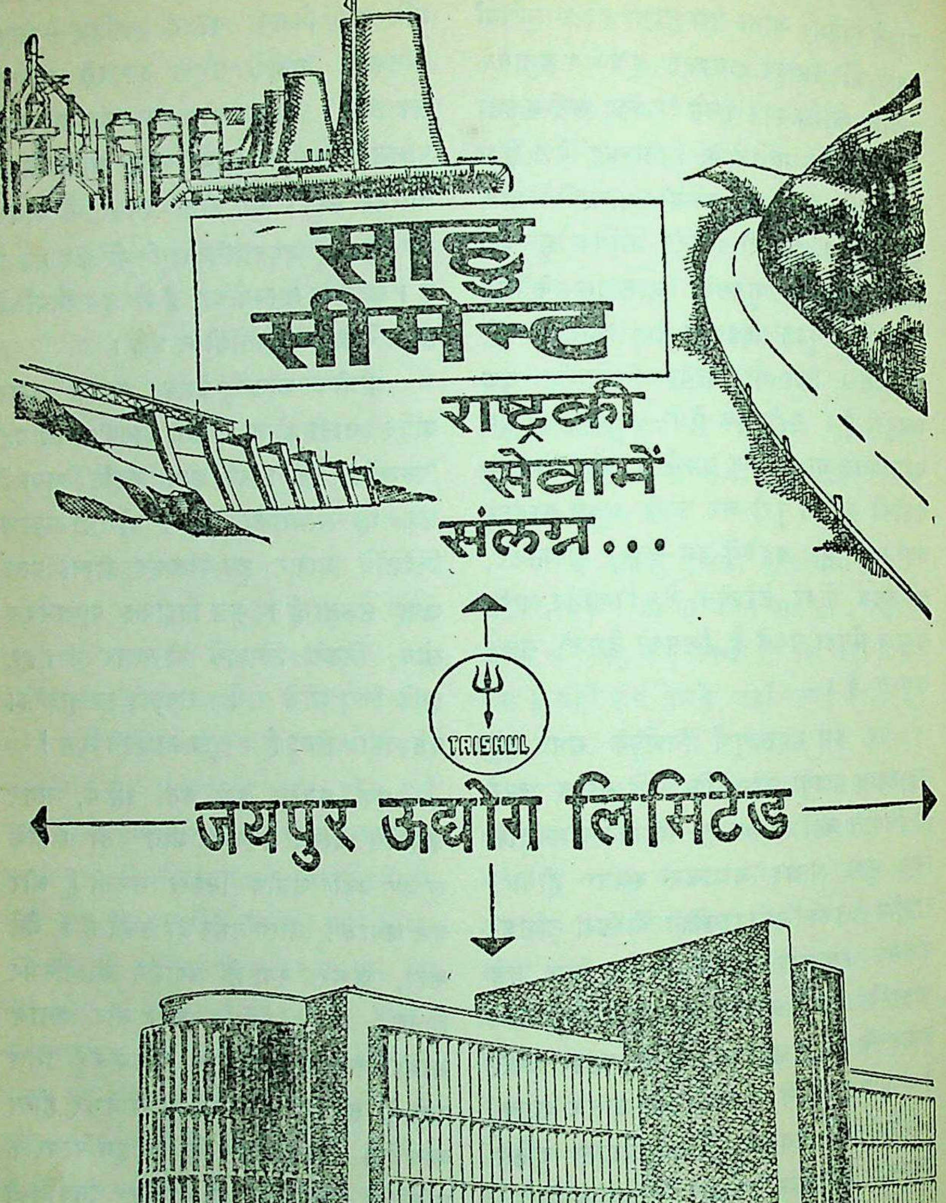
साहु सीमेन्ट
राष्ट्रकी सेवामें संलग्न...
TRISHUL
जयपुर उद्योग लिमिटेड

क । हा । नी

तासीर

सुधा सिंह

●

उसने अपने-आपको हर पहलूसे घुमाकर देखा लेकिन आईनेमें जो भी परछाईं पड़ती थी उसमें उसे नुक्स नज़र आ जाता था। साड़ीको कमरके इर्द-गिर्द कसकर खींचते हुए उसने अपने वक्षपरके पल्लूको थोड़ा लापरवाह हो जाने दिया। यह 'फ़िनिशिंग टच' देकर वह बाहर आयी। उसका पति जूतोंपर झुका हुआ तसमे बाँध रहा था। स्लेटी रंगके सूटसे झाँकती हुई उसकी दूधिया गरदन वह देखती ही रह गयी। काले जूतेपर हिलती हुई गोरी उँगलियोंको देखकर उसके मनमें भय समा गया। यही भय कभी क्रोध, कभी अतिशय विनय, कभी ईर्ष्या और कभी-कभी प्रेमका छद्म वेश धारण कर प्रकट होता रहता है। अभी वह क्या कर बैठेगी—इसका पूर्वाभास उसे भी नहीं मिलता। एक उफान-सा उठता है और उसी उफानपर वह तैरने लगती है। फिर संयत रहनेके उसके सारे प्रयास विफल हो जाते हैं।

“चलो !” पतिके बहुत निकट आकर उसने धीरेसे कहा। इतने धीरेसे कि चलनेका आग्रह नहीं, रुककर प्यार कर लेनेका निमन्त्रण प्रकट हो।

“तैयार हो गयीं ?” पुरुषका रूखा, यथातथ्य और प्रश्नवाचक उत्तर था।

“क्या मैं तुम्हें तैयार नहीं दिखाई देती ?” उसके चढ़े हुए तेवरमें अभी भी मीठा उपालम्भ था।

“दो घण्टे आईनेके पास बिताकर आयी हो। तैयार होगी ही।” वह एकदम नहीं मुसकराया। हालांकि यह बात मज़ाक़में भी कही जा सकती थी।

बातका रूखापन खँरोच पैदा करने लायक़ था। लेकिन उसने ऊपर-ही-ऊपर उसे झेलते हुए कहा, “अच्छा, बता दो, क्या ठीक नहीं है, मैं झटसे ठीक कर लेती हूँ।”

“ना बाबा, एकदम ठीक हो, अब चार घण्टे मरम्मतमें और लगा दोगी। जाना है या नहीं ?” उसने एक फिसलती नज़र उसपर डाली और रूमालसे हाथ पोंछने लगा।

“तुम मना कर दो तो न जाऊँ।” उफानकी पहली लहर आ गयी।

“देखो, बतंगड़ मत करो। चलना है तो चलो। ऐसे भी देर हो चुकी है !”

उसके जीमें आया जतनसे बाँधा हुआ केश बिखरा ले, कुमकुमका गोल टीका हथेलियोंसे फैला दे और धरतीपर लोटकर बिलखने लगे। लेकिन ऐसा उसने कुछ नहीं किया। चुपचाप खड़ी उसे खिड़कियाँ और दरवाज़े बन्द करते देखती रही। अब भी वह [illegible] तो नहीं जा सकती थी। लेकिन सचमुच पूरे दो घण्टेमें उसने अपनेको सजाया था। वह जानती थी, यह ऊँचा जूड़ा उसपर बड़ा फब रहा होगा, गहरे हरे रंगकी साड़ीने उसकी स्थूलताको भी ढँक दिया होगा। तीखे काजल और हलके लिपस्टिकके साथ सुडौल वक्षकी ‘सेक्स अपील’ का असर वह जानती थी। लेकिन उसका पति जान-बूझकर उसके हाथोंसे भरोसेका यह सहारा छीन लेना चाहता है। अब उसका मन मथे हुए मट्ठे सा फीका-खट्टा और फेनिल हो गया। उसने तय कर लिया कि वह जायेगी। इसलिए नहीं कि उसका पति उसे देखने और छूनेको मजबूर हो बल्कि इसलिए कि उसके पतिकी उपस्थिति में और लोग उसे देखें, छूनेका प्रयास करें और वह अपनी महाशयता प्रकट करती हुई उनसे बचती रहे।

“हल्लो रीना ! कैसी हो ?” पूछनेवाली एक लड़की थी। उसकी सहपाठिनी। पता नहीं, यह कुशल-क्षेम किस नीयतसे पूछी गयी थी पर रीनाको लगा, उससे कहा जा रहा हो—‘अब पता चल रहा है न !”

नहीं, पता क्या चलेगा। उसने जो किया है, ठीक है। कहींसे कुछ बेठीक-सा नज़र न आ जाये इसलिए वह पतिसे एकदम सटकर खड़ी हो गयी। उसके कोटपर एक तागा सटा हुआ था। उसे अपनी रूमालसे झाड़ दिया। फिर अपने-आप लजाकर नीचे देखने लगी। अच्छे सम्बन्धोंका एलान इससे हो गया होगा।

“अरे रीना ! कब आयीं ?” पूछनेवाला

युवक चाहकर भी उसके चेहरेसे अपनी नज़र नहीं हटा पा रहा था। रीनाने भरपूर नज़रोंसे उसे देखा मानो कह रही हो—"मैं कहीं गयी थी क्या? मैं तो हमेशा ही तुम्हारे मनमें थी!" यह बेबाक आत्मीयता इतनी स्पष्ट थी कि पूछनेवाला स्वयं झेंप रहा था। लेकिन रीनाकी आँखोंमें कहीं-कोई झेंप न थी। उसकी उन्हीं खुली नज़रोंने उसके पतिसे पूछा, "क्यों? देख रहे हो न?"

लेकिन वह शायद सब कुछ देखकर अनदेखा कर रहा है। उसने निर्लिप्तताका ऐसा कवच धारण कर लिया है कि रीनाकी दोधारी तलवारका भी कोई असर उसपर नहीं होता।

■

रीनाकी किसी बातका असर उसपर कभी न हुआ हो ऐसी बात नहीं थी। वह, पता नहीं कौन-सा मौसम था जब रीना फूलकी तरह खिल गयी थी। लड़कोंकी तरह ठहाके लगानेवाली पुरुषोचित प्रकृतिकी लड़की कभी इतनी नरम होकर झुकी-झुकी चलेगी—इसका अनुमान किसीको न था। कॉलेजके प्लैटफ़ॉर्मपर गला फाड़-फाड़कर लड़कोंसे वाद-विवाद करना, एन० सी० सी० की क़वायदमें लड़कोंसे आगे निकल जाना उसके लिए आम बात हो गयी थी। कभी-कभी माँ टोकती थीं—"रीना, कुछ निटिंग किया करो!" या "अचार डालनेमें मदद कर दो!"

रीनाका एक-सा जवाब आता था, "अम्मा, मुझे गृहस्थी नहीं चलानी है। यह सब शानीको सिखाओ!"

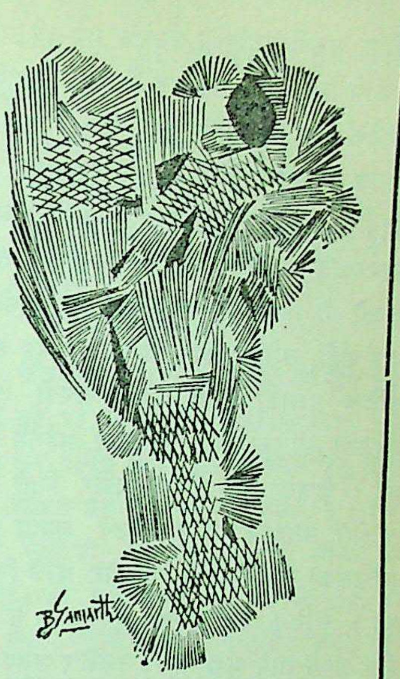

मन ही-मन सोचा करती थी—पता नहीं उसकी कौन-सी मुद्रापर वह सबसे अधिक रीझता होगा। वह अपनी तरह तरहकी मुसकराहटोंका इम्तहान आईनेमें लेती थी। केशके गुच्छे मुँहपर बिखेर लेती थी। दाँतोंसे नाख़ूनके कोने काटने लगती थी। आँचलको लापरवाहीसे कन्धेपर डाले फिरती थी। लेकिन स्वाभाविक अल्हड़पन न जाने कैसे अपने-आप चुक गया। उसके स्थानपर आ गयी—एक सजग सतर्कता!

लेकिन गृहस्थी चलानेकी इच्छा नहीं रखनेवाली लड़की नाहक ही प्यारके झमेलेमें फँस गयी। लेकिन फिर तो सब कुछ अपने-आप बड़ा सुलझा हुआ लगने लगा। सलाइयोंपर फ़ुर्तीसे उँगलियाँ चलने लगीं। रेडियोसे

होनेवाले बहनोंके प्रोग्रामकी प्रतीक्षा होने लगी, क्योंकि उसमें सुगृहिणी बननेके नये-नये टोटके सिखाये जाते थे। यह सब किसीको प्रभावित करनेके लिए नहीं सीख रही थी। लेकिन जो प्रभाव वह डाल चुकी थी उसीका ज्ञान उसे उद्दीप्त किये रखता था। उन दिनों अपने लापरवाह व्यक्तित्वको वह आईनेमें तौला करती थी। मन-ही-मन सोचा करती थी—पता नहीं, उसकी कौन-सी मुद्रापर वह सबसे अधिक रीझता होगा! वह अपनी तरह-तरहकी मुसकराहटोंका इम्तहान आईनेमें लेती थी। केशके गुच्छे मुँहपर बिखेर लेती थी। दाँतोंसे नाखूनके कोने काटने लगती थी। आँचलको लापरवाहीसे कन्धेपर डाले फिरती थी। लेकिन स्वाभाविक अल्हड़पन न जाने कैसे अपने-आप चुक गया। उसके स्थानपर आ गयी—एक सजग सतर्कता!

फिर तो चारों ओर जाल-ही-जाल बिछा दिये गये। इस जालका पहला तन्तु है शरीर। लेकिन शारीरिक आकर्षण तो जालकी तानी-भर ही है। भरनीके लिए तो अपनी कुशलता दिखानी पड़ती है। रीना पूरी तत्परतासे जालके ताने-बाने बुनती रही। शिकार स्वेच्छासे आया था। अब उसे बाँधकर रखना-भर था। यह काम इतना दुष्कर होगा—यह रीनाको पता न था।

उसकी एक बड़ी अन्तरंग सहेलीने कहा था, "रीनू, कहाँ इस झमेलेमें पड़ रही है!"

"कौन-सा झमेला?"

"यही प्यार-व्यारका।"

"मैं शादी कर लूँगी।"

"घरके लोग मानेंगे?"

"मानेंगे क्यों नहीं! और फिर मैं बालिग़ हूँ।"

"काम नाबालिग़ों-जैसा कर रही हो।"

"क्यों, शादी करना बचकानी बात है?"

"नहीं, शादी करना नहीं।"

"तो और क्या?"

"ऐसे शादी करना।"

"कैसे?"

"यही, माँ-बापकी मर्ज़ीके खिलाफ़।"

"तुमने कैसे समझ लिया कि वे राजी नहीं होंगे?"

"नहीं होंगे—ऐसा लगता है।"

"क्यों लगता है?"

तुम बुरा मान जाओगी।"

'वैसे बताना नहीं चाहती हो तो मत बताओ। लेकिन मैं किसी बातका बुरा नहीं मानूँगी—इतना इतमीनान रखो।"

"रीना, मोहन वैसा नहीं है जैसा तुम समझती हो।"

"मैं कैसा समझती हूँ।"

"बहुत नेक, सच्चा और समझदार।"

"तो तुम उसको बुरा, झूठा और बेवक़ूफ़ समझती हो?" रीना खिलखिलाकर हंसने लगी, "मैं बताऊँगी उसे।"

"दरअसल तुम्हीं बेवक़ूफ़ हो रीना, अब हमलोगोंमें आपसी बातें हुईं तो तुम उसको बताकर बड़ी बहादुरी कर लोगी। तुम समझती हो, इससे वह बड़ा प्रसन्न हो जायेगा तुमपर।"

"वह मुझपर ऐसे ही प्रसन्न है, तुम

चिन्ता न करो ।"

"भगवान् करे कि वह तुमपर हमेशा प्रसन्न रहे । लेकिन एक बात कहूँ, बात बहुत कड़वी है, अगर तुम इजाज़त दो तो मैं ही पन्द्रह दिनोंमें मोहनको अपनी ओर मोड़ लूँ ।"

"जाओ, दे दी इजाज़त । आज़मा लो ।" रीनाने हँसनेकी कोशिश की लेकिन उसके चेहरेकी तमतमाहट नहीं छिप सकी ।

उस लड़कीका मंशा रीनाको केवल आगाह करना था इसलिए उससे रीनाको कभी खतरे पैदा न हुए । लेकिन यह बात काँटेकी तरह दिलमें सदाके लिए चुभ गयी कि कोई भी उसे अपनी ओर मोड़ सकती है—महज़ पन्द्रह दिनोंमें । इसीलिए रीनाका कसाव भी बढ़ गया । प्रतियोगिताओंमें भारी-भरकम पुरस्कार जीतनेवाली लड़कीने अपनी सारी प्रतिभा, सारी शक्तिको एक दूसरा ही मोड़ दे दिया । उसके विजयका एकमात्र लक्ष्य हो गया—एक विजित पुरुष !

लेकिन सम्पूर्ण मन-प्राणसे प्रणयिनी बनी हुई नारीके हाथ क्या लगा था···एक खोया-खोया-सा पुरुष, जिसका ध्यान न सँवरे रूपपर जाता था, न सजे घरसे खुश होता था और न जो स्वादिष्ट भोजनसे ही ।

"तुम्हारा ध्यान कहाँ रहता है ?"

"रहेगा कहाँ ?"

"मुझमें तो नहीं ही है ।"

"कामकी बात करो, रीना !"

"मैं बेकार बकती हूँ ?"

"कुछ बकती हो जरूर ।"

"लेकिन यही बातें पहले रुचती थीं ।"

"रुचती होंगी । लेकिन हमेशा एक-सा मूड तो रहता नहीं है ।"

"तुम्हारा मूड तो हमेशा ही बिगड़ा रहता है ।"

"सोचो, क्यों ऐसा रहता है ।"

"मेरे कारण ।"

"मैं ऐसा कहाँ कहता हूँ ऊब होती है ।"

"मुझसे ।"

"नहीं अपने-आपसे ।"

और खुद अपनेसे ऊबे हुए आदमीसे क्या बातें की जा सकती हैं—इसलिए रीना उसे खुश कर पानेके किसी और जतनमें जुट जाती है । लेकिन वह खुश नहीं ही होता है । खैर, खुश नहीं हो पाता है, न हो, लेकिन वह नाखुश भी नहीं होता है; तब भी नहीं जब वह किसी पुराने परिचित पुरुषसे खटकनेवाली हद तक आत्मीयता दिखाने लगती है । ऐसेमें दालमें ज़्यादा नमक पड़ जाता है, तरकारी जल जाती है, आँखें धुएँकी कड़ुआहटसे जलने लगती हैं ।

लेकिन, फिर भी समुद्रके अन्दर शीत और उष्ण धाराएँ समानान्तर ही बहती जा रही हैं । जब भी एक-दूसरेको उपस्थितिका बोध हुआ तो एकमें संकोचन हुआ और दूसरेमें उबाल आया; लेकिन कहीं-कोई ऐसा स्थल नहीं आता जहाँ दोनोंकी तासीर एक-सी हो जाये ।

■ ■

राजकीय बहुउद्देशीय बालिका विद्यालय,
भागलपुर

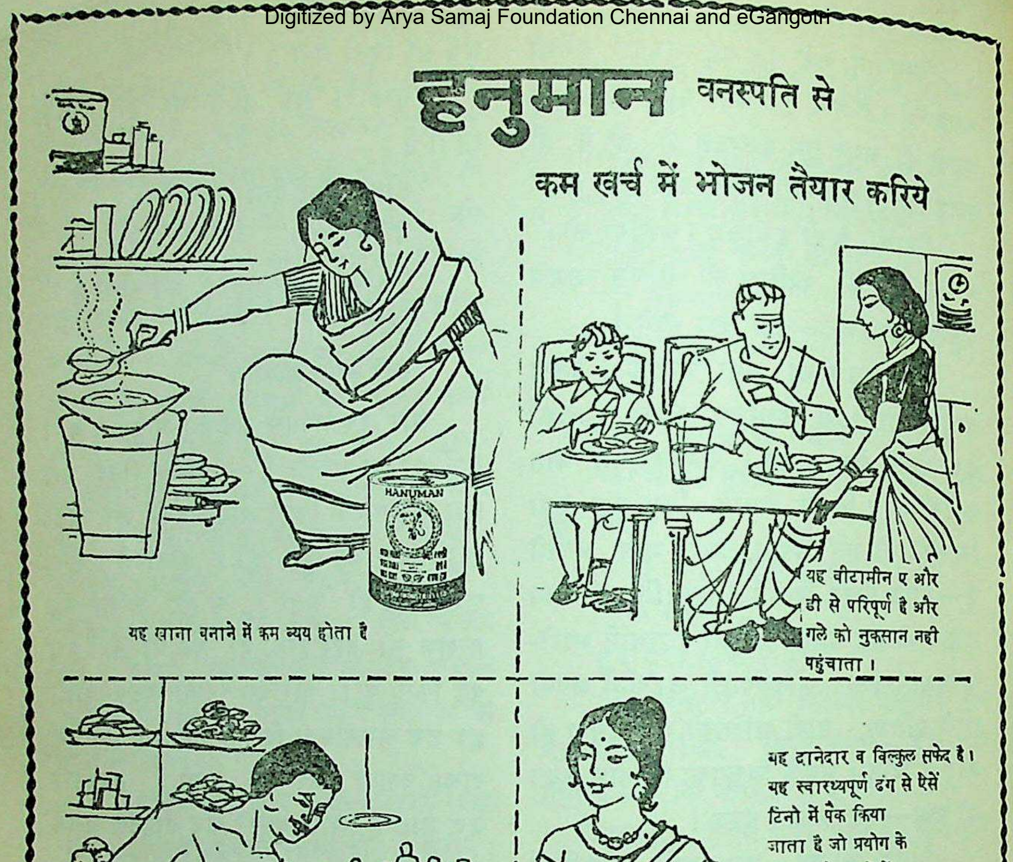

हनुमान वनस्पति से

कम खर्च में भोजन तैयार करिये

यह खाना बनाने में कम व्यय होता है

यह वीटामीन ए और डी से परिपूर्ण है और गले को नुकसान नही पहुंचाता।

यह दानेदार व बिल्कुल सफेद है। यह स्वास्थ्यपूर्ण ढंग से ऐसें टिनो में पैक किया जाता है जो प्रयोग के बाद दूसरे कामों में आसानी से इस्तेमाल किये जा सकें।

इससे तैयार किया हुआ भोजन एवं मिठाइयां देर तक स्वादिष्ट रहती हैं।

निर्माता—
रोहतास
इन्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमियानगर
(बिहार)

IPC/HV-531

'फिर वहीं मैं,
वही शहर'

—अशोक आत्रेय

नींद टूटती है ।
खिड़कियाँ नहीं खुलतीं । चौखट में डालियाँ नहीं हिलतीं ।
रज़ाई गर्म रहती है ।
अली चाय रख जाता है ।
धूप के चकत्ते फ़र्श में यहाँ-वहाँ हिलते हैं । आँखों में खिलते हैं ।
सिअ इअ हिअ हिअ करती है नानी ।
बुदबुद-खदब-खदब पतीली में खदकता है पानी ।

हजामत का आॅल्टरनेट दिन होता है या नहीं होता ।

अली हररोज़ कैलेण्डरको तारीख बदल कर कहता है—'साब टब का पानी
गरम हो गया है ।'

धूप के चकत्ते और लम्बे हो जाते हैं । टैगोर को तसवीर के पीछे कबूतर
गुनगुनाते हैं । फ़र्श में तिनके गिर कर फैल जाते हैं ।
रज़ाई से निकल कर गर्म पाँव ठण्डी फ़र्श में आते हैं ।

बेमाने में ही स्टूल में दाँतुन की ट्यूब पड़ी रहती है ।
आना तो छत में ही होता है ।
गुसलघर का दरवाज़ा खुलता है—बन्द होता है ।

फ़्लश की आवाज़ दिन में कितनी बार होती है—ज्ञात नहीं होता ।

बरामदे में बैठे बाबूजी बच्चों से यहाँ-वहाँ रक्खी ऐनक माँगते हैं ।
धूप में अखबार बाँचते हैं ।

घर के सामने खड़े हो बस का इन्तज़ार करने वाली कॉलेज की लड़कियों का
झुण्ड रोज आधा पौन घण्टा कुछ नहीं करने देता । रोज बजने वाला साइरन
कोई अर्थ नहीं देता ।

बच्चे स्लेट-पट्टियाँ-होल्डर कापियाँ किताबें पेन रबर पेन्सिल [illegible]
यहां वहां ढूँढ़कर कहीं पड़ी बोरियों से कूद कर धूप में फैल कर छत
में बैठ जाते हैं।

अपना सिर धुनते हैं
एक दूसरे का भेजा चाटते हैं।
बीच-बीच में सवाल पूछते हैं—तंग करते हैं।
ध्यान बंट जाता है—दांतुन में, सवालों में, और सामने की छत में बैठ कर
पढ़ रही लड़की में।

लड़कियाँ : आँखों से सब कुछ कह देने वाली लड़कियाँ मानसिक अटकलों से बहुत बार रात पड़े साथ-साथ सोती हैं। निर्वस्त्र होती हैं।⋯बहुत बार पार्क की दूब में लायी जाती हैं। यों मुख्यतया एक शहर मे दो ही लड़कियाँ ऐसी होती हैं। यह छत वाली बहुत बार हुई है।⋯जो दांतुन-कुल्ले से फेंके गये सूत्र तक को पकड़ लेती है।

पर ऐसी तमाम अटकलों से जिया जाना मरीचिका सम सिद्ध होता है। आदमी हर रोज़ अपने चेहरे को शीशेमें छोटा होता देखकर रोता है।

पी० डब्लू० डी० का मज़दूर पत्थर से पुताई की पंछिया काटता है। शहतूतके नीचे बारी-बारी से साथियों में बीड़ी बाँटता है।

रेल का इंजन रोज बोलता है।
शहर में पुल का अभाव घोलता है।
रेल का फाटक चाहे जब भीड़ को दो भागों में बाँट देता है। उसे खोलने-बन्द करने
वाला एक ही लँगड़ा कर्मचारी होता है।

उसी स्थल विशेष से प्रभावित होकर लिखी गयी 'अपशकुन' कहानी—जो अधिकांशतः
वहाँ खड़े होने पर ध्यान हो आती है।

दूसरी ओर ढलान पर खड़ी दवाई की दूकान की सेल्स-गर्ल ग्राहक जुटाती है।
स्कूल के सामने ही किताबघरों के सामने लगी यलो सिरिज, जासूसी पंजा, सुसराल-आनन्द, और एक चवन्नी में रात का आनन्द दिलवाने वाली छोटी चौबारियाँ रोज़ के अपने पूरे ग्राहक समेट लेती हैं।

आवश्यकताकी सभी चीजें उपलब्ध करवाने वाला एक प्रेम-टेण्ट-हाउस है। लोहे के दो मुहों वाले लाउडस्पीकर विरोधी दिशाओं में फ़िल्मी गाने उगलते हैं। लाल कोट पहिने फ़िजीकल इन्सट्रक्टर, स्कूल जाती लड़कियों के झुण्ड, साल ओढ़ी

अध्यापिकाएँ, पैडल मारते बाबू, रेवड़ी गजक के ठेलों के इर्द-गिर्द खड़ी भीड़, लड़कियाँ देखते लड़के, चाय की आधी भरी गिलासें होटलों से दूकानों को ले जाते छोकरे—सिलसिले में आते हैं जाते हैं।

किसी भी दूसरे दिन उपलब्ध हो सकने वाली 'जेल के फाटक टूटेंगे, हमारे साथी छूटेंगे' का नारा बुलन्द करती भीड़, लाठी लिये सिपाही मन में उदासी घोलते हैं।

बीच सड़क में कन्धे जोड़ कर खड़े हो जाने वाले गपशपी मित्र। बीच सड़क में लकड़ी के गट्ठर का सौदा करता गँवार। बीच सड़क में बड़े टायरों वाली खड़ी ऊँट-गाड़ियाँ। बीच सड़क में सांड़ों को लड़नेको उकसाती भीड़।····और बायें-दायें अपने को बचाते हुए साइकल-सवार कन्धों से हिलते हैं।

सज्जनालय में फ़िल्म-फ़ेयर, माधुरी में अभिनेत्रियों की नंगी जाँघें देखनेवाले लड़के। बासी समाचार चाटने वाले बूढ़े लोग। अपनी 'साठोत्तर' उम्रमें पानी पिलाते वक़्त खीझ उगलता है चपरासी।····मेरे समकालीन लेखक-कथाकार-बन्धु !····सभी मुझे भी कुछ करने को लालायित कर देते हैं।

भाभी का नया बच्चा नीचे के कमरे में रोता है। जो रातमें अपने बाबा—मेरे पिता—के पास सोता है।

खाली पीरियड्स की सम्भावनाएँ जुड़ती हैं। गैस-प्लाण्ट खोलने वाला लैब-बीयरर छुट्टी पर होता है।····वनस्पति-शास्त्र का प्राध्यापक छछुन्दर-सा लगता है। हिन्दी प्राध्यापिका के प्रति लड़कों का व्यवहार बहुत गन्दा होता है। एक लड़का भरी क्लास बीच सोता है।····अली हर रोज़ कैलेण्डर की····

धारीदार पायजामा-बुश्शर्ट के नीचे बनियाइन-अण्डरवीयर में आने से पहिले मैं टेबुल पर पड़ा तौलिया उठाता हूँ। बाथरूममें कोई धुन गुनगुनाता हूँ। अपटूडेट हो, खाना-वाना खा बातों-ही-बातों में कॉलेज हो आता हूँ।

■ ■

शान्ति निकेतन,
ओल्ड गिनानी,
बीकानेर

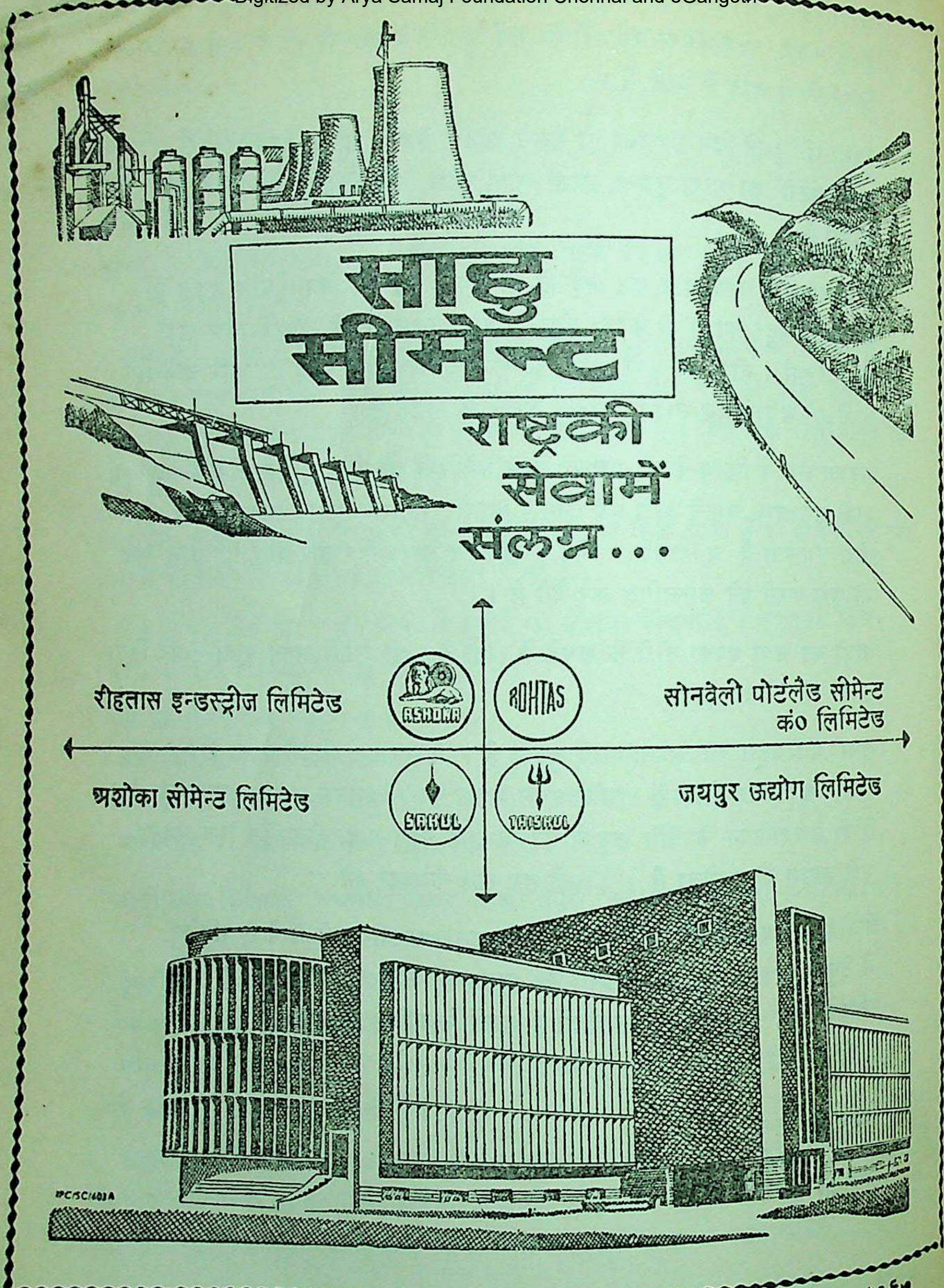

साहु सीमेन्ट

राष्ट्रकी सेवामें संलग्न...

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

सोनवेली पोर्टलैंड सीमेन्ट कं० लिमिटेड

अशोका सीमेन्ट लिमिटेड

जयपुर उद्योग लिमिटेड

ASHOKA
ROHTAS
SAHUL
TRISHUL
IPC/SC/603A

एक कहानी :
साहित्य-संस्कार की

साफ्फो

——राजनाथ पाण्डेय

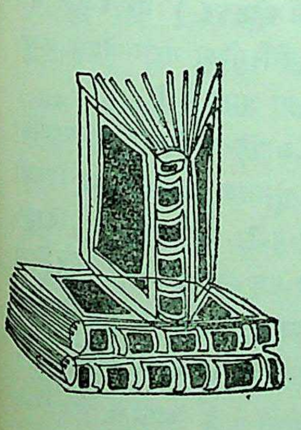

अभी कल ही की बात है—एक किताब बाँच रहा था कि एक कविता पढ़नेको मिली जिसने पल भरमें बेचैन कर दिया। उसका अनुवाद है :

"वरण किया जिसको देवों ने स्वयं रमण हित
नहीं चाहिए उसे करे सहवास मर्त्य से :
मानव और देव हैं अलग, नहीं करते वे भोजन
एक थाल में; और तुम्हें भी चुनना दो में सिर्फ़ एक है।
किन्तु जब कि कर चुके चयन तुम विरत नहीं हो सकते उससे :
एक बार चख लेना यश-अमरत्व दिलाने वाले फल का,
'प्रोसेरपैना' के अनार-दाने खाने समान है,
चखते ही जिसको अनन्त युग-युग तक स्थान तुम्हारा बन जायेगा
उस अमरत्व विधायक शान्त नीड़ में,
नहीं जहाँसे रह जायेगा नाता फिर इस मर्त्य लोकसे।"*

---

* भारतीय पुराणोंमें 'वराहिनी' मातृकाओं में-से एक है। मेरी कल्पना है कि शब्द 'वाराही' या 'वराहिनी' तथा 'पर्सीफ़ोनी' एक ही हैं। 'वराह' शब्दका नैरुक्तिक अर्थ होता है (वर+आह) जड़ोंका आहार करनेवाला यानी कन्द-मूल (जायसी वाला 'कोरउर') खाने वाला—लेखक।

कौन थी वह 'प्रोसेरपाइना'? और क्या था उसके अनार-दाना खानेका रहस्य? यूनानकी पौराणिक कहानियों (mythologies) में जिस देवीका नाम पर्सीफ़ोनी है। क्रोनस वरुण (Uranus) का एक पुत्र था और ह्रिया (Rhea) उसकी (वरुणकी) एक पुत्री थी। उन भाई-बहिनके समागमसे 'दिमितिर' (Demeter) तथा द्यौस (Zeus या लैटिनका Jupiter) हुए थे। इन भाई-बहिनके समागमसे यही 'पर्सीफ़ोनी' कन्या उत्पन्न हुई थी। ज्रियेसने दिमितिर (सं०–मातृ या मातृका) के अनजाने पर्सीफ़ोनीका अदोनियस (Aidoneus) को वाक्‌दान कर दिया था। सो एक दिन जब पर्सीफ़ोनी पृथ्वी-तलपर उतर कर एशियाके 'निशियन' वनोंमें फूल चुन रही थी, एकाएक उसके नीचेकी जमीन फट गयी और 'प्रोसेरपाइना' (या पर्सीफ़ोनी) उसीमें समाहित हो गयी। तब तो दिमितिर अपनी लुप्त कन्याकी खोजमें पागल हो समस्त ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करने लगी। कुछ समय बाद जब साक्षात्कार हुआ तो सूर्य देवने दिमितिरको बताया कि यह शैतानी अदोनियसने की है। तब दिमितिर द्युलोक तजकर मर्त्यलोकमें अवतरित हुई और 'पृथ्वी तलके घरमें, वनमें, वन-प्रान्तरके कुंज सघनमें' देश-देशमें ठाँव-ठाँवमें अपनी पर्सीफ़ोनीको ढूँढ़ती रही। जहाँ-जहाँ उसे सम्मान मिलता वहाँ वह सुख-समृद्धिकी वर्षा करती और जहाँ-जहाँ अवमानता होती वहीं वह दारिद्रय और घोर विपत्तियोंका हाहाकार छोड़ देती थी। उसने पृथ्वीको अन्न और फल उगानेसे मना कर दिया, और थोड़े ही कालमें संसारमें त्राहि-त्राहि मच गयी। यह देख ज्रीयसने 'हर्मिज' (Hermes = संस्कृत 'समीर') को अदोनियसके पास भेजा। अदोनियस पर्सीफ़ोनीको लौटा देनेके लिए राजी तो हो गया किन्तु चलते समय उसने उसके हाथमें अनारके फलका एक टुकड़ा थमा दिया और अबोध पर्सीफ़ोनीने अनारके वे कुछ दाने खा भी लिये। उसीके प्रभावके कारण वर्षमें कुछ महीनोंके लिए पर्सीफ़ोनीको अदोनियसके साथ रहना अनिवार्य हो गया। विद्वानोंने इस सारे कथानकको एक प्रतीकोपाख्यान बताकर कहा है कि पर्सीफ़ोनी नीचे एक पृथ्वीके गर्भमें ले जायी गयी थी और कुछ नहीं खेतीका बीज ही है जो वर्षके कुछ महीने मिट्टीके नीचे दबा रहता है। माता दिमितिरके पास पर्सीफ़ोनीके पुनरागमनमें खेतीका वह फला-फूला लहलहाता स्वरूप है जो धरतीको फोड़कर (या धरती-गर्भ छोड़कर) मानव-कुल और पशु-पक्षी तथा चींटियोंका भरण-पोषण करनेके लिए ऊपर उग आता है!

पाठक! आपके ही लिए नहीं बहुतोंको यह बता पाना मुश्किल होगा कि यह किसकी लिखी कविता है? इसमें किसका, किससे, किस अवसरपर यह उद्‌गार है? और बिना बताये यह जानना भी आसान न होगा कि आपको यह कविता किस उद्देश्यसे सुनायी गयी है!

किन्तु इसके पहले कि आप इन प्रश्नोंके उत्तर पायें मैं चाहता हूँ कि आप एक पुरानी (सच्ची) कहानी सुन लें।

•कहानी एक बोझिल अतीतकी!

प्राचीन यूनानके मितिलेनी नगरमें क़रीब २६०० साल पूर्व (ई० पू० ६१२ में) एक बालिकाका जन्म हुआ था जो विश्वके साहित्य और कलाके अनन्तमें 'साफ्फो' नामसे एक ध्रुवतारा बनकर अधिष्ठित है। साफ्फो यूनानकी सर्वश्रेष्ठ लीरिक-कवियित्री है। डॉ० एम० रौबिन्सनने १९२४ ई० में प्रकाशित अपने ग्रन्थ 'साफ्फो ऐण्ड हर इन्फ़्लुएन्स' में इसके सम्बन्धमें विस्तारसे लिखा है। उसके लीरिक काव्यके नौ संग्रहोंमें-से अब भी कई उपलब्ध हैं जो आज भी उसके काव्यमें अंकित स्वर्गका दिशा-निर्देशन कर रहे हैं। यद्यपि जॉन बारिंगटनके मतमें (देखिए क्लॉसिकल डिक्शनरी, डेण्ट डटन, पृष्ठ ४५३-५४) साफ्फोकी मरण-तिथि एवं स्थानका निश्चित पता नहीं, तथापि उसके (साफ्फोके) सम्बन्धमें एक किंवदन्ती यूनानमें तभीसे प्रचलित है कि उसका विवाह 'सर्सिलस' नामक व्यक्तिसे हुआ था जिससे उसके एक कन्या जिसका नाम 'क्लीइस' था, पैदा हुई थी। किन्तु आस्ट्रियाके सर्वश्रेष्ठ कवि फ़ांज ग्रिल पार्जरने अपने अमर नाटक 'साफ्फो' (Sappho) में, जो जर्मन भाषामें सन् १८१८ ई० में लिखा गया था, इसके पतिका नाम 'फ़ाऊन' बतलाया है। सम्भवतः 'फ़ाऊन' शब्द एक विशेषण है। नाटकका कथानक है कि जब फ़ाउन साफ्फोकी तरुणी दासी 'मीलिता' के प्रेम-पाशमें आबद्ध होता है और साफ्फोको इस बातका ज्ञान होता है तब उसकी चेतनाके समक्ष एक महान् तथ्य प्रतिभासित होता है कि : 'जो कीर्तिका अमरत्व अर्जित करनेकी आकांक्षा रखते हैं उनके लिए सांसारिक सुखोंका विधान नहीं है!' इस सत्यका साक्षात्कार होते ही वह 'लुकादियन' पर्वत-शृंखलाकी सर्वोच्च चोटीपर आरोहण कर पर्वतके चरणोंपर लोट रहे समुद्रमें कूद पड़ती है! यह कविता फ्रांज ग्रिल पार्जर रचित नाटक 'साफ्फो' (अंक ३, दृश्य २) में जल-समाधि लेते समयका 'साफ्फो' का स्वकथन है। अँगरेज़ीका अनुवाद (जिसके हिन्दी रूपान्तरसे इस निबन्धका श्रीगणेश हुआ है) अलेन फ़्रोथिंघमका किया हुआ है। याद रखनेकी बात है कि जर्मन भाषाके 'साफ्फो' का अँगरेज़ीमें किया हुआ यह चौथा अनुवाद है जिसके सम्बन्धमें अधिकारी विद्वान् (प्रोफ़ेसर जे० जी० रौबर्टसन) का कथन है कि यही अनुवाद (सन् १९२५ तक) अँगरेज़ीमें हुए चारों विभिन्न अनूदित संस्करणोंमें सर्वश्रेष्ठ है। अमरत्व-दायक जिस यश-प्राप्तिकी आकांक्षाका ग्रिल पार्जरने साफ्फोके आत्म-निपातके क्षणोंवाले स्वकथनमें संकेत किया है साफ्फोकी उसकी उपलब्धिका इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि आज (सन् १९५२में) २६०० साल बाद भी यूनानके सन्दर्भमें मानव-चेतनाकी सर्वोत्कृष्ट-सम्पदाका आकलन करते समय अधिकारी विद्वान् ऊक्लिद (Euclid), प्लातो (Plato = अफ़लातून) और सोफ़ोक्लिस

(Sophocles) के साथ ही साफ्फो (Sappho) का नामोल्लेख करते हैं। और यूनानके ही सन्दर्भमें क्यों, यह बात तो समस्त विश्वके सन्दर्भमें भी कही जा सकती है कि यदि एक ओर गणितज्ञ ऊक्लिद (Euclid) और ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य ब्रह्माण्डमें हमारी पार्थिव स्थितिकी चतुर्दिक् भयावह असमानताओं, दूरियों और बेडौलपनोंको अपनी रेखाओं, वृत्तों और अंकों-द्वारा निकटस्थ एवं सुपरिचित बनाते हैं, तथा प्लातो, और सोफ़ोक्लिस और कालिदास अपनी कृतियोंमें नैतिकताकी प्रस्थापनासे मानव-जीवनकी अगणित शोक-सम्भावनाओंको उदात्त एवं सुसहनीय बना देते हैं, तो दूसरी ओर साफ्फो धर्म, नैतिकता और दार्शनिक उपदेशोंसे सर्वथा विलग अपनी वाणीमें स्वरों और व्यंजनोंके विचित्र सौषम्यसे निर्मित अपने लौरिक-गीतों-द्वारा व्यथा एवं आह्लादमयी शुद्ध मानवीय भावनाओंका ऐसा विरल संगीत प्रस्तुत करती है जिसके प्रभावके क्षणोंमें मानव-मानसिकता समस्त विकल्प-विषादोंसे मुक्त हो अनुरागके राग-रंजित ब्रह्मानन्द-सरोवरमें तभीसे अवगाहन करती आ रही है और सृष्टिके अन्तिम क्षणों तक अवगाहन करती रहेगी।

लगभग इसी शीर्षकका (Sapho केवल एक 'पी' वाला !) एक उपन्यास (मोडर्न लाइब्रेरी सीरीज़वाला अंगरेज़ीमें उसका अनुवाद) मैंने भी पढ़ा है जो फ़्रान्सके प्रसिद्ध उपन्यासकार अलफ़ान्स दोद्देका लिखा हुआ है। दोद्दे (Daudet)ने यह उपन्यास सन् १८८४ ई०में अर्थात् जर्मन 'साफ्फो'के प्रकाशनके ६६ वर्ष बाद लिखा था। मुझे तो कीट्सकी प्रसिद्ध कविता 'ला बेल् दाम सान्स मर्सी" (निर्मोहिनी मनमोहिनी) में भी ग्रिल पार्ज़रकी 'साफ़्फ़ो'की एकपक्षीय गूंज सुनाई पड़ती है लगभग जैसी कि दोद्देकी 'Sapho' में है। या सम्भव है कीट्सने 'साफ्फो'का परिचय मूल यूनानी 'साफ्फ़ो' गीतोंसे प्राप्त किया हो।*

ग्रिल पार्ज़र कृत 'साफ्फो' करुणा और कल्पनाके संसारमें ऊँची उड़ानकी एक बहुत ही अद्भुत उपलब्धि मानी गयी है। अपनी मीरा या महादेवी अथवा मीरा और महादेवी दोनोंकी गीतकाव्य-प्रतिभाकी विश्व-साहित्यके सन्दर्भमें एकमात्रता उद्घोषित करनेवाले अपने 'महासमीक्षक'से निवेदन है कि ऐसा एलान करते समय वे यह न भूलें कि कहीं कोई एक 'साफ्फो' भी ऐसी रही है!

'रूमानी' और 'क्लासिक'का विवाद, उस समय मदाम स्ताईलकी कृपासे, जिन्होंने सर्वप्रथम 'Litteratures du Midi' तथा 'Litteratures du Nord' शब्दों-द्वारा काव्य-धाराकी इन दो विलग गतियोंका नामकरण किया था, समस्त युरॅपमें, विशेष रूपेण

---

* कीट्सने उक्त कविता, जर्मन भाषामें 'साफ्फो' के प्रकाशनके एक वर्ष बाद—अप्रैल १८१९ में—लिखी थी। इतालवी भाषामें जर्मन भाषाके 'साफ्फो' का अनुवाद १८१९ में ही—यानी जर्मनमें उसके प्रकाशनके कुछ महीनों बाद ही—हो गया था, और उन दिनों कीट्स फ्रांस और इटलीमें ही था। अतः सम्भव है कि कीट्सने अपनी यह कविता लिखनेके पूर्व 'साफ्फो' को इतालवी अनुवादमें पढ़ा हो —लेखक।

जर्मनीमें छिड़ गया था। युगके इस साहित्यिक सन्दर्भ और समाजकी तत्कालीन दर्शन-प्रधान चेतना तथा जर्मनीको महत् राष्ट्रीय आकांक्षाके गंगाजलमें निजी व्यथा, निराशा और करुणाका जीवनमें मन्थनसे अर्जित अमृत मिलाकर, कि जिस व्यथाका अभी उल्लेख होने ही वाला है, इस काव्य-कृतिको ऊँचाईके धौलागिरिपर ला पहुँचानेवाला महाकवि सदा अवमानित, उपेक्षित और प्रवंचित ही रहा था। उसके जीवनके विषादान्तोंके एक पक्ष (केवल पारिवारिक)का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। ग्रिल पार्जर (जन्म १७९१ ई०) अपने चारों भाइयोंमें सबसे बड़े थे। ग़रीबीके कारण परिवारका जीवन-यापन इतना अभावपूर्ण और कठिन था कि बेचारेकी माताने ग़रीबीसे ऊबकर १८१९ में आत्मघात कर डाला था। इस दुःखद घटनाके दो साल पूर्व फ्रांज ग्रिल पार्जरसे छोटे अदोल्फ़ने २४ वर्षकी भरी जवानीमें दान्यूब (वैदिक नाम दानवी नदी)में डूबकर जल-समाधि ले ली थी। अदोल्फ़के बाद वाले भाई कार्लने भी कुछ वर्षों बाद आत्महत्या की; और सबसे छोटा कामिल जीवनभर विक्षिप्त रहा। अदोल्फ़ने जल-समाधि लेनेके पूर्व एक चिट्ठी लिखकर भाइयोंको एक चेतावनी छोड़ी थी कि : "खबरदार ! तुममें-से कोई भी विवाह मत करना नहीं तो तुम्हारी औलादोंकी भी वही गति होगी जो हम लोगोंकी हो रही है और होनेवाली है !" बिचारा फ्रांज ८१ वर्ष तक अपना जीवन एकाकी—अविवाहित—ठेलता रहा। जीवनके अन्तिम क्षणों तक उसको यह सन्देह बना रहा कि वह सचमुच संयत है या विक्षिप्त ! उसने भी 'साफ्फो' की तरह जीवन-विषका पान किया और 'साफ्फो'के समान ही उसने भी उसे पचाकर जो अमृत-दान किया उससे उसके काव्यको अमरत्व प्राप्त हो गया।

निबन्धके प्रथम अध्यायके अन्तमें जो प्रश्न उठाये गये थे उनमें-से प्रथम दोके तो उत्तर दिये जा चुके। अब तीसरे प्रश्नका उत्तर देनेके प्रयासमें इंगलैण्डके प्रसिद्ध कवि लॉर्ड बायरनके एक वक्तव्यका उल्लेख अनिवार्य है। 'रावेन्ना' नामक स्थानसे जनवरी १८२१ में बायरनने लिखा था :

"···रेड दि इटालियन ट्रान्स्लेशन ऑव् गाइडो सोरेल्लो ऑव् दि जर्मन ग्रिल पार्जर—अ डेविल ऑव् दि नेम, टु बी श्योर, फ़ॉर पोस्टेरिटी; बट् दे मस्ट् लर्न टु प्रोनाउन्स इट। विद ऑल दि अल्लाउएन्स फॉर अ ट्रान्स्लेशन, ऐण्ड, अबव् ऑल, ऐन इटालियन ट्रान्स्लेशन····दि ट्रैजिडी ऑव् साफ्फो इज़ सुपर्ब ऐण्ड सब्लाइम ! दियर इज़ नो डिनाइंग इट। दि मैन हैज़ डन अ ग्रेट थिंग इन राइटिंग दैट प्ले। ऐण्ड हू इज़ ही ? आइ नो हिम नौट; बट एजेज़ विल। 'टिज़ अ हाइ इन्टेलेक्ट।"—लार्ड बायरन (ऐट रावेन्ना, जनवरी १८२१)

अर्थात् : पढ़ा (मैंने) गाइदो सोरेल्ली-द्वारा अनूदित जर्मन ग्रिल पार्जरको—निश्चय यह एक बेढब नाम है, आनेवाली पीढ़ीके (याद रखनेके) लिए, लेकिन उन्हें ठीक तरहसे इस नामका उच्चारण सीखना ही

पड़ेगा। अनुवादको, सो भी इतालवी अनुवादको, खामियोंके बावजूद, साफ्फ़ोका शोक-कारुण्य अति वैभवयुक्त तथा उत्कृष्ट अनुभव-सम्पन्न है। इस बातसे किसीको इनकार नहीं हो सकता। यह नाटक रचकर इस व्यक्तिने एक महत्कार्य किया है। परन्तु है कौन यह आदमी? मैं जानता नहीं। किन्तु आनेवाली सदियाँ जानेंगी कि उसकी प्रतिभा कितनी महान् चेतनाका प्रतिनिधित्व करती है !”

अब देखिए तो सही, कहाँ साफ्फोका समय ईसा पूर्व ६१२ साल, और कहाँ ईसवी सन् १८१८ में ग्रिल पार्ज़रका जर्मन भाषामें लिखा 'Sappho' नाटक ! और फिर जनवरी १८२१ के पहले ही इटलीके कवि गाइदो सोरेल्लीका जर्मन-नाटक 'Sappho' का इतालवी भाषामें अनुवाद, और इंगलैण्डके महाकवि बायरन-द्वारा उस ग्रन्थ तथा उसके रचयिताका इतने मुक्त कण्ठसे यशःगान ! फिर जर्मन भाषाके उसी साफ्फोके कथानकसे प्रेरित हो फ्रांसके एक सुप्रसिद्ध कथाकार अलफ़ान्स दोदे-द्वारा अपने युगके अनुरूप एक 'Sapho' के जीवनका इसी नामके एक उपन्यासमें चित्रण !

साहित्यकी इस सुरुचि एवं सहृदयतापूर्ण व्यापक चेतनाको प्रथम बार फ़रासीसियोंने गहराईसे आंका और इसका नामकरण किया—जिसे अँगरेज़ीमें 'लिट्रेरी कौस्मोपौलिटैनिज़्म्' कहते हैं। और हम इसे 'साहित्यिक-बहुदेशीयता' या 'साहित्यिक-सहकुटुम्बिता' नाम देना पसन्द करते हैं। किन्तु इस उदार साहित्य-प्रवृत्तिके लिए कुछ विशेष कारणोंसे हम यहाँ 'आन्तरभारती' नाम देना अधिक उपयुक्त मानते हैं।

• 'दु कौस्मोपौलितिज़म लित्रेर'

वास्तवमें उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम दशकमें Joseph Texte नामक फ़रासीसी समीक्षकने एक पुस्तक 'रुशो एत लेस दु कौस्मोपौलितिज़म लित्रेर' (Rousseau et les du Cosmopolitisme litteraire) प्रकाशित करके आधुनिक समीक्षाके क्षेत्रमें इस चेतनाका प्रवेश कराया था। साहित्य-जगत्में बहुदेशीय वृत्ति (Cosmopolitanism) के लिए कुछ साहित्यगत विशेषताएँ अनिवार्य होती हैं। सर्वप्रथम कृतिमें गुण होने चाहिए (और उस कृतिके रचयिताके व्यक्तित्वमें भी ऐसी मानसिकता होनी चाहिए) जिनके बलपर वह कृति उसके लेखककी भूमि तथा भाषाकी परिधिके बाहरके निवासियोंका ध्यान भी अपनी ओर आकृष्ट कर सके। जिन साहित्यकारोंमें इस प्रकारकी प्रतिभा होती है उनकी वाणी (साहित्य) में अपने देश और कालकी सम्पूर्ण संस्कृति तथा देशीय (राष्ट्रीय) चेतनाका पूर्णतः प्रतिनिधित्व करनेकी क्षमता तो रहती ही है, उनमें पड़ोसी राष्ट्रोंकी जातीय रुचि, सम्मान एवं संस्कृतिके अनुकूल भी अनेक तन्तु होते हैं जिससे अपने देशकी सीमाके बाहर भी वे समादृत होते हैं। किन्तु स्वतः किसी कृतिमें इस प्रकारकी क्षमता होनेपर भी 'साहित्यिक

'कास्मोपौलिटैनिज़म्' के लिए पड़ोसी भाषा-क्षेत्रों और पड़ोसी राज्यों (विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों) तथा राष्ट्रोंमें पारस्परिक साहित्यिक सौहार्द्रसे परिपूर्ण आदान-प्रदान-की सुगमताका वातावरण भी होना ही चाहिए। किसी कृतिमें उसके साहित्यिक-सौष्ठवके ही कारण अपने आप यह विशेषता प्रविष्ट नहीं हो जाती है। यही कारण है कि अठारहवीं सदीमें युरॅपमें जिस समय फ़रासीसी कोर्नाइ, वोल्तेयर और रासीनके नाटकोंकी समस्त युरॅपीय राष्ट्रोंमें धूम थी, इंगलैण्डके अतिरिक्त युरॅपके अन्य राष्ट्रोंमें लोग शेक्सपियरके 'हैमलेट' को 'भोंड़ी और बर्बरतापूर्ण रुचिका उत्कृष्ट नमूना' कहकर उपेक्षित करते थे* और बादमें भी इंगलैण्डके ही प्रसिद्ध कवि शेले, वर्ड्सवर्थ तथा कीट्सके काव्यका स्पर्श जब कि इंगलैण्ड तक ही सीमित रहा, बायरनका अन्तर्योरॅपीय प्रभाव इतना स्पष्ट और मुखर था कि फ्रांसके महान् समीक्षक सन्त-बूव्ने महान् फ़रासीसी कवि एवं राजनीतिज्ञ ('अताला' और 'मार्टर' महाकाव्योंके रचयिता) शातो ब्रियांकी तुलनामें बायरनको श्रेष्ठ बताते हुए उसे ही 'ब्लैक आल्पाइन लेपर्ड' (आल्पपार्वतीय काला तेंदुआ) कहा था जो बार-बार विफल होकर भी तबतक अपने शिकारपर धावा करता ही रहता है जबतक उसपर हावी नहीं हो जाता। बायरन भी एक भावपर कई कविताएँ तबतक लिखता रहता था जबतक कि उस विषयपर सर्वोत्कृष्ट कविताका निर्माण नहीं कर लेता था।

कहा गया है कि यह प्रवृत्ति मध्ययुगीन साहित्यकारोंमें प्रचुर मात्रामें थी क्योंकि युगमें एकदेशीयता (Nationalism) की भावना नहीं थी जैसी कि आज है और जिससे प्रेरणा या आधुनिक युगका मानव पक्षपातवश अपने देशको ही जीवनके प्रत्येक पक्षमें अन्य देशोंकी तुलनामें सर्वाधिक प्रशस्त देखता है; साथ ही इससे भिन्न सोचनेवालोंको—'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास रखनेवाले उदार चरित लोगोंको—देश-द्रोही या देशका 'एनेमी नम्बर-वन' मानता है जैसा कि इन दिनों भी कुछ लोग जयप्रकाश नारायण-को मानते हैं! जिस तरह युरॅपमें मध्ययुगमें सर्वप्रथम 'चर्च' (धार्मिक ईसाई-मठ) तथा सलीबी-युद्धके कारण और उसके बाद युरॅपीय 'पुनर्जागरण'-द्वारा समस्त युरॅपमें सौमनस्यपूर्ण पारस्परिक सम्पर्क बना था और साहित्यके क्षेत्रमें समस्त युरॅपमें अरस्तू, वर्जिल तथा होरेसकी द्रोणाचार्यता सर्वमान्य हो जानेसे यह 'साहित्यिक-सकुटुम्बिता' प्रतिष्ठित हुई थी, उसी भाँति मध्ययुगके भारतमें भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक ऐक्यकी अखण्डता तथा साहित्यिक भूमिमें भरतमुनि, भामह, दण्डी, कालिदास आदि

---

* देखिए J. G. Robertson की पुस्तक 'Essays and Addresses on Literature' पृष्ठ २७६ :—··· So far from being a cosmopolitan work, Shakespeare's *Hamlet* was only laughed at as the acme of crude barbaric taste."

आचार्यों एवं कवियोंकी सर्वमान्यता स्थापित होनेके कारण यह 'सकुटुम्बिता' प्रखर और जीवन्त बनी थी। संस्कृतका एक भी सार्थक स्वर एक कोने ही से उठा तो भी समस्त देशमें व्याप्त हो जाता था! किन्तु जिस तरह प्रचण्ड 'राष्ट्रीयताबाद' के कारण, जिसका अभी-अभी उल्लेख कर आये हैं, युरॅपमें धीरे-धीरे उदार दृष्टिकोण संकुचित होता गया और राष्ट्रीय विद्वेष तथा वैमनस्यपूर्ण स्पर्धाका प्रसार हुआ तथा साहित्यके क्षेत्रमें (और दर्शनके क्षेत्रमें भी कि जिसके 'नीत्से'-जैसे जर्मन दार्शनिक ज्वलन्त उदाहरण हैं) व्यापकताकी जगह राष्ट्रवादिताजनित एक पक्षीयता या पक्षधरताकी प्रवृत्तिका उत्थान हुआ; उसी तरह भारतमें भी अंगरेज़ी राज्यकी स्थापना होते ही पहले तो वांछनीय राष्ट्रीयताका* और बादमें देशके स्वतन्त्र होनेपर आज भयावह प्रान्तीयता या प्रादेशिकताका विषमय विद्वेष फैल गया है। परिणाम यह हुआ है कि आज भारतीय साहित्यकी निगाह तत्त्वदर्शन यानी विविधतामें एकता देखनेकी ओर न होकर आधुनिकताके नामपर विज्ञानदर्शन यानी एकतामें विविधता (या विषमता) देखनेकी ही ओर अधिक है, जिसके परिणामस्वरूप वह हृदय-विशालता न रह गयी है जो पहले थी; और उसीका अभाव आज हिन्दीके राष्ट्रभाषा बननेमें बहुत बड़ा अवरोध है। राष्ट्रभाषा बन जानेपर भी इस रूपमें इसकी मान्यताका प्रश्न हल होना तो अभी और दूरकी बात है। यह अवरोध किसी क़ानून-द्वारा दूर नहीं किये जा सकते। इन्हें दूर कर हिन्दी राष्ट्रभाषा तभी बन सकेगी जब पहले हिन्दी साहित्य राष्ट्र-साहित्य बनकर राष्ट्रभाषाको अपने कन्धोंपर बैठाकर देशके कोने-कोने पदयात्रा करेगा। हिन्दी राष्ट्रभाषा तभी होगी जब 'भारतेन्दु', आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, 'निराला'-जैसे दिवगंत तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य विनयमोहन शर्मा, अज्ञेय, अनन्त गोपाल शेवड़े, प्रभाकर माचवे, मन्मथनाथ गुप्त, यशपाल आदि-आदि हमारे आचार्यों और साहित्यकारों-द्वारा अर्जित 'साहित्यिक बहुदेशीयता' अथवा 'आन्तर्भारती वृत्ति' का अनुसरण हिन्दीके शत-शत लेखक, अध्यापक और लक्ष-लक्ष विद्यार्थी आरम्भ कर देंगे। जिस प्रकार भारतेन्दु और आचार्य द्विवेदी अपने युगमें क्रमशः हिन्दी-बंगला और हिन्दी-मराठीके संगम थे उसी प्रकार आज आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और आचार्य विनयमोहन शर्मा भी क्रमशः हिन्दी-बंगला और हिन्दी-मराठीके संगम हैं। क्या यह बात स्वीकारनेमे किसीको आपत्ति होगी कि जिस तरह हमारे मझले खेवेके सर्वश्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, बालमुकुन्द गुप्त, लक्ष्मणनारायण गर्दे, गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर, रूपहरिकृष्ण जोहर, गंगाप्रसाद गुप्त,

---

* इसका हिन्दीमें ज्वलन्त उदाहरण 'भारत-भारती' है जिसके लेखककी एक प्रसिद्ध-पंक्तियोंकी निम्नांकित 'हिज्जो' (पैरोडी) दर्शनीय है: 'जिसको न निज गौरव तथा निज देशका अभिमान है: वह नर नहीं, नारी नहीं, बस घासका खलिहान है।'

नारायण पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय आदि-आदि पत्रकारोंने कलकत्ता, बम्बई, नागपुर, अहमदाबादमें रहते हुए बंगला, मराठी, गुजरातीके प्रभावको आत्मसात् कर हिन्दी भाषामें जो चमत्कार प्रस्तुत किया उसीने ठेठ हिन्दी प्रान्तमें ही रहकर कार्य करनेवाले पत्रकारोंकी हिन्दीकी सुघरतामें चार चाँद लगाये; उसी तरह आज भी बम्बई और कलकत्तेमें रहकर हिन्दी लिखनेवाले धर्मवीर भारती, लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी आदि-आदि लेखकों और पत्रकारोंकी हिन्दी 'साहित्यिक बहुदेशीय वृत्ति' (लिट्रेरी कौसमोपौलिटैनिज़म्) के मोहक तत्त्वोंसे अभिषिक्त हो अपनी विशेष कमनीयता प्रस्फुटित करने लगी है।

अभी कुछ ही दिनों पहले यह जानकर मुझे कितना अपार हर्ष और साथ ही कुछ-कुछ रंज भी हुआ कि एक ओर तो आधुनिक मराठीके किसी विद्वान्को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीका पता ही नहीं अपितु उनके व्यक्तित्वकी विशेषताओं तकके जानने और परखनेकी है, जब कि हम राष्ट्र-भाषा हिन्दीके सपूत मराठीके उस विद्वान्का नाम भी शायद नहीं जानते! मैं जानना चाहता हूँ कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीको लेकर शोध-निबन्ध लिखकर पी-एच० डी० या डी० फिल्० ('डफली' नहीं!) फटकार लेनेवाले किस पण्डितने अपने शोध-ग्रन्थमें प्रोफ़ेसर श्रीनिवास नारायण बनहट्टी (नागपुर) के निबन्ध 'स्वर्गवासी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी'-का उल्लेख किया है, अथवा उसमें उल्लिखित तथ्योंपर विचार किया है? अथवा 'भारतेन्दु' के सम्बन्धमें कार्य करनेवाले किस शोधार्थीको ज्ञात है कि उसी निबन्धमें प्रोफ़ेसर बनहट्टीने 'भारतेन्दु' एवं महाराष्ट्रके पत्रकार-जगत्में तेजस्वी सूर्यके समान प्रतिभासित दिवंगत विष्णु शास्त्री चिपळूणकरकी तुलनामें क्या-क्या कहे हैं?*

प्रो० बनहट्टीजीके शब्दोंमें जिस हिन्दीके उन्नायकोंमें 'भारतेन्दु' तथा पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी-सदृश कीर्ति-स्तम्भ उदियत हुए उसकी ''पश्चिमेस सतलज नदीपासून पूर्वस गण्डकी नदीपर्यन्त आणि उत्तरेस हिमालयपासून दक्षिणेस सातपुड़ापर्यन्त पसरलेला अफाट प्रदेशांतील प्रचण्ड लोकवस्तीला वाङ्मयनिमितसाठी वापरतांयेईल अशी तयार लोकभाषा कोणतीही न ह्वती''.....स्थितिमें भी इसी भूमि-भागके तुलसी-कबीर-सूरकी वाणीने पूरबमें बंगाल, पश्चिममें गुजरात और पंजाब तथा दक्षिणमें महाराष्ट्र ही नहीं अपितु आन्ध्र और मलय प्रदेशोंके भी हृदय आकृष्ट कर लिये। प्रोफ़ेसर बनहट्टीके 'भारतेन्दु' तथा चिपलूणकरकी तुलनामें कहे हुए शब्दोंको पढ़ते समय एफ़० एल० लूकासकी नयी पुस्तक 'इब्सन ऐण्ड स्ट्रिंडबर्ग'की याद आ गयी थी!

---

*देखिए, सुविचार प्रकाशन मण्डल, नागपुरसे प्रकाशित प्रोफ़ेसर बनहट्टीके मराठी निबन्धोंका संग्रह 'एकावली' में "स्वर्गवासी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ १७९–९५)। यह निबन्ध प्रथम बार अक्टूबर १९३८ में मराठी 'विहंगम' में प्रकाशित हुआ था।—लेखक

आकर्षक
पैकेज
आकर्षक
लेबेल ************ क्रेता की दृष्टि आकर्षित करने को वाध्य है

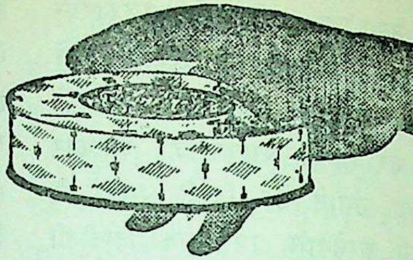

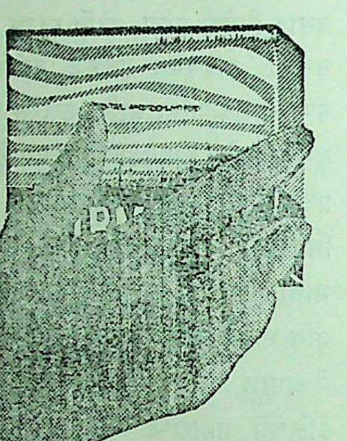

यह सही है कि चीजों की अच्छाई ही क्रेता को उन्हे खरीदने को मजबूर करती है— साथ ही साथ उन पैकेजों की विशेषता भी जिनमें चीजें हिफाजत से बन्द रहती है। पैकेज की सुन्दरता उसमें बन्द चीजों की सुन्दरता ही प्रगट करती है।

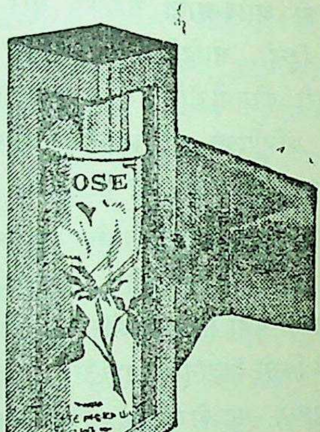

रोहतास डालमिया नगर स्थित अपने आधुनिक और उन्नतशील कारखाने में कार्टन और पैकेज बनाने लायक सर्वोत्तम पैकेजिंग पेपर और बोर्ड तैयार करते हैं, जिन पर बहु-रंगे छपाई के लिये भी भरोसा किया जा सकता है।

रोहतास पेपर्स और बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

ROHTAS

रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :—साहू जैन लिमिटेड, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१
थोक सेलिंग एजेण्ट्स :—अशोका मारकेटिंग लिमिटेड, १८ए, ब्राबोर्न रोड, कलकत्ता-१

IPC: RI: 492 H

निस्सन्देह प्रो० बनहट्टी 'आन्तरभारती' की सात्विक प्रवृत्तिसे सम्पन्न हमारे एक अति आदरणीय विद्यमान साहित्य पुरुष हैं।

कहा गया है कि जब लेगुसिस-कज़ीमियाँ (दोनों फ़रासीसी) का लिखा ग्रन्थ 'अँगरेज़ी साहित्यका इतिहास' प्रकाशित हुआ तो उसकी समीक्षामें प्रोफ़ेसर जॉर्ज सेण्ट्सबरीने कहा था कि आख़िर अँगरेज़ी साहित्यका सर्वोत्कृष्ट इतिहास लिखनेका श्रेय फ़्रान्स-निवासीको ही मिलनेको था! और फ़रासीसी उपन्यासोंका सर्वोत्तम इतिहास (दो जिल्दोंमें 'हिस्ट्री ऑव् फ़्रेंच नावेल्स') प्रस्तुत करनेका श्रेय भी एक अँगरेज़ विद्वान्—प्रोफ़ेसर सेन्ट्सबरी—को प्राप्त है। हमारे देशमें भी बंगालके विद्वान् डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, गुजरातके कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, मोहनलाल भट्ट, आन्ध्रके हृषीकेश शर्मा, महाराष्ट्रके (गुजरातके भी) हमारे 'काका' (काका कालेलकर) हिन्दीमें मौलिक लेखन प्रस्तुत कर रहे हैं। आख़िर वह दिन कब आयेगा जब बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदिके ही नहीं, दक्षिण-भारतकी भाषाओंके साहित्योंके सम्बन्धमें भी हिन्दी-भाषी प्रदेशोंके विद्वान् हिन्दीमें भी और उन भाषाओंमें भी अपने मौलिक लेखन प्रस्तुत करने लगेंगे?

■ ■

रीडर, हिन्दी विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी
ज्ञानपीठ पत्रिका
भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

● सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, जगदीश

● मूल्य :
६.०० वार्षिक, ००.५५ पैसे प्रति

'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी, जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करना है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

सम्पर्क-सूत्र : भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

पाँच मौसमी कविताएँ | श्रीराम वर्मा

[पहली कविताके पीछे कालिदासके दो श्लोकोंका सन्दर्भ है। एक 'कुमारसम्भवम्' का है, एक 'मेघदूतम्'का। जब शिव इतनी गहरी तपस्यामें लीन हो गये कि उनकी सारी इन्द्रियाँ अपने स्वयंसे मुक्त हो गयीं, देहत्व मिट गया, शरीर सूख गया, तब उनके प्राण उनकी अँगुलीमें पड़ी हुई 'पैंती' (कुशाकी पवित्री) में आ समाये। फलतः वह हरी हो गयी। इस महाकल्पनाको लेकर अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने एक चित्र भी बनाया है। मैंने 'पवित्री'की जड़ताको एक आयाम देनेके लिए उसे मीनत्व (सुन्दर गति) प्रदान करना चाहा है। सन्दर्भ दो : कुबेर नगरीके बाहर स्थित शिवके मस्तकपर स्थित चन्द्रमासे सम्पूर्ण कुबेर नगरी प्रकाशित रहती थी, दीपककी तरद्दुद वहाँ नहीं उठानी पड़ती थी। 'चन्द्र अट्टहास' उसका उससे मुक्त एक व्यंग्यार्थ प्रस्तुत करता है। 'चौथी आँख'में एक आयाम बढ़ गया है। तीन आँखें शिवकी कथित हैं। यहाँ चन्द्रमें 'मैं' या 'मीन' (पवित्री)के बहने या होनेकी स्थिति 'चौथी आँख'की सृष्टि करती है।

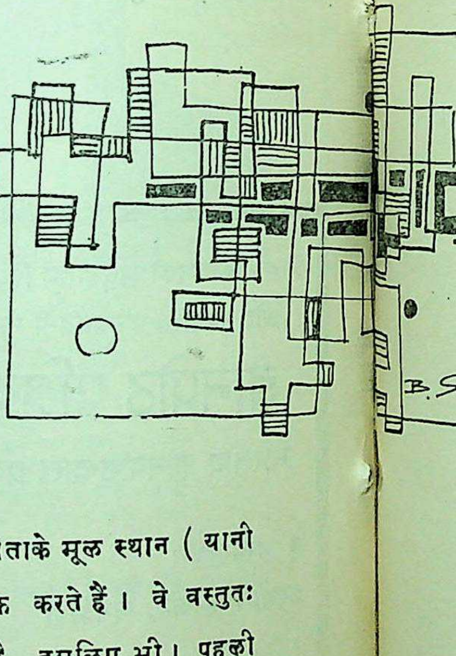

प्रयुक्त कोष्ठक शीर्षकत्वको समाप्त कर केवल कविताके मूल स्थान (यानी the centre of the creative process) को व्यक्त करते हैं। वे वस्तुतः शीर्षक हैं नहीं, उनका मौसमसे पृथक् अर्थ भी है, इसलिए भी। पहली कविताके शीर्षकमें तो दुहरे अर्थ हैं। अन्तिम कविताका शीर्षक कोष्ठकमें नहीं है वह एक रूपकको प्रस्तुत करता है जिसे कवितामें तोड़ा गया है।

— कवि]

१-आतप अवकाशोंमें

तप:शेष
हरी पवित्री को
गति दूँ मीन की ।

चन्द्र अट्टहास बीच बहूँ,
रचूँ चौथी आँख से
इयत्ताएँ ।

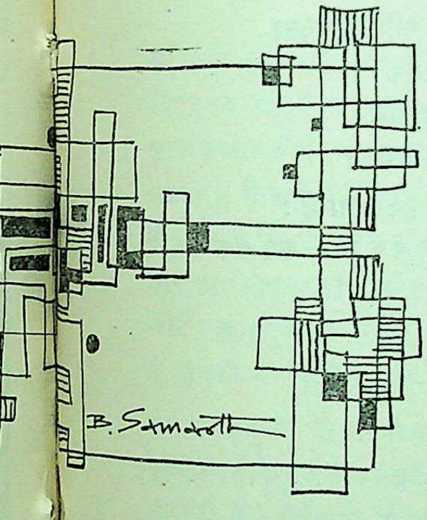

२-(गर्मियोंमें छतपर या नदी किनारे)

नदी
हिरनी की तरह मेरे पास आयी ।
हवा
कस्तूरी-सी चारों ओर फैल गयी ।

मैं
जैसे कि हर वस्तु से अमरता की तरह गुज़रा
और सात्त्विक कटाक्ष की तरह सँवर गया ।

३-(वर्षा से पहले)

अररायानी में नदी :
अबाबीलों के परों पर
भोर से पहले
भोर का आकाश ।

रेत : बगुले :

उपेक्षा-सी आर्द्र हिलकी
—कोरकों में—
स्नेह जीवन राख ।

ताख पर वह एक तारा :
एक तिल
तिल-तिल पलक में
अस्त होती प्रतीची ।

४–(वर्षा)

उठता-गिरता
पानीदार सीढ़ियों चढ़ता
आसमान तक
लथपथ लथपथ
कीचड़ में लथपथ
एक सत्य हकलाता है :
कब तक कब तक कब तक

५– सघन रात्रि-सरित्

बादलों में नदी दिखती है,
नदी की बत्तियाँ भी ।

रेतियों में साँवली विद्युल्लता :
अँखड़ियों में अन्त
रंग
    —वहाँ द्राबे में सँवर
    ता आसमान ।

■ ■

१७, महाजनी टोला,
इलाहाबाद–३

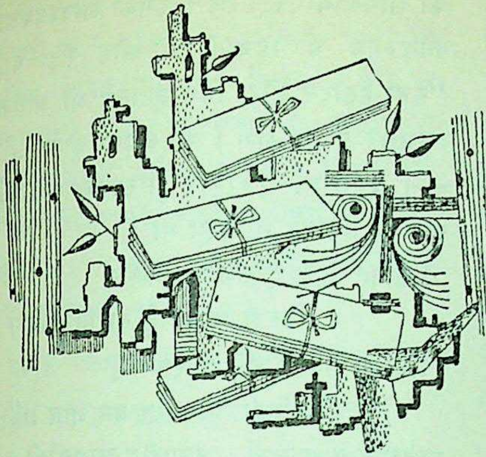

कालिदास : रक्तपात विरोधी महान् चिन्तक

•

—रेवाप्रसाद द्विवेदी

महाकवि कालिदास कितने ही पुराने 'कल' के तो कवि हैं ही, वे नितनवीन और चिरनूतन 'आज' के साथ भी समरस हैं। उनकी प्रतिभा वह हेमपर्णा हंसी है जो सामयिकता और शाश्वतताके दो स्वर्णिम डैनोंपर उड़ती है, और उस अन्तरिक्षमें उड़ती है जिसकी व्याप्ति काल-कवल नहीं, कालातीत है। उनकी वाणी संवादमयी है। उसके निर्मल पटके पीछे कोई ऐसी चेतना छिपी है जो हमारे सुख-दुःख, आशा-निराशा, व्यथा-सन्ताप और अन्तरतम तड़पका स्पर्श कर रही है, उसके पीछे छिपा कोई महान् दुष्यन्त हमारी चेतनाकी व्याकुल शकुन्तलाको अनुकूल संवाहन दे रहा है, हलकी थपकियाँ दे सुला रहा है।

आजकी प्रमुख समस्या है—युद्ध और रक्तपात। अस्त्र-शस्त्रोंकी अविश्रान्त प्रतिद्वन्द्वितासे युद्धकी कालदंशता विश्वमानवको दिनों-दिन और भी पास आती प्रतीत हो रही है। सर्वग्रासी मृत्युका विकराल और बीभत्स जबड़ा और-और फटता दिखाई दे रहा है। सुरक्षा-परिषद् और राष्ट्र-संघकी स्निग्ध छायामें हम इस समस्याको यथासम्भव टालनेके प्रयत्नमें हैं। महाकवि कालिदास भी इस समस्यामें हमारे साथ हैं। युद्ध और रक्तपातकी जटिल समस्यासे उनका भी मस्तिष्क टकराया था और आजसे पन्द्रह-बीस शती पूर्व उन्होंने भी इसके समाधानपर विचार किया था।

कालिदास-साहित्यमें साम्राज्यनीति और युद्ध : कालिदासका साहित्य यद्यपि कौटिल्य-द्वारा सिद्धान्तित, चन्द्रगुप्त-मौर्य-द्वारा मान्यरूपसे निर्धारित तथा शकारि विक्रमादित्य-द्वारा अनुमोदित साम्राज्यनीतिका साहित्य है पर उस समयकी भारतभूमि शासन-सूत्रोंकी जनपदीय और आटविक विविध इकाइयोंमें विभक्त थी, इसलिए

उसपर साम्राज्यकी कल्पना राष्ट्रव्यापी संघर्ष और महान् युद्धकी ही कल्पना थी। साम्राज्यका माध्यम था—दिग्विजय। वह भलेही अश्वमेध या विश्वजित्-यज्ञकी पृष्ठभूमिपर अंकित एक धर्मविजय रहा हो, या वह युद्धाह्वान ही। कालिदासने इसे अपनाया है। वे रघुवंशके नायक रघुको पूर्वकी असम-घाटियोंसे दक्षिणकी केरलभूमि तक और पश्चिमकी अपरान्त भूमिसे लेकर उत्तरके वंक्षु-तट तक युद्धयात्रामें भेजते हैं। वे चौदह या अट्ठारह समुद्री उपद्वीपोंपर भी भारतका आधिपत्य जतलाते हैं—[रघु०६।३८]। उनका 'कुमारसम्भव' कुमार कार्तिकेयके रूपमें तारक-वधके लिए अपेक्षित एक सेनानायकको जन्म देनेकी योजनाका महाकाव्य है। 'शाकुन्तल' की कथा भी 'सर्वदमन' वीरके प्रसवकी योजना है। 'विक्रमोर्वशीय' राक्षसोंके विरुद्ध पुरूरवा के विक्रमसे आरम्भ और पुरुरवाके ही पुत्र और्वशेय आयुके अस्त्रकौशलसे समाप्त होनेवाला नाटक है। 'मालविकाग्निमित्र' भी कुमार वसुमित्रकी विजयलक्ष्मीसे अंकित रूपक है। निश्चित ही कालिदासके सभी चरित-काव्य युद्धकी ऊष्मासे व्याप्त हैं। इतने पर भी महाकवि कालिदास युद्धवादी कवि होनेके कलंकसे मुक्त हैं। वे साम्राज्यवादी अवश्य हैं, किन्तु सामन्तवादी नहीं हैं।

साम्राज्यनीति और युद्धका उद्देश्य : साम्राज्य-कल्पना और दिग्विजयकी युद्धयात्राके पीछे हमारा एक निश्चित उद्देश्य था। वह था—राष्ट्रके समुदय और समुत्थानके लिए उसकी समुद्र तक व्याप्त स्थल-वेदिकाका शासकीय एकीकरण। इसकी आवश्यकता कौटिल्यने भी पहचानी थी और कहा था, "सेना बटोरने और मित्र जुटानेसे भी अधिक लाभकर है संघ-लाभ। संघ अधृष्य होते हैं।" —[अर्थशास्त्र–११।१।१]। स्वतन्त्रताके पूर्व कविवर प्रसादने भी कहा था :

"शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता बन जाय॥"

स्वतन्त्रताके पश्चात्, जनपदीय शासनोंकी जो टुकड़ियाँ भारतमाताकी शिराएँ अलग-अलग तान रही थीं, शान्ति और सहअस्तित्वमें सक्रिय और व्यावहारिक निष्ठा रखनेवाले स्वतन्त्र भारतने भी उनका विलीनीकरण अपना प्रथम कर्त्तव्य समझा था। उसने अपनी सीमामें आनेवाले समस्त उपनिवेशोंका भी उच्छेद किया था। साम्राज्य और तदर्थ युद्धके पीछे कालिदासका भी यही उद्देश्य है। यह तथ्य उनके विजेताओंके चरितसे स्पष्ट है।

कालिदासके विजेता : कालिदासके नायक विजेता अवश्य हैं किन्तु हूणोंके समान बर्बर आक्रान्ता नहीं हैं। वे वीर अवश्य हैं किन्तु एलेग्जेण्डर, अशोक या नेपोलियनके समान क्रूर शौर्य-प्रदर्शक नहीं हैं। उनकी दृष्टिमें केवल शौर्य पाशविक वृत्ति है—'शौर्यं श्वापद-चेष्टितम्'—[रघुवंश—१७।४७]। वे धर्मविजयी हैं। अशोकने डेढ़ लाख व्यक्तियोंको बन्दी बनाकर और दो लाखसे भी अधिक व्यक्तियोंको मृत्युग्रास बनाकर जिस कलिंग-जनपदपर आधिपत्य प्राप्त किया था, कालि-

दासका रघु भी उसी कलिंग-जनपदको जीतता तो युद्ध-द्वारा ही है, किन्तु न तो वह कलिंग-राजका राज्य ही छिनता है और न उसे मारता ही है। वह सन्तुष्ट है— उसके प्रति कलिंग-नाथकी अधीनतामात्रसे। रघु कलिंग-की सम्पत्तिमात्रको राष्ट्रीय कोषमें सम्मिलित करता है। अर्थशास्त्रकी भाषामें कालिदास उसे धर्मविजयी कहते हैं :

'गृहीत-प्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ।'
—[रघुवंश ४।४३]

कलिंग-विजयके पश्चात् पश्चात्ताप-पीड़ित अशोकने भी कहा था :

'अविजितं हि विजितं मन्ये यत् तत्र वधो
वा मरणं वा अपवाहो वा जनस्य ।
इच्छति हि देवानां प्रियः सर्वभूताना-
मक्षतिम् ।।
एतच्च मुख्यतमं देवानां प्रियस्य यो
धर्मविजयः ।।
तमेव च विजयं मन्यन्तां यो धर्मविजयः ।'
—[अशोकलेख १३, अड्यार संस्करण]

अर्थात्—"मैं इस विजयको विजय नहीं मानता क्योंकि यह वध, बन्ध और मृत्युसे कलुषित है। मैं चाहता हूँ कि किसी भी प्राणीकी क्षति न हो। इसलिए प्रधान विजय वही है जो धर्मविजय हो और वस्तुतः धर्मविजयको ही विजय समझना चाहिए।" समाजके अस्तित्वकी रक्षा और अभ्युदयके उपाय ही धर्म हैं। जो धर्मविजय है उसका प्रथम लक्ष्य रक्षा ही हो सकता है।

कालिदासके नायक लोभविजयी नहीं हैं। वे प्रजासे जितना लेते हैं उससे हजारगुना अधिक प्रजाको देते हैं—[रघुवंश—१।१८]। दिग्विजेता रघु भी राष्ट्रके कोने-कोनेसे एकत्रित विराट् धनराशिको पाई-पाई करके जनहितमें लगा देता है। यहाँ तक कि उसके अपने उपयोगके लिए उसके पास शेष रहते हैं मिट्टीके पात्र। उसका विरुद है—'चतुर्दिगावर्जितसंभृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद् विभूतिम्'—[रघु० ६।७६, ५।२]।

कालिदासके नायक असुरविजेता भी नहीं हैं। असुर-विजयका मुख्य उपाय है कूटयुद्ध। कालिदासके विजेता उसके विरुद्ध सन्मार्ग-योद्धा हैं। वे अतिथि नामक एक राजाके विषयमें लिखते हैं—"उसे कूटयुद्धकी विधि आती थी किन्तु वह केवल सन्मार्गसे युद्ध करता था और इतनेपर भी विजयश्री उसीके पास अभिसार करती थी।

'कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन् सन्मार्गयोधिनि ।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ।।'
—[रघुवंश १७।६९]

कालिदासके नायकोंको राजपदका कोई गर्व नहीं। वे प्रजाकी स्वतन्त्रताके ही प्रेमी हैं। यही अतिथि ठीक वैसे ही प्रजाको स्वतन्त्र कर देता है जैसे उदित हुआ सूर्य :

'प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत् सूर्य इवोदितः।'
—[रघुवंश १७।७४]

वह स्वतन्त्रताका इतना प्रेमी है कि पिंजरोंमें बँधे शुक-सारिकाओंको भी बन्धमुक्त कर देता है :

'क्रीडापतत्त्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ।
लब्धमोक्षास्तदादेशाद् यथेष्टगतयोऽभवन् ।।'
—[रघुवंश १७।२०]

राजपदके गर्वकी तो बात ही दूर है, कालिदासके नायक राजपदके लिए उत्सुक तक नहीं हैं। अशोक, अजातशत्रु और उदायुने जिस राज्यके लिए अपने पूज्य पुरुषोंका वध किया, कालिदासका अज उसी राज्यको केवल इसलिए अपनाता है कि उसके पिता रघुकी वैसी आज्ञा है। अशोक आदिके राज्यलोभकी भर्त्सनाके स्वरमें कालिदास कहते हैं :

'दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्
प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत् ।
तदुपस्थितमग्रहीदजः
पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया ।।'
—[रघुवंश ८।२]

निश्चित ही ऐसे चरितके विजेता राष्ट्रीय अखण्डताके ही प्रेमी हैं, युद्ध या रक्तपातके नहीं।

युद्ध-परिहारके उपाय : युद्ध त्याज्य है, इसलिए कि उसमें रक्तपात होता है। किन्तु कभी-कभी धर्मरक्षा अथवा सत्पक्षकी जीतके लिए वह अपरिहार्य हो जाता है। कौरवोंका असत् आग्रह ही था महाभारतके युद्धका कारण। ऐसी स्थितिमें करना क्या चाहिए? कालिदास बतलाते हैं। उनकी कल्याणी प्रतिभा मार्ग खोज निकालती है। वह अनेक उपाय प्रस्तुत करती है। सबसे पहले वह वहां जाती है जहां कलहकी जड़ है, कलहकी जड़ है हृदयकी रूक्षतामें। बुद्धिका आग्नेय ताप जब मानव-हृदय या उसकी करुणाकी स्निग्ध उत्स सुखा देता है तब स्वार्थोंकी विषाक्त चट्टानें टकराती हैं और गर्व तथा ईर्ष्याके ज्वालामुखी भभकते हैं। कालिदास इसके विरुद्ध हृदयमें स्नेह और माधुर्यकी प्रतिष्ठापर बल देते हैं :

'न हि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।
कार्यसिद्धिपथस्त्वन्यः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ।।'
—[मालविका० ४।६]।

—'जिनके हृदय उदार और शोभन होते हैं वे अभीष्ट-लाभके लिए केवल कर्कश तार्किकताको नहीं अपनाते। वे स्नेहको भी अपना उपाय मानते हैं।'

महाकवि पुनः कहता है एक ऐसी भी शक्ति है जो न केवल उत्तेजित मानवको, अपितु उद्विग्न पशुको भी वशमें ला सकती है। वह शक्ति है 'माधुर्य-शक्ति'। उनका पद्य है :

'सकृद् विविग्नानपि हि प्रयुक्तं
माधुर्यमीष्टे हरिणान् निरोद्धुम् ।।'
—[रघुवंश १८।१५।]

महाकवि कालिदास अपने सूत्रोंके भाष्य भी प्रस्तुत करते हैं। वे स्नेह और माधुर्यकी उपर्युक्त महिमा विविध संवाद और प्रसंगों-द्वारा प्रस्तुत करते हैं। स्नेहका वरिष्ठ रूप है काम—'स्नेहस्य ललितो मार्गः काम इत्यभिधीयते।' कालिदासका काम है हृदयकी रागात्मकता। कालिदासका कहना है कि रागशक्ति दण्डशक्तिसे बड़ी है। कुमारसम्भवके तृतीय सर्गके इन्द्र और कामके परस्पर संवादका तात्पर्य यही तत्त्व है। इन्द्र दण्डशक्तिका प्रधान देवता है। 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम'के ऋङ्मन्त्रोंसे लेकर पुराणोंके आश्वमेधिक आख्यानों और वृत्रवधके उपा-

स्थानों तक इन्द्रके पराक्रमकी प्रसिद्धि है। इन्द्रका भी बल है वज्र। रघुके वक्ष:स्थलपर जब वज्र विफल हो गया तो इन्द्रने युद्ध बन्द कर दिया–[रघुवंश ३]। इसी प्रकार तारकासुरके गलेमें वज्र हँसुलीके समान निष्क्रिय सिद्ध हुआ तो देव-समाजने हार मान ली—[कुमारसम्भव २]। कालिदासका यही इन्द्र कामसे कहता है : 'सखे काम, मेरे दो अस्त्र हैं, एक वज्र और दूसरे तुम। किन्तु तुम वज्रसे भी अधिक सफल हो!'

> 'उभे ममास्त्रं कुलिशं भवांश्च
> त्वं सर्वतोगामि च साधकं च।'
> —[कुमारसम्भव ३।१२]

कुमारसम्भवमें ही इन्द्र कामकी प्रशंसा पुन: करता है :

> 'अहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः' [३।२०]

–तुम्हारी शक्ति अत्यन्त स्पृहणीय और विस्मयावह है।

वह हेतु भी प्रस्तुत करता और कहता है :

> 'चापेन ते कर्म न चातिहिंस्रम्' [३।२०]

—'सखे काम, तुम्हारे पुष्पनिर्मित अतएव मधुस्रावी चापसे जो सफलता प्राप्त होती है वह अधिक स्पृहणीय है क्योंकि उसमें रक्तपात और संहारका कालुष्य नहीं रहता।'

भारतीय देवशास्त्रमें पराक्रमके अधिदेवताके रूपमें प्रसिद्ध देवराज इन्द्रके मुखसे उसकी दण्डशक्ति वज्रकी अपेक्षा कामको बलवत्तर और स्पृहणीय बतलाकर कालिदासने जिस माधुर्य-पथका निर्माण किया था इतिहास उसपर चला है। महाक्षत्रप रुद्रदामा और समुद्रगुप्तके अभिलेखोंसे यह तथ्य प्रमाणित है कि सामाजिक संगठन और विभिन्न शक्तियोंके संयोजनके लिए कन्योपायन एक सक्षम और समर्थ उपाय रहा है। प्रभावती गुप्ता और जयश्री भी ऐसी ही कन्याएँ हैं। स्वयं कालिदासकी मालविका भी एक ऐसी ही कन्या है। विदर्भ-जनपदकी शान्तिका उपाय अग्निमित्रसे मालविकाका सम्बन्ध ही है। रघुवंशकी नागकन्या कुमुद्वतीको महाराज कुशके मानववंश तथा कुमुदके नागवंशकी चिरसन्धिका बीज प्रतिपादित करते हुए कालिदासने लिखा है :

> 'इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं
> लब्ध्वा बन्धुं तमपि च कुशः पञ्चमं तक्षकस्य।
> एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद् वैनतेया-
> च्छान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास॥'
> —[रघुवंश १६।८८]

विक्रमोर्वशीयमें देवराज इन्द्र पुरूरवासे अपना सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए उर्वशीका पुरूरवाके ही साथ रहे आना स्वीकार करते हैं—[अंक–५]। बिछुड़ी शकुन्तलासे दुष्यन्तको पुन: मिलानेका उपक्रम भी देवराज ही करते हैं। निस्सन्देह यदि रागात्मक सम्बन्ध बने रहें तो कोई कारण नहीं कि समाजमें कलह हो। कन्योपायन या कन्या-पुत्र-सम्बन्ध मानवपर मानवकी स्नेहपिच्छल और मांगलिक विजय है। ऐसा ही कोई रागात्मक सम्बन्ध उत्तरापथके महाराज हर्षवर्धन और दक्षिणके वीर पुलकेशीके बीच रहा होता तो उत्तर और दक्षिणकी दो दिशाओंमें भारतराष्ट्रकी एक ही वेदिकापर दुर्भाग्यपूर्ण द्वैराज्यकी स्थापना सातवीं शतीमें न हुई होती।

इतिहासमें ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें रागात्मकता सम्बन्धका कारण न बन संघर्षका कारण बनी है। कालिदासने इस वास्तविकता को भी आंका है। इतिहासमें संयोगिता स्वयंवरकी कलहपूर्ण दुष्परिणति बादमें हुई, कालिदासने इन्दुमती-स्वयंवर-द्वारा उसका रेखांकन बहुत पहले ही कर दिया था। स्वयंवरमें विदर्भ-सुन्दरी इन्दुमतीने स्वयंवर-सभामें उत्तरकोशलके राजकुमार अजका वरण किया तो असफल अनुरागके राजाओंने अज-पर छिपकर धावा बोल दिया—[रघुवंश—७।३५]। युद्ध टाला नहीं जा सका। अजने भी दृप्त पार्थिववाहिनीका सामना डटकर किया—[रघुवंश ७।३६]। रक्तवाहिनी बह उठी। कालिदासने घटनाको यहाँ तक तो आने दिया, किन्तु वे मानववंशका महाभारत-जैसा सामूहिक संहार सह न सके। उन्होंने टक्करको विवेकसे सुलझाया। स्वयंवरमें पहुँचनेके पूर्व कालिदास राजकुमार अजको प्रियंवद यक्षसे सम्मोहनास्त्र दिलवा देते हैं। सम्मोहनास्त्रकी विशेषता है—'शत्रुहिंसाके बिना शत्रुपर विजय।' प्रियंवद कहता है :

'संमोहनं नाम सखे ! ममास्त्रं
प्रयोग-संहारविभक्तमन्त्रम्।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तु-
र्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते ॥'
—[रघुवंश ५।५७]

अन्तमें अज इसी अस्त्रका प्रयोग करता है और दृप्त राजन्योंका युद्धाभिनिवेश शान्त होता है। अस्त्रदाता प्रियंवद और अस्त्र सम्मोहन—निश्चित ही वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्यके जो दोष नीतिज्ञोंने राजकीय व्यक्तित्वमें परिहार्य बतलाये हैं, कालिदास कथा-सूत्रका संयोजन उसी पीठिकापर कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मानवीय एकताका एक आधार वाणीकी मधुरता भी है। कालिदास इसे अपने पात्रोंमें चित्रित भी करते हैं।

मधुर वाणी और सम्मोहन-शक्ति मानवीय गुण हैं। वे वहीं सफल होते हैं जहाँ मानवता-के बीज शेष रहते हैं। किन्तु समाजमें एक ऐसा भी वर्ग होता है जो एकमात्र संहारको ही अपनी सिद्धिका उपाय मानता है। युद्ध ही जिसका देवता है। दण्डनीति ही जिसकी विद्या है। कौटिल्यके अनुसार इस पक्षका प्रवर्तन दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यसे हुआ है। 'दण्डनीतिरेवैका विद्येत्यौशनसाः'—[अर्थशास्त्र १।२]। निश्चित ही इस पक्षके अनुयायी ही प्राचीन आचार्य असुर या दैत्य हैं। दण्डशक्ति देवोंका भी बल है किन्तु उनका एक माध्यम स्नेह, माधुर्य या काम भी है। देवोंकी यह शक्ति दानवोंपर आजमायी तो जाती है, और इस शक्तिको अपनी सफलताका पूरा भरोसा भी रहता है परन्तु कालिदासको वह मान्य नहीं। कालिदासका काम कहता है :

'अध्यापितस्योशनसापि नीतौ
प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते।
कस्यार्थधर्मौ वद पीडयामि
सिन्धोस्तटावोघ इव प्रवृद्धः ॥
—[कुमारसंभव ३।६]

—'देवेन्द्र, आपका ऐसा भी शत्रु मेरे लिए दुर्जेय नहीं जिसने स्वयं शुक्राचार्यसे दण्डनीति प्राप्त की हो। मेरी रागात्मक

प्रवृत्तियां उसे भी धराशायी कर सकती हैं । कालिदास किसी भी दैत्यको इस प्रकारके शान्ति-उपायसे सत्पक्षका अनुयायी होता नहीं बतलाते । उलटे वे कहते हैं—'दुर्जन उपकारसे शान्त नहीं होता, उसकी शान्तिका उपाय अपकार ही है ।'

'शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।'
—[कुमारसं० २]

वे रावण, तारक और केशी नामक राक्षसोंका वध ही चित्रित करते हैं । जिस रक्तमें दैत्यताका ऐकान्तिक प्रभुत्व हो उसका बह जाना ही कालिदासको मान्य है । किन्तु इसके लिए अस्त्र अनिवार्य है । कालिदास उसके लिए भी सन्नद्ध हैं । उनका प्रत्येक वीर अस्त्र-विद्याका पारंगत आचार्य और कुशल प्रयोक्ता है । रघुने अपने अस्त्र-कौशलसे देवराज इन्द्रकी प्रत्यंचा और रथकी पताका भी काट दी थी—[रघुवंश ३।५६,५९] । देवशक्तिपर मानवशक्तिकी जीत जतलाते हुए रघुने इन्द्रकी शची-द्वारा शृंगारित भुजापर अपने नामसे अंकित बाण गँदा दिया था—[रघुवंश ३।५५] । इतना अस्त्र-कौशल रघुको अपने पिता दिलीपसे ही प्राप्त हुआ था । कालिदासके शब्दोंमें दिलीप केवल राजाओंमें ही प्रमुख नहीं थे, वे धनुर्विद् आचार्योंमें भी अद्वितीय थे :

'त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी-
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् ।
न तद्गुरुः केवलमेकपार्थिवः
क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ।।'
—[रघुवंश ३।३१]

दशरथ, दुष्यन्त और पुरूरवा शब्दवेधी बाण चलानेमें सिद्धहस्त हैं । कुशके पास गारुडास्त्र है । इस प्रकार कालिदासके नायक और वीर विजेता शस्त्रविद्याके आचार्य हैं । वे शस्त्रकी अवज्ञा नहीं, पूजा करते हैं । और यह कोई दोष नहीं है । मानवीय प्रतिष्ठाके लिए जितना दण्ड या राक्षसत्व अपेक्षित है, औषध-निर्माणमें अपेक्षित विषके समान वह ग्राह्य है । यद्यपि अस्त्रकी जीत मानवताकी हार है तथापि रक्षा और निर्माणके लिए अपेक्षित धर्मविजयका वह शृंगार है । दोष है अस्त्रका दुरुपयोग । कालिदास अस्त्रके उपयोगमें सन्तुलनके पक्षपाती हैं ।

अस्त्रप्रयोगमें सन्तुलन : कालिदासकी दृष्टिमें अस्त्र-प्रयोग केवल नैतिकता ही नहीं है, एक धर्म भी है । वे सन्तुलित अस्त्र-प्रयोगके अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । भगवान् रामका ज्येष्ठ पुत्र कुश अपने पितासे प्राप्त जैत्र आभरणके अपहरणके सन्देहमें नागराज कुमुदपर गारुडास्त्रका सन्धान करता है । किन्तु कुमुदको विनीतभावसे उपस्थित देख वह उसे वापस ले लेता है : 'सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजहार' —[रघुवंश १६।८०] । महाराज दशरथ मृगयामें केवल हिंसक और उत्पाती पशुओंके ही प्राण लेते हैं । क्रूर वराहको धराशायी करते और घातक व्याघ्रका मुखरन्ध्र शरोंसे भर देते हैं । सिंहोंको मारकर उनसे हाथियोंके वधका बदला लेते हैं । किन्तु वे मृग और मयूरके प्रति संवेदनशील हैं—[रघुवंश ९] खड्ग-नामक हिरनोंके ऊँचे सींग ही वे काटते हैं । उनकी दीर्घ आयु-

से उन्हें कोई द्वेष नहीं है।

इस अस्त्र-सन्तुलनका मूक संकेत शाकुन्तलमें मुखर सिद्धान्त बन गया है। मृगयाका प्रसंग शाकुन्तलमें भी आरम्भमें ही आता है। दुष्यन्त एक हिरनका पीछा करता हुआ मंचपर आता है। हवामें कुलांचे भरते इस वातप्रेमीको दुष्यन्त ज्योंही मारनेकी स्थितिमें आता है उसे एक निषेध-स्वर सुनाई देता है—'आश्रम-मृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः' —यह मृग आश्रमका मृग है, यह अवध्य है! मृग अर्थात् वन्य पशु। पशु भले ही वन्य हो वह वध्य तब होता है जब वह उत्पाती हो, दुष्ट हो। यह मृग आश्रमका मृग है। पालतू और विनीत है। फिर यह मृग हिरन है। जिसका हिंसासे कोई सम्बन्ध नहीं। इसे केवल मृगयारसके लिए मारना अन्याय है। विडम्बना यह है कि इस अन्यायपर आरूढ़ हैं स्वयं राष्ट्रपति दुष्यन्त। किन्तु कालिदासका कवि यह अन्याय होने देता नहीं। उसका एक अकिंचन वैखानस दुष्यन्तको ललकारता है। आश्रम-मृगकी अवध्यताका स्वर उसीका है। कालिदासका सम्राट् तपस्वीके समक्ष झुकता है। तपस्वी सामने आकर कहता है, 'तत् साधु कृतसंधानं प्रतिसंहर सायकम्'—भली भांति खींच चुके हैं तो क्या, अपना अस्त्र वापस लें! और अस्त्रोपयोगकी दिशामें सम्राट्से कहता है: 'आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि'।

—[शाकुन्तल १]

—आपने जो अस्त्रसिद्धि की है उसका उद्देश्य है आर्त और विपन्नकी रक्षा, निरपराधका वध नहीं।

दुष्यन्त बाण उतार लेता है—"अस्त्र-साधनाका उद्देश्य आर्तत्राण और परिहार्य केवल दोष"—कितना जीवित और शाश्वत है महाकविका यह मन्त्र! मानवताकी यह विडम्बना भला किस प्रज्ञावान्को सह्य होगी कि वह अपनी साधना और शक्तिका उपयोग करे आत्मनाशमें। कौन चाहेगा कि सहस्र-सहस्र वर्षोंकी कल्याण-साधनासे मानवने समाज-संस्थाके जिस अंकुरको विशाल वृक्षका रूप दिया है, युद्धका प्रमत्त गज उसे छिन्न-भिन्न करे, अविवेक और आवेशके विषधर उसकी जड़में विघटनका दाहक और शोषक विष उगलें। यह यदि वर्तमानको अप्रिय और अमान्य है तो अतीतको भी कदापि मान्य और प्रिय नहीं रहा। महाकवि कालिदास इसके उदग्र प्रमाण हैं।

वाणी और व्यवहारमें माधुर्यकी प्रतिष्ठा, स्नेह और आत्मीयताकी यथासम्भव स्थापना, अस्त्र-साधनामें पूर्ण तप किन्तु उसके उपयोगमें सन्तुलन—महाकवि कालिदासके मानवहितवादी और रक्तपातविरोधी स्वरमें निहित ऐसे मन्त्र हैं जो मानवताके अरुणोदयमें जगाये गये हैं और निःश्वासोंके ही समान मानव-वंशके सनातन साथी रहे हैं। ऐसे ही मन्त्रोंने अतीतको वर्तमान तक पहुंचाया है और ऐसे ही मन्त्र वर्तमानको आयति तक लिये चलनेके ऐकान्तिक और अमोघ साधन हैं। ■■

[सहायक प्राध्यापक,
संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर म० प्र०]

कविताके सन्दर्भमें / रामदरश मिश्र

आजकी कवितामें एक अजब छटपटाहट दिखाई पड़ रही है। छटपटाहट आधुनिक युगकी नियति बन गयी है। वह आधुनिक युगके आरम्भसे ही उभरती है। किन्तु आजतककी कविताकी छटपटाहट इतनी तीव्र और बहुमुखी नहीं थी। इसके कई कारण हैं। आजतककी हर धाराकी कविताओंमें अनुभवों और संवेदनाओंमें भिन्नता होनेके बावजूद जीवन-दृष्टिकी समानता होती थी और यह भी कि शायद हमारे देश, समाज तथा व्यक्तिके भीतर इतनी विच्छिन्नता कभी नहीं आयी थी। समाज और व्यक्ति आजकी अपेक्षा अधिक गहरे अभावोंसे गुज़रा था किन्तु सामाजिक सम्बन्धोंमें ऐसी विच्छिन्नता, व्यक्ति-मनमें ऐसी अकुलाहट और मूल्योंके प्रति ऐसी उदासीनता शायद ही कभी आयी थी। इसीलिए साहित्यमें छटपटाहटकी ऐसी तीव्रता और वैविध्यका अहसास शायद कभी नहीं हुआ था। यही कारण है कि आजकी कविताधारा अनेक विच्छिन्न धाराओंमें विभाजित होकर बह रही है—ये धाराएँ कभी एक दूसरेके निकट, कभी समानान्तर, कभी विपरीत दिशागामी दिखाई पड़ती हैं। कभी-कभी इन अनेक विच्छिन्न धाराओंको देखकर यह पूछनेकी इच्छा होने लगती है कि इनमेंसे कौन अपने परिवेशकी अनिवार्य उपज हैं और कौन-सी फ़ैशनके नामपर चलायी गयी हैं? अथवा सारी धाराएँ आजके विच्छिन्न समाजकी एक-एक बिखरी रेखाको अलग-अलग अभिव्यक्ति दे रही हैं या सारीको सारी धाराएँ अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने-

प्रतिप्रश्न

संक्रान्तिकालीन बोध और नये नारोंकी सार्थकता

के लिए कवियोंकी चीख-पुकार है ? बहरहाल इस सत्यकी खोजपर आनेके पहले आजके उस परिवेशपर विचार कर लेना आवश्यक है जिसके आधारपर ही उपर्युक्त प्रश्नके उत्तर तक पहुँचा जा सकता है।

हम यह मानकर चलते हैं कि आजकी कविता आजके बोधकी कविता है। यह बोध संक्रान्त है क्योंकि संक्रान्ति-कालसे उपजा है। संक्रान्ति पूरे आधुनिक कालकी देन है—स्थापित मूल्यों और जीवन-पद्धतियोंको अस्वीकार करने तथा नये मूल्योंकी खोजका द्वन्द्व आधुनिक कालके आरम्भसे ही दिखाई पड़ता है, किन्तु प्रगतिवाद काल तक किसी-न-किसी रूपमें उस द्वन्द्वका समाहार प्राप्त होता रहा है, एक समाधान मिल जाता रहा है—वह काल्पनिक ही क्यों न हो, सभीको प्राचीन या आधुनिक आस्थावादी दर्शनका एक आधार मिल जाता रहा है किन्तु नयी कवितासे जो संक्रान्त चेतना आरम्भ होती है वह समाधान नहीं पाती। कविकी बौद्धिकता और यथार्थवादी दृष्टि किसी भी काल्पनिक समाधानके आधारको स्वीकार नहीं करती। नयी कविता अनुभवकी प्रामाणिकतामें ही विश्वास करती है और वह निरन्तर टूटने और न बननेके द्वन्द्वसे गुजरती है, सारे स्थापित जड़-मूल्यों और सौन्दर्य बोधोंको नकारती है। आभिजात्य, आदर्श, नये-प्राचीन रूढ़ मूल्योंके प्रति कोई रूमानी लगाव अनुभव नहीं करती, उन्हें नकारती है और स्वीकारके लिए उसे अपने आसपासके अनुभवके सिवा और कुछ नहीं मिलता— वह अनुभव जो निरन्तर अपने परिवेशके दबावमें होने-न-होने, अस्वीकृतिके निश्चय और स्वीकृतिके अनिश्चयके बीच गुजरता है। कवि गुप्त, प्रसाद, पन्त, दिनकर या प्रगतिवादी कवियोंकी भाँति नवीन-प्राचीन जीवन-दर्शनका आधार नहीं पाता, भटकता है। किन्तु ऐसा नहीं कि वह जीवन-दर्शनसे शून्य है। मानव-जीवनके प्रति उसे अगाध आस्था है, वह स्थापित दर्शनोंको नवीन जीवन-निर्माणके लिए सक्षम न पाकर उन्हें प्रश्नोंके समाधानके रूपमें नहीं ओढ़ता, वह केवल इतना ही कर पाता है कि जीवनकी उन अनेक विसंगतियोंको अपने अनुभवोंके माध्यमसे उभारता है जो व्यक्ति और समाजके जीवनकी समता, स्वाधीनता और शान्तिको घेरे हुए हैं। यह कार्य वह तटस्थ होकर नहीं करता। चूँकि वह तटस्थ नहीं है (और साहित्यमें सर्वथा तटस्थ रहा जा सकता है—यह कथन नारेसे अधिक कुछ दीखता नहीं,) इसलिए वह इस विसंगतिपूर्ण सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेशमें जो अनुभव करता है उसे देता है। अनुभवकी प्रामाणिकता और अद्वितीयतापर जोर देनेके कारण नयी कविता अनुभवके वैविध्य और वैशिष्ट्यसे पूर्ण है।

प्रतिकूल असुन्दर स्रष्टापर दो प्रकारका प्रभाव पैदा करता है। एक प्रभाव होता है—परिवेशजन्य वेदना और यातनाके भोगका। दूसरा होता है—वेदना और यातनाके योगके भीतरसे फूटनेवाले विद्रोहका। कहा जा सकता है कि अज्ञेय, शम्शेर, गिरिजाकुमार माथुर, भारती आदि मूलतः यातना-बोधके कवि हैं। मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल,

नागार्जुन, भारतभूषण अग्रवाल आदिमें यातना-भोगके बीचसे उभरता विद्रोहका स्वर भी है। इन कवियोंकी चेतना सामाजिक है, दृष्टि सामाजिक है, इसलिए वे केवल पीड़ा भोगकर ही चुक नहीं जाते। इनमें विद्रोहकी आँच भी उभरती है किन्तु यह विद्रोहकी आँच उनके अनुभव, संस्कार और चिन्तनका अनिवार्य अंग बनकर ही फूटती है, प्रगतिवादियोंका-सा खयाली आक्रोश नहीं उगलती और अनुभवकी प्रामाणिकता तथा अद्वितीयतासे दीप्त होनेके नाते नयी कविता-धारासे ही जुड़ी रहती है।

आजकी कवितामें भी मुख्यतः दो धाराएँ हैं–एक धारा वह है जो समस्त परिस्थितियोंके प्रति तटस्थ रहनेका दावा करती है क्योंकि सम्पृक्त होना रूमानी वृत्ति है। वह आजके जीवनके सत्यको असम्पृक्त भावसे देखती है। दूसरी धारा उन कविताओंकी है जो आजके समूचे राष्ट्रीय-सामाजिक परिवेशमें लक्षित होनेवाली भीषण विसंगतिके प्रति नाराज़ है। वह अपनेको कभी विद्रोही पीढ़ी कहती है, कभी नाराज़ पीढ़ी, कभी बीट पीढ़ी और कभी दिगम्बर पीढ़ी, कभी और कुछ। इन अनेक नामोंसे आनेवाली कविताओंमें नाराज़ीका स्वर दो तरहसे उग रहा है। एक स्वर वह है जो महज नाराज़ है अपनेसे, औरोंसे, सबसे। क्यों? इसका पता उसे भी नहीं है। दूसरा स्वर नाराज़ीको एक लक्ष्य, एक दिशाकी ओर उन्मुख करता है और उसकी नाराज़ी भी एक सामाजिक सन्दर्भमें उगती है। जहाँतक तटस्थ कवियोंका सवाल है, कहा जा सकता है कि वे सबसे तटस्थ रहकर भी घोर आसक्त हैं—अपने प्रति, अपनी कृतियोंके प्रति, अपनी चर्चाके प्रति। संक्रान्ति समाजमें पैदा होती है, युगमें पैदा होती है। अतः जो अपने समाज और युगसे सम्पृक्त नहीं है वह सच्चे अर्थोंमें संक्रान्तिकालीन बोधसे कैसे अपना लगाव रख सकता है?

फिर सवाल उठता है कि आजका संक्रान्त बोध क्या है जिसे व्यक्त करना हमारी सर्जनात्मक बेबसी है। और जब हम बहुत साहित्यिक बननेके चक्करमें राजनीति और समाजको छोड़कर इसे ढूँढ़नेका प्रयत्न करते हैं तब एक नये प्रकारकी व्यक्तिवादी रहस्यवादिताकी सृष्टि करने लगते हैं। इसलिए आजके बोधकी बात करते समय हम राजनीति और समाजके सम्बन्धोंसे असम्पृक्त नहीं रह सकते। और तब हम देखते हैं कि आजके व्यक्ति-मनकी कुण्ठा, यातना, द्वन्द्व-चेतनाका स्रोत उसके राजनीतिक और सामाजिक परिवेशमें है। स्वाधीनता-प्राप्तिके समय या उससे पहले जो आशाएँ बँधी थीं वे धीरे-धीरे टूटती गयीं। सामाजिक हालत ज़रूर कुछ बदली किन्तु बुनियादी तौरपर उसमें कोई अन्तर नहीं आया। परिणाम यह हुआ कि शुरूमें आशा और उल्लासका जो रंगीन कुहासा फैला था धीरे-धीरे छँटता गया और उसमें डूबी नंगी राहें और पठार उभरते गये। अभावों और विषादोंपर अनागत सुखका एक मुलम्मा चढ़ गया था। इसलिए भारतीय जनमानस विषाद और उल्लासके विचित्र द्वन्द्वसे गुज़र रहा था। नयी कवितामें जो

विषाद और आशाकी, आस्था और अनास्थाकी, टूटन और निर्माणकी संक्रान्त चेतना दिखाई पड़ती है, बौद्धिकतापर जो रूमानियतका हलका-हलका रंग चढ़ा दीखता है वह इसी राष्ट्रीय परिवेशका परिणाम है। सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेशका प्रभाव कृतियोंपर यान्त्रिक ढंगसे नहीं होता, वह कृतिकारके व्यक्तित्वके माध्यमसे कृति तक पहुँचता है। अतः एक ही समयके अनेक कृतिकारोंके संस्कार, दृष्टिकोण और शक्तिके अनुसार एक ही समयका सत्य विभिन्न रूपों और अनुपातोंमें व्यक्त होता है। यही कारण है कि एक ही समयका सत्य अनुभवकी अद्वितीयता और विशिष्टतापर बल देनेवाली नयी कवितामें विभिन्न स्वरोंमें व्यक्त हुआ। समाजवादी दृष्टि तथा जनजीवनके अनुभवोंसे सम्पन्न कवियोंकी कृतियोंमें वह पीड़ा अनास्थासे सम्पृक्त शक्ति और जीवनके प्रति विश्वास बनकर आया तथा व्यक्तिवादी संस्कारों और दृष्टियोंवाले कवियोंमें केवल टूटन बनकर।

आजका जीवन इसी जीवनका अगला चरण है। आज देश और समाजमें जो कुछ बना-बिगड़ा है वह बहुत ही निराश करनेवाला है, मोह भंग करनेवाला है। अपने ही देशमें सामान्य प्रजाको जो देश-निकाला दे दिया गया है और समाजवादके नामपर पूँजीपतियों, सम्प्रदायवादियों, गुण्डों, स्वार्थियोंकी जो बन आयी है, न्याय और सत्यकी जो दिन-दहाड़े हत्या हो रही है वह किसी भी संवेदनशीलके दिलको तोड़नेवाली घटना है। एक कलाकार, एक सच्चा आदमी, एक न्याय और सत्यका अन्वेषी एक ओर इन विषम परिस्थितियों और घटनाओंको देखता है दूसरी ओर इन परिस्थितियोंमें अपनी कुछ न कर पानेवाली शक्ति-सीमाओंको देखता है तो अद्भुत तनावमें फँसा हुआ पाता है अपनेको। वह तड़पता है और अपनेको एक पर्तमें और लपेट लेता है। राजनीतिक स्थितिके साथ-ही-साथ सामाजिक स्थिति भी भयंकर हो गयी है। विज्ञान-युगकी यान्त्रिकतासे ग्रस्त समाज अपनी चेतनामें आधुनिक नहीं हो सका है। आधुनिकताके अभिशापको तो अवश्य ग्रहण किया है, उसकी मूल चेतनाको आत्मसात् करनेमें असमर्थ रहा है। समाज सुविधाके अनुसार आधुनिक बन जाता है, या यों कहिए कि आधुनिकताकी सुविधाओंको अवश्य बटोर लेता है किन्तु आधुनिकताने जो मानव-जीवनको समता, स्वाधीनता और उन्मुक्त चिन्तनशीलताकी चेतना प्रदान की है उसे समेट नहीं पाता। आधुनिक-से दिखाई पड़नेवाले लोग आज भी धर्म और सम्प्रदाय तथा अन्य प्रकारके छोटे-छोटे घेरोंकी रूढ़ियोंसे इतने ग्रस्त हैं कि अपनेको समाजवादी, वामपन्थी, भौतिकवादी कहनेवाले बड़े-बड़े नेता, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक आदि ज्योतिषियों और नजूमियोंसे कर्मफल पूछते हैं, साधु-फ़क़ीरोंके सामने संस्कारवश नत हो जाते हैं, उनसे आशीर्वाद लेते हैं, जाति-पाँतिके नामपर चुनाव लड़ते हैं, रंगभेदका जीवित साँप आस्तीनके भीतर छिपाये घूमते हैं, छोटे-बड़े पैमानेपर न्याय और सत्यका सौदा करते हैं, देशके साथ दग़ा कर अपने सम्मान और स्वार्थकी हिफ़ाज़त

करते हैं । बहुत बड़े-बड़े साहब और आधुनिक प्रकारके मकानों-दुकानोंमें रहनेवाले अफ़सर, व्यापारी, प्रोफ़ेसर, डॉक्टर, वकील हनुमानजी या अपने-अपने सम्प्रदायके देवी-देवताओंके मन्दिरमें जाते हैं, नाच-नाचकर कीर्तन करते हैं । धर्ममें इनकी आस्था होती तो भी कोई बात थी, विसंगतिकी पराकाष्ठा तो तब दिखाई पड़ती है जब इस प्रकारकी धार्मिक आस्थाशीलता दिखाते हुए भी उसे कुछ नहीं समझते और अर्थकी पूजामें पता नहीं क्या-क्या अधर्म करते हैं । न्यायालयोंमें, मन्त्रालयोंमें, गवाही देने या पद-ग्रहण करते समय ईश्वर-की शपथ दिलायी जाती है और यह सत्य छिपा हुआ नहीं है कि ईश्वरकी शपथ खा-खाकर लोग कैसे झूठका पहला छुरा ईश्वरको ही मारते हैं और पता नहीं चौबीस घण्टोंमें ईश्वरको कितनी बार मरना पड़ता है । राष्ट्रीय और सामाजिक स्तरपर इतनी विसंगतियाँ उभरी हैं कि एक संवेदनशील सच्चा व्यक्ति क़दम-क़दमपर आहत हो उठता है । स्वार्थ न्यस्त नेताओं, व्यापारियों और कुन्द सामान्य लोग भी आहत हुए बिना अपनी-अपनी सिद्धिकी दौड़में लगे हैं किन्तु संवेदनशील व्यक्ति और कलाकार हर पल आहत हो रहा है, हर पल मौतसे गुज़रता है, हर पल टूटन महसूस करता है, इस भीड़में अपनेको अकेला पाता है, अजनबी अनुभव करता है । उसके बोध, उसकी चेतनामें बहुत-से उलझे स्तर उग आये हैं । आजकी कवितामें जो असन्तोष, पीड़ा, टूटन, मूल्य-बोधकी अस्वीकृति आदिके संक्रान्त बोध उभरे हैं क्या उन्हें देश और समाजके परिवेशसे निस्संग आजके मानवमात्रकी पीड़ाके रूपमें देखा जा सकता है ? इसका अर्थ तो यह होगा कि आज जो भी व्यक्ति पैदा हो रहा है वह सहज भावसे यह सब कुछ लिये हुए पैदा हो रहा है । यान्त्रिक सभ्यता पूरे विश्वमें फैली है परन्तु वह भिन्न-भिन्न देशों और समाजोंकी परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न रूप और स्वरमें व्यक्त हो रही है ।

इसलिए यह सवाल होता है कि क्या आजका संक्रान्त बोध आजके विश्वके प्रत्येक व्यक्तिको सिद्ध रूपमें प्राप्त होता जा रहा है या उसे वह अपने जीवित परिवेशसे पा रहा है । क्या परिवेशसे काटकर इन कविताओंकी अकुलाहटकी व्याख्या हो सकती है ? क्या आजकी कवितामें लक्षित होनेवाली अकुलाहट उसके राष्ट्रीय और सामाजिक परिवेशसे फूटती दीखती है और क्या उसे उसके साथ जोड़ती है ? क्या उसकी अस्वीकृतियाँ एक वृहत्तर जन-मानसकी अस्वीकृतियोंसे जुड़ती हैं ? क्या उसकी घृणा, नफ़रत, क्रोध, ऊब, अकुलाहट अपने परिवेशके प्रति एक सर्जनात्मक अकुलाहट लिये हुए है या फ़ैशनवश फूटी हुई व्यक्तिगत मुद्रा है ?

इन कविताओंकी दो मूल धाराओंकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, एक धारा ऐसी है जो विद्रोहको रूमानी प्रवृत्ति मानती है, वह निस्संग भावसे आजके वैषम्यको देखती है, उसके प्रति उसकी अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । वह प्रेम, शहर, राजनीति और औरतमें कोई फ़र्क़ नहीं मानती । वह दुर्घटना

और प्राप्ति, सम्भोग और मातृत्वेच्छा, हत्या और अभिसार सभी बातोंको एक सहज प्रक्रिया मानती है। और यह पशुवृत्तिको अपनी उपलब्धि स्वीकार करती है। जाहिर है कि इस धाराकी कविताओंमें वस्तुस्थितिको ज्योंका त्यों उगल देनेकी प्रवृत्ति है। सामाजिक या मानवीय दृष्टि न होनेसे ये भले या बुरेके प्रति 'रोएक्ट' नहीं करती। जो कुछ है, वह है। किन्तु क्या सचमुच ही ये सत्यसे निस्संग कवि हैं? क्या साहित्यमें इस प्रकारकी निस्संगता सम्भव हो सकती है? और क्या कसौटी है जो नाप-तौल कर सके कि सचमुच ये कवि तटस्थ हैं? मुझे लगता है कि ये कवि भी तटस्थ नहीं रह सके हैं—यह इनका नारा मात्र है। कारण यह कि समाजमें लक्षित होनेवाली इतनी सारी विसंगतियोंमें-से वे बार-बार यौन-विसंगतियोंकी ही ओर लपकते हैं। एक छोटी-सी पत्रिका 'वयम्'में इस धाराकी लगभग सारी कविताओंमें समान रूपसे जंघावादका सत्य एक ही टोनमें उभरा था। ये कविताएँ अलग-अलग कवियों-द्वारा अलग-अलग लिखी गयी थीं किन्तु क्या वजह है कि उनका स्वर और विषय एकमें मिल गया। सच बात तो यह है कि तटस्थ भावसे सत्यको देखनेके लिए बहुत बड़ा जीवन-अनुभव होना चाहिए जबकि आजका कवि-लेखक एक छोटे-से दायरेमें जीनेके कारण बहुत थोड़ा अनुभव प्राप्त कर पाता है और घूम-फिरकर उसीको देखता है और उभारता है। इस धाराके कवि भी घूम-फिर अपने-द्वारा भोगे हुए छोटे जीवन-अनुभवको, जो मूलतः यौन-संसारका जुगुप्सा-व्यंजक अनुभव होता है, बार-बार कहते हैं और चूँकि वे कोशिश करते हैं कि सब कुछसे असम्पृक्त रहें, इसलिए उनका भोगा हुआ अनुभव भी सतही रूप पा लेता है।

दूसरी धारा अपनेको विद्रोही मानती है, उसके अनेक नाम हैं—वह अस्वीकृत है, विद्रोही है, कबीर पीढ़ी है, दिगम्बर है, युयुत्सु है, बीट है। यह धारा विद्रोहका तैश लेकर चलती है। यह धारा अस्पष्ट-स्पष्ट स्वरसे आजके जीवनकी विसंगतियोंके प्रति विद्रोह करना चाहती है। परन्तु विद्रोहका स्वरूप बहुत गड्ड-मड्ड है। विद्रोहकी दृष्टि सामाजिक होती है, उसमें चीख-चिल्लाहटकी जगहपर स्वस्थ चिन्तन और सामाजिक समस्याओंकी पहचान होती है। वह समाज और व्यक्तिकी विसंगतियों और विषमताओंको पहचानती है और उन्हें चीरती है। मुझे नहीं लगता, विद्रोही कविताएँ कोई स्वस्थ चिन्तन दे पा रही हैं या किसी दिशाकी ओर गतिशील हैं। विद्रोही कविके लिए दो खतरे हो सकते हैं—एक तो यह कि कहीं वह प्रचारवादी न हो जाये, यानी मनुष्यकी गहरी संवेदनाओंसे कटकर ऊपरी सामाजिक तथ्योंको बटोर-बटोर-कर उन्हें एक आक्रोशके साथ छींटने न लगे, जैसा कि 'विद्रोही पीढ़ी' पत्रिकाके कवियोंने किया है। दूसरा खतरा यह होता है कि कवि बड़ी-बड़ी यानी बुनियादी विसंगतियोंको छोड़कर या उन्हें न पहचानकर छोटी-छोटी सतही विसंगतियोंके चक्करमें पड़ जाये। कहना न होगा कि विद्रोहके नामपर आवे-

वाली कविताएँ देश और समाजके बुनियादी प्रश्नों, विसंगतियों, विषमताओंसे कटकर आस-पासकी सतही या कम महत्त्वकी विसंगतियों और विषमताओंमें उलझी हैं, यानी सुविधासे वे जितना कर पाती हैं, करती हैं, उनसे कहीं ऐसी जागरूकता लक्षित नहीं होती जो अपने व्यापक परिवेशके बोधसे उपजी हो। सत्य बात तो यह है कि इन सारी कविताओंका भोक्ता कवि एक व्यक्ति है, वह व्यक्तिको जानता है, समाजको नहीं। इसलिए जब वह जाने हुएको व्यक्त करता है तब व्यक्ति बन जाता है और समाजकी ओर चलता है तब सतही बन जाता है। और यह भी लक्षित करनेकी बात है कि विद्रोही और अविद्रोही कवि मूलत: एक बिन्दुपर मिल जाते हैं, व्यक्तिके बिन्दुपर। इसलिए वे ही कवि घूम-फिरकर अकवितामें भी आ जाते हैं और विद्रोही अस्वीकृत पीढ़ीमें भी।

अन्तमें कहना चाहूँगा कि आजकी कविताको उसके नारोंसे अलग करके देखा जाये तो उसकी कुछ नवीनताएँ और विशेषताएँ दिखाई पड़ेंगी। आजकी कविता, चाहे जिस रूपमें सही, जीवनके बहुत नजदीक आयी है। उसने नयी कवितामें बनती हुई कथ्य और शिल्प-सम्बन्धी रूढ़ियोंको तोड़ा है और बड़े साहसके साथ उन जीवन-सत्योंको उद्घाटित किया जिन्हें अनावश्यक रूपसे छिपाकर कहनेकी आवश्यकता नहीं है, यद्यपि उसने ऐसा करनेमें 'शॉक' करनेकी भावनासे जितना काम लिया उतना जीवन गढ़नेकी भावनासे नहीं। इसलिए बहुत-सी कविताएँ बहुत-से ऐसे जुगुप्सा-व्यंजक तथ्योंको बड़ी बहादुरीसे उघाड़ने लगीं जो न तो सौन्दर्य-सर्जन कर सके और न किसी जीवन-वैषम्यका सार्थक उद्घाटन। फिर भी मुझे लगता है कि इस क्रियासे जीवनको मुक्त भावसे उद्घाटित करनेकी शक्ति प्राप्त हुई। भाषा अधिक खुलकर आनेके लिए आकुल होने लगी तथा व्यक्ति, अपने सन्दर्भमें ही सही, अपनी आजकी समूची छटपटाहटको स्वर देनेके लिए तत्पर हुआ। लेकिन अपनेको नयी कवितासे अलग काटकर, नयी कविताको रूमानी और अपनेको असली यथार्थवादी कविता मानकर, अपनेको नयी कवितासे आगेकी सम्भावना नहीं उपलब्धि मानकर, अपनेको अनेक दायरोंमें बाँटकर उसने नारे ग़लत लगाये।

■ ■

ई ४। ११ ए, माडल टाउन,
दिल्ली ९

भूल-सुधार : पृष्ठ ३७ पर प्रकाशित युवालेखन—मराठी इस श्रृंखलाकी सातवीं कड़ी है, भूलसे क्रम—६ छपा है। पाठक सुधार लें।

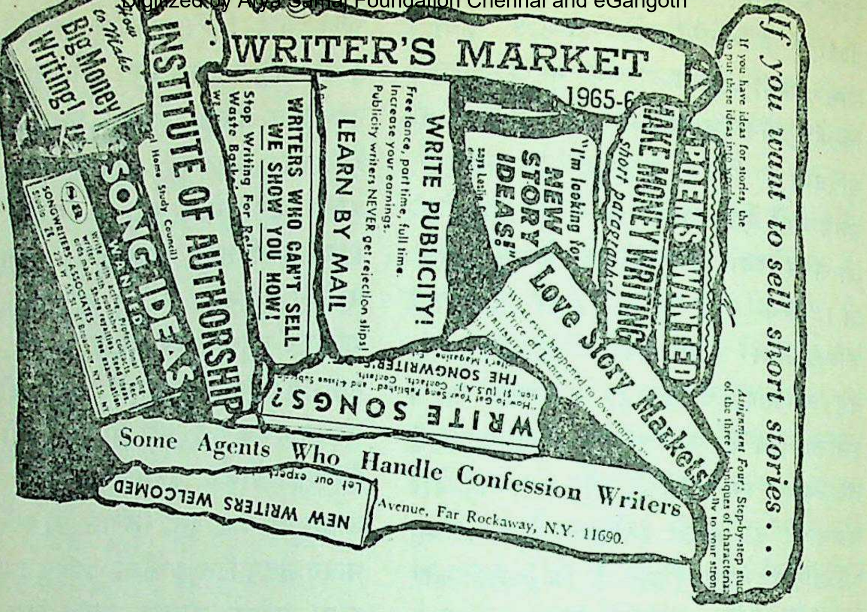
How to Make Big Money Writing!
INSTITUTE OF AUTHORSHIP
SONG IDEAS WANTED
WRITER'S MARKET
1965-6
WRITE PUBLICITY!
Free lance, part time, full time.
Increase your earnings.
Publicity writers NEVER get rejection slips!
LEARN BY MAIL
WRITERS WHO CAN'T SELL. WE SHOW YOU HOW!
Stop Writing For Rejection Slips
If you want to sell short stories . . .
If you have ideas for stories, the way to put these ideas into
POEMS WANTED
MAKE MONEY WRITING short paragraphs!
"I'm looking for NEW STORY IDEAS!"
Love Story Markets
WRITE SONGS?
THE SONGWRITER'S
Some Agents Who Handle Confession Writers
Avenue, Far Rockaway, N.Y. 11690.
NEW WRITERS WELCOMED
Assignment Four: Step-by-step study of the three techniques of characterization

'राइटर्स डाइजेस्ट' की कतरनें

ब्रिटेनके लेखक : एक और सर्वेक्षण

महेन्द्र राजा जैन

इंगलैण्डमें प्रायः सभी प्रकारके कार्य करनेवालोंके अपने अलग-अलग संघ या 'ट्रेड यूनियन' हैं जो उनके हितोंकी देखभाल करते हैं और आवश्यकता पड़नेपर उनकी (अपने सदस्योंकी) ओरसे आवश्यक कार्यवाही भी करते हैं। लेखकोंका अपना संघ, जो उनके लिए 'ट्रेड यूनियन'-के सभी कार्य करता है, 'सोसायटी ऑफ़ ऑथर्स' है। वैसे देखा जाये तो 'सोसायटी ऑफ़ ऑथर्स'को 'मजदूर-संघ'की अपेक्षा लेखकोंकी एक सलाहकारी संस्था कहना अधिक उपयुक्त होगा और समय-समयपर उसने इसी रूपमें महत्त्वपूर्ण कार्य भी किये हैं। पर पिछले कुछ वर्षोंमें इस सोसायटीने कुछ ऐसे कार्य किये हैं जिन्होंने अपने आपमें राष्ट्रीय आन्दोलनोंका रूप ले लिया है।

सोसायटी लेखकोंके हितों और शिकायतोंकी ओर सम्बन्धित लोगोंका ध्यान आकर्षित करती है और उनकी समस्याओंको हल करनेके लिए सुझाव पेश करती है। इधर कुछ वर्षोंसे सोसायटीने ब्रिटेनके सार्वजनिक पुस्तकालयोंके विरुद्ध एक आन्दोलन-सा छेड़ दिया है और

> इस तरह भी सोचें कि : यह समस्या हमारे देशकी भी है। कई घुसपैठिये साहित्यको व्यापार घोषित कर 'ट्रेड यूनियन' बनानेके लिए अवसरकी तलाश कर रहे हैं…

माँग की है कि पुस्तकालयोंसे पाठकोंको दी जानेवाली प्रत्येक पुस्तकपर कुछ न-कुछ फ़ीस ली जाना चाहिए और यह फ़ीस बादमें लेखकको मिलना चाहिए। पर ब्रिटेनके लायब्रेरी-एसोसियेशनने इस सुझावका डटकर विरोध किया है और कहा है कि इससे लेखकोंको लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। लायब्रेरी एसोसियेशनका मत है कि आजकल पुस्तकोंकी जितनी प्रतियाँ बिकती हैं, उनमें-से ८० प्रतिशतसे अधिक पुस्तकालयों-द्वारा खरीदी जाती हैं। यदि पुस्तकालय ये प्रतियाँ खरीदना बन्द कर दें तो लेखकोंकी क्या स्थिति होगी—इसकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है। दोनों संस्थाओंका यह विवाद इतना अधिक बढ़ा कि अन्तमें हाउस ऑफ़ कॉमन्स (पार्लियामेण्ट) में एक बिलके रूपमें लेखकोंका पक्ष उपस्थित करना पड़ा, पर अभीतक यह बिल पास नहीं हो सका है।

इसी प्रकार सोसायटीने एक अन्य प्रस्ताव यह रखा है कि लेखकोंको पुस्तकोंसे होनेवाली आमदनीपर इन्कम-टैक्समें कुछ रियायत होना चाहिए। सोसायटीका मत है कि किसी पुस्तकपर मिलनेवाली रायल्टी किसी एक वर्षकी आमदनी नहीं मानी जानी चाहिए वरन् उसे उतने वर्षोंकी आमदनी मानना चाहिए जितने वर्ष उस पुस्तकको तैयार करनेमें लगे हैं। लगभग ५ वर्ष पूर्व सोसायटीने लेखकोंकी आर्थिक स्थितिका सर्वेक्षण कराकर उसे 'ह्वाट आर राइटर्स वर्थ' शीर्षक एक पैम्फ़लेटके रूपमें प्रकाशित किया था। इसमें ब्रिटेनके लेखकोंकी आर्थिक स्थितिका अच्छा विश्लेषण किया गया था। इस सम्बन्धमें इलाहाबादकी सरस्वतीमें मेरा एक लेख भी प्रकाशित हुआ था।

उसी दिशामें सोसायटीने अभी हालमें ही एक और पैम्फ़लेट प्रकाशित किया है जिसका शीर्षक है—'बुक राइटर्स, हू आर दे'। इसके लिए सोसायटीकी ओरसे रिचार्ड फ़ाइण्डलेटरने सोसायटीके सदस्योंको व्यक्तिगत पत्र भेजकर उनकी आर्थिक स्थितिके सम्बन्धमें विविध प्रश्न पूछे थे। सदस्योंकी ओरसे जो उत्तर प्राप्त हुए, उनके आधारपर उन्होंने अपनी यह रिपोर्ट तैयार की।

इस रिपोर्टके दो मुख्य उद्देश्य थे—(१) यह पता लगाना कि आज ब्रिटेनमें औसत लेखक किस प्रकार या किस स्तरका जीवन बितानेकी आशा रख सकता है, तथा (२) कुछ ऐसे सुझाव प्रस्तुत करना जिनसे लेखकोंकी आर्थिक स्थितिमें सुधार हो सके।

जिस समय उक्त प्रश्नावली वितरित की गयी थी, ब्रिटेन और यूरॅपमें सोसायटीके ३२४० सदस्य थे। इनमें-से १५८७ ने उत्तर भेजे। जिन लेखकोंने उत्तर भेजे उनमें-से आधेसे अधिक मुख्यतः केवल लेखन-कार्य पर ही निर्भर थे। पर इनमें-से अधिकांश अपनेको लेखक बादमें तथा और कुछ पहले मानते हैं। आधेसे अधिक या तो शिक्षक या प्रवक्ता (लेखक) हैं या सरकारी नौकरियों और उद्योगोंमें नियुक्त हैं। बहुतोंको लेखन-कार्य अपने मूल पेशेके पूरक रूपमें मिला है।

जिन लेखकोंने उत्तर दिये उनमें-से एक-तिहाई महिलाएँ थीं तथा एक-तिहाई लन्दन

से बाहर रहते थे। सभी लेखकोंमें-से तीन-चौथाईकी उम्र ३५ से ६५ के बीच थी।

इस रिपोर्टसे हमें केवल यह ही पता नहीं चलता कि आज ब्रिटेनमें एक औसत लेखककी औसत आय कितनी है वरन् यह भी पता चलता है कि उसकी आजीविकाके अन्य साधन क्या हैं? रिपोर्टमें लेखकोंको दो स्पष्ट श्रेणियोंमें विभाजित किया गया है। एक श्रेणीमें वे लेखक हैं जो लेखनको अन्य कार्योंकी अपेक्षा प्रमुख स्थान देते हैं तथा दूसरी श्रेणी उन लेखकोंकी है जिनके लिए लेखन-कार्य एक अतिरिक्त कार्य है।

इस आधारपर यह पता चलता है कि जिन लेखकोंने प्रश्नावलीका उत्तर दिया उनमें-से ५६ प्रतिशत प्रथम श्रेणीके लेखक थे। इनमें-से क़रीब दो-तिहाईकी चार या अधिक पुस्तकें तथा आधेसे अधिककी कम-से-कम एक पुस्तक अप्रैल १९६३ और अप्रैल १९६५ के बीच प्रकाशित हो चुकी थीं।

फ़ाइण्डलेटरकी रायमें इन लोगोंको ही सही मानेमें लेखक माना जाना चाहिए। पर यदि आयके हिसाबसे लेखकके रूपमें उनकी गणना करें तो कुछ दूसरा ही चित्र देखनेको मिलता है। इनमें-से आधेसे भी कम लेखकोंकी वार्षिक आय ५०० पौण्ड (१०,५०० रु०) है (जबकि ब्रिटेनमें वार्षिक औसत आय १००० पौण्ड है तथा वहाँ बस-ड्रायवर, कण्डक्टर, नगर-पालिकाके मेहतर भी इससे अधिक आसानीसे कमा लेते हैं।) जिन लेखकोंने उत्तर दिये, उनमें-से केवल ६ में-से १ लेखककी वार्षिक आय १०५० पौण्डसे अधिक थी तथा प्रत्येक १० में-से १ की वार्षिक आय ५५० पौण्डसे १०५० पौण्डके बीच और बाक़ीकी ५५० पौण्डसे भी कम थी।

ऐसी स्थितिमें पाठकोंके मनमें यह प्रश्न उठता है कि क्या ब्रिटेनमें पुस्तकोंके ग्राहक और पाठक नहीं? वस्तुत: ब्रिटेनमें पुस्तकोंके ग्राहक और पाठक दोनोंकी ही संख्या पर्याप्त—बहुत ज्यादा—है। रिपोर्टके अनुसार ब्रिटेनमें प्रतिवर्ष लगभग २० हजार पुस्तकोंकी ३० करोड़ प्रतियाँ छपती हैं। वहाँ स्कूलों और सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें इस समय लगभग ८ करोड़ पुस्तकें हैं जो प्रति वर्ष लगभग ५० करोड़ बार पाठकोंको दी जाती हैं। इन पाठकोंसे पुस्तकालयोंका उपयोग करनेके लिए किसी प्रकारका शुल्क नहीं लिया जाता। ब्रिटेनसे प्रतिवर्ष लगभग ५ करोड़ पौण्ड मूल्यकी पुस्तकें निर्यात की जाती हैं। पॉकिट-बुक संस्करणमें ही क़रीब १० करोड़ पुस्तकें प्रति वर्ष छपती हैं। ये आंकड़े देख लेनेके बाद इस लेखके पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इसके बावजूद भी ब्रिटेनमें आज औसत लेखकको अपनी पुस्तकोंसे पर्याप्त आय नहीं होती और उसे जीवित रहनेके लिए कोई-न-कोई अन्य कार्य करते रहना पड़ता है। इसके कई कारण हैं।

ब्रिटेनसे विदेशोंको निर्यात की जानेवाली पुस्तकोंकी बिक्रीसे लेखकोंको कोई विशेष लाभ नहीं होता। पिछले कुछ वर्षोंमें सार्वजनिक पुस्तकालयोंकी सदस्य-संख्या भी बढ़ी है, (ब्रिटेनकी कुल आबादीकी एक-तिहाई

संख्या पुस्तकालयोंकी पंजीकृत सदस्य है) इससे भी लेखकोंको कोई विशेष लाभ नहीं होता। क्योंकि इसके परिणामस्वरूप पाठकोंकी संख्यामें तो पर्याप्त वृद्धि हुई है पर पुस्तकोंकी बिक्रीमें नहीं।

रिपोर्टमें बतलाये गये मूल यानी प्रथम श्रेणीके लेखकोंमें-से केवल ३२ प्रतिशत ही ऐसे हैं जिन्हें अपनी कुल आयका आधेसे अधिक लेखन-कार्यसे प्राप्त होता है। पर धनी माने जानेवाले लेखकोंकी आयका मुख्य साधन प्रकाशकोंसे मिलनेवाली रायल्टीकी अपेक्षा अन्य साधन (यथा पुस्तकोंका फ़िल्मीकरण, धारावाहिक प्रकाशन, रेडियो, टेलीविजन और पॉकिट-बुक-संस्करण आदि) ही प्रमुख हैं।

ऐसी स्थितिमें लेखकोंके भविष्यके लिए क्या किया जाये, इस सम्बन्धमें रिपोर्टमें कुछ सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

रिपोर्टमें प्रस्तावित इस सुझावसे प्रायः सभी सहमत होंगे कि यदि किसी लेखककी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह अच्छा लेखक नहीं है और न यह ही कहा जा सकता है कि ब्रिटेनके लोग आर्थिक स्थितिके कारण ही अधिक पुस्तकें नहीं खरीदते। मेरा अपना अनुभव तो यही है कि ब्रिटेनमें औसत व्यक्ति शनिवार या रविवारकी शामको 'पब' (पेयगृह) में २-४ पौण्ड आसानीसे खर्च कर देगा पर २५ शिलिंगकी पुस्तक न खरीद सकनेके लिए अनेक कारण बतलायेगा।

अतः प्रश्न यह उठता है कि पुस्तकोंकी बिक्री बढ़ानेके लिए किसके द्वारा क्या किया जा सकता है। इस सम्बन्धमें प्रस्तुत रिपोर्टमें सबसे पहले प्रकाशकोंपर ही विचार किया गया है।

रिपोर्टके अनुसार अधिकांश लेखकोंके लिए प्रकाशक उस जमींदार या साहूकारके समान हैं जो किसानकी मजबूरीका फ़ायदा उठाकर उसकी फ़सलका अधिकांश भाग स्वयं हड़प लेता है। फ़ाइण्डलेटरका मत है कि अभी भी ऐसे अनेक प्रकाशक हैं जो लेखककी रायल्टी एवं अन्य साधनोंसे होनेवाली आयका अधिकांश भाग स्वयं हड़प लेते हैं। अतः बिना किसी अधिक झंझटके लेखकोंके हितके लिए जिस एक क्षेत्रमें अभी कुछ किया जा सकता है वह है—पुस्तकोंकी विदेशोंमें बिक्रीसे होनेवाली आय। आजकल इस स्रोतसे लेखकको नाम मात्रका ही लाभ होता है। प्रकाशकों (एवं प्रकाशक संघ) पर किये गये सीधे आक्रमणमें रिपोर्टमें कहा गया है कि एक ही नामसे दो अलग-अलग पुस्तकोंका प्रकाशन, एक ही समय (सीजन) में एक साथ बहुत-सी पुस्तकोंका प्रकाशन, प्रकाशकों-द्वारा किया जानेवाला अनावश्यक उत्पादन व्यय तथा विक्रेताओंके पास समयसे पुस्तकें न पहुँचना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनका लेखककी आर्थिक स्थितिपर सीधा प्रभाव पड़ता है।

रिपोर्टमें सुझाव दिया गया है कि इटली और फ्रान्सके क़ानूनके समान ब्रिटेनमें भी एक ऐसा क़ानून होना चाहिए जिसके अनुसार

कॉपीराइट-क्षेत्रसे बाहरकी पुस्तकोंके लिए प्रकाशकसे एक निश्चित रक़म रायल्टीके रूपमें ली जाये तथा उसे एक फ़ण्डके रूपमें एकत्र किया जाये।

सार्वजनिक पुस्तकालयोंको भी लेखकोंकी वर्तमान आर्थिक स्थितिके लिए ज़िम्मेदार ठहराते हुए कहा गया है कि वे लेखकोंकी इस माँगका समर्थन नहीं करते कि वे पाठकों-द्वारा ले जायी गयी पुस्तकोंपर उनसे कोई शुल्क लें। ज्ञातव्य है कि ब्रिटेनमें प्रत्येक पुस्तककी बिकी हुई १ प्रतिकी तुलनामें ११ प्रतियाँ पुस्तकालयों-द्वारा खरीदी जाती हैं। अतः इस स्रोतसे भी लेखकोंको कुछ मिलना चाहिए।

लेखकोंकी आर्थिक स्थिति सुधारनेके लिए रिपोर्टमें जो अन्य सुझाव दिये गये हैं उनमें इन्कम-टैक्समें रियायत, लेखकोंको अध्ययनके लिए सरकार और संस्थाओंसे फ़ेलोशिप (आर्थिक सहायता), पेन्शनकी सुविधा, पुस्तकोंकी बिक्री बढ़ानेके लिए सरकारी दुकानें, आदि बातें प्रमुख हैं।

पर ये प्रस्ताव नये नहीं हैं। ये प्रस्ताव पहले भी रखे जा चुके हैं और उनके पक्ष-विपक्षमें पत्र-पत्रिकाओंमें अबतक बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। रिपोर्टका महत्त्व तो वस्तुतः केवल इस सुझावमें है कि लेखक जो कुछ लिखता है उससे उसे अधिक आय हो सकती है और होना चाहिए। पर वह कैसे हो, इस सम्बन्धमें कोई ठोस समाधान प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

■ ■

यूनिवर्सिटी कॉलेज लाइब्रेरी
पो० बॉ० नम्बर ९१८४, दारेस्सलम,
टंज़ानिया

हिम-विद्ध
• •
नयी कविताके विशिष्ट शिल्पी कवि
डॉ० जगदीश गुप्त
की विशेष भावभूमिकी कविताएँ
मूल्य ३.००
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

रसेलकी आत्मकथाका पहला भाग प्रकाशित हो गया है। प्रारम्भिक पृष्ठोंसे ही लगता है कि जीवनके अतल गम्भीर चिन्तनको लिख देने और कह देनेकी इच्छा ९० वर्षकी आयुके बाद ही पैदा हुई थी। लम्बी उम्रसे भय भी लगता है लेकिन अकाल मृत्युका भय उससे भी भयंकर है…सोचें…!

अमर पुत्रोंके चमत्कार

जी. एस. पथिक

बरट्रेण्ड रसेल उन भारतीय राजनीतिज्ञोंको शक्तिपुंज बनानेका भार अपने कन्धेपर लेने बढ़े हैं, जो जरासे-में अपना धैर्य खो बैठते हैं। देखिए न, डॉक्टर लोहिया, जिन्होंने अभी मुश्किलसे साठ बरसातें भी पार नहीं कीं, उन लोगोंपर उत्तेजित हो उठे, जिनके मत राष्ट्रपतिके निर्वाचनमें श्री सुब्बारावको नहीं मिले। इस साधारण घटनापर उन्होंने कहा कि अब वे गर्जन-तर्जन नहीं करेंगे। मगर वे यह भूल गये कि जो राजनीतिज्ञ बराबर अपने अमरत्वकी चर्चा नहीं करता, दुनिया उसके पीछे नहीं दौड़ती। फिर डॉक्टर लोहियाको यह जानकर प्रसन्न होना चाहिए कि बरट्रेण्ड रसेलने इस देशका नेतृत्व करनेका अभिवचन दिया है। वे २०६० ई० तक अमेरिकाके सभी राष्ट्रपतियोंको डॉक्टर लोहियाके ईजाद—घेराव—में बन्द रखेंगे। इस देशमें घेराव जनताका लोकतन्त्रीय अधिकार माना गया है। अब, अमेरिकामें वैध ठहरनेपर उसे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त होगी। राष्ट्रपतियोंके सारे दिन घेरावमें बन्द रहनेपर सिनेटर धुआँ उड़ाते बैठे हुए यह सोचेंगे कि क्या संसारपर अणुबमका प्रहार किया जाये!

अरस्तूने अपनी गणनासे यह सिद्ध किया कि मौजूदा उम्रसे लोगोंको आठ गुना जिन्दा रहना चाहिए, उसके बाद शायद वे वयस्क हो सकेंगे। इस खयालसे ही दार्शनिक और राजनीतिज्ञ आनन्द लेते हैं कि वे अस्सी-नब्बे वर्षों तक जीवित रहेंगे। साधारण व्यक्ति जीविका-अर्जनकी चक्कीमें पिसनेपर जल्द वयस्क हो जाते हैं। मगर दार्शनिकता और राजनीतिमें जो पनपते हैं, उनमें कोई यह नहीं जानता कि वह कब वयस्क होगा।

राजाजीको देखिए, उन्होंने अभी केवल ८९में पग रखा है। पर क्या वे यह कभी कहेंगे कि वे वयस्क हैं। वे तो आनन्द ले रहे हैं और सदा यह सोचते हैं कि

कब वे वयस्कताको पहुँचेंगे। वयस्क होनेपर ही वे भारतके प्रधान मन्त्री बनेंगे। अरस्तूका फ़ार्मूला यदि सही है, तो राजाजी पोते, परपोते और परपोतोंके परपोते खिलायेंगे। अतः वे ६०० वर्ष तक जीवित रहेंगे। अफ़सोस, तब भी वे रेकॉर्ड क़ायम न कर सकेंगे क्योंकि संसारका पहला-पहला राजनीतिज्ञ मेथूसेलह ९६० वर्ष तक जीवित रहा था। वह जीवनके अन्त तक समस्याओंके हल करनेमें लगा रहा। शान्तनुका पहला पुत्र भीष्म था। दुर्भाग्यसे उन्होंने विवाह नहीं किया। मगर अपने जीवनके अन्त तक वे अपनेको बालक मानते रहे। वे अपने भतीजे-प्रपौत्र और उनके प्रपौत्रोंको शिक्षा देनेमें व्यस्त रहे कि किस प्रकार दूसरोंके लक्ष्योंपर प्रहार किया जाये और वक्तव्य दिये जायें। पर भारत-सरकारके क़ानूनके अनुसार उन्हें बहुत पहले ही अपने कामसे हट जाना था और निजी क्षेत्रमें ऊँचे वेतनका कोई काम पकड़ना था। अपने मित्र द्रोणके साथ वे महाभारत देखनेके लिए बढ़े पर हा हन्त, अर्जुनके घातने उन्हें अपने धन्धेसे हटा दिया।

यदि राष्ट्रपति जॉनसन लूसीको दिये गये वचनपर क़ायम रहे, तो वे हम सबकी पार्सल अणुबमके विस्फोटसे न कर पायेंगे। उन्हें आनन्द लेनेका अवसर न मिलेगा। इससे यह लगता है कि जो राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक नहीं हैं, वे सभी अपने पिता और पितामहकी अपेक्षा अधिक काल तक हँसते-खेलते रहेंगे, क्योंकि संसारमें जीवन-स्तरकी सुई आगे बढ़ती जा रही है। भारतपर नज़र डालनेपर विगत वर्षोंमें जीवन-काल शून्यसे पचास तक पहुँच गया है। उम्रदराज़की इस देशमें इतनी बाढ़ आयी है कि अँगरेज़ी राजमें प्रतिवर्ष लाखों शिशु जन्म लेते ही यहाँ नहीं रहते थे और लाखों बालक किशोर अवस्था तक नहीं पहुँच पाते थे। प्रसूत और तपेदिक लाखों स्त्रियोंको विदाई देती थीं। मलेरिया और संक्रामक रोग करोड़ोंको ले जाते थे। वे सब जम गये, क्योंकि उन्हें ले जानेवाले ग़ायब हो गये। आज जो प्रतिदिन पचास हज़ार मेहमान आते हैं, उनके पास अमरत्वका सर्टीफ़िकेट है। इससे भारतमें जो उन्नति हुई, उसे देखनेके लिए अमेरिकाके साठ वर्षकी अवस्थाके लड़कोंमें उफान आ गया। उन्होंने कहा कि जितनी जल्दी जितने अधिक विमान उपलब्ध हों, उन सबपर लदकर और मुफ़्त भोजन पाकर भारतको देखा जाये। मगर जब वे अपने देशको लौटे तो अपने देशवासियोंसे उन्होंने कहा कि भारत ख़तरनाक़ है, वहाँ उन्हें सिर्फ़ गर्म पानी पीनेको मिला।

हिमालयकी गोदके नेपाल-राज्यकी ७६ वर्षकी कन्या पूना मगरानीने विवाह किया। कुछ लोगोंके दिमाग़में उसकी उम्रका ख़याल आता, मगर उस चतुर कन्याने पहले ही कह दिया कि वह अभी पूर्ण यौवन तक नहीं पहुँची है। उसने कहा—'दिल जवान है, तो उम्र भी जवान है।' मगरानीने सत्तर-अस्सी वर्षके सभी दार्शनिक और राजनीतिज्ञ विधुरोंको विवाहके लिए आह्वान किया है, क्योंकि वे सभी ज़िन्दा दिलवाले हैं। कदाचित्, इन लोगोंमें-से किन्हींके पत्नियाँ हों, तो उन्हें

पुरानी पत्नियोंको बिदा कर नया विवाह करना चाहिए। यदि वे सभाओंमें विवाह कर घर पहुँचनेपर तलाक़ दे दें, तो उनकी उम्र बढ़ेगी। यह सन्देश १९६७ में सिडने विश्वविद्यालयके अध्यापक मेकडोने सेक्स और नैतिकताके सम्मेलनमें दिया कि जीवनपर्यन्त किसी एकको हिस्सेदार बनाकर रखना मूर्खता है। यदि कोई पुरुष या स्त्री एकको हिस्सेदार बनाता है, तो उसकी भावनाएँ कुण्ठित हो जाती हैं और उसका चरित्र गिर जाता है। विज्ञानके इस परिवर्तनशील युगमें मेकडोका यह आविष्कार समाजके नव-निर्माणका है। मेकडोने मानस-गति-शास्त्रके आधारपर यह सब कहा है। आगे सुनिए, बेंगकॉकके एक तिरपन वर्षके छोकरेका एक बालिकासे प्रेम हो गया। बातचीतके बाद उसने कहा कि यदि वह चली जायेगी, तो वह खिड़कीसे कूद पड़ेगा। बालिकाने कहा—करो न! वह लड़का छह मंज़िलवाले मकानकी छतपर-से कूदकर सौभाग्यसे एक कारकी छतपर आकर गिरा। दिल ज़िन्दा था, कैसे मरता। अभी हालमें केवल ८८ वर्षकी एक महिलाके बालक पैदा हुआ। वैज्ञानिक ही बता सकेंगे कि उसके उदरके किस कोनेमें उर्वरताके कण थे।

मेथूसेलह, रसेल, राजाजी और अस्सी वर्षकी महिलाने अपनी शतियोंके पहुँचनेके पहले ही अद्भुत करतब किये। वे यह करतब करते रहें, इसलिए उनका एक-एक दिन हजार वर्षका हो। बात यह है कि साधारण लोग जो कुछ करनेकी कामनाएँ करते हैं, वे अपने जीवनके तीस-चालीसमें बहुत-कुछ पूरी कर लेते हैं और जो महान् कार्य उनके बसके नहीं होते उन्हें वे शतियाँ मनानेवाले राजनीतिज्ञ और दार्शनिकोंपर छोड़ देते हैं कि वे उपलब्धियाँ प्राप्त कर संसारको अपनी प्रतिभासे चकित करें।

कोई नहीं जानता कि चंगेज़ ख़ाँ कबतक जीवित रहा। १८ वर्षकी अवस्थामें तख़्तनशीन होनेपर सोना बटोरनेके लिए उसने पूर्व और पश्चिमकी सभी दिशाओंमें चढ़ाइयाँ कर दी थीं। पिट, जिसने तरुणाईमें क़दम रखा ही था कि वह ब्रिटेनका प्रधान बना। सफ़ेद दाढ़ीवाले सारे अक़्लमन्द उसकी ओर निहारते ही रह गये। उन्हें अपने राजनीतिक अनुभवोंपर तरस आया। कीट, शेले और बायरन चालीसके पहले सिधार गये और छोड़ गये आलोचकोंके लिए अपने युगकी काव्य-रचनाएँ। शंकर अठारह वर्षके थे, जब उन्होंने बौद्धधर्मके विनाशके लिए सारे देशकी यात्रा की और छत्तीसके पहले ही चारों दिशाओंमें मठ स्थापित किये। यह कर लेनेपर उन्होंने ज्ञानमें पूर्णत्व प्राप्त कर लिया था। उसके उपरान्त उन्हें जीवित रहना अनावश्यक जँचा। ईसा मसीह चालीसके थे, जब उन्हें सूलीपर चढ़ाया गया था।

मानव-शरीरमें विशेष तत्त्वोंका योग न होनेपर वे अकसर अधिक काल तक जीवित नहीं रहते। प्रोटोजोने उस समस्याका निरूपण किया, जिसे हम मृत्युकी संज्ञा देते हैं। वृद्धावस्था उन लोगोंपर कभी प्रभाव नहीं डालती जो एक मकानको दोमें विभाजन करते हैं। जीवनपर्यन्त उनका काम खत्म नहीं

होता है। कांग्रेसमें समझदारी होती तो वह पाटिलके बुद्धिमत्तापूर्ण सुझावपर चलकर विनाशसे बचती। सृष्टिके आदिसे प्रोटोजोकी करनियाँ ऐसी ही देखी गयीं। उन्होंने हरएक का विभाजन आरम्भ किया। उसने वृक्षोंको दूसरा स्थान दिया, जिनमें अच्छे वृक्षोंकी आयु पांच हजार वर्षकी थी। जीवशास्त्रकी दृष्टिसे उनमें अमरत्वके तत्त्व थे। क्या कहा जा सकता है कि जो मानव दीर्घायु पाते हैं, वृक्षोंके वंशज हैं? मेंढक और स्वच्छ जलकी विशेष मछली बड़े मजेमें दो सौ वर्षसे अधिक जीवित रहते हैं। वे लोग जो दीर्घायुके साथ-साथ आलापमें तेजी रखते हैं, उनके अंगमें मेंढकोंके अंश होंगे। तुलसीदास कम्युनिस्ट नहीं थे, किन्तु वे मेंढकोंके नारोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे—'दादुर धुनि चहुँ ओर सुहायी, वेद पढ़ें जनु बटु समुदायी।' अत: सत्तर-अस्सी वर्षमें जिन्हें वृद्धावस्था महसूस नहीं होती, वे निश्चय ही अमरपुत्र हैं।

■ ■

सम्पादक—आर्थिक साधना,
८, मार्किस स्ट्रीट,
कलकत्ता—१६

परिवर्तित ग्राहक-शुल्क :

एक प्रति	...	१—५०
वार्षिक विशेषांक	...	३—००
वार्षिक शुल्क	...	१५—००
अर्द्धवार्षिक	...	८—००
तीन वर्ष का	...	४०—००
सात वर्ष का	...	९५—००
पन्द्रह वर्ष का	...	२००—००
आजीवन	...	२५१—००

—व्यवस्थापक

स्पार्क

•

— चन्द्रकान्त बक्षी

रातके अँधेरेमें वह इंजनसे उड़-उड़कर डिब्बोंके सामनेसे गुज़रती चिनगारियोंको देखता रहा । आकाशके बीच शुक्ल पक्षका उजाला खुल रहा था और दौड़ती ट्रेनकी आवाज़ोंकी लय इसकी समानतामें खो चुकी थी । धीरेसे एक वयस्क स्त्रीने पूछा, "दिल्ली जा रहे हैं ?"

"ना, पालनपुर ।"

और वह चिनगारियोंको देखता रहा । कुछ साल पहले आधी-रातको एक बार बान्दीकुईसे ट्रेन बदलना था तब····

"अब तो पालनपुर आयेगा न····?"

"हाँ ।" कहकर वह खड़ा हो गया, खिड़कीके पास आकर उसने सिगरेट सुलगायी ।

तब बिस्तरपर बैठे-बैठे ठण्डमें उसने चिनगारियोंको उड़ते देखा था । घने अन्धकारसे बत्तियाँ टिमटिमाने लगीं, अतीतमें छिपे क्षणोंकी तरह, अन्तर क़रीब आते गये, और वर्षोंका सिलसिला, भिश्तीकी खाली हो रही

मशककी तरह, दबता, सिकुड़ता, गलेसे चिपकता गया।

····कितने साल हो गये? माँ कब की मर गयी थीं? मैट्रिकके इम्तहानके बाद और आजादीके दो महीने पहले। बापकी चिट्ठी आयी थी रंगूनसे। बाबूलाल हज्जामके लड़के गोविन्दको उसने माथेपर चोट मारी थी और मिडिल स्कूलके बरगदके पेड़ोंमें एरोप्लेनोंकी घरघराहट सुनता हुआ छिप गया था।

दूसरी गुमटीकी बत्ती दिखाई दी और खलासीकी हरी लालटेन। सूटकेस उतार कर वह दरवाजेके पास ले आया, सिगरेट फेंक दी।

"रेस्तरांवालेको खोजिए जरा, इस स्टेशनपर थाली आ जायेगी तो?····नहीं तो फिर देर हो जायेगी।" वयस्क स्त्रीने अपने कमजोर पतिसे कहा।

मिडल स्कूलके बरगदके पेड़ोंमें···

■

गोविन्द पीछेवाले मकानमें रहता है, दो वर्ष सेलूनमें नौकरी करके अब अपना, हजामतका, काम करता है।

उसने गोविन्दको लिखा, घर बेच डालना है। किसीसे अंगरेजीमें पता लिखवाये पोस्टकार्डमें गोविन्दने लिखा था—आठ हजार आ रहे हैं। फ़लां सेठ····घर देख गये हैं उनके परिवारको पसन्द आया है। आठ हजारका आॅफ़र आपको लिखनेके लिए मुझसे कहा है।

और पन्द्रह हजारके घरकी आठ हजारकी क़ीमत उसे मंजूर थी। उसने गोविन्दको स्त्रीकृति लिख दी। हाँ, बेच डालो। गोविन्दका खत आया, एक बार आप आ भी जाइए भाई! गोविन्द उसे 'भाई' कहता था। वह गोविन्दसे तीन साल बड़ा था, ज़्यादा पढ़ा-लिखा। और गोविन्द ग़रीब था। साथ-साथ खेलता था तब भी गोविन्दको पता था कि वह ग़रीब था।

उसने लिखा—आ रहा हूँ।

छुट्टी लेने गया तब स्टीमरके कैप्टनने पूछा, "स्पार्क, वोट्स कुकींग?"

"नथींग, सर।"

रेडियो-ऑफ़िसरको स्टीमरपर सब 'स्पार्क' कहते थे। सभी रेडियो-ऑफ़िसरोंको और सभी स्टीमरोंपर।

उसने फ़र्स्ट एंजीनियरसे कहा था, "खास कुछ काम नहीं है, घर है बाप-दादोंका, वह बेचना है। इसीलिए जा रहा हूँ।"

"वहाँ गाँवमें है क्या कोई बातचीत करनेवाला? मकानका दलाल या····"

"ना, एक दोस्त है बचपनका, गोविन्द हजाम। वह गाहक ले आयेगा।"

"कितने रुपये मिल जायेंगे?"

"जो मिल जाये। ग्यारह सालके बाद जाऊँगा, घर भी होगा या नहीं, पता नहीं···"

फ़स्ट एंजीनियरने पूछा, "स्पार्क, क्या बताया नाम तुमने अपने दोस्तका?

■

ट्रेन प्लैटफ़ार्ममें घुसी, गैस-लाईटोंके काँचपर नागरी लिपिमें लिखा 'पालनपुर' वह पढ़ पाया। घरका स्टेशन। सभी स्टेशन एक-जैसे लग रहे थे, सिर्फ़ घरका स्टेशन भिन्न था।

वह चौकस हुआ। हाँ, दूसरे लैम्प-पोस्ट-

के कांचपर लिखे लाल अक्षरोंको उसने पढ़ा। स्टेशन काफ़ी बदल चुका था, मगर 'पालनपुर' का ही था।

उतरा। ओवर ब्रिजकी चहल-पहल देखता बाहर आया। स्टेशन अब समयके अनुसार लग रहा था। बाहर घोड़ा-गाड़ियोंकी गन्ध थी, और गरमियोंकी रातमें एस्फ़ॉल्टके मार्ग खाली थे। मक्खियाँ भी भाग गयी थीं।

“कहाँ जाना है ?” घोड़ा गाड़ीवालेने पूछा।

गाड़ीमें बैठे-बैठे उसने घोड़ेके पैरोंकी, घोड़ागाड़ी वालेकी, सड़कपर चकराते पहियोंकी, घोड़ेके हिलते रासोंकी आवाज़ें सुनीं। पाससे, सामनेसे पेट्रोमैक्सोंका प्रकाश स्मृतिको खोलता हुआ गुज़र रहा था। गाड़ी लेट थी, छोटे-छोटे गावोंकी रातें जल्दी-जल्दी गहरी हो जाती हैं, और साइकिलोंकी घण्टियाँ····

उसने अहमदाबादके स्टेशनसे एक माउथ-ऑर्गन ले लिया था। गोविन्दसे मिलने जा रहा था, बहुत वर्षों बाद। बच्चे होंगे उसके, दो-चार। कुछ ले आना चाहिए था और वह बिलकुल भूल गया था। स्टेशनपर, गाड़ी छूटनेके वक़्त, उसे याद आया और माउथ-ऑर्गन ले लिया। लड़का हो या लड़की—दिया जा सकेगा। अगर दो-चार बच्चे हों तब भी एकसे ही काम चल जायेगा।

कुछ साल साथ-साथ स्कूल जाते थे, और गोविन्द फ़ेल होता जाता था। फिर स्कूल छोड़कर सेलूनमें काम करने लगा। दो ही सेलून थे उन दिनों। पास होकर उसने वायरलेस-टेलीग्राफ़ी सीख ली। जहाज़में रेडियो-ऑफ़िसर बन गया। तीन वर्ष दुनिया देखी। 'खाया-पीया, राज किया।' फिर सोचा, अब तो जीना शुरू करना चाहिए।

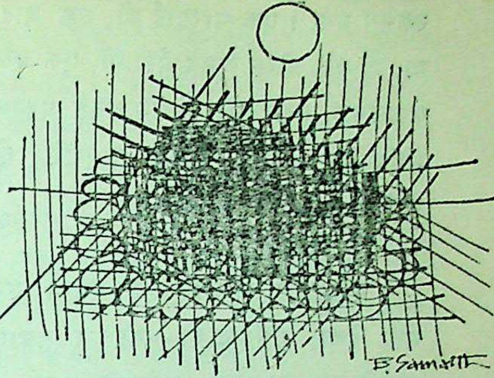

“तुम्हें अच्छा लगे, वही करेंगे। मैं तैयार हूँ। सिर्फ़ स्कैण्डल नहीं करना है।”

“अच्छा सुनो, मेरे वकीलने रास्ता निकाला है, मेण्टल-क्रुएल्टी नहीं चलेगी। एडल्टरीका चार्ज भी ठीक नहीं है। डेज़र्शनका इलज़ाम अच्छा है, दोनोंका छुटकारा हो जायेगा।”

“हाँ, तो···तुम मुझपर डेज़र्शनका इलज़ाम लगा दो”, उसने कहा, “बादमें मुझे क्या करना है यह अपने वकीलसे पूछ लेना।”

घरके मोहल्लेकी ओर गाड़ी घूमी। लिखा होता तो गोविन्द ज़रूर स्टेशन आ जाता। लेकिन उसकी ट्रेन ठीक तय नहीं हुई थी और इतनी रातको····'सरप्राईज़' शब्द उसके दिमाग़में जगमगाकर बुझ गया, भीगे पटाखेकी तरह।

घोड़ा-गाड़ीसे उतरकर, पैसे देकर, वह मोहल्लेमें घुसा और दलदलसे उठकर दो कुत्ते भौंकने लगे। घरके सामने आते वह

रुक-सा गया। एक चारपाई थी, एक आदमी था, दो-एक औरतें धूलमें बैठी थीं, एक बच्चा लालटेनके दरारवाले शीशेसे छनते प्रकाशमें सीढ़ियोंपर बैठा चिकने पत्थरोंसे खेल रहा था।

"गोविन्द!"

चारपाईसे आदमी खड़ा हुआ। उसने साफ़ देखा, गोविन्द था—गोविन्द हजाम। आगेके सब बाल झड़ जाने की वजह गंजे माथेवाला। गुज़रे वर्षोंके दबावसे छोटा बना हुआ। बाल झड़ जानेसे माथेके जख़्मका निशान स्पष्ट दिखाई दे रहा था। अतीतका एक टुकड़ा टूटकर गिर पड़ा, गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्त जम गये....

गले मिला।

और बातें। देर रात लालटेन भभक उठी और गोविन्दकी स्त्रीने फिरसे केरोसीन भरा तो उसने पूछा, "बच्चे कितने हैं तुम्हारे? एक ही तो....?"

"हाँ भाई, एक ही लड़का है," गोविन्द बोला।

"ह्....ह्...." वह खुलकर हँस पड़ा "अहमदाबादके स्टेशनपर....गाड़ी छूटनेके समय मुझे याद आया, बाल बच्चे होंगे तुम्हारे। फिर सोचा, लड़के-लड़की सभी होंगे। क्या ले चलना चाहिए? एक ही लड़का है इसलिए तक़दीरवाले हो!" एयर बेगसे माउथ-ऑर्गन उसने निकाला, बजाया, बच्चेके हाथमें थमा दिया, "बजावो बेटे, अपने बापको आज सोने मत देना!...."

गोविन्दके चेहरेपर, त्योहारके दिन लम्बी बीमारीवालेकी आँखोंमें आयी झलक-जैसी मुसकुराहट फैली। बोला, "भाई, लड़का सुन नहीं पाता है, बहरा है...."

उसे कुछ कहनेका मन हुआ, ज़रा हँसनेका विचार हुआ। स्थिर लालटेनकी ओर देखते वह बोला, "अपने मकानके खरीदार सेठ गाँवमें वापस आ गये, क्या?"

◆

गोविन्दके आग्रहके बावजूद वह ऊपरी मंज़िलपर सो गया, दीवारोंपर टँगी बड़ी-बड़ी तसवीरें देखता। एकाएक उसे लगा कि उसके परिवारके पुरुष खूबसूरत थे—स्त्रियाँ न थीं। खूनके रिश्तेवाले स्त्री-पुरुष....

बचपनमें मेरी आत्मा मेरी छातीमें थी, अब आत्मा सिरमें आ बैठी है, उसने सोचा।

झड़े पत्तोंपर जमी ओसको बचा-बचाकर चलते आदमीकी तरह वह घरकी स्मृतियोंमें-से भूतकालको ढूँढ़ने लगा।

दरार पड़ जाती है ज़िन्दगीमें, और बन्द नहीं होती....

बाहर एक नीमका पेड़ है, जो बुड्ढा नहीं होता। एक पीढ़ीसे, आधी रात तक कुत्ते उसके गिर्द भौंकते रहते हैं। बहार आती है और उसके मटियाले पत्ते और फँसे-फटे पतंगोंके रंग उड़े हुए काग़ज़, फड़फड़ाते, पूरी रात नदीकी तरफ़से आती हवामें हँसते रहते हैं। रातकी आवाज़ोंमें लड़ाईके पहलेके वर्षोंकी पुरानी परिचित बू है।

गोविन्दकी सी आवाजका आभास हुआ, "नींद नहीं आती, स्पार्क?...."

या फ़र्स्ट एंजीनियरकी आवाज थी? या

मिताकी ?

रातको सोनेके समय, मूड बना हो तब मिता भी उसे 'स्पार्क' कहती।

दीवारपर बाप-दादेकी तसवीरोंके बीच सिकुड़कर बैठा हुआ भूतकाल सरसराया।

◆

शादीके बाद तीन रोज़के लिए मिताको लेकर वह माउण्ट आबू गया था।

"इन सब पहाड़ोंको मैं पहचानता हूँ, अपने घरके छप्परके नट्समें किसीकी गुड्डीका धागा फँस जाता तब मैं छप्परपर चढ़ जाता। घटाओंके बीच रेलवे लाईनका एकाध टुकड़ा धूपमें चमकता दिखाई पड़ता, और पहाड़ोंकी रेखाएँ। साँझके वक़्त धूप न होनेकी वजह रेलवे-लाईन घटाओंमें छिप जाती और किसी गुड्ज़ ट्रेनका धुआँ तेज़ हवामें फैलता दिखाई पड़ता।" उसने मितासे कहा।

"कब तक मुझे यहाँ रहना पड़ेगा?" मिताने पूछा।

"बस····थोड़े समयके लिए। कहीं 'कॉस्टल-लाईन'में जॉब खोज रहा हूँ, मिल गया तो····फिर कहीं बड़े शहरमें घर बसा सकेंगे और पन्द्रह दिनमें कम-से-कम एक बार ज़रूर मिल सकेंगे।"

"देखो," मिताने कहा, "ज़्यादा दिन तो मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी····"

"आई अण्डरस्टेण्ड, डार्लिंग!" थोड़ी-थोड़ी बातें, बीच-बीचमें थोड़ा-थोड़ा प्रेम।

उसने मिताको अपना गाँव दिखाया, बारिशमें धुली झीलके किनारे घुमाया। जाड़े और गरमीके सात-आठ माह बैलगाड़ियाँ जा सकनेवाली कच्ची सड़कके किनारे खड़े-खड़े, ढलानमें लहराते तम्बाकूके खेत दिखाकर उसने कहा, "स्कूलके दिनोंमें हम लोग यहाँ क्रिकेट खेलने आया करते थे। सामने पुरानी जेल थी, उसके पीछेकी तरफ़ मुसलमानोंका क़ब्रस्तान था····"

"तुम्हें बम्बई-कोचीन सर्विसमें कहीं नौकरी मिल जाये तो मैं कोचीनमें सेट्ल होना पसन्द करूँगी," मिताने कहा।

वह मुसकराया, "अच्छा है, बम्बई-न्युयॉर्क सर्विस नहीं है, वरना तुम न्युयॉर्क ही पसन्द करतीं!····"

तीन दिन और तीन रातके बाद सूटकेसोंमें हनीमून पैक करके वे लौटे। तीन दिन तक गाँव देखा। तालाबके किनारे-किनारे दोपहरके अवशेष-जैसी साबुनकी सूखी झाग जम गयी थी, बारहके मेलमें अहमदाबादसे गुजराती अखबार आते, जनरल हॉस्पिटलके बाहरके पीपल-तले एक अन्धा और उसकी बीवी एकतारा बजाते थे और गाते थे, सामनेकी दुकानमें उँगलीपर मैली पट्टी बाँधे हुए बन्दूक़ रिपेयर करनेवाला देशी बन्दूक़ोंके बॉल्ट तेलमें साफ़ करता था, छोटी-छोटी दुमोंवाले ऊँट गरदन टानकर झुकी शाखोंके पत्ते तोड़ते गुज़र जाते थे।

आखिर उसकी छुट्टियाँ खत्म हुईं। खूब बारिश हुई। बाहरकी हरी हवामें सीलन आ गयी। खड्ड पानीसे छलक गये; इमली-के तने आधे डूब गये, पानीमें बहते-बहते आये हुए मटियाले पौधे तनोंके आसपास फँसते गये, और तनोंकी ऊपरी तहोंपर

घबराये मकोड़े जल्दी-जल्दी दौड़ने लगे

"ट्रान्सफ़रके लिए तुम्हें बम्बई जाकर ही कोशिश करनी पड़ेगी । अभीसे ट्राई करनेसे छह माहके बाद कहीं जाकर नम्बर लगेगा ।"

हँस दिया वह ।

बेरुतमें उसे मिताका खत मिला । प्रेगनेण्ट थी । दोस्तोंको बारमें ले जाकर उसने खुशी मनायी ।

लड़का हुआ । मिताने लिखा था, "मेरा दूध बच्चा हज़म नहीं कर पाता । डॉक्टरने इंजेक्शन देकर दूध सुखा दिया है....अभी आँखें बन्द ही रखता है । लगता है, बदमाश होगा....उसकी अपने डैडीको किसेज़ !"

खत मिला तब वह नेदरलैण्डकी राजधानी 'दि हेग' में था, इण्टरनेशनल कोर्ट देखकर अभी-अभी लौटा था, वहाँ एक प्रतिमा गान्धीजीकी भी थी ।....

नीचेसे गोविन्दका लड़का नींदमें रो पड़ा और उसका ध्यान बँट गया । सामान्यत: बहरे गूँगे भी होते हैं, पर गोविन्दका लड़का रो सकता था !

सामनेके छप्परके नीचे कबूतर फड़फड़ाकर खामोश हो गये । वह सोचने लगा, अच्छा है, गोविन्दका लड़का रो सकता है; बड़ा होनेपर यह रोना भी काम आ जायेगा....

■

बाप-दादोंकी तसवीरोंके बीचसे सरसराकर खड़े होते भूतकालको वह देखता रहा ।

माँ मर गयीं तब बापकी चिट्ठी आयी थी, रंगूनसे । किसीने कहा था, बाप रंगूनसे नहीं आयेंगे । लोग कह रहे थे, उन्होंने दूसरी शादी कर ली है वहाँ ।

माँका चेहरा याद था, बापका भी । माँकी मौतके बाद और बापके भूल जानेके बाद वह दादा-दादीके पास रहा, मिताको शादी करके ले आया ।

दादा ओवरकोट पहनते थे, पुलिसके अफ़सर थे । एक दफ़ा दादा बड़ौदा गये थे, तब उसके द्वितीय स्थान लेकर पास होनेकी खुशीमें उसके लिए मज़बूत पठानी जूते ले आये थे । पठानी जूते उससे दो साईज़ बड़े थे और साल-डेढ़ साल तक जूते पहनकर पैर घिसटते हुए वह स्कूल जाता रहा । जब वह जूते पैरोंमें ठीकसे फ़िट होने लगे, तो एक साँझ छोटे मन्दिरके बाहर किसीने उन्हें चुरा लिये ।

और रोज़ शामको, सूर्यास्तसे पहले और भोजनके बाद, दादीके नक़ली दाँतोंकी पंक्तियाँ वह काँचके कटोरोंमें चमकती हुई, चुपचाप देखा करता । दादीकी एक आँखमें मोतियेका दाना पड़ गया था, दूसरीसे बहुत कम दिखाई पड़ता था...

दादा घी खरीदने गये थे और बाज़ारमें गिर पड़े थे । और बाज़ारवाले घर आकर उन्हें रख गये थे । आधी रातको दादाका देहान्त हुआ था । रात बीते उसने दादाकी अर्थीका सिरवाला सिरा उठाया था, प्रातःकालीन प्रथम अर्धप्रकाशमें उसने दादाके मुँहपर आग रखी थी ।

दो दिन बाद मुन्नेको सुलाकर मिताने

पूछा था, "अब तो तुम्हारे दादा भी गये, मुझे इस जेलमें रहनेकी कोई जरूरत है क्या ?"

"हाँ, यहाँ रहनेकी अब कोई जरूरत नहीं। अब तुम्हारी इच्छाके अनुसार हम किसी जगह सेट्ल होनेका इन्तज़ाम करेंगे।"

दीवारोंसे लगी तसवीरोंके पीछेसे एक छोटी पाँच-छह सालकी आवाज़ आयी, "डैडी, मुझे भूल गये ?"

"नहीं, बेटे !"

याद-सी आ गयी, बॉम्बे मेलके फ़र्स्ट क्लास कम्पार्टमेण्टकी ऊपरी बर्थपर पराग सो रहा था। मुँहमें थर्मामीटर दबाये। उसने थर्मामीटर निकाला। मिताने प्रश्न किया, "बुखार कितना है ?"

"एक सौ दो पोईण्ट दो—" परागके माथेपर हाथ फेरते उसने उसके ललाटका चुम्बन लिया। ललाट गरम लग रहा था।

उसने विचार किया, फ़र्स्ट एंजीनियर कई दफ़ा कहता था, कोस्टल जॉबमें मज़ा नहीं आयेगा तुम्हें। पैसे कम मिलेंगे और यू वील मिस रीयल फ़न ! आई से, स्टिक टु दिस लाईन—"

"हे···य ! टेक इट इज़ी, मैन !" वह हँस डालता।

■

"येस मैन, वन हेज़ टु टेक ईट इज़ी।"

उस साल स्टीमरसे घर जाना कम हो गया। गरमी सख्त थी और उसकी—रेडियो-ऑफ़िसरकी—केबिन स्टीमरके सबसे ऊपरी हिस्सेमें थी और दोपहरकी बरसती आगसे बचनेको वह एयर-कण्डीशण्ड सिनेमा हॉलोंमें जा बैठता। उब जाता तो सोता या कभी-कभी घर जाता। पराग पूछ लेता, "डैडी, पिक्चर कैसी थी ?"

"बहुत अच्छी, बहुत अच्छी। एक बाघका बच्चा पेड़पर चढ़ जाता था और···एक बन्दर साइकिल चलाता था···"

"फिर ?"

रातको पराग सो जाता, मिता जाकर उसके सामने कुरसीपर बैठ जाती, मिताकी दो खूबसूरत, नग्न आँखें पूछतीं, "फिर ? फिर क्या तय किया ?"

"तुम्हें अच्छा लगे, वही करेंगे। मैं तैयार हूँ। सिर्फ़ स्कैण्डल नहीं करना है।"

"अच्छा सुनो, मेरे वक़ीलने रास्ता निकाला है। मेण्टल-क्रुएल्टी नहीं चलेगी। एडल्टरीका चार्ज भी ठीक नहीं है। डेज़र्शनका इलज़ाम अच्छा है, दोनोंका छुटकारा हो जायेगा।"

"हाँ, तो···तुम मुझपर डेज़र्शनका इलज़ाम लगा दो," उसने कहा, "बादमें मुझे क्या करना है यह अपने वक़ीलसे पूछ लेना।"

"मेरा वक़ील तुम्हें कण्टैक्ट करेगा।"

मिता चली गयी। बर्मिंगहममें उसके बहन-बहनोई तीन सालसे रहते हैं। बहनने बुला लिया था। वह वहाँ रेलवेमें नौकरी करती है। पराग पब्लिक स्कूलमें पढ़ता है, एक्समसपर उसके अपने हस्ताक्षरोंमें लिखा कार्ड आया था। लगा, पराग लिख भी रहा है ठीक उसीकी तरह····

और अपनी प्रार्थनाके उत्तरमें उसे कोस्टल-लाईनमें नौकरी मिल गयी। फ़र्स्ट एंजीनियर बहुत खुशमिज़ाज था, दिन-भर बातें करता रहता, "स्पार्क, यु आर ए लकी गाइ। अकेले हो, सुखी हो।"

"हां।"

"है कोई रिश्तेदार ?"

कुछ सोचकर वह मुसकुराया, "हां, घर है एक, देशमें।"

नीचेसे गोविन्दकी आवाज़ आयी, "भाई, जग गये ? चाय पीने नीचे आ रहे हैं कि ऊपर ले आऊं ?"

■

दूसरे गांवसे लौटे सेठने आठ हज़ार कहे··· नौ, दस···फिर कहा, "ऐसे मकानके आपको दस नहीं मिलेंगे, ऑफ़िसर साहब !"

"गोविन्द···नहीं [illegible], घर नहीं बेचना।"

गोविन्द आश्चर्यसे, बहरे-गूंगेकी तरह, दोनोंको ताकता रहा।

सेठने पन्द्रह हज़ार तक हिम्मत की। वह अड़ा रहा।

फ़र्स्ट एंजीनियर कह रहा था, "मैं पूछता हूं, है कोई रिश्तेदार तुम्हारे देशमें ?"

मुसकुराना, खिड़कीसे बाहरके दौड़ते अन्धकारमें झांकना। मेल अहमदाबादकी दिशामें दौड़ रहा था, और इंजनसे उड़-उड़ कर चिनगारियाँ डिब्बोंके सामनेसे गुज़रती थीं। आकाशके मध्यमें शुक्ल पक्षका उजाला खुल रहा था और दौड़ती ट्रेनकी आवाज़ोंकी लय उसकी समानतामें खो चुकी थी। धीरेसे एक वयस्क स्त्रीने पूछा, "दिल्लीसे आ रहे हैं ?····"

■ ■

अलका स्टोर्स,
१४०।१ विधान सरणी
कलकत्ता-४

परिवर्तित निवेदन :

१. ज्ञानोदयके लिए नयी रचनाओंका स्वागत है लेकिन अस्वीकृति-की सूचना देना सम्भव नहीं है। केवल वे अस्वीकृत रचनाएँ हम लौटा देते हैं जिनके साथ पता-लिखा, टिकट-लगा लिफ़ाफ़ा हो।

२. अनामन्त्रित रचनाओंके निर्णयमें एक मास लग जाता है फिर भी जो रचना ज्ञानोदयके लिए भेजें, कृपया वह हमारे उत्तर तक कहीं और न भेजें।

—सम्पादक

मनहूस

•

–सुरेशकुमार वर्मा

वह बी० टी० से निकला था और तेज़ चलनेके प्रयासमें लगभग दौड़ रहा था। एक कुत्ता उसके पीछे लग गया, जिसे देखकर वह धीरे चलने लगा और फिर कुत्तेने लैम्प-पोस्टकी सतही ऊँचाईपर अपनी पिछली टाँग उठा दी।

वह अचानक प्रकाशहीन लैम्प-पोस्टके नीचे रुक गया और उस स्त्रीकी ओर घूर-घूरकर देखने लगा, जो सड़कपर बिछी हुई प्लास्टिकके वाच-प्रोटक्टर्सकी दुकानपर झुकी हुई थी। वह जैसे स्त्रीके चेहरेपर किसी परिचिताके मुखोटेको फ़िट करना चाहता था, अथवा एम्बेसी सिगरेटके पैकेटके रंगकी लाल साड़ी उसे बहुत पसन्द थी, जो उस सीमित प्रकाशहीनताके दायरेमें गुलाबी-सी दिख रही थी।

वह स्त्रीके निकट चला आया और प्लास्टिकके वाच-प्रोटेक्टर्सपर झुक गया। उसका पैण्ट लाल साड़ीसे सट-सा गया था और वह विशेष अनुभूतिसे आत्मविस्मृत हो गया था। पहले वह स्वतन्त्र रूपसे चीजको लेता-छोड़ता रहा था, बादमें वह केवल उन

प्रोटेक्टसोंको उठाने लगा, जिन्हें स्त्री नापसन्द-कर छोड़ती जाती थी—जैसे वह उसकी नापसन्दगीको पढ़ना चाहता हो। उसने जान-बूझकर स्त्रीके हाथसे अपने हाथ टकरा दिये। उसे एक दहशत-सी हुई, जैसे किसी दरवाज़ेपर खड़े भिखारीको होती है, जो गहरे लाल रंगके मखमलके परदेको छूकर उसकी कोमलताको परखना चाहता हो।

वह स्त्रीकी-सी तन्मयताके साथ प्लास्टिक-के टुकड़े उठा रहा था और कभी मुँह बिचका-कर, कभी ओठ दबाकर और 'उँह' कहकर उन टुकड़ोंको फेंक देता था। इसी क्रममें उसने कई बार स्त्रीके हाथसे अपने हाथ कुछ जोरसे भी टकरा दिये थे और प्रत्येक बार उसने अपनेको जैसे किसी बड़े कामके लिए तैयार कर लिया था। वह झुंझला उठा—यह देखकर कि स्त्रीपर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई और वह पूरी आत्मस्थ रही आयी थी। जब उसने एक टुकड़ा उसकी ओर बढ़ाया तब भी स्त्रीने इधर ध्यान न दिया और यह देखकर दुकानदारने उससे उसकी घड़ी दिखानेके लिए कहा। तो वह एकदम चौंककर सीधा खड़ा हो गया। उसके हाथ नंगे थे और उसने उन्हें अपने पैण्टकी जेबोंमें डाल दिये, जैसे जेबोंमें बहुत-सी घड़ियाँ भरी हैं और वह उन सबको उसके मुँहपर मार देना चाहता है। पर वह उन जेबोंमें हाथ डाले रहा और उसने तीखी नज़रोंसे दुकानदारकी ओर देखा। उसके क्रोधका एक कारण यह भी था कि दुकानदारने उस महिलासे क्यों नहीं पूछा कि ये प्लास्टिकके वाच-प्रोटेक्टर्स लेडीज़ वाचेसके लिए नहीं हैं और क्या उसके पास जेण्ट्स वाच है।

वह लैम्प-पोस्टसे दूर निकल गया था, किन्तु एक बार फिर उस ओर मुड़कर देखा, जिधर स्त्री सड़कपर बिछी प्लास्टिकके खिलौनोंकी दुकानपर झुकी हुई थी। अब उसका साहस नहीं हुआ कि वह खिलौनोंको पसन्द करे, क्योंकि उसे लगा कि दुकानदार यह न पूछ बैठे कि उसके कितने बच्चे हैं, बड़ा बच्चा कितना बड़ा है और छोटा बच्चा तो गोदमें होगा!

उसने जेबसे एम्बेसीका पैकेट निकाला। एकमात्र सिगरेटको लेकर पैकेटसे उस कुतिया-पर निशाना मारा, जो अपने मालिककी दूरी-को कम करनेके लिए तेज़ीसे भाग रही थी। उसने एक राहगीरको रोका और उसकी सिगरेटसे अपनी सिगरेट जलायी और अनन्त चीर-सी बढ़ती हुई क्यूकी ओर खीझसे देखने लगा। उसे लगा कि वह रात-भर खड़ा रहेगा तो भी बसमें न चढ़ सकेगा और महानगरकी सारी बसें इस क्यूको खत्म नहीं कर सकेंगी।

स्टॉपकी रेलिंगसे कुछ दूरपर एक टाँगसे खड़ा होकर वह सिगरेट पीने लगा। वह क्यू-की विविधतापर हैरान था। कोई अखबार पढ़ रहा था, कोई जासूसी किताब लिये था, कोई क्रॉसवर्ड-पजलको लिये चिन्तामें डूब-उतरा रहा था, कोई बच्चेको चॉकलेट खिला-कर ऐसे खुश हो रहा था, जैसे खुद चाकलेट खायी हो! एक पुरुष अपनी स्त्रीको बसपर चढ़नेके फ़ार्मूले समझा रहा था, जैसे वह उसे

इण्डियन एयर-लाइनरपर कैरी ले जा रहा हो और सारी असभ्यताओंसे दूर रहनेका उपदेश दे रहा हो। उस मोटी स्त्रीको देखकर तो वह खीझ-सा गया जो दूर भागते बच्चोंको समेट रही थी, और उन्हें क्यूमें खानेके लिए केले दे रही थी। छिलकोंको वह उसके पैरोंके पास फेंक रही थी, जैसे वह स्केवेंजर हो।

जब सिगरेटके छोटेपनसे उसके होंठ जलने लगे, तो उसने उसे जूतेसे रौंद दिया और उस मोटी स्त्रीकी ओर घूरकर देखने लगा, जिसने एक छोटा-सा पंखा निकाल लिया था और जिसकी हवा उसके एक अंगके लिए भी पर्याप्त नहीं थी।

एकाएक उसे एहसास हुआ कि क्यूके सारे व्यक्ति उसे देख रहे हैं, या जैसे वह सिनेमाके इण्टरमिशनपर परदेकी ओर पीठ करके खड़ा हुआ अकेला व्यक्ति हो, और उबास-भरे व्यक्ति कुछ मनोरंजनकी चीज न देख पानेके कारण उसे ही देख रहे हों। एहसासकी गरमीसे तिलमिलाकर वह क्यूमें सबसे पीछे खड़ा हो गया। उसके सामने एक बेहद मामूली-सी लड़की खड़ी थी। वह लड़कीके ब्लाउजके पीछेसे झांकती ब्रेसरीके बन्दको टकटकी लगाकर देखने लगा था।

भरी हुई बस भर्राकर चली गयी थी। जब वह लड़की मुँह बिचकाकर आड़ी हो गयी तो उसने बातचीतका सिलसिला शुरू करना चाहा।

“क्या गेट-वे ऑफ़ इण्डियाके लिए यहींसे बस मिलेगी?”

लड़कीने उसे देखा और फिर उस बन्द

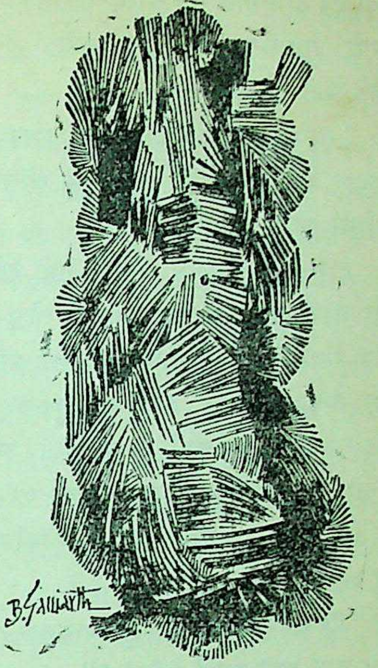

तब तो उसके घुटने एकदम टूट गये, जब माँके कहनेपर वह हेमाको उसके घर पहुँचानेके लिए तैयार हो गया, पर हेमाने ठेठ भाषामें उसके साथ जाना अस्वीकार कर दिया। आखिर क्यों लोग उसे अस्वीकार कर देते हैं? क्यों हर चीज सिकुड़ जाती है, जब वह छूकर देखना चाहता है। मैं जिस चीजके पास जाता हूँ, वह पीछे हटने लगती है, और उसे पकड़नेके लिए हाथ बढ़ाता हूँ तो यह तेजीसे भागती है, जैसे पीठ पीछे सूर्य हो तो अधिक-से-अधिक तेज दौड़नेवाली छायाको भी नहीं पकड़ सकता।

मनहूस : सुरेशकुमार वर्मा

होती हुई ट्राम-सर्विसकी आखिरी ट्रामकी ओर उसपर झूलते हुए सैकड़ों मनुष्योंको हैरतसे देखने लगी।

"ट्राम-सर्विस बन्द होनेसे ग़रीबोंका बड़ा नुक़सान होगा।" उसने सहानुभूति खींचनेकी कोशिश की।

ट्राम अभी आँखसे ओझल नहीं हुई थी और लड़की उसके अन्तिम दर्शनका लोभ नहीं छोड़ पायी थी और इसीलिए वह खड़े मनुष्यों और रुकी मोटरोंके बीच लुक-झुककर उसे देख रही थी। सैकड़ों व्यक्तियोंको उसपर झूलते देखकर शायद वह आश्चर्य कर रही थी कि यदि यह सर्विस इतनी लोकप्रिय है तो बन्द क्यों कर दी जा रही है?

"बससे ट्राम अधिक सुविधाजनक है••• क्या आप कभी ट्राममें बैठी हैं?"

जब उत्तर नहीं मिला, तो वह संजीदगीसे भर गया। वह मामूली-सी लड़की उकड़ूँ बैठकर उस मोटी स्त्रीकी बच्चीको खिलाने लगी थी, जो पीछे आकर बार-बार माँके वापस आनेवाले इशारेका हँस-हँसकर निषेध कर रही थी। वह ग्लानिसे भर गया कि वह उस छोटी-सी बच्चीकी तुलनामें अधिक छोटा है और उसके सामने उपेक्षित कर दिया गया है। अब उसके पीछे दो अधेड़ व्यक्ति आकर खड़े हो गये थे, जो क्यूकी असाधारण लम्बाई-पर बहस कर रहे थे।

उनमें-से एकने उससे पूछा, "क्योंजी, आप कहाँ जा रहे हैं?"

वह जान-बूझकर चुप रहा क्योंकि उस लड़कीकी चुप्पीका बदला लेना चाहता था। जब कन्धेपर हाथ रखकर प्रश्न दुहराया गया, तो उसने कहा "गेट-वे ऑफ़ इण्डिया।"

"अरे! तो यहाँसे थोड़े ही बस मिलेगी। उसका बस-स्टॉप तो वह है।" और जहाँ इशारा था वहाँ उसने इससे भी लम्बी क्यू देखी।

"अधिक दूर नहीं है। आप चाहें तो पैदल भी जा सकते हैं। इस तरफ़।"

तब वह क्यूसे बाहर आ गया। जब वे दोनों व्यक्ति मुसकरा दिये तो उसे आभास हुआ कि यह उनकी क्यूको छोटा करनेकी साज़िश तो नहीं थी और उस समय तो वह अधिक बेचैन हो गया, जब उसने देखा कि वह मामूली लड़की अब बच्चीको छोड़कर सीधी खड़ी हो गयी थी।

अब वह जी० पी० ओ० वाली सड़कको पार करने लगा। काफ़ी देर तक वह किनारे खड़ा रहा। बेहिसाब संख्यामें कारों, सिटी-बसों और ट्रकोंकी तेज़ रफ़्तारोंने उसे हैरान कर दिया। उसे लगा कि यह सड़क केवल इनके लिए ही बनी है और पैदल चलनेवालोंका उसपर कोई अधिकार नहीं है। और शायद अधिकारकी तृप्त भावनासे ही भरकर कई कारवालोंने उसे घूरकर देखा, जब पार करनेकी कोशिशमें वह उनकी कारोंके नीचे आते-आते बचा। जब वह सड़कके बीचमें काफ़ी देर खड़ा रहा, तब तो बिलकुल घबड़ा ही गया था। उसके चारों ओर सनसनाती कारों, दनदनाती हुई बसों, झूमती हुई ट्रकों और तैरती हुई जीपोंका चक्रव्यूह बन गया था और निकलनेकी युक्ति तो दूर,

उसका प्रवेश ही उसके लिए अनायास था। उनकी कभी न टूटनेवाली शृंखलाको देखकर उसे अनुभव हुआ, जैसे वह एक वृत्तमें खड़ा है और ये सरपट दौड़ती हुई चीज़ें उसके इर्द-गिर्द घूम रही हैं—जैसे यह वृत्त ही घूम रहा है, और वृत्तसे बँधा हुआ वह स्वयं भी।

अचानक पीछे भयानक शोर सुनाई पड़ा। उसने फिरकर देखा कि सैकड़ों आदमी वी० टी० से बाहर भागे चले आ रहे हैं, जैसे किसी बिलमें पानी डाल देनेसे बिलबिलाकर अनन्त चींटियाँ बाहर निकल आती हैं। उसे लगा कि स्टेशनके अन्दर कोई बड़ा गोलीकाण्ड हो गया है और लोग डरके मारे भागे जा रहे हैं। किन्तु यह शंका निर्मूल हो गयी, जब उसने देखा कि अब सब सधे क़दमोंसे विभिन्न दिशाओंकी ओर बढ़ रहे हैं और उनमें से अनेक उसकी ओर ही चले आ रहे हैं। वह हैरान हो गया कि उन सबने उस व्यस्त सड़कको ऐसी सहजतासे पार कर लिया है, जैसे वे मोटरवाले उनके गहरे दोस्त हैं और उन्हें बचाकर चल रहे हों।

जब वह आग्फ़ाकी बड़ी दुकानके सामने पहुँचा, तो एक बार फिर वैसा ही भीषण शोर सुनाई पड़ा। एक बार फिर रुककर वह वी० टी० से उमड़ते हुए हुजूमकी ओर विस्फीत नेत्रोंसे देखता रहा। वह उखड़ता हुआ जमघट—जैसे कई क्रेनोंने एक साथ रंग-बिरंगे पत्थर जमीनपर उगल दिये हों, और उन रंगीन पत्थरोंके समान वृद्ध-जवान, स्त्री-पुरुष बिखर रहे हों—तेलके समान फैल रहे हों।

आग्फ़ाकी दुकानने उसे रोक लिया। उसके आकर्षित शो-केसने उसे क्षणिक व्यामोहमें फँसा लिया और वह काँचकी दीवारोंपर चेहरा सटाकर अन्दर की सुसज्जित चीज़ोंको देखने लगा। उसके पास एक बहुत पुराना बॉक्स-कैमरा था। इतना पुराना कि एकबार परिचित लड़कोंने उस कैमरेसे फ़ोटो खिंचवाना अस्वीकार कर दिया था। इसीलिए आधुनिकतम कैमरोंको देखकर वह चकित हो गया। उसकी इच्छा हुई कि वह इन कैमरोंको छूकर देखे, उनके व्यू-फ़ाइण्डरसे झाँककर देखे और क्लिक्से बटन दबा दे। थोड़ा आगे बढ़कर सुन्दर फ़ोटोग्राफ़ोंको देखकर वह उनमें खो गया, जैसे वे सभी चेहरे उसके परिचित हैं और उनमें से प्रत्येकका इतिहास वह फर्राटेसे बता सकता है। फिर वह खाली फ़्रेमोंके सामने इस ढंगसे खड़ा हुआ कि उसका पूरा चेहरा उसकी काँचमें समा सके, और वह फ़्रेममें जड़ा चित्र-सा दिखाई दे। एक दोहरे फ़्रेमके खाली हिस्सेमें भी उसने अपनी तसवीर फ़िट करने की कोशिश की और अपनी छायाको फ़्रेमके दूसरी ओर जड़ी ख़ूबसूरत महिलाके साथ मैच करने की चेष्टा की। वह मुसकरा दिया और इस रूपमें काफ़ी देर खड़ा रहा। कई बार उसने अपने चेहरेके कोण बदले, कभी मुसकराया, कभी हँसा, कभी चेहरा बिगाड़ा और आँखें निकालकर मींच लीं।

जब उसने खोलीं तो वह सन्न रह गया। हेमा फैले नेत्रोंसे उसकी फ़ोटो देख रही थी। उसने झटसे छुपा लिया, और अपराधी बच्चेके समान काँपने लगा।

"क्या छिपा रखा है जनाबने ?"

वह खामोश था ।

"कुछ तो है । कहीं हमारा दिल तो नहीं ?"

"..........."

"अजी दिखाइए भी । आप तो कुछ ऐसे शरमाते हैं, जैसे नववधू हों और हमने आपका घूँघट उलट दिया हो ।" फिर उसने फ़्रेम खींच लिया ।

"क्या ब्यूटी है । क्या ग्रेस है । आपकी फ़ोटोसे तो हमारी फ़ोटोकी शोभा है ।" और जब हेमाने फ़्रेमसे उसकी फ़ोटो निकालकर उसके आठ टुकड़े हवामें उड़ा दिये, तो वह सहम गया । वह चली गयी और वातावरणमें एक सहमापन छोड़ गयी । हेमाकी तसवीर अभी भी फ़्रेममें जगमगा रही थी । उसके पासके सूने स्थानने एक अजीब भय-लज्जामिश्रित सूनापन उत्पन्न कर दिया था, जिसमें डूबकर उसका मस्तिष्क सुन्न हो गया । उसे लगा कि जिस रास्तेपर पूर्व विश्वाससे चल रहा था, वह अचानक समाप्त हो गया है और छूटा हुआ रास्ता आदमीकी शकलमें आकर हँस रहा है ।

तब तो उसके घुटने एकदम टूट गये, जब माँके कहनेपर वह हेमाको उसके घर पहुँचानेके लिए तैयार हो गया, पर हेमाने ठेठ भाषामें उसके साथ जाना अस्वीकार कर दिया । आखिर क्यों लोग उसे अस्वीकार कर देते हैं ? क्यों हर चीज़ सिकुड़ जाती है, जब वह छूकर देखना चाहता है । मैं जिस चीज़के पास जाता हूँ, वह पीछे हटने लगती है, और उसे पकड़नेके लिए हाथ बढ़ाता हूँ तो वह तेज़ीसे भागती है, जैसे पीठ पीछे सूर्य हो तो अधिक-से-अधिक तेज़ दौड़नेवाली छायाको भी नहीं पकड़ सकता ।

हज़ारों-लाखों स्त्रियाँ हैं । इनमें जाने कितनोंको मैंने बुरे-से-बुरे आदमियोंके साथ हँसते हुए देखा है, पर जब मैं इनके सामने आता हूँ, तो इनके चेहरोंसे हँसी क्यों ग़ायब हो जाती है, ये क्यों बदहवास-सी हो जाती हैं ? क्या मैं सारे पुरुषोंसे बहुत-बहुत बुरा हूँ या मेरी बुराई मेरे चेहरेपर लिखी है, जिसके अक्षर दूरसे चमकते हैं और जिन्हें पढ़कर कोई पास भी आना नहीं चाहता ।

वह फ़्रेम शो केससे अचानक खींच लिया गया, तो वह चौंककर हट गया । कहीं वह दुकानदार उसकी आँखोंको पढ़कर वह फ़्रेम उस तक न ले आये—इस भयसे वह दूर हो चला और इस क्रममें उसने देखा कि दुकानदार उस फ़्रेमको लेकर एक दम्पतिसे बातें कर रहा है । वह ऐसे हाव-भाव दिखला रहा है, जैसे संसारका सबसे बड़ा अजूबा हाथमें लिये हो, और जिसकी रचनाका श्रेय उसे ही है, मानो वह उस दम्पतिको उसी रूपमें फ़्रेममें जड़ देगा और फिर शो-केसमें बन्द कर देगा ।

फ़्लोरा फ़ाउण्टेनके पास विस्मयकी डोरने उसे रोका । उसने देखा कि बैंगनी और सफ़ेद रंगके असंख्य कबूतर फ़व्वारेके चारों ओर फैले हैं, जो उड़कर बैठते थे और बैठकर उड़ जाते थे । उन्हें देखनेके लिए रुके

बच्चोंके कारण उनके माता-पिता भी रुके हुए थे।

डीजलका गहरा, तीखा धुआँ उड़ाती हुई बस गुज़री, जिससे बहुत-से कबूतर उड़कर छतों, दुकानोंकी तख्तियों और छप्परोंपर जा बैठे। जब धुआँसा माहौल समाप्त हुआ तो उसने देखा कि दो कबूतरोंमें लड़ाई छिड़ गयी है और लोग बड़े उत्साहसे उन्हें देख रहे हैं। उसने दो लड़कियोंको ध्यानसे देखा, जिनके हाथोंमें किताबें थीं और जो प्लास्टिककी खाली बास्केट्स लिये हुए थीं, जिनमें-से एक लगातार उसकी ओर देख रही थी। वह चौंक पड़ा और उसने मुँह कबूतरोंकी ओर घुमा लिया, किन्तु दूसरे ही क्षण फिर उस लड़कीको अपनी ओर देखते पाया। एक बड़ी भीड़ उनके चारों ओर इकट्ठी हो गयी थी, जो लड़ाईको कम, उस जोड़ीको अधिक देख रही थी। उसने पैण्टको नीचे किया, जिससे उसके पहुँचे मोज़ोंको पूरी तरह ढँक लें और उसने सीनेपर हाथ इस ढंगसे रख लिया कि वह स्वाभाविक लगे और टूटी बटनोंके खाली काजको भी ढँक ले।

वह उस लड़कीके एकदम निकट आकर खड़ा हो गया, जो अब सिर्फ़ कबूतरोंकी तरफ़ देख रही थी। वह उससे लगकर खड़ा हो गया, जैसे वह उन सबको, जो लड़कियोंकी ओर देख रहे थे, बताना चाहता था कि वह उन लड़कियोंके साथ है, उनके एकदम निकटका कोई है और उन्हें अपने साथ लेकर इन फैली हुई सड़कोंपर घूम रहा है। इसीलिए जब लड़कियाँ हटकर म्यूज़ियमकी ओर रवाना हुईं, तो वह भी उधर चल पड़ा।

उसने शीघ्रतासे गेट पार किया, ताकि उन लड़कियोंसे आगे निकल जाये और वे अनुभव न कर सकें कि वह उनका पीछा कर रहा है। वह बिना पीछे देखे म्यूज़ियमकी सीढ़ीपर चढ़ गया और इस अन्दाज़से चढ़ा जैसे उसका उद्‌घाटन करने जा रहा हो, जैसे असंख्य आँखोंका मरक़ज़ हो। जब उसने पीछे देखा तो वे लड़कियाँ न दिखीं। फ़ेंसिंगके ऊपरसे, वे सड़कपर जाती दिखाई दीं। वह उस क्षणके लिए बुझ गया, जैसे ठण्डके दिनोंमें उठती रातके समय जमे हुए धुएँके समान पश्चात्ताप उसके मनके चारों ओर भरकर जम गया हो। उसे लगा कि उसने बहुत जल्दी की कि उनसे आगे निकल आया।

इस घने धुएँसे घिरा हुआ वह हॉलके अन्दर घुसा। उसने निश्चय किया कि वह अब स्त्रियोंके निकट नहीं जायेगा, क्योंकि वे धोखा और छल करती हैं, उसे घूरकर देखती हैं पर जब वह निकट जानेकी कोशिश करता है, तो दूर हो जाती हैं। इसीलिए अब उसने पत्थरके अवशेषों, मूर्त्तियों और अन्य कलाकृतियोंको ध्यानसे देखनेकी कोशिश की, किन्तु थोड़ी-सी आहट उसका ध्यान खींच लेती। उस स्त्रीने तो उसका ध्यान बार-बार खींचा जो स्वयं कलात्मक प्रदर्शनोंको कम, उनके दर्शकोंको ज्यादा देख रही थी। जो स्वयं बहुत कम सुन्दर थी, किन्तु बार-बार ऐसे स्थानोंपर खड़ी होती कि उसका पूराका पूरा बिम्ब भिन्न-भिन्न कोणोंसे आदमक़द

आईनोंमें उतर सके। फिर कभी वह मुँह फिराकर साड़ीके फ़ॉल देखती और कभी साड़ीके निचले सिरेको चप्पलकी हील या सोलसे दबा-दबाकर नीचे खींचती। जिस क्षण उस लड़कीने देखा कि एक और व्यक्ति उसके बिम्बके साथ अपना बिम्ब भी आईनेपर उतार देना चाहता है, वह दूसरे कमरेमें निकल गयी। वह लड़कीके पीछे-पीछे दूसरे कमरेमें चला आया और फिर उसीकी ओर देखने लगा। उसकी यह हरकत कमरेके चौकीदारसे नहीं बची। वह चौकीदारकी आंखोंको देखकर सकपका गया और दूसरे कमरेमें चला गया। जिस-जिस कमरेमें गया, उसकी गतिविधियाँ उसी ढंगकी रहीं, और कमरेका चौकीदार उसपर कड़ी निगाह रखता, जैसे उसे सन्देह था कि वह पुरानी कलाओंका शातिर चोर है और चोरीके इरादेसे ही म्यूज़ियममें आया है।

उसने देखा कि खण्डित मूर्तियाँ अपने अंग वापस पा गयी हैं और वे सब साबुत मूर्तियोंके साथ सजीव होकर आँखोंको नचा-नचाकर हँस रही हैं। उनमें-से एक मूर्ति बहुत खूबसूरत थी। वह प्रेमकी देवी वीनसकी मूर्ति थी। उसने देखा कि वीनस उसकी ओर तृषित नेत्रोंसे देख रही है। उसकी आंखोंमें वहशत है, उन्मादपूर्ण आमन्त्रण है, अपनेको खो देनेकी प्यास है। वह वीनसके निकट आ गया और अर्द्धनग्न स्त्रीका रूप दिखलानेवाली उस रुपहली मूर्तिको छूकर, उसके अंग-प्रत्यंगको सहलाकर देखने लगा, जैसे कि वह स्वयं मूर्तिकार हो और अपनी रचनाकी सफलताका मूल्यांकन कर रहा हो। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने देखा कि आसपासके शेर, चीते और हिरन सिर उठाकर आगे बढ़ रहे हैं। ग्लासका साँप फ़ार्मोलिनमें तैरने लगा है और अजब सूरतके हिपोपोटेमस और हिपोकेम्पस तो भयावनी चेष्टाओंके साथ मुँह बाये उसकी ओर सरकने लगे हैं। अब वह रुपहली मूर्ति तृष्णा खो बैठी है, आमन्त्रणका भाव समाप्त हो गया है। वह वहशत, वह उन्माद और अपनेको खो देनेकी प्यास सब कुछ उसके चेहरेसे ग़ायब हो गया है। उसने देखा कि वीनसका चेहरा विकृत हो गया है, जैसे बमपुलिसकी तीखी गन्ध उसे छू गयी हो, जैसे कई दिनके मरे व्यक्तिकी सड़ी-गली लाश उससे टिकाकर खड़ी कर दी गयी हो। वह बेचैनीसे भर गया। उसके हर लोमकूपमें मानो अन्यमनस्कता रिस गयी हो और माहौल पूरी तरह खाली हो गया हो। रिक्तताके तीखेपनसे भिदकर वह म्यूज़ियमसे बाहर आ गया।

टिकट-विण्डोके पास रेज़गारी गिरनेकी छन्-छनाक सुनकर उसने जेबमें हाथ डाल दिये कि कहीं उसके पैसे तो नहीं गिर गये। उसने जेबके नोटों और रेज़गारियोंको छूकर अनुभव किया कि पूरे चार रुपये साठ पैसे सुरक्षित हैं और उसे अब शीघ्र ही गेट वे ऑफ़ इण्डिया पहुँचना चाहिए।

बानी अबतक ज़रूर पहुँच गयी होगी। उसने छह बजे तक गेट-वे पहुँचनेके लिए कहा था।

बानीकी यादने उसे चंचल कर दिया। तब रास्ता चलनेवालोंका प्रवाह, सड़क पार करनेकी परेशानियाँ, विज्ञापनोंके चौंकानेवाले

अन्दाज़ और मनकी भटकनें—सब उसके रास्तेसे हट गये, सब किसी गहरे रंगके परदेके पीछे छिप गये, जैसे छोटे-से बादलने फैलकर पूरे आकाशको ढँक लिया हो।

जबसे उसने बानीको देखा था, तबसे ही उसे पसन्द करने लगा था। वैसे वह जिस किसीको देखता उसे पसन्द कर लेता, क्योंकि उसकी पसन्द साधारण थी, पर बानीने उसे विशेष रूपसे हिलाया था। अब उसका ध्यान आते ही वह वैसे चल रहा था, जैसे बानी उसके साथ है, और वह हाथमें हाथ डाले सड़कपर लहराती हुई रोशनीको पैरोंसे उछालते हुए बढ़ रहा हो।

उसे जैसे याद आया कि उसने बानीको बहुत क़रीबसे देखा है, इतने क़रीबसे कि जितना कोई एकान्तमें अपने प्रियकी फ़ोटोको देखता है कि चेहरेके सारे घुमाव याद हो जाते हैं, और सारी भंगिमा जागती प्रतीत होती है। और सचमें बानीके चेहरेका हर घुमाव, हर भंगिमा कुछ ऐसी है कि सबकी नहीं होती। उसका हर हाव-भाव जैसे खींचनेके लिए फ़ोटोग्राफ़रका डायरेक्शन लिये हो। आज उसके साथ दो-एक घण्टे तक···ओफ़् कितना मज़ा आयेगा····हम गेट-वेसे मैरीन ड्राइवकी समुद्रमें झाँकती सूरतोंको देखेंगे। चौपाटीकी रेतोंमें ढेर सारी भेल लेकर बैठेंगे। वह कम खायेगी। मैं उससे और ज़्यादा खानेको कहूँगा। वह नहीं खायेगी, पर मैं ज़बर्दस्ती करूँगा। किन्तु पास तो केवल चार रुपये साठ पैसे हैं!···हूँह···! मैं नहीं खाऊँगा। खानेका बहाना करूँगा। तब उस अकेलेके लिए····नहीं, शायद निकी भी आये···कितनी ख़ूबसूरत बच्ची है। काश मेरे भी····। किन्तु बच्ची कितना खायेगी।···· उन दोनोंको लेकर शिवाजी-पार्क, और कमला नेहरू-पार्कके ऊपर चढ़ाऊँगा और नेकलेस ऑफ़ बाम्बेका दृश्य···इच्छा होती है कि वह नेकलेस चुरा लाऊँ और निकीको फिसलन-पट्टी पर भेजकर उसे पिन्हा दूँ····ग़ज़बकी सुन्दर लगेगी···कहीं मिस्टर सलूजा देख लें तो··· अच्छा मौक़ा मिला है। वे नहीं आये! तभी तो मज़ा है उसे घुमानेका। नहीं तो मुझे कौन····भला सलूजा-जैसे खूबसूरत आदमीको छोड़कर कौन बम्बई घुमना पसन्द करती····!

शायद बानी ही है। हाँ बानी ही। निकी उसके पैरोंपर झूल रही है।

वह और तेज़ क़दमोंसे आगे बढ़ा। दूरी खत्म की और 'हेलो' कहकर निकीको ऊपर उछाल दिया।

"हम कितनी देरसे आपका इन्तज़ार कर रहे थे!" बानीकी शिकायत उसे प्रार्थनाकी घण्टियों-सी झुनकती सुनाई दी।

'क्या बताऊँ···क्या बताऊँ! आते-आते ही देर हो गयी। लेकिन अभी कोई खास देर तो नहीं हुई। फिर मैरीन ड्राइवकी शाम ही तो मशहूर है! लोग कहते हैं कि अवधकी शाम मशहूर है, पर शायद उन लोगोंने मैरीन ड्राइवकी शाम नहीं देखी।"

"हाँ, जगह तो बड़ी ख़ूबसूरत है।"

"चौपाटी इससे भी ख़ूबसूरत है। चलकर देखिएगा। हाँ, देखिए, आपको भेल ज़रूर खानी पड़ेगी। बम्बई आनेवाला हर शख्स

आग, मोटर, जहाज, दुर्घटना, निष्ठा-
गारण्टी, डकैती तथा अन्य
विविध तरहके

बीमा

के लिए............

युनिवर्सल फायर
एण्ड
जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

से
सम्पर्क करें

फोन :
२५२२२७

चेयरमैन
तथा
मैनेजिंग डायरेक्टर

पी. यू. पटेल
बी. ए., बी. काम (लन्दन)

युनिवर्सल इन्श्योरेन्स बिल्डिंग
सर फिरोजशाह मेहतारोड,
बम्बई–१

भेल जरूर खाता है। नहीं तो उसने बम्बई क्या देखी।" वह जैसे गाइड था और उसने बम्बईकी नींव पड़ते देखी थी, "जब हैंगिंग गार्डेन देखेंगी, तो दंग रह जायेंगी। आपकी इच्छा होगी कि वहीं रात गुज़ार दें। नीचे क्या रोशनी दिखाई देती है कि बस··· गेलाक्सी ऑफ़ इल्यूमिनेशन···!"

अचानक वह सिहरकर रुक गया। सलूजा साहब दस पैसेमें बच्चोंको फ़िल्म दिखानेवाले आदमीको लेकर आ रहे थे।

"लीजिए, वो आ गये। कल रात ही बम्बई आये हैं, न जाने कैसे प्रोग्राम बदल दिया," बानी अब मुखर हो गयी थी, "आपने पहचाना जी इन्हें?"

"हाँ-हाँ, भई क्यों नहीं!"

दोनोंने हाथ मिलाये। फिर सलूजा साहब और निकी फ़िल्म देखने लगे। थोड़ी देर बाद चलनेकी मुद्रामें हुए।

"माफ़ कीजिए, आपको बहुत तक़लीफ़ दी। अब ये आ ही गये हैं। ये बम्बईमें पढ़े ही हैं। अब आगे आपको तक़लीफ़ न दूँगी।" फिर जैसे वह अपने व्यवहारके प्रति सावधान हुई, "वैसे, आप भी चलिए न हमारे साथ। हैं···!"

उसने उस फ़ॉर्मेलिटीका अनुभव किया जो निरर्थक आमन्त्रणका बोझ लिये थी और 'नहीं-नहीं' कहकर हाथ जोड़ दिये।

वह देखता रहा कि निकी समुद्रकी ओर देखकर पिताकी गोदमें हुलस रही थी और बानी लाल-नीली बत्तियोंमें दमकते विज्ञापनोंको पढ़नेकी कोशिश करती जा रही थी।

वह मुड़कर समुद्रमें उतरनेवाली सीढ़ियोंसे नीचे तक उतर आया और झुककर पानीकी सतहपर अपना चेहरा देखने लगा। उसे लगा कि मधुमक्खियोंका छत्ता लहरा रहा है और मधुमक्खियाँ बार-बार बैठ-बैठकर उसे काट रही हैं। उसे लगा कि समुद्र भी लहरोंके जोरसे उस छत्तेको बाहर फेंक देना चाहता है, जैसे उसका प्रतिबिम्ब नमकका भारी ढेला है, जिसे खारा पानी बरदाश्त नहीं कर पा रहा है। उसने चेहरेपर अपनी सख्त उँगलियाँ फेरीं, मानो उनसे खारेपनका स्वाद लेना चाहता हो।

वह ऊपर आ गया। एक बहुत ही बदसूरत भिखारिन भीख माँगने आयी। उसने उसके चेहरेपर आँखें गड़ा दीं और फिर जेबसे चार रुपये साठ पैसे निकालकर उसकी झोलीमें डाल दिये।

■ ■

गवर्नमेण्ट डिग्री कालेज,
बीना (म० प्र०)

कॉमिक्स

•

–सुरेन्द्र अरोड़ा

लड़कीने कहा, "मैं तो कभी भी शादी नहीं करूँगी। सारी उमर कुंआरी रहूँगी। सारी उमर।"

"और हम कहाँ जायेंगे?" लड़केने पूछा।

"मैंने अपने पापासे भी कह दिया है। ही हैज एग्रीड, यू नो।"

"लेकिन तुमने मेरी बातका जवाब नहीं दिया। हम कहाँ जायेंगे?" खानेकी मेजपर पड़े हुए रबर-मैटसे खेलते हुए लड़केने पूछा।

मेजके दूसरी ओर लड़केके ठीक सामने बैठी लड़की खिलखिला पड़ी। वह हँसती गयी। दुहरी होती गयी। जापानी गुड़ियाकी तरह।

लड़केको लड़कीका हँसना, खासकर दुहरा होना, बहुत प्यारा लगा। उसे लगा जैसे छोटी-छोटी घण्टियाँ एक साथ बज उठी हों। वह मन ही-मन बहुत खुश हुआ। और उसने चाहा कि वह कोई ऐसी बात कहे जिससे लड़की और कुछ देर तक हँसती रहे और वह घण्टियोंकी-सी आवाज सुनता रहे। उसने बहुत सोचा, अपने दिमाग़पर काफ़ी ज़ोर दिया। पर उसे ऐसा कुछ न सूझा। बस वह

टकटकी लगाये उसकी ओर देखता रहा, देखता ही रहा ।

लड़की तबतक सीधी हो चुकी थी, "ऐसे क्या देख रहे हो ?" लड़कीने अपने दोनों हाथोंमें कांचका गिलास घुमाते हुए कहा ।

"कु····कु····कुछ नहीं । पानी और लाऊँ ।" लड़केने पूछा और इससे पहले कि वह हां या ना कहती, लड़का पानी लेने चला गया ।

पानीका गिलास उसने कुछ इस तरह पकड़ाया कि उसका हाथ लड़कीके हाथसे छू गया । उसने सिर बड़े ज़ोरसे झटका । उसे याद आया, घरमें तो कोई भी नहीं है । पप्पी स्कूलसे शामको लौटेगा । मामा पिक्चर देखने गयी हैं । पपा ऑफ़िस हैं । और इतना बड़ा घर ?

तोषो और उसके बीच कितनी दूरी होगी ? डेढ़-दो फ़ीट ? नहीं-नहीं, शायद इससे भी कम । क्यों न वह····उसे अपने सामने बैठी उस लड़कीकी आकृति भी धुँधली-धुँधली-सी दिखने लगी । ठीक ऐसे, जैसे कड़ी धूपसे एकदम कमरेमें आते ही धुँधला-धुँधला-सा दिखने लगता है । उसकी आँखोंमें लाल डोरे खिंचते गये । जिस्म तप उठा । और उसके हाथ बढ़ने लगे, धीरे-धीरे, फिर सहसा रुक गये उसे खयाल आया, खिड़कियां-दरवाज़े सब खुले हैं !

लड़की मेज़पर बैठी पानीके गिलाससे खेल रही थी । एक घूँट पीती, गिलास हाथमें घुमाती, फिर गिलासकी ओर देखने लगती ।

खिड़कीमें-से हो-होकर आती हुई रोशनी खानेकी मेज़के बीचो-बीच एक गोला-सा बना रही थी ।

'खिड़कियां बन्द कर दूँ । बहुत धूप आ रही है । मुझे धूप ज़रा अच्छी नहीं लगती ।" लड़केने कहा ।

"रहने दो, क्या ज़रूरत है । मुझे तो बुरी नहीं लगती यह धूप ।" लड़कीने हाथोंमें गिलास घुमाते घुमाते ही कहा ।

"नहीं-नहीं, बहुत चुभ रही है आँखोंमें, कर दूँ न ?" उसकी आंखोंमें याचना थी ।

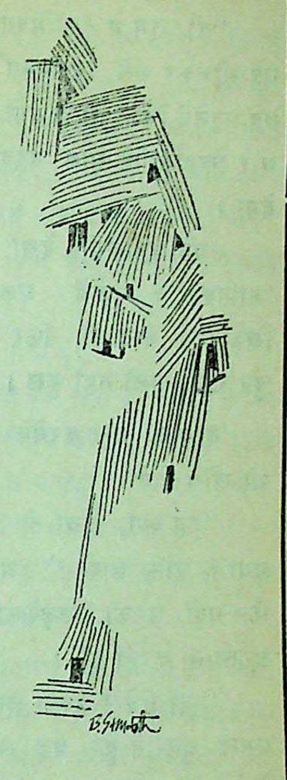

लड़का डूबता-उतराता रहा—अब क्या होगा ? अब क्या ? और देखता रहा—वह बरामदेकी चार सीढ़ियाँ उतर रही है, वह लॉन पार कर रही है, अब वह सड़कपर पहुँच गयी है । दरवाज़ेके बीच खड़े-खड़े लड़केको एक सौ गज़के फ़ासलेपर जाती हुई वह लड़की बहुत छोटी-सी लगी । उसे लगा, अभी-अभी वह पाँच मिनिटमें अपनी ममीके पास पहुँच जायेगी । और···और···

कॉमिक्स : सुरेन्द्र अरोड़ा

"जैसा तुम चाहो।"

"तो तुम ये 'कॉमिक्स' पढ़ो," उसने यह सोचकर उसे 'कॉमिक्स' पकड़ा दिये कि वह पढ़नेमें बिज़ी हो जायेगी और वह धीरे-धीरे खिड़कियोंके साथ दरवाज़े भी बन्द कर देगा।

उसने कनखियोंसे देखा, लड़कीकी आंखें 'कामिक्स' के पृष्ठोंमें उलझी हैं। उसने खिड़कियां बन्द कीं, फिर दरवाज़े। पर वह चुप रही, बोली नहीं कुछ।

दरवाज़े बन्द करनेके साथ उसने परदे भी खींच दिये।

"यह क्या, देखो तो कितना अँधेरा हो गया? हाऊ डार्क?" आंखें बड़ी होकर फैल गयीं उसकी, लड़केका चेहरा पढ़नेका प्रयत्न-सा करती हुई।

"मुझे अँधेरा अच्छा लगता है।" अपनी पसन्द दुहराते हुए वह लड़कीकी कुरसीके ऐन पीछे आकर खड़ा हो गया और हाथ बढ़ाते-बढ़ाते उसने धीरे-से लड़कीके कन्धे पर रख ही दिये।

लड़कीने फ़ौरन गरदन मोड़ी। उसकी आंखोंकी ओर देखा। लड़कीको लड़केकी आंखोंमें याचना दिखाई दी। और लड़कीने अपनी भवें कुछ तान लीं। लड़का सहम गया। उसके बढ़ते हुए हाथ कन्धों तक ही रुके रह गये।

लड़कीने बड़े आहिस्ते-से पलकें झपकायीं। तीन बार। लड़केने उसकी पलकोंका झपकना गिन भी डाला।

लड़कीने आहिस्ते-से लड़केके हाथ हटाये।

"ओह! आई एम सारी।" लड़केने कहा और अबकी बार वह लड़कीकी बग़ल-वाली कुरसीमें बैठ गया।

"तुम नाराज़ तो नहीं हो गयीं?"

"ऊँ हूँ!" लड़कीने बिना होंठ खोले ही कहा। और फिर उँगलियोंमें थूक लगाकर वह 'कॉमिक्स' के पन्ने पलटने लगी। लड़केका जी चाहा कि टोक दे, मगर किसी तरह अपनेको ज़ब्त कर गया। वह नाराज़ हो जाती।

'कामिक्स' के पृष्ठोंपर फिरकी-सी घूमती हुई लड़कीकी आंखोंको देख उसने अपने दोनों हाथ टाँगोंके बीच दबा लिये। सोचने लगा, कैसे शुरू करें? अँगरेज़ीमें या हिन्दीमें? उसे याद आया, आज सारी सुबह वह किस तरह कमरा बन्द कर तैयारी करता रहा था।

उसने कहीं 'तोषकी चाय' का विज्ञापन देखा था और उसने उसी समय मन-ही-मन लड़कीका नाम सन्तोषसे 'तोष' कर दिया था। अपने इस 'इन्वेन्शन' पर उसे बड़ी खुशी हुई थी। जब उसने लड़कीको बताया था तो वह हँसते-हँसते दुहरी होती गयी थी। ठीक आजकी तरह।

पर लड़कीने कोई विज्ञापन नहीं देखा था। वह तो क़रीब-क़रीब शुरूसे ही उसके घरवालोंकी तरह उसे जिन्दर कहकर पुकारती आयी थी।

आखिर उसने गलेकी खराश साफ़ की और कहा, "तोषी, मैं तुम्हें···तोषी, आई लव यू····तोषी····"

"जिन्दर, मैंने कहा न, मैं किसीसे प्यार

नहीं करती ।"

"मुझसे भी नहीं ?"

"ऊँ हूँ ।" गरदन हिल गयी जवाबमें ।

लड़केके होंठ एक दूसरेके ऊपर चिपके रहे ।

"जिन्दर, एक गिलास पानी पिलाओगे ?"

"अभी लाया ।" और लड़का अच्छे बच्चेकी तरह पानी लेने दौड़ा ।

लड़का पानी लाया तो लड़कीने हाथमें पकड़े गिलासको एक ओर रख, दूसरा गिलास पकड़ लिया ।

अबतक मेज़पर इकट्ठे हुए पाँच गिलासोंको देख लड़केने पूछा, "तुम इतना पानी क्यों पीती हो, तोषी ?"

लड़की सकपका गयी । उसके चेहरेपर गुस्सा छलक आया । तुनककर बोली, "तुम्हें एतराज़ हो तो न पिऊँ ?

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था । दरअसल पेट खराब होनेसे ही प्यास ज़्यादा लगती है । तुम चाट भी तो बहुत खाती हो !"

"चाट कोई बुरी चीज़ है क्या ?"

"नहीं-नहीं, मैं कब कहता हूँ ।"

"तो फिर ?"

"कुछ नहीं ।"

लड़केने देखा, वह गिलास भी एक घूँटमें खत्म हो गया था—"पानी और लाऊँ ?"

"इफ़ यू डोण्ट माइण्ड, प्लीज़ ।"

अबकी बार लड़का भरा जग ले आया ।

लड़की नाराज़ हो गयी । "यह क्या, हमें क्या समझते हो ?" यही वाक्य पुनः अँगरेज़ीमें भी, "क्या हमने कभी पानी नहीं पिया ?"

लड़का बड़े पसोपेशमें पड़ गया । सोचने लगा, यह मैंने क्या किया ? खामखा इसे नाराज़ कर दिया । आज ही तो चान्स मिला है । और उसने कहा, "नहीं-नहीं, आई नेवर मेण्ट इट । तुम तो नाराज़ हो गयीं ।" उसने जग मेज़पर रख दिया और हाथ बाँधे उसकी ओर देखने लगा ।

लड़की उठ खड़ी हुई ।

वह आशंकित हो गया । उसके क़रीब खिसक आया । साहस करते हुए उसने उसके हाथ पकड़ लिये और कहा, "आइन्दा ऐसा नहीं करूँगा । प्लीज़ मत जाओ ।"

लड़की फिर बैठ गयी और 'मिस्ट्री इन स्पेस' के पन्ने उलटने लगी ।

लड़का अभीतक खड़ा ही था । सोचता हुआ । हाँ···उसके चेहरेपर मुसकराहट आ गयी । वह धीरे-धीरे आकर कुरसीपर बैठ गया ।

"तोषी !"

"हाँ, जिन्दर !" केवल गरदन हिली । नज़र 'कॉमिक्स' से हटी नहीं । लड़का चुप ।

"......"

"......"

कमरेमें चुप्पी-ही-चुप्पी !

लड़केकी आँखें सहसा सामनेकी दीवारपर ऊपरकी ओर जाती हुई चींटियोंकी क़तारसे उलझ गयीं । एक-एक चींटीके चलनेके साथ-साथ उसकी आँखें कमरेमें घूमने लगीं । वह मुआयना करने लगा कमरेका । बीचोंबीच पड़ा हुआ दीवान । आस-पास पड़ी हुई पुरानी-

सी कुरसियाँ। कोनेमें पड़ी किताबोंकी रैक। और वह मैगज़ीन-स्टैण्ड। कितनी बार माँसे कह चुका हूँ, कि यह कुरसियाँ अब फेंक डालो। पर माँ है कि···उसने देखा कि वह 'कॉमिक्स' में ही मगन थी।

वह कुछ पलों तक उसे देखता रहा। फिर कहा, "तुमने मेरी बातका जवाब नहीं दिया?"

"किस बातका?" लड़कीने पूछा।

"बड़ी भोली बनती हो!"

लड़कीने 'कॉमिक्स' एक तरफ़ रखते हुए कहा, "रियली, मुझे नहीं मालूम।"

लड़केको लगा, वह 'मिस्ट्री इन स्पेस' खत्म कर चुकी है। वह उठा और रैकसे दूसरा 'कॉमिक्स' लाकर उसके सामने रख दिया, "लो, हैव ऐनअदर वन।"

लड़कीने 'कॉमिक्स' ले लिया।

"तोषी, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। तुम हो कि कुछ बताती ही नहीं। मुझे तुमसे बहुत प्यार है। बहुत। लाइक एनी थिंग।"

"कह तो दिया न····बस, मुझसे कुछ मत पूछो।"

"तोषी, प्लीज़! बताओ न···!"

"बताया तो कि अकेली रहूँगी। होल लाइफ़।"

"अकेले?" लड़केके स्वरमें हैरानी थी।

"हाँ, बस। नदी किनारे एक झोंपड़ी बनाऊँगी। उसीमें रहूँगी।"

"तुम्हें डर नहीं लगेगा क्या?"

"डर कैसा। अपने साथ पाँच कुत्ते जो पालूँगी।" लड़कीके होंठ मुसकानसे खिंच गये थे। आँखोंमें शरारत थी।

"क्या पाँचके बजाय छह कुत्ते नहीं पाल सकतीं?" उसने पूछा।

लड़की टाँगें हिलाती हुई आरामसे बैठी रही। वह कॉमिक्सके पन्ने अब ज्यादा तेज़ीसे पलट रही थी।

लड़का भी बैठा-बैठा टाँगें हिलाता रहा। उसकी आँखें कहती रहीं बहुत कुछ। आखिर उसके फड़फड़ाते हुए होंठ खुले, "तुम्हें लड़कोंसे इतनी नफ़रत क्यों है?"

"है एक बात।" लड़कीने जवाब दिया।

"ऐसी भी क्या बात है?"

"तुम्हें बतानेकी नहीं है।"

"क्या सब लड़के खराब होते हैं?"

"हाँ, सब।"

"मैं भी?"

"मैं क्या जानूँ?"

"इतने दिन हो गये, मैंने कभी तुम्हें टच भी नहीं किया।"

"मैं मानती हूँ। पर····"

"पर क्या?"

"·········"

"हाँ-हाँ कहो, तोषी!" लड़केकी आँखोंमें उम्मीद झलकने लगी थी।

"जिन्दर, तुम्हारे पास कुछ 'कॉमिक्स' हों तो दे दो। नेक्स्ट सण्डे तुम्हें वापस कर दूँगी!"

"हाँ-हाँ, ले जाओ, जितने चाहो।" लड़केका चेहरा कुछ-कुछ बुझ गया था।

वह उठा और कॉमिक्स छाँटनेमें व्यस्त

हो गया ।

लड़कीने घड़ी देखी । सवा चार बज रहे थे ।

"ओह ! काफ़ी देर हो गयी !" वह उठ खड़ी हुई । अपनी फ्राककी सलवटें ठीक कीं और कहा, "अच्छा जिन्दर, चलूँ !"

"तो जाओगी ?"

"हाँ, अभी तो सारा होम-वर्क करनेको पड़ा है ।"

"तुमने मेरी बातका जवाब नहीं दिया । पूरे छह महीने हो गये ?"

"कह तो दिया न !....."

"तुम्हारे यहाँ छुट्टियाँ कबसे हो रही हैं ?"

"दससे ।"

"हमें तो बारहसे हो रही हैं ।"

"अच्छा ! जिन्दर, वह 'कॉमिक्स' दे रहे हो ?"

"हाँ-हाँ, ये लो ।"

"इत्ते सारे !"

"हाँ, ले जाओ, मेरे पास बहुत हैं ।"

लड़कीने 'कॉमिक्स' पकड़ लिये ।

"अच्छा !" लड़कीने छोटा-सा हाथ हिलाया ।

"फिर कब मिलोगी ?"

"छुट्टियोंमें ।"

"पहले नहीं ?"

"देखा जायेगा ।" और लड़की दरवाजेकी ओर बढ़ी ।

लड़का दरवाजेके आगे खड़ा था । दीवार बनकर ।

"जिन्दर, दरवाज़ेसे हटो ।"

"नहीं हटते । हमारी मरज़ी ।"

लड़केकी आँखोंमें शरारत-भरी मुसकराहट थी । सीनेपर अपने दोनों हाथ बाँधे खड़ा रहा वह । उसी तरह ।

"जिन्दर !" लड़कीकी आवाज़में डपट थी ।

"हमने रोका थोड़े है । हिम्मत है तो चली जाओ ।

"है हिम्मत," लड़की आगे बढ़ी और बिलकुल उसके क़रीब आ गयी । उसने हाथ बढ़ाया, "जिन्दर, प्लीज़ जाने दो ।"

"श्योर-श्योर ।" लड़का पीछे हटा और जैसे ही लड़की आगे बढ़ी, लड़केने उसके गलेमें बाँहें डाल दीं ।

"यह क्या बदतमीज़ी है ! नानसेंस !" लड़कीने उसके हाथ गुस्सेसे झटक दिये, "हट जाओ । मुझे जाने दो । तुम्हारी यह हिम्मत । यू कुड डेयर दिस मच । मैं ममीसे ज़रूर शिकायत करूँगी । देखना ।" लड़की काँप रही थी ।

लड़का हट गया । उसे लगा, उसके अन्दर कहीं कुछ बहुत ज़ोरसे गिरा है ।

फटाककी आवाज़ हुई । लड़की तीरकी तरह बाहर निकल गयी । उसने मुड़कर देखा नहीं । बढ़ती गयी ।

लड़का डूबता-उतराता रहा—अब क्या होगा ? अब क्या ? और देखता रहा—वह बरामदेकी चार सीढ़ियाँ उतर रही है, वह लॉन पार कर रही है, अब वह सड़कपर पहुँच गयी । दरवाजेके बीच खड़े-खड़े लड़केको एक

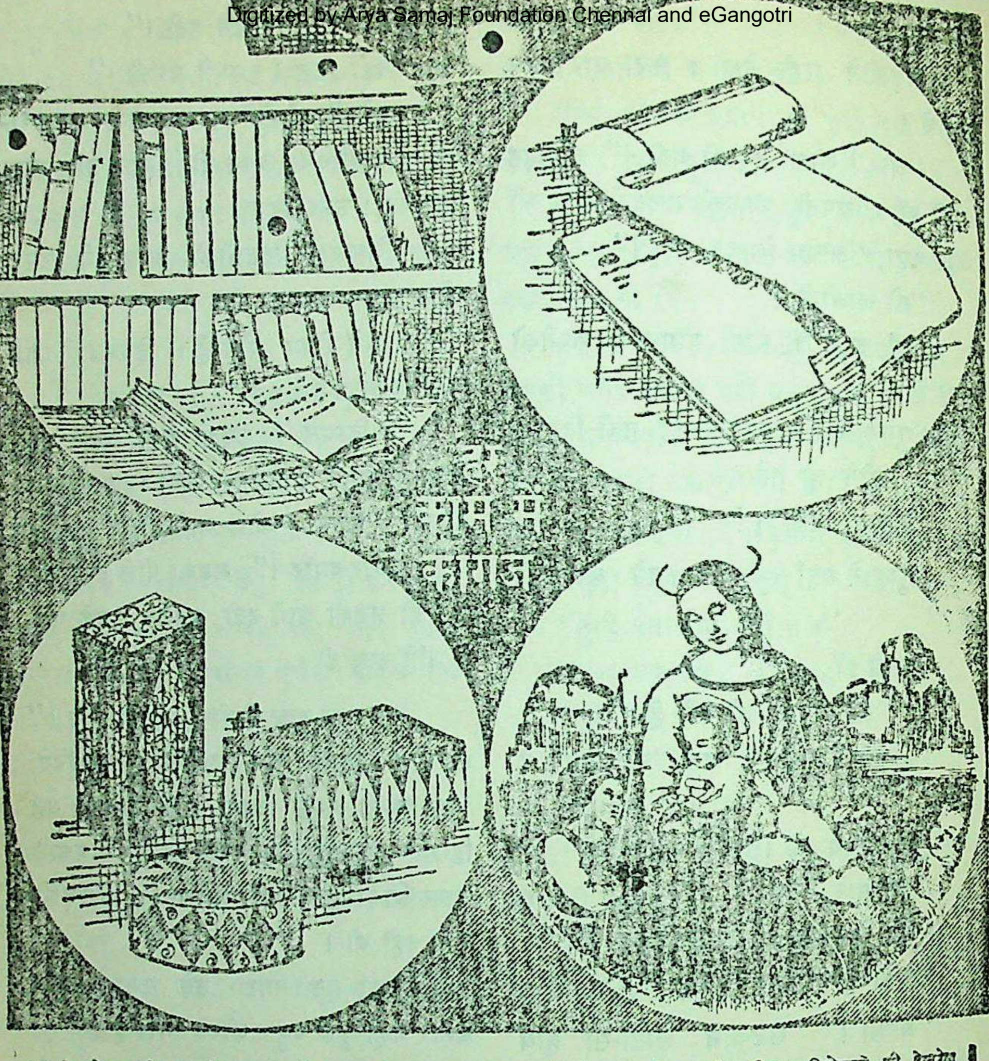

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, चेक्स छपाई के लिये मोटे पेपर्स चित्रादि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इसके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, क्रेप टिस्यू कागज,— ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज व अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेन्ट्स :
साहु जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

सौ ग़ज़के फ़ासलेपर जाती हुई वह लड़की बहुत छोटी-सी लगी। उसे लगा, अभी-अभी वह पाँच मिनिटमें अपनी ममीके पास पहुँच जायेगी। और····और···और····वह पूरी ताक़तसे चिल्लाया, "तोषी, तोषी रुक जाओ। एक मिनिटके लिए। प्लीज !" और बेतहाशा उसकी ओर दौड़ पड़ा।

लड़की रुक गयी।

"तोषी !" लड़का हाँफ रहा था।

"अब क्या है ?" लड़कीकी आवाज़ पुआल-सी रूखी थी।

"तोषी, तुम नाराज़ तो नहीं हो ना ?" लड़केकी आँखोंमें 'हाँ' सुननेकी ललक झलक रही थी।

"किस बातके लिए ?"

"तोषी, मुझे माफ़ कर दो।"

"किस बातके लिए ?"

"तोषी, अब नहीं करूँगा। प्लीज कर दो न माफ़।"

"अच्छा बाबा, अच्छा !"

"किसीसे कहोगी तो नहीं ?"

"नहीं बाबा, नहीं कहूँगी। बस।"

"ओह तोषी, यू आर ग्रेट !" लड़का खुशीसे नाच उठा था और लड़कीको जाता हुआ देखकर सोचने लगा था—तोषी कितनी अच्छी है !

■ ■

९१४ ईस्ट पटेलनगर,
नयी दिल्ली-८

मे
प
ल

प्रभाकर माचवे
द्वारा
विदेश में लिखी
कविताओं का
संग्रह
भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा
प्रकाशित

कॉमिक्स : सुरेन्द्र अरोड़ा

कलाकार मक़बूल फ़िदा हुसैनसे / प्रेमचन्द गोस्वामी

'कलाकारको खुली ज़मीन चाहिए....'

जून महीनेका अन्तिम सप्ताह। जयपुर कॉफ़ी-हाउसका एक कोना। सफ़ेद चमकीली दाढ़ी, नुकीली नाक और बड़े-बड़े होंठ। एक परिचित आकृति दिखती है। यह आकृति है विश्वप्रसिद्ध आधुनिक भारतीय चित्रकार मक़बूल फ़िदा हुसैनकी। अबतक हुसैन साहबके चित्रोंसे मिलता रहा हूँ और अब उनके जयपुरमें होनेके कारण साक्षात्कारका लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। उनसे समय लेकर दूसरे दिनकी ख़ुशनुमा सुबह में भेंटके लिए पहुँचता हूँ। मेरे कुछ कलाकार कलाप्रेमी और पत्रकार मित्र साथ हैं। ५१ वर्षीय पद्मश्री हुसैन बरामदेमें लम्बे-लम्बे डग भरते हुए नंगे पाँवों प्रतीक्षारत घूम रहे हैं। हमें आया देख एक मुसकान उनके चेहरेपर आती है। वे सबको बैठनेका अनुरोध करते हैं और फिर परिचयका दौर। फिर कुछ प्रश्न, कुछ उत्तर···

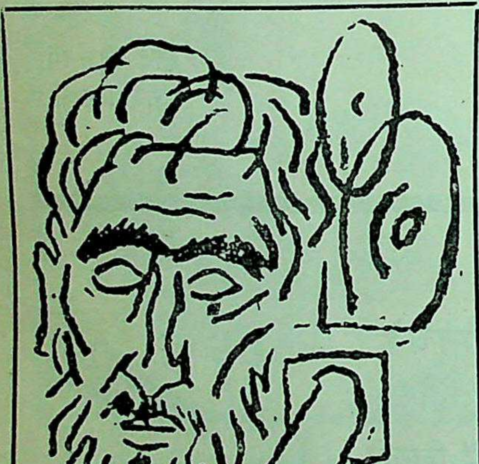

अपनी क़लमसे : हुसैन

आधुनिक कलाकारके लिए किसी कला-विद्यालयमें विधिवत् शिक्षा प्राप्त करना आप आवश्यक मानते हैं? आपने कलाकी शिक्षा कहाँ प्राप्त की?

—कलाकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए कोई कला-विद्यालयमें जाये तो अच्छा है और यदि लगन और निष्ठा हो तो वह स्वयमेव भी कलाभ्यास कर सकता है। जहाँतक मेरी कला-शिक्षाका सवाल है मैंने किसी कला-विद्यालयमें विधिवत् शिक्षा हासिल नहीं की। रंग और रेखाओंके बीच रहना मुझे बचपनसे ही भाता रहा है। और तबसे आज तक मैं केवल उन्हींसे ही खेलता रहा हूँ। मेरे चित्रोंका दर्शकोंपर जो भी प्रभाव है वह मेरे अपने अभ्यासके कारण है। स्केच करना और रंगोंके माध्यमसे कैनवसपर प्रयोग करना मैंने एक अरसे पूर्व प्रारम्भ कर दिया था।

मक़बूल फ़िदा हुसैन : जिन्हें इस वर्ष बर्लिन फ़िल्म फ़ेस्टिवल का सुप्रसिद्ध पुरस्कार गोल्डन बीयर प्राप्त हुआ है—अपनी पहली फ़िल्म 'थ्रू द आईज़ ऑव ए पेण्टर' पर

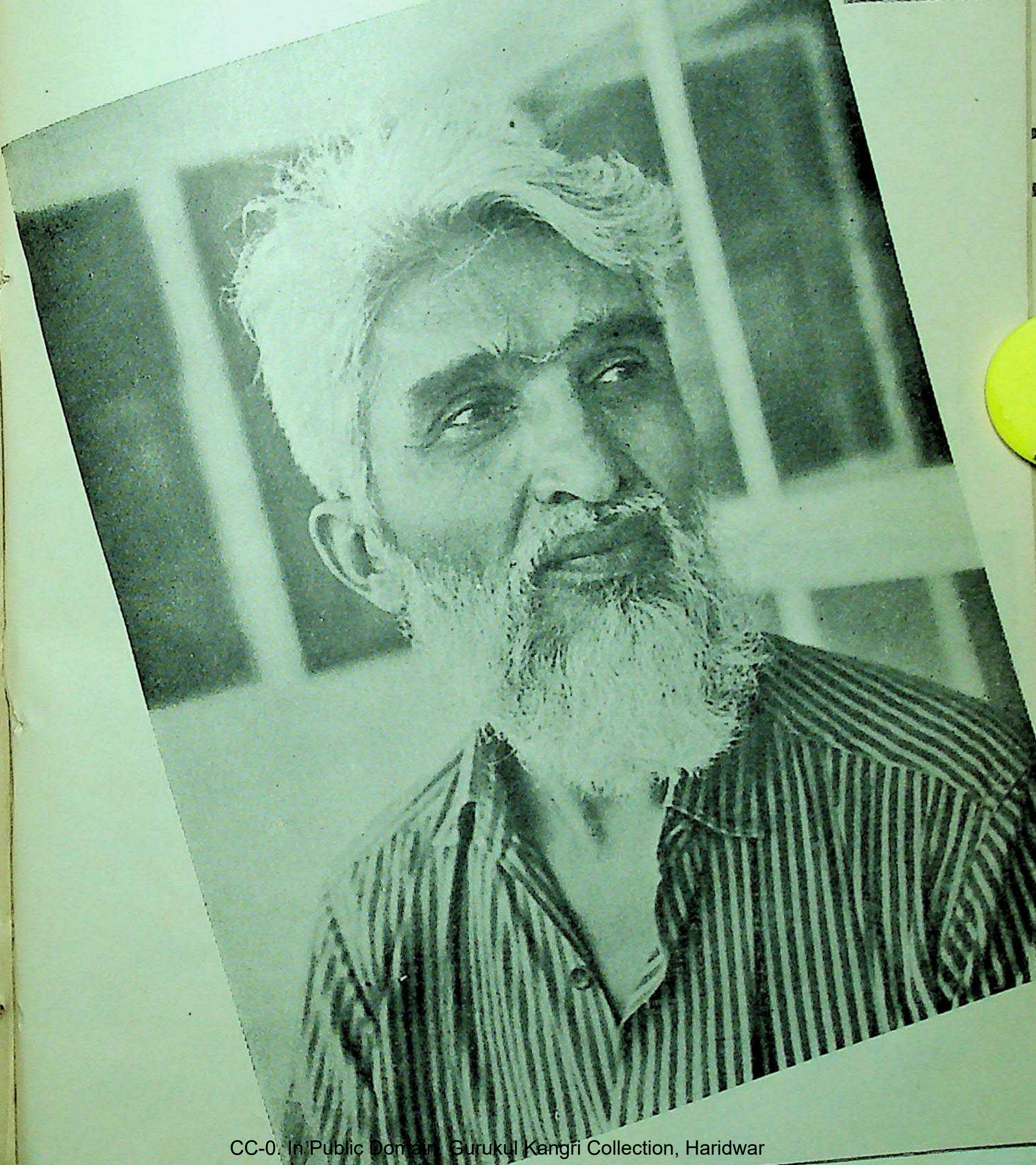

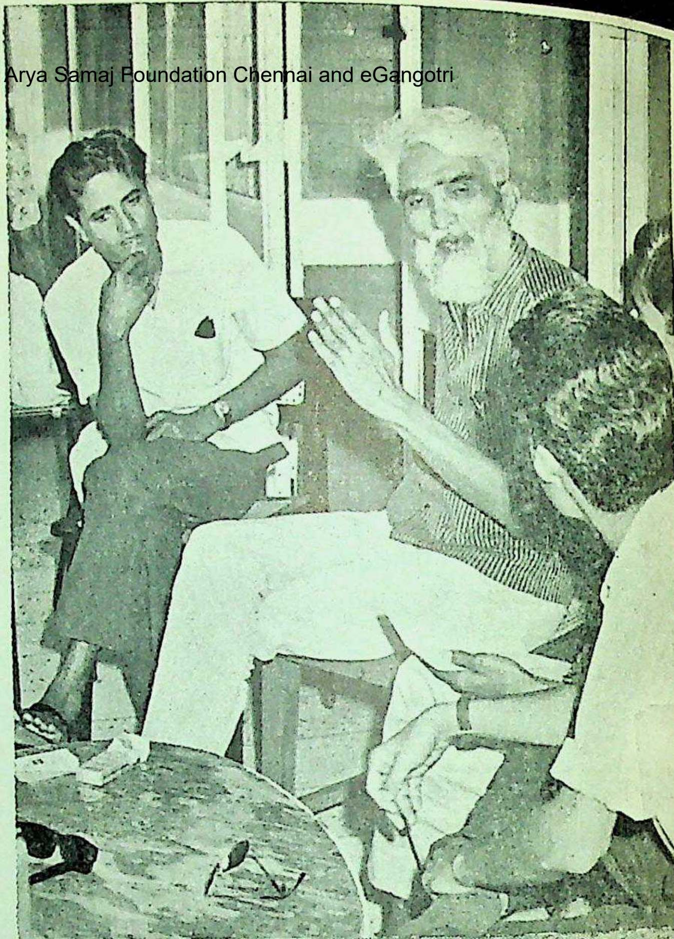

→
हुसैन जयपुर में :
प्रेमचन्द गोस्वामी
और अन्य पत्रकार

o

चित्रकार की निगाहों में
खालीपन ढूँढ़ते स्वयं
हुसैन ↓

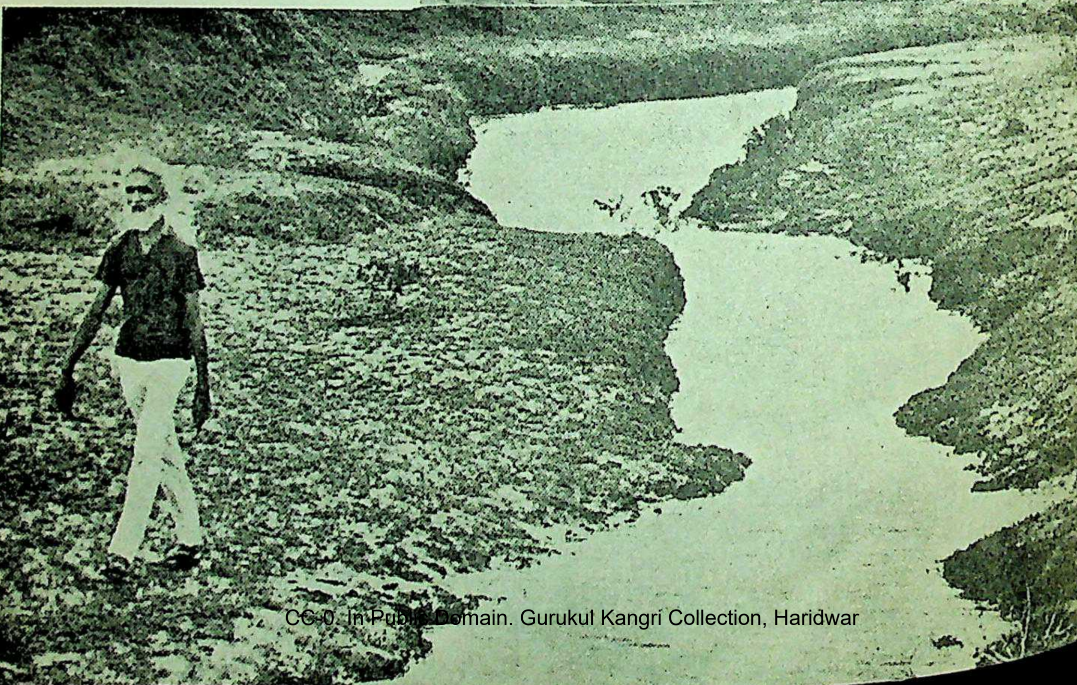

किसी चित्रका निर्माण करनेसे पूर्व क्या आपके मस्तिष्कमें कोई निर्धारित आकृति या रंग-योजना होती है ?

—नहीं । यदि कलाकारके मस्तिष्कमें चित्र-सृजनसे पूर्व कोई निर्धारित आकृति होगी तो वह पेण्टिंग न होकर डिज़ाइन हो जायेगा । और डिज़ाइन निश्चय ही पेण्टिंग नहीं है । कला-सृजनसे पूर्व किसी पूर्वनिर्धारित रंग-योजनाका उपस्थित होना भी लाज़मी नहीं है । जैसे-जैसे कलाकार स्वच्छन्दतासे कैनवसपर रंगोंको चढ़ाता है वैसे-वैसे उसमें पूर्णता आती जाती है । किसी आकृतिका पूर्वाग्रह चित्रमें उभरनेवाले बिम्बोंमें बाधा उपस्थित करता है । परिणाम क्या होता है—यह स्पष्ट है कि बन जानेके बाद भी ऐसी पेण्टिंग 'कम्प्लीट पेण्टिंग' नहीं कहला सकती ।

तो पेण्टिंगमें बिम्बोंके उभारको आप रंगों और रेखाओं या आकृतियोंके समान महत्त्वपूर्ण मानते हैं ?

—निस्सन्देह ! रंग और रेखाओंके अतिरिक्त चित्रोंमें बिम्बोंकी उपस्थिति भी बहुत ज़रूरी है । अन्यथा ऐसा लगेगा कि कलाकृतिके निर्माणमें कलाकारने निजी कल्पनाका ज़रा भी सहारा नहीं लिया है । कलाकारके पास अपनी पसन्दके कुछ प्रतीक तो होने ही चाहिए जो उसे औरोंसे थोड़ा भिन्न करें ।

प्रायः कहा जाता है कि आधुनिक कला कलाकारोंके अन्तरमें पल रही कुण्ठाओंकी अभिव्यक्ति है—आप इसे सही मानते हैं ?

—आधुनिक कला कलाकारकी कुण्ठाओंकी अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि उसकी सहज कलात्मक प्रवृत्तिकी अभिव्यक्ति है । यह कहना ग़लत है कि आधुनिक कलाकार कुण्ठित है या उसके सृजनमें उसकी कुण्ठाकी छाप है । आधुनिक कलाके मूल्य भारत समेत अनेक देशोंमें बड़ी ईमानदारीसे खोजे जा रहे हैं । युरॅपीय देशोंकी भाँति भारतमें भी आज कलाकारोंकी अनेक पीढ़ियाँ कला-सृजनमें सक्रिय हैं ।

आधुनिक भारतीय कलाकारोंपर आरोपित इस कथ्यसे आप कहाँतक सहमत हैं कि वे पश्चिमी देशोंका अन्धानुकरण कर रहे हैं ?

—कुछेक कलाकारोंके लिए, जो विदेश जाकर वहाँके प्रभावसे बेहद पीड़ित हो जाते हैं, यह बात शायद सही हो पर आम तौरसे भारतीय कलाकारोंमें पश्चिमके अनुकरणकी प्रवृत्ति है—इसे मैं सही नहीं मानता । बल्कि हमारे कुछ कलाकारोंकी कृतियोंमें तो विशुद्ध भारतीयताके दर्शन किये जा सकते हैं । स्वयं अपने चित्रोंमें मैं पश्चिमका कोई प्रभाव नहीं आने देता हालाँकि मैंने बहुत-से पश्चिमी देशोंके कलाकारोंसे अच्छी तरहसे भेंट की है, उनकी कलाकृतियाँ देखी हैं और उन देशोंमें खूब भ्रमण किया है । बल्कि मैं तो यहाँतक कहूँगा कि कुछ रंग तो ऐसे हैं जिनका विदेशोंके कलाकारोंने अबतक प्रयोग ही नहीं किया है । उदाहरणके लिए बैंगनी रंगके कुछ 'इफ़ेक्ट्स' भारतीय कलाकृतियोंमें विशेष

रूपसे पाये जाते हैं जो अन्यत्र नहीं।

आधुनिक कलाकृतियाँ दर्शकोंके लिए अक्सर भूल-भुलैयाके समान होती हैं। क्या कलाकारका दर्शकोंके प्रति कोई दायित्व है ?

—निश्चय ही अपनी कलाकृतिके लिए कलाकार उत्तरदायी है। किन्तु सर्जक और दर्शकका जो अन्तर है वह तो रहेगा ही। यह सही है कि कलाकार आज दर्शकसे थोड़े ऊँचे धरातलपर खड़ा है किन्तु उसे दर्शकोंकी उपेक्षा करनेका अधिकार नहीं है क्योंकि अन्ततोगत्वा उसे अपनी कलाकृतियाँ दर्शकोंके सामने ही लानी हैं। वह उन्हें दर्शकोंके लिए ही निर्मित करता है। भारतमें आधुनिक कलाके दर्शककी दृष्टि पिछले वर्षोंमें काफ़ी पैनी हुई है और अब उसमें कृतियोंको पसन्द करने या नापसन्द करनेकी योग्यता आती जा रही है। यह लक्षण शुभ और आशाजनक है।

आधुनिक कलाकी प्रतिष्ठाके लिए भारतीय कलाकार कहाँतक लड़ रहे हैं ?

—भारतीय कलाकार संघर्षरत है। उसे लड़नेकी संज्ञा देना उचित नहीं होगा। वह तो मार्ग बना रहा है। आधुनिक कलाकी इस दौड़में वह भी बढ़ रहा है। अपना मार्ग निश्चित करनेमें उसे कितना समय लगेगा, कहा नहीं जा सकता। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस ओर उसकी गति सन्तोषजनक है। वास्तवमें कलाकारका काम लड़ना नहीं, दूसरोंके लिए मार्ग उज्वल और प्रशस्त करना है।

विश्वकी कलात्मक गतिविधियों और कलाकारोंकी विभिन्न प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें राजकीय हस्तक्षेप, आश्रय या प्रश्रयको आप आवश्यक समझते हैं ?

—क़तई नहीं। कलाकारकी प्रवृत्ति स्वच्छन्द होती है। उसपर किसी प्रकारका बन्धन या निषेध लगाना उचित नहीं कहा जा सकता। और फिर कलाकार किसी बन्धनमें बँधकर श्रेष्ठ कलाकृतिका निर्माण नहीं कर सकता, उसे तो निर्बन्ध और खुले वातावरणकी ज़रूरत होती है। खुली ज़मीनपर ही वह अपना सृजन जारी रख सकता है। अनावश्यक राजकीय हस्तक्षेपसे कलाकार कुण्ठित हो सकता है।

भारतमें आधुनिक कला-समीक्षाका स्तर क्या सन्तोषजनक है ? विशेषकर हिन्दीमें की जानेवाली कला-समीक्षाके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं ?

—आधुनिक कला-समीक्षाका सन्तोषजनक स्तर भारतमें अभी भी नहीं बन पाया है। जिस तरहकी कला-समालोचनाका स्तर आनन्द कुमारास्वामीने स्थापित किया था आज उसका प्रायः अभाव है। हिन्दीमें कला-समीक्षासे आपका तात्पर्य शायद कुछ साप्ताहिकों और मासिक-पत्रोंके कला-स्तम्भोंसे है। इस सम्बन्धमें यही कहूँगा कि वहाँ पूर्ण निष्पक्षतासे काम नहीं लिया जा रहा। एक

अंकमें की गयी समीक्षा सन्तोष देती है तो दूसरे अंकको उठाकर देखनेसे उसमें बहुत-से पूर्वाग्रहोंकी छाप मिलने लगती है। यह स्थिति उचित नहीं। कला-समीक्षाके उचित स्तरके निर्माणके लिए अभी कुछ और प्रयत्न किये जानेकी ज़रूरत है।

इधर चित्रोंके साथ-साथ आपने फ़िल्मके माध्यमसे भी कुछ प्रयोग किये हैं। कलात्मक अभिव्यक्तिके लिए आप फ़िल्मके माध्यमको कितना सशक्त मानते हैं? आपने इसकी पृष्ठ-भूमिके लिए राजस्थानको ही क्यों चुना?

—फ़िल्म-तकनीकमें मेरी काफ़ी अरसे-से दिलचस्पी रही है और अपनी युरॅप-यात्राके दौरान मैंने प्रयोगवादी चित्र बनानेवाले कुछ फ़िल्मकारोंने भेंट भी की है। कुछ प्रायोगिक चित्र भी देखे हैं। भारतमें भी ऐसे प्रायोगिक चित्र बनानेकी मेरी इच्छा थी और भारत-सरकारके फ़िल्म्स डिवीजनके अनुरोधके कारण यह शीघ्र सम्भव भी हो गया। निश्चय ही भारतमें बनी यह पहली प्रायोगिक वृत्त-फ़िल्म है। इसमें न कोई कथानक है और न संवाद। संगीतकी स्वर-लहरीके साथ-साथ केवल प्रतीकोंका प्रयोग किया गया है। इस फ़िल्ममें लालटेन, जूता, छाता और गाय अभिव्यक्तिके प्रतीक-माध्यम बने हैं जो राजस्थानकी ज़मीनमें घूमते हैं। इस फ़िल्ममें कैमरेको विभिन्न कोणों और छाया तथा प्रकाश के स्थलोंमें प्रयुक्त किया गया है।

इस प्रायोगिक फ़िल्ममें भी बिम्बों और प्रतीकोंके माध्यमसे कथ्यको स्पष्ट करनेकी चेष्टा की गयी है। फ़िल्म, कलात्मक अभिव्यक्तिका उत्तम माध्यम है इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता। इस फ़िल्मकी पृष्ठभूमिके रूपमें मैंने राजस्थानको अधिक उपयुक्त पाया क्योंकि राजस्थानकी वास्तु-सम्पदा, पारम्परिक कला-कौशल और रेगिस्तानी वातावरणमें फ़िल्मके मुखर होनेकी काफ़ी सम्भावनाएँ मैंने पायीं। मैंने हालाँकि शूटिंग-स्थलों (जैसलमेर, चित्तौड़, बून्दी आदि) के प्रसिद्ध स्मारकों या इमारतोंको फ़िल्ममें नहीं लिया है तथापि वहाँके एकान्तिक वातावरणको विशेष प्रमुखता दी है।

आधुनिक कलाके वर्त्तमान बदलते मूल्यों और आन्दोलनोंके मध्य भारतीय आधुनिक कलाका भविष्य क्या है?

—भारतमें आधुनिक कलाकार पर्याप्त सजग हैं और वे अन्य देशोंसे किसी तरह पिछड़े नहीं हैं। भारतीय कलाकार भी आधुनिक कलाके क्षेत्रमें नये-नये मूल्योंकी स्थापना कर रहे हैं और विभिन्न आन्दोलनोंको बल दे रहे हैं। भारतमें आधुनिक कलाका भविष्य उज्वल और आशाजनक है तथा विश्वके सभी भागोंमें उसकी प्रतिष्ठा बनती जा रही है।

■ ■

दो दूतावासोंकी कहानी : अनेकोंकी ज़ुबानी

देश :

●

जानकार सूत्रोंके अनुसार, श्री रघुनाथ व श्री विजयके विरुद्ध चीनी कार्यवाहीसे पन्द्रह दिन पहले ही पाकिस्तानी अख़बारोंने अधिकारी सूत्रों-द्वारा जारी ये विज्ञप्तियाँ छापीं कि पीकिंगमें भारतीय राजनयिक छद्म पाकिस्तानी बने हुए हैं और इस तरह पीकिंग-शासनके उच्च राज्याधिकारियोंके बीच 'रेंगकर' पहुँच रहे हैं।

यह भी पता चला कि पाकिस्तानी शिकायतके फलस्वरूप ही, पीकिंगने श्री रघुनाथ और श्री विजयके विरुद्ध कार्यवाही की।

—इन्फ़ा

●

हालांकि, जनरोषके दृश्यपर बीसियों विदेशी पत्रकार व फ़ोटोग्राफ़र उपस्थित थे, सरकारने भारतीय समाचार-पत्रोंको कुछेक घटनाएँ व चित्र न छापनेकी सलाह दी। परिणामतः, अनेक प्रकारकी दबी-ढकी कहानियाँ पत्रोंमें छपीं जो राजधानी स्थित दूतावास और विदेशी पत्रकारोंके लिए स्थायी मज़ाक़ बन गयीं। किन्तु, मानो यही काफ़ी न था, १५ जूनकी रातको सरकारने सारे केब्ल और टेलेक्स-सूचनाएँ पांच घण्टेके लिए रोक दीं। बादमें पता चला कि प्रधान-मन्त्रीका मतलब केवल थोड़ा-सा व्यवधान देनेसे था ताकि पीकिंगमें भारतीय-दूतावासको पहले होशियार कर दिया जाये। लेकिन ज़िम्मेदार अधिकारी कर्त्तव्य-पालनमें ज़रूरतसे ज़्यादा उत्साही हो उठे।

—वीक एण्ड रिव्यू

बोलते प्रतिबिम्ब

— पुष्प-धन्वा

●

पीकिंगके 'वेस्टन हिल्ज़' नामक पिकनिक स्थलपर रघुनाथ और विजयकी यात्रासे सम्बन्धित अपनी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करनेमें चीनका दस दिनका समय लेना—स्वयं इस बातका स्पष्ट संकेत देता है कि सारी चीज़ पूर्व-नियोजित थी। यह अलबत्ता निश्चयात्मक रूपसे नहीं कहा जा सकता कि इसका सम्बन्ध सिक्किम-सीमापर कुछ और काल्पनिक पत्थरोंके जमावके विरोधमें, अभी हाल ही में जारी किये गये चीनी प्रपत्रसे है या नहीं और न ही यह कि ये दोनों घटनाएँ नयी सैनिक मुठभेड़ उकसानेकी, पूर्वपरिचित चीनी तैयारियाँ तो नहीं ?

—लिंक

●

इस कठिन व तनावपूर्ण स्थितिमें केवल साम्यवादी दल सन्तुलित दृष्टि रख पाया है। दलके वक्ताने दोनों देशोंके सम्बन्ध बिगाड़ने और तनाव बढ़ानेवाले पीकिंगके हथकण्डोंकी कड़ी निन्दा की है।

—न्यू एज

●

इस सन्दर्भमें विशेष याद रखनेवाली बात यह है कि आजकी घटनाओंके बावजूद हमारा भाग्य और भविष्य पश्चिमी शक्तियों और उनके उपग्रहोंकी अपेक्षा चीनकी जनताके साथ अधिक दृढ़तासे बँधा हुआ है। चीनके लम्बे व रंग-बिरंग इतिहासमें 'वर्तमान' एक दुर्भाग्यपूर्ण व दुःखद घटना है किन्तु यह घटना स्पष्ट ही अस्थायी है। कल या परसों—यह अवश्यम्भावी है कि चीनी जनताकी सुदीर्घकालीन विवेक-बुद्धि अपना चमत्कार दिखाकर रहेगी।

—मेनस्ट्रीम

और विदेश···

●

आज भारतपर तोहमत लगायी गयी है कि उसने जिस संगठित और तयशुदा तरीक़ेसे चीनी दूतावासके अधिकारियोंपर हमला किया है उसकी मिसाल अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धोंमें शायद ही कहीं मिलेगी।

'पाकिस्तानी-चीनी दोस्ती—'ज़िन्दाबाद', 'हिन्दुस्तानी सल्तनतशाही—

मुर्दाबाद' और अमरीका-विरोधी नारोंसे चीनी राजनयिकोंका ढाका हवाई-अड्डेपर स्वागत किया।

—द पाकिस्तान टाइम्ज़

●

पोस्टरोंपर तीन फ़ुट ऊंचे अक्षरोंमें 'अन्तरराष्ट्रीय जासूसको फाँसीपर लटका दो' तथा 'रघुनाथका जासूसी अड्डा' के नारे छपे हुए हैं।··· दीवारोंपर चिपके पोस्टर यद्यपि बेतहाशा अतिशयोक्तिपूर्ण थे, वे बाहरकी दुनियाको चीनके भीतर छायी दुर्व्यवस्थाका आभास देनेमें समर्थ हुए।

चीन-सम्बन्धी बिनाछनी ख़बरें बाहर पहुँचानेवाले इस अन्तिम साधनका दमन एक पखवारे पूर्व ही पीकिंगमें आरम्भ हो चुका था। ब्रिटिश, फ्रान्सिसी, स्विस, रूसी, बल्गेरियन, भारतीय और पूर्व-जर्मनीके राजनयिक अधिकारियोंको पोस्टर पढ़ने या काल-रक्षक समाचार-पत्र ख़रीदनेपर तंग किया जा रहा था।

—डेली टेलीग्राफ़

●

आज तक भारतके प्रति दुर्भावना व्यक्त करनेके सबसे भद्दे इस चीनी व्यवहारने यह बात स्पष्ट कर दी है कि चीनका इरादा भारतको अफ़्रीकी एशियाई नज़रोंमें गिराकर ऐसी स्थिति उत्पन्न करना है जिसमें भारत ताजा पश्चिमी सहायता माँगनेको मजबूर हो जाये।····अन्ततः फल यह होगा कि भारतीय सरकार अपना अणुबम बनानेके लिए डाले जाते घरेलू दबावसे लड़नेमें अधिकसे-अधिक असमर्थ होती जायेगी। लेकिन अणुबम केवल जनताकी ग़रीबीको घनीभूत करनेके मूल्यपर ही पाया जा सकता है, और इस सम्भावनाका माओवादी सम्भवतः स्वागत ही करेंगे।

—न्यू स्टेट्समैन

●

नयी दिल्ली और पीकिंग—दोनोंके दूतावास स्थित अधिकारियोंको लपेटमें लेनेवाली, पिछले कुछ दिनोंकी अशोभनीय घटनाओंसे दोनों देशोंके बीच राजनयिक सम्बन्ध टूट जानेका ख़तरा बहुत पास आ गया था। यद्यपि, सौभाग्यवश, यह ख़तरा अन्तिम समयपर टल गया, ध्यान देने योग्य बात यह है कि नयी दिल्लीमें शायद ही कोई इस औपचारिक सम्बन्धको बनाये रखनेका ज़रा-सा भी मूल्य आँकता है।

—द इकॉनोमिस्ट

●

इस सारे झगड़ेके बाद, नयी दिल्लीमें सबसे परेशान व्यक्ति आज है वह ठेकेदार, जिसने चीनी दूतावासकी इमारत तैयार की। उसका रोना है कि चीनियोंने अभीतक उसकी एक लाख तिरानबे हजारकी रकम चुकता नहीं की है और अनेकों बार पत्र-द्वारा याद दिलाये जानेके बावजूद उन्होंने अपने क़र्जके तईं असाधारण चुप्पी साध रखी है।

—न्यूज़वीक

■ ■

१६, दरयागंज, दिल्ली-६

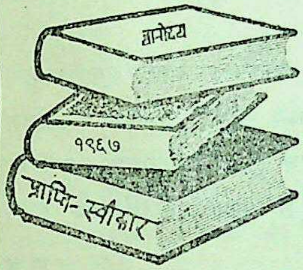

जु । ला । ई

[यह स्तम्भ ज्ञानोदयमें समीक्षार्थ प्राप्त समस्त पुस्तकोंकी स्वीकार-सूचीके लिए है। चुनी हुई पुस्तकोंकी समीक्षा यथासुविधा प्रकाशित की जायेगी।]

साहित्य सदन, सत्याश्रम, वर्धा
- गुरुदेवका शिक्षालय : स्वामी सत्यभक्त
- इन्द्रधनुष : स्वामी सत्यभक्त
- नरक स्वर्गके चित्र : स्वामी सत्यभक्त

सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर
- संवेदन इति : सं० नन्दकिशोराचार्य
- तथागत : नन्दकिशोराचार्य

श्री रघुनन्दन झा, मुँगेर
- मधुश्री : यमुना झा अशोक

यतीन्द्र साहित्य सदन, भीलवाड़ा
- बसुमति महाकाव्य : शिरीशचन्द्र शिवहरे

बोरा एण्ड कम्पनी, बम्बई
- गुर्जरेश्वर कुमार पाल : धूमकेतु : अनु० श्यामू सन्यासी
- वैज्ञानिक खोज : विज्ञान विहारी

हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली
- मयख़ाना : सं० प्रकाश पण्डित
- वयम् रक्षामः : आचार्य चतुरसेन शास्त्री
- बालकृष्ण शर्मा नवीन : भवानी प्रसाद मिश्र

रासा प्रकाशन, बिजनौर
- धरतीका कर्ज : ओमप्रकाश चतुर्वेदी 'पराग'

अखिल भारतीय कवि सम्मेलन, बिजनौर
- विदुरा : सं० पराग

इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन प्रा० लि०, इलाहाबाद
- मनोरंजक संस्मरण : श्रीनारायण चतुर्वेदी
- राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन : जगपति चतुर्वेदी

(पृष्ठ १२ का शेष : कथन-उपकथन)

इज ओनली ए वर्ड फ़ॉर समथिंग इन द बॉडी।'

प्रश्न : एक आखिरी सवाल—मृत्यु क्या है ?

नीत्शे : एक युरॅपियन बीमारी।

प्रश्न : मैं समझा नहीं।

नीत्शे : तात्पर्य—ईसाई इससे जन्म-भर डरते हैं। वस्तुतः मृत्युके पार कुछ नहीं है, जबकि ईसाई कहते हैं कि सब कुछ मृत्युके बाद है। इन्होंने मृत्युको एक करुण कामदी बना दिया है। सारे मूल्योंका विकृतिकरण। शक्तिवान कभी भी जीवनसे नहीं डरता, चाहे वह बेग़ैरत औरतकी तरह दग़ा देकर चला जाये। मृत्युका डर हमेशा सुखी जीवनको मृत्युसे आच्छन्न रखता है। कृती-अतिमानव जानता है कि उसे कब स्वेच्छासे मर जाना चाहिए। आत्महत्या इस बिन्दुपर आकर एक पवित्र और निस्वार्थ कर्म बन जाता है।

प्रश्न : मूल्य क्या है ?

नीत्शे : नहीं जानता, किन्तु जो कुछ मूल्योंके नामसे प्रचलित हैं उनको बदल देना है और अच्छे और बुरेसे भिन्न कोई और शीर्षक खोजना है।

प्रश्न : क्या आपकी इस कोशिशको मैं-माने 'मिशन'को—'डेडलसकी उड़ान' कह सकता हूँ ?····पंख बांधकर सूर्यकी तरफ़ उड़नेकी कोशिश···

नीत्शे : समय, परम्परा और इस दुनियाके सड़े हुए यथार्थसे ऊपर उठनेकी कोशिश 'डेडलसकी उड़ान' ही कही जायेगी—युरॅपका इतिहास मुझे एक महान विध्वंसकके रूपमें याद करेगा।

■ ■

वाइ. एम. सी. ए.
शिमला

(पृष्ठ ४ का शेष : कुछ पंक्तियाँ)

में शायद) लीलाधर जगूड़ीने वैज्ञानिक शिल्प-संघटनको, कैटलिस्मिक प्रयोगसे उत्प्रेरक सम्भावनाके गिर्द कविताको पहुँचाया या खुदको—कहा जा सकता है। एक दूसरेसे भिन्न होनेपर भी पूर्ण विरामसे पूर्ण विरामके बीच; वाक्य-विन्यास शब्दोंकी इकोनॉमी तो प्रदर्शित करते ही हैं; वैज्ञानिक आश्चर्यके साथ प्रवाहको पहाड़ी नदीका वेग सौंपते हैं। और यह भी एक बात है कि विराम-चिह्नोंके कारण कवितामें कुछ पॉजेज़ आ गये जो कि तबतक स्पष्ट नहीं होते जबतक पाठक एक उदारता नहीं बरतता कि वो इसको आगे जोड़े या पीछे। कविता शायद सम्बन्धोंकी वैज्ञानिकतासे उगी है। क्योंकि आधुनिक मानवका व्यक्तित्व अपने पूरे संकटोंके साथ खण्डित है : उसकी सिफ़तके टुकड़े हो गये हैं। इस टूटको इस यात्रामें रक्षा दी जाये या झेला जाये—इसीके बीचका जीवन-बिन्दु कवितामें और उसके शिल्पमें रंग और लयके साथ संसरित होता है। यात्रामें जिस तरह अनेक दृश्य चलते-चलते बदलते हैं उसी तरह भाषाके प्रवाहमें 'इमोशन' अपना रंग बदलता है। दादीकी कहानियोंके सन्दर्भसे लेकर मनुष्यकी शारीरिक आवश्यकताकी वापसी तक सभी-कुछ चिन्तनपर आग्रह करते हैं।—नयी दिल्ली]

■ ■

ज्ञानोदय

यदि आप ज्ञानोदयके ग्राहक नहीं है

तो साथका कार्ड भरकर भेज दीजिए-

ज्ञानोदयका वार्षिक विशेषांक
पूजा-दिवालीके अवसरपर–

"शेष शताब्दी विशेषांक"

नवम्बर १९६७

····इस शेष शताब्दीके भविष्य, बहुआयामी
रोमांचक कल्पनाएँ-सम्भावनाएँ·······
विशेषांकसे ग्राहक बननेवालोंको
विशेष सुविधा

पृष्ठ : लगभग ३०० :: मूल्य : ३ रुपये

निम्नांकित नम्बर तथा दिनांकके अनुसार मनीआर्डरसे १५.००/चेकसे बैंक-कमीशन सहित १६.०० भेज दिये हैं। कृपया मुझे 'शेष शताब्दी विशेषांक' नवम्बर १९६७ से ग्राहक बना लीजिए तथा विशेष उपहार-योजनानुसार निम्नलिखित सामग्री उपर्युक्त शुल्कमें भेजिए—

१. 'शेष शताब्दी विशेषांक'	३.००
२. दिसम्बर १९६७ से अक्तूबर १९६८ तकके ११ अंक	१६.५०
३. महानगर विशेषांक १–२ (अथवा कोई पुराना उपलब्ध विशेषांक)	४.००
	२३.५०

नाम··

पता··

··

मनीआर्डर-रसीद/चेक-नम्बर··························

दिनांक······························

··························

हस्ताक्षर

ज्ञानोदय अगस्त १९६७

रवि	सोम	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
०	०	१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०	११	१२
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६
२७	२८	२९	३०	३१	०	०

कृपया
यहाँ
टिकिट
लगाइए

व्यवस्थापक,
मासिक 'ज्ञानोदय',
९, अलीपुर पार्क प्लेस,
कलकत्ता-२७

CALCUTTA-27
(INDIA)

कल्पना

वार्षिक विशेषांक
नवम्बर १९६७
पृष्ठ : ३००
मूल्य : ३.००

'शेष शताब्दी विशेषांक'

पुस्तकालय
077998
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

परिकल्पना

हम जिस तारीख़पर खड़े हैं उसके पीछे है बीसवीं शताब्दीका दो-तिहाई रास्ता : एक नहीं दो—भयंकर विश्व-युद्धोंका तूफ़ान, पूर्व-पश्चिम तथा अमेरिकी-रशियन शक्तियोंके सामर्थ्य-साधनकी प्रतिद्वन्द्विताके बीच तीसरे विश्वयुद्धका खतरा, एटम-हायड्रोजन बमके दुधारे हथियारोंके छूट गिरनेका हॉरर, विज्ञानके हाथों चमत्कारोंकी आतिशबाजीकी तरह चन्द्रलोककी ओर उठते स्पुतनिक, मानवीयता और भावनाके लोकपर जमता हुआ कुहरा, मशीन आटोमेटन और कम्प्यूटरके सामने एक ओर मानव-क्षमता और क्षिप्रता तो दूसरी ओर उसका अवमूल्यन, गुलामीकी सलाख़ोंको तोड़कर अपना परचम फहराते देश, संयुक्त राष्ट्रसंघका रेफ़रीकी तरह युद्धको बचाये रखनेवाला यत्न—कुछ अभिनय, कुछ असलियत—अपनी लाठीके बल अब भी दुनियाको जीत लेनेका दम्भ करनेवाले देश, हिटलर-मुसोलिनीकी तानाशाही और

हिरोशिमाका ध्वस्त खण्डहर''''सामाजिक सन्दर्भोंके बीच टूटता और जूझता हुआ आदमी, परिवारके बदलते हुए परिवेश, फ़ैशनकी दुनियामें स्ट्रिपटीज़के करिश्मे''''एक जीवन शराबखोरी और अनैतिक मान्यताओंका, एक और जीवन ज़िम्मेदारी, संघर्ष और कौलेप्सका''''‘तरक़्क़ी’ की काया इतनी ऊँची कि लोकालोकके पार सिर उठाये खड़ी है, ‘तनज़्जुली’ की खाई इतनी गहरी कि ऊपरके लोकालोक भी उसमें विलीन हो जायें।

और इस दो-तिहाई रास्तेके आगे शताब्दीका वह एक-तिहाई रास्ता शेष है जहाँ उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश दोनोंकी अकूती सम्भावनाएँ हैं। न हमने कलियुगको सामने रखा है, न ही जार्ज आरवेलकी तरह सोचा कि एक समयावधिके बाद क्या होगा, हमने वर्तमानको सामने रखकर ‘'शेष शताब्दी” की परिकल्पना की है कि अगले ३३ वर्षोंमें क्या-क्या होता जायेगा, या क्यासे क्या हो जानेकी सम्भावना है। भविष्यकी बात ज़रूर की जा रही है लेकिन दृष्टि सुदूर भविष्यपर नहीं, निकट भविष्यपर है जिसका वर्तमानसे आत्मीय सम्बन्ध है और जहाँ वायवी कल्पनाको कोई स्थान नहीं है।''''

बीते हुए दो-तिहाई समयके अन्धकार पक्षको देखते हैं तो भविष्यपर, दुर्भाग्यकी तरह घिरती भयावहतापर पहले आँखें ठहरती हैं लेकिन आदमीकी शक्ति और शाश्वत प्रगतिशीलताको दृष्टिमें रखकर जब सामनेकी तरफ़ देखते हैं तो आँखें चमकने लगती हैं : यह लाल बटनका आतंक समाप्त होकर रहेगा''''ये गृह-युद्ध और शीत-युद्ध आगे चलकर दम तोड़ देंगे''' दुनिया दूरीकी दृष्टिसे और भी छोटी होती जायेगी और सीमाकी दृष्टिसे विस्तृत''''। अपना यह देश हज़ार रंग बदलेगा : इसी शताब्दीमें अभी छह आमचुनाव और होने हैं''''यदि वर्तमान संविधानकी लीकपर ही सोचते चलें, तो—इसी शताब्दीमें देशकी आबादी ५५ से ९५ करोड़ हो जाती है। इसी शताब्दीमें अभी तीन दशक और दिशा-परिवर्तनके लिए आनेवाले हैं''''उस युगके दशक जहाँ एक दशकमें इतने परिवर्तन हो सकते हैं जो पिछली शताब्दीके १०० वर्षोंमें भी न हुए हों।

इसी तारीख़पर बदलते देश और देशोंके नक्शे, कल्पित और अकल्पित समाज, नये विकसित होते परिवार, बदलते हुए नाते-रिश्ते, प्रणय और परिणयके कायाकल्प, निरन्तर विस्तृत होती दूरदृष्टिकी कल्पना करते सहसा रोमांच हो आता है। भविष्यके बारेमें सोचते आँखोंमें कोलम्बस-सी क्षमता आ जाती है। “शेष शताब्दी”की परिकल्पना इसी निकट भविष्यकी पूर्विका है।'''हमें इसकी चिन्ता नहीं कि यह सामग्री-संयोजन ब्ल्यु प्रिण्ट-जैसा लगेगा या यूटोपियाजैसा। हमारे प्रयासमें न अतीतको नकारा गया है, न ही वर्तमानको लाँघनेकी कोशिश की गयी है, न ही कोई भविष्यवाणी ही इसमें संकलित की गयी है—हाँ, आपको ऐसे बिन्दुपर ज़रूर खड़ा कर दिया गया है जहाँसे आप अगले एक-तिहाईको देखनेका प्रयत्न कर सकें, आजके उस परिवेशमें जिसके सैकड़ों चौराहोंपर हज़ार-हज़ार मार्गसंकेतक तीर-चिह्नोंके

नियोन जगमगा रहे हैं कि इन संकेत-सूचक प्रकाश-चिह्नोंको पीठ देकर उन शिखरोंकी ओर बढ़ें जो रहस्यमय हैं, अजाने हैं और जिनपर डग भरनेका रोमांच तेनजिंग और हिलेरीकी अनुभूतियोंका रूपान्तरण है।''''

प्रमुख शीर्षक

■ **विविध दृष्टि :** ○ एक तिहाईके पीछे दो तिहाई : बीसवीं शताब्दीके ६७ वर्षोंका एक संक्षिप्त सिंहावलोकन ○ इक्कीसवीं शताब्दीके प्रथम दिन : मेरी कल्पनाका विश्व एक प्रश्न-रेखासे कटा हुआ विश्व ○ अगले तीन दशकोंका देश : १० प्रश्न, १० व्यक्ति ○ आँखों-आँखोंका खेल : एक चित्र-कथा ○ बग़ैर आँखोंके सपने : कुछ अमूर्त चित्रोंके करिश्मे ○ चलता हुआ इण्टरव्यू : अपने-अपने-सपने (भाँति-भाँतिके लोगोंसे भेंट—केन्द्रीय मन्त्रीसे म्युनिसपैलिटीके मेहतर तक, ज्योतिषीसे जेबकतरे तक—कि शेष शताब्दीमें क्या होगा ?)
■ **राजनीतिक कोण :** ○ अगले युद्ध—ठण्डे और गरम ○ भविष्यका फलाफल : भारतकी जन्मपत्री ○ 'पलमें परलै होयगी' : ○ जो सोचा था—ग़लत ! अब जो सोचता हूँ-वह ?···
■ **वे ही घर : वही समाज :** ○ सबके मर जानेपर एक ख़त ○ शताब्दीके अन्तिम मनु—नयी समाज-व्यवस्था ○ इकतीस दिसम्बर १९९९ के दिन : एक लड़कीकी डायरी ○ अपने कटघरे : एक निराशावादीका आकाशभाषित ○ फ़ैशनके नये कट : एक प्रदर्शनीकी रिपोर्ट ○ 'यन्नवतामुपैति' : मिस वर्ल्ड–२०००का प्रस-वक्तव्य ○ नीत्शे : अन्तिम पलायन तक····
■ **समस्याएँ :** ○ नये भाषा-फ़ार्मूले : सोचें तो ! ○ 'घेराव' का अगला अध्याय : समूह-शक्तिके नये ब्रह्मास्त्र ○ अहम् मसले थे ही नहीं ○ साझा बाज़ार दुनियाका····
■ **एकांकी :** ○ डूबती हुई धरती ○ एक और सोनोरा (एक अर्धकल्पना)····
■ **फ़न्तासी :** (शेष शताब्दीके परिप्रेक्ष्यमें) ○ केवल एक इमारतकी ओर····○ प्रेमका नया त्रिकोण ○ अन्तिम भूकम्प ○ प्रयोगशालामें प्राणोंका निर्माण : किस सीमा तक····
■ **कहानियाँ :** ○ कलके रोशनदान : प्रेम, पड़ोसियोंके सम्बन्ध, एक विश्व, आजकी नयी परम्परा जो कल दक़ियानूसी हो जायेगी···· ■ **सन्दर्भ :** ○ 'कल' 'कल' के लिए जो कहा गया था···· ○ यदि इतिहास स्वयंको दुहराये ○ प्रत्येक 'नया' किसी पुरानेकी पुनरावृत्ति है ?···· ■ **विज्ञान :** ○ चन्द्रलोकके ड्राइंग-रूम ○ एक घण्टेमें दुनियाका सफ़र ○ भूलसे : सर्वनाश ○ नये समीकरण···· ■ **कविताएँ : शेष शताब्दी :** ○ पाँच कविताएँ ○ अगली कविताके नमूने ○ तीन लम्बी कविताएँ···· ■ **व्यंग्य :** ○ दुबारा फल चखनेका मज़ा ○ तब कहानी ऐसे शुरू होगी ○ शतरंज उसने बिछायी है····○ एक परिवर्तित संविधान····
■ **साहित्य-पथ :** ○ शेष शताब्दी : एक दार्शनिक व्याख्या ○ बीसवीं सदी—कालके अथाह

सागरमें एक बिन्दु ! ० 'समय' उसका नाम है ० एक टुकड़ा ज़मीन : उपन्यासकारोंकी दृष्टि ० आजकी कवितामें कलका उजेला ० महाभारतकी भाषामें कलकी दिशा····

■ **ललित रचना :** ० एक सिनेरियो : निषिद्ध अंश ० पूरी शताब्दी : पढ़नेकी मेज़पर ०कामसूत्रका परिवर्द्धित संस्करण···· ■ **यात्राएँ :** ० वहाँके लोग ० रास्तेके संस्मरण····

■ **अन्य :** ० नये रचनाकारोंके पृष्ठ····

शेष शताब्दी विशेषांक

नये रचनाकारोंके लिए विशेष निमन्त्रण

आज जिनकी उम्र २०–३० के आसपास है वे २०वीं शताब्दीके शेष एक-तिहाई ३३ वर्षोंके प्रति अपनी आजकी मनःस्थिति, अनुभव और आकांक्षाओंके आधारपर भविष्यकी एक सुचिन्तित कल्पना कहानी, कविता या अन्य किसी विधामें प्रस्तुत कर सकते हैं। वे सोच सकते हैं कि बीट–बीटल्स–हिप्पीज़ और भूखी–दिगम्बर पीढ़ीके बाद उनकी पीढ़ीका क्या नाम होगा ? राजनीतिकी चौखटपर खड़ा देश अपनी दूर-दृष्टिसे सही नेताको चुनकर तरक़्क़ी कर सकेगा या गृहदाहका दृश्य उपस्थित करेगा ? जो काम आज संयुक्त राष्ट्रसंघ नहीं कर पा रहा है क्या उसके लिए नयी पीढ़ीकी कोई ताक़त उभरकर सामने आयेगी या तीसरा विश्वयुद्ध दोनों गोलार्द्धोंको ग्रस लेगा ? आजके परिवार, प्रेम, विवाह, विच्छेद, नाते-रिश्ते कौन-सी शक्ल पा जायेंगे ? दुनिया मानवता-जैसी सार्वभौम भावनाका आदर करती हुई एक विश्वकी दिशामें आगे बढ़ेगी या कटे हुए केंचुवेकी तरह टुकड़े-टुकड़ेमें बँटकर खण्डित जीवन जीनेके लिए बाध्य होगी !···विज्ञानकी दिशामें आगे बढ़ते हम मशीन-मानव बन जायेंगे या कविता–कला–दर्शनका सहारा सबसे अधिक मज़बूत हो जायेगा ?····

आप इनमें-से किसी एक बिन्दुपर खड़े होकर अपनी युवा दृष्टिसे "शेष शताब्दी" को देखिए···जो अपेक्षित लगे और जो उपेक्षित हो जाये उसे रचना-रूपमें हमें लिख भेजें। चुनी हुई रचनाएँ नवम्बर १९६७ में प्रकाश्य ज्ञानोदयके "शेष शताब्दी विशेषांक"में प्रकाशित की जायेंगी।

९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता-२७

ज्ञानोदय

पठनीय और संग्रहणीय

नये प्रकाशन

कितनी नावों में कितनी बार	अज्ञेय	४.००
काठ का सपना	ग. मा. मुक्तिबोध	३.५०
मेपल	प्रभाकर माचवे	३.००
पुरातत्त्व का रोमांस	भगवतशरण उपाध्याय	६.००
परिवेश	मोहन राकेश	४.००
माया-दर्पण	श्रीकान्त वर्मा	३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ
कलकत्ता :: वाराणसी
विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग
दिल्ली-६

Price Annual Rs. 15.00 per copy Re. 1.50.
This Copy Re. 1.50. for abroad extra postage18P.

GYANODAYA Aug. 1967

ध्रांगध्रा
केमिकल
वर्क्स लिमिटेड
भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा (रेयन ग्रेड)	सोडा ऐश
हाइड्रोक्लोरिक एसिड	सोडा बाईकार्ब
	कैल्सियम क्लोराइड
ब्लीच लिकर साहूपुरम् में डाकखाना : अरुमुगनेरी (तिन्नेवेली जिला)	नमक ध्रांगध्रा में (गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०
१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०
तार : सोडाकेम, बम्बई

License No. 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

भारतीय ज्ञानपीठ काशी की ओर से जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित।

हुसेनसे एक भेंट । कहानियाँ । कविताएं । व्यंग । संस्मरण ।

Com. Fed
1999-2000